सुखसागर

भाग-२

श्रीमद् भागवत महाकाव्य

शुकसागर-शुकवाणी

* संग्रीकरण :- सौ. प्रगती प्रभाकर अकिम

* छायांकन :- श्री सुधीर वासुदेवराव लिंगायत
आर्टटेक ग्राफीक्स, ७८९/९०, गुरुवार पेठ, पुणे- मो. ९४२२३६३३११

* सौजन्य :- ट्रॅक्टो मॅटीक्स, ६-ए, ताडीवाला रोड, दिवाडकर अपार्टमेंटस्, पुणे- ४११००१

* संशोधन, शुद्धिकरण:- श्री अशोक चांदमल सिंहल

* प्रेषक व्यवस्था :- १) श्री मोहन तुलस्यान (तुलस्यान एक्सप्रेस कुरिअर) फोन नं.२६११९२९१,
३, सागर अपार्टमेंटस्, फ्लॅट नं.८, ताडीवाला रोड, पूना-४११००१
घर-२६०५०७६१ मो.९८२३०४४८३२

२) श्री रामगोपाल केडिया (स्पीडमॅन एक्सप्रेस) फोन नं. २२०८७७५०,
१९१-बी, पहिला मजला, नाइन्थ कॅवेल एक्स-लेन,
डॉ. वेगाज स्ट्रीट, कालबादेवी रोड, मुंबई-४००००२

* सहयोगी छायांकन :- रश्मि हीरा - संजय हीरा

* पॅकिंग श्री ओमप्रकाश बलभद्रदास अग्रवाल

* भागवतकार :- श्री अनन्तसुत मणिरत्नम् महेन्द्रकुमार पाटोदिया

कोनार्क इन्क्लेव्ह, बी-८, बंड गार्डन रोड, पुणे - १

फोन नं. - २६१६२६७२, २६०५९६७४, २६०५९५०९ मो. ९३७१११६६८३

* प्रकाशन नारायणी देवी सांस्कृतिक भवन ट्रस्ट

श्री नारायणी धाम, सर्व्हे नं. ७४/१-बी, प्लॉट नं. १७-१८-१९,
कात्रज दूध डेअरी के पीछे, सातारा रोड, पुणे-४११०४३ फोन- २४३६५१५१

कौन कहता है कि ईश्वर नजर नहीं आता? सिर्फ वो ही तो नजर आता है जब कुछ नजर नहीं आता।
श्रीरामचरितमानस जीवन जीना सिखाती है और श्रीमद्भागवत मरकर जीना सिखाती है।

* मूल्य - कृष्ण भक्ति

ग्रन्थ प्राप्ति का स्थान

१) महालक्ष्मी मंदिर,
नेहरू स्टेडियम के पास,
सारस बाग, पुणे- ४११०३७

२) नारायणी देवी सांस्कृतिक भवन ट्रस्ट, (राणी सती मन्दिर)
सर्व्हे नं. ७४/१-बी/२, प्लॉट नं. १८-१९,
कात्रज दूध डेअरी के पीछे, सातारा रोड,
पुणे- ४११ ०४६ फोन नं. २४३६५१५१

३) अमरनाथ अग्रवाल
१०३१, बुधवार पेठ, जगोबादादा तालीम के पास,
पूना-४११००२ फोन नं. ऑ.२४४७३३१० घर-२५४३०२७४

४) श्री एस. सी नागपाल (आर्य समाज)
आर्य समाज, ए-१/१०१, ऑक्सफर्ड व्हिलेज,
वानवडी, पूना-४११०४० फोन नं. २६८५१६९०

५) श्री जगदीश बाघमल अग्रवाल
हॉटेल टूरिस्ट, मंगलवार पेठ, पुणे- २

६) श्री शाम ग्यानीराम अग्रवाल
आज का आनंद, शिवाजीनगर, पुणे-५
फोन ऑ. २५५३४८८८

७) श्री सुशीलजी अग्रवाल
एस-३, जनता कॉलनी, जयपूर-३०२००४
फोन नं. ऑ. ०१४१-२६०६७४६, मो. ९८२९०६०६७४

८) श्री प्रेमप्रकाश सूतवाला
नवशील अपार्टमेंटस्, ब्लॉक नं. ५, फ्लॅट नं. २, ५६ कॅन्टोंनमेंट,
कानपूर (उ.प्र.)- २०८००४ फोन नं. २३८११७०

९) श्रीमती गीता जयप्रकाश गोयल
बिल्डिंग ९ए, ११ वां मजला, गंगा सॅटेलाईट,
वानवडी, पुणे- ४११०४० मो. ९८६०००० २२२
फोन नं. ऑ. २६१४०२५१ घर- २६८३७४३४

१०) श्री विजय चौधरी
आशिष, विमान नगर, खामगांव-४४४३०३
फोन नं. (०७२६३) २५२४०३ ऑ. २५३११६

११) श्री बनवारीलाल अगरवाल
१६-११-७४१/डी/३६, मूसारामबाग,
हैद्राबाद- ५०००३६ मो. ९४२४६३५४९१९

१२) श्री राधेश्याम गोयल
सिनर्जी इन्स्टिट्यूट ऑफ मॅनेजमेंट
फडके हॉल के ऊपर, सदाशिव पेठ,
खजिना विहार चौक, पुणे- ४११०३६
फोन २४४९७८४७, २४४९७१३० मो. ९८२२०८६४४२

१३) श्री देवीप्रसाद सरावगी
गोकुलधाम, २९बी-२ रा मजला, ३२/१बी,
रामकृष्ण समाधी रोड, कलकत्ता-७०००५४
फोन नं. घर-२३२०१४१४ ऑ.२३५३८७६८

१४) श्री मोतीलाल डेंगला
अरुणोदय, ११८९/ए, १३-मेन हॉल, दूसरा स्टेज
बेंगलोर- ५६०००८ फो. २५२६४२०५, मो.९३४१२६२४९३

१५) श्री सुनील गर्ग (दर्शना)
उत्तम टाऊनस्केपस्, फ्लॅट नं. (ए-१)-१०२,
सिरीन हॉस्पिटल के सामने, येरवडा, पुणे- ४११००६
मो. ९८९०४५६९२८, ९९६०२६०६६१ (दर्शना)

१६) श्री राजेन्द्र बेनीप्रसाद मंगल
श्री खाटू श्याम मित्र मंडल, पूना
सी.एम.ई. पुणे- ४११०३१ मो. ९७६४४५५८५५

१७) शंकरलाल रिणवाँ
धानूका आश्रम, परिक्रमा मार्ग, रमण रेती,
वृंदावन- २८११२१ (यू.पी.) मोबाईल -०९७५६२५८२४२
फोन नं. ०५६५-३२९०८०४, २५४००७५, २५४०७३१

*** विशिष्ठ सहयोग *** १) श्री. कृष्णा वाडेकर, २) श्रीमती क्लेयरा गुडविन,
३) आरीफ इनामदार, ४) गणेश गुप्ता, ५) लेटीसीया कोलॅको, ६) अदिती वाईकर

*** सहयोगी दल *** १) श्री राजकुमार बन्सीलाल अग्रवाल, २) श्री ओमप्रकाश बलभद्रप्रसाद अग्रवाल,
३) श्री श्यामसुंदर बाबूलाल गोयल, ४) श्री राधेश्याम गोयल, ५) राजेन्द्र बेनीप्रसाद मंगल, ६) नन्दकिशोर अग्रवाल

सुखसागर भाग-२

श्रीमद् भागवत महाकाव्य

शुकसागर-शुकवाणी

विषयसूची

१)	काव्यकार की कलम से	४ से ५
२)	श्रीमद्भागवत महिमा	६
३)	दशम स्कन्ध	७ से ३३७
४)	एकादश स्कन्ध	३३८ से ४४७
५)	द्वादश स्कन्ध	४४८ से ५०४
६)	गौ-महिमा	५०५ से ५६२
७)	नारी विज्ञान	५६३ से ५७४
८)	गीता संदेश	५७५
९)	गीता समीक्षा	५७६ से ५८५
१०)	महाभारत समीक्षा	५८६ से ५८८
११)	ईश्वर के चमत्कार	५८९ से ५९२
११)	संत तुकाराम - संत रैदास	५९३ से ५९४
१२)	संत नामदेव	५९५ से ५९८
१३)	संत कबीर	५९९ से ६०१
१४)	संत पुण्डलिक	६०२ से ६०३
१५)	अष्टावक्रा मुनि	६०४ से ६०६
१६)	भजन	६०७ से ६०८

** जानना चाहते हो तो परमेश्वर को जानो। जीतना चाहते हो तो तृष्णाओं को जीतो। चलना चाहते हो तो सन्मार्ग पर चलो। पहचानना चाहते हो तो अपने आप को पहचानों ।।*

काव्यकार की कलम से

हमें भागवत् शास्त्र में श्रद्धा होनी चाहिए। शास्त्र पर यदि श्रद्धा न हो तो जो शास्त्र में लिखा है उसका क्या असर होगा? दूसरे शास्त्रोंकी निन्दा कभी नहीं करनी चाहिए, दूसरे बहुत से भी ग्रन्थ दुनिया में चलते हैं। जैसे बाइबिल, कुरान, ग्रन्थसाहब, धम्मपद। भागवत एक श्रद्धेय ग्रन्थ है। उस पर श्रद्धा होनी आवश्यक है।

श्रीमद् भागवत काव्य में भाग एक का विमोचन गत वर्ष हुआ। अब भाग दो का संकलन किया गया। काव्य अपने आप में एक सौंदर्य है, काव्य एक असीम आनंद है।

संसार में सर्वत्र सौंदर्य ही सौंदर्य भरा है, किन्तु उसे देखने की योग्यता चाहिये। सौंदर्योपासक कवि सर्वत्र सौंदर्य ही सौंदर्य देखते हैं, कवियों को फल-फूल वाले हरे-भरे वृक्षों से बड़ा सुख होता है। वे उनमें अनन्त सौंदर्य का अनुभव करते हैं, उनसे बातें करते हैं, तथा उनकी बातों को सुनते हैं। वे प्रत्येक घटना में सौंदर्य देखते हैं, वनों में, उपवनों में, सरों में, सागरों में, नदियों में, गिरों में, गिरिशिखरों में, पुरों में, नगरों में, पढ़ों में, अनपढ़ों में, बालकों में, वृद्धों में, प्रौढ़ों में, युवकों में, नरों में, नारियों में, कालों में, गोरों में, रूपवानों में, कुरूपों में, हँसने में, रोने में जहाँ भी उनकी दृष्टि जाती है वहीं वे सौंदर्य को निहारते हैं। उनकी दृष्टि में संसार एक सुन्दर खिलौना है। उसकी सब घटनाएँ हँसने की सामग्री हैं, कोई आता है तो भी हँसते हैं, जाता है तो भी हँसते हुए, कोई हँसता है तो भी हँसते हैं कोई रोता है तो भी हँसते हैं। कोई प्रतिज्ञा करता है, तो भी हँसते हैं, प्रतिज्ञा भंग करता है तो भी हँसते हैं। आवश्यक साधनों के आने पर भी हँसते हैं, उनके अभाव में भी हँसते हैं, गम्भीरता को भी देखकर हँसते हैं, चञ्चलता को देखकर भी हँसते हैं। जिसे अनुकूलता प्रतिकूलता दोनों ही सुखानुभूति हो।

हम संसारी लोग घटनाओं को जिन दृष्टियों से देखते हैं। कवि उससे भिन्न ही दृष्टि से देखता है। किसी स्त्री को रोते देखकर हमें भी दु:ख होता है, किन्तु कवि उसकी चेष्टाओं का अध्ययन करता है। कैसे इसके अश्रु निकलते हैं, मुख की आकृति कैसी होती है, रुदन किस स्वर में करती है, अश्रु निकलकर कहाँ गिरते हैं। वह तो रुदन के सौंदर्य चिन्तन में ही निमग्न हो जाता है।

कवि की दृष्टि को साधारण लोग नहीं समझ सकते। जिन घटनाओं को हम नित्य देखते हैं, हमारे ऊपर उनका कोई प्रभाव नहीं पड़ता। उन्हें ही कवि देखकर उनका वर्णन करता है तो हम पढ़ते-पढ़ते अघाते नहीं।

जितने ये राम-कृष्ण आदि अवतार हुए हैं, यदि इनके चारु चरित्रों को किसी कवि ने अन्तर्दृष्टि से न देखा होता तो ये कथाएँ अमर कैसे बनी रहतीं। इतिहास के पात्रों को अमर करनेवाले कवि ही हैं। साधारण घटनाओं में भी जो सरलता भर देता है, वही कवि है। कवि का सबसे बड़ा गुण नई-नई बातों को खोजना है। कवि का काम है कि वह प्रकृति-विकास को खूब मन से खोजे। अपनी पुस्तकों की प्रशंसा करने वाला लेखक अपने बच्चों की प्रशंसा करनेवाली माता के ही समान है।

एक कवि को तब संतुष्टि मिलती है, जब आप उसके शब्दों में उसे देखते हैं। लेकिन, किसी कवि को पूर्ण संतुष्टि तब मिलती है, जब आप उसकी कविता में खुद को देखते हैं।

सुंदर विचारों से ही सुंदर व्यक्तित्व का निर्माण होता है। सुंदर विचार रचनात्मक व प्रेरणादायक होते हैं। यदि जीवन-

निर्माण के लिए कोई भी साधन सुलभ नहीं हो, तो साहित्य अथवा सद्ग्रंथ में से किसी एक की भी संगति करनी चाहिए। सद्ग्रंथ और सत्पुरुष में कई समानताएं हैं। दोनों ही मानवता के संरक्षक-संवर्द्धक और प्रेरणास्रोत हैं। सद्ग्रंथों में सत्य पुरुषों के ही जीवन चरित्र और अमृत संदेश होते हैं। इसमें जीवन को औचित्यपूर्वक जीने के विचार मिलते हैं। जीवन में सत्यपुरुष की संगति दुर्लभ है। भारतीय वैदिक साहित्य-दर्शन, आयुर्वेद, काव्य आदि के ग्रंथ आज शताब्दियों बाद भी न केवल अपने देश में, बल्कि विदेशों में भी अपनी उदाय अक्षय जीवनी शक्ति के कारण सम्मानित हैं। महर्षि वाल्मीकि कृत रामायण, महामुनि वेदव्यास रचित महाभारत-श्रीमद्भागवत और गोस्वामी तुलसीदास रचित रामचरित मानस ऐसे ही सद्ग्रंथ हैं, जो विश्व में मानवता के श्रेष्ठ मूल्यों की धरोहर हैं।

जितनी भी विसंगतियां हैं, उनका मूल हमको लगता है कि राजनीति है। घूम-फिरकर बात जब आती है कि समाज में ऐसा क्यों हो रहा है, तो राजनीति ही नजर आती है। तो फिर मूल पर प्रहार करना होता है, जहां राजनीति ही है। इसमें अंतर सिर्फ इतना है कि राजनीतिक लेखन अलग चीज है और पक्ष का अलग।... साम्यवाद क्योंकि वर्तमान व्यवस्था को तोड़कर उससे आगे की स्थिति लाना चाहता है, इसलिए वह वामपंथ हो जाता है यानी वर्तमान से असंतुष्ट-पुरातन की तरफ नहीं लौटना, आगे की तरफ बढ़ना, वामपंथ यही हो जाता है। अगर आप सचमुच लेखक की तरह यानी राग-द्वेष से मुक्त होकर न्याय-अन्याय की बात सोचनेवाले लेखक की तरह लिख रहे हैं, अपने पक्ष और पराए पक्ष की बात न सोचकर जब हम साधारणीकरण की बात सोचते हैं, तो वह अपनी सीमाओं से भी मुक्त हो जाता है। वह लेखन ही श्रेष्ठ होता है।

काव्य हिंदी साहित्य का अलंकार है। श्रृंगार से ही कविता सुशोभित होती है और इसीसे सृष्टि का निर्माण होता है। वाल्मिकी डाकू थे पर जब उन्होंने क्रौंच पक्षी को समागम करते हुए देखा और एक बहेलिये ने मादा पक्षी का वध कर दिया तो उनके हृदय से एक टीस निकली और वह काव्य रूप में परिणित हो गयी वही काव्य रामायण बना। बिना काव्य के सृष्टि मे कोई रस नहीं है न ही कोई भाव व्यक्त हो सकता है।

इस काव्य के द्वारा सरल भाषा में भागवत को पूर्ण अर्थ में समझाया गया है जो पाठकों के लिये सहज है। मैंने इस काव्य में कहीं-कहीं बदलाव भी किया है पर मूलकथा कहीं भी परिवर्तन नहीं हुई है। मेरी आशा है यह पाठकों को नित्यपाठ के लिये सुलभ होगा और हर पाठक इसका उपयोग करेंगे। कहीं-कहीं कोई त्रुटि भी रह गयी होगी जो क्षमाप्रार्थिय है। समय-समय पर मैं आप लोगों का इसी तरह आशीर्वाद चाहूंगा और आपकी सेवा में नित्य-निरंतर अपनी रचनाएं पेश करूँगा।

महेन्द्रकुमार पाटोदिया

*** जिन्दगी मोहताज नहीं मंजिलों की, मंजिले हर वक्त दिखा देती है,**
मरता नहीं कोई किसी से जुदा हो के, वक्त सबको जीना सिखा देती है।
*** कुछ लोग हैं इतिहास बनाते हैं और कुछ लोग है जो इतिहास बन जाते हैं।**
*** रख खुद पर भरोसा कर आगे चला चल, बढ़ा आगे कदम मंजिल खुद तुझे मिल जायेगी,**
रख खुद पर भरोसा, जीत तेरी हो जायेगी।
*** वक्त बदलता है जिन्दगी के साथ, हम बदलते हैं वक्त के साथ,**
मिजाज नहीं बदलता है जिसके साथ, अपनों के साथ अपने ही बदल जाते हैं वक्त के हाथ।
*** गुजरी हुई जिन्दगी कभी याद ना कर, तकदीर में जो लिखा है उसकी फरियाद ना कर,**
जो होगा वो होकर रहेगा, तू फिक्र में अपनी हंसी बरबाद ना कर।

श्रीमद्भागवत महिमा

श्रीमद्भागवत पुराण की, महिमा अब हम गाते हैं।

श्रवण मात्र से ही जिसके, कर में मुक्ति पा जाते हैं।।

अनेकों शास्त्र पुराण पढ़ी, केवल भ्रम जाल ही बढ़ता है।

मुक्ति दान करे पल में, श्री भागवत गर्जन करता है।।

दुर्लभ है इस संसार में, मिले श्री हरि की कथा यह।

हों कोटि जन्म के पुण्य उदय, तो ही हो अमृत प्राप्त यह।।

आस्वादन करना चाहिये, सदा करें इस कथा का पान।

इसे सुनते ही हृदय भवन में, होंगे श्री हरि विराजमान्।।

नित्य कथा हो जिस घर में, तीर्थ ही वह बन जाये।

उसके वासी गण के कहें, पाप नष्ट सब हो जाये।।

कोई तीर्थ पावनता में, शुककथा समान न हो सके।

गंगा गया काशी पुष्कर, प्रयाग भी पीछे रह जाएं।।

इसका श्रवण तुम जान लो, अरियन् पर विजय दिलाता है।

काम क्रोध मोह लोभ अहं, सबको दलित कर जाता है।।

इसके आश्रित श्रोता वक्ता, दोनों ही कृष्ण के प्रिय बनें।

सो इसको त्यज कर अब कहो, क्या किसी भी अन्य धर्म से करें।।

---

* समय की दस्तक पहचानते हैं वो जो समय के साथ चलते हैं।
यश, कीर्ति और मान प्रतिष्ठा सभी समय से मिलते हैं।
* हो हौसला तो किस्मत भी संवर जाती है, हार भी जीत में हिम्मत से बदल जाती है।
वक्त की अग्निपरीक्षा सभी को देनी पड़ती है, तप के सोने सा खरा होके निकलना पड़ता है।
समय सभी का आता है, समय दूर भी जाता है, समय के साथ जो नहीं सम्भलता, अंत में वही पछताता है।
* ईश्वर न काबा में है, न काशी में, वो तो घट-घट में व्याप्त है, हर स्थिति में मौजूद है।

दशम स्कन्ध

विषयसूची

१) पृथ्वीका भगवान से भार हरण की प्रार्थना करना १२

२) देवकी के गर्भ की देवता और ब्रह्माद्वारा गर्भ स्तुति १४

३) श्रीकृष्ण जन्म २२

४) कंस का अत्याचार २५

५) कृष्ण की गोकुल में लीलायें २९

- १) गोकुल में नन्द महोत्सव २९
- २) मथुरा में नन्द और वसुदेव का मिलन ३०
- ३) पूतना वध ३१
- ४) शकटासुर का वध ३४
- ५) तृणावर्त वध ३६
- ६) नामकरण संस्कार ३७
- ७) बाल क्रीड़ा ३९
- ८) माखन चोरी की लीलायें ४०
- ९) कन्हैया का मिट्टी खाने का प्रसंग ४१
- १०) मैया का कृष्ण को ऊखल से बान्धना, कृष्ण की गोकुल में अन्य बाल लीलायें और यमलार्जुन का उद्धार ४२

६) कृष्ण का वृन्दावन गमन ५१

- १) वत्सासुर का वध ५१
- २) बकासुर का वध ५२
- ३) कृष्ण का गोवत्स चारण और ग्वालबालों के साथ बाल क्रीड़ायें ५३
- ४) अघासुर वध ५४

५) ब्रह्मा द्वारा बछड़ों और ग्वालोंका अपहरण
और ब्रह्माका मोह भंग ५७
६) धेनुकासुर का वध ६९
७) कालिया नाग का दमन ७३
८) व्रजवासियों को दावानल से बचाना और
कृष्ण का दावाग्नि पान ८०
९) प्रलम्बासुर का वध ८१
१०) वर्षा और शरद ऋतु, वेणुगीत ८४
११) वेणुगीत ८८
१२) चीरहरण लीला ९१
१३) यज्ञपत्नियों पर कृष्ण की कृपा ९४
१४) गोवर्धन लीला १०२
१५) इन्द्रका गर्वहरण और
श्रीकृष्ण का नाम गोविन्द १०५
१६) वरुणलोक से नन्दबाबा को छुड़ाना और
गोपोंको वैकुण्ठ धाम का दर्शन कराना १०९
१७) रासलीला १११
१) गोपियों का विरह ११६
२) गोपी गीत १२०
३) कृष्ण का गोपियोंके बीच में
प्रकट होकर महारास करना १२३
१८) विद्याधर सुदर्शन का उद्धार १२९
१९) शफ्चूड़ का उद्धार १३१
२०) युगल गीत १३१
२१) अरिष्टासुर का वध १३५
२२) कंस की अक्रूर को व्रज भेजने की योजना १३६
२३) केशी वध १३८

२४) व्योमासुर का वध १४०
२५) अक्रूर जी का व्रज में आना १४१
२६) श्रीकृष्ण और बलराम का मथुरा के लिये प्रस्थान
और व्रजवासियों का विलाप १४५
७) श्रीकृष्ण की मथुरा में लीलायें १४८
१) अक्रूरजी का मोह भंग १४८
२) रजकवध १५४
३) दर्जी और सुदामा माली पर अनुग्रह १५६
४) कुब्जा पर कृपा १५७
५) कृष्ण का कंस की यज्ञशाला में धनुर्भंग और
कंस का भयभीत होना १५८
६) कुवलयापीड हाथी का वध और
कृष्ण-बलराम का रंगशाला में प्रवेश १५९
७) चाणूर, मुष्टिक आदि मल्लों के साथ
मल्लयुद्ध और उनका वध १६२
८) कंस वध १६५
९) कृष्ण और बलराम का यज्ञोपवीत संस्कार और
गुरु सांदीपन के आश्रम में विद्याध्ययन १६६
१०) श्रीकृष्ण की आज्ञा से उद्धव का व्रज गमन १७०
१) भ्रमर गीत १७५
२) उद्धव और गोपियों का सम्वाद १७७
११) कृष्ण का कुब्जा और अक्रूर के घर जाना १८२
१२) अक्रूर का हस्तिनापुर जाना और
पाण्डवोंका समाचार कृष्ण को देना १८५
१३) श्रीकृष्ण का जरासन्ध से भीषण युद्ध १८७
१४) कालयवन से युद्ध,
कालयवन का मुचकुन्द द्वारा वध १९१

१५) श्रीकृष्ण का द्वारिकापुरी बसाना १९६
८) श्रीकृष्ण की द्वारिका में लीलायें १९७
१) रुक्मिणी हरण १९७
२) शिशुपाल के साथ युद्ध तथा
श्रीकृष्ण-रुक्मिणी विवाह २०४
३) प्रद्युम्न का जन्म और शम्बरासुर का वध २०८
४) स्यमन्तकमणि की कथा, जाम्बवन्ती और
सत्यभामा के साथ विवाह २११
५) स्यमन्तक मणि का हरण और शतधन्वा का वध
व कृष्ण का अक्रूर को द्वारिका बुलाना २१४
६) कृष्ण के अन्य विवाह २१७
७) भौमासुर का वध और सोलह हजार एक सौ
राजकन्याओं के साथ कृष्णका विवाह २२१
८) कृष्ण का रुक्मिणी के साथ हास-परिहास २२५
९) कृष्ण का परिवार तथा अनिरुद्ध के विवाह में रुक्मी का वध २३१
१०) उषा-अनिरुद्ध मिलन २३४
११) श्रीकृष्ण का बाणासुर के साथ युद्ध २३७
१२) राजा नृग का गिरगिट योनि से उद्धार २४१
१३) बलरामका व्रज-गमन २४४
१४) पौण्ड्रक वध और काशीपुरी का दहन २४६
१५) बलराम द्वारा द्विविद वानर का वध २४९
१६) साम्ब का दुर्योधन पुत्री लक्ष्मणा से विवाह २५१
१७) नारद का भगवान की गृहचर्या देखना २५५
१८) जरासन्ध द्वारा बन्दी बनाये गये राजाओं का
सन्देश लेकर दूत का श्रीकृष्ण के पास आना २५८

१९) कृष्णका इन्द्रप्रस्थ में आना २६३
२०) जरासन्ध का वध और बन्दी राजाओं की मुक्ति २६६
२१) शिशुपाल वध २७३
२२) युधिष्ठिर का राजसूय यज्ञ और दुर्योधन का अपमान २७६
२३) यादववीरों का शाल्व के साथ युद्ध और शाल्व का वध २७९
२४) दन्तवक्त्र और विदूरथ का वध २८३
२५) बलरामजी की तीर्थयात्रा और रोमहर्षण सूत का वध २८४
२६) बल्वल का वध २८६
२७) सुदामा चरित्र २८८
२८) कृष्ण की कुरुक्षेत्र में
सूर्यग्रहण पर वृन्दावन वासियों से भेंट २९४
२९) कृष्ण की पटरानियों का द्रौपदी से मिलन २९८
३०) कृष्ण के पिता वसुदेव का यज्ञ-महोत्सव ३०२
३१) कृष्णद्वारा पिता वसुदेवको ब्रह्म-ज्ञान का उपदेश ३०७
३२) कृष्णके द्वारा देवकी के छः मृत पुत्रों को वापस लौटा लाना ३१०
३३) सुभद्रा हरण ३१२
३४) कृष्ण का मिथिला में श्रुतदेव ब्राह्मण और
राजा जनक के घर जाना ३१३
३५) वेदोंद्वारा कृष्णकी स्तुति ३१७
३६) भस्मासुर का वध व शिवजी का संकट-मोचन ३२५
३७) महर्षि भृगु के द्वारा त्रिदेवों की परीक्षा ३२८
३८) कृष्णका मरे हुए ब्राह्मण-बालकों को वापस लाना ३३०
३९) द्वारिका में कृष्ण की लीला-विहार का वर्णन ३३३

दशम स्कन्ध

वसुदेव ने जब देखा, मेरे पुत्र बन श्री हरि आए। आश्चर्य से मन द्रवीभूत हुआ, भर आईं उनकी आंखें।।

१) पृथ्वीका भगवान से भार हरण की प्रार्थना करना

परीक्षित् बोले,
चन्द्रवंश और सूर्यवंश, दोनों का ही विस्तार किया। दोनों के ही राजाओं के, अद्भुत चरित्र को भी कहा।।
प्रभु प्रेमी मुनि श्रेष्ठ हे,धर्मप्रिय यदुवंश की भी। विस्तृत रूप से आपने, हे प्रभु वर्णन कर दी।।
उसी वंश में अपने अंश, श्री बलराम को संग लिये। परात्पर ब्रह्म श्री कृष्ण स्वयं, इस धरती पर अवतीर्ण हुए।।
कृपा कर अब आप हमें, उनके पावन चरित की कहें। परम पावनी उनकी कथा, का आप वर्णन करें।।

हैं सबके आश्रय कृष्ण स्वयं, वह स्वयं ही जीवन दाता हैं। सर्वात्म हैं आप वही, सब भय के वही तो त्राता हैं।।
यदुवंश में अवतीर्ण हो, उन्होने जो भी लीलाएं करीं। हे मुनिवर विस्तार से, अब श्रवण करायें आप ही।।

पूर्णकाम जो हो चुके, नहीं तृष्णा का कहीं लेश शेष। वे जीवनमुक्त भी प्रेम सहित, हों जिनके लिये अतृप्त अशेष।।
उनकी ही लीलओं का, नित्य गान जो किया करें। मुमुक्षु के भव रोग की, अमोघ औषधि जो बनें।।
विषयी लोगों के मन कर्ण, नित्य आल्हादित जो कर दे। जग से त्रस्त सब लोगों के, सन्ताप ही सारे जो हर ले।।
आत्मघाती या पशुघाती, जीवों को जग में छोड़कर। श्री कृष्ण के सुन्दर सुखद, चरित से मुखड़ा मोड़कर।।
कौन है जो इस रसपूर्ण, कथामृत से विमुख होए? प्रीति सेवा लीलाओं का, श्रवण जो नर नहीं करे?

मेरे तो हैं कुल देव वही, परम इष्ट वह हैं मेरे। कुरुक्षेत्र में महाभारत के, भीषण युद्ध थे जब हुए।।
देव विजयी भीष्म आदि, अनेकों ही अतिरथियों से। परम यशस्वी पितामह मम, श्री अर्जुन थे लड़ रहे।।
कौरवों की अति विस्तृत सेना, थी उनके लिए अथाह सागर। भीष्म आदि महावीर जहां, खड़े थे तिमिर्लिंग बनकर।।
बड़े बड़े मच्छों को भी, जो पल पल थे निगल रहे। निज पराक्रम से चहुं ओर, महाभय थे उत्पन्न जिन्होंने किए।।
स्वनाम धन्य पितामह मेरे, श्री कृष्ण चरण को नौका बना। उस महासिन्धु को उन्होंने, अनायास ही पार किया।।
ज्यों मार्ग में चलते हुए, बछड़े के खुर का गढ़ा मिले। पथिक बिना किसी यत्न के, सहज में पार उसे कर ले।।

हे द्विजवर यह तन मेरा, जो आपके सामने है बैठा। कौरव पाण्डव इन दोनों ही, वंशों का इक ही अंश बचा।।
अश्वत्थामा द्वारा विमुक्त, ब्रह्मास्त्र से था मैं दग्ध हुआ। उस पल मेरी माता ने जा, श्रीकृष्ण चरण आश्रय लिया।।
तब चक्र हाथ में लिए हुए, मेरी माता के गर्भ में वह गए। इस भाँति मेरे दग्ध तन, में उन्होंने पुन: प्राण भरे।।

केवल मुझमें ही नहीं, सब तनधारिन् में स्वयं बसें। आत्म रूप में सबमें बसी, अमृतत्व का दान दें।।
बाहर काल के रूप में, मृत्यु सबको प्रदान करें। जीव रूप में प्रतीति तो, है उनकी लीला मात्र ही हे।।
ऐश्वर्य और माधुर्य से, है स्निग्ध लीला उनकी। उन्हीं कथाओं को भगवन्, आप मुझे अब कहें सही।।

आपने अभी था कहा प्रभु, रोहिणी पुत्र थे बलभद्र। तत्पश्चात करी गणना, उनकी देवकी सुत कहकर।।

तनो परिवर्तन हुए बिना, सम्भव कैसे यह हो सके? इक ही जीव दो मातृगर्भ, से कैसे उत्पन्न हो सके?

निज भक्तों को प्रेमामृत, नित्य प्रदान जो करते हैं। असुर भी जिसके सामने आ, मुक्ति सहज पा जाते हैं।।
वात्सत्य स्नेह से परिपूर्ण, निज पिता का घर उन्होने क्यों छोड़ा? मथुरा छोड़ी व्रजभूमि को, क्यों उन्होंने प्रस्थान किया?
यदुवंश शिरोमणि भक्तों के, नित्य प्रिय श्री कृष्ण ने। नंदादि गोप बन्धुन् के संग, थे कहां कहां निवास किए?

ब्रह्मा और श्री शंकर पर, भी जो नित्य शासन करें। व्रज और मधुपुरी में रह, वह कौन कौन लीलाएं करें?
निज मामा राजा कंस को, क्यों अपने हाथों मार दिया? वह तो मामा था उनका, वह तो मारने के योग्य न था।।

सच्चिदानन्द स्वरूप नित्य, चिन्मय विग्रह निज प्रकट किया। यदुवंशिन् संग द्वारिका में, कितने वर्ष निवास किया?
उन सर्वशक्तिमान् प्रभु की, कितनी पत्नियां थीं कहें? हे मुनिवर श्री कृष्ण की, जो भी पूछी है लीलाएं।।
या जो भी नहीं पूछीं कोई, उन सब की ही आप कहें। सर्वज्ञ हैं आप प्रभु, आप तो सब कुछ हैं जानें।।
श्रद्धा हृदय में धर करी, मैं आपकी शरण में आया हूं। उनको सुनना मैं चाहूं, बिनती यही चरण में लाया हूँ।।

अन्न की बात तो दूर रही, मैंने जल का भी परित्याग किया। असह्य क्षुधा और प्यास से, तनिक भी क्षुब्ध मैं नहीं हुआ।।
क्योंकि आपके श्री मुख से, सुधा रस जो निरन्तर बस रहा। श्री हरि की लीला कथाओं का, नित्य पान हूं कर मैं रहा।।
सूत बोले,
सर्वश्रेष्ठ प्रभु प्रेमी, सर्वज्ञ श्री शुकदेव ने। राजा परीक्षित् के मुख से, जब ऐसे सुन्दर प्रश्न सुने।।
उनका अभिनन्दन किया, और लीला कथा आरम्भ करी। सम्पूर्ण कलिमल को, हे शौनक जो है धो देती।।
शुकदेव बोले,
हरि लीला रसिक हे राजर्षे, है अति सुन्दर तव निर्णय यह। विवेक पूर्ण उदार है, तव आन्तर का निश्चय यह।।
सर्व हृदयाराध्य हैं जो, श्री कृष्ण लीला कथाओं के। श्रवण में हे राजन् तव, सहज सुदृढ़ प्रीति भए।।
भगवान कृष्ण की कथा के, सम्बन्ध में जब भी प्रश्न हो। वक्ता प्रष्टा और श्रोता, तीनों इक साथ ही पावन हों।।
शालीग्राम का चरणोदक, या ज्यों गंगा जल हो कहीं। परम पावन वह कर दे, सर्वविधि वह सबको ही।।

असंख्य दैत्य दल राजन्, धरती पर थे तब आ उतरे। अभिमानी राजाओं के, रूप थे उन्होने धर लिये।।
उनके भार से यह धरा, दलित अति थी हो गई। उनसे त्राण पाने के लिये, श्री ब्रह्मा की वह शरण गई।।

उस समय इस पृथ्वी ने, था गौ रूप धारण किया। उसके नेत्रों का अश्रुजल, था मुखड़ा उसका धो रहा।।
मन तो खिन्न ही था उसका, तन भी था अति क्षीण हुआ। अति करुण स्वर में वही गौ, बार बार थी रही रम्भा।।
श्री ब्रह्मा के सम्मुख जा, उसने सारा निज कष्ट कहा। सहानुभूति पूर्ण हृदय से, ब्रह्मा जी ने उसे सुना।।
तत्पश्चात् श्री शंकर और, स्वर्ग के अन्य देवता। गौ रूप में आई पृथ्वी को, भी उन अपने संग लिया।।
क्षीर सिन्धु के तट पे, ब्रह्मा जी फिर जा पहुंचे। सबके दु:ख जो स्वयं हरें, उन श्री हरि की शरण गए।।

सब देवों के परं देव, सबके परम आराध्य हैं जो। निज भक्तों के सब कष्ट हरें, अभिलाषा सब पूर्ण करें जो।।
एकमात्र स्वामी जग के, वह परमात्म आप हैं। कर्ता धर्ता और संहारता, स्वयं वह सबके आप हैं।।

क्षीर सिन्धु के तट पे पहुंच, ब्रह्मा आदि सब देवों ने। पुरुष सूक्त ही गान किया, सर्वान्तर्यामी प्रभु स्तुति में।।
वह स्तुति करते करते, समाधिस्थ श्री ब्रह्मा हुए। उनके गुणों के ध्यान में, अपना आप वह भूल गए।।

इस समाधि में उन्होंने, इक आकाश वाणी को सुना। तत्पश्चात् जगत् रचयिता, ब्रह्मा ने देवों से कहा।।
हे देवो भगवान की, वाणी है मैंने सुनी। मेरे द्वारा ही उसको, अब तुम भी सुन लो सभी।।
जैसा है आदेश हुआ, अब वैसा ही तुम करो। प्रभु की आज्ञा पालन में, अब तनिक न विलम्ब करो।।

पृथ्वी के इस कष्ट को, प्रभु तो पहले ही जानें। हैं ईश्वरों के भी ईश्वर वह, सबके मन की पहचानें।।
निज कला शक्ति द्वारा, पृथ्वी का भार वह हर ही लें। अपनी ही योगमाया द्वारा, पृथ्वी पे जब तक लीला करें।।
अपने अपने अंश लिये, तुम लोग भी यदुकुल में जन्मो। उनकी इस मानुषी लीला में, उनका तुम सहयोग दो।।

पुरुषोत्तम भगवान स्वयं, प्रकटेंगे वसुदेव के घर। अपनी प्रियतमा राधिका, रानी को भी संग लेकर।।
उनकी सेवा के लिये, देवांगनाएं सब जन्म लें। और उनकी सेवा हेतु ही, देवता गण भी प्रकट भएं।।
स्वयं प्रकाश प्रभु शेष भी, हैं हरि की कला अनन्त ही। सहस्रशेषधारी अनन्त, जन्मेंगे उनसे पहले ही।।
श्री हरि के प्रिय काज करन, उनके अग्रज बनकर आएंगे। उनकी सब लीलाओं में, यह अपना भाग निभाएंगे।।

महा ऐश्वर्य शालिनी, श्री हरि की योगमाया। सारे जग को ही जिसने, मोहित निज रूप से है किया।।
उनकी आज्ञा पाकर के, अनके लीला कार्य को ही। अंश रूप से स्वयं भी, अवतार धरेंगी उन संग ही।।
मुख्य प्रजापति ब्रह्मा ने, जब देवों से यह बात कही। देवों को आज्ञा दे राजन्, पृथ्वी को भी ढाढस दी।।
समझा बुझाकर पृथ्वी को, ब्रह्मा जी ने प्रस्थान किया। देवों को भी आदेश देई, उन अपने धाम की पकड़ी राह।।

२) देवकी के गर्भ की देवता और ब्रह्माद्वारा गर्भ स्तुति

प्राचीन काल में शूरसेन, नामक यदुवंशी राजा थे। मथुरा पुरी में रहकर ही, वह राज्य का शासन करते थे।।
मथुरा मण्डल और शूरसेन, मण्डल पे आधिपत्य था। तब से सब नरपतियों ने, मथुरा को राजधानी किया।।
श्री हरि तो नित्य ही, विराजमान् वहां रहते हैं। अपनी नित्य लीलाओं का, प्रदर्शन वहां वह करते हैं।।

शूरपुत्र वसुदेव जी का, मथुरा में विवाह हुआ। नवविवाहिता पत्नी का, देवकी ही नाम था।।
पत्नी को घर ले जाने को, रथ पे वह सवार हुए। उग्रसेन के पुत्र थे, कंस नाम से जाने गए।।
चचेरी बहिन देवकी की, प्रसन्नता को मन में धर। रथ के घोड़ों की रास को, पकड़ा उसने अपने कर।।
यद्यपि उसके साथ शतशः, स्वर्ण रथ थे चल रहे। अपनी बहिन के रथ को वह, स्वयं थे प्रेम से हांक रहे।।

देवकी के पिता का, देवक जान लो नाम था। निज पुत्री देवकी पर, था उनका अतीव स्नेह बना।।
कन्या को विदा करते समख, चार सौ हाथी उन्होंने दिए। स्वर्ण हारों से सभी, हाथी थे सजे हुए।।
पंद्रह हजार संग अश्व दिये, और रथ दिए अठारह सौ। वस्त्राभूषण से सजी, दासियां भी दीं संग दो सौ।।
विदा के समय वर और वधु, दोनों के मंगल के लिये। शंख तुरही मृदंग और, दुदुम्भी सब संग संग बजे।।

अश्व रास कर में लिये, रथ को जब कंस था हांक रहा। तत्क्षण ही आकाश वाणी, ने सम्बोधित उसको किया।।

अरे मूर्ख तू जिसको, रथ में बिठा लिए जा रहा। उसकी अष्टम् सन्तान ही, तेरा काल बन कर प्रकटेगा।।
कंस तो पापी घोर था, नहीं दुष्टता की सीमा थी कोई। भोज के उज्ज्वल वंश पर, वह तो था एक कलंक ही।।
आकाश वाणी को सुनते ही, तलवार म्यान से खेंच ली। चोटी पकड़ निज बहिन की, उसको मारने की उसने तैय्यारी करी।।

क्रूर तो था स्वभाव से ही, निर्लज्ज भी था वह हो गया। उसका कर्म यह देखकर, शान्त उसे वसुदेव किया।।
महात्मा वसुदेव ने, फिर उससे यह बात कही। बुद्धिमान् कमार ने फिर, उसको यह सन्मत्ति दी।।
वसुदेव बोले,
हे कुमार आप तो हैं, भोजवंश के वंशधर। उज्ज्वल कीर्ति है कुल की, और आप हैं कुल कीर्ति वर्धक।।
बड़े बड़े वीर भी आपकी, गुण महिमा का गान करें। एक तो यह है स्त्री, दूजा आपकी बहि है यह।।
फिर विवाह का मंगलोत्सव, भी आज है रचा हुआ। ऐसे में हनन इसका, उचित किसी विधि न होगा।।

हे वीरश्रेष्ठ जो जन्म ले, संग मृत्यु भी निश्चित रहे। आज वह हो या सौ वर्ष, पश्चात् ही वह घड़ी आये।।
जो प्राणी कभी जन्मा है, वा संग उसक मृत्यु जन्मे। जब तन का अन्तकाल आये, यह नश्वर तन मृत्यु पाये।।
निज कर्म अनुकूल जीव, वह नव तन ही पा जाये। नव तन को ग्रहण करी कर वह, पहले तन से मुक्ति पाये।।
न चाहकर भी विवश उसे, ऐसा करना ही पड़े। इस जग में जन्म मृत्यु, का है यही विधान कहें।।

ज्यों चलते समय जीव का, एक चरण धरती पे टिके। तब ही तो दूजा चरण, जीव वह उठा सके।।
जैसे जोंक अगला तिनका, बहुत दृढ़ता से पकड़ ले। तब ही पहले पकड़े हुए, तिनके को वह छोड़ सके।।
वैसे ही जीव निज कर्मों के, अनुकूल ही नव तन ग्रहण करे। उसके बाद ही इस तन का, परित्याग वह कर सके।।

ज्यों कोई पुरुष जाग्रत में, देखे राजा का ऐश्वर्य। या कभी जो श्रवण करे, इन्द्र आदि का ऐश्वर्य।।
उनकी इच्छा वह करे, और चिन्तन में निमग्न रहे। उनके स्वप्न में खोया हुआ, वह उनमें ही तन्मय भए।।
अपने तन की तब उसको, सुध बुध तनिक भी नहीं रहे। उनके भावों में खोया, अपने को वैसा ही समझे।।
वैसे ही कर्मकृत कामना के, वशीभूत यह जीव भए। अथवा कामना कृत् कर्म, के वश में वह हो जाये।।
नव तन को वह प्राप्त करे, और पहले की विस्मृति हो। इसी विधि नव जन्म के, चक्र में उसकी प्रवृत्ति हो।।

त्यों ही जीव का यह मन भी, विकारों का इक पुंज हो। संचित कर्म प्रारब्ध और, वासना के वह अधीन हो।।
माया से रचित अनेकों ही, पंचभौतिक शरीरों में। जिस किसी भी शरीर के, चिन्तन में वह तल्लीन रहे।।
और जिस किसी तन को भी, अपना मान वह लेता है। उसी तन को वह धारण कर, फिर पुनर्जन्म में आता है।।

ज्यों सूर्य चन्द्र आदि जैसी, अन्य वस्तु जो भासित हों। जल के घट या तैल आदि में, ज्यों सब यह प्रतिभासित हों।।
वायु के चलने पर जब, जल या तैल में स्पन्दन् हो। प्रतिबिम्बित सब रूपों में, भी उस पल ज्यों कम्पन हो।।
त्यों ही जीव अज्ञान के, रचे हुए इस तन में। अपना आप इसे मान कर, राग इसी से कर बैठे।।
स्वरूप से अनभिज्ञ ही वह, अपना आप उसे मान ले। उसके आवागमन में मोह वश, अपना ही आवागमन समझे।।

निज कल्याण जो जन चाहें, वह इस अज्ञान में नहीं पड़ें। इस जग में किसी के प्रति, द्रोह भाव वह न रखें।।

जीव तो इस लोक में, कर्म अधीन ही रहे सदा। शत्रु से सदा भयभीत रहे, जो जीवन में है द्रोह करता।।
इस जीवन के बाद भी, नहीं भय पीछा उसकी छोड़ता। परलोक में जाकर भी, भयभीत ही है वह रहता सदा।।

हे कुमार यह आपकी, भगिनी तो है बहुत छोटी सी। तव पुत्री समान है यह, और यह है अति दीन भी।।
तिस पर अभी अभी इसका, परिणय है मुझसे हुआ। विवाह के मंगल चिन्हों ने, तन का परित्याग भी नहीं किया।।
ऐसे में आप जैसा, दीन वत्सल पुरुष जो हो। इस अबोध बालिका की, हत्या उसके योग्य न हो।।
शुकदेव बोले,
इस भाँति वसुदेव ने, कंस को बहुत विधि समझाया। प्रशंसा आदि सामनीति, का आश्रय कभी उन्होंने लिया।।
भय आदि भेदनीति का, आश्रय ले भी मनाया उसे। किन्तु क्रूर स्वभावी कंस तो, थे असुर अनुयायी हुए।।
अपने इस अति घोर संकल्प, का त्याग उसने नहीं किया। देवकी प्रति हृदय उसका, द्रवीभूत तनिक भी नहीं हुआ।।

वसुदेव ने कंस का, विकट यह हठ जब देख लिया। किसी विधि टल जाये सम, उन्होने यह विचार किया।।
ऐसा सोच कर उन्होने, फिर मन में यह निश्चय किया। बुद्धिमान् पुरुष का है, ऐसे समय कर्त्तव्य क्या?
जब तक बुद्धि बल साथ दे, मृत्यु को टालना चाहिए। प्रयत्न किए भी नहीं टले, तो उसका नहीं यह दोष भए।।

इसलिये इस काल रूपा, कंस को गर मैं वचन दूं। पुत्र दान की प्रतिज्ञा कर, दीन देवकी बचा मैं लूं।।
पुत्र मेरे जब होंगे यदि, जीवित कंस तब तक रहा। समझ नहीं हूं पा रहा, परिणाम उस पल क्या होगा?
सम्भव है फल विपरीत ही हो, मम पुत्र ही इसको मार दे। विधाता के विधान का, पार कोई न पा सके।।
मृत्यु सामने आकर भी, अनेकों बार टल जाती है। और टली हुई मृत्यु भी, लौट कभी पुन: आती है।।

ज्यों जब वन में अग्न लगे, को लकड़ी बचे को जल जाये। दूर की लकड़ी जले कभी, पास में आंच भी न आये।।
वैसे ही किसी प्राणी का, कौन सा तन बचेगा कभी। और किसी भी हेतु से, किसी अन्य का तन मरेगा कभी।।
अदृष्ट है कारण इन सबका, अन्य कोई न जान सके। बहुत कठिन ही काम है, इस बात का पता लगा कोई ले।।
निज बुद्धि से वसुदेव ने, फिर ऐसा निर्णय किया। सम्मान सहित उन्होने फिर, पापी कंस गुणगान किया।।

कंस तो था अतिक्रूर और, संग में था वह अति निर्लज्ज। उसके गुणगान से उनका हृदय, जाता था पीड़ा से भर।।
फिर भी ऊपर से उन्होने, मुख कमल प्रफुल्लित ही रखा। और हंसकर फिर कंस के, वसुदेव ने यह वचन कहा।।
वसुदेव बोले,
हे सौम्य नहीं आपको, देवकी से है भय कोई। आकाश वाणी जो भी हुई, नहीं उसकी है आशंका कोई।।
भय तो है इसके पुत्रों से, सो वचन आप मेरा यह लें। सब पुत्र ला दूंगा आपको, बात यह मेरी मान लें।।
शुकदेव बोले,
कंस यह जाने था राजन्, वसुदेव न कभी असत्य कहें। युक्ति संगत भी है यही, क्यों बात न इसकी मान लें?
निज बहिन देवकी के वध का, विचार ही उसने छोड़ दिया। वसुदेव ने उसकी प्रशंसा की, और निज घर को प्रस्थान किया।।
देवकी तो अति साध्वी थी, उसके तन में देवता वास था। प्रतिवर्ष देवकी गर्भ से, एक पुत्र ने जन्म लिया।।
आठ पुत्र जन्मे उसने, और एको कन्या भी जनी। सब ही दिये उन कंस को, वसुदेव वचन निज पूर्ण करी।।

प्रथम पुत्र हुआ कीर्तिमान, वसुदेव ने ला उसे कंस को दिया। ऐसा करते समय उनका, हृदय तो पीड़ित बहुत हुआ।।
किन्तु उससे भी बड़ा कष्ट उन्हें इस बात का था। मेरा वचन न झूठा हो कहीं, भय उनको इस बात का था।।

सत्यप्रिय पुरुष राजन्, बड़े से बड़ा भी कष्ट सहें। ज्ञानी तो किसीसे भी, कोई उपेक्षा नहीं करें।।
नीच पुरुष तो बुरे से, बुरा काज भी कर सकें। जितेन्द्रिय जन तो श्री हरि को, अपने हृदय में धार लें।।
इक क्षण में सर्वस्व वह, हंसते हुए ही त्याग दें। पर किसी भी कीमत पर, अपना सत्य वह नहीं त्यजें।।
कंस ने जब वसुदेव को, समत्व भाव में स्थिर देखा। पुत्र जन्म और मृत्यु में, सम उनको रहते देखा।।
तब अति प्रसन्न होकर, और हंसकर उसने कहा। हे वसुदेव इस नन्हें से, बालक को अब तू ले जा।
नहीं इससे कोई भय मुझे, आकाश वाणी ने यही कहा। आठवें गर्भ से जो जन्में, उसने तो था यह वचन कहा।।
वह ही देवकी पुत्र मेरी, मृत्यु का कारण होगा। क्यों नाहक ही इस शिशु से, वैर मैं कमाऊं भला?

ठीक है कहकर वसुदेव, उस बालक को ले लौट आये। यह शिशु तो बच गया, मन ही मन थे वह हर्षाये।।
किन्तु कंस की दुष्टता, को भी वह पहचाने थे। नहीं मन उसका वशीभूत, यह सत्य वह जाने थे।।
किसी क्षण भी वह बदल सके, यह तो था उन्होने जान लिया। इसलिये उसकी बात पर, विश्वास उन्होंने नहीं किया।।

देवर्षि नारद राजन्, फिर कंस के पास जा पहुंचे। और उसके पास जा, उन्होने फिर यह वचन कहे।।
व्रज के नन्दादि जो गोप, और उनकी जो स्त्रियां। वसुदेव आदि वृष्णि वंशी, देवकी यदुवंशी नारियां।।
नन्द वसुदेव दोनों के ही, बन्धु बान्धव सम्बन्धी जन। हैं सबके सब यह देवता ही, और यह जो तेरे सेवक जन।।
हे कंस इन दैत्यों से, पृथ्वी का भार है बढ़ गया। सो देवों की ओर से, उसके वध का उद्यम हो रहा।।

इतना कहकर देवर्षि, नारद तो वहां से चले गए। कंस को निश्चय हो गया, हैं यदुवंशी देव सारे।।
देवकी के गर्भ से, मेरे हनन को अपना लक्ष्य बना। प्रभु विष्णु ही लेंगे जन्म, मन में वह भयभीत हुआ।।
देवकी और वसुदेव के, हाथों में बेड़ियां डाल दीं। कारागृह में बन्दी किया, उन दोनों को पकड़ करी।।
जो भी पुत्र उन दोनों के, फिर उत्पन्न होते गए। कंस ने उन सबका वध कर, रक्त से अपने हाथ रंगे।।
मन में सदा शंका रहती, कहीं विष्णु ही न आया हो। उस बालक के रूप में, कहीं काल न उसका आया हो।।

हे राजन् पृथ्वी पे, तो प्राय: यह देखा जाता है। निज प्राणों का लोभी राजा, स्वार्थ हेतु ही जीता है।।
निज मात पिता भाई बन्धु, सुहृदय इष्ट और मित्र। का ही ध्यान किये बिना, उनकी हत्या देता है कर।।

कंस तो यह जाने था, पूर्व में कालनेमि वह था। और उस असुर का भी, प्रभु विष्णु ने था वध किया।।
इस कारण यदुवंशियों से, कठिन विरोध रहा उसका। वास्तव में कंस तो, बहुबली युवराज था।।
यदु भोज और अन्धक वंश, सबका नायक उसका पिता था। राजा उग्रसेन को, उसने कैद में डाल दिया।।
शूरसेन देश पर, फिर राज्य वह करने लगा। निज पिता को बन्दी बना, कंस ही राजा बन गया।।
शुकदेव बोले,
इक तो था स्वयं वह महाबली, फिर जरासन्ध का जमाई भी। मगध नरेश की कंस को, सहायता पूर्ण प्राप्त थी।।
तीसरे उसके साथी भी, अति बलवान सब असुर थे। प्रालम्ब बक् चाणूर तृणावर्त, अघासुर कुछ के नाम थे।।

मुष्टिक अरिष्टासुर द्विविद और, पूतना केशि धेनुकादि। बहुत दैत्य सहायक थे उसके, बाणासुर भौमासुर आदि।।
इन सबको लेकर अपने संग, अत्याचार वह करने लगा। सारे ही यदुवंशियों का, नाश ही उसका लक्ष्य था।।

भयभीत होकर वे सभी, भिन्न भिन्न देशों में गए। कुरु पंचाल केकय शाल्व, विदर्भ निषध विदेह वह थे।।
कोसल आदि देशों में, यदुवंशिन् ने प्रस्थान किया। अपने देश को छोड़कर, वहीं पे जा निवास किया।।

कोई अन्य ऊपर से तो, दिखावा उसको करते रहे। उसके अनुकूल ही कर्म कर, उसकी सेवा में लगे रहे।।
इक इक करके जब कंस ने, देवकी के छ: सुत मार दिये। तब उसके सातवें गर्भ में, प्रभु अंश शेष प्रवृष्ट हुए।।
अनन्त नाम से भी यही, राजन् हैं जाने जाते। शेष के गर्भ प्रवेश से, देवक हृदय थे झूम उठे।।
दुष्ट कंस कहीं इसका भी, हनन ही न कर देवे। इस आशंका से उसके, मन में थे बहुत त्रास भरे।।

श्री हरि ने जब यह देखा, जिनका स्वामी सर्वस्व मैं हूं। कंस है उन्हें सता रहा, अब उनकी मैं रक्षा करूं।।
निज योगमाया को प्रभु ने, फिर ऐसा आदेश दिया। यदुवंशियों की रक्षा हेतु, उसको फिर प्रभु ने यह कहा।।
भगवान बोले,
हे कल्याणि देवी तुम, व्रज में अभी चली जाओ। गइया और ग्वालों से, वह प्रदेश सुशोभित हो।।
नन्दबाबा के उस गोकुल में, वसुदेव की पत्नी रोहिणी है। भयभीत अन्य भार्याएं भी, कंस से छिपकर रहती हैं।।

इस समय मेरा अंश शेष, है देवकी गर्भ में स्थित हुआ। उसके उदर में ही वह गर्भ, जानो निसि दिन है पल रहा।।
उसे वहां से कर्षण कर, तुम रोहिणी गर्भ में स्थित करो। हे कल्याणि योगमाया, अब यह कौतुक तुम शीघ्र करो।।
समस्त ज्ञान निज बल आदि, सब अंश संग में लेकर के। देवकी पुत्र बनूंगा मैं, यशोदा गर्भ से जन्म तू ले।।

मुंहमांगा वरदान तुम, लोगों को दे पाओगी। सर्व अभिलाषा पूर्ण तुम, सबकी करती जाओगी।।
ऐसा जान के सभी लोग, पूजा तेरी करते जायेंगे। धूप दीप नैवेद्य सब, अर्पित वह तुझे कर पायेंगे।।
पृथ्वी लोक में तेरे लिये, वे स्थान बहुत से बनायेंगे। भद्रकाली वैष्णवी विजया, कुमुदा चण्डिका बुलायेंगे।।
कृष्णा माध्वी कन्या माया, ईशानी नारायणी शारदे। अम्बिका आदि सब जानो, भद्रे तेरा नाम ही यह होंगे।।

देवकी के गर्भ से, श्री शेष जी खेंचे जायेंगे। इस कारण इस जग में वह, संकर्षण कहलायेंगे।।
लोक रंजन करेंगे वह, राम नाम उनका होगा। श्रेष्ठ बल के कारण ही, बलभद्र नाम उनका होगा।।
शुकदेव बोले,
इस विधि जब भगवान ने, आदेश दिया निज माया को। जो आज्ञा कहकर उसने, शिरोधार्य किया उनके वचन को।।
प्रभु की परिक्रमा करके वह, पृथ्वी लोक को चली गई। प्रभु ने था जो आदेश दिया, उसकी ही फिर पालन करी।।

देवकी के गर्भ को फिर, योगमाया ने उठा लिया। और रोहिणी उदर में, फिर उसको जा स्थापित किया।।
तब पुरवासी व्यथित हो, बातें यूं करने लगे। हाय देवकी गर्भ यह, नष्ट ही हैं हो गए।।
निज भक्तों के अभय प्रद, श्री हरि सर्वत्र ही स्वयं बसें। कहीं आना जाना उन्हें नहीं, वह तो सब रूप में आप रहें।।
श्री वसुदेव के मन में वह, स्वत: प्रकट ही हो गए। सर्वकला सहित ही हरि, प्रकाशित उनके हिय हुए।।

HHH(१८)HHH

हैं तो सर्वत्र ही विद्यमान्, अव्यक्त से व्यक्त वह हो गए। प्रभु की ज्योति पा वसुदेव, सूर्य समान तेजस्वी हुए।।
उनको देख के लोगों के, नेत्र थे चुंधिया जाते। निज बल वाणी प्रभाव से, नहीं दमन उन्हें कोई कर पाते।।
जगत् के परम मंगलमय, प्रभु के ज्योतिर्मय अंश को। देवकी के गर्भ में, वसुदेव ने आधान कियो।।
ज्यों पूर्व दिशा चन्द्र को, धारण अपने में करे। त्यों ही शुद्ध सत्व से, सम्पन्न देवी देवकी ने।।
विशुद्ध मन से सर्वात्म, परमात्म को धारण किया। आत्म स्वरूप प्रभु को उन, अपने गर्भ में धर लिया।।

प्रभु जो सारे जगत् का, स्वयं ही हैं निवास स्थान। देवकी ने निज गर्भ में, उन श्री हरि को दिया स्थान।।
किन्तु घड़े के भीतर ही, दीपक की ज्योति बन्द ज्यों हो। ज्यों खल की पढ़ी विद्या का, दूजों में कभी प्रकाश न हो।।
त्यों ही कंस के बन्दीगृह, में बन्द थी देवकी। इस कारण उसकी शोभा, चहुं दिशि न फैल सकी।।

देवकी के गर्भ में, श्री हरि थे हुए विराजमान्। उसके मुख पे थी फैली, पावन तेजोमयी मुसकान।।
उसके तन की कान्ति से, हुआ ज्योतिर्मय बन्दीगृह भी। जब कंस ने देखा उसको, उसके मन में यह बात उठी।।
निश्चित ही इस बार यहां, मम प्राणहर्ता विष्णु आया। इससे पहले तो देवकी का, रूप कभी ऐसा न था।।

शीघ्रतिशीघ्र इस विषय में, अब मुझे क्या करना चाहिए? नहीं देवकी हनन उचित होगा, वीरोचित नहीं कार्य यह।।
स्वार्थहित निज पराक्रम को, नहीं कभी कलंकित वीर करें। इक तो स्त्री फिर है यह बहिन, तीजे है गर्भवती भी यह।।
इसके हनन से तत्क्षण ही, कीर्ति आयु मेरी नष्ट हों। लक्ष्मी का निवास नहीं, ऐसे स्थान पे कभी भी हो।।

अति क्रूरता का व्यवहार जो, इस जीवन में करता है। जीवित रहते हुए भी वह, मृतक समान वर्तता है।।
मृत्यु के बाद भी सदा, अपवाद ही लोक में पाये वह। तन तद्रूप जो होके रहे, उस सम नरक ही पाये वह।।
देवकी के हनन को, यद्यपि कंस समर्थ था। स्वत: ही क्रूर भाव यह, उसके मन से निवृत्त हुआ।।
प्रभु प्रति दृढ़ वैर की, मन में गांठ उस बान्ध ली। और उनके जन्म की, प्रतीक्षा थी उसको लगी।।

उठते बैठते खाते पीते, सोते जागते चलते फिरते। सदा ही श्री हरि चिन्तन में, मन उसके थे व्यस्त रहते।।
जहां आंख जाती उसकी, या खट्का तनिक कहीं होता। वहीं कृष्ण का दर्शन वह, हर पल था किए जाता।।
इस विधि सारा जगत्, उसका कृष्णमय हो गया। वैरभाव हृदय में धर, वह कृष्ण में था खो गया।।

श्री ब्रह्मा और श्री शंकर जी, तब कंस के कारागृह आये। निज अनुचर संग सब देव और ,देवर्षि आदि भी संग थे।।
कामना पूर्ति कारक श्री, हरि की स्तुति वह गाने लगे। सुमधुर वाणी में सब मिली, गुणगान उनका सुनाने लगे।।
देव बोले,
हैं सत्य संकल्प आप प्रभु, सर्वोत्तम साधन सत्य ही है। जिससे आप तक पहुंच सकें, इक साधन बस सत्य ही है।।
सृष्टि से पूर्व प्रलय पीछे, या फिर स्थिति के काल में। सब ही रूप असत्य यह, इन सबमें सत्य इक आप रहें।।
पृथ्वी जल तेज वायु आकाश, इन सबका कारण आप ही हैं। दृश्यमान् इन सत्यों को, धारण करें इक आप ही हैं।।
अन्तर्यामी बनी सबमें, आप ही रहें विराजमान्। परमार्थ स्वरूप हैं आप ही, इस जग में जो भी दृष्टवान्।।
मधुरवाणी और समदर्शन, के हैं प्रवर्तक आप ही। हे हरि हैं आप तो, बस एक सत्य स्वरूप ही।।

आपकी शरण में ही, हम सब मिलकर आये हैं। आपके ही चरणों में, सब एक आश्रय पाये हैं।।
है एक सनातन वृक्ष यह जग, आश्रय है प्रकृति जिसका। सुख और दु:ख के नाम से, दो भाँति का यहां फल लगता।।
सत्व रज और तम बनें, तीनों गुण इसकी जड़ें। धर्म, अर्थ और काम, मोक्ष, हैं चारों रस इसको सींचे।।
इस दुर्ज्ञेय तरु को हम, पांच विधि से जान सकें। श्रोत्र नेत्र त्वक् रसना, और नासिका साधन इसके कहें।।
हैं छ: स्वभाव इस वृक्ष के, अब उनकी भी बात कहें। उत्पत्ति स्थिति वर्धन परिवर्तन, पुन: क्षीण हो नष्ट भए।।
सात धातुएं हैं बनीं, जिन्हें इस वृक्ष की छाल कहें। रस रुधिर मांस मेदा, अस्थि मज्जा और शुक्र हैं यह।।
आठ शाखाएं हैं इसकी, पंचभूत मन बुद्धि अहं। नव द्वार इसके बने, मुख आदि तन के यह अंग।।
प्राण अपान व्यान उदान, समान ही जान ले प्राण हैं। देवदत्त कूर्म कृकल नाग, और धनंजय दस यह नाम हैं।।
यह दस प्राण इस वृक्ष के, दस पत्ते हैं कह आये। जीव और ईश्वर दो पक्षी, हैं इस वृक्ष पे सदा रहें।।

संसार रूप इस वृक्ष की, उत्पत्ति का आधार आप। आप में ही प्रलय यह हो, रक्षण भी करें अनुग्रह से आप।।
आपकी माया से प्रभुवर, है जिसका चित्त आवृत्त हुआ। इस सत्य को जानन की, शक्ति वह है खो चुका।।
वही उत्पत्ति स्थिति प्रलय, के देव भिन्न है देखता। ब्रह्मा आदि सब देवों में, अनेकता वह है देखता।।
तत्त्वज्ञानी पुरुष तो, केवल एकत्व ही देख सकें। सब ही रूपों में वे तो, बस आपका ही दर्शन करें।।

हैं ज्ञान स्वरूप आत्म आप, चराचर जग कल्याण को। एक आप ही हे हरि, रूप अनेकों धारे हो।।
शुद्ध अप्राकृत सत्वमय, वे रूप आपके होते हैं। सन्त पुरुषों के लिये, सुखदे सदा वह होते हैं।।
दुष्टों को उनकी दुष्टता, का दण्ड भी आप ही दें। उनके लिये हे प्रभु, आप अमंगलमय ही रूप धरें।।

कमल समान विशाल और, हैं अनुग्रह पूर्ण नयन प्रभु। सब विषय और प्राणियों के, आश्रय रूप इक आप प्रभु।।
कोई विरले लोग ही आपके, स्वरूप पे ध्यान टिका सकें। एकाग्रचिति वह होकर के, आपमें मन लगा सकें।।
तव चरण कमल रूपा जहाज, का आश्रय जो लेते हैं। बछड़े के खुर के चिन्ह समान, भव सागर वह तर लेते हैं।।
अब तक सब सन्तों ने ही, इस नौका का आश्रय लिया। इसपर चढ़कर ही उन्होने, है भव सागर को पार किया।।

परम प्रकाश परमात्म स्वरूप, भक्त जन तो आपके। निष्कपट प्रेमी सारे जग के, सच्चे हितैषी हैं सबके।।
स्वयं तो वे यह महाविकट, दुर्गम भव सागर पार करें। अन्य को तारण कारण वे, तव चरण कमल की नौका दें।।
वास्तव में सत्पुरुषों पर, महान् कृपा रहे आपकी। उनके लिये तो आप सदा, रहें अनुग्रह स्वरूप ही।।

हे कमलनयन जो आपके, चरणारविन्द में न आयें। भक्तिभाव से हीन रहें, नहीं बुद्धि शुद्ध वह कर पायें।।
वे जन तो मिथ्या ही, अपने को मुक्त हैं मान रहे। वास्तव में अपनी मैं के, भंवर में सदा वह फंसे रहें।।
कठिन साधना और तप के, कष्ट भी चाहे उठाया करें। ऊंचे से ऊंचा पद पाकर, वे जन नीचे गिर जाया करें।।

किन्तु हे प्रभु जो आपके, अपने ही प्रिय जन हैं। आपके श्री चरणों में प्रभु, जो सच्ची प्रीत से सम्पन्न हैं।।
ज्ञानाभिमानी की तरह, साधन से च्युत वह नहीं भएं। बड़े बड़े महाविघ्न भी, राह न उनकी रोक सकें।।
विघ्न रूपा सेना के, सरदार के सिर पर चरण धरें। वह तो सदा निर्भय होकर, इस जग में विचरा करें।।

कोई विघ्न वा राहों में, रुकावट कोई न कर सके। उनके रक्षक तो आप हैं, वह तो हैं आपकी शरण में।।

संसार की स्थिति हेतु, और जीवों के मंगल के लिये। विशुद्ध सात्विक सच्चिदानन्दमय, दिव्य विग्रह प्रकट करें।।
उस रूप के प्रकट हो जाने पर, आराधना करे जग आपकी। वेद कर्म अष्टांग योग, तप समाधि द्वारा ही।।
बिना किसी आधार के, अराधन उनका क्योंकर हो? इस कारण रूप यह आपका, हे प्रभु है प्रियतर सबको।।

हैं सबके विधाता आप प्रभु, आप ही सर्वप्रिय हरि हो। यदि विशुद्ध यह सतोमय, स्वरूप आपका प्रकट न हो।।
अज्ञानजम भेद भाव यह, फिर नष्ट करेगा को? अव्यक्त के चिन्तन ध्यान से, तो यह सम्भव नाहीं हो।।
दृष्ट रूप में जगत् के, तीनों गुण प्रभु आपके हैं। आपके ही तेज से, हों तीनों यह प्रकाशित हैं।।
किन्तु इनकी प्रकाशकर, जो भी वृत्तियां हो सकें। उनसे तो स्वरूप का, अनुमान मात्र सम्भव भए।।
वास्तव में स्वरूप का, साक्षात्कार नहीं हो सके। वह तो केवल आपकी, कृपा से ही बस प्राप्त होए।।
और कृपा वह आपकी, सच्ची सेवा से ही मिले। निष्काम सेवी तो आपकी, कृपा को स्वत: ही प्राप्त करे।।

मन और वेद की वाणी तो, केवल अनुमान लगा सके। क्योंकि आप नहीं दृष्ट हैं, आप तो साक्षी हैं इनके।।
आपके जन्म कर्म गुण से, निरूपण आपका हो न सके। फिर भी प्रभु तेरे भक्त तो, साक्षात् आपको हैं करते।।
भक्ति और उपासना ही, साधन हैं उनके पास प्रभु। इस क्रिया योग के द्वारा ही, वह प्राप्त आपको करें प्रभु।।

मंगलमय तेरे नाम रूप का, जो भी नर गुणगान करे। श्रवण कीर्तन सिमरन् राह, आपका जो भी ध्यान करे।।
आपके चरण कमल की सेवा, में जो चित्त ही सदा धरे। जन्म मृत्यु रूपा भव के, बन्धन में वह फिर नहीं पड़े।।

हे सर्वदु:ख हारी प्रभु, हैं सर्वेश्वर आप ही। चरण कमल प्रभु आपके, है यह पृथ्वी मात्र ही।।
आपके अवतरण से, प्रभु इसका भार है हरा गया। चरण कमल से चिन्हित और, विभूषित पृथ्वी को दिया।।
धन्यभाग्य हमारे हैं, प्रभु चरण कमल दर्शन होगा। स्वर्ग लोक भी आपकी, कृपा से ही कृतार्थ होगा।।

अजन्मा हैं प्रभु आप तो, यदि आपके जन्म की बात करें। लीला विनोद यह आपका है, इतना ही बस कह सकें।।
द्वैत भाव से आप प्रभु, सर्वथा ही अतीत हैं। जगत् के एकमात्र प्रभु, अधिष्ठान स्वरूप हैं।।
इसकी उत्पत्ति स्थिति प्रलय, सब आप में ही आरोपित है। अज्ञान के कारण ही प्रभु, आप में हो सब भासित है।।

अनेकों बार प्रभु आपने, हैं अनेकों रूप धरे। मत्स्य ह्यग्रीव कच्छप नृसिंह, वराह हंस और राम बने।।
परशुराम और वामन का, अवतार आपने ही धरा। हमारी और तीनों लोकों की, आपने ही है की रक्षा।।
वैसे ही अब हे प्रभु, इस भूमि का भी भार हरें। हे यदुनन्दन आपके, चरणों का हम वन्दन करें।।

बहुत सौभाग्य की बात है यह, हम सबके कल्याण हेतु। ज्ञान बल आदि अंश सहित, देवकी के गर्भ पधारे प्रभु।।
अब कंस से तनिक भी, भय आप न कीजिये। कुछ दिन का ही महमान है वह, यदुवंश की प्रभु रक्षा करें।।
शुकदेव बोले,
ब्रह्मा आदि सब देवों ने, इस विधि प्रभु की स्तुति करी। हे राजन् उनके रूप की, निश्चय नहीं कभी हो सकती।।
अपनी अपनी मति अनुकूल, निरूपण सब उनका करें। ब्रह्मा शंकर को आगे कर, सब देव पुन: स्वर्ग को चले।।

३) श्रीकृष्ण जन्म

शुकदेव बोले,
हे राजन् शुभ लक्षण से, युक्त समय जब था आया। रोहिणी नक्षत्र का, ही उस पल प्रभाव था।।
आकाश के नक्षत्र ग्रह, शान्त थे सब हो रहे। तारागण भी शान्त और, सौम्य रूप थे सब धरे।।
स्वच्छ प्रसन्न थीं सब दिशा, निर्मल अकाश था तारों भरा। पृथ्वी के नगर और गांव ने भी, मंगलमय था रूप धरा।।
अहीरों की हों बस्तियां, या खानें हों हीरों की। हर्ष से थीं मानो भरीं, सभी अंग इस पृथ्वी की।।

निर्मल जल था सब नदियों का, रात्रि में कमल थे खिलने लगे। वन के वृक्षों की पंक्तियों में, थे रंग रंग के फूल लदे।।
कहीं चहकते पक्षी थे, कहीं भंवरे गुंजन कर रहे। प्रकृति के अंश सभी, मानो हों खुशी से भर रहे।।

श्री वसुदेव ने जब देखा, श्री हरि आये मेरे पुत्र बनी। सर्व प्रथम तो मन उनकी, आश्चर्य से द्रवीभूत हुई।।
फिर अति आनन्द से, भर आईं उनकी आंखें। रोम रोम उनके तन के, परम आनन्द में लीन हुए।।
श्री कृष्ण के जन्म का, उत्सव मनाने के लिये। दस सहस्र गौ दान के, संकल्प उन्होंने मन में किये।।

श्री कृष्ण अंग की कान्ति से, था सूतिका गृह सब दमक उठा। हैं परम पुरुष परमात्म यह, वसुदेव को जब निश्चय हुआ।।
प्रभु का प्रभाव जब पहचाना, सारा ही भय उनका गया। निज बुद्धि को स्थिर करी, प्रभु चरण में सीस झुका दिया।।
कर बद्ध वह हुए खड़े, प्रभु की स्तुति करने लगे। निज पुत्र बन कर जो प्रकटे, वह उनको यूं कहने लगे।।
वसुदेव बोले,
मैं जान गया हे प्रभु आप, प्रकृति परे पुरुषोत्तम हैं। स्वरूप है अनुभव गम्य प्रभु, चिन्मय आनन्द स्वरूप हैं।।
समस्त बुद्धियों के प्रभु, साक्षी हैं इकमात्र आप। निज प्रकृति से त्रिगुणमय, जगत् की सृष्टि करें आप।।
नहीं दुर्गुण कोई आपको छू सके, उनसे सदा ही परे रहें। फिर भी सारी सृष्टि में, प्रविष्ट से होते दीख रहे।।

महत्तत्त्वादि कारण, पृथक् पृथक् जब तक रहें। तब तक उनकी शक्ति भी, पृथक् पृथक् ही तो रहे।।
इन्द्रियादि सोलह विकार, के साथ जब जाय मिले। तब ही तो ब्रह्माण्ड की, रचना का कार्य यह हो सके।।
और इसे उत्पन्न करके, प्रविष्ट से इसमें भासें वे। किन्तु वास्तव में उनका, प्रवेश कहीं न हो सके।।
कारण इसका एक ही है, उनसे ही है जो वस्तु बनी। हैं पहले से ही उसमें, विद्यमान वे तत्त्व सभी।।

त्यों ही इस बुद्धि द्वारा, केवल अनुमान ही हो सके। गुणों के जो भी लक्षण हों, उनका कुछ ज्ञान भी हो सके।।
और इन्द्रियों द्वारा गुणमय, विषयों का ही ग्रहण हो। यद्यपि उनमें भी बसें आप, फिर भी न आपका दर्शन हो।।
आप ही हैं सब कुछ प्रभु, सबके अन्तर्यामी हैं। आत्म स्वरूप हैं सबके आप, परमार्थ सत्य आप ही हैं।।
गुणों का आवरण कभी, आवृत्त न आपको कर सके। बाहर और भीतर का भी, भेद वहां न हो सके।।
फिर प्रवेश यह आपका, क्योंकर कहां पे हो सके? गर कहीं पे पहले आप न हों, तभी प्रवेश सम्भव भए।।

इन दृश्य गुणों को अपने से, जो पृथक् है मान रहा। और इन गुणों को ही, जो सत्य है जान रहा।।
अज्ञानी वह सत्य का, सार नहीं पहचान सके। देह गेह आदि पदार्थ सब, केवल हैं वाग्विलास ही रे।।

विचार के राही जिसका कभी, अस्तित्व सिद्ध न हो सके। उसे सत्य जो माने जीव, वह बुद्धिमान कैसे हो सके?

हे प्रभु विद्वान जन, जब तव स्वरूप की बात कहें। सब क्रिया गुण विकारों से, रहित आप हैं यही कहें।।
फिर भी इस जग की सृष्टि स्थिति, प्रलय सब आप से ही होए। परमैश्वर्य पर ब्रह्म हैं आप, सो उचित ही यह होए।।
तीनों गुणों के इक आश्रय, हे भगवन् बस आप ही हैं। उन गुणों के कार्य आदि का, आरोप भी प्रभु आप में है।।

तीनों लोकों के रक्षण को, निज माया से प्रभु आप ही। शुद्ध सत्वमय शुक्ल रूप, धरें विष्णु रूप प्रभु आप ही।।
उत्पत्ति अर्थ रज प्रधान, रक्त वर्ण बनें ब्रह्मा आप। और प्रलय काल में कृष्ण वर्ण, तमोगुणी रुद्र भी बनें आप।।

हैं सर्वशक्तिमान् प्रभु, और हैं सबके स्वामी भी। मेरे गृह में है जन्म लिया, इस जग की रक्षा अर्थ ही।।
कोटिश: असुरों ने अधुना, राजाओं के नाम धरे। बड़ी बड़ी सेनाएं वह, अपने अधीन हैं लिये हुए।।
हे प्रभु अब आप ही, संहार करेंगे उन सबका। भक्तों के रक्षक आप प्रभु, उद्धार करेंगे भक्तन् का।।

देवों के परम आराध्य प्रभु, है अति दुष्ट यह कंस अधम। जब जाना इसने प्रभु, अवतरण हो आपका मेरे घर।।
आपके अग्रज जो जन्मे, इसने सबका ही वध किया। भयभीत हो आपके जन्म से, इसने सबको ही मार दिया।।
अभी अभी यह दूत उसके, देंगे जब जन्म का समाचार। शस्त्र उठाये हाथ में वह, दौड़ा आएगा फिर इस बार।।
शुकदेव बोले,
हे राजन् देवकी ने देखा, उसके पुत्र में हैं वे सब लक्षण। पुरुषोत्तम श्री हरि के, सब चिन्हों से वह है सम्पन्न।।
पहले तो वह कंस की, सोच के कुछ भयभीत हुई। फिर पावन मुसकान सहित, श्री हरि की स्तुति करने लगी।।
देवकी बोली,
हे प्रभु आपके रूप को, है वेदों ने अव्यक्त कहा। वही स्वरूप प्रभु आपका, है सबका कारण बना।।
गुणातीत ज्योति स्वरूप, विकार रहित ब्रह्म जो हैं। अनिर्वचनीय निष्क्रिय और, विशुद्ध सत्ता स्वरूप जो हैं।।
बुद्धि आदि के प्रकाशक वह, विष्णु रूप हैं स्वयं आप। आत्म रूप सबमें बसें, सब में हैं विद्यमान आप।।

ब्रह्मा की पूरी आयु, दो परार्ध जब समाप्त हो। काल के प्रभाव से, सारे लोक जब नष्ट हों।।
महाभूत अहं में और अहं, महत्तत्त्व में लीन हो। महत्तत्त्व पुनि जाकर, प्रकृति में ही विलीन हों।।
एकमात्र प्रभु आप ही, शेष तब रह जाते हैं। इस कारण ही शेष नाम्ना, भी प्रभु कहलाते हैं।।

प्रकृति के इक मात्र आश्रय, हे प्रभु बस आप हैं। निमेष से वर्ष पर्यन्त, काल के जो भी विभाग हैं।।
जिसकी चेष्टा से सम्पूर्ण, जगत् यह चेष्टावान् हो। सीमा रहित वह काल भी, है आपकी लीलामात्र अहो।।
परम कल्याण के आश्रम आप, हैं सर्वशक्तिमान् प्रभु। हे प्रभु मैं आपकी, ही शरण में सदा रहूं।।

यह जीव तो मृत्यु का, ग्रास ही प्रभु है सदा बना। मृत्यु रूप कराल व्याल से, भयभीत यह सदा हुआ।।
लोक लोकान्तर में ही जीव, नित्य भटकता है रहता। कहीं पे भी कोई ऐसा, स्थान नहीं यह पा सकता।।
जहां पे निर्भय होकर के, निश्चिन्त वास यह कर सके। मृत्यु और वियोग का, जहां भय न इसको घेरे रहे।।
बहुत भाग्य से आज इसे तव चरण की शरण है प्राप्त हुई। स्वस्थ हुआ यह जीव तो, सुख की नींद इसे मिल गई।।

अन्य की बात तो क्या कहें, है मृत्यु भी भयभीत हुई। आपके भय से मृत्यु भी, है इससे दूर ही भाग रही।।

इस दुष्ट कंस की त्रास से, हम सब हैं भयभीत हुए। हे भक्तों के भयहारी प्रभु, आप ही रक्षा अब करें।।
चतुर्भुज दिव्य रूप यह, है ध्यान गम्य योगिन् के लिये। चर्म चक्षु से कोई भी, जीव न इसको देख सके।।
केवल मांस और मज्जा के, तन पर ही जो दृष्टि धरें। देहाभिमानी उन जीवों के, सम्मुख प्रकट इसे नहीं करें।।

इस पापी कंस को हे प्रभु, प्रकट रहस्य यह न होए। मेरे गर्भ से है तव जन्म हुआ, आशंका उसे यह न होए।।
धैर्य मेरा है टूट रहा, और हृदय भयभीत हुआ। आपको ले उस दुष्ट प्रति, संशय है मेरे मन में उठा।।
हे विश्वात्मन् प्रभु, अलौकिक रूप है आपका यह। शंख चक्र गदा पद्म सहित, इस रूप को आवृत्त आप करें।।

प्रलय काल में विश्व को, अपने में धारण आप करें। जैसे जीव के इस तन में, स्वत: छिद्र रूप आकाश रहे।।
वही परम पुरुष परमात्म आप, मेरे गर्भ के वासी हुए। हे प्रभु अति अद्भुत ही, है मानुषी लीला आपकी यह।।

भगवान बोले,
स्वयंभुव मन्वन्तर में, जब पहला जन्म तुम्हारा हुआ। उस जन्म में जान लो, पृश्नि नाम तुम्हारा था।।
सुतपा नाम के प्रजापति, थे श्री वसुदेव तब। तुम दोनों के ही हृदय, पावन और अति शुद्ध थे तब।।
ब्रह्मा ने तुम दोनों को, सन्तानोत्ति की दी आज्ञा। इन्द्रिय दमन कर दोनों ने, महा कठिन तब तप किया।।
वर्षा वायु घाम शीत, ऊष्ण आदि सब सहन किया। प्राणायाम द्वारा पूर्ण, मनोमल अपना धो डाला।।

सूखे पत्ते कभी तुम खाते, कभी वायु पान ही थे करते। अविचलित मन था आपका, शान्तचित्त तुम दोनों थे।।
इस विधि तुम दोनों ने, दिन रात मेरी आराधना की। अभीष्ट वस्तु निज पाने को, ही थी सब साधना तेरी।।
मुझमें चित्त लगाकर के, ऐसा दुष्कर तप किया। देवों के द्वादश सहस्र, वर्ष का समय यूं बीत गया।।

हे पुण्यमयी देवी तब मैं, तुम दोनों पे प्रसन्न हुआ। तप श्रद्धा प्रेमाभक्ति से, दोनों ने मुझे उपासा था।।
अपने हृदय में निरन्तर ही, तुम मेरी भावना थे भरे। श्रेष्ठ वर देने के लिये, तेरे सम्मुख मैंने रूप धरे।।
तब मैंने तुमसे कहा, जो इच्छा हो तुम मांग लो। तुम दोनों ने मिल के कहा, तुम सम हमारा पुत्र हो।।

तब तक विषय भोगों से, नहीं सम्बन्ध तुम्हारा था। नहीं सन्तान भी कोई थी, उपभोग का भी न सहारा था।।
मेरी माया से मोहित थे, इस कारण मोक्ष नहीं मांगा। मुझको निज सम्मुख पाकर भी, पुत्र रूप मुझसे मांगा।।

मेरे जैसे पुत्र का, वर तो तुमने प्राप्त किया। तथास्तु तुम्हें कहकर, मैं तो वहां से चला गया।।
अब सफल मनोरथ होकर तुम, विषयों का भोग करने लगे। गुण कर्म स्वभाव में देखा जब, मेरे समान कोई हो न सके।।
इसलिये मैं स्वयं ही, तुम दोनों का पुत्र हुआ। पृश्निगर्भ के नाम से, उस जन्म में मैं जाना गया।।

फिर दूसरे जन्म में, अदिति नाम तुमने पाया। उस जन्म में वसुदेव का, नाम भी था कश्यप हुआ।।
उस समय भी मैं ही तेरा, पुत्र बन कर था जन्मा। उपेन्द्र मेरा नाम हुआ, वामन रूप ही मेरा था।।
हे सती देवकी तीसरे, इस जन्म में भी तेरा पुत्र बना। उसी रूप में हूं आया, मम वाणी सत्य हो सर्वदा।।

अपना यह अद्भुत रूप तुम्हें, इस कारण दिखला दिया। स्मरन् हो जायें तुम्हें, मेरे पूर्व अवतारों का।।
यदि ऐसा नहीं करता मैं, केवल इस मनुज शरीर से। पहचान नहीं पाता कोई, अवतार मुझे जान के।।
तुम दोनों मेरे प्रति, पुत्र भाव सदा रखना। और साथ ही इसके तुम, ब्रह्म भाव मुझमें रखना।।
वात्सल्य स्नेह और चिन्तन से, परम पद तुम पाओगे। इस प्रकार तुम दोनों ही, मुझे प्राप्त हो जाओगे।।
शुकदेव बोले,
यह कहकर श्री हरि, मौन ही पुन: हो गए। निज मातु पितु सम्मुख ही, साधारण शिशु से वह भए।।
प्रभु प्रेरणा से वसुदेव के, मन में फिर यह चाह उठी। अपने पुत्र को लेकर के, सूतिका गृह से निकलूं सही।।
नन्दरानी यशोमती के भी, इक कन्या तभी पैदा हुई। प्रभु का आदेश पा स्वयं ही, थी योगमाया वहां प्रकटी।।
है प्रभु की अपनी शक्ति वह, है प्रभु की भाँति अजन्मा ही। उनकी ही आज्ञा पाकर वह, करती है कभी तन धारण भी।।

कारागृह के द्वारपाल, और पुरवासी मोहित हुए। उसी योगमाया द्वारा, थे सबके चित्त हरे गए।।
सब इन्द्रियों की चेतना, हर ली योगमाया ने। अचेत से होकर सभी, माया ग्रसित थे वहां पड़े।।
बन्दीगृह के सभी द्वार, सभी ओर से बन्द थे। महाद्वार लौहश्रृंखला और, ताले थे उनपर पड़े।।
उन द्वारों को उलांघ कर, बाहर जाना अति कठिन था। श्री कृष्ण को अंक में लेकर के, वसुदेव गमन जब वहां हुआ।।
ज्यों सूर्योदय के होते ही, अन्धकार सब दूर होए। त्यों ही सब ही द्वार वह, अपने आप ही खुल गए।।
बादल भी धीरे धीरे गरज, जल की फुहार थे छोड़ रहे। श्री हरि पे छत्र बनाकर के, शेष ने फल फैला दिये।।

बार बार वर्षा से तब, यमुना का जल था बहुत बढ़ा। अति गहन थीं जमुना जी, अति तीव्र थी जल धारा।।
तरल तरंगों के कारण, जल पर फेन था उठ रहा। शतश: भयानक भंवरों ने, उसके मध्य में था डाला घेरा।।
सीता पति प्रभु राम को, सागर ने था ज्यों राह दिया। त्यों ही श्री यमुना जी ने, भगवान को फिर से मार्ग दिया।।

वसुदेव जी नन्दबाबा के, गोकुल में तब जा पहुंचे। सब गोप ग्वाल तब नींद में, थे अचेत ही सो रहे।।
अपने पुत्र को फिर उन्होने, यशोदा पास सुला दिया। नवजात उस कन्या को लेकर, बन्दीगृह की पुन: पकड़ी राह।।
कारागृह में पहुंच पुन:, कन्या को धरा देवकी संग। निज चरण में डाली बेड़ियां, बन्दी गृह में पुन: हुए बन्द।।

नन्दरानी यशोदा को, उधर इतना आभास हुआ। किसी सन्तान ने उनके, गर्भ से जन्म तो है लिया।।
किन्तु यह जान न पाई वह, पुत्र हैया वह है पुत्री। क्योंकि वह तो प्रसव से, स्वयं ही थीं अति श्रान्त हुई।।
योगमाया ने भी फिर, उनकी मति ही हर ली थी। इस कारण किसी बात की, चेतना उनको नहीं रही।।

४) कंस का अत्याचार

शुकदेव बोले,
जब श्रीयुत् वसुदेव जी, नन्दगांव से लौट आये। नगर के बाहरी भीतरी सब, द्वार स्वत: ही बन्द हुए।।
तत्पश्चात् नवजात शिशु ने, रुदन जब आरम्भ किया। उस ध्वनि से द्वारपालों की, जाकर के टूटी तन्द्रा।।
तत्काल ही वह भोजराज, कंस के द्वार पे जा पहुंचे। और कहा देवकी ने हैं, नव सन्तान को जन्म दिये।।
अति आकुल था कंस तो, वह था बहुत घबरा रहा। इस सूचना की प्रतीक्षा में, ही था मानो बैठा हुआ।।

सूचना पा तत्क्षण ही वह, अपनी शैया से उठ बैठा। अति तीव्र गति से वह, फिर सूतिकागृह की ओर बढ़ा।।
इस बार तो मेरा ही, काल जन्म ले आया है। विह्वल हुआ इसी सोच में, सुध बुध सब बिसराया है।।
भूला वह केश न्यास उसका, अस्त व्यस्त है हो रहा। राह में गिरते पड़ते वह, किसी विधि बन्दी गृह पहुँचा।।

उसके वहाँ पहुंचते ही, देवकी ने करुण स्वरों में कहा। यह कन्या तो तव पुत्र वधु, समान ही है मेरे भ्राता।।
स्त्री जाति की है यह, तव बाल न बांका कर सके। कोई वीर पुरुष किसी भाँति कभी, कन्या की हत्या नहीं करे।।
अग्निवत् तेजस्वी मेरे, पुत्र अनेकों मारे तूने। केवल यह कन्या ही बची, इसको तो अब तू रहने दे।।

तेरा अनुजा हूं मैं भ्राता, अनेकों शिशु मेरे मारे गए। अति दीन हीन हूं मैं हुई, समर्थवान अति वीर तू हे।।
मुझ मन्दभागिनी को अब तू, अन्तिम सन्तान यह दे ही दे। इसको नहीं तू लेकर जा, इतनी तू मुझपे दया कर दे।।
शुकदेव बोले,
अपनी आगोश में कन्या को, देवकी ने छिपा लिया। अति दीन स्वरों में फिर, रोते हुए अननुय किया।।
कंस तो अति दुष्ट था, नहीं उसने इक भी बात सुनी। भर्त्सना कर उस देवकी की, उसकी हाथ से कन्या छीन ली।।

नन्हीं से नवजात बालिका, को चरणों से पकड़ लिया। और महापाषाण पर, जाकर उसको पटक दिया।।
स्वार्थ ने उसके हृदय से, सद्भाव को था उखाड़ दिया। सौहार्द प्रेम और दया का तो, उन्मूलन था वहां से हुआ।।
किन्तु श्री कृष्ण की वह भागिनी, नहीं कोई शिशु साधारण थी। हाथ से छूट के वह देवी, तत्काल आकाश को चली गई।।
अपनी अष्टभुजा में उस, आयुध थे आठों लिये हुए। इसी रूप में कंस को, आकाश में उसके दरस हुए।।

दिव्य माल वस्त्र चन्दन, मणिमय आभूषण उसपे थे। हाथों में धनु: त्रिशूल बाण, ढाल और तलवार थे।।
शंख चक्र और गदा, थे अन्य हाथों में पकड़े। यह अष्टायुध लिए अष्टभुजा, धारी रूप वहां प्रकटे।।
सिद्ध चारण और गन्धर्व, अप्सरा किन्नर नागगण। बहुत सी भेंट सामग्री को, चरणों में थे किए अर्पण।।
और मधुर कण्ठ से सब, मिलकर स्तुति उसकी गाने लगे। तब देवी ने कंस को, फटकार कर यह वचन कहे।।
अष्ठभूजा देवी बोली,
अरे मूर्ख मुझे मारकर, भला क्या फल तू पायेगा? तव पूर्व जन्म का शत्रु तो, तेरे हनन को जन्म है ले चुका।।
अब निर्दोष बालकों की, हत्या व्यर्थ तू नहीं करो। इस पाप से हे राजन्, अब अपना घड़ा तू नहीं भरो।।
शुकदेव बोले,
यह सब कहकर कंस को, वह देवी अन्तर्धान हुई। पृथ्वी पे भिन्न स्थानों पे वह, अनेक नाम से जानी गई।।

देवी की यह बात सुनी, आश्चर्य चकित फिर कंस हुआ। तत्काल देवकी वसुदेव, को बन्दीगृह से मुक्त किया।।
फिर अति विनम्रता से, उन दोनों को उसने कहा। मेरी प्रिय बहिन और बहनोई, हूं मैं पापी बहुत बड़ा।।
राक्षस जिस विध अपने ही, शिशुओं का है हनन करता। उसी भाँति तेरे पुत्रों को, हा खेद है मैंने मार दिया।।

अति दुष्ट हूं मैं प्रिय, नहीं दया का मुझमें लेश कहीं। भाई बन्धु और हितैषी, कोई मेरा शेष नहीं।।
न जाने अब कौन कौन, नरकों में जाना पड़े मुझे। वास्तव में मैं मृतक ही हूँ, ब्रह्मघाती के समान ही रे।।

केवल मनुष्य ही इस धरा पर, झूठ नहीं है बोलते। विधाता के भी वचन तो, विश्वास योग्य कोई नहीं रहे।।
मुझ मन्दभागी ने हा, उसपर ही विश्वास किया। और अपनी बहिन के, शिशुओं को ही मार दिया।।
कितना घोर हूं पापी मैं, और तुम दोनों हो महात्मा। अपने पुत्रों के लिये, नहीं शोक उचित यह आपका।।
उन्हें तो अपने कर्मों का, ही यह फल है मिल गया। हैं रेखा के अधीन सभी, सर्वदा सम नहीं कोई रहा।।

ज्यों माटी के पदार्थ सब, बनते बिगड़ते रहते हैं। नहीं परिवर्तित हो माटी, उसके तत्त्व तो स्थिर ही रहते हैं।।
वैसे ही इन शरीरों का, आना जाना तो लगा रहे। किन्तु आत्म पर इनका, नहीं कोई भी प्रभाव रहे।।
अनभिज्ञ हैं जो इस सत्य से, अनात्म को आत्म मानें। विपरीत बुद्धि और अज्ञान, कारण वह जन्म मरण मानें।।
जब तक अज्ञान यह नहीं मिटे, भव बन्धन सों मुक्त न हों। सुख दु:ख रूपा इस जग से, मुक्ति किसी की नाहीं हो।।

हे प्रिय बहिना यद्यपि, तेरे पुत्रों का मैंने हनन किया। फिर भी उनके लिये सुनो, नहीं उचित यह शोक तेरा।।
क्योंकि सब प्राणी इस जग के, हैं विवश विधाता के हाथों। भोगना तो सबको पड़े, निज कर्मों का परिणाम जो।।

निज स्वरूप भला हुआ, जीव यह जब तक मान रहा। मैं हूं हन्ता या मेरा, हनन कभी कहीं हो रहा।।
तब तक तन के जन्म और, मृत्यु का अभिमानी रहे। अज्ञान वश ही बद्ध और, बाधक भाव को प्राप्त भए।।
दूजे को भी दु:ख वह दे, और आप भी दु:ख भोगा करे। देहाभिमान ही तो उसके, सारे दु:ख को मूल बने।।

साधु स्वभाव हो तुम दोनों, और दीनों के रक्षक हो। इस कारण मेरी दुष्टता, को तुम दोनों क्षमा करो।।
यह कहकर फिर कंस ने, चरण पकड़ लिये दोनों के। अश्रु विमोचन से उसके, मुख ज्यों मानो धुल गए।।

तत्पश्चात् योगमाया के, वचनों पर विश्वास कर। देवकी और वसुदेव को, बन्धन से मुक्त दिया उस कर।।
भाँत भाँत से उसके प्रति, फिर प्रेम प्रकट वह करने लगा। पश्चाताप भाई का देख, देवकी ने उसे क्षमा किया।।
उसके पूर्व अपराधों को, देवकी मानो भूल गई। वसुदेव ने भी हंसकर, कंस से तब यह बात कही।।
वसुदेव बोले,
हे मनस्वी कंस आप, जैसा कहें वह उचित ही है। अज्ञान वश ही जीव यह, देहात्म भाव में बधित है।।
इस कारण ही अपना पराया, भेद उमर यह आता है। इस भेद दृष्टि के कारण ही, अन्धा वह बन जाता है।।
हर्ष शोक भय क्रोध द्वेष, मोह से वह भर जाता है। इस कारण ही सत्य को, नितान्त भूल वह जाता है।।
सबके प्रेरक भगवान ही हैं, यह भी याद उसे नहीं रहे। इक भाव वस्तु से दूजे का, नाश वहीं है करा रहे।।

शुकदेव बोले,
देवकी और वसुदेव ने, जब इस भाँति प्रसन्न हो। निष्कपट भाव से क्षमा किया, उस महापापी कंस को।।
उनसे अनुमति लेकर वह, अपने महल में चला गया। रात्रि समाप्त होते ही उस, मन्त्रीजन की बुलाई सभा।।
योगमाया ने जो कुछ भी, हे राजन् था उसे कहा। अक्षरश: उसने वह सब, आमात्यगण को दिया बता।।

कंस के सारे मन्त्री जो, नहीं थे कोई नीति निपुण। दैत्य स्वभावी ही थे सब, देवों के प्रति वैर सम्पन्न।।
निज स्वामी कंस की बात सुनी, वह तो और भी चिढ़ गए। देवों पर वे क्षुब्ध हुए, और कंस से यूं कहने लगे।।

मन्त्री बोले,
यदि ऐसी बात है हे राजन्, तो खोज करेंगे आज ही। महानगर हों या हों छोटे गांव, हम बीनेंगे वह सब ही।।
अहीरों की हों बस्तियां, या कहीं भी कोई शिशु जन्मा। दस दिन से अधिक या कम अवधि, में जन्म हो जिसका हुआ।।
सबको ही मार गिरायेंगे, हैं देवतागण तो भीरु बड़े। समरभीरु वह देवगण, युद्ध क्या हमसे कर सकें?
आपके धनु: की टंकार, की ध्वनि सुनकर सदा। देवता तो भयभीत रहें, आपसे वह घबरायें सदा।।

युद्धभूमि में आप जब, चोट पे चोट किये जायें। उन बाणों की वर्षा से, देव तो तब बचना चाहें।।
निज प्राणन् की रक्षा हेतु, इधर उधर वे सब भागें। युद्ध क्षेत्र को छोड़कर, पलायन ही वह कर जायें।।
धरती पे निज अस्त्र शस्त्र, कोई देवगण डाल दें। हो करबद्ध सम्मुख आपके, दीनता अपनी प्रकट करें।।
कोई चोटी के बाल खोल, आपकी शरण में आय कहें। भयभीत हैं हम हुए, आप ही अब रक्षा करें।।

नहीं उनपर आप प्रहार करें, जो अस्त्र शस्त्र निज भूल गए। या रथ जिनका टूट गया, अथवा जो हों भयभीत हुए।।
युद्ध छोड़कर ही जो जन, अन्मन्सक हों हो गए। धनुष हो जिनका टूट गया, या युद्ध से मुख जिन्होने फेरे।।

देवों की वीरता तो, बस वहां तक ही रह सके। जहां तक रहे शान्ति, नहीं उद्यत युद्ध को कोई भए।।
रणभूमि से बाहर तो, वह बड़ी बड़ी बातें करें। उन देवों से या फिर स्वयं, एकान्तवासी उस विष्णु से।।
वनवासी रुद्र या इन्द्र से, या तपस्वी ब्रह्मा से। हम जैसे महाबली, दैत्यों को भला क्या भय होए?

फिर भी हम यह माने हैं, नहीं उपेक्षा उनकी हो। क्योंकि हैं तो वह शत्रु ही, तनिक भूल न हमसे हो।।
उनके उन्मूलन के लिये, अब नियुक्ति हमारी करें। हमसे विश्वासपात्र सेवक, हैं तव सेवा को उद्यत हे।।

जीव के तन में जब कोई, रोग उभर कहीं आता है। उपेक्षा उसकी करके गर, चिकित्सक पे नहीं जाता है।।
तब वह रोग इस तन में, जड़ अपनी जमा ही ले। और फैले चहुं ओर वह, असाध्य ही फिर हो जाये।।
अथवा ज्यों इन इन्द्रियों की, उपेक्षा ही कर दी जाये। फिर इनका दमन तो, प्राय: असम्भव हो जाये।।
वैसे ही गर शत्रु के, प्रति आंख ही मूंदे कोई। अपना पांव जमा वह ले, तब उसे उखाड़ न सके कोई।।

देवों का मूल तो है विष्णु, और धर्म में उसका वास रहे। वेद गौ ब्राह्मण तप, और दक्षिणा पूर्ण यज्ञ कहें।।
वह ही तो मूल है धर्म का, उनके ही आसरे धर्म रहे। इसलिये इन सबका ही, नाश ही उचित उपाय कहें।।
इसलिये हे भोजराज, वेदवादी ब्राह्मण हैं जो। तपस्वी याज्ञिक और हविष्य, पदार्थ की दाता गौ को।।
नष्ट ही हम कर डालेंगे, यह ही हैं कहें तन विष्णु का। ब्राह्मण गौ वेद तप सत्य, दम शम और मनो निग्रह कहा।।

सब देवों का स्वामी वह, और सब दैत्यों का द्वेषी है। किन्तु वह तो सदा किसी, निहित गुहा का वासी है।।
महादेव ब्रह्मा और सब, देवों का मूल इक वह ही है। ऋषियों का ही हम हनन करें, विनष्टि उपाय यह ही है।।
शुकदेव बोले,
एक तो थी स्वभाव से ही, कंस की बुद्धि बिगड़ी हुई। इसपर उसके मन्त्रियों की, उससे भी दुष्ट थी सम्मत्ति।।
इस प्रकार उनसे सलाह, कंस ने जब मिलकर करी। काल फंद में फंसे कंस ने, ब्रह्म हत्या ही उचित समझी।।

हिंसा प्रेमी राक्षसों को, आदेश उसने फिर दिया। जिस विधि भी सम्भव हो, कर दो सत्पुरुषों की हत्या।।
इच्छानुसार वे असुर सब, रूप थे धारण कर सकते। जब इत उत वह चले गए, कंस भी महल को लौट चले।।

स्वभाव से ही रजोगुणी, प्रवृत्ति थी उन असुरों की। था तमोगुण से ही आवृत्त, उचित अनुचित विवेक भी।।
फिर उन असुरों के सिर पर, काल की फांसी भी थी पड़ी। इस कारण ही उसे मन में, थी सन्तान से द्वेष भरी।।
महान् सन्त जन का जो भी, पुरुष अनादर किया करें। यह कुकर्म उनकी आयु, लक्ष्मी कीर्ति सब नष्ट करें।।
लोक परलोक और धर्म, विषय भोग के सब साधन। नष्ट हो जाते हैं सभी, कल्याण के हों जो भी साधन।।

५) कृष्ण की गोकुल में लीलायें-

१) गोकुल में नन्द महोत्सव

शुकदेव बोले,
अति उदार मनस्वी थे, हे राजन् जानो नन्दबाबा। पुत्र जन्म पे हृदय में, विलक्षण था आनन्द भरा।।
स्नान करी पावन हुए, करे वस्त्र आभूषण उन धारण। वेदज्ञ ब्राह्मणों को बुलवा, स्वस्ति वचन किये उच्चारण।।
पुत्र का जातकर्म संस्कार, फिर उन द्विजों से करवाया। साथ में देव और पितरों का, विधिवत् पूजन भी करवाया।।

वस्त्राभूषण से सुसज्जित, गायें दीं फिर दान में। ब्राह्मण जन के हेतु वह, दो लाख ही थीं गाएँ।।
हिरण्य वस्त्र और रत्नों से, जो आवृत्त थे हो रहे। तिल के ऐसे सात पर्वत, भी दान में थे दिये उन्होंने।।

संस्कारों से ही गर्भ की, शुद्धि हर विधि हो सके। यह समझाने के लिये, दृष्टान्त अनेकों हैं दिये।।
समय स्नान प्रक्षालन से, संस्कारों और तपस्या से। यज्ञ दान सन्तोष से, द्रव्य शुद्ध तो हो सकें।।
पर आत्म शुद्धि के लिए, बस एक ही साधन है कहें। आत्म ज्ञान के द्वारा ही, आत्म शुद्धि हो सके।।

उस समय ब्राह्मण और सूत, मागध और जो बन्दीजन। आशीर्वचन कहने लगे, और करने लगे स्तुति गायन।।
भेरी और दुन्दुभियाँ, बार बार बजने लगीं। बार बार थे बुहारे गए, व्रज मण्डल के घर द्वार सभी।।
आंगन और भीतरी भागों को, भी स्वच्छ गया बनाया था। सुगन्धित जल का ही वहां, पे छिड़काव था हो रहा।।
चित्र विचित्र ध्वजायें और, पुष्प माल थीं सजी हुईं। रंग बिरंगे वस्त्र और, बन्दनवारों से द्वार सजी।।

गाय बैल और बछड़ों के, अंगों में लेपन था हुआ। हल्दी तेल के लेप से, और गेरु से उनको था रंगा।।
मोरपंख पुष्पमाला, सुन्दर वस्त्र पहराये गए। स्वर्ण की लड़ियों से ही, थे सब साज सजाये गए।।

सभी ग्वाल बहुमूल्य वस्त्र, अँगरखे पगड़िन् से थे सजे। बहुमूल्य आभूषण भी, थे अपने तन पे वह पहरे।।
अपने हाथों में भेंट की, बहुत सी सामग्री लिये। सबके सब नन्दबाबा के, घर की ओर थे आ रहे।।
पुत्र यशोदा ने जन्मा, यह सुनी आह्लादित गोपियां थीं। सुन्दर वस्त्र आभूषण अंजन, से उन्होंने श्रृंगार करी।।

गोपिन् के मुखारविन्द, अति सुन्दर ज्यों खिले हुए। उनपर सुशोभित कुंकुम थी, ज्यों कमल की केशर हो शोभे।।
भेंट सामग्री लेकर वह, जल्दी जल्दी थीं जा रहीं। महानितम्ब पयोधर भी, उनकी थीं हिलती जा रहीं।।

चमकीली मणियों के कुण्डल, थे कानों में लटक रहे। गले में स्वर्ण हार लटके, उसकी कान्ति से मुख चमक उठे।।

रंग रंग के अति सुन्दर, वस्त्र थीं वह पहरे हुए। चोटी में गूंथे उनके फूल, थे पथ पे बिखरते जा रहे।।
हाथों के जड़ाऊ कंगन भी, अलग ही चमक बनाये थे। कानों के कुण्डल और पयोधर, उनके हिलते थे जाते।।
नन्दबाबा के घर जाते हुए, अनूठी शोभा उनकी बनी। उनके घर जा नवजात शिशु, को आशीर्वचन कहतीं।।
चिरंजीवि हो यह शिशु, प्रभु इसकी रक्षा करें। हल्दी तेल से मिश्रित जल, लोगों पर वह छिड़का करें।।
उच्च स्वरों में एक साथ, थीं मंगल गान वह गा रहीं। इस भाँति वातावरण में वह, अपना उल्लास थीं मिला रहीं।।

एकमात्र स्वामी हैं बस, श्री कृष्ण ही इस जगत् के। ऐश्वर्य वात्सल्य माधुर्य सभी, उनके हैं अनन्त हे।।
नन्दबाबा के व्रज में, प्राकट्य उनका जब हुआ। जन्म महोत्सव उनका बहुत, धूमधाम से मनाया गया।।
अति विचित्र और मंगलमय, वाद्य वहां बजने लगे। नृत्य गान के उत्सव से, थे जन जन वहां झूम उठे।।

आनन्द से मतवाले हुए, गोप ग्वाल सब नाच थे। इक दूजे पर दही दूध, घी और पानी उछाले थे।।
इक दूजे के मुख पर वह, माखन का लेप थे कर रहे। कन्दुक वत् इक दूजे पर, थे माखन वह फेंक रहे।।

स्वभाव से ही नन्दबाबा, परम उदार मनस्वी थे। बहुत वस्त्र आभूषण गोपों को, और बहुत गायों के दान दिये।।
नर्तक वादक गायक सब, सूत मागध और बन्दी जन। मुंह मांगी वस्तु दी उन्होने, अन्य भी थे जो गुणी जन।।
यथोचित उपहार दिये, और सबका सत्कार किया। इस सबसे प्रभु प्रसन्न हों, यह ही बस प्रयोजन था।।

सर्वविधि नवजात शिशु, का मंगल ही हुआ करे। नन्दबाबा ने सब किया, यही भाव मन में धर के।।
दिव्य वस्त्र माल धारण किये, आभूषण कण्ठ में पहरे हुए। श्री रोहिणी जी थीं विचर रहीं, गृह स्वामिनी भाँति हे।।
सब स्त्रियों का वह स्वयं, सत्कार थीं करती जा रहीं। उसी दिन से व्रजधाम में, ऋद्धि सिद्धि सब नाच उठीं।।
श्री कृष्ण का था निवास जहां, अपने स्वभाविक गुणों सहित। वह स्थान श्री लक्ष्मी के, सहज ही ज्यों बने क्रीड़ा स्थल।।
कुछ दिनों बाद नन्दबाबा ने, गोकुल के काज सब सौंप दिये। वार्षिक कर देने वह स्वयं, मथुरा कंस के पास गए।।

२) मथुरा में नन्द और वसुदेव का मिलन

जब वसुदेव ने यह जाना, मम भ्राता हैं मथुरा आये। और अपने भाग का, कर भी हैं वह चुका चुके।।
नन्दबाबा को मिलने वह, उनके आवास पे जा पहुंचे। उन्हें देख नन्दबाबा के, तन में ज्यों नूतन प्राण भरे।।

स्वागत में होकर खड़े, दोनों कर से उन्हें पकड़ लिया। अभिन्न मित्र वसुदेव को, उन अपने हृदय लगा लिया।।
प्रेम विह्वल नन्दबाबा ने, यूं उनका सत्कार किया। आदर पूर्वक आराम से, वसुदेव जब बैठे वहां।।
निज पुत्रों की याद में, था चित्त उनका लगा हुआ। नन्दबाबा से फिर उन्होंने, कुशल क्षेम उनका पूछा।।
वसुदेव बोले,
प्रौढ़ अवस्था तुम्हारी हुई, कोई सन्तान तुम्हें न थी। सन्तान की कोई आशा भी, तुमको अब थी नहीं रही।।
अति सौभाग्य की बात है यह, सन्तान प्राप्त अब तुम्हें हुई। और आज प्रभु कृपा से ही, मेल भी हमरो हो गई।।
अति दुर्लभ है संसार में, सच्चे प्रेमी जन का मिलन। संसार चक्र में तो मानो, यह तो हो ज्यों इक पुनर्जन्म।।

ज्यों नदी के तीव्र प्रवाह में, तृण और नाव न साथ रहें। वैसे ही बन्धु और बान्धव, प्रेमी सब साथ न रह सकें।।

यद्यपि सबको प्रिय लगे, इक दूजे के संग रहना। पर प्रारब्ध कर्म कारण, नहीं सम्भव हो ऐसा होना।।

हे बन्धु जिस महावन में, निज स्वजन के संग तुम रहो। उसमें जल घास लता और वृक्ष, भरपूर तो हों सब तुम कहो?
अनुकूल है वन्य जन्तुओं के, ऐसा स्थान क्या तुम कहो? सब प्रकार के रोगों से, तो बचाव सब विधि वहां हो?

मम पुत्र माता रोहिणी संग, व्रज में तुम संग रहता है। लालन पालन उसका तुम ही करो, यशुमति को मैया कहता है।।
वह ठीक से तो है कहो भाई, वही कर्म धर्म हो शास्त्रविहित। जिससे सुखी सब स्वजन रहें, वही काज हो शास्त्रविहित।।
जो केवल अपने को सुख दे, और स्वजन को दु:खी करे। वे धर्म अर्थ और काम तो हैं, नहीं हितकारी किसी के रे।।
नन्द बोले,
देवकी के गर्भ से, जितने भी तेरे पुत्र हुए। दुष्ट कंस ने सब ही वे, हे भ्राता थे मार दिए।।
अन्त में सबकी अनुजा ही, कन्या इक उत्पन्न हुई। उस क्रूर ने वह कन्या, भी जीवित नहीं रहने दी।।

हैं भाग्य पे ही आश्रित दु:ख सुख, इसमें तनिक सन्देह नहीं। है भाग्य ही आश्रय प्राणी का, नहीं इसमें सन्देह कहीं।।
जो इस सत्य को जान ले, दु:ख सुख प्रारब्ध ही दे। उनके मिल जाने पर वह, मोहित कभी न हो सके।।
वसुदेव बोले,
हे भ्राता राजा कंस को, वार्षिक कर तूने दे दिया। हम दोनों मिल भी हैं चुके, अब प्रस्थान ही उचित होगा।।
गोकुल में तो बड़े बड़े, उत्पात आजकल हो रहे। नहीं अधिक अब ठहरो यहां, लौट ही जल्दी जाओ रे।।
शुकदेव बोले,
हे राजन् वसुदेव ने, जब उनसे ऐसी बात कही। तब नन्दादि गोपों ने, वसुदेव से अनुमति ली।।
बैलों से जुते छकड़ों पर, गोप वे सारे बैठ गए। गोकुल धाम को अपने वह, पुन: लौट के चले गए।।

३) पूतना वध

शुकदेव बोले,
नन्दबाबा जब मथुरा से चले, तो मन में यह विचार किया। श्री वसुदेव का वचन तो, झूठ नहीं कभी हो सकता।।
इससे उनके मन में भी, उत्पात की शंका उठ आई। मन ही मन श्री हरि की, शरण उन्होंने जाय गही।।
हैं श्रीहरि ही अपनी शरण, रक्षा करेंगे वह हमारी। नन्दबाबा ने अपने मन, ऐसी ही निश्चय करी।।

अति क्रूर इक राक्षसी थी, पूतना उसका नाम था। शिशुओं का हनन करना, उसका बस एक ही काम था।।
कंस की आज्ञा पाकर वह, नगर ग्राम और बस्तिन् में, निरन्तर घूमा करती थी, शिशु हनन करने के लिए।।
जहां कर्मों में ही लगे रहें, और प्रभु का कीर्तन श्रवण न हो। राक्षस भयहारी भक्त वत्सल, हरि लीला का जहां स्मरण न हो।।
वहीं पे ऐसी राक्षसियां, प्रवेश कभी कर पाती हैं। जहां प्रभु गुणों का गान हो, वहां से दूर रह जाती हैं।।

आकाश मार्ग से चलने में, पूतना अति सक्षम थी। और स्वेच्छा से अपना, रूप भी थी वह बदल सकती।।
नन्द के गोकुल के समीप, इक दिन राक्षसी वह आ पहुंची। माया से सुन्दर युवती बन, वह गोकुल में जाय घुसी।।
अति सुन्दर रूप बनाया उस, चोटी में बेला पुष्प गुंथी। बहुत सुन्दर उसके वस्त्र थे, कानों में कर्णफूल लटकी।।
अलकावली उनकी चमक से, थी अति शोभा पा रही। थे उच्च नितम्ब वक्ष उसके, कटि क्षीण और पतली सी।।

मधुर स्मित और कटाक्ष, से भरी निज चितवन से। व्रज वासियों के भोले, चित्त थे उसने हर लिये।।
हाथों में लिये कमल पुष्प, वह रमणी इस विधि चल थी रही। उसे देख गोपियों ने सोचा, लक्ष्मी निज प्रियतम मिलन चली।।
बालकों के लिये तो थी, पूतना मानो ग्रह समान। इधर उधर शिशुओं को खोज, गई नन्दबाबा के अनायास।।
वहां पे बालक श्री कृष्ण, थे शैया पे सो रहे। दर्शन में हैं अबोध बाल, पर दुष्टों के लिये हैं काल ही वे।।
ज्यों राख की ढेरी में, अग्नि की ऊष्णता छिपे। त्यों ही निज प्रचण्ड तेज, आवृत्त थे वह किए हुए।।

चराचर सभी प्राणियों के, हैं आत्म स्वरूप ही श्री कृष्ण। शिशु हन्ता है यह पूतना ग्रह, जान लिया उन्होने तत्क्षण।।
नेत्र अपने बन्द किये, शिशुवत् वह सोये रहे। ज्यों सुप्त सर्प को भ्रमवश ही, रज्जू कोई जाना करे।।
और खेल ही खेल में, अपने हाथ में वह ले ले। त्यों ही पूतना ने निज काल, कृष्ण गोद में अपनी लिये।।

ज्यों मखमली म्यान में, तीक्ष्ण तलवार हो पड़ी हुई। पूतना के हृदय में तो, अति कुटिलता थी भरी।।
ऊपर से तो अति सुन्दर, मधुर व्यवहार थी कर वह रही। दृष्ट रूप में भद्र सी, महिला वह थी दीख रही।।
रोहिणी और यशोदा ने, घर के भीतर उसे ज्यों देखा। सौन्दर्य प्रभा से हतप्रभ हो, कुछ भी उसको नहीं कहा।।
कोई रोक टोक उन नहीं करी, चुपचाप थीं देख रहीं उसको। मानो मोहित होकर उससे, सुध बुध उन्होंने अपनी दी खो।।

भयानक राक्षसी पूतना ने, श्री कृष्ण को अपनी गोद लिया। भयंकर विष से लिप्त निज, स्तन उस के मुख में दिया।।
श्री हरि ने भी क्रोध का, फिर अपने सहयोग लिया। और दूध के संग ही, उसके प्राणों का भी पान किया।।
उसके प्राणों के आश्रय, मर्मस्थल सब फटने लगे। छोड़ दे छोड़ दे अब बस कर, यूं चीत्कार उसने किए।।
बार बार निज हाथ पांव, पटक पटक कर रोने लगी। नेत्र भी पलट गए उसे, तन भी स्वेद् से लथपथ थी।।

अति भयंकर वेग था, उसके चीत्कार का। पृथ्वी पर्वत नक्षत्र और, अन्तरिक्ष भी डोल गया।।
सातों पाताल और दसों, दिशाएं उससे गूंज उठीं। बहुत लोग धरती पे गिरे, व्रजपात की ज्यों आशंका हुई।।

निशाचरी पूतना के स्तनों, में पीड़ा अति गहन हुई। नहीं अपने को छिपा वह सकी, निज स्वरूप में प्रकट हुई।।
तन से प्राण निकले उसके, मुंह उसका खुला ही रह गया। बाल भी बिखर गए उसके, विकृत तन का हर अंग हुआ।।
इन्द्र के वज्र से घायल हो, ज्यों वृत्रासुर था गिरा। त्यों ही बाह्य गोष्ठ में, पूतना का शव जाय गिरा।।

गिरते गिरते भी उसने, छ: कोस की परिधि ली। जितने भी थे वृक्ष वहां, वह सब उसने कुचल दी।।
अति अद्भुत यह घटना हुई, तन उसका अति भयानक था। हल समान तीखा था मुख, तीक्ष्ण दाढ़ों से भरा हुआ।।
नथुने किसी पहाड़ की, गुफा समान ही गहरे थे। किसी पहाड़ से गिरी हुई, चट्टानों सम उसके स्तन थे।।
उस निशाचरी के लाल बाल, चहुं ओर थे बिखर गए। आंखें थीं अन्धूप जैसे, नितम्ब ज्यों नदी के तट बने।।
भुजाएं जांघें और पांव, सरिता के सेतु समान थे। शुष्क सरोवर के समान, उदर के थे आभास बने।।
पूतना के इस तन को देख, गोपी ग्वाल भयभीत हुए। चीत्कार उसका सुनकर, हृदय कान और सीस फटे।।

बालक कृष्ण को राक्षसी के, पर्वत समान वक्ष:स्थल पर। गोपियों ने जब देखा, निर्भय होकर हुए क्रीड़ा रत।।
अति भयभीत वे हो गईं, उतावला मन उनका हुआ। तत्क्षण ही वहां पहुंचकर, श्री कृष्ण को अपनी गोद लिया।।

तत्पश्चात् यशोदा और, रोहिणी को संग लेकर। गोपियों ने सर्व उपाय से, अंग रक्षण लिया कृष्ण का कर।।

गाय की पूंछ घुमाकर के, नजर उसकी उतार ली। गोमूत्र में श्री कृष्ण को, उन्होंने फिर थी स्नान दी।।
सब अंगों में गो रज को लगा, उन्होने फिर उपचार किया। गोबर द्वादश अंग लगा, केशव आदि का नाम लिया।।
तत्पश्चात् गोपियों ने, अजादि एकादश मन्त्रों से। आचमन करके अपने, अंगों में भिन्न न्यास किए।।
स्वयं करन्यास किया उन्होने, फिर शिशु के अंगों में किया। इस विधि फिर गोपियों ने, बीज न्यास किया कृष्ण का।।

गोपियां फिर यूं कहने लगीं, अजम प्रभु चरण की रक्षा करें। मणिमान् करें घुटनों की, और यज्ञपुरुष जांघों की करें।।
कटि रक्षण करें अच्युत, ह्यग्रीव पेट की रक्षा करें। हृदय की रक्षा करें केशव, और वक्ष:स्थल की ईश करें।।
सूर्य कण्ठ की विष्णु भुजा की, उरुक्रम मुख की रक्षा करें। ईश्वर ही तेरे सिर की, सदा सदा रक्षा करें।।

चक्रधर तेरी रक्षा को, सदा तेरे आगे रहें। गदाधारी प्रभु पीछे से, सदा तेरी रक्षा करें।।
धनुर्धारी श्री मधुसूदन, और खड्गधारी अजन। दोनों बगलों से तेरी, रक्षा में रहे सदा मग्न।।
उरुगाय शंखधर चहुंदिक् में, और उपेन्द्र ऊपर रहें। पृथ्वी पर हलधर परं पुरुष, सब ओर से तेरी रक्षा करें।।

हृषीकेश प्रभु तेरी इन्द्रियों की, नारायण रक्षा करें प्राणों की। श्वेत द्वीप अधिपति चित्त की, योगेश्वर रक्षा करें मन की।।
पृश्निगर्भ करें बुद्धि की, परमात्म रक्षा करें अहं की। खेल में रक्षक गोविन्द हों, और सोते समय हों माधव ही।।
चलते समय श्री वैकुण्ठ, आसन रक्षक हों श्री पति। सब ग्रहों के भयदाता प्रभु, करें भोजन समय रक्षा तेरी।।

डाकिनी राक्षसी कूष्माण्डा, आदि सब यह बाल ग्रह:। भूत प्रेत पिशाच यक्ष, राक्षस विनायक कोटरा।।
रेवती ज्येष्ठा और पूतना, मातृका आदि सबसे। शरीर प्राण और इन्द्रियों के, नाशक इस उन्माद से।।
एवं मृगी आदि रोग सब, या स्वप्न दृष्ट महा उत्पात। वृद्ध ग्रह और बाल ग्रह, द्वारा भी हों जो उत्पात।।
यह सभी अनिष्ट प्रभु विष्णु, के नाम के ही उच्चारण से। भयभीत होकर स्वत:, नष्ट ही सब हो जायें।।
शुकदेव बोले,
यूं प्रेमपाश में बन्धी हुईं। गोपिन् ने कृष्ण की रक्षा करी। मात यशोदा ने निज सुत, के मुख में फिर स्तन दे दी।।
तत्पश्चात् श्री कृष्ण को, माता ने फिर सुला दिया। सुरक्षित है पुत्र मेरा, यह जान के चैन का सांस लिया।।

इसी समय नन्दबाबा और, उनके साथी गोप जो। लौट आये निज काज करी, मथुरा से फिर गोकुल को।।
पूतना का भयंकर तन, धरती पर जब पड़ा देखा। आश्चर्य चकित वे सब हुए, इक दूजे से उन्होंने कहा।।

अति आश्चर्य की बात है यह, वसुदेव तो निश्चित ऋषि ही हैं। सम्भव है किसी पूर्व जन्म के, वह कोई योगेश्वर हैं।।
मथुरा में बैठै हुए, जैसा उन्होंने था कहा। वैसा ही उत्पात यहां, दृष्ट आज है हो रहा।।
ब्रजवासिन ने मिलकर के, कुल्हाड़ी से प्रहार किया। और पूतना के शव को, टुकड़े टुकड़े उन्होंने कर दिया।।
गोकुल से दूर ले जा करके, चिता पे उसको धर दिया। इस विधि उस राक्षसी का, अन्तिम उन्होंने संस्कार किया।।

जब उसका तन जलने लगा, ऐसा वहां धूम्र निकला। धूप अगर की सुगन्धि से, वातावरण सब भर गया।।
श्री हरि ने था स्तनपान किया, ऐसा होना स्वभाविक था। तत्काल पाप सब नष्ट हुए, केवल प्रेम ही शेष बचा।।

पूतना तो थी राक्षसी, शिशु हनन उसका काम था। शिशु रक्त का पान ही, उसका नित्य का जाम था।।
श्री हरि का भी राक्षसी वह, हनन ही करना चाहती थी। यही उद्देश्य मन में लेकर, स्तनपान उन्हें कराई थी।।
फिर भी सत्पुरुषों की तरह, सद्गति उसने पाई। श्री हरि की हुई अपार कृपा, माता सी गति उसने पाई।।

फिर श्रद्धा और भक्ति से जो, पर ब्रह्म कृष्ण आराधा करे। माता समान अनुराग से, प्रियतर वस्तु उसके चरण धरे।।
प्रभु को भी जो लगे प्रिय, समर्पित उनको ही कर दे। उनके तो सम्बन्ध में, बात ही क्या हम कह सकें?

जग में जो सबके वन्दनीय, ब्रह्मा शंकर और देव सब। श्री हरि चरण के वन्दन में, नित्य ही हैं जो रहते रत।।
भक्त हृदय का जीवन धन, वही पूंजी उनके जीवन की। उन चरण से पूतना अंग दबा, प्रभु ने थी स्तन पान कर।।

माना वह तो थी राक्षसी, पर उत्तमतम थी गति पाई। प्रभु की माता समान ही, अत्युत्तम उसने गति पाई।।
फिर प्रभु ने बहुत प्रेम से, जिनके स्तन का था पान किया। उन गौओं और माताओं के, भाग्य का तो है बात ही क्या।।

हे राजन् श्री हरि तो हैं, स्वयं कैवल्य मुक्ति दाता। जग में भी सब कुछ वह ही दें, है देवकी माँ जिनकी माता।।
व्रज की गोपी और गइयों का, दूध स्वत: ही बहता था। कृष्ण प्रति वात्सल्य भाव से, स्वत: ही झरता रहता था।।
श्री कृष्ण ने भर पेट, उस दुग्ध का पान किया। उन गोपियों और गइयों ने, पुत्र रूप में उन्हें देखा।।

वे जन्म मृत्यु रूपा इस, संसार चक्र में नहीं पड़ें। क्योंकि यह संसार तो बस, अज्ञान के कारण ही रहे।।
नन्दबाबा संग जो व्रजवासी, लौट के गांव को आ थे रहे। उनके नासिकारन्ध्र में, सुरभित वायु ने प्रवेश किए।।
कहां से है यह सुगन्ध आई, ऐसा सब कहते हुए। आश्चर्यचकित मन में होकर, व्रज को फिर सब जन लौटे।।

पूतना के वहां आने से, मरने तक का सब वृत्तान्त। व्रज के गोपकुमारों से, सुना उन्होंने सविस्तार।।
श्री कृष्ण सुरक्षित हैं, और पूतना मर है गई। आश्चर्य चकित सब हो गए, विस्मय पूर्ण वृत्तान्त सुनी।।

उदार शिरोमणि नन्दबाबा का, हृदय प्रेम से भर आया। मृत्यु के मुख से बचा लल्ला, यह सोची अंक में उसे भरा।।
बार बार सिर सूंघकर, वह उसको सहलाने लगे। हे राजन् नन्दबाबा के, मन में थे आह्लाद भरे।।

पूतना मोक्ष की यह लीला, है बाल लीला श्री कृष्ण की। अति अद्भुत है यह कथा, जो श्रद्धा प्रेम से सुने कभी।।
श्री हरि के प्रति उसका हृदय, प्रेम से भर जाता है। शुष्क हृदय भी चाहे हो, वह प्रेम सिक्त हो जाता है।।

४) शकटासुर का वध

राजा परीक्षित् बोले,
सर्वशक्तिमान् हरि, अनेकों ही अवतार लें। बहुत सुन्दर और कर्ण प्रिय, लीलायें वह आप करें।।
वे सभी मुझको प्रभु, अति प्रियकर लगती हैं। सहज स्वभाव ही मन मेरी, उनमें जाकर टिकती है।।

श्रवणमात्र से ही उनके, विविध तृष्णा भागे। अरुचि भागवत कथा में, उन सम्मुख न टिक सके।।
जीव का अन्त:करण भी, शीघ्रातिशीघ्र ही पावन हो। प्रभु चरण में भक्ति और उनका, भक्तों में अनुराग हो।।
यदि जानें आप मुझे पात्र प्रभु, तो वर्णन उनका कीजिये। मनहर लीलायें उनकी जो, उनको रसामृत दीजिये।।

देवादिदेव श्री कृष्ण ने, मनुष्य लोक में प्रकट हो। मनुज स्वभाव अनुसरण कर, बाल लीलाएं करीं हैं जो।।
अति अद्भुत हैं वे सब ही, उनकी अब मुझे आप कहें। अन्य बाल लीलाओं का, अब मेरे लिये वर्णन करें।।
शुकदेव बोले,
एकबार बालक कृष्ण की, करवट जब पहली बार बदली। उस अभिषेक उत्सव की, तैयारी थी हो रही।।
उनका जन्म नक्षत्र भी था, स्त्रियों की थी वहां भीड़ लगी। गायन वादन नृत्य राह, थीं मंगल सभी मना रहीं।।
उन्हीं के बीच खड़ी होकर, यशुमति ने उपक्रम किया। परम साध्वी माता ने, निज पुत्र का अभिषेक किया।।
ब्राह्मण भी मन्त्र पठन करके, आशीर्वाद थे दे रहे। इसी विधि चहुं ओर थे, उत्सव के वातावरण बने।।

नन्दरानी ने द्विजवर का, बहुत पूजन सम्मान किया। अन्न वस्त्र माला गाय, सबको मुंहमांगा दान दिया।।
स्वस्ति वचन कहे ब्राह्मणों ने, खुद बालक को नहला दिया। लल्ला के नयन में नींद भरी, यह देखी उसे सुला दिया।।

तनिक देर में श्याम सुन्दर, ने जब आंखें निज खोलीं। मैय्या के स्तन पान को, रुदन वहां आरम्भ हुई।।
उत्सव में आये हुए, जो ठारे वहां थे व्रजवासी। उनके स्वागत सत्कार में, मैय्या थीं तन्मय हो रहीं।।
इसलिए श्री कृष्ण का, रोना उन्होंने नहीं सुना। तब रोते रोते कृष्ण ने, निज चरण को ऊपर किया।।

श्री कृष्ण इक छकड़े के, नीचे पड़े थे सोए हुए। अरुण चरण कपोल सम, थे अति कोमल नन्हें से।।
किन्तु उस पांव के छूते ही, विशाल वह छकड़ा उल्ट गया। दूध दही आदि से पूर्ण, मटकों से था वह छकड़ा भरा।।
सब बर्तन वह फूट गए, पहिये भी अस्त व्यस्त हुए। जूआ भी उसका टूटा, और धुरे भी बिखर गए।।

उस उत्सव में जितनी भी, स्त्रियां थीं वहां आई हुईं। यशोदा रोहिणी नन्दबाबा और, गोपों ने यह घटना देखी।।
व्याकुल वे सब हो गए, आपस में वार्तालाप हुआ। अरे यह क्या हुआ स्वत: ही यह, छकड़ा कैसे उलट गया?

वे सब मिलकर के इसका, कारण निश्चित न कर सके। वहां खेलते बालकों ने, गोपी ग्वालों को वचन कहे।।
इस कृष्ण ने ही रोते रोते, अपने पांव की ठोकर से। इस छकड़े को है उलटा, न इसमें तनिक सन्देह रहे।।

किन्तु गोपों ने बालक की, बात उसे ही जान लिया। और उनके कथन पर, विश्वास उन्होंने नहीं किया।।
ठीक ही है उनके दृष्टिकोण से, उचित ही उनको यह लगे। अद्वितीय शिशु के अनन्त बल, से तो वह अनभिज्ञ थे।।

यशोदा मैया ने समझा, किसी ग्रह का उत्पात है यह। रोते हुए निज लाडले, लाल को गोद में लेकर के।।
वेदमन्त्र कहलाकर के, स्वस्तिपाठ करवाया उन। ब्राह्मण जन से सब करवाकर, स्तन पान कराया उन।।

बलवान् गोपों ने मिलकर के, छकड़े को पुन: सीधा किया। पहले की तरह सब सामग्री, को पुन: उसपे रख दिया।।
ब्राह्मणों ने फिर हवन किया, और प्रभु पूजन किया। दही अक्षत कुशा जल से, छकड़े को भी पूजा दिया।।

किसी के गुणों में जो कभी, दोष नहीं है निकालते। असत्य दम्भ ईर्ष्या हिंसा, के वश में जो नहीं पड़ते।।
अभिमान रहित उस सत्यशील, द्विज की आसीस सदा ही फले। जो भी आशीर्वचन वह कहें, विफल कभी न हो सके।।

यही सोच नन्दबाबा ने, बालक को निज गोद लिया। ऋक् यजु: और साम के, मन्त्रों से जो अभिमन्त्रित था।।

उस संस्कृत पावन औषधियुक्त, जल से अभिषेक कराया उसको। अति एकाग्र चित्त होकर, पाठ कराया स्वस्ययन।।
और हवन कराके फिर, दिया ब्राह्मणों को उत्तम भोजन। इस विधि नन्दबाबा ने, बालक के किये सारे उपक्रम।।

तत्पश्चात् निज पुत्र की, उन्नति की कामना हिय में धर। सर्वगुण सम्पन्न बहुत सी, गायें द्विजों को दान दीं कर।।
वस्त्र पुष्प और स्वर्णमाल, से थीं वह गायें सजी। ऐसी सुन्दर गायें देकर, ब्राह्मणों की आसीस ली।।
वेदवेत्ता सदाचारी, ब्राह्मण की आसीस जो। निश्चित रूप से जान लो, निष्फल कभी भी नाहीं हो।।

५) तृणावर्त वध

इक दिन सती यशोदा जी, थीं लल्ला को दुलार रहीं। प्रिय कृष्ण को गोद में ले, वह तो थीं पुचकार रहीं।।
सहसा श्री कृष्ण उनकी गोद में, इतने भारी हो गए। न उनके भार को सह वह सकीं, चट्टान समान उनका तन हुआ।।
उनके भार से पीड़ित हो, पृथ्वी पर उन्हें बिठा दिया। इस नव घटना से उनका, मन अति चकित था हो गया।।
तत्पश्चात् पुरुषोत्तम का, उन अपने मन में स्मरण किया। और पुन: गृहकाज में, अपने को उसने व्यस्त किया।।

तृणावर्त नामक इक दैत्य, कंस का अपना सेवक था। कंस से ही प्रेरित होकर, उसने आन्धी का रूप धरा।।
आन्धी बन गोकुल में आया, और कृष्ण को उसने उठा लिया। धरती पर बैठै बालक को, आकाश में उड़ा दिया।।

व्रजरज से उसने सारे, गोकुल को ही ढक दिया। रजकण जो नयनों में पड़े, नहीं कुछ भी था दीख रहा।।
अति भयावह ध्वनि से थीं, दसों दिशायें कांप उठीं। रज और तन मे दो घड़ी, ज्यों सारी व्रजभूमि ढकी।।
निज पुत्र को यशोदा ने, था जहां बिठा दिया। जब पहुंची वहां पे वह, कृष्ण का कुछ पता न था।।

बावण्डर बन तृणावर्त ने, इतनी धूलि उड़ा थी दी। बेसुध हुए थे सभी लोग, मन उनकी उद्विग्न हुई।।
अपना पराया कुछ भी तो, उनको नहीं था सूझ रहा। भयंकर आन्धी धूलि की, वर्षा में उनका सुत खोया।।
शोक ग्रसित यशोदा थीं, अति दीन वह हो गईं। निज पुत्र को याद कर, धरती पे पछाड़ें खा गिरतीं।।
बछड़े के मर जाने पर, जो दशा हो गाय की। पुत्र कृष्ण के विरह में, वही दशा उनकी हुई।।

जब बावण्डर शान्त हुआ, धूलि का वेग कुछ कम हुआ। दूजी गोपियों ने भी फिर, करुण रुदन उनका सुना।।
वे भी वहां दौड़ी आईं, पर कृष्ण को देख वह न पाईं। सन्तप्त हृदय उनका हुआ, आंखों से अश्रुधार बही।।
फूट फूट कर वे सब ही, कृष्ण विरह में रोने लगीं। यशोदा के इस शोक में, गोपियां सब सम्मिलित हुईं।।

इक बावण्डर बनकर तो, श्री कृष्ण को उड़ा लिया। पर तृणावर्त उनके भारी, बोझ को नहीं उठा सका।।
इस कारण उसका वेग भी, तब शान्त ही हो गया। इतना भार उठाकर के, वह आगे न चल सका।।

उसको अपने से भी भारी, कृष्ण का जब आभास हुआ। नीलगिरी पर्वत की ज्यों, चट्टान ही था उन्हें जान रहा।।
उसके गले को कृष्ण ने, जोर से ऐसे पकड़ लिया। उस अद्भुत शिशु को वह, अपने से अलग न कर सका।।

श्री भगवान ने उसका कण्ठ, इतने जोर से था पकड़ा। वह असुर तत्काल ही, निश्चेष्ट होकर गिर पड़ा।।
आंखें उसकी बाहर आईं, और वाणी भी बन्द हुई। प्राण पखेरु उड़ गए, शव धरती पर जाय गिरी।।

वहां एकत्रित होकर के, जिन स्त्रियों ने था रुदन किया। उन देखा वह विकराल दैत्य, है आकाश से गिर पड़ा।।
और इक चट्टान पर, ही जाकर वह पड़ा हुआ। एक एक अंग उसका, चकनाचूर ही हो गया।।
ज्यों प्रभु शंकर के बाणों से, त्रिपुरासुर था आहत हुआ। गिरकर अंग अंग उसका, चूर चूर था त्यों हुआ।।

श्री कृष्ण तो उसके, वक्ष:स्थल पर थे लटके हुए। यह देख करी गोपिकागण के, हृदय थे विस्मय से भरे।।
झटपट वहां जाकर उन्होंने, बालक को निज गोद लिया। और उसे ले जाकर के, मैय्या को फिर सौंप दिया।।
हा मृत्यु के ही मुख से, है शिशु यह बच गया। राक्षस ने तो था उठा लिया, पर सकुशल यह लौट आया।।
इस प्रकार जब बालक को, अपने बीच पुन: पाया। यशोदा गोपियों और नन्द का, हृदय आनन्द से भर आया।।

कहने लगे इक दूजे से, यह तो आश्चर्य महान् हुआ। कैसी अद्भुत घटना यह घटी, प्रभु ने ही कल्याण किया।।
राक्षस ने तो बालक को, था मृत्यु मुख में डाला। फिर भी यह शिशु जीवित ही, बच के वहां से आ गया।।
उस हिंसक दुष्ट को, उसके पाप ही खा गए। सत्य है साधु पुरुष की, समता ही उसे बचा जाये।।

कौन सा तप था हमने किया, या को प्रभु पूजा हमारी थी? प्याऊ पैंसला कुआं बावली, बाग भी कौन बनाई थी?
पूर्त यज्ञ दान अथवा, कोई लोक कल्याण के कर्म किये? जिससे यह शिशु मृत्यु मुख को, प्राप्त भी होकर बच गए।।
स्वजन को सुख देने के लिये, यह बालक पुन: लौट आया। यह तो प्रभु कृपा ही हुई, हमरो है सौभाग्य बड़ा।।
शुकदेव बोले,
नन्दबाबा ने जब देखा, आश्चर्य महावन में है हुआ। अति अद्भुत घटनाओं का, प्रादुर्य नित्य यहां हो रहा।।
विस्मित होकर फिर उनको, वसुदेव की याद आई। जो बातें उन्होंने थीं कहीं, सत्य ही नन्द ने वह पाईं।।
इक दिन निज शिशु की गोद में ले, स्तन पान थीं मैय्या करा रहीं। स्वत: दूध था बह रहा, वात्सल्य स्नेह से थीं वह भरीं।।

जब दूध कन्हैया पी चुके, माता ने उनका मुख चूमा। सुन्दर मुसकान से परिपूर्ण, मनमोहक उनका मुखड़ा था।।
मैया थीं उनको चुम रही, कि कृष्ण ने फिर जम्भाई ली। और उनके मुख में फिर, माता ने यह कौतुक देखी।।

अन्तरिक्ष आकाश ज्योतिर्मण्डल, दिशायें सूर्य और चन्द्रमा। अग्नि वायु सिन्धु द्वीप, पर्वत और वहां पे थीं नदियां।।
वन और सम्पूर्ण ही, चराचर जीव वहां देखे। हे राजन् निज सुत मुख में, मैया ने यह कौतुक देखे।।
सहसा सारे जगत् को, निज पुत्र के मुख में देखकर। मृगनयनी श्री मैय्या ने, नयना निज बन्द लिये फिर कर।।
तन था उनका काम्प रहा, अति आश्चर्य चकित वह थीं। अपने शिशु के मुख में ही, सारे ब्रह्माण्ड को देख करी।।

६) नामकरण संस्कार

शुकदेव बोले,
यदुवंशियों के कुलपुरोहित, थे श्री गर्गाचार्य राजन्। तपस्वी महामुनि ने किया, नन्दबाबा के गोकुल गमन।।
वसुदेव जी से इसकी, प्रेरणा उन्होने थी पाई। उन्हें देख नन्दबाबा की, हृदय हर्ष से भर आई।।
वह हाथ जोड़कर खड़े हुए, और चरणों में प्रणाम किया। यह तो स्वयं ही हैं भगवन्, इस भाव से उनकी की पूजा।।

श्री गर्गाचार्य ने जब, सुख आसन धारण किया। विधि विधान से उनका, अतिथि सत्कार भी हो गया।।
श्री नन्द ने मधु वाणी से, अभिनन्दन उनका किया। पूर्णकाम प्रभु आप कहें, करूं मैं आपकी क्या सेवा?

आपसे उच्च महात्मन् का, हम जैसों के घर आ जाना। गृहस्थिन् के लिये तो है, वह साधन परम कल्याण का।।
गृहकाजों में गृहस्थ सब, इसविधि हैं उलझ जाते। इस प्रपंच में फंसकर वे, अति दीनता को पाते।।
आपके आश्रम तक भी तब, जाना हमारा न होये। हम जैसों का कल्याण ही, इस आगमन का हेतु भए।।

हे प्रभु जिस बात को, साधारण इन्द्रियां न जानें। अथवा भूत भविष्य के, गर्भ में बात जो निहित रहे।।
वह भी ज्योतिष शास्त्र से, प्रत्यक्ष जान ली है जाती। इसी ज्योतिष शास्त्र की, आपने है रचना करी।।

ब्रह्मज्ञों में हैं सर्वश्रेष्ठ, उपकार आप यह मुझपे करें। मेरे इन दोनों शिशुओं का, नामकरण संस्कार करें।।
ब्राह्मण तो जन्म से ही, मनुष्य मात्र का है गुरु। संस्कार आप ही इनका करें, हे दिवजवर आपकी शरण पड़ूं।।
गर्गाचार्य बोले,
हे नन्द सर्वत्र ही मैं, यदुवंशी गुरु जाना जाऊं। यदि तुम्हारे पुत्र का, संस्कार मैं करी आऊं।।
तब लोग यह समझेंगे, यह देवकी का वंश है। इस कारण ही संस्कार किया, यह यदुकुल का अंश है।।

है दुर्बुद्धि कंस की, पाप ही वह सोचा करे। वसुदेव अभिन्न हैं मित्र तेरे, नहीं यह भी बात छिपी उससे।।
देवकी की कन्या से, जब से उसने यह बात सुनी। कि उत्पन्न है हो चुका, उसका हन्ता तो कहीं।।
तब से यह वह सोचा करे, अष्टम कन्या न हो सके। यदि तुम्हारे पुत्र का, संस्कार मैं कर दूं रे।।
इस बालक का वह वध करे, वसुदेव पुत्र इसे जान के। तो हमसे यह बहुत घोर, अन्याय पूर्ण ही काज हो जाए।।
नन्द बोले,
हे आचार्य एकान्त में ही, इस गौशाला के भीतर। स्वस्तिवचन के कथन मात्र, से संस्कार यह देवें कर।।
द्विजाति के योग्य जो, नामकरण संस्कार करें। अन्य की बात तो दूर रही, नहीं बन्धु बान्धव जान सकें।।
शुकदेव बोले,
गर्गाचार्य तो पहले ही, संस्कार यह करना चाहते थे। नन्दबाबा की प्रार्थना सुन, तत्काल ही वह तैयार हुए।।
एकान्त में छिपकर गुप्त ही, दोनों का संस्कार किया। दोनों ही बालकों को, नाम उन्होंने दे दिया।।
गर्गाचार्य बोले,
है रोहिणी का पुत्र यह, सो नाम होगा रौहिणेय। निज बन्धु बान्धव मित्रों को, निज गुणों से यह आनन्द दे।।
इसलिये नन्द जी तुम जानो, दूजा नाम इसका हो राम। नहीं बल की इसके सीमा कोई, अत: बल भी होगा एक नाम।।
तुममें और यादवों में, नहीं भेद कोई मन में होगा। द्वेष भरे लोगों को भी, सदा ही यह मिलवायेगा।।
बलराम के नाम से, भी यह जाना जायेगा।।

और यह है जो सांवला, और सलोना सा बालक। हर युग में यह नित्य ही नव, तन लेता है धारण कर।।
पिछले युगों में क्रमश: था, यह श्वेत रक्त और पीत वर्ण। अब की है स्वीकार किया, इसने ही यह कृष्ण वर्ण।।
इसलिये जगत् में यह, कृष्ण नाम ही लेगा धर। हे नन्द तुम्हारा पुत्र यह, आया पूर्व वसुदेव के घर।।
इसलिये इस रहस्य को, जान लेंगे जो भी लोग। श्री वासुदेव कहकर इसे, पुकारेंगे फिर वह ही लोग।।

तुम्हारे इस पुत्र के हैं अनेकों, रूप और नाम अन्य भी। जितने गुण और कर्म हैं, पड़ जाएं वैसे नाम भी।।

उन नामों को हे नन्द, मैं तो हूं सब जान रहा। किन्तु संसार के लोगों से, गुप्त रहें वह नाम सदा।।

यह शिशु तो तुम सबका, होगा परम कल्याण कर्ता। समस्त गोप और गायों को, आनन्द से सदा यह भर देगा।।
इसकी सहायता से तुम सब, सहज ही करोगे सामना। बड़ी बड़ी विपदायें भी, टिक नहीं पायेंगी वहां।।

हे व्रजराज पुरातन युग, की बात हूं सुना रहा। एक बार पृथ्वी पर जब, राजा नहीं कोई रह गया।।
चोर और परिपन्थी मिल, लूट खसोट थे मचा रहे। तब यही पुत्र तुम्हारा नन्द, सज्जन जन की रक्षज्ञ करे।।
इससे बल पाकर ही उन्होने, था लुटेरों को जीता। दृष्ट रूप में थी बनी, यह उनकी ही विजय गाथा।।

हैं भाग्यवान वह जीव जान, जो तेरे सांवरे को चाहें। इस सलोने शिशु पे जो, न्यौछावर निज को कर जायें।।
प्रभु विष्णु के कर कमलों की, छत्रछाया में रहें जो देव। असुर न जीत सकें उनको, हैं सदा सुरक्षित ही वह देव।।
त्यों ही जो इसको प्रेम करे, शत्रु न उसको जीत सकें। बाहर के हों या भीतर के, वह सदा सुरक्षित उनसे रहे।।

हे नन्द जिस भी दृष्टि से, तुम चाहो इसे देख लो। गुण सम्पद् सौन्दर्य में, कीर्ति प्रभाव में शिशु यह जो।।
श्रीमन्नारायण के अपने, ही समान यह बालक हो। दक्षता से तत्पर होकर, अब तुम इसकी रक्षा करो।।
शुकदेव बोले,
इस विधि नन्दबाबा को, भली भाँति समझाकर के। आचार्य गर्ग आश्रम लौटे, सुरक्षा का आदेश दे।।
उनकी बातें सुनकर श्री, नन्दबाबा अति आनन्दित थे। मानो सब लालसा पूर्ण हुई, कृत्कृत्य वह हो गए।।

७) बाल क्रीड़ा

हे राजन् कुछ ही दिन में, फिर राम श्याम द्वौ भाईयों ने। घुटनों हाथों के बल चलकर, व्रज धूम मचाई दोनों ने।।

नन्हें चरणों को दोनों ही, गोकुल की कीचड़ से भरते। और खेंच खेंच के फिर उनको, चलने की वह कोशिश करते।।
उनके चरण और कटि की, घण्टियां रुनझुन बज जातीं। अति रसपूर्ण वह ध्वनि, थी सबके मन को भाती।।

वे दोनों भी इस ध्वनि को सुन, अति मुदित थे हो जाते। कभी राह चलते अज्ञान व्यक्ति, के पीछे पीछे हो लेते।।
जब देखते हैं अनजाना यह, तो कुछ झेंप ही थे जाते। और डर कर ही मानो वह, निज मातृ गोद में लौट आते।।

मातृ हृदय यह देखकर, वात्सल्य प्रेम से भर जाता। उनके स्तनों से बह जाती, स्वत: ही दुग्ध धारा।।
जब उनके दोनों नन्हें शिशु, अंग राग लगाते कीचड़ का। इस रूप में जब वह लौटते, बढ़ जाती थी उनकी शोभा।।
उनके आते ही मातायें, निज गोद में उन्हें उठा लेतीं। भुजा पाश में ले अपनी, हृदय से उन्हें लगा लेतीं।।
स्तनपान कराने लगतीं वह, शिशु बीचबीच में झांकते। निज माताओं को देख के वह, मन्द मन्द थे मुसकाते।।
उनकी मधुर मुसकान यह, और छोटी छोटी दन्तावली। भोला मुखड़ा उनका देखी, आनन्द सिन्धु में डूबतीं।।

राम और श्याम दोनों ही, जब तनिक से बड़े हुए। तब व्रज में घर से बाहर, ऐसी लीलाएं करने लगे।।
आश्चर्य चकित हो गोपियां, उन्हें निहारती रह जातीं। उनका कौत्तुक देख देख, आनन्द मग्न वह हो जातीं।।
किसी बैठै हुए बछड़े की, पूंछ पकड़ जब लेते वे। इधर उधर इनसे डर कर, भागने लगते थे बछड़े।।

तब वे दोनों और भी, जोर से पूंछ पकड़ लेते। और बछड़े उन्हें घसीटते से, और भी वेग से भागते।।
घर से सब काम काज छोड़, थीं गोपियां लीला निहारतीं। हंसते हंसते आनन्द में, निमग्न वह होकर खो जातीं।।

अति चंचल थे बलदाऊ, और कन्हैया दोनों ही। और खिलाड़ी भी थे बने, वे दोनों ही बहुत भान्ति।।
कहीं हरिण या गौ आदि, पशुओं के पीछे भागते। तो कहीं धधकती अग्नि संग, ही अपना खेल रचा लेते।।
कभी जाते श्वान के पास वह, कभी तलवार उठा लेते। आँख बचा कभी कुएं या, गड्ढे के पास थे वह जाते।।
गिरते गिरते बचते कभी, फिर मोरों के निकट जाते। कभी कण्टकों की झाड़ी, की ही ओर वह बढ़ जाते।।
बहुत रोकती माताएं, पर एक भी उनकी न सुनते। ऐसे में घर के काम काज, भी उनसे नहीं सम्भल पाते।।
उनका चित्त तो बच्चों की, सुरक्षा में ही लगा रहता। उनके प्रति चिन्ता से ही, वह हर पल चंचल रहता।।

हे राजर्षे कुछ दिन बीते, माताओं के दोनों लाडले। घुटनों का सहारा लिये बिना, अनायास ही खड़े हुए।।
अपने चरण के आसरे ही, गोकुल में वह चलने लगे। ऐसी अवस्था में उनके, नव कौतुक आरम्भ हुए।।

हैं स्वयं भगवान ही, व्रजवासिन् के कन्हैया यह। बलराम सहित निज आयु के, बालकों को संग ले के।।
क्रीड़ा करने के लिये, व्रज में वह निकल पड़ते। व्रज की बड़भागिनी गोपियों, को मुदित करते हुए।।
भान्ति भान्ति के खेल वह, सबके संग मिल खेलते। गोपिकागण के मन को सदा, इस विधि निहाल थे वह करते।।

८) माखन चोरी की लीलायें

शैशव की चंचलता उनकी, अति अनोखी ही होती। गोपिन् को तो अति सुन्दर, और मधुर वह भासती।।
इक दिन वे सब मिलकर के, नन्दबाबा के घर गईं। और यशोदा माता को, कृष्ण की करनी सब कही।।

अरी यशोदा यह तेरा, कान्हा तो अति नटखट है। नहीं गाय दुहने का समय, फिर भी बछड़े यह खोले है।।
जब हम इसको मना करें, तब यह हंसने लगता है। और फिर चोरी के भी, उपाय बहुत यह करता है।।
मधुर दूध और दधि को यह, छिप छिप कर खा जाता है। अकेला भी नहीं आता यह, सब वानरों को संग लाता है।।
उन सबमें बांट बांट के यह, दूध दही सब खाता है। जब भरपेट वे सब खा लें, तो मटकी फोड़ यह जाता है।।
घर में यदि कुछ नहीं मिले, तो यह क्रुध हो जाता है। और हमारे शिशुअन् को, रुला के भाग यह जाता है।।

दूध दही के छींके जब, इसकी पहुंच से दूर रहें। नन्हें नन्हें कर इसके, वहां पे किसी विधि न पहुंचे।।
तब बहुत उपाय यह करे, पीढ़े पे पीढ़ा यह धरे। या फिर ऊखल उलटा कर, उसके ऊपर ही चढ़ जाये।।
या ऊखल पर धर पीढ़ा, ऊंचा उसे बना ही ले। कभी कभी निज साथी के कन्धों पर ही जाय चढ़े।।
इतना करने पर भी जब, पहुंच वहां यह न पाये। तब नीचे से ही घट में, छिद्र यह बना जाये।।
न जाने इसको कैसे, पहचान बनी यह रहती है। कौन सी वस्तु किस मटकी में, कहां पड़ी ही रहती है।।
फिर ऐसे ढंग से छेद करे, कोई जान ही न पाये। जब इससे बचने के लिए, अन्धकार में छिपा हम दें।।
तो मणिमय निज आभूषण के, प्रकाश में यह सब देख ले। इसके तन में भी ज्योति जगे, जिससे कुछ भी नहीं छिप सके।।
यह तो इतना चालाक है, जाने कब कौन कहां पे रहे। गृहकाज में सब उलझी जब हों, यह अपना काम बना ही ले।।

ऐसा सब करने पर भी, यह पुन: ढिठाई करता है। उलटा हमें ही चोर बना, घर का मालिक बन जाता है।।
लिपे पुते स्वच्छ घर में, यह जाकर मूत्र भी करी आये। देखो तो सही तुम इसकी ओर, कैसा भोला बना है यह।।

चोरी के अनेक उपाय करी, वहां यह काम बनाता है। पत्थर की मूर्त बन के यहां, देखो यह खड़ा हो जाता है।।
वाह भोले साधु बाबा, क्या हम तेरी बात कहें? थीं गोपियां कृष्ण को देख रहीं, नेत्र अपने टिकाकर के।।
भीत चकित से कमल नयन, मुखारविन्द पे थे सजे। उनकी दशा यह देखी मां के, हृदय में प्रेम स्रोत उमढ़े।।
कान्हा को कैसे डांटती वह, खिल खिला कर हंस देतीं। मुग्ध हो उसकी माधुरी पर, वह ताना भी न दे पातीं।।

९) कन्हैया का मिट्टी खाने का प्रसंग

इक दिन बलरामादि सब मिल, कृष्ण के संग थे खेल रहे। माँ यशोदा को कहा, माटी खाई कन्हैया ने।।
माँ यशोमति ने कान्हा का, हाथ जोर से पकड़ लिया। कृष्ण की आंखों में उस पल, माता का था भय भरा।।
मैया ने फिर डांट कर, कृष्ण को यूं फटकार कहा। अरे नटखट तू तो बड़ा, ढीठ ही है हो गया।।
अकेले में छिपकर तूने, क्यों यह माटी है खाई? तेरे दल के सभी सखा, क्या कह हैं रहे देखो भाई।।
बड़े भाई बलदाऊ भी, उनकी ओर ही हैं खड़े। नटखट बहुत तू हो गया, सब मिलकर यह कह रहे।।
श्रीकृष्ण बोले,
अरी मैया मैंने तो, कभी माटी है नहीं खाई। झूठ ही यह सब कह रहे, क्यों बात तू इनकी मान रही?
गर मानो इनको सच तुम, तो मेरा मुख है तेरे सामने। खोल के इसको देख तू ले, और संशय दूर करो अपने।।
शुकदेव बोले,
यह सुनकर कहा यशोदा से, अच्छा तो अपना मुख तू खोल। माता के ऐसा कहने पर, वह खड़े हुए निज मुख को खोल।।
अनन्त ऐश्वर्य है उनका जान, हैं लीला मात्र ही मनुज बने। उनके इस महा कौतुक को, जीव भला को समझ सके?

यशोदा जी ने देखा जब, उनके मुख में दृष्टि डाल। चर अचर सम्पूर्ण ही, जगत् था वहां पे विद्यमान्।।
आकाश दिशायें पर्वत द्वीप, सागर सहित पृथ्वी सारी। मन्द मन्द बहती वायु, विद्युत अग्नि और शशि।।
तारों के संग सम्पूर्ण, ज्योतिर्मण्डल वहां पे था। जल तेज पवन वियत्, अहं के कार्य देवता।।
मन इन्द्रियों के संग तन्मात्रा, सारी उनके तन में थीं। तीनों गुण श्री कृष्ण के, मुख के भीतर दीख पड़ी।।

जीव काल स्वभाव कर्म, उनकी वासना और यह तन। भिन्न रूप में इनके द्वारा, दृष्ट है जो संसार सब।।
सारे व्रज और अपने को भी, नन्हें से मुख में जब देखा। श्री कृष्ण के मुख में देखा जगत्, तो मन में उठी उसके शंका।।
यशोदा बोली,
यह है कोई विचित्र स्वप्न, या प्रभु की कोई है माया? कहीं मेरी बुद्धि में ही, कोई भ्रम तो नहीं उठी आया?
हो सकता है मेरे शिशु में ही, जन्मजात कोई सिद्धि हो। योग पथ के पथिक को, ज्यों ऋद्धि सिद्धि प्राप्त हो।।

चित्त मन कर्म और वाणी से, जो सदा ही परे रहें। सुगमता से अनुमान का, विषय भी नहीं वह हो सकें।।
सम्पूर्ण ब्रह्माण्ड ले, जिनके श्री चरण का आसरा। जिनसे सत्ता यह प्राप्त कर, जगत् है जिनमें भासता।।
प्रेरक शक्ति हैं आप स्वयं, पर स्वरूप अचिन्त्य है। उन प्रभु चरण में बार बार, शतश: मेरा नमन है।।

यह मैं हूं यह है मेरा पति, और यह मेरा पुत्र है। व्रज की सर्व सम्पदा की, स्वामिनी जो सर्वत्र है।।
जिनकी माया ने इस कुमति, से है मुझको घेर लिया। मैं उनकी ही शरण में हूं, वह प्रभु ही इक मेरा आसरा।।
शुकदेव बोले,
यशोदा मैया कृष्ण के, जब तत्त्व को इस विधि जान गईं। तो सर्वव्यापक श्री हरि ने, अपनी परम स्नेहमयी।।
वैष्णवी योगमाया का, संचार उनके हृदय में किया। इस घटनाक्रम को मैय्या के, मन से पूर्ण ही भुला दिया।।
अपने प्यारे लल्ला को, गोदी में उन्होंने उठा लिया। पहले की भान्ति ही उनका, हृदय प्रेम से भर आया।।

सब वेद शास्त्र उपनिषद सांख्य, योगी और भक्त जो गुण गाएं। माहात्म्य जिनका गाकर, कभी भी थक वह न पाएं।।
उन्हीं प्रभु को यशोदा मां, पुत्र ही अपना माने थी। वात्सल्य स्नेह से भरी हुई, रहस्य न वह पहचाने थी।।
परीक्षित् बोले,
हे द्विजवर नन्दबाबा ने, था कैसा साधन किया? सौभाग्यवती यशुमति की, भी कैसी थी तपश्चर्या?
जिसके कारण श्री हरि ने, उनको यह वरदान दिया। अपने नन्हें से मुख से, उनके स्तन का पान किया।।
थीं बाल लीलायें कृष्ण की, जो ग्वालों के संग करते थे। अपना ऐश्वर्य महत्त्व छिपा, वह उनके संग विचरते थे।।

हैं अति पावन वे सब ही, जो श्रवण कीर्तन उनका करे। ताप शाप उस जीव के, सारे शान्त ही हो जायें।।
त्रिकालदर्शी ज्ञानी पुरुष, आज भी उनका गान करें। उनके जन्म दाता माता पिता, नहीं उनका दर्शन कर सके।।
नन्द यशोदा दूजी ओर, उनका आनन्द हैं लूट रहे। क्या कारण है इसका प्रभु, आप ही हमको आज कहें।।
शुकदेव बोले,
थे पूर्व जन्म में श्रेष्ठ वसु, जानो राजन् यह नन्दबाबा। द्रोण उनका नाम था, और पत्नी का था नाम धरा।।
ब्रह्मा जी के आदेश का, पालन उन करना चाहा। यह भाव हृदय में धर, ब्रह्मा जी से उन यूं कहा।।

पृथ्वी पर जब हम जन्म लें, श्री कृष्ण चरण अनुराग हो। जगदीश्वर श्री भगवान में, अनन्य प्रेम का भाव हो।।
जिस भक्ति के आसरे, भवसागर से अनायास तरें। संसार की सब दुर्गतियों को, सहज में ही हम पार करें।।

तथास्तु कहा श्री ब्रह्मा ने, वरदान उनका फल लाया। परम यशस्वी वही द्रोण, व्रज में आके हुए पैदा।।
उनका नाम ही नन्द हुआ, और पत्नी उनकी यशोदा बनी। पूर्व जन्म में यशोदा यह, थीं धरा नाम से जानी गईं।।

हे राजन् इस जन्म में, श्री हरि ही उनके पुत्र हुए। जन्म मरण के चक्र से, सहज ही वह छुड़ा सकें।।
इस नन्द और यशोदा प्रति, अत्यन्त उनका प्रेम हुआ। समस्त गोप गोपियों में, नाता इनसे अद्वितीय था।।

ब्रह्माजी के वचन को, सत्य करने के लिये। बलराम जी के संग कृष्ण, व्रज में आ रहने लगे।।
व्रजवासियों के हृदय नित्य, बाल सुलभ लीलाओं से। दोनों ही भाई मिलकर, आह्लादित करने लगे।।

१०) मैया का कृष्ण को ऊखल से बान्धना, कृष्ण की गोकुल में अन्य बाल लीलायें और यमलार्जुन का उद्धार

शुकदेव बोले,
इक दिन नन्दरानी यशोदा ने, राजन् ऐसा उद्यम किया। गृह दासियों को दिये दूजे काम, खुद दधि मन्थन आरम्भ किया।।

जिन जिन बाल लीलाओं का, वर्णन तुमको अब तक किया। उन सबकी स्मृति से ही, मैय्या का था हृदय भरा।।
दधि मन्थन करते हुए, वह सुमिरन् उनका करती थी। कभी लय ताल और स्वर सहित, गीत बद्ध उन्हें करती थी।।

स्थूल था कटि भाग उनका, रेशम का लहंगा पहरे थीं। अतिशय पुत्र स्नेह कारण, थी स्तन से दूध भी बहने लगी।।
कांप रहे थे स्तन उनके, और भुजायें थक थीं गईं। नेति खेंचते खेंचते, बल क्षीण थी उनकी हुई।।
हथकंगना और कर्णफूल, बार बार थे हिल रहे। श्री मुख पर उनके राजन्, स्वेदबिन्दु थे चमक रहे।।
मालकी के सुन्दर पुष्प, जो थे उनकी चोटी में गुंथे। इस हिलजुल से मानो वह भी, धरती पर थे गिर रहे।।
सुन्दर भ्रुववाली यशोमति, की ऐसी थी शोभा बनी। घर के आंगन में बैठी, वह दधि मन्थन में थी लगी।।

उसी समय श्री कृष्ण के मन, स्तन पान की चाहना उठी। निकट आ गए माता के, जो थी दधि को मथ रही।।
दही की मथनी पकड़ कर, बिलोने से उन्हें रोक दिया। यह देखी मैय्या के हृदय, नव आनन्द प्रेम उमढ़ा।।

श्री कृष्ण यशोदा की, गोदी में फिर जाय चढ़े। वात्सल्य स्नेह के कारण, थे दुग्ध स्तनों से झरने लगे।।
दूध उन्हें वह पिलाने लगीं, निहाल हुई मुखड़ा देखी। दूजी ओर अग्न पे चढ़े, दूध में भी उफान उठी।।
उसे देख यशोदा ने, अतृप्त कृष्ण को छोड़ दिया। दूध बचाने के लिये, दूजी ओर फिर मुख किया।।

यह देखी बालकृष्ण का, क्रोध ही जैसे भड़क गया। उनके अरुण अधर से वह, बार बार था फड़क रहा।।
दांतों से दबाकर ओठों को, फिर कृष्ण ने यह कौतुक किया। पास पड़े ढेले को उठा, दही का मटका फोड़ दिया।।
आंखों में आंसूं भरे हुए, वह दूसरे कक्ष में चले गए। और अकेले ही वहां, बासी माखन खाने लगे।।

उबलता दूध उतार कर, नन्दरानी पुन: लौट आई। दधि मथन के हेतु वह, उसी कक्ष में लौट आई।।
वहां देखा दही का मटका तो, टुकड़े टुकड़े है हो गया। वह समझ गईं करतूत यह कर, हैं कहीं छिपे उसके लल्ला।।
उन्हें वहां न देखकर, मैय्या खूब हंसने लगीं। कान्हा की लीला याद कर, वह थीं आनन्द निमग्न हुई।।

इत उत जब ढूंढा उसे, उल्टे ऊखल पे खड़ा पाया। छींके पर का माखन लेरक, था बन्दरों को वह लुटा रहा।।
कहीं चोरी न पकड़ी जाये, उसके मन में यह डर भी था। चौकन्ना हो चहुं ओर ही, दृष्टि रहा था वह दौड़ा।।
यह देखी यशोदा भी, दबे पांव से चलने लगीं। धीरे धीरे पीछे से, उसके पास वह जा पहुंची।।

जब कृष्ण ने यह देखा, मैय्या पास है आ गई। छड़ी हाथ में लिये हुए, वह मेरी ओर है भाग रही।।
झट से कूदे ऊखल से, मानो वह अति भयभीत हुए। माता से बचने के लिए, विद्युत की न्याईं वह भागे।।

महायोगी तप के द्वारा, निज मन को सूक्ष्म शुद्ध कर। प्रवेश नहीं कर पाते वह, जिस परम तत्त्व के ही भीतर।।
उन श्री हरि के पीछे पीछे, थीं मात यशोदा दौड़ रहीं। उन्हें पकड़ने के लिये, थी जान की मानो बाजी लगी।।

इस प्रकार जब कृष्ण के, पीछे वह थीं दौड़ रहीं। स्थूल नितम्बों के कारण, वा चाल थी धीमी पड़ने लगी।।
वेग से दौड़ने के कारण, चोटी की गांठ भी ढीली पड़ी। चोटी के गुंथी माल भी, थी धरती पर गिर रही।।
जिस किसी भी भान्ति जब, मैया ने यत्न निज न छोड़ी। तब सुन्दरी यशोमति, कहीं जा कान्हा को पकड़ सकीं।।

हाथ पकड़ कर कृष्ण का, उनको वह धमकाने लगीं। विलक्षण थी भयभीत हुए, कृष्ण की उस पल की झांकी ।।
अपराधी तो थे मैया के, इस कारण रोने लगे। हाथों से आंखें मल मल कर, असुअन् से मुख धोने लगे ।।

उनके सारे मुख पर ही, अंजन की कालिमा फैल गई। पिटने का भय मन में था, आंख थी मैय्या पर टिकी ।।
कुछ भय और कुछ व्याकुलता, उन नयनों में मिश्रित थी। भयभीत हुए निज लल्ला के, मुख पर दृष्टि मैय्या की पड़ी ।।
वात्सल्य स्नेह से हृदय भरा, उन्होंने छड़ी फिर फेंक दी। फिर सोचा इक बार तो, रस्सी से इसे बान्धूं सही ।।
कहीं चंचल होकर पुन:, भाग न जाये शंकित थी। सच जानो तो मैय्या को, उनके ऐश्वर्य की ज्ञान न थी ।।

न बाहर भीतर है जिनमें, और न आदि न अन्त है। जगत् से पहले भी वह थे, रहें बाद में भी अनन्त हैं ।।
जग के भीतर हैं वही, जग रूप भी स्वयं वह आप हैं। इन्द्रिय परे अव्यक्त हैं वह, अग्राह्य स्वरूप वह आप हैं ।।

उन्हीं प्रभु ने मनुज का सा, रूप है धारण किया हुआ। पुत्र मानी उनको अपना, यशोमति ने ऊखल से बान्धा ।।
ज्यों कोई साधारण सा, बालक ही हो वह कहीं। यही सोचकर नन्दरानी, रज्जू से उसे बान्ध रहीं ।।

उधमी और नटखट अपने, पुत्र को बान्धने जब चलीं। तब देखा उनकी रज्जू तो, दो अंगुल है छोटी हुई ।।
फिर दूसरी रस्सी ला, मैय्या ने उसमें जोड़ दी। पर जोड़ने पर भी वह, रज्जू छोटी ही रही ।।

एक और रस्सी लाकर, तब उन्होने उसमें जोड़ी। पर फिर भी कान्हा के लिये, रज्जू दो अंगुल छोटी रही ।।
ज्यों ज्यों रस्सी लाती जातीं, और थीं उनको जोड़ती। बार बार वह रज्जू फिर, दो अंगुल छोटी थी पड़ती ।।

यशोदारानी ने घर की, सारी रस्सियां जोड़ दीं। फिर भी वे श्रीकृष्ण को, किसी विधि न बान्ध सकीं ।।
उनकी असफलता देखकर, गोपिकागण मुसकाने लगीं। यशोदा जी भी मुसका कर, आश्चर्य चकित थीं हो रहीं ।।

श्रीकृष्ण ने जब देखा, पसीने से लथपथ हैं हुईं। चोटी के फूल भी गिरने लगे, अति श्रान्त है माता हो गईं ।।
तब कृपा उन्होने करी, स्वयं ही बन्धन में बन्धे। स्वयं ही अनुग्रह करके प्रभु, माता के हाथों बन्ध गए ।।

हे राजन् श्री कृष्ण तो, हैं परम स्वतंत्र ही। ब्रह्मा इन्द्रादि सहित, सब जग है उनके बस में ही ।।
फिर भी इस विधि बन्धकर, उन एक बात दिखला है दी। पूर्ण जग को ज्यों कह रहे, हूं मैं निज भक्तों के वश ही ।।

मुक्तिदाता मुकुन्द से, यशोमति को जो प्रसाद मिला। गोपालिका यशोदा को, अनुपम ही कृपा का दान मिला ।।
नहीं पाया पुत्र हो ब्रह्मा ने, शंकर नहीं पाया आत्म हो। वह प्रसाद न पा सकीं, अर्धांगिनी श्री रहें वक्ष में जो ।।

गोपिकानन्दन यह प्रभु, हैं सुलभ प्रेमी भक्तों के लिये। देहाभिमानी कर्मकाण्डी, तपस्वी उन्हें न पा सकें ।।
ज्यों अनन्य भक्त उनके, सहज ही उन्हें रिझा सकें। उनके अपने स्वरूपभूत, ज्ञानी भी उन्हें न पा सकें ।।

तत्पश्चात् नन्दरानी जी, तो गृहकाज में जाय लगीं। ऊखल से बन्धे श्री कृष्ण ने, द्वौ अजुन वृक्षों की सोची ।।
दोनों की मुक्ति हेतु ही, यह लीला उन्होने थी रची। यक्षराज कुबेर के, पुत्र थे पूर्व में वृक्ष यही ।।

नलकूबर और मणिग्रीव, इन दोनों के नाम थे। धन ऐश्वर्य सौन्दर्य से, परिपूर्ण आप्तकाम थे ।।
इनके घमण्ड के कारण ही, शाप इन्हें था मिल गया। देवर्षि नारद के शाप, से ही वृक्ष का रूप धरा ।।

HHH(४४)HHH

राजा परीक्षित् बोले,
भगवन् कृपया आप कहें, क्योंकर मिला उन्हें यह शाप? नलकूबर और मणिग्रीव ने, कौन किया था ऐसा पाप?
जिसके कारण परम शान्त, श्री नारद को भी क्रोध आया? क्रुध हो देव ऋषि ने क्यों, शाप उनको था दिया?
शुकदेव बोले,
नलकूबर और मणिग्रीव थे, लाड़ले पुत्र कुबेर के। तिस पर भगवान रुद्र के, अनुचर भी थे वह माने गए।।
इस कारण अभिमान के, मद में तो वह चूर ही थे। इक दिन वारुणी पीकर वह, मन्दाकिनी तट पर बैठे थे।।
कैलास के सुन्दर उपवन में, थे दोनों यह मदमत्त हुए। नशे के कारण नयना भी, दोनों के थे घूम रहे।।
बहुत स्त्रियां भी उनके संग, थीं वाद्य गायन में लगीं। पुष्पित वन में वे सब ही, उन संग विहार थीं कर रहीं।।

भान्ति भान्ति के कमल तब, श्री गंगा में थे खिल रहे। उन नारिन् को संग ले, वे जल के भीतर जा घुसे।।
ज्यों हाथियों का जोड़ा, जल क्रीड़ा करे हथिनियों से। उन युवतियों संग वह, क्रीड़ा त्यों करने लगे।।
संयोग वश ही उधर से, हे राजन् देव ऋषि आये। देखा इन युवक यक्षों को, जाना मतवाले हैं यह हुए।।

देव ऋषि को देख करी, अप्सरा गण तो लज्जाईं। झट से वस्त्र उन्होने पहने, थीं शाप से वह भयभीत हुई।।
किन्तु इन यक्षों ने तब भी, अपने वस्त्र नहीं पहने। निर्लज्ज बने यह वस्त्रहीन, जल में ही विचरते रहे।।
जब श्री नारद ने देखा, हैं तो यह देव पुत्र ही। फिर भी श्री मद से अन्धे हुए, संग मदिरा से उन्मत भी।।
तब अनुग्रह उनपर किया, और उन्हें यह वचन कहा। करुणामय देवर्षि ने फिर, कृपा कर उनको शाप दिया।।
नारद बोले,
निज रुचिकर विषयों का ही, सदा भोग जो किया करें। सबसे बड़ा बुद्धि नाशक, उनका तो है श्री मद यह।।
हिंसक कर्म और अपनी, कुलीनता का अभिमान जो। धन सम्पद् के नशे से बढ़, बुद्धि का भ्रंशक कोई न हो।।
क्योंकि श्री मद के संग तो, अन्य व्यसन भी लगे हें। स्त्री द्यूत मदिरा स्वत:, उसके साथ सदा हो लें।।

धन और ऐश्वर्य मद में, हैं जो जन अन्धे हुए। क्रूर पुरुष वे अपनी ही, इन्द्रियों के हैं वशीभूत हुए।।
नाशवान अपने तन को, तो अजर अमर हैं मानते। अपने समान ही तन वाले, पशुओं की हत्या हैं करते।।

भूदेव-नरपति-देवादि, कहकर जिस तन को पुकारते। अन्त में उसकी गति क्या हो, यह नहीं वह पहचानते।।
उसमें कीड़े पड़ जायेंगे या, पक्षी की विष्ठा बनेगा वो। या राख की ढेर बनेगा वह, अग्नि में जब वह भस्म हो।।
ऐसे नश्वर तन के लिये, जो अन्य जीवों से करे द्रोह। ऐसा करने से उसका, स्वार्थ कौन भला सिद्ध हो?
ऐसा करने से तो उसे, नरक की ही हो प्राप्ति। यह तो कहो यह नश्वर तन, है भला किसकी सम्मत्ति?
अन्न देकर पाले जो इसे, या गर्भाधान जो पिता करे? अथवा नौ मास तक माता, जो उदर में अपने पाले इसे?

या उस माता के भी पिता, नाना का ही यह तन रहे? या फिर कोई बलवान् जो, बलपूर्वक इससे काम ले?
धन का दाम कोई देकर या, जो इस तन को खरीद ले? या जिस चिता की अग्नि में, धू धू करके यह जले?
या फिर जो कुत्ते स्यार, इसी आस में बैठे हैं। कब इसको खाएंगे वह, प्रतीक्षा करते रहते हैं।।
किसका है यह तन भाई, जरा इस पर विचार करो। क्या है सत्यता इस तन की, तनिक इसे भी देख लो।।

साधारण सी वस्तु है तन, प्रकृति से ही यह हो पैदा। काल चक्र से यह पुन:, जाता है उसमें ही समा।।
मूर्ख या पशुओं को छोड़, को बुद्धिमान अस हो सके? तन को ही आत्म मान के जो, दूजों के प्राण भी हर ले?

श्री मद से हैं जो अन्धे हुए, उनका अंजन बस एक ही है। नयन जो खोल सके उनके, उपचार दरिद्रता ही इक है।।
दीन हीन ही देख सके, हैं दूजे भी मेरे समान। दु:ख सुख उनको भी होएं, उनमें भी हैं मुझ सम ही प्राण।।

जिसके तन में एक बार, भी कहीं कांटा लग जाये। वह न चाहे कोई अन्य जीव, उस जैसी पीड़ा कभी पाये।।
उस पीड़ा और उससे जो, विकार हों उनको वह जाने। अपनी ही उपमा से वह, दूजे के दु:ख को पहचाने।।
किन्तु जिसके तन में कभी, कहीं भी कांटा लगा नहीं। कैसी पीड़ा हो उसकी, उसको तो हो अनुमान नहीं।।

दरिद्र जीव अभिमानी और, स्तब्ध नहीं कभी हो सकता। सब भान्ति के मद से वह, है दैववश ही बचा रहता।।
भाग्य से उसको कभी, कहीं पे भी जो कष्ट आये। वह ही उसके जीवन की, महा तपस्या बन जाये।।

प्रतिदिन जिसे भोजन हेतु, अन्न जुटाना पड़ता है। क्षुधा के कारण तन जिसका, अति क्षीण ही रहता है।।
उस दरिद्र की इन्द्रियां भी, विषय भोग में न जायें। नहीं अन्य जीवन सताये वह, शुष्कप्राय: इन्द्रियां भएं।।

समदर्शी हों साधु सदा, पर दरिद्र को सुलभ हैं वे। क्योंकि उसके भोग तो, पहले से ही छूटे रहें।।
अब सन्तों का संग पा, तृष्णा लालसा भी मिटे। और शीघ्र ही अन्त:करण, उसका शुद्ध ही हो जाये।।

महात्मा जन जिनके चित्त में, समत्व भाव ही रहता है। जिनका चित्त श्री हरि के, चरण में टिका ही रहता है।।
उनका सुधा रस पान जो, नित्य ही करना चाहते हैं। दुर्गुण कोष धन के मद से, वह सदा दूर ही रहते हैं।।
धन मद में मदमस्त हुए, दुराचारी से नहीं काम उन्हें। ऐसे दुष्ट तो सन्तों की, उपेक्षा का ही पात्र रहें।।

इन दोनों यक्षों ने भी, है मदिरा का पान किया। श्री मद ने इन दोनों को, अन्धा ही है कर दिया।।
निज इन्द्रियों के दास यह, हैं स्त्री कामुक बने। अज्ञान जनित यह मद इनका, अब मुझसे ही चूर्ण भए।।

अहो अनर्थ तो देखो सही, हैं लोकपाल कुबेर के सुत। फिर भी दोनों मदोन्मत्त हो, पड़े हुए हैं यूं बेसुद्ध।।
नहीं इस बात का ज्ञान उन्हें, निर्वस्त्र हैं यह पड़े हुए। इस कारण यह दोनों ही, हैं वृक्ष योनि के योग्य ही रे।।
ऐसा होने से यह पुन:, अभिमान नहीं कर पायेंगे। मेरी कृपा से वहां पे भी, प्रभु याद को नहीं भुलायेंगे।।
देवों के शत वर्ष जब, बीत इस विधि जायेंगे। श्री कृष्ण का सम्पर्क यह, मेरी कृपा से पायेंगे।।
श्री हरि चरणों में फिर, परम प्रेम उत्पन्न होगा। फिर अपने इस लोक में, इनका पुनर्गमन होगा।।

शुकदेव बोले,
यूं कहकर फिर देवर्षि, नर नारायण आश्रम गए। नलकूबर और मणिग्रीव, यह दोनों वृक्ष ही बन गए।।
एक साथ ही अर्जुन वृक्ष, का रूप दोनों को मिला। यमलार्जुन के नाम से, इनको जग में जाना गया।।

निज परम प्रेमी भक्त नारद, का वचन सत्य करने के लिये। ऊखल से बन्धे कृष्ण फिर, उसको घसीटने ही लगे।।
शनै: शनै: ऊखल सहित, उस ओर प्रभु प्रस्थान किया। यमलार्जुन वृक्षों का युगल, था जहां आंगन में खड़ा।।

श्री हरि ने फिर यूं सोचा, हैं नारद मेरे परम प्रिय। और यह दोनों भी मेरे, भक्त कुबेर के हैं लड़के।।
इसलिए देवर्षि ने, जैसा है इनके लिये कहा। ठीक उस ही रूप में, पूर्ण मैं उसे कर दूंगा।।
यह विचार कर श्री कृष्ण दोनों वृक्षों में जाय घुसे। स्वयं तो निकले दूजी ओर, पर टेढ़े थे ऊखल वह अड़े।।

दामोदर श्री कृष्ण की, कमर में था रज्जू बन्धा। निज पीछे बन्धे ऊखल को, तनिक जोर से जब खेंचा।।
त्यों ही दोनों वृक्षों की, जड़े ही सारी उखड़ गई। तने शाखाएं पत्ते और, डालियां भी सब काम्प उठीं।।
समस्त बल विक्रम के केन्द्र, श्री हरि का तनिक सा बल लगा। ध्वनि सहित दोनों वृक्षों का, धरती पर महा पतन हुआ।।

अग्नि सम तेजस्वी दो, सिद्ध पुरुष उनसे निकले। उनके उज्ज्वल सौन्दर्य से, दिशा दिशान्तर चमक उठे।।
सम्पूर्ण लोकों के स्वामी, श्री कृष्ण समीप वे आ गए। चरणों में सिर धर कर के, उन दोनों ने प्रणाम किये।।
हाथ जोड़कर शुद्ध हृदय से, स्तुति प्रभु की करने लगे। प्रभु के चरण कमल में वह, सीस झुकाकर कहने लगे।।

यक्ष बोले,
परम योगेश्वर हे कृष्ण, आकर्षित आप करें सबको। प्रकृति परे पुरुषोत्तम आप, सच्चिदानन्द स्वरूप अहो।।
वेद ज्ञाता ब्राह्मण जन तो, इस सत्यता को हैं जानते। व्यक्त अव्यक्त सारा जगत्, है आपका ही रूप हरे:।।
सब जीवों के तन प्राण और, इन्द्रिय अन्त:करण स्वामी। महाबली हैं काल आप, अविनाशी ईश्वर आप ही।।

आप ही हैं वह महत्तत्त्व, और हैं आप ही प्रकृति। सत्त्व रज और तम रूपा, और है जो अति सूक्ष्म भी।।
स्थूल और सूक्ष्म तन के कर्म, भाव और हैं धर्म जो। उनकी सत्ता के ज्ञाता आप, स्वयं साक्षी परमात्म हो।।

प्रकृति के गुण विकार जो, वृत्तियों के द्वारा ग्रहण हों। हे प्रभु आप सदैव ही, उनकी पकड़ से परे रहो।।
स्थूल और सूक्ष्म तन के, आवरणों से ढका हुआ। कौन पुरुष ऐसा होगा, जो आपको है प्रभु जान सका?
उन तनों से पहले भी, प्रभु आप सदैव हैं विद्यमान। एक रस सदा आप रहें, सब ही कालों में समान।।

हैं सकल प्रपंच विधाता आप, वासुदेव को हमरा नमस्कार। यह गुण आपके द्वारा ही, हे प्रभु करें प्रकाश प्राप्त।।
अपनी महिमा को आपने, इनसे है आवृत्त कर लिया। परं ब्रह्म श्री कृष्ण को, नमस्कार ही है हमरा।।

हैं प्राकृत तन से परे आप, फिर भी ऐसे उद्यम करें। साधारण जीवों के लिये, नहीं किसी विधि जो सम्भव रहें।।
उनसे बढ़कर कोई होगा क्या, उनके समान भी न होए। आपके पराक्रम द्वारा प्रभु, अवतरण आपका प्रकट होए।।

सब लोकों के अभ्युत्थान, और सबके श्रेयस् हेतु। सम्पूर्ण शक्ति लेकर के, आप ही हैं प्रकटे प्रभु।।
सब अभिलाषा जीव की, पूर्ण आप ही करें देव। हैं परम कल्याण स्वरूप आप, हैं चरण में मेरे नमन देव।।
हे परम मंगल स्वरूप, नमस्कार है आपको। परम शान्त हृदय विहारी, यदुवंश शिरोमणि कृष्ण को।।

हे प्रभु अनन्त हे, हम तो दासों के दास हैं। स्वीकार करें प्रभु आप हमें, हम तो तव शरण को प्राप्त हैं।।
देवर्षि श्री नारद ने, हम पर यह अनुग्रह किया। हम जैसे पापियों को भी, आपका दर्शन प्राप्त हुआ।।

हे प्रभु यह वाणी सदा, आपके ही गुण गाती रहे। कर्ण हमारे आपकी, रसमयी कथा का श्रवण करें।।

यह हाथ आपकी सेवा करें, मन चरण कमल में रम जायें। निवास स्थान यह जगत् प्रभु, है आपका भूल यह न पायें।।
सबके सामने हे प्रभु, यह मस्तक सदा ही झुका रहे। सन्त ही आपका व्यक्त रूप, नयना यह नित्य वा दरस करें।।

शुकदेव बोले,
नलकूबर और मणिग्रीव ने, प्रभु की इस विधि स्तुति करी। गोपाल कृष्ण के मुख पे फिर, अति मधुर हंसी बिखरी।।
ऊखल से बन्धे वह नित्य मुक्त, और मुक्त हुए उन यक्षों को। देखी विपरीत स्थिति वह हंसे, कहा प्रभु ने फिर उन दोनों को।।

भगवान बोले,
श्री मद से अन्धे थे तुम, मैं तो इस सत्य को जाने था। देवर्षि ने कृपा करी, ऐश्वर्य तुम्हारा नष्ट किया।।
इस भान्ति करुणामय ने, कल्याण का साधन जुटा दिया। उनके अनुग्रह ने ही तो, जागृत आज है तुम्हें किया।।

समदर्शी है जिनकी बुद्धि, और हृदय भी समर्पित है। पूर्ण रूप से मेरे प्रति, भाव भी जिनके अर्पित हैं।।
ऐसे सत्पुरुष के दर्शन से, बन्धन कोई रह ही न पाये। ज्यों सूर्य उदय हो जाने पर, नेत्रों में तिमिर न टिक पाये।।

इसलिये हे यक्षो तुम, अब मेरे परायण ही रहो। अपने अपने घरों को ही, अब दोनों प्रस्थान करो।।
अति अभीष्ट तुम्हारा जो, अनन्य भक्ति भाव है। प्राप्त तुम्हें है हो गया, भव तारक जो आप हैं।।

शुकदेव बोले,
प्रभु ने जब इस विधि कहा, उन दोनों ने परिक्रमा करी। प्रभु चरण में बार बार, फिर दोनों ने प्रणाम करी।।
तत्पश्चात् ऊखल से बन्धे, सर्वेश्वर की आज्ञा पाकर। उन लोगों ने उत्तर दिशा की, ओर प्रस्थान करी।।
शुकदेव बोले,
वृक्षों के गिर जाने से, था जो भयंकर शब्द हुआ। नन्दबाबा आदि गोपों ने, भी राजन् उसको था सुना।।
उनके मन में शंका उठी, कहीं बिजली तो नहीं गिरी कहीं। वृक्षों के पास दौड़े आये, भयभीत होकर वह सभी।।

वहां पहुंच कर देखा उन्होंने, अर्जुन के दोनों वृक्ष गिरे। स्पष्ट था गिरने का कारण, श्री कृष्ण थे रस्सी से बन्धे।।
बल लगाकर बालकृष्ण, ऊखल के थे खेंच रहे। किन्तु समझ कोई नहीं सका, इस कारण ही हैं वृक्ष गिरे।।
किसने किया है काम यह, दुर्घटना यह कैसे हुई? यह सोची वह हुए कातर, बुद्धि भ्रमित उनकी हुई।।

कुछ बालक थे वहां खेल रहे, कहा कान्हा का यह काम है। था वृक्षों में से यह निकला, फंसा ऊखल यह परिणाम है।।
हमने तो दो दिव्य पुरुष, भी इनसे निकलते देखा हैं। हैं कृष्ण के ही महा अद्भुत, कौतुक जो यह देखे हैं।।

गोपों ने उन बालकों की, बात का न विश्वास किया। यह नन्हा शिशु विशाल वृक्ष, है तोड़ भला कैसे सकता?
श्री कृष्ण की पूर्व लीलाओं को, कुछ ने तो फिर याद किया। उनके मन में जाग उठी, उसके प्रति थोड़ी शंका।।

नन्दबाबा ने जब देखा, उनका लल्ला रस्सी से बन्धा। रस्सी से ऊखल खेंच रहा, है प्राण प्रिय शिशु उनका।।
वह हंसने लगे और जल्दी से, वह कन्हैया पास गए। रस्सी की गांठ खोल के उन, तत्क्षण ही कान्हा मुक्त किये।।

गोपियों के फुसलाने पर, कभी कन्हैया नृत्य करें। साधारण से बालक समान, कभी गीत वह गा उठें।।

HHH(४८)HHH

हाथ की कठपुतली बनकर, उनके अधीन वह हो गए। सर्वसामर्थ जो स्वयं हैं, रहें भक्तों के ही अधीन वे।।

कभी आज्ञा पाकर उनकी, पीढ़ा ही वह उठा लाते। कभी तोलने के लिये, बाट ही प्रभु उठ लाते।।
कभी खड़ाऊं ले आते, भक्तों को आनन्दित करते। पहलवान की भान्ति ही, कभी तोल ठोंकने वह लगते।।

अपनी बाल लीलाओं से, आनंदित करते व्रजवासी। उनका रहस्य हैं जानते, इस लोक में भी जो संसारी।।
उनको यह दिखलाते प्रभु, हैं सेवक के अधीन स्वयं। भक्त के रहें अधीन सदा, हैं सर्वशक्तिमान् जो स्वयं।।

इक दिन फल वाली कोई, फल बेचने आ गई। फल लो भइया ले लो, दूर से थी वह पुकार रही।।
समस्त कर्म उपासना का, फल स्वयं जो सबको दें। वे अच्युत फल जलेने को, अनाज ले अंजुलि में दौड़े।।

नन्हें हाथों से अनाज, तो राहों में बिखर गया। फल वाली ने उन हाथों को फल से लेकिन भर दिया।।
इधर प्रभु ने भी उसको, विलक्षण ही फिर दाम दिया। रत्न और मणियों से प्रभु ने, उसकी टोकरी को भरा।।

तदनन्तर एक दिन, बालकों संग क्रीड़ा करते। यमलार्जुन के उद्धारक, श्री कृष्ण यमुना तट पे गए।।
बलराम सहित वह तो वहां, थे खेल में पुर तरह रमे। जल्दी आओ बलराम कृष्ण, माता रोहिणी ने पुकारा उन्हें।।
किन्तु थे खेल में व्यस्त वे, पुकारने पर न ध्यान दिया। वात्सल्यमयी यशोदा को, तब रोहिणी ने वहां भेजा।।

ग्वाल बालों के संग में, थे बहुत देर से खेल रहे। यशोदा ने तब जाकर के, दोनों के नाम पुकार लिये।।
पुत्र प्राप्ति वात्सल्य स्नेह, से हृदय परिपूर्ण था। उनके स्तनों से दूध बनी, वह स्वत: बहने लगा।।

यशोदा बोली,
जोर से फिर पुकारा उन, मेरे प्यारे कन्हैया अरे कृष्ण। आओ पुत्र हे श्याम सुन्दर, आओ मेरे कमल नयन।।
खेलते खेलते अब पुत्र, बहुत ही हो तुम थक गए। माता का स्तन पान करो, हो भूख से तुम दुर्बल हुए।।

प्रिय राम तुम तो सारे, कुल के ही प्रिय नन्दन हो। जल्दी आओ निज अनुज को ले, मेरा मनवा अति व्याकुल हो।।
प्रात: तो बहुत तड़के ही, तुमने भोजन था किया। आओ पुत्र जल्दी आओ, आकर कुछ तो खा लो जरा।।

व्रजराज भी भोजन करने, के लिये हैं बैठ गए। पर प्रिय पुत्र बलराम की, बाट हैं अभी वह जोह रहे।।
आओ पुत्र अब आकर के, आनन्दित हृदय हमारा करो। हे शिशुओं अब तुम सब भी, अपने अपने घर लौट चलो।।

इक इक अंग तुम्हारा पुत्र, है धूलि से भरा हुआ। जल्दी से तुम स्नान करो, आज जन्म नक्षत्र भी है तेरा।।
पावन होकर हे पुत्र, अब ब्राह्मणों को गोदान करो। देखो तो तव सखा हो, वा माताओं ने स्नान दियो।।
मल मल कर नहलाया उन्हें, और सुन्दर वस्त्र हैं पहराये। आभूषण भी पहरा के उन्हें, उनके तन हैं सजा दिये।।
तुम भी नहा नव वस्त्र पहर, पहले कुछ खा पी तो लो। तत्पश्चात् ही खेल का, पुन: कुछ उपकम करो।।
शुकदेव बोले,
मात यशोदा के मन प्राण, थे सब प्रेम में बन्धे हुए। चराचर जगत् के स्वामी हरि, थे स्वयं ही उनके पुत्र बने।।
पुत्र उन्हें निज मान करी, इक कर से पकड़े बलराम। दूजे कर से पकड़े कृष्ण, ले आईं उन्हें अपने धाम।।
तत्पश्चात् निज पुत्र का, मंगल करने के लिये। जो कुछ भी कर्त्तव्य था, बहुत प्रेम से सभी उपाय किये।।

नन्दबाबा आदि वयोवृद्ध, गोपों ने जब यह देखा। महावन में तो बड़ा बड़ा, उत्पात है होने लगा।।
तब एकत्रित होकर वह, विचार यह करने लगे। हमें क्या करना चाहिए, प्रश्न उनके मन में यह ही थे।।

उपनन्द नाम के गोप वहां, थे अवस्था में बड़े। ज्ञान और अनुभव में भी, वह गोप अति श्रेष्ठ थे।।
किस काल में कहां पर, व्यवहार क्या कर्त्तव्य है? सब ज्ञान ही था उनको, जो जैसा कर्त्तव्य है।।
फिर वह यह भी चाहते थे, कोई विपत्ति न आये। राम और श्याम सुरक्षित हों, इस कारण यह वचन कहे।।
उपनन्द बोले,
हे भाइयो इस वन में, महा उत्पात हैं होने लगे। अनिष्टकर संकेत हैं, यह सब शिशुओं के लिये।।
गोकुल और यहां के वासिन् का, गर भला ही हम चाहें। तो उचित अब है यही, हम सब यहां से कूच करें।।

यह देखो नन्द का लाडला, सामने है जो बैठा हुआ। काल स्वरूपिणी पूतना के, चंगुल से ज्यों त्यों छूटा।।
तत्पश्चात् प्रभु कृपा हुई, महा छकड़ा गिरते गिरते बचा। बावण्डर रूपा दैत्य तो, आकाश में ही इसे ले उड़ा।।
महा विपदा के मुख में, इस नन्हें शिशु को डाल दिया। वहां से जब यह प्रिय शिशु, चट्टान के ऊपर जाय गिरा।।
कुल के देवेश्वरों ने ही, इसकी रक्षा करी थी तब। पतन हुआ है धरती पर, यमलार्जुन वृक्षों का अब।।
नहीं इसका अकल्याण हुआ, उनके मध्य में भी आकर। और बाल भी बचे रहे, प्रभु ने स्वयं ही कृपा दी कर।।

इससे पहले कि अन्य कोई, महा अनिष्ट इस पर आये। कोई महाशत्रु आकर, व्रज को नष्ट ही कर जाये।।
हम सब निज शिशुओं को ले, अनुचरों सहित प्रस्थान करे। यहां का मोह अब त्याग दें, और कहीं अन्यत्र चलें।।

वृन्दावन नाम के इक वन में, हैं हरे भरे नव वन बहुत। पावन पर्वत और तृणा वहां, नव लता वनस्पति भी बहुत।।
पशुओं के लिये वह हरित वन, है बहुत ही हितकारी। गाय-गोपी और ग्वालों का, है सेव्य स्थान सुविधाकारी।।

यदि आप सब लोगों के, मन को बात यह भली लगे। तो उचित है यह हम आज ही, कूच वहां के लिये करें।।
अब देरी न करें इसमें, गाड़ी और छकड़ों को जोतें। एकमात्र सम्पद् अपनी, गायों को पहले वहां भेजें।।
शुकदेव बोले,
उपनन्द की यह बात सुनी, इक स्वर में सब गोपों ने कहा। उचित है यह ही उचित है, उनमें कोई मतभेद न था।।
झुण्ड के झुण्ड गायें अपनी, सबने फिर एकत्रित कीं। घर की सब सामग्री फिर, छकड़ों पर उन लाद दी।।
वृन्दावन की ओर फिर, सबने ही प्रस्थान किया। इस प्रकार उनकी यात्रा, का सुखद आरम्भ हुआ।।

वृद्ध बाल और स्त्रियों को, छकड़ों पर बिठा दिया। ग्वालों ने फिर निज कर में, धनुष बाण उठा लिया।।
अति दक्षतापूर्वक वह, उनके साथ चलने लगे। गायें और बछड़े उन्होने, सबसे आगे थे किये।।
उनके पीछे पीछे सब, व्रजवासी थे जा रहे। तुरही और सिंगी के, वाद्य थे वह बजा रहे।।
पुरोहित लोग भी संग संग, उनके थे सब जा रहे। मानो नव उत्सव ही कोई, मिलकर सब थे मना रहे।।

गोपियों ने नव केसर का, लेप किया वक्ष:स्थल पर। स्वर्णहार धारण किये, अति सुन्दर थे उनके वस्त्र।।
रथों पर सवार हुईं, वह भी आनन्द मना थीं रहीं। श्री कृष्ण की लीला के, गीत थीं गातीं जा रहीं।।

रोहिणी और यशोदा ने भी, वैसा ही श्रृंगार किया। प्रिय सुत राम और श्याम को, उन्होने अपने संग लिया।।
छकड़ों पर सवार हुईं, तुतलाती भाषा सुन थीं रहीं। नहीं तृप्ति उनकी थी होती, निज शिशुओं की बात सुनी।।

६) कृष्ण का वृन्दावन गमन

१) वत्सासुर का वध

अति सुन्दर वन है वृन्दावन, चाहे ऋतु कोई भी हो। वह वन तो सुख से ही, सदा सदा परिपूर्ण हो।।
उसमें प्रवेश पा ग्वालों ने, अपने छकड़ों को खड़ा किया। अर्धचन्द्रकार वृत्त में, उनको वहां पे बान्ध दिया।।
गोधन के रहने के लिये, भी व्यवस्था करी उन्होने। इस विधि सब गोप ग्वाल, सुरक्षित हुए उस नव वन में।।

वृन्दावन का अति हरित वन, उसपर मनोहर गोवर्धन। फिर श्री यमुना जी के वहां, अति सुन्दर मनोहारी पुलिन।।
यह सब देख श्री कृष्ण और, बलराम के मन में प्रीति उठी। वृन्दावन के प्रति वहां, नव अनुराग ही जाग उठी।।

राम श्याम दोनों ही अपनी, तुतलाती सी भाषा में। और बालोचित अपनी, अति मधुर लीलाओं से।।
गोकुल की तरह वृन्दावन में, भी आनन्द फैलाने लगे। कुछ ही दिनों में बड़े होकर, फिर बछडे भी चराने लगे।।

दूजे ग्वाल बालों के संग, खेल नित्य रचाते वह। बहुत सी खेल की सामग्री, अपने घर से ले आते वह।।
गोष्ठ के पास ही खेलते, और बछड़ों को थे चराते वह। इस विधि वृन्दावन में, आनन्द थे बरसाते वह।।

कहीं तो राम श्याम की, बांसुरी की धुन गूंजती। कहीं गुलेल या ढेलवां से, ढेले या गोली बरसती थी।।
निज चरण के घुंघरू से कभी, तान नई वह छेड़ते। कभी बनावटी गाय बैल, बनकर थे वह खेलते।।

इक ओर सांड का स्वांग करी, इक दूजे से वह भिड़ जाते। कहीं मोर कोयल बन्दरादि, सब की बोली थे निकालते।।
हैं सर्वसमर्थ प्रभु राजन्, थे ऐसी वह लीला करते। साधारण बालक बनकर वही, थे सबके संग वह विचरते।।

अपने प्रेमी सखाओं संग, इक दिन दोनों भ्राता थे खड़े। यमुना के सुन्दर तट पर, थे बछड़े अपने चरा रहे।।
उनके मारने की नीयत से, इक दैत्य वहां पे आ पहुंचा। प्रभु ने देखा वह बछड़ा बन, है बछड़ों में जाय मिला।।
श्री बलराम को फिर उन्होने, आंखों से संकेत किये। और धीरे धीरे स्वयं, प्रभु वहां पर जा पहुंचे।।
ऐसे दीख रहे थे वह, मानो न उसे पहचान रहे। हृष्ट पुष्ट उस बछड़े को, देखी मुग्ध वह ज्यों हुए।।

श्री कृष्ण ने पूंछ के साथ ही, पिछले द्वौ चरणों को पकड़ा। आकाश में उसे घुमाकर के, कैथ के वृक्ष पे जा पटका।।
उसका विशाल वह दैत्य तन, बहुत से वृक्ष गिराकर के। भूमि पर फिर जाय गिरा, नीचे उन्हें दबाकर के।।

यह देखी ग्वाल बाल सब, अति विस्मित ही हो गए। वाह-वाह कर अपने प्यारे, कान्हा को सहरान लगे।।
देवों ने भी हर्षित होकर, गगन से करी पुष्प वर्षा। इस विधि हरि चरण में, करी समर्पित निज श्रद्धा।।

सब लोकों के रक्षक जो स्वयं, वही आज हैं ग्वाल बने। श्याम और बलराम बनी, वे ही हैं वत्स पाल बने।।
तड़के ही उठकर के वह, संग लेकर अपना भोजन। बछड़ों को चराते हुए, करते भ्रमण वह थे वन वन।।

२) बकासुर का वध

इक दिन सब ग्वाल बछड़ों का झुण्ड, जलाशय तट पर ले गए। जल पिलाया पहले उन्हें, फिर स्वयं भी उन्होने जल पिये।।
ग्वालों ने देखा वहां, बहुत बड़ा जीव कोई बैठा हुआ। ज्यों इन्द्र के वज्र से कट कर के, पर्वत का टुकड़ा कोई गिरा।।

भयभीत हुए वे ग्वाल सभी, वह तो बक् नामक असुर था। बगले का रूप धारण करके, वह महा असुर था वहां आया।।
अति तीक्ष्ण थी चोंच उसकी, और बहुत बलवान् वह था। झपट के देखते देखते ही, श्री कृष्ण को उसने निगल लिया।।

बलरामादि ने जब देखा, महा बक् ने कृष्ण को है निगला। तब उनकी वही गति हुई, ज्यों बिन प्राणों के सब इन्द्रियां।।
प्राणहीन इन्द्रियों जैसी निश्चेष्ठ वह हो गए। दर्शन में तो थे वहीं, पर समक्षता निज खो बैठे।।

हे राजन् श्री कृष्ण तो हैं, पिता लोक पितामह के। लीला मात्र को ही केवल, वे ग्वाल बाल हैं बने हुए।।
जब पहुंचे कृष्ण वा मुख में, उस बक् के तालु के नीचे। तब अग्नि समान वह, तालु उसका जलाने लगे।।
बिना कोई घाव किये तन पर, उस असुर ने कृष्ण को उगल दिया। क्रुध हो आहत करने को, चोंच से उनपर वार किया।।

कंस सखा बकासुर तो, अभी कृष्ण पे था झपट ही रहा। भक्त वत्सल श्री हरि ने, हाथों से चोंच को पकड़ लिया।।
ग्वाल बालों के देखते, देखते ऐसा खेल किया। कुशा समान ही उस बक् को, श्री हरि ने फिर चीर दिया।।

देवता अति प्रसन्न हुए, और फूल वह बरसाने लगे। नन्दनवन के बेला चमेली, दिव्य ही सब पुष्प वह थे।।
नगारे शंख आदि बजा, स्तोत्र वह गाने लगे। प्रभु को प्रसन्न करने के लिये, स्तुति वह सुनाने लगे।।
यह सब देख के ग्वाल बाल, आश्चर्य चकित ही हो गए। देवों के भी हैं पूज्य कृष्ण, यह देखी वह हतप्रभ हुए।।

बलरामादि ने जब देखा, श्री कृष्ण पुन: हैं लौट आये। आनन्दित वह सब हो गए, ज्यों इन्द्रियों में पुन: प्राण आये।।
अलग अलग फिर सबने ही, कृष्ण को गले लगा लिया। तत्पश्चात् अपने अपने, बछड़ों को फिर उन्होने हांका।।
सब व्रज में वापिस लौटे, और इस घटना का बखान किया। अपने अपने घर में जा, उन्होने कृष्ण गुणगान किया।।

बकासुर के वध की सुनी, आश्चर्य चकित सब हो गए। ऐसा जाना उन सबने, मृत्यु मुख से कान्हा लौटे।।
उत्सुकता प्रेम आदर सहित, श्री कृष्ण को वह देखने लागे। नयना अति आतुर दर्शन को, नहीं तृप्त थे किसी के हो रहे।।

परस्पर वे कहने लगे, हाय कैसा आश्चर्य हुआ। यह शिशु तो अनेकों बार, मृत्यु के मुख में गया।।
किन्तु जो करना चाहें बुरा, अपना ही उनका हो अनिष्ट। क्योंकि चित्त में तो बसा, उनके हैं दूजों का अनिष्ट।।

इतना सब होने पर भी, न कुछ भी असुर बिगाड़ सकें। मारने तो वे इसे आयें, किन्तु खुद ही मारे जायें।।
ज्यों अग्नि में पतंगे गिर, स्वत: भस्म हो जाते हैं। उसी विधि महा असुर भी, अपनी मृत्यु को बुलाते हैं।।
सत्य ही है ब्रह्मवेत्ता के, वचन कभी न झूठ हों। गर्गाचार्य ने जो भी कहा, अक्षरश: वह सब सत्य हो।।

नन्दादि सब गोप गण, इस विधि आपस में मिल रहे। आनन्दित होकर राम श्याम, की बातें थे किया करते।।
इस विधि उनकी बातों में, तन्मय थे वह हो जाते। संसार के जो दु:ख संकट हों, आभास भी उनका न पाते।।

३) कृष्ण का गोवत्स चारण और ग्वालबालों के साथ बाल क्रीड़ायें

श्याम और बलराम भी, कभी आंख मिचौनी खेलते। कभी खेल ही खेल में, वे पुल भी थे बान्धते।।
कभी बन्दरों की भाँति, उछल कूद वह मचाते थे। और कभी अन्य कोई, विचित्र खेल थे वह करते।।
इस भाँति के खेलों में, थे व्यस्त ही दोनों रहते। व्रज में रहकर इस विधि, बचपन थे अपना बिता रहे।।
शुकदेव बोले,
इक दिन वन में ही कलेवा, करने का मन बना लिया। सुप्रभात ही उठ वह गए, सींगी से मधुर स्वर छोड़ा।।
इस विधि अपने साथी, ग्वालों को उन्होने जगा दिया। और मनो उद्देश्य भी, उस ध्वनि राही बता दिया।।
बछड़ों को आगे करके, वह व्रजमण्डल सों चले। उनके संग उनके प्रेमी, सहस्त्रों ग्वाल बाल भी थे।।
छींके बेंत बांसुरी, थे हाथों में लिये हुए। सहस्त्रों बछड़े आगे कर, थे मुदित मनी घर से निकले।।

असंख्य वत्स थे कृष्ण के, संग अपने भी मिला दिये। स्थान स्थान पर बालोचित, क्रीड़ा करते वह चले।।
यद्यपि वे सब ग्वाल बाल, आभूषण तो थे पहरे हुए। कांच घुंघची मणि और, स्वर्ण के वह आभूषण थे।।
फिर भी वृन्दावन के लाल, पीले हरे सब फूलों से। नई कपोलों के गुच्छों, और रंग बिरंगे फूलों से।।
मोर पंख और गेरु की, रंग रंग की धातु से। उन सब ग्वाल बालकों ने, अपने तन सजा लिये।।

कोई छींका उठाता किसी का, कोई बेंत बांसुरी ले लेता। जब उन वस्तुओं के स्वामी, को चोरी का पता चलता।।
फिर लेने वाला और दूर, किसी अन्य के पास ही फेंकता। इस विधि परस्पर ही, इनका खेल चलता रहता।।
एक से दूसरे तीसरे, फिर चौथे पे वह पहुंच जाती। बहुत दूर पहुंच कर वह, वस्तु पुन: वापिस आती।।
फिर वे हंसते हुए सब कुछ, स्वामी को थे लौटा देते। इस भान्ति वे खेल का, नित्य आनन्द लिया करते।।

वन की शोभा निरखन को, जब श्याम थे आगे बढ़ जाते। मैं पकडूंगा मैं पकडूंगा, बालक यह होड़ लगा जाते।।
ऐसा शोर मचाते हुए, सब उकनी ओर ही भागते। और उन्हें छू छू कर वह, आनन्द मग्न ही हो जाते।।
बांसुरी था बजाता कोई, तो कोई सींग में फूंकता। भंवरों के साथ साथ ही, कोई बालक था गूंजता।।
बहुत से कोयल के स्वर में, थे अपना स्वर मिला रहे। कुहू कुहू करके बालक, थे अपनी ध्वनि निकाल रहे।।

आकाश में उड़ते पक्षी की, छाया से प्रतिस्पर्धा करके। अनेकों तीव्र गति से फिर, थे उसके संग ही दौड़ते।।
दूजी ओर हंसों की चाल, की नकल करते थे वो। उनके जैसी सुन्दर गति, बनाकर ही चलते थे वो।।
बगुले के निकट जा अन्य कोई, थे उस समान ही बैठते। आंख मून्द कर वे मानो, थे ध्यान का ही उपक्रम करते।।
मोरों का नाचना देख कोई, उनके समान ही नाचते। बन्दर को दुम से पकड़ कर, कोई उसको जोर से खेंचते।।
दूसरे उनके साथ साथ, पेड़ों पेड़ों पर कूदते थे। कोई नकल कर बनाते हुंह, और छलांग लगाते थे।।

बहुत से ग्वाल नदी के कोने, में छपका थे खेल रहे। उसमें फुदकते मेंढक सम, वह स्वयं भी जल में फुदकते।।
जल में प्रतिबिम्ब को देख कोई, थे उसकी हंसी उड़ा रहे। कोई प्रतिध्वनि करी शब्द की, थे भला बुरा उसे कह रहे।।
ज्ञानियों के लिये तो वह, खुद ब्रह्मानन्द की मूर्ति हैं। दास्य भावी भक्त हेतु, उसके आराध्य वह ईश्वर हैं।।
परमैश्वर्यशाली वह स्वयं, मोह में अन्धों के लिये हैं जीव। पुण्यात्मा ग्वाल बाल सभी, उनके प्रेम में रहे भीग।।

बहुत जन्म के तप और क्लेश से, इन्द्रियां वश में जिन्होंने करीं। अन्त:करण वशीभूत किये, हैं जो युग युग से योगी।।
उनके लिये भी कृष्ण चरण, की रज प्राय: अप्राप्य ही है। वही प्रभु व्रज ग्वालन संग, रहते साख बन आप ही हैं।।
उनके संग और सम्मुख ही, खेल सदा वह खेला करें। ऐसे बड़भागी ग्वाल बाल, की हम महिमा क्या कहें?

४) अघासुर वध

हे राजन् उन बालकों के मध्य, एक असुर फिर आ धमका। महा भयंकर दैत्य था वह, अघासुर उसका नाम था।।
कृष्ण और उन ग्वालों की, सुखमय क्रीड़ा न देख सका। द्वेष से उसका हृदय, उस पल ही जलने लगा।।
अति भयंकर असुर था वह, देवता भी उससें डरते। अमृत पान करके भी वह, निज रक्षा को चिन्तित रहते।।
वह नित्य बाट थे देखते, कब इसकी मृत्यु आ जाये। इस महा असुर के भय से, तब हम भी मुक्ति पा जायें।।

पूतना और बकासुर का, अनुज ही यह अघासुर था। कंस ने ही इस दुष्ट को, वृन्दावन में भेजा था।।
कृष्ण और श्रीदामा आदि, ग्वाल बाल देखे इस जब। सोचा इसने ही सहोदर, मार दिये हैं मेरे सब।।
इसलिये ग्वाल बालों के संग, आज इसका हनन करूंगा मैं। अपने भाई बहिन की, हत्या का बदला लूंगा मैं।।

जब यह सब मरकर के, तर्पण अंजलि बन जायेंगे। मेरे मृत भाई बहिन को, अर्पित यह हो जायेंगे।।
स्वत: ही सब व्रजवासी तब, मृतप्राय: हो जायेंगे। बालक जब यह मारे गये, यह जीवित रह नहीं पायेंगे।।
सन्तान ही प्राणियों की, वास्तव में होती है प्राण। प्राण चले जाने पर सब, स्वत: ही हो जायें निष्प्राण।।

ऐसा निश्चय कर उसने, अजगर का फिर रूप धरा। और ग्वाल बालों के, मार्ग में वह लेट गया।।
यह अजगर शरीर उसका, बहुत विशाल और लम्बा था। इक योजन लम्बे पर्वत, के समान था दीख रहा।।
अति अद्भुत उसका रूप था, गुफा समान मुंह बायें था। सब बालक ही निगल जाऊं, दुर्भाव भरा यह मन में था।।

नीचे का ओंठ था पृथ्वी पर, ऊपर आकाश ज्यों छू था रहा। कन्दरा के समान ही था, उसके मुख का जबड़ा बना।।
दाढ़ें पर्वत शिखिर के, ही समान थीं दीख रहीं। मुंह के अन्दर था अन्धकार, जिव्हा थी सड़क सी दीख रही।।
सांस थी आन्धी के समान, आंखें दावानल के सम थीं। ज्यों अग्नि के दो अंगारे, क्रोध समान ही जलें कहीं।।

अघासुर का यह रूप देख, अति हर्षित बालक हुए। है वृन्दावन की नव शोभा, ऐसा थे वह समझ रहे।।
कौतुकवश खेल खेल में वह, थे ऐसी कल्पना कर रहे। मानो अजगर का खुला है मुख, इक दूजे से थे कह रहे।।
कोई कहता अरे मित्रो, सामने बैठा जीव यह जो। हमें निगलने हेतु ज्यों, अजगर मुंह बाये बैठा हो।।

सूर्य किरण की ज्योति से, ज्यों बादल सब लाल हों। ऐसा है वह भास रहा, ज्यों इसका ऊपरी होंठ हो।।
इसकी ही परछाई सी, जो लाल सी धरती पर दीखे। दूजे ने कहा वह ऐसा लगे, ज्यों नीचे का वह होंठ भए।।

तीसरे ग्वाल बाल ने भी, हां में हां मिला ही दी। देखो तो सही दायें बायें, जैसे हैं गुफायें बनीं।।
अजगर के जबड़ों सें ज्यों, मानो यह होड़ हों कर रही। और ऊंची शिखर पंक्तियां हैं, जैसे इसकी दाढ़ें बनीं।।

चौथे ने कहा लम्बी चौड़ी, लाल लाल जो सड़क बनी। अजगर की महाजिह्वा ही, जेसी है वह दीख रही।।
गिरि श्रृंगों के बीचों बीच, ह जो अन्धकार बना। उसके मुख के भीतरी, भाग समान वह दीख रहा।।

कोई अन्य ग्वाल बाल बोला, देखो जंगल में आग लगी। उसके कारण ही वायु भी, अति ऊष्ण और तीक्ष्ण है हुई।।
किन्तु अजगर की सांस से, क्या उपमा है बैठ रही। मुख से इसके तीव्र गति, से वायु जो निकल रही।।
अग्नि में जले जीवों की, दुर्गन्ध सी वहां से आ रही। ज्यों अजगर के पेट में से, मृत जीवों की बास उठी।।

तब एक ग्वाल ने पुनि कहा, गर हम इसके मुख में घुसें। क्या अजगर समान ही, हम सबको निगलेगा यह?
अजी यह क्या निगलेगा हमें, गर इसने यह ढिठाई करी। इक क्षण में बकासुर सम, नष्ट हो जायेगा यह भी।।
इस प्रकार कहते हुए, बालक वह ताली बजाने लगे। कृष्ण की ओर वह देखकर, हंसते हुए सब मुख में घुसे।।

उन बालकों की परस्पर, वार्तालाप यह कृष्ण सुनी। मन ही मन मुसकाये हरि, भ्रम पूर्ण बातें उनकी सुनी।।
झूठा ही प्रतीत हो, इनको तो सच्चा सर्प भी। श्री कृष्ण तो जाने थे, उस दैत्य की सच्चाई।।
वह तो सभी प्राणियों के, हृदय में स्वयं निवास करें। उनसे तो इस जगत् की, कोई बात न छिप सके।।
तब निश्चय उन्होने किया, इन ग्वाल बालों की रक्षा करें। अजगर के मुख में जाने से, अब उनको वह बचा ही लें।।

प्रभु अभी यह सोच ही थे रहे, कि सब बछड़ों को संग ले के। उस दैत्य के भीषण मुख में, ग्वालों ने तब प्रवेश किये।।
किन्तु अघासुर ने अभी, उनको था निगला नहीं। निज भाई बहिन के हन्ता, कृष्ण की उसे प्रतीक्षा थी।।
यह भी मुख में आ जाये, तो एक साथ ही निगलूंगा। अपने भाई और बहिन का, इससे मैं बदला लूंगा।।

हैं अभय दाता हरि, जब देखे यूं उन निज सखा। मेरे हाथों यह सब निकले, मैं एकमात्र रक्षक इनका।।
ज्यों कोई तिनका उड़कर, अग्नि में ही जाय गिरे। मृत्यु रूपा जठराग्नि का, अघासुर की न ग्रास बनें।।
दैव की अद्भुत लीला पर, प्रभु भी अति विस्मित से हुए। हृदय कमल फिर श्री हरि के, करुणा से द्रवीभूत हुए।।

फिर सोचने लागे प्रभु, अब क्या मुझे करना चाहिये। किस उपाय का आश्रय ले, इस दुष्ट को मारना चाहिये?
कौन उपाय हो ऐसा, जिससे इस दुष्ट का हनन करूँ? सन्त स्वभावी निर्दोष, बालकों को भी बचा सकूं।।

कैसे सम्भव यह हो पाये, यही सोचने लगे कृष्ण। भूत भविष्य वर्तमान, हैं सबके ज्ञाता एक कृष्ण।।
उनके लिये तो कोई भी, उपाय कठिन कभी न था। निज कर्त्तव्य का निश्चय कर, उन्होंने मुख में प्रवेश किया।।

बादलों में छिपकर यह दृश्य, जो देवतागण थे देख रहे। भयभीत होकर वह सब, हाहाकार करने लगे।।
अघासुर के हितैषियों के, मन में था अति हर्ष भरा। प्रभु का प्रभाव न जाने थे, निज मित्र विजय इसे समझ लिया।।

बछड़ों और ग्वालों सहित, श्री कृष्ण को अपने मुख में पा। अपनी दाढ़ों से चबा चबा, उन्हें चूर्ण वह करना चाहता था।।
अविनाशी कृष्ण ने देवों का, जब करूण हाहाकार सुना। तो उस असुर के कण्ठ में ही, अपना रूप विराट् किया।।

तत्पश्चात् भगवान ने, निज तन को किया इतना बड़ा। आंखे उलट गईं उसकी, और कण्ठ अवरुद्ध हुआ।।
अति व्याकुल वह हो गया, और वह छटपटाने लगा। सांसों का भी रुक रुक कर, उसमें आना जाना हुआ।।
अन्त में ब्रह्म रन्ध्र राही, प्राण उसके निकल गये। उसी मार्ग से प्राणों संग, इन्द्रियों ने भी प्रस्थान किये।।
तत्क्षण ही प्रभु मुकुन्द ने अपनी अमृतमयी दृष्टि से। मृत ग्वाल बाल और बछड़े, सब पुनर्जीवित किये।।
उन सबको ही संग लिये, उसके मुख से बाहर आये प्रभु। अघासुर का बध करके यूं, इस विध भूवि भार घटाया प्रभु।।

अजगर के स्थूल तन से फिर, अद्भुत महान् ज्योति निकली। उस ज्योति के प्रकाश से, थीं दसों दिशायें चमक उठीं।।
आकाश में स्थित रह थोड़ी देर, उस ज्योति ने प्रतीक्षा की। श्री हरि के बाहर आते ही, वह जाकर उनमें समा गई।।

देवों ने भी इस दृश्य को, अपनी आंखों से देखा। उन्होंने फूल ही बरसाये, अप्सरागण ने नृत्य किया।।
गन्धर्वों ने गाये गीत, विद्याधर वाद्य बजाने लगे। स्वस्ति पठन किया ब्राह्मणों ने, जयकार पार्षदों ने किये।।
अघासुर मार के कृष्ण ने, था इनका बहुत काम किया। इक और दैत्य के बोझ से, था धरती को मुक्त किया।।

अद्भुत स्थिति सुन्दर वाद्य, मंगल गीत जयकार की। आनन्दोत्सव की सब ध्वनि, जा पहुंची ब्रह्मलोक भी।।
जब ब्रह्मा जी ने ध्वनि सुनी, वाहन पे चढ़ी वहां पहुंचे। श्री कृष्ण की महिमा देख कर, आश्चर्यचकित वह हो गए।।
हे राजन् वृन्दावन में, अजगर का चाम जब सूख गया। बहुत दिनों तक बालकों की, क्रीड़ा के लिये वह गुफा बना।।

प्रभु ने निज ग्वाल बालों को, मृत्यु के मुख से बचाया था। अघासुर को भी मार कर, मोक्ष का पात्र बनाया थज्ञ।।
पांच वर्ष की आयु में, यह लीला करी भगवान ने। ग्वाल बालों ने उसी समय, थे दर्शन उसके किये।।
किन्तु छठे वर्ष में ही, जाकर उसका वर्णन किया। आश्चर्य चकित होकर उन्होंने, सबको था व्रज में कहा।।

अघासुर तो था मूर्तिमान्, अघ ही उसको तुम जानो। भगवद् स्पर्श से पाप सब, धुल गए उसके मानो।।
सारूप्य मुक्ति उसे प्राप्त हुई, जो पापियों को कभी नहीं मिले। किन्तु उसकी मुक्ति में, है नहीं कोई आश्चर्य हे।।
मनुज रूप जो धर कर, बालक की सी लीला करें। हैं परम पुरुष परमात्म वह, जो सगरे जग के विधाता रहें।।

श्री कृष्ण के इक भी अंग की, भावों में गर प्रतिमा हो। ध्यान राही इक बार भी, गर हृदय में उन्हें बिठा ही लो।।
सालोक्य सामीप्य आदि गति, सब ही वह प्रदान करें। महान् भक्त भी प्रभु के, जिसे प्राप्त न कर सकें।।

हैं माया से नितान्त परे, प्रभु आत्मानन्द साक्षात् स्वयं। अघासुर के तन में तो, प्रवेश किया था उन्होने स्वयं।।
उसकी सद्गति के विषय में फिर, क्या कोई भी सन्देह रहे? कैसे न सद्गति हो उसकी, जहां प्रभु स्वयं ही प्रवेश करें?

सूत बोले,
यदुवंश शिरोमणि कृष्ण ने ही, दिया जीवन दान परीक्षित् को। निज रक्षक और सर्वस्व का, विचित्र चरित जब श्रवण कियो।।
तब श्रीशुकदेव से, उनकी लीला का प्रश्न किया। क्योंकि उस अमृत लीला ने, था उनका चित्त वशीभूत किया।।

राजा परीक्षित् बोले,
प्रभु आपने अभी अभी, अति विचित्र इक बात कही। जो लीला पांचवें वर्ष हुई, व्रज में जाकर छटे वर्ष कहीं।।
अब कृपा करके द्विजवर, आप हमें बतलाइये। एक समय की लीला कैसे, वर्तमान दूजे में रहे?

आश्चर्ययुक्त रहस्य यह, जानने को अति उत्सुक हूं। कृपा करी अब कहें आप, हे गुरुवर मैं बिनती करूं।।
निश्चित ही प्रभु की माया, का अंश कोई इसमें होगा। क्योंकि अन्य किसी विधि तो, ऐसा हो ही नहीं सकता।।

हे द्विजवर ब्राह्मण सेवा, तो है क्षत्रियोचित ध। हूं क्षत्रिय नाम मात्र का मैं, हुए विपरीत ही मेरे कर्म।।
यह तो है मम अहोभाग्य, आपके मुख से जो निकला। मधुमय कृष्ण लीलामृत का, हूं नित्य पान मैं कर रहा।।

सूत बोले,
हे प्रेमी भक्त श्री शौनक जी, जब राजा ने यह प्रश्न किया। श्रीशुकदेव ने स्मरण करी, श्री हरि की दिव्य लीला।।
इन्द्रियां और अन्त:करण, मानो उनके विवश हुए। और कृष्ण लीला में वह, बरबस नित्य ही खिंचे गए।।
शनै: शनै: श्रम कष्ट से, बाह्य ज्ञान जब उन्हें हुआ। परीक्षित् से प्रभु लीला का, प्रसंग पुन: आरम्भ किया।।

५) ब्रह्मा द्वारा बछड़ों और ग्वालोंका अपहरण और ब्रह्माका मोह भंग

शुकदेव बोले,
अति भाग्यवान् हो तुम राजन्, हो श्रेष्ठ प्रेमी भक्तों में तुम। तभी तो ऐसे उत्तम प्रश्न, कर रहे हो मुझसे तुम।।
यूं तो प्रभु की लीला कथाएं, नित्य श्रवण तुम करते हो। फिर भी नित प्रश्न कर के तुम, उन्हें सुन्दर सरस बनाते हो।।

प्रेमी भक्तों को वाणी और, यह कर्ण हृदय जो भी है मिला। हरि लीला का गायन श्रवण, चिन्तन इक प्रयोजन इनका।।
भक्तों को सहज स्वभाव है, हर क्षण उस रस का पान करें। अपूर्व सरस लीलाओं का, नित्य नव अनुभव वह लें।।
ज्यों लम्पट नर स्त्री चर्चा, में नित नव रस पान करे। प्रेमी रसिक प्रभु चर्चा का, सुधा सम नित्य ही पान करे।।

हे राजन् एकाग्र चिति हो, अब तुम यह लीला सुनो। अति गोप्य रहस्यमयी, इस कथा का मुझसे श्रवण करो।।
अपने प्रेमी शिष्य से, नहीं आचार्य छिपाये कुछ। वह तो कृपा करी कहें उसे, अति गुप्त और गुह्य रहस्य।।

यह तो मैं तुम्हें बता चुका, निज साथी गोप ग्वालों को। मृत्यु रूपा अघासुर मुख से, कृष्ण ने था बचा लियो।।
तत्पश्चात् वह उन सबको, यमुना तट पे ले आये। और उन्हें सम्बोधित कर, प्रभु फिर यूं कहने लगे।।
कृष्ण बोले,
प्रिय मित्रो यमुना का तट, है यह अति रमणीय ही। कैसी है कोमल और स्वच्छ, यहां की बालू देखो सही।।
हम लोगों को क्रीड़ा की, सभी सामग्री यहां मिले। इक ओर तो देखो रंग रंग के, कमल पुष्प हैं खिल रहे।।
उसकी सुरभि से आकर्षित हो, भंवरे गुंजार हैं कर रहे। तो दूजी ओर सुन्दर पक्षी, मधु कलरव में हैं लगे।।
उसकी प्रतिध्वनि वृक्षों की, शोभा है और बढ़ा रही। उन्हीं से है सजा हुआ, यह यमुना का पुलिन भी।।

है बहुत दिन चढ़ आया, जब तनिक विश्राम करें। यहीं पे रुक के अब मित्रों, कुछ भोजन और जलपान करें।।
भूख ने भी है सताया बहुत, इस पल यह ही उचित होगा। हरित घास भी है लगी, बछड़ों को जल मिल जायेगा।।

शुकदेव बोले,
इक स्वर से सब ग्वाल बाल, बोले ठीक है ठीक है। जो कहा कृष्ण तुमने, वह सबके लिये अति उचित ही हैं।।
पानी पिला कर बछड़ों को, हरी घास पे छोड़ दिया। और अपने अपने भोजन को, तत्पश्चात् उन्होने खोला।।
कृष्ण संग आनन्द से, भोजन सबने आरम्भ किया। इस विधि वन विहार का, सबने ही आनन्द लिया।।

श्री कृष्ण सब ग्वालों के, मध्य में ही बैठ गए। चहुं ओर हो पंक्ति बद्ध, सब ग्वाल बाल भी बैठ गए।।
मण्डलाकार पंक्तियों में, सटकर के बैठै थे सब। कमल से खिले नयन सबके, टिके थे कृष्ण के श्री मुख पर।।
वनभोजन के समय कृष्ण, संग बैठे थे जो ग्वाल बाल। शोभित थे सब हो रहे, श्री कृष्ण की है महिमा अपार।।

ज्यों कमल कर्णिका के, चहुं ओर फैली हुई। पंखुड़ियां छोटी बड़ी, सभी सुशोभित हो रहीं।।

किसी पुष्प किसी ने पत्र लिये, कोई पल्लव अंकुर फल लाये। छींके छाल पत्थरों के, पात्र कोई बना लाये।।
भिन्न रुचि दिखलाते हुए, भोजन वह करने लगे। कोई सबको था हंसा देता, कोई स्वयं ही हंसने लगे।।
इस विधि सबके भोजन, का क्रम यूं था चल रहा। उस समय श्री कृष्ण का, रूप बना निराला था।।

मुरली को तो उन्होंने, कमर में आगे खसोंटा था। सिंगी और बेंत को, था बगल में दबा लिया।।
घृत मिश्रित दही भात का, मधु ग्रास था बांये हाथ में। अचार मुरब्बे सब व्यंजन, दबे हुए थे आंगुली में।।
चहुं ओर से घेरे उन्हें, ग्वाल बाल सब बैठे थे। स्वयं बीच में बैठै वह, सबको थे हंसाते जा रहे।।
सारे ब्रह्माण्ड के यज्ञों के, जो एकमात्र उपभोक्ता स्वयं। इस विधि हैं क्रीड़ा रत वही, प्रभु गवाल बालन के संग।।
उनके साथ ही बैठकर, वह भोजन थे कर रहे। आश्चर्य चकित सब देव हुए, अद्भुत लीला यह देख के।।

इस विधि भोजन करते हुए, तन्मय हुए सब ग्वाल बाल। प्रभु की रसमयी लीला में, निज को भूले सब ग्वाल बाल।।
हरित घास वहां देखकर, बछड़े भी बहुत ललचाये। अति गहन जंगल में वह, बहुत दूर ही निकल आये।।

उस ओर जो उनका ध्यान गया, तो सब ही भयभीत हुए। भक्त भयहारी प्रभु ने, तब उनको यह वचन कहे।।
प्रिय मित्रो अभी तुम अपना, भोजन न नाहक बन्द करो। अभी वत्स मैं लेकर आता हूं, आनन्द पूर्वक तुम छको।।

यूं कहकर ग्वाल बालों से, कर में दही भात का कौर लिये। पर्वत गुफाओं कुंजों और, भीषण स्थानों की ओर चले।।
अपने साथियों के तथा, अपने बछड़े थे ढूंढ रहे। स्थान स्थान पर भटकें वह, जिनसे कभी कुछ न छिपा रहे।।

हे राजन् श्री ब्रह्मा तो, पहले से ही आकाश में थे। अघासुर मोक्ष प्रसंग देख, आश्चर्यचकित वह थे हुए।।
उन्होंने सोचा लीलाधारी, मनुज बने श्री कृष्ण की। कोई और मनोहर लीला हो, जो हो अति महिमामयी।।
ऐसा सोच के पहले तो, बछड़ों का उन्होंने हरण किया। कृष्ण वहां से जब गए, तो ग्वालों को भी चुरा लिया।।
अन्यत्र कहीं रखकर उन्हें, स्वयं वह अन्तर्धान हुए। अन्तत: तो जड़ कमल की ही, हैं जानो सन्तान वे।।

बछड़े वहां न मिलने पर, लौटे कृष्ण यमुना तीर। वहां आकर देखा उन्होंने, ग्वाल बाल भी वहां न थे।।
वन वन घूम के तब उनको, चहुं ओर ढूंढने वह लगे। किन्तु जब बछड़े और ग्वाल, कहीं भी उनको नहीं मिले।।
तुरन्त ही समझ गए भगवन, है ब्रह्मा की यह करतूत। इकमात्र ज्ञाता वही विश्व के, कैसे रहता कुछ उनसे निहित?

बछड़ों और ग्वालों की, माताओं के आनन्द हेतु। और श्री ब्रह्मा को भी, आनन्दित करने के हेतु।।
स्वयं ही ग्वाल बाल और, बछड़ों का भी रूप धरा। सर्वशक्तिमान् हैं वह, सब जग के वह कर्ता धर्ता।।

हे राजन् वह बालक और, बछड़े थे संख्या में जितने। जैसे थे उनके शरीर, हाथ पांव भी छोटे बड़े बने।।
जितनी और जैसी छड़ियां थीं, सींग बांसुरी छींके पत्र। जितने उनके आभूषण थे, और थै जैसे जैसे वस्त्र।।
उनका शील स्वभाव गुण, नाम रूप अवस्था सब। थे जिस प्रकार खाते पीते, और थे चलते फिरते सब।।
उतने ही रूपों में ठीक, उस भान्ति ही प्रकट हुए। सर्वरूप श्री कृष्ण ने, स्वयं ही रूप वह सारे धरे।।

है सारा जगत् ही विष्णु रूप, यह वेदवाणी साकार हुई। वेदों की यह वाणी तब, मूर्तिमती हो प्रकट हुई।।

सर्वात्म भगवान स्वयं, बछड़े आप ही बन गए। और स्वयं ही ग्वाल बालों, के उन्होंने सब रूप धरे।।
आत्म स्वरूप बछड़ों को फिर, निज आत्म ग्वालों से घेर कर। व्रज में उन्होंने प्रवेश किया, इक नया खेल यूं खेलकर।।

हे राजन् जिस ग्वाल के, संग जो जो भी बछड़े थे। उसी ग्वाल संग ले जाकर, अलग ही उन्होने खड़े किए।।
भिन्न बालों के रूप में वह, उनके घर में चले गए। अपने अपने बछड़े भी, उन ग्वालों के संग में थे।।

बांसुरी की तान सुनी, उनकी मातायें दौड़ी आई। उनके बालक थे स्वयं बने, परं ब्रह्म श्री कृष्ण ही।।
अपना ही बालक समझ उन्हें, बाहों में उन्होंने उठा लिया। स्नेह का आधिक्य था, हृदय से उन्हें लगा लिया।।
वात्सल्य स्नेह उनका दूध बनी, उनके स्तनों से बह निकला। सुधा सा मधुर आसव समान, मादक दुग्ध उन्हें दिया पिला।।
इसी विधि हे राजन् जब, सन्ध्या बेला प्रतिदिन होता। ग्वाल बने श्री कृष्ण का, वन से लौटना जब होता।।
बाल सुलभ लीलाओं से, आनन्दित करते माताएं। उबटन चन्दन का लेप लगा, उसको नहलाती माताएं।।
सुन्दर वस्त्र आभूषण से, उनको सजाती रहतीं वह। नजर न लग जाये कहीं, टीका भौंह बीच लगातीं वह।।
भोजन भी स्वयं करातीं वह, और लाड़ भी बहुत लड़ाती थीं। लाड़ प्यार से नित्य ही वह, उनका पोषण करती जाती थीं।।

ग्वालिनों के समान ही, गायों के हृदय वात्सल्य भरा। जंगलों में से चरकर के, जल्दी ही होता लौटना।।
हुंकार उनकी सुनकरी, बछड़े भी उनके पास आते। जीभ से उन्हें दुलारतीं, और दूध उनके बछड़े पी जाते।।
स्नेह के आधिक्य से, दूध स्तनों से बह जाता। अमृत सम वह मधुर दूध, पुष्टित था बछड़ों को करता।।

इन गाय और ग्वालिनों का, मातृत्व तो पहले जैसा था। विशुद्ध प्रेम शिशुओं के प्रति, ऐश्वर्य ज्ञान से रहित वह था।।
अपने वस्तविक पुत्रों से तो, स्नेह यह बहुत निराला था। श्री हरि ने वा पुत्रों सम, निज पुत्र भाव दिखलाया था।।
किन्तु श्री भगवान में तो, किसी भान्ति का मोह न था। मैं ही इनका पुत्र हूं, ऐसे भाव का लेश न था।।

अपने बालकों के प्रति, स्नेह लता थी वर्धित हो रही। व्रज वासियों की प्रीति, दिन दिन उनसे बढ़ती ही गई।।
पहले उनके मन में ज्यों, कृष्ण के प्रति प्रेम था। वैसा ही असीम प्रेम, अपने इन शिशुओं प्रति हुआ।।

इस विधि सर्वात्म कृष्ण बछड़े और ग्वाले बने। अपने बालक रूप से वह, वत्सों का पालन करते रहे।।
एक वर्ष तक गोष्ठ और, वन में वह क्रीड़ा करते रहे। सब ही रूप वह आप बनी, सर्वत्र विचरते ही रहे।।

इक वर्ष के पूर्ण होने में, जब पांच छ: रातें शेष बचीं। बछड़ों को चराते हुए कृष्ण, बलराम ने वन की राह पकड़ी।।
गोवर्धन की चोटी पर, गायें थीं घास तब चर रहीं। बहुत दूर से व्रज के पास, निज बछड़ों पर दृष्टि उनकी गई।।

बछड़ों को देखते ही गोओं के, आन्तर स्नेह उमड़ आया। सुध बुध वह अपनी खो बैठीं, नहीं थी गोपों की परवाह।।
जिस मार्ग से गोप न जा सकें, गायों ने वह ही पकड़ी राह। हुंकार तब की उन्होने, तीव्र गति से दौड़ लगा।।
उस समय स्तनों से उनके, दूध था बहता जा रहा। गर्दनमें भी सिकुड़ कर, मानो डील में मिली थीं जा।।
पुच्छ और सिर को उठाये वह, थीं इतने वेग से दौड़ रहीं। ऐसा आभास था हो रहा, ज्यों उनके हों चरण दो ही।।

जिन गायों के अब तलक, नव बछड़े भी थे हो चुके। वह भी दौड़ी आई मिलने, उनको गोवर्धन के नीचे।।
स्नेह वश स्वत: ही वह, दूध पिलाने लगीं उन्हें। इक इक अंग निज वत्सों का, थीं चाट रहीं बहुत प्रेम से।।

गोपों ने उन्हें रोकने की, कोशिश तो बहुत ही की। किन्तु उन सबकी प्रयत्न, निष्फल ही सारी हुई।।
कुछ तो वह लज्जित भी थे, कुछ कुपित भी हो गए। बहुत कष्ट उठा उस विकट मार्ग से, तब वे भी वहां आ पहुंचे।।
तब बछड़ों के साथ वहां, उन अपने बालकों को देखा। उन्हें देखते ही हृदय, प्रेम से उनका भर गया।।
बालकों के प्रति उनके, हृदय में प्रेम आवेग उठा। उस अनुराग में क्रोध तो मानो काफूर ही हो गया।।
अपने अपने शिशुओं को, गोद में उन्होंने उठा लिया। और प्रेम से अपने हृदय, से उन्हें लगा लिया।।
प्रेम आद्र हो फिर उनका, मस्तक सूंघने वह लगे। निज शिशुओं को वहां देख, अति आनन्दित वह हुए।।

वृद्ध गोपों ने अपने, बालकों को जब गोद लिया। उनका आलिंगन कर उन्हें, ज्यों परमानन्द ही प्राप्त हुआ।।
बहुत कष्ट से उन्हें छोड़ के वह, शनै: शनै: वहां से गए। फिर भी उनको याद कर, उनके नयनों से झरने थे बहे।।

श्री बलराम ने जब देखा, स्नेह का आधिक्य यह। व्रजवासी गोप गायों और, ग्वालिनों की हुई गति यह।।
जिन मां का दूध दिया है छोड़, अपनी उन सन्तानों पर। वर्धित होती देखी उन्होंने, प्रेम उत्कण्ठा प्रतिक्षण पर।।
न जाने थे कारण इसका, इस कारण सोच में वह पड़े। किस कारण है वर्धित हुआ, सबका विलक्षण प्रेम यह?
सर्वात्म कृष्ण में व्रजवासिन्, और मेरा भी है प्रेम जो। अति अद्भुत वैसा ही प्रेम, वत्सों और ग्वालों प्रति यह हो।।

कैसी विचित्र है माया यह, और कहां से है आई? है किसी देव या मनुज की, या फिर है यह असुरों की?
किन्तु क्या सम्भव है यह, या मेरे प्रभु की ही माया यह? नहीं समर्थ किसी अन्य में, जो मुझे भी मोहित कर सके।।

बलराम ने जब अपनी ज्ञान, दृष्टि का लिया आसरा। तब उनपे श्री प्रभु का यह, रहस्य प्रकट होने लगा।।
देखा उन्होंने सब बछड़ों और, ग्वालों के रूप में एक ही है। कृष्णमय ही सब जाने, दीखें जो रूप अनेक हैं।।

तब श्री कृष्ण पे जाकर के, श्री बलराम ने यूं कहा। हे प्रभु यह ग्वाल वत्स, न ऋषि कोई न देवता।।
भिन्न भिन्न सब रूपों का, आश्रय लेकर स्वयं आप। अकेले ही सब रूपों में, प्रकाशवान् हो रहे आप।।
कृपया संक्षेप से ही प्रभु, मेरे लिये यह रहस्य कहें। यह ग्वाल वत्स सींग रस्सी, सब रूप में आप ही जो बसें।।
अलग अलग इन रूपों में, हैं क्यों प्रकाशित आप कहें? हे प्रभु यह गुह्य रहस्य, मुझपर आप ही प्रकट करें।।
तत्पश्चात् श्री कृष्ण ने, ब्रह्मा की सब करनी कही। और श्री बलराम ने फिर, सारी बातें जान लीं।।

हे राजन् तब तक ब्रह्मा भी, ब्रह्म लोक से व्रज में लौट आये। उनके काल से एक त्रुटि, समय ही केवल थे बीते।।
उन्होंने देखा श्री कृष्ण तो, ग्वालों और बछड़ों के संग। इक वर्ष पूर्व की भाँति ही, हुए हैं क्रीड़ा में निमग्न।।

तब श्री ब्रह्मा ने सोचा, गोकुल के ग्वाल और बछड़े जो। वे सब तो मेरी माया की, शैय्या पर रहें हैं सो।।
अपनी माया से उनको, मैंने तो था अचेत किया। तब से लेकर अब तक तो, लौटी नहीं उनकी चेतनता।।

मेरी माया से मोहित ग्वालों, और उन बछड़ों के सिवा। उतने ही दूजे बालक और, बछड़े कहां से पहुंचे आ?
एक वर्ष पूर्व जो सब, थे भगवान से खेल रहे। आज पुन: फिर से सब ही, श्री कृष्ण के संग हैं विचर रहे।।

ब्रह्मा जी ने दोनों ही, स्थानों पर दोनों को देखा। रहस्य जानना थे चाहते, निज ज्ञान दृष्टि से ध्यान किया।।
किन्तु कौन हैं पहले ग्वाल, और वत्स इन सबमें से। कौन हैं पीछे बनाये गए, कौन सच्चे हैं और कौन झूठे ?
बहुत जोर लगाकर भी, वह यह बात न जान सके। सत्य और असत्य का, भेद नहीं पहचान सके।।

श्री कृष्ण की माया तो, है मोहिनी सबके लिये। किन्तु कोई भी माया मोह, प्रभु का स्पर्श न कर सके।।
श्री ब्रह्मा उन हरि को ही, माया से मोहित करने चले। मोहित करना तो दूर रहा, वह मोहित आप ही हो गए।।

अजन्मा होकर भी ब्रह्मा, अपनी माया से ठगे गए। श्री हरि के प्रभाव से, क्योंकि वह तो अनभिज्ञ थे।।
ज्यों रात्रि के अन्ध तिमिर में, कुहरा कहीं न दीख सके। या दिन के प्रकाश में, जुगनू की ज्योति न दीखे।।
वैसे ही जब कोई क्षुद्र जीव, निज माया का प्रयोग करे। प्रभु का कुछ न बिगाड़ सके, अपना प्रभाव ही वह खो दे।।

ब्रह्मा जी आन्तर में अभी, यह विचार कर ही थे रहे। तत्क्षण सभी ग्वाल और वत्स, कृष्णमय उन्हें दीख पड़े।।
सजल जलधर के समान, श्यामल वर्ण बना सबका। उस तन पे थी लहरा रही, रेशमी पीताम्बर की छटा।।
चतुर्भुजा में शंख चक्र, और गदा पद्म वह धारे थे। सिर पे किरीट कुण्डल, और कण्ठ में हार थे लहराये।।

वक्ष:स्थल पर स्वर्ण का, श्री चिह्न था शोभित हुआ। भुजा में बाजूबन्द सजे, कलाई में कंगना जड़ाऊ था।।
चरणों में नूपुर और, कंकण थे सुहा रहे। कमर में करधनी और अंगूठी, अंगुलियों में चमका करें।।
नख से शिख तब सब अंगों में, थी तुलसी की कोमल माला। उनके अति प्रिय भक्तों ने, था जिसे पहरा दिया।।

मुसकान थी उज्ज्वल चान्दनी सम, और मधुर रत्नारे नयन। कटाक्ष पूर्ण उसपर चंचल, नेत्रों की सोहे चितवन्।।
ज्यों दोनों ही स्वीकार करें, भक्तों के मानो रजो तमोगुण। शुद्ध लालसा उनके हृदय की, करते प्रभु स्वयं पूर्ण।।

ब्रह्मा जी ने यह भी देखा, उन समान ही ब्रह्मा अन्य। चराचर जगत् में उनसे ले, जो भी है तृण पर्यन्त।।
मूर्तिमान् होकर वे सभी, गायन से और नृत्य से। आराधना सब रूपों की करें, विविध भान्ति सामग्री ले।।
अणिमा महिमा आदि सिद्धि, माया विद्या यह विभूति सब। प्रभु को चहुं ओर से घेरे हैं, महत्तत्त्व आदि चौबीसों तत्त्व।।

काल जो सारी प्रकृति में, क्षोभ ही उत्पन्न कर दे। कारण परिणाम का है स्वभाव, संस्कार जो जागृत वासना करे।।
कामना कर्म विषय और फल, सब ही मूर्तिमान हुए। हर रूप की भगवान के, वह हैं उपासना कर रहे।।
उन सबकी सत्ता और महत्ता, प्रभु के सामने क्षीण हुई। ज्यों अपनी अस्तित्त्व ही, सबने वहां पे हो खो दी।।

फिर ब्रह्मा ने यह भी देखा, नहीं बधित वह काल की सीमा से। भूत भविष्य और वर्तमान, द्वारा सीमित नहीं है ये।।
वह सत्य स्वरूप त्रिकाल परे, स्वयं प्रकाश हैं सबके सब। अनन्त आनन्द स्वरूप ही, हैं वह तो सबके ही सब।।
जड़ता अथवा चेतनता का, भेद भाव है वहां नहीं। हैं एक रस अखण्ड वे, नहीं स्पर्श कर सके उन्हें कोई।।
उपनिषद्दर्शी तत्त्व ज्ञानी, की दृष्टि वहां न पहुंच से। उनकी अनन्त महिमा का, गान नहीं कोई कर सके।।

इस विधि एक ही समय में, इक साथ ही ब्रह्मा ने देखा। जिनके प्रकाश से चराचर, सब जग प्रकाशित हो रहा।।
उन्हीं परब्रह्म श्री कृष्ण का, ही सारे स्वरूप हैं। उन्होंने स्वयं ही हैं धरे, विविध जो यह रूप हैं।।

आश्चर्यमय यह दृश्य देख, श्री ब्रह्मा तो विस्मित हुए। मन सह दसों इन्द्रियां क्षुब्ध हुईं, और वह अति स्तब्ध हुए।।
प्रभु तेज के प्रकाश में, निस्तेज मौन वह हो गए। व्रज के अधिष्ठातृ देव पास, थे कठपुतली वत् वह खड़े।।

हे राजन् प्रभु का स्वरूप, तो तर्क से है परे। विलक्षण है उनकी महिमा, हैं वह स्वयं प्रकाश ही रे।।
आनन्द स्वरूप वह हैं स्वयं, और माया से अतीत हैं। साक्षात् वेदान्त भी, वर्णन में रहे असमर्थ है।।
इसलिये उनसे भिन्न है जो, निषेध वह उसका करता है। आनन्द स्वरूप श्री ब्रह्म का, इस विधि संकेत वह करता है।।
सम्पूर्ण विद्याओं के हैं, अधिपति जानो ब्रह्मा। प्रभु के दिव्य स्वरूप को, तनिक भी उन्होंने न जाना।।
प्रभु के उन महिमामय, रूपों को देख वह नहीं सके। असमर्थ श्री ब्रह्मा हुए, और नयन उनके मुंद गए।।
श्री हरि ने ब्रह्मा का यह, मोह और असमर्थता जान ली। अनायास तुरन्त ही, माया आवरण उठा यह ली।।

बाह्य ज्ञान हुआ ब्रह्मा को, मानो मृत से जीवित हुए। ज्यों त्यों कष्ट से नयन खोल, सचेत फिर ब्रह्मा हुए।।
तब कहीं जाकर उन्हें, निज तन का आभास हुआ। और यह सारा जगत् भी, तत्पश्चात् ही दीख पड़ा।।

चहुं ओर देखने जब वह लगे, पहले तो दिशायें दीखीं उन्हें। तुरन्त ही अपने सामने, फिर वृन्दावन के दरस हुए।।
वृन्दावन तो सबके लिये, एक समान ही प्यारा है। जिधर देखिये उधर ही वह, नव जीवन देनेवाला है।।
फल फूलों से लगे दुए, हैं वृक्ष वहां लहलहा रहे। वृक्षों के पल्लव हरी घास, सब ही हैं शोभा बढ़ा रहे।।

वृन्दावन श्री कृष्ण की, अपनी लीलाभूमि है। तृष्णा क्रोधादि दोषों की, नहीं हो वहां प्रविष्टि है।।
स्वभाव से ही वैर भाव, जीव जो न त्याग सके। मनुज और पशु पक्षी भी, प्रेम से सब वहां संग रहें।।

वृन्दावन का दर्शन करके, ब्रह्मा जी ने फिर देखा। अद्वितीय ब्रह्म गोप वंश का, बालक बनकर विचर रहा।।
है तो एक वही जग में, फिर भी हैं उसके सखा अनेक। है अनन्त पर बालक बन, घूमे इधर उधर धर वेश।।
हैं ज्ञान सिन्धु जो स्वयं ही, खोजें ग्वालों वत्सों को आप। ज्यों दही भात का कौर लिये, ढूंढ रहे थे कृष्ण आप।।
ब्रह्मा जी ने देखा तब, हैं ढूंढ रहे उनको वह आज। अकेले हैं वह एक ही, फिर भी हैं खोज में लगे आप।।

प्रभु का दर्शन पाते ही, निज हंस से ब्रह्मा कूद पड़े। हिरण्मय अपने तन से वह, दण्डवत् पृथ्वी पे गिरे।।
चहुं किरीट के अग्र भाग से, प्रभु का किया उन्होंने चरण स्पर्श। नमस्कार वन्दन किया, अश्रुओं से किया वा अभिषेक।।

प्रभु कृष्ण की पूर्व दृष्ट, महिमा का वह स्मरण करके। बारम्बार चरणों में पड़ी, उठते और पुन: गिर पड़ते।।
इसी भाँति बहुत देर तक, वह प्रभु चरण में पड़े रहे। मन ही मन प्रभु को बार बार, वह नमस्कार थे कर रहे।।

फिर वह धीरे धीरे उठे, और नेत्रों के आँसू पोंछे। प्रेम मुक्ति के एकमात्र, उद्गम प्रभु जब उन्होंने देखे।।
तन में उनके कम्प हुआ, और चरणों में सीस झुका। अंजलि बान्धे अति विनम्र, एकाग्र भाव था चित्त भरा।।
गद्गद् वाणी से श्री ब्रह्मा, प्रभु की स्तुति करने लगे। अपने मन के भाव वह, उनके चरण धरने लगे।।
ब्रह्मा बोले,
एकमात्र स्तुति योग्य तो, हैं प्रभु बस आप ही। नमस्कार करूं भगवन्, आपके श्री चरणों में ही।।
वर्षाकालीन जलद सम, आपका श्री तन है श्यामल। दामिनी हो ज्यों चमक रही, झिलमिल करता है पीताम्बर।।

गले में गुंजा की माला, कानों में मकराकृति कुण्डल। सीस पे सोहे मोर मुकुट, रही अनोखी कान्ति छिटक।।
वक्ष:स्थल पर है लटक रही, शोभायमान वन माल प्रभु। नन्हीं सी वाम हथेली पर, रखा दही भात का कौर प्रभु।।
हैं बगल में बेंत और सींग लिये, कमर में बांसुरिया लटकी। इस अनुपम छवि पे आपकी, हे प्रभु मेरी दृष्टि अटकी।।
कमल से कोमल चरण यह, गोपाल बाल का सुन्दर वेश। न्यौछावर हूं प्रभु मैं इसपे, नहीं जानूं अन्य कुछ भी विशेष।।

यह श्यामल विग्रह आपका, है भक्तों का इष्ट प्रभु। है स्वयं प्रकाश परमात्मन्, सब इच्छा पूर्ति कर हैं प्रभु।।
आपकी चिन्मय इच्छा का, है मूर्तिमान् स्वरूप यह। आपकी मुझपर हुई कृपा, है साक्षात् प्रसाद यह।।
प्रकट किया इसे आपने, मुझपर अनुग्रह करने के लिये। हे प्रभु यह तो आपका, है शुद्ध सत्वमय रूप हे।।

नहीं पंचभौतिक है यह, प्रकृति परे शुद्ध सत्वमय। समाधि राही मैं या अन्य, कोई न इसको जान सके।।
यह सच्चिदानन्द रूपा विग्रह, कोई भी न पहचान सके। फिर आत्मानन्द स्वरूप आपकी, महिमा को क्या जान सके?

जो जन कभी ज्ञान हेतु, प्रयत्न भी कोई नहीं करें। अपने स्थान पे ही रहकर, केवल सत्संग का श्रवण करें।।
प्रेमी भक्तों के संग से, जो कथा आपकी स्वत: मिले। तन मन वाणी एकाग्र करी, विनय भाव से ग्रहण करें।।
इस लीलामृत को ही, अपना जीवन जो बना लेवें। उसके रसपान से वंचित जो, इक पल भी न जी सकें।।
यद्यपि इस त्रिलोकी में, कोई न आपको जीत सके। सहज में ही वह आप पर, भी प्रभु विजय पा लें।।
आप भी उनके प्रेम के, अधीन ही प्रभु हो जायें। ऐसे भक्तों के हे हरि, आप भी वश में सदा रहें।।

सब भाँति के कल्याण का, है उद्गम आपकी भक्ति ही। उसको छोड़ी ज्ञान हेतु, करते हैं जो श्रम सभी।।
दु:ख ही पाते वह सदा, क्लेश ही उनके हाथ लगे। ज्यों खाली भूसी कूट के, चावल कोई न पा सके।।

हे अच्युत हे अनन्त हुए, हैं पहले भी बहुत योगी। योगादि के द्वारा भी, जब प्राप्ति आपकी नहीं हुई।।
तब वैदिक लौकिक सभी कर्म, समर्पित्त आपके चरण किये। कर्म समर्पित वह करके, और लीला कथा को सुनकर के।।
आपकी भक्ति प्राप्त हुई, उससे स्वरूप का ज्ञान हुआ। तत्पश्चात् सुगमता से, परमानन्द उन्होंने प्राप्त किया।।

निर्गुण और सगुण स्वरूपों का, ज्ञान तो दुर्लभ है प्रभु। इन्द्रियों के प्रत्याहार से, शुद्ध अन्त:करण ही जाने प्रभु।।
किसी बाह्य वस्तु का, यहां ज्ञान नहीं होना है। स्वरूप तो नित्य प्राप्त ही है, आवरण का ही भंग होना है।।
यह ब्रह्म है मैं जानूं इसे, नहीं साक्षात्कार अस हो। स्वयं प्रकाश रूप से यह, अपने में ही तो प्रकाशित हो।।

जिन समर्थ पुरुषों ने, जन्मों जन्मों तक श्रम किया। इक इक परमाणु पृथ्वी का, आकाश का हिम कण भी खोजा।।
नक्षत्र और तारागण को, भी जिन जिन ने गिन लिया। उनमें भी भला को होगा कहीं, सगुण के गुण जो गिन सका?
केवल जगत् हित के लिये, ही जन्म आपने लिया प्रभु। आपकी महिमा का ज्ञान गान, तो है अति दुष्कर प्रभु।।

जो नर जीवन का हर क्षण, कृपा का अनुभव कर पाये। प्रारब्ध बंधे सुख दु:ख जो मिलें, उन्हें निर्विकार भोगे जाये।।
प्रेमी हृदय गद्गद् वाणी, और पुलकित जिसका तन रहे। अपने आपको हे प्रभु, अर्पित जो चरण में ही करे।।
वह तो आपका परम पद, सहज में त्यों ही पा जाये। ज्यों पिता की सम्पद् को, पुत्र सहज ही प्राप्त करे।।

हैं आदि पुरुष परमात्म आप, कुटिलता तो मेरी देखो। अनेक मायावी ही मुझ सम, आपके ही तो चक्र में हों।।

फिर भी मैं आप पर ही, माया जाल फैलाने चला। ऐश्वर्य स्त्रोत प्रभु आपको, अपना ऐश्वर्य दिखाने चला।।
है मेरा अस्तित्व ही क्या, आपके सामने मैं हूँ क्या? भीषण अग्नि सम्मुख ज्यों, है चिंगारी की गिनती क्या?

रजोगुण से मेरा जन्म हुआ, स्वरूप आपका न जाना। इस कारण ही अपने को, आप से भिन्न ही मैं माना।।
आपसे होकर अलग मैं, संसार का स्वामी बन बैठा। हूं अजन्मा मैं जगत्कर्ता, इस मोह ने था अन्धा किया।।
अहैतु आपने कृपा करी, अपने अधीन मुझे जानकर। अपराध मेरे प्रभु क्षमा करें, सेवक मुझे निज मानकर।।

हे स्वामी ईश्वर मेरे, प्रकृति महत्तत्त्व और अहंकार। आकाश वायु अग्नि और जल, पृथ्वी रूपा आवरण डार।।
आवृत्त यह ब्रह्माण्ड ही, है शरीर मेरा प्रभु। आपके इक इक रोम में, असंख्य ब्रह्माण्ड हैं बसे प्रभु।।
ज्यों झरोखे से सूर्य किरण में, अनेकों रज परमाणु दिखें। त्यों ही अगणित ब्रह्माण्ड प्रभु, आपके तन में दीख पड़ें।।
कहां तो निज परिमाण से, मेरे तन यह तीन हाथ का। और प्रभु कहां आपकी, यह असीम अनन्त महिमा।।

हे परमात्मन इन वृत्तियन् से, हैं नितान्त अग्राह्य आप। हम जैसे अज्ञानियों के, प्रभु दोष करें क्षमा आप।।
मां के गर्भ अज्ञान बंधा, शिशु ज्यों पटके हाथ पांव। किन्तु माता न कुपित हो, यह उसका अपराध जान।।
आस्ति नास्ति इस भान्ति, इन शब्दों में जो कही आये। क्या है कोई भी वस्तु प्रभु, जो आपकी कोख में न आये?

प्रलयंकारी जल में जब, त्रैलोक लीन थे हो रहे। उस जल में स्थित नारायण की, नाभि से ब्रह्मा जन्मे।।
ऐसा सुना है श्रुतियों से, उसका कथन असत्य न हो सके। क्या आपका पुत्र नहीं हूं मैं, हे प्रभो आप ही अब कहें।।
सब जीवों के आश्रय हैं आप, आप ही हैं प्रभु नारायण। अधीश्वर जग और जीवों के, आप ही हैं प्रभु नारायण।।

सब लोकों के हैं साक्षी आप, इस कारण आप हैं नारायण। नर से उत्पन्न हो जल में रहें, इस कारण है नारायण।।
वास्तव में वह भी तो, इक अंशमात्र है आपका। वह अंश रूप भी सत्य नहीं, वह भी है आपकी ही माया।।

विराट् रूप प्रभु आपका, गर सच ही तब जल में था। क्यों न दीखा शत वर्ष तक, था कमल नाल से जब ढूंढा।।
जब मैंने तपस्या करी, हृदय में दर्शन कैसे हुआ? पुन: कुछ ही क्षणों में वह, अन्तर्धान क्यों हो गया?

माया के विनाशक हे हरि, दूर की बात ही कौन करे? अभी इसी अवतार में, आपने यह कौतुक किये।।
निज उदर में माता को, दृष्ट जगत् के दरस दिये। इस दर्शन ने हे प्रभु, अति विस्मित यशोमति को किये।।

यह सम्पूर्ण विश्व प्रभु, है केवल आपकी ही माया। आधार तो आप ही हैं प्रभु, यह तो बस केवल है छाया।।
आप सहित सब जगत् यह, बाहर ज्यों है भास रहा। त्यों ही आपके उदर में भी, दर्शन माता को हुआ।।
नहीं प्रभु की माया बिना, प्रतीति यह कहीं हो सकती। निश्चित ही यह सब कुछ है, आपकी छाया मात्र ही।।

उस दिन की बात तो भूलें भी, पर प्रभु आज की बात ही लें। क्या मेरे सहित सारे जग को, माया विस्तार न दिखलाये?
पहले तो आप अकेले थे, फिर सब ही रूप प्रभु आप बने। सब ग्वाल वत्स छड़ी छींके, आप स्वयं ही बन गए।।
तत्पश्चात् देखा मैंने, वे सभी रूप हैं चतुर्भुज। सब तत्त्व हैं सेवा रत उनकी, देखा मैंने मेरे सहित।।
अलग अलग उतने ही, ब्रह्माण्डों का भी रूप धरा। किन्तु अब अद्वितीय आपका, ब्रह्म रूप ही शेष रहा।।

अज्ञानवश ही जीव जो, स्वरूप आपका न जानें। वह ही प्रकृति स्थित आपको, जीव रूप में ही मानें।।
उनपर ही हे प्रभु आप, माया का पर्दा डाल दें। सृष्टिकर्ता ब्रह्मा माने, पालन कर्ता विष्णु जानें।।
और संहारक बने आपको, रुद्र रूप वह पहचानें। वास्तव में आप ही स्वयं हैं सब, यह सत्य वह न जाने।।

हैं सारे जग के स्वामी आप, सबके ही विधाता हैं। हैं तो आप अजन्मा प्रभु, पर सारे जग के रयचिता हैं।।
देव ऋषि मनुष्य पशु, पक्षी जलचर भी आप बनें। इन रूपों में अवतार लेई, दुष्टों का मद चूर करें।।

सत्पुरुषों पर अनुग्रह करें, धर्म का रक्षण आप करें। विनाश करें प्रभु दुर्जन का, और सज्जन का उत्थान करें।।
हैं अनन्त परमात्म आप, योगेश्वर है योगियों के। योगमाया विस्तार करी, अद्भुत लीला आप करें।।
त्रिलोकी में भला कौन है, जो आपकी लीला जान सके? कहां किसलिये क्या यह हो, या कब हो पहचान सके?

स्वप्न समान ही जगत् यह, है असत्य अज्ञान रूप। वास्तव में देता दु:ख यह, केवल है यह दु:ख स्वरूप।।
माया से उत्पन्न यह हो, और उसमें ही हो विलीन यह। हैं परमात्म स्वरूप आप, ज्ञान स्वरूप अनन्त हे।।
किन्तु आपकी सत्ता में, यह सत्य सा भासे है प्रभु। यह भी आपकी सत्ता का, ही तो है परिणाम प्रभु।।

आप ही हैं इकमात्र सत्य, आप ही सबके आत्मा हैं। पुराण पुरुष हैं स्वयं आप, जन्मादि विकार रहित ही हैं।।
स्वयंप्रकाश हैं आप प्रभु, सीमित आप न हो सकें। देश काल या वस्तु से, बधित आप प्रभु न होएं।।
अविनाशी और नित्य आप, अखण्ड आनन्द प्रभु आप हैं। निर्मल हैं आप अभाव रहित, पूर्ण बस इक आप हैं।।
उपाधि मुक्त हैं आप प्रभु, आप ही हैं अमृत स्वरूप। रूप रहित हैं आप प्रभु, पर आप ही धरते सारे रूप।।

आपका यह स्वरूप जो, सब जीवों का है निज स्वरूप। गुरु रूप सूर्य से जो, करे दृष्टि प्राप्त तत्त्व स्वरूप।।
निज स्वरूप में आपको, साक्षात् जो जीव करे। मिथ्या इस भवसागर को, सहज में ही वह स्वत: तरे।।

उस परमात्म को जो जीव, नहीं आत्म रूप में जानते। इस अज्ञान के कारण ही, नानत्व के भ्रम में हैं पड़ते।।
भिन्न नाम और रूप के, प्रपंच में वह जन जाय फंसें। किन्तु ज्ञान उदय से ही, यह भ्रम स्वत: ही दूर होए।।
ज्यों भ्रम कारण ही तो कहें, रज्जू में सर्प प्रतीति हो। भ्रम के निवृत्त होते ही, उस सर्प की भी निवृत्ति हो।।

संसार सम्बन्धी और इसमें, बन्धन या फिर इससे मोक्ष। दोनों ही तो अज्ञान के, ही राही हैं कल्पित दोष।।
वास्तव में अज्ञान के, ही दो भिन्न यह नाम हैं। नहीं परमात्म सत्य से, भिन्न इनका कुछ काम है।।
जैसे सूर्य में तो कभी, दिन रात का भेद न हो सके। विवेकी जाने आत्म में, त्यों बन्धन मोक्ष न हो सके।।

अहो कैसा आश्चर्य प्रभु, हैं आप तो सबके आत्म रूप। पर पराया जान के ही, सब समझें आपको निज से दूर।।
तन आदि जो अपने नहीं, उन्हें अपना माने बैठे हैं। फिर आपको बाहर अलग कहीं, जगह जगह वह ढूंढे हैं।।
है कैसा महा अज्ञान यह, प्रभु अज्ञानी जीव का। अपने आत्म रूप में, नहीं आपको वह पहचान रहा।।

हे अनन्त हैं विराजमान्, सबके अन्त:करण में आप। बिना आपके जो कुछ भी, संसार में है रहा भास।।
सन्त जन उसे त्याग करी, निज में ही आपको ढूंढ रहे। यद्यपि रज्जू में प्रभु, सर्प नहीं कभी हो सके।।

फिर भी प्रतीत उस होते हुए, सर्प को मिथ्या जाने बिना। वास्तविकता क्या है सर्प की, उसको पहचाने बिना।।
रज्जू की उस सत्यता को, कोई सत्पुरुष कैसे जान सके? नहीं सर्प सत्य यह तो रज्जू है, कैसे वह पहचान सके?

अपने भक्तों के हृदय में, स्वयं स्फुरित हों आप प्रभु। ऐसी है महिमा आपकी, ऐसा है आपका ज्ञान स्वरूप।।
अज्ञान कल्पित जगत् का, नाश स्वत: ही हो जाये। फिर जो भी जीव आपकी चरण का, तनिक सा भी अनुग्रह पाये।।
वही सच्चिदानन्दमय, महिमा आपकी जान सके। वैराग्य ज्ञान के राही कोई, अन्य जन अनुसन्धान करे।।
दीर्घकाल तक साधना, रूपा अपने प्रयत्न से। आपकी महिमा का यथार्थ, ज्ञान न प्राप्त वह कर सके।।

हे प्रभु इस जन्म में, या अन्य किसी भी जन्म में। अथवा पशु पक्षी आदि, अन्य किसी भी योनि में।।
आपके दासों में हे प्रभु, कोई एक मैं दास बनूं। चरण कमल की आपके, सेवा सदा करता रहूं।।

सृष्टि के आरम्भ से ही, महायज्ञ जो हो रहे। हे स्वामी आपको पूर्णतय:, वे तृप्त नहीं कभी कर सके।।
किन्तु व्रज की गायों और, यहां की भोली ग्वलिनों के। बछड़े और बालक बनकर, स्तनपान किये प्रभु आप ने।।
उस अमृत रूपा दुग्ध का, बहुत उत्साह से पान किया। वास्तव में हैं वे धन्य सभी, जीवन सफल उनका हुआ।।
अहो धन्यभाग्य हैं गोपों के, नन्दबाबा और व्रजवासिन् के। परिपूर्ण ब्रह्म आप स्वयं, सुहृदय सम्बन्ध उनके हुए।।

इन व्रजवासी ग्वालों के, सौभाग्य की है महिमा अपूर्व। मन आदि ग्यारह इन्द्रियों के, हैं स्वयं जो अधिष्ठातृ देव।।
महादेव आदि वह सब और हम, सबके भी हैं भाग्य बहुत। व्रज वासियों के मन इन्द्रियों के, प्याले भी बनाके बहुत।।
अमृत सा मधुर मादक मरकन्द, चरण कमल का पीते हैं। इक इक इन्द्रिय से पान करी, धन्य धन्य हम होते हैं।।
फिर सारी ही इन्द्रियों से, सेवन इसका जो करें। उन व्रजवासिन् के भाग्य की, महिमा कैसे हम गा सकें?

हे प्रभु व्रजभूमि के वन में, या गोकुल के किसी गांव में। किसी भी योनि में जन्म मिले, तो है बहुत सौभाग्य यह।।
क्योंकि ऐसा हो जाने पर, आपके किसी प्रेमी की रज। चरण कमल की धूलि पड़े, हम जायेंगे उससे ढक।।
आपके प्रिय व्रजवासियों का, जीवन तो आपका जीवन है। हैं सर्वस्व प्रभु आप ही, उनका इक जीवन धन हैं।।
उनके चरणों की धूलि भी, आपकी धूलि समान है। आपके चरण की धूलि तो, श्रुतियां भी खोजें महान् हैं।।

हे देवों के भी आराध्य देव, सब फलों के आप ही फल स्वरूप। व्रजवासियों की इस सेवा का, क्या फल देंगे आप प्रभु?
आपसे बढ़कर अन्य कोई, फल तो हो ही नहीं सकता। यही सोचकर चित्त मेरा, मोहित है प्रभु हो रहा।।
निज स्वरूप देकर भी उन्हें, उऋण प्रभु न हो पायें। उनके प्रेम का ऋण प्रभु, कैसे आप चुका पायें?
केवल वेष से ही बनी, थी जो साध्वी स्त्री। लेकिन हृदय से तो अति, क्रूर और कठोर वह थी।।
पूतना और उसके बन्धु, अघासुर बकासुर आदि जो। आपके स्वरूप को तो, उन्होने भी है प्राप्त कियो।।
फिर जिन्होंने अपना घर धन, स्वजन प्रिय तन पुत्र प्राण। समर्पित सभी चरण में किये, सर्वस्व आपको अपना जान।।
जिनका सब कुछ हे प्रभु, आपके लिए समर्पित है। उनको भी वही फल देकर, हो सकें आप कैसे उऋण हैं?

हे सच्चिदानन्द स्वरूप प्रभु, जब लग यह जीव न आपका हो। चोरों की तरह यह राग द्वेष, सर्वस्व ही हर लें उसका प्रभो।।
घर और सम्बन्धी तभी तक, बन्धन उसपे डाल सकें। कारावास बना करके, वह कैद में ही इसको रखें।।

मोह भी पांव की बेड़ी बन, बान्ध तभी लौ इसको सके। जब लौ जीव सर्वस्व निज, आप पे ही न वार दे।।

इस विश्व के प्रपंच से, हैं प्रभु आप सर्वथा परे। फिर भी शरणागत भक्तों को, आनन्द देने के लिये।।
इस धरती पर अवतार ले, साधारण जीव समान ही हे। निज लीला विस्तार का, विलास आप करते रहें।।

और क्या कहूं हे स्वामी मेरे, कोई शब्द नहीं जो कह पाऊं। जो महिमा आपकी जानें प्रभु, नहीं तुलना आपसे कर पाऊं।।
मेरे मन वाणी शरीर, न महिमा आपकी जान सकें। हे प्रभु इस दिशा में तो, वह सर्वथा ही असमर्थ रहें।।

हे सच्चिदानन्द स्वरूप कृष्ण, सबके साक्षी हैं स्वयं आप। समस्त जगत् के स्वामी हैं, और सर्वज्ञ भी प्रभु हैं आप।।
सम्पूर्ण यह प्रपंच प्रभु, आप में ही तो स्थित रहे। और मैं आपसे क्या कहूं, हैं आप ही सर्वस्व हे।।
अपने लोक में जाने की, अब आज्ञा मुझे दीजिये। अपराध मेरे सब क्षमा कर, स्वीकार मुझे प्रभु कीजिये।।

अपने रूप माधुर्य से, आकृष्ट करें सब मन और प्राण। यदुवंश कमल विकसित करें, हे प्रभु आप सूर्य समान।।
पृथ्वी देवता और ब्राह्मण, पशु रूप और जो है सागर। सबके अभिवृद्धि कर प्रभु, आप ही हैं यह शीतल चन्द्र।।
धूर्तों के धर्म की, रात्रि का गहन जो है तिमिर। उसे हरक प्रभु आप हैं, दोनों ही सूर्य और चन्द्र।।
पृथ्वी पर हैं जो भी राक्षस, उनके संहारक आप ही हैं। सूर्य चन्द्र सब देवों के, भी आदि देव प्रभु आप ही हैं।।
हे प्रभु मैं आपको जीवन भर, नमन ही करता रहूं सदा। महाकाल पर्यन्त ही, प्रभु यह क्रम रहे चलता सदा।।
शुकदेव बोले,
विश्व रचयिता ब्रह्मा ने, इस विधि प्रभु की स्तुति करी। हे राजन् श्री कृष्ण की उन्होने, तीन परिक्रमा फिर करीं।।
उनके चरणों में प्रणाम किया, उनकी रज निज मस्तक ली। निज गन्तव्य सत्य लोक, को फिर उन्होंने प्रस्थान करी।।

बछड़ों और ग्वालों को उन, यथा स्थान पहुंचा दिया। श्री कृष्ण ने भी इस विधि, ब्रह्मा जी को विदा किया।।
बछड़ों को लेकर पुनि, यमुना तीरे प्रभु आये। जहां सखि निज ग्वाल बाल, को पहले ही थे छोड़ गए।।

हे राजन् निज जीवन सर्वस्व, प्राणवल्लभ के वियोग में। यद्यपि था बीता एक वर्ष, पर आधे क्षण इक भास रहे।।
श्री हरि की विश्व मोहिनी, माया से वह मोहित थे। मोहिनी माया का ऐसा, परिणाम स्वभाविक ही भए।।

उयी माया से हैं मोहित, इस संसार के सारे जीव। शास्त्र और आचार्य की, टंकार से भी न जगें जीव।।
ऐसी है माया की शक्ति, निज आत्म भूले बैठे हैं। उसमें भ्रमित ही रहें सदा, नहीं क्या क्या करते रहते हैं?

श्री कृष्ण को देखते ही राजन्, उत्साहित थे बहुत ग्वाल हुए। स्वागत है स्वागत है कृष्ण, हो बहुत देर में तुम लौटे।।
तुमरे बिना अभी हमने, नहीं एक कौर भी है खाया। आओ जल्दी आओ अब तो, आनन्द से भोजन करो जरा।।

तब हंसकर भगवान ने, ग्वालों संग भोजन किया। अघासुर के तन का ढांचा, तब उनको दिखला दिया।।
उनको ही साथ लेकर पुन:, प्रभु वन से व्रज में लौटे। इस प्रकार श्री ब्रह्मा के, मोह भंग उन्होंने किये।।

श्री कृष्ण के सिर पे मोर का, सुन्दर किरीट था शोभ रहा। घुंघराली अलकों में थी गुंथी, महकते फूलों की माला।।
नव रंगीन धातुओं से, थी तन पे चित्रकारी बनी। राह में उच्च स्वरों से वह, कभी थे छेड़ते बांसुरी।।

कभी पत्तों में ही स्वर भरते, कभी सिंगी में वायु भरते। ऐसा लगता ज्यों वाद्योत्सव, प्रभु कोई हैं मना रहे।।
पीछे पीछे ग्वाल बाल, थे कीर्ति उनकी गा रहे। कभी स्वयं ही नाम ले, प्रभु बछड़ों को थे पुकारते।।
पुचकारते थे कभी उन्हें, कभी उनसे लाड लड़ाते वह। मार्ग में दोनों ओर खड़ी, गोपिन् से नयन मिलाते वह।।
उनकी यह छवि निहार के, मुगध हो जातीं गोपियां। इस प्रकार श्री कृष्ण ने फिर, गोष्ठ में प्रवेश किया।।

उसी दिन फिर जानो राजन्, व्रज में जाकर उन्होंने कहा। यशोदाप्रिय नन्दनन्दन ने, वन में अजगर का हनन किया।।
उस भयंकर सर्प से, इसने हमारी रक्षा करी। यह कौतुक तो कन्हैया की, थी अति विस्मय कारी।।
राजा परीक्षित् बोले,
हे द्विजवर श्री कृष्ण तो, नहीं उनके अपने पुत्र थे। फिर व्रजवासियों के मन में, क्योंकर ऐसे स्नेह भाव उठे?
अपने बालकों के प्रति भी, नहीं ऐसा प्रेम कभी उनका था। जैसा प्रेम श्री कृष्ण के, प्रति हिय में उनका उमड़ा।।
कृपा करी के आप हमें, रहस्य यह समझाइए। क्या कारण इस स्नेह का, प्रभु हमें बतलाइए।।
शुकदेव बोले,
हे राजन् रहस्य की, बात यह तुम अब जान लो। संसार में सब जीवों का, निज आत्म ही तो प्रियतम हो।।
सुत दारा धन या किसी, अन्य वस्तु से प्रेम जो हो। निज आत्म को वह प्रिय लगें, इस कारण ही वह प्रेम हो।।

यह ही कारण है जान लो, आत्म प्रति जो प्रेम हो। किसी भी प्राणी का वैसा, किसी अन्य से नहीं प्रेम हो।।
सुत धन गृह आदि भी जो, अपने सब कहलाते हैं। वह जीव से आत्म समान, प्रेम नहीं कभी पाते हैं।।

जो इस तन को ही राजन्, हैं अपना आत्म मान रहे। उनका अपने देह से, जितना अधिक है प्रेम रहे।।
उतना तो बन्धु बान्धव, सम्बन्धी जन से नहीं करें। पुत्र मित्र आदि को भी, निज तन समान वह न समझें।।

जब विवेक के द्वारा वह, सत्य यह पहचान लें। तन मैं नहीं यह मेरा है, इस तथ्य को वह जान लें।।
तब इस तन में भी आत्म, के समान वह प्रेम न हो। तन जीर्ण शीर्ण भी हो जाये, जीने की आशा प्रबल ही हो।।
है यही सिद्ध होता इससे, है आत्मा ही प्रियतम सबका। चराचर जगत् से प्रेम भी, इस कारण ही है जीव करता।।

इन्हीं प्रभु श्री कृष्ण को तुम, समझो सब आत्म का आत्म। जग कल्याण हेतु ही यह, करते हैं रूप कई धारण।।
अपनी ही योगमाया से, प्रभु रूप हैं धर लेते। देहधारियों में देहधारी बन, प्रभु स्वयं हैं विचरते।।

जो जन श्री हरि के अपने, वास्तविक स्वरूप को जाने हैं। चराचर पदार्थ जगत् के जो, सबमें वह कृष्ण पहचाने हैं।।
इनसे परे परमात्मा, ब्रह्म नारायण जो भी हैं। भगवत्स्वरूप ही हैं सब, वे सभी कृष्ण के रूप हैं।।
कृष्ण सिवा प्राकृत या, अप्राकृत है कहीं कोई नहीं। कृष्ण छोड़ किसी अन्य की, स्थिति कहीं है कोई नहीं।।

अन्तत: सब ही वस्तुएं, निज कारण में जा स्थित होएं। उस कारण के भी परम कारण, जान ले इक श्री कृष्ण रहें।।
तब भला बतलाओ तुम, किसको अब हम भिन्न कहें? कृष्ण को छोड़ के अन्य कहीं, कोई वस्तु क्या कभी हो सके?

श्री मुकुन्द के चरणों की, नौका का जिन आश्रय लिया। सज्जनों का हैं सर्वस्व वही, एकमात्र आश्रय उनका।।
भव सागर तरना उनके लिये, अति सहज हो जाता है। ज्यों बछड़े के खुर का चिह्न, सहज उलांघ कोई जाता है।।

सरल सहज हो उनके लिये, परम पद की प्राप्ति। सर्व विपदा का घर जो, नहीं रहता वह संसार कहीं।।

हे राजन् तुमने पूछा था, पांचवें वर्ष की जो लीला। ग्वाल बालों ने जाकर के, क्यों छटे वर्ष में उसे कहा?
उसका सारा रहस्य ही, है तुमको बता दिया। सविस्तार सारा वृतान्त, तुमको है सुना दिया।।

श्री कृष्ण की लीला ग्वालों संग, और अघासुर का हनन। हरित घास पर बैठ करी, वन में उनका क्रीड़ा भोजन।।
अप्राकृत बछड़ों और ग्वालों, का फिर यूं प्रकट होना। और ब्रह्मा द्वारा जो हुई, महास्तुति का श्रवण करना।।
जो भी जीव इन लीलाओं का, कथन और फिर श्रवण करे। धर्म अर्थ और काम मोक्ष, सहज प्राप्त उसे हो जायें।।

इस विधि राम और कृष्ण ने, कुमार अवस्था के अनुरूप। आंख मिचौनी सेतु बन्धन, वानर सम कीनी उछल कूद।।
ऐसी अनेकों लीला कर, व्रज में ही अवस्था वह त्यागी। जो इनका दर्शन कर पाये, हैं वह तो बहुत ही बड़भागी।।

६) धेनुकासुर का वध

शुकदेव बोले,
अब श्री राम श्याम ने, छठे वर्ष में प्रवेश किया। धेनु चराने के लिये, नन्दबाबा को उन्होने मना लिया।।
ग्वाल बाल संग गाय ले, वृन्दावन को वह जाते। नन्हें नन्हें निज चरणों से, वृन्दावन पावन कर जाते।।

हरित घास और रंग रंग के, फूलों से लदा हुआ वन था। आगे धेनु वंशीधर श्याम, पीछे रहे थे बंसी बजा।।
उनके पीछे राम उनके पीछे, ग्वाल बाल सब थे हुए। श्री कृष्ण की महिमा गाते हुए, विहार हेतु वन में गए।।

वन में कहीं तो भंवरों की, थी अति मधुर गुंजार बनी। कहीं हरिण यूथों ने वहां, चौंकड़ियां थी बहुत भरीं।।
सुन्दर पक्षी कहीं वृक्षों पर, वहां सदा थे चहकते। महात्मन् सम निर्मल और स्वच्छ, जल के वहां सरोवर थे।।

उनमें खिले कमलों की गन्ध, थी वायु में रची हुई। शीतल सुरभित वायु मानो, थी वन की सेवा कर रही।।
अति मनोहर था वह वन, देखी श्री हरि हुए प्रसन्न। उसमें विहार करने का उन्होंने, संकल्प लिया फिर अपने मन।।

फूलों फलों के भार से, विशाल वृक्ष थे झुके हुए। नूतन कपोल और डालियों से, प्रभु के ज्यों चरण पखार रहे।।
श्री हरि यह देखकर, अति आनन्दित हो गए। निज अग्रज बलराम को, हंसकर फिर यूं कहने लगे।।
कृष्ण बोले,
हे देव शिरोमणि देव सभी, यूं तो तव चरण कमल पूजें। किन्तु देखें यह वृक्ष भी, सुन्दर पुष्प और फल लिये।।
अपनी डालियों के द्वारा, हैं तेरे चरणन् में झुक रहे। मानो पूजा सामग्री सति, हों नमन् आपको कर रहे।।
है सौभाग्य यही इनका, दर्शन और श्रवण जो जन करें। उनके अज्ञान के नाश को ही, वृन्दावन धाम में यह प्रकटें।।
महापावनी धाम में यह, वृक्ष की योनि धर आये। धन्य भाग्य इन वृक्षन् के, धन्य धन्य उनका जीवन हे।।

हे आदि देव हे श्री अनन्त, यद्यपि इस पावन धाम में। निज ऐश्वर्य छिपाकर आप, हैं बालकों सी लीला में लगे।।
श्रेष्ठ भक्त मुनिजन फिर भी, निज इष्ट को पहचान लें। भंवरे बनकर वे आपके, यश का निरन्तर गान करें।।
आपके ही भजन में, हर पल हे देव वे लगे रहे। क्षणभर के लिये वह आपको, कभी छोड़ना न चाहें।।

हे भ्राता वास्तव में तो, हैं आप स्तुति के योग्य ही। आपको निज घर आया देख, हैं नाच उठे यह मयूर भी।।
आपके श्री दर्शन पाकर, हैं अति आनन्दित यह हुए। मृगनयनी गोपिकागण समान, हैं हरणियां भी यहां की हे।।
नयन की तिरछी चितवन से, प्रेम प्रकट यह कर हैं रही। निज हाव भाव से मानो यह, प्रसन्न आपको कर रहीं।।
कोयल भी कुहू कुहू कहकर, है स्वागत आपका कर रही। वनवासी होकर के भी, नहीं भाग्य की इसके उपमा कोई।।
सत्पुरुषों का स्वभाव ही, प्राय: ऐसा होता है। अतिथि को वह सर्वप्रिय, निज वस्तु अर्पित करता है।।

हरित घास के सहित आज, है यहां की भूमि धन्य हुई। आपके श्री चरण कमल, ने है उसकी स्पर्श करी।।
वृक्ष लतायें और झाड़ें, अहोभाग्य निज मान रहीं। आपकी कोमल अंगुलियों, की स्पर्श जो उनको है मिली।।
नदी पर्वत पशु पक्षी, कृतार्थ सभी हैं हो रहे। दयामय चितवन आपकी से, मुखड़े सबके खिल उठे।।
धन्य हैं व्रज की गोपियां, जिनसे आपके वक्ष का स्पर्श हुआ। जिसके लिये श्री लक्ष्मी जी, भी लालायित रहतीं सदा।।
शुकदेव बोले,
अति सुन्दर वृन्दावन के, जब श्री कृष्ण को दरस हुए। हे राजन् उसको देखकर, आनन्द से वह परिपूर्ण हुए।।
निज सखा ग्वालन् के संग, गोवर्धन की तराई में। यमुना जी के तट पर वह, अनेकों लीला करने लगे।।

इक और सब ग्वाल बाल, मिल गान करें प्रभु चरितों का। तो दूजी ओर बलराम सहित, श्री कृष्ण का अपना गान चला।।
वनमाला पहने हुए, भंवरे की मधुरतम तानों में। अपना स्वर मिला के प्रभु, हैं मधुर संगीत अलाप रहे।।

कभी राजहंसों के संग, स्वयं भी कूजने लगें प्रभु। नाचते हुए मयूरों संग, कभी ठुमुक ठुमुक के नाचें प्रभु।।
ऐसा सुन्दर वह नाच करें, उपहासास्पद बनें मोर भी। उनकी सुर ताल के आगे तो, ठहर सके न कोई भी।।

कभी अपनी वाणी प्रभु, मेघ समान गम्भीर करें। दूर गए पशुओं का फिर, नाम लेई वह पुकार लें।।
उनके कण्ठ की मधुर ध्वनि, जब गायों तक जा पहुंचे। ग्वालों की भान्ति उनके, चित्त भी वश में नहीं रहें।।

कभी चकोर चकवा कभी, क्रौंच मोर भरदूल बनें। उन पक्षिन् समान ही, प्रभु भी बोली बोला करें।।
कभी बाघ और सिंह की सी, गर्जना भी वह आप करें। भयभीत जीवों के सम, कभी स्वयं भी भय की लीला करें।।

खेलते खेलते राम जब, होकर श्रान्त कहीं बैठते। किसी ग्वाल बाल की गोदी को, अपना तकिया वह बना लेते।।
तब कृष्ण अति प्रेम से, चरण दबाते थे उनके। पंखा करके उनको कभी, उनकी श्रान्ति वह हरते थे।।

जब ग्वाल बाल गाने लगते, या मिलकर नृत्य वह थे करते। कभी ताल ठोंक इक दूजे से, कुश्ती वह थे करने लगते।।
तब राम श्याम दोनों भाई, हाथ में हाथ थे डालते। और हंसकर वाह वाह करके, उत्साह था उनका बढ़ा जाते।।

कभी कभी स्वयं भी कृष्ण, कुश्ती में थे भिड़ जाते। थक कर वह किसी वृक्ष की, सुन्दर शीतल छाया नीचे।।
किसी गवाल बाल को तकिया बना, कोमल पत्तों की शैय्या पर। श्रान्ति अपनी मिटाते थे, वन में श्री कृष्ण यूं लेट कर।।

वे ग्वाल बाल जो प्रकट हुए, ज्यों पुण्य हुए हों मूर्तिमान्। थे चरण दबाते कृष्ण के, अहोभाग्य इसे अपना मान।।
फिर निष्पाप अन्य बालक, वृक्षों के बड़े पत्ते लेकर। या फिर निज अंगोछों से ही, पंखा रहे थे उनको कर।।

किसी अन्य के हृदय में फिर, थी प्रेम की धारा उमड़ आती। श्री कृष्ण की लीला अनुरूप, मनहर गीत बन बह जाती।।
जो भी प्रिय हो कृष्ण को, वही गीत थे गाने वह लगते। परम मनस्वी कृष्ण को, वही गान सुना वह थे देते।।

निज योगमाया से प्रभु ने, स्वरूप अपना निहित किया। परम ऐश्वर्य युक्त स्वरूप, उन्होने था अपना छिपा लिया।।
ऐसी लीलायें करते वह, जो ग्वालों की सी जान पड़ें। ग्वालों के संग ग्वाल बनी, श्री कृष्ण वहां खेला करें।।
श्री लक्ष्मी भी जिनके चरण, नित्य दबाती रहें सदा। ग्रामीण बाल समान कृष्ण, रहें ग्वालन् के संग सदा।।
ऐसा होने पर भी राजन्, ऐश्वर्य प्रकट कभी हो जाता। उनकी लीला के द्वारा वह, था अपनी झलक दिखा जाता।।

राम और श्याम के मित्रों में, इक ग्वाल बाल थे श्रीदामा। इक दिन सुबल और छोटे कृष्ण , सब ग्वालों ने मिलकर कहा।।
श्री दामा के संग मिली, बहुत प्रेम पूर्वक कथन किया। श्री राम और श्याम को, ही लक्षित उन्होंने किया।।
ग्वाले बोले,
सबको सर्वदा हे प्रभु, सुख ही दें बलराम सदा। आपके बाहुबल की तो, नहीं पा सके कोई थाह।।
दुष्टों का नाश ही कर देना, हे कृष्ण है स्वभाव तेरा। यहां से थोड़ी दूर ही, बहुत भारी वन है खड़ा।।
ताड़ के बहुत पांत के, वृक्षों से है वह भरा। ताड़ के फल बहुत पक कर, गिरते रहते हैं वहां सदा।।
धेनुक नाम का दुष्ट दैत्य, उस वन में इक रहता है। नहीं फल खाने देता हमको, वह रोक लगाये बैठा है।।

हे दाऊ और श्री कृष्ण हे, है गर्दभ का उसने रूप धरा। हैं बहुत से साथी बली दैत्य, है स्वयं भी वह बल से भरा।।
हे शत्रुघाती भैया, उस दैत्य ने भक्षे असंख्य जीव। इस कारण पशु पक्षी सहित, भयभीत हुए सब उससे जीव।।
उससे सब भयभीत हुए, उस उपवन में नहीं जाते। फूलों और फलों का भी, सेवन न वहां से कर पाते।।

हैं अति सुरभित वे फल, पर हमने कभी नहीं खाये। देखो तो सही चहुं ओर ही वह, मधुर सुगन्धि फैलायें।।
तनिक सा ध्यान दें उनपे, तो स्वाद भी उनका आने लगे। मन मोहक है रस उनका, रसना भी लालायित रहे।।

उनकी सुगन्ध से हे कृष्ण, हमारा मन तो मोहित हुआ। उनको पाने के लिये, यह मन है अति विचलित हुआ।।
वह फल तो हे कृष्ण तुम, निश्चित हमें खिलाओगे। हे दाऊ यह अभिलाषा तुम, हमारी पूर्ण करवाओगे।।
यदि उचित आपको लगे सखा, तो निश्चित ही वहां चलें। उस जंगल के मीठे फल, हम भी तो जरा उनको चखें।।

शुकदेव बोले,
निज सखा ग्वालों की बात सुनी, राम श्याम दोनों हंसे। उनको प्रसन्न करने दोनों, तालवन उनके संग चले।।
उस वन में पहुंच कर दाऊ ने, भुजा से जकड़ा ताड़ वृक्ष। हाथी के शावक समान, हिलाया फिर वह विशाल वृक्ष।।
बहुत से फल उस वृक्ष के, फिर धरती पर जाय गिरे। सहज ही सारी धरती को, वृक्ष के फल ने ढांप दिये।।

गधे के रूप में दैत्य जो, उस वन में था रह रहा। फल धरती पर गिरने का, जब उसने यह शब्द सुना।।
पर्वतों के संग ही, पृथ्वी को वह कम्पाने लगा। भागता हुआ फिर उस पल, तीव्र गति से आ पहुंचा।।

था अति बलवान वह, वेग से आया दाऊ सम्मुख। पिछले दोनों चरण से, किया दाऊ पे प्रहार उसने।।
तत्पश्चात् उस दुष्ट ने, बहुत जोर से करी ध्वनि। फिर दूर हुआ उस स्थान से, मानो प्रहार उसका खत्म हुआ।।

क्रोध भरा वह गर्दभ फिर, रेंकता हुआ जब लौट आया। पीठ करी बलराम ओर, प्रहार को जब तैयार हुआ।।
क्रोध से पिछले दोनों पांव, उस गधे ने उठा लिये। दाऊ ने एको हाथ से, दोनों चरण उसके पकड़े।।
हाथ से उसे घुमाकर के, इक वृक्ष पे जा उसको पटका। घुमाते ही उसे हाथ से उसके प्राण पखेरु जाय उड़ा।।

बहुत विशाल था ऊपरी, भाग ताड़ के वृक्ष का। उसके गिरने की चोट से, वह भी धरती पर गिरा।।
उस वृक्ष के साथ ही, जो सटे खड़े थे दूजे वृक्ष। दो तीन और चार कर, तोड़े उसने अनेकों वृक्ष।।

श्री बलराम ने तो इस विध, खेल मात्र ही था खेला। किन्तु उन्होने निज हाथ से, गर्दभ को वृक्ष पे ज्यों पटका।।
उसके तन की चोट खा, ताड़ वृक्ष सब हिल गए। मानो किसी झंझावत ने, हों सब ही झझकोर दिये।।

प्रभु बलराम तो स्वयं, हैं सारे जग के ईश्वर। उन में ही है जग ओत् प्रोत, ज्यों सूत में हो समाया वस्त्र।।
फिर ऐसा करना उनके लिये, है कोई आश्चर्य नहीं। धेनुकासुर का हनन तो, कर दिया उन्होंने सहज ही।।

तब उस असुर के बन्धु सब, निज भाई की मृत्यु पर। आग बबूला हो उठे, नहीं रहा क्रोध पर उनका वश।।
सबके सब गधे वह फिर, राम श्याम पर टूट पड़े। वह सब मिली अति वेग से, उन दोनों की ओर बढ़े।।
जो जो भी उनके पास आया, उससे ही ऐसा खेल किया। पिछले पांव दोनों पकड़ी, उसे ताड़ के वृक्ष पे दे मारा।।

उस समय सारी भूमि, ताड़ के फलों से भर गई। टूटे वृक्ष और निष्प्राण, दैत्यों की वहां शव थी पड़ी।।
ज्यों आकाश को बादल ने, हो पूर्ण आवृत्त किया। उस भूमि की शोभा का, कुछ ऐसा ही था दृश्य बना।।

श्री कृष्ण और बलराम की, यह मंगलमयी लीला देखी। वाद्य बजा कर देवों ने, फिर श्री हरि की स्तुति करी।।
आकाश से वह देवगण, पुष्प फिर बरसाने लगे। इस विधि असुर वध पर, हर्ष वह मनाने लगे।।

जब धेनुकासुर मारा गया, सब ही लोग निर्भय हुए। उस ताल वन में जाकर वह, तालफल खाने लगे।।
पशु भी स्वच्छन्द हो, विचरण वहां करने लगे। उस वन की कोमल हरित दूब, पर वह फिर चरने लगे।।

तत्पश्चात् कमललोचन, श्री कृष्ण भी निज अग्रज संग। हर्षित होकर लौट पड़े, अपने धाम श्री वृन्दावन।।
उनके संगी सब ग्वाल बाल, अनुसरण था उनका कर रहे। मधुर स्वरों में दोनों का, स्तुति गान वह करते चले।।
कीर्तन श्रवण हरि गुण का, ही तो अति पावनकर है। श्री हरि का गुणगान तो, लेता सब क्लेशों को हर है।।

श्री कृष्ण की घुंघराली अलकें, थीं धूलि धूसरित हुईं। धेनुन् के चरण से उड़ उड़ कर, थी धूलि वहां पे पड़ी।।
थे जंगली फूल गुंथे बालों में, मोर मुकुट था सीस पर। थी नयनों की मधुर चितवन, और मुख पे मुसकान मधुर।।
मीठी धुन मुरली की छेड़े, श्री कृष्ण थे जा रहे। साथी ग्वाल सभी उनकी, ललित कीर्ति थे गा रहे।।
व्रज के बाहर इक साथ ही, बहुत गोपियां आईं बंशी सुन। थे कबसे प्यासे कृष्ण के, दर्शन को उनके युगल नयन।।

निज नेत्र रूप भंवरों से उन, मरकन्द रस का पान किया। प्रभु के श्रीमुख को देख, हुई शान्त उनकी विरह ज्वाला।।
हरि ने भी लाज भरी उनकी, मुसकान को फिर निहार लिया। विनय प्रेम भरी उनकी चितवन, का सत्कार स्वीकार किया।।
इस विधि वृन्दावन में, श्री हरि का प्रवेश हुआ। धेनुकासुर का वध कर, प्रभु ने सबको निर्भय किया।।

रोहिणी और यशोदा के, मन में था मातृ स्नेह भरा। वात्सल्य प्रेम से स्निग्ध उन, निज पुत्रों का स्वागत किया।।
राम और श्याम के आते उन्हें, मनभावन पकवान दिये। उनके आने की प्रतीक्षा में, थे उन्होंने जो तैय्यार किये।।
तन की सब धूलि योग्य कर, नव वस्त्र पहरा दिये। अपने दोनों लाल ही, आभूषणों से सजा दिये।।

तेल उबटन लगा कर, था माताओं ने स्नान दिया। वन गमन की श्रान्ति को, इस विध उन्होने दूर किया।।
चन्दन का फिर लेप कर, सुन्दर वस्त्र पहरा दिये। दिव्य पुष्प मालाओं से, उन अपने लाल सजा दिये।।

तत्पश्चात् दौ भाईयों ने, स्वादिष्ट भोजन पा लिया। माताओं ने प्रेम से, थाली में था जिसे दिया सजा।।
फिर मैय्या यशोदा और रोहिणी, ने उनसे अति लाड़ किया। दुलार करी निज लाड़लों को, शैय्या पर सुला दिया।।
दिन भर के थे थके हुए, जल्दी ही नींद उन्हें आ गई। मैय्या का मिला जब लाड़ प्रेम, दिन भर की थकान गई।।

७) कालिया नाग का दमन

इस विधि वृन्दावन में कृष्ण, अनेकों लीलायें करते। इक दिन सखा ग्वालन के संग, यमुना पुलिन पे वह गए।।
हे राजन् श्री दाऊ, उस दिन उनके संग न थे। जेष्ठ आषाढ़ की घाम से, गौएं ग्वाले सब पीड़ित थे।।
प्यास से सूख रहा था कण्ठ, कुछ और याद ही नहीं रहा। यमुना का विषपूर्ण जल, उन सबने फिर पी लिया।।

है भवितव्य बलवान् बहुत, थे उससे ही विवश हुए। यह जल तो है विष भरा, स्मृति ही इसकी भूल गए।।
उस जल को पीते ही सब, ग्वाल गौ निष्प्राण हुए। जल के पीते ही वे सब, यमुना तट पर गिर पड़े।।

ऐसी गति देख उनकी, महायोगेश्वर कृष्ण ने। अमृतमय निज दृष्टिपात, करके सब जीवित कर दिये।।
सर्वस्व और स्वामी उनके, एकमात्र बस कृष्ण ही थे। तन मन प्राण उन सबके, श्री कृष्ण के ही आश्रित थे।।
पुन: चेतना प्राप्त कर, सब यमुना तट पे खड़े हुए। आश्चर्य चकित से होकर वह, देखने इक दूजे को लगे।।

अन्त में यह ही निश्चय किया, विषैला जल था हमने पीया। इस कारण ही तन यह, प्राणहीन था हो गया।।
किन्तु हमारे कृष्ण ने, अनुग्रह भरी दृष्टि करके। हम सब मृतक धेनु ग्वाल, हैं पुनर्जीवित कर दिये।।
शुकदेव बोले,
भगवान कृष्ण ने जब देखा, महाविषधर कालिय नाग ने। अपने विष से यमुना के, जल हैं दूषित कर दिये।।
तब यमुना जल को राजन्, शुद्ध करने के लिये। श्री हरि ने कालिय नाग, यमुना से बाहर किया।।
परीक्षित् बोले,
अगाध जल में यमुना के, कैसे सर्प का दमन किया? हे द्विजवर अब कृपा करी, कहें आप मुझे वह कथा।।
कालिय नाग स्वभाव से, तो प्रभु जलचर जीव न था। फिर भी अनेक युगों तक, जल में वह क्यों और कैसे रहा?

श्री हरि तो अनन्त हैं, स्वच्छन्द वह लीला करें। गोपाल रूप से की हुई, उनकी लीला अमृत रूप भए।।
अति उदार उन लीलाओं, का जो नर सेवन करें। हे ब्रह्म स्वरूप महात्मन्, क्योंकर तृप्त वह हो सके?
शुकदेव बोले,
यमुना में सुनो राजन्, था कालिय नाग का एक कुण्ड। विष की गर्मी से जल उसका, खौलता रहता रात और दिन।।

जो भी पक्षी उसके ऊपर, से उड़कर कभी जाते थे। वह भी उस भीषण गर्मी से, झुलस करी गिर जाते थे।।

विषपूर्ण उस जल तरंग का, स्पर्श जब वायु करती। नन्हें जलकण निज में भरी, जब तट का स्पर्श वह थी करती।।
तो तृण पल्लव वृक्ष और, पशु पक्षी जो उसे छू जाते। उस विष के प्रभाव से, तत्काल ही वह मृत्यु पाते।।

श्री हरि का अवतार तो, होता है दुष्ट दमन हेतु। सर्प विष का प्रचण्ड वेग, जब इस विधि देखा प्रभु।।
जाना राजन् वह विष ही तो, है महाबल उस सर्प का। उसने प्रभु की विहार स्थली, यमुना को है दूषित किया।।
तब कमरबन्ध बान्ध करी, श्री कृष्ण जाई कदम्ब चढ़े। और ताल फिर ठोंक करी, विषैले जल में कूद पड़े।।

यमुना जल तो विष के कारण, था पहले से ही खौल रहा। लाल पीली भयंकर तरंग, का उछलन था वहां हो रहा।।
पुरुषोत्तम श्री कृष्ण ने, जब उसमें छलांग ली। तो वह जल अति वेग से, पुन: वहां पे उछल गई।।
कालिय दह का जल उस पल, चतुर्शत हाथ तक फैला। अचिन्त्य अनन्त श्री हरि की, इस लीला में आश्चर्य है क्या?

भगवान कृष्ण उस जल में कूद, उसे उछालने फिर लगे। बलशाली गजराज ज्यों, मतवाला हो उछाला रे।।
इस जल क्रीड़ा से यमुना जल, भुजाओं से उनकी टकराया। इस घर्षण की टंकार से, अति तुमुल वहां स्वर उठा।।
कालिय ने जब नेत्रों से, इस ध्वनि का श्रवण किया। और देखा उसके घर का, कोई तिरस्कार है कर रहा।।
नहीं अपमान यह सह वह सका, कृष्ण सम्मुख वह आ गया। मानो सारा क्रोध उसका, श्री कृष्ण पे ही अब बरसेगा।।

उसने देखा उसके सामने, है श्यामल इक कुमार खड़ा। वर्षा के जलद जलधर समान, अति सुकुमार है तन उसका।।
उसपर जो टिकें नयना, तो हटने का नहीं नाम लें। वक्ष:स्थल पे स्वर्णमयी, श्री वत्स के चिन्ह हैं बने हुए।।
पीताम्बर है धारण किये, मधुर मुसकान से मुख खिला। सुकुमार सुन्दर हैं चरण, ज्यों हो कमल की कर्णिका।।
अति आकर्षक बालक यह, हुआ तनिक भी है भयभीत नहीं। देखा विषैले जल में भी, वह तो है क्रीड़ा रत ही।।
अति क्रुध वह हो गया, और कृष्ण को उसने दंश दिया। नागपाश के बन्धन में, फिर उनको उसने जकड़ लिया।।

उसके पाश में बन्धे प्रभु, निश्चेष्ट से हो गए। यह देखी उनके सखा ग्वाल, अति व्यथित मन में हुए।।
दु:ख भय पश्चाताप से, मूर्छित हो वे धरा पे गिरे। तन मन धन स्त्री पुत्र, वा भोग कामना भी जो थे।।
वह तो कृष्ण के चरण में, पूर्णतय: समर्पित थे। उनके तो प्राणाधार बस, एकमात्र श्री कृष्ण ही थे।।

गाय बैल बछिया बछड़े, दु:ख से हुंकारें भरने लगे। श्री कृष्ण पे ही टकटकी लगा, वे सब थे निहार रहे।।
भयभीत हुए सब स्तब्ध थे, ऐसे थे वे खड़े हुए। मानो कृष्ण पे नयन टिका, वे सब ही हों रो रहे।।

इधर व्रज में पृथ्वी आकाश, और सारे शरीरों में। अति भयंकर रूप से, तीनों उत्पात ही खड़े हुए।।
यह सब मिलकर एक ही, सूचना मानो दे थे रहे। अति अशुभ किसी घटना का, संकेत हों मानो कर रहे।।

नन्दबाबा आदि गोपों ने, पहले देखे यह अपशकुन। देखा बिना बलराम के ही, गए गाएं चराने आज कृष्ण।।
भय से अति विह्वल हुए, प्रभु का प्रभाव न जाने थे। आज तो कृष्ण ही चल बसे, अपशकुनों से यह माने थे।।
दु:ख शोक और भय से वह, उस क्षण अति आतुर हो गए। श्रीकृष्ण ही उनके जीवन धन, मन प्राण सर्वस्व जो थे।।

व्रज के बालक वृद्ध नारियां, थे गौ समान वात्सल्य भरे। ऐसा भाव मन आते ही, अति दीन वह हो गए।।
प्राणाधार कन्हैया के, दर्शन की लालसा हिय धरे। घर द्वार छोड़ तत्काल सब, उनको खोजने चल दिये।।

शक्ति स्वरूप बलराम तो हैं, प्रभु का ही दूजा स्वरूप। नहीं उनसे कुछ भी छिपा, प्रभु लीला का है जो रूप।।
व्रजवासिन् को इस विधि, कातर और अति आतुर देख। मन ही मन मुसकाये वह, पर धरा उन्होंने मौन वेश।।
अनुज कृष्ण का प्रभाव, भली भाँति वह जाने थे। हैं परम पुरुष पुरुषोत्तम यह, श्री अनन्त पहचाने थे।।

व्रजवासी निज प्रिय कन्हैया, को खोजने चल दिये। नहीं अधिक कठिनाई हुई, मार्ग में चरण चिन्ह जो मिले।।
कमल अंकुश आदि से, युक्त थे प्रभु के चरण चिन्ह। उनका अनुसरण कर सब ही, जाने लगे यमुना पुलिन।।

मार्ग में गौएं और अन्य के, चरण चिन्ह थे देखते। बीच बीच में श्री हरि के, चरणों के भी थे चिन्ह मिलते।।
कमल जौ अंकुश वज्र, ध्वजा चिन्ह अति स्पष्ट थे। उन्हें देखते हुए सभी, अति तीव्र गति से चलने लगे।।

दूर से ही देखा उन्होंने, कालिय नाग के पाश बन्धे। कालिय दह में कृष्ण को, निश्चेष्ट ही पड़े हुए।।
कुण्ड के किनारे पर, सब ग्वाल बाल भी मूर्छित थे। गाएं बैल बछड़े आदि, अति आतुर हो हुंकारे थे।।
अति व्याकुल हुए यह सब देखी, और अन्त में मूर्छित हो गए। श्री कृष्ण बिना उनके जीवन, सार हीन ही थे हुए।।

गोपिकागण का हृदय तो था, श्याम प्रेम के रंग में रंगा। प्रभु के प्रेम मधुर मुसकान, सुन्दर चितवन का स्मरण बना।।
जब देखा निज प्रियतम को, नागपाश में जकड़ा हुआ। विदीर्ण हो गया उनका हृदय, प्रेमाग्न में जलने लगा।।
जीवन सर्वस्व प्राणाधार, के बिना न जीवन रह सके। उनके बिना तो तीनों लोक, ही सूने उन्हें लगने लगे।।

मैया यशोदा ने अपने, लल्ला को जब यूं देखा। थीं कालिय दह में कूद रहीं, पर गोपियों ने उनको रोका।।
हृदय थे उनके भी पीड़ित, नयनों से अश्रु झड़ी लगी। सबकी आंखें बस निर्निमेश, थीं कृष्ण के ही मुख पर टिकीं।।
जिनके तन में तनिक भी, चेतना थी बाकी रही। श्री कृष्ण की आश्चर्यमयी, लीला की कथा थीं कर रही।।
पूतना वध और अन्य प्रिय, ऐश्वर्य गाथाएं कहकर। मात यशोदा के हिय में, नव ढाढस वह देतीं भर।।
किन्तु अधिकतर तो सभी, मृतप्राय: ही थीं पड़ी हुईं। कृष्ण बिना इस जीवन से, प्रयोजन उनको कोई न थी।।

हे राजन् श्री कृष्ण तो थे, नन्दबाबा आदि सबके प्राण। कालिय दह में जाने को, वे तो थे सब ही तैय्यार।।
श्री बलराम तो कृष्ण का, प्रभाव जाने थे भली भान्ति। किसी को समझाया उन्होने, और रोके कोई बलपूर्वक भी।।
किसी के हृदय में प्रेरणा बन, स्वयं ही उन्होंने संचार किया। कालिय दह में जाने से, इस विधि सबको रोक दिया।।

यह नाग पाश में बन्ध जाना, तो प्रभु की मानुषी लीला थी। व्रजवासी स्त्री बाल सबको, जब देखा अपने लिये दु:खी।।
सचमुच ही नहीं इनके लिये, कोई अन्य आसरा मेरे सिवा। एक मुहूर्त बाद ही निकले, वह इस बन्धन से स्वत:।।

श्री कृष्ण ने तन अपना, उस पल अति विशाल किया। उनसे जो लिपटा नाग का तन, वह स्वत: छिन्न होने लगा।।
नागपाश को खोल कर, वह उनसे अलग जा खड़ा हुआ। फन ऊंचा किया क्रोध से, और फुंकारे भरने लगा।।
श्री कृष्ण पर वार की, वह घात लगाये बैठा था। इक टक ही दृष्टि अपनी, वह उनपे टिकाये बैठा था।।

नथुनों से उसके उस पल, विष की फुहार थी निकल रही। ज्यों भट्टी पर रखा खपश, आंखें थी लाल हुईं उसकी।।
मुख से भी उसके जैसे, थीं आग की लपटें निकल रहीं। दोनों होठों को चाटे थी, लपलपाती जिव्हा उसकी।
अपनी कराल आंखों से वह, था विष की ज्वाला उगल रहा। निज वाहन गरुड़ समान ही, कृष्ण थे बदलते पैंतरा।।
जैसे कालिय नाग से, इक खेल ही हों वह खेल रहे। था नाग भी पैंतरे बदल रहा, उनपर प्रहार करने के लिये।।

इस प्रकार लड़ते-लड़ते, उसका बल क्षय होने लगा। तब श्री कृष्ण ने महाफणों को, उसके तनिक दबा दिया।।
फिर स्वयं ही उछल कर, उनके ऊपर वह जाय चढ़े। कालिय नाग के मस्तक पर, अनेकों लाल रत्न थे जड़े।।
सुकुमार तले प्रभु चरणों के, वा स्पर्श से और भी लाल बने। श्री कृष्ण तो हैं प्रवर्तक ही, गायन नर्तन आदि सबके।।
नाग के फण पे चढ़ी प्रभु, फिर नृत्य वहां करने लगे। मानो नृत्य कला का वह, अपनी प्रदर्शन कर हों रहे।।
नागपत्नी बोली,
हे प्रभु अवतार यह आपका, दुष्टों के दमन कारण ही हुआ। इस कारण उचित ही है, इस पापी को दण्ड देना।।

समदृष्टि हैं आप प्रभु, नहीं शत्रु पुत्र में भेद कोई। इस कारण दण्ड भी दें जो आप, प्रायश्चित कारण ही दें सभी।।
इसमें भी हे प्रभु उसका, कल्याण निहित ही रहता है। प्रायश्चित से ही पापों का, क्षय प्रभु सम्भव होता है।।

है कृपा प्रसाद यह आपका, आपने अति अनुग्रह किया। दुष्टों को जो दण्ड मिले, करता वही पाप नाश उनका।।
नहीं इसमें सन्देह कोई, पापी है सर्प यह जन्मों का। अन्यथा इस योनि में प्रभु, कैसे इसका जन्म होता?
इसलिये प्रभु यह क्रोध भी, अति अनुग्रह आपका मानें हम। सच्चे हृदय से आपकी, इस कृपा के हैं कृतज्ञ हम।।

निश्चित ही पूर्व जन्म में कभी, यह निर्मानी भी रहा होगा। दूजों का सम्मान किया, या करी इसने तपस्या महा।।
अथवा दया कर जीवों पर, इसने कोई बड़ा है धर्म किया। तभी तो आप प्रसन्न हुए, और आपने इस पर करी कृपा।।
सब जीवों पर दया ही प्रभु, सन्तुष्ट आपको कर सके। प्रसाद आपका पाने को, है एकमात्र उपाय यह।।

इसकी किस महासाधना का, फल इसको यह प्राप्त हुआ? आपके चरण कमल के प्रभु, स्पर्श का जो अधिकार मिला।।
नहीं समझ पायें प्रभु, हम आपकी कृपा का यह रहस्य। अति दुर्लभ है अन्यथा, पाना आपकी चरण रज।।
आपकी अर्धांगिनी श्री, लक्ष्मी भी उसके लिये तरसें। सब भोगों को त्याग करी, दीर्घकालीन तपस्या करें।।

जो शरण लें चरण की धूलि में, वे भक्त आपके प्रभु अनुपम। न चाहें स्वर्ग का राज्य वे, न भूमि राज्य ही असपन्तम्।।
रसातल राज्य न चाहें वह, न ब्रह्मा पद अव्यय चाहें। अणिमा गरिमा आदि सिद्धि, की चाह भी विचलित नहीं करें।।
जन्म मरण से मुक्तिप्रद, कैवल्य मोक्ष भी न चाहें। वे तो आपके चरण में ही, हे प्रभु शान्ति पायें।।

हे स्वामी है तमोगुण से, उत्पन्न हुआ यह नाग राज। अति क्रोधी है हे भगवन, इस कारण इसका स्वभाव।।
फिर भी अति पावन चरणन् रज, प्रभु आपकी इसको प्राप्त हुई। जो दुर्लभ है दूजों के लिये, न प्राप्त कर सके हर कोई।।
संसार में भ्रमित जीव की, वैभव सम्पद् तो दूर रहे। रज कण प्राप्ति की इच्छा ही, मोक्ष तक भी दे डाले।।

हे अनन्त ऐश्वर्य निधि, प्रणाम स्वीकार करें हमारा। सबके अन्त:करण में बसें, अचिन्त्य स्वरूप है आपका।।
सब जीवों और पदार्थों के, इक आश्रय प्रभु आप हैं। सब रूपों में हैं विद्यमान्, प्रकृति परे परमात्म हैं।।

कोष हैं सारे ज्ञान का, अनुभव स्वरूप हैं आप प्रभु। अनन्त हैं महिमा आपकी, अपरिमित शक्ति आप प्रीु।।
दिव्य चिन्मय स्वरूप आप, नहीं स्पर्श कर सकें गुण कोई। हैं परं ब्रह्म साक्षात् आप, हम नमन आपको कर रहीं।।

प्रकृति के क्षोभ से उत्पन्न जो, वह काल भी हैं प्रभु आप ही हैं। काल शक्ति के आश्रय आप, साक्षी क्षण कल्प आदि के भी।।
विश्व रूप होकर भी आप, हैं उससे परे उसके द्रष्टा। निमित्त कारण भी आप हैं, स्वयं ही उपादान द्रष्टा।।

पंचभूत वा तन्मात्रा, बुद्धि प्राण मन इंद्रियां। आप ही हैं यह चित्त भी, जिसमें है सबका कोष भरा।।
तीनों गुण उनके कर्मों का, अभिमान जो उत्पन्न हो। उससे आवृत्त किया आपने, अपने साक्षात्कार को।।

देश काल और वस्तु की, सीमा से परे हैं अनन्त आप। सूक्ष्म से भी हैं अति सूक्ष्म, रहें एक रस ही सदा आप।।
सब विकारों से आवृत्त, विकार रहित सर्वज्ञ हैं। भावना के अनुकूल ही, सबको दर्शन दें आप हैं।।

अर्थ हैं सब शब्दों का आप, शब्द रूप भी आप हैं। जो इन दोनों को जोड़े, वह शक्ति भी प्रभु आप हैं।।
नमस्कार प्रभु आपको, चरणों में नमन है बारम्बार। हे प्रभु नमस्कार यह, आप ही स्वयं करें स्वीकार।।

शुद्ध सतोमय वसुदेव के, पुत्र हैं वासुदेव आप। संकर्षण और प्रद्युम्न भी, अनिरुद्ध भी हैं स्वयं आप।।
इस चतुर्व्यूह रूप में प्रभु, यादवों और भक्तों के स्वामी। हे कृष्ण है आपको नमस्कार, हम सबके भी आप स्वामी।।

अन्त:करण और वृत्तियों के, हैं प्रकाशक आप ही। अपने को आवृत्त करें, आप इनके द्वारा ही।।
आपके स्वरूप का भी, संकेत कुछ कुछ दें वही। उन गुणों और वृत्तियों के, इक मात्र हैं साक्षी आप ही।।

निज मूल प्रकृति में, नित्य विहार प्रु आप करें, गुणातीत हैं आप प्रभु, और आप ही सगरे गुण बनें।।
समस्त स्थूल सूक्ष्म जग की, सिद्धि हो प्रभु आपसे ही। मनस्वी अन्तरात्म आप, हैं हृषीकेश भी आप ही।।
मौन स्वभाव है आपका, नमस्कार है हे प्रभु। आपके श्री चरणों में, नतमस्तक हैं हम हे प्रभु।।

ज्ञाता स्थूल सूक्ष्म गति के, सबके साक्षी प्रभु आप हैं। जग प्रपंच के अधिष्ठान, विश्वरूप भी आप हैं।।
इसके निषेध की अवधि भी, स्वयं ही प्रभु आप हैं। विश्व के अध्यास और, अपवाद के साक्षी आप हैं।।
कर्तृत्व का है नितान्त अभाव, नहीं कोई कर्म प्रभु आप करें। सब काज कर्म करते हुए, प्रभु आप निष्क्रिय रहें।।

हैं त्रिविध ही योनियां, इस संसार में हे प्रभु। सतोगुण प्रधान रहें सदा शान्त, है रज का गुण अशान्ति प्रभु।।
तमोगुण प्रधान तो मूढ़ रहें, पर सब हैं आपकी लीला मूर्ति। सतोगुण प्रधान हैं अति शान्त, वे हैं आपकी प्रिय मूति।।
आपके सब लीला अवतार, उनकी रक्षा को ही होएं। साधु जन रक्षण और धर्म, संस्थापन उनका लक्ष्य होए।।

हैं शान्तात्मन् स्वामी हे आप, अपराध प्रजा के स्वयं सहें। यह मूढ़ न आपको पहाचने, हे भगवन् इसको क्षमा करें।।
कृपा करें अब आप प्रभु, यह सर्प मृतप्राय: ही हुआ। साधु पुरुष अबलाओं पर, सदा ही करते हैं दया।।

अत: हमारे प्राण स्वरूप, पति देव हमें लौटा दें। हम दासी हैं प्रभु आपकी, आज्ञा दें क्या सेवा करे ?
श्रद्धा सहित जो आपकी, आज्ञा का पालन करें। सब प्रकार के भय से ही, वे जन मुक्ति पा जायें।।

शुकदेव बोले,
प्रभु की ठोकर से राजन्, छिन्न भिन्न उसके फण थे हुए। कालिय आहत हो उससे, बेसुद्ध थे हो गए।।
प्रभु से जब बिनती करी, आर्त हो नाग पत्नियों ने। कालिय नाग को छोड़ दिया, तब दया करके प्रभु ने।।

शनै: शनै: इन्द्रिय और प्राण, सचेत उसके होने लगे। श्वास भी अति कठिनता से, उसके थे आने लगे।।
थोड़ी देर में कर जोड़ी, श्री कृष्ण सम्मुख वह आ खड़ा हुआ। अति दीनभाव से नाग वह, प्रभु को फिर कहने लगा।।
कालिया बोले,
हे नाथ हम जन्म से ही, दुष्ट और तमोगुणी हैं। न भूलें वैर बहुत दिन तक, हम तो जीव अति क्रोधी हैं।।
दुस्त्यज है अपना स्वभाव, इस कारण ही जीव बन्धे। नाना भान्ति दुराग्रह में, जीव सदा ही फंसा रहे।।

गुणों के भेद से जगत् में, नाना स्वभाव बना दिये। बल वीर्य योनि बीज, चित्त आकृति विधाता रचे।।
आपकी ही सृष्टि हैं हम, सर्पों को भी प्रभु आप रचा। अति उग्र और विषमय, प्रभु आपने है स्वभाव दिया।।
जन्म से ही अति क्रोधी हम, इस माया चक्र में फंसे रहें। अपने यत्नों से प्रभु, इसका त्याग न कर सकें।।

शुकदेव बोले,
लीलावश ही श्री हरि ने, यह मनुज तन है धरा। कालिय की यह बात सुनी, श्री हरि ने उससे कहा।।
हे सर्प अब यहां पर, तुझे न रहना चाहिये। निज जाति कुल भार्याओं सहित, शीघ्र यहां से जाइए।।
सागर में अब जाकर के, तुम निवास ही करो वहां। गायें और मनुष्य सब, करें यमुना जल उपभोग यहां।।

जो जीव नित्य तुझे दी हुई, मेरी आज्ञा का कीर्तन करे। इसके स्मरण मात्र से ही, सर्पों के भय से मुक्त रहे।।
इस कालिय दह में, क्रीड़ा हैं मैंने करी। यहां तर्पण करे जो नर, निज देवों और पितरों की।।
उपवास करी मम स्मरण और, पूजन करेगा जो भी नर। मेरी पूजा करता हुआ, सब पापों से जायेगा तर।।

मैं जानूं गरुड़ के भय से ही, था रमणक द्वीप तुमने छोड़ा। इस कारण ही इस दह में, आकर था तू बस गया।।
अब तेरे शरीर पर, मम चरण चिन्ह अंकित हुए। इस कारण अब गरुड़ भी, क्षति तेरी नहीं करेंगे।।

अति अद्भुत है कृष्ण की, एक एक लीला राजन्। उनकी आज्ञा पा नाग और, भार्याएं उसकी हुईं प्रसन्न।।
बहुत ही आदर से उन्होने, श्री हरि की फिर पूजा करी। अपना सर्वस्व ही जान उन्हें, प्रभु चरण में सब सामग्री धरी।।

दिव्य वस्त्र पुष्पमाला, बहुमूल्य आभूषण दिव्य गन्ध। उत्तम कमलों की माला, अंगों पर चन्दन का उबटन।।
जगत् के स्वामी कृष्ण का, कर पूजन किया उन्हें प्रसन्न। तत्पश्चात् बहुत प्रेम से की, परिक्रमा और उनके वन्दन।।
फिर कालिय नाग ने, श्री हरि से की अनुमति प्राप्त। रमणक द्वीप को चला गया, निज भार्यायें और कुल ले साथ।।
सागर में सर्पों के, रहने का इक स्थान है। हे राजन् तुम जान लो, रमणक उसका नाम है।।
लीला पुरुषोत्तम कृष्ण की, कृपा से शुद्ध हुआ यमुना जल। विष विहीन तो हुआ ही वह, हो गया अमृत रूप वह जल।।
राजा परीक्षित् बोले,
कालिय नाग ने हे प्रभु, क्यों रमणक द्वीप को छोड़ा था? नागों के निवास स्थान, से क्यों मुख उस मोड़ा था?

उस अकेले ने ही कहें, क्या गरुड़ का था अपराध किया? जिस कारण अपना देश उसे, इस विध छोड़ना था पड़ा?
शुकदेव बोले,
हे राजन् पूर्वकाल में सर्पों ने नियम बनाया था। निश्चित उपहार श्री गरुड़ का, इक सर्प इक मास में था।।
निर्दिष्ट वृक्ष के नीचे ही, इक सर्प था होता उनको भेंट। नियम से करते सब सर्प, निज भाग अमावस को ही भेंट।।
अपनी रक्षा के लिये, अपनाया था उन्होने यह नियम। और विधिवत् सर्प सब, करते थे इसका पालन।।

उनमें कद्रु सुत कालिय नाग, था मतवाला हो रहा। विष और बल के घमण्ड ने, था उसको मदमत्त किया।।
उसके लिये निज बलि देना, तो बहुत दूर की बात थी। उसने तो थी गरुड़ की, बहुत विधि तिरस्कार करी।।
दूसरे सर्प भी गरुड़ को, बलि जो देने जाते थे। नागराज यह कालिय तो, उनको भी थे खा जाते।।

प्रभु के प्रेमी शक्तिशाली, पार्षद गरुड़ ने जब सुना। अति क्रुध वह हो गए, और उन्होंने आक्रमण किया।।
कालिय नाग का हनन ही, उद्देश्य था प्रहार का। पूर्ण वेग से ही उन्होने, था उस पर आघात किया।।

कालिय ने जब देखा, गरुड़ आक्रमण को हैं आये। एक सौ फन अपने सिर के, उसने फिर फैला लिये।।
गरुड़ को डसने के लिये, वह फिर उनपर कूद पड़ा। उसका शस्त्र तो दांत थे, जिनसे उस गरुड़ को दंश दिया।।
अति भयंकर जिह्वायें, था अपनी लपलपा रहा। सांसें भी थीं लम्बी उसकी, और आंखें भी थीं भयावह।।

तार्क्ष्यनन्दन गरुड़ जी तो, प्रभु विष्णु के वाहन हैं। उनका वेग और पराक्रम, इस जगत् में अतुल्य है।।
जब कालिय नाग की यह, उद्दण्डता उन्होंने देखी। उनके क्रोध की भी ज्वाला, प्रज्वलित तब होने लगी।।
अपने तन से झटककर, नाग को उन्होंने फेंक दिया। स्वर्णिम वाम पंख से फिर, उन कालिय पर प्रहार किया।।

उनके पंख की चोट से, नाग वह फिर घायल हुआ। घबरा के वहां से भागा वह, इस यमुना कुण्ड में आ गया।।
यमुना के इस कुण्ड में, नहीं गरुड़ थे जा सकते। गहरा था इतना वह कुण्ड, कि अन्य कोई न पहुंच सके।।

इसी स्थान पर एक दिन, क्षुधा आतुर थे गरुड़ हुए। तपस्वी सौरभि ने रोका, पर उसकी इक वह न माने।।
निज प्रिय भोज्य मत्स्य को, उन्होने बलपूर्वक था पकड़ा। और बड़े आनन्द से, फिर उसको उन्होंने खा लिया।।

अपने स्वामी मत्स्य राज, जब देखा हैं मारे गये। अति पीड़ित सब मीन हुईं, व्याकुल दीन थे मन उने।।
उनकी दशा यह देख कर, हुए ऋषि सौरभि दयावान। उस कुण्छ के जीवों का, मानकर इसमें कल्याण।।

गरुड़ राज को फिर उन्होने, शाप यह ही दे दिया। यदि पुन: इस कुण्ड में, गरुड ने प्रवेश किया।।
और अपने भक्षण को, गर उसने मछलियों को पकड़ा। तो उसी क्षण गरुड वह, प्राणों से हाथ ही धो लेगा।।
सत्य ही हूँ मैं कह रहा, यह वचन सत्य मेरा होगा। इस कुण्ड में हर जीव, सुरक्षित गरुड़ से अब होगा।।

सौरभि ऋषि के शाप को, बस कालिय ही जाने था। उसके अतिरिक्त सर्प कोई, रहस्य न इसका जान सका।।
इस कारण गरुड़ से डर वह था वहां रहने लगा। अब निर्भय कर कृष्ण ने, रमणीक द्वीप पुन: भेज दिया।।

हे राजन् कृष्ण ने इधर, दिव्य माल वस्त्र पहने। गन्ध महामूल्यवान मणि, स्वर्णाभूषणों से वह सजे।।
श्री हरि जब कुण्ड के, बाहर आकर प्रकट हुए। उनको देख व्रजवासी सब, उठकर यूं खड़े हो गए।।

ज्यों प्राणों के आ जाने पर, इन्द्रियां सब सचेष्ट भए। सब गोपों के हृदय फिर, प्रेम से परिपूर्ण हुए।।
बड़े प्रेम से ही सभी, कान्हा को गले लगा थे रहे। अपना स्नेह उसके प्रति, सब जन थे जलता रहे।।
यशोदारानी रोहिणी जी, नन्दबाबा गोपी गोप सभी। सचेत हुए श्री कृष्ण को पा, सफल मनोरथ हुए सभी।।

श्री बलराम तो कृष्ण के, प्रभाव को पूर्व ही जाने थे। श्रीकृष्ण को निज हृदय लगा, अति मुदित वह हो गये।।
पर्वत वृक्ष गाय बैल, वत्स हुए आनन्द मग्न। गोकुल के गुरुकुल ब्राह्मण भी, गए नन्दबाबा पे पत्नियों संग।।
हे नन्द तुम्हारे पुत्र को तो, कालिय नाग ने था पकड़ा। बहुत भाग्य की बात है यह, वह उससे छूटकर आ गया।।

मृत्यु मुख से हैं छूटे कृष्ण, ब्राह्मणों को अब दान दें। ब्राह्मणों की यह बात सुनी, नन्दबाबा अति प्रसन्न हुए।।
बहुत सा सोना और गाय, ब्राह्मणों को उन्होंने दान में दीं। इस विधि कालिय दमन की, इक उत्सव भी वहां हुआ।।

सौभाग्यवती मैय्या ने भी, स्नेह प्रदर्शन अपना किया। काल के गाल से बचे कृष्ण को, हृदय से उन्होंने लगा लिया।।
आंखों से आनन्द के, अश्रु थे उनके टपक रहे। कृतज्ञ हो मानो श्री हरि के, चरण ही हों पखार रहे।।

धेनु और व्रजवासी सब, हे राजन् थे बहुत थक गए। ऊपर से भूख प्यास से भी, वे सब थे पीड़ित हुए।।
इस कारण उस रात्री को, वह व्रज में वापिस नहीं गए। यमुना के उसी तट पर, वे सब थककर सो गए।।

८) व्रजवासियों को दावानल से बचाना और कृष्ण का दावाग्नि पान

अति भीषण वह गर्मी थी, सारा वन था सूख रहा। अर्धरात्रि के समय वहां, प्रचण्ड अग्नि का वार हुआ।।
उस अग्नि ने सोये हुए, व्रजवासिन् को घेर लिया। हे राजन् वा ऊष्णता से, व्रज का हर वासी तपा।।
अग्नि की जब उन्हें आंच लगी, घबरा कर सब व्रजवासी उठे। लीला पुरुष श्री हरि की, शरण में फिर वह भागे गये।।
व्रजवासी बोले,
वे बोले प्यारे कृष्ण हे, श्यामसुन्दर महाभाग राम। है अनन्त ही बल विक्रम, हो दोनों ही अनन्त बलधाम्।।
देखो देखो यह भयावह अग्न, हमें जलाना चाहती है। बन्धु बान्धव तव स्वजन को, अग्नि यह खाना चाहती है।।

सर्व सामर्थ हो तुम दोनों, और हमारे सुहृद् हो। इस प्रलय अग्नि से तुम, अब हमें बचा ही लो।।
नहीं मृत्यु से भयभीत हम, है एक ही भय हमें। चरण कमल यह उभय प्रभु, आपके न हम छोड़ सकें।।
शुकदेव बोले,
श्री हरि तो अनन्त हैं, अनन्त शक्ति धारण करें। जब देखा श्री कृष्ण ने, हैं स्वजन अति व्याकुल हुए।।
उन जगदीश्वर ने कृपा करी, उस अग्नि का पान किया। भयावह अग्न पीकर वन की, व्रजवासिन् का त्राण किया।।
शुकदेव बोले,
हे राजन् जब ग्वाल बाल, पुन: खेल में हुए मग्न। गायें उनकी चरती हुईं, बहुत दूर तक गईं निकल।।
हरित दूब के लोभ में, गहन वन में प्रवेश किया। बकरियां गाय भैसों ने, वन वन में फिर भ्रमण किया।।
गर्मी के भीषण ताप से सब, अति व्याकुल थीं हो गईं। बेसुध सी हो हुंकार भरी, सरकण्डों के वन में घुसीं।।

राम श्याम ने जब देखा, नहीं पशु कहीं पे दीख रहे। पश्चाताप हुआ खेल पे, वे उनकी खोज में जुट गए।।
पर छान बीन करने पर भी, अपने पशु न उनको मिले। वास्तव में वे पशु ही तो, व्रजवासिन् की आजीविका थे।।

उनके न मिलने पर वह, अचेत से मानो होने लगे। धेनु के खुर दांतों से कटी, घास देखकर चलने लगे।।
पृथ्वी पे बने खुर के चिन्हों, से पता था उनका लगा रहे। अन्त में देखा पथ भूली, हैं उनके पशु डकार रहे।।
उन्हें पाकर लौटाने की, चेष्टा वह करने लगे। किन्तु अति श्रान्त वह बालक सब, पिपासा से व्याकुल थे हुए।।

उनकी दशा यह देखकर, कृष्ण ने गौ को पुकार लियो। गम्भीर स्वर था मेघ सा, इक इक गौ के नाम लियो।।
अपने नाम की ध्वनि सुनी, गौएं सब हर्षित हुईं। उसे प्रत्युत्तर में सब, निज स्वर में रम्भाने लगीं।।

श्री कृष्ण ने जब इस विधि, गइयों को थी पुकार करी। अकस्मात् उस वन पर तब, दावग्नि की प्रहार हुई।।
वन की अग्न जानो राजन्, काल ही हो वनवासिन् का। फिर प्रचण्ड वायु ने भी, मानो उसका साथ दिया।।
उसके संयोग से वह अग्नि, चहुं ओर ही फैल गई। वन के चराचर जीवों को, भस्मसात् वह करने लगी।।

गायों और ग्वालों ने देखा, यह अग्न है हमारी ओर बढ़ा। चहुं ओर से घिरे थे अग्नि से, मन था अति भयभीत हुआ।।
मृत्यु से भयीत जीव, ज्यों प्रभु की शरण में आ जाये। त्यों ही कृष्ण बलराम की, शरणापन्न हो वह पुकार उठे।।
ग्वाले बोले,
हे प्रिय कृष्ण महावीर कृष्ण, हे बलशाली दाऊ भैय्या। हम दावानल से जलने लगे, तव शरण ही है इक आसरा।।
तुम दोनों ही बचाओ हमें, नहीं अन्य आसरा कोई भी। हो जिनके बन्धु कृष्ण तुम, उनको न कष्ट छू सके कोई।।
सब धर्मों के हो ज्ञाता तुम, हमारे एको तुम रक्षक हो। है एक आसरा तुम्हारा ही, तुम ही तो हमारे स्वामी हो।।
शुकदेव बोले,
निज सखा ग्वाल बाल की, श्री कृष्ण ने जब पुकार सुनी। भयभीत न हो करो नयन बन्द, तब उनसे यह बात कही।।
प्रभु आज्ञा पाकर साधु कहा, और नयना उन्होंने बन्द किये। तब योगेश्वर कृष्ण ने, उस अग्नि का पान किये।।
इस भान्ति श्री हरि ने, निज भक्तन् का त्राण किया। दावानल के भीषण मुख से, उन सबको बचा लिया।।

तत्पश्चात् जब ग्वालों ने, नयना अपने खोल लिये। उन्होंने देखा वे सब तो पुनः, भाण्डीर वृक्ष पे जा पहुंचे।।
अपने को और गोधन को, सुरक्षित अग्न से जब पाया। दावानल से बचा देखी, विस्मय से मन भर आया।।

योगमाया का प्रभाव और, कृष्ण की योग सिद्धि यह देख। दावानल से थे बच गए, समझा है कृष्ण तो कोई देव।।
सायं बेला हे राजन्, श्री कृष्ण और बलराम ने। धेनु अपनी लौटाईं घर, बंशी बजाते पीछे चले।।
ग्वाल बाल भी तब उनकी, स्तुति थे गाते आ रहे। उनके पीछे पीछे ही, व्रज को थे वह धा रहे।।

इधर व्रज की गोपियां भी, कृष्ण बिना व्याकुल थीं हुई। कृष्ण बिना इक इक पल भी, सौ युग समान उनकी हुई।।
भगवान कृष्ण जब व्रज लौटे, अति प्रसन्न वह हो गईं। उनका दर्शन पाते ही, वह परम आनन्द में खो गईं।।

९) प्रलम्बासुर का वध

शुकदेव बोले,
स्वजन सम्बन्धियों से घिरे, आनन्द में नित्य मग्न थे। गोष्ठ में कृष्ण प्रविष्ट हुए, निज कीर्ति गान सुनते हुए।।
अपनी ही योगमाया से, राम और श्याम का वेश बना। व्रज में क्रीड़ा थे कर रहे, था ग्रीष्म ऋतु का ही बेला।।
देहधारियों के लिये, नहीं रुचिकर हो यह ऊष्णता। किन्तु वृन्दावन में तो सदा, छाई रहे बसन्त छटा।।

इसका कारण एक ही है, निवास करें वहां द्वौ भ्राता। जग के सब दु:खों से ही, यह दोनों भाई हैं त्राता।।
परम मधुर भगवान कृष्ण, संग में भैया राम रहें। इस कारण स्वभाविक ही, वसन्त ऋतु वहां बनी रहे।।

झरनों के कल कल जल में, छिपी झींगरों की झंकार। झरनों से वायु में उड़े, सदा ही जल की ठण्डी फुहार।।
इस कारण वृन्दावन के, वृक्ष सदा ही हरे रहें। उनकी हरियाली की छटा, तो बस देखते ही बने।।

जिधर देखिये हरी हरी, दूब से धरती है ढकी। नदी सरोवर झरनों के, जल की ठण्डक लिये पवन चली।।
लाल पीले और नीले, अभी अभी जो हैं खिले। और देर से खिले हुए, अनेक प्रकार के कमलों के।।

पराग मिल कर वायु में, उसे सुगन्धित कर रहे। इस सुरभित शीतल मन्द, वायु ने ग्रीष्म सन्ताप हरे।।
न दावाग्नि का ताप लगे, न सूर्य घाम ही सताये वहां। वसन्त ऋतु की ही छटा, हर पल मन हर्षाये वहां।।

नदियां भी रहें जल से भरीं, विशाल तरंगे उठें वहां। तट से टकरा पावन करें, और स्वच्छ रहीं वह उन्हें बना।।
आस पास की भूमि भी, इससे तनिक गीली रहती। सूर्य की तीक्ष्ण गर्मी भी, नहीं हरित दूब थी सुखा सकती।।
चहुं ओर से ही वहां, थी हरियाली की छटा। शीतल स्वच्छ वातावरण, था चित्त को लुभा रहा।।

वृक्षों की डालें वहां, थीं फूलों से लदी हुईं। जिधर देखिये उधर से ही, सुन्दरता मानो फूट रही।।
कहीं चहकें रंग रंग के पक्षी, कहीं हरिण चौकड़ी भरा करें। कहीं मोर हैं कूक रहे, कहीं भंवरे भी गुंजार करें।।
कहीं कोयल पंचम स्वर में, अपना गीत है गा रही। तो कहीं सारस अलग ही है, अपना आलाप सुना रही।।

ऐसा सुन्दर वन देख कर, श्री कृष्ण और बलराम ने। उस वन में विहार की, फिर ठानी अपने मन में।।
आगे आगे धेनु चलीं, पीछे पीछे चले ग्वाल बाल। बीच में बंसी बजाते हुए, बलराम के संग चले नन्दलाल।।

नव पल्लव मयूर पंख, सुन्दर पुष्पों के हारों से। रंग रंग की गेरु आदि, धातु से सबके तनु सजे।।
आनन्द मग्न कोई नाचता, तो कुश्ती करने लगता कोई। किसी किसी ने आलाप की, नई स्वरें ही छोड़ दीं।।

जब नाचते थे कृष्ण, कुछ ग्वाल बाल गाने लगते। बांसुरी और सींगों में कोई, कोई थे अपना स्वर भरते।।
कोई ताली देकर के ही, ताल से समय थे बान्धते। वाह वाह कहके अन्य कोई, उत्साह सभी का बढ़ाते थे।।

हे राजन् ज्यों नट अपने, नायक का गुणगान करें। देवता गण भी वैसे ही, ग्वाल रूप में विचरा करें।।
गोप जाति में छिपे कृष्ण, और बलराम के गुण गाते। निज इष्ट का स्तुति गान, इस विधि वह करते जाते।।

घुंघराली अलकों वाले, राम श्याम कभी कर पकड़ें। कभी कुम्हार के चाक की, भाँति दोनों ही घूमा करें।।
कभी इक दूजे से होड़ लगा, लम्बी कूद लगाते वे। ढेले कभी वे फेंकते, रस्साकशी में भी उलझ जाते।।
दो दल बनाकर अपनी ओर, ही रज्जू को थे खेंचते। कहीं इक दूजे के संग फिर, कुश्ती में वह ही भिड़ जाते।।
भाँति भाँति के खेलों में, ही वह थे लगे रहते। इक दूजे का विविध विधि, वह मनोरंजन थे करते।।
कभी कभी जब दूसरे ग्वाल बाल थे नाचते। तब उन्हीं संग श्री कृष्ण राम, थे अपना स्वर अलापते।।
कभी बांसुरी सींगी के, वाद्य बजाने वह लगते। वाह-वाह कर फिर कभी, प्रशंसा उनकी थे करते।।

जयफल बेल या आंवले का, फल कभी हाथ में ले लेते। खेल खेल में इक दूजे, पर थे उसको फेंकते।।
कभी नयन मूंद कर दूजे के, स्वयं कहीं थे छिप जाते। आंख मिचोनी का ही खेल, इस विधि थे रचा जाते।।
इक दूजे को छूने को, कभी दूर तक थे दौड़ते। कभी पशु पक्षी सी चेष्टा कर, थे सबके मन को वह करते।।

कभी फूदकते मेंढक सम, कभी हंसी उड़ाते दूजों की। कभी झूले थे वह झूलते, पेड़ की डाल पे रस्सी की।।
कभी दो मित्रों को खड़ा करी, बांहों पर उनकी झूलते। और किसी राजा की कभी, नकल ही करने वह लगते।।

राम और श्याम इस विधि, थे वृन्दावन में खेलते। नदी पर्वत घाटी कुंज, वन और सरोवर घेरते।।
इस संसार में ज्यों कोई, साधारण शिशु ही खेला करें। उस भाँति ही राम श्याम, क्रीड़ा मग्न ही नित्य रहें।।

इक दिन ग्वालों के संग वह, वन में थे धेनु चरा रहे। प्रलम्ब नाम के असुर ने तब, ग्वाल बाल के वेश धरे।।
श्री कृष्ण और बलराम को, असुर वह हरना चाहता था। सर्वज्ञ कृष्ण ने तो उसको, क्षणभर में ही पहचान लिया।।
फिर भी मैत्री का प्रस्ताव, स्वीकार उससे कर लिया। मन ही मन थे सोच रहे, किस युक्ति से उसका वध होगा।।

उन ग्वालों में कृष्ण ही, सबसे बड़े खिलाडी थे। वे ही तो सब ग्वालों के, खेल में भी आचार्य थे।।
सब ग्वाल बाल को बुला के कहा, मित्रो अब मेरी बात सुनें। दो दल में बांटें निज को, फिर आनन्द से हम खेलें।।

बलराम और श्री कृष्ण को, नायक उन्होंने बना लिया। कुछ बलराम के साथ हुए, कुछ ने कृष्ण का साथ दिया।।
फिर उन्होंने बहुत भान्ति के, बहुत से खेल रचा दिये। इक दल के लोग दूजे दल के, ग्वालों को पीठ चढ़ा लेते।।

इक निर्दिष्ट स्थान पर, फिर उनको वह ले जाते। जो जीतते पीठ पे वह चढ़ते, दूजे उनको ढोकर जाते।।
इस विधि इक दूजे की वह, चढ़ते-चढ़ते पीठ पे। कृष्ण संग पहुंचे सभी, भाण्डीर नाम वट के तरु पे।।

बलराम के दल के श्रीदामा, वृषभ आदि सब ग्वाल बाल। एक बार उस खेल में, ली उन्होंने बाजी मार।।
तब श्री कृष्ण का दल उनको, अपनी पीठ पे ढोने लगा। इससे था उस खेल का, आनन्द और भी बढ़ गया।।
श्रीदामा जा कृष्ण की, पीठ के ऊपर चढ़ बैठे। भद्रसेन पे वृषभ थे, प्रलम्भ ने बलराम लिये।।

प्रलम्ब ने देख लिया, श्री कृष्ण अति बलवान हैं। उनको हराना तो मेरे, वश का नहीं कहीं काम है।।
वह उनके दल में हो गया, और राम को ले के भाग चला। जिस स्थान पे सब थे उतर रहे, वह उससे आगे ले निकला।।

बलराम का बोझा तो जैसे, पर्वत सम ही बहुत भारी था। उनको लेकर प्रलम्बासुर, बहुत दूर नहीं जा सका।।
उसकी चाल जब रुक गई, स्वभाविक रूप में आ गया। उस दैत्य का काला तन, था स्वर्णाभूषण से चमका।।
सुन्दर और बलराम को, था पीठ पे उसने धारण किया। मानो दामिनी युक्त जलद, हो चन्द्र को धारण कर रहा।।

उसकी आंखें थीं धधक रहीं, लाल लाल अग्नि समान। दाढ़ें थीं भौं को छू रहीं, लगती थीं वह अति भयान्।।
लाल बाल उस असुर के, थे इस भाँति बिखर रहे। मानो चहुं ओर से हों उठीं, अग्नि की भीषण लपटें।।
हाथ पांव में कंकण थे, सिर पर किरीट कानों कुण्डल। उनकी कान्ति से भास रहा, था उसका रूप अति अदभुत।।
बहुत वेग से उस दैत्य को, आकाश में जाता देखकर। पहले तो घबरा से गए, बलराम दृश्य यह देखकर।।

पर तत्क्षण निज स्वरूप की, याद हृदय में उभर आई। स्वरूप याद आते ही उन्हें, सब भय मानो काफूर हुई।।
ज्यों स्तेन किसी का धन, हर कर सारा ले जाये। देखा बलराम ने शत्रु उन्हें, आकाश मार्ग लिये जा रहे।।
ज्यों इन्द्र ने पर्वतों पर, था वज्र से वार किया। उसी विधि बलराम ने, उसके सीस पे पद आघात किया।।

उस आघात के लगते ही, हुआ चकनाचूर सीस उसका। चेतना उसकी जाती रही, मुख से रक्त का वमन हुआ।।
भयंकर ध्वनि करता हुआ, निष्प्राण हो पृथ्वी पर वह गिरा। ज्यों इन्द्र के वज्र से हत कोई, पर्वत हो भूमि पे गिरा।।

अतुल्य बलधाम थे श्री बलराम, ग्वाल बालों ने जब देखा। अपने इक प्रहार से उन, प्रलम्बासुर का हनन किया।।
आश्चर्य चकित होकर सभी, साधु साधु कहने लगे। वाह वाह करके वह सब ही, बलराम स्तुति करने लगे।।

ग्वाल बालों का चित्त तो, प्रेम से आकुल हो गया। मंगल कामना की ही ज्यों, बलराम पे फिर हुई वर्षा।।
मानो वह मरकर ही पुन:, लौटे हों इस लोक में। इस भाव से आलिंगन करी, प्रशंसा सब करने लगे।।
वस्तुत: बलराम जी, थे तो इसके योग्य ही। स्तुति तो थी उनकी हुई, वा गुण के अनुरूप ही।।

प्रलम्बासुर जानो राजन्, मूर्तिमान् ज्यों पाप ही था। उसकी मृत्यु को देखकर, देवों ने चैन का सांस लिया।।
श्री बलराम पे फूलों की, वर्षा वह करने लगे। साधु साधु कह कर के वह, प्रशंसा उनकी करने लगे।।

१०) वर्षा और शरद ऋतु, वेणुगीत

शुकदेव बोले,
ग्वाल बालों ने घर जाकर, घर की सारी स्त्रियों से। कहे अद्भुत कर्म जो थे किये, श्री कृष्ण और बलराम ने।।
दावानल से बचाना उन्हें, प्रलम्बादि को मारना। उनकी इन लीलाओं का, मां बहिनों से वर्णन किया।।

वृद्ध गोप और गोपियों ने, अलौकिक जब लीलायें सुनी। यह सब सुनकर उनकी मति, अति विस्मित ही हो गई।।
श्रीकृष्ण और बलराम के, रूप में हैं कोई देवता ही। व्रज में पधार कर उन्होंने, करी कृपा यह मान रही।।

तत्पश्चात् वर्षा ऋतु, का फिर शुभ आरम्भ हुआ। इस ऋतु में सब भाँति के, प्राणिन् का वर्धन होता।।
सूर्य चन्द्र पे पुन: पुन:, प्रकाश का मण्डल छाने लगा। बादल वायु द्युति कड़क से, आकाश क्षुब्ध हुआ जाने लगा।।

श्यामल घनघोर बादल कभी, थे आकाश में घिर आते। कभी दामिनी कौंधती, कभी थे गर्जाते।।
सूर्य चन्द्र और तारागण, इनसे ढके ही थे रहते। ब्रह्म स्वरूप होकर भी जीव, ज्यों गुणों से आवृत्त सा दीखे।।

राजा की भाँति सूर्य ने, धरती से जल था ग्रहण किया। कर के रूप में आठ मास तक, प्रजा से ज्यों संचय हो किया।।
अब समय के आने पर, पुन: वितरण वह करने लगा। निज किरण रूप हाथों से वह, धरती को ज्यों लौटाने लगा।।

दयालु पुरुष दयावश ही, प्रजा को पीड़ित जब देखें। करुणा वश निज जीवन प्राण, जा न्यौछावर उसपे करें।।
त्यों ही बिजली की चमक से, जिनकी शोभा थी बढ़ी। वेगवती वायु से जब, उनकी पुन: सम्पर्क हुई।।

उससे प्रेरित होकर के उन, निज प्राण स्वरूपा जल को त्यजा। लोक कल्याण के हेतु ही, जल उन्होंने बरसा दिया।।
जेठ आषाढ़ की भीषण गर्मी, से पृथ्वी थी सूख गई। वर्षा के जल से सिंचकर, पुन: हरी भरी वह हुई।।

सकाम भाव हृदय में धर, जैसे तपस्या कोई करे। पहले तो तन यह क्षीण हो, फल मिलते ही वह पुष्ट भये।।

सायंकाल में बादलों की, घनघोर घटा ज्यों छा जाये। तारों और नक्षत्रों का, प्रकाश कहीं न दिख पाये।।
जुगनू की जगमग ज्योति, ही नजर कहीं आ आये। ज्यों कलियुग में पाप की, प्रबलता ही बहुत बढ़ जाये।।
वैदिक धर्मों का कहीं, नामों निशान् न नजर आये। और पाखण्डवाद का ही, प्रचार वहां होता जाये।।

ज्यों मेंढक सब मौन होई, थे ग्रीष्म काल में सो रहे। बादल की गर्जन सुनकर अब, उनकी ध्वनि भी निकल पड़े।।
जैसे अपने नित्य नियम, से ही निवृत्त होकर के। वेदपाठ करें ब्रह्मचारी, गुरु आदेश को पाकर के।।

छोटी छोटी नदियां जो थीं, जेठ आषाढ़ में सूख गईं। अब वे उमड़ घुमड़ के सब, परिधि से बाहर हुईं।।
ज्यों निज इन्द्रियों पर जिसका, संयम कभी न होए। उसका तन और धन सम्पद्, कुमार्ग पे ही अपव्यय होए।।

पृथ्वी पर तो कहीं कहीं, हरी दूब की थी हरियाली बनी। कहीं बहुबीर बूटियों की, लाली से थी वह ढकी।।
कहीं कहीं पर श्वेत वर्ण के, कुकुरमुत्ते थे उगे। जैसे किसी राजा की वहां, रंग बिरंगी सेना सजे।।

अन्न से थे भरपूर खेत, हरे भरे लहरा रहे। उन्हें देख किसान के तो, आनन्द की सीमा नहीं रहे।।
किन्तु है सब प्रारब्ध वश, जो जन सत्य यह न जानें। उन धनिकों के चित्त तो, ईर्ष्या वश उद्विग्न थे।।
किस भान्ति अब इनको हम, अपने अधीन रख पायेंगे? कैसे इनकी मजबूरी का, अब लाभ उठा हम पायेंगे?

सभी जलचर और थलचर, वर्षा जल सेवन करने लगे। इससे उनके अन्दर बाहर, दोनों ही स्वच्छ सुन्दर हुए।।
ज्यों श्री हरि के सेवन में, जो भी जीव हैं लग जाते। उनके आन्तर और बाहर, सभी सुघड़ हैं हो जाते।।

वर्षा ऋतु की पवन से, सागर में थीं तरंगे उठीं। नदियों के संयोग से अब, और भी वह क्षुब्ध हुईं।।
ज्यों गर योगी के मन में, वासना कोई रह जाये। विषय सम्पर्क से वहां पुनः, कामना का अम्बार लगे।।

ज्यों मूसलाधार वर्षा प्रहार भी, पर्वत को न हिला सके। दुःखों की भरमार भी, नहीं चित्त भक्त का डुला सके।।
जिसने अपने चित्त को, श्री हरि चरण अर्पित किया। दुःख का कोई प्रहार भी, व्यथित न उसको कर सका।।

जो मार्ग कभी स्वच्छ न थे, हरी दूब से वह भी ढके। अपूर्व रूप उनका देखी, पूर्व रूप न याद रहे।।
द्विजाति ज्यों वेदों का, अभ्यास जब नहीं करते हैं। काल क्रम से वह स्वतः, विस्मृत उनको होते हैं।।

यद्यपि वारिमुच तो हैं, सदा सर्वदा हितकरी। फिर भी दामिनी उनमें तो, स्थिर कभी न बनी रहती।।
ज्यों चपल अनुराग के, स्वभाव की जो हैं कामिनियां। गुणी पुरुष के साथ भी, स्थिर भाव नहीं उनका होता।।

मेघों की गर्जन तर्जन से, आकाश था गुंजित हुआ। निर्गुण इन्द्रधनुष की थी, बनी वहां अनुपम छटा।।
ज्यों तीनों गुणों से बन्धे हुए, इस विश्व प्रपंच में। निर्गुण और गुणातीत, ब्रह्म की अनुपम शोभा रहे।।

ज्यों शशि की उज्ज्वल चान्दनी, थी मेघों को इंगित करती। उन्हीं बादलों ने ढक कर, चान्दनी उसकी सब हर ली।।
ज्यों पुरुष के ही अस्तित्व से, भासित सा अहंकार दीखे। किन्तु उसको ही आवृत्त कर, प्रकाशित नहीं यह होने दे।।

बादलों के आगमन से, मुदित हुए थे मयूर सब। आनन्दोत्सव थे मना रहे, गायन और नर्तन में रत।।
ज्यों जग जंजाल में फंसे जो जन, त्रैतापों से तप्त रहें। प्रभु भक्तों का शुभागमन, उनके हृदय आनन्द भरे।।

जेठ आषाढ के ताप से, जो वृक्ष थे सूख गए। जड़ों से जल का पान कर, नव पल्लवों से वह भरे।।
नव पुष्प और डालियों ने, वे सब खूब सजा दिये। ज्यों सकाम तपस्वी तो, पहले दुर्बल और क्षीण भए।।
किन्तु कामना पूर्ति पर, वह हृष्ट पुष्ट प्रसन्न हों। इसी विधि वर्षा ऋतु में, सूखे पेड़ भी हरित हों।।

तालाबों के तट राजन्, थे कंटक कीचड़ जल से भरे। अशान्त अस्वच्छ वह रहते थे, पर सारस इक पल न छोड़े।।
त्यों ही अशुद्ध हृदयी पुरुष, काम काज में फंसे रहें। पल भर न छूटें झंझटों से, फिर भी वह घर में पड़े रहें।।

इन्द्र से प्रेरणा पाकर के, वर्षा ऋतु में जल बरसे। नदियों के बान्ध और खेती की, मेंढें सारी ही टूटें।।
कलियुग में पाखण्डियों के, भिन्न भिन्न मिथ्या मतवादों से। वैदिक मार्ग की परम्परा, ज्यों क्षीण सी ही पड़ती दीखे।।

वायु से प्रेरित होकर, घनघोर घटायें बरस उठें। जीवों के लिये वह अमृतमय, जल की वर्षा करने लगें।।
ज्यों ब्राह्मण से प्रेरणा पा, धनवान कभी कभी दान दें। समय समय पर इस विधि, प्रजा की इच्छा पूर्ण करें।।

वर्षाऋतु में वृन्दावन, की भी छटा निराली बनी। परिपक्व खजूर और जामुन से, है वृक्षों की डालें लदीं।।
उसी वन में विहार हेतु, राम श्याम ने प्रवेश किया। ग्वाल बाल और धेनुन् को, भी उन्होंने अपने साथ लिया।।

गायें निज स्तनों के भार के, कारण थीं धीरे चल रहीं। श्री कृष्ण के मुख से अपना नाम, जब वह गायें थीं सुनतीं।।
प्रेम के वश वह वेग से, उधर दौड़ने थीं लगतीं। उनके स्तनों से दूध की तब, धारा थी गिरती जाती।।

वनवासी भील भीलनियां सब, महा आनन्द में हैं डूबे। वृक्ष भी पंक्तिबद्ध खड़े, मधुधारा जैसे उड़ेल रहे।।
कलकल निनाद करते हुए, झरने पर्वत से बह रहे। बहुत सी हैं गुफायें वहां, वर्षा से बचने के लिये।।

जब वर्षा थी बरसती, प्रभु छिपते वृक्ष की खोड़ में। कभी आश्रय लेते कृष्ण, जाकर किसी कन्दरा में।।
कभी कन्द मूल खाते हुए, थे ग्वालों के संग खेलते। कभी जल के समीप ही, चट्टान पे थे जा बैठते।।
श्री दाऊ और ग्वालों के संग, फिर छकते प्रभु वह रोचक अन्न। दही भात या दाल शाक, जो भी देती मैय्या भोजन।।

बैल बछड़े और गायें, जो श्रान्त थीं भारी थनों कारण। हरी घास पे तनिक सी देर में, पा जातीं भरपेट भोजन।।
हरी दूब पे बैठ के ही, जुगाली वह करती रहतीं। आंख मूंद ज्यों स्वादु भोजन, का स्वाद हों ले रहीं।।

अति सुन्दर सबको सुखकर, ही थी वह ऋतु वर्षा। गाय बैल बछड़े ऋतु, लीला विलास सब थे प्रभु की।।
फिर भी उसको देखी देखी, अति प्रसन्न भगवन् होते। बार बार वह स्वयं ही, उसकी प्रशंसा थे करते।।

इसी विधि राम श्याम दोनों, आनन्द से व्रज में रह थे रहे। वर्षा ऋतु जब बीत गई, शरद् ऋतु आगमन हुए।।
आकाश में बादल नहीं रहे, जल भी निर्मल हो गया। वायु भी अति मन्द गति, से आकाश में चलने लगा।।

जलाशयों में कमल भी, स्वत: ही उत्पन्न होने लगे। शरद् ऋतु में जल अपनी, सहज स्वच्छता प्राप्त करे।।

ज्यों योग भ्रष्ट पुरुष जब, पुन: योग सेवन करे। योग युक्त हो उसका चित्त, पुन: निर्मल ही हो जाये।।

आकाश के बादल और भूमि पे, पंक था जो वर्षा में हुआ। जीव भी थे वर्धित हुए, और जल था मैला हो गया।।
शरद ऋतु ने आते ही, उन सबको पहले नष्ट किया। ज्यों ब्रह्मचारी और गृहस्थ, वानप्रस्थी संन्यासियों का।।
सब प्रकार के अनिष्टों और, कष्टों का पल में नाश करे। श्री हरि की भक्ति सम्मुख, कोई अनिष्ट न टिक सके।।

मेघों ने अपने सर्वस्व, जल का जिस पल दान दिया। उनका मुख उज्ज्वल कान्ति, से सुशोभित हो गया।।
ज्यों लोक परलोक दारा और सुत, धन सम्पद् की चिन्ता सभी। सर्वकामना त्याग दे, मुक्त संन्यासी सोहे तभी।।

अब कहीं कहीं तो पर्वत से, झरने बह ही जाते थे। कहीं पावन जल को अपने, अपने में ही समाते थे।।
ज्यों ज्ञानी पुरुष निज ज्ञान का, समय आने पर दान दें। किसी अधिकारी को सब वह दें, किसी को वह कुछ भी न कहें।।

छोटे छोटे गड्ढों में भरे, जल में रहते हैं जो जलचर। नहीं जानते वह जल तो, सूखे है क्षण क्षण पर।।
ज्यों नर निज कुटुम्ब के, भरण पोषण में लगा रहे। इस सत्य को भूले वह, आयु तो पल पल क्षीण भए।।

जो जलचर थोड़े से ही, जल में हैं अब रह रहे। शरद् कालीन सूर्य का, प्रखर ताप न सह सकें।।
ज्यों इन्द्रिय वशीभूत हुआ, कृपण दरिद्र कुटुम्बी हो। विविध भान्ति के तापों से, वह तो सदा संतप्त हो।।

पृथ्वी भी शनै: शनै: अपना, पंक त्याग करने लगी। घास पात ने भी अपनी, कच्चाई शनै: शनै: छोड़ी।।
विवेकी साधक तन आदि, अनात्म सब पदार्थों में। शनै: शनै: अहंता और, ममता का भाव ही छोड़ दे।।

सागर का जल शरद् ऋतु में, स्थिर गम्भीर और शान्त हो। ज्यों आत्माराम का नि:संकल्प, चित्त सदा ही शान्त हो।।
कर्मकाण्ड के झमेलों से, उपरत वह हो जाता है। अपने में है आप सुखी, नहीं दूजी ओर वह जाता है।।

किसान भी अपने खेतों की, मेंड़ों को पक्का करने लगे। खेतों का जल बाहर, जाने से वह रोका करें।।
योगी ज्यों निज इन्द्रियों को, विषय ओर न जाने दें। प्रत्यहार उनका करके, वह अपने ज्ञान की रक्षा करें।।

शरद् ऋतु में दिन के समय, अति प्रखर हो सूर्य ताप। कष्ट बहुत हो लोगों को, रात्रि में चन्द्र हरे सन्ताप।।
ज्यों देहाभिमान के कष्ट को, ज्ञान प्रकाश ही दूर करे। भगवद् विरह दु:ख गोपिन् का, कृष्ण का दरस ही हर सके।।

वेदों के अर्थ को स्पष्ट जान, ज्यों सतोगुणी चित्त दीप्त हो। शरद् रात्रि को मेघ रहित, नभ तारों से त्यों शोभित हो।।
पृथ्वी पर यदुवंशियों में, ज्यों यदुपति हों शोभायमान। त्यों ही आकाश के तारों में, नक्षत्रनाथ की बने शान।।

पुष्पित वृक्ष लताओं में, सुन्दर शीतल वायु ज्यों बहे। न तो अधिक वह गर्म हो, न ही अधिक ठण्डी रहे।।
उस वायु के संस्पर्श से, लोगों का ताप तो शान्त भए। किन्तु गोपिन् का सन्ताप, उससे और भी बढ़ जाये।।
क्योंकि उनका चित्त तो, उनके हाथ में नहीं रहा। उसको तो श्री कृष्ण ने, पहले ही है चुरा लिया।।

धेनु हरिणी चिड़ियां नारी, ऋतुमति हो सन्तति इच्छा करें। साण्ड हरिण खग और नर, ज्यों शरद् में उनका अनुसरण करें।।
त्यों ही जब समर्थ पुरुष, किसी कर्म को किया करें। सफलता फिर उस कर्म का, स्वत: ही अनुसरण करे।।

राजा के आगमन से ज्यों, सारे जीव ही निर्भय हों। डाकू और चोर को छोड़कर, किसी अन्य के मन में भय न हो।।
त्यों ही सूर्य उदय होते, सब कमल तो राजन् खिल जायें। पर कुमुदिनी सूर्य के, प्रकाश को पा भी नहीं खिले।।

महा ग्राम और नगर तब, उत्सव बहुत मनाने लगें। नव अन्न का प्राशन हो कहीं, तो कहीं पे इन्द्र रिझाने लगें।।
खेतों में अनाज पके, सुशोभित सारे खेत हुए। ज्यों श्री राम कृष्ण को पा, धरती की शोभा बढ़े।।

ज्यों साधना से हुए सिद्ध नर, उचित समय के आने पर। देव आदि के भिन्न तन, लेते हैं फिर धारण कर।।
त्यों ही राजा संन्यासी वैश्य, स्नातक जो वर्षा में रुके। अब एक स्थान को छोड़कर, अभीष्ट कामों में जाय लगे।।

११) वेणुगीत

शुकदेव बोले,
शरद् ऋतु कारण था बना, बहुत सुन्दर वह वन राजन्। था अति निर्मल जल हुआ, वायु भी थी सुवासित मन्द।।
जलाशय में खिले हुए, कमलों ने सुरभित उसे किया। धेनु और ग्वालों के संग, श्री कृष्ण ने वन प्रवेश किया।।

हरित रुखों की पंक्तियां, थीं सुन्दर फूलों से लदीं। स्थान स्थान पर भंवरों की, अति मधुर गुंजर थी बनी।।
भाँति भाँति के पक्षी यूथ, थे कलरव अपना कर रहे। वन के सरोवर नदियां पर्वत, उनकी ध्वनि से गूंजते थे।।
मधुराधिपति श्री कृष्ण भी, श्री राम और ग्वालों के संग। धेनु चराते वन में घुसे, और छेड़ी बांसुरी तान अभंग।।

वंशीवादन वह श्री हरि का, प्रभु प्रेम जगाने वाला था। उसे सुनकर गोपी हृदय, प्रेम से परिपूर्ण हुआ।।
एकान्त में अपनी सखियों से, प्रियतम की बातें करने लगीं। वा गुण रूप वंशी प्रभाव, की चर्चा वह करने लगीं।।

वेणु ध्वनि माधुर्य का वह, वर्णन तो करना चाहतीं थीं। उसका स्मरण करते ही कृष्ण, स्मृति ने वा मन पकड़ ली।।
प्रेम पूर्ण चितवन उनकी, और मधुर मुसकान की। मधुर चेष्टा और नयनों, के कटाक्ष की याद आई।।
प्रभु मिलन का आकांक्षा, ने फिर और जोर पकड़ा। उनका मन मानो उनके, वश में ही फिर नहीं रहा।।
मन ही मन वह जा पहुंची, वहां पे ही जहां कृष्ण थे। अब वाणी बोले कैसे, भाषा के शब्द सब गौण भए।।

मन की आंखों से देखा, ग्वालों संग कृष्ण हैं आ रहे। वृन्दावन की पुण्य भूमि में, वह प्रवेश हैं पा रहे।।
सीस पे धरा है मोर पंख, कानों में कनेर के पीत पुष्प। स्वर्णिम पीताम्बर है तन पे, हैं वैजयन्ती माल में पंच पुष्प।।
रंगमंच पर सुन्दर नट, बन ज्यों अभिनय कोई करे। ऐसे ही सुन्दर वेश श्री, कृष्ण ने हैं धारण किये।।
वेणु के छिद्रों में वह, अपना अधरामृत भर रहे। पाछे पाछे सब ग्वाल बाल, उनकी कीर्ति गान हैं कर रहे।।
वैकुण्ठ से भी अति श्रेष्ठ लगे, इस पल तो यह वृन्दावन धाम। उनके पावन चरणों का, हुआ आज इसपे विश्राम।।

हे राजन् यह वंशी ध्वनि, जड़ चेतन सबके मन रहे। उसका श्रवण करी गोपिन् ने, वर्णन उसके आरम्भ किये।।
वर्णन करते करते वह, तन्मय उसी में हो गईं। कृष्ण ही ज्यों हों सामने, आलिंगन वह करने लगीं।।
गोपी बोली,
अरी सखी हमने जानी, बस सफलता यह दो नयनों की। हैं इसमें ही सार्थकता, चक्षुधारी सब जीवों की।।
अहो कौन सा लाभ है वह, और तो हम कुछ न जानें। बस श्याम सुन्दर के दरस ही, परम लाभ हम तो मानें।।

बलराम संग जब श्री कृष्ण, धेनु वन को ले जा हो रहें। या ग्वाल बाल के संग हों, व्रज में उन्हें लौटा रहे।।
मुरली अधर पर धरे हुए, नयनों में प्रेम सुधा रस ले। तिरछी चितवन से श्री हरि, जब हमारी ओर हों देख रहे।।
उनकी इस मुख माधुरी का, पान ही हम करती रहें। शम ही हृदय में हों बसे, नयना वा छवि में छके रहें।।

जब आम की नई कोंपलें लें, या मयूर के पंखों से। कभी फूलों के गुच्छों से, कभी रंग बिरंगे कमलों से।।
कभी कुमुद की मालायें, जब धारण वह कर लेते हैं। श्री कृष्ण के श्यामल तन पर, पीताम्बर फहराते हैं।।

नीलाम्बर की शोभ सखी, गौर राम पे बहुत सोहे। दोनों ही भाईयों के वेश, मनहर और विचित्र लगें।।
ग्वाल बालों की गोष्ठी के, बीचों बीच जब जाय सजें। और बांसुरी पर अपनी, मधुर तान जब छोड़ दें।।

उस पल ऐसा लगे सखी, दो चतुर नट ज्यों मंच पे। सज धजकर अभिनय में वह, हों मानो मदमस्त हुए।।
क्या कहूं छवि उनकी सखी, शोभा वर्णी न जाये। हृदय में प्रेम जो उमड़ा करे, वाणी न उसकी कह पाये।।

अरी गोपियों वैसे तो, वह वेणु भी है पुरुष ही। पर पूर्व जन्म में न जाने, इसने कौन साधन भजन करी?
श्री दामोदर अधर सुधा रस, ऐसे पान है कर रहा। मानो हम सबके लिये, नहीं इक कण रस यह छोड़ेगा।।
इस वेणु को निज रस से, जिन मूलों ने है सींचा। आज हृदय रोमांचित है, कमल के न्याईं उन सबका।।
अपने वंश में भगवत्प्रेमी, सन्तान को ज्यों देखकर। श्रेष्ठ पुरुष प्रफुल्लित हों, सम्बन्ध जोड़ें इससे तरुवर।।
आंखों से आनन्द के, अश्रु हों ज्यों बहा रहे। अपनी इस सन्तान का, हैं भाग्य वह सराह रहे।।

अरी सखी इस पृथ्वी की, कीर्ति अति विस्तृत हो रही। वृन्दावन की राही यह, वैकुण्ठ लोक तक पहुंच रही।।
देवकी नन्दन कृष्ण के, चरण कमल के चिन्ह हैं यहां। मुनिजन मोहिनी कृष्ण की, मुरली का जब हो नाद यहां।।
मतवाले हो मयूर तब, इसकी ध्वनि पे नाच उठें। पर्वत की चोटी पर सदा, जो पशु पक्षी विचरण करें।।
स्तब्ध शान्त होकर वे सब इस दृश्य का दर्शन करें। वशीकरण कोई मन्त्र ज्यों, वंशी सब कर्णों में फूंके।।

प्राणप्रिय श्री कृष्ण जब, विचित्र वेश धारण करें। और अपनी मुरली पर, मधुर तान छेड़ा करें।।
तब मूढ़मति यह हरिणियां भी, निज पति कृष्णमृगों को ले। प्रियतम श्री नन्दनन्दन के, समीप ही फिर जा पहुंचे।।
मृगनयनों में प्रेम भरी, यह उन्हें निरखने लगती हैं। मानो यह कमल लोचन अपने, श्री कृष्ण समर्पित करती हैं।।
कृष्ण की प्रेम भरी चितवन, जो उनका सत्कार करे। धन्यभाग्य वह हरिणियां, सप्रेम उसे स्वीकार करें।।

अरी सखी इन हरिणियों, की तो बात हम क्या करें। स्वर्गवासिनी देवियां भी, जब मधुर ध्वनि का श्रवण करें।।
वनिताओं के चित्त को, जो सुन्दरता आकृष्ट करे। सौन्दर्य शील के कोष श्री, कृष्ण का जब दर्शन करें।।
तो विमान पे बैठी हुईं, सुध बुध ही अपनी खो दें। और सखी देवांगना वह, मूर्छित वहीं पे हो जायें।।
इसका भान हुआ कैसे, अरी सखी अब यह भी सुनो। उनके हृदय जब कृष्ण मिलन की, तीव्र उत्कण्ठा उत्पन्न हो।।
सुधि नहीं अपनी रहे, अपना धैर्य ही वह खो दें। नहीं यह भी सखी याद रहे, केशों के फूल धरा पे गिरे।।
फूलों की बात तो दूर रही, नहीं वस्त्रों का भी ध्यान उन्हें। नहीं यह भी उन्हें पता रहे, साड़ी कब खुल भूमि पे गिरे।।

एरी सखी इन देवियों की, बात हो क्या तुम कह रही? क्या इन धेनुओं की गति, तुमने है कभी देखी नहीं?

निज मुख से हमारे प्यारे कृष्ण, जब वंशी में स्वर भरते हैं। गौओं के दो कान तब, होकर चौकन्ने सुनते हैं।।

ऐसा लगे दो कर्णों के, दोनों से अमृत रस पी लें। उस संगीत के रस से ही, मानो वे धेनु छकी रहें।।
ऐसा क्यों होता है सखी, क्योंकर वह ऐसा कर पायें? नयनों से श्री सुन्दर श्याम, की छवि आन्तर ले जायें।।
वहीं विराजित करके उन्हें, मन ही मन उसका रस लें। देखो तो सही उनके नयनों से, आनन्द के आंसू छलक रहे।।
और वत्स जो उनके हैं, उनकी तो दशा निराली हो। उनकी माताओं के स्तन से, दूध निरन्तर झरता हो।।

दूध के पीते पीते ही, वंशी ध्वनि कान में जब पहुंचे। मुंह में दूध का घूंट जो, अन्दर बाहर न कर पायें।।
हृदय में भी होता उनके, श्री हरि का संस्पर्श ही। और छलक कर बह जाते, आखों से प्रेम के अश्रु ही।।
ज्यों के त्यों ही ठिठके हुए, खड़े के खड़े रह जाते हैं। न तो निगल सकें वह दूध, न ही उगल उसे पाते हैं।।

अरी सखी मेरी यह गाएं और, बछड़े तो हैं वस्तु घर की। उनकी बात तो जाने दो, जो वृक्षों पर भी हैं पक्षी।।
क्या देखो न वृन्दावन के, न कहना भूल के भी पक्षी। सच पूछो तो उनमें भी, बड़े बड़े हैं मुनि ऋषि।।
वृन्दावन के वृक्षों की, नव सुन्दर डालियों पर बैठे। मौन ही रह प्यारे की छवि, निर्निमेष ही देखते।।
उस रूप माधुरी और प्यारी, चितवन को देख निहाल हों। कानों से भी देव मोहिनी, वंशी का ही श्रवण हो।।
धन्य धन्य है मेरी सखी, धन्य है उन सबका जीवन। धन्य धन्य यह वृन्दावन, जहां लीला करें त्रिभुवन मोहन।।

देवों धेनुन् और पक्षिन् की, ए री सखी क्या बात कहो। यह सब तो चेतन हैं सखी, क्या जड़ नदियों को न देखो?
इनमें जो भंवर हैं दीख रहे, इनके हृदय उद्गार हैं। श्याम सुन्दर से मिलने के, अति तीव्र हुए संस्कार हैं।।
उनके वेग से ही देखो, प्रवाह है इनका थम गया। प्रेम स्वरूप श्री कृष्ण की, वंशी का स्वर इन्होंने भी सुना।।
देखो देखो उत्ताल तरंगों, को ही अपना हाथ बना। उनके चरण को पकड़ कर, रहीं ज्यों कमल उपहार चढ़ा।।
उनका आलिंगन कर हैं रहीं, अपने इन ही हाथों से। मानों उनके चरणों पर, निज हृदय न्यौछावर ही कर दें।।

यह नदियां तो ए री सखी, हैं अपने ही वृन्दावन की। पृथ्वी की वस्तु भूल करी, अब देखो बादलों ओर भी।।
व्रजराज कृष्ण बलराम संग, जब धेनु चराने जाते हैं। धूप में धेनु चरा करी, संग वंशी वो बजाते हैं।।
तब बादलों के हृदय में प्रेम का रस भर जाता है। उनके ऊपर मण्डरा कर वह, तपन शान्त कर जाता है।।
श्यामघन घनश्याम सखा पर, छत्र बना दें निज तन का। इस विधि वे सन्ताप हरें, तीक्ष्ण प्रखर दोपहरी का।।
इतना ही नहीं वह सखी मेरी, नन्हीं बून्दें बरसाने लगे। तब ऐसा लगे सुन्दर श्वेत, हों पुष्प वे उनपे चढ़ा रहे।।
अरी नहीं उन बून्दों का, तो बस एक बहाना है। मेघों को तो अपना जीवन, न्यौछावर ही कर जाना है।।

अरी सखी वृन्दावन की, भीलनियां भी हैं कृत्यकृत्य। धन्यभाग हैं इनके सखी, है हृदय प्रेम से कृत्यकृत्य।।
जब हमारे प्रियतम का, दर्शन इनको हो जाये। उनसे मिलने की तीव्र अग्न, इनके हृदय में जाग उठे।।
प्रेम की व्याधि फिर इनके, हृदय पे भी आघात करे। उस रोग के उपचार को, क्या करें उपाय सखी सुन ले।।
प्यारे कृष्ण की गोपियां, वक्ष:स्थल पर केसर रचें। श्री श्याम सुन्दर के चरणों में, वह केसर सदा लगी रहे।।
जब वृन्दावन की दूब पे, चरण वह अपना धरते हैं। उसपर भी उस केसर के, चिन्ह वह अंकित करते हैं।।
बड़भागिनी यह भीलनियां, तिनकों पर से छुड़ायें उसे। वक्ष:स्थल और मुख पे मली, विरह व्यथा निज शान्त करें।।

अरी गोपिकागण अब गिरिराज, गोवर्धन की बात सुनो। श्री भगवान के भक्तों में, यह तो अति उत्तम ही हो।।
धन्य धन्य हैं इसके भाग्य, नित्य आनन्दित यह रहे। श्री बलराम के संग इसे, बल्लभ श्री कृष्ण की रज मिले।।
इसके सौभाग्य की बात तो, सखी कौन है कर सके? ग्वाल बाल और गइयों का, नित्य ही यह सत्कार करे।।
स्नान पान हेतु यह उन्हें, झरनों का शीतल जल दे। धेनु के लिये सुन्दर कोमल, हरित घास प्रस्तुत करे।।
हैं कन्दरायें इसकी बनीं, उनके विश्राम के ही लिये। और प्रभु के खाने को, विभिन्न भान्ति के फल यह दे।।

अरी सखी है निराली गति, इन गौर और श्याम किशोरों की। सिर पर नवोना लपेटे हुए, निज कान्धे पे फन्दा धरी।।
इक वन से दूजे वन में, यह गायें हांक ले जाते हैं। साथ में ग्वाल बाल भी हों, मधु वंशी तान सुनाते हैं।।
मनुष्य की बात तो दूर रही, सबमें ही स्तब्धता छाती है। चेतन पशु पक्षी हों या, जड़ नदियां स्थिर हो जाती हैं।।
अचल वृक्ष भी ध्वनि सुनी, रोमांच से ज्यों भर जाते हैं। उस जादू भरी वंशी के तो, चमत्कार ही निराले हैं।।

शुकदेव बोले,
हे राजन् हैं असंख्य ही, लीलायें श्री कृष्ण की। वृन्दावन बिहारी श्री, मानस बने उस हँस की।।
गोपिकागण प्रतिदिन उनका, आपस में वर्णन करतीं। लीलाओं का सिमरन् कर, तन्मय नित्य ही वह रहतीं।।
नित्य नव लीलाएं प्रभु की, उनके हृदय में स्फुरित होतीं। श्री कृष्णमय ही होकर, हर क्षण व्यतीत थीं वह करतीं।।

१२) चीरहरण लीला

शुकदेव बोले,
तत्पश्चात् हे राजन्, हेमन्त ऋतु आगमन हुआ। उसके पहले मास में ही, देवी कात्यायनी का व्रत था।।
नन्द के व्रज की कुमारियां, पूजा और व्रत करने लगीं। हविष्यान्न का ही केवल, इस व्रत में वह भक्षण करतीं।।

पूर्ण दिशा का क्षितिज जब, अरुण तनिक होने लगता। यमुना जल में स्नान का, बेला उनका तब होता।।
वे कुमारियां तट पे ही, बालू की मूर्ति बना लेतीं। पुष्प हार चन्दन नैवैद्य, धूप दीप अर्पित करतीं।।
न्यूनाधिक उपहार वह, भेंट सामग्री भी लातीं। अक्षतादि से देवी की, फिर पूजा वह थीं करतीं।।

हे कात्यायनी महामाया, हे महायोगिनी स्वामिनी। आपके श्री चरणों में माँ, नमस्कार हम करें सभी।।
श्री नन्दनन्दन कृष्ण को, पति रूप में आप दें। सम्मुख आप के हे माता, यही प्रार्थना हम करें।।
इसी मन्त्र का जाप वे, कुमारियां नित्य ही करतीं थीं। अपने मनोभावों को वे, माँ के चरण में धरतीं थीं।।

मन था न्यौछावर कृष्ण पर, उन कन्याओं का हुआ। एक मास तक इस संकल्प, से व्रत का पालन किया।।
विधिवत् भद्रकाली की, उस अवधि में पूजा करी। नन्दनन्दन कृष्ण ही माँ, होवें अब हमारे पति।।

प्रतिदिन उषा काल में ही, इक दूजी को थीं पुकारतीं। नाम ही लेकर हर सखी, दूजी को थी बुला लेती।।
हाथ में हाथ वह डालकर, उच्च स्वर में गाने लगतीं। श्री कृष्ण के नाम और लीला की, चर्चा ही उनके मुख पे होती।।
मिल जुल के सब सखियां वे, यमुना के तट पे जातीं। शीतल निर्मल यमुना जल में, स्नान ही थी उद्देश्य बनीं।।
प्रतिदिन की भान्ति इक दिन, ललनायें जब यमुना पे गईं। तट पे निज वस्त्र उतार दिये, यमुना में वह जाय घुंसी।।

श्री कृष्ण के गुणगान में, वे थीं सब मदमस्त हुईं। आनन्द पूर्ण था हृदय हुआ, वह जल क्रीड़ा करने लगीं।।
हे राजन् श्री कृष्ण तो हैं, योगियों के भी योगेश्वर। शंकर और सनकादि के, श्री श्याम सुन्दर हैं परमेश्वर।।
गोपियों के मन की बात, छिपी वहां कस रह सकती? हृदय में सबके बसें सदा, मनोभाव श्याम ने जान ली।।
उनका अभिप्राय जानकर, संग ग्वाल बाल ले तट पे गए। साधना सफल हो इन सबकी, यही उद्देश्य श्री कृष्ण के थे।।

उन गोपियों के सारे, वस्त्र अकेले हरण किये। और बड़ी ही फुर्ती से, जाय कदम्ब पे चढ़ गए।।
साथी ग्वाल बाल भी, परिहास फिर करने लगे। और स्वयं श्री कृष्ण भी, हंसी से मानो खिल गए।।
हंसते हुए फिर गोपियों को, भी श्याम हंसाने लगे। परम भक्त गोपियों से, फिर उन्होंने यह वचन कहे।।
श्री भगवान बोले,
सत्य कहूं मैं कुमारियों, तनिक भी हंसी मैं नहीं करूं। यदि चाहो वस्त्र तो आओ इधर, इतना ही बस तुम्हें कहूं।।
इस व्रत को दीर्घ काल तक, तुमने है धारण किया। इस कारण ही तन सबका, अति क्षीण है हो गया।।

मेरे सखा ग्वाल सब जानें हैं, झूठ कभी मैं नहीं कहूं। हे कमलानने अब तुम्हें, एक बात ही कहता हूँ।।
यदि चाहो तो अलग अलग, आकर वस्त्र अपने ले लो। नहीं आपत्ति कोई मुझे, गर चाहो तो सब संग आओ।।
शुकदेव बोले,
ठिठोली प्रभु की यह देख, उनका हृदय प्रेम से भर गया। तनिक सी वह सकुचाईं भी, इक दूजी को फिर देखा।।
मुख कमल पर सबके ही, प्रेममयी स्मित फैल गई। किन्तु इस पर भी कोई, जल से बाहर न निकली।।

श्री हरि ने जब हंसी हंसी में, उन सबसे यह बात कही। उनके विनोद से चित्त उनका, आकृष्ट और भी उनमें हुई।।
शीतल जल में वे सब ही, कण्ठ तक थीं डूब रहीं। तन था थर थर काम्प रहा, श्री कृष्ण से फिर वह यूं बोलीं।।
गोपियां बोली,
प्रिय कृष्ण ऐसी अनीति, की बातें तुम नहीं करो। हम जानें तुम नन्दबाबा के लाड़ले और दुलारे हो।।
हमरे भी प्रियतम हो तुम, सब व्रजवासी सराहें तुम्हें। देखो सही इस सर्दी में, हम सबके तन हैं ठिठुर रहे।।
अब दे दो तुम वस्त्र हमें, इतनी ही बिनती करें। हे सुन्दर श्याम तू सच मानो, हम तो हैं तोरी दासी हे।।
हम करने को हैं तैय्यार, हे कृष्ण तुम जो भी कहो। तुम धर्म मर्म के ज्ञाता हो, और न हमको व्यथित करो।।
अब वस्त्र हमारे दे दो हमें, नहीं नन्दबाबा से कह देंगी। बहुत हुई ठिठोली अब, मानो वरना हम कह देंगी।।
कृष्ण बोले,
पावनता और प्रेम से, भरी है तुम्हरी यह मुस्कान। हे कुमरियों अपने को, रही हो मेरी दासी मान।।
मेरी आज्ञा का पालन भी, तुम कहो करना चाहती हो। तो आओ यहां आकर, निज वस्त्र तुम ले ही लो।।

शुकदेव बोले,
हे राजन् वह कुमारियां, ठिठुर रहीं थीं उस जल में। अति व्याकुल था उन्हें किया, शीत की इस ठण्ड ने।।
श्री हरि की यह बात सुनी, जल से वह बाहर आईं। गुप्त अंग अपने दोनों, हाथों से थीं ढांप रही।।

यह शुद्ध भाव उनका देखी, श्री हरि अति प्रसन्न हुए। निज निकट उन्हें आई देखा, तो वस्त्र निज कान्धे धरे।।

मुदित भाव में श्री कृष्ण, मन्द मन्द मुसकाने लगे। सुमधुर हास्य और प्रेम सहित, फिर गोपिन् से वह बोले।।
कृष्ण बोले,
ऐ गोपिकागण तुम सबने, जो व्रत था लिया अति भला किया। भली भान्ति ही उस व्रत का, नि:संदेह पालन भी किया।।
वस्त्रहीन होकर किन्तु, जल में जो है स्नान किया। जलाधिष्टातृ देव वरुण, और यमुना का अपराध हुआ।।
अत: अब इस दोष की, शान्ति के प्रयत्न करो। कर जोड़ी छूओ सीस से, उनको तुम प्रणाम करो।।
तदनन्तर अपने अपने, वस्त्र तुम ही ले जाना। व्रत जो किया कात्यायनी का, उसको सफल बना जाना।।
शुकदेव बोले,
भगवान कृष्ण की बात सुनी, व्रज ललनाओं ने सच समझा। वस्त्रहीन हो स्नान किया, इस कारण व्रत त्रुटिपूर्ण रहा।।
निर्विघ्न पूर्ति हो व्रत की, यही भाव उनके मन में था। सब कर्मों के साक्षी जो, उन कृष्ण को ही उन नमन किया।।
उनको नमस्कार करके, सब दोष हमारे दूर हों। भंजन हो अपराधों का, प्रभाव प्रभु का ऐसा हो।।

यशोदानन्दन ने देखा, सब गोपियों ने कहा माना। उनकी आज्ञा पाकर के, सबने ही कृष्ण को नमन किया।।
अति प्रसन्न हुए श्री हरि, फिर हृदय में करुणा उमड़ आई। करुणापूर्ण ने गोपिन् को, उनकी वस्त्र फिर लौटाई।।

श्री कृष्ण ने हे राजन्, की छलपूर्ण उनसे बातें। हंसी ठिठोली करके उन, लज्जा संकोच भी छुड़वाये।।
कठपुतली सम नचाया उन्हें, और वस्त्र भी उनके हर लिये। फिर भी न रुष्ट हुईं उनसे, न ही उनको कोई दोष दिये।।

उन गोपियों ने राजन्, फिर वस्त्र अपने पहन लिये। किन्तु कृष्ण ने तो वा चित्त, थे अपने वश में किये।।
नहीं एक कदम वह चल सकीं, वहीं पे जड़वत खड़ी रहीं। निज प्रियतम सों मिलन को, लजीली थी चितवन उनकी।।

श्री हरि तो यह जाने थे, उनका चरण स्पर्श ही चाहतीं थीं। यही कामना हृदय में धर, थी उन्होंने व्रत पालन करी।।
इकमात्र यही संकल्प और, उद्देश्य था उनके जीवन का। प्रेमाधीन बन्धे ऊखल से, उन परमेश्वर ने कहा।।
कृष्ण बोले,
परम प्रिय हे कुमारियों, तव संकल्प मैं जाने हूं। मम पूजा ही तव लक्ष्य है, यह भी मैं पहचाने हूं।।
तुम्हारी इस मनोकामना को, स्वीकार आज मैं करता हूं। सत्य हो संकल्प तव, करोगी पूजा यह कहता हूं।।

ज्यों बीज कोई जब-उबला हो, या फिर उसको हो भून दिया। नव अंकुर उत्पन्न करने में, समर्थ नहीं वह हो सकता।।
जिन्होंने अपने मन और प्राण, मुझे समर्पित कर दिये। उनकी कोई भी कामना, भोगों में न उलझा सके।।

इसलिये हे कुमारियों, अब अपने अपने घर लौटो। सिद्ध हुई तव साधना, साधारण जीवन में जा रहो।।
आगामी शरद् की रात्री में, विहार करोगी तुम मेरे संग। इसी व्रत को धारण कर, देवी की पूजा की सम्पन्न।।
शुकदेव बोले,
प्रभु की यह आज्ञा पाकर, प्रभु चरण कमल का ध्यान किया। अन्मन्सक मन से व्यथित हो, व्रज को फिर प्रस्थान किया।।
पूर्णकाम वह हो थीं चुकीं, नहीं वासना कोई शेष रही। कृष्ण प्रेम सुधा रस पी, वह अपने आपको भूल गईं।।
इक दिन धेनु चराते हुए, ग्वाल बालों को संग लिये। कृष्ण बलराम दोनों ही, वृन्दावन से अति दूर गए।।

ग्रीष्म ऋतु में सूर्य की, रश्मि थीं अति प्रखर हुईं। घने वृक्षों की छाया ने, श्री कृष्ण पे छत्र ज्यों तान दी।।
स्तोककृष्ण अंशु श्रीदामा, सुबल अर्जुन और विशाल। ऋषभ तेजस्वी देवप्रस्थ, वरुपथ आदि संग थे ग्वाल।।
श्री कृष्ण ने इन वृक्षों को, जब यूं छाया करते देखा। नाम लेई पुकारे सभी, फिर उनको यह वचन कहा।।

कृष्ण बोले,
प्रिय मित्रों देखो तो सही, हैं वृक्ष यह कितने भाग्यवान। सम्पूर्ण जीवन इनका, पर कल्याण को हो बलिदान।।
वायु के थपेड़े वर्षा धूप, पाला यह सब स्वयं सहें। किन्तु हम लोगों की वह, इन सबसे रक्षा करें।।

मैं तो कहूं इनका जीवन, ही जानो है सर्वश्रेष्ठ। आश्रय पायें सब जीव यहां, जीवन निर्वाह भी हो श्रेष्ठ।।
जैसे किसी सज्जन से कभी, याचक कोई खाली न जाये। वैसे ही सबको यहां से, कुछ न कुछ मिल ही जाये।।

अपने पत्ते फूल पल, छाया जड़ और छाल दें। लकड़ी गन्ध गोंद राख, कोयला तक भी यह रे दें।।
निज अंकुर और कपोलों से, भी कामना पूर्ति सबकी करें। दूजों के कल्याण हित, सर्वस्व न्यौछावर यह कर दें।।

प्रिय मित्रो संसार में, प्राणी तो हैं अनेकों ही। किन्तु इस जीवन की है, सफलता तो बस इतनी ही।।
निज धन विवेक विचार से, वाणी से और प्राणों से। लोक कल्याण कारक ही, कर्म सदा किये जायें।।

१३) यज्ञपत्नियों पर कृष्ण की कृपा

शुकदेव बोले,
दोनों ओर के वृक्षों पर, खिली थीं नव कोमल कोंपल। फल फूलों के गुच्छे और, पत्तों से वह रहे थे लद।।
इनके भार से डालियां, थीं धरा तक उनकी झुकीं। निज मित्रों को श्री हरि ने, इस प्रकार सम्भाषण दी।।
उन्हीं के बीच से होते हुए, प्रभु यमुना तट पे निकल आये। यमुना का निर्मल नीर देख, मन सबके अति हर्षाये।।

हे राजन् शीतल मधुर, और स्वच्छ जल था यमुना का। पहले गायों को पिलाया वह, फिर स्वादु जल उन्होंने पिया।।
हरे भरे उपवन में जब, थे यमुना तट पे घूम रहे। धेनुन् और वत्सों को वे, थे हरी घास पे चरा रहे।।
उसी समय कुछ ग्वाल बाल, भूख से थे व्याकुल हुए। श्री कृष्ण और बलराम पे जा, उन्होंने फिर यह वचन कहे।।
गोपी बोली,
आनन्द स्रोत बलराम हे, हो महा पराक्रमी आप ही। महादुष्टों का संहार किया, हे कृष्ण तूने आप ही।।
आज यह भूख भी दुष्ट बनी, बहुत है हमें सता रही। इसकी शान्ति का मित्रो, उपाय करो कुछ आप ही।।

शुकदेव बोले,
हे राजन् जब ग्वालों ने, यह बिनती करी श्री कृष्ण से। मथुरा की भक्त ब्राह्मणियों पे, कृपा करने के लिये।।
देवकी नन्दन कृष्ण ने, उस पल यह युक्ति रची। अपने मित्र ग्वालों से, उन्होंने फिर यह बात कही।।
कृष्ण बोले,
प्रिय मित्रो तनिक सी दूरी पर, अंगीरस यज्ञ है हो रहा। वेदवादी ब्राह्मणों ने, स्वर्ग कामना से यह रचा।।
उनकी यज्ञशाला में, प्रिय मित्रों तुम चले जाओ। मेरे द्वारा हो भेजे गए, जाकर उनसे यही कहो।।

मेरे अग्रज राम और मेरा, वहां जाकर तुम नाम लो। थोड़ा भात भोजन सामग्री, उनसे कुछ तुम ले आओ।।

शुकदेव बोले,
प्रभु से आज्ञा पाते ही, ग्वाल यज्ञ शाला में गए। जैसा प्रभु ने था कहा, अन्न मांगने वह लगे।।
भूमि पर गिरकर पहले, दण्डवत् प्रणाम किया। कर जोड़ी ब्राह्मणों से, फिर उन्होंने यह वचन कहा।।
गोप बोले,
मूर्तिमान हो देव आप, इस पृथ्वी पर हे ब्राह्मणों। हम हैं ग्वाल व्रजभूमि के, आपका कल्याण हो।।
श्री कृष्ण और बलराम से, आज्ञा पाई है हमने। कृपा कर हे देव आप, अब बिनती हमारी सुनें।।

श्री कृष्ण राम दोनों भाई, तनिक दूरी पे ठारे हैं। धेनु चरावत कारण ही, वे आज यहां पधारे हैं।।
क्षुधा ने है सताया उन्हें, थोड़ा भात आप दे दें। हैं धर्म मर्म के ज्ञाता आप, श्रद्धानुसार ही आप दें।।
पशु बलि जिस यज्ञ में हो, या सौत्रामणि वह यज्ञ हो। दीक्षित पुरुष के लिये कहें, उस अन्न का निषेध हो।।
इसके सिवा किसी भी समय, किसी यज्ञ में दीक्षित जो। उसके अन्न भक्षण में, कहीं पे कोई दोष न हो।।
ऐसा ही तो शास्त्रों में, विधि विधान उल्लेख हो। भुभुक्षु जन को अन्न दें, इतनी कृपा आपकी हो।।
शुकदेव बोले,
हे राजन् उन ब्राह्मणों ने, श्रवण तो उनका किया। भगवान अन्न हैं मांग रहे, नहीं इस बात पे ध्यान दिया।।
स्वर्गादि के तुच्छ फल, ही वह ब्राह्मण चाहते थे। इस कारण वह बड़े बड़े, कर्मों में ही थे उलझ रहे।।
सच जानो तो वह ब्राह्मण, थे ज्ञान दृष्टि से बालक ही। किन्तु निज को मान रहे, महापण्डित महाज्ञानी ही।।

हे राजन् यह देश काल, और भान्त भान्त की सामग्रियां। प्रयुक्त मन्त्र भिन्न कर्मों में, अनुष्ठान की भिन्न पद्धतियां।।
ऋत्विज ब्रह्मा सब यज्ञ के, और सब पूजन कर्ता भी। अग्नि देवता यजमान, यज्ञ और सब धर्म भी।।
इन सब रूपों में एकमात्र, भगवान प्रकट हैं हो रहे। इन्द्रिय अतीत वह परं ब्रह्म, ग्वालों की राह मांग रहे।।

पर महामूढ़ यह ब्राह्मण जन, निज को तन ही माने थे। भगवान को भी तनधारी मान, सम्मान न उनका कर सके।।
न तो हां ही कहा उन्होंने, न ही उन्होंने नहीं कहा। हे राजन् तब ग्वालों के, मन का धीरज टूट गया।।
निराश होई वह लौट आये, और सारी बात बताई उन्होंने। श्री कृष्ण और बलराम को, सारी कथा सुनाई उन्होंने।।

उनकी बात को सुनकर के, जगदीश्वर हंसने लगे। सखा ग्वाल बालों को वह, तत्त्व की बात सुझाने लगे।।
असफलता तो इस जग में, बार बार ही मिलती है। निराश नहीं होना चाहिए, पुन: श्रम से सफलता मिलती है।।
निज मित्रों को फिर हरि ने, पुन: नव आदेश दिया। इस बार जाओ वा पत्नियों पे, श्री कृष्ण ने उन्हें कहा।।
महाप्रेमी वे हैं मेरी, चित्त मुझमें ही लगाये हैं। उनसे कहो राम श्याम, दोनों यहां पे आये हैं।।
जितना भी चाहोगे सखे, वे भोजन तुमको दे देंगी। मेरे नाम पे तो वे सब, सर्वस्व न्यौछावर कर देंगी।।

अबकी बार वे ग्वाल बाल, पत्नी शाला में गए। सुन्दर वस्त्र आभूषणों से, थीं वे अलंकृत निज को किए।।
द्विज पत्नियों को जाकर, फिर ग्वालों ने प्रणाम किया। और विनम्र भाव से, उनको जा यह वचन कहा।।

गोप बोले,
हे विप्र पत्नियों आपको, नमस्कार हम करते हैं। कृपा करी के बिनती सुनें, आपसे हम यह कहते हैं।।
श्री कृष्ण यहां से थोड़ी सी, दूरी पर हैं आये हुए। उनके द्वारा ही आपके, पास हैं हम भेजे गए।।

ग्वालन् और बलराम संग, वह धेनु चराने थे निकले। वन विहार करते हुए, वह बहुत दूर तक आ गए।।
वह और उनके साथी सब, भूख से हैं व्याकुल हुए। कृपा कर उनके लिये, कुछ भोजन का प्रबन्ध करें।।
शुकदेव बोले,
हे राजन् बहुत दिन से थीं, वह कृष्ण की लीला सुन रहीं। उन ब्राह्मण पत्नियों की, थी चित्त कृष्ण आसक्त हुई।।
सदा सर्वदा कृष्ण के, दर्शन को वह उत्सुक रहतीं। कृष्ण पास ही हैं आए, यह सुनकर विह्वल वे हो उठीं।।

अति स्वादु रुचिकर और हितकर, भोजन उन्होंने संग लिया। बहुत भाजनों में उन्होंने, चतुर्विधि फिर अन्न धरा।।
भक्ष्य भोज्य लेह्य चोष्य, चारों संग में ले लिये। भाई बन्धु पति पुत्र, सब उनको रोकते ही रहे।।
पर एक बात उन्होंने नहीं सुनी, प्रियतम मिलन को चल वह दीं। ज्यों नदियां सागर से मिलने के लिये हैं सदा बहतीं।।
कितने ही दिनों से कृष्ण के गुण, लीला माधुर्य सौन्दर्य का। श्रवण करी उन अपना हृदय, प्रभु चरण पे था वारा।।

ब्राह्मणियों ने जा देखा, यमुना के सुन्दर तट पे। सुशोभित नव कोंपलों से, प्रफुल्लित अशोक वन में।।
ग्वाल बालों से घिरे हुए, श्री कृष्ण राम हैं घूम रहे। श्यामल शरीर पे स्वर्णिम से, पीताम्बर लहरा रहे।।
कण्ठ में वनमाला सोहे, सीस पे साजे मोर मुकुट। अंग अंग में भिन्न भिन्न, धातु की चित्रकारी रही सज।।
नव कोंपलों के गुच्छों से सजा, नट का सा वेश है धरा हुआ। इक हाथ धरा निज सखा कान्ध, दूजे में कमल का पुष्प नचा।।
कानों में कमल के कुण्डल हैं, घुंघराली अलकें कपोलों पर। मुख कमल मन्द मुसकान लिये, मधु स्मित से हैं खिले अधर।।

अब तक निज प्रियतम सांवरे की, लीलाओं का श्रवण किया। उनके गुणगान को सुन करी, मन था उनके ही रंग में रंगा।।
अब नेत्रों कीराही उन्हें, अपने आन्तर वह ले गई। बहुत देर मन ही मन वह आलिंगन उनका करती रहीं।।
इस भान्ति निज हृदय की, प्रेम अग्न को शान्त किया। जन्म जन्म की प्यास ज्यों, प्रियतम दर्शन ने दी बुझा।।
ज्यों जाग्रत स्वप्न अवस्था में, यह वृत्तियां नित्य ही क्षुब्ध रहें। अहं ममत्व के भाव से, यह सदा ही जलती रहें।।
किन्तु सुशुप्ति में उसके, अभिमानी प्राज्ञ को पाकर के। उसी में लीन हो जाती हैं, सारी जलन ही शान्त भये।।

हृदयस्थ प्रभु तो जानें सब, वे सबकी बुद्धि के साक्षी। उन्होंने देखा यह द्विज पत्नियां, भाई बन्धु के रोके भी।।
निज पति पुत्र बन्धु बान्धव, विषयों की आशा छोड़ आईं। उनके रोकने पर भी यह, मेरे दरस की आशा से आईं।।
हास्य तरंगों से उनका, मुख कमल फिर खिल उठा। श्री हरि ने सप्रेम फिर, ब्राह्मण पत्नियों को कहा।।

कृष्ण बोले,
महाभाग्यवती हे देवियों, स्वागत है सखी आपका। आओ पधारो बैठो यहां, सम्मान करें कस आपका?
हमारे दर्शन की इच्छा, खेंच के तुमको ले आई। प्रेम पूर्ण हृदय के, है यह तो अनुरूप ही।।

इस संसार में जो भी जन, कल्याण की इच्छा करते हैं। विवेकी जन प्रियतम जानी, प्रेम मुझी से करते हैं।।

उनके प्रेम में किसी विधि, कामना कोई नहीं रहती। नहीं कोई विघ्न छिपाव वहां, संकोच या द्वैत नहीं रहती।।

तन मन बुद्धि और प्राण, सुत दारा सम्पद् स्वजन सभी। जिसके कारण सब लगें प्रिय, जिनकी सान्निध्य अर्थ देती।।
उस आत्म परमात्म से, मुझ कृष्ण से कौन है अधिक प्रिय? इस कारण उचित ही है, आगमन तुम्हारा मेरे लिये।।
इस प्रेम का हे सखी, अभिनन्दन मैं करता हूं। किन्तु अब दर्शन कर चुकी, इस कारण अब कहता हूं।।
अब निज यज्ञशाला में, लौट के ही चली जाओ। गृहस्थ ब्राह्मण पतियों का, नहीं पूर्ण क्योंकर यज्ञ यह हो?
संग तुम्हारे मिलकर ही, पूर्ण वह कर पाएंगे। यज्ञ जो हैं वह कर रहे, सफल तभी हो पाएंगे।।
ब्राह्मण पत्नियां बोली,
अति निष्ठुर यह वचन हैं, हे अन्तर्यामी प्रभु। नहीं ऐसी बातें कहें आप, नहीं आपके मुख से सोहें प्रभु।।
श्रुति कथन तो यह ही है, हमने सुना है बार बार। नहीं लौटे संसार में, जो आपको प्राप्त हो एक बार।।
अपनी इस वेदवाणी को, सत्य आप प्रभु कीजिये। बन्धु बान्धव सबकी ही, आज्ञा का उल्लंघन ही करके।।

हम आपके चरण में आई हैं, इनके सेवन के लिये। जो तुलसी माल चरण से गिरे, निज सीस पे धारण हम करें।।
हे स्वामी हमारे पति पुत्र, मात पिता भाई बन्धु। नहीं स्वीकार करेंगे हमें, कहें अन्य की क्या करुणा सिन्धु।।
हे प्रभु आपकी शरण में, ही हैं हम अब आन पड़ीं। नहीं अन्य सहारा कोई हमें, नहीं अन्य किसी का आश्रय भी।।
इसलिए हे हरि आप, कुछ ऐसी व्यवस्था कीजिये। किसी अन्य की शण में, अब जाना हमें नहीं पड़े।।

भगवान बोले,
हे देवियों आपसे सत्य कहूं, बात यह मेरी मान लें। तेरा पति पुत्र माता पिता, तिरस्कार तेरा नहीं करें।।
भाई बान्धव की बात ही क्या, पूर्ण जग तेरा सम्मान करे। इसका भी कारण है क्या, अब आप इतना जान लें।।
अब तुम हो मेरी हो गई, तुम हो अब मुझसे युक्त हुई। देवता गण ने भी देखो, अनुमोदन मेरे वचनों की करी।।

जानो तुम इस संसार में, मम अंग संग गर मिल जाये। जीवों में फिर अनुराग या, प्रीति विघ्न न बन पाये।।
इसलिये तुम यह अपना, मन मुझको ही दे जाओ। बहुत अल्प काल में मुझे मिलो, मेरा वचन सत्य यह मान लो।।

शुकदेव बोले,
श्री हरि ने जब यूं कहा, यज्ञ शाला में लौट आईं। ब्राह्मणों निज पत्नियों पर, तनिक दोष दृष्टि न करी।।
उनके साथ फिर मिल करके, यज्ञ पूर्ण उन्होंने किया। इस भान्ति ब्राह्मणों का, सकाम यज्ञ पूर्ण हुआ।।

उनमें से इक स्त्री को, जाने से पति ने था रोका। बलपूर्वक उसे रोक करी, न कृष्ण का दर्शन करने दिया।।
बहुत दिन से जैसा था सुना, उस रूप को मन में लिया बसा। उस ब्राह्मण पत्नी ने तब, मन ही मन उनका ध्यान किया।।
जब ध्यान स्थिर उसका हुआ, मन ही मन प्रभु से जा लिपटी। कर्मजम नश्वर देह यह, फिर तत्क्षण उस त्याग दी।।

उधर कृष्ण के लिये जो, ब्राह्मणियां थीं अन्न लाईं। पहले ग्वाल बालों को, चतुर्विध अन्न वह बर्ताई।।
फिर प्रभु ने स्वयं वह, प्रेम पूर्ण प्रसाद लिया। इस भाँति निज प्रेमियों के, प्रेम का उन सत्कार किया।।

लीला पुरुष श्री कृष्ण ने, मनुज की सी लीला करी। निज वाणी कर्म सौन्दर्य और, माधुर्य से आनन्द दी।।

गौएं ग्वाल गोपिका गोप, आनन्दित सबका हृदय किया। स्वयं भी आह्लादित हुए, प्रेम रस आस्वादन पा।।

हे राजन् ब्राह्मणों ने, जब जाना कृष्ण तो हैं हरि। पश्चाताप उन्हें होने लगा, अवज्ञा हमने क्यों करी।।
जगदीश्वर कृष्ण बलराम की, आज्ञा का उल्लंघन जो किया। यह तो महा अपराध ही, हम सबसे है हो गया।।
मनुज की सी जो लीला करें, वह तो परमेश्वर ही हैं। इस धरा पर उतरे हुए, वह स्वयं ईश्वर ही हैं।।

जब उन्होंने देखा यह, उनकी भार्याओं के हृदय में। प्रभु के अलौकिक प्रेम ने, रसामृत अपने भर दिये।।
और हम तो उस प्रेम से, रीते ही हैं रह गए। तब पछता कर अपने पर, वे अपनी निन्दा करने लगे।।
ब्राह्मण बोले,
हाय हम मन्दभागी तो, कृष्ण विमुख ही हो गए। उच्चतम कुल में जन्म लिया, गायत्री से द्विजाति हुए।।
वेदाध्ययन किया हमने, महायज्ञ हमने किए। किन्तु हा धिक् धिक् है हमको, हैं यह सब किस काम के?
व्यर्थ गई विद्या हमरी, सब व्रत भी निष्फल हुए। धिक्कार है ऐसा उच्च जन्म, अनुष्ठान यह कर्मकाण्ड के।।

है महामोहिनी प्रभु माया, महायोगियों को भी यह मोह ले। इस कारण ही गुरु ब्राह्मण, कहलाने वाले हम भूले।।
निज वास्तविक स्वार्थ न समझे, न ही परमार्थ जान सके। सच्चा लाभ क्या जीवन का, हैं इससे विस्मृत हुए।।

अहो आश्चर्य है देखो तो, यद्यपि हैं यह नारियां। जगद्गुरु श्री कृष्ण में, है कैसा अनुराग भरा।।
इनके अगाध इस प्रेम ने, गृहस्थ का फंदा भी काटा। जो मृत्यु के आने पर, भी नहीं कभी कट सकता।।

न तो यज्ञोपवीत आदि, हैं द्विजातीय संस्कार हुए। न ही गुरुकुल में कभी, इन्होंने हैं निवास किए।।
न ही कोई तपस्या करी, आत्म सम्बन्धी विवेक नहीं। वह तो दूर की बातें हैं, नहीं पावनता शुभ कर्म कहीं।।

फिर भी योगेश्वर श्री हरि के, चरणों में दृढ़ अनुराग हुआ। हमने संस्कार हैं सारे किये, और गुरुकुल में भी निवास किया।।
तप और अनुसन्धान किया, पवित्रता का पालन किया। शुभ कर्म भी बहुत किये, प्रभु प्रेम न हृदय में पनप सका।।

सच तो यह गृहस्थी के, काम काज में मग्न थे हम। निज अकल्याण कल्याण प्रति, पूर्णतय: थे विस्मृत हम।।
अहो हरि की कितनी कृपा, उन ग्वाल बालों को भेजा। भक्त वत्सल श्री प्रभु ने, चेत हमें उन द्वारा किया।।

आप्तकाम हैं प्रभु स्वयं, सब कामना पूर्ण आप करें। कैवल्य मोक्ष पर्यन्त वह, सब कामना पूर्ति कर सकें।।
सचेत न करना चाहते गर, तो प्रयोजन ही क्या था? क्षुद्र जीव हम जैसे जो, उनसे मांगना क्यों होता?
यह तो बहाना मात्र था, हमें अपनी याद दिलाने का। लीला पुरुष श्री कृष्ण की, नव लीला दिखलाने का।।

जिन चरणारविन्द का, स्पर्शन् पाने के लिए। अन्य सभी देवों सहित, चापल्य गर्व लक्ष्मी त्यागें।।
जिनकी सेवा में निरन्तर, अहर्निश वह रहा करें। वह प्रभु किसी अन्य से, भोजन की याचना करें।।

हैं यह इक लीला ही उनकी, हमको मोहित करने के लिये। अन्यथा प्रभु की लीला का, प्रयोजन ही क्या हो सके?

देश काल और अन्य सभी, पृथक् पृथक् जो सामग्री। कर्मों में प्रयुक्त मन्त्र, और अनुष्ठान की पद्धति।।
ऋत्विज अग्नि और देवता, यजमान यज्ञ और धर्म। हैं सब ही रूप भगवान के, जो भी हैं जहां पे कर्म।।

योगेश्वरों के परम ईश्वर, स्वयं ही हैं जो प्रभु विष्णु। अवतीर्ण हुए यदुवंश में, श्री कृष्ण का धर के तनु।।
सुना तो था हमने ऐसा, पर बुद्धि अति विमूढ़ भई। जब अवसर हमको मिला, पहचान ही उनको नहीं सकी।।

इतना सब होने पर भी, धन्य धन्य हम सब हुए। ऐसी पत्नियां मिली हमें, धन्य भाग्य हमारे भए।।
उनकी भक्ति का ही तो, कुछ ऐसा प्रभाव हुआ। श्री कृष्ण के अविचल प्रेम में, अब बुद्धि और मन टिका।।

हे प्रभो आप अचिन्त्य हैं, अनन्त ऐश्वर्यों के स्वामी। अगाध ज्ञान प्रभु आपका, माया से भ्रमित यह बुद्धि हुई।।
कर्मों के जंजाल में, प्रभु हैं हम जाकर फंसे। पथ भूले हैं हम प्रभु, नमस्कार करें चरणन् में।।
आदि पुरुष श्री कृष्ण हमारे, इस अपराध को क्षमा करें। उनकी माया से मोहित बुद्धि, प्रभाव न उनका जान सके।।
शुकदेव बोले,
हे राजन् उन ब्राह्मणों ने, था कृष्ण का तिरस्कार किया। अपने अपराध की याद से, पश्चाताप अति घोर हुआ।।
उनके हृदय में कृष्ण राम के, दरस की जिज्ञासा उठी। किन्तु भयभीत थे कंस से, इस कारण दरस न हो सकी।।

श्री बलराम के साथ कृष्ण, वृन्दावन में रहते थे। भान्ति भान्ति की लीलायें, वे नित्य निरन्तर करते थे।।
इक दिन उन्होंने देखा राजन्, महा आयोजन हो रहा। सब गोपों ने मिलकर के, इन्द्र यज्ञ योजन किया।।

अन्तर्यामी सर्वज्ञ हैं, सर्व विधि श्री कृष्ण जानो। प्रभु स्वत: ही सब कुछ जाने हैं, नहीं उनसे छिपा कुछ भी मानो।।
फिर भी सीस झुकाकर वह, नन्दबाबा के पास गए। विनम्रता पूर्ण वयोवृद्ध, गोप से उन्होंने प्रश्न किये।।
भगवान बोले,
कौन सा उत्सव आया है, जो श्रम इतना कर रहे? हे पिता श्री आप कहें, कौन से फल इसके होंगे?
किस उद्देश्य से कौन लोग, किन साधनों से यह यज्ञ करें। कृपा कर यह बतायें आप, और ज्ञान मेरा वर्धन करें।।

हे पिता आपका पुत्र हूं मैं, सुनने को अति उत्सुक हुआ। जो सन्त पुरुष सबको ही, अपना ही आत्मा मानता।।
अपने पराये का भेद, नहीं दृष्टि जिसकी कर सके। न ही कोई मित्र न शत्रु है, न कोई उदासीन ही रहे।।
उसके पास छिपाने को, कोई भी बात नहीं होती। किन्तु गर यह स्थिति न हो, तो निहित बात है छिपी रहती।।
शत्रु की न्याईं उदासीन, से भी न गुह्य बात कहे। मित्र तो आत्म सम ही है, उससे न कोई रहस्य रहे।।

अज्ञानवश यह जीव अनेकों, कर्मों का अनुष्ठान करे। कामनापूर्ति ही उसके, कर्मों का इक हेतु भए।।
विवेकी के सब कर्म ज्यों, सफल सदा ही हुआ करें। अज्ञानी के कर्मों में तो, वैसी सफलता नहीं मिले।।
अत: आप सब इस समय, जो कर्म हैं करने जा रहे। जानना चाहूं पिता श्री, क्या सुहृदों संग विचार किये?
क्या शास्त्र विहित हैं यह कर्म, या फिर लौकिक ही है यह? कृपा कर हे पिता श्री, स्पष्ट ही मुझसे आप कहें।।
नन्द बोले,
जानो पुत्र भगवान इन्द्र, हैं जलधर मेघों के स्वामी। उन्हीं का अपना रूप है, यह श्यामल सुन्दर मेघ सभी।।
जीवनदायी अमृत समान, जल वह ही बरसाते हैं। प्यासी धरती और जीवों को, तृप्त वही कर जाते हैं।।

प्रिय पुत्र हम सब ही जन, उन इन्द्र की पूजा करते हैं। यज्ञों द्वारा ही सदा, हम तुष्टित इन्द्र को करते हैं।।

जिनसे यज्ञ यह सम्पन्न हो, सामग्री वह जो भी है। उनके ही बरसाये हुए, जल से उत्पन्न होती है।।

उनका यज्ञ यह कर करी, शेष जो भी बचा रहे। उससे ही हम जीव सब, निज जीवन निर्वाह करें।।
उसी अन्न से सारे जीव, अर्थ धर्म और काम हेतु। जीवन अपना लगाया करें, त्रिवर्ग की सिद्धि के हेतु।।
कृषि आदि यह जितने भी, जीव के सब प्रयत्न हों। उन सबका फल देने में, इन्द्र ही तो सक्षम हों।।

कुल परम्परा से सदा, इस धर्म का है पालन किया। परम्परा गत धर्म का, जो पालन जीव नहीं करता।।
काम लोभ भय या द्वेष, जिसको यह धर्म न करने दें। हे पुत्र तुम जान लो, उसका मंगल कभी न होए।।
शुकदेव बोले,
ब्रह्मा शंकर आदि पर भी, जो प्रभु सदा शासन करें। उन केशव भगवान ने, नन्दबाबा के यह वचन सुने।।
इन्द्र के महा क्रोध को, वह भड़काना चाहते थे। निज पिता नन्दबाबा से, फिर उन्होंने यह वचन कहे।।

कृष्ण बोले,
हे पिता श्री निज कर्मों से, ही यह प्राणी उत्पन्न हों। कर्मन् के अनुसार ही, मरण भी उसका निश्चित हो।।
कर्म अनुकूल ही सुख दु:ख, भय और मंगल सब मिलें। कर्मों के अनुसार ही, इन सबका निमित्त बने।।

कर्म को गर न मानकर, किसी अन्य को ही ईश्वर मानें। कर्मों से भिन्न ही जीव का, कर्मफल दाता गर मानें।।
तो भी कर्मनुकूल ही तो, वह भी फल दे सकता है। अकर्ता पर तो उसका कभी, प्रभुत्व नहीं चल सकता है।।
अपने अपने कर्मों का जब, सब प्राणी ही फल भोगें। तब इसमें कहें इन्द्र का, कहां स्थान कोई हो सके?

हे पिता श्री जब पूर्व के, संस्कारों से ही सब पायें। उसका तो किसी विधि, न इन्द्र निवारण कर पाये।।
फिर उससे प्रयोजन क्या, यह पूजन क्यों किया जाये? है संस्कार अधीन जीव, अनुसरण उसी का किये जाये।।
देव असुर या जीव भी, तदनुकूल वर्तता है। यह जगत् सम्पूर्ण ही, स्वभाव में ही स्थित रहता है।।

कर्मों के अनुकूल उसे, उत्तम या अधम शरीर मिले। उनके ही अनुसार तो, तन का विमोचन भी होए।।
यह मित्र मेरा यह शत्रु है, और उदासीन हैं यह। कर्मों के अनुकूल ही, ऐसे भाव में जीव रहे।।
जानें कर्मन् का महत्व, है कर्म ही ईश्वर कर्म गुरु। हे पिता श्री इन कर्मन् की, और मैं महिमा क्या कहूं?

हैं कर्म ही सर्वश्रेष्ठ, हे तात् आप यह जान लें। पूर्व संस्कारों से मिले, जो वर्ण और आश्रम उसे।।
जीव का यह कर्त्तव्य है, उन धर्मों का पालन करे। हर अवस्था में ही जीव, कर्म का ही आदर करे।।
जिस भान्ति भी जीव की, आजीविका सुगमता से चले। वही है उसका इष्ट देव, हे पितु आप यह जान लें।।

ज्यों ब्याहता निज पति छोड़, किसी अन्य का सेवन करे। व्याभिचारिणी स्त्री वह, शान्ति कभी न पा सके।।
त्यों ही अपनी आजीविका, देने वाले इक इष्ट को। छोड़ के किसी अन्य की, उपासना से सुख प्राप्त न हो।।

ब्राह्मण का है धर्म यह, वेदाध्यापन अध्ययन करे। क्षत्रिय करे पृथ्वी पालन, और वैश्य वार्ता वृत्ति करे।।
इन तीनों ही वर्णों की, सेवा शूद्र का धर्म है। यह ही उसकी आजीविका है, जीवन निर्वाह का कर्म है।।

HHH(१००)HHH

वैश्यों की आजीविका, है चार प्रकार की। कृषि वाणिज्य गोरक्षा, व्याज लेना उनकी वृत्ति।।
इन चारों में से एक ही, गोपालन है हमने किया। सदा से ही हे पिता श्री, रहा यही काज हमारा।।

इस संसार की स्थिति, उत्पत्ति और अन्त है जो। सत्व रज और तमोगुण, ही हैं क्रमश: कारण जानो।।
विविध भान्ति का सम्पूर्ण, जगत् भी जो उत्पन्न हो। स्त्री पुरुष संयोग से, रजोगुण द्वारा ही हो।।

उसीसे प्रेरित होकर के, वारिमुच जल बरसायें। उसीसे उत्पन्न अन्न हो, जन जन उससे पुष्टि पायें।।
इन सबमें इन्द्र का, भला कहो क्या काम है? वह कर ही क्या सके यहां, व्यर्थ में उसका नाम है।।

हे पिता हमारे पास तो, न किसी देश का राज्य है। नहीं बड़े नगर या ग्राम पर, कोई अपना अधिकार है।।
नहीं हमारे पास तो, सदा सुरक्षित घर भी कोई। हम तो वनवासी सदा के हैं, है घर अपना वन पर्वत ही।।

गौ ब्राह्मण और गिरिराज, ही पूज्य हैं हम सबके लिये। इसलिये उन सबके ही, यजन की हम तैय्यारी करें।।
जो जो सामग्री आपने, इन्द्र यज्ञ के लिये धरी। उससे ही इस यज्ञ का, हो अनुष्ठान आरम्भ अभी।।

व्रज का सारा दूध ही, अब एकत्रित करें सब। भाँति भाँति के व्यंजन, उससे हों परिपक्व तब।।
खीर पूरी हल्वा पूआ, सब की ही तैयारी हो। इन सबके संग मूंग की, दाल की भी तैयारी हो।।
वेदवादी ब्राह्मण आकर, अब हवन करें भली भाँति। भाँति भाँति के अन्न गायें, दक्षिणा दें सब उचित ही।।

और भी चाण्डाल पतित, और श्वानों को भी यथायोग्य। दिया जाये दान अब, हो गौ हेतु भोजन भी योग्य।।
तत्पश्चात् श्री गोवर्धन, गिरि को लगाया जाये भोग। फिर ग्वाल बाल सब मिलकर के, प्रसाद का करें उपभोग।।
पुष्टिकर प्रसाद पा, करें धारण सुन्दर वस्त्र भूषण। आलंकृत निज तन को करें, पहर के सुन्दर आभूषण।।
चन्दन का फिर तिलक लगा, करें प्रदक्षिणा इन सबकी। गौ ब्राह्मण अग्नि तथा, गिरिराज गोवर्धन की।।
हे पिता श्री जानें आप, यह ही तो है मेरी सम्मत्ति। यदि उचित लगे आपको, अपनाएं यह ही नीति।।
ऐसा यज्ञ तो गौ ब्राह्मण, गिरिराज को प्रिय लगे। उनके संग संग मेरे भी, मन को यह अतिशय भाए।।

शुकदेव बोले,
हे राजन् कला पुरुष, भगवान तो यह बस चाहते थे। किसी विधि भी इन्द्र का, गर्व वह चकनाचूर करें।।
नन्दबाबा आदि गोपों ने, बहुत ध्यान से उनकी बात सुनी। और प्रसन्नता चित्त में भरी, उनकी बात यह मान ली।।

भगवान कृष्ण ने तब जैसा, उन गोपों को था कहा। उन सबने वैसा ही, यज्ञ फिर आरम्भ किया।।
सर्वप्रथम ब्राह्मणों से, स्वस्ति वाचन उन्होने करवाया। उसी समिधा से गिरिराज, और ब्राह्मणों को फिर पुजवाया।।
सादर भेंट दी उन सबको, गईयों को हरित दूब दे ही। नन्दबाबा आदि गोपों ने, फिर गईयां सब आगें करीं।।
गिरिराज प्रदक्षिणा का, इस विध आयोजन किया। इसी क्रम में उन्होंने गिरि का परिभ्रमण आरम्भ किया।।

ब्राह्मणों से आसीस ली, उन्होंने और सब गोपियों ने। भली भाँति श्रृंगार करी, सब बैलगाड़ी में जा बैठे।।
भगवान कृष्ण की लीलाओं, का गान वह करने लगीं। इस भाँति गिरिराज की, परिक्रमा आरम्भ हुई।।

गोपों के विश्वास को, दृढ़ीभूत करने के लिये। लीलाधर श्री कृष्ण ने, नवीन कौतुक एक किये।।
गिरिराज के ऊपर इक, विशाल तनु धारण किया। प्रकट हुए श्री हरि वहां, मैं ही गिरिराज हूं ऐसा कहा।।
इस प्रकार कहकर प्रभु, समेटने सब सामग्री लगे। ज्यों उस यज्ञ की भेंट सब, गिरिराज ग्रहण हों कर रहे।।

उस बृहत् रूप को देखकर, सब व्रजवासिन् को संग लिया। सबके साथ मिली कृष्ण ने, उस रूप को प्रणाम किया।।
फिर नटवर कहने लगे, अहो कैसा आश्चर्य हुआ। साक्षात् प्रकट हो गिरिवर ने, देखो हम पर कीनी कृपा।।

जैसा भी जिस पल चाहें, यह रूप हैं धारण कर सकते। निरादर जो वनवासी करें, उनको यह नष्ट हैं कर देते।।
आओ सब मिलकर अपना, और गौर का कल्याण करें। इन गिरिराज के चरणों में, आओ हम सब प्रणाम करें।।

इस प्रकार श्री कृष्ण से, ही यह प्रेरणा पाकर के। नन्दबाबादि वयोवृद्धों ने, गिरिवर को सीस झुकाकर के।।
गौ ब्राह्मण आदि के संग, विधिवत् वा पूजन किये। और कृष्ण के साथ सभी, व्रज धाम को पुन: लौट चले।।

१४) गोवर्धन लीला

शुकदेव बोले,
जब इन्द्र ने यह जाना, मेरी पूजा है बन्द हुई। हे राजन् तब क्रोध से, इन्द्र की मति ही भ्रष्ट हुई।।
नन्दबाबा आदि गोपों पर, अति क्रुध वह हो गए। पर इन्द्र का क्रोध क्या कर से, जिनके रक्षक प्रभु स्वयं भए।।

अति गर्व था इन्द्र को, अपने बल और निज पद का। मैं ही त्रिलोक का ईश्वर हूं, ऐसा था वह मान रहा।।
क्रोध से तिलमिलाया वह, सांवर्तक गण को बुला लिया। प्रलयकर इन मेघों को, उसने दी फिर यह आज्ञा।।
इन्द्र बोले,
देखो तो सही इतना साहस, इन वनवासी ग्वालों का। वास्तव में तो जान लो, है यह इक धन का नशा।।
देखो तो सही साधारण बाल, कृष्ण पर विश्वास कर। उसके कहे मुझे देवराज, इन्द्र का है अपमान किया।।
ज्यों इस पृथ्वी पर जानो, अनेकों जीव ही ऐसे हैं। भवसागर से पार तो, वह उतरना चाहते हैं।।

अभिमानी और नादान है, मूर्ख बकवादी कृष्ण बड़ा। किन्तु अपने आपको, महाज्ञानी है समझ रहा।।
स्वयं तो है तन धारी वह, है मृत्यु मुख का ग्रास ही। फिर भी उसके आसरे, गोपों ने मेरी अवहेलना की।।

यूं ही नशे में चूर थे, अपने धन और सम्पद् के। इस कृष्ण ने आकर के, और भी यह वर्धित किये।।
अब आओ सांवर्तक तुम, तोड़ दो तुम इनका यह गर्व। अभिमान मिलाओ धूलि में, संहारो इनके पशु सर्व।।

ऐरावत पर चढ़कर मैं, चलूंगा तुम्हारे साथ ही। महाबली मरुद्गण को, लेकर अपने अंग संग ही।।
व्रज का नाश करने के लिये, पीछे पीछे आता हूं। तुम आक्रमण करो व्रज पर, मैं तुम्हारा साथ निभाता हूं।।

शुकदेव बोले,
प्रलयकारी उन मेघों को, यह आज्ञा दी इन्द्र ने। उनके सब बन्धन खोल दिये, व्रज पे आक्रमण वह कर सकें।।
अति वेग से नन्दबाबा, के व्रजपर वह चढ़ी आये। मूसलाधार जल बरसा कर, पीड़ित सभी व्रजवासी किये।।

चहुं ओर दामिनी चमके थी, बादल भी थे गरज रहे। इक दूजे से टकराकर, मानो कड़कने वह लगे।।
प्रचण्ड आन्धी के मिलने से, मानो नव प्रेरणा उन्हें मिली। बड़े बड़े ओलों की फिर, बरसात वहां आरम्भ हुई।।

दल के दल बादल इस भाँति, बार बार जब आने लगे। खम्भे समान मोटी धारा, जल की वह बरसाने लगे।।
व्रजभूमि का कोना कोना, जल निमग्न ही हो गया। कहां ऊंची नीची भूमि है, इसका ज्ञान भी नहीं रहा।।

निरन्तर वर्षा और आन्धी, जब अपना वेग दिखाने लगे। ठण्ड के मारे पशु सभी, शीत से ठिठुराने लगे।।
ग्वाल और ग्वालिनें भी, अति व्याकुल थीं हो गईं। सबने मिल श्री कृष्ण की, उस पल जाकर शरण गही।।

पीड़ित हुए सब वर्षा से, थे भिन्न उपाय कर रहे। निज शिशुओं को निज तन से, और सिर को भी थे छिपा रहे।।
काम्प रहा था उनका तन, श्री कृष्ण चरण में जा पहुंचे। हे प्रिय कृष्ण एक तुम्ही, तो हो रक्षक हम सबके।।

बड़भागी हे कृष्ण सुनो, तुम्हारे ही उज्ज्वल भाग्य से। हम सबकी रक्षा होगी, तुम्हारी ही अनुकम्पा से।।
इन्द्र के इस क्रोध से अब, तुम ही रक्षा हमारी करो। भक्त वत्सल कृष्ण हे, इक मात्र तुम्हीं तो रक्षक हो।।

प्रभु ने देखा वर्षा और, ओलों के तीव्र प्रहार से। पीड़ित होकर के व्रज में, सब बेहोश हैं हो रहे।।
वह समझ गये यह सारी, करतूत है दम्भी इन्द्र की। क्रोधवश होकर उसने, है ऐसी अनीति करी।।

कृष्ण बोले,
मन ही मन वह कहने लगे, है इन्द्र यज्ञ को भंग किया। इसीसे व्रज के नाश को, उसने है यह उपाय रचा।।
प्रचण्ड वायु को संग ले, यह बिना ऋतु के बरस रहा। मूसलाधार वर्षा के संग, ओलों का भी प्रहार किया।।

निज योगमाया से मैं, अब इसका उत्तर दूंगा। मूर्खता वश यह अपने को, लोकपाल है मान रहा।।
इसके धन ऐश्वर्य का, दम्भ दूर मैं कर दूंगा। अज्ञान में है यह सत् भूला, उसको भी चूर्ण ही कर दूंगा।।

प्राय: देवता लोग यह, सत्व प्रधान ही होते हैं। ऐश्वर्य और पद का इन्हें, दम्भ गुमान न सोहे है।।
सत्व च्युत इन देवों का, अब मान भंजन चाहिए। इससे ही वह अन्त में, महा शान्ति को पाएंगे।।

व्रजभूमि यह सारी ही, मेरे ही तो आश्रित है। मैं ही रक्षक हूं इसका, मेरे द्वारा यह स्वीकृत है।।
सन्तों की रक्षा करना, ही तो है इक व्रत मेरा। इसके पालन का भी अब, उचित समय है आ गया।।
निज योगमाया से ही, अब इनका रक्षण करूगा मैं। शरणागत की रक्षा का, वचन भी पूरा करूँगा मैं।।

शुकदेव बोले,
इक प्रकार कहकर प्रभु ने, फिर इक ऐसा खेल किया। एक हाथ से गिरिराज, गोवर्धन को उखाड़ लिया।।
ज्यों बरसाती छत्र पुष्प, हों बालक उखाड़ रहे। उसी विधि गिरिराज ही, श्री कृष्ण ने अपने कर धारे।।

कृष्ण बोले,
तत्पश्चात् श्री कृष्ण ने, उन गोपों को यूं कहा। माता पिता व्रजवासियों, और मेरे सब प्रिय सखा।।
अपनी गायें और अन्य, सामग्री लेकर तुम आओ। इस पर्वत्त के नीचे अब, विश्राम तुम सब पा जाओ।।

नहीं शंका तनिक भी तुम करो, कहीं गिरे न पर्वत हाथ से मम। नहीं किंचित् भी डरना तुम, यह तव बचाव की युक्ति मेरी।।

शुकदेव बोले,
श्री कृष्ण ने इस भाँति, जब आश्वासन सबको दिया। ढाढस उनसे पाकर के, ग्वालों का उत्साह बढ़ा।।
सबही ग्वाल अपना गोधन, आश्रित और छकड़ों सहित। पुरोहित भी लिये साथ में, और संग जो थे भृत्य।।
अपनी अपनी सुविधा से, उस गड्ढे में जाय घुसे। बना छत्र गिरिराज तब, उसके नीचे वह सुरक्षित थे।।

सब व्रजवासियों ने देखा, श्री कृष्ण ने यह कौतुक किया। भूख प्यास पीड़ा विश्राम, अपना उन्होने सब भुला दिया।।
सप्त दिवस निरन्तर ही, उस पर्वत को वह उठाये रहे। इक पग भी निज स्थान से, इधर उधर वह नहीं हुए।।

जब देखा श्री कृष्ण की, योगमाया का प्रभाव। आश्चर्यचकित तब हुआ इन्द्र, मानो खोये सब होशो हवास।।
संकल्प न पूर्ण हो सका, सब दम्भ मान जाता रहा। तत्पश्चात् मेघों को उस, वर्षा करने से रोक दिया।।

गोवर्धन गिरिधारी ने, जब देखा वर्षा बन्द हुई। आन्धी भी है थम गई, आकाश की बादल छटने लगी।।
घनघोर घटा को चीर कर, सूर्य देव भी प्रकट हुए। तब श्री कृष्ण ने गोपों से, अति मधुर यह वचन कहे।।
कृष्ण बोले,
निर्भय हो जाओ प्रिय गोपो, और तुम बाहर आ जाओ। निज स्त्री-बालक और गोधन, लेकर तुम अब बाहर आओ।।
देखो तो सही आन्धी पानी, सबका सब है थम गया। नदियां भी जो थीं उफन पड़ी, उनका भी जल नीचे उतरा।।
शुकदेव बोले,
प्रभु की ऐसी आज्ञा पाकर, बाहर सब आने लगे। निज गोधन नारी शिशु, वृद्धों को भी संग लाने लगे।।
अपनी सारी सामग्री थी, छकड़ों पर उन लाद ली। शनैः शनैः वे पर्वत के, नीचे से निकले सभी।।
श्री भगवान ने सब जन के, सामने ही ज्यों खेल किया। गिरिराज को पूर्ववत्, उसके स्थान पे धर दिया।।

व्रजवासियों के हृदय में था, प्रेमावेग उमड़ आया। पर्वत को भू पर रखते ही, इक इक जन उनके पास आया।।
हृदय से किसी लगाया उन्हें, किसी ने चुम्बन उनका लिया। विविध भाँति से सबने ही, श्री कृष्ण का सत्कार किया।।
बड़े प्रेम से गोपियों ने, श्री हरि का पूजन किया। दधि अक्षत जल आदि से, उनका मंगल तिलक किया।।
उन्मुक्त हृदय से दी आसीस, और उनके गुण गाने लगीं। उनकी महिमा गाती हुईं, थीं आरती वह उतार रहीं।।

यशोदा रोहिणी नन्दबाबा, बलराम ने भी आसीस दी। स्नेह आतुर हो कण्ठ लगा, कृष्ण को अपने अंक भरी।।
आकाश में स्थित सब देवता, साध्य सिद्ध और गन्धर्व। प्रसन्न मनी चारण सभी, उनकी स्तुति रहे थे कर।।
आकाश से फिर उनपर, फूलों की वर्षा होने लगी। शंख और दुन्दुभियों की, निनाद स्वर्ग में गूंज उठी।।
तुम्बरु आदि गन्धर्वराज, प्रभु की लीला गाने लगे। मधुर स्वरों में श्री हरि की, महिमा वह सुनाने लगे।।

तत्पश्चात् श्री कृष्ण ने, पुनः व्रज की यात्रा की। संग में श्री बलराम थे, सब ग्वाल बाल ने सेवा की।।
उनके साथ ही प्रेममयी, गोपिकागण भी सब चल दीं। हृदय में प्रेम वर्धन जो करें, वह लीला कृष्ण की गाने लगीं।।
गोवर्धन गिरधारी की, महिमा वह गाती हुईं। प्रेम आनन्द से अपने धाम, श्री वृन्दावन लौट चलीं।।

१५) इन्द्रका गर्वहरण और श्रीकृष्ण का नाम गोविन्द

शुकदेव बोले,
व्रज के गोप श्री कृष्ण के, अलौकिक ऐसे कर्म देख। विस्मित ही सब हो गए, हे राजन् यह लीला देख।।
श्री हरि की अनन्त शक्ति, से तो सब अनभिज्ञ थे। एकत्रित होकर वे सब, इस प्रकार कहने लगे।।
गोप बोले,
इस बालक के यह कर्म तो, हैं अति अलौकिक ही। हम ग्रामीण गंवारों के, यहां जन्म हुआ विस्मय कारी।।
नहीं योग्य हम इसके हैं, उचित नहीं यह हो सकता। इसकी दिव्यता का तो कहीं, जोड़ नहीं यहां हो सकता।।

ज्यों गजराज किसी कमल को, उन्मूलन कर ऊपर करे। इस नन्हें से सप्तवर्षीय, बालक ने गिरि उखाड़ लिये।।
एक हाथ से गिरिराज, गोवर्धन को धार लिया। सात दिनों तक खेल खेल, में ही उसे उठा रखा।।

ऐसा चमत्कार कोई, साधारण जीव न कर पाये। नन्हां शिशु ही जब यह था, इस चमत्कार बहुत दिखलाये।।
अति भयंकर राक्षसी, पूतना भी उस पल आई। आंख मून्द स्तन पान किया, संग में प्राणा भी हर ली।।
ज्यों काल इस देह की, आयु को स्वत: ही निगल ले। उसी विधि इस कृष्ण ने, पूतना के थे प्राण हरे।।

आयु थी जब बस तीन माह, छकड़े के नीचे लेटा था। रोते रोते ही इसने, फिर ऐसा पांव उछाला था।।
उसकी ठोकर खाकर के, वह भारी छकड़ा उलट गया। उस छकड़े पर ही बेठा, महा दुष्ट कोई दैत्य था।।

इक वर्ष की आयु थी इसकी, जब दैत्य बावण्डर बनी आया। बैठे बैठे आकाश में, वह इसे उड़ाकर ले गया।।
तुम सब जानो उस तृणावर्त का, हनन था इसने कर दिया। कण्ठ से जा पकड़ा उसे, और स्वास भी लेने नहीं दिया।।

उस दिन की बात भी याद है न, जब ऊखल से इसे बान्धा था। माखन चोरी करता देख, नन्दरानी ने थी दी सजा।।
घुटनों के बल चलते चलते, ऊखल को पीछे खेंच लिया। अर्जुन के दोनों वृक्षों के, मध्य में जा उखाड़ दिया।।

ग्वालों और बलराम संग, जब वत्स चराने वन में गया। इसके हनन को दैत्य एक, बक् का रूप था धर आया।।
दोनों हाथों से इसने, था उसकी चोंच को पकड़ लिया। तृण समान उस दैत्य के, तन को इसने चीर दिया।।

एक दैत्य फिर बछड़े का, रूप धरी बछड़ों में घुसा। इसका वध ही कर देना, उसका इक उद्देश्य था।।
उसको भी खेल खेल में, इसने मार गिराया था। कैथ के वृक्षों पर पटका, और वृक्षों को भी गिरा दिया।।

गधे के रूप में धेनुकासुर, का भी इसने वध किया। श्री बलराम के संग मिली, भाई बन्धु सहित मारा।।
परिपक्व फलों से भरे हुए, तालवन को खोल दिया। सबके लिये मंगलमय और, उपयोगी उसे बना दिया।।

बलराम के द्वारा इसने ही, प्रलम्बासुर को मार दिया। और दावानल से गौओं, और ग्वालों को उबार लिया।।
अति विषपूर्ण कालिय नाग, यमुना जल में रहनेवाला। बलपूर्वक उसका मर्दन कर, उसे दह से निकाल दिया।।
यमुना जल को इसने सदा, के लिये विष रहित किया। व्रजवासियों के पान को, अमृतमय उसे बना दिया।।

यह भी हम हैं देख रहे, हे नन्द जी आपके बालक से। अनन्त प्रेम व्रजवासी करें, इस आपके सांवले बालक से।।

इसका भी हम सब पर, स्वभाविक प्रेम ही है बना। क्या आप बतला सकें, इस सबका है कारण क्या?

कहां तो सात वर्ष का, नन्हां सा इक यह बालक। और महागिरिराज कहां, निज कर पे किया इसने धारण।।
सात दिनों तक इक टक ही, छत्र बना उठा रखा। हे व्रजराज तव पुत्र प्रति, हमारा मन है शंका से भरा।।
नन्द बोले,
हे गोपों अब सावधान, होकर तुम मेरी बात सुनो। मेरे पुत्र के विषय में, शंका सब आपकी दूर हो।।
महर्षि गर्ग ने जब, इस बालक को देखा था। इसके विषय में उन्होंने तब, ऐसा ही था वचन कहा।।

गर्गाचार्य बोले,
यह बालक तुम्हारा जो, हर युग में करे देह धारण। विभिन्न युगों में इसने लिये, श्वेत रक्त और पीत वर्ण।।
इस बार यह कृष्ण वर्ण, स्वीकार करी के है आया। हे नन्दराज यह पुत्र तेरा, था वसुदेव के घर जाया।।
इस रहस्य को जानें जो, वे ऐसी बात भी कहते हैं। वासुदेव है इसका नाम, वह ज्ञानी ऐसा कहते हैं।।

तेरे पुत्र के गुण और, कर्म भी हैं अनेकों ही। अनेकों नाम और रूप धरे, इसने उनके अनुरूप ही।।
मैं जानूं उन सब नामों को, साधारण जन तो न जानें। तेरे इस दिव्य शिशु का, रहस्य न वह पहचानें।।

परम कल्याण करेगा यह, हे नन्द तुम व्रजवासिन् का। समस्त गोप और गौओं को, यह आनन्द से भर देगा।।
इसकी शरण को प्राप्त हुए, तुम सहज तरोगे सब विपदा। नहीं कुछ भी तव बिगाड़ सके, जैसी भी आये आपदा।।

पूर्वकाल में एक बार, पृथ्वी पे राजा कोई न था। परिपन्थी और चोरों ने, महा उपद्रव कर था दिया।।
हे व्रजराज तब इसी तुम्हारे, पुत्र ने थी रक्षा करी। सज्जन ने इससे बल पाया, प्राप्त विजय दुर्जन पर की।।

हैं भाग्यवान् वे सब हे नन्द, जो तेरे शिशु से प्रेम करें। इस सांवले सलोने पे, सर्वस्व न्यौछावर अपना करें।।
संरक्षण में प्रभु विष्णु के, देवता लोग ज्यों रहते हैं। उनको असुर न जीत सकें, सभी शास्त्र यह कहते हैं।।
त्यों ही तेरे सांवले, सलोने से जो प्रेम करें। बाह्य या आन्तर कोई भी, शत्रु न उन्हें जीत सकें।।

गुण ऐश्वर्य सौन्दर्य से, कीर्ति या प्रभाव से। हे नन्द जिस भी कोण से, चाहे आप इसको देखें।।
यह बालक तुम्हारा है, नारायण के समान ही। इस शिशु के अलौकिक सब, कर्मों में कोई आश्चर्य नहीं।।

नन्द बोले,
हे गोपों गर्गाचार्य ने, मुझको यह उपदेश दिया। तत्पश्चात् निज घर को, ही उन्होने प्रस्थान किया।।
तब से मैं इस परम सुखद, और अलौकिक बालक को। श्री नारायण का अंश ही, माने हूँ इस बालक को।।

शुकदेव बोले,
जब नन्दबाबा के मुख से, व्रजवासियों ने यह बात सुनी। गर्गाचार्य के वचन सुनी, सब विस्मय जाती रही उनकी।।
अमित तेजस्वी कृष्ण के, प्रभाव को था उन जान लिया। नयनों से दर्शन पाया, और कानों से वा श्रवण किया।।
हृदय आनन्द से उनके भरे, नन्दबाबा के भी गुण गाये। कृष्ण की भी महिमा गाई, हृदय सभी के हर्षाये।।

अपने यज्ञ को भंग हुआ, इन्द्र ने जब देख लिया। क्रोध से आग बबूला हो, मूसलाधार जल बरसाया।।

वज्रपात और ओलों की, बरसात उसने थी करी। प्रचण्ड आन्धी ने साथ दिया, अति व्यथित हर जीव करी।।
स्त्री पशु और ग्वाले सब, अति पीड़ित थे हो गए। निज जन की यह व्यथा देख, प्रभु के हृदय करुणा उमड़े।।

इक नव लीला का विचार करी, श्री हरि फिर मुसकाने लगे। जैसे बरसात का छत्रपुष्प, कोई नन्हां शिशु उखाड़ ले।।
त्यों इक हाथ से ही प्रभु ने, उन्मूलन गोवर्धन के किये। सारे व्रज की रक्षा करी, इक हाथ पे उसको धार के।।
इन्द्र का मद मर्दन किया, जिन गोवर्धन गिरिधारी ने। वे गोविन्द हम सब पर, सदा सदा ही प्रसन्न रहें।।

शुकदेव बोले,
जब श्री कृष्ण ने गिरिराज, गोवर्धन को धारण किया। मूसलधार वर्षा से जब, व्रज को उन्होंने बचा लिया।।
गोलोक से कामधेनु भी, बधाई उन्हें देने आई। स्वर्ग से भी देवराज, इन्द्र की वहां आगमन हुई।।

अति लज्जित थे इन्द्र तो, श्री हरि का किया तिरस्कार। एकान्त स्थान फिर ढूंढकर, वह जा पहुंचे प्रभु पास।।
सूर्य समान तेजस्वी, निज मुकुट से चरण का स्पर्श किया। मानो अपना अहंकार ही, प्रभु चरण में जाय धरा।।
परम पुरुष श्री कृष्ण का, प्रभाव उन्होंने जब देखा। उनका सारा गुमान ही, चूर चूर ज्यों हो गया।।
मैं हूं स्वामी त्रिलोकी का, इसकी बात वह भूल गए। दोनों कर को जोड़ करी, स्तुति प्रभु की करने लगे।।

इन्द्र बोले,
स्वरूप आपका हे प्रभु, है परम शान्त और ज्ञानमय। रज और तम से है रहित, विशुद्ध अप्राकृत सत्वमय।।
गुण प्रवाह से प्रतीत हो, मायामय यह मिथ्या प्रपंच। स्वरूप आपका जानें न, प्रतीत हो इस कारण प्रपंच।।

अज्ञान या उसके कारण, देहादि जो भी प्रतीत हों। उन सबसे प्रभु आपका, सम्बन्ध कभी भी नाहीं हो।।
फिर उस देह के कारण ही, क्रोधादि जो दोष हों। चिन्मय स्वरूप आपमें, सम्भव भला वह कैसे हों?
इन दोषों का होना ही, प्रभु लक्षण है अज्ञान का। अज्ञान और उससे जनित, जग से नहीं नाता आपका।।
फिर भी धर्म की रक्षा को, और दुष्टों के दमन हेतु। अवतार आप प्रभु ग्रहण करें, इन पर अनुग्रह निग्रह हेतु।।

आप ही हैं जग के पिता, गुरु और स्वामी प्रभु। जगत् नियन्त्रण हेतु आप, दण्डधारी दुस्तर काल प्रभु।।
भक्तों की लालसा पूर्ति को, लीलामय तन प्रभु प्रकट करें। स्वच्छन्दता से हे विभु आप, स्वयं ही सारी लीला करें।।
हम जैसे अभिमानी जो, निज को ही ईश्वर मान लें। उनके मान मर्दन को प्रभु, आप अनेकों लीला करें।।

मुझ जैसे अज्ञान जो, अपने को जगदीश्वर मानें। महाभय के आ जाने पर, जब निर्भय आपको वह जानें।।
घमण्ड हो चकनाचूर तब, गर्व रहित वह हो जायें। सन्तों द्वारा सेवित सदा, भक्ति पथ को ही अपनायें।।
आपका भजन करें वह नित्य, निज पापों का मार्जन करें। हर चेष्टा है प्रभु आपकी, दण्ड विधान दुष्टों के लिये।।

हे प्रभु मैं अपराधी हूं, ऐश्वर्य के मद से चूर था। आपकी शक्ति और प्रभाव, से तो मैं अनभिज्ञ रहा।।
हे करुणानिधे कृपा करके, मुझ मूर्ख को अब क्षमा करें। इस दुष्ट अज्ञान के वश में मुझे, पुन: कभी न होना पड़े।।

स्वयं प्रकाश हैं आप प्रभु, और सभी इन्द्रियों से परे। आपके इस अवतरण के, हैं विशेष कारण प्रभु हे।।
जो असुर केवल अपना, पेट पालने में हैं लगे। इस भूमि पर वह जन तो, महाभार हैं हो गये।।

उनका वध करके उन्हें, मोक्ष देने के लिये। और आज्ञाकारी भक्तों का, रक्षण करने के लिये।।
हे प्रभु इन द्वौ कारण ही, आपने तन धारण किया। पापी जन का नाश और, अभ्युत्थान हो धर्म का।।

मैं नमन करूं प्रभु आपको, हे पुरुषोत्तम अन्तर्यामी। सर्वात्म वासुदेव आप, यदुवंशियों के स्वामी।।
हैं भक्त वत्सल आप प्रभु, आकृष्ट करें सबके चित्त को। नमस्कार मेरा बार बार, प्रभु चरणन् में स्वीकार हो।।

जीवों समान नही कर्मों के, पराधीन तन आपका। स्वतंत्रता और स्वेच्छा से, आपने तन स्वीकार किया।।
विशुद्ध ज्ञान स्वरूप है, आपका यह तन भी प्रभु। आप ही हैं सबके कारण, और सबका कारण आप प्रभु।।
आप स्वयं ही सब कुछ हैं, नमन करूं प्रभु आपको। सब रूपों में आपका दर्शन पा, यह सीस सदा आपके चरण में हो।।

हे प्रभु मेरे अभिमान का, तो है कहीं पे अन्त नहीं। अति तीक्ष्ण यह क्रोध मेरा, विवश करे मुझको यह भी।।
जब प्रभु देखा मैंने, मेरा यज्ञ यह नष्ट हुआ। आन्धी और वर्षा द्वारा, व्रज को ही नष्ट करना चाहा।।

हे प्रभु फिर भी आपने, अनुग्रह किया मुझ मूढ पर। अभिमान की मूल ही उखड़ गई, चेष्ठा निष्फल होने पर।।
हैं आप ही मेरे स्वामी प्रभु, आप ही गुरु और आत्म हैं। हे प्रभु मैं शरण हूं आपकी, आप ही तो परमात्म हैं।।

शुकदेव बोले,
देवेन्द्र ने जब राजन्, इस विधि प्रभु की स्तुति करी। मेघ सम गम्भीर स्वर में, हंस कर प्रभु ने बात कही।।
कृष्ण बोले,
धन सम्पद् ऐश्वर्य के, मद ने था तुझे मतवाला किया। तुम पर अनुग्रह करके मैंने, यज्ञ तुम्हारा भंग किया।।
यह सब किया इस कारण ही, याद मुझे तुम किया करो। अब तुम नित्य निरन्तर ही, सिमरण मेरा किया करो।।

धन सम्पद् ऐश्वर्य के, मद से जो अन्धा हो जाये। काल रूप में दण्डधारी, परमेश्वर मुझको न देखे।।
जिस पर अनुग्रह मैं करूं, ऐश्वर्य भ्रष्ट उसका कर दूं। इस विधि निज स्मृति मैं, उसके हृदय जागृत कर दूं।।

हे इन्द्र तुम्हारा मंगल हो, अब अपनी राजधानी जाओ। अमरावती में जाकर के, मम आज्ञा का पालन करो।।
नहीं घमण्ड तू करना अब, मेरा अनुभव करते रहना। सन्निधि में मेरी धर्मानुकूल, मर्यादा का पालन करना।।

शुकदेव बोले,
हे राजन् श्री हरि अभी, यह आज्ञा दे ही थे रहे। सन्तति संग कामधेनु ने, फिर वहां आगमन किये।।
गोप वेशधारी ईश्वर, श्री कृष्ण की उस वन्दना करी। उनको ही सम्बोधित कर, फिर कामधेनु कहने लगी।।

सुरभि बोली,
महायोगेश्वर आप कृष्ण, हैं विश्व के कारण विश्व भी। अच्युत स्वामी विश्व के, हैं आप हमारे रक्षक ही।।
आपको पाकर हे प्रभु, सनाथ आज हैं हम हुईं। हे जगदीश्वर आप प्रभु, परम आराध्य हमारे ही।।
देवेन्द्र यह त्रिलोकी के, इन्द्र भले ही हुआ करें। किन्तु हमारे इन्द्र तो, हे प्रभु सदा ही आप रहें।।
अत: आप ही हे प्रभु, गौ ब्राह्मण देव रक्षण के लिये। साधुन् की रक्षा अर्थ, इन्द्र रूप भी आप धरें।।

जगदीश्वर हैं आप प्रभु, हैं हमरे तो परम आराध्य। त्रिलोकेश्वर भले ही हों इन्द्र, पर हमरे तो हैं इन्द्र आप।।

गौ ब्राह्मण देव और, साधु की आप ही रक्षा करें। हमरे संरक्षण के लिये, प्रभु आप ही हमने इन्द्र बनें।।

श्री ब्रह्मा जी से प्रेरणा पा, हम मानें आपको निज इन्द्र। अभिषेक करेंगी आपका, जानके आपको अपना इन्द्र।।
हे विश्वात्मन् इस भू का, भार उतारन के लिये। हे प्रभु हैं आपने, अवतार यह धारण किया।।
शुकदेव बोले,
हे राजन् श्री हरि से, कामधेनु ने ऐसा कहा। और अपने दूध से, श्री हरि का अभिषेक किया।।
देवमाताओं ने फिर, इन्द्र को प्रेरित किया। ऐरावत की सूण्ड में, आकाश गंगा जल भरा।।
देवर्षियों को संग ले, यदुनाथ का उस अभिषेक किया। गोविन्द का फिर नाम देई, सम्बोधित उनको किया।।

नारद तुम्बरु आदि गन्धर्व, विद्याधर चारण सिद्ध आये। सब जग के पाप ताप हारी, प्रभु के उन्होंने गुण गाये।।
अप्सरायें भी महा, आनन्द से ही भर गईं। और कृष्ण अभिषेक पे, नर्तन वह करने लगीं।।

प्रधान देवतागण भी मिल कर, उनकी स्तुति गाने लगे। उनपर नन्दनवन के वह, दिव्य पुष्प बरसाने लगे।।
तीनों लोकों में ही ज्यों, परमानन्द की बाढ़ आइ। गौओं के स्तनों से भी, स्वत: दूध झरने लगी।।
उस दूध से ऐसा लगा, मानो धरती ही गीली हुई। नदियों में भी विविध रसों की, बाढ़ ही मानो आ गई।।
वृक्षों से भी ज्यों मधु की, धारा ही बहने लगी। पृथ्वी भी बिन जोते बोये, अन्न औषध सब देने लगी।।
मणि माणिक्य जो पर्वतों, में छिपे ही थे रहते। इस आनन्दोत्सव पर, वे स्वत: बाहर आये।।

क्रूर स्वभावी जीव भी, वैरहीन ही हो गए। आपस में मित्रता उनकी हुई, श्री कृष्णाभिषेक प्रभाव यह थे।।
गो और गोकुल के स्वामी, गोविन्द का यूं अभिषेक किया। फिर इन्द्र ने श्री हरि की, अनुमति को प्राप्त किया।।
देव-गन्धर्व आदि सभी, साथ उनके हो लिये। और स्वर्ग की यात्रा को, उन सबने प्रस्थान किये।।

१६) वरुणलोक से नन्दबाबा को छुड़ाना और गोपोंको वैकुण्ठ धाम का दर्शन कराना

शुकदेव बोले,
हे राजन् नन्दबाबा ने, कार्तिक शुक्ल एकादशी को। उपवास सम्पन्न किया, और पूजा श्री भगवान को।।
उसी रात में द्वादशी का, जब शुभ आरम्भ हुआ। स्नान करने के लिये, उन्होने यमुना जल प्रवेश किया।।

नन्दबाबा न जाने थे, यह बेला है असुरों का। इस कारण उन रात्रि में, यमुना जल में कदम धरा।।
वरुण के सेवक एक असुर ने, नन्दबाा को पकड़ लिया। और उन्हें निज स्वामी के, पास ही असुर वह ले गया।।
श्री नन्द के खो जाने पर, व्रजवासी सब गए घबरा। हे कृष्ण तुम्हीं खोजो पिता, हे राम तेरा ही आसरा।।

इस प्रकार कहते हुए, वे सब रोने धोने लगे। प्रभु निज भक्तों के सदा, भय को स्वयं ही हैं हरते।।
व्रजवासियों को इस विधि, रुदन करते जब सुना। जाना वरुण के सेवक ने, पिता का है अपहरण किया।।
यह जान करी प्रभु वरुण के, लोक में उसके पास गए। लोकपाल श्री वरुण ने जब, यह अनुग्रह उनके देखे।।
आन्तरिक बाह्य इन्द्रियों के, प्रवर्तक हैं जो स्वयं ही। जगदीश्वर श्री कृष्ण स्वयं, पधारे उनके लोक में ही।।
तब प्रभु की महापूजा, वरुण ने आयोजित करी। प्रभु दर्शन पा रोम रोम, उनकी आनन्द से खिल उठी।।
तत्पश्चात् श्री हरि से, विनम्र निवेदन उसने किया। विनय भाव आन्तर धरी, श्री हरि से उसने कहा।।

वरुण बोले,
सफल हुआ है आज प्रभु, मेरा यह तन धर लेना। आज मुझे ज्यों सम्पूर्ण, पुरुषार्थ ही प्राप्त हुआ।।
क्योंकि आज श्री चरणों की, सेवा का अवसर मिला। जिसने सुअवसर पाया यह, प्रभु भव सागर वह सहज तरा।।

हैं भक्तों के भगवान आप, वेदान्ती जन कहें ब्रह्म ही। योगी कहें परमात्मा, पर हैं तो प्रभु आप ही।।
विभिन्न लोकसृष्टियों की, कल्पना जो माया करे। हे प्रभु वह आपको, किंचित् भी न छू सके।।
श्रुति ने ऐसा है कहा, मैं नमन करूं प्रभु आपो। आपके श्री चरणों में प्रभु, बार बार मेरा नमन हो।।

मेरा यह सेवक प्रभु, अति मूढ़ और अनजान है। इस कारण कर्त्तव्य की भी, इसे नहीं पहचान है।।
आपके पिता श्री को वही, इस लोक में है ले आया। कृपा सिन्धु हैं आप प्रभु, अपराध क्षमा यह करें उसका।।

निज पिता प्रति प्रभु आपका, अतिशय प्रेम मैं जाने हूं। ले जायें आप गोविन्द इन्हें, मेरे पर भी कृपा हो मांगे हूं।।
अन्तर्यामी आप प्रभु, आप सभी के साक्षी भी। विश्व विमोहन कृष्ण आप, दास पे कब कृपा होगी।।
शुकदेव बोले,
ब्रह्मा आदि ईश्वरों के भी, हैं परम ईश्वर कृष्ण। इस विधि स्तुति कर उनकी किया, लोकपाल वरुण ने प्रसन्न।।
नन्दबाबा को लेकर प्रभु, ब्रज को ही पुन: लौट आये। ब्रजवासी बन्धु बान्धव के, हृदय पुन: आनन्द भरे।।
श्री नन्द ने वरुण लोक में, सुख ऐश्वर्य दिव्य देखा। सम्पद् वैभव वहां का सब, इन्द्रियों से अतीत ही था।।

इसके साथ साथ ही, इक और भी कौतुक उन देखा। उस लोक के वासी कृष्ण के, चरणों में रहे हैं सीस झुका।।
अति विस्मित हुए यह देख कर, ब्रज में जब वह पुन: लौटे। निज भाई बान्धवों को, सारे ही वृत्तान्त कहे।।

प्रभु प्रेमी गोपों ने जब, नन्द से सब बातें सुनीं। तब उन्होंने जाना राजन्, श्री कृष्ण तो हैं भगवान ही।।
अति उत्सुक मन था हुआ, मन ही मन विचार किया। जगदीश्वर श्री कृष्ण के, धाम का क्या दर्शन होगा?
स्वधाम तो इनका माया परे, कोई वहां न जा सके। इनके प्रेमी भक्त की ही, बस वहां तक पहुंच रहे।।

श्री कृष्ण तो सर्वज्ञ हैं, उनसे कैसे भाव यह छिप पाता? अपने आत्मीय गोपों की, इच्छा को उन्होंने जान लिया।।
श्री हरि का आन्तर तो है, अतिशय करुणा से भरा। सत्य हो यह संकल्प उनका, श्री हरि ने विचार किया।।
भगवान बोले,
अज्ञानवश ही जीव यह, देह में आत्म बुद्धि करे। विविध कामना और उनकी, सिद्धि को सब कर्म करे।।
उन कर्मों के फल स्वरूप, उच्च अधम योनि पाये। कभी देव मनुष्य कभी, पशु पक्षी कभी बन आये।।
अपनी वास्तविक गति को, वह पहचान ही न पाये। आत्म स्वरूप जो है उसका, उसको जान ही न पाये।।

शुकदेव बोले,
कृपा पुंज श्री हरि ने, निज आन्तर में यूं सोचा। माया तिमिर से जो अतीत, निज परम् धाम उन्हें दिखलाया।।
सर्वप्रथम भगवान ने, साक्षात् कराया ब्रम से। सत्य ज्ञान अनन्त सनातन, ज्योति स्वरूप ही उनका हे।।
समाधिस्थ गुणातीत ही, उसको देख कभी पाते हैं। अन्य जीव तो ब्रह्म से, दूर ही रह जाते हैं।।

अक्रूर को जलाशय में, स्वरूप निज दर्शाया जहां। उसी ब्रह्म स्वरूप को, गोप हृदय में प्रकट किया।।
उस ब्रह्मानन्द के सागर में, डुबकी लगाई उन सबने। और प्रभु कृपा से वह, ब्रह्महृद में ही जा पहुंचे।।
श्री हरि ने उसमें से, उन सबको निकाल लिया। फिर अपने परम धाम का, दर्शन उनको करवाया।।

उस दिव्य भगवत्स्वरूप लोक, का दर्शन जब उन्होने पाया। नन्दादि सब गोपों का हृदय, परमानन्द से भर आया।।
वहां पे उन्होंने क्या देखा, सब वेद स्तुति हैं गा रहे। मूर्तिमान हो सभी वेद, श्री कृष्ण की महिमा गा रहे।।
यह देख वे सबके सब, परम विस्मित हो गए। श्री कृष्ण के परम धाम, के दर्शन अति अद्भुत थे।।

१७) रासलीला

शुकदेव बोले,
शरद् ऋतु में बेला और, चमेली आदि पुष्प खिले। अपनी मन्द सुगन्ध से सब वायु को महका थे रहे।।
चीर हरण बेला प्रभु ने, संकेत जिन रात्रिन् का किया। मानो वह पुंजीभूत हो, इक ही रात्री में गईं समा।।
उल्लासित देख कर उसको, प्रभु ने उसे दिव्य बना दिया। गोपियों के मन में तो थी, कबसे इसकी ही प्रतीक्षा।।
प्रभु ने अचिन्त्य योगमाया, का लिया अब आसरा। रस स्वरूप श्री हरि ने फिर, रसमयी क्रीड़ा संकल्प किया।।
नित्य अमना प्रभु ने फिर, मन को भी स्वीकार किया। निज प्रेमियों की इच्छापूर्ति, ही इसका निमित्त था।।

प्रभु का संकल्प यह उठते ही, प्राची दिशा में चन्द्र ने। अपनी शीतल किरणों के, मानो सुन्दर कर कमलों से।।
केसर और सिन्दूर की, अरुणाई के रंग छिटके। प्रियतम ने बहुत दिनों बाद, निज प्राणप्रिया के मुख ज्यों रंगे।।
शरद् ऋतु के प्रखर सूर्य ने, ताप था जो बढ़ा दिया। पूर्ण जग उस ताप की, तीव्रता से संतप्त था।।
उदय हो चन्द्र ने न केवल, प्राची दिशा को शान्त किया। चर अचर सब जीवों का, भी उसने सन्ताप हरा।।

पूर्णिमा की उस रात्री में, था चन्द्र मण्डल अखण्ड बना। नव नूतन केसर समान, लालिमा से था वह रंगा।।
ज्यों चन्द्र के मन में भी हो जगी, संकोच से मिश्रित अभिलाषा। श्री लक्ष्मी समान ही, मुख की उसके बनी आभा।।
उसकी कोमल किरणों से, वन अनुराग के रंग में रंगा। वन के हर कोने में ही, ज्यों चान्दनी का सागर उमड़ा।।
निज दिव्य रस उद्दीपन की, सब सामग्री प्रभु ने देखी। मनहरणी निज वंशी पर, क्लीम् की मधुर तान छेड़ी।।

प्रभु प्रेम और मिलन की, वह प्यास बढ़ाने वाली थी। गोपिका मन तो पूर्व ही, श्याम सुन्दर के वश में थीं।।
भय संकोच धैर्य और, मर्यादा भी सब छिन गई। वंशी ध्वनि को सुनते ही, अति विचित्र वा गति हुई।।
प्रभु प्राप्ति को लक्ष्य बना, संग संग थी जिन्होंने साधना की। इक दूजे को सूचना, भी वह देना भूल गई।।
अपनी सारी चेष्टायें, गुप्त ही मानो उन्होंने रखीं। जहां वे थीं वहां से ही, कृष्ण मिलन को चल पड़ीं।।
अति वेगवान थी उनकी गति, कानों के कुण्डल झूम उठे। मानो उनका हृदय उल्लास, इस राही ही प्रकट होए।।

जो गोपियां दुग्ध थीं दुह रहीं, उन्होंने वह दोहन छोड़ दिया। जिन्होंने था चूल्हे पे वह धरा, वहीं पे उसको उन्होने छोड़ा।।
जो पयस् थीं बना रहीं, चूल्हे पे धरा वह रग या। उस वंशी की ध्वनि सुनी, कुछ ऐसा सब पे प्रभाव हुआ।।

जो भोजन वर्तायें थी, वह भी सुधि अपनी भूल गईं। जो स्तनपान थीं करा रहीं, शिशु भी न उन्हें रोक सकी।।
पति की सेवा शुश्रुषा, गोपियां जो थीं कर रहीं। उन्होने तत्क्षण ही अपनी, काज कर्म सब छोड़ दी।।

जो स्वयं थीं भोजन कर रहीं, उन्होने भोजन करना छोड़ दिया। तन मन सहित उनके प्राण भी, मानो कृष्ण पे पहुंचे जा।।

कोई गोपी निज तन पे, चन्दन उबटन थी लगा रही। कोई अपने नयनों में, नव अंजन थी रचा रही।।
यह सब छोड़ी उलटे पुलथे, वस्त्र ही धारण उन किये। मन तो था कृष्ण के पास गया, वस्त्रों की सुधि अब किसे रहे?

भाई बान्धव और पिता पति, सब उनको रोके रह गए। उनकी इस प्रेममय यात्रा में, विघ्न तो सबने खड़े किये।।
किन्तु अति मोहित थीं वे, नहीं रोकने पे भी रुक पाईं। कैसे वह रुक सकती थीं, वंशी की ध्वनि थी कान पड़ी।।
उनके मन प्राण आत्मा तो, कृष्ण के पास थे जा पहुंचे। विश्व विमोहन कृष्ण ने, थे सब ही ज्यों हर लिये।।

कुछ गोपियां थीं घर में फंसी, न मार्ग मिला उन्हें जाने का। नेत्र मूंद लिये उन्होने, और श्री कृष्ण का ध्यान किया।।
सौन्दर्य माधुर्य लीलाओं का, तन्मय हो चिन्तन करने लगीं। परम प्रियतम के विरह की, वेदना अग्न हृदय धधकी।।
जो भी अशुभ कहीं शेष था, संस्कार भस्म सब हो गये। तत्पश्चात् निरन्तर और, अखण्ड ध्यान लगे उनके।।
ध्यान में निज आन्तर में, श्री कृष्ण का प्राकट्य हुआ। मन ही मन अति प्रेम के, आवेग से आलिंगन किया।।
इतनी शान्ति और सुख मिला, संस्कार सभी फिर क्षीण हुए। पुण्य के भी सब संस्कार, तत्क्षण लीन ही हो गए।।

कृष्ण प्रति उनके मन में, पति भाव ही प्रधान था। किन्तु सत्य में तो नहीं, कहीं भाव की हो अपेक्षा।।
चाहे जिस किसी भाव से भी, आलिंगन था उनका किया। हे राजन् वे तो स्वयं हैं, परम पुरुष परमात्मा।।
इसलिये पाप और पुण्य के, कर्म रूप परिणाम से। गुणमय गुण अधीन जो, तन थे उनको प्राप्त हुए।।
उन पार्थिव शरीरों को, उन गोपिन् ने त्याग दिया। उनकी लीला के योग्य ही, दिव्य तन को प्राप्त किया।।
इस देह से ही हैं भोग्य जो, कर्म बन्ध थे कट चुके। ध्यान के लगते ही उनके, सब बन्धन छिन्न भिन्न हुए।।
राजा परीक्षित् बोले,
गोपिकागण तो कृष्ण को, अपना प्रियतम ही माने थीं। हैं ब्रह्मस्वरूप ही उनके प्रिय, यह तो वह न पहचानें थीं।।
ऐसा भासे उनकी दृष्टि, गुणों में ही आसक्त है। फिर गुण प्रवाह रूपा जग से, निवृत्ति कहें कैसे सम्भव है?
शुकदेव बोले,
हे राजन् पहले ही, तुमसे हूं मैं कह चुका। चेदिराज शिशुपाल का मन, द्वेष भाव से था भरा।।
फिर भी प्राकृत तन को त्यजी, वह प्रभु का पार्षद हो गया। प्रभु से मन में द्वेष का, भी यह दिव्य परिणाम मिला।।
फिर गुणातीत जो गोपियां, अनन्य प्रेम करें उनसे। उनकी ही हैं जो अति प्रिय, वह उनको ही प्राप्त करें।।
तो कहो हे राजन् तुम, इसमें है आश्चर्य क्या? अनन्य प्रेमी प्रभु का जो, सहज ही प्राप्त उन्हें करता।।

प्रकृति सम्बन्धी वृद्धि क्षय, और प्रमाण प्रमेय है जो। श्री हरि तो जानो राजन्, गुण गुणी से भी परे हों।।
अचिन्त्य अनन्त प्रकृति अतीत, गुणों का इक आश्रय स्वयं। परम कल्याण स्वरूप हैं, राजन् जानो तुम हरि स्वयं।।
यह प्राकट्य जो है उनका, उनकी इस दिव्य लीला का। परम कल्याण हो जीव का, बस है यह ही योजन उनका।।

इसलिये श्री भगवान से, सम्बन्ध तो बनाइए। जो भी नाता भला लगे, उसको ही निभाइए।।
वह सम्बन्ध हो काम का, या क्रोध अथवा भय का हो। स्नेह का या किसी नाते का, चाहे सौहार्द भाव का हो।।
जिस किसी भी भाव से, वृत्तियां उनसे जाय जुड़ें। वास्तव में उनका नाता, भगवान से ही तो जाय लगे।।

इस कारण वह वृत्तियां भी, भगवन्मय हो जाती हैं। उन राही ही जीव को, भगवत् प्राप्ति हो जाती है।।

हो परम भागवत् तुम राजन्, प्रभु का रहस्य तुम जाने हो। श्री कृष्ण के सम्बन्ध में, ऐसा संशय तुम क्यों करो?
योगेश्वरों के भी परम ईश्वर, प्रभु के लिये है अद्भुत क्या? अरे उनके इक संकेत से ही, जग का कल्याण है हो सकता।।

जब श्री कृष्ण ने यह देखा, व्रज की अनुपम विभूतियां। अति निकट हैं मेरे आ गई, वृन्दावन की यह गोपियां।।
विनोदपूर्ण वाक्चातुर्य, से मोहित उनको किया। भगवान स्वयं त्रिकाल के, हैं सर्वश्रेष्ठ वक्ता।।

कृष्ण बोले,
हे बहुभागिनी गोपियों, स्वागत है स्वागत आपका। तुम्हरी प्रसन्नता के लिये, कहो काज करूं मैं कौन सा?
व्रज में सब कुशल तो है न कहो, इस रात्री में यहाँ क्यों आई? कौन-सी ऐसी काज यहां, तुमको खेंच के ले आई?

रात्रिकाल का यह समय, अति भयावह होता है। भयानक जीव जन्तुओं का, भी विचरण इसमें होता है।।
मेरी मानो तो तुरन्त ही, व्रज में तुम सब जा लौटो। इस जंगल में रात्रि में, स्त्रियों का रुकना उचित न हो।।

घर में तुमको न पाकर, चिन्तातुर होंगे सभी। माता पिता पति पुत्र, भाई बन्धु खोजेंगे सभी।।
चिन्ता में उनको मत डालो, अब भय निवारण तुम करो। उनके सम्मुख जाकर के, अब उनकी चिन्ता दूर करो।।

रंग बिरंगे फूलों से, भरे वन की शोभा देखी। पूर्णिमा के चन्द्र की, छिटकी चान्दनी भी देखी।।
ज्यों अपने हाथों से हो, चित्रकारी प्रभु यहां करी। यमुना जल को छू करी, जो शीतल पवन है बह रही।।
मन्द मन्द गति से हिलते, वृक्षों से वन की शोभा बढ़ी। यह सब शोभा तो तुमने, निज नयनों से देख है ली।।

अब न देर करो सखियो, शीघ्र ही व्रज को लौटो अब। तुम तो कुलीन नारियां हो, और स्वयं भी सती हो सब।।
जाओ अब अपने पतियों की, और सतियों की सेवा करो। घर के नन्हें बालक और, वत्स रहे हैं वहां पे रो।।
जाओ दूध पिलाओ उन्हें, और जा के गइयां दोह तुम लो। वन का दृश्य तुम देख चुकी, अब अपने घर तुम लौट चलो।।

यदि मेरे प्रेम के वशीभूत, होकर हो तुम यहां आई। तो भी जानो अनुचितता, किंचित् भी तुमसे नहीं हुई।।
यह तो तुम्हारे योग्य ही है, सब ही मुझसे अति प्रेम करें। पशु पक्षी तब इस जग के, मुझसे प्रेम में हैं बन्धे।।
मुझको देख के सब प्राणी, अति प्रसन्न ही होते हैं। जड़ चेतन चराचर सब, सुध बुध मुझमें ही खोते हैं।।

हे कल्याणी गोपियो, है परम धर्म स्त्री का यही। निष्कपट होई सेवा करे, पति और अपने बन्धु बान्धव की।।
करे सन्तति का पालन पोषण, और भले संस्कार दे। जिस नारी की यह चाना हो, वह उत्तम लोक को प्राप्त करे।।
पातकी पति को छोड़कर, नहीं अन्य पति कभी भी त्यजे। हर हाल में पति की सेवा ही, जानो स्त्री का धर्म भए।।
भले ही वह दुर्भावी हो, हो भाग्य हीन या वृद्ध हो। मूर्ख हो या रोगी हो, या निर्धन ही चाहे हो।।

है निन्दनीय परपुरुष की, सेवा कुलीना के लिये। परलोक तो उसका बिगड़े ही, इस लोक में भी यश नहीं मिले।
यह कुकर्म तो अति नीच, तुच्छ और क्षणिक ही है। वर्तमान में भी पाये, इस राही कष्ट क्लेश ही है।।
मोक्षादि की कौन कहे, वह तो बहुत ही दूर रहे। परमभय और नरकादि का, ही यह हेतु हो सके।।

मेरी लीला और गुणों के, श्रवण और कीर्तन से। मेरे रूप के दर्शन से, और इन सबके ध्यान से।।
मुझमें अनन्य प्रेम की, जैसी प्राप्ति हो जाये। मेरे पास रहकर के भी, वह प्रेम न उत्पन्न हो पाये।।
इसलिये तुम भी सभी, अपने घरों को लौट चलो। इसी राह से मेरे प्रति, अनन्य प्रीति तुम प्राप्त करो।।
शुकदेव बोले,
अप्रिय वचन सुनी कृष्ण के, गोपिकागण हुईं खिन्नमनी। अति उदास वह हो गईं, ज्यों आशा ही उनकी टूटी।।
चिन्ता के अथाह अपार, सिन्धु में डूब उभर थीं रहीं। प्रियतम के हतोत्साहितकर, यह वचन सुनी वह व्यथित हुईं।।

शोक के कारण दीर्घ और, गर्भ श्वास वह भरने लगीं। शुष्क हुए अधर उनके, जो बिम्बाफल के समान थीं।।
मुख नीचे को लटक गया, चरण नख धरती कुरेदे गए। नेत्रों से दु:ख के अश्रु, ज्यों धारा वत् बहने लगे।।
नयनों का सारा काजल, उनके संग ही बह निकला। वक्ष:स्थल पे लगी केसर, को भी वह धोने लगा।।
अथाह दु:ख से हृदय भरा, वाणी भी मानो बन्द हुई। दु:ख के इस आवेग में, मुख से इक शब्द भी न निकली।।

प्रियतम श्याम सुन्दर के लिये, उन्होने सारे भोग थे छोड़ दिये। सब कामना तृष्णा दूर हुईं, अनन्य प्रेम श्री कृष्ण से थे।।
उन्होंने जब प्यारे मोहन की, निष्ठुरता पूर्ण बात सुनी। अप्रिय वचन उनकी सुनी, हृदय व्यथित गोपिन् की हुई।।
असुअन् से गला था रुंध गया, अखियां भी रो रो लाल हुईं। अश्रु पोंछ धैर्य बान्धा, गद्गद् वाणी से कोप करी।।
गोपियां बोली,
हे घट घट व्यापी प्रिय कृष्ण, तुम हमारे हृदय की जाने हो। निठुराई भरे यह वचन तेरे, तुम ही कहो क्या उचित हों?
सब कुछ छोड़ के हम तो बस, तुम्हारे चरणन् से ही प्रेम करें। हो महाहठी स्वतंत्र तुम, नहीं है किंचित् इसमें सन्देह।।
हमारा तो तुमपर केशव, कोई वश न चल सके। फिर भी अपनी ओर से तो, स्वीकार हमें तू कर सके।।
ज्यों आदि पुरुष श्री नारायण, निज भक्तों से प्रेम करें। मुमुक्षु जन की याचना सुन, वह उनके ही वश में रहे।।
इसी विधि हे कृष्ण तुम, परित्याग हमारा नहीं करो। हमारा तो सर्वस्व ही, तुम्हारे चरण में अर्पित हो।।

सब धर्म मर्म के ज्ञाता तुम, प्रिय श्याम सुन्दर ये तेरा कथन। निज पति पुत्र बन्धुओं की, सेवा ही है नारी का धर्म।।
शास्त्र के अनुकूल ही है, ऐसा तुम्हारा कहना भी। किन्तु तथ्य की बात एक, हे कृष्ण तुम्हें क्यों भूल गई?
सब उपदेशों के तुम ही, चरम लक्ष्य हो हे भगवान्। इसलिये तुम्हारी सेवा का, ही है सर्वोत्तम विधान।।
सुहृद् सभी तन धरियों के, और आत्म भी तुम ही हो। तुम ही पितु मातु बन्धु सखा, परम प्रियतम भी तुम ही हो।।

आत्म ज्ञान में कुशल जन, प्रेम तुम्हीं से हैं करते। नित्य प्रिय हो तुम्हीं कृष्ण, तुम ही हो सबके आत्म हे।।
दु:खदे और अनित्य हैं जो, उन पति पुत्र से क्या करें? हम तो उन सबमें भी प्रभु, आपके ही दर्शन करें।।
हे परमेश्वर प्रसन्न हों, कृपा करो हे कमलनयन। चिरकाल से पाली प्रेम लता, नहीं करो प्रिय इसका छेदन।।

अब तक हमारा चित्त तो, था गृहकाज में रमा हुआ। इसलिये हमारे हाथों ने, भी था उन्हीं को अपनाया।।
किन्तु हे मनमोहन यह, कैसा अचरज तूने किया। हमारी आंखों के सामने ही, हमारा चित्त चुरा लिया।।
तेरा क्या बिगड़ा इससे कृष्ण, हो तुम तो सुख स्वरूप ही। किन्तु यह गति मति हमारी, तूने है कैसी निराली करी।।
तुम्हारे चरण कमल को छोड़कर, इक पग भी न यह कदम चलें। यह तो तेरे सम्मुख ही, अचल हुए हैं मानो खड़े।।

फिर व्रज में कैसे जायें हम, वहां जाकर भी क्या करें? हमरे प्राण तो चित्तचोर, हैं आज तुम्हारे संग अड़े।।

हे सखा प्राणवल्लभ हमारे, मन्द मधुर मुसकान से। मधुर स्वर लहरी ने तेरी, और प्रेम भरी तव चितवन ने।।
हमारे हृदय में प्रेम की, इक नई अग्न है धधका दी। और तुम्हारे मिलन की इक, नव आशा ही जगा दी।।
निज अधरामृत की धारा से, हे प्रियतम इसको शान्त करो। नहीं तो सच इस अग्नि में, तन यह भस्मीभूत हो।।
ध्यान के पंखों पर चढ़कर, हम तुम तक आ जाएंगी। यह तन जो राखी बन ही गया, राखी तुम्हारे चरण समायेगी।।

अति प्रिय हो तुम वनवासियों के, और वह भी तुमसे प्रेम करें। हे कमलनयन उनके निकट, इस कारण ही हों वास तेरे।।
जिन चरण कमल के सेवन का, अवसर हो दुर्लभ लक्ष्मी को। उन्हीं चरणों का स्पर्श हमें, आपकी कृपा से प्राप्त हो।।
जिस दिन यह सौभाग्य प्रभु, आपकी कृपा से मिला हमें। तुमने हमें स्वीकार कर, अति आनन्दित हृदय किये।।
उस दिन से किसी अन्य के, सामने हम न ठहर सकें। पति पुत्र की सेवा की, बात क्या आप हैं कर रहे?

जिन श्री जी का कृपा कटाक्ष, प्राप्त करने के लिये। बड़े बड़े देव महात्मन्, तपस्या रत हैं सदा रहते।।
वही लक्ष्मी आपके, वक्ष:स्थाल पे निवास करें। किन्तु सहपत्नी तुलसी संग, आपके चरण का रज कण ही चाहें।।
जितने भी आपके भक्तजन, हे कृष्ण आज तक हैं हुए। आपकी चरण रज के ही, सेवन हैं उन्होंने किये।।
उन्हीं समान हम भी आज, शरण तुम्हारी आई हैं। उसी चरण रेणु की हम, भी जानो अनुयायी हैं।।

जिसने भी हे प्रभु कभी, चरणों में शरणा प्राप्त करी। उसकी कष्ट क्लेश सभी, प्रभु आपने स्वयं हरी।।
आपके युगल चरण की शरण में, हे प्रभु हम हैं आ गई। घर कुटुम्ब गांव छूटा, आपके चरणन् की आस में।।
अब कृपा करो हम पे भी नाथ, तव प्रसाद अब हमें मिले। चित्त निरन्तर चरणों में, ही प्रभु अब टिका रहे।।
वहां नहीं है समय प्रभु, आपकी प्रेम आराधना को। मधुस्मित और प्रिय चितवन से, प्रज्ज्वलित प्रेम की अग्नि हो।।
मिलनाकांक्षा अग्नि में, तनो रोम रोम है जल रहा। स्वीकार करो दासी हमको, सेवा का अवसर मिले जरा।।

घुंघराली अलकें हे प्रियतम, लटक रहीं मु कमल पे। सुन्दर कपोल पर कमनीय, कुण्डल सौन्दर्य बिखेर रहे।।
आपके मधुर अधर जिनकी सुधा, सुधा को भी ललचाया करे। मनहरनी चितवन आपकी, यह मन्द मन्द मुस्काया करे।।
शरणागत को दें अभय दान, उदार उभय यह भुजा तोरी। यह वक्ष:स्थल प्रभु आपका, है लक्ष्मी की क्रीड़ा स्थली।।
यह सब देख के हे प्रियतम, हम आपकी दासी हैं हुई। सब अन्य आसरे छोड़ करी, हम आपकी शरण में आ गईं।।

मधुर पदों आरोह और, अवरोह मूर्छनाओं से सजी। विविध स्वर लहरी युक्त जो, वंशी की तोरी तान बजी।।
ऐसी अलौकिक वंशी की, तान आपकी प्रभु जिसने सुनी। तीनों लोकों में कहो हरि, है स्त्री कौन कहीं ऐसी?
जो अपनी सुध बुध न खो दे, विस्मृति जिसे अपनी न हो? घर संसार गृहस्थी को, याद करेगी कैसे वो?
निज सौन्दर्य के इक कण से, त्रिभुवन मोहिनी मूर्त आपका। सुन्दरता से है भर देती, जैसा भी है सम्पूर्ण जग।।
जिसे देख जन जन प्राणी, रोमांचित ही सब हो जायें। गौ पक्षी वृक्ष हरिण, पुलकित से होते दर्शायें।।
निज नेत्रों से निहार उसे, को स्त्री विचलित न होगी? निज कुल मर्यादा लोक लाज, जिसकी पीछे न छूटेगी?

हम जाने ज्यों श्री नारायण, करें हैं रक्षण देवों की। त्यों ही व्रज के सब दु:ख भय, मिटाव को ही आपका जन्म हुई।।

दीन दु:खी जन पर भी प्रभु, है प्रेम कृपा तव स्पष्ट ही। हे प्रियतम क्या तुम न जानो, हम भी तो हैं अति दीन दु:खी?
आपके मिलन की अग्नि आन्तर में, है हमरा हृदय जला रही। सन्तप्त हृदय और सीस पे, कर कमल तू अपना धरो सही।।
हे प्रभु अपनी दासियों को, अब तो तुम अपना ही लो। अपने कर कमलों से प्रिय, नव जीवन का हमें दान दो।।

शुकदेव बोले,
हे राजन् श्री कृष्ण तो, सनकादि सब योगियों के। ईश्वर हैं वह स्वयं ही, शिवादि योगेश्वरों के।।
गोपियों की विरह व्यथित, आतुर वाणी को जब सुना। उनका कोमल हृदय तब, दया से द्रवीभूत हुआ।।
हैं तो वह आत्माराम ही, अपने में ही नित्य रमण करें। अपने सिवा किसी अन्य विषय, वस्तु की अपेक्षा नहीं उन्हें।।
फिर भी हंसकर श्री हरि ने, मानो अनुमोदन उनका किया। और उनके साथ फिर, नव क्रीड़ा का आरम्भ हुआ।।

भाव भंगिमा और चेष्ठा, गोपिन् के अनुकूल करीं। निज स्वरूप में वह अच्युत, सदा रहें एक रस ही।।
जब खुलकर वह हंसते थे, खिले दन्तावली ज्यों कुन्द कली। प्रेमभरी चितवन देखी, गोपिन् की मुख कमल खिली।।
चारों ओर से कृष्ण को, घेर के वे सब हुईं खड़ी। ज्यों तारों से घिरे चन्द्र, उनकी शोभा कुछ ऐसी बनी।।

गोपियों के शत शत यूथों, के स्वामी हैं जो स्वयं। वृन्दावन शोभित करने लगे, वैजयन्ती माला पहने कृष्ण।।
इस विचरण में कभी तो सब, कृष्ण की लीला गाती थीं। गोपिन् के प्रेम सौन्दर्य की, वंशी कभी ध्वनि बजाती थी।।

यमुना के पावन तट पे, थी श्वेत बालू कर्पूर सम। सब गोपिन् को संग लेकर, किया वहां कृष्ण ने पदार्पण।।
यमुना जल के स्पर्श से, अति शीतल था वह बना। कुमुदिनी की सुगन्ध ने, था सुरभित वायु को किया।।
उस आनन्द दे पुलिन पर, श्री हरि ने फिर क्रीड़ा करी। गोपियों को ले संग उन्होने, वहां पे अपनी रास रची।।

कभी हाथ दबाते गोपिन् का, कभी आलिंगन उनका करते। कभी जंघा कभी नाभि का, चोटी या स्तन स्पर्शन करते।।
विनोदभरी चितवन से कभी, देख करी उन्हें मुसकाते। इस विधि दिव्य प्रेम को, उनपे प्रकाशित वह करते।।
श्री कृष्ण नित्य नव क्रीड़ा कर, उन्हें आह्लादित करने लगे। प्रेमी गोपियों का हृदय, आनन्द से वह भरने लगे।।

सर्वव्याप्त कृपा सागर ने, जब गोपियों का यूं मान किया। तब मान का भाव वहां, गोपिकागण के मन उपजा।।
सर्वश्रेष्ठ हम ही तो हैं, संसार की सारी स्त्रियों में। हमारे जैसा सौभाग्य तो, अन्य किसी का हो न सकें।।

जब श्री हरि ने यह देखा, सौभाग्य का इनको गर्व हुआ। और हृदय में इनके आज, गुमान भी है उमड़ आया।।
वह गर्व शान्त करने के लिये, और उनका मान हरने के लिये। आनन्द निरन्तर उनका बने, प्रभु वहीं पे अन्तर्धान हुए।।

१) गोपियों का विरह

शुकदेव बोले,
प्रभु सहसा अन्तर्धान हुए, व्रज युवतियों ने उन्हें न देखा। विरह की ज्वाला से उनका, हृदय स्वत: जलने लगा।।
ज्यों यूथपति गजराज बिना, व्याकुल होती हथिनियां। त्यों ही विरह से तड़प उठीं, वृन्दावन की युवतियां।।

मदोन्मत्त गजराज सी, चाल श्याम मनमोहन की। प्रेमभरी मुसकान और, विलासमयी चितवन उनकी।।
मनोरम प्रेमालाप और, भिन्न भिन्न लीलाओं ने। श्रृंगार रस की भंगिमा ने, थे गोपिन् के चित्त हरे।।

प्रेम में मत्त वह गोपियां, कृष्णमय ही हो गईं। कृष्ण की ही चेष्ठओं का, अनुकरण वह करने लगीं।।

निज प्रियतम कृष्ण की चाल ढाल, हास विलास और सम्भाषण। सबने अनुकरण किया उनका, गोपियां बनीं श्याम के सम।।
हुई वही गति मति उनकी, भाव भंगिमा वैसी भई। अपने को भूली सर्वथा, वह कृष्णमय ही हो गई।।
उनकी ही लीला का फिर, अभिनय मानो करने लगीं। मैं ही तो श्री कृष्ण हूँ, हर काज में ऐसा कहने लगीं।।

सब मिल जुल कर उच्च स्वरों में, उनके गुण थीं गा रहीं। मतवाली हो वन वन जाकर, हर झाड़ में कृष्ण को ढूंढे थीं।।
हे राजन् श्री कृष्ण कभी, दूर तो जा ही नहीं सकते। आकाश की भाँति वह सदा, बाहर भीतर सब जा व्यापें।।
जड़ चेतन में वही रहें, वह वहीं पे थे उन्हीं में थे। किन्तु अज्ञान के कारण ही, नहीं अपने में वह दीख पड़े।।
दृष्टि से ओझल हुए प्रभु, वे उन्हें खोजने में लगीं। पेड़ों पौधों लताओं से, पूछने उनका पता लगीं।।
गोपियां बोले,
हे पीपल पाकर बरगद, क्या तुमने देखे श्याम सुन्दर? नन्द नन्दन की प्रेममयी, स्मित चितवन चित्त लियो है हर।।
कुरबक अशोक और नागकेशर, पुन्नाग और चम्पा तू कहो। मुसकान मात्र से मानिनी के, मान का मर्दन कर दें जो।।
बलराम के वह छोटे भाई, क्या देखे तुम इस दिशा में आते? कहो कहो हे प्रिय वृक्षो, नहीं प्राण हमारे हैं जाते।।

अरी बहिना तुलसी तेरा तो, हृदय है अति कोमल मृदु। कल्याण ही तुम चाहो सबका, प्रियतम हैं तेरे वही विभु।।
उन चरणों में दृढ़ अनुराग, तेरा तो जानें सब ही। प्रेम करें तुमसे बहुत, हम जाने वह सांवरिया भी।।
तभी तो वह सदैव ही, तुझे माल कण्ठ में धरा करें। चाहे भंवरे मण्डराते रहें, इक क्षण भी न उतारा करें।।
क्या अपने प्रियतम माधव को, तुमने सखी कहीं देखा है? कहो कहो एरी सखी हमें, क्या चरण चिह्न कहीं देखा है?

प्रिय मालती और मल्लिके, ऐ जाति और सखी जूही। हमरे प्यारे मनमोहन के, दर्शन क्या हुए कदाचित् ही?
अपने कोमल कर कमलों से, क्या स्पर्श उन्होंने तुम्हारा किया? आनन्द से तुमको भरने को, आगमन क्या उन्होंने इधर किया?

हे रसाल पियाल कटहल, पीतशाल कचनार आक। जामुन बेला और मौलश्री, कदम्ब नीम आम अरु ढाक।।
अन्यान्य भी जो तरुवर, यमुना तट पे हैं विराजमान्। परोपकार के हेतु ही, तेरा जीवन जन्म यह है महान्।।
अपनी सुध बुध खोई हमने, है कृष्ण बिना जीवन रीता। हे दायावान वृक्षों तुम ही, कृष्ण का कुछ दो हमें पता।।

हे पृथ्वी तुम तो उनकी, अपनी ही हो प्रेयसी। कहो कहो ऐ देवी तुम, कौन तपस्या तुमने करी?
जो उनका श्री चरण स्पर्श, पाकर आनन्दित हो रही? तृण लतादि बनकर, रोमांच प्रकट निज कर रही।।
यह उल्लास तुम कहो सखी, क्या चरण स्पर्श के है कारण? या वामन अवतार में, विश्व रूप जो किया धारण।।
तुमको था उन्होने नाप लिया, क्या इस कारण रोमांच हुआ? उनके स्पर्श के कारण ही, क्या अंग अंग तेरा खिला?
या उससे भी पहले तुझे, वराह अवतार का संग मिला। उनके अंग संग लगकर, क्या यह तेरी हुई दशा?

अरी सखी अरी हरिणियो, तनिक सुनो तुम हमारी भी। हमारे प्यारे के अंग संग से, सौन्दर्य की धार सदा बहती।।
निज प्राणप्रिया के संग प्रभु, कहीं इधर से तो नहीं निकले हैं? तेरे नयनों को परमानन्द, प्रदान करी क्या निकले हैं?
कुन्दकली की माला सखी, निज गले में हैं वह डारे हुए। उनके प्राण प्रिया की कुंकुम से, अनुरंजित ही वह सदा रहे।।

उसकी सुगन्ध से वायु भी, मन्द मन्द सुरभित सा लगे। कहो कहो वह सुन्दर श्याम, इधर से होकर क्या गए ?

ऐ तरुवरो उनकी माला का, तुलसी ऐसी सुगन्धित है। उस गन्ध के लोभी भंवरे, रहते उसपे सदा मण्डित हैं।।
इक हाथ में कमल पुष्प उनके, दूजा प्रेयसी के कान्ध धरा। विचरण करते देखा तुमने, हमरे श्याम सुन्दर को क्या?
यूं लगे उन्हें प्रणाम को ही, तुम सब यूं हो झुक रहे। क्या तव वन्दन स्वीकार किया, उन प्रेममयी निज चितवन से?

पूछो तो लताओं से सखी, वृक्षों के हैं भुजपाश बन्धीं। अपने पति के प्रेममय, आलिंगन में हैं यह पड़ीं।।
इससे क्या हो सखी मेरी, इनकी पुलक रोमांच जो है। सौभाग्य तो देखो सही इनका, वह तो प्रभु नख के स्पर्श से है।।

मतवाली गोपियां इस विधि, प्रलाप थीं करतीं जा रहीं। कृष्ण को ढूंढती ढूंढती, अति कातर वह थी हो गईं।।
प्रेमावेग कुछ और बढ़ा, भगवन्मय वह होने लगीं। भिन्न भिन्न लीलाओं का, अनुकरण वह फिर करने लगीं।।

शुकदेव बोले,
इक पूतना बनी मनो, कृष्ण ही दूजी बन गई। शिशु बनी वह कृष्णवत्, वा स्तनपान करने लगी।।
कोई छकड़ा जाय बनी, तो बालकृष्ण दूजी बनी। रोते हुए उस उलट दिया, छकड़ा फिर पांव की ठोकर दी।।

कोई बालकृष्ण बन बैठ गई, तो तृणावर्त दूजी बनी। दैत्य बनी उस गोपी ने, जा कृष्ण की अपहरण करी।।
कोई घुटने टेक टेक, पांव खेंच कर चलने लगी। पायजेब की रुनझुन की ध्वनि, उसकी झंकृत होने लगी।।

इक बनी कृष्ण राम दूजी, और अन्य बहुत सी बनीं ग्वाले। इक गोपी बनी वत्सासुर, तो दूजी बकासुर रूप धरे।।
तब अन्य गोपियों ने राजन्, कृष्ण रूप ही धर लिये। वत्सासुर और बकासुर को, वह मारने की लीला करें।।

इक गोपी वंशी बजाकर के, फिर नव खेल रचाने लगी। वंशी से मानो वन को गए, पशुओं को वह बुलाने लगी।।
कृष्ण की भान्ति वन गमन, की लीला उसने देख करी। अन्य सब सखियों ने मिली, प्रशंसा में वाह वाह करी।।

इक गोपी निज को कृष्ण मान, गलबईयां डालती दूजी के। और कहती वह अन्य से, अरे मित्रों मैं ही कृष्ण हूं रे।।
देखो देखो तुम मेरी, इस मनहर चाल को देख लो। कोई दूजी कृष्ण बनी कहती, व्रजवासियों तनिक भी नहीं डरो।।
आन्धी पानी से बचने का, उपाय है मैंने सोच लिया। ऐसा कह गोवर्धन धारण, करने की होती लीला।।

अपनी ओढ़नी का अपने, सर पर वह छत्र बना लेती। ज्यों गोवर्धन गिरि को ही, हों अपने सर पर तान रहीं।।
इक बनी कालिय नाग तो, दूजी ने सर पर पांव धरा। कृष्ण बनी वह बोली वहीं, अरे दुष्ट सर्प तू यहां से जा।।
दुष्टों के दमन के लिये ही तो, जानो मैंने है जन्म लिया। इतने में इक गोपी ने कहा, भयंकर दावानल है लगा।।
जल्दी से आंखे बन्द करो, तुम्हें अनायास लूंगा मैं बचा। फिर इक गोपी कृष्ण बनी, दूजी ने यशोदा रूप धरा।।
फूलों की माला लेकर, कृष्ण को ऊखल से बान्धा। कृष्ण बनी गोपी ने फिर, भयभीत हो मुंह पे हाथ धरा।।

इस विधि लीला करते हुए, वन वन थीं गोपियां ढूंढ रहीं। वृन्दावन के वृक्ष लता से, पता कृष्ण का पूछे थी।।
इसी समय इक स्थान पर, प्रभु के चरण चिह्न दीखे। आपस में विचार हुआ, हैं निश्चित यह नन्दलाल के।।
ध्वजा कमल वज्र अंकुश, और जौ आदि स्पष्ट दीखें। श्याम सुन्दर को छोड़कर, न अन्य किसी के हो यह सकें।।

इन चिन्हों को देख करी, वे आगे बढ़ने लगीं। व्रज वल्लभ श्री कृष्ण को, गोपियां थीं वह ढूंढ रहीं।।
श्री कृष्ण के संग संग उनको, किसी युवती के भी चिन्ह मिले। उन्हें देख हुईं व्याकुल वह, और वार्तालाप यह होने लगे।।
गोपियां बोली,
कौन है वह सौभाग्यवती, जिसके चरण के चिन्ह हैं यह? प्रियतम गजराज के साथ ज्यों, गजगामिनी कान्धे हाथ धरे?
निश्चित ही श्री कृष्ण की, परम अराधिका वह होगी। उस पर मुदित हो प्रियतम ने, हम सब की है त्याग करी।।
वह प्राणनाथ हमें छोड़कर, एकान्त में इसको ले गए। उस श्याम सुन्दर ने देखो सखी, हमसे हैं कैसे छल किये।।

श्री कृष्ण के चरण कमल, जिस रजकण का स्पर्श करें। अहोभाग्य उस धरा के हैं, सखी धन्य धन्य वह हो जाये।।
ब्रह्मा शंकर और लक्ष्मी भी, अपना अशुभ मिटाने को। सीस पे धारण करते हैं, परम पावनी रजकण वो।।

यह सखी हमारे प्रियतम को, एकान्त में है ले गई। अकेले ही वा अधर सुधा, का रसपान यह कर रही।।
इस गोपी के चरण चिह्न, तो हृदय क्षुब्ध हैं कर रहे। हमरे सर्वस्व श्री कृष्ण, ज्यों मानो इसने ही हरे।।

अरी देखो सखी यहां पे तो, नहीं चरण चिह्न उसके दीखें। ऐसा भासे श्री कृष्ण यहां, कान्धे पे उसे बिठा रहे।।
सुकुमार चरणों में जब, तीक्ष्ण तृण चुभती उन देखी। निज प्रेयसी के बचाव को, फिर उन्होने यह विधि करी।।

मेरी सखियो देखो तो यहां, चरण चिह्न बालू में धंसा। इससे आभास हो सखी यही, कोई भारी बोझ है कान्ध धरा।।
इस बोझ के कारण उनके चरण, भूमि में गहरे धंस गए। हो न हो यहां प्रेयसी को, हैं प्रियतम कान्ध उठाये हुए।।

देखो देखो व्रजवल्लभ ने, यहां प्राणप्रिया को धरा नीचे। उसके हेतु ही कृष्ण यहां, फूल बीनने में है लगे।।
पंजे के बल पे उचक करी, माने वह फूल हों तोड़ रहे। इस कारण पंजेधंसे नीचे, नहीं एड़ी का कहीं पता रहे।।

किसी कामी पुरुष समान ही, केश प्रसाधन उसका किया। निज प्रेयसी के केशों में, इक इक फूल उन्होने गूंथा।।
इसी स्थल पर प्रियतम हमारे, उसके संग बैठे होंगे। यहां गिरे जो पुष्प हैं, वह गाथा इसकी कह रहे।।

हे सखी श्री कृष्ण तो हैं, नित्य तृप्त और आत्म राम। अखण्ड एक वह आप हैं, किसी अन्य का है वहां क्या काम?
वहां पे काम वासना की, कल्पना भी कस हो सके? फिर भी कामी पुरुषों की, दीनता के दर्शन के लिए।।
और कुटिलता जो कहीं, नारी में कभी हो सके। एकान्त में गोपी संग प्रभु ने, यह लीला के खेल रचे।।

शुकदेव बोले,
निज सुध बुध खो इक दूजी को, थीं चरण चिन्ह दिखा रहीं। गोपियां यूं मतवाली हो, थीं वन वन भटका रहीं।।
अन्य गोपियां छोड़ उधर, श्री कृष्ण ने जिसको संग लिया। भाग्यवती उस गोपी को, एकान्त रसास्वादन दिया।।

उसने सोचा सब गोपियां से, मैं ही सर्वश्रेष्ठ हूं। इस कारण कृष्ण ने उन्हें त्यजा, मैं ही प्रेम में ज्येष्ठ हूं।।
वे सब भी इनसे प्रेम करें, पर उनको तो इन छोड़ दिया। सब गोपियां में कृष्ण ने, मेरा ही बस मान किया।।

श्री ब्रह्मा और शंकर के, भी शासक हैं श्री कृष्ण। वन में उन संग जाकर वह, गोपी भी हुई मद में अन्ध।।
उन्हीं कृष्ण से कहने लगी, प्रिय और न चल पाऊं मैं अब। सुकुमार चरण मेरे थक गए, निज कान्ध धरो मुझे तुम अब।।

जहां ले जाना अब चाहो, वहां पे ही मुझे ले चलो। किन्तु प्रियतम मुझसे तुम, अब चलने की न बात कहो।।

यह सुनी श्याम सुन्दर बोले, अच्छा अब प्रिय तुम कान्ध चढ़ो। वह चढ़ने को तैय्यार हुई, तो कृष्ण को ही दिया उसने खो।।
श्री कृष्ण फिर उससे भी, अन्तर्धान ही हो गए। सौभाग्यवती गोपी के फिर, मन में पश्चाताप हुए।।

वह व्यथित हुइ रोने लगी-
हा नाथ। हा रमण। हा प्रियतम, कहां पे हो तुम महाभुज? कहो कहां जा छिपे सखे, मैं दीन हीन दासी हूं तोरी।।
बहुत भूल करी मैंने, हे प्रभु मुझको दर्शन दो। शीघ्र ही तव सान्निध्य का, अब दर्शन स्पर्शन् मुझको हो।।

इतने में अन्य वह गोपियां, पदचिन्हों का ले आसरा। उनके जाने का मार्ग खोज, उसी स्थान पे पहुंचीं जा।।
थोड़ी दूर से ही उनको, स्पष्ट दर्शन यह हुआ। निज प्रियतम के वियोग में, सखी का तन था अचेत पड़ा।।

जब जागृत उन्होने किया उसे, अपनी कथा वह कहने लगी। जो प्रेम और सम्मान मिला, व्यथित हो उसको कहने लगी।।
यह भी कहा कुटिलता वश, मैंने उनका अपमान किया। इस कारण ही प्रियतम मेरा, मुझसे अन्तर्धान हुआ।।
अति विस्मित सब हो गईं, उसकी कथा यह सुन करी। अन्तर्धान हुए पुन: प्रभु, आश्चर्य की सीमा नहीं रही।।

तत्पश्चात् वन में जहां, तक चन्द्र की चान्दनी थी। वहां तक वह गोपियां, कृष्ण को ढूंढती हुईं गईं।।
जब उन्होने देखा आगे, घोर तिमिर है छाया वहां। और न जा पायें आगे, अति गहन वन भी है वहां।।
कृष्ण तो जायेंगे वन में, नहीं ढूंढ उन्हें हम पायेंगी। यह सोची सब गोपियां, उल्टे चरण ही लौट पड़ीं।।

गोपिका गण का मन राजन्, था कृष्णमय ही हो गया। कृष्ण चर्चा छोड़कर, नहीं अन्य वाक् कोई मुख पे था।।
उनके तन से बस कृष्ण के, हेतु ही चेष्टा थी होती। क्या कहूं रोम रोम उनकी, और आत्मा कृष्णमय थी हुई।।
केवल उनके गुणों और, लीला का गान था हो रहा। उनका हृदय तो कृष्ण में, ही पूर्ण तन्मय हुआ।।
निज तन की भी सुधि न थी, फिर घर को याद ही को करता? कृष्ण कृष्ण बस कृष्ण कृष्ण, हर स्वास यही था जप रहा।।

रोम रोम को उनके बस, एक ही प्रतीक्षा थी। जल्दी ही आयें अब प्रियतम, बस यह ही आकांक्षा थी।।
कृष्ण भाव में डूबी हुईं, यमुना तट पर वह लौट आईं। रमण रेती में लौट कर, श्री कृष्ण के गुण गाने लगीं।।

२) गोपी गीत

गोपियां बोली,
प्रियतम आपके जन्म के कारण ही, वृन्दावन की महिमा बनी। वैकुण्ठ लोक से ऊपर हो, व्रज लोक की अज गिनती।।
सौन्दर्य की देवी लक्ष्मी ने, वैकुण्ठ वास तभी छोड़ दिया। अब व्रज में ही नित्य हो, निवास मृदुलता मूर्ति का।।
किन्तु देखो यह गोपियां तव चरण में अर्पित किये प्राण। वन वन में हैं खोजे तुम्हें, हो कहां छिपे तुम प्राणानिधान?

हे हृदय के स्वामी हम तो हैं, बिन मोल की ही आपकी दासी हुई। कमल नयन के कटाक्ष से, तुमने आहत यह हृदय करी।।
हे प्राणेश्वर तुम ही तो हो, सकल मनोरथ पूर्तिकर। क्या वध करने से कम है, नेत्रों का यह वार आपका?
केवल अस्त्रों शस्त्रों से तो, हत्या नहीं होती प्रियतम। आपके प्रेम कटाक्ष के बाणों से, ही हतप्राय: हुई हैं हम।।

हे पुरुषश्रेष्ठ तूने पुन: पुन:, प्राण हमारे बचाये हैं। विषपूर्ण यमुना जल से, अघासुर से भी बचाये हैं।।
इन्द्रकोप वर्षा बिजली, आन्धी अग्नि से बचाया हमें। वृषभासुर और व्योमासुर के, भय से मुक्त कराया हमें।।
भिन्न भिन्न समय पे कृष्ण, हमारी रक्षा है तूने करी। सबके हृदयों में आप बसो, तुम ही बनकर सबके साक्षी।।
केवल यशुदा नन्दन ही नहीं, तुम सबके अन्तर्यामी हो। घट घट के वासी परमेश्वर, तुम ही तो सबके स्वामी हो।।
ब्रह्मा जी की प्रार्थना पर, सब विश्व की रक्षा के लिये। हे सखे यदुवंश में, तुमने हैं अवतार लिये।।

निज प्रेमियों की अभिलाषा की, पूर्ति में रहो सदा आगे। हो यदुवंश कुलभूषण तुम, नतमस्तक हम तुम्हारे आगे।।
जन्म मरण रूपा जग के, चक्र से जो भयभीत रहें। आपके चरण कमल की ही, परम शरण वह ग्रहण करें।।
शरणागत को आपके कर कमल, अभय दान दे देते हैं। छत्रछाया पाकर उनकी, सुख से वे जन विचरते हैं।।
सबकी कामना की पूर्ति, करने वाले यह उभय हस्त। जिनसे लक्ष्मी का कर पकड़ा, अब हमरे सीस पे दो तुम धर।।

वीरवर श्याम सुन्दर तूने, व्रजवासियों के दु:ख दूर किये। तव प्रेमी जन का मान गुमान, मुसकान तेरी मर्दन करे।।
हे प्रिय सखा मत रूठो तुम, हमसे बस केवल प्रेम करो। हम दासी आपकी हैं प्रभु, चरणों में प्राण न्यौछावर हों।।
व्यथित हैं हम सब अबलायें, हे श्याम मान भी जाओ अब। सुन्दर श्याम निज मुख कमल, पुन: हमें दिखलाओ अब।।

हे प्रभु जो भी प्राणी, शरणागत आपकी हो जाये। आपके चरण कमल शरणागत के, सारे पाप ही नष्ट करें।।
समस्त सौन्दर्य माधुर्य कोष, नित्य श्री लक्ष्मी सेवा करें। उन्हीं चरणों से प्रभु आप, वत्सों का अनुगमन करें।।
हमारे कारण उन चरणों को, सांप के फण पे रख दिया। हे प्रभु इसमें भी आपने, नहीं तनिक संकोच किया।।
विरह व्यथा से हे प्रियतम, हृदय हमारा जल रहा। आपसे मिलन की कांक्षा ने, अति व्यथित हमको किया।।
सन्ताप्त वक्ष पे अपने चरण, हे प्रियतम तुम अब रख दो। अपने चरण के स्पर्श से, हृदय की ज्वाला शान्त करो।।

कैसी मृदुवाणी आपकी, हे प्यारे मोहन हे कमलनयन। इक इक अक्षर हर पद और शब्द, मधुरातिमधुर है मनमोहन।।
बड़े बड़े विद्वान भी, उसमें ही रम जाते हैं। उस वाणी पर ही अपना, सर्वस्व वार वह जाते हैं।।
उसीका रसास्वादन कर, यह दासियां मोहित हो रहीं। तव आज्ञाकारिणी गोपियां, उसमें ही हैं खो रहीं।।
हे दानवीर अब दिव्य सुधा, से भी मधुर अधरामृत दो। मृतप्राय: हैं हम हुईं, नवजीवन का हमें दान दो।।

है अमृत स्वरूप ही, हे प्रभु आपकी लीला कथा। विरह तप्त जीवों के लिये, वही तो जीवन सर्वस्व बना।।
महाज्ञानी महात्मन् और, भक्तों ने उसका गान किया। सब पाप ताप मिटा वह दे, अति मंगल श्रवण से है होता।।
है अति सुन्दर और मधुर वह, और है वह अति विस्तृत भी। जो आपकी कथा का गान करें, भूलोक में हैं महादानी वही।।

हे प्रियतम इक दिन आपकी, प्रेममयी मुसकान का। मधुर चितवन और भिन्न भिन्न, क्रीड़ा का हमने ध्यान किया।।
आनन्द मग्न हम हो गईं, उसका प्रभाव ही ऐसा था। तत्पश्चात् ही आपसे, हे प्रभु हमारा मिलन हुआ।।
एकान्त में प्रेम की बातें कहीं, हृदय स्पर्शी ठिठोली करी। अब स्मृति ही उन सबकी, इस मन को क्षुब्ध है कर रही।।

प्रिय स्वामी आपके चरण तो, कमल से भी अति कोमल हैं। देख के हृदय है प्रफुल्लित हो, वे अरविन्द से भी सुन्दर हैं।।
गाय चराने के लिये, जब व्रज से तुम निकलते हो। कंकर तृण कुश कांटों से, कहीं आहत युगल चरण न हों।।

यह आशंका ही हमारा मन, अति व्यथित कर देती है। बेचैन ही हम हो जायें, हृदय दु:खी यह होती है।।

दिन ढलने पर हे कृष्ण, जब व्रज को तुम वापिस आओ। आपके मुख पर श्यामल अलकों, की शोभा अति न्यारी हो।।
गइयों के चरण से उड़ी धूलि, ने उनको है ढांप लिया। हृदय में जागृत प्रेम किया, आपने अपनी अनुपम छवि दिखा।।
हे वीरवर आपसे मिलने की, कांक्षा है चित्त में अब भड़की। दर्शन दान दो अब प्रिय, और चाहना शान्त करो हमरी।।

हमारे सारे सन्ताप प्रभु, बस आप ही दूर हैं कर सकें। आपके चरण कमल निज भक्तों की, अभिलाषा सब पूर्ण करें।।
स्वयं लक्ष्मी जी उनकी, सदा सेवा करती रहती हैं। इस पृथ्वी के तो मानो, अति सुन्दर हैं आभूषण वह।।
विपदा आने पर सदा, उनका चिन्तन करना चाहिये। एकमात्र उनका चिन्तन, सब विपदा को दूर करे।।
अपने युगल चरण हे प्रभु, अब वक्ष:स्थल पर हमरे धरें। इस हृदय की व्यथा तो, शान्त तभी प्रभु हो सके।।

मिलन की सुख आकांक्षा को, आपका अधरामृत वर्धित करे। विरह जन्य वह शोक सब, और सन्ताप को नष्ट करे।।
यह बांसुरी नित्य ही, उस सुधारस का पान करे। उस रस को भली भाँति, यह अपने आन्तर ले जाये।।
जिसने इक बार भी प्रभु, आस्वादन किया हो उस रस का। उसको किसी अन्य आसक्ति का, स्मरण नहीं कभी रह सकता।।
हे वीरवर वही अमृत, हमको भी बांटो जरा। हृदय में विरह की ज्वाला जो, उसको प्रियतम अब शान्त करा।।

हे प्रियतम दिन में जब तुम, वन विहार को जाते हो। आपके दर्शन के बिना प्रभु, इक इक पल युग के समान हो।।
सन्ध्या समय जब लौटो तुम, घुंघराले कुण्डल मुख घेरें। आपके सुन्दर मुखारविन्द, का हम जब दर्शन करें।।
तब यह पलक गिराना ही, अति कठिन हो हमारे लिये। इन पलकों को बनाया क्यों, हम विधाता को पूछें।।

निज पति पुत्र भाई बन्धु, कुल परिवार को त्याग कर। तेरे पास हम आ गईं, उनकी आज्ञा का उल्लंघन कर।।
हम जानें इक इक चाल तेरी, और संकेत भी समझा करें। आपके मधुर गान की गति समझ, मोहित हम उससे हो जायें।।
उसको ही सुनकर प्रभु, हम आज यहां पे हैं आईं। हमें तो यहां बुला लिया, अब कहां छिपे हो हरजाई?
हे कुञ्ज बिहारी रात्रि समय, इस विध आई हम युवतियों को। परित्याग कौन प्रभु कर सके, तुम तो कृष्ण बहु निष्ठुर हो।।

हे प्रिय एकान्त में तुम, ठिठोली जब हमरे करते। मिलन कांक्षा प्रेम भाव, को तुम थे वर्धित करते।।
प्रेममयी चितवन से प्रिय, थे तुम हमको निहारते। अपनी मुसकान की सुन्दर और, शीतल थे छटा बिखारने।।
आपके विशाल वक्ष:स्थल पे, थी दृष्टि हमरी टिक जाती। जहां पे श्री लक्ष्मी देवी, नित्य निवास ही हैं करतीं।।
तब से लेकर हे प्रभु, नित्य लालसा हमारी बढ़े। हमरा मन तव प्रेम से, अधिकाधिक मुग्ध ही होता रहे।।

यह अभिव्यक्ति प्रियतम तेरी, व्रजवासियों के सन्ताप हरे। पूर्ण विश्व का भी यह ही, मंगल है करने के लिये।।
हमारे हृदय में तेरे लिये, लालसा अब है बढ़ गई। हे श्याम सुन्दर तू दे दो हमें, अब ऐसी कुछ औषधि।।
तेरे अपने प्रेमियों के, रोग को जो निर्मूल करे। हमारे हृदय के हे प्रियतम, जो सारे सन्ताप हरे।।

सुकुमार चरण तोरे प्रियतम, हैं कमल से भी अतिशय कोमल। निज कठोर वक्ष:स्थल पर, रखते हुए भी लागे डर।।
धीरे से उन्हें रखें प्रभु, कहीं चोट न उनको लग जाये। उन्हीं चरणों से रात्री समय, तुम जंगल जंगल भटक रहे।।
कंकर-पत्थर की चोट से, क्या उनमें पीड़ा नहीं होती? हमारा मन तो भ्रमित हो, सम्भावना इसकी करके ही।।

अचेत हुई हम जाती हैं, हे श्यामसुन्दर हे प्राणनाथ। यह जीवन प्रभु आपका है, आप ही हो जीवन आधार।।

३) कृष्ण का गोपियोंके बीच में प्रकट होकर महारास करना

शुकदेव बोले,

भगवान की प्रिय गोपियों ने, विरह आवेश में आकर के। हे राजन् इस विधि, विविध भान्ति प्रलाप किये।।
निज प्रियतम कृष्ण के दर्शन की, लालसा वह न रोक सकीं। करुणा पूर्ण मधुर स्वरों में, फूट फूट कर रोने लगीं।।

तत्क्षण ही उनके मध्य में, प्रकटे बांके बिहारी स्वयं। मन्द मन्द मुस्कान से, खिला था उनका कमल वनद।।
कण्ठ में झूमे वनमाला, तन प लहराता पीताम्बर। यह रूप माधुर्य प्रियतम हरि का, सबका ही मन रहा था हर।।
सबके मन को मथने वाले, मदन का भी मनमोहक था। ऐसा आकर्षक और सुन्दर, अनुपम रूप यह उनका था।।

कोटिश: कामदेव से भी, अति सुन्दर और मनहर जो। प्राणवल्लभ श्याम अपने, देखा मध्य में आये वो।।
उन्हें देख के गोपियों के, नेत्र आनन्द से खिल गए। सबकी सब साथ ही हुईं खड़ीं, ज्यों जड़ तन में हों प्राण भरे।।
प्राण हीन तन में जैसे, नव प्राण का ही संचार भये। उनके तन का हर अंग ही, नवस्फूर्ति चेतना सों ज्यों भरे।।

इक गोपी ने अति प्रेम से, निज द्वौ कर में कर उनका लिया। धीरे धीरे श्री कृष्ण के, हाथ को उसने सहला दिया।।
चन्दन चर्चित भुजदण्ड वा, दूजी ने अपने कान्ध धरा। तीजी ने उनके मुख से, ताम्बूल निज कर में लिया।।
चौथी गोपी का हृदय तो, विरह अग्न से जल था रहा। धरती पे बैठ कर उसने, वा चरण को वक्ष:स्थल पे धरा।।

प्रणयकोप से विह्वल हो, पंचम ने रोष यूं दिखलाया। दाँतों से ओंठ दबाकर के, भ्रुवों को ऊपर को ताना।।
इक टक ही दृष्टि टिका, वह उनकी ओर थी देख रही। ज्यों कटाक्ष बाणों से अपने, उनको बेंध ही वह देगी।।

निर्निमेष नयनों से छटी, उनकी ओर निहारे थी। उनके मुख मकरन्द का, पान हो ज्यों वह कर रही।।
ज्यों सन्त प्रभु के चरणों के, दर्शन से तृप्त न हो सकें। त्यों ही मुख माधुरी पान कर, उनके हृदय न तृप्त हुए।।

नेत्रों की राही कोई, आन्तर में उनको ले गई। हृदय में उन्हें बिठा करी, फिर आंखें उसने बन्द करीं।।
मन ही मन श्री हरि का, आलिंगन उसने जब किया। रोम रोम उसके तन का, पुलकित सा मानो हो उठा।।
अंग अंग उसका खिला, आनन्द मग्न वह होने लगी। सिद्ध योगियें के समान, वह परमानन्द में खोने लगी।।

परम ज्ञानी सत् पुरुष को, मुमुक्षु जैसे प्राप्त करें। भव बन्धन की पीड़ा से, मुक्त वह राजन् हो जायें।।
वैसे ही श्री कृष्ण के, दिव्य अनुपम दर्शन से। सब गोपियों के हृदय, परमानन्द से भर गए।।
विरह जन्य सन्ताप से, गोपियां सारी मुक्त हुईं। परम शान्ति के सागर में, डूबने उतरने वह लगीं।।

श्री कृष्ण तो हैं एकरस, और अच्युत हैं राजन् जानो। सौन्दर्य और माधुर्य उनका, निरतिशय है तुम जानो।।
फिर भी विरह व्यथा से, मुक्त हुई उन गोपियों के। मध्य खड़े श्री हरि की, शोभा और भी बढ़ी लगे।।
ज्यों परमेश्वर निज बल और, नित्य ज्ञान सम्पन्न रहें। उनसे सेवित होने पर, प्रभु की शोभा कुछ और बढ़े।।

तत्पश्चात् श्री कृष्ण ने, व्रजसुन्दरियों को संग लिया। यमुना के पावन पुलिन पे, तब उन्होने प्रवेश किया।।
कुन्द मन्दार के पुष्पों से, सुरभित थी शीतल वायु। मन्द मन्द गति से वहां, बहती थी मनहर वायु।।

उसकी महक से भंवरे भी, थे मतावले हो रहे। इधर उधर मण्डरा कर के, आनन्द प्रकट निज कर थे रहे।।

शरत्पूर्णिमा का चन्द्र, था चान्दनी निज छिटका रहा। उसकी निराली छटा में, नहीं अन्धेरा कहीं रहा।।
आनन्द और मंगल का ही, साम्राज्य चहुं दिक् छा गया। उस पुलिन को ज्यों यमुना ने स्वयं, निज लहरों से दिया सजा।।
प्रभु की लीला के लिये, इक रंगमंच बना दिया। श्वेत सुकोमल बालू को, उसने वहां बिछा दिया।।

श्री कृष्ण दरस से उनके हृदय, आनन्दोल्लास से थे भरे। उस रस से हृदय की आधि व्याधि, हे राजन् सब नष्ट हुए।।
ज्यों कर्मकाण्ड की श्रुतियां सब, उनका वर्णन करते करते। अन्त में ज्ञान काण्ड का, ही प्रतिपादन करने लगें।।

सर्वकामना त्याग के फिर, कृत्य कृत्य मानो वह हुई। उसी विधि सब गोपियां भी, आप्तकाम ही हो गईं।।
निज वक्ष:स्थल की रोली और, केसर से चिह्नित ओढ़नी को। परम सुहृद् प्रियतम कृष्ण, के बैठने को बिछा दियो।।

योग साधना से पावन, किये हुए निज हृदय में। महायोगेश्वर जिनके लिये, आसन की कल्पना करें।।
फिर भी हृदय सिंहासन पर,उनको बिठला वह न पायें। वह श्री हरि यमुना तीरे, गोपिन् की ओढ़नी पर बैठें।।
सहस्त्रश: गोपिन् के मध्य, उनसे पूजित श्री हरि हुए। शोभायमान वहां हुए प्रभु, शोभा वर्णी वा न जाये।।
त्रिलोकी के त्रैकालों में, हे राजन् जो सौन्दर्य रहे। श्री हरि स्वयं ही उस सबके, हैं एकमात्र बस आश्रय रे।।
प्रभु के सौन्दर्य के बिन्दुमात्र, सौन्दर्य का ही आभास वहां। कोटिश: सूर्य प्रकाश से भी, न तुलना हो सके वहां।।

अलौकिक निज सौन्दर्य का, दर्शन उनको देकर के। उनकी प्रेम आकांक्षा को, वह वर्धित और थे कर रहे।।
गोपियों ने भी श्री हरि के, प्रेम का फिर सम्मान किया। मन्द स्मित मनहर चितवन, तिरछी भ्रुवों से उन्हें देखा।।
किसी ने उनके चरण कमल को, अपनी गोद में रख लिया। तो किसी ने उनके कर कमलों, को अपनी आगोश लिया।।
उनके संस्पर्श का इस विधि, आनन्द थीं वह ले रहीं। कितने सुकुमार हैं कितने मधुर, ऐसा कभी वह कह उठतीं।।
श्री कृष्ण के छिप जाने से, कभी मन ही मन थीं रूठतीं। निज मुख से मानें अपना दोष, इस कारण वे कहने लगीं।।
गोपियाँ बोली,
अरे नटवर कुछ लोग तो, जग में ऐसे होते हैं। जो प्रेम के प्रतिरूप में, ही प्रेम कर सकते हैं।।
कोई अन्य ऐसे भी हों, बिन प्रेम मिले भी प्रेम करें। किन्तु कोई ऐसे भी हैं, जो दोनों से न प्रेम करें।।
तुम कहो प्रिय इन तीनों में, कौन है तेरे मन भाये? कैसा प्रेमी हे प्रियतम, तेरे मन को लुभा पाये?
कृष्ण बोले,
प्रिय सखियो जो प्रेम के, मिलने पर ही प्रेम करें। उनका तो सारा उद्योग, है स्वार्थ के ही लिये।।
न उनमें सौहार्द है, न ही धर्म का कार्य है। उनका प्रेम तो जानो तुम, लेन देन व्यापार है।।
केवल अपना स्वार्थ ही, उनके प्रेम का प्रयोजन है। और नहीं कोई जानो, उस प्रेम का योजन है।।

जो प्रेम के न मिलने पर भी, प्रेम ही करते हैं सदा। ज्यों स्वभाव से करुणामय, सज्जन और माता पिता।।
परहित और सुहृदयता से, सदा उनका हृदय रहता भरा। निच्छल है उनका व्यवहार, वहां सत्यता और धर्म भी भरा।।

कोई जन ऐसे भी होएं, प्रेमी से भी न प्रेम करें। नहीं प्रेम करें जो जन उनसे, वहां प्रेम का प्रश्न ही कहां उठे?
ऐसे लोगों में भी सुनो, चार प्रकार के लोग हैं। एक तो वह जो निज स्वरूप, में ही मस्त हुए लोग हैं।।

उनकी दृष्टि में कभी, द्वैत भासता ही नहीं। अपने सिवा कोई दूसरा, उन्हें दीखता ही नहीं।।
दूजे द्वैत में तो रहें, पर कृत्यकृत्य हैं हो चुके। उनका तो किसी से भी, कोई प्रयोजन नहीं रहे।।
तीजे तो जाने ही नहीं, कि कौन प्रेम हमसे करे। और चतुर्थ प्रकार के जन, भी हैं कैसे अब सुन ले।।
अपना हित करनेवाले, परोपकारी भी लोगों से। गुरु तुल्य भी लोगों से, ऐसे जन हैं द्रोह करें।।

ऐ सखियों मेरे प्रेम की तो, बात है इन सबसे ही भिन्न। जो प्रेम करें मुझसे सखी, व्यवहार हो मेरा उनसे भिन्न।।
मैं तो निज प्रेमी जन को, भी प्रेम नहीं वैसा करता। चित्त वृत्ति निरन्तर मुझमें रहे, इस कारण हूं ऐसा करता।।
जैसे किसी निर्धन को कभी, धन का कोई कोष ही मिल जाये। प्राप्त हुआ जो धन उसे, पुन: नहीं वह खो जाये।।
तो उसका चित्त उस खोये हुए, धन की चिन्ता में ही लगे। मैं भी मिल पुन: लुप्त होऊं, ताकि उनका चित्त मुझमें लगे।।

नहीं तनिक सन्देह इसमें, मम हेतु तुमने सब छोड़ा। लोक मर्यादा वेद मार्ग, निज बन्धु बान्धव को छोड़ा।।
ऐसी स्थिति में तुम्हारी वृत्ति, अन्य कहीं पे न जाये। अपने सौन्दर्य सुहाग की, चिन्ता कहीं पुन: न उठ आये।।
तुम्हारी चित्त वृत्ति यह सदा, मुझमें ही अविचल रहे। प्रेम तो करता हूं तुमसे, फिर भी निज रूप यह लुप्त किये।।
इस कारण मेरे प्रेम में, दोष न देखो तुम सखियो। मैं ही तुम्हारा प्रियतम हूं, और तुम सब मेरी प्यारी हो।।

प्रिय गोपियों मेरे लिये, बन्धन सारे तुमने काटे। बड़े बड़े यति योगी भी, तोड़ नहीं जिनको पाते।।
तुम्हारा और हमारा मिलन, है निर्मल और है दोष रहित। है आत्मिक संयोग यह, नहीं तन का कहीं भी लेश तनिक।।
अमृतमय तन जीवन पाकर, अनन्त काल तक यत्न करूं। तुम्हारी प्रेम सेवा त्याग का, बदला न कभी चुका सकूं।।
जन्म जन्म के लिये सखी, मैं ऋणी तुम्हारा हो गया। निज सौम्य स्वभाव प्रेम से, गर उऋण भी तुमने किया।।
तो भी जानो यह ऋण तो, कभी उतर न पायेगा। प्रेम त्याग और सेवा का, यह ऋण तो बढ़ता जायेगा।।
शुकदेव बोले,
गोपियों ने जब कृष्ण की, प्रेम भरी वाणी सुनी। विरह जन्य ताप से, तत्क्षण राजन् वह मुक्त हुईं।।
सौन्दर्य और माधुर्य के, स्त्रोत हैं स्वयं ही श्री हरि। उनका अंग संग पाकर, वह सफल मनोरथ हो गईं।।

श्री कृष्ण की प्यारी सेविकागण, थीं हाथ में डाले हाथ खड़ीं। यमुना के पावन पुलिन पर, रसमयी क्रीड़ा प्रभु ने छेड़ी।।
उन नारी रत्नों के संग, उन रास क्रीड़ा आरम्भ करी। दिव्य प्रेम की वह लीला, महारास प्रारम्भ हुई।।
योगेश्वरों के परम ईश्वर, दो गोपिन् मध्य में प्रकट हुए। गोपियों के कण्ठ में उन्होने, अपने हाथ फिर डाल दिए।।

इक गोपी और एक कृष्ण, यही वहां था क्रम बना। है प्रियतम मेरे ही संग, हर गोपी का यह अनुभव था।।
सहस्त्रश: गोपिन् में वहां, शोभायमान श्री कृष्ण हुए। इस भाँति महारास के, उत्सव वहां आरम्भ हुए।।
उसी समय आकाश में, शतश: विमानों की भीड़ लगी। पत्नियों संग सब देवों ने, भी वहां आगमन करी।।
रासोत्सव के दर्शन की, लालसा थी मन में जगी। उत्सुकता के कारण उनका, मन भी वश में नहीं रही।।

स्वर्ग की दिव्य दुन्दुभियां, अपने आप ही बजने लगीं। नन्दन वन के पुष्पों की, स्वर्ग से वर्षा होने लगी।।
पत्नियाँ ले गन्धर्व जन, भी वहां पर आ पहुंचे। श्री हरि के निर्मल यश का, गान वे सब करने लगे।।

सभी गोपियां प्रियतम संग, नृत्य वहां करने लगीं। रास मण्डल में श्याम सुन्दर, की छवि अति न्यारी थी।।
हाथों के कंगन गोपियों के, और चरण की पायजेब। करधनी की क्षुद्र घंटिका ने, इक साथ मधुर स्वर दिये छेड़।।
गोपियां थीं असंख्य वहां, इस कारण ध्वनि भी ऊंची हुई। यह मधुर ध्वनि वातवरण, गुंजित थी सारा कर रही।।

व्रज ललनाओं के मध्य में, विराजे बांके बिहारी जी। रमणरेती पर कृष्ण की, शोभा बनी अति न्यारी थी।।
पीत रंग की असंख्य ही, दमकती हुई मणियों में। ज्योतिर्मयी नीलमणि, अलग ही जैसे चमका करे।।

कभी पाद को आगे करतीं वह, कभी पीछे को ठुमुकाती थीं। इस विधि वह गोपियां, नृत्य की शोभा बढ़ाती थीं।।
गति अनुसार कभी धीरे से, कभी चरण को द्रुत वे चलातीं थीं। कभी हाथ वे ऊपर थीं करतीं, कभी घूम चाकवत् जाती थीं।।
उठना बैठना झुकना सब, अति तीव्र गति से था उनका। वक्ष:स्थल भी था काम्प रहा, वस्त्रों का कहीं पता न था।।
कानों के कुण्डल झूम झूम, कपोल पे ही थे आ रहे। नर्तन के अति परिश्रम से, मुख पे थे स्वेद बिन्दु चमके।।
उनके केशों की चोटियां, भी ढ़ीली कुछ पड़ने लगीं। नीवीं की गांढ़ें भी उनकी, खुलीं थीं मानो जा रहीं।।
नटवर नागर की गोपियां, इस विधि उन संग नाचे थीं। उस समय शोभा सबकी, अति निराली भासे थी।।
बहुत से कृष्ण लगें ऐसे, ज्यों श्यामल मेघों के मण्डल। बीच में गौर वह गोपियां, ज्यों दामिनी हो झिलमिल झिलमिल।।

भगवद् प्रेम ही गोपियों के, जीवन का उद्देश्य है। श्री कृष्ण संग नर्तन उनका, मधुर स्वरों को लेकर है।।
प्रियतम का संस्पर्शन् पा, आनन्दमय थीं हो रहीं। उनके राग अलापों से, जैसे सारी जग गूंज उठी।।

कोई तो प्रभु के स्वर के संग, थी अपना स्वर मिला रही। कोई अपने स्वर को थी, उनसे भी उच्च बना रही।।
उनसे भी ऊंचा स्वर करके, वह राग अलापे जा रही। विलक्षण स्वर से मुदित हुए, श्री कृष्ण सराहना पा रही।।
उसी राग को दूजी सखी, ध्रुपद में उन्हें सुनाने लगी। वह भी प्रियतम को रिझा कर, उनसे मान बहुत पाने लगी।।

नृत्य करते करते कोई, गोपी बहुत ही थक गई। हाथों के कंगन चोटी की, बेला पुष्प भी खुलने लगी।।
संग ही ठारे श्याम सुन्दर, का उसने आश्रय लिया। मुरली मनोहर के कान्ध को, उसने जोर से पकड़ लिया।।

भगवान कृष्ण ने अपना कर, था दूजी सखी के कान्ध धरा। कमल की सी सुगन्ध उसकी, ऊपर से चन्दन लेप हुआ।।
उसकी सुगन्ध ने गोपी के, मन को मतवाला किया। अति पुलकित हुआ रोम रोम, और उसने हाथ वह चूम लिया।।

इक गोपी थी नृत्य मग्न, कुण्डल थे उसके हिल रहे। उनकी छटा से कपोल वा, और भी मानो दमक उठे।।
अपने कपोल श्री कृष्ण के, कपोलों से उसने लगा दिये। उन्होने भी मुख के तम्बूल, उसके श्री मुख में दिये।।

नूपुर करधनी की घण्टिका, कोई गोपी थी बजा रही। उनके साथ ही नृत्य करी, वह उच्च स्वरों में गा थी रही।।
अति क्लान्त जब वह हुई, संग खड़े श्याम सुन्दर देखा। उनके कर को पकड़ करी, निज वक्ष:स्थल पर उसने धरा।।

हे राजन् इन गोपियों का, सौभाग्य तो लक्ष्मी से भी बड़ा। लक्ष्मी का प्रियतम इन्हें, निज प्रियतम रूप में जो मिला।।
एकान्त वल्लभ कृष्ण के, संग गान करती हुईं। गोपियां उनके अंग संग, ही विहार करने लगीं।।
उनके कण्ठ में कृष्ण ने, निज बइयों की दी माल बना। उस समय उन गोपिन् की, अपूर्व अनुपम थी शोभा।।

कमल के कुण्डल कानों में, शोभायमान थे हो रहे। घुंघराली अलकें लटकीं थीं, उनके सुन्दर कपोलों पे ।।
स्वेद की बून्दों से मुखड़ा, निराली छवि था पा रहा। श्री कृष्ण के संग रास में, नर्तन में था ध्यान टिका ।।
कंगन और पायजेब उनके, झंकृत थे हुए जा रहे। भंवरे भी निज गुंजन से, स्वर में स्वर थे मिला रहे ।।
जूड़ों और चोटियों के, पुष्प थे गिरते जा रहे। रासमण्डल की धरती को, निज सुरभि से महका रहे ।।

ज्यों नन्हां शिशु अपनी ही, परछाई-से राजन् खेला करे। उसके खेल में कभी कहीं, विकार कोई भी नहीं रहे ।।
उसी भाँति ही श्री हरि की, लीला यह थी हो रही। कभी हिय लगाते रमा रमण, कभी अंग स्पर्श करते किसी की ।।
कभी प्रेमपूर्ण कटाक्ष से, उनका वह निहारे थे। कभी लीलावश उन्मुक्त हंसी, अपनी वह बिखारे थे ।।
इस विधि व्रज की गोपियों से, श्री कृष्ण ने विहार किया। अपनी क्रीड़ा से सबके, चित्त को उन्होने निहाल किया ।।

श्री हरि का अंग स्पर्श पाकर, प्रेम विह्वल गोपियां हुईं। प्रेम आनन्द से, राजन् उनकी इन्द्रियां भरीं ।।
केश भी बिखर गये उनके, फूलों के हार भी टूट गए। आभूषण भी जो थे तन पे, सारे ही अस्त व्यस्त भए ।।
निज केशव वस्त्र और कंचुकी, भी नहीं सम्भाले सम्भले थी। प्रियतम को सामने देख करी, सुधबुध थी अपनी भूल गई ।।

यह रास देखी श्री कृष्ण की, देवांगनागण भी ललचाईं मिलन की कामना से मोहित, उनकी भी तन मन भई ।।
सब तारे नक्षत्र और, नक्षत्रनाथ विस्मित हुए। श्री हरि की रास यह देखकर, पूर्ण ब्रह्माण्ड ज्यों चकित हुए ।।

हे राजन् भगवान तो हैं, यद्यपि नित्य ही आत्मराम। अपने सिवा किसी अन्य से, नहीं उन्हें कभी कोई काम ।।
तथापि जितनी गोपियां थीं, उतने ही उन रूप धरे। खेल खेल में उनके संग, प्रभु ने यूं विहार किये ।।

बहुत देर तक गायन नर्तन, और विहार यह चलता रहा। इस श्रम ने उन गोपियों को, अति श्रान्त और क्लान्त किया ।।
सुखद निज कर कमलों का, तब करुणामय ने स्पर्श दिया। बहुत प्रेम से कृष्ण ने, उनके मुख को पोंछ दिया ।।

प्रभु नख और कर कमलों का, स्पर्श उन्हें जब प्राप्त हुआ। गोपिन् का हृदय राजन्, अति प्रेम विभोर हो गया ।।
स्वर्ण कुण्डलों की कान्ति, से थे जो उज्ज्वल हुए। घुंघराली श्यामल अलकों से, चहुं ओर से थे घिरे ।।
उस चितवन का माधुर्य तो, सुधारस से भी मीठा था। अपनी मीठी मुस्कान से, श्री कृष्ण का सम्मान किया ।।
फिर प्रभु की पावन लीलाओं, का गान वह करने लगीं। मानो मन की आंखों से हों, वे उन सबको देख रही ।।

तत्पश्चात् ज्यों थका हुआ, गजराज किनारों को तोड़े। हथिनियों संग जल में घुसी, ज्यों वह क्रीड़ा करने लगे ।।
त्यों ही श्री भगवान ने, थकान दूर करने के लिये। गोपिन् संग जल क्रीड़ा को, यमुना जल में प्रवेश किये ।।
लोक और वेद की मर्यादा, नहीं प्रभु को बान्ध सके। वह तो इन सबसे हैं परे, इन सबका अतिक्रमण करें ।।
गोपिन् के संस्पर्श से, उनकी वनमाल थी कुचली गई। वक्ष:स्थल की केसर से, थी वह अभिरंजित हुई ।।
चहुं ओर गुंजन करते, भंवरे अनुसरण थे कर रहे। ज्यों गन्धर्वराज स्वयं, उनकी कीर्तिगान में हों लगे ।।

यमुना जल में गोपियों ने, न्यौछावर प्रेममय चितवन की। प्रभु ओर निहारतीं हंसती हुईं, वह जल बौछारें कर थीं रहीं ।।
इधर उधर से जल उचील, प्रभु को उन्होने नहलाया। देवों ने करी पुष्प वर्षा, और उनका स्तुति गान किया ।।
आत्मराम श्री कृष्ण ने, यमुनाजल में यूं विहार किया। गजराज समान ही हे राजन्, उन लीला का अभिनय किया ।।

तत्पश्चात् व्रजयुवतियों और, भंवरों से घिरे श्री मनमोहन। जा पहुंचे यमुना तट पे, अति रमणीय था जो उपवन।।
चहुं ओर उनके जल और स्थल में, सुन्दर फूल थे खिले हुए। अति मधुर सुगन्ध उनकी, थी वातावरण सुरभित किए।।
उनकी सुवास ले वायु भी, थी मन्द गति से चल रही। उसमें प्रभु ऐसे विचर रहे, ज्यों हथिनियों संग कोई हाथी।।

शरद् की वह रात्रि राजन्, मनमोहक और अति सुन्दर थी। ज्यों अनेकों रात्रियां ही, उस एक में पूंजीभूत हुईं।।
चहुं ओर चन्द्रमा की, थी सुन्दर चान्दनी छिटक रही। कवियों ने शरद् ऋतु की जिस, रस सामग्री की वर्णन की।।
वह रात्री उन सभी रसों, से ज्यों युक्त ही थी हुई। उसमें श्री भगवान ने, रास क्रीड़ा अपनी करी।।
प्रेयसी गोपियों को संग ले, जल पुलिन और उपवन में। श्री कृष्ण ने अति रसमय, हास विलास और रास किये।।
याद रहे श्री हरि तो हैं, स्वयं ही नित्य सत्य संकल्प। चिन्मय उनकी लीला है, और चिन्मय है उनका संकल्प।।
इस लीला में काम भाव, और उसकी सब चेष्टाओं को। सर्वथा था अधीन किया, प्रभु ने सारी क्रियाओं को।।

परीक्षित् बोले,
श्री कृष्ण तो हैं हे द्विजवर, सकल जगत् के ही स्वामी। निज अंश बलराम सहित, पूर्ण अवतार उन्होंने ली।।
इस अवतार का एकमात्र, उद्देश्य धर्म संस्थापन था। अधर्म नाश करने को ही, रूप उन्होंने यह धरा।।

धर्म मर्यादा को वह, संस्थापित करनेवाले थे। उसके वह स्वयं उपदेशक थे, और आप ही उसके रक्षक थे।।
फिर धर्म विपरीत ही, कर्म यह उन्होने कैसे किया? पर स्त्री का स्पर्श उन, धर्म स्वरूप ने कैसे किया?

मैं मानूं कृष्ण तो हैं सदा, आत्म राम और पूर्ण काम। किसी विधि प्रवेश न पा सके, उनके भीतर कहीं पे काम।।
फिर भी किस अभिप्राय से, श्री हरि ने यह कर्म किया? दर्शन में तो यह कर्म, निन्दा योग्य ही उनका था।।
ब्रह्मचर्य स्वरूप मुनीश्वर आप, अब कृपा यह मुझपे करें। मेरे मन के सन्देह को, हे गुरुवर अब दूर करें।।

शुकदेव बोले,
सूर्य अग्नि आदि ईश्वर, कभी धर्म उत्क्रमण करें। साहस के कर्मों को कभी, समर्थवान् करते दीखें।।
किन्तु उन सब कर्मों से, नहीं दोष कोई उनका होता। उन तेजस्वी पुरुषों का, नहीं उनसे कभी कुछ बिगड़ता।।
जिस प्रकार अग्नि जानो, सबका भक्षण ही कर ले। किन्तु उनके दोषों से, कभी लिप्त वह न होए।।

जिनमें ऐसी तेजस्विता, और सामर्थ्य भी है नहीं। मन से भी अनुसरण की, उनके न वह सोचों कभी।।
तन की बात तो दूर रही, उसका तो पूर्ण निषेध है। मूर्खता गर कोई ऐसी करे, तो निश्चित नाश अशेष है।।
ज्यों श्री शिवशंकर ही तो, हलाहल पान हैं कर सकें। अन्य कोई गर ऐसा करे, तो जलकर भस्म ही हो जाये।।

शंकर आदि जो ईश्वर हैं, वा वचन सत्य ही मानिये। किन्तु निज अधिकार के, अनुकूल ही वा अनुसरण करें।।
आचरण का उनके अनुकरण, तो कहीं कहीं ही हो सके। बुद्धिमान् पुरुष के लिये, है यह विषय विचारणीय।।
उनके उपदेश के अनुकूल, ही आचरण जो उनका हो। उसका ही तो जीवन में, सम्भव फिर अनुसरण हो।।

समर्थवान् जो पुरुष हैं, अहंकार से नितान्त रहित। शुभ कर्म को करने में, है उनका कोई नहीं स्वार्थ।।
और अशुभ को करने से, नहीं अनर्थ वा हो सके। वह तो स्वार्थ और अनर्थ, इन दोनों से ही परे रहें।।

जब उनके ही विषय में, ऐसी बात हैं कहें शास्त्र। तब पशु पक्षी मनुज देव, चराचर सबके जो ईश्वर।।
सब जीवों के एकमात्र, प्रभु सर्वेश्वर भगवान जो। मानवीय शुभ अशुभ का, सम्बन्ध वहां कैसे जोड़ सको?

निज चरणकमल की रजकण के, सेवन से भक्त जन तृप्त हों। जिनसे योग कर योगी जन, कर्मबन्ध सों मुक्त हों।।
ज्ञानी जन तत्वविचार कर, तत्त्व स्वरूप ही हो जायें। कर्मबन्ध सों मुक्त हो, स्वच्छन्द ही वह विचरण करें।।
भक्तों की इच्छा से वही, प्रभु चिन्मय विग्रह लें जब धर। उनमें कर्मबन्धन की, कदाचित् कल्पना हो क्योंकर?

गोपिकागण उनके पति, और सम्पूर्ण तनधारियों के। अन्त:करण में प्रभु सदा, आत्म रूप से विराज रहे।।
जो सब जन के हैं साक्षी, और जो सबके परम पति। निज चिन्मय विग्रह प्रकट करें यह ही तो है लीला उनकी।।
जीवों पे कृपा करने के लिये, मनुज रूप वह आप धरें। मनुज रूप में आकर के, ऐसी ऐसी लीला वह करें।।
भगवत्परायण जीव हों, जब उनकी वह लीला सुनें। उनके चिन्मय विग्रह का, प्राकट्य इस कारण ही भये।।

व्रजवासी उन गोपों ने, तनिक दोष बुद्धि न करी। कृष्ण की इन लीलाओं से, मन किंचित् न क्षुब्ध हुई।।
उनकी ही योगमाया से, वे सब थे मोहित हुए। पत्नियां हमारे पास ही हैं, ऐसा थे वह समझ रहे।।

ब्रह्मा की रात्रि के, समान ही रात्री वह बीती। और ब्रह्म मुहूर्त में, फिर उसकी प्रवेश हुई।।
यद्यपि वे सब गोपियां, नहीं घर को जाना चाहतीं थीं। फिर भी प्रभु की आज्ञा पा, सब अपने अपने घर को चलीं।।
निज चेष्ठा और संकल्प से, प्रभु को प्रसन्न थीं कर रहीं। इस कारण प्रभु की आज्ञा, तत्क्षण ही उन्होंने मान ली।।

हे राजन् जो धीर पुरुष, श्रद्धा से इसका श्रवण करे। व्रजयुवतियों संग श्री कृष्ण की, चिन्मय लीला में श्रद्धा धरे।।
बार बार जो नर इसका, श्रद्धा से श्रवण कीर्तन करे। प्रभु चरणों में पराभक्ति, शीघ्र ही वह प्राप्त करे।।
आन्तर के रोग काम विकार, से मुक्ति वह पा जाये। उसका काम भाव सदा, सर्वदा ही फिर शान्त रहे।।

१८) विद्याधर सुदर्शन का उद्धार

शुकदेव बोले,
नन्दबाबा आदि गोपों ने, शिवरात्रि के शुभ अवसर पर। बैलों से जुती गाड़ियों पे, कौतूहल और आनन्द से भर।।
होकर सवार अम्बिका वन की, एक बार यात्रा करी। हे राजन् सबके मन में, भरी अति उत्सुकता थी।।

वहां पे जा सरस्वति में, उन सबने फिर स्नान किया। पशुपति शंकर और भगवती, अम्बिका का पूजन किया।।
अनेक भान्ति की सामग्री, उस पूजा में थी लगी। उनके हृदय भी प्रेम और, श्रद्धा से भरपूर थी।।
गौएं स्वर्ण वस्त्र मधु, और मधुर अन्न दिया ब्राह्मणों को। उद्देश्य यही बस यज्ञ का था, शंकर हमपे प्रसन्न हों।।

उस दिन नन्द सुनन्दादि, गोपों ने था उपवास किया। रात्रि को केवल जल पीकर, ही उन्होने विश्राम किया।।
सरस्वती नदी के तट पर, नहीं उनको कोई भय था। शीघ्र ही निद्रा ने सबको, अपनी आगोश में ले लिया।।

उस अम्बिका वन में इक, महा अजगर भी रहता था। उस दिन वह भूखा भी था दैववश वहीं आ निकला।।
सोये हुए नन्दबाबा को, उस अजगर ने पकड़ लिया। नन्दबाबा चिल्लाये फिर, अरे देख कृष्ण यह क्या हुआ?
दौड़ो अरे शीघ्र बचाओ मुझे, यह अजगर तो मुझे निगल रहा। मैं तो तुम्हारी शरण में हूं, अरे पुत्र तू मुझको जल्दी बचा।।

उनका चिल्लाना सुनकर के, सभी गोप यकायक जाग गए। अजगर के मुख में उन्हें देख, वे सब ही घबरा गए।।
अधजली लकड़ियों से, वे मारने अजगर को लगे। किन्तु उस मार को खाकर भी, अजगर के बन्ध न ढीले हुए।।
इतने में भक्त वत्सल, श्री कृष्ण वहां पे आ पहुंचे। और निज चरण स्पर्श उन्होने, अजगर को प्रदान किये।।

चरण स्पर्श उनका पाकर, अशुभ उसके सब भस्म हुए। तत्क्षण अजगर का तन छूटा, अति रूपवान सुन्दर बने।।
विद्याधरों के द्वारा वह, दिव्य पुरुष ज्यों वन्दित था। था दिव्य ज्योतिर्मय तन उसका, स्वर्ण हारों से सुसज्जित था।।
प्रणाम किया उसने प्रभु को, कर जोड़ी वह हुआ खड़ा। तब श्री हरि ने प्रेमभरी, वाणी में उसको कहा।।

अंग अंग से तुम्हारे है, सुन्दरता मानो फूट रही। अति अद्भुत दर्शन तेरा, कौन हो इतना कहो सही?
निन्दायोग्य अजगर योनि, कहो कैसे तुमको प्राप्त हुई? इस योनि में आने की, विवशता कोई तेरी होगी।।

अजगर बोला,
पूर्व जन्म में हे प्रभु, मैं विद्याधर अति सुन्दर था। उस जन्म में जानें आप, मेरा नाम सुदर्शन था।।
सौन्दर्य तो था ही पास मेरे, लक्ष्मी का भी अभाव न था। विमान पे चढ़कर मैं सदैव, भ्रमण ही करता रहता था।।

इक दिन अंगिरा गोत्र के, कुछ ऋषियों को मैंने देखा। कुरूप उनको देख करी, दम्भ में उनका अपमान किया।।
मेरे अपराध से कुपित हो, उन सबने मुझको शाप दिया। अपने पापों के कारण ही, अजगर योनि को प्राप्त हुआ।।

ऋषियों का यह शाप भी, मुझपर इक अनुग्रह ही था। उसीका यह प्रसाद है, आपके चरण का स्पर्श मिला।।
चराचर के गुरु आप स्वयं, आपके चरण का स्पर्श हुआ। आपकी इस कृपा से प्रभु, समस्त पाप का क्षय हुआ।।

हे सर्वपाप भक्षी प्रभु, जो आपकी शरण में आ जायें। जन्म मरण रूपा जग से, भयभीत जो हो शरणा पायें।।
उनके सारे पापों से, मुक्त करें उन्हें प्रभु आप। तव चरण स्पर्श को पाकर के, शाप से मुक्त हुआ हूं आज।।
अब अपने लोक में जाने की, अनुमति आपसे चाहता हूं। भक्त वच्छल महायोगेश्वर, पुरुषोत्तम आपकी शरण मैं हूं।।
इन्द्रादि सब लोकेश्वरों के, परमेश्वर इक आप हैं। आज्ञा दें प्रभु आप मुझे, परमात्मन् स्वयं प्रकाश हैं।।

निज स्वरूप में हे अच्युत, नित्य निरन्तर टिके रहें। आपके दर्शन मात्र से ही, पाप शाप सब दूर हुए।।
नहीं इसमें आश्चर्य कोई, नाम प्रभाव ही ऐसा है। उच्चारण आपके नाम का, पवित्र सदा कर देता है।।
वक्ता और श्रोता दोनों को, पावन तत्काल ही वह कर दे। फिर मुझे तो आपके श्री चरण, के स्पर्श हैं प्राप्त हुए।।
तो भला मेरी मुक्ति में, सन्देह कहां पर रह सके? आपका कृपा प्रभाव प्रभु, निष्फल नहीं कभी हो सके।।

शुकदेव बोले,
इस प्रकार सुदर्शन ने, भगवान कृष्ण से बिनती करी। फिर उनको प्रणाम किया, और परिक्रमा उनकी लीं।।
उनसे आज्ञा पाकर फिर, वह अपने लोक को चला गया। और नन्द बाबा का भी, यह भीषण संकट टला।।

विस्मित हुए सब व्रजवासी, जब कृष्ण का यह प्रभाव देखा। उस क्षेत्र में जो थे नियम लिये, उन सबका प्रतिपादन किया।।
बहुत प्रेम और आदर से, वह लीला गान करते हुए। हे राजन् सब ही पुन:, व्रज की ओर ही लौट चले।।

१९) शफ्चूड़ का उद्धार

अलौकिक कर्मी कृष्ण राम, इक दिन रात्री के समय। गोपिन् के संग संग वन में, पुन: विहार थे कर रहे।।
पीताम्बर श्री कृष्ण पे था, राम थे नीलाम्बर धारे। कण्ठ में द्वौ के वनमाला, तन में थे अंगराग रचे।।
सुगन्धित चन्दन आभूषण, से उनके थे अंग सजे। आनन्दपूर्ण मधुर स्वर से, गोपिन् ने उनका गुणगान किये।।

अभी सायंकाल ही था हुआ, नभ में थे उभर रहे तारे। चन्द्रमा की चान्दनी के, छिटे हुए थे उजियारे।।
बेला की सुगन्धि से, भंवरे थे मतवाले हुए। मधुर गुंजन में लगे, थे इधर उधर मण्डरा रहे।।
जलाशय में कुमुदनी, थी अति सुन्दर खिली हुई। वायु मण्डल में वह निज, सुगन्धि थी बिखेर रही।।
मन्द गति से वायु भी, उस पल थी चलने लगी। कृष्ण और बलराम ने, संग संग आलाप ली।।
आरोह अवरोह उनके स्वरों का, अति मनभावन था लग रहा। सबके मन और कर्णों को, आनन्द से था उसने भरा।।

मोहित हुईं सब गोपियां, उनके इस गान को सुनकर के। तन की भी सुधि नहीं रही, तनो वस्त्र पुष्प केशों से गिरे।।
जब राम-श्याम दोनों भाई, स्वच्छन्द विहार थे कर रहे। उन्मत्त की भाँति वे दोनों, स्वर आलाप थे कर रहे।।
उसी समय इक यक्ष आया, शंखचूड़ उसका नाम था। यक्षराज कुबेर का, ही जानो वह अनुचर था।।

दोनों भाइयों के सम्मुख ही, उसने गोपिन् का अपहरण किया। उनको लेकर वह यक्ष, उत्तर दिशा को भाग चला।।
श्री कृष्ण ही उन गोपियों के, एकमात्र बस हैं स्वामी। अपने बचाव को गोपियों ने, उनसे ही गुहार करी।।

दोनों भाइयों ने देखा, जैसे कोई डाकू आ जाये। उनकी आंखों के सामने ही, ज्यों गाय लूट के ले जाये।।
उसी विधि यह नीच यक्ष, प्रिय गोपियों को ले जा रहा। हा राम हा कृष्ण कह कह कर, प्रलाप उन्होंने था किया।।
उसी समय दोनों भाई, उसके पीछे दौड़ पड़े। गोपिन् की रक्षा के लिये, उन्होने फिर यूं यत्न किये।।

डरो नहीं प्रिय गोपियो, अभय वाणी से पुकारा उन्हें। शाल वृक्ष कर में लेकर, तत्काल वहां वे जा पहुंचे।।
यक्ष ने देखा काल और, मृत्यु समान दोनों भाई। मेरे पास हैं आ पहुंचे, तो उसकी मति भी घबराई।।
गोपियों को वहीं छोड़कर, वह प्राण बचाने को भागा। किन्तु उस मूढ़ का काल तो, था उसके सिर मण्डरा रहा।।

बलराम जी तो वहीं डट गये, गोपिन् की रक्षा के लिये। किन्तु श्री कृष्ण तो यक्ष के, पीछे ही थे दौड़ रहे।।
उसके सिर की चूड़ामणि, श्री हरि लेना चाहते थे। इस कारण उस यक्ष के, थे उन्होंने अनुसरण किए।।

अभी कुछ ही दूर वह था गया, प्रभु ने उसको पकड़ लिया। उस दुष्ट के सीस पर, इक मुष्टि प्रहार किया।।
चूड़ामणि के साथ साथ, सिर भी धड़ से उन अलग किया। इस विधि श्री कृष्ण ने, शंखचूड़ को मार दिया।।

शंखचूड़ को मारकर, चमकीली मणि वह ले आये। बलराम और गोपियों के, पास कृष्ण फिर लौट आये।।
गोपियों के सम्मुख ही, बहुत प्रेम से दी मणि राम को। ज्यों भेंट उन्होंने अर्पित की, निज अग्रज बलराम को।।

२०) युगल गीत

शुकदेव बोले,
श्री कृष्ण तो प्रतिदिन ही, गौएं चराने वन जाते। संग ही संग वह गोपिन् का, चित्त भी हर कर ले जाते।।

उनका चित्त श्री कृष्ण के, चिन्तन में ही रमा रहता। वाणी पर उनकी सदा, श्री कृष्ण का लीला गान था।।
इस प्रकार जिस किसी विधि, वह अपना दिन बिताती थीं। हे राजन् उन गोपिन् की, दिनचर्या यही रहती थी।।
गोपियां बोली,
निज प्रेमी जनों में नित्य ही, प्रेम वितरण वह करते रहें। अपने द्वेषी जन को भी, सहज ही मोक्ष जो दे डालें।।
हे सखी वे नटवर सांवरिया, जब अपनी दाईं कपोल यह। बांयी भुजा की ओर ही, भ्रुवें नचाते झुका देवें।।
अधरों से लगाकर बांसुरी, जब आंगुरी छिद्रों पर धरें। दिव्य स्वर लहरी उठे, मधुर तान वह छेड़ दें।।
आकाश में सिद्ध पत्नियां, निज पतियों को संग ले। विमानों पर चढ़कर आयें, और स्वर सुनकर विस्मित भएं।।

निज पतियों को संग देख, पहले तो वह लज्जा जायें। क्षण भर में किन्तु काम बाण, के वार से वह अचेत भएं।।
यह भी सुधि उन्हें नहीं रहे, कब नीवी उनकी खुल गई। और वस्त्र उनकी उनके, तन पर से है खिसक रही।।

अरी गोपियों अति आश्चर्य, की बात यह हमारी सुनो। कैसे सुन्दर हैं नन्द नन्दन, उसकी हे सखी आज सुनो।।
वे हंसें तो हास्य की रेखायें, ज्यों माला का रूप धरें। शुभ्र मोतियों की सी सखी, दन्तावली तब चमक उठे।।
उनके वक्ष:स्थल पर हार जो, लहराते सखी सदा रहें। उनके हास्य की किरणों से, नव कान्ति ही वह पा लें।।
श्री वत्स की स्वर्ण रेखा, जो वक्ष:स्थल पे उनके रहे। श्याम मेघ पर ऐसा लगे, ज्यों दामिनी का ही वास भए।।
दु:खीजन के सुख हेतु वह, बांसुरी वादन जब करें। मृतप्राय: तन विरहणियों के, मानो उनमें नव प्राण भरें।।
तब व्रज के बैल गाय हरिण, उनके पास दौड़े आयें। दान्तों से दबाया तृण भी उनके, मुख में ज्यों का त्यों पड़ा रहे।।
न तो निगल वह पायें उसे, न ही उगल उसे पाते हैं। दोनों कान खड़े कर वह, स्थिर भाव से अचल हो जाते हैं।।
ऐसा लगे ज्यों खड़े खड़े, ही मानों वह सो गए। या भीति पर लिखित ही, मानो चित्र वह हो गए।।
स्वभाविक ही है सखी मेरी, उनकी दशा यह हो जाना। क्योंकि इस बांसुरी तान ने, है उनका चित्त चुरा लिया।।

नन्द के दुलारे जब सर पर, मोर पंख को बान्ध लें। घुंघराले बालों में सखी, फूलों के गुच्छे सजा वह लें।।
रंग रंग की धातु से, अपने अंगों को वह रंग लें। और नव पल्लवों से, रूप श्रृंगारित वह करें।।
ऐसा लगे ज्यों बहुत बड़ा, पहलवान ही बन जायें। फिर बलराम और ग्वालन् संग, बांसुरी वादन वह करें।।
उस बांसुरी में गौओं का, नाम भरी वह पुकारें सखी। ऐसा लगे उस पल तो, नदियों की भी रुके गति।।
वे चाहें तब वायु भी, प्रियतम की चरण रज ले आये। उनके पास उसे पहुंचाकर, कृत्यकृत्य उनको कर दे।।
किन्तु सखी वे भी तो हैं, मन्दभागिनी हम जैसी। ज्यों कृष्ण का आलिंगन पा, भुजा हमारी काम्पती।।
जड़ता ही ग्रस लेती उन्हें, नहीं अपना हाथ हिला सकतीं। त्यों ही प्रेम के कारण वह, नदियां भी काम्पने हैं लगतीं।।
निज तरंग रूपा भुजा, उठाना तो सखी वह चाहें। कम्पित हुई उठायें भी, पर पुन: विवश वह हो जायें।।
प्रेमावेश से स्तब्ध हो, सखी वह स्थिर हो जाती हैं। उस वंशी की ध्वनि सुन, निज कर वह हिला नहीं पाती हैं।।

अचिन्त्य ऐश्वर्यों के स्वामी, प्रभु नारायण की शक्ति का। देवतागण ज्यों गान करें, उनकी अनन्त शक्तिन् का।।
त्यों ही ग्वाल बाल मिलकर, नटवर की लीला गाया करें। सौन्दर्य केश श्री कृष्ण जब, वंशी अपनी बजाया करें।।

वृन्दावन में वह विहार करें, गोवर्धन की तराई में। चरती हुए गौओं के वह, निज वंशी में नाम भरें।।

तब वन के वृक्ष लताएँ सब, फूलों फलों सें लद जायें। उनके भार से डालियां ज्यों, झुकी भूमि को ही छूने लगें।।
ऐसा लगे वे सब मिलकर, प्रणाम प्रभु को कर हों रही। अपने भीतर प्रभु विष्णु की, अभिव्यक्ति मानो पा वह रहीं।।
प्रेम से खिल उठें वे सब, रोम रोम उनका फूले। सब मिलकर मधु की ही, धारायें बहाने ज्यों लगें।।

अरी सखी संसार में, या इससे भी बाहर जो। दर्शनीय और सुन्दर, इस ब्रह्माण्ड में जो भी हो।।
सबसे सुन्दर सबसे मधुर, सबके शिरोमणि वह हैं। नटवर नागर सांवरिया, हमरे मन मोहन ही हैं।।
श्यामल उनके ललाट पर, केसर तिलक अति सोहे। उनके अनुपम रूप के, दर्शन से दृष्टि नहीं उठे।।
घुटनों तक है लटकी हुई, कण्ठ में पहनी वनमाला। उसमें पिरोई तुलसी की, दिव्य गन्ध का क्या कहना।।
उससे मतवाले हुए भंवरे, सखी उसपर मण्डराया करें। उच्च स्वरों में निज गुंजन, सखी वह भंवरे सुनाया करें।।
उनका आदर करी श्री कृष्ण, निज वंशी में वही तान भरें। मुनिजन मोहन संगीत वह सुन, हंसों के चित्त भी जाएं हरे।।
विवश हुए सब पक्षी वे, श्याम सुन्दर के पास आयें। नयन मूंदी मौन में वह, एकाग्रचिति साधना करें।।
जैसे कोई महारसिक, वृत्ति के परमहँस ही हों। देखो तो सही सखी मेरी, कैसे आश्चर्य की बात यह हो।।

अरी व्रज की देवियों तुम सुनो, एक आश्चर्य की बात यह। पुष्पों के कुण्डल प्रिय, मोहन के कानों में सजें।।
बलराम संग गिरिराज के, शिखरों पर वह जा पहुंचे। जग को हर्षित करते हुए, बांसुरी तान वह जब छेड़ें।।
ऐसा लगे आनन्द भरी, उसकी ध्वनि वह छेड़ दें। उस ध्वनि से विश्व का, आलिंगन ज्यों करने लगें।।
श्यामल मेघ भी तान संग, अपना स्वर मिला ही दें। मन्द्र ध्वनि से बादल वह, गर्जन फिर करने लगें।।
चिन्तित रहें इस बात से, कहीं गर्जना ऊंची न होए। बांसुरी की तान में, बेसुरापन वह नहीं भरे।।
श्री कृष्ण का कदाचित् वह, अपराधी ही न हो जाये। इस कारण गर्जन उसकी, अति मन्द स्वरों में ही गाये।।
जब देखे वह श्यामल धन, घनश्याम को घाम ने व्यथित किया। अपना छत्र बनाकर के, छाया उनके ऊपर करता।।
अति प्रसन्न होकर के वह, अपना प्रेम है दर्शाता। निज जीवन को उनके चरण में, न्यौछावर है करता जाता।।
नन्हीं नन्हीं बुन्दियां बन, वह बरसने ऐसे है लगता। मानो दिव्य पुष्पों की, हो वर्षा वह कर रहा।।
देवता गण भी कभी कभी, ओट बादलों की ले लें। छिप करी वहां श्याम पे, फूलों की वर्षा वे करें।।

हे सती शिरोमणि नन्दरानी, अति निपुण हैं आपके श्री कुँवर। ग्वाल बालों के खेलों में, हैं तेरे लाड़ले बहुत चतुर।।
नहीं किसीसे भी सीखा उन्होने, इस वंशी का वादन करना। अनेक राग रागनियों का, अविष्कार इन्होंने कीना।।
बिम्बाफल के समान ही, लाल लाल हैं उनके अधर। ऋषभ निषादादि स्वरों को, बजाते हैं जब बांसुरी पर।।
वंशी की परम मनोहर और, नित नव तान को सुनकर के। ब्रह्मा शंकर और इन्द्रदेव, भी पहचान उन्हें न पाते।।
वे भी मोहित हों इस विधि, चित्त रोके ही नहीं रुके। उनके हाथ से निकल के, ज्यों वंशी में तल्लीन होए।।
सीस भी उनका झुक जाये, और अपनी सुध बुध वह खो दें। वंशी की ध्वनि में ही मानो, वे सबके सब तन्मय भए।।

ध्वजा चक्र कमल अंकुश, के चिन्ह हैं उनके चरणों में। गौओं के खुरों से व्रजभूमि, जब अति आहत हो जाये।।
गजराज की न्याईं मन्द गति से, उसपर यह विचरण करें। सुकुमार चरण उसपे धरी, यह उसकी सब पीड़ा हरें।।
उनकी यह चाल और वंशी ध्वनि, विलासभरी चितवन उनकी। हमारे हृदय में प्रेम के, आवेग को है वर्धित करती।।

हम मुग्ध हो मोहित हो जायें, और हिल डुल भी नहीं सकें। मानों हों जैसे जड़ वृक्ष, उन भान्ति ही हम स्तब्ध बनें।।
नहीं हमको यह सुधि रहे, कब केश हमारे बिखर गए। या इस तन के वस्त्र भी, किस पल तन से उतर गए।।

उनके गले में मणियों की, माला बहुत सुहावे सखी। तुलसी की सुगन्ध भी, सखी उनको अति प्रिय लगती।।
इस कारण तुलसी की माल, इक पल को वह न छोड़ें। अपने गले में सदा उसे, धारण ही वह किये रहें।।
मणियों की माला से जब, सुन्दर श्याम करें गणना। गौओं की गिनती करते हुए, किसी सखा के गल डारें बईंयां।।
भावपूर्ण बांसुरी की, मधुर तान जब छेड़ वह दें। सम्मोहित होकर हरिणियां, चरणों में चित्त ही वार दें।।
जैसे हम सब गोपियां, गृहस्थी की चिन्ता त्यागें। गुणानिधान नन्द नन्दन को, ही सदा रहें घेरे।।
त्यों ही निज पतियों को छोड़, वे उनके पास दौड़ी आयें। स्तब्ध हुई वहां खड़ी रहें, लौटने का वह नाम न लें।।

हे नन्दरानी यशोदा जी, अति पुण्यवती हैं आप। इस कारण ही तो आपने, है ऐसे पुत्र को किया प्राप्त।।
अति कोमल हृदय के हैं प्रेमी, लाडले वह नन्दालाला तव। नाना विध परिहास से, सखा सुखी वे रखें सब।।
कुन्दकली का हार पहर, विचित्र वेश सजायें जब। ग्वाल बाल और गौओं संग, यमुना पुलिन पे जायें जब।।
मलयज चन्दन सी सुगन्धित तब, शीतल वायु बहने लगे। मन्द मन्द निज स्पर्श से, तेरे लाल की वह सेवा करे।।
गन्धर्वादि उपदेवता भी, उनके बन्दी जन बन जायें। उन समान ही गा गा कर, तेरे लाल को तुष्टित वह करें।।
विविध भाँति की भेंट वह, उनके चरण में लाय धरें। सब ओर से उरको घेर कर, ज्यों सखियाँ चंवर झुलाया करें।।

श्याम सुन्दर व्रज की गौओं, से बहुत प्रेम करते हैं सखी। उनके रक्षण के कारण ही, गोवर्धन गिरी थी धारण की।।
देखो सायंकाल की, बेला है अब आ पहुंची। धेनुनू को संग लेकर के, अब आते ही होंगे हरि।।
क्यों देर हुई है इतनी सखी, क्यों नहीं अब तक लौटे वे? राह में वयोवृद्ध ब्रह्मा जी, ज्ञानवृद्ध शंकर क्या मिले?
उनकी वन्दना राह में, करने यह सब लगते हैं। इस कारण ही कृष्ण भी, विलम्ब इतना करते हैं।।
गौओं के पीछे पीछे, वंशी बजाते आएंगे। ग्वाल बाल भी उन पाछे, वा कीर्ति गाते आएंगे।।
अरी देखो देखो सखी मेरी, इधर ही हैं वह आ रहे। गौओं के खुरों से उड़ी धूलि, वनमाला को धूमिल करे।।
दिन भर जंगल में घूम घूम, अति क्लान्त वह हो गये। फिर भी निज छवि को दर्शा कर, आनन्दित वह हमको करें।।
यशोधा नन्दन चन्द्र ज्यों, सबको आह्लादित कर रहे। हम प्रेमी जनों के हेतु ही, हमरे पास वह आ रहे।।

कैसा अनुपम सौन्दर्य सखी, मदभरे नयन कुछ चढ़े हुए। कुछ कुछ रत्नारे नयना यह, हैं कैसे सुन्दर लग रह।।
गल लहराये वनमाला, कानों में स्वर्ण के कुण्डल हैं। उनके कपोल को कुण्डल यह, कान्ति से करें अलंकृत हैं।।
इस कारण अधपके बेर सा, हुआ मुख का कुछ पीत वर्ण। है रोम रोम आनन्द भरा, प्रफुल्लित है प्रसन्न वदन।।
देखो तो सही निज सखा का, किस विध हैं प्रभु मान करें। प्रेम से सभी सखाओं को, वह विदा हैं कर रहे।।
व्रजविभूषण श्री कृष्ण, देखो इस ओर ही आ रहे। गजराज सी मदभरी चाल से, सन्ध्या में हमारी ओर बढ़े।।
व्रजवासी गौओं का और, हमरा सन्ताप मिटाने को। नवोदित चन्द्र की भाँति ही, श्री कृष्ण का अब आगमन हो।।

शुकदेव बोले,
बड़भागिन् इन गोपियों का, चित्त था कृष्णमय हुआ। हे राजन् वह निरन्तर ही, कृष्ण के चिन्तन में था लगा।।

दिन में जब श्री कृष्ण तो, धेनु चराने वन जाते। उनके चिन्तन में ही तब, चित्त थे उनके लग जाते।।
अपनी अपनी सखियों संग, मिली के थीं लीला गातीं। चित्त उनमें था रमा रहता, दिन थी यूं ही बीत जाती।।

२१) अरिष्टासुर का वध

शुकदेव बोले,
भगवान कृष्ण जिस पल राजन्, व्रज में प्रवेश थे पा रहे। व्रजवासी सब मिल कर, आनन्दोत्सव थे मना रहे।।
अरिष्टासुर नाम का इक, दैत्य वहां पे तब आया। अति विशाल कन्धों वाले, बैल का रूप था उसने धरा।।
डीलडौल भी खूब था, और खुरों को था वह पटक रहा। धरती भी कांप उठे उससे, ऐसा उसका आवेग था।।

अति उच्च स्वरों में गर्जे था, पांव से धूलि उछाल रहा। पुच्छ थी सीधी खड़ी हुई, विकराल रूप ही थञ्ञ उसका।।
अपने सींगों से खेतों की, मेढ़ वह तोड़े जाता था। चार दीवारी पर भी वह, प्रहार था करता जा रहा।।

बार बार गोबर करता, और मूत्र था कर रहा। आंखें फाड़ फाड़ के वह, इधर उधर था दौड़ रहा।।
भयंकर गर्जन सुन उसकी, स्त्रियां गाएं डर जाती थीं। तीन चार माह की उनकी, गर्भ स्त्रवित हो जाती थी।।
पांच छ: मास के गर्भ तो, उनके गिर ही जाते थे। कन्धों को पर्वत जानकर, वहां आ बादल टिक जाते थे।।

तीक्ष्ण सींगां वाले उस, ऋषभ को इस विध देखकर। गोप गोपियां व्रज के सब, हे राजन् गए थे डर।।
पशु भी यूं भयभीत हुए, निज स्थान छोड़ वह भाग गये। हे कृष्ण तुम्हीं बचाओ हमें, व्रजवासी यूं कहने लगे।।
भयभीत हुए व्रजवासी सब, श्री कृष्ण शरणें आ गए। भगवान ने देखा गोकुल के, जन सब हैं घबरा गए।।

ढाढस तब वह बन्धाने लगे, नहीं डरने की बात कोई। तत्पश्चात् ऋषभ बने, असुर को उन ललकार दी।।
अरे दुष्ट मूर्ख तू क्यों, इनको है यूं डरा रहा? इन ग्वालों और गौओं ने, तेरा है क्या बिगाड़ किया?

तुझसे दुष्ट दुरात्मा का, गर्व चूर्ण मुझसे होए। इस प्रकार कहकर कृष्ण, ताल ठोंक कर हुए खड़े।।
क्रुध वह बैल को करने लगे, निज सखा गले में बांह डाल। गवान की यह चुनौती सुन, क्रोध से बैल वह हुआ लाल।।
अपने खुरों से धरती पर, अति वेग से उस प्रहार किया। कृष्ण के ऊपर फिर झपटा, पुच्छ को था ऊपर किया।।
उसके धक्के से ज्यों बादल, आकाश के सारे छिन्न हुए। दैत्य रूप उस ऋषभ के, प्रहार के यह प्रभाव हुए।।

अपने तीक्ष्ण सींगों को, उसने फिर आगे किया। लाल लाल आंखों से वह, इक टक था कृष्ण को देख रहा।।
तिरछी नजर से देखकर, फिर वह उनपर यूं टूट पड़ा। इन्द्र के हाथों से जैसे, अति तीव्र गति वज्र छूटा।।

प्रभु ने फिर अपने हाथों, दोनों सींग उसके पकड़े। ज्यों अपने साथ लड़ने वाले, हाथी को दूजा खदेड़ दे।।
श्री कृष्ण ने भी अट्ठारह पग, उसको पीछे धकेल दिया। भगवान के इस प्रहार से, वह धरती पे जाय गिरा।।

श्री हरि की मार यह खाकर के, वह पुन: उठ खड़ा हुआ। क्रोध से सुध बुध थी खोई, लम्बी सांसे वह लेने लगा।।
सारा ही तन पसीने से, लथपथ था उसका हो रहा। अतिवेग से वह पुन:, कृष्ण पे जाकर झपट पड़ा।।

श्री कृष्ण ने देखा जब, प्रहार यह करना है चाहता। सींगों को पकड़ लिया उन्होने, और चरण से फिर प्रहार किया।।

भूमि पे उसे गिरा दिया, पांव से फिर उसको पकड़ा। इस विध उत्पीड़ित किया उसे, ज्यों गीला कपड़ा हो निचुड़ा।।
तत्पश्चात् उसीका सींग, श्री कृष्ण ने उखाड़ लिया। उसीसे पीटा यूं उसको, धरती से पुन: न उठ सका।।

मुख से रक्त का वमन हुआ, गोबर मूत्र वह करने लगा। वह दैत्य धरती पर ही, था अपने पांव को पटक रहा।।
आंखें भी पलट गईं उसकी, अति कष्ट से प्राण उसने छोड़े। देवों ने बरसाए फूल, प्रभु की स्तुति वह करने लगे।।

बैल रूप धर कर आये, उस असुर का कृष्ण ने वध किया। सभी गोप ग्वालों ने फिर, मिली उनका स्तुति गान किया।।
बलराम संग फिर कृष्ण ने, गोष्ठ में प्रवेश किया। उन्हें देख गोपिन् के मन, और नयनों में आनन्द भरा।।

हे राजन् भगवान की तो, लीला सदा अति अद्भुत है। अरिष्टासुर का वध किया, फिर इसमें क्या विस्मय है?

२२) कंस की अक्रूर को व्रज भेजने की योजना

भगवन्मय श्री नारद जो, सदा प्रभु के दरस कराते हैं। प्रभु लीला दर्शान को, निमित्त नया वह बनाते हैं।।
कंस के पास वह जा पहुंचे, और उसे वह कहने लगे। जो कन्या हाथ से छूटी तेरे, यशोदा सुता जानें से।।
व्रज में है जो नन्दलाल बना, जानो है देवकी सुत वही। और वहां बलराम को ही, रोहिणी सुत तू जान सही।।
भयभीत हुए वसुदेव ने, नन्द पास दोनों भेजे। उन्होने ही तेरे अनुचर, सब दैत्यों के वध किये।।
यह सुनते ही कंस तो, आग बबूला हो गया। इक इक अंग उसका फिर, क्रोध के मारे काम्प उठा।।

वसुदेव की हत्या के लिये, तीक्ष्ण तलवार उठा उसने ली। किन्तु नारद जी ने उसे, न ऐसा करो यह सम्मति दी।।
जब कंस ने यह जाना, मृत्यु कारण बनें उसके सुत। वसुदेव देवकी को उसने, पुन: किया श्रृंखला बद्ध।।
हथकड़ियों में जकड़ उन्हें, कारागृह में डाल दिया। नारद ने ऐसा कहकर, था वहां से फिर प्रस्थान किया।।
केशि को बुलाकर कंस ने, फिर उसको आदेश दिया। व्रज में जाकर राम कृष्ण, दोनों का अब वध कर आ।।
तत्पश्चात् कंस ने, निज मित्रों को लिया बुला। मुष्टिक चाणूर शल तोषल, मन्त्रियों महावतों को कहा।।
वीरवर चाणूर और, मुष्टिक तुम ध्यान से बात सुनो। वसुदेव पुत्र बलराम और, कृष्ण दोनों ही व्रज में हों।।
उन दोनों के हाथों ही, कहें मेरी मृत्यु होगी। सावधान हो जाओ तुम, हैं मेरे महाशत्रु वही।।

जब यहां पे आयें वह, मल्ल युद्ध उनसे करना। कुश्ती के बहाने ही मित्रों, उनका वध तुम कर देना।।
भली भान्ति मंचों का, अब निर्माण कराओ तुम। चहुं ओर अखाड़े के, गोलाकार सजाओ तुम।।
मथुरा वासी उन पर बैठें, अन्य प्रजा भी आ जाये। इस स्वच्छन्द मल्लयुद्ध का, दर्शन वे सब भी पायें।।

हे महावत महाचतुर, हो तुम तो स्वभाव से। द्वार पे ही तुम खड़े रहो, कुवलयापीड़ हाथी को ले।।
मेरे शत्रु उधर से, ही निकलने जब लगें। सब देना वहीं उनको, अन्दर ही न वे आ सकें।।

इसी चतुर्दशी को विधिपूर्वक, धनुष यज्ञ आरम्भ करो। उसकी सफलता के लिये, श्री भैरव का पूजन करो।।
वरदानी भूत नाथ को, विविध विधि प्रसन्न करो। उनकी पूजा हेतु तुम, पावन पशुओं की बलि दो।।

हे राजन् कंस तो बस, निज स्वार्थ साधना जाने था। इन सबको इस विधि आज्ञा दे, अक्रूर को उसने बुलवाया।।
उनका हाथ निज कर में ले, उनसे यूं वह कहने लगा। अति उदार और दानी आप, आदरणीय हैं मेरे सखा।।

आज आप ही मित्रोचित, इक कार्य मेरा कीजिये। वृष्णी और भोजवंशियों में, नहीं आप समान हितु कोई मेरे।।
है अति महत्वपूर्ण यह काय, इस कारण आपका आश्रय लिया। समर्थवान् इन्द्र ज्यों, विष्णु का ले आसरा।।
नन्दराय के व्रज में, वसुदेव के दो पुत्र रहें। शीघ्र ही रथ पे चढ़ी, आप वहां पर जा पहुंचे।।
इसी रथ पे चढ़ाकर के, यहां पे उनको ले आयें। इस कार्य में तनिक भी, विलम्ब न होना चाहिये।।

सुना विष्णु आश्रित देवों ने, निमित्त उन्हें बनाया है। मेरी मृत्यु हेतु ही, कारण निश्चित कराया है।।
उन दोनों को तो आप मित्र, यहां पे ही ले आइए। नन्दादि गोपों को भी, उपहार सहित लिवाइए।।

काल स्वरूप कुलयपीड़, से उनको मरवा दूंगा। यदि कदाचित् बच वह गए, तो अन्य उपाय करा दूंगा।।
वज्र समान कठोर चपल, बलवानों का आश्रय लूंगा। मुटिक और चाणूर से, दोनों को मरवा दूंगा।।
उनका हनन यह देख कर, वसुदेवादि वृष्णी वंशी। उनके भाई बन्धु सब, भोज और दशार्हवंशी।।
शोकाकुल सब हो जायेंगे, निज बल सामर्थ्य वह खो देंगे। ऐसे में उनके हनन, मेरे अपने हाथों होंगे।।

मेरे पिता उग्रसेन तो, वसे ही है महावृद्ध हुआ। पर राज्य का लोभ अभी, उसके मन में हैं भरा।।
यह सब करके उससे भी, फिर मैं स्वयं निपट लूंगा। उसके भाई देवक और अन्य, द्वेषियों का वध कर दूंगा।।

प्रिय मित्र अक्रूर जी, फिर रहूंगा मैं और होंगे आप। और हम दोनों के बीच में, पृथ्वी का निष्कण्टक राज्य।।
हैं जरासन्ध तो वृद्ध हुए, और हैं भी वह मेरे श्वसुर। वनराज द्विविद भी जानो, हैं मेरे ही प्रिय मित्र।।
शम्बासुर और नरकासुर, वाणासुर भी हैं मेरे मित्र। इन सबकी सहायता सहज में, ही प्राप्त है मुझे मित्र।।
देवों और वा पक्षपाती, नरपतियों का मैं मारूंगा। फिर पृथ्वी का असप्तनं, राज्य मैं यह भोगूंगा।।

निज मन की अति गुह्य बात, आपको है बतला यह दी। बलराम और कृष्ण को, लायें आप वहां से अभी।।
अभी तो वह बालक ही हैं, सहज में मारे जायेंगे। किन्तु यहां लाने का उन्हें, कारण कुछ और बताएंगे।।
उनको बस इतना ही कहें, धनुर्यज्ञ दर्शन करें। यदुकुल की राजधानी, मथुरा की शोभा को देखें।।
अक्रूर बोले,
हे राजन् निज मृत्यु को, दूर आप करना चाहें। इस कारण यह सोच भी, आपको उचित ही लगे।।
सिद्धि असिद्धि के प्रति, समाव जीव का चाहिये। दोनों में समत्व धरी, प्रयत्न करना चाहिये।।
फल प्रयत्न से नहीं मिले, दैवी प्रेरणा से ही मिले। जीव तो अपनी ओर से, बस कर्ममात्र ही कर सके।।

बड़े बड़े मनोरथों के, जीव महल बनाया करे। वह न जाने दैव ने तो, पहले ही नष्ट सब कर दिये।।
प्रारब्ध के अनुकूल ही, यत्न जब कभी हो जाये। सफलता देख कर अपनी, हर्ष से फूला वह जाये।।
प्रतिकूलता के आने पर, यत्न विफल जब हो जाये। तब वही जीव असफलता पा, शोकाकुल अति हो जाये।।
फिर भी महाराज मैं आपकी, आज्ञा का पालन करूं। कृष्ण और बलराम को लाने, अब व्रज को मैं जाऊं।।
शुकदेव बोले,
अक्रूर और मन्त्रीगण को, कंस ने आज्ञा जब यह दी। भली भाँति समझा कर, उसने सबको विदा करी।।
तदनन्तर अपने ही, महलों में वह लौट आया। तत्पश्चात् अक्रूर ने भी, अपने घर को प्रस्थान किया।।

२३) केशी वध

शुकदेव बोले,

जिस केशि नामक दैत्य को, कंस ने व्रज में था भेजा। महा अश्व का रूप धरी, मनोगति से वह व्रज को दौड़ा।।
अपनी टापों से धरती को, खोदता था वह जा रहा। गर्दन के बालों को उसने, ऐसा था झटका दिया।।
आकाश के बादल और विमान, छिन्न ज्यों सारे ही किये। भयपूर्ण ध्वनि उसकी सुनी, सब लोग थे भय से काम्प उठे।।
मुख था ज्यों वृक्ष की खोड़ हो, अति विशाल उसके नेत्र थे। मूर्धा भी अति स्थूल थी, दर्शन से मन में भय उठे।।
तन भी ऐसा विशाल था, ज्यों बादल की काली घटा। नीयत में भी उसकी था, विषमय ही महापाप भरा।।
श्री कृष्ण को मार के वह, स्वामी का हित ही था चाहता। उसकी चाल से भूमि में, भी कम्प था उठ रहा।।

श्री कृष्ण ने जब देखा, गोकुल वासी उनके आश्रित जो। उसकी ध्वनि को सुन कर, भयभीत सब रहे हैं हो।।
और उसकी पुच्छ से, बादल भी हैं सब बिखर रहे। नेत्र भी उस असुर के, श्री कृष्ण को ही हैं खोज रहे।।
तब वह स्वयं ही निकलकर, सामने उसके आ गए। सिंह समान गर्जन करके, ललकारने उसको वह लगे।।

भगवान को सम्मुख देख कर, वह और भी क्रुध हुआ। मुंह खोली इस विध दौड़ा वह, आकाश ही ज्यों पी जायेगा।।
हे राजन् उस केशि का, वेग अति प्रचण्ड था। नहीं पकड़ना भी उसे सहज था, विजय पाना अति कठिन था।।
प्रभु के पास पहुंचकर के, दुल्लत्ती उसने चला ही दी। किन्तु भगवान ने सहज ही, उससे अपनी रक्षा कर ली।।
इन्द्रिय अतीत को वह दैत्य, मार भी कैसे सकता था? उसका कोई प्रहार भभ, छू नहीं उन्हें सकता था।।
अपने द्वौ हाथों से उन्होने, वा पिछले चरण दोनों पकड़े। ज्यों गरुड़ सांप को पकड़ कर, जो रसे उसको पटका दे।।
उसी विधि क्रोध से घुमाया उसे, दूर ही उसको फेंक दिया। चार सौ हाथ वह दूर गिरा, फिर प्रभु निज तन सीधा किया।

थोड़ी सी देर में केशि पुन:, चेतनावान् ही हो गया। क्रोध से तिलमिलाया वह, और उठकर पुन: खड़ा हुआ।।
मुंह बाए अति वेग से, पुन: कृष्ण पे वह झपटा। उसको दौड़ते देखकर, प्रभु वदन हंसी से खिल उठा।।
अपना बायां हाथ उन्होंने, उसके मुख में डाल दिया। ज्यों निशंक ही हुआ सर्प, अपीन बिल में जाकर घुसता।।

अति कोमल कर कृष्ण का, तप्त लौह सम हो गया। उसके स्पर्श से केशि के, दान्तों का भंजन होने लगा।।
उपेक्षित हुआ जलोदर रोग, ज्यों हर क्षण ही बढ़ने लगे। त्यों ही कृष्ण का भुजदण्ड, उसके मुख में बढ़ने लगे।।

उसके मुख में कृष्ण का, हाथ इतना बढ़ गया। श्वास प्रश्वास का उसका, मार्ग भी फिर अवरुद्ध हुआ।।
दम उसका घुटने लगा, पांव पटकने वह लगा। आंख की पुतली उलट गई, तन स्वेद से लथपथ हो गया।।
मल त्याग वह करने लगा, तन भी उसका निश्चेष्ट हुआ। प्राण पखेरु उड़े उसके, धरती पर वह जाय गिरा।।

निष्प्राण तन था फूला हुआ, ककड़ीवत् वह फट गया। महाबाहु श्री कृष्ण ने, भुजदण्ड वहां से फिर खेंचा।।
तनिक भी आश्चर्य या, गर्व नहीं हुआ उनको। बिना अधिक श्रम ही किये, शत्रु स्वत: ही नष्ट भयो।।
थे देव सभी विस्मित हुए, और प्रसन्न वे हो गए। आकाश से ही कृष्ण पर, फूलों की वर्षा करने लगे।।

देवर्षि नारद राजन्, हैं सच्चे प्रेमी श्री हरि के। सच्चे हितैषी हैं वही, तुम जानो सब जीवों के।।

कंस के यहां से लौटकर, श्री कृष्ण के पास ही जा पहुंचे। एकान्त में उनके पास आ, उनसे यूं कहने लगे।।
नारद बोले,
स्वरूप आपका हे कृष्ण, मन और वाणी का विषय नहीं। योगेश्वर प्रभु आप हैं, जगत् नियंत्रण कर्ता ही।।
सब जीवों के हृदय में, आपका प्रभु निवास है। और जीव भी सब पायें, आपके हृदय में वास है।।
भक्तों के इकमात्र इष्ट, वांछनीय बस आप हैं। यदुवंश शिरोमणि आप प्रभु, स्वामी हमारे आप हैं।।

ज्यों इक अग्नि ही प्रभु, सम्पूण काष्ठ में व्याप्त रहे। उसी विधि इक आप ही, सबमें आत्म बन व्याप्त रहें।।
आत्म रूप में सबसमें बसें, पर निहित हैं अपने को किये। पंचकोश की गुहाओं में, प्रभु आप हैं छिपे हुए।।
फिर भी पुरुषोत्तम रूप में, सबके नियन्ता रूप में। सबके साक्षी रूप में, आपका अनुभव हो सके।।

हैं अधिष्ठान से रहित आप, पर सबके बने अधिष्ठान। सृष्टि के आरम्भ में, माया से किये गुण निर्माण।।
उन गुणों को ही प्रभु, आप स्वयं स्वीकार करें। जगत् की उत्पत्ति स्थिति, और प्रलय भी आप करें।।
इसके लिये हे प्रभु नहीं, किसी अन्य पे किसी विधि आश्रित आप। हैं सर्वशक्तिमान् स्वयं, और सत्यसंकल्प हैं आप।।

दैत्य प्रमथ और राक्षसों ने, राजा रूप धारण किये। इस धरती से उनका ही, विनाश करने के लिये।।
और धर्म मर्यादा का, रक्षण करने के लिये। हे प्रभु यदुवंश में, आपने हैं अवतार लिये।।

अति हर्ष की बात है यह, खेल खेल में आपने, अश्व बने इस केशि, दैत्य के हैं संहार किये।।
इसकी ध्वनि सुन स्वर्ग के, देवता भी डर जाते थे। भयभीत हो वह स्वर्ग त्यजी, अन्य भाग कहीं जाते थे।।

अब परसों प्रभु आपके, हाथों नव कौतुक देखूंगा। चाणूर मुष्टिक अन्य बली, योधाओं का वध देखूंगा।।
कुवलयपीड हाथी को, और कंस को मरते देखूंगा। तत्पश्चात् शंखासुर मुर, कालयवन वध देखूंगा।।

नरकासुर का वध भी प्रभु, आपके हाथों ही होगा। स्वर्ग से कल्पवृक्ष का भी, उन्मूलन प्रभु फिर होगा।।
इन्द्र विरोध पे पुन: प्रभु, पराजित उसको कर देंगे। पारिजात का हरण भी, स्वर्ग लोक से कर लेंगे।।

निज कृपा वीरता सौन्दर्य, आदि का शुल्क चुकाकर के। अनेक कन्याओं से प्रभु, परिणय आप रचायेंगे।।
हे जगदीश्वर द्वारिका में, वास करेंगे आप फिर। वहीं पे रहकर नृग को भी, पाप से मुक्त करेंगे फिर।।
जाम्बवान् से जाम्बवती संग, स्यमन्तक मणि ले आयेंगे। अपने धाम से आप मृत, ब्राह्मण पुत्र लौटायेंगे।।

तत्पश्चात् पौण्ड्रक जिसने, वासुदेव का मिथ्या नाम धरा। उसका वध करेंगे आप, काशीपुरी को देंगे जला।।
धर्मराज के यज्ञ में, वह होगा शिशुपाल का। वहां से लौटते समय ही, दन्तवक्र का वध होगा।।

द्वारिका में रहते हुए, कौतुक करेंगे आप महान्। महाज्ञानी विज्ञानी जग के, आगे चलकर करेंगे गान।।
तत्पश्चात् इस भूमि का, भार उतारने के लिये। सारथी स्वयं बनेंगे आप, काल रूप धर अर्जुन के।।
अनेकाक्षौणी सेना का, नाश करेंगे आप स्वयं। इन सब दृश्यों को देख करी, धन्य करूंगा अपने नयन।।

हैं विशुद्ध विज्ञान घन नहीं अस्तित्व अन्य कोई। निज परमानन्द स्वरूप में, स्थित हैं आप निरन्तर ही।।

इसलिये सब पदार्थ ही, नित्य प्राप्त प्रभु आपको हैं। अमोघ संकल्प है आपका, संकल्प प्राप्य प्रभु आप ही हैं।।
चिन्मय शक्ति है आपकी, माया न वहां ठहर सके। माया रचित त्रैगुणी यह, संसार चक्र फिर कहां रहे?
अखण्ड एकरस सच्चिदानंद, निरतिशय ऐश्वर्य, सम्पन्न। आप श्री हरि की ही, चरण शरण को मैं प्रपन्न।।

सबके अन्तर्यामी प्रभु, और नियन्ता आप हैं। अपने आप में आप स्थित, परम स्वतंत्र प्रभु आप हैं।।
जगत् और उसके सारे, भाव अभाव जो रूप हैं। आपकी माया से ही तो, कल्पित प्रभु सब रूप हैं।
इस समय निज लीला को, प्रभु आपने यह रूप धरा। मनुष्य का सा श्री विग्रह, आपने अपना प्रकट किया।।
यदु वृष्णी तथा सात्वत्, वंशियों के शिरोमणि बने। हे प्रभु निज चरण में, नमन मेरा स्वीकार करें।।

शुकदेव बोले,
प्रभु के परम प्रेमी भक्त, देवर्षि ने इस विधि। श्री हरि को प्रणाम किया, और उनकी गाई स्तुति।।
प्रभु दर्शन के आह्लाद से, था रोम रोम उनका खिला। प्रभु से आज्ञा लेकर के, फिर उन्होने प्रस्थान किया।।

इधर केशि का वध करके, निज प्रेमी ग्वाल बालों के संग। प्रसन्नचित्त से पूर्ववत्, श्री हरि हुए कार्य संलग्न।।
व्रजवासियों में प्रभु, परमानन्द लुटाने लगे। प्रेममयी लीलाओं से, थे सबके मनभावन वह भए।।

२४) व्योमासुर का वध

इक दिन ग्वाल सब मिल, पर्वत की चोटी पर गए। गाय आदि पशुओं को, वह थे वहां चरा रहे।।
कुछ तो उनमें चोर बने, कुछ रक्षक ही बन गए। इस विधि लुक्का छुप्पी का, खेल वे सब थे खेल रहे।।
कुछ भेड़ें बने कुछ चोर बने, कुछ रक्षक ही बन गए। निर्भय होकर सबके सब, थे खेल में निमग्न हुए।।

इक ग्वाल बाल का वेश धारी, व्योमासुर वहां पे आ पहुंचा। मायावी गुरु मयासुर सुत, वह स्वयं भी बड़ा मायावी था।।
खेल में बहुधा चोर बनी, भेड़ों को था चुरा लेता। भेड़ बने बालकों को, जाकर वह था छुपा देता।।

महा असुर वह उन सबको, पर्वत की गुफा में डालता। इक बड़ी चट्टान से फिर, द्वार बन्द उसका करता।।
इस प्रकार करते करते, ग्वाल बहुत गुफा में गए। केवल चार पांच बालक, ही बचे फिर शेष रहे।।

भक्तवत्सल श्री हरि ने, उसकी करतूत यह जान ली। छद्मवेश धरी ग्वाल बना, बात यह उन पहचान ली।।
जब वह ग्वाल बालों को, हर कर था ले जा रहा। सिंह ज्यों पकड़े भेड़ियें को, उस विधि उसे दबोच लिया।।

अति बलवान था व्योमासुर, पर्वत समान था तन उसका। अपने को छुड़ाना चाहता था, असली रूप में प्रकट हुआ।।
किन्तु श्री भगवान ने तो, इस विध उसको फांसा था। सारा जोर लगाकर भी, वह उनसे न छूट सका।।

तब श्री कृष्ण ने अपने ही, दोनों हाथों को जकड़ा। पूरा जोर लगाकर के, उसको भूमि पर पटका।।
फिर पशुवत् गला घोंट, उन्होने उसका हनन किया। देवों ने भी विमान चढ़ी, देखी उनकी यह लीला।।

गुफा द्वार पर लगी हुई, चट्टान को फिर प्रभु ने तोड़ा। संकट पूर्ण उस स्थान से, सब ग्वालों को बाहर किया।।
महा देवता और ग्वाल, उनकी स्तुति करने लगे। भगवान कृष्ण यह काज करी, पुन: व्रज को लौट चले।।

२५) अक्रूर जी का व्रज में आना

शुकदेव बोले,
महामना अक्रूर ने भी, रात्रि मथुरा में व्यतीत की। प्रात: काल होते ही उन, निज रथ फिर तैयार की।।
हे राजन् फिर रथ पर, श्री अक्रूर सवार हुए। नन्दबाबा के गोकुल की, दिशा में ही वह चल दिये।।

भगवान् अक्रूर जी, व्रज की यात्रा करते समय। कमल नयन श्री कृष्ण की, भक्ति से परिपूर्ण थे।।
मन ही मन वह परम भक्त, विचार यूं करने लगे। कौन से शुभ कर्म और, श्रेष्ठ तपस् मेरे उदय हुए?
किस सत्पात्र को कभी, महत्वपूर्ण मैंने दान दिये? जिसके परिणाम स्वरूप ही, श्री कृष्ण के दरस मुझे होंगे।।

मैं तो विषय लोलुप हूं बड़ा, प्रभु के दर्शन अति दुर्लभ हों। गुण गान करें सतोगुणी जन भी, दर्शन न उनके सम्भव हों।।
उन श्री हरि के दर्शन तो, मुझ पामर को हो न सकें। ज्यों शूद्र कुल का शिशु कभी, वेदों का कीर्तन कर न सके।।

किन्तु मुझ अधम को भी देखो, प्रभु के अब दर्शन होंगे। ज्यों नदी में बहता हुआ तृण भी, इस पार से जा उस पार लगे।।
समय के प्रवाह से, कभी ऐसा भाग्य भी जग जाये। इस संसार सागर से, कोई पार उतर पाये।।

निश्चित ही आज ऐसा लगे, ज्यों अशुभ मेरे नष्ट हुए। जन्म सफल मेरा हो गया, पुण्य उदय कोई मेरे हुए।।
साक्षात् प्रभु के चरणों में, आज नमन करूंगा मैं। योगी यतियों के लिये भी जो, केवल ध्यान का विषय ही हैं।।

अहो कंस ने आज तो, महाकृपा है मुझपे की। उसीके द्वारा प्रेषित मैं, पाऊंगा प्रभु का दर्शन ही।।
भूतल पर अवतीर्ण हुए, हरि चरण के दर्शन पाऊंगा। ऐसी कृपा उनकी पाकर, भव बनधन मुक्त हो जाऊंगा।।
उनके नखमण्डल की कान्ति, का ध्यान किया ऋषि मुनियों ने। अज्ञान रूपा तिमिर को, वे सब महर्षि तर चुके।।
स्वयं वही भगवान तो, अवतार लोई कर हैं प्रकटे। व्रजभूमि में कृष्ण बनी, वह ही तो लीला कर रहे।।

ब्रह्मा शंकर और इन्द्रादि, देव भी जिन्हें उपासा करें। जिन चरण कमल की सेवा को, लक्ष्मी भी इक पल न छोड़ें।।
प्रेमी भक्तों के संग संग, ज्ञानी भी जिन्हें अराधा करें। उन्हीं प्रभु के चरण कमल, वन वन में आज हैं विचर रहे।।
ग्वाल बालों के संग वही, धेनु चराने नित जायें। गोपिन् के वक्ष:स्थल की, केसर से चिह्नित हो जायें।।

हां हां निश्चित ही आज मैं, उनके दर्शन पाऊंगा। सुन्दर श्याम के दर्शन पा, धन्य धन्य हो जाऊंगा।।
मरकतमणि समान स्निग्ध, हैं कान्तिमय कोमल कपोल। तीखी है उनकी नासिका, ज्यों तोते की हो ठकोर।।
होठों पे मन्द मुस्कान है, प्रेमभरी चितवन उनकी। रत्नारे हैं कमल लोचन, घुंघराली अलकें लटक रहीं।।
प्रेम और मुक्ति दाता, श्री मुकुन्द का मुखारविन्द। दर्शन पाऊंगा निश्चित ही, मेरे दाईं ओर से गए हरिण।।

भूमि का भार उतारन् को, प्रभु विष्णु ने अवतार लिया। स्वेच्छा से मनुज की सी, लीला का अभिनय हो रहा।।
सौन्दर्य की मूर्तिमान् निधि, पूर्ण लावण्य के धाम हैं। उन्हीं का दर्शन होगा आज, नेत्र हों पूर्णकाम हैं।।

इस कार्य कारण जगत् के, प्रभु तो द्रष्टा मात्र हैं। फिर भी द्रष्टा भाव का, वहां सर्वथा अभाव है।।
उनकी चिन्मय शक्ति का, कुछ ऐसा प्रभाव हो। अज्ञान जनित सब भेद भ्रम, और अज्ञान अभाव हो।।

निज भ्रू विलास मात्र से वह, प्राण इन्द्रिय बुद्धि रचें। अपनी ही योगमाया से, अपने में ही जीवों को रचें।।
उनके साथ वृन्दावन की, गलियों में फिर घूमा करें। गोपिन् संग भान्ति भान्ति की, लीला से करते प्रतीत होएं।।

सब पापों के नाशक वह स्वयं, वाणी जब उनका गुण गान करे। उनके जन्म और कर्म की, लीला का जब वह बखान करे।।
उस गान से जगत् में, जीवन की स्फूर्ति जाग उठे। सब शुभ का संचार हो, अपावनता धुल ही जाये।।
उनके जन्म गुण लीला की, कथा जो वाणी न गाये। वह तो मृतक समान ही, शोभित न कभी हो पाये।।
होकर के भी वह वाणी, किसी काम की है नहीं। उसने तो बस व्यर्थ में, नाहक जीवन ही खो यह दी।।

जिनके केवल गुणगान का ही, माहात्म्य कुछ है ऐसा। उन प्रभु ने स्वयं ही, यदुवंश में है अवतार लिया।।
कारण है इक इस जन्म का, निज मर्यादा को पालना। प्रभु के अनुगामी देवों का, ही कल्याण सदा करना।।
वही परम ऐश्वर्यवान् प्रभु, व्रज में आज निवास करें। और वहीं से वह अपने, पावन यश का विस्तार करें।।
कैसा पवित्र है यश उनका, अहो देवता भी गुणगान करें। सम्पूर्ण मंगलकर वह यश, उनका वे कीर्तन नित्य करें।।

नहीं तनिक सन्देह इसमें, आज उन्हें देखूंगा मैं। सन्तों के एक मात्र आश्रय, लोकपालों के ईश्वर हैं।।
रूप सौन्दर्य उनका यह, त्रैलोकी का मन मोह ले। परम गुरु हैं वह स्वयं, परम आनन्द वे नयनों के।।
सौन्दर्य देवी श्री लक्ष्मी भी, लालायित उन्हीं के लिये रहें। हां उनके ही तो आज मुझे, दर्शन निश्चित ही होंगे।।
आज मेरे मंगल प्रभात, उदय का बेला है आया। इस कारण प्रात: काल से ही, शुभ शगुनों को मैं देख रहा।।

सर्वश्रेष्ठ बलराम और, जब उनके दर्शन करूंगा मैं। नमस्कार करने हेतु, निज रथ से कूद पड़ूंगा मैं।।
उनके चरण पकड़ लूंगा, हाय दुर्लभ कितने उनके चरण। महा योगी यति साक्षादार्थ, करें अपने हृदय उनको धारण।।
मैं तो प्रत्यक्ष उन्हें पाकर, लुण्ठित होऊंगा उनपर ही। उन दोनों के संग करूं वन्दना उनके सखाजन की।।
वनवासी इक इक ग्वाल के, चरणों का वन्दन करूंगा मैं। इस विधि अपने आपको, उन पर न्योछावर करूंगा मैं।।

अहोभाग्य मेरे कैसे, वा चरणों में गिर जाऊंगा। उस पल क्या कर कमलों का, स्पर्श मैं सीस पे पाऊंगा?
काल रूपा सर्प से, भयभीत जो जन हो जाते हैं। उससे घबराकर के जो, उनकी शरण में आते हैं।।
श्री हरि के वही कर कमल, अभय दान उनको दे दें। निज शरणागत को प्रभु, भव सागर से ही पार करें।।

दैत्य बलि और इन्द्र ने, उन्हीं द्वौ कर में भेंट दी। पूजन सामग्री सारी ही, समर्पित श्री हरि को करी।।
तीनों लोकों का प्रभुत्व, इन्द्र पद उन प्राप्त किया। दिव्य कमल की गन्ध से, रहें सुवासित कर वह सदा।।
उन्हीं के स्पर्श से रास में, प्रभु ने यह कौतुक किया। सम्पूर्ण व्रजसुन्दरियों की, सारी थकान को हर लिया।।

कंस के द्वारा भेजा गया, मैं जा रहा उसका दूत बन। वह मुझको अपना कोई, शत्रु न समझ बैठें कहीं।।
हा राम ऐसा अनर्थ, कदापि भी न हो सके। वह तो अच्युत निर्विकार, समत्व में ही सदा रहें।।
वह तो स्वयं सर्वज्ञ हैं, और पूर्ण विश्व के हैं साक्षी। चित्त के बाहर भी हैं वह, और वहीं हैं चित्त के भीतर भी।।
वही प्रभु क्षेत्रज्ञ बनी, बाहर और भीतर स्थित रहें। अन्त:करण की हर चेष्टा, वह ज्ञान दृष्टि से देखा करें।।

निरर्थक है मेरे मन की, यह शंका तो व्यर्थ ही। विनीत भाव से उनके चरण में, हाथ जोड़ मैं रहूंगा ही।।

सस्मित वह निज दयामयी, दृष्टि से जब मुझे देखेंगे। जन्म जन्म के संस्कार, तब भस्मीभूत मेरे होंगे।।
शंका रहित ही होकर मैं, परमानन्द को पाऊंगा। सदा सदा के लिये ही मैं, उनमें मग्न हो जाऊंगा।।

हूँ मैं उनके कुटुम्ब का ही, उनका हित ही सदा चाहूं। नहीं अराध्य कोई उनके सिवा, मैं उनकी ही पूजा करूं।।
ऐसे में निज महाभुजा, से मुझको वह उठायेंगे। मेरे स्वामी निज हृदय से, निश्चित ही मुझे लगायेंगे।।
मेरी देह तो पावन होगी ही, बनेगी पावनकर भी यह। उनका आलिंगन पाते ही, मेरे कर्मबन्ध सब टूटेंगे।।
अनादि काल से इस बन्धन, कारण हूं मैं भटक रहा। पुन: पुन: मैं जन्म मरण, के चक्र में पड़ा हुआ।।

आलिंगन जब कर चुकेंगे वह, कर जोड़ी खड़ा मैं होऊंगा। चाचा अक्रूर कहेंगे वह, सुनकर मैं गद्‌गद् होऊंगा।।
हो भी क्यों न इस पावन और, मधुर यश विस्तार को। ही लीला वह कर रहे, मम जन्म इसीसे सफल हो।।
भगवान कृष्ण ने जिसके भी, जीवन को आदर नहीं दिया। जिसको नहीं अपनाया उन, धिक्कार ही है जीवन उसका।।

न तो कोई है प्रिय उनका, और अप्रिय भी नहीं कोई। न ही आत्मीय सुहृद् कहीं, न ही शत्रु ही है कोई।।
उनकी तो उपेक्षा का, पात्र भी है नहीं कोई। फिर भी कल्पवृक्ष पे जा, मनोवांछित वर गर मांगे कोई।।

मुंह मांगी वस्तु उसको, कल्पवृक्ष दे देता है। वैसे ही प्रभु कृष्ण का, भी नियम कुछ ऐसा है।।
जो भी जिस जिस भाव में, उन श्री हरि को भजता है। वे उसी रूप में भजें उसे, उनका प्रण ही ऐसा है।।
निज प्रेमी भक्तों से ही, पूर्ण प्रेम वह करते हैं। उनके सम्मुख तो प्रभु सदा, मानो वशीभूत ही रहते हैं।।

विनीत भाव से वा सम्मुख, सीस झुकाये रहूंगा खड़ा। बलराम जी भी मुसकान सहित, हृदय से लेंगे मुझे लगा।।
फिर दोनों हाथ पकड़ मेरे, घर के भीतर ले जायेंगे। अपने बन्धुजन का वे, सब हाल जानना चाहेंगे।।
सत्कार करेंगे सब मेरा, फिर कुशल क्षेम भी पूछेंगे। कैसा व्यवहार है करे कंस, यह भी वह पूछे जायेंगे।।
शुकदेव बोले,
श्वफलक पुत्र अक्रूर थे, इसी चिन्तन में डूबे हुए। सूर्यास्त होते उनका रथ, नन्दगांव में जा पहुंचे।।
जिनके चरण कमल की रज, सेवन करें सब लोकपाल। अपने किरीटों के द्वारा, जिनका पूजन करें लोकपाल।।
गोष्ठ में उनके चरण चिह्न, का दर्शन किया अक्रूर ने। कमल जौ अंकुश आदि, विलक्षण उनपर चिन्ह थे।।
उन चिन्हों के द्वारा ही, विलक्षण थी पहचान बनी। उन्हीं चरण के चिन्हों से, पृथ्वी की ज्यों शोभा बढ़ी।।

उनका दर्शन पाते ही, आह्लादित श्री अक्रूर हुए। प्रेमावेश इतना बढ़ा, नहीं अपने को सम्भाल सके।।
रोम रोम वा खिल गया, नयनों से अश्रुधार बही। रथ से कूद के भूमि पे, लुण्ठित हुए अक्रूर जी।।
अहो यही तो है हमारे, प्रियतम प्रभु की चरण रज। उसका स्पर्श है आज मिला, मेरा गया है भाग्य जग।।

कंस का संदेशा लेकर, जब तक अक्रूर यहां पहुंचे। है मानव तन का लाभ यही, गर चित्त अवस्था ऐसी बने।।
है परम कर्त्तव्य यही राजन्, दम्भ भय और शोक त्याग। प्रभु के विग्रह चिह्न लीला, स्थान गुणों में हो अनुराग।।
उनके दर्शन और श्रवण में, ऐसा भाव ही उत्पन्न हो। प्रभु चरण के प्रेम से, ही हृदय परिपूर्ण हो।।

व्रज में पहुंच अक्रूर ने, गाय दुहने के स्थान में। बलराम कृष्ण दोनों भाई, विराजमान वहां देखे।।

श्याम सुन्दर श्री कृष्ण ने तो, था पीताम्बर पहरा हुआ। गौर श्री बलराम के, तन पे नीलाम्बर की शोभा।।
शरत् के कमल समान ही, उनके नेत्र थे खिले हुए। प्रसन्न वदन थे दोनों ही, मुख पे मधुर मुसकान लिये।।

किशोरावस्था में अभी, प्रवेश था दोनों का हुआ। गौर श्याम दोनों में ही, सौन्दर्य का था ज्यों कोश भरा।।
महाभुजायें दोनों की, थीं घुटनों तक पहुंच रहीं। सुन्दर मुखड़ा और गजशावक, के समान उसकी चाल थी।।

चरण में ध्वज वज्र अंकुश, और कमल के चिन्ह थे। उनके चलने पर वे सब, धरती में अंकित जब होते।।
पृथ्वी भी उन चिन्हों से, अति शोभित धन्य हो जाती थी। सस्मित चितवन तो उनकी, दया ही ज्यों बरसाती थी।।
दोनों भाई उदारता की, प्रतिमूर्ति ही दर्शाते थे। सौन्दर्य कला वा उदारता, हर लीला में दिख जाते थे।।
कण्ठ बनी थी वनमाला, मणिहार थे झिलमिल कर रहे। अभी अभी था स्नान किया, और निर्मल वस्त्र थे उन पहरे।।
अंग राग और चन्दन का, अनुलेपन था उन्होंने किया। उसकी सुगन्ध से सारा ही, वातावरण भी सुरभित था।।

अक्रूर ने देखा फिर राजन्, हैं जगत् के जो आदि कारण। परम पति जो इस जग के, हैं स्वयं वह पुरुषोत्तम।।
संसार की रक्षा के लिये, ही अवतीर्ण हैं हुए। अपने सम्पूर्ण अंशों से, बलराम कृष्ण के रूप धरे।।
निज अंग कान्ति से दिशा दिशा, का तिमिर वह हर रहे। सोने से मढ़े मरकत मणि, और चान्दी के पर्वत ज्यों खड़े।।

उन्हें देखते ही अक्रूर जी, प्रेमावेग से हुए अधीर। श्री कृष्ण राम के चरणों में, साष्टांग वह हुए लुण्ठित।।
प्रभु दर्शन के आह्लाद से, नेत्रों में अश्रु भर आये। पुलकित हुआ उनका रोम रोम, गद्गद् हो कण्ठ अवरुद्ध हुए।।
इस कारण निज नाम भी, वह उनको न बता सके। शरणागत वत्सल कृष्ण तो, मनोभाव उनके जाने थे।।
बहुत प्रेम से चक्र चिन्हित, हाथों से पकड़ उठाया उन्हें। अपने हिय से प्रेमपूर्वक, कृष्ण ने फिर लगाया उन्हें।।

विनीत भाव हृदय में धर, बलराम सम्मुख वह खड़े हुए। गले लगया उन्होंने भी, इस विधि वा सत्कार किए।।
इक हाथ कृष्ण थे थामे हुए, दूजा पकड़ा बलराम ने। दोनों भाई इस विधि, घर के भीतर उन्हें ले गए।।

घर ले जाकर भगवान ने, आदर सत्कार किया उनका। आसन पर बिठाया उन्हें, फिर कुशल क्षेम सबका पूछा।।
विधिवत् चरण पखारे उन्होंने, पूजा सामग्री भेंट करी। मधुपर्क आदि लाकर, फिर उनके सम्मुख धरी।।

तत्पश्चात् अक्रूर को, एक गाय भी भेंट करी। चरण दबाकर फिर प्रभु ने, श्रान्ति उनकी सारी हरी।।
बहुत आदर और श्रद्धा से, अन्न का भोजन करवाया। अति पावन और गुणकारी, ही राजन् वह भोजन था।।

भोजन के पश्चात् फिर, प्रेम से मुख वास दिया। धर्म के मर्मज्ञ हैं जो, श्री बलराम बड़े भ्राता।।
सुगन्धित माला आदि दे, उनको आनन्दित किया। इस प्रकार उन दोनों ने, अक्रूर जी का सत्कार किया।।

सत्कार जब सम्पन्न हुआ, नन्दराय उनके पास आये। अपने मन के भाव जो थे, सामने उनके दोहराये।।
हे अक्रूर जी कंस तो है, कसाई न्याईं ही आततायी। आपकी गति क्या होगी वहां, उस पापी के जीते जी?

उसके रहते तो आपकी, दशा भी कुछ ऐसी होगी। ज्यों कसाई के द्वारा, होती है पालित भेड़ों की।।

जिस पापी कंस ने बिलखती, निज भगिनी का न ध्यान किया। उसके नन्हें शिशुओं को, मृत्यु के घाट उतार दिया।।

उसीकी प्रजा हैं आप सब, अनुमान न सुख का हो सके। उस दुष्ट के राज्य में, चैन की सांस कैसे कोई ले?

नन्दबाबा से पहले ही, अक्रूर कुशल थे पूछ चुके। नन्द ने मधुर वाणी से जब, कुशल क्षेम उनके पूछे।।
सम्मान उनसे पाकर के श्रान्ति सब उनकी दूर हुई। मधुर वचन ने ही जैसे, मार्ग की सब थकान हरी।।

२६) श्रीकृष्ण और बलराम का मथुरा के लिये प्रस्थान और व्रजवासियों का विलाप

शुकदेव बोले,
भगवान कृष्ण बलराम ने, अक्रूर जी का सम्मान किया। पलंग पे बैठ के फिर उन्होने, भली भाँति विश्राम किया।।
जो भी अभिलाषा मार्ग में, श्री अक्रूर ने थी करी। प्रभु कृपा से वे सबकी, सब ही उसकी पूर्ण हुई।।

लक्ष्मी जी के आश्रय स्थान, श्री हरि जो हैं स्वयं। अप्राप्य भला क्या वस्तु रहे, जब प्रसन्न हों वह स्वयं।।
प्रभु के परम प्रेमी तो, नहीं कामना किसी वस्तु की करें। उनके भक्त तो बस केवल उनकी ही भक्ति चाहें।।

सन्ध्या का भोजन करी, श्री कृष्ण गए अक्रूर पास। स्वजन बन्धु बान्धव का, उन्होंने पूछा सारा हाल।।
कंस के व्यवहार की भी, पूछताछ उन्होंने करी। अगला कार्यक्रम है क्या, यह जानने की इच्छा करी।।

कृष्ण बोले,
हैं शुद्ध हृदय हे तात् आप, यात्रा में कष्ट तो नहीं हुआ? हो मंगल ही सदा आपका, व्रज में है स्वागत आपका।।
मथुरा में हमारे आत्मीय जन, सुहृद् और सम्बन्धी जन। कुशल स्वस्थ हैं न कहें, अपने सब बन्धु बान्धव जन।।

मातुल हमारा कंस जो, बस नाम मात्र का है मामा। वास्तव में कुल के लिये, व्याधि रूप है उसने धरा।।
जब तक बढ़ौतरी है उसकी, कुल का कल्याण न हो सके। तब तक निज कुल और उसके शिशुन्, का मंगल हम क्या पूछें?

खेद का विषय है तात यह्, मैं ही इसका कारण बना। निरपराध सदाचारी, मेरे मातु पितु को कष्ट हुआ।।
भान्ति भान्ति की यातना, मेरे कारण उन्हें सहनी पड़ी। और तो बात मैं क्या कहूं, उनके हाथ में डाली हथकड़ी।।
मेरे कारण ही उनके, शिशुओं का किया वध उसने। जगत् में किसी भी मामा के, ऐसे कुकुर्म तो नहीं सुनें।।

बहुत दिनों से चाह यह थी, किसी स्वजन के दर्शन मुझको हों। अति सौभाग्य से आज मेरी, अभिलाषा यह पूर्ण हो।।
सौम्य स्वभावी तात् हे अब आप ही मुझपर कृपा करें। किस निमित्त से आये आप, स्वयं रहस्य यह प्रकट करें।

शुकदेव बोले,
अक्रूर से श्री कृष्ण ने, इस विधि जब प्रश्न किया। तक उन्होंने मथुरा का, पूरा ही समाचार कहा।।
यदुवंशियों से कंस ने, घोर विरोध है कर लिया। वसुदेव की हत्या का, उद्यम भी वह कर चुका।।

श्री अक्रूर ने कंस का, सन्देश भी उन्हें सुना दिया। किस उद्देश्य से उनको स्वयं, कंस ने दूत था दिया बना?
फिर नारदजी ने आकर, भेद था किस विधि खोल दिया? वसुदेव के कुल में फिर, कृष्ण जन्म वृत्तान्त कहा।।
रिपुदमन श्री कृष्ण और, बलराम यह सुनकर हंस दिये। तत्पश्चात् नन्दबाबा से, कंस आदेश भी जाय कहे।।

नन्दराय ने गोपों को, तत्क्षण ही यह आज्ञा दी। गोरस एकत्रित सब करो, भेंट सामग्री जुटाओ सभी।।

छकड़े भी सब जोत लो, प्रात: मथुरा को जायेंगे। वहां जाकर महाराज कंस को, गोरस भेंट चढ़ायेंगे।।
महोत्सव है वहां हो रहा, दर्शन को प्रजाजन आएंगे। अपने राजा के उत्सव को, हम भी देखने जायेंगे।।
गांव के कोतवाल से, घोषणा उन करवा यह दी। व्रज के गोप ग्वालों में, सूचना सब पहुंचा उन दी।।

जब गोपियों ने यह सुना राजन्, अक्रूर हैं मथुरा से आए। हमारे कृष्ण बलराम को, मथुरा ले जाना वह चाहें।।
व्यथित हुए उनके हृदय, वे सब आकुल हो गईं। बहुतों के हृदय में जलन हुई, श्वासों की गति भी ऊष्ण हुई।।
मुख कमल कुम्हला गए, बहुत सी फिर अचेत हुईं। नहीं जूतों का कहीं पता रहा, केश और कंगन खुलीं।।
अपने तन की ओढ़नी की, सुध बुध भी उन्हें नहीं रही। कब तन से वह उतर गई, आभास ही उनको नहीं हुई।।

श्री हरि के स्वरूप का, ध्यान किन्हीं को जब हुआ। चित्त वृत्तियां निवृत्त हुईं, समाधिस्थ ही चित्त हुआ।।
अपने तन संसार का, कुछ भी ध्यान उन्हें नहीं रहा। उन सबको ही छोड़कर चित्त था आत्म में टिका।।

बहुत सी गोपियों के सम्मुख, फिर कृष्ण रूप प्राकट्य हुआ। उनका प्रेम मन्द मुसकाना, हृदयस्पर्शी वाणी से भरा।।
वही रूप उनके नेत्रों के, सामने नर्तन करने लगा। उसका दर्शन करते करते, मन वहीं पे जा तल्लीन हुआ।।

मन ही मन वह गोपियां, सिमरन् था कृष्ण का कर रहीं। ललित गति भाव भंगिमा, प्रेममयी स्मित देखें थी।।
शोकहारी उनकी चितवन, और ठिठोलियां भी उनकी। उदार सभी लीलाओं का, वे चिन्तन करने लगीं।।
उनके विरह के भय से, अति कातर वह हो गईं। हर स्वास स्वास उन गोपियों की, श्री हरि चरण समर्पित थी।।
नयनों से निरन्तर ही, अश्रुधारा बहने लगी। सब एकत्रित हो करी, वे इस भान्ति कहने लगीं।।

गोपियां बोली,
धन्य हो हे विधाता तुम, सब कुछ विधान तो तुम करो। किन्तु तुम्हारे हृदय में, लेशमात्र भी दया न हो।।
सौहार्द और तुम प्रेम जगा, पहले जग के प्राणी जोड़ो। आपस में ऐसा मिलाओ तुम, एक रूप उन्हें कर दो।।

आशा अभिलाषा उनकी, अभी पूरी भी न हो पाये। बिन तृप्ति के ही पाये, बिछुड़न का बेला आ जाये।।
वियोग रचाकर फिर विधाता, अलग अलग उनको करो। यह खिलवाड़ तुम्हारा तो, शिशुवत् ही सब व्यर्थ हो।।

पहले तो श्री मुकुन्द का, मुखकमल विधाता दिखलाया। प्रेम बांटने वाला वह सुन्दर दरस हमें करवाया।।
है कैसी मोहिनी मूर्त वह, घुंघराली अलकें उनकी बनीं। स्निग्ध कपोल मरकत मणि से, श्यामल अलकें हैं लटक रहीं।।
तोते की चोंच सी ऊंची और, तीखी है उनकी नासिका। अधरों पर मुस्कान की, बनी है सुन्दर सी रेखा।।
सारे ही शोकों को यह, मनमोहिनी मूर्त पल में हरे। वह मुखड़ा दर्शा हे विधना, अब अदृश्य हो कर रहे।।
सचमुच तेरी यह करनी तो, है एक अतिश्योक्ति ही। उन श्याम सुन्दर के दरस बिन, कहो गति हमारी क्या होगी?

नहीं दोष कोई अक्रूर का, आज हैं हम यह जान रहीं। तुमने ही निमित्त बनाया उन्हें, आज हैं हम पहचान गईं।।
अक्रूर नाम रे धर री, तुम ही यहां पे आये हो। अपने ही दिये नयना यह, तुम हमसे छीनने आये हो।।
इन नयनों द्वारा सांवले के, एक एक श्री अंग में। ज्यों सृष्टि का सौन्दर्य सब, हम बैठी निहारा करें।।
ऐसा अनुचित कर्म तो, हैं नहीं योग्य तेरे लिये। अपने ही दिये इन नयनों को, क्यों मूर्खवत् हो छीन रहे?

अहो अहो इस सांवरे को, नित नया प्रेमी ही चाहिए। देखो तो सही सौहार्द प्रेम, पल भर में ही कहां लुप्त हुए?
निज घर द्वार बन्धु बान्धव, पति पुत्र भी हमने छोड़ दिये। इनकी ही दासी हो गईं, हृदय इन्हीं में खो गए।।
देखो तो इन्हें अब हमरी ओर, इक पल को भी न देखें। शोकाकुल हम हैं हुईं, नहीं दृष्टि यह इस ओर करें।।

आज की रात्रि की प्रभात, मंगलमय होगी मथुरा में। वहां की नारी रत्नों की, पूर्ण होंगी अभिलाषायें।।
व्रजराज हमारे सुन्दर श्याम, तिरछे कटाक्ष और सुस्मित से। अपने मुखारविन्द का मधु, लुटाते हुए जब जायेंगे।।
मथुरा पुरी में वह मादक, आसव जब बिखराएंगे। उसका पान कर धन्य, वह स्त्री रत्न हो जाएंगे।।

हैं धैर्यवान् अति मनमोहन, गुरुजन की आज्ञा में वह रहें। नन्दबाबा की आज्ञा का, वह कभी उल्लंघन नहीं करें।।
फिर भी मथुरा की युवतियां, मधु समान निज वचनों से। आकर्षित करेंगी चित्त इनका, वह बरबस ही खिंच जाएंगे।।
लज्जाभरी मुसकान उनकी, विलासपूर्ण वा भंगिमा से। महामुदित होकर कृष्ण, वहीं पे फिर रम जाएंगे।।
हम गंवार ग्वालिनों पे, फिर यह लौटेंगे क्योंकर? मथुरा की सुन्दर ललनाएं, जब लेंगी इनका चित्त हर।।

धन्य धन्य होंगे सब ही, मथुरा के दाशार्ह भोज अन्धक। वृष्णी वंशी सब यादवों के, नेत्र करेंगे जब दर्शन।।
श्याम सुन्दर के दर्शन से, वह परमानन्द को पाएंगे। महोत्सव होगा उनके यहां, साक्षात्कार वह पाएंगे।।
संग संग जो जन भी यहां से, उनके साथ वहां जाएंगे। रमारमण गुणधाम श्री, नट नागर दर्शन पाएंगे।।
मार्ग में दर्शन पा उनका, वे भी गद्‌गद् हो जाएंगे। मथुरा वासिन् के साथ साथ, उनके भी भाग्य जग जाएंगे।।

देखो तो सखी कितना निष्ठुर, हृदयहीन है यह अक्रूर। अति व्यथित हुईं गोपियां हम, यह श्याम ले जाना चाहे दूर।।
हमारे प्रियतम नन्दलाला को, नेत्रों से यह ओझल करे। ऊपर से सान्त्वना और, आश्वासन भी न हमको दे।।
सच इसका तो नाम ही, किसी ने व्यर्थ में दिया अक्रूर। वास्तव में तो कर्मों से, यह बना है महाक्रूर।।

सखी यह श्याम सुन्दर अपना, भी तो कम निष्ठुर नहीं। देखो देखो अरी वह भी तो, जा चढ़ बैठा रथ पे ही।।
मतवाले हुए यह गोप भी, उनके संग जो जा रहे। छकड़ों पर चढ़कर जाने की, कितनी जल्दी है मचा रहे।।
देखो तो हैं यह महामूर्ख, वृद्धों ने भी है उपेक्षा की। इनकी जल्दी देखकर, उन्होने भी है इन्हें छूट दी।।
मन में जो आये सो ही करो, ऐसा हैं वह कह रहे। हम बेचारी ग्वालिनें, कहो कहो अब क्या करें?
निश्चित ही आज विधाता भी, प्रतिकूल चेष्ठा कर रहा। हम अबलाओं से न जाने, बदला कोन वह ले रहा?

चलो चलो हम स्वयं ही जा, प्राणप्रिय को रोकेंगी। कुल के वृद्ध बन्धु बान्धव, से नहीं अब डरेंगी।।
हम तो आधे क्षण को भी, नहीं संग यह छोड़ना चाहें थीं। प्राणेश्वर नन्दलाला का, वियोग न सह यह पाएंगी।।
दुर्भाग्य हमारा उदय हुआ, जो बिछुड़न का बेला आया। इस वियोग ने चित्त को, अति आकुल है आज किया।।

प्रेममयी मनोहारी है, जिनकी मधुर सुन्दर मुसकान। रहस्यमयी मृदु वचन वा, वश में किये हैं हमारे प्राण।।
विलासमयी चितवन उनकी, दिव्य प्रेमालिंगन उनका। अतिविशाल रास की वे, रात्रियां क्षण में दीं बिता।।
अब भला उनके बिना, कैसे जी हम पायेंगी? उनकी दी इस विरह व्यथा से, कैसे पार हो पायेंगी?

इक दिन की यह बात नहीं, यह तो प्रति दिन की बात है। सायंकाल ग्वालों से घिरे, जब व्रज में लौटें आप हैं।।

बलराम संग धेनु चरा, बन से जब वापिस आएं। काली घुंघराली अलकें और, वनमाल भी रज से ढक जाएं।।

गौ के खुरों से उठी हुई, धूलि उनको ढांप ले। मन्द मन्द मुसकाते हुए, जब वंशी वादन आप करें।।
अपनी तिरछी चितवन से, हृदय हमारे बेन्ध दें। उन प्यारे मनमोहन बिन, कैसे कहो हम जी सकें?

शुकदेव बोले,
गोपिकागण वाणी से तो, थीं विरह विलाप यूं कर रहीं। किन्तु भावन की राही वह, थीं स्पर्श कृष्ण का कर रहीं।।
इक इक मनोभाव उनका, श्री कृष्णालिंगन में था बंधा। विरह की सम्भावना से, अति व्यथित उनका हृदय था।।
लोक लाज सब छोड़ कर, वे उच्च स्वरों में पुकार उठीं। हे गोविन्द हे दामोदर, हे माधव कहकर रोने लगीं।।

इस प्रकार रोते रोते, रात्रि ही सारी बीत गई। प्रात: जब सूर्य उदय हुआ, गोपिकागण थीं रो रहीं।।
सन्ध्या वन्दन आदि सब, नित्य कर्म निवृत्त हुए। रथ पे सवार होकर अक्रूर, उसको हांक के ले चले।।

नन्द आदि सब गोपों ने, भेंट सामग्री संग में ली। दूध दधि माखन और घी, सब मटकों में थी भरी।।
वे भी छकड़ों पर चढ़कर, उनके पीछे पीछे चले। मथुरा के महोत्सव में, सम्मिलित वे होने कों चले।।

अनुराग के रंग में रंगी हुईं, फिर गोपियां भी उन तक आईं। निज प्राण प्रिय की प्रिय चितवन, मुसकान वह कुछ निरख पाईं।।
तनिक सुखी वह हो गईं, किन्तु वह वहीं पे खड़ी रहीं। निज प्रियतम से सन्देश मिले, आकांक्षा यह थी हिय धरी।।

श्री कृष्ण ने जब देखा, उनके मथुरा चले जाने से। गोपिकागण के हृदय तो, अति सन्तप्त हैं हो रहे।।
निज दूत के द्वारा फिर, प्रेम संदेशा भिजवाया। मैं आऊंगा यह कहकर, धीरज उनको बन्धवाया।।

जब तक रथ की ध्वजा और, पहियों की धूलि दिखती रही। चित्रलिखित सब गोपियां, ज्यों की त्यों वहां खड़ीं रहीं।।
तन तो उनके खड़े दीखें, पर चित्त तो श्याम के संग गया। प्राणेश्वर मनमोहर संग, ही था उसको भेज दिया।।

मन में तनिक थी आस लगी, शायद कृष्ण अभी लौटेंगे। निराश हुई यह देखकर, नहीं प्राण प्रिय उनके लौटे।।
हताश ही वह हो गईं, और अपने अपने घर लौटीं। अहर्निश अपने प्यारे की, लीला गान ही वह करतीं।।
इक दूजे से बात करी, वह मन अपना हल्का करतीं। प्रियतम की चर्चा उनके इस, शोक सन्ताप को थी हरती।।

७) श्रीकृष्ण की मथुरा में लीलायें

१) अक्रूरजी का मोह भंग

हे राजन् श्री कृष्ण इधर, अक्रूर और बलराम संग। वायु की गति सम तीव्र वेग, से चलनेवाले रथ पर।।
होकर सवार फिर पापनाशिनी, यमुना जी के पुलिन पहुंचे। हाथ मुंह धोकर अपने, नव स्फूर्ति के संचार किये।।
मरकत मणि सम था नीला जल, और अमृत सम मीठा था। उसका पान करके उन्होने, रथ आरोहन पुन: किया।।
वृक्षों के झुमुट में ही, रथ उनका था खड़ा हुआ। प्रखर सूर्य की ताप भी, उसको नहीं था छू सका।।

दोनों भाइयों को इस विधि, रथ पे जब बिठा दिया। कर जोड़ी अक्रूर जी ने, फिर लीनी उनमें आज्ञा।।
यमुना जी के कुण्ड पे, ब्रह्म ह्रद पे वह आ गए। विधि विधान पूर्वक वह, उसमें स्नान करने लगे।।

उस कुण्ड में स्नान किया उन्होने, यमुना जल में फिर डुबकी ली। गायत्री जप करने लगे, दोनों आंखें मूंद कर।।
उसी समय जल के भीतर, अद्भुत एक दृश्य देखा। कृष्ण बलराम द्वौ भ्राता, संग में हैं बैठे देखा।।

उनके मन में अब एक, शंका उत्पन्न हो गई। वसुदेव के पुत्रों को, रथ पे बिठाया था अभी।।
अब वे दोनों इस जल में, कहां से हैं प्रविष्ट हुए? गर यहां पर हैं दोनों, तो रथ पे वह नहीं होंगे।।
ऐसा सोचकर अक्रूर ने फिर, जल से बाहर सीस किया। उस रथ पर दोनों को ही, पूर्ववत् बैठे देखा।।
फिर सोचा जो जल में था, मेरा ही भ्रम वह रहा होगा। पुन: डुबकी लगाई उन, और विचित्र यह दरस हुआ।।

फिर उन्होंने वहां देखा, साक्षात् शेष हैं विराजमान्। सिद्ध चारण गन्धर्व असुर, सभी करें उनका स्तुतिगान।।
सहस्त्र सीस हैं अनन्त के, हर फण पे है मणिमय किरीट। कमल नाल सम उज्ज्वल तन, नीलाम्बर उस पर पहरी।।
ऐसी शोभा है बनी उनकी, ज्यों हो कैलाश शोभायमान। सहस्त्र शिखर से युक्त वह, श्वेतगिरि ज्यों हो महान्।।

फिर अक्रूर जी ने देखा, उन श्री शेष की गोद में। श्याम मेघ सम श्यामल श्री, घनश्याम हैं विराज रहे।।
रेशम का चमकीला सा, पीताम्बर उन्होंने है पहरा। अति शान्त चतुर्भुज मूर्ति हैं, रक्त कमल से नेत्र हैं वा।।

अति मनोहर उसका वदन, मानो प्रसन्नता का हो सदन। चित्त को हैं चुरा रहे, उनका हास्य और सुन्दर चितवन।।
सुन्दर भ्रुवें और नासिका है, अति सुघड़ तनिक ऊंची। सुन्दर हैं कर्ण कपोल भी, अधरों की छटा निराली बनी।।

अजानुभुज हैं हृष्ट पुष्ट, और कन्धे वृषभ समान हैं। अति विशाल वक्ष:स्थल उनका, लक्ष्मी का आश्रय स्थान है।।
शंख समान मूर्धा उनकी, अति सुडौल और सुन्दर है। गहरी नाभि त्रिवली मुक्त, अश्वत्थ पत्र सम उदर है।।

हैं कटि और नितम्ब स्थूल, जंघा हाथी की सूण्ड ज्यों। पिण्डलियां और घुटने भी, अति सुन्दर सुगठित ज्यों।।
एड़ी के ऊपर की गांठें, थोड़ी थोड़ी उभरी सी हैं। लाल लाख नख ज्योति की, किरणों भी अति दीप्त सी हैं।।
चरण कमल की अंगुली और, अंगुष्ठ भी हैं ऐसे सोहे। कोमल कोमल पुष्पों की, पंखुड़ियां ज्यों हैं सोहे।।

अमूल्य मणि से जड़ा मुकुट, बाजूबन्द कंकण करधनी। माला नूपुर कुण्डल और, यज्ञोपवीत से छवि बनी।।
इन सबसे वह दिव्य मूर्ति, अति अलंकृत हो रही। इक हाथ में कमल है पकड़ा हुआ, अति शोभा है उनकी बनी।।
शेष में हैं गदा शंख चक्र, वक्ष:स्थल पर श्री वत्स चिन्ह। कण्ठ में है कौस्तुभ मणि, वनमाल गले में है परिछिन्न।।

नन्द सुनन्द आदि पार्षद, निज स्वामी की सेवा करें। सनकादि परम ऋषि उन्हें, परब्रह्म पुकारा करें।।
ब्रह्मा और महादेव देव, सर्वेश्वर उन्हें कहते हैं। मरीचि आदि नौ ब्राह्मण, प्रजापति उन्हें कहते हैं।।
प्रह्लाद और नारद आदि, प्रभु के हैं जो प्रेमी भक्त। आठों वसु परम प्रियतम, को ही अब पुकार कर।।
भिन्न भिन्न भावों से हैं, स्तुति वे उनकी कर रहे। निर्दोष वेदवाणी राही, उनके गुण वह गा रहे।।

लक्ष्मी पुष्टि और सरस्वति, कान्ति कीर्ति और तुष्टि। ऐश्वर्य बल ज्ञान श्री, यश वैराग्य यह षट्शक्ति।।
इला ऊर्जा विद्या अविद्या, ह्लादिनी औ अन्तरंग शक्ति। हो मूर्तिमान् माया आदि, उनकी सेवा हैं कर रही।।

भगवान की यह झांकी देखी, अक्रूर हृदय आह्लादित था। उनके हृदय से परमानन्द, था मानो ज्यों छलक रहा।।

परम भक्ति उन्हें प्राप्त हुई, तन पुलकित हुआ हर्ष से। प्रेम के उद्रेक से, आंखों में आंसू भर गये।।

अक्रूर जी ने पुन: अपना, साहस एकत्रित किया। प्रभु चरणों में सीस धरी, फिर उनको प्रणाम किया।।
तत्पश्चात् वह कर जोड़ी, दक्षता से फिर हुए खड़े। धीरे धीरे गद्गद् स्वर से, स्तुति प्रभु की करने लगे।।
अक्रूर बोले,
हैं परम कारण आप प्रभु, प्रकृति आदि सब कारणों के। अविनाशी पुरुषोत्तम हैं, श्री नारायण आप ही हे।।
आपके नाभि कमल से ही, श्री ब्रह्मा जी प्रकट हुए। चर अचर इस जगत् की, सृष्टि जो हैं स्वयं करें।।
आपके ही श्री चरणों में, नमन प्रभु मैं करता हूं। आपके सम्मुख ही प्रभु, मैं सीस चरण में धरता हूं।।

पृथ्वी जल अग्नि वायु, आकाश अहं और महत्तत्त्व। प्रकृति पुरुष और मन इन्द्रिय, और इन्द्रियों के विषय सब।।
उनके सब अधिष्टातृ देव, यह सब ही चराचर जग। और उनके व्यवहार के, भी जो कारण सबके सब।।
आपके ही हैं अंग रूप, स्वरूप आप ही हैं इनका। आपके अतिरिक्त तो, नहीं अस्तित्व ही किसीका।।
प्रकृति और उससे जो, उत्पन्न सब पदार्थ हों। है सब ही अनात्म वह, इदं वृत्ति से ग्रहण हों।।

इस कारण सब जड़ ही हैं, तव स्वरूप न जान सकें। हे प्रु आप तो स्वयं ही, आत्म रूप बन हैं ठारे।।
ब्रह्मा जी तो आपका, अपना ही स्वरूप हैं। किन्तु प्रकृति के गुण, रजस् से ही वह युक्त हैं।।
इसलिये वह भी प्रकृति, का स्वरूप न जान सकें। फिर गुण परे उसका स्वरूप, कैसे वह पहचान सकें?

साधु योगी निज अन्त:करण में, स्थित स्वामी आपको जान। उपासना आपकी वह करें, आपको अन्तर्यामी मान।।
समस्त भूत और भौतिक सब, पदार्थों में हैं आप व्याप्त। परमात्म के रूप में, आप ही तो हैं सर्वव्याप्त।।
सूर्य चन्द्र अग्नि आदि, देवमण्डल के हैं जो इष्ट। उनके रूप में आप ही हैं, हैं आप ही साक्षी महापुरुष।।
सबके नियन्ता और ईश्वर, भी हरि हैं आप ही। सब रूपों में आपकी, ही उपासना हो रही।।

कर्मकाण्डी बहुत ब्राह्मण जो, कर्म मार्ग अनुसरण करें। तीनों विद्या जो कर्म मार्ग, का ही सदा उपदेश करें।।
इन्द्र आदि अनेकों ही, देव वाचक आपके नाम। वज्रहस्त सप्तार्चि आदि, अनेक रूप हैं कहे वहां।।

बहुत ज्ञानी जन पूर्ण ही, कर्मों का संन्यास करें। और शान्त भाव में, ही सदा वह स्थित रहें।।
ज्ञान यज्ञ से इस विधि, आराधना आपकी ही वह करें। ज्ञान स्वरूप हैं आप प्रभु, वे आपको ही पूजा करें।।

संस्कार युक्त हैं वैष्णव जो, अन्य भी शुद्ध चित्त हुए। आपकी ही बतलाई हुई, अनेकों अन्य विधियों से।।
आपकी चतुर्व्यूहादि रूप, पूजा में वह तन्मय हों। नारायण रूप में हे प्रभु, एक रूप की पूजा हों।।

अन्य उपासक शिव का ही, उपदिष्ट मार्ग अनुसरण करें। आचार्य भेद के कारण ही, अनेक अवान्तर भेद रहें।।
शिव स्वरूप में आपकी, ही वह पूजा करते हैं। इष्ट देव जो भी हों प्रभु, सब रूप में आप ही बसते हैं।।

आपसे भिन्न ही मान कर, अन्य देवता जो ध्यायें। वास्तव में वे भी प्रभु, अराधना आपकी ही करें।।
सब देवों के रूप में, आप ही हैं प्रभु बस रहे। सब देवता आप ही हैं, और सर्वेश्वर भी स्वयं ही हे।।

ज्यों पर्वतों के चहुं ओर से, बहुत सी नदियां निकले हैं। वर्षा के जल से भरकर, विभिन्न मार्ग सब ले ले हैं।।

घूमघाम के पुन: सभी, प्रवेश सिन्धु में कर जायें। त्यों ही उपासना मार्ग सभी, आपके पास पहुंच जायें।।

प्रकृति आपकी हे प्रभु, है त्रैगुण से ही रंगी। सत्त्व-रज और तम तीनों गुण का है रूप यही।।
ब्रह्मा से स्थावर पर्यन्त, चराचर जो भी जीव हैं। इस त्रैगुणी प्रकृति का, ही परिवर्तित रूप हैं।।
ज्यों सूत्र से वस्त्र सब, ओत् प्रोत ही रहते हैं। त्यों ही प्रकृति और गुण से, व्याप्त सभी यह रहते हैं।।

सर्वरूप होकर भी प्रभु, आप कहीं न लिप्त हों। निर्लिप्त है दृष्टि आपकी, सब वृत्तियों के साक्षी हों।।
गुण प्रवाहित सृष्टि का, मूल कारण अज्ञान ही हैं। देव मनुज पशु पक्षी, सबमें ही वह व्याप्त है।।
किन्तु आप तो हे प्रभु, उन सबसे ही अलग रहें। नमस्कार मेरा हे प्रभु, नमस्कार स्वीकार करें।।

यह अग्नि ही हे हरि, आपका है श्री मुख कहें। पृथ्वी आपके चरण हैं, सूर्य चन्द्र द्वो नेत्र कहें।।
आकाश ही आपकी नाभी है, और कर्ण दिशायें हैं। स्वर्ग सीस है आपका, और देवेन्द्र भुजायें हैं।।
समुद्र कोख है आपकी, और वायु है प्राण शक्ति। उपासना हेतु प्रभु यही, रूप है आपकी कल्पित हुई।।

औषधियां और वृक्ष प्रभु, रोम आपके है कहे। मेघों के केश पर्वतों को, अस्थि सम्मूह और नख कहें।।
दिन और रात हैं आपकी, पलकों का खुलना बन्द होना। प्रजापति जननेन्द्रिय है, और वीर्य है वृष्टि बरसना।।

ज्यों जल में जलचर बहुत, और गूलर में बहुत कीट रहें। मनोमय पुरुष के रूप में, अनेक जीव जन्तु रहें।।
उनसे पूर्ण लोक सब, और लोकपाल कल्पित हैं किए। आपकी ही उपासना को, हैं अविनाशी भगवन् सब यह।।

निज क्रीड़ा करने को प्रभु, धरती पर जो भी रूप धरें। वे अवतार सभी जन के, शोक मोह को दूर करें।।
फिर आपके निर्मल यश का ही, आनन्द से सब जन गान करें। प्रभु यह सब तो आपकी, लीला का ही बखान रहे।।

वेदों ऋषियों औषधियों संग, सत्यव्रत की रक्षा के लिये। मस्त्यरूप धरी आपने, प्रलय सागर में विहार किये।।
आपके मत्स्य रूप को, प्रभु करूं मैं नमस्कार। आपने ही मधु और कैटभ, असुरों का किया संहार।।
ह्यगीव के रूप में, आपने ही था लिया अवतार। उसी ह्यग्रीव के चरणों में, स्वीकार हो मेरा नमस्कार।।

विशाल कच्छप रूप भी, आपने ही धारण था किया। मन्द्राचल पर्वत को पुन:, अपनी पीठ पे धर लिया।।
पृथ्वी उद्धार को आपने ही, वराह रूप किया स्वीकार। उन्हीं कच्छप और वराह को, हो प्रभु मेरा नमस्कार।।

साधु भक्त प्रह्लाद का, भय मिटाने के लिये। अलौकिक ही नृसिंह रूप, प्रभु आपने धर लिये।।
फिर वामन रूप ही धर कर, त्रैपद से नापे लोक तीनों। नमस्कार नृसिंह को, नमन स्वीकार हो वामन को।।

गर्ववश क्षत्रियों ने, उल्लंघन धर्म का जब किया। उनके छेदन के लिये, भृगुवंश में जन्म लिया।।
परशुराम के रूप में, हे प्रभु आप ही प्रकट हुए। आपके ही श्री चरणों में, मेरे नमस्कार हैं हे।।

लंकापति रावण का, नाश करने के लिये। रघुकुल में प्रभु आप ही, राम रूप बन कर प्रकटे।।
नमन करूं मैं आपको, स्वीकार मेरा हो नमस्कार। राम रूप के चरणों में, नमन करूं मैं बार बार।।

वैष्णव जन और यदुवंशियों के, पालन पोषण के लिये। चतुर्व्यूह के रूप में, आपने निज को प्रकट किये।।
वासुदेव और संकर्षण, प्रद्युम्न अनिरुद्ध रूप धरे। बार बार इन रूपों को, है प्रभु मेरा नमन हे।।

दैत्य और दानवों को, मोहित करने के लिये। शुद्ध अहिंसा मार्ग के, प्रवर्तक रूप में आएंगे।।
इस धरती के क्षत्रिय जब, मलेच्छ प्राय: हो जाएंगे। उनके नाश को हे प्रभु, कल्कि रूप धराएंगे।।
नमस्कार मेरा प्रभु, आपके चरण में नमस्कार। बुद्ध और कल्कि रूप में, नमन प्रभु मेरा हो स्वीकार।।

हे प्रभु सब ही जीव यह, माया से मोहित हैं हुए। इस मोह कारण ही सब, अहम् और मेरे में भ्रमित रहें।।
इस झूठ में ही वह फंसे हुए, कर्म चक्र में भटक रहे। इससे मुक्ति का कोई, मार्ग न उनको दीख पड़े।।

इसी विधि स्वामी मैं भी, मोह में फंसा हूं भटक रहा। स्वप्न दृश्य सम झूठे ही, देह गेह सत्य हूं समझ रहा।।
पत्नी पुत्र धन स्वजन, के ही मोह में भ्रमित हुआ। इन सब अनित्य पदार्थों को, नित्य ही हूं मैं समझ रहा।।

मेरी मूर्खता तो देखें प्रभु, अनित्य को नित्य हूं जान रहा। अनात्म को आत्म मानी, दु:ख को सुख ही मान लिया।।
विपरीत मति है मेरी हुई, नहीं इसकी सीमा कहीं कोई। अज्ञान वश संसार के ही, द्वन्द्वों में यह फंसी रही।।
मैं तो बिलकुल ही भूल गया, कि आप ही प्रियतम हैं हमारे। अनात्म इस जग में प्रभु, आप ही हैं मेरे आत्म हे।।

जैसे कोई अज्ञानी जीव, जल आशय पर जा पहुंचे। उसी से उत्पन्न घास पे, ढका हुआ उसे देख के।।
समझ ले वहां पे जल नहीं, तो मूर्खता यह उसकी है। सूर्य की किरणों के कारण, रेत जो झिलमिल होती है।।

जल ही समझ कर दौड़े उसे, मृगतृष्णा ही तो होती है। माया भ्रमित मेरा प्रभु, हाल भी कुछ ऐसा ही है।।
निज माया में निहित आप, प्रभु मैं आपको न देखूं। छोड़ आपको विषयों में, सुख की आशा से मैं भटकूं।।

अविनाशी और अक्षर के, ज्ञान से हूं मैं नितान्त हीन। इस कारण ही विषयों की, कामना से हूं बना दीन।।
उनके लिये ही कर्म के, संकल्प मन में उठते रहें। फिर इन्द्रियां भी अति प्रबल हैं, और यह हैं दुर्दमनीय।।
मन का यह प्रमंथन करी, उसको हर ले जाती हैं। इस कारण इस मन पे भी, नहीं मेरी वश हो पाती है।।

इस विधि भटकता हुआ प्रभु, मैं आपकी शरण में आ पहुंचा। दुष्टों के लिये है अति दुर्लभ, तव चरण कमल की छत्रछाया।।
हे स्वामी मेरे लिये भी, आपकी कृपा का ही यह प्रसाद है। नहीं पद्मनाभ बिन आपके, कैसे सम्भव हो यह आज है?
जब संसार से मुक्ति का, समय जीव का आता है। सत्पुरुषों की उपासना से, प्रभु में चित्त टिकाता है।।

विज्ञान स्वरूप है आप प्रभु, आप ही हैं विज्ञान घन। सब वृत्ति और प्रतीति के, हैं कारण आप और अधिष्ठान।।
सब जीवों के रूपों में, स्वयं प्रकट हैं हो रहे। उनके सुख दु:ख के निमित्त, काल कर्म प्रकृति बने।।
आप स्वयं ही हे प्रभु, हैं सबके नियन्ता भी। आप ही हैं ब्रह्म प्रभु, अनन्त आपकी शक्ति भी।।
नमन करूं मैं आपको, सीस आपके चरण धरूं। हे प्रभु आप स्वीकार करें, पुन: पुन: मैं नमन करूं।।

आप ही हैं प्रभु वासुदेव, सबके आश्रय संकर्षण आप। इस मन के अधिष्ठाता, हृषीकेश भी प्रभु हैं आप।।
रक्षमाम् प्रभु रक्षमाम्, शरणागत हूं मैं हुआ आज। आपके श्री चरणों में प्रभु, बारम्बार है नमस्कार।।

शुकदेव बोले,
हे राजन् अक्रूर जी, स्तुति थे इस विधि कर रहे। श्री कृष्ण ने जल में उन्हें, दिव्य रूप निज दिखलाये।।
फिर उस रूप को उन्होंने, पुन: निहित ही कर दिया। ज्यों नट कोई अभिनय करके, पर्दे के पीछे छिप जाता।।

श्री हरि का दिव्य रूप देखा, जब अन्तर्धान ही हो गया। जल से बाहर आये अक्रूर, जल्दी से कर्म सब समाप्त किया।।
पुन: रथ पे वह आ गए, अति विस्मित वह थे हुए। श्री कृष्ण ने भी अनजान बनी, उनसे फिर यह प्रश्न किए।।
पृथ्वी जल आकाश में तात्, क्या अद्भुत दर्शन हुआ? आकृति आपकी देख के, आभास है कुछ ऐसा होता।।

अक्रूर बोले
पृथ्वी जल आकाश में, और भी सारे जगत् में। अद्भुत जितने भी पदार्थ हैं, वे तो हैं सब आप में।।
विश्व रूप हैं आप प्रभु, मैं तो बस आपको देखे हूं। फिर कौन सा अद्भुत दृश्य प्रभु, जिससे मैं वंचित रहूं?

जो भी अद्भुत प्रभु कहीं पे है, जल में हो या आकाश में। या पृथ्वी में भी जो हो, सबके सब हैं आप में।।
उन आपको ही प्रभु, मैं आज सामने देख रहा। इससे बड़ा आश्चर्य और, आप कहें भला क्या होगा?

गान्दिनी सुत अक्रूर ने, इस विधि प्रभु से कहा। यह वचन उन्हें कहकर, रथ को पुन: उन्होंने हांक दिया।।
श्री कृष्ण और बलराम को, लिये हुए थे जा रहे। दिन के ढलते ढलते ही, वे मथुरा पुरी जा पहुंचे।।

मार्ग में स्थान स्थान पर, लोग उन्हें मिलने आते। कृष्ण राम को देखकर, आनन्द मग्न वे हो जाते।।
इक टक दृष्टि उनकी टिकती, नहीं हटा वह उसे पाते। गांव नगर के वासी सब, राजन् मुदित यूं हो जाते।।
नन्दबाबा आदि व्रजवासी, पहले ही वहां थे पहुंच गए। मथुरा के बाहरी उपवन में, प्रतीक्षा में थे उनकी खड़े।।

उनके पास पहुंचकर, जगदीश्वर श्री कृष्ण ने। विनीत भाव से खड़े हुए, अक्रूर के कर निज कर में लिये।।
फिर मन्द मन्द मुसकान सहित, उनसे प्रभु कहने लगे। हे तात् आप रथ को लेकर, मथुरा में प्रवेश करें।।
अपने घर को जाएं आप, हम लोग यहां ही ठहरेंगे। फिर नगर के दर्शन के लिए, हम पीछे पीछे आयेंगे।।
अक्रूर बोले,
बिना आप दोनों को लिये, प्रभु मथुरा मैं न जा पाऊं। भक्त वच्छल न छोड़ें मुझे, मैं तो आपका भक्त हूं।।
आएं भगवन् मेरे संग चलें, परम हितैषी आप मेरे। सच्चे सुहृद् आप हैं, बलराम चलें ग्वालन् के संग।।
नन्दराय आदि आत्मीय जन को, लेकर मेरे साथ चलें। हे प्रभु निज चरणों से, घर को मेरे सनाथ करें।।

हम तो गृहस्थी हैं प्रभु, आपके चरण रज अति पावनी। श्री चरणोदक गंगा से, हों तृप्त ऋषि और महामुनि।।
अग्नि देवता और पितर, चरणामृत पा सब तृप्त हों। आपकी यह चरण रज पा, हम गृहस्थ भी धन्य हों।।

आपके युगल चरण को ही, महात्मा बलि ने पखारा था। उसने वह यश प्राप्त किया, गाते हैं सन्त जिसक गाथा।।
उस केवल यश ही नहीं पाया, अतुल्यैश्वर्य भी उसे मिला। अनन्य प्रेमी भक्तों की, गति को था उसने प्राप्त किया।।

चरणोदक आपका श्री गंगा, त्रिलोकी को पावन कर दे। है मूर्तिमन्त पावनता वह, वा स्पर्श से ही सद्गति मिले।।
सगर के पुत्रों ने इस विध, ही तो मुक्ति पाई थी। श्री शंकर ने निज सीस पे, थी गंगा वह धारण करी।।

यदुवंश शिरोमणि आप तो, आराध्य देव सब देवों के। सारे जगत् के स्वामी आप, अति मंगलकर लीला करें।।
आपके गुण लीलाओं का, श्रवण कीर्तन जो करे। इस भव बन्धन से प्रभु, सहज ही उत्तम नर वह तरे।।
हे नारायण आपको, बार बार मैं नमन करूं। आपके ही चरणों में प्रभु, मैं तो अपना सीस धरूं।।

कृष्ण बोले,
दाऊ के संग तात् मैं, निश्चित ही आपके घर चलूं। यदुवंशियों के परम द्रोही, इस कंस से पहले निपट लूं।।
तभी निज स्वजन बान्धवों का, प्रियकर मैं कर पाऊंगा। अपने सुहृद् बन्धु बान्धव, का दु:ख मैं हर पाऊंगा।।

शुकदेव बोले,
श्री कृष्ण के ऐसा कहने पर, अक्रूर जी कुछ अनमने हुए। मथुरा पुरी में फिर उन्होने, अकेले ही प्रवेश किए।।
कंस के सामने जाकर फिर, कृष्ण राम हैं आए कहा। समाचार निवेदन उससे कर, फिर अपने घर प्रस्थान किया।।

२) रजकवध

अगले दिन तृतीय प्रहर में, बलराम और ग्वालन् के संग। श्री कृष्ण फिर चल दिये, मथुरा के दर्शन करन।।
नगर के परकोटे में उन, देखे ऊंचे ऊंचे गोपुर। थे स्फटिक मणि के बने हुए, नगर के सब ऊंचे गोपुर।।

घरों में भी थे बने हुए, बड़े बड़े फाटक देखे। स्वर्ण के महाकिवाड़ लगे, स्वर्ण के ही तोरण बने।।
ताम्बे और पीतल की वहां, चारदीवारी थी बनी। चहुं ओर से नगर को, वह ही थी घेरे हुई।।
खाई बनी थी चहुं ओर, प्रवेश वहां अति कठिन था। सुन्दर उद्यानों उपवनों की, थी स्थान स्थान पे बनी शोभा।।

स्वर्ण से मण्डित चौराहे, धनियों के महा प्रसाद थे। साथ में बाग बगीचे भी, शोभा थी उनकी बढ़ा रहे।।
कारीगरों की बैठकें, प्रजावर्ग के सभा सदन। साधरण जन के निवास भी, थे नगर किए शोभा सम्पन्न।।
वैदूर्य हीरे और स्फटिक, नील मूंगे मोती सजे। छज्जे चबूतरे फर्श और, झरोखों में पन्ने थे लगे।।
उनकी चमक से सारे ही, जगमग जगमग थे कर रहे। उनपे बैठी कबूतर मोर, पक्षी थे कलरव करते।।
सड़क बाजार गली और, चौराहों पर था जल छिड़का। फूलों के गजरे जौ अंकुर, खील और चावल बिखरा।।

घर द्वारों पे अनेकों ही, भाँति भाँति के कलश पड़े। दही और चन्दनादि से, चर्चित जल से वह थे भरे।।
पुष्प दीप नव कोंपल सह, सुपारी और कदली से सजे। छोटी छोटी झण्डियों और, रेशम की पट्टियों से सजे।।

हे राजन् वसुदेव सुत, श्री कृष्ण और बलराम ने। राजपथ से ग्वालन् संग, मथुरा में प्रवेश किये।।
नगर की सारी नारियां, उनके दर्शन को अति उत्सुक थीं। दर्शन पाने के लिये, वह जाई अटारियों पर चढ़ीं।।

जल्दी जल्दी में किसी ने तो, उलटे वस्त्र ही पहन लिये। किसी ने यह भी न देखा, गहने भी उसके उलटे थे।।
कुण्डल कंगनादि भी जो, जोड़ों में हैं पहने जाते। भूल से एक ही पहना किसी, और कृष्ण के दर्शन को चले।।
कोई तो एक ही कान में, पत्र को धारण कर पाई। किसी के एक ही चरण में, पायजेब थी खनक रही।।
एक ही नयन में किसी ने तो, अंजन था लगा लिया। दूजे नयन में अंजन तो, किसी को विस्मृत हो गया।।

अनेकों रमणियां उस पल, थीं जो भोजन करने बैठीं। हाथों का वह कौर फेंक, कृष्ण के दर्शन को चलीं।।
उत्साह और आनन्द था, सबके मन में भर रहा। कोई उबटन थी लगा रही, बिन स्नान ही उसने कूच किया।।
जो सोईं थीं यह शोर सुनी, अनायास वे जाग गईं। और उसी अवस्था में, वह श्याम दरस को दौड़ चलीं।।
जो माताएं शिशुओं को, स्तनपान थीं करा रहीं। गोद से शिशु उतार कर, वह कृष्ण के दर्शन को चलीं।।

मदमस्त हुए गजराज सम, बहुत मस्ती से वे चल थे रहे। कमल नयन श्री कृष्ण के, विग्रह अति मनभावन थे।।
श्री लक्ष्मी के मनभावना, श्री हरि के उस रूप ने। पुर की नारियों के नेत्र, अति आह्लादित कर दिये।।
विलासभरी अपनी हंसी, और प्रेममयी निज चितवन से। उन सबके मन और चित्त, श्री कृष्ण ने मानो हर लिये।।

मथुरा की सब स्त्रियां, बहुत दिन से कथा थीं सुन रहीं। उनकी अद्भुत लीलाओं की, गाथाएं थीं उन्होने सुनीं।।
उनके चित्त चिरकाल से, व्याकुल थे कृष्ण के लिये। आज अपने नयन से ही, दर्शन उनके हो गए।।
प्रेममयी चितवन और निज, मन्द मधुर मुसकान के। सुधारस से उन्हें सींचकर, श्री कृष्ण ने भी सम्मान किये।।
नेत्रों द्वारा श्री कृष्ण को, वे हृदय में अपने ले गईं। आनन्दमय वा स्वरूप का, आलिंगन वे करने लगीं।।
तन पुलकित हुआ उनका, और विरह व्यथा भी शान्त हुई। बहुत दिनों से तपी हुई, भूमि पे ज्यों वर्षा पड़ी।।

अपने अपने महलों की, अटारियों पे थीं वे चढ़ीं। बलराम कृष्ण पर मथुरा की, स्त्रियों ने पुष्प वर्षा करी।।
उनके मुख कमल उस पल, थे प्रेमावेग से खिल रहे। स्थान स्थान पे दही अक्षत, और जल से भरे थे पात्र धरे।।
ब्राह्मण क्षत्रिय और वैश्य इन सबके ही वह कार्य थे। सबने मिलकर ही इस भान्ति, नगर के थे श्रृंगार किये।।
पुष्पमाला चन्दन और, अन्य भेंट सामग्री ली। आनन्द मग्न होकर उन्होंने, कृष्ण राम की पूजा की।।

भगवान के दर्शन पा करके, सब पुरवासी यूं कहने लगे। आपस में इक दूजे को, धन्य धन्य वे कह थे रहे।।
व्रज की गोपिकागण ने कहो, कौन महान तपस्या की? जिस कारण यह दोनों ही, मनहर किशोर वह देखतीं?
मनुष्य मात्र को यह दोनों, परमानन्द प्रदान करें। इनके दर्शन पाकर वह, नित्य ही इनका गान करें।।

कृष्ण ने तत्क्षण ही देखा, धोबी था इक आ रहा। रंगरेजा के काम में भी, था वह अति निपुण बना।।
भगवान ने उससे धुले हुए, उत्तम उजले कपड़े मांगे। प्रेममयी वाणी से वह, फिर उसको यूं कहने लगे।।
ऐसे वस्त्र दो तुम हमें, जो इस तन पर पूरे आयें। हम ही तो उन वस्त्रों के, वास्तविक अधिकारी बन जाएं।।
नहीं तनिक सन्देह इसमें, गर तुम वस्त्र हमें दे दोगे। तो परम कल्याण के ही, तुम भागी बन जाओगे।।

सर्वत्र परिपूर्ण हैं प्रभु, हे राजन् सभी उन्हीं का है। फिर भी यूं उनका मांगना, लीला नहीं तो और क्या है?
पर वह मूर्ख धोबी तो, राजा कंस का सेवक था। इसी गर्व में वह हुआ, दम्भ में मतवाला था।।
प्रभु की दी वस्तु को वह, प्रभु के अर्पण कैसे करता? क्रोध से भर उस धोबी ने, आक्षेप प्रभु पे ही किया।।
रजक बोला,
पर्वत और वनों में ही, रहते हो तुम लोग सदा। ऐसे वस्त्रों को कभी, क्या तुमने देखा है वहां?
अति उद्दण्ड तुम हो गए, तभी तो ऐसी बात करो। अब राजा के धन को भी, लूटने को तुम उद्यत हो।।

अरे मूर्खों भागो तुम, पुन: न इस विधि मांगना। गर जीवन की इच्छा हो, साहस ऐसा न करना।।
तुम जैसे उद्दण्डियों को, कैद करेंगे कर्मचारी। हनन करेंगे तुम्हारा वह, लेंगे छीन सब सम्पत्ति।।
शुकदेव बोले,
वह धोबी जब इस विधि, प्रलाप बहुत था कर रहा। तनिक कुपित हुए श्री कृष्ण, और मुख पे तमाचा दे मारा।।
उसका सीस तत्काल ही, धड़ से जा फिर अलग हुआ। और जोर से धरती पर, ही वह सीस फिर गिर गया।।

यह देख अनुचर उसके, भयभीत अति हो गए। सब कपड़ों को वहीं छोड़, वह इधर उधर को भाग गए।।
भगवान ने उनके वस्त्रों को, फिर बरबस ही ले लिया। कृष्ण और बलराम ने फिर, रुचिकर वस्त्रों का चयन किया।।
अन्य वस्त्र दिये ग्वालों को, उनको भी सजा दिया। बहुत वस्त्र फिर छोड़ वहीं, उन आगे को कदम धरा।।

३) दर्जी और सुदामा माली पर अनुग्रह

जब वह और कुछ आगे बढ़े, इक दर्जी उनको मिला। उनका अनुपम सौन्दर्य देख, प्रफुल्लित उसका मन हुआ।।
रंग रंग के सुन्दर वस्त्र, उनके तन पे सजा दिये। नव वस्त्रों से अलंकृत हो, उनके रूप और भी निखर गए।।
सुन्दर वस्त्रों से श्रृंगारित, शोभायमान हुए दोनों भ्राता। श्वेत श्याम गजशावक ज्यों, उत्सव में हों दिए सजा।।

अति प्रसन्न हुए भगवान, दर्जी को वरदान दिया। धन ऐश्वर्य सम्पदा संग, सुमिरन् का उसे दान दिया।।
इन्द्रियों की सब शक्तियां भी, प्रभु ने उसको दे दीनी। मृत्यु के पश्चात् उसे, सारूप्य मोक्ष प्रदान करी।।

तत्पश्चात् श्री हरि गए, सुदामा माली के घर में। दोनों भाईयों को देखते ही, सुदामा तो उठ खड़े हुए।।
पृथ्वी पर सिर टेक करी, प्रभु को उन प्रणाम किया। आसन उनको देकर के, चरणों और हाथों को धोया।।
ग्वालों सहित उन सबका, हृदय से उसने मान किया। पुष्पहार चन्दन ताम्बूल, से उनका पूजन किया।।

फिर प्रार्थना की भगवान से, प्रभु सफल हुआ हमरा जीवन। दोनों भाईयों के दर्शन पा, कृतार्थ हुए हैं यह नयन।।
कुल भी पावन आज हुआ, ऋषि देव और पितर तरे। हम पर वे सन्तुष्ट हुए, उस ऋण से मुक्त हम हो गए।।

आप दोनों ही जगत् के, हे प्रभु हैं परम कारण। अभ्युदय उन्नति मोक्ष हेतु, ही किए रूप यह हैं धारण।।
ज्ञान बल आदि अंश सब, प्रभु आपने संग लिये। और इस धरा पे प्रभु, आप हैं अवतीर्ण हुए।।

प्रेमियों से करें प्रेम आप, भजने वालों को आप भजें। आपकी दृष्टि में कभी, कहीं विषमता नहीं रहे।।
सम्पूर्ण इस जगत् के, परम सुहृद् आत्म हैं आप। सब प्राणियों और पदार्थों में, समत्व रूप में स्थित हैं आप।।

मैं आपका दास हूं हे प्रभु, आप स्वयं मुझे आज्ञा दें। क्या सेवा करूं मैं आपकी, प्रभु आप मुझसे कहें।।
यह तो जीव पे हे प्रभु, अतिशय अनुग्रह है आपका। कृपा युक्त प्रसाद यह है, आज्ञा दे काम में दे लगा।।

सुदामा माली ने इस विधि, प्रार्थना की भगवान से। अभिप्राय प्रभु का जान के, आनन्द प्रेम से वह भरे।।
अति सुन्दर और सुगन्धित, फूलों के थे हार गुंथे। प्रेम से उस माली ने वह, प्रभु के अर्पित कर दिए।।
ग्वालों और बलराम संग, श्री कृष्ण अलंकृत जब हुए। वरद प्रभु ने मुदित हो, शरणागत को फिर वर दिये।।

सुदामा माली ने उनसे, एक ही वर फिर मांग लिया। आप ही पूर्ण जीवों के, हे प्रभु हैं अन्तरात्मा।।

आपके श्री चरणों में प्रभु, अविचल मेरी भक्ति हो। आपके भक्तों से सदा, मेरा सौहार्द और मैत्री हो।।
सब प्राणियों के प्रति, दया भाव ही बना रहे। अहैतुकी हो करुणा मुझमें, नहीं अपना स्वार्थ कोई रहे।।

प्रभु ने सुदामा माली को, उसके मांगे वर तो दिये। संग में लक्ष्मी भी दे दी, जो वंश के साथ ही बढ़ती रहे।।
बल आयु और कीर्ति, कान्ति का भी वरदान दिया। तत्पश्चात् बलराम संग, कृष्ण वहां से हुए विदा।।

४) कुब्जा पर कृपा

शुकदेव बोले,
निज मण्डली को साथ ले, श्री कृष्ण कुछ आगे बढ़े। राजमार्ग पे हे राजन्, श्री कृष्ण थे जा रहे।।
इक युवती को सामने से, श्री कृष्ण ने आते देखा। मुख तो सुन्दर था उसका, किन्तु तन उसका विकृत था।।
इस कारण उस स्त्री का, नाम था कुब्जा पड़ गया। अपने हाथ में था उसने, इक पात्र में चन्दन लिया हुआ।।
श्री हरि तो नित्य प्रेम, का दान ही किया करें। कुब्जा पे कृपा करने के लिये, हंस कर उन्होंने यह प्रश्न किये।।

कृष्ण बोले,
कौन हो तुम हे सुन्दरी, है किसके लिये चन्दन लेपन? हे कल्याणि सच सच ही, बात कहो यह हमसे तुम।।
यह अंग राग उत्तम चन्दन, हमको भी दे दो जरा। इस दान से शीघ्र ही, परम कल्याण होगा तेरा।।

सैरेन्ध्री बोली,
कंस की प्रिय दासी हूं मैं, महाराज मुझे बहुत मान दें। त्रिवक्रा मेरा नाम है, हे मनहर तुमसे कहें।।
अंगराग लगाना ही, कर्त्तव्य है मेरा जानें। मेरा चन्दन और अंगराग, महाराज कंस के मन भाए।।
किन्तु आप दोनों से उत्तम, इसका पात्र है कोई नहीं। आप समान सुपात्र मुझे, आज तक कोई दिखा नहीं।।

शुकदेव बोले,
प्रभु की सौन्दर्य सुकुमारता, मन्द हास्य और रसिकता। चारू चितवन और प्रेमालाप, ने कुब्जा का मन हरा।।
प्रभु पे अपने हृदय को, उसने न्यौछावर कर दिया। उन दोनों भाइयों को फिर, उस गाढ़ा अंग अनुराग दिया।।

सांवले तन पे कृष्ण ने, पीत चन्दन लेप किया। राम के गौर शरीर पे, लाल अंगराग रक्तिम सजा।।
नाभि से ऊपरी भाग यूं, दोनों भाइयों ने सजा लिया। अंगराग और चन्दन का, अनुलेपन बहुत सुहाया था।।

उस कुब्जा पर श्री कृष्ण, अतीव प्रसन्न हो गए। निज दर्शन का प्रत्यक्ष फल, उसको वह देना चाहते थे।।
तीन जगह से थी टेढ़ी, पर सुन्दर मुख उसका था। प्रभु ने फिर उस कुब्जा को, सीधा करने का विचार किया।।

अपने चरणों से कुब्जा के, दोनों पंजे दिये दबा। हाथ कर ऊंचा अपना, दो आंगुली दी ठोढ़ी पे टिका।।
उसके तन को तनिक सा, खेंच के उन सीधा किया। तनिक सा ही उठाते उसे, हर अंग समान उसका हो गया।।
प्रेम और मुक्ति दाता, श्री हरि ने था उसे स्पर्श किया। विशाल नितम्ब पयोधर युक्त, सुंदर युवती का रूप धरा।।

रूप गुण उदारता से, तत्क्षण कुब्जा सम्पन्न हुई। उसके मन में श्री हरि से, मिलन की कामना जाग उठी।।
उत्तरीय का छोर पकड़, फिर मुसकाने वह लगी। विनीत हिय से उसने फिर, श्री हरि से यह बात कही।।

सैरेन्ध्री बोले,
हे वीरवर अब घर चलें, नहीं यहां आपको छोड़ सकूं। मन चित्त आपने हर लिया, हों दासी पर प्रसन्न कहूं।।
शुकदेव बोले,
श्री बलराम के सामने ही, उस कुब्जा ने यह प्रार्थना की। निज ग्वाल बालों का मुख देखी, सुन्दर श्याम की छूटी हंसी।।
कृष्ण बोले,
तेरा गृह तो इस जग के, लोगों की मनो व्याधि हरे। उनके दु:ख क्लेश को, हे सुन्दरी तू दूर करे।।
निज काज को सम्पन्न करे, निश्चित ही मैं वहां आऊंगा। हम जैसे वनवासियों को, तुम्हारा ही तो है आसरा।।

शुकदेव बोले,
इस भान्ति मृदु वचन कही, श्री कृष्ण ने उसको भेज दिया। तत्पश्चात् व्यापारियों के, बाजार में उन्होने प्रवेश किया।।
पुष्पमाल चन्दन ताम्बूल, उनको वणिजों ने दिया। श्री कृष्ण और बलराम का, उपहार देई पूजन किया।।

उनके दर्शन मात्र से ही, प्रेमावेश हृदय उठता। नारी हृदय में जागती, उनसे मिलने की उत्कण्ठा।।
निज तन की सुधि भूलतीं वे, वस्त्र केश कंगन खुलते। ज्यों की त्यों खड़ी वह रह जातीं, ज्यों चित्रलिखित ही मूर्ति रे।।

५) कृष्ण का कंस की यज्ञशाला में धनुर्भंग और कंस का भयभीत होना

तत्पश्चात् श्री कृष्ण ने, पूछा धनुर्यज्ञ का स्थान। रंगशाला में जा देखा धनु:, विचित्र इन्द्र के धनु: समान।।
बहुमूल्य अलंकारों से वह, धनुष था सजाया गया। धन सम्पद् भी बहुमात्रा में, उस पर था लगाया गया।।
अति पूज्य वह धनुष था, सैनिक थे करते उनकी रक्षा। उनके रोकते कृष्ण ने, बलात् धनुष वह लिया उठा।।

सबके देखते देखते ही, वाम हस्त में उठा लिया। प्रत्यंचा उसपे चढ़ा कर के, इक क्षण में उसको खेंचा।।
खेल खेल में धनुष के, दो टुकड़े उन्होने कर दिये। ज्यों मतवाला हाथी कोई, खेल में ईख को तोड़ दे।।
उन दुष्टों का आशय जानी, श्री कृष्ण राम भी क्रुध हुए। उस धनुष के ही टुकड़े उठा, उन्होने उनका काम तमाम किए।।

असुरों की सहायता को, थी कंस ने जो सेना भेजी। उसी धनुज के खण्डों से, श्री कृष्ण राम ने नष्ट करी।।
तत्पश्चात् यज्ञशाला के, मुख्य द्वार से वह गए। मथुरा की शोभा देखते वह, आनन्द से विचरन् करने लगे।।

दोनों भाइयों का अति अद्भुत, पराक्रम जब प्रजा ने सुना। उनके तेज साहस और, अनुपम रूप को जब देखा।।
तब उन्होने निश्चय किया, यह तो हैं श्रेष्ठ कोई देवता। साधारण जीव तो इस विधि, धनुष भंग नहीं कर सकता।।

श्री कृष्ण बलराम इस विधि, थे स्वतंत्र हो विचर रहे। मथुरापुरी में दोनों ने, थे नगर दर्शन किये।।
दोनों भाई सूर्यास्त पे, ग्वाल बालों से घिरे हुए। नगर के बाहर खड़े हुए, छकड़ों पे पुन: जा पहुंचे।।

तीनों लोक के देवता, थे लक्ष्मी को वरना चाहते। सबका परित्याग करी उसने, नारायण के ही वरण किये।।
सदा के लिये उसने उनको, अपना निवास बना लिया। उन श्री कृष्ण के अंग अंग का, पुरवासिन् ने दरस किया।।
उनका दर्शन वह पा रहे, है इतना सौभाग्य बड़ा। व्रज से यात्रा के समय, विरह व्यथित गोपिन् मन था।।
मथुरा वासिन् के विषय में, जो जो थीं उन्होंने बातें कहीं। पुरवासी परम आनन्द पाये, सबकी सब वह सत्य हुईं।।

फिर हाथ पांव धो कृष्ण और, बलराम ने भोजन किया। घी में बने क्षीर आदि, व्यंजनों से भरपूर वह था।।
कंस की अगली योजना को, फिर उन्होंने जान लिया। उस रात को वहां पे ही, चैन से उन विश्राम किया।।

जब कंस ने यह सुना, कृष्ण राम ने धनुष तोड़ा। रक्षक और सहायक वा, सेना का भी संहार किया।।
इसके लिये भी विशेष श्रम, नहीं उनको कोई करना पड़ा। यह सब मानो उनके लिये, मात्र एक खिलवाड़ ही था।।
अति भयभीत वह हो गया, दुर्मति को नींद नहीं आई। जागृत और स्वप्न अवस्था में, अपशकुन बहुत ही दर्शाई।।

उन्हें देखकर वह डरा, मानो मृत्यु के सूचक थे। जाग्रत अवस्था में देखा, प्रतिबिम्ब जो थे दर्पण में पड़े।।
किन्तु उस प्रतिबिम्ब में, सीस न उसका दीख रहा। चन्द्र तारे दीपक ज्योति, ने भी दो दो रूप धरा।।

छाया में छेद दिखाई पड़े, कानों में अंगुली दे के सुने। फिर भी प्राणों के चलने की, गति का शब्द न सुन पाये।।
वृक्ष तो सब स्वर्णमय, ही प्रतीत ज्यों होने लगे। बालू या कीचड़ में भी, निज चरण के चिन्ह न दीख पड़े।।

फिर स्वप्न में देखा कंस ने, प्रेतों के गले वह लग रहा। सवारी गधे की वह करे, या फिर विष ज्यों खा हो रहा।।
सारा शरीर देखा अपना, तेल से तर है हो रहा। गले में जपाकुसुम माला, और नग्न ही है कहीं जा रहा।।

स्वप्न और जाग्रत में उसने, और भी देखे अपशकुन। उनके कारण अति चिन्तित था, मृत्यु भय से था आसन्न।।
इस भय के कारण कंस तो, रात्रि भर न सो सका। अपशकुनों की चिन्ता ने, उसको ग्रसित था कर लिया।।
रात्री जब व्यतीत हुई, पूर्व में सूर्य उदय हुआ। मल्लक्रीड़ा के महोत्सव को, कंस ने फिर आरम्भ किया।।

६) कुवलयापीड हाथी का वध और कृष्ण-बलराम का रंगशाला में प्रवेश

रंगभूमि को भली भाँति, सजाया कर्मचारियों ने। तुरही भेरी आदि सब, वाद्य फिर बजने लगे।।
दर्शकों के सब स्थान भी, थे भली भाँति सजे। फूलों के गजरे झण्डियां, वस्त्र और बन्दनवार लगे।।

ब्राह्मण क्षत्रिय आदि नागरिक, और ग्राम वासी आये। अपने अपने स्थानों पर, भली भाँति गए बिठलाये।।
राजा लोग भी अपने अपने, स्थानों पे जा बैठ गए। निज मन्त्रीगण संग कंस भी, मण्डलेश्वरों के मध्य में थे।।
सर्वश्रेष्ठ सिंहासन पर, जाकर फिर वह बैठ गया। चित्त उसका अपशकुनों के, कारण था घबराया हुआ।।

पहलवानों ने अपनी अपनी, ताल फिर जब ठोक दी। वाद्य वहां बजने लगे, मल्लयोधाओं की धाक थी।।
सब गर्वीले पहलवान्, सजधज कर वहां आ गए। अपने अपने उस्तादों सहित, अखाड़ों में वह आ उतरे।।

चाणूर मुष्टिक और कूट, शल और तोशल प्रधान थे। वाद्यों की मधुर ध्वनि सुनकर, उत्साहित यह बलवान् हुए।।
अखाड़े में आ कर के, पहलवान् सब बैठ गए। भोजराज कंस ने फिर, नन्दादि गोप भी बुलवाये।।
उन लोगों ने आकर के, उसे भाँति भाँति की भेंट दी। इक मंच पे जा फिर बैठ गए, जो उनके लिये सुरक्षित थी।।
शुकदेव बोले,
फिर कृष्ण और बलराम भी, नित्य कर्म निवृत्त हुए। मल्लयुद्ध घोषित करते, दुन्दुभि के स्वर सुनकर के।।
रंगभूमि को देखने, हे परंतप चल पड़े। भगवान कृष्ण रंगभूमि के, द्वार पर जब जा पहुंचे।।
देखा द्वार रोके खड़ा, कुवलयापीड़ नामक हाथी। ऐसा करने के लिये, महावत की उसे प्रेरणा थी।।

भगवान कृष्ण ने तब अपना, कटिवस्त्र कस कर बान्धा। घुंघराले अपने बालों को, भली भाँति समेट लिया।।
मेघ सम गम्भीर स्वरों में, उन्होने फिर गर्जन करी। हाथी पर बैठै हुए, महावत को ललकार दी।।
कृष्ण बोले,
अरे महावत हमको तुम, भीतर जाने की राह दो। महावत मेरी बात को, क्यों हो तुम नहीं सुनो?
नहीं देर करो हटो राह से, नहीं तेरा काल भी आया कहूं। इस हाथी के साथ साथ, तुझको भी यम के घर भेजूं।।
शुकदेव बोले,
जब महावत को प्रभु ने, इस विधि से धमकाया। अति क्रुध वह हो गया, अंकुश से हाथी भड़काया।।
काल समान ही भयंकर, हाथी कुवलयापीड़ था। अंकुश की मार से प्रेरित हो, कृष्ण की ओर ही वह बढ़ा।।

कृष्ण पे झपट करी उसने, उन्हें सूण्ड में अपनी लपेट लिया। प्रभु सरक के हुए परे, और मुष्टि से उसपर वार किया।।
फिर उसके ही पांव के, बीचों बीच वह जाय छिपे। कुवलयापीड़ का क्रोध बढ़ा, नहीं अपने सामने जब देखे।।
सूण्ड से उनकी गन्ध ले, उस पुन: कृष्ण को खोज लिया। और सूण्ड से ही उसने, भगवान को फिर से पकड़ लिया।।
बलपूर्वक श्री कृष्ण ने, अपने को पुन: छुड़ा लिया। इस प्रकार उस हाथी से, युद्ध उन्होंने छेड़ दिया।।

महाबली उस हाथी को, पूंछ से प्रभु ने पकड़ लिया। खेल खेल में ही उसको, सौ हाथ तक पीछे खेंचा।।
ज्यों गरुड़ पकड़ के सांप को, सहज में ही घसीट ले। उसी विधि भगवान ने, हाथी से यह खेल किये।।

बछड़ों के संग ज्यों ग्वाल बाल, सहज में ही घूमा करें। अथाव स्वयं श्री कृष्ण भी, बछड़ों से जैसे खेलते थे।।
वैसे ही उसकी पुच्छ पकड़, प्रभु खेलने उससे लगे। जब वह दाएं घूमता, उन्हें पकड़ने के लिये।
अति दक्षता से कृष्ण, बाएं हाथ ही आ जाते। और बाएं जब वह आता, तब दाएं थे वह घूमते।।

तत्पश्चात् वह हाथी के, सामने आकर हुए खड़े। फिर निज व्रज मुष्टिका से, उस हाथी पर प्रहार किये।।
उसे गिराने के लिये, वह भागने सामने ही लगे। गति विधि ऐसी करी, अभी पकड़ में ज्यों आ जाएंगे।।

दौड़ते दौड़ते कृष्ण ने, फिर ऐसा अभिनय किया। श्रान्त हुआ हो तन जैसे, और भूमि पर जाय गिरा।।
तत्काल वहां से उठ कर, पुन: भागने वह लगे। उस हाथी का क्रोध भी, चरम सीमा को छूने लगे।।
धरती पर गिरा उन्हें समझी, अति वेग से उसने प्रहार किया। अपने दोनों दातों को, धरती में उसने गाड़ दिया।।

कुवलयापीड़ का यह वार, भी जब निष्फल हो गया। उसका क्रोधावेग बढ़ा, महावत भी भड़का था रहा।।
अति क्रुध होकर के वह, श्री कृष्ण पर पुन: टूट पड़ा। मधुसूदन ने अपनी ओर, उसे झपटते जब देखा।।
उसके पास ही जा पहुंचे, और सूण्ड से उसको पकड़ लिया। पूरा बल लगाकर के, धरती पर उसको दे पटका।।

गिरे हुए उस हाथी पर, कृष्ण ने सिंह सम चरण धरा। खेल खेल में ही उसके, दोनों दाँतों को उखाड़ दिया।।
उससे ही उस हाथी और, महावत को उन्होने मार दिया। इस प्रकार उन दुष्टों का, काम उन्होंने तमाम किया।।

उस मृत हाथी को वहीं छोड़, दाँतों को हाथ में लिये हुए। हे राजन् श्री कृष्ण ने, रंगभूमि में प्रवेश किये।।
प्रभु की शोभा उस समय, अति न्यारी थी हो रही। कान्धे पर हाथी दन्त था, तन पे मद रक्त की बून्दें गिरीं।।

हाथी से युद्ध करके जैसे, अति श्रान्त थे वह हुए। स्वेद के ज्यों मोती चमके, उनसे सुन्दर मुख कमल पे।।

कृष्ण राम निज हाथों में, थे दोनों हाथी दाँत लिये। ज्यों बड़े बड़े दो शस्त्र ही, वहां सुशोभित थे हुए।।
कुछ ग्वाल बाल भी श्री प्रभु के, संग संग थे चल रहे। इस प्रकार बलराम सहित, रंगभूमि में कृष्ण चले।।

दोनों भाई ही मिलकर, रंगभूमि में पधारे जब। अपने अपने भाव के, अनुरूप ही दर्शन पाये सब।।
पहलवानों को श्री हरि का, तन दीखा वज्र हो ज्यों। जन जन के लिये नररत्न थे वह, नारिन् को लगा हों मदन ही ज्यों।।
गोपों को लगे वह अपने ही, दुष्टों के शासक दण्डदायक। मातु पितु सम वृद्धों को, दीखे वह अपने ही शिशुवत्।।
कंस को तो साक्षात् ही, निज मृत्यु रूप वह दीख पड़े। लगे विराट् अज्ञानियों को, हुए परम तत्त्व योगिन् के लिये।।
वृष्णि वंशियों को तो वह, निज इष्ट देव ही भास रहे। अपने अपने भाव से ही, विभिन्न रस अनुभव हुए।।
वैसे तो यह कंस अति, धीर वीर ही था राजन्। फिर भी जब देखा उसने, कुवलयापीड़ का हुआ हनन।।
तब उसने यह समझ लिया, अति कठिन है इनको जीतना। भय से काम्प उठा मन में, छूटा धैर्य भी था जितना।।

श्री कृष्ण और बलराम की, अजानुभुजा बहु लम्बी थी। वस्त्राभूषण पुष्पमाल, से थी वेश सुन्दर बनी।।
ऐसा आभास था हो रहा, ज्यों उत्तम दो नट हों आये। विचित्र वेश धारण करके, रंगभूमि में वह आये।।

इक बार नयन जो देखते, उनसे हट नहीं पाते थे। अपनी कान्ति से सबका, मन वह हरते जाते थे।।
इस भान्ति दोनों भाई, थे रंगभूमि में शोभायमान्। मंचों पर जो थे बैठे, मथुरा के नागरिक महान्।।
राष्ट्र के जन समुदाय को भी, जब कृष्ण राम के दरस हुए। प्रसन्न हुए चक्षु उनके, और मुख कमल भी खिल उठे।।
नेत्रों के द्वारा ही वह, मुख माधुरी पान थे कर रहे। किन्तु ऐसा करते करते, वह तृप्त नहीं थे हो रहे।।

ऐसा लगे नयनों से ज्यों, वह उनका पान ही कर रहे। जिह्वा से ज्यों चाट रहे, हों सूंघ रहे उन्हें घ्राण से।।
अपनी भुजाओं में बान्धी, ज्यों हृदय से उन्हें लगा रहे। सौन्दर्य गुण माधुर्य ने, और उनके निर्भयता ने।।
दर्शकों को उनकी लीला, के संस्मरण करा दिये। आपस में मिल जुल कर वह, उनकी बातें करने लगे।।
उनके सम्बन्ध में देखी सुनी, बातों की चर्चा करने लगे। कृष्ण राम के गुणों की, सब जन महिमा गाने लगे।।
नगरवासी बोले,
साक्षात् श्री नारायण के, यह दोनों ही अवतार हैं। इस धरती पर वसुदेव के, घर में रूप लिया धारण है।।
श्यामल सुन्दर यह कुमार, देवकी गर्भ से थे जन्मे। जन्मते ही वसुदेव ने, गोकुल में थे पहुंचा दिये।।
इतने दिनों तक छिपकर ही, वहां पे यह रहते रहे। नन्दराय के घर में ही, पलकर हैं यह बड़े हुए।।

तृणावर्त पूतना शंखचूड़ को, इन्होंने ही था मार दिया। केशि और धेनुकादि, दैत्यों का भी संहार किया।।
यमलार्जुन द्वौ यक्षों का, भी इन्होंने उद्धार किया। दावानल की ज्वाला से, गौ ग्वालों को बचा लिया।।

कालिय नाग का दमन कर, यमुना जल को अमृत किया। इन्द्र मान मर्दन के लिये, इन्होंने ही रची फिर नव लीला।।
सात दिनों तक एक हाथ पे, गोवर्धन को उठाया था। आन्धी वर्षा और वज्रपात से, गोकुल को बचाया था।।

इनकी मधुर मुसकान और, अति मधुर इस चितवन से। सदा एक रस प्रसन्न वदन, श्री मुख के दर्शन करके।।

गोपियां थीं रहतीं सदा, नित्य आनन्दित होकर के। अनायास मुक्त हो जातीं थीं, सब प्रकार के तापों से।।
सुना है यह यदुवंश अब, इनसे ही रक्षित होगा। विख्यात वंश यह इनसे ही, यश गौरव को प्राप्त होगा।।

इन्हीं के अग्रज दूसरे, कमल नयन बलराम हैं। किन्हीं किन्हीं से हमने सुने, कौतुक इनके भी महान् हैं।।
प्रलम्बासुर और वत्सासुर, बकासुर का इन हनन किया। गोकुल वासियों को इन्होने, इन सब दैत्यों से बचा लिया।।

७) चाणूर, मुष्टिक आदि मल्लों के साथ मल्लयुद्ध और उनका वध

शुकदेव बोले,
दर्शक यह चर्चा कर थे रहे, और तुरही के भी स्वर थे बजे। अखाड़े में चाणूर ने, सम्बोधित राम और कृष्ण किये।।
चाणूर बोले,
हे नन्द के पुत्रो कृष्ण राम, अति आदरणीय हो वीरों के। मल्लयुद्ध में महा प्रवीण हो, महाराज ने यह गुणगान सुने।।
तुम्हारे कौशल के दर्शन को, यहां पे है बुलाया तुम्हें। निपुणता निज दर्शा सको, इस आशय से सौभाग्य दिये।।

मन वचन और कर्म से, जो प्रजा प्रिय करे राजा का। प्रिय कार्य ऐसा करके, कल्यण ही होता है उसका।।
और इसके विपरीत ही, राजा का जो विरोध करे। हानि ही उसकी होए, उसका भला न हो सके।।

सब ही जानें यह सत्य तो, गाय और वत्स चरायें जो। प्रतिदिन जंगलों में जाकर, आनन्द से कुश्ती लड़ते वो।।
यह तो खेल ही है उनका, संग गाय चराते रहते हैं। इस विधि वह मल्लयुदध में, निपुण सहज हो लेते हैं।।

इसलिये अब आओ तुम, हमरे संग मल्लयुद्ध करो। राजा की प्रसन्नता ही, इस मल्लयुद्ध का हेतु हो।।
यह करने से सब नागरिक भी, हम पर प्रसन्न हो जायेंगे। क्योंकि वास्तव में तो राजा, प्रतिनिधित्व उनका ही करे।।

शुकदेव बोले,
श्री कृष्ण तो चाहते ही यह थे, इनसे युदध ही हो जाये। चाणूर की बातें सुनकर वह, अनुमोदन उसका करने लगे।।
देश काल अनुकूल फिर, कृष्ण ने यह बात कही। यह कथन राजन् उनकी, चाणूर को ही सम्बोधित थी।।

कृष्ण बोले,
हे चाणूर भोजराज की, हम भी हैं वनवासी प्रजा। जिनकी प्रसन्नता ही जानें, है निश्चित कर्त्तव्य हमरा।।
इसमें ही है कल्याण भी, किन्तु चाणूर हम हैं बालक। उनसे ही मल्लयुद्ध करें, जो हम समान ही हों बालक।।

मल्लयुद्ध तो समान बल, वालों में ही होना चाहिये। दर्शक और सभासद भी, अन्यान्य के भागी नहीं बनें।।
चाणूर बोला,
तुम और बलराम तो, न बालक हो न किशोर ही। श्रेष्ठ हो तुम बलवानों में, इसके दर्शन हैं हुए अभी।।
सहस्र हाथियों का निज में, कुवलयापीड़ था बल लिये। उसका हनन किया तुमने, जैसे कोई क्रीड़ा ही करे।।

इस कारण हम बलवानों से, यह युद्ध तुम्हारा उचित ही हो। नहीं असंगति इसमें कोई, आओ और अब युद्ध करो।।
हे कृष्ण तुम निज बल का, परीक्षण मुझपर ही को। और राम के साथ तो, लड़ना मुष्टिक का ही हो।।

शुकदेव बोले,
श्री भगवान ने राजन् तब, वध का निश्चित संकल्प किया। चाणूर आदि के हनन का, संयोग भी फिर बन गया।।
जब जोड़े बना दिये, श्री कृष्ण भिड़े चाणूर से। बलराम फिर मुष्टिक से ही, जाकर दो दो हाथ हुए।।

इक दूजे को जीतने की, इच्छा थी उनकी बनी। हाथों से बान्धे हाथ और, पैरों से पैर अड़ा ही दी।।
अपनी ओर दूजे को वह, बलपूर्वक थे खेंच रहे। पंजों से पंजे घुटनों से, थे उनके घुटने भिड़े।।
माथे से माथा लगा, और वक्ष:स्थल से वक्ष:स्थल। इक दूजे पर वे योधा, वार पे वार रहे थे कर।।

दांव पेंच करते करते, थे जोड़ीदार घुमा वह रहे। कभी जोर से जकड़ते थे, कभी दूर थे धकेलते।।
कभी लिपटते दूजे से, उठा के कभी पटक देते। कभी छूटकर निकलते, कभी छोड़ के पीछे हट जाते।।
इस भाँति इक दूजे को, कभी रोकना कभी होता प्रहार। सब यतन यह ही होते, निज प्रतिद्वन्द्वी को दें पछाड़।।
कभी कोई नीचे गिर जाता, दूजा घुटनों से उठा लेता। हाथों से पकड़ कर के, ऊपर उसे दूजा ले जाता।।
गले में जब कोई लिपटता, तो दूजा उसे धकेलता। हाथ पांव इकट्ठे कर, कोई गांठ थी उनकी बान्धता।।

इस मल्लयुद्ध के दर्शन को, थीं नगर की नारियां भी आईं। अन्याय युक्त यह चेष्ठा, उनके मन को न भाई।।
बड़े बड़े योधाओं से, अबोध बाल यह भिड़ाये गए। तब अलग अलग टोलियों में, वार्तालाप यह होने लगे।।
स्त्रियां बोली,
कंस के सभासद् यह, महा अधर्म हैं कर रहे। राजा के सम्मुख ही यह, कैसा अन्याय कर रहे।।
महाबली योधाओं से, शिशुओं को हैं लड़ा रहे। अहो खेद राजा सम्मुख, अनुमोदन इसका कर रहे।।

अरी देखी बहिन हर अंग अंग, इनका कठोर है वज्र सम। महापर्वत से है भास रहे, देखने में भी अति विषम।।
कृष्ण और बलराम तो, युवा भी अब तक नहीं हुए। हैं किशोर अभी दोनों, अति सुकुमार हैं अंग इनके।।
इन दोनों का किसी विधि, कहीं मेल न हो सके। जो भी इस युद्ध को देखे हैं, वह पाप के ही भागी होंगे।।
चलो सखी हमको भी अब, यहां से चलना चाहिये। अधर्म ही हो प्रधान जहां, नहीं वहां रहो यह शास्त्र कहे।।

सभासदों के दोषों को, जो बुद्धिमान् पुरुष जाने। शास्त्र कहें उस सभा में, वह कभी भी न जाये।।
क्योंकि वहां जाकर स्पष्ट ही, इन अवगुणों को कह देना। या अवगुण वह देख करी, मौन हुए बैठे रहना।।
अन्यथा अनजान सा, बन के वहां पे दिखलाना। यह तीनों ही बातें उसे, दोष का भागी देतीं बना।।

देखो देखो श्री कृष्ण के, शत्रु हैं पैंतरा बदल रहे। श्री कृष्ण के मुख पर भी, स्वेद के कण हैं झलक रहे।।
ज्यों कमल कोश के ऊपर ही, हों जल की बून्दें पड़ीं हुई। ठीक उसी विधि श्री हरि के, मुख कमल की शोभा है बनी।।

क्या देख रही हो तुम सखी, श्री बलराम के श्री मुख को? मुष्टिक के प्रति क्रोध से, नेत्र उनके रत्नारे हों।।
फिर भी हास्य का अनिरुद्ध, आवेग है मुख पे छाया हुआ। मुखारविन्द उसके कारण, इक नव आभा से है खिला।।

सच पूछो तो सखी मेरी, व्रजभूमि ही धन्य है। परम पावनी है वही नहीं उस सम कोई अन्य है।।
यह पुरुषोत्तम वहां पे ही, मनुज वेश में रहते हैं। श्री शंकर और लक्ष्मी स्वयं, जिन चरण की सेवा करते हैं।।

वही प्रभु वहां रंग रंग के, फूलों की माला पहनते हैं। धेनु चराते वंशी बजाते, संग बलराम विचरते हैं।।
भाँति भाँति के खेल यह, वहां पे रहकर करते हैं। ग्वाल बाल को संग लिये, नित नव क्रीड़ा करते हैं।।

न जाने कौन तपस्या उन, गोपिकागण ने थी करी। नेत्रों को पात्र बनाकर के, रूप माधुरी पी हैं रही।।
इनके रूप के क्या कहने, सब लावण्य का सार है ज्यों। नहीं समान इनके कोई, बढ़कर हो सके कोई फिर क्यों?
हैं स्वयं सिद्ध ही रूप वह, नहीं आश्रित वस्त्राभूषण पे। इनके रूप को देख के, नयना यह तृप्त नहीं होते।।
कभी भी मन न भरे इससे, नित नव नूतन यह रहे। सौन्दर्य यश और ऐश्वर्य, हैं सब इन्हीं के आश्रित रे।।
किन्तु सखियो इसका दर्शन, है अति दुर्लभ अन्य को। उसके दर्शन का सौभाग्य, तो बस मिले गोपियों को।।

धन्य हैं व्रज की गोपियां, निरन्तर चित्त रहे कृष्ण में। हृदय हो प्रेम से परिपूर्ण, असुअन् से गद्गद् कण्ठ रहे।।
इनकी ही लीलाओं का, निरन्तर गान वह किया करें। दूध दुहें या दधि मथें, धान कूटें या घर लीपें।।
झूला बालक को वह दें, या रोते को चुप करवायें। उन्हें नहला कर स्वच्छ करें, या घर की झाड़ बुहार करें।।
क्या क्या गणना करें कामों की, वे जिस भी काज में लगी रहें। निरन्तर ही वह कृष्ण के, गुण गान में मस्त रहें।।

प्रात: कृष्ण व्रज से जब, धेनु चराने वन जायें। और सायंकाल उन्हें लेकर के, व्रज में वापिस जब आ जायें।।
अति मधुर स्वरों में श्याम, बांसुरी वादन करने लगें। सुनकर उसे गोपियां सब, घर के काम काज छोड़ें।।
राह में दौड़ी वह आयें, देखें कमल मुख श्याम का। निहाल हों मन्द मुसकान देख, करूणापूर्ण मुखड़ा उनका।।
सचमुच ही यह गोपियां, पुण्यवती हैं बहुत ही। कृष्ण में इनका चित्त रहे, हर क्षण और अहर्निश ही।।

शुकदेव बोले,
पुरवासिनी नारियां, बातें थीं इस विधि कर रहीं। उसी समय हे भरतश्रेष्ठ, प्रभु निश्चय कीनी कंस वध की।।
भयभीत हुईं स्त्रियां जब, चर्चा यह थीं कर रहीं। वसुदेव देवकी के कानों, भी उनकी यह बातें पड़ी।।
पुत्र स्नेह के कारण वह, व्याकुल और अधीर हुए। उनके हृदय अति व्यथित थे, पीड़ा से वह काम्प उठे।।
निज पुत्र के बल वीर्य को, वह तो न पहचाने थे। वह तो उसको साधारण सा, अपना पुत्र ही माने थे।।

भगवान कृष्ण और उनसे भिड़ा, महाबली चाणूर जो था। विभिन्न दाव पेंचों का, प्रयोग था वहां हो रहा।।
परस्पर वह थे भिड़े हुए, बलराम थे मुष्टिक से भिड़े। उसी विधि उससे भी वह, थे अपने पैंतरे बदल रहे।।

श्री कृष्ण के अंग अंग तो, थे व्रज से भी कठोर हुए। उनके घर्षण से चाणूर, की रग रग ढीली पड़े।।
बार बार उसे लग था रहा, ज्यों तन के बन्धन टूट रहे। ग्लानि थी वहां उठ रही, अति व्यथित थे मन हुए।।

अति क्रुध वह होकर के, अब बाज की भाँति झपट पड़ा। श्री कृष्ण वक्ष पे किया प्रहार, दोनों हाथों की मुष्ठि बना।।
किन्तु उसके प्रहार से, प्रभु तनिक प्रभावित नहीं हुए। जैसे फूलों की मार कभी, गजराज को विचलित नहीं करे।।

चाणूर की दोनों भुजा, श्री कृष्ण ने पकड़ लीं। अन्तरिक्ष में घुमाया तन, धरती पर पुन: जा पटकी।।
श्री कृष्ण के घुमाते ही, थे प्राण पखेरु उसके निकले। अस्त व्यस्त सब वस्त्र हुए, माला केश सब बिखर गए।।
वह धरती पर ऐसे गिरा, ज्यों इन्द्र ध्वजा गिरे कोई। जीवन लीला चाणूर की यूं, प्रभु के हाथों से खत्म हुई।।

मुष्टिक ने भी पहले तो, घूसा बलराम को दे मारा। महाबली दाऊ ने तब, उसे एक तमाचा दे मारा।।
उनका प्रहार खाकर वह तो, तन मन से इस विधि काँप उठा। ज्यों मूल सहित भूमि से ही, वृक्ष हो कोई उखड़ गया।।
अति व्यथित वह था हुआ, अन्त में प्राण निकल गए। रक्त वमन से निकले प्राण, तन धरती पर जाय गिरे।।

तत्पश्चात् कूट नामक, योधा सम्मुख उनके आया। बलधाम श्री राम ने, खेल खेल में उसे मारा।।
वाम हस्त से घूंसा दे, उपेक्षा से मारा उसे। प्राण पखेरु तत्क्षण ही, साथ उसका छोड़ गए।।

श्री कृष्ण ने पाद की ठोकर से, शल का सीस गिरा दिया। फिर तोशल को भी चीर के, तृणवत् दो भाग में बांट दिया।।
दोनों योधा ही इस भाँति, धराशायी हो गए। बलस्रोत श्री कृष्ण सम्मुख, खड़ा कौन कभी रह सके?
चाणूर मुष्टिक कूट शल, तोशल पांचों महाबली गए। शेष बचे सब पहलवान, डर के वहां से भाग गए।।

तब कृष्ण और बलराम मिली, खेल नया करने लगे। सखा ग्वालों को खेंच कर, भिड़ने की लीला करने लगे।।
भेरी ध्वनि संग नाच नाच, नूपुर अपने वह बजाने लगे। मल्लक्रीड़ा के नए खेल, प्रभु इस विधि रचाने लगे।।

अति आनन्दित हुए सभी, उनकी अद्भुत लीला देखी। श्री कृष्ण और बलराम की, विस्मयकर यह क्रीड़ा देखी।।
साधुजन और ब्राह्मण मिली, धन्य धन्य कहने लगे। मुक्त कण्ठ से दोनों की, प्रशंसा वह करने लगे।।
किन्तु कंस यह देख कर, अति व्यथित था हो गया। अपनी हार यह देख कर, क्रोध था उसका भड़क गया।।

८) कंस वध

कंस बोला,
सभी मुख्य योधा मरे, और बचे थे जो वह भाग गए। भोजराज कंस ने तब, वाद्य गान सब बन्द किए।।
अपने सेवकों को उसने, फिर उच्च स्वर में आज्ञा दी। वसुदेव के दुष्ट पुत्र यह, करो नगर से दूर अभी।।
गोपों का धन सब छीन लो, और नन्द को भी कैद करो। वसुदेव भी है दुर्बुद्धि बड़ा, उसको भी शीघ्र ही मार दो।।
उग्रसेन मेरे वृद्ध पिता, है शत्रुन के साथ मिला। उसको भी जीवित नहीं, अब छोड़ना तुम कदा।।

इस विधि ऊंचे स्वर में, बकवाद कंस था कह रहा। अविनाशी कृष्ण को उसकी इन, बातों ने अति कुपित किया।।
अति वेग से कूदकर, वह ऊंचे मंच पे जा चढ़े। उनके अंग अंग उस पल, थे नव स्फूर्ति से भरे।।
निज मृत्यु रूपा कृष्ण को, जब देखा अपने सामने। सिंहासन त्यजी वह हुआ खड़ा, कर में ढाल तलवार लिये।।

कर में तलवार को लिये हुए, वह पैंतरे अपने बदले था। चोट कृष्ण पे कैसे करे, यह अवसर था ढूंढ रहा।।
कभी दांये कभी बांये जाता, आकाश में जैसे बाज उड़े। किन्तु प्रभु के प्रचण्ड वेग, के सामने न वह टिक सके।।
ज्यों गरुड़ सर्प को पकड़ ले, और तनिक भी न उसे हिलने दे। उसी विधि श्री कृष्ण भी, बलपूर्वक थे उसे पकड़े हुए।।

मुकुट गिर गया कंस का, प्रभु ने उसे केशों से पकड़ा। ऊंचे मंच से फिर उसको, रंगभूमि में दिया गिरा।।
पूर्ण जग के हैं आश्रय स्वयं, और परम स्वतंत्र हैं जो। उसके ऊपर कूद पड़े, श्री कृष्ण भगवान वो।।

उनके इस विधि कूदते ही, कंस के प्राण पखेरु उड़े। सबके सामने उसका शव, धरती पे थे वह घसीट रहे।।
ज्यों कोई महाबली सिंह, हाथी का शव हो खेंच रहा। हाय हाय की ध्वनि का फिर, हे राजन् महानाद हुआ।।

कंस भी घबरा के नित्य, कृष्ण का चिन्तन करता था। खाते पीते सोते चलते, और सांस भी जब वह लेता था।।
हाथ में चक्र लिये हर क्षण, श्री कृष्ण को ही वह निरखता था। द्वेष भाव से ही सही, उसका यह सब चिन्तन हुआ।।
फिर भी फल स्वरूप इसके, सारूप्य मुक्ति वह पा गया। कठिन है महायोगी तपी जन्, के भी लिये जिसको पाना।।

कंक और न्यग्रोधादि, आठ अनुज थे कंस के। अपने अग्रज के वध पे, वे क्रोध से आग बबूला हुए।।
प्रतिकार लेने के लिये, वे कृष्ण राम पर झपट पड़े। बलराम ने जब देखा उन्हें, अति वेग से आते हुए।।
तब परिघ उठाकर उन्होंने, उनपर यूं प्रहार किये। उनको मार दिया ऐसे, ज्यों सिंह पशुओं का हनन करे।।

आकाश में फिर दुन्दुभियों का, महानाद होने लगा। प्रभु के विभूति रूपा ही, ब्रह्मा शंकर सब देवता।।
आनन्दित हो आकाश से, पुष्पों की वर्षा करने लगे। अप्सरा गण थीं नाच रहीं, स्तुति गान उनका होने लगे।।

कंस और उनके अनुजों की, स्त्रियां सब अति व्यथित थीं। स्वजन की मृत्यु के दु:ख को, वे भला कैसे सहतीं?
आंखों में आंसू भरे, सीस को थीं वह पीट रहीं। राजमहल से निकल कर, वह उस स्थल पर आ पहुंचीं।।
वीर गति को प्राप्त हुए, पतियों का आलिंगन किया। शोक ग्रस्त थीं अश्रुपूर्ण, उच्च स्वरों में विलाप किया।।

कंस पत्नियां बोली,
हा नाथ हा प्राणप्रिय, हा करुणामय हा धर्मज्ञ। हे अनाथ वत्सल प्रभु, यह मत्यु नहीं है केवल तुम्हारी।।
हम सबकी ही मृत्यु हुई, हम सबके घर ही उजड़ गए। सन्तान हमारी अनाथ हुई, आश्रय हीन हम हो गए।।

इस पुरी के स्वामी आप ही थे, हे वीरवर हे पुरुषश्रेष्ठ। उतरे सब इसके मंगलचिह्न, समाप्त हुए उत्सव विशेष।।
हमारी भाँति नगरी भी यह, नाथ हीन ही हो गई। हम विधवाओं के समान ही, सारी शोभा इसकी गई।।
निरीह प्राणियों के प्रति, घोर द्रोह किया आपने। निज अन्याय के कारण ही, इस गति को आप हैं प्राप्त हुए।।
सत्य है शास्त्रों का कहना, जो जन जीवों से द्रोह करे। उनका अहित करने वाले, पुरुष शान्ति कैसे पा सकें?

भगवान कृष्ण तो जगत् की, उत्पत्ति प्रलय के आधार हैं। यह ही रक्षक भी हैं सबके, इनकी रचना संसार है।।
जो इनका बुरा चाहे कभी, इनका जो तिरस्कार करे। नहीं सुखी कभी हो सके, यह तो सृष्टि का नियम रहे।।
शुकदेव बोले,
हे राजन् श्री कृष्ण ही हैं, सब जग के जीवन दाता। उन रानियों को भी कृष्ण ने, ही ढाढस तब बन्धवाया।।
फिर लोक रीति अनुसार ही, करवाया सब क्रिया कर्म। मृतकों के प्रति जो थे उचित, करवाये वे सारे धर्म।।

तत्पश्चात् श्री कृष्ण और, बलराम गए कारागृह में। निज मात पितु सब बन्धन से, उन्होने जा फिर मुक्ति किये।।
अपने सीस से दोनों का, चरण स्पर्श फिर उन्होने किया। किन्तु मात पिता के तो, हृदय में था इक संशय भरा।।
जगदीश्वर जानी उन्हें, नहीं कण्ठ से उन्हें लगा से। सोचें वह कैसे मानें पुत्र, यह तो हैं जगदीश्वर ठहरे।।

९) कृष्ण और बलराम का यज्ञोपवीत संस्कार और गुरु सांदीपन के आश्रम में विद्याध्ययन

शुकदेव बोले,
श्रीकृष्ण ने जब देखा, मम मातु पितु को ज्ञान हुआ। भगवद्भाव ऐश्वर्य मेरे, का उनको अनुमान हुआ।।

किन्तु नहीं है उचित यह, कैसे यह पुत्र सुख पायेंगे? ऐसा सोच के प्रभु ने फिर, योगमाया विस्तार किये।।
उनके अपने जनों को यह, मन्त्र मुग्ध ही रख करके। श्री हरि की लीला में ही, सहायक उनकी बनी रहे।।

यदुश्रेष्ठ श्री कृष्ण ने फिर, निज अग्रज राम को साथ लिया। माता पिता के पास जा, विनम्रता से प्रणाम किया।।
हा मेरे पितु मेरी माता, इस विधि सम्बोधन करने लगे। प्रिय वचन यह कही उन्हें, उनके मन को हरने लगे।।

कृष्ण बोले,
हे मातु पितु हम तो हैं, आपके अपने पुत्र ही। रहे आप हमारे लिये, सर्वदा उत्कण्ठित ही।।
बाल्य पौगण्ड और किशोर, अवस्थाएं हमारी गईं। उनकी सुख हे जननी जनक, नहीं आपको मिल पाई।।
दैववश हम आपके, निकट रह ही नहीं सके। इस कारण ही आपके, लाड दुलार न पा सके।।

पिता और माता ही इस, तन को जन्म दें जगत् में। वह ही तो शैशव काल से, इसका पालन पोषण करें।।
तभी तो यह तन धर्म अर्थ, या काम मोक्ष साधन करे। सौ वर्ष भी सेवा करे कोई, उस ऋण से मुक्त न हो सके।।

सामर्थ्य के रहते भी जो पुत्र, नहीं मात पिता की सेवा करे। अपना तन धन सब देकर, सुश्रूषा जो उनकी न करे।।
तन मृतक हो जाने पर, बहुत यातना उसको मिले। यमदूत अपने तन का, मांस ही भक्षण को उसे दें।।

समर्थ होकर भी जो पुरुष, निज माता पिता को न देखे। सती पत्नी बालक सन्तान, गुरु ब्राह्मण की सेवा न करे।।
शरणागत का भरण पोषण, जो जीव नहीं करता है। जीता हुआ भी मृतक है वह, उसका जीवन किस काम का है?

उद्विग्नचित्त हम थे हुए, दुष्ट कंस के भय से। आपकी सेवा इस कारण, नहीं इतने दिन हम कर सके।।
आपकी सेवा के बिना, व्यर्थ ही इतने दिन गये। हे मातु पितु अपराध यह, आप हमारा क्षमा करें।।
कितने दु:ख दिये आपको, महापापी उस कंस ने। परतंत्र थे हम इस कारण, नहीं आपकी सेवा कर सके।।

शुकदेव बोले,
लीलामात्र ही मनुज बने, विश्वात्म हरि की वाणी ने। मोहित किये मातु पितु, निज गोद में उन्होने कृष्ण लिये।।
हृदय से उन्हें लगाकर के, परमानन्द को प्राप्त किया। प्रभु के स्पर्शन् ने उनका, सारा दु:ख सन्ताप हरा।।

स्नेहपाश में बन्धकर के, पुन: राजन् वह मोहित हुए। अश्रुधारा से उन्होने, श्री हरि के अभिषेक किये।।
आंसुओं ने फिर उनके, कण्ठ को भी अवरुद्ध किया। इस कारण कोई वाक् भी न, उनके मुख से निकल सका।।

देवकी नन्दन कृष्ण ने, यूं मात पिता को ढारस दी। तत्पश्चात् अपने नाना, उग्रसेन की उन सुध ली।।
यदुवंशियों का उन्हें, राजा पुन: बना दिया। हम प्रजा आपकी हैं महाराज, हम पर हो शासन आपका।।
ययाति ने था शाप दिया, यादव न सिंहासन पर बैठें। पर मैं जब आपकी सेवा करूं, तो देव भी सीस झुका ही दें।।
दूजे राजाओं की तो, बात ही फिर हम क्या करें। सर्वश्रेष्ठ यदुवंशी आप, अब सिंहासन ग्रहण करें।।

श्री कृष्ण विधाता हैं सबके, हे राजन् तुम जान लो। जो भी गये थे इधर उधर, कंस के भय से व्याकुल हो।।
यदुवंशी अन्धक और मधु, दशार्ह कुकुर आदि वंशज। सब सजातीय बान्धन को, बुलवाया ढूंढ ढूंढ कर।।

घर से बाहर रहकर के, क्लेश थे सब उठा चुके। श्री हरि ने उन्हें सान्त्वना दी, और उनके सत्कार किये।।
धन सम्पद् उनको देकर, श्री हरि ने उन्हें तृप्त किया। अपने अपने घरों में फिर, सबको पुन: बसा दिया।।

श्री राम कृष्ण के भुजबल से, सुरक्षित सब यदुवंशी हुए। उनकी कृपा से किसी विधि, दु:ख कष्ट उन्हें कोई न थे।।
सफल मनोरथ सब हुए, कृतार्थ सब ही हो गए। अपने अपने घरों में सब, आनन्द से रहने लगे।।

श्री भगवान का मुख कमल, है आनन्द का सदन ही। नित्य प्रफुल्लित वह रहे, और न कुम्हलाए कभी।।
उनका सौन्दर्य अपार है, दया वहां सदा वास करे। करुणामय चितवन उसपर, मानो सदा ही नृत्य करे।।
प्रतिदिन उसका दर्शन पा, यदुवंशी अति आनन्दित थे। इस भाँति दु:ख और भय, उनके थे सारे दूर हुए।।

सारे वृद्ध भी मथुरा के, मानो युवा थे हो गए। बल और साहस ने उनके, जैसे हों डेरे किए।।
कारण इसका एक ही था, निज नयनों को पात्र बना। प्रभु के मुख मरकन्द का, अमृत रस पान वह करते सदा।।
कृष्ण बलराम दोनों ही, अब नन्दबाबा के पास आये। गले लगाकर उनको फिर, अति प्रेम पूर्ण यह वचन कहे।।

बलराम बोले,
मैया ने और आपने, बहुत प्रेम से पाला पोसा हमें। माता पिता निज सन्तति पर, निज तन से अधिक ही स्नेह करें।।
नहीं तनिक सन्देह इसमें, हैं आप ही मातु पितु हमरे। पाल पोस गर नहीं सकें, बन्धु और बान्धव त्याग करें।।
उन बालकों को जो जन, निज पुत्र समान ही प्यार करें। वही हैं माता पिता उनके, सत्य बात यह जान लें।।

हे पितु आप व्रज में जायें, मैय्या को धीरज बन्धनवायें। वात्सल्य स्नेह के कारण वह, हमरे बिना न जी पायें।।
हम जानें इस सत्य को, पर अभी संग न आ पाएं। यहां के बान्धव जन के प्रति, कर्त्तव्य निभाना अब चाहें।।
इन सबको सुखी करके, हम आपको मिलने आयेंगे। आपके और मैय्या के, हम दु:ख सन्ताप मिटायेंगे।।
शुकदेव बोले,
नन्दबाबा और दूसरे, व्रजवासियों को यूं समझाया। सादर वस्त्राभूषण दे, उनका बहुत सत्कार किया।।
विविध भाँति की धातुन् के बर्तन भी उनको दिये। अनेक विधि उपहार दे, कृष्ण ने निज स्नेह प्रकट किये।।

प्रभु की बातें सुनकर, नन्दबाबा अति अधीर हुए। दोनों भाई ही उन्होने, अपने गले लगा लिये।।
नेत्रों में आंसू भरी, गोपों सहित वह चल दिये। इस भाँति नन्दबाबा ने, व्रज के लिये प्रस्थान किये।।

तत्पश्चात् कुल पुरोहित, गर्गाचार्य को बुलवाया। अन्य ब्राह्मणों को भी संग, इस आशय से बुलवाया।।
विधिवत् दोनों पुत्रों का, उपनयन संस्कार किया। द्विजाति के अनुकूल ही, यज्ञोपवीत धारण किया।।

विविध विधि के वस्त्र और, आभूषणों से सत्कार किया। बहुतेरी दक्षिणा दी उनको, धेनु वत्सों का दान दिया।।
सब धेनुन् ने स्वर्णमाल, गले में थीं पहनी हुईं। रेशम के वस्त्र सुन्दर गहनों, से वह गाएं विभूषित थीं।।

श्री राम कृष्ण के जन्म पे, जो भी था संकल्प किया। मन ही मन जितनी भी, धेनु दान का था सोचा।।
कंस ने अन्यायपूर्वक, था पहले सब छीन लिया। वसुदेव ने उसे याद कर, पुन: दान में उन्हें दिया।।

यदुवंशाचार्या गर्ग ने, जब इस विधि संस्कार किया। बलराम और श्री कृष्ण ने, द्विजत्व को प्राप्त किया।।
अखण्ड था उनका ब्रह्मचर्य, सहज ही स्वभाव से। अध्ययन हेतु गायत्री पूर्वक, नियम सभी स्वीकार किये।।

श्री कृष्ण और बलराम ही, हैं स्वामी इस जगत के। वे तो सदा सर्वज्ञ हैं, विद्यायें सब उनसे निकलें।।
स्वत: सिद्ध ही रहे सदा, उनका निर्मल नित्य ज्ञान। मनुष्य की सी लीला करके, छिपा लिया उन्होने वह ज्ञान।।
गुरुकुल में निवास के, अब इच्छुक दोनों बनें। सन्दीपनी ऋषि के पास वह, अवन्तीपुर में चले गए।।

विधि पूर्वक दोनों भ्राता, पास गुरु के रहने लगे। नियमित चेष्टायें थीं उनकी, और कर्म सब संयत थे।।
श्री गुरुदेव तो कृष्ण राम, का आदर बहुत करते थे। श्री कृष्ण और बलराम ने भी, आदर्श बन व्यवहार किये।।
कैसे हो उत्तम सेवा, सबको वह दर्शाने लगे। भक्ति पूर्वक उन्हें इष्ट मान, वह उनकी सेवा करने लगे।।

शुद्ध भाव से उनकी सेवा, गुरु सन्दीपनी ने पाई। अति प्रसन्न हुए ऋषिवर, दोनों को पूर्ण शिक्षा दी।।
छ: अंग और उपनिषद् सहित, सारे वेद पठा दिये। अतिरिक्त मन्त्रों और देवों, के भी उनसे ज्ञान कहे।।
धनुर्वेद मनु: स्मृति आदि, धर्म शास्त्र मीमांसा जो। तर्क विद्या आदि देकर, सम्पन्न द्वौ भ्राता कियो।।
छ: भेदों से युक्त जो, राजनीति अध्ययन किया। सन्धि विग्रह मान आसन, द्वेष और आश्रय नाम उनका।।

बलराम और श्रीकृष्ण तो हैं, सब विद्याओं के स्त्रोत ही। श्रेष्ठ पुरुष का सा व्यवहार, कर अध्ययन आरम्भ करी।।
गुरुजी ने बस एक बार, कथन मात्र विद्या की करी। उन्होंने तत्क्षण ही सारी, विद्यायें पल में सीख लीं।।

अति संयमी थे दोनों भाई, केवल चौंसठ दिन रात में। चौंसठ कलाओं के पूर्ण, ज्ञान उन्होंने प्राप्त किये।।
अध्ययन समाप्त किया इस विधि, सन्दीपनी ऋषि से फिर बोले। इच्छानुसार ही गुरुदेव, अब आप दक्षिणा मांग लें।।

ऋषि ने उनकी अद्भुत प्रतिभा, अलौकिकता का दरस किया। निज भार्या से सम्मति ली, और फिर उनको जाय कहा।।
प्रभास क्षेत्र में पुत्र हमारा, सागर में था डूब गया। गर सम्भव हो तो उसको ही, दो अब तुम हमको लौटा।।

बलराम और कृष्ण का, पराक्रम तो था अपरम्पार। महारथी थे वे दोनों, गुरु आज्ञा उन की स्वीकार।।
रथ पर सवार होकर दोनों, प्रभास क्षेत्र की ओर चले। सागर तट पर पहुंच कर, क्षण भर वह बैठे रहे।।
उनको परमेश्वर जानकर, तब सागर भी सम्मुख आया। अनेक भाँति की सामग्री, पूजा में चढ़ाने वह लाया।।
प्रभु ने फिर सागर से कहा, अपनी विशाल तरंगों में। जिस विधि बहाया गुरु पुत्र, उसी विधि वापिस कर दे।।

समुद्र बोला,
देवादिदेव श्री कृष्ण हे, नहीं लिया वह शिशु मैंने। असुर जाति का महादैत्य, धरी शंख रूप रहे जल में।।
पञ्चजन् नामक दैत्य ने ही, चुराया वह बालक होगा। निश्चित ही यह कर्म तो, उसने ही किया होगा।।

शुकदेव बोले,
सागर की बात सुनकर प्रभु, तुरन्त ही जल में जाय घुसे। शंखासुर का हनन किया, किन्तु बालक वहां नहीं मिले।।
उस दैत्य के उदर में, वह बालक उन्हें नहीं मिला। उसका तन रूपा शंख ले, पुन: रथ आरोहण प्रभु किया।।

वहां से वह बलराम सहित, यम की पुरी संयमनी गए। यम की प्रिय पुरी में जा, शंखनाद उन्होंने किए।।
सारी प्रजा के शासक, यम ने शंख का स्वर सुना। विधिवत् स्वागत किया प्रभु का, भक्ति भाव से फिर पूजा।।
हैं सब जीवों के हृदय स्थित, सच्चिदानन्द स्वरूप उनका। विनम्रता से झुकाया सीस, श्री कृष्ण से फिर कहा।।
लीलामात्र ही आपने, यह मनुज रूप धारण किया। आज्ञा आप दें अब प्रभु, क्या करूं आपकी मैं सेवा?
कृष्ण बोले,
निज कर्म चक्र अनुसार ही, मेरे गुरु पुत्र यहां लाया गया। हे यमराज इस पल ही तुम, स्वीकार करो मेरी आज्ञा।।
उसके कर्म पे ध्यान न धर, मेरे पास उसे ले आओ। गुरु दक्षिणा देने में, तुम मेरा सहयोग दो।।
शुकदेव बोले,
यमराज ने जो आज्ञा कहकर, भागवत आदेश स्वीकार किया। गुरुपुत्र उनका लाकर, उनको ही लौटा दिया।।
यदुश्रेष्ठ कृष्ण और राम उसे, लेकर उज्जैन को लौट आये। गुरु चरण में जाकर के, उनके पुत्र फिर सौंप दिये।।
पुन: कहा हे गुरुदेव, कुछ और भी चाहें तो मांगें। गुरु दक्षिणा आपकी, चरण में हम तत्क्षण लायें।।
गुरु बोले,
तुम दोनों ने भली भाँति, गुरु दक्षिणा अपनी दी। और मुझे अब क्या चाहिए, सब कामना मेरी पूरी हुई।।
तुम जैसे नरोत्तम शिष्य, जब मुझे हैं प्राप्त हुए। फिर कौन मनोरथ ऐसा मेरा, अधूर्ण जो कभी रह सकें?

हे वीरो अब तुम दोनों, निज घर को प्रस्थान करो। लोकपावनी कीर्ति को, तुम दोनों ही प्राप्त करो।।
जो विद्या है तुमने पढ़ी, नवीन सदा वह बनी रहे। इह लोक और परलोक में, विस्मृति उसकी न होए।।
शुकदेव बोले,
फिर गुरु से आज्ञा लेकर, दोनों भाई मथुरा लौटे। वायुसम वेगवान् वह रथ, मेघ सा शब्द थे कर रहे।।
श्री कृष्ण राम के दर्शन से, थी वंचित मथुरा की प्रजा। उनके वियोग से सबका हृदय, दीन हीन और व्यथित था।।
पुन: उन्हें आया देख, सब परमानन्द में खो गए। जैसे खोया हुआ कोई धन, उनको पुन: ही प्राप्त भए।।

१०) श्रीकृष्ण की आज्ञा से उद्धव का व्रज गमन

शुकदेव बोले,
श्री उद्धव थे हे राजन्, वृष्णी वंशियों में प्रधान। साक्षात् बृहस्पति शिष्य थे, वह थे परम बुद्धिमान्।।
उनकी महिमा की राजन्, सर्वोत्तम बात यह जान ले। थे कृष्ण सखा प्रिय मन्त्री, इससे बढ़कर हम क्या कहें?
कृष्ण बोले,
शरणागत वत्सल कृष्ण तो, सबका ही दु:ख दूर करें। एकान्त प्रिय सखा उद्धव, का कर अपने कर में ले।।
प्रेम से फिर उसको कहा, हे सौम्य तू मेरी बात सुनो। मेरा सन्देशा लेकर के, अब तुम व्रज की यात्रा करो।।
नन्दबाबा मेरे पिता, और यशुमति मैय्या वहां पे हैं। आनन्दित उनको तुम करो, मेरे बिना बहु दु:खी वे हैं।।
मेरी विरह व्याधि से, गोपिकागण अति पीड़ित हैं। वेदना दूर करो उनकी, सन्देस मेरे की इच्छुक हैं।।

नित्य निरन्तर उनका मन, मुझमें ही है रमा रहता। जीवन प्राण सर्वस्व हूं मैं, हर स्वास यह उनका है कहता।।
पति पुत्र बन्धु बान्धव, उन मेरे लिये सब छोड़ दिये। मुझको निज प्रियतम ही नहीं, अपना आत्म थीं वे मानें।।

है मेरा व्रत यह जानो तुम, सत्य ही तुमसे कहता हूं। जो मेरे लिये त्यजें सब धर्म, उनका पोषण मैं करता हूं।।

मैं ही हूं परम प्रियतम उनका, हे उद्धव उनका भाव यही। यहां चला आया हूं मैं, दूरस्थ हैं मुझको मान रही।।
मुझे याद कर कर के वे, अति मोहित हैं हो रही। बार बार मूर्छित होएं, विरह में विह्वल हो करी।।
हर क्षण ही वह गोपियां, उत्कण्ठित मेरे लिये रहें। अति कष्ट में हैं वे सब, मेरी प्रेयसियां जान ले।।
जिस किसी भी भाँति वे, निज प्राणों को हैं रोके हुए। मैं आऊंगा यह वचन थे, आने से पहले उन्हें कहे।।
यही वनच मेरा जान लो, उनका जीवन आधार है। मैं ही आत्मा हूँ उनका, यह ही उनके जीवन सार है।।
नित्य निरन्तर हे उद्धव, वे मुझमें ही तन्मय रहें। स्वास स्वास से वह हर पल, मेरा ही सिमरन् किया करें।।
शुकदेव बोले,
हे राजन् जब कृष्ण ने, उद्धव से यह बात कही। बहुत आदर से उद्धव ने, आज्ञा यह स्वीकार करी।।
निज स्वामी का संदेशा ले, रथ पे वह सवार हुए। नन्दगांव की ओर ही, अश्व थे रथ के चल दिये।।

सूर्यास्त होते होते, वह नन्द के व्रज में जा पहुंचे। गोधूलि का समय था वह, वन से गौ वत्स थे लौट रहे।।
पद आघात उन चरणों का, धूलि थी इतनी उड़ा रहा। उद्धव का रथ उस धूलि से, ही मानो था ढका गया।।

ऋतुमति गौओं के लिये, साण्ड भी थे मतवाले हुए। आपस में वह लड़ थे रहे, वा गर्जना से सब व्रज गूंजे।।
नव ब्याईं गाएं अपने, बछड़ों की ओर थीं दौड़ रहीं। थनों के भारी होने से, गति तीव्र न हो सकी।।

श्वेत वत्स थे इधर उधर, उछल कूद मचा रहे। क्रीड़ायें करते हुए, थे सबके मन वह भा रहे।।
गाय दुहने की ध्वनि, थी घर घर में गूंज रही। वंशी की मधु टेर से, व्रज की शोभा अपूर्व बनी।।

गोपियां और गोप सभी, वस्त्र आभूषणों से सजे। श्री कृष्ण और बलराम के, मंगल चरित थे गा रहे।।
इससे व्रज की शोभा भी, अति न्यारी थी हो रही। घर घर में नित पूजन की, थी तैयारी हो रही।।
अग्नि सूर्य अतिथि गौ, ब्राह्मण देव पितर् पेजे। घर घर में दीपक थे जले, धूप से सुरभित सब घर थे।।
फूलों से उन घरों को, था सुन्दर सजाया गया। सारा व्रज इन सब कारण, था अति मनोहर हो रहा।।

चहुं ओर वन पंक्तियां थीं, फूलों से ही लद रहीं। पक्षी थे वहां चहक रहे, और भंवरों की गूंज मची।।
जल और स्थल दोनों में ही, थे कमल दल खिल रहे। हंस और बत्तख आदि, वन में विहार थे कर रहे।।

कृष्ण के प्रिय अनुचर उद्धव, नन्दगांव में जब आये। उनसे मिली नन्दबाबा तो, अति मुदित ही हो गए।।
गले लगाकर उनको फिर, वैसा ही सम्मान दिया। मानो भगवान कृष्ण ही, स्वयं पधारे हों वहां।।

उत्तम अन्न का भोजन, उन्हें कराया समय पर। भोजन कर विश्राम को, जब बैठे वह पलंग पर।।
सेवकों ने चरण चापन, तब श्री उद्धव का किया। किसी ने पंखा करके उन्हें, श्रम उनका सारा हरा।।
नन्द बोले,
तब नन्दबाबा ने पूछा, हे भाग्यवान उद्धव कहें। वसुदेव मेरे प्रिय सखा, सुख से तो हैं न कहें।।
कारागृह से छूट के अब, स्वजन सुत आदि संग वह हैं। आप ही अब समाचार दें, वे सब क्या कुशल से हैं?

निज पापों के फल स्वरूप, पापी कंस वह मारा गया। अति सौभाग्य की बात है यह, उसके अनुचरों का संहार हुआ।।
स्वभाव से ही परम साधु, यदुवंशियों से उसे द्वेष था। धर्म विरोध के कारण ही, उसका ऐसा अन्त हुआ।।

अच्छा उद्धव जी यह तो कहें, क्या कृष्ण कभी हमें याद करें? यह मैय्या बन्धु बान्धव, सखा गोप सब यहां रहें।।
यह व्रज उन्हें ही स्वामी कहे, सर्वस्व भी माने उनको ही। वृन्दावन धेनु उन्हीं के हैं, उनका ही है गोवर्धन भी।।

यह तो कहें अपने गोविन्द, क्या आयेंगे कभी यहां? अपने सुहृद् बन्धु बान्धव, को एक बार भी मिलेंगे क्या?
इक बार यदि वह आ जाते, मुख कमल के दर्शन हम पाते। सुघड़ नासिक मधुर हास्य, मनहर चितवन चित्त हर जाते।।

अति उदार हैं श्री कृष्ण, उनकी शक्ति अनन्त है। अनेकों बार बचाया हमें, वह तो श्री भगवन्त हैं।।
दावानल से रक्षा कर, आन्धी पानी से रक्षा की। वृषासुर और अजगर आदि, बने मृत्यु के निमित्त सभी।।
इनसे बच पाने का तो, उपाय कहीं कोई न था। बार बार श्री कृष्ण ने ही, रक्षण इनसे हमरा किया।।

हे उद्धव हम कृष्ण के, अति अद्भुत चरितों का। तिरछी चितवन उन्मुक्त हास्य, और मधुर सम्भाषण का।।
स्मरन् कर कर के उनमें, तन्मय ही हो जाते हैं। उनको छोड़ अन्य कोई, कहीं काज नहीं हो पाते हैं।।

जब देखें हम है वही नदी, जहां जल क्रीड़ा करते थे कृष्ण। है यही गिरिराज हाथ पे, जिसको किया था उन धारण।।
हैं वन के प्रदेश यही, जहां गूंजती कृष्ण की वंशी थी। धेनु चराते थे मोहन, ग्वाल बालों के संग ही।।
सखा संग मिलकर के यहां, अनेकों खेल थे खेलते। यह भी हम देखें साथ में, अभी चरण चिन्ह नहीं उनके मिटे।।
यह सब देख के मन हमारा, कृष्णमय हो जाता है। कृष्ण कृष्ण बस कृष्ण कृष्ण, इक कृष्ण ही बस रह जाता है।।

नहीं किंचित् भी संशय मुझे, हैं देव श्रेष्ठ श्री कृष्ण राम। यह भी मानूं यहां आये वह, करने देवों के ही काम।।
श्री गर्गाचार्य ने भी यही, स्वयं था मुझको कहा। आन्तर का विश्वास मेरा, पुष्टि उससे पा गया।।

जैसे सिंह बिना परिश्रम के, पशुओं को सहज ही मार दे। त्यों ही खेल खेल में, उन्होने अद्भुत कौतुक किये।।
दस हजार हाथी का बल, कंस था अपने में लिये। दोनों मल्लयोधा भी उसके, हम जानें अजय ही थे।।
महाबली गजराज वह, कुवलयापीड़ भी कम न था। कृष्ण ने खेल खेल में, इन सबको ही मार दिया।।

अत्यन्त दृढ़ और अति विशाल, धनुष तीन ताल लम्बा। जैसे कोई हाथी तोड़े छड़ी, वैसे ही उन्होंने तोड़ दिया।।
हमारे प्यारे कृष्ण ने, हम सबकी रक्षा थी करी। सात दिनों तक गिरिवर को, एक हाथ पे उठा रखी।।

यहां सबके देखते देखते ही, अनेकों खेल किये उन्होने। प्रालम्ब धेनुक और अरिष्ट तृणावर्त तब के हनन किये।।
इन महादैत्यों ने देवासुर, सबके सब थे विजय किये। कृष्ण के हाथों सहज में ही, क्रीड़ावत् यह मारे गये।।
शुकदेव बोले,
नन्दबाबा का हृदय राजन्, था कृष्ण प्रेम के रंग में रंगा। इस भाँति उनकी लीलाओं, का सिमरन् होने लगा।।
इससे उनके आन्तर में, ज्यों प्रेम बाढ़ ही आ गई। अति विह्वल वह हो उठै, थी मिलन की उत्कण्ठा बढ़ी।।
कण्ठ अवरुद्ध हुआ उनका, वाणी भी गद्गद् हो गई। नयनों से अश्रुधार बही, मुख ने ज्यों मानो मौन धरी।।

यशोमति भी वहीं बैठीं, थीं नन्द की बातें सुन रहीं। श्री कृष्ण की लीला सुनी, न अश्रु अपने रोक सकीं।।
पुत्र स्नेह की बाढ़ में, स्तनों से दूध था झरने लगा। उनकी सुध बुध तो मानो, कृष्ण प्रेम था हरने लगा।।
नन्दबाबा और मैय्या के, हृदय का यह अगाध अनुराग। उद्धव हुए आनन्द मग्न, देखी उनका प्रेम प्रगाढ़।।

उद्धव बोले,
समस्त देहधारियों में, हैं आप ही महा भाग्यवान्। नहीं तनिक सन्देह इसमें, सराहनीय दोनों महान्।।
चराचर जगत के स्रष्टा जो, और गुरु नारायण हैं। वात्सल्य भाव है उनके प्रति, वह पुत्र बने परायण हैं।।

श्री कृष्ण और बलराम तो हैं, परम पुराण पुरुष स्वयं। सब जग के उपादान कारण, और निमित्त कारण भी स्वयं।।
श्री कृष्ण हैं जो परम पुरुष, तो बलराम हैं प्रकृति। सब देहों में प्रविष्ट हो, देते हैं जीवन दान यही।।
सब जीवों से विलक्षण ही, ज्ञान स्वरूप जो जीव है। नियमन उसका करें यही, राम कृष्ण द्वौ रूप हैं।।

मृत्यु बेला जो जीव निज, शुद्ध अन्त:करण उनको दे दे। क्षणभर के लिये भी यदि यह मन, उनमें ही लगा वह दे।।
कर्मवासना अपनी सारी, स्वत: ही वह धो देता है। सूर्य समान तेजस्वी हो, परम गति पा लेता है।।

सबके आत्म परम कारण, वह भगवान हैं स्वयं जो। भक्तन् अभिलाषा पूर्ति को, भूमि का भार उतारन को।।
मनुज तन धारण करके, हैं धरती पर आ उतरे। आपके हृदय में उनके लिये, ऐसा वात्सल्य का भाव रहे।।
हे महात्मन् कहें आप, फिर कौन कर्म अब शेष हो? दोनों के ही लिये जग में, नहीं अन्य शुभ विशेष हो।।

यदुश्रेष्ठ भक्तवत्सल, शीघ्र ही व्रज में आयेंगे। पितु मातु दोनों के ही, हृदय आनन्द बरसायेंगे।।
यदुवंश द्रोही कंस का, जब था उन्होंने हनन किया। सबके सम्मुख रंगभूमि में, ही था उसको मार दिया।।
आपके पास था आ के कहा, वह शीघ्र ही व्रज में आएंगे। अपने इस कथन को वह, निश्चित् सत्य कर जाएंगे।।

हे नन्दबाबा और मैय्या जी, हैं परम सौभाग्य दोनों के ही। नहीं शोक करें कृष्ण को, देखेंगे अब शीघ्र ही।।
जैसे काष्ठ में अग्न सदा, सर्वदा ही व्याप्त रहे। वैसे ही पूर्ण प्राणियों के, हृदय में सदा वह बसे रहें।।

नहीं इक तन का अभिमान उन्हें, इसलिये नहीं कोई भेद भाव। न प्रिय है न अप्रिय कोई, है सबके प्रति समत्व भाव।।
न तो उत्तम ही है कोई, और न कोई अधम है। विषमता है जिसके मन में, उनके लिये वह विषम है।।

न मात पिता कोई हैं उनके, न भार्या न सुत आदि कोई। न अपना और पराया कोई, न देह है न ही जन्म कोई।।
नहीं उनका कर्त्तव्य कोई, इस त्रिलोकी में कभी। साधुजन के परित्राण को, लीला वह करते हैं फिर भी।।
देवादि सात्विक रूप धरें, मत्स्यादि तामस रूप लें। मिश्रित योनि मनुज आदि, का तन वह धारण करें।।

श्री हरि तो नित्य अजन्मा हैं, नहीं प्राकृत गुण कोई भी वहां। हैं अतीत त्रैगुण से वह, लीला हेतु धरें रूप यहां।।
खेल खेल में सत्व रज, और तमोगुण स्वीकार करें। उनके द्वारा जग सृष्टि, पालन और संहार करें।।

जब बालक आवर्तन ले, या वेग से मनुज भी घूमा करे। तब उनको सारी धरती, घूमती हुई सी जान पड़े।।
वैसे ही वास्तव में तो, चित्त ही है कर्म कर्ता। अहं बुद्धि भरकर चित्त में, उसको ही आत्म मान रहा।।

अपना आप उसे जान करी, अपने को कर्ता माने है। इसी भ्रम में भूला रहे, नहीं सत्य जीव पहचाने हैं।।
भगवान कृष्ण आपके ही, हैं पुत्र नहीं केवल मानें। आत्म रूप सब जीवों के, पितु मातु सुत स्वामी जानें।।

जो भी देखा या सुना जाये, हो भूत भविष्य या वर्तमान। स्थावर हो या जंगम वह हो, अल्प हो या वह हो महान्।।
नहीं ऐसी वस्तु कहीं कोई, श्री कृष्ण से पृथक् कभी जो हो। श्री कृष्ण बिना नहीं कहीं कोई, जिसको वस्तु का नाम दो।।
वास्तव में सब वे ही हैं, वे ही परमार्थ सत्य हैं। उनको छोड़ कर जग में, जो भी है सब असत्य ही है।।

शुकदेव बोले,
कृष्ण सखा उद्धव जी और, नन्दबाबा बातें करते रहे। वार्तालाप में खोए रहे, कब रात्रि गई यह भी भूले।।
कुछ रात्रि अभी शेष थी, गोपिकागण भी जाग गईं। दीपक जला दहलीज पे, थीं वास्तु पूजन कर रहीं।।
घरों को झाड़ बुहार कर, फिर उन्होंने स्वच्छ किया। तत्पश्चात् मटकियों में, दधि मथना आरम्भ किया।।

कंगन बज उठे कलाइयों में, जब थीं वे नेति खेंचतीं। दधि मथन की बेला में, उनकी थी शोभा न्यारी बनीं।।
कण्ठमाल वक्ष:स्थल और, नितम्ब थे उनके हिल रहे। कर्ण कुण्डल भी झूमकर, कपोल पे लालिमा छिटक रहे।।
आभूषणों की मणिक भी, दीपक की लौ में चमक उठीं। अति शोभा से सम्पन्न होकर, वह थीं दधि को मथ रहीं।।

कमल नयन श्री कृष्ण के, चरितों का गान थीं कर रहीं। दधि मथन की ध्वनि से थी, उनकी स्वर लहरी मिली।।
अद्भुत स्वर इसका उठी, स्वर्ग लोक तक जा पहुंचा। स्वर लहरी चारों दिशाओं में फैली, अमंगल सब थी रही मिटा।।

भगवान भास्कर जिस समय, उदय हुए आकाश में। नन्दबाबा द्वारे स्वर्ण रथ, देखा व्रज की गोपियों ने।।
इक दूजे से पूछन लागीं, है किसका यह रथ खड़ा? हमारे व्रज में कौन नया, आज आगन्तुक आ पहुंचा।।

कोई गोपी बोल उठी, अक्रूर क्या पुन: यहां आया? कंस प्रयोजन सिद्ध करना, ही तो था ध्येय उसका।।
हमारे प्यारे मनमोहन, को मथुरा वह ले गया। आज भला किस काम से, पुन: है व्रज में वह आया?

अन्य गोपी फिर बोल उठी, क्या हमको लेने अब आया? निज मृत स्वामी कंस का, क्या पिण्ड दान करायेगा?
अन्यथा यहां पे आने का, प्रयोजन हो ही क्या सके? प्राण तो हमारे ले गया, अब उसको क्या ही हम दे सकें?
व्रज की गोपियां आपस में, यूं बातचीत थीं कर रहीं। नित्य कर्म से निवृत्त हो, उद्धव की वहां आगमन हुई।।
शुकदेव बोले,
गोपियों ने देखा हे राजन्, श्री कृष्ण के सेवक उद्धव की। आकृति और वेषभूषा, है कृष्ण से ही मिलती जुलती।।
लम्बी भुजायैं हैं उसकी, नूतन कमल सम नयन विशाल। तन पर पीताम्बर हैं धरे, कण्ठ में कमल पुष्प की माल।।
कानों में जड़ाऊ कुण्डल हैं, सोहे है मुख पे उनकी दमक। मुखारविन्द प्रफुल्लित है, जैसे हो विकसित कमल दल।।

पावन मुसकान था लिये हुए, गोपिकागण का मुख सदा। इक दूजे को देखकर, फिर यह वचन उन्होने कहा।।
अति सुन्दर है यह पुरुष, किन्तु कहां से आया है? कौन है यह किसका दूत, क्यों कृष्ण सा रूप धराया है?
उसका परिचय पाने को, सब गोपियां उत्सुक हो गईं। श्री उद्धव को घेर कर, चहुं ओर वह खड़ी हुईं।।
पावन कीर्ति कृष्ण के, चरणों के आश्रित जो रहें। उनके सेवक प्रिय सखा, श्री उद्धव का परिचय चाहें।।

जब गोपिन् ने यह जाना, यह कृष्ण संदेसा हैं लाये। सविनय सीस झुकाया उन, मुख पर सलज्ज उनका हास्य खिले।।
मीठी चितवन मधु वाणी से, उद्धव का सत्कार किया। एकान्त में आसन उन्हें दिया, फिर उनसे वह वचन कहा।।
गोपियां बोली,
उद्धव जी बड़भागी आप, श्री यदुनाथ के पार्षद हैं। उनका सन्देसा लेकर ही, आपका शुभ आगमन यह है।।
आपके स्वामी ने अपने, मात पिता के सुख के लिये। आपके हाथों ही उनको, हैं सन्देसे भेज दिये।।

अन्यथा इस व्रज में हमें, कोई भी वस्तु न दीखे। मथुरा में रह जिसका स्मरण, सुन्दर श्याम कभी कर सकें।।
मात पिता बन्धु बान्धव के, स्नेह पाश तो जटिल हों। ऋषि मुनि जन के भी लिये, वह तो अति दुस्त्यज हों।।

किसी अन्य के साथ जो, मैत्री प्रेम किया जाये। वह तो सदा ही अपने में, किसी स्वार्थ को हो लिये।।
भंवरों का हो पुष्पों से, या पुरुषों का स्त्रियों से। ऐसा स्वार्थ पूर्ण ही, प्रेम सम्बन्ध सदा बने।।

जब गणिका यह जान ले, नहीं कोई धन आगन्तुक पे। अति प्रिय जो था कभी, नहीं उससे फिर बात करें।।
जब प्रजा यह देख ले, नहीं रक्षण राजा कर सके। तब वह भी उस राजा का, तत्काल साथ ही छोड़ दे।।
पठन समाप्त हो जाने पर, कौन शिष्य करे गुरु की सेवा? यज्ञ दक्षिणा पाते ही, सब ऋत्विज भी ले लें विदा।।

जब फल नहीं हों वृक्ष पे, पक्षी भी उसको छोड़ दें। भरपेट भोजन पाकर, अतिथि गृहस्थी को न देखें।।
वन में आग लगे जिस पल, सारे पशु ही भाग उठें। यही नियम है इस जग में, नर नारी के सम्बन्ध में।।
स्त्री के हृदय में चाहे अति, अनुराग ही हो भरा हुआ। स्वार्थ पूर्ण हो जाने पर, न पुरुष है मुड़कर देखता।।

शुकदेव बोले,
उनके मन वाणी और तन, श्री कृष्ण में ही तल्लीन थे। श्री कृष्ण दूत व्रज में आये, उचित अनुचित किसे याद रहे?
शैशव से किशोरावस्था तक, थीं कृष्ण की जितनी लीलायें। उन सबको ही याद करी, वे गोपियां उनका गान करें।।
आत्मविस्मृति हुई उनको, स्त्री सुलभ लज्जा भूली। उद्धव के ही सामने, वे फूट फूट कर रोने लगीं।।

इक गोपी को याद आई, श्री हरि से मिलन की वह बेला। उसी समय देखा उसने, इक भंवरा गुंजन कर है रहा?
ऐसा समझी वह गोपी, कृष्ण से मान जो मैंने किया। दूत बना कर भंवरे को, उस मेरे पास है भेज दिया।।

१) भ्रमर गीत

गोपी बोली,
ऐ मधुप तू सखा है कपटी का, इस कारण तू भी है कपटी। नहीं स्पर्श तू हमरे चरण करो, नहीं झूठी अनुनय विनय है भली।।
हम देखें कृष्ण वनमाला ने, स्पर्श सपत्नी का पाया। उसकी पीली केसर का रंग, तेरी मूंछों पर भी है आया।।
तू स्वयं भी तो किसी एक, पुष्प के प्रेम में नहीं बन्धे। यहां से वहां ही उड़ा करे, वैसे ही हैं तेरे स्वामी रे।।
मधुराधिपति श्री कृष्ण अब, मानिनी मथुरा की मनाया करें। उनका कुंकुम प्रसाद अब, अपने पास ही वह रखें।।
यदुश्रेष्ठों की सभा में तो, हैं उपहास के योग्य ही वे। तुमको दूत बनाकर के, हमारे पास वह क्यों भेजें?

जैसा है तू श्यामल भंवरे, वैसा है तेरा स्वामी भी। तू भी पुष्प रस ले उड़े, वैसे ही तो निकले वह भी।।

केवल इक बार ही उन्होने हमें, मोहक मादक सुधारस दी। भोली भाली हम गोपियों को, त्यजी मथुरा प्रस्थान करी।।
न जानें सुकुमारी श्री जी, उनके चरण की सेवा कैसे करें? सुन्दर श्याम की अति मधुर, वाणी ही निश्चित उन्हें छले।।
उस चित्तचोर ने उनका भी, चित्त चुरा ही लिया होगा। यही तो है उस मनमोहन, सांवरिया का कपट बड़ा।।

हम तो हैं वन के वासी, नहीं कोई घर द्वार हों। यदुश्रेष्ठ उस कृष्ण का, भंवरे क्यों तुम गुणगान करो?
हमें मानने के ही लिये, हे मधुप यह है गायन तेरा। किन्तु जान लो वह निष्ठुर, नहीं हमरे लिये है कोई नया।।
बहुत पुराना परिचित है, चटुकारिता तेरी नहीं चले। यहां से जा तू ऐ भंवरे, जा मधुपुर वासिनी सखियों पे।।
उनके सामने ही जाकर, कृष्ण का यह गुणगान कर। अपनी यह अनुनय और विनय, भी जाकर उन्हीं के चरण धर।।
है नव ही परिचय उनका, उनकी लीलायें न जानें। हैं वही प्रिय इस पल उनकी, पीड़ा वा हिय की कृष्ण हरें।।
तव प्रार्थना सुनकर के, तुझपर प्रसन्न होंगी वे ही। मीठे वचन तेरे सुनकर, देंगी मुंहमांगी वस्तु भी।।

अरे भंवरे क्यों तू ऐसा कहे, हमारे लिये हैं व्यथित वे? मनमोहक स्मित और भ्रूविलास, उनके हैं सब कपट भरे।।
त्रिलोकी में कौन स्त्री है, वशीभूत जो उनके न होएं? संकेत इक पाकर उनका, न उनके पास दौड़ी जाए?
औरों की तो बात ही क्या, लक्ष्मी भी चरण सेवा करे। फिर कृष्ण के सामने हम सबकी, गिनती ही कहां हो सके?

किन्तु अब जाओ उनसे कहो, है नाम तुम्हारा उत्तम श्लोक। कीर्ति गान तुम्हारा किया करें, इस जग के सब श्रेष्ठ लोग।।
किन्तु इस नाम की सार्थकता, तो दीनों पर दया में ही हो। अन्यथा कृष्ण यह उत्तम श्लोक, नाम तेरा मिथ्या ही हो।।

मेरे चरण में सीस धरी, ऐ मधुकर तू न बिनती कर। अनुनय विनय में निपुण है तू, नहीं क्षमा याचना हमसे कर।।
ऐसा लगे तुझे कृष्ण ने, यही सिखाकर है भेजा। रूठों को मनाने के लिये, दूत करे चटुकारिता।।
पर ऐ मधुप तू जान ले, यहां चाल यह तेरी नहीं चले। पति पुत्र बन्धु बान्धव, सब कृष्ण के हेतु हमने त्यजे।।
अति निष्ठुर वह कृतघ्न तो, हमें भी छोड़ के चले गए। अब तू ही बता उस निष्ठुर से, कैसे हम सन्धि करें?
क्या अब भी तू कहता है, विश्वास हम उनपर करे? उस विश्वास के हेतु कहो, कैसे कर्म तेरे स्वामी ने किये?

जब राम रूप धरी आये थे, तब भी था छल उन्होने किया। कपिराज बलि का उन, व्याध समान ही वध किया।।
कामाहत शूर्पणखा, उनके पास जब आई थी। निज स्त्रीवश थे वह हुए, नाक कान उसकी काट दी।।
वामन बन ब्राह्मण के घर, जन्म जब उन्होने लिया। याद करो उस समय भी, छल ही था उन्होने किया।।
बलि ने उनकी पूजा की, मुंह मांगा वर उन्हें दिया। पूजा भी ग्रहण करी उसकी, फिर वरुणपाश में बान्ध दिया।।

ज्यों कौवा बलि खाकर भी, बलि दानी को घेर ले। निज संगी साथी ले संग में, उनको वह पीड़ित करे।।
अब छोड़ो यह सब बातें, हमें कृष्ण से है प्रयोजन क्या? किसी भी काली वस्तु से, अब हो न सके कोई मित्रता।।
किन्तु न पूछ तू यह हमसे, क्यों करती हैं हम उनकी चर्चा। तो भ्रमर यह मानो सच ही तुम, इक बार चखे जो रस का मजा।।
उसे छोड़ नहीं सकता वह, उस मद में ही वह मस्त रहे। चाहकर भी हम सब जानो, उनकी चर्चा न छोड़ सकें।।

श्री कृष्ण की लीला अमृत का, जो कर्ण कदापि पान करें। राग द्वेष सुख दु:ख आदि, सब द्वन्दों से वह तरें।।
दु:ख क्लेश का घर यह जग, बहुत अकिंचन छोड़ दें। संग्रह परिग्रह त्याग कर, पक्षीवत् अपना पेट भरें।।

भिक्षुक बनकर ही वह रहें, सब जग को वह छोड़ दें। फिर भी कृष्ण कथामृत को, वह इक पल न त्याग सकें।।
उसका रस ही ऐसा है, इक बार जो उसको कभी चखे। कभी विमुख उससे न हो, यही दशा हमरी भी बने।।

ज्यों कृष्णसागर मृग की पत्नी, हरिणियां हों भोली भाली। मधुर गान के जाल में फंस, हों व्याध के हाथों वह हत ही।।
त्यों ही हम भोली गोपियां, कृष्ण की मीठी बातें सुनी। उनके नख स्पर्श पा बार बार, काम व्याधि अनुभव करतीं।।
हे कृष्ण दूत काले भंवरे, इस विषय में और न कहना तुम। यदि कुछ भी हो कहना तुझे, तो अन्य बात कोई कहना तुम।।

प्रियतम के प्रिय सखा हे सुनो, लगे ऐसा तुम हो पुन: लौटे। उन्होने ही भेजा होगा पुन:, तुझे हमें मनाने के लिये।।
हे प्रिय मधुप हमारे लिये, तुम हो प्रिय हर भान्ति से। कहो है क्या इच्छा तेरी, जो चाहे हमसे मांग ले।।
अच्छा तुम सच ही कहो हमसे, क्या हमें ले जाना तुम चाहो? उनके पास पहुंचकर तो, लौटना अति कठिन ही हो।।
हम तो उन्हीं के पास हैं, ले जाकर हमको करोगे क्या? उनके वक्ष:स्थल पर तो, प्रिय लक्ष्मी उनके संग रहें सदा।।
तुम ही कहो फिर उनके संग, निर्वाह हमारा कैसे होगा? प्रिय भ्रमर कुछ तो सोचो, सम्भव यह अब कैसे होगा?

प्रियतम के दूर हे प्रिय मधुकर, अब हमें कहो तुम कृष्ण की। गुरुकुल से लौट मधुपुरी में, रहते हैं न वह सुख से ही?
क्या नन्दबाबा और यशोमति, यहां के गृह बन्धु बान्धव। क्या ग्वाल बाल को याद करें, कभी मथुरा के श्रेष्ठ यादव?
हम दासियों की क्या कभी, बात कोई वह करते हैं? हे भ्रमर तू कहो हमसे, क्या हमें याद कभी करते हैं?
अगर समान सुगन्धित निज, भुजा क्या सीस पे रखेंगे? जीवन में क्या हमारे भी, ऐसे शुभ दिन पुन: आएंगे?

२) उद्धव और गोपियों का सम्वाद

शुकदेव बोले,
गोपियां थीं अति उत्सुक, श्री कृष्ण के दर्शन के लिये। था व्यथित उनका हृदय, हर पल मिलन को वह तरसें।।
उनकी सब बातें सुन कर, उद्धव जी उनसे यूं बोले। धीर बन्धाने को उनको, प्रियतम के सन्देश दिये।।
उद्धव बोले,
कृत्कृत्य हो तुम अहो गोपियों, है सफल तुम्हारा ही जीवन। इस संसार के लिये सदा, हे देवियो पूजनीय हो तुम।।
इस विधि श्री भगवान को, अर्पित किया अपना तन मन। हृदय समर्पित तुमने किया, सर्वस्व वही वही जीवन धन।।

दान व्रत तप होम जप, अध्ययन ध्यान और धारणा। समाधि और कल्याण की, हो जो अन्य भी साधना।।
जिनसे प्रभु भक्ति प्राप्त हो, है सबका चरम लक्ष्य यही। श्री हरि के ही चरणों में, सर्वस्व हो अर्पित किसी विधि।।
महासौभाग्य से तुम सबने, वही प्रेमा भक्ति है पाई। पावनकीर्ति श्री कृष्ण की, भक्ति की हो आदर्श तुम्हीं।।
बड़े बड़े ऋषि और मुनि, भी दुर्लभ ही जिसको पायें। महा तप और साधन कर के भी, पहुंच चरण तक न पायें।।

है अति दुर्लभ सौभाग्य यह, निज पुत्र पति और देह भी त्यजे। स्वजन और घर बार छोड़, वह परम पुरुष ही तुम्हें प्रिये।।
वह पुरुषोत्तम कृष्ण तो, हैं सबके ही परम पति। अन्य सभी को भूलीं तुम, और उनकी ही वरण करी।।

महाभाग्यवती हे गोपियों, श्री कृष्ण के वियोग से। इन्द्रियातीत परमात्म प्रति, ऐसे भाव हैं तुम्हरे जगे।।
जो सबमें उन प्रियतम का, दर्शन ही करवाते रहें। तुम लोगों के वही भाव, हैं मेरे सम्मुख भी प्रकट हुए।।
तुम देवियों की हुई, मुझपर यह अनुकम्पा महान्। महागुह्य उन भावों का, परिचय पाया मैंने यहां।।

मेरे स्वामी ने निज काज को, गुप्त दूत ही बनाया मुझे। तव प्रियतम श्री कृष्ण ने, सुखकर संदेश है भेजा तुम्हें।।
हे भद्रे वही सन्देसा ले, तुम तक आज मैं आया हूं। अब सुनो सुनो सन्देसा वह, जो मैं तुम तक लाया हूं।।
कृष्ण ने कहा,
मैं हूं उपादान कारण सबका, मैं सबमें सबका आत्मा। सबमें हूं मैं बसा सदा, नहीं वियोग तुमसे हो सकता।।
ज्यों जग के सभी पदार्थों में, पंचभूत सदा व्याप्त रहें। इन्हीं से बनी हैं सब वस्तु, यह सब वस्तु के रूप में।।
वैसे ही मैं आश्रय हूं मन, प्राण भूत इन्द्रिय विषय का। वे सब मुझमें ही बसें, उनमें हूं प्रकट मैं हो रहा।।

मैं ही निज माया द्वारा, इन सबका आश्रय बनूं। भूत इन्द्रिय और विषय, यह सब रूप भी मैं ही धरूं।।
स्वयं निमित्त भी मैं बनूं, और अपने आपको ही रच लूं। पालन भी करूं स्वयं ही, और आप ही निज में समेट लूं।।

माया और माया के सभी, कार्यों से पृथक् है आत्मा। है विशुद्ध ज्ञान स्वरूप, है भेद रहित वह आत्मा।।
जड़ प्रकृति अनेकों जीव, अपने ही अवान्तर भेद रहित। गुणातीत वह रहे सदा, सदा सर्वदा नित्य शुद्ध।।
माया की हैं त्रै वृत्तियां, सुशुप्ति स्वप्न और जाग्रत। कभी प्राज्ञ तैजस् आत्म, प्रतीत हो कभी वह विश्वरूप।।

स्वप्न में दीखें जो विषय, वास्तव में वे मिथ्या ही हों। जाग्रत में इन्द्रिय विषय भी, वास्तव में त्यों ही भासित हों।।
उन विषयों का मन और, इन्द्रियां जो सदा चिन्तन करें। जीव को चाहिए उनको वह, विवेक के द्वारा रोक ले।।
ज्यों निद्रा से जगा प्राणी, स्वप्न विषय सब छोड़ दे। त्यों ही जग रूपा स्वप्न त्याग, साक्षात्कार मेरा जीव करे।।

ज्यों नदियां सब भ्रमण कर, सागर में ही जाय मिलें। त्यों ही सब साधन जग के, मुझमें ही विश्राम करें।।
वेदाध्ययन योग साधन, आत्म अनात्म का विवेक। त्याग तप और इन्द्रिय दमन, सत्यादि सब धर्म विशेष।।

मेरे प्राप्ति में ही जानो, इन सबकी परीसीमा हो। मेरा ही साक्षात्कार, इन सबका सच्चा फल हो।।
यह सब साधन इस मन के, निरोध के ही हैं कारण। चित्त विशुद्ध ही यह करें, साधक हो फिर मुझको प्रपन्न।।

नहीं तनिक सन्देह इसमें, तव नयनों का मैं ध्रुवतारा। तव जीवन सर्वस्व हूं मैं, रहूं फिर भी तुमसे दूर सदा।।
इसका भी इक कारण है, निरन्तर मेरा ध्यान धरो। तन से दूर भी रहकर तुम, मेरी समीपता जान लो।।
अपना मन मुझे दे दो तुम, हदय तुम्हारे मैं ही बसूं। तन से मैं जहां भी रहूं, हृदय से दूर न जा सकूं।।

प्रेमियों या स्त्रियों का मन, दूरस्थ प्रियतम में रहे। निश्चल और स्थिर भाव से, सदा ही उसमें टिका रहे।।
अपनी आंखों के सामने, सदा ही जो प्रेमी रहे। समीपस्थ प्रियतम में वह, उस भाँति कभी नहीं लगे।।
वृत्ति हीन कर अपना मन, जब पूर्ण मुझमें लगाओगी। तब शीघ्र ही तुम सदा के लिये, मेरी ही हो जाओगी।।

शरद पूर्णिमा रात्रि में, जब महारास रचाई थी। स्वजनों ने व्रज में रोका, वे गोपियां आ नहीं पाई थीं।।
मेरी लीला का सिमरन् कर, वे प्राप्त मुझे थीं हो गईं। निरास न होना हे सखियों, आऊंगा मैं निश्चित ही।।
शुकदेव बोले,
प्रियतम कृष्ण का सन्देसा, गोपिका गण को जब मिला। आनन्द से वह भर गईं, प्रफुल्लित उनका हृदय हुआ।।
सन्देश सुनी उनका स्वरूप, लीला याद उन्हें आने लगी। प्रेम पूर्ण हृदय से वह, उद्धव जी से यूं बोलीं।।

गोपियाँ बोली,
अति आनन्द की बात है यह, पापी कंस है मारा गया। यदुवंश के द्रोही उनके, अनुयाइयों का भी नाश हुआ।।
कृष्ण के बन्धु बान्धव और, गुरुजन के मनोरथ पूर्ण हुए। उन संग मनमोहन अपने, कुशल तो हैं मथुरा में बसें?

किन्तु उद्धव जी एक बात, आप ही हमको बतलायें। प्रेममयी स्मित अपनी और, उन्मुक्त ही चितवन से।।
उनकी पूजा हम करती थीं, और वह भी प्रेम हमसे करते। क्या मथुरा की नारियां भी, उनसे वैसा ही प्रेम करें?

हमारे श्याम सुन्दर तो हैं, मोहिनी कला के महाधनी। श्रेष्ठ नारियां तो उनसे, प्रेम सभी हैं किया करतीं।।
मथुरा पुरी की स्त्रियां जब, करेंगी मीठी बात उनसे। उनके हाव भाव देखी, वे क्यों न उनपर रीझेंगे?

कहें आप हे साधो हमें, मथुरा नगर की नारियों में। जब हमारे प्यारे कृष्ण, स्पष्ट प्रेम की बात करें।।
तब प्रसंगवश वह कभी, क्या व्रज गोपिन् को याद करें? हम गंवार ग्वालिनों की, याद कभी क्या मन में उठे?

उद्धव जी क्या कभी कृष्ण, उन रातों को भी याद करें? चहुं ओर थी चान्दनी छिटक रही, कुमुदुनी कुन्द के फूल खिले।।
इस रमणीय वृन्दावन में, उन रास मण्डल बनाया था। उन दिव्य रात्रियों में उन्होने, हम संग नृत्य रचाया था।।
थी अपुनम रास लीला वह, चरण के नूपुर झंकृत थे। सभी गोपियों के मुख पर, उनकी लीला के गान थे।।
नाना विधि से हमारे संग, विहार उन्होंने था किया। अपने प्रेम से मन हमरा, उन्होने सदा के लिये हरा।।

हम सबको उन्हीं के विरह की, अग्नि ने है जला दिया। इन्द्र की वर्षा से जैसे, वन सारा हरा भरा होता।।
त्यों ही कृष्ण भी हम सबको, क्या जीवन दान पुन: देंगे? कर स्पर्श से नव जीवन देने, क्या पुन: यहां वह आयेंगे?

अरी सखी निज शत्रुओं का, अब तो उन्होंने हनन किया। राज्य भी उन्होंने प्राप्त किया, हर कोई है सुहृद् बना।।
बड़े बड़े राजाओं की, कन्याओं को वह ब्याहेंगे। आनन्द से रहेंगे उन संग वह, हम ग्वालिनों पे क्यों आयेंगे?

अरी नहीं सखी श्री कृष्ण तो, स्वयं ही हैं महात्मा। लक्ष्मीपति हैं आप वह, पूर्णकाम कुत्कृत्य सदा।।
नहीं प्रयोजन उन्हें कोई, ग्वालिनों या राजसुताओं से। हम लोगों के बिना कहो, कौन काम हैं उनके रुके हुए?

गणिका पिंगला ने सत्य कहा, जग में न किसीसे करो आशा। निराशा में ही है धरा, इस जग का सुख सब से बड़ा।।
यह बात तो हम सब भी जानें, पर छोड़ सकें न इक आशा। उनके आने की आस में ही, हर स्वास है तन का जा रहा।।

बड़े बड़े महात्मा जन, श्री कृष्ण की गुण गाथा गाते। एकान्त में हमसे प्रेम की, जो मीठी बातें वह करते।।
उन्हें भूल कर जीने का, उत्साह ही हम न कर सकें। देखो तो सही लक्ष्मी भी सदा, उनके चरणों से लिपटी रहें।।
न उनकी इच्छा हो तब भी, क्षण भर के लिये नहीं उन्हें त्यजें। अंग संग उनका छोड़ कर, अन्य कहीं न जा सकें।।

हे उद्धव जी यही नदी है वह, जिसमें विहार वह करते थे। इसी पर्वत पे चढ़कर वह, निज वंशी में स्वर भरते थे।।
यह ही है वह वन जानो, जहां रास लीला रात्रि में करी। और यही वह गाएं हैं, जिनको ले उन वन गमन करी।।
इनको चराने के लिये, जब वह वन में जाते थे। हम लोगों की ओर देख, वह मन हमारा हर्षाते थे।।
वंशी की वह तान सदा, इन कानों में गूंजा करे। जैसे निज अधरों से छूकर, वह इस को छेड़ा करते थे।।

बलराम सहित श्री कृष्ण ने, इन सबका है सेवन किया। व्रज का तो हर कण कण ही, है उनकी याद से भरा हुआ।।

इक इक प्रदेश हर धूलि कण, उनके चरण कमल से चिह्नित है। पुन: पुन: इन्हें देखें हम, बस दिन यही तो करती हैं।।
हमारे प्रिय श्याम सुन्दर, नयनों के सामने आ जायें। हम तो भूलेसे भी उद्धव, उनको न कभी भुला पायें।।

हंस सी सुन्दर चाल वह, उन्मुक्त हास्य तिरछी चितवन। उनकी मधुमय वाणी ने, चुरा लिये हम सबके मन।।
अहो यह मन वश में नहीं, उन्हें भूले भी यह किस विधि? नहीं कहा यह हमरा मानता, रहे सुन्दर श्याम के संग ही।।

हे प्यारे मोहन तुम ही तो, इस जीवन के स्वामी हो। सर्वस्व हमारे हो तुम ही, जीवन धन इक तुम ही हो।।
हो लक्ष्मीनाथ इससे हमें क्या, व्रजनाथ हो तुम हमारे लिये। बार बार हमारी व्यथा, सब संकट हैं तुमने हरे।।
बहुत प्यारी है गइयां तुमको, क्या हम भी तुम्हारी धेनु नहीं? ग्वाल बाल माता पिता, और गोकुल की ललनाएं सभी?
यह गोकुल गांव तुम्हारा प्रिय, सारा दु:ख सागर में डूबा। तुम ही बचाओ आ के इसे, तुम ही करो सबकी रक्षा।।
शुकदेव बोले,
प्रेम संदेसा कृष्ण का, उद्धव के मुख से जब सुना। मिटी विरह व्यथा उनकी सारी, गोपिन् हृदय फिर शान्त हुआ।।
इन्द्रियातीत श्री कृष्ण को, निज आत्म रूप में जान लिया। सर्वत्र व्याप्त हैं कण कण में, फिर उन्होने पहचान लिया।।
बहुत प्रेम और आदर से, सत्कार किया उद्धव जी का। उनकी व्यथा मिटाने को, उद्धव ने दीर्घ प्रयास किया।।
श्री कृष्ण की विविध लीलाओं का, वहां गान वह करते थे। उनसे कृष्ण चर्चा करी, आनन्द हृदय में भरते थे।।

श्री नन्दबाबा के व्रज में, उद्धव जी जितने दिन रहे। श्री कृष्ण की कथाओं की, ही वह चर्चा करते रहे।।
वह सारा समय व्रजवासियों का, क्षण भर में ही ज्यों बीत गया। अभी तो आए हैं उद्धव, उनको था ऐसा लगता।।

प्रभु प्रेमी श्री उद्धव जी, कभी तो यमुना पुलिन जाते। कभी वन में करते विहार, गिरिराज के तल कभी विचरते।।
रंग रंग के फूलों से लदे, कभी वृक्ष ही उन्हें लुभा लेते। कृष्ण ने यहां को लीला करी, जन जन से कभी थे पूछते।।
श्री कृष्ण और उनकी लीला, की याद हृदय में जब उठती। व्रजवासियों के हृदय को, तन्मय थी वह कर देती।।

व्रज में रहकर श्री उद्धव ने, व्रजगोपियों के दर्शन किये। प्रेम विकलता तन्मयता, कृष्ण में खोए मन देखे।।
यह देखी उनका भी हृदय, प्रेम और आनन्द भरा। हृदय आनन्द यह छलक कर, गीत बनकर बह निकला।।

उद्धव बोले,
सफल है इस धरा पर इन, गोपिकागण का ही जीवन। सर्वात्म श्री गोविन्द के ही, प्रेम में हैं यह हुईं मग्न।।
प्रेम की यह सर्वोच्च स्थिति, हैं वांछनीय सबके लिये। भवभय से त्रस्त मुमुक्षुगण, ऋषि मुक्तपुरुष भक्तों के लिये।।
हम जैसे तो इस भाव को, प्राप्त नहीं अभी कर पाये। उसीको प्राप्त यह हो सके, जिसपर उनकी कृपा होए।।
सत्य है जिन श्री कृष्ण की, लीला कथा का रस है चखा। कुलीनता द्विजातीय संस्कार, यज्ञ याग की कहां आवश्यकता?
यदि इस सुधारस का कभी, किसी ने रस पाया ही नहीं। महाकल्प तक बार बार, चाहे बनें वह ब्रह्मा भी।।
उनके जीवन का लाभ क्या, है नीरस वह है व्यर्थ ही। जीवन की सार्थकता तो, है बस कृष्ण प्रेम में ही।।

कहां ज्ञान और जाति विहीन, गोपियां यह वनवासिनी। सच्चिदानन्द घन कृष्ण कहां, यह उनके प्रेम की हैं धनी।।

धन्य धन्य है इनका प्रेम, भाग्य भी इनका धन्य धन्य। उन परमानन्द स्वरूप का, पाया है प्रेम इन्होने अनन्य।।
बिन जाने प्रभु स्वरूप भी, गर उनसे कोई प्रेम करे। अपनी कृपा से ही प्रभु, उसका कल्याण हैं कर देते।।
ज्यों कोई अनजाने में, ही अमृत का पान करे। तो भी वह निज शक्ति से, उसको अमरत्व प्रदान करे।।

रासोत्सव में श्री कृष्ण ने, मनोरथ इनके पूर्ण करे। गलबईयां डाल गोपियों के, उन्होने थे इनके मन हरे।।
जो कृपा प्रसाद इनको, प्रभु ने जो प्रेम का दान दिया। वैसा तो प्रभु की नित्य संगिनी, लक्ष्मी को भी नहीं मिला।।
कमल की कान्ति और सुगन्धि, लिए हैं जो देवांगना गण। वह भी इस सौभाग्य से, नहीं कदाचित् हुईं सम्पन्न।।
फिर साधारण जीव और, स्त्रियों की हम क्या कहें। वह तो बस कथामृत से ही, जीवन अपना सफल करें।।

है मेरे लिये अब श्रेष्ठ यही, इस व्रजधाम में ही रहूं। कोई झाड़ लता या औषधि, कोई वृक्ष ही चाहे जाय बनूं।।
गर ऐसा हुआ तो गोपियों की, चरण रज नित्य मैं पाऊंगा। उस रज में नित्य ही स्नान करी, मैं धन्य धन्य हो जाऊंगा।।
धन्य धन्य हैं गोपियां यह, दुस्त्यज ममता माया त्यजी। बन्धु बान्धव कुल मर्यादा, सब ही इन्होने विस्मृत करी।।
प्रभु प्रेम उनकी तन्मयता, उनकी पदवी को प्राप्त किया। भगवद्वाणी उनकी श्रुतियां, भी ढूंढें जिसको सदा।।
यह सब भी इस परम प्रेम को, प्राप्त नहीं कर पाते हैं। वाग्विलास में खोए हुए, यह उनसे दूर रह जाते हैं।।

स्वयं श्री लक्ष्मी जी भी, करें जिनकी पूजा न्तिय ही। ब्रह्मा शंकर सब देव गण, आत्माराम महायोगी भी।
जिनका नित्य चिन्तन करें, श्री कृष्ण के वह चरणारविन्द। निज वक्ष:स्थल पे धरे इन्होने, किया उनका फिर आलिंगन।।
निज हृदय व्यथा विरह ज्वाला, को गोपिन् ने शान्त किया। अति दुर्लभ उस परम प्रेम का, आस्वादन इन्होने किया।।

नन्दबाबा के व्रज में बसी, गोपियों को मैं नमन करूं। उनकी चरण धूलि को मैं, बार बार निज सीस धरूं।।
श्री कृष्ण की लीलाओं का, इन्होंने है जो गान किया। अत्युत्तम पावनकर यह, त्रिलोक को पावन कर देगा।।
शुकदेव बोले,
इस विधि श्री उद्धव जी, अनेकों मास व्रज में रहे। फिर गोपिकागण नन्दबाबा, और यशुमति से आज्ञा ले।।
ग्वाल बालों से ली विदा, मथुरा के लिये तैयार हुए। व्रज से यात्रा के लिये, वह रथ पे सवार हुए।।

रथ व्रज से बाहर जब हुआ, नन्दबाबा और गोप आये। बहुत सी भेंट सामग्री वह, श्री उद्धव के लिये लाये।।
आंखों में अश्रु भर, बड़े प्रेम से वह कहने लगे। अपने हृदय के भाव जो थे, उद्धव के सम्मुख धरे।।
गोपियां बोली,
हे उद्धव यही चाहें हम, हमरे मन की प्रत्येक वृति। इक इक मनोसंकल्प भी, रहे कृष्ण चरण के आश्रित ही।।
हर भाव उठे उनकी सेवा में, और उन्हीं में निमग्न रहे। वाणी भी नित्य निरन्तर यह, उनका नाम ही गाया करे।।
यह तन भी उन्हें ही नमन करे, उनकी सेवा में ही लगे। उनकी आज्ञा पालन और, सेवन में जीवन जाये।।

सच ही तो मानो उद्धव जी, नहीं मोक्ष की हमें चाहना है। कर्मानुकूल प्रभु इच्छा से, जिस योनि में हो आना है।।
वहां दान करें हो शुभाचरण, एक ही बस यह फल पाएं। अपने इष्ट श्री कृष्ण में, भक्ति नित्य बढ़ती जाए।।
शुकदेव बोले,
नन्दबाबा आदि गोपों ने, उद्धव का यूं सम्मान किया। उनके सम्मुख श्री कृष्ण प्रेम, उनकी कथा का गान किया।।

हे राजन् श्री उद्धव तो, महाभक्त श्री कृष्ण के थे। श्री कृष्ण सुरक्षित मथुरा पुरी, में फिर उद्धव लौटे आये।।

वहां पहुंचकर उद्धव ने, श्री कृष्ण को प्रणाम किया। व्रज में प्रेमा भक्ति का, था उन्होने जो दरस किया।।
श्री कृष्ण के सामने, सारा ही वृतान्त कहा। नन्दबाबा की सब भेंटों का, भी फिर उनको दिया बता।।
वसुदेव बलराम और, उग्रसेन को वे सब दीं। जो जो भी उपहार वस्तु, व्रज वासिन् ने थीं भेजीं।।

११) कृष्ण का कुब्जा और अक्रूर के घर जाना

शुकदेव बोले,
सबके साक्षी आत्म स्वरूप, श्री कृष्ण जानें सबके मन की। कुब्जा उनसे मिलने को, उत्कण्ठित और अति व्याकुल थी।।
उसको सुख देने के लिये, वह उसके घर की ओर चले। हे राजन् श्री हरि की तो, कृपा अनेकों रूप धरे।।

बहुमूल्य सामग्री से, सम्पन्न था उस कुब्जा का घर। उद्दीपन करें जो श्रृंगार रस, उन साधन से था भरा उसका घर।।
स्थान स्थान पे झण्डियां और, मोतियों की झालर लटकी। चन्दोवे थे लगे हुए, और सेज सब बिछी हुई।।
सुन्दर आसन पे बैठने को, धूप से सब सुगन्धित था। थीं दीप शिखाएं जली हुईं, पुष्प हार चन्दन था सजा।।

भगवान को घर आते देखी, कुब्जा तो चौंक के खड़ी हुई। सखियों के संग आगे बढ़ी, विधिवत् उस सत्कार करी।।
श्रेष्ठ आसन दिया उन्हें, विविध विधि उपचार किये। कुब्जा ने सब सामर्थ लगा, श्री हरि के सत्कार किये।।

श्री हरि के परम भक्त, उद्धव जी भी संग में थे। उनकी भी पूजा करी, समुचित आसन उनको दिये।।
पर आसन को छूकर ही, धरती पर उद्धव बैठे। स्वामी समान आसन पर वह, बैठ भी कैसे सकते थे?
सच्चिदान्द घन कृष्ण ने, लोकाचार अनुकरण किया। कुब्जा की बहुमूल्य सेज, पर आराम से बैठे जा।।

तब कुब्जा ने स्नान करी, अपने को खूब सजा लिया। वस्त्राभूषण अंगराग, माला इत्र धारण किया।।
ताम्बूल और सुधासव से, मुख सुवासित उसने किया। लज्जापूर्ण हाव भाव से, श्री हरि को उसने देखा।।

नव मिलन की आशा में, संकोच से थी वह भरी हुई। मनमोहन ने पास बुला, कंकणाभूषित कर पकड़ी।।
उसे अपने पास बिठा लिया, और क्रीड़ा वह करने लगे। अपने प्रेम से उसका मन, सुन्दर श्याम हरने लगे।।
इस जन्म में कुब्जा ने, बस अंगराग अर्पित थे किये। उस एक कर्म के फल स्वरूप, अनुपम यह सौभाग्य मिले।।

श्री कृष्ण के चरणारविन्द उसने, काम सन्तप्त उर पे धरे। नयनों और वक्ष:स्थल पे धरी, उनकी सुगन्धि लेकर के।।
सारी आधि व्याधि हिय की, उस कुब्जा ने शान्त करी। दृढ़ भुजपाश में बान्धा उन्हें, विरह व्यथा निज शान्त करी।।

हे राजन् कुब्जा ने तो, था अंगराग केवल दिया। उतने से ही शक्ति स्त्रोत, उन प्रभु को उसने प्राप्त किया।।
अति दुर्लभ है जिनको पाना, कैवल्य मोक्ष जो दे सकें। किन्तु वह दुर्भागी तो, केवल तन ही उनको माने।।
उनसे वह कहने लगी, हे प्रियतम कुछ दिन यहीं रहो। हे कमल नयन न छोड़ सकूं, मुझ संग ही तुम क्रीड़ा करो।।

श्री कृष्ण स्वयं हैं सर्वेश्वर, वह सबका ही मान करें। मनमोहन कुब्जा का भी, तिरस्कार न कर सकें।।
पूजा स्वीकार करी उसकी, और अभीष्ट वर उसे दिये। फिर प्रिय भक्त उद्धव के संग, अपने घर वह लौट आये।।

ब्रह्मा आदि ईश्वरों के भी, परमेश्वर हैं कृष्ण जान। अति दुर्लभ है जीव का, प्रसन्न उन्हें कर लेना मान।।
उनको प्रसन्न करके भी जो, विषय सुख ही चाहे उनसे। उस समान दुर्बुद्धि नहीं, कोई धरती पे तू जान ले।।
वास्तव में जानो राजन्, विषय सुख हैं अति निकृष्ट। क्षण भर में काल का ग्रास बनें, इनमें भला है क्या विशिष्ट?
इक दिन कृष्ण बलराम ने, श्री उद्धव को संग लिया। अक्रूर के घर कुछ काम से, गए पूर्ण करने उसकी अभिलाषा।।

अक्रूर ने दूर से ही देखा, परम प्रिय बन्धु आये। नरश्रेष्ठ श्री कृष्ण आज, उद्धव बलराम को संग लाये।।
हृदय आनन्द परिपूर्ण हुआ, तुरन्त उठी आगे बढ़े। अभिनन्दन और आलिंगन से, उन्होंने प्रभु के स्वागत किये।।

कृष्ण और बलराम को, नमस्कार उन्होंने किया। उद्धव संग दोनों भाइयों ने, भी उनको फिर नमन किया।।
सुखासन पर जब सब बैठे, विधिवत् पूजन करने लगे। अपनी चिराकांक्षा को, अक्रूर पूर्ण करने लगे।।

पहले श्री हरि के चरण धोई, चरणोदक निज सीस धरा। पूजा सामग्री दिव्य वस्त्र, गन्ध माल्याभूषण से पूजा।।
सीस झुका प्रणाम किया और उनके चरण निज गोद धरे। अपने कर कमलों से वह, चरण का चापन करने लगे।।
विनय पूर्वक अवनत हो, फिर उनसे यह वचन कही। श्री कृष्ण और बलराम सम्मुख, अपने मन की बात धरी।।

अक्रूर बोले,
अति हर्ष की बात है यह प्रभु, पापी कंस का हनन हुआ। अनुयाइयों सहित वह मारा गया, अति सौभाग्य यह है हमारा।।
आप दोनों ने उसे मार, यदुवंश को है बचा लिया। भीषण संकट से रक्षा कर, उसे उन्नत और समृद्ध किया।।

हैं दोनों आप जगत् कारण, और जग रूप भी आदि पुरूष। नहीं कोई भी वस्तु कहीं, जो प्रभु आपसे हो अतिरिक्त।।
न ही परा और न अपरा, आप बिना प्रभु हो सके। आप स्वयं ही कार्य और, कारण दोनों ही रूप धरें।।

आपने ही निज शक्ति से, इस विश्व की रचना है करी। निज शक्ति द्वारा आप ही, प्रविष्ठ इसमें होकर ही।।
जो भी देखा सुना जाये, उन सब वस्तु में भास रहे। जो भी रूप कहीं भी दीखें, वास्तव में हैं आप ही वे।।

चराचर कार्य रूप तन जो, पृथ्वी ही ज्यों वा कारण है। अनेकों रूप प्रतीत जो हों, माटी ही तो करे धारण है।।
इसी विधि वास्तव में तो, हैं सब केवल आप ही। निज कार्य रूप जग में भासें, धर कर अनेकों रूप ही।।

सत्व रज और तमोगुण, प्रभु सभी हैं शक्तियां आप की। सृजन और पालन करें, संहार करें इन द्वारा ही।।
न तो आप गुणों से बन्धें, न ही उनके कर्मों से। आप तो हैं नितान्त शुद्ध, ज्ञान स्वरूप स्वयं ही हे।।
फिर प्रभु आपके लिये भला, बन्धन हेतु को हो सके? आप तो नित्य स्वतंत्र हैं, स्वच्छन्द रूप में विचरा करें।।

स्थूल या सूक्ष्म तन की कोई, उपाधि आत्म में न हो। न तो हो कोई भेद भाव, न ही कोई जन्म या मत्यु हो।।
इस कारण बन्धन या मोक्ष, दोनों न आप पे लागू हों। हम लोगों की यह कल्पना, केवल अविवेक के कारण हो।।

जग कल्याण के हेतु ही, इस वेदमार्ग को प्रकट किया। धूर्त दुष्ट जब जब इसपर, प्रहार करते हैं कदा।।
शुद्ध सत्वमय रूप धरी, आप प्रकट तब हो जायें। अधर्म पाखण्ड का नाश करी, पुन: धर्म स्थापना कर जायें।।

निज अंश बलराम सहित, आप आज हैं पुन: आये। भूमि का भार उतारन को, वसुदेव के घर हैं जन्म पाये।।

असुर रूप जो राजा हैं, यह नाम मात्र के शासक हैं। इनका नियमन करें आप प्रभु, और दण्डदे प्रशासक हैं।।
शतश: अक्षौणी सेना वा, संहार करेंगे आप प्रभु। और श्रेष्ठ यदुवंश का, विस्तार करेंगे आप प्रभु।।

हैं सर्वथा इन्द्रिय अतीत, सब रूप बनी स्वयं प्रकटें। देव पितर राजा भूतगण, सब हैं आपकी मूर्ति हे।।
चरणोदक आपका श्री गंगा, त्रिलोकी को पावन करे। सब जग के आप ही हैं पिता, प्रभु आप ही गुरु बनें।।
आज वही परमेश्वर आप, हमारे धाम पधारे हैं। नहीं तनिक सन्देह इसमें, हुए धन्य यह घर हमारे हैं।।

प्रेमी भक्तों के परम प्रियतम, अहेतु कृपा करने वाले। कृतज्ञ तनिक सी सेवा के, सत्य वचन ही सदा कहें।।
कौन बुद्धिमान् कहीं होगा, किसी अन्य शरण में जो जाये? आपको छोड़ के हे प्रभु, कहीं अन्य जो दृष्टि दौड़ाये।।
निज भक्त की सब इच्छा प्रभु, आप स्वयं पूर्ण करें। क्षति और वृद्धि से परे, इक रस आत्म का दान भी दें।।

हे भक्तभयहारी प्रभु, जन्म मरण सें मुक्ति भी दें। महायोगी राज और देव राज, स्वरूप आपका न जानें।।
कैसा सौभाग्य हमारा है, साक्षात् दर्शन हैं हुए। दारा सुत धन के मोह के, रज्जू में हैं हम तो बन्धे।।
यह आपकी ही तो माया है, हम पार न इसका पा सकें। कृपा करी हे प्रभु आप, इस बन्धन सें अब मुक्त करें।।
शुकदेव बोले,
भक्त अक्रूर ने हे राजन्, इस विधि पूजा और स्तुति करी। भगवान के मुख से मधुमयी, मोहित कर वाणी फिर निकली।।
कृष्ण बोले,
हैं आप गुरु हमारे चाचा, और हैं हितोपदेशक भी। हैं वंश में भी प्रशंसनीय, हमरे नित्य हितैषी ही।।
हम तो बालक हैं आपके, आपकी कृपा के पात्र हैं। हमरे पालक और रक्षक, सदा आप ही तात् हैं।।

महाभाग आप सम सन्तन का, सेवन हमारा कर्त्तव्य है। निज कल्याण जो चाहें कभी, सर्वदा यह कर्त्तव्य है।।
देवों से भी बढ़कर सदा, सन्त तो जानें रहते हैं। देव तो स्वार्थी हो सकें, नि:स्वार्थ सन्त सदा रहते हैं।।

केवल जल के तीर्थ ही, तीर्थ नहीं हैं इस जग में। माटी और शिला प्रतिमा, ही देवता नहीं भए।।
बहुत दिनों तक श्रद्धा से, गर पूजन अर्चन हो उसका। उस सेवा से ही कर पाये, फिर पावन दर्शन उसका।।
किन्तु सन्त पुरुष का तो, प्रमाण ही है ऐसा जानें। उसके दर्शन मात्र से, ही जीव पावन भये।।

हैं सर्वश्रेष्ठ हितैषी आप, सुहृद् आप हमारे हैं। इस कारण ही तात् हे, हम आपके द्वारे ठारे हैं।।
प्रिय बन्धु पाण्डव जन का, कुशलक्षेम अब जानें आप। इस हेतु से हे साधो, हस्तिनापुर को जायें आप।।

राजा पाण्डु की मृत्यु पर, निज माता कुन्ती के साथ। हमने सुना अति कष्ट में थे, वे पांचों ही हमारे भ्रात।।
अब राजा धृतराष्ट्र उन्हें, हस्तिनापुर हैं ले आये। वहीं पे रहते हैं वह सब, उनके आश्रित ही हैं सारे।।

आप तो यह जानें हे तात्, हैं दृष्टिहीन ही धृतराष्ट्र। दूजा मनोबल से भी हैं, अति निर्बल ही धृतराष्ट्र।।
अति दुष्ट है दुर्योधन, उनका है जो ज्येष्ठ पुत्र। उसके अधीन ही वह रहें, न मानें पाण्डवों को वह पुत्र।।

वास्तविक स्थिति है क्या उनकी, अब यह जानना चाहिये। इसलिये हे तात् अब, आप वहां पे जाइये।।

आपके द्वारा समाचार, उनका जान जब जाऊंगा। तब ही उन बन्धुजन के, सुख का साधन कर पाऊंगा।।

शुकदेव बोले,
परमेश्वर श्री कृष्ण ने, अक्रूर को यह आदेश दिया। बलराम और उद्धव सहित, वहां से फिर प्रस्थान किया।।

१२) अक्रूर का हस्तिनापुर जाना और पाण्डवोंका समाचार कृष्ण को देना

शुकदेव बोले,
प्रभु की आज्ञा पाकर के, श्री अक्रूर गये हस्तिनापुर। पुरुवंशी राजाओं की, अमर कीर्ति का स्थल वह पुर।।
धृतराष्ट्र भीष्म विदुर कुन्ती, बह्लीक को पहले वह मिले। फिर उसके सुत सोमदत्त, पुन: द्रोणाचार्य कृपाचार्य मिले।।
कर्ण दुर्योधन अश्वत्थामा, फिर पांचों पाण्डवों से मिले। अन्य सुहृद् और मित्र जो थे, उन सबको भी वह मिले।।

गान्दिनी सुत अक्रूर वहां, भली भाँति जब मिल चुके। मथुरावासी स्वजन की कुशल, जानने को सब उत्सुक थे।।
उत्तर देकर अक्रूर ने, फिर पूछा उन सबका कुशल। हस्तिनापुर निवासिन् का, फिर जानना चाहा कुशल मंगल।।

पाण्डवों के प्रति धृतराष्ट्र का, जानन को असली व्यवहार। अक्रूर ने कुछ मास तक, किया वहां पे ही प्रवास।।
सच जानें धृतराष्ट्र में तो, था साहस न किंचित् भी। निज दुष्ट सुतों की सम्मत्ति के, विपरीत न जा सकते वह कभी।।
वे भी शकुनि आदि सब, दुष्टों के हाथ में थे पड़े। उसकी अनुमति के बिना, नहीं काम थे कुछ भी वे करते।।

माता कुन्ती और विदुर ने, अक्रूर को यह बतलाया। धृतराष्ट्र दुर्योधन आदि के, मन में है अति द्वेष भरा।।
शास्त्र कुशलता वीरता, बल विनय प्रभाव गुण। सहन नहीं कर सकते वह, पाण्डवों के यह सब सद्गुण।।
जब देखें वह प्रजाजन का, अतिशय प्रेम है पाण्डवों पे। तब और भी चिढ़ के पाण्डवों का, अनिष्ट अधिक ही करते वे।।
अनेकों अत्याचार किये, विष तक भी उनको दे डाला। आगे भी विनाश के ही, उपायों में चित्त उनका लगा।।

अक्रूर जी जब कुन्ती के, प्रासाद में इक दिन थे बैठे। भ्राता के पास वह जा बैठी, जन्म स्थान की याद लिये।।
नेत्रों में आंसू भरकर, अपने भाई से यूं बोली। प्रिय भ्राता मेरे मातु पितु, भाई बहिन कुल बन्धु सभी।।
मेरी सखियां कुलस्त्रियां, क्या मुझको याद भी करें कभी? आज सभी को याद कर, मेरा हृदय व्यथित है हो रही।।

मैंने सुना मेरे भ्रातृ पुत्र, श्री कृष्ण और श्री बलराम। शरणागत के रक्षक हैं सदा, हैं कमल लोचन वह बलधाम।।
क्या अपनी इस फूफी के, पुत्रों को कभी वह याद करें? शोकाकुल मैं शत्रुन् से घिरी, मेरी भी रक्षा वह करें।।
मेरी दशा तो है भ्राता, कुछ ऐसी ही है हो रही। ज्यों भेड़ियों से घिरी, आकुल हो हरिणी कोई।।
अनाथ हुए हैं पुत्र मेरे, क्या कृष्ण यहां कभी आयेंगे? मुझको और मेरे पुत्रों को, क्या आकर धीर बंधायेंगे?
कुन्ती बोली,
(फिर कृष्ण का मानो सामने ही, कुन्ती दर्शन करने लगी। अपनी मनोव्यथा फिर वह, उनके चरण में धरने लगी।)
सच्चिदानन्द स्वरूप कृष्ण, हे महायोगी विश्वात्मा। जीवनदाता सब जगत् के, तुम ही हो सबके आत्मा।।
निज शिशुअन् संग हे कृष्ण, मैं दु:ख अपार हूं सह रही। शरणागत मैं तुम्हारी हूं, रक्षण करो हमारा तुम ही।।

यह संसार है मृत्युमय, हैं तुम्हरे चरण ही मोक्षदे। हे मेरे कृष्ण तव चरण ही, हैं बस इक आश्रय मेरे।।

जो जन इस संसार के, भव भय से भयभीत हैं। नहीं शरण कहीं और उन्हें, तू ही तो उनका मीत है।।

इस माया का लेश भी, हे कृष्ण तुम्हें न छू पाये। परम शुद्ध परमात्म तुम, कोई मल तुझपे न आये।।
सब साधन योग उपायों के, इक स्वामी तुम आप हो। शरणागत हूं मैं तुम्हारी प्रिय, तुम ही मेरी भी रक्षा करो।।
शुकदेव बोले,
तेरे परदादी कुन्ती ने, बन्धु बान्धव को याद किया। जगदीश्वर श्री कृष्ण का, फिर उसने सिमरन् किया।।
अति व्यथित हृदय था हुआ, वह फूट फूट कर रोने लगी। भाई को सामने देख करी, निज अश्रु न वह रोक सकी।।

अक्रूर और विदुर दोनों, ही थे समदृष्टि वाले। सुख और दु:ख दोनों में वह, समत्व भाव से थे रहते।।
दोनों ही महात्मा जन, कुन्ती को समझाने लगे। उसके पुत्रों के बीजप्रद, देवों की याद दिलाने लगे।।
याद यह उसको करवाया, है उनका जन्म प्रयोजन क्या? अधर्म नाश के हेतु ही, इन सबका है जन्म हुआ।।
बहुत विधि समझाया उसे, और कुन्ती को सान्त्वना दी। उनकी बातें सुन करी, उसको भी कुछ धीर बन्धी।।

मथुरा जाने से पहले, अक्रूर गए धृतराष्ट्र पास। स्पष्ट हो चुका था उनको, तब तक राजा का पक्षपात।।
यह भी जान चुके थे वह, नहीं भ्रातृ पुत्रों से समव्यवहार। अक्रूर ने अब कौरवों की, राज्य सभा में दी ललकार।।
श्री कृष्ण और बलराम का, हित से भरा सन्देश कहा। यादवों ने जो था भेजा, वह सन्देश बता दिया।।

अक्रूर बोले,
उज्ज्वल कीर्ति महाराज आप, कुरु कीर्ति का वर्धन करें। विशेष है यह कर्त्तव्य तव, भ्राता पाण्डु तो स्वर्ग गए।।
उनके बाद अब आप ही, सिंहासन के अधिकारी हुए। आप ही धर्म से युक्त हो, पृथ्वी का अब पालन करें।।
अपने सद्व्यवहार से, प्रजा का मन जीतें राजन्। अपने स्वजन के साथ भी, व्यवहार सदा हो आपका सम।।
ऐसा करने से ही आप, इहलोक में भी यश पाएंगे। तत्पश्चात् परलोक में भी, सद्गति प्राप्त कर जाएंगे।।

गर आचरण विपरीत हुआ, इह लोक में भी निन्दा होगी। और फिर देहान्तर पर, नरकों की ही प्राप्ति होगी।।
इस कारण अपने पुत्रों और, पाण्डवों से हो समव्यवहार। इसीमें आपका कल्याण है, इसी में है धर्म का सार।।

आप तो जानें यह राजन्, नहीं शाश्वत साथ कोई जग में। जिनसे है आज संयोग हुआ, वियोग वहां निश्चित होंगे।।
और की बात तो दूर रही, अपना तन भी नहीं साथ दे। फिर दारा सुत धन आदि की, तो हम बात ही क्या करें।।
जीव जन्म ले अकेला ही, मृत्यु पर भी एकाकी रहे। अपनी करनी और पाप पुण्य, का फल भी अकेला ही भोगे।।

निज स्त्री और पुत्रों को, हम अपना समझते हैं। हम हैं तुम्हारे भरण पोषण, हमारे कर्त्तव्य तुम्हारे हैं।।
इस भाँति की बातें कही, वह मूर्ख बनाएं जीव को। सारा धन वह लूट लें, संचित था किया अधर्म से जो।।
जैसे जलचर जीवों का, सर्वस्व तो है यह जल ही। किन्तु उस जल का क्षय करें, उसके बन्धु बान्धव ही।।

मूर्ख जिनको अपना जान, अधर्म से भी पाला करे। वही पुत्र धन जीव प्राण, अतृप्त छोड़ इसे चल ही दें।।
धर्म से ही जो विमुख रहे, निज लौकिक स्वार्थ भी न जाने। वे भी छोड़ ही देंगे उसे, वह जिनके लिये अधर्म करे।।
न सन्तुष्ट हो पाये कभी, पापों की गठरी सीस धरे। इस तनो त्याग पश्चात् वह, घोर नरक को ही चल दे।।

इसलिये महाराज अब, बात समझ यह लीजिये। यह जग तो है स्वप्नवत, मनोराज्य है क्षणभंगुर ही यह।।
अपनी शक्ति और यत्न से, चित्त को अपने रोक लें। ममता के वश में होकर, पक्षपात नहीं आप करें।।
समर्थवान् हैं राजन् आप, समत्व में ही अब स्थित हों। और संसार के प्रति आप, शान्त और उपराम हों।।
धृतराष्ट्र बोले,
हे दानवीर अक्रूर जी, हैं आप ही मेरे हितकारी। इस कारण मम कल्याण की, आपने हैं यह बात कही।।
ज्यों मरनेवाला अमृत के, पान से कभी न तृप्त हो। वैसे ही आपकी बातें सुन, मेरा मन भी न तृप्त हो।

फिर भी सौम्य यह बातें तेरे, मेरी चंचल चित्त में न ठहरें। तव हितकर प्रिय शिक्षा, मेरे पुत्र मोह में खो जाये।।
ज्यों स्फटिक के पर्वत पर, दामिनी चमक के लुप्त भए। वही अवस्था इस समय, मुझ पर उपदेशों की होए।।

हे अक्रूर सुना हमने, हैं ईश्वर धरती पर उतरे। भूमि का भार उतारन को, हैं यदुकुल में अवतीर्ण हुए।।
उनके विधान में कौन पुरुष, उलट फेर कभी कर सके? होगा तो वही इस जगत् में, जैसी उनकी इच्छा होए।।

है अति गुह्य प्रभु की माया, चिन्तन से वह है परे। इस माया के द्वारा ही, संसार की वह सृजना करें।।
स्वयं प्रविष्ट होकर इसमें, कर्म फल द्वौ में बांटें। बेरोक टोक संसार का, चक्र निरन्तर चला करे।।
उनकी अचिन्त्य माया शक्ति, ही इक इसका कारण है। उन्हीं श्री हरि परमेश्वर को, स्वीकार हो मेरा नमन है।।
शुकदेव बोले,
इस विधि श्री अक्रूर ने, जाना भाव धृतराष्ट्र का। कुरु वंशी बन्धु बान्धवों से, फिर प्रेमपूर्वक ली विदा।।
श्री कृष्ण का काज वह कर करी, मथुरा में पुन: लौटे। श्री कृष्ण और बलराम को, वहां के सब वृत्तान्त कहे।।
धृतराष्ट्र का जैसा भी, पाण्डवगण से व्यवहार था। उसके सब बर्ताव का, वर्णन उन्होने कर दिया।।
हस्तिनापुर में भेजने का, श्री कृष्ण का था उद्देश्य यही। इस प्रकार अक्रूर ने, कर्त्तव्य निज सम्पन्न करी।।

१३) श्रीकृष्ण का जरासन्ध से भीषण युद्ध

शुकदेव बोले,
भरतश्रेष्ठ परीक्षित् हे, थीं कंस की दो महारानियाँ। अस्ति और प्राप्ति नाम थे, पति हनन से व्यथित थीं रानियाँ।।
पति की मृत्यु बाद वह, अपने पिता के घर गईं। दोनों का था पिता जान, मगधराज जरासन्ध ही।।
अति दु:खी हो दोनों ने, उसको सारा वृत्तान्त कहा। विधवा कैसे हुईं दोनों, पिता से जा कारण कहा।।

शोक समाचार यह सुनी, जरासन्ध तो पहले क्षुब्ध हुआ। किन्तु उस क्षोभ ने जल्दी ही, फिर भीषण क्रोध का रूप धरा।।
धरा पे यदुवंशी न रहें, ऐसा उसने संकल्प किया। फिर भीषण महायुद्ध का, भी उसने प्रबन्ध किया।।
तेईस अक्षौणी सेना ले, मथुरा को उसने घेर लिया। यदुवंशियों की राजधानी, पर डाला उसने डेरा।।

कृष्ण ने देखा दूर से ही, है जरासन्ध की सेना क्या। जैसे कोई सागर ही हो, मानो कहीं उमड़ता हुआ।।
उन्होंने यह भी देख लिया, चहुँ ओर से घेर ली मथुरा पुरी। पुरवासी और स्वजन, हुए देख भयभीत सभी।।

भगवान कृष्ण ने धरती का, भार उतारन के लिये। ही तो यह मनुज के, रूप हैं धारण किये हुए।।
अब उन्होंने विचार किया, अवतरण का है प्रयोजन क्या? इस समय इस स्थान पर, फिर सोचा कर्त्तव्य है क्या?

कृष्ण सोचने लगे,
सोचा यह तो बहुत भला हुआ, जरासन्ध स्वयं ही आ गया। अधीनस्थ राजाओं की, सेना से है सुदृढ़ हुआ।।
पैदल अश्वारोही रथी, हाथी से युक्त यह सेना है। अनेकों ही अक्षौणी यह, जरासन्ध की सेना है।।
सब पृथ्वी का भार ही ज्यों, मेरे सामने आ है गया। नष्ट करूँगा इसको मैं, जरासन्ध नहीं मारूँगा।।
यदि जीवित रहेगा यह, पुन: असुर अनेकों लायेगा। उनकी सेना को लाकर यह, मेरे हाथों मरवायेगा।।

अवतरण का बस प्रयोजन इक, पृथ्वी के बोझ को हल्का करूँ। साधुजन की रक्षा करूँ, और दुर्जन का संहार करूँ।।
धर्म की रक्षा के लिये, मैं समय समय पर आता हूँ। अधर्म को न मैं बढ़ने दूँ, अनेक रूप धरी आता हूँ।।
शुकदेव बोले,
श्री कृष्ण अभी यह सब, विचार ही थे कर रहे। सूर्य समान चमकते रथ, आकाश से तब दो आ पहुँचे।।
युद्ध की सब सामग्री से, दोनों रथ थे सजे हुए। और चतुर सारथी दो, थे दोनों रथ को हांक रहे।।
प्रभु के दिव्य सनातन आयुध, तत्क्षण ही वहाँ आ पहुंचे। उन्हें देख कर श्री कृष्ण, अग्रज दाऊ से कहने लगे।।

हे भ्राता महाशक्तिवान्, बलधाम हैं आप ही। यदुवंशी तो सब मानें, स्वामी और रक्षक आपको ही।।
आपसे ही सनाथ हैं जो, महाविपदा उनपर आन पड़ी। देखें यह रथ है आपका, संग हल आदि प्रिय आयुध थी।।

इस रथ पर सवार हो, शत्रु सेना संहार करें। बन्धु बान्धवों की अपने, अब शत्रुन् से रक्षा करें।।
साधुजन के कल्याण को ही, हम दोनों ने अवतार लिया। हे भगवन् अब कर्त्तव्य का, उचित समय है आ पहुँचा।।

तेईस अक्षौणी सेना यह, पृथ्वी पे जो महाभार बनी। इसका नाश करें भ्राता, आप स्वयं निस्संशय ही।।
यह सम्मति कर कृष्ण राम ने, कवच धारण कर लिये। रथों पर वह हुए सवार, और मथुरा से निकल पड़े।।
दोनों भाई अपने अपने, आयुध थे सब लिये हुए। छोटी सी सेना मथुरा की, थी उनका अनुगमन किये।।
दारुक श्री कृष्ण के सारथी, रथ को हो दक्ष थे हांक रहे। पाञ्चजन्य का नाद किया, जब पुरी से बाहर वह निकले।।

तुमुल ध्वनि सुनी शंख की, शत्रु के हृदय विदीर्ण हुए। उन्हें देखी जरासन्ध ने, फिर कृष्ण से यह वचन कहें।।
नराधम है अरे कृष्ण तू, तू तो अभी बालक ही है। तुझ अकेले संग लड़ूँ, नहीं मेरे बल के अनुरूप यह है।।

इतने दिन तक तू न जाने, कहाँ पे छिपकर बैठा था। निज मामा का हत्यारा तू, तुझ संग नहीं मैं लड़ सकता।।
जाओ मेरे सामने से, दूर ही तुम अब हो जाओ। भागो तुम युद्ध क्षेत्र थे, युद्ध न यह तुम कर पाओ।।

ऐ बलराम यदि चित्त में, तू ऐसी श्रद्धा रखे। युद्ध में गर प्राणा त्यजे, स्वर्ग तुझे तब ही मिले।।
तो आ हिम्मत बान्ध अब, और तू मुझसे युद्ध कर। मेरे बाणों से छिन्न हुए, इस तन को फिर त्याग कर।।
स्वर्ग को ही तू प्राप्त कर, या फिर तू मेरा हनन ही कर। इस कारण अब युद्ध से, तू किसी भाँति न डर।।

भगवान बोले,
हे राजन् जो वास्तव में, शूरवीर कहीं होएं। तेरी तरह वह बड़ी बड़ी, बातें मुख से नहीं करें।।
वे तो युद्ध में ही अपना, कौशल फिर दिखलाते हैं। देखो मगधराज तेरी, मृत्यु तव सर पे नाचे हैं।।

सन्निपात का रोगी ज्यों मृत्यु निकट जा व्यर्थ बके। त्यों ही तुम बकवाद करो, नहीं ध्यान योग्य तेरी बात रहे।।
शुकदेव बोले,
भगवान कृष्ण बलराम को, जरासन्ध ने घेर लिया। विस्तृत बलशाली सेना से, चहुँ ओर से घेर लिया।।
उनके रथ सेना ध्वजा सभी, उनके पीछे ही छिपे ज्यों हों। वास्तव में आवृत्त नहीं वह हों, प्रकाश: पुन: उनका विस्तृत हो।।
ज्यों वायु से मिली बादल, सूर्य को मानो ढक ही दें। और धुएं से ही अग्नि, जिस विध आवृत्त हो जाये।।

महलों की अटारी छज्जों और, द्वारों पे चढ़कर नारियाँ। युद्ध का कौतुक देखें थीं, मथुरा की सब नारियाँ।।
युद्ध भूमि में कृष्ण का, गरुड़ से चिन्हित ध्वजा जो था। और श्रीर बलराम का, ताल चिन्ह का ध्वज जो था।।
जब वह रथ नहीं दीख पड़े, शोक विह्वल वह हो गई। शोक आवेग न सह सकीं, और मूर्छित वह हो गईं।।

जब भगवान ने देखा यह, शत्रु हैं बाण बरसा रहे। ज्यों बादल से जल बरसे, सेना पे बाण त्यों ही बरसें।।
उनसे सेना हमारी यह, अति पीड़ित है हो गई। तब प्रभु ने अपनी दिव्य, शार्ङ्गधनु: टंकार की।।
देवासुर दोनों से ही, यह धनुष सम्मानित था। प्रभु के इस धनुष की तो, त्रिलोकी में ही थी चर्चा।।

तत्पश्चात् तरकश से खेंच, वह बाण धनुष पे चढ़ाने लगे। डोरी खेंच के धनुष की, बाण समूह चलाने लगे।।
धनुष प्रभु का उस समय, था तीव्र वेग से घूम रहा। मानो अति वेग से ही कोई, लट्टू को हो चला रहा।।
जरासन्ध की चतुरंगी, सेना का हनन प्रभु करने लगे। हाथी घोड़े रथ और पैदल, सैनिक सब मरने लगे।।

सिर फटे हाथियों के, और वह मरकर गिरने लगे। बाणों की बौछार ने, अश्वों के सीस भी छिन्न किये।।
घोड़े ध्वजा सारथी और, रथी नष्ट जब हो गए। अनेकों रथ उस युद्ध में, किसी काम के नहीं रहे।।
पैदल सेना के अंग अंग, कट कर भूमि पर गिरने लगे। भुजा जांघ और सिर आदि, भूमि पे थे लुण्ठित हुए।।

महातेजस्वी बलराम, मूसल की चोट थे कर रहे। रक्त की ज्यों नदियाँ बहीं, मतवाले शत्रु मारे गए।।
कहीं मनुष्य थे कट रहे, कहीं हाथी घोड़े मर रहे। रक्त की धार में पड़ी भुजा, सर्प समान ही थीं दीखे।।
सीस थे ऐसे पड़े हुए, जैसे कछुओं की भीड़ लगी। मृत हाथी मानो द्वीप कोई, अश्व ग्रह सम दीख रही।।

हाथ और जंघा थीं पड़ीं, जैसे हों अनेकों ही मछली। ढालें थीं ऐसे पड़ीं, ज्यों हो भयंकर भंवर कोई।।
मणियाँ आभूषण अमूल्य, उसमें थे बहे जा रहे। ज्यों कंकर पत्थर कोई, जल में प्रवाहित हों हुए।।
वह रक्त की नदियाँ देखकर, कायर पुरुष थे डर रहे। और वीरों के आपस में, उत्साह और थे बढ़ रहे।।

जरासन्ध की सेना वह, सागर समान ही दुस्तर थी। भयावह और थी दुर्गम वह, और अति दुर्जय थी।।
कृष्ण राम ने जल्दी ही, उस सेना को नष्ट किया। पूर्ण जग के स्वामी वह, खिलवाड़ मात्र ही युद्ध यह था।।

भगवान के गुण तो अनन्त हैं, क्रीड़ा क्रीड़ा में ही वह। पूर्ण सृष्टि उत्पन्न करें, उसे पालें और संहारें वह।।
शत्रु की सब सेना का, यह हनन भी है इक खेल ही। तथापि मनुज रूप धर कर, वह लीला करते मनुज सी।।

इस भाँति जरासन्ध की, सेना सारी मारी गई। रथ भी टूट गया उसका, तन में बस केवल प्राण बची।।
ज्यों इक सिंह दूजे को, बलपूर्वक ही पकड़ ले। त्यों ही श्री बलराम ने, महाबली जरासन्ध पकड़े।।

जरासन्ध ने तो बहुत, विपक्षी राजा थे मारे। किन्तु आज बलराम उसे, थे मृत्यु पाश में बान्ध रहे।।
श्री कृष्ण ने उस समय, बलराम जी को रोक दिया। कहा यह जीवित गर रहा, और भी असुर यह लायेगा।।
इस विधि भूमि का भार, एकत्रित होकर आयेगा। और सहज में ही सबका, संहार स्वत: हो जायेगा।।

शूरवीर जरासन्ध तो, महावीरों में सम्मानित था। श्रीकृष्ण राम की दया को पा, वह अति लज्जित हुआ।।
महातपस्या करने का, उसने निश्चय कर लिया। पर राह में उसके सहयोगी, नरपतियों ने उसे समझाया।।
यदुवंशी तो आपको, पराजित नहीं थे कर सकते। आप की हार यह है हुई, केवल प्रारब्ध अधीन ही हे।।
पुन: विजय की आशा दी, लौकिक दृष्टान्त युक्तियाँ दीं। इस विधि जरासन्ध की, दृष्टि तप से हटा ही दी।।

मगधराज की सारी ही, सेना का था हनन हुआ। श्री दाऊ ने उपेक्षा कर, उसको था दीनवत् छोड़ दिया।।
मथुरा पर उसका आक्रमण, पूर्ण ही निष्फल रहा। बहुत हताश था वह हुआ, निज देश मगध को चला गया।।

भगवान कृष्ण की सेना में, नहीं किसी का बाल भी बाँका हुआ। सागर सम दुस्तर सेना को, सहज ही उन्होने विजय किया।।
देवतागण उसपल उनपर, पुष्प थे बरसा रहे। और इस महाकार्य की, स्तुति थे सब गा रहे।।

जरासन्ध की पराजय से, मथुरावासी थे अभय हुए। भगवान कृष्ण की विजय से थे, सबके मन आनन्द भरे।।
युद्धक्षेत्र से पुन: प्रभु, उनके बीच पधार गये। सूत मागध और बन्दी, थे विजय गीत वा गा रहे।।

श्री कृष्ण ने जिस पल था, नगर में पुन: प्रवेश किया। शंख नगारे भेरी तुरही, वीणा मृदंग का स्वर गूंजा।।
मथुरा के इक इक राजपथ, गलियों में था छिड़काव हुआ। प्रसन्न वदन थे पुरवासी, चहल पहल था वहाँ मचा।।
था छोटी छोटी झण्डियों, पताकाओं से नगर सजा। बन्दनवारों को बान्धकर, आनन्दोत्सव था मनाया गया।।
ब्राह्मणों द्वारा वेदध्वनि, का उच्चार था हो रहा। उसके गुंजन से मथुरा का, था वायुमण्डल गूंज उठा।।

नगर नारियों के नयनों में, प्रेम और उत्कण्ठा भरी। स्नेह पूर्वक सब कृष्ण को, ही तो थीं निहार रहीं।।
पुष्पमाल दही अक्षत जौ, आदि की वर्षा कर थीं रहीं। इस प्रकार प्रभु के आने का, मंगल स्वागत कर थीं रहीं।।

रणभूमि से अपार धन, शत्रु आभूषण जो थे मिले। वे सब लाकर श्री कृष्ण ने, महाराज उग्रसेन को दिये।।
इस विधि तेइस अक्षौणी, सेना ले जरासन्ध ने। सत्तरह बार श्री कृष्ण से, सुरक्षित यदुवंशियों पे।।

हे राजन् आक्रमण किया, किन्तु परास्त ही वह हुआ। यादव वंश को तो प्रभु, की शक्ति का आश्रय था।।
सेना नष्ट जब हो जाती, यदुवंशियों की उपेक्षा पा। हर बार ही मगधराज, अपने देश को लौटता।।

अठारहवां संग्राम अभी, आरम्भ ही होने वाला था। उसी समय श्री नारद ने, वहाँ कालयवन को भेज दिया।।
कालयवन समान कोई, न दूजा वीर था इस जग में। यदुवंशियों के बल वैभव के, जब उसने चर्चे सुने।।
तीन करोड़ मलेच्छों को, एकत्रित उसने किया। चहुँ ओर से ही उसने, मथुरा पुरी को घेर लिया।।

उस आक्रमण को देख कर, बलराम से फिर विचार किया। यदुवंशियों पर इसपल, दो विपदायें पड़ी हैं आ।।
महाबली इस कालयवन ने, आज है हमको घेर लिया। जरासन्ध भी कल परसों में, यहाँ पहुँच ही जायेगा।।

यदि हम दोनों भाई, इससे युद्ध में उलझ गए। और मगधराज जरासन्ध भी, उसी समय गर आ पहुँचे ।।
बन्धु हमारे मारेगा, या बन्दी उन्हें बना लेगा। अति बलशाली है वह, निज नगर में उन्हें ले जायेगा ।।

१४) कालयवन से युद्ध, कालयवन का मुचकुन्द द्वारा वध

शुकदेव बोले,
जब प्रभु मथुरापुरी के, मुख्य द्वार से हुए बाहर। ऐसा लगा ज्यों पूर्व दिशा में, चन्द्रमा निकला हो शीतल ।।
श्यामल तन था अति सुन्दर, रेशम का उसपे पीताम्बर। वक्ष:स्थल पर श्री वत्स चिन्ह, स्वर्ण रेखा धरा रूप मधुर ।।
कौस्तुभ मणि कण्ठ सुहाये अति, चतुर्भुज लम्बी और स्थूल। नव विकसित कमल समान ही, रतनारे नयन अति कोमल ।।
आनन्द राशि माने उनके, मुख पर नृत्य थी कर रही। सुन्दर कपोलों की मुखपर, छटा बनी बहुत न्यारी थी ।।
मन्द मन्द मुसकान उनकी, थी सबका चित्त चुरा रही। मकराकृति कुण्डल कानों में, उनकी भी छवि निराली बनी ।।

उन्हें देखकर कालयवन ने, निश्चय यह मन में किया। यही पुरुष है वासुदेव, उसने ऐसा जान लिया ।।
जो जो लक्षण नारद ने, उनके मुझे बताये थे। श्री वत्स चिन्ह वक्ष:स्थल पे, चतुर्भुजा धारी वह थे ।।
कमलनयन गल वनमाला, सौन्दर्य ही मूर्तिमान् हो ज्यों। यह चिह्न इसी में तो मिलें, नहीं अन्य कोई इतना जानूँ ।।
अस्त्र शस्त्र के बिना ही यह, पैदल इस ओर है आ रहा। इस कारण मैं भी नि:शस्त्र ही, इससे युद्ध यह करूँगा ।।

ऐसा निश्चय कर कालयवन, भगवान पे जाकर जब झपटा। रणभूमि से वह भाग चले, दूजी ओर उन मुख मोड़ा ।।
योगी जन के लिये भी जो, श्री हरि अति दुर्लभ हैं। उनके पीछे भागा कालयवन, समझ पकड़ना सुलभ है ।।

रणछोड़ प्रभु तो यहाँ पे भी, लीला अपनी थे रचा रहे। कालयवन के आगे आगे, वह थे भागे जा रहे ।।
अब पकड़ा बस अब पकड़ा, हर पल वह यही समझता था। प्रभु के पीछे पीछे वह, बहुत दूर गुफा तक जा पहुँचा ।।

बार बार यह कालयवन, आवाज था उनको दे रहा। महायशस्वी यदु हो तुम, नहीं भागना रण से उचित तेरा ।।
किन्तु अशुभ थे उसके बचे, नहीं सस्कार थे खत्म हुए। इस कारण भगवान को, पकड़न में असमर्थ रहे ।।

उपेक्षा उसने बहुत कर, प्रभु फिर भी गुहा प्रवेश किया। उनका पीछा करता हुआ, काल यवन भी वहाँ पहुँचा ।।
वहाँ पे अन्य किसी को ही, सोता हुआ उसने देखा। उसे देखकर कृष्ण यह है, कालयवन ने यह सोचा ।।
मुझे भगाकर इतनी दूर, अकेला ही है ले आया। अब साधु बन है सो रहा, मानो सबसे अनभिज्ञ बना ।।
यह सोच कर उस मूढ़ ने, उनपर पाद प्रहार किया। उसके पांव की ठोकर खा, चिरसुप्त वह जीव उठा ।।
धीरे धीरे उसने फिर, नयना अपने खोल लिये। उन नयनों को सामने, कालयवन के दरस हुए ।।

पद आघात वह खाकर के, रुष्ट ही था कुछ हो गया। उसकी दृष्टि से कालयवन, का तन ज्यों अग्नि ने ग्रसा ।।
क्षण भर में उस अग्नि में, जलकर के वह भस्म हुआ। कालयवन का तन तो वहीं, पल में भस्मीभूत हुआ ।।
परीक्षित बोले,
जिसके दृष्टिपात से ही, कालयवन वह भस्म हुआ। हे द्विजवर अब कहें आप, महापुरुष वह कौन था?
किसका वंशज किसका पुत्र था, उसमें शक्ति कैसी थी? कृपा करी यह भी कहें, उस गुफा में क्यों उसने शयन करी?

शुकदेव बोले,
इक्ष्वाकु वंश के, महाश्रेष्ठ वह वंशज थे। महाराजा मान्धाता के, पुत्र वह मुचुकुन्द थे।।
ब्राह्मणों के थे परम भक्त, और थे महा सत्य प्रतिज्ञ। महावीर संग्राम विजयी, थे जानो वह महापुरुष।।

इन्द्रादि देव इक बार बहु, भयभीत हुए जब असुरों से। अपनी रक्षा के लिए, गए मुचुकुन्द पे प्रार्थना ले।।
मुचुकुन्द ने भी बहुत काल तक, देवों की रक्षा करी। स्वामी कार्तिकेय मिले जब, बहुत दिन में सेनापति बनी।।
तब देवों ने वहाँ आकर, प्रार्थना की मुचुकुन्द से। किया श्रम आपने बहुत ही, हम लोगों की रक्षा के लिये।।
अब विश्राम करें राजन्, उपकार किया बहुत आपने। मर्त्यलोक के निष्कण्टक, राज्य आपने छोड़ दिये।।
जीवन की सब इच्छाओं, और भोगों का त्याग किया। हम सब देवों पर तो है, महा ऋण यह आपका।।

आपकी रानियां पुत्र पौत्र, बान्धु सब काल का ग्रास बने। आमात्य मन्त्री और प्रजा, नहीं आपके काल के कहीं रहे।।
बलवानों से भी यहाँ, बलवान् है वह काल ही। हैं स्वयं परम समर्थ वह, भगवत्स्वरूप अविनाशी ही।।
ज्यों ग्वाले निज पशुओं को, अपने वश में सदा रखें। त्यों ही खेल खेल में वह, सारी प्रजा को अधीन करे।।

हे राजन् कल्याण हो तेरी, जो इच्छा हो सो मांग लें। कैवल्य मोक्ष को छोड़कर, हम अन्य सभी कुछ दे सकें।।
केवल श्री प्रभु विष्णु ही, कैवल्य मोक्ष का दान करें। उनके सिवा किसी अन्य में, नहीं है यह सामर्थ्य हे।।

देवों के इस विधि कथन पर, मुचुकुन्द ने उनकी वन्दना की। बहुत क्लान्त और श्रान्त थे वह, निद्रा की वर उन्होंने मांग ली।।
उनसे वर पाकर के वह, पर्वत गुफा में जा लेटे। उस समय देवों ने पुन:; आकर उनसे यह वचन कहे।।
हे राजन् यदि मूर्ख कोई, निद्रा भंग करे आपकी। तत्क्षण वह भस्म हो जायेगा, आपकी दृष्टि पड़ते ही।।

जब कालयवयन यूं भस्म हुआ, तब कृष्ण वहाँ पे प्रकट हुए। यदुवंश शिरोमणि कृष्ण ने, धीमति राजा को दरस दिए।।
श्री विग्रह वर्षाकालीन, मेघ समान ही था श्यामल। रेशम के पीताम्बर की, बनी अनुपम छटा उसपर।।
कण्ठ में थी कौस्तुभ मणि, वक्ष:स्थल पर श्री वत्स चिन्ह। वैजयन्ती माल थी लटक रही, चतुर्भुज रूप किये धारण।।
प्रसन्न वदन मुख कमल उनका, था खिला हुआ आनन्द से। कानों में मकराकृति के, कुण्डल थे जगमग चमक रहे।।
होठों पे स्मित थी प्रेममय, नयनों से ज्यों बरसे अनुराग। थी तरुणावस्था दर्शनयी, और सिंह समान थी उनकी चाल।।
राजा मुचुकुन्द थे धैर्यवान्, और बहुत ही बुद्धिमान्। दिव्य ज्योतिर्मय रूप देख, हुए अति आश्चर्यवान्।।
उस तेज से वह हतप्रभ हुए, दुर्धर्ष तेज वह प्रभु के थे। शंकित होकर फिर राजा ने, प्रभु सम्मुख यह प्रश्न करे।।

मुचुकुन्द बोले,
हैं कौन आप यह मुझे कहें, इस कण्टक बन में क्यों विचरें? चरण कमल अति कोमल यह, छेदित काण्टों से होएं।।
पर्वत की इस गुफा में आप, क्योंकर प्रभु पधारे हैं? यहाँ आने के लिये कहें, क्या प्रयोजन आपके हैं?

सभी तेजवानों का तेज, मूर्तिमान् ज्यों हो गया। अथवा साक्षात् अग्नि देव, ने ही रूप यह है धरा।।
या सूर्य चन्द्र के रूप में, लोकपाल जो प्रकट हुए। या देवेन्द्र के रूप में ही, अन्य लोकपाल आये।।

मुझको तो ऐसा दीखे, हैं परम आराध्य ही देवों के। ब्रह्मा शंकर और विष्णु में, श्री नारायण ही दीख रहे।।

ज्यों दीपक के सामने, नहीं अन्धकार कहीं टिक सके। त्यों ही तेरी अंग कान्ति प्रभु, तिमिर गुहा का दूर करे।।
हैं सत्य के जिज्ञासु हम, आप ही हमें बताइए। निज जन्म कर्म और गोत्र का, रहस्य प्रकट कर जाइये।।

अपना परिचय भी आपको, पुरुषोत्तम हम देना चाहें। इक्ष्वाकु वंश के क्षत्रिय हम, नाम है मुचुकुन्द हे।।
युवानाश्व नन्दन महाराज, मान्धाता का मैं पुत्र हूँ। इतना ही परिचय इस पल, अपना आपको मैं अब दूँ।।

बहुत दिनों तक जाग कर, रक्षा थी देवों की करी। इस कारण यह तन मेरी, अति श्रान्त थी हो गई।।
निद्रा ने सब इन्द्रियों की, मेरी शक्ति थी छीन ली। इस कारण निर्जन वन में, निर्द्वन्द्व स्थान यह मुझे मिली।।
अभी अभी यहाँ पर ही, किसी ने मुझे जगा दिया। उसके ही पापों ने उसे, जला कर है भस्म किया।।
तत्पश्चात् परम सुन्दर, आपका दर्शन मुझे हुआ। दर्शन मात्र से ही मानो, शत्रु विनष्ट सब हो गया।।

हे महाभाग सब जीवों के, पूजनीय ही आप लगें। आपका दिव्य असह्य तेज, सब शक्ति मेरी हरे।।
बहुत देर तक आपको, मैं देख भी न पाऊँ भगवन्। जब ऐसा कहा मुचुकुन्द ने, तो हंसकर नाद की मेघ सम।।
भगवान बोले,
प्रिय मुचुकुन्द असंख्य ही हैं, जन्म कर्म और नाम मेरे। नहीं गणना उनकी कर सकूँ, वह तो हैं अनादि अनन्त।।
अनेक जन्म में कोई जीव, भूमि के कण तो गिन भी ले। किन्तु गुण कर्म नाम जन्म, मेरे की गणना न होए।।

सनक सनन्दन परम ऋषि, मेरे गुण ही गायें सदा। त्रिकाल सिद्धि मम जन्म और, कर्मों का वर्णन करें सदा।।
किन्तु यह सब करके भी, वह पार न उनका पा सकें। मेरे गुह्य रहस्य की, थाह नहीं कभी उन्हें मिले।।

ऐसा होने पर भी मैं, निज जन्म कर्म और नाम कहूँ। श्रवण करो तुम ध्यान से, उनका मैं वर्णन करूँ।।
पहले श्री ब्रह्मा ने स्वयं, आराधना थी मेरी करी। भूमि का भार उतारन् को, असुरन् संहार की प्रार्थना की।।
उसके ही प्रतिरूप में, यदुवंश में हैं मम जन्म हुआ। श्री वसुदेव का पुत्र हूँ मैं, वासुदेव है नाम मेरा।।

कंस के रूप में जन्मा जो, कालनेमि राक्षस मारा। साधु द्रोही प्रलम्बादि, असुरों का है संहार किया।।
हे राजन् यह था कालयवन, जिसे गुफा में मैं ही लाया था। मेरी ही प्रेरणा से तेरी, तीक्ष्ण दृष्टि पा भस्म हुआ।।
वही मैं तुम पर कृपा करने, इस गुफा में आया हूँ। तुमने आराधनी कर बहुत, जानो भक्त वत्सल मैं हूँ।।

इसलिये हे राजर्षे, जो चाहो मुझसे मांग लो। सब अभिलाषा लालसा, हे राजन् तुम्हारी पूर्ण हो।।
जो मेरी शरण में आ जाये, दुर्लभ उसको कुछ भी न रहे। नहीं ऐसा जग में कुछ भी हो, जिसके लिये वह शोक करे।।

शुकदेव बोले,
श्री कृष्ण कथन यह सुन करी, मुचुकुन्द की स्मृति जागी। वृद्ध आचार्य गर्ग की, कथनी उसको याद आई।।
उन्होने ही यह था कहा, होंगे अवतीर्ण यदुवंश में। यह तो श्री नारायण है, मुचुकुन्द यह जान गए।।
हृदय आनन्द से भर उठा, उनके चरणों में प्रणाम किया। फिर राजा ने मुक्त कण्ठ से, श्री हरि का गुणगान किया।।
मुचुकुन्द बोले,
हैं आपकी माया से मोहित, सब प्राणी प्रभु इस जगत् के। अनर्थ में ही वह फंसे रहें, विमुख आपसे होकर के।।

आपका भजन वह नहीं करें, गृहस्थी में वह फंसे रहें। सुख की आशा हिय धरी, वह दु:ख के मूल में फंसे रहें।।
इस भान्ति सब नर नारी, माया से ठगे हैं जा रहे। जन्म मरण के चक्र में वह, पुन: पुन: भरमा रहे।।

निष्पाप स्वरूप हैं आप हरि, यह भूमि भी अति पावन है। कर्मभूमि है यह धरती, यहाँ मनुज जन्म अति दुर्लभ है।।
परिपूर्ण है मानव जीवन, नहीं विघ्न उसे कोई भजन में। अपने परम सौभाग्य और, भगवद् कृपा से प्राप्त करे।।

क्षणिक विषय सुख के लिये, ही जो सारे यत्न करें। घर संसार के अन्धकूप, में जो सदा ही पड़े रहें।।
प्रभु के चरण कमल की जो, उपासना कभी नहीं करते। तृण के लोभ से कृप में, ज्यों पशु जाकर गिरे।।
वह तो उसके समान हैं, आपका भजन नहीं करते। मनुष्य का तन यह पाकर भी, अन्धकूप में पड़े रहें।।

हे भगवन् राजा था मैं, राज्य लक्ष्मी मद में खोया। मृत्युधर्मा इस तन को ही, स्वरूप था अपना मान रहा।।
रानी राजकुमार और, पृथ्वी धन में ही मोहित था। दिन रात गले थी लगी रहती, उन वस्तु की ही चिन्ता।।
इस प्रकार मेरे जीवन का, अनमोल समय सब व्यर्थ गया। मनुष्य तन पाकर के भी, इसको मैंने निष्फल किया।।

जो तन है प्रत्यक्ष ही, घट समान माटी से बना। दृश्य है उसके समान ही, पर अपने से है अलग बना।।
उस नश्वर तन को ही, मैंने निज आत्म मान लिया। फिर उस पर भी अपने को, नरपति मानी मैं बैठा रहा।।
मद में इतना अन्धा हुआ, आपको कुछ जाना ही नहीं। रथ हाथी घोड़ों में भ्रमा, आपको पहचाना ही नहीं।।

विविध चिन्ताओं में पड़ा, यह है कर्त्तव्य यह अकर्त्तव्य। भगवत्प्राप्ति विमुख हो जीव, भूले इकमात्र जो है कर्त्तव्य।।
विषयों के प्रति उसकी लालसा, दिन दिन बढ़ती ही जाये। संसार में बान्धें यह विषय, क्षणभर भी मुक्त न हो पाये।।
भूख से लपलपाती हुई, जिह्वा लिए इक सर्प ज्यों। असावधान चूहे को, अनायास ही दबोचे ज्यों।।
त्यों ही काल रूप में, सावधान सदा आप रहें। प्रमाद ग्रस्त उस जीव को, अनायास ही काल ग्रसे।।

स्वर्णरथ या गजराज, पे सवार जो रहता था। राजा जो था कहलाता, प्रजा पे शासन करता था।।
वही तन काल का ग्रास बनी, बाहर ही फेंका जाता है। वहाँ पक्षी की विष्टा बने, या धरती में गढ़ जाता है।।
वहाँ सड़कर कीड़ा बने, या अग्नि में जल राखी हो। इस नश्वर तन की तो प्रभु, बस यह ही सदा गति हो।।

सब दिशा पे जिसने विजय पाई, नहीं कोई प्रतिद्वन्द्वी जिसका। जो श्रेष्ठ सिंहासन पर बैठे, सब नरपति सीस झुकायें सदा।।
वही पुरुष जब विषयों के, सुख को भोगने के लिए। गृहस्थी की विशेष प्रिय, स्त्री के वह निकट जाये।।
तब उसके ही हाथों का, खिलौना वह बन जाता है। इक पालतू पशुवत् ही, उसका व्यवहार हो जाता है।।

बहुत लोग विषय भोग छोड़, दान पुण्य में लग जायें। राज्यादि की उपलब्धि ही, इन सब का उद्देश्य रहे।।
पुन: जन्म पाकर के हम, सबसे बड़े सम्राट बनें। ऐसी आशा हिय में धरी, शुभ कर्म और तप में लगें।।
इस प्रकार जिसकी तृष्णा, पल पल बढ़ती ही जाये। परम सुख और शान्ति तो, उसके घर कभी न आये।।

हे प्रभु आप तो एक रस, नित्य स्वरूप में स्थित रहें। अनादि काल से जीव यह, जन्म मरण में भ्रमित रहे।।
इस चक्र से छूटने का, जब समय प्रभु आ जाये। तब ही तो सत्संग की, दुर्लभ प्राप्ति उसे हो पाये।।

जिस पल उसे सत्संग मिले, निश्चित कल्याण ही हो उसका। सन्तों के नाथ जग आश्रय में, जाकर दृढ़ चित्त टिके उसका।।

मैं तो ऐसा जानूँ प्रभु, मुझपर अनुग्रह की वर्षा की। बिना किसी श्रम अनायास ही, मम राज्य बन्धन टूट गई।।
साधु चक्रवर्ती सम्राट भी, चाहें जब राज काज त्यजना। एकान्त में भजन पूजन हेतु, जब चाहें वह बन में जाना।।
तब उस ममता मोह से, मुक्त होने के लिये। आपके ही चरणों में प्रभु, वह प्रार्थना हैं करते।।

अन्तर्यामी हैं आप प्रभु, नहीं आपसे कुछ भी छिपा हुआ। आपकी चरण रति छोड़, नहीं अन्य कोई वर मैं चाहता।।
जो हैं संग्रह परिग्रह रहित, या अभिमान से परे रहें। वह जन भी भगवान सदा, यह ही प्रार्थना किया करें।।

मोक्षदे प्रभु आपकी, आराधना जो इक बार करे। कौन श्रेष्ठ पुरुष ऐसा होगा, जो विषय कभी जग के मांगे?
वह तो जीव को पुन: पुन: बन्धन में ही डाल सकें। आपका प्रेम ही हे प्रभु, भव सागर से उभार सके।।

इसलिये त्रैगुणी सभी, कामना वासना छोड़ के मैं। मायारहित और गुणातीत, प्रभु आपकी शरण पड़ा हूँ मैं।।
अद्वितीय चित् स्वरूप एक, परम पुरुष प्रभु आप हैं। आपकी शरण मैं हूँ प्रभु, शरणागत वत्सल आप हैं।।

अनादि काल से कर्मफल, ही मैं भोगता आया हूँ। आर्त हूँ मैं हो गया, अहर्निश वा ज्वाला में जलूँ।।
पंच इन्द्रियां और यह मन, छ: यह महाशत्रु मेरे। विषय प्यास बढ़ती ही रहे, पल भर भी शान्त नहीं होए।।
क्षणभर के लिये कदाचित् मैं, शान्त किसी विधि नहीं हुआ। भय मृत्यु और शोक रहित, आपके चरण कमल में आन पड़ा।।
सारे जगत् के एकमात्र, स्वामी हें प्रभु आप ही। शरण में आपकी आन पड़ा, रक्षा करें प्रभु आप ही।।

भगवान बोले,
हे सर्वभौम महाराज तुम्हारी, बुद्धि तो है अति ऊँची। प्रलोभन बार बार दिया, कामना अधीन वह नहीं हुई।।
तुमको वर देने के लिये, प्रलोभन था जो मैंने दिया। हे राजन् वह तो जानो, थी तेरी एक परीक्षा।।
अनन्य भक्त जो हैं मेरे, उनकी बुद्धि भ्रमित नहीं होती। क्षण भर के लिये भी वह कभी, नहीं कामना में भटक सकती।।

मेरी भक्ति जिनके हृदय नहीं, चाहे जितना भी यत्न करें। प्राणायाम आदि द्वारा, निज मन को चाहे वश में करें।।
नहीं क्षीण हो उनकी वाना, मन चंचल ही सदा रहे। विषयों के सामने आते ही, उनके लिये वह मचला करे।।

अपना मन और मनोभाव, मुझपे समर्पित तुम करो। स्वच्छन्द रूप से फिर राजन्, पृथ्वी पर विचरण करो।।
विषय वासना शून्य मेरी, भक्ति सदा ही निर्मल हो। हे राजन् उस भक्ति से, तेरा हृदय परिपूर्ण हो।।

क्षत्रिय धर्म अधीन हो, आखेट तुमने बहुत किया। अनेक निरीह प्राणियों का, वध आखेट में तूने किया।।
एकाग्र चित्त से मेरी ही, उपासना और तुम ध्यान करो। उस तपस्या द्वारा तुम, अपने पाप सब धो डालो।।

अगले जन्म में फिर राजन्, ब्राह्मण बनी तुम आओगे। सच्चे हितैषी प्राणियों के, और सुहृद् बन जाओगे।।
फिर विशुद्ध विज्ञानघन, परमात्म प्राप्त करोगे तुम। मुझको ही प्राप्त होकर के, भवसागर से तरोगे तुम।।
शुकदेव बोले,
इस विधि भगवान ने, अनुग्रह किया मुचुकुन्द पे। परिक्रमा प्रभु की उन्होने करी, और उन्हें फिर नमन किये।।
इक्ष्वाकु कुल के राजा, गुफा से बाहर आ गये। श्री कृष्ण कृपा अनायास ही, हे राजन् वह पा गये।।

बाहर आकर देखा उन्होने, सब जीव पशु और लता वृक्ष। औषधि और बनस्पति, लघु हुए आकार में अपेक्षाकृत ।।
इससे यह जान लिया उन्होने, कि कलियुग है आ गया। महारजा मुचुकुन्द ने फिर, उत्तर को प्रस्थान किया ।।

तप श्रद्धा धैर्य और, अनासक्ति से युक्त थे वह। संशय और सन्देह से, पूर्णतय: ही मुक्त थे वह ।।
चित्त कृष्ण चरण में लगा, गन्धमादन पर्वत पे गए। प्रभु नर नारायण के निवास, बद्रिकाश्रम जा पहुँचे ।।
शान्त भाव से शीतोष्णादि द्वन्द्वों को सहते हुए। तपस्या के द्वारा श्री, भगवान आराधने वह लगे ।।

दूजी ओर श्री कृष्ण भी, मथुरा पुरी को लौट आये। कालयवन की सेना अभी, उसको थी घेरे हुए ।।
मलेच्छ की उस सेना का, श्री हरि ने संहार किया। सारा धन उसका हर कर, पुन: द्वारका को प्रस्थान किया ।।

भगवान श्रीकृष्ण की आज्ञा से, धन बैलों पर था जा रहा। मगधराज तेईस अक्षौणी, सेना ले पुन: आ पहुँचा ।।
शत्रु का प्रबल वेग देख, कृष्ण राम ने लीला की। बहुत स्फूर्ति से उसके सम्मुख ही, पलायन उन दोनों ने करी ।।

नही मन में भय था किंचित् भी, फिर भी भयभीत की लीला की। नाटक सा ही करते हुए, सब धन वहीं पे छोड़ दी ।।
बहुत योजन तक पैदल ही, दोनों भागते ही गये। सुकोमल चरणारविन्द से, थे रण छोड़ वह भाग रहे ।।

जरासन्ध ने जब देखा, पलायन दोनों ने है किया। तब हंसकर निज रथ सेना, से उनका पीछा करने लगा ।।
श्री कृष्ण और बलराम के, ऐश्वर्य का उसको ज्ञान न था। दोनों को भागते देखकर, उसने सोचा वह विजयी भया ।।

बहुत दूर तक दौड़कर, दोनों भाई कुछ थक से गए। बहुत ऊंचे प्रवर्षण नामक, पर्वत पर वह जाय चढ़े ।।
प्रवर्षण नाम था पर्वत का, वहाँ मेघ थे करते वर्षा सदा। पर्वत में दोनों जाय छिपे, जब जरासन्ध ने यह देखा ।।
बहुत ढूंढने पर भी जब, दोनों का न उसे पता चला। तब प्रवर्षण पर्वत के, चहुँ ओर दी अग्नि उसने लगा ।।
जब भगवान ने यह देखा, पर्वत के छोर हैं जलने लगे। उलांघ जरासन्ध की सेना, दोनों पर्वत से कूद पड़े ।।

१५) श्रीकृष्ण का द्वारिकापुरी बसाना

हम लोग आज, इक ऐसा दुर्ग बनायेंगे। दुर्गम होगा प्रवेश वहाँ, सुरक्षित अस कर जायेंगे ।।
बन्धु बान्धव अपने सब ही, उसमें हम पहुँचायेंगे। तत्पश्चात् इस यवन के, वध की युक्ति बनायेंगे ।।

बलराम से यूँ कर सम्मत्ति, सागर के ही गर्भ में। श्री कृष्ण ने दुर्गम नगर, के निर्माण करा दिये ।।
अद्भुत थी वहाँ सब वस्तुएँ, अति विस्तृत था वह नगर। अड़तालीस कोस लम्बा और, चौड़ा था वह महानगर ।।

नगर की इक इक वस्तु में, था पूर्ण वास्तु ज्ञान भरा। प्रकट हो रही थी वहाँ, वास्तु कला की निपुणता ।।
बड़े बड़े थे राजपथ, और गली चौराहे भी। वास्तु शास्त्र अनुकूल ही, यथा स्थान विभाजन थी ।।

सुन्दर उद्यान और विचित्र, उपवन थे वहाँ लगे हुए। लतायें वहाँ थीं खिल रहीं, देवों के थे वहाँ वृक्ष लगे ।।
ऊंचे शिखर वहाँ स्वर्ण के, आकाश तक ज्यों जा पहुँचे। स्फटिक मणि की अटारियाँ, ऊंचे गोपुर बहुत सुन्दर थे ।।

अन्न रखने के लिये, थी कुठारियाँ बनी हुईं। चान्दी और पीतल की थीं, वहाँ धातुएँ लगीं हुईं ।।
सोने के थे बने महल, और जड़ाऊ कलश थे। नीचे पन्ने अति सुन्दर थे, और शिखर थे रत्नों के ।।

वास्तुदेवता के मन्दिर, और छज्जे भी अति सुन्दर थे। चहुँ वर्ण के लोग ही, वहाँ निवास थे कर रहे।।
बीचों बीच थे यदु प्रधान, उग्रसेन वासुदेव प्रासाद। बलराम और श्रीकृष्ण के, एमत्रह्मधलों का झिलमिल था प्रकाश।।

देवराज ने पारिजात, वृक्ष का फिर उपहार दिया। और सुधर्मा सभा को भी, श्री कृष्ण चरण में भेंट किया।।
ऐसी दिव्य थी वह सभा, वहाँ जीव जो भी बैठे। भूख पिपासा आदि सब, धर्मों से वह मुक्त होए।।

वरुण देव ने भी वहाँ पे, श्वेत अश्व बहुत भेज दिये। इक इक कर्ण था श्यामवर्ण, मन समान गतिवान् वह थे।।
धनपति कुबेर ने भी, अपनी आठों निधियाँ भेजीं। अन्य लोकपालों ने भी, अपनी विभूतियाँ अर्पित्त कीं।।

भगवान कृष्ण ने स्वयं ही, शक्तियाँ सिद्धियाँ उनको दीं। जिनके द्वारा सब लोकपाल, की निर्वाह है हो रही।।
जब धरती पर अवतीर्ण हो, प्रभु अपनी लीला करने लगे। सब सिद्धियाँ वह लोकपाल, उनके चरण पुन: धरने लगे।।

अपनी अचिन्त्य योगमाया का, फिर प्रभु ने आश्रय लिया। बन्धु बान्धव सबको ही, द्वारिका में पहुँचा दिया।।
शेष प्रजा की रक्षा को, बलराम को मथुरा में रखा। अपने कण्ठ में धारण की, प्रभु ने फिर कमलों की माला।।
बना किसी अस्त्र शस्त्र के ही, नगर द्वार से हुए बाहर। अनन्त है प्रभु की महिमा, जान सके उसे कौन नर?

ग्यारह योजन ऊँचे पर्वत, से कृष्ण-बलराम की यह छलांग थी। जरासन्ध अथवा सैनिक, किसीने भी उन्हें देखा नहीं।।
दोनों भाई वहाँ से चलकर, द्वारिका पुरी को चले गए। सागर से घिरी नव निर्मित, नगरी में वह जा पहुँचे।।
जरासन्ध ने यह समझा, कृष्ण राम तो जल गए। मगध देश को लौटा वह, विस्तृत निज सेना संग लिये।।

८) श्रीकृष्ण की द्वारिका में लीलायें

१) रुक्मिणी हरण

ब्रह्मा जी से प्रेरणा पा, राजा रेवत ने कन्या रेवती बलराम से ब्याही। श्री बलराम के साथ ही, उसकी थी परिणय हुई।।
श्री कृष्ण ने स्वयं भी, शिशुपाल और पक्षपाती। स्वयंवर में जो आये थे, शाल्व आदि महाराज सभी।।
उन राजाओं को बलपूर्वक, उन्होंने था हरा दिया। सबके देखते देखते ही, ज्यों गरुड़ ने सुधा का हरण किया।।
त्यों ही विदर्भकुमारी श्री, रुक्मिणी को वह हर लाये। और द्वारिका पहुँचकर, उनसे फिर विवाह किये।।
भीष्मक की कन्या थीं वह, लक्ष्मी जी का अवतार थीं। श्री कृष्ण के संग तो, अनादि काल से साथ थीं।।

परीक्षित बोले,
हे द्विजवर हमने सुना, भीष्मक सुता श्री रुक्मिणी का। बलपूर्वक था हरण किया, श्री कृष्ण ने परम सुन्दरी का।।
राक्षस विधि से फिर उसके, साथ विवाह था रचा लिया। हे भगवन् अब विस्तार से, कथा मैं यह सुनना चाहता।।
परम तेजस्वी प्रभु ने सब, नरपतियों को हरा दिया। जरासन्ध शाल्वादि सम्मुख, रुक्मिणी का कैसे हर किया?

भगवान कृष्ण की लीलाओं की, भगवन् हम क्या बात कहें। स्वयं अति पावन हैं वह, जग मल धो पावन उसे करें।।
ऐसी माधुरी उनमें है, नित्य नया रस वहाँ मिले। कौन रसिक मर्मज्ञ हो, जो उन्हें सुनी कभी तृप्त भए?
शुकदेव बोले,
महाराज भीष्मक हे राजन्, थे विदर्भ के अधिपति। पांच पुत्र थे उनके यहाँ, और इक सुन्दरी कन्या थी।।

सर्वज्येष्ठ सुत था रुक्मी, और अनुज थे उसके चार। सम्भरथ रुक्मबाहु रुक्मेश, रुक्ममम्प्राली क्रमश: थे उनके नाम।।
इन भाइयों की लाड़ली अनुजा, बहिन थी सति रुक्मिणी। श्री कृष्ण के सौन्दर्य पराक्रम, गुण वैभव की उसने सुनी।।
आगन्तुक अतिथि महल में, अक्सर उसका गान ही करते थे। यह ही हों मम अनुरूप पति, ऐसे दृढ़ निश्चय उसने किये।।

भगवान कृष्ण भी जाने थे, रुक्मिणी है सुलक्षणा। उदारता शील और सौन्दर्य, अनुपम गुणों की वहाँ गणना।।
इसलिये रुक्मिणी ही मेरे, अनुकूल भार्या हो सके। इस कारण श्री रुक्मिणी से, विवाह के उन निश्चय किये।।

भाई बान्धव भी चाहते थे, उनका विवाह हो कृष्ण से। किन्तु रुक्मी के मन में, श्री कृष्ण से द्वेष के भाव भरे।।
उसने विवाह यह रोक दिया, शिशुपाल योग्य वर ठहराया। रुक्मी का वह मित्र भी था, इसमें उसका स्वार्थ भी था।।

रूपमति श्री रुक्मिणी को, जब उसका आशय पता चला। शिशुपाल से उनका विवाह, है रुक्मी तो रोकना चाहता।।
बहुत उदास वह हो गईं, फिर विचार उन्होने किया। विश्वास पात्र इक ब्राह्मण को, कृष्ण के पास तुरन्त भेजा।।

जब वह ब्राह्मणदेवता, द्वारिका पुरी में जा पहुँचे। द्वारपाल उन्हें शीघ्र ही, श्री कृष्ण के सामने ले गये।।
आदिदेव श्री कृष्ण थे, स्वर्ण सिंहासन पर बैठे। ब्राह्मण देव ने नयनों से, उनके दर्शन पा लिये।।

उस ब्राह्मण को देखते ही, सिंहासन कृष्ण ने छोड़ दिया। परम ब्राह्मण भक्त थे वह, निज आसन पर उसे बिठलाया।।
फिर पूजा उनकी वैसे करी, ज्यों देवता पूजें कृष्ण को। आदर सत्कार किया उनका, कुशल क्षेम सब पूछ लियो।।
अन्न जल जब ले चुके, विश्राम भी पूर्ण जब हुआ। सन्तन् के आश्रय कृष्ण स्वयं, उनके पास ही पहुँचे जा।।
निज कर कमलों से उनके, चरणों को वह सहलाने लगे। महाशान्त भाव से फिर, ब्राह्मण देव से यूं बोले।।

भगवान बोले,
हे द्विजवर चित्त तो आपका, है सदा सर्वदा तुष्टित न? परम्परागत धर्म के, पालन में है सब सुविधा न
जो स्वत: मिले उसी में द्विज, गर सदा सन्तुष्ट रहे। धर्म से च्युत न हो कभी, और उसका पालन सदा करे।।
वह सन्तोष ही उसकी सब, कामना पूर्ण करता है। उस सन्तोष की नैय्या चढ़, भव सागर पार उतरता है।।

इन्द्र का पद भी पाकर के, आन्तर में यदि सन्तोष न हो। इक लोक से दूजे लोक तक, फिर आवागमन सुख हेतु हो।।
कहीं भी इक पल शान्ति से, बैठ नहीं पायेगा वो। किन्तु संग्रह परिग्रह रहित, नित्य तुष्ट ही रहता जो।।
सब भाँति के सन्तापों से, सदा रहित वह होता है। नहीं कामना वासना कोई रहे, सुख की नींद वह सोता है।।

यदृच्छा मिले लाभ से, सन्तुष्ट सदा जो रहते हैं। अति मधुर स्वभाव जिनका, जो परम हितैषी सबके हैं।।
निरहंकार रहें सदा शान्त, उनको मैं सीस झुकाता हूँ। ऐसे ब्राह्मण पूज्य हैं मेरे, उन्हें नमन मैं करता हूँ।।

राजा की ओर से हे द्विजवर, सब सुविधा आपको प्राप्त है न? राज्य में प्रजा का पालन हो, सब आनन्द भी प्राप्त है न?
वह राजा जान लें आप हे, अति प्रिय मेरा होए। सुख से रहे प्रजा जिसकी, द्विजोत्तम हे अब आप कहें।।

कहाँ से आप पधारे हैं, हे ब्राह्मण अब यह कहें। कठिन यह यात्रा तय करी, किस हेतु और अभिलाषा से?
यदि इसमें नहीं कुछ गोपनीय, तो आप हमें बतलाइये। क्या सेवा आपकी हम करें, आप ही हमें सुझाइये।।

शुकदेव बोले,
हे राजन् लीला मात्र ही, मनुज रूप जिन था धरा। श्री कृष्ण ने इस विधि, ब्राह्मण देव से जब पूछा।।
तब उस ब्राह्मण ने उनको, विस्तार से सारी बात कही। रुक्मिणी की सन्देश फिर, ज्यों की त्यों वा सम्मुख धरी।।

रुक्मिणी बोली,
आपके गुणों का श्रवण तो, कानों से हृदय प्रवेश करे। जन्म जन्म सन्ताप और, हर अंग के ताप को वह हरे।।
हे त्रिभुवन सुन्दर आपका, रूप तो है अति मनहर। चक्षुधारी के नयनों को, दे चारों पुरुषार्थ का फल।।
है स्वार्थ परमार्थ वही, श्रवण किया उनका अच्युत। लज्जा आदि सब छोड़कर, मम चित्त हुआ तुझमें प्रविष्ट।।

प्रेम स्वरूप मुकुन्द हे, चाहे जिस दृष्टि से देखें। कुल शील स्वभाव रूप विद्या, अवस्था धन अनुपम सबमें।।
अपने में आप हैं परिपूर्ण, कोई दूजा सम नहीं हो सके। मनुष्य लोक के जीवों का, दर्शन से ही मन शान्त होये।।
हे पुरुषोत्तम आप ही, अब मुझको यह बतलायें। धीर कुलीना युवती को, जो आपको न वरना चाहे?

हे प्रियतम पति रूप में अब, आपको ही मैंने वर लिया। अन्तर्यामी आप हैं, आत्म समर्पण कर दिया।।
नहीं छिपा आपसे भाव कोई, अब पत्नी मुझे स्वीकार करें। हे प्राण प्रिय यहाँ आकर, अब आप मेरा उद्धार करें।।
आपसे महावीर को, समर्पित अपना आप किया। इस तन पर तो प्राणनाथ, केवल अधिकार है आपका।।
ज्यों सिंह के भाग का जीव कोई, स्यार कभी न छू पाये। वैसे ही कहीं शिशुपाल, स्पर्श न मेरा कर पाये।।

यदि जन्म जन्म में मैंने कोई, पूर्त या इष्ट हों कर्म किये। दान नियम व्रत देव गुरु, और ब्राह्मण के पूजन हों किये।।
प्रभु की आराधना हो कर, और मुझपर वह प्रसन्न हों। तो भगवान श्रीकृष्ण ही, मम पाणिग्रहण के योग्य हों।।
शिशुपाल या अन्य कोई, पुरुष स्पर्श मुझे नहीं करे। हे प्रभु अब आपकी, इतनी मुझपर कृपा रहे।।

आप अजेय हैं हे प्रभु, गुप्त रूप से आइए। विवाह से इक दिन पूर्व ही, अपना दरस दिखाइए।।
शिशुपाल और जरासन्ध, की सेनाएँ बहुत बड़ी। महासेनापतियों के संग, उनका नाश करें आप ही।।
वीरता का मूल्य चुका, अपहरण आप मेरा करें। बलपूर्वक़ राक्षस विधि से, पाणिग्रहण मेरा करें।।

यदि आप यह सोचें प्रभु, तुम अन्त:पुर भीतर रहो। भाई बन्धु के हनन बिना, अपहरण यह सम्भव कैसे हो?
तो इसका उपाय भी, आपके सम्मुख धरती हूँ। कुल के नियम अनुसार ही मैं, कुलदेवी के दरस करूँ।।
कुलदेवी के दर्शन को, महाशोभा यात्रा चले। नगर से बाहर गिरिजा माँ के, दर्शन को दुल्हन जाये।।

उमापति श्री शंकर संग, अनेकों महादेव जग के। आत्म शुद्धि के लिये, आपके चरण की धूलि ही चाहें।।
यदि आपका प्रसाद वह, नहीं चरण धूलि मैं प्राप्त करूँ। तो व्रत द्वारा क्षीण करी, इस तन को ही त्याग दूँ।।
चाहे शतश: जन्म ही, इसके हेतु लेने पड़ें। कभी न कभी तो प्रसाद यह, निश्चित ही हम पा लेंगे।।

ब्राह्मण बोला,
हे यदुश्रेष्ठ रुक्मिणी का, है यह अति गुह्य सन्देश। जो उसने देकर भेजा, प्रभु दूरस्थ आपके देश।।
अब इसके सम्बन्ध में, स्वयं ही आप विचार करें। और उचित जो भी समझे, उसके अनुरूप ही कार्य करें।।

शुकदेव बोले,
श्री कृष्ण ने विदर्भ कुमारी, का यह प्रणय संदेश सुना। निज कर में ब्राह्मण देवता का, हाथ उन्होंने पकड़ लिया।।
फिर हंसकर उनसे कहा, हे ब्राह्मण देवता सत्य कहूँ। जैसे श्री रुक्मिणी चाहें मुझे, मैं भी उन्हें वैसे ही चाहूँ।।
मेरा चित्त भी निरन्तर ही, उन्हीं के ध्यान में रहता है। रातों को नींद नहीं आती, बस उन्हीं का चिन्तन करता है।।
मैं जानूं द्वेष के कारण ही, रुक्मी ने है ऐसा किया। अपनी बहिन से मेरा विवाह, उसने ही है रोक दिया।।

ज्यों काष्ठ को रगड़ के, अग्नि उसमें से निकल आये। उसी विधि देखें द्विजवर, निश्चित करूँ मैं कोई उपाय।।
क्षत्रिय कुल के कलंक रूप, उन नरपतियों से युद्ध करके। परम सुन्दरी मेरी प्रिया, राज सुता लाऊँ हर के।।
शुकदेव बोले,
फिर जाना श्री कृष्ण ने, है लग्न परसों रात में ही। सारथी दारुक को कहा, लाये रथ को तत्क्षण ही।।
श्री भगवान के रथ में फिर, दारुक ने चार अश्व जोड़े। शैव्य सुग्रीव मेघपुष्प, और बलाहक नाम थे।।
रथ को यूँ तैय्यार कर, श्री कृष्ण सम्मुख वह आया। प्रभु के सामने हाथ जोड़, और सीस झुका वह हुआ खड़ा।।

पहले ब्राह्मण देव को, रथ पे चढ़ाया कृष्ण ने। तत्पश्चात् वह स्वयं भी, उस रथ पे सवार हुए।।
द्रुत गति के अश्व थे वह, इक रात में पहुँचे लक्ष्य तक। आनर्त्त देश से चलकर के, वह पहुँचे विदर्भ तक।।

कुण्डिन नरेश श्री भीष्मक को, अति स्नेह था पुत्र से। रुक्मी के ही कहने पर, शिशुपाल को कन्या देने लगे।।
उसी विवाहोत्सव की वह, तैय्यारी थे करवा रहे। राजपथ चौराहे नगर के, गली कूचे सब स्वच्छ हुए।।
उनपर जल का छिड़काव हुआ, विविध रंग की झण्डियाँ थीं। तोरण भी थे बान्धे गए, पताका छोटी बड़ी सब थीं।।

नर नारी सब नगर के, थे बहुत भाँति सजे हुए। पुष्प माल इत्र चन्दन, आभूषण निर्मल वस्त्रों से।।
सुन्दर घरों में भी अगर, और धूप की सुरभि थी फैली। भीष्मक ने पितर देव पूजे, ब्राह्मण जन को भोजन दी।।
नियम के अनुसार ही, स्वस्ति वचन कहाये गए। विवाह पूर्ण विधिवत् ही, सब संस्कार कराये गए।।

परम सुन्दरी रुक्मिणी की, मुक्तावली सी थी दन्तावली। शुभ स्नान कराया गया उसे, हाथों में मंगल कंगन थी।।
नव वस्त्र का जोड़ा ही, था उनको पहनाया गया। उत्तम आभूषण से उनको, था सब विधि सजाया गया।।

ऋक् साम और यजुर्वेद, के मन्त्र थे द्विज जन गा रहे। उनके राही उस देवी की, रक्षा का कवच बना रहे।।
अथर्व वेद के ज्ञाता, पुरोहित को बुलवाया गया। ग्रह शान्ति के लिये, उससे हवन कराया गया।।

कुल परम्परा विधि विधान, के परम ज्ञाता थे भीष्मक। समयोचित दान पुण्य हेतु, सब प्रबन्ध दिये उन कर।।
सोना चान्दी और वस्त्र, ब्राह्मणों को उन दान दिये। गुड़ तिल का मिश्रण और, गौएँ भी देना न भूले।।

इसी विधि चेदिनरेश, दामघोष ने भी किया। पुत्र शिशुपाल हेतु, मन्त्रज्ञ द्विजों को बुलवाया।।
विवाहोचित मंगलकृत्य, सब ही उसने करवायो। तत्पश्चात् मदोन्मत्त गज, रथ स्वर्ण माल से सजवाये।।
पैदल और अश्वारोही, चतुरंगी सेना ले के चले। इस ठाठ बाठ के सहित वह, कुण्ठिन पुर फिर जा पहुँचे।।

विदर्भ राज ने आगे बढ़, उनका स्वागत सत्कार किया। और प्रथा अनुसार ही, अर्चन पूजन उनका किया।।

पूर्वनिश्चित स्थानों पर, उन सबको वह ले गए। आनन्द पूर्वक वह सब जन, जनवासों में जा ठहरे।।
शाल्व जरासन्ध दन्तवक्र, विदूरक और पौण्ड्रक आदि। शिशुपाल के सहस्त्रों मित्र, आये थे सब नरपति।।

वे सब राजा कृष्ण और, बलराम के महा विरोधी थे। शिशुपाल ही रुक्मिणी को ब्याहे, वे सब यह ही चाहते थे।।
उन सबने पहले ही था, मन में यह निश्चय किया। यदुवंशियों संग कृष्ण गर, कन्या हरने यहाँ आ पहुँचा।।
तो मिलकर उसे पछाड़ेंगे, उससे युद्ध करेंगे हम। इस कारण अपनी चतुरंगी, सेना लाये थे सब संग।।

विपक्षियों की तैय्यारी का, बलराम को भी पता लगा। और उन्होंने जब जाना, कृष्ण अकेला ही है गया।।
राजसुता का हरण, ही करना है वह चाहता। उनके मन में जाग उठी, वहाँ युद्ध की आशंका।।

श्री कृष्ण के बल विक्रम से तो, बलराम नहीं अनभिज्ञ थे। भ्रातृ स्नेहवश अपने को, फिर भी वह न रोक सके।।
चतुरंगिणी महासेना, उन्होने अपनी एकत्रित की। और सभी को साथ ले, कुण्डिनपुर को प्रस्थान करी।।

सुन्दरी रुक्मिणी के मन भी, बस एक प्रतीक्षा थी लगी। कब आयेंगे मेरे प्रियतम, कब आयेंगे श्री हरि?
कृष्ण की बात तो दूर रही, अभी ब्राह्मण भी नहीं लौटे। अति चिन्तित वह हो गईं, मन में अनेकों भाव उठे।।

रुक्मिणी का चिंतन,
अहो मन्दभागिनी मैं, विवाह का समय निकट आया। इक रात की देरी रही मगर, प्रियतम का पता नहीं आया।।
मेरे जीवन सर्वस्व प्रभु, किस कारण नहीं पधारे अभी? क्या कारण इसका होगा, नहीं निश्चय कर थी पा रही।।
यही नहीं सन्देसा मेरा जो, लेकर ब्राह्मण देव गए। वह भी तो सन्देसा दे, अभी तक हैं नहीं लौटे।।

नहीं तनिक संशय इसमें, परम शुद्ध स्वरूप कृष्ण। कोई विशुद्ध जीव ही तो, करे प्रेम उनका प्रपन्न।।
कोई न कोई न्यूनता, उन्होने मुझमें देखी होगी। तभी तो मुझे अपनाने को, नहीं उद्यत हो के पधारे अभी।।

विधाता नहीं अनुकूल मेरे, हतभागिनी ही हूँ मैं। प्रभु शंकर को भी अपने, प्रतिकूल ही देख रही हूँ मैं।।
सम्भव है गिरिजा कुमारी जी, श्री पार्वती नहीं प्रसन्न हैं। इस कारण ही मेरे भाग्य की, हुई गति यूं मन्द है।।
शुकदेव बोले,
इस चिन्ता में रुक्मिणी का, हृदय था डूब उभर रहा। उनके मन और मनोभावों को, चित्तचोर हरि ने चुरा लिया।।
उनकी याद में बैठे बैठे, ध्यान हुआ अभी है समय। मन को समझाकर अश्रुपूर्ण, नयना फिर उन्होंने बन्द किये।।

इस विधि थीं रुक्मिणी, प्रभु प्रतीक्षा में मग्न। वाम उरु भुजा और वाम, नेत्र में हुआ स्पन्दन्।।
प्रियतम के आगमन का, प्रिय सन्देश दिया उसने। इनका यह सम्वाद सुनी, रुक्मिणी को ढाढस बन्धे।।
इतने में श्री कृष्ण के, प्रेषित ब्राह्मण वहाँ आ पहुँचे। देखी अन्त:पुर में देवी, ज्यों ध्यानस्थ कोई होए।।

रुक्मिणी ने ब्राह्मण देव, प्रफुल्ल वदन जब देखे। मन और चेहरे पर कोई, घबराहट के चिन्ह न थे।।
देखी लक्षण उनके समझी, भगवान कृष्ण हैं आ गए। प्रसन्न मनी होकर उसने, द्विजवर से कुशल क्षेम पूछे।।

ब्राह्मण देवता यूँ बोले, श्री कृष्ण हैं यहाँ पधार गए। फिर उनकी प्रशंसा में, अनेकों वचन उन्होंने कहे।।

यह भी कहा हे राजसुता, है उनका दृढ़ निश्चय यही। सत्य प्रतिज्ञा उन्होंने करी, आपको संग ले जाने की।।

प्रभु आगमन की बात सुनी, हृदय में उनके आनन्द भरा। प्रतिरूप में क्या दें ब्राह्मण को, बस केवल नमन ही कर दिया।।
(श्री हरि के अतिरिक्त उन्हें, प्रिय वस्तु कोई न दीखी। नमन करी के ब्राह्मण को, समग्र लक्ष्मी सौंप दी।।)

राजा भीष्मक ने जब सुना, श्री कृष्ण और बलराम आये। मेरी कन्या का विवाह देखन, की उत्सुकता से आये।।
तुरही भेरी आदि वाद्य, संग पूजा की सामग्री ली। स्वयं ही जाकर राजा ने, दोनों की अगवानी की।।
दिया मधुपर्क निर्मल वस्त्र, उत्तम भेंट सामग्री दी। घर आये अतिथियों की, विधिवत् उन्होंने पूजा की।।

अति बुद्धिमान् थे श्री भीष्मक, भगवान प्रति उनकी भक्ति थी। यथायोग्य सत्कार किया, निवास को उचित स्थान दी।।
उनकी सेना और साथियों को, भी ठहराया सुविधा से। आवास उन सबके लिये, सब सामग्री से युक्त थे।।
विदर्भ राजा भीष्मक के यहाँ, जितने राजा आमन्त्रित थे। पराक्रम धन बल और अवस्था, अनुकूल ही सब प्रबन्ध किए।।

विदर्भपुर वासियों ने, जब कृष्ण आगमन की बात सुनी। उनका अभिनन्दन करने को, पहुँचे आवास पे उनके सभी।।
नयनों को अंजलि बना, मुखकमल का दर्शन करने लगे। मुखारविन्द मरकन्द रस, का ज्यों पान हों कर रहे।।

आपस में पुरवासी सब, बातें थे इस विधि कर रहे। यही श्याम सुन्दर रुक्मिणी के, योग्य ववर इक हो सकें।।
और रुक्मिणी ही इनकी, अर्धांगिनी बनने योग्य है। नहीं अन्य कोई युवती कहीं, जो कभी हो इनके योग्य है।।

पूर्व या इस जन्म में भी, यदि हमने किये कोई सत्कर्म। त्रिलोक विधाता श्री हरि, गर होवें हम पर प्रसन्न।।
कुछ ऐसा सुयोग बने, वह स्वयं ही ऐसी कृपा करें। श्याम सुन्दर ही बस केवल, वैदर्भी के पति बनें।।

पुरवासी प्रेमवश आपस में, जब वार्तालाप यह कर थे रहे। उसी समय रुक्मिणी जी ने, अन्त:पुर से प्रस्थान किये।।
देवी मन्दिर में पूजा हेतु, राजसुता रुक्मिणी चलीं। उसकी रक्षा में नियुक्त थी, अनेक सैनिकों की टुकड़ी।।
प्रेम स्वरूप श्री कृष्ण के, चरण कमल थे हिय बसे। गिरिजा के चरण पल्लवों का, दर्शन पाने उनके कदम बढ़े।।

वह थीं मौन धारण किये, सखियों ने उनको घेरा था। वृद्धा माताओं का भी, वहाँ लगा कुछ डेरा था।।
शूरवीर सैनिक हाथों में, अस्त्र शस्त्र उठाये हुए। कवच ढाल पहने हुए, थे उनकी रक्षा कर रहे।।
मृदंग शंख ढोल और, तुरही आदि थे बज रहे। भेरी आदि वाद्यों के नाद, थे वायुमण्डल भर रहे।।

बहुत सी ब्राह्मण पत्नियाँ भी, साथ साथ थीं चल रही। वस्त्राभूषण पुष्पमाल, चन्दनादि द्रव्यों से सजीं।।
अनेकों ही उपहार और, पूजन सामग्री संग लिये। सहस्त्रों नारीश्रेष्ठ भी, थीं उनके संग संगचलें।।
गायक गीत थे गा रहे, कोई अन्य थे वाद्य बजा रहे। सूत मागध बन्दीजन, विरदावली थे सुना रहे।।

देवी के मन्दिर पहुँचकर, सुकोमल हाथ पांव धोए। आचमन किया जल का उन्होंने, आन्तर बाह्य सब शान्त थे।।
अम्बिका देवी के मन्दिर में, रुक्मिणी ने प्रवेश किया। बहुत सी वृद्धायें संग थीं, जिन्हें विधि विधान का ज्ञान था।।
श्री शंकर और अर्धांगिनी वा, गिरिजा भवानी थीं वहाँ। रुक्मिणी से प्रणाम उन्हें, वृद्धाओं ने करवाया वहाँ।।

रुक्मिणी जी ने भगवती से, मन ही मन फिर प्रार्थना की। हे माँ तुझे तेरे प्रिय पुत्र, गोद में बैठे गणेश को भी।।

बार बार करूँ नमस्कार, स्वीकार करो हे माँ मेरी। बस इक ही आसीस दो, इतनी बिनती सुनो मेरी।।
श्री कृष्ण ही मेरे पति बनें, यही कामना है मेरी। भवानी आपकी शरण हूँ मैं, अभिलाषा पूर्ण करो मेरी।।

तत्पश्चात् जल गन्ध अक्षत्, धूप और वस्त्र आभूषण। पुष्पमाल और हार सहित, नैवेद्य अनेक किये अर्पण।।
आरती आदि की भी, सब सामग्री उन्होने ली। फिर अम्बिका देवी की, उन्होने वहां पूजन करी।।

फिर यह सब सामग्री ले, नमक पुआ और पान लिया। कण्ठसूत्र फल ईख से, ब्राह्मण पत्नियों को पूजा।।
ब्राह्मणियों ने प्रसाद दिया, संग कहे आशीर्वचन। माँ संग उनको भी नमन करी, प्रसाद वधु ने किया ग्रहण।।

पूजा अर्चना यूं सारी, विधिवत् जब पूर्ण हो गई। तब श्री रुक्मिणी देवी ने, मौन भी अपनी भंग करी।।
रत्न जडित मुद्रा से चमकता, कर कमल आगे किया। इक सखी के हाथ को पकड़ कर, मन्दिर से बाहर कदम धरा।।

प्रभु की माया सम रुक्मिणी भी, थीं धीर वीर सबकी मोहिनी। कटिभाग था सुन्दर पतला सा, कुण्डल की आभा मुख पर थी।।
किशोर और तरुणावस्था की, सन्धि पर मानो थीं खड़ी। नितम्ब पर रत्नजड़ित, करधनी भी सुशोभित थी।।
वक्ष:स्थल थे कुछ उभरे हुए, अलकें थीं मुख पे लटकरहीं। दृष्टि थी इधर उधर जाती, उसमें चंचलता थी भरी।।

अधरों पर मुस्कान मधुर, कुन्दकली सम दन्तावली। बिम्बाफल से अरुण अधर, लालिमा वहाँ थी झलक रही।।
चरणों में पायजेब की, क्षुद्र घंटिकायें थीं बजीं। सुकुमार चरण कमलों से वह, थीं हंस की गति से चल रहीं।।
अपूर्व छवि उनकी देखी, वीर धीर मोहित हुए। प्रभु के कार्य की सिद्धि को, काम ने बाण अपने छोड़े।।

उत्सव यात्रा के बहाने से, थीं मन्दगति से चल वह रहीं। अपनी सौन्दर्य की राशि को, न्यौछावर कृष्ण पे कर रहीं।।
उनकी खुली मुसकान और, उनकी लजीली चितवन पे। नरपति वीर मोहित हुए, अपना चित्त लुटाकर के।।
अस्त्र शस्त्र भूमि पे गिरे, और बेहोश वह हो गए। रथ हाथी और घोड़ों से, स्वयं भी वह धरती पे गिरे।।

श्री कृष्ण के शुभागमन की, थी प्रतीक्षा रुक्मिणी को। सुकुमार चरण कमल अपने, धीरे से उठी रहीं थीं वो।।
वाम हाथ की अंगुलीसे, मुख पर लटकी अलकें छेड़ीं। वहाँ आये नरपतियों पर, लज्जाभरी चितवन फेंकी।।
उसी समय निज प्राण प्रिय, अच्युत के दर्शन पाये। नयना थे प्यासे जिनके लिये, उनके श्रीमुख सम्मुख पाये।।

राजकुमारी रुक्मिणी, रथ पर चढ़ना ही चाहती थी। सबके सामने कृष्ण ने, रुक्मिणी जी की हरण करी।।
सब शत्रु थे सम्मुख खड़े, उनके देखते देखते ही। शतश: राजाओं के सिर पे, चरध उन्होंने धर करी।।
रुक्मिणी को उठा लिया, और निज रथ पे बिठा लिया। उनका रथ श्री गरुड़ की, ध्वजा से था सजा हुआ।।

सिंह जैसे सियारों से, अपना भाग खुद छीन ले। वैसे ही श्री कृष्ण भी, ले रुक्मिणी को निज संग चले।।
बलराम आदि यदुश्रेष्ठ सब, अब वहां से चल दिये। उनका काज पूर्ण हुआ, अब वहां वह क्या करें?

जरासन्ध के वशवर्ती, अभिमान जो राजा थे। अपनी यश कीर्ति का नाश, तिरस्कार वह सह न सके।।
बोले धिक्कार है हम सबको, हम धनुर्धर सब खड़े रहे। और यह ग्वाले यश सारा, हमारा छीन के ले गए।।
ज्यों सिंह के भाग को कोई हरिण, उससे छीन के ले जाये। वैसे ही इस कृष्ण ने, हैं रुक्मिणी के हरण किये।।

२) शिशुपाल के साथ युद्ध तथा श्रीकृष्ण-रुक्मिणी विवाह

शुकदेव बोले,
इस विधि सब राजाजन्, क्रोध से आग बबूला हुए। कवच पहन अपने अपने, वाहनों पे सवार हुए।।
अपनी सेना सहित सभी, कृष्ण के ही पीछे भागे। धनुष बाण लिये हाथों में, थे सब के सब पीछा किये।।
यदु सेनापतियों ने जब, देखा शत्रुदल को आते। उन्होने भी धनु: टंकार करी, और घूम के वह भी डट गए।।

जरासन्ध की सेना में, कोई तो अश्वों पर थे चढ़े। कोई हाथी पे सवार थे, तो अन्य रथी थे रथ पे चढ़े।।
धनुर्वेद के वे ज्ञाता, बाणों की वर्षा करने लगे। यदुसेना पे यूँ बरसे, ज्यों पर्वत पर बादल बरसे।।

सुन्दरी रुक्मिणी ने देखा, बाणों की वर्षा हो रही। पति कृष्ण की सेना तो, उन बाणों से है ढकी गई।।
लज्जा और भय से भरे, नयनों को उन्होने उठाया तब। भगवान कृष्ण के श्री मुख को, इस विधि उन्होने निहारा तब।।
प्रभु ने फिर हंसकर कहा, हे कमलमुखी तुम डरो नहीं। मेरी सेना नष्ट करेगी, सब शत्रु सेना को अभी।।

गद और संकर्षण आदि, यदुवंशियों में जो थे प्रधान। शत्रु पराक्रम को कब तक, मौन धरी सहने वहाँ?
निज बाणों से शत्रु की, सेना पे वार वह करने लगे। हाथी घोड़े और रथ, सब छिन्न भिन्न उनके होने लगे।।

रथ हाथी और अश्वों पर, जो भी विपक्षी बैठे थे। उनके किरीट कुण्डल शोभित, पगड़ीधारी फिर सीस गिरे।।
गदा खड्ग धनु: युक्त हाथ, घुटने उरु और चरण कटे। भूमि पर वे गिरे सभी, संग पशुओं के भी सीस गिरे।।
घोड़े हाथी ऊंठ गधे, खच्चर और नरों के सीस गिरे। मानी गुमानी सभी वहाँ, रणभूमि में लुण्ठित हुए।।
यदु सत्य विजय आकांक्षी थे, शत्रु सेना सब नष्ट करी। जरासन्धादि राजाओं ने, युद्ध में पीठ ही दिखलाई।।

उधर बेहाल था शिशुपाल, भावी पत्नी उसकी छिनी। हृदय में न उत्साह ही था, न मुख पे थी कोई कान्ति ही।।
मुख था शुष्क हुआ उसका, मरणासन्न था वह हो रहा। उसके निकट ही जाकर के, जरासन्ध तब यूँ बोला।।

जरासन्ध बोले,
हे राजन् श्रेष्ठ पुरुष हैं आप, इस मन की दुर्बलता को त्यजें। कोई भी अवस्था जीवन की, प्रतिकूल या न अनुकूल रहे।।
किसी भी प्राणी के जीवन में, स्थिरता कहीं नहीं रहती। परिस्थिति की ऊँच नीच, तो सदा ही चलती है रहती।।

बाजीगर कठपुतली ज्यों, निज इच्छा से नचाता है। भगवत् इच्छा के अधीन ही, जीव यह सुख दु:ख पाता है।।
यथा शक्ति अनुकूल ही, जीव यत्न सब करता है। किन्तु फल तो विधाता के, विधानानुकूल ही मिलता है।।

तेईस अक्षौणी सेना सहित, सत्रह बार आक्रमण किया। हर बार ही लेकिन कृष्ण ने, मुझे पराजित कर दिया।।
अठारहवीं बार जब गया, विजय प्राप्त मैंने करी। अन्त में तो उस कृष्ण की, हार ही मेरे हाथों हुई।।

फिर भी इस बात को लेकर के, शोक ग्रसित मैं नहीं रहता। न ही हर्ष के मारे मैं, फूला नहीं समा सकता।।
क्योंकि मैं यह जाने हूँ, प्रारब्ध है वरत रहा। कर्मानुकूल काल ही, सबको है झकझोरता।।

नहीं तनिक सन्देह इसमें, नायक हम सेनापतियों के। कृष्ण की यदुवंशी सेना, छोटी सी से हम हार गए।।

अनुकूल था काल उनके, इस कारण ही शत्रु जीते। जब अपने दाहिने होगा काल, जीतउन्हें ही हम लेंगे।।
शुकदेव बोले,
हे भरतश्रेष्ठ जब मित्रों ने, इस विध उसको समझाया। चेदिराज शिशुपाल तब, निज राजधानी को लौट आया।।
मित्र राजा भी उसके, जिन्हें प्राणों के थे लाले पड़े। अपने अपने नगरों को, तुरन्त ही वह लौट गए।।

रुक्मिणी के अग्रज के मन, कृष्ण प्रति विद्वेष भरा। श्री कृष्ण ने हर ली भगिनी वा, और उससे विवाह करा।।
यह बात तो रुक्मी कभी, इक क्षण भी न था सह सकात। सेना ली संग इक अक्षौणी, उसने प्रभु का पीछा किया।।
महाबाहु बली रुक्मी था, क्रोध के मारे जल रहा। कवच पहन धनुष पकड़ा, फिर सबके सामने वह बोला।।
रुक्मी बोला,
आप सबके सामने ही, मैं प्रतिज्ञा यह करूँ। यदि युद्ध में कृष्ण को न मारूँ, और बहिन को न लौटा सकूँ।।
तो कुण्डिनपुर में कभी, प्रवेश नहीं मैं पाऊँगा। राजधानी के बाहर ही, अपना डेरा मैं जमाऊँगा।।
शुकदेव बोले,
यह कहकर वह पुन:, अपने रथ पर ही जाय चढ़ा। जहाँ कृष्ण हो शीघ्र ले जाओ रथ, सारथी को आदेश दिया।।
आज उसी के साथ मेरा, महा समर हो जायेगा। उस युद्ध में कृष्ण तो निश्चित ही मारा जायेगा।।

उस दुर्बुद्धि ग्वाले को, छेदूंगा तीक्ष्ण बाणों-से। बल वीर्य गुमान सब, चकनाचूर होंगे उसके।।
देखो तो सही उसका साहस, बलपूर्वक रुक्मिणी को हरा। क्या जाने न वह मेरा बल, जो उसने यह कर्म करा?

कुमति ने रुक्मी को ग्रस, प्रभु का तेज न जान सका। बहकी बहकी बातें करता, निज रथ ले कृष्ण के पास गया।।
फिर प्रभु को ललकारा उसने, अरे कृष्ण यहीं पे खड़ा हो जा। निज धनु: को बलपूर्वक खेंचा, तीन बाण उस दिये चला।।

इक क्षण सामने ठहर मेरे, यदुवंशियों के ऐ कुल कलंक। मेरी बहिन चुरा कर भाग रहा, ज्यों कौवा होम सामग्री संग।।
अरे नीच तू तो है मायावी, और कपट युद्ध में कुशल बहुत। आज तेरा सब गर्व ही, पल भर में करूँ मैं नष्ट।।

मेरे बाण जब तक तुझे, धरती पे नहीं सुला देते। भाग जा उससे पहले ही, और भगिनी मम छोड़ दे।।
रुक्मी की बातें सुन करी, श्री हरि जरा हंस दिये। धनुष काट दिया उसका, और छ: बाण उस पर छोड़े।।

चतु: अश्वों पर आठ बाण, श्री कृष्ण ने छोड़ दिये। तीन से काटी रथ की ध्वजा, दो बाण सारथी पर छोड़े।।
दूजा धनुष उठा रुक्मी ने, पांच बाण पुन: छोड़ दिये। श्री कृष्ण को लक्ष्य बना, बाण यह थे छोड़े गए।।

उन बाणों को छूटते ही, कृष्ण ने वह भी धनुष काटा। रुक्मी ने उस पल ही, नव धनु: एक उठा लिया।।
किन्तु उसे हाथ में लेते ही, श्री अच्युत ने प्रहार किया। तत्क्षण ही श्री कृष्ण ने, उस धनुष को काट दिया।।

इस विध रुक्मी ने परिघ, पट्टिश शूल और ढाल ली। अपने हाथ में शक्ति और, तोमर फिर तलवार ली।।
जो भी उठाये अस्त्र शस्त्र, प्रहार वह न कर सका। वार से पहले ही प्रभु ने, उन सबको था काट दिया।।

क्रोधावेश में रुक्मी ने, पुन: हाथ में ली तलवार। श्री कृष्ण को मारना चाहता था, रथ से छलांग दी उसने मार।।

पूरा जोर लगाकर के, उनकी ओर वह यूँ झपटा। ज्यों जल जाने के लिये, अग्नि में पतंगा लपकता।।

जब भगवान ने यह देखा, रुक्मी है चोट करना चाहता। तब उन्होंने अपने बाणों से, तिलवत् तलवार को छिन्न किया।।
फिर अपने हाथों में उन, तीक्ष्ण तलवार निकाल ली। रुक्मी का वध करना ही, श्री भगवान की आशय थी।।

रुक्मिणी ने जब देखा, मम भाई के प्राणों पे बनी। भय विह्वल वह हो गई, श्री कृष्ण के चरण पड़ीं।।
अति करुण स्वर में बोलीं, हे देवदेव हे जगत्पते। योगेश्वर हैं आप प्रभु, हैं परम बलवान् हे।।
स्वरूप आपका और इच्छा, आपकी कोई न जान सके। कल्याण स्वरूप हैं प्रभु आप, नहीं भ्राता हनन तेरे योग्य भए।।

इक इक अंग रुक्मिणी का, था भय के कारण कांप रहा। शोक से मुख था सूख गया, गला भी था उनका रूंधा।।
आतुरता वश कण्ठ से, स्वर्ण हार था गिर पड़ा। इसी अवस्था में उनका तन, था कृष्ण चरण में पड़ा हुआ।।
भयभीत देखी उन्हें प्रभु का, हिय करुणा से भर गया। परम दयालु ने रुक्मी के, वध का निश्चय छोड़ दिया।।

रुक्मी तो फिर भी उनका, अनिष्ट ही था करना चाहता। श्री कृष्ण ने फिर उसे, उसके ही दुपट्टे से बान्धा।।
उसके दाढ़ी मूंछ और, केश कहीं कहीं मूँड दिये। इस विधि रुक्मी के, रूप को उन्होंने कुरूप किये।।
तब तक यदुवंशी वीरों ने, शत्रु सेना को नष्ट किया। ज्यों गजराज कमलदल को, है पूर्णतय: ही रौंदता।।

उधर से लौट के फिर वे सब, श्री कृष्ण के पास आये। दुपट्टे से बन्धे अधमरे से, रुक्मी के दर्शन पाये।।
उसे देख बलराम का, हृदय दया से भर आया। बन्धन खोली उसे छोड़ दिया, और कृष्ण से यूँ कहा।।
कृष्ण। नहीं यह भला किया, निंदित यह कर्म न तेरे अनुरूप। बन्धु के दाढ़ी मूंछ केश, मूँड उसे किया कुरूप।।

यह तो एक प्रकार का, वध ही है तुम जान लो। तत्पश्चात् श्री राम ने, सम्बोधित रुक्मिणी को कियो।।
हे साध्वीतब भ्राता का, रूप है विकृत किया गया। यह सोची हम लोगों से, मन में न तू करना गिला।।
क्योंकि जीव को दु:ख सुख, कभी दूजा न कोई दे सके। अपने कर्म के फल को तो, उसे भोगना ही पड़े।।

फिर बोले कृष्ण से हे अनुज, अपना ही सम्बन्धी कोई। अपराध ऐसा गर करे, हो हनन के वह योग्य ही।।
तो भी बन्धुओं के द्वारा, वध उसका है उचित नहीं। अपने अपराध के कारण, वह तो है पहले हत ही।।
उसको तो छोड़ना ही भला, मरे हुए का मारना क्या। इस कारण हे प्रिय कहूँ, नहीं कर्म यह उचित तेरा।।
पुन: रुक्मिणी से कहा हे भद्रे, यह क्षात्र धर्म ब्रह्मा ने रचा। सहोदर भी निज भाई के, हनन से पीछे नहीं हटता।।

फिर बोले कृष्ण से ठीक है, धन से अन्धे जो लोग हों। मान मद से भरे हुए, अभिमानी जो लोग हों।।
पृथ्वी राज्य धन मान या, तेज स्त्री अन्य कारण से। अपने बन्धु जन का भी तिरस्कार हैं किया करते।।

बलराम बोले,
हे देवि। तेरे अग्रज मन में, है जीवों प्रति दुर्भाव ही। उनके ही मंगल के लिये, है किया यह दण्ड विधान भी।।
अज्ञानी सम ही तुम उसको, अमंगलवत् हो मान रही। हे भद्रे इसमें तो छिपी, तव बुद्धि की विषमता ही।।
मोहित हो प्रभु की माया से, जो देह को ही आत्म मानें। सुहृदय मित्र शत्रु कोई, या उदासीन किसी को मानें।।

सभी देहधारियों का, इक ही आत्म है जान ले। नहीं उसका सम्बन्ध कोई, कार्य कारण या माया से।।
जल घट की उपाधि से, भेद भाव सब दीख रहे। सूर्य चन्द्र ज्योतिर्मय सब, आकाश भी भिन्न सा ही दीखे।।
किन्तु वास्तव में एक हैं वह, वहाँ भेद न हो सके। त्यों ही तन के भेद से, मूर्ख ही आत्म भिन्न मानें।।

यह तन है आदि अन्तवान्, पञ्चभूत तो है यह बना। पञ्चप्राण तन्मात्रा और, त्रिगुण ही है स्वरूप इसका।।
अज्ञान के कारण ही इसकी, कल्पना आत्म में हुई। जो तन को ही आत्म माने, रहे जन्म मरण के चक्र में ही।।

नेत्र और रूप यह दोनों, चमकें सूर्य के ही द्वारा। सूर्य ही कारण है इनका, वियोग न उससे हो सकता।।
न ही संयोग भी हो सके, नेत्र और रूप का सूर्य से। इसी विधि संसार की, सत्ता हो आत्म सत्ता से।।
आत्म ही सब संसार को, प्रकाशवान् स्वत: है करता। आत्म से असत् पदार्थ का, संयोग वियोग न हो सकता।।

जन्मादि विकार सब, तन में हों आत्म में नहीं। कृष्ण पक्ष में कला क्षय हो, ज्यों शशि का क्षय कभी हो नहीं।।
किन्तु अमावस के दिन तो, माने ज्यों हो चन्द्र क्षय ही। त्यों जन्म मृत्यु आदि विकार, हों तन में ही आत्म में नहीं।।
भ्रमवश ही तो जीव उसे, निज आत्म में जाने है। तन के बिना दूजा कोई, आत्म नहीं पहचानें है।।

ज्यों स्वप्न में सोया जीव तो, भोक्ता भोग्य फल अनुभव ले। पर वास्तव में तो स्वप्न में, नहीं कोई पदार्थ सत्य रहे।।
उसी विधि अज्ञानी जन, मिथ्या इस जग का अनुभव लें। वास्तव में झूठा है वह, अस्तित्व कहीं न उसको रहे।।

अज्ञान के कारण शोक जो हो, कल्याण उसको त्याग दो। अन्त:करण के शोक का, कारण तो बस मोह ही हो।।
इसे छोड़कर अब अपने, सच्चे स्वरूप को जान लो। मिथ्यात्व त्यजी अपने को, सत्य स्वरूप में स्थित करो।।

शुकदेव बोले,
श्री राम के यूं समझाने पर, रुक्मिणी जी का मनोमल मिटा। विवेक बुद्धि की राही, समाधान उसका किया।।
रुक्मी की सब सेना संग, तेज भी नष्ट था हो चुका। बस केवल प्राण ही शेष बचे, थीं व्यर्थ हुई सब अभिलाषा।।
शत्रु ने अपमानित कर, उसको था यूं छोड़ दिया। निज कुरूपता की दु:खदे, याद नहीं था भुला सकता।।

अत: अपने रहने के लिये, इक नव नगर बसा लिया। भोजकट नाम का, अति विस्तृत वह नगर था।।
प्रतिज्ञा यह थी पहले करी, दुर्बुद्धि कृष्ण को मारे बिना। और अनुजा रुक्मिणी को, अपने संग लौटाये बिना।।
नहीं करूँगा कुण्डिन पुर में, अब मैं कभी प्रवेश वहाँ। इस क्रोध के कारण रुक्मी फिर, उस नव नगरी में रहने लगा।।

हे राजन् श्री कृष्ण ने, इस विधि सब राजा जीते। फिर अपने रथ के अश्व, द्वारिका को उन्होंने मोड़े।।
द्वारिका पुरी ले जाकर के, विधिवत् पाणिग्रहण किया। उस नगरी के घर घर में, उत्सव मानो होने लगा।।
हो भी क्यों न वहाँ सभी लोग, अनन्य प्रेमी थे कृष्ण के। यदुपति श्री कृष्ण तो, सबकी आँखों के थे तारे।।

वहाँ के सारे नर नारी, मणिमय कुण्डल थे पहरे हुए। आनन्द भरा था हिय उनके, नव सुन्दर परिधान सजे।।
दूल्हा और दुल्हन के लिये, अनेक भेंट उपहार दिये। निज हृदय प्रेम उल्लास के, मानो प्रतीक यह थे उनके।।

द्वारिका पुरी की शोभा भी, अपूर्व थी उस पल बनी। बड़ी बड़ी पताका वहाँ, थीं ऊँची लहरा रहीं।।

चित्र विचित्र थीं मालायें, वस्त्र और थे रत्न सजे। उन सबके अति सुन्दर, तोरण थे वहाँ बान्धे गए।।

द्वार द्वार पर दूब खील, सब मंगल सामग्री सजी। कलश थे जल के भरे हुए, धूप की सुरभि हर घर थी।।
घर घर में द्वारिका के, दीपावली थी हो रही। जगमग करते दीपों से, पुरी की शोभा अपूर्व बनी।।

सभी मित्र नरपति वहाँ, आमन्त्रित थे किये गए। उनके मतवाले हाथी ज्यों, मद का छिड़काव थे कर रहे।।
राजपथ और गालियाँ सब, थीं सुगन्धित उससे हुईं। कदली स्तम्भ सुपारी वृक्ष, हर घर के बाहर थीं सजीं।।

कौतूहल वश उत्सव में, बिन्धु वर्ग थे आये हुए। कुरु सृञ्जय कैकेय, विदर्भी और यदु सब थे।।
कुन्ती के भी पुत्र सभी, थे आनन्द मना रहे। जहाँ तहाँ सब मिल करी, गाथा अपहरण की गा रहे।।
राजा और राजसुताएँ सब, उनका श्रवण थे कर रहे। अति विस्मित से होकर वह, गुणगान कृष्ण का सुन थे रहे।।

हे राजन् भगवती लक्ष्मी को, रुक्मिणी जी के रूप में। साक्षात् श्री लक्ष्मीपति, कृष्ण रूप नारायण के।।
पार्श्व देखी द्वारिका के, नर नारी सब मुदित हुए। उनके हृदय आनन्द से, परिपूर्ण ज्यों हो गए।।

३) प्रद्युम्न का जन्म और शम्बरासुर का वध

शुकदेव बोले,
हे राजन् श्री कृष्ण का ही, अंश रूप हैं कामदेव। रुद्रदेव की क्रोधाग्न में, भस्म हुए थे कामदेव।।
अब पुन: तन पाने को, वासुदेव का ही आश्रय लिया। अपने अंशी प्रभु के ही, घर में उन्होंने जन्म लिया।।

वह कामदेव ही कृष्ण से, रुक्मिणी जी की गोद आये। उनके गर्भ से जन्म लिया, प्रद्युम्न नाम थे वह पाये।।
सौन्दर्य शील और वीर्य सभी, सद्गुणों में थे कृष्ण समान्। जग में वह विख्यात हुए, कौतुक थे उनके महान्।।

बालक प्रद्युम्न अभी केवल, दस दिन के भी थे नहीं हुए। काम रूप शम्बासुर ने, पल में रूप निज बदल लिये।।
सूतिका गृह में आकर के, प्रद्युम्न का उसने अपहरण किया। उन्हें समुद्र में फेंक वह, पुन: घर अपने लौट गया।।

वह असुर था जान गया, प्रद्युम्न भावी शत्रु उसका। इस कारण उस शिशु का ही, अन्त वह था करना चाहता।।
महामत्स्य इक सागर का, उस बालक को निगल गया। मछुओं के महाजाल में, मत्स्य था वह पकड़ा गया।।

उसे ले जाकर फिर उन्होने, शम्बासुर को भेंट किया। उस अद्भुत मच्छ को पाकगृह, में था फिर पहुँचाया गया।।
रसोईए मिल उस मत्स्य को, कुल्हाड़ी से थे काट रहे। उसके पेट में इस बालक, के विचित्र दर्शन हुए।।
शम्बासुर की दासी इक, मायावती के नाम से थी। उस शिशु को लाकर फिर, दासी को समर्पित की।।

उस बालक को देख कर, दासी के मन शंका उठी। नारद जी ने आकर फिर, उसको सारी कथा कही।।
है बालक यह कामदेव, रुक्मिणी गर्भ से जन्म हुआ। कृष्ण है इसका पिता और, कहा मच्छ उदर में कैसे गया।।

हे राजन् वह मायावती, थी कामदेव की पत्नी रति। श्री शंकर के क्रोध से, जिस दिन मदन की तन जली।।
तब से ही रति को पुन:, वा तन धारण की प्रतीक्षा थी। कब तन धर पुन: आएंगे, प्राणनाथ उसके पति।।

वही रति शम्बासुर के, पाकगृह में दासी बनी। जब उसको यह पता लगा, शिशु रूप में आये पति।।

तो बहुत प्रेम उसका उमड़ा, शिशु रूप में कामदेव के प्रति। श्री कृष्ण पुत्र प्रद्युम्न भी, युवक हुए कुछ दिन में ही।।
उनके रूप लावण्य तो, अति अद्भुत थे इस जग से। जो स्त्री भी दरस पाती, काम उद्दीप्त होता मन में।।

कमल नयन उनके सुन्दर, थे कमल दल से विशाल। अजानु बाहु थे मर्त्यलोक में, अति सुन्दर था उनका गात।।
लज्जा मिश्रित हास्य से, रति थी उन्हें निहारती। भ्रुवों के धनु: से मानो वह, कटाक्ष बाण थी मारती।।
हृदय में प्रेम वह भरे हुए, नर नारी प्रेम प्रकट करती। इसी भाव से काम देव की, सेवा सुश्रूषा वह करती।।

श्रीकृष्ण पुत्र प्रद्युम्न ने, मनोभाव में देखा परिवर्तन। इक दिन मायादेवी से, उन्होने किया फिर यह प्रश्न।।
हे देवी तुम तो मेरी, माता के ही समान हो। बुद्धि तेरी कैसे विपरीत हुई, क्यों भाव तेरा परिवर्तित हो?
मैं देख रहा हूँ माता का, भाव है तुमने छोड़ दिया। कामिनी के समान ही, अब हाव भाव रही हो दिखा।।

रति बोली,
श्रीमन्नारायण के घर में, प्रभु आपने जन्म लिया। शम्बासुर ने आपका, सूतिका गृह से हरण किया।।
मेरे पति श्री काम देव, आप स्वयं पुन: प्रकटे। धर्मपत्नी रति हूँ मैं, अनादि काल से देव हे।।

हे स्वामी अभी दस दिन भी, नहीं बीते थे तुम्हारे जन्म को। शम्बासुर ने अपहरण किया, और सागर में फेंक दियो।।
वहाँ एक मत्स्य ने निगल लिया, उसीसे मुझको आप मिले। यह शम्बासुर तो शतश:, मायावी विद्याएँ जाने।।
इसको जीतना तो अति, कठिन ही है मेरे स्वामी। मोहन आदि माया से ही, वशीभूत हो सके यह स्वामी।।

अपने सुत के खो जाने से, अति व्याकुल आपकी माता हैं। अहर्निश चिन्ता वह करें, अति दीन व्यथित हुई माता हैं।।
ज्यों शिशु के खो जाने पर, कुररी पक्षी व्याकुल भए। या वत्स के बिछुड़न से, गईया ज्यों व्यथित भए।।
वही दशा माता की भी, इस पल तो है हो रही। आपको खोकर तो माता की, सुख चैना सारी गई।।

शुकदेव बोले,
इस विधि मायावती ने, प्रद्युम्न को सारी कथा कही। फिर महाबली प्रद्युम्न को, महामाया नाम की विद्या दी।।
यह विद्या सब भाँति की, माया का ही नाश करे। इस महामाया विद्या का, ऐसा अनुपम प्रभाव होए।।

शम्बासुर पे जाकर फिर, प्रद्युम्न ने आक्षेप किया। अति कटु वचन कहे उसको, चाहते थे वह करे झगड़ा।।
इतना ही नहीं स्पष्ट ही, युद्ध हेतु उसे ललकारा। प्रद्युम्न वचन यह सुनकर, महाक्रोध उसका भड़का।।
तिलमिलाया वह जैसे, विषैला सर्प ठोकर खाया। क्रोध से नयन थे लाल हुए, गदा लेई बाहर आया।।

पहले अपनी गदा उसने, आकाश में घुमा ही दी। पूर्ण बल लगाकर के, फिर प्रद्युम्न पे वह छोड़ी।।
उस पल कर्कश उस नाद किया, बिजली हो ज्यों कड़क रही। प्रद्युम्न ने देखा वह गदा, अति वेग से उनकी ओर बढ़ी।।
अपनी गदा के प्रहार से, उस गदा को उन्होने गिरा दिया। क्रोधावेग से अपनी गदा, उस पर ही फिर दी चला।।

मायासुर की माया का, आश्रय लिया उस दैत्य ने। आकाश में ही वह चला गया, दर्शन भी उनके लुप्त हुए।।
वहाँ से ही प्रद्युम्न पर, प्रहार वह करने लगा। अस्त्रों शस्त्रों की मानो, वर्षा ही था कर रहा।।

महारथी प्रद्युम्न पर, जब इस विध वर्षा की उसने। सत्वमयी महाविद्या का, प्रयोग किया प्रद्युम्न ने।।
समस्त मायाजाल को, यह शान्त करने वाली है। इससे ही तो सत्व की, असुरों से हो रखवाली है।।

तत्पश्चात् शम्बासुर ने, अनेकों ही प्रयोग किये। यक्ष गन्धर्व पिशाच नाग, राक्षसी माया कुछ न छोड़े।।
किन्तु श्री कृष्ण कुमार को तो, सत्त्व का था आसरा। महाविद्या के द्वारा उन, सबका नाश ही कर दिया।।

तत्पश्चात इक तीक्ष्ण, तलवार हाथ में उन्होने ली। किरीट कुण्डल शोभित सीस, रक्तिम केशों से भयावह थी।।
शम्बासुर के उस सीस को, धड़ से छिन्न उन्होने किया। इस विधि उस असुर का, वध प्रद्युम्न ने कर दिया।।

देवों ने पुष्प वर्षा करी, और स्तुति वह गाने लगे। तत्पश्चात् मायावति, चली आकाश मार्ग से।।
निज पति प्रद्युम्न को, द्वारिका पुरी ले जाने लगी। इस विद्या को भी मायावती, भली भाँति ही जाने थी।।

सांवले प्रद्युम्न जी, आकाश मार्ग से जा थे रहे। अपनी गोरी पत्नी सहित, ऐसी शोभा थे पा रहे।।
मानो विद्युत और मेघ का, ही युगल हो जा रहा। इस भाँति प्रभु के सर्वोत्तम, अन्त:पुर में प्रवेश किया।।
शतश: श्रेष्ठ रमणियों, का ही था निवास वहाँ। रति सहित प्रद्युम्न भी, अब जाकर पहुँचे वहाँ।।
अन्त:पुर की स्त्रियों ने, श्यामल तन उनका देखा। वर्षाकालीन मेघों पर जैसे, था पीताम्बर लहराया।।

घुटनों तक भुजायें थीं, रक्तिम वर्ण था नेत्रों का। अधरों पर थी फैल रही, मन्द मन्द मुसकान छटा।।
घुंघराली श्यामल अलकें थीं, उनके मुख पे शोभायमान। ज्यों भंवरे हों खेल रहे, कमल पुष्प ही उसको मान।।
उन्हें कृष्ण ही समझ कर, सबकी सब सकुचा गईं। और प्रासाद में इधर उधर, वे सब जाकर छिप गईं।।

धीरे धीरे सबने जाना, यह तो नहीं कृष्ण उनके। क्योंकि उनकी अपेक्षा तो, विलक्षणता कुछ इनमें रहे।।
अति आनन्द और विस्मय से, फिर इन सबका मन भरा। सुशोभित सुन्दर दम्पती, के निकट वह पहुँची जा।।

इसी समय श्री रुक्मिणी जी, भी वहाँ पे आ पहुँची। नयना थे कजरारे उनके, और वाणी अति मृदुल थी।।
इस नव दम्पत्ति के दर्शन से, पुत्र स्मृति उभर आई। वात्सल्य स्नेह के कारण ही, स्तन से दूध की धार बही।।

मन ही मन वह सोचन लगीं, नर रत्न यह कौन है? है कमलनयन यह किसका सुत, माता इसकी कौन है?
किस सौभाग्यवती ने इसे, गर्भ में था धारण किया? और पत्नी रूप में इस, बड़भागिनी का है परिचय क्या?

मेरा भी इक नन्हा सा, शिशु कहीं था खो गया। सूतिका गृह से न जाने, कौन था उसको ले गया?
यदि कहीं जीवित हुआ वह, उसकी भी अवस्था यही होगी। रूप रंग भी इसके ही, समान ही उसकी भी होगी।।
आश्चर्यचकित हूँ देख के मैं, रूप रेखा इस युवक की। घनश्याम सी ही है चाल ढाल, है अंग गठन भी उन जैसी।।
यह मुसकान यह चितवन और, बोल चाल यह कहाँ से मिली? इसमें तो हूँ देख रही, सब लक्षण मैं श्री कृष्ण के ही।।

हो न हो है यह वही बालक, जिसे गर्भ मैं था मैंने धारा। क्योंकि स्वभाविक ही मेरा स्नेह, इसके प्रति है उमड़ रहा।।
वाम भुजा भी मेरी यह, इस पल क्यों है फड़क रही? मानो शुभ सन्देस कोई, मुझको हो यह दे रही।।

जिस पल रुक्मिणी के मन में, यह सोच विचार था चल रहा। विश्वास और संशय के कभी, झूले में मन था डोल रहा।।

उसी समय उत्तम कीर्ति, श्री कृष्ण पधारे वहाँ। मात पिता देवकी और, वसुदेव भी साथ ही आये वहाँ।।

प्रभु तो सब कुछ जाने थे, किन्तु मुख से कुछ न बोले। मौन ही वहाँ पे खड़े थे वह, इतने में नारद आ पहुँचे।।
उन्होने फिर सब घटना क्रम, सबके सामने कह डाला। शम्बासुर के अपहरण का, और सागर में पतन आदि का।।

महा आश्चर्यमयी यह सब, घटनाएँ सुनकर नारद से। अन्त:पुर की सब स्त्रियों के, हृदय अति विस्मित हुए।।
बहुत वर्षों से खोए हुए, प्रद्युम्न का अभिनन्दन किया। मानो कोई मरकर ही, पुन: हो जीवित हो गया।।

देवकी वासुदेव जी, श्री कृष्ण सहित श्री बलराम। रुक्मिणी सहित सब स्त्रियों, को हुआ आनन्द महान्।।
हृदय से नव दम्पत्ति को, लगाया सबने ही क्रम से। द्वारिका वासी नर नारी, ने भी यह समाचार सुने।।
खोये हुए प्रद्युम्न आज, पुन: हैं वापिस आ गए। तो परस्पर उन सबमें, वार्तालाप यह होने लगे।।
अहो अति सौभाग्य हुआ, यह बालक है लौट आया। ऐसा लगे यमलोक से ही, मानो पुनरागमन हुआ।।

हे राजन् प्रद्युम्न का, रूप था ऐसा कृष्ण समान। उन्हें देख माताएँ भी, कृष्ण ही लेतीं उनको मान।।
मधुर भाव से उनका मन, परिपूर्ण था फिर हो जाता। उनके सामने से हटकर, एकान्त ही उनको था भाता।।
श्री हरि के प्रतिबिम्ब रूप, कामावतार प्रद्युम्न थे। उनके दर्शन से भाव यह हो, नहीं इसमें तनिक आश्चर्य हे।।
फिर उन्हें देखकर अन्य तो, स्त्रियों की दशा ही क्या होती? उसका तो कहना ही क्या, विचित्र दशा जो वहाँ होती।।

४) स्यमन्तकमणि की कथा, जाम्बवन्ती और सत्यभामा के साथ विवाह

शुकदेव बोले,
सत्राजित् ने श्रीकृष्ण को, मिथ्या ही कलंकित था किया। इस पाप के मार्जन हेतु, पुत्री को कृष्ण अर्पित किया।।
परीक्षित बोले,
हे द्विजवर सत्राजित ने, कौन सा था अपराध किया? स्यमन्तक मणि उसे कहीं मिली, निज कन्या को उस क्यों सौंपा?
शुकदेव बोले,
सत्राजित् सूर्यदेव का था, अनन्य प्रेमी और महाभक्त। भक्ति से हुए प्रसन्न सूर्य, स्यमन्तक मणि दी उसे भेंट।।
कण्ठ में मणि को धारण कर, महातेजवान् हुआ सत्राजित्। मानो सूर्य प्रत्यक्ष ही, सामने ज्यों हो प्रकाशित।।
स्यमन्तक मणि को लेकर के, द्वारिकापुरी वह जब लौटा। तेजस्विता उसकी देखी, नहीं लोगों ने उसे पहचाना।।

दूर से ही देखकर, आखें उसकी चुन्धिया गईं। समझा उन्होंने सूर्यदेव, कदाचित् आज पधारे यहीं।।
श्री कृष्ण सम्मुख जाकर, उनको सूचना इसकी दी। चौसर खेल रहे थे प्रभु, जब यह सूचना उनको मिली।।

लोगों ने श्री कृष्ण पे जा, इस विध उनसे प्रार्थना की। हे शंख चक्र गदाधारी, श्री नारायण कमलाक्ष हरि।।
यदुश्रेष्ठ गोविन्द हे, नमस्कार है आपको। जगदीश्वर हे धारण करी, हिरण्मयी निज किरणों को।।
नेत्रों को चुन्धियाते हुए, श्री सूर्यदेव हैं आ रहे। आपके दर्शन के लिये, प्रचण्ड रश्मि वह आ रहे।।

त्रिलोकी के सब श्रेष्ठ देव, आपकी प्राप्ति ही चाहें। मार्ग अनेकों खोजें वह, पर वह आपको न पायें।।
यदुवंश में ही छिपे, आज आपको मानकर, सूर्यदेव हैं आ रहे, दर्शन की आस हिय में धर।।

शुकदेव बोले,
बालक समान उन लोगों की, बातें यह सुनकर राजन्। कमलनयन श्री कृष्ण तो, हो गए प्रफुल्ल वदन ।।
उनसे कहा अरे जानो तुम, नहीं है सूर्य देव यह। यह तो अपना सत्राजित है, जो मणि से है इतना चमके ।।

तत्पश्चात् सत्राजित् निज, समृद्ध धाम को चला गया। उसके शुभ आगमन पे, मंगल उत्सव वहाँ हो था रहा ।।
ब्राह्मणों के द्वारा उसने, विधिवत् पूजन करवाया। स्यमन्तक मणि को फिर, देव स्थान पे बिठलाया ।।

वह मणि प्रतिदिन राजन्, आठ भार थी स्वर्ण देती। सर्वमंगल ही करती वहाँ, जहाँ पे पूजित वह होती ।।
दुर्भिक्ष और महामारी, ग्रह पीड़ा और सर्प भय। आधि व्याधि या मायावी, उपद्रव पास न आ सकते ।।

एक बार प्रसंग वश, श्री कृष्ण ने सत्राजित् को कहा। यह मणि तुम उग्रसेन को दो, वह ही तो हैं सबके राजा ।।
किन्तु वह तो धन लोलुप था, अन्य विचार कोई न था। श्री भगवान की आज्ञा को, भी स्वीकार उसने नहीं किया ।।

इक दिन सत्राजित् के भाई, प्रसेन के मन में भाव उठा। परम प्रकाश दे मणि को, निज कण्ठ में धारण किया ।।
फिर घोड़े पे सवार हुआ, और वन को प्रस्थान किया। आखेट करूँगा वन में जा, यह ही उसका उद्देश्य था ।।

अश्व सहित प्रसेन को, वहाँ एक सिंह ने मार दिया। मणि छीन पर्वत की गुफा, में प्रवेश था कर वह रहा ।।
ऋक्षराज श्री जाम्बवान् ने, तब उसपर आक्रमण किया। सिंह को मार उस मणि, को जाम्बवान् ने ले लिया ।।
अपनी गुफा में ले जाकर, वह मणि दी शिशुन् को खेलन को। प्रसेनजित न आया देख, सत्राजित् था अति व्यथित भयो ।।

वह कहने लगा यह सम्भव है, श्री कृष्ण ने हो भाई मारा। क्योंकि मणि को पहर के ही, वह तो था वन में गया ।।
सत्राजित् का यह कथन सुनी, लोगों में बातें होने लगीं। दबी जुबान में कृष्ण प्रति, संशय सबके मन उठने लगी ।।

जब श्री कृष्ण ने यह सुना, कलंक है उनके सीस लगा। तब उसको धो देने का, श्री हरि ने निश्चय किया ।।
कुछ प्रख्यात नागरिकों को, प्रभु ने अपने साथ लिया। प्रसेनजित् को खोजने, वन को फिर प्रस्थान किया ।।

खोजते खोजते जब भीषण, वन के मध्य में वह आये। प्रसेनजित् और उसके अश्व, के शव वहाँ पड़े पाये ।।
उन्होने देखा सिंह ने, है प्रसेन को मार दिया। उस हिंसक के पदचिन्हों का, तब उन्होने पीछा किया ।।
तनिक वह जब आगे बढ़े, उन लोगों ने फिर देखा। एक रीछ ने सिंह को भी, है वहाँ पे मार दिया ।।

श्री कृष्ण ने उन सब लोगों को, बाहर ही फिर बिठा दिया। ऋक्ष की उस घोर अन्धेरी, गुफा में फिर प्रवेश किया ।।
वहाँ जाकर देखा उन्होने, बच्चों का खिलौना थी बनी। बच्चों के ही हाथ में थी, वह अद्भुत अनमोल मणि ।।
उसको लेने के लिये, शिशुओं के पास वह हुए खड़े। अपरिचित पुरुष को देख वहाँ, धाय चीखी मारे भय के ।।
उसका चिल्लाना सुन कर, ऋक्षराज अति क्रुध हुए। उनके बच्चे जहाँ पे थे, तत्काल वहीं वह जा पहुँचे ।।
क्रोधावेग में जाम्बवान्, प्रभु की महिमा न जान सके। साधारण जीव उन्हें जानी, युद्ध स्वामी से करने लगे ।।

मांस के लिये दो बाज ज्यों, आपस में हैं भिड़ जाते। विजय की आकांक्षा से, प्रभु जाम्बावन् से जाय भिड़े ।।
अस्त्रों शस्त्रों से किया प्रहार, पाषाण फेंकने फिर लगे। तत्पश्चात् उखाड़ी वृक्ष, इक दूजे पर उन्होने फेंके ।।

महाघमासन था युद्ध यह, अन्त में मल्लयुद्ध होने लगा। वज्र से मुष्टि प्रहार का वह, अठ्ठाईस दिन तक युद्ध चला।।

अन्त में श्री कृष्ण के, घूंसे की ही चोट से। जाम्बवान् के तन की, इक इक ग्रन्थी भेदन हुए।।
उत्साह हीन वह हो गया, लथपथ पसीने से हुआ। विस्मित हुआ वह चकित सा, श्री हरि से फिर यूं बोला।।

जाम्बवान बोले,
जान गया प्रभु आज मैं, सब जगत् के स्वामी आप हैं। पुराण पुरुष श्री विष्णु हैं, सबके रक्षक भी आप हैं।।
सबके प्राण और इन्द्रिय बल, प्रभु मैं जानूँ आप हैं। मनोबल और तनोबल भी, सब जीवों के आप हैं।।

विश्वरचयिता ब्रह्मा आदि, के भी जनक प्रभु आप हैं। सब सृष्टि में सत्ता रूप, विराजमान् प्रभु आप हैं।।
काल के सब ही अंशों के, नियामक परम काल हैं आप। शरीर दीखें भिन्न जो, आन्तर परम आत्म हैं आप।।

हे प्रभु मुझको याद है, नयनों में तनिक था क्रोध भरा। तिरछी दृष्टि से सागर को, आपने ही तब था देखा।।
महाघड़ियाल और मगरमच्छ, सागर के सब क्षुब्ध हुए। सागर ने तब हे प्रभु, आपको थे मार्ग दिये।।
हे भगवन् तब आपने, महा अद्भुत कौतुक काय। सागर पर सेतु बान्धी, निज यश को विस्तृत किया।।
सेतु से जा पहुँचे लंका, और लंका को विध्वंस किया। राक्षस राज रावण का, प्रभु राम ने वध किया।।
आपके बाणों से कटकर, पृथ्वी पे राक्षस सीस गिरे। वही प्रभु मेरे राम आज, कृष्ण रूप धारे हैं खड़े।।

शुकदेव बोले,
ऋक्षराज ने श्री हरि को, जब इस विध पहचान लिया। कमल नयन श्री कृष्ण ने, कोमल कर से उन्हें सहलाया।।
अहैतुकी कृपा से परिपूर्ण, प्रेममयी निज वाणी से। गम्भीर स्वरों में श्री हरि, अपने भक्त से यूं बोले।।

हे ऋक्षराज मणि के ही लिये, हम तेरी गुफा में आये हैं। मिथ्या कलंक जो मुझपे लगा, उसे मिटाना चाहे हैं।।
भगवान के ऐसा कहने पर, महामुदित हुआ जाम्बवान्। उनकी पूजा के लिये, ले आया वह सब सामान।।
तत्पश्चात् मणि के संग, निज कन्या भी अर्पित करी। जन्म जन्म से प्रभु को ही, उपासे थी वह जाम्बवती।।

श्री कृष्ण जिन लोगों को, थे गुफा के बाहर छोड़ गए। बारह दिन तक बैठै रहे, जब कृष्ण गुफा से न निकले।।
अति व्यथित वह होकर के, द्वारिका पुरी को लौट गए। माता देवकी वसुदेव, रुक्मिणी अन्य बन्धु जो थे।।
जब जाना श्री कृष्ण तो, गुफा के बाहर न आये। वह शोक के सागर में डूबे, प्रकाश किरण न दिख पाये।।

अति व्यथित हुए सब पुरवासी, सत्राजित् ठहराया दोषी। श्री कृष्ण की प्राप्ति के लिये, फिर शरण गये महामाया की।।
श्री दुर्गा मैय्या की वह, सब मिली उपासना करने लगे। दुर्गा माँ ने प्रसन्न हो, आशीर्वाद उनको दिये।।
तत्क्षण ही श्री कृष्ण भी, उनके बीच में आ प्रकटे। स्यमन्तक मणि और नववधु, जाम्बवती थे संग लिये।।

सफल मनोरथ थे हुए, सबको उन्होने प्रसन्न किया। सुन्दर छवि निज दिखलाकर, शान्त तप्त हृदयों को किया।।
कण्ठ में थी मणि धारण की, नव पत्नी उनके संग थी। पुरवासी प्रजा दर्शन पा, अपने दु:ख सारे भूली।।
मानो कोई मर कर ही, पुन: लौट फिर हो आया। इस विधि कृष्ण देखी, हृदय आनन्द उभर आया।।

श्री भगवान ने सत्राजित को, राज्य सभा में बुलवाया। उग्रसेन के सामने ही, मणि वृत्तान्त सब बतलाया।।
सारी कथा सुनाई उसे, मणि वह कैसे प्राप्त हुई। तत्पश्चात् वह मणि उन्होने, सत्राजित् को सौंप दी।।

अति लज्जित हुआ सत्राजित्, मणि तो कर में उसने ली। किन्तु आत्म ग्लानि से, सीस थभ उसका झुकी हुई।।
अपने अपराध के कारण था, पश्चाताप उसे हो रहा। जिस किसी भी भाँति वह, अपने घर पुन: लौट आया।।

मन की आंखों के सामने, अपराध नित्य निज देखे था। बलवान् प्रभु का विरोध करी, आन्तर में भयभीत भी था।।
निरन्तर यही था सोचता, अपराध का मार्जन कैसे हो? कैसी विधि अब करूं कोई, मुझपर श्री कृष्ण प्रसन्न हों।।

कौनसा ऐसा काज करूँ, जिससे मेरा कल्याण हो? लोग मुझे कोसें नहीं, नाम न यह बदनाम हो।।
अति क्षुद्र अदूरदर्शी मैं, धन के लोभ ने मति हरी। तभी तो ऐसी महामूढ़ की, कर्म मुझसे हो गई।।

स्यमन्तक मणि के साथ ही, रमणी रत्न जो मेरी कन्या। अर्पित कर दूँ श्री कृष्ण को, लाड़ली सुता सत्यभामा।।
यही उपाय है उचित, मार्जन इसी से हो सके। मेरे अपराध का अन्य कोई, प्रायश्चित न हो सके।।

निज विवेक बुद्धि से ही, सत्राजित् ने निर्णय किया। और स्वयं ही उसने फिर, इसके लिये उद्योग किया।।
अपनी कन्या और मणि, दोनों ही वह ले के गया। श्री कृष्ण के चरणों में, समर्पित उनको कर दिया।।

शील सौन्दर्य उदारता, सब सद्गुण से वह सम्पन्न थी। बहुत से वीर द्वारिका के, थे सत्यभामा के आकांक्षी।।
किन्तु अब श्री कृष्ण ने, विधिवत् पाणिग्रहण किया। इस विधि सत्यभामा का, श्री कृष्ण से हुआ विवाह।।

हे राजन् श्री कृष्ण ने, सत्राजित् से फिर यूँ कहा। सूर्यदेव के भक्त आप, मणि आपके पास ही रहे सदा।।
हम तो बस केवल उसके, फल के ही अधिकारी हैं। वह स्वर्ण आप हमें दिया करें, यह ही बिनती हमारी है।।

५) स्यमन्तक मणि का हरण और शतधन्वा का वध व कृष्ण का अक्रूर को द्वारिका बुलाना

शुकदेव बोले,
यद्यपि श्री भगवान तो, इस बात को जानते थे राजन्। लक्षागृह की आग से, नहीं बिगड़ा पाण्डवों का किंचन्।।
तथापि जब उन्होने सुना, कुन्ती और पाण्डव सब मरे। बलराम संग गए हस्तिनापुर, लोकोचित व्यवहार किये।।

भीष्मपितामह कृपाचार्य, विदुर और गान्धारी से मिले। द्रोणाचार्य के पास भी जा, सम्वेदना निज प्रकट किये।।
उन लोगों से यही कहा, हाय यह तो बहुत बुरा हुआ। उचित समय से पहले ही, प्रयाण यह उनका कैसे हुआ?

द्वारिका से जब श्री कृष्ण, हस्तिनापुर को थे गए। अक्रूर और कृतवर्मा को, नव अवसर यह मिल गए।।
शतधन्वा पे जा उसे कहा, एक काम अब तुम करो। सत्राजित से तुम ही क्यों न, अब मणि यह छीन लो?

कन्या रत्न सुता अपनी, हमें देने का था वचन किया। तिरस्कार हम सब कर, उसे कृष्ण के संग ब्याह दिया।।
सत्राजित भी अपने भाई, प्रसेन का ही अनुसरण करे। क्यों न उसको भी हम सब, यमलोक ही भेज दें?

शतधन्वा बहुत पापी था, मृत्यु भी सीस पे नाच रही। अक्रूर और कृतवर्मा की, बातों ने उसकी मति हरी।।

उस महादुष्ट ने लोभवश, ऐसा निंदित कर्म किया। नींद में ही सोये हुए, सत्राजित् का वध किया।।

अनाथ हुईं वहाँ स्त्रियां, रोने और चिल्लाने लगीं। किन्तु उस क्रूर ने रुदन ओर, तनिक ध्यान भी नहीं धरी।।
जैसे कसाई पशुओं की, नृशंस हो हत्या करे। त्यों ही वध कर मणि ले उनकी, वहाँ से वह चम्पत हुए।।

सत्यभामा ने जब देखा, मेरे पिता की है हत्या हुई। शोकोद्वेग से तड़पीं वह, विलाप यूं करने लगी।।
हा पिता। मैं मारी गई, बेहोश कभी वह हो जाती। पुन: होश में आने पर, विलाप वह फिर करने लगती।।

तत्पश्चात निज पिता का शव, तैल में उसने रख दिया। और स्वयं भी हस्तिनापुर, की ओर प्रस्थान किया।।
दु:खी हृदय से कृष्ण को, निज पिता की हत्या की कही। इन सारी घटनाओं की, श्री कृष्ण को पूर्व ही ज्ञान थी।।

सर्वज्ञ प्रभु श्री कृष्ण और, बलराम ने सब बातें सुनीं। मनुज सी लीला करते हुए, नयनों में अश्रु भी भरी।।
विलाप वह करने लगे, अहो यह विपदा भारी पड़ी। भामा और बलराम सहित, द्वारिका लौटे कृष्ण भी।।
शतधन्वा को मार कर, वह मणि छीनना चाहते थे। इस कारण श्री कृष्ण ने, अब उसके उद्योग किये।।

शतधन्वा को जब कृष्ण के, इस आशय की भनक पड़ी। अति भयभीत वह हो गया, प्राणों की रक्षा हेतु ही।।
कृतवर्मा पे जाकर के, सहायता उसने जब मांगी। तब कृतवर्मा ने उसे, टके सी यह उत्तर दे दी।।

श्री कृष्ण बलराम तो, शक्ति स्वरूप श्री ईश्वर हैं। नहीं सामना उनका कर सकूँ, साक्षात् वह परमेश्वर हैं।।
कौन भला हो जग में ऐसा, वैर जो उनसे कर सके? लोक और परलोक तो, दोनों ही उसके नष्ट भएँ।।

तुम जानो राजा कंस ने, था उनसे ही द्वेष किया। राज पाठ तो खोया ही, अनुयायियों सहित वह मारा गया।।
जरासन्ध सम शूरवीर भी, उनके सम्मुख न टिक सका। सत्रह बार हारा उनसे, बिन रथ ही मगध को था लौटा।।

जब कृतवर्मा ने उसे, कोरा सा उत्तर दिया। शतधन्वा सहायता को, फिर अक्रूर के पास गया।।
उन्होंने भी उसे कह दिया, कौन पुरुष कहीं है ऐसा? प्रभु का बल पौरुष जानी, जो वैर कभी उनसे करता?
वह तो खेल खेल में ही, सब जग की रचना कर डालें। वही पालन करें इसका, संहार भी इसका कर डालें।।
वह कब क्या करना चाहें, कोई न यह पहचान सके। माया से मोहित ब्रह्मा और, विधाता भी न जान सकें।।

सात वर्ष के बालक थे, गोवर्धन जब उखाड़ लिया। ज्यों किसी नन्हें बालक ने, बरसाती पुष्प हो कर पे धरा।।
वैसे ही खेल खेल में, इक हाथ पे ही उसे धार लिया। सात दिनों तक इस विधि, गिरिराज को उन्होने उठा रखा।।
मैं नमन करूँ श्री कृष्ण को, उनके कर्म हैं अति अद्भुत। वह अनन्त अनादि एक रस, वह ही है आत्म स्वरूप।।

जब श्री अक्रूर ने भी, ऐसा उत्तर उसे दिया। शतधन्वा ने मणि को ही, फिर उनके हवाले किया।।
द्रुत गति के अश्व चढ़ी, स्फूर्ति से फिर वह भागा। चार सौ कोस की दूरी वह, निरन्तर तय था कर सकता।।

श्री कृष्ण राम दोनों भाई, अपने रथ पे सवार हुए। गरुड़ ध्वजा थी उसपे सजी, अति वेगवान् उनके अश्व थे।।
निज श्वसुर के हन्ता शतधन्वा, का उन्होने पीछा किया। मिथिला के निकट इक उपवन में, शतधन्वा का अश्व गिरा।।
उसे छोड़ वह पैदल ही, तीव्र गति से भाग गया। अति भयभीत हुआ था वह, क्रोधित हो कृष्ण ने पीछा किया।।

शतधन्वा पैदल ही था, श्री कृष्ण ने भी निज रथ छोड़ा। पैदल ही वह भी दौड़े, फिर निज चक्र को उन छोड़ा।।
तीक्ष्ण धार के चक्र से, उसका सीस उतार दिया। फिर वस्त्रों में उसके, स्यमन्तक मणि को उन्होंने खोजा।।

किन्तु जब मणि वह नहीं मिली, निज अग्रज से यूँ कहा। व्यर्थ में ही शतधन्वा का, हमने है यह हनन किया।।
निश्चित ही उसके पास तो, स्यमन्तक मणि है नहीं। फिर वह मणि जो सूर्य की, किसके पास है हो सकती?

बलराम जी ने उनसे कहा, नहीं इसमें संशय कोई। शतधन्वा ने वह मणि, किसी अन्य के पास ही है छोड़ी।।
अब द्वारिका जाकर ही, इसका पता लगाओ तुम। तब ही स्यमन्तक मणि को, कहीं खोज पाओगे तुम।।
विदेहराज मेरे प्रिय मित्र, मैं उनसे हूँ मिलना चाहता। यह कहकर श्री बलराम ने, मिथिला को प्रस्थान किया।।

मिथिला नरेश ने जब देखा, यदुश्रेष्ठ बलराम आये। आनन्द प्रेम से हृदय भरा, निज आसन से उठकर आये।।
अनेक सामग्री से उन्होने, श्री बलराम की पूजा की। श्री बलराम ने बहुत बरस, मिथिला में ही फिर वास करी।।
महात्मा जनक ने बहुत प्रेम, और उनको सम्मान दिया। दुर्योधन को समय आने पर, उन्होंने गदा युद्ध का ज्ञान दिया।।

अपनी प्रिया सत्यभामा का, प्रिय कार्य कर श्री कृष्ण। द्वारिका पुरी में लौट आये, फिर उनको किया प्रसन्न।।
उनको यह भी बतलाया, शतधन्वा का वध किया। किन्तु सूर्य मणि का तो, उसके पास न पता चला।।
फिर बन्धु बान्धव साथ लिये, संस्कार किये निज श्वसुर के। करवाईं वह क्रियायें सब, जिनसे परलोक उनका सुधर सके।।

कृतवर्मा और अक्रूर ने, शतधन्वा को था उकसाया। उन्होने ही उसके द्वारा, सत्राजित् को था मरवाया।।
जब उनको यह ज्ञात हुआ, श्री कृष्ण ने शतधन्वा मारा। अति भयभीत हुए दोनों, द्वारिका से प्रस्थान किया।।

हे भारत कुछ लोग तो, ऐसा भी हैं मानते। अक्रूर के द्वारिका त्यजने से, अनेकों कष्ट वहाँ आन पड़े।।
दैविक और भौतिक निमित्त, वहाँ पे ऐसे हो गए। वहाँ के लोगों को बहुत, तनो मनो कष्ट सहने पड़े।।
किन्तु जो ऐसा कहते हैं, वह भूलें पहली बातों को। जिन श्री कृष्ण में सम्पूर्ण, ऋषि मुनियों की वास हो।।
उनके ही रहते हुए, उनके धाम द्वारिका में। कैसे सम्भव हो भला, उपद्रव कोई कहीं उठे?

उस समय द्वारिका पुरी के, वृद्धों ने इक कथा कही। काशी नरेश के राज्य में, इक बेरी वर्षा नहीं हुई।।
उस समय उस राज्य में थे, अक्रूर पिता श्वफल्क गए। काशी नरेश सुता गान्दिनी, के उससे विवाह किये।।

तब उस प्रदेश में, अच्छी वर्षा होने लगी। श्वफल्क पुत्र अक्रूर हैं, इनका भी हो प्रभाव वही।।
जहाँ जहाँ अक्रूर रहें, वहाँ अच्छी वर्षा होगी। किसी प्रकार का कष्ट उपद्रव, महामारी नहीं आयेगी।।

उन लोगों की बातें सुनकर, श्री कृष्ण ने यूँ सोचा। सारे ही उपद्रवों का, कहीं यही न हो कारण बना।।
श्री कृष्ण ने दूत भेज, अक्रूर को फिर ढुँडवाया। और वहाँ जब आ पहुँचे, उनसे वार्तालाप किया।।

स्वागत और सत्कार किया, मधुर प्रेम की बातें की। प्रभु से तो सबके चित्त का, न इक संकल्प भी छिपे कभी।।
मन्द मन्द मुसकाते हुए, अक्रूर से फिर वह कहने लगे। हैं दान धर्म के अनुयायी, आप तात् हम जानें यह।।
यह भी जानें शतधन्वा ने, मणि वह आपको ही है दी। अति ज्योतिर्मयी स्यमन्तक, है धन दाता वह सूर्य मणि।।

आप तो जानें सत्राजित् के, पुत्र नहीं यहाँ कोई भी। उनकी पिण्डदान क्रिया, करेंगे उनके नाती ही।।
वह ही उनका ऋण भी चुकाएँगे, उत्तराधिकारी भी वहीं होंगे। नियम से तो उस मणि के, मेरा पुत्र ही अधिकारी बनें।।
तथापि आपसे कहता हूँ, वह मणि आपके पास रहे। व्रतनिष्ठ पवित्रात्मा आप, कोई अन्य न इसको रख सके।।
किन्तु इक कठिनाई बहु, है मेरे सामने आ रही। अग्रज बलराम मणि के लिये, नहीं मानें मेरी बात भी।।

इसलिये हे महाभाग, वह मणि दिखाकर बन्धुओं को। संशय दूर करें उनका, उनके हृदय फिर शान्त हों।।
उस मणि के ही प्रताप से, हम जानें आप बहुत यज्ञ करें। उन यज्ञों में सुना हमने, सोने की वेदियां बने।।
जब श्री कृष्ण ने हे राजन्, इस विधि उसको सान्त्वना दी। अक्रूर ने वस्त्र में लिपटी, सूर्य कान्ति सम मणि वह दी।।

श्री कृष्ण ने बन्धु बान्धव को, फिर मणि वह दिखलाई। कलंक दूर किया अपना, विश्वास भी सबको दिलवाई।।
सर्व समर्थ थे वह स्वयं, रख सकते थे उस मणि को। किन्तु पुन: लौटा ही दी, वह मणि श्री अक्रूर को।।

भगवान के पराक्रमों से, परिपूर्ण यह आख्यान है। सब ताप ताप कलंकों का, पावनकर यह आख्यान है।।
मंगलमय इस आख्यान को, जो भी पढ़ता या सुनता है। या फिर जो कोई भी, सिमरन् या चिन्तन करता है।।
सब भान्ति की अपकीर्ति और, पापों से वह मुक्त हो। परम शान्ति वह पा जाये, और भक्ति से युक्त हो।।

६) कृष्ण के अन्य विवाह

शुकदेव बोले,
अब तक हे राजन् पाण्डवों का, भी पता था चल गया। लक्षागृह में वह जले नहीं, सुरक्षित हैं सारे भ्राता।।
श्री कृष्ण उन्हें मिलने, एकबार इन्द्रप्रस्थ गए। सात्यकि आदि यदुवंशी, भी श्री कृष्ण के संग थे।।

पृथा के पुत्रों ने देखा, सर्वेश्वर श्री कृष्ण आये। सबके सब उठ खड़े हुए, इन्द्रियों में ज्यों प्राण बसे।।
श्री कृष्ण का आलिंगन किया, पाप ताप सब धुल गये। प्रेममयी मुख छवि देख, आनन्द मग्न वह हो गये।।

भ्राता युधिष्ठिर और भीम के, चरणों में श्री कृष्ण झुके। समव्यस् अर्जुन को उन्होने, अपने हिय लगा लिये।।
नकुल और सहदेव ने, श्री कृष्ण चरण वन्दना करी। इस विधि परस्पर में, अभिवादन उनकी हुई।।

श्रेष्ठ आसन पर श्री कृष्ण, जाकर हुए विराजमान्। परम सुन्दरी द्रौपदी ने, आकर उनको किया प्रणाम।।
नवविवाहिता थी श्यामा, इस कारण थी सकुचा रही। धीमी धीमी चाल से, थी अपने कदम बढ़ा रही।।

प्रभु समान ही महावीर, सात्यकि का भी सत्कार किया। अभिवादन वन्दन करके, उसको भी आसन दिया।।
अन्य यदुवीरों का भी, यथा योग्य सत्कार किया। स्वयं श्री कृष्ण के चहुँ ओर, आसन पर वह बैठे जा।।

तत्पश्चात् श्री कृष्ण, फूफी कुन्ती के पास गए। चरणों में प्रणाम किया, उस अपने कण्ठ लगा लिये।।
प्रेमपूर्ण अश्रुन् से फिर, नयना उसके भर गए। श्री कृष्ण से बन्धु बान्धव के, कुशल क्षेम उसने पूछे।।
भगवान ने भी सब प्रश्नों का, यथोचित उत्तर दे दिया। नव पुत्रवधु उनकी द्रौपदी, और उसका कुशल क्षेम पूछा।।

प्रेम की आकूलता से तब, कुन्ती का गला था भर आया। नयनों से आँसू बह निकले, कष्टों की याद से मन भरा।।

अपने को फिर सम्भाल के, श्री कृष्ण को वह कहने लगी। जिनके दर्शन मात्र से ही, दु:ख क्लेश मिट जायें सभी।।

हे कृष्ण जब तूने हमें, बन्धु जानकर याद किया। मंगल हमारा जानन को, भैय्या अक्रूर को जब भेजा।।
तभी कल्याण हुआ हमरा, सनाथ ही हम हो गये। कोई हमारा है अपना, जानी अनाथ हम नहीं रहे।।

मैं जानूँ सब जगत् के, तुम परम सुहृद् आत्म हो। अपने पराये की भ्रान्ति, तुममें कभी भी नाहीं हो।।
फिर भी कृष्ण जो हर पल ही, सिमरन् तेरा करते हैं। उनके हृदय में आ बैठो, दु:ख क्लेश उन्हें न छूते हैं।।
युधिष्ठिर बोले,
हम न जानें हे सर्वेश्वर, कौन से साधन हमने किए? पूर्व जन्म या इस जन्म, के पुण्य कौन से उदय हुए?
बड़े बड़े योगेश्वर भी, नहीं दर्शन सुगमता से पायें। हम जैसे मूढ़ों को प्रभु, दर्शन देने स्वयं घर आ जायें।।

शुकदेव बोले,
राजा युधिष्ठिर ने उनका, विविध विधि सम्मान किया। और प्रार्थना की उनसे, कुछ दिन उन संग ही रहें वहाँ।।
इन्द्रप्रस्थ के जन जन को, निज रूप माधुरी पान दिया। वर्षा ऋतु के चतुर्मास, विश्राम उन्होंने वहीं किया।।

हे राजन् एकबार वीरश्रेष्ठ, अर्जुन ने निज गाण्डीव लिया। दो अक्षय बाण धर तरकश में, और कवच निज पहन लिया।।
श्री कृष्ण को फिर संग लेकर, रथ पे वह सवार हुए। अर्जुन के रथ पे कपिध्वज, थे सुसज्जित हो रहे।।
तत्पश्चात् रिपुदमन, अर्जुन आखेट को वन में गए। हिंसक पशु सिंह बाघ, आदि के जहाँ वास थे।।

बहुत बाघ सूअर भैंसे, कृष्णमृग शरभ गवय। गैण्डे हरिण खरगोश और, साही आदि के शिकार किये।।
यज्ञ योग्य पशु उनमें से, सेवक गण को सौंप दिये। पर्व का अवसर जान कर, राजा युधिष्ठिर को दिये।।
आखेट खेलते खेलते, अर्जुन जब बहुत श्रान्त हुए। अपनी प्यास मिटाने को, वह यमुना के तट पे गए।।

श्री कृष्ण अर्जुन दोनों ही, महावीर महारथियों ने। हाथ पांव धोए अपने, और यमुना के जल पिये।।
फिर देखा इक श्रेष्ठ सुन्दरी, थी तपस्या में बैठी। ऊरु दन्त और मुख उसकी, अति सुकोमल सुन्दर थी।।
प्रिय मित्र श्री कृष्ण ने, अर्जुन को वहाँ भेजा। अर्जुन ने उसके पास जा, फिर कन्या से प्रश्न किया।।
अर्जुन बोले,
हे चन्द्रमुखी कहो कौन हो तुम, हो किसकी पुत्री यह तो कहो। कहाँ से आई तुम यहाँ, और तेरा उद्देश्य क्या हो?
मैं मानूँ निज योग्य पति, की ही है अभिलाषा तुम्हें। हे कल्याणि अपनी सारी, कथा तुम ही बताओ मुझे।।
कालिन्दी बोली,
हूं सूर्यदेव की पुत्री मैं, यहाँ कठिन तपस्या कर रही। वरदानी प्रभु विष्णु ही, वर के रूप में चाह मैं रही।।
हे वीरवर लक्ष्मी जी के, परम आश्रय हैं जो प्रभु। उन्हें छोड़ किसी अन्य को, मैं पति रूप में न चाहूँ।।
हैं इक आश्रय वह अनाथों के, प्रेम का वह नित दान दें। वह भगवान कृष्ण मुझपर, सर्वदा ही प्रसन्न रहें।।

कालिन्दी नाम मेरा जानो, मेरे पिता सूर्य ने स्थान दिया। यमुना के इस जल में ही, भवन मेरा बनवा दिया।।
वहीं पे मैं निवास करूँ, यमुना तट पर ही तप करूँ। जब तक प्रभु दर्शन न होंगे, मैं तो यहाँ से न जाऊँ।।

शुकदेव बोले,
अर्जुन ने जाकर पुन:, श्री कृष्ण से सारी बात कही। भगवान तो यह सब जाने थे, उनके कहने से पहले ही।।
कालिन्दी को श्री कृष्ण ने, अपने रथ पे बिठा लिया। धर्मराज युधिष्ठिर के, पास पुन: वह लौटे जा।।
तत्पश्चात् पाण्डवों ने, श्री कृष्ण से जब प्रार्थना की। विश्वकर्मा से उन्होने इक, अति अद्भुत नगरी बनवाई।।

पाण्डवों के हित के लिये, आनन्द उन्हें देने हेतु। बहुत दिनों तक उनके ही, साथ वहाँ पे रहे प्रभु।।
इसी बीच अग्नि देव को, खाण्डव बन दिलवाने को। अर्जुन के सारथी भी बने, प्रभु यह काज कराने को।।

खाण्डव वन का भोजन पा, अग्नि देव प्रसन्न हुए। अर्जुन को फिर उन्होंने, उत्तम अस्त्र शस्त्र दिये।।
चार श्वेत अश्वों सहित, एक रथ उसको दिया। गाण्डीव धनुष और दो अक्षय, बाणों संग तरकश दिया।।
इक ऐसा उसे कवच दिया, जिसे भेद कोई भी न सके। दिव्य अस्त्र शस्त्र पाकर, अर्जुन तो अजेय बने।।

जिस पल खाण्डव दाह था हुआ, मय दानव वहाँ पे था। अर्जुन ने उस दानव को, जलने से बचा लिया।।
उसने इस मित्रता का, इक सुन्दर उपहार दिया। उनके लिये अति अद्भुत, सभाग्रह का निर्माण किया।।
दुर्योधन को वहीं पे तो, ऐसा भ्रम था हो गया। जल में स्थल और स्थल में जल, का आभास ज्यों हो गया।।
कुछ दिनों बाद श्री कृष्ण ने, सम्बन्धियों की ली अनुमति। अनुमोदन अर्जुन का भी पा, वह लौटे संग ले सात्यकि।।

द्वारिका पहुँच उन्होंने फिर, उचित लग्न की प्रतीक्षा की। ऋतु भी जब अनुकूल हुई, कालिन्दी की पाणिग्रहण करी।।
मुदित हुए सम्बन्धी सब, मंगल गान सभी ने किया। श्री कृष्ण कालिन्दी परिणय का, स्वागत सब ने ही किया।

विन्द और अरविन्द दोनों, अवन्ति देश के थे राजा। दुर्योधन के वशवर्ती और, अनुयायी थे दोनों राजा।।
उन दोनों की प्रिय अनुजा, भगिनी थी मत्रिविन्दा। स्वयंवर में श्री कृष्ण को ही, उसने तो वरना चाहा।।
किन्तु विन्द अरविन्द ने, ऐसा करने पर रोक करी। कृष्ण की फूफी राजाधिदेवी, की वह कन्या थी पुत्री।।
सब नरपतियों के सामने ही, बलपूर्वक उसे हर लिया। अपना सा मुंह लिये खड़े, रहे वहाँ सब ही राजा।।

कोसल देश का राजा था, नग्नजित् ही नाम्नि। रूपमति उसकी कन्या सत्या, कहलाती थी नग्नजिति।।
राजा की यह प्रतिज्ञा थी, दुर्दान्त बैल जो जीत ले। उससे ही राजकुमारी का, पाणिग्रहण फिर हो सके।।
अति तीक्ष्ण सींग थे बैलों के, नहीं पुरुष की गन्ध थे सह सकते। नहीं कोई राजा जीत सका, इस कारण न उसे ब्याह सके।।

यदुश्रेष्ठ श्री कृष्ण ने, जब सुना यह समाचार। जो जीते वह सात बैल, उसी को होगी सत्या प्राप्त।।
तब बहुत भारी सेना ले, वह अयोध्या पहुँच गए। कोसल नरेश अति मुदित हुए, अगवानी करी आसन दिये।।
बहुत पूजा सामग्री ले, फिर पूजन उनका किया। श्री कृष्ण ने भी उनका, यथोचित अभिनन्दन किया।।

राजसुता ने जब देखा, रमापति प्रभु यहाँ हैं आये। प्रार्थना हिय में उसके उठी, मन ही मन बिनती किये।।
व्रत नियम का पालन कर, यदि सत्य ही सिमरन् इनका किया। तो यह ही मेरे स्वामी बनें, पूर्ण करें मम लालसा।।

भगवती लक्ष्मी और ब्रह्मा, शंकर आदि महालोकपाल। जिनका पद पंकज पराग, लेते हैं निज सीस धार।।
निज मर्यादा पालन को, प्रभु बार बार लेवें अवतार। उन लीलाधर को कौन व्रत, धर्म नियम कर सके प्राप्त?

वह प्रभु तो केवल अपनी, कृपा से ही प्रसन्न हों। अहैतुकी कृपा प्रभु की अब, कैसे मुझे प्रपन्न हो?

कोसल नरेश ने हे राजन्, विधिवत् प्रभु की पूजा की। फिर अपनी यह प्रार्थना, उसने प्रभु के चरण धरी।।
सम्पूर्ण जगत् के एकमात्र, हैं स्वामी आप श्री नारायण। आनन्द स्वरूप हैं आप प्रभु, अपने में आप ही परिपूर्ण।।
क्षुद्र जीव हूँ मैं प्रभु, आपकी क्या सेवा करूँ? कुछ ही नहीं ऐसा मुझपे, जो लाकर आपके चरण धरूँ।।

श्री कृष्ण ने उनके दिये हुए, आसन पूजा स्वीकार किये। सत्कार जो उसने दिया उन्हें, श्री हरि उससे सन्तुष्ट हुए।।
मुसकरा कर कृष्ण ने, फिर उनसे यह वचन कहे। मेघ की गर्जन के समान, उनके स्वर गम्भीर थे।।
भगवान बोले,
हे राजन् जो भी क्षत्रिय, रहे अपने धर्म में स्थित सदा। नहीं मांगना उचित हो, उसके लिये कुछ भी कहा।।
धर्मज्ञ विद्वान तो, इस याचना की निन्दा करें। फिर भी आपसे प्रेम और, सौहार्द सदा ही बना रहे।।
इस कारण मैं आपकी, कन्या को ही वरना चाहूँ। नहीं बदले में कोई शुल्क प्रथा, इस कारण दे कुछ न पाऊँ।।
राजा बोले,
हैं सर्व गुणों के धाम आप, हैं धर्म का आप ही आश्रय। वक्ष:स्थल पर आपके, भगवती श्री सदा निवास करें।।
आपसे बढ़कर मेरी कन्या, को वर कौनसा मिल सके? किन्तु इस विषय में यदुश्रेष्ठ, पहले इक प्रण हम कर चुके।।
उपयुक्त वर की जांच हेतु, ही यह निर्णय है किया। उसका बल पौरुष जानन को, ही है ऐसा नियम धरा।।

यह सातों बैल हे वीरवर, कभी नहीं सिधाये गए। बहुत यत्न किये सबने, नहीं किसी के वश में हो सके।।
बहुत से राजकुमारों के, अंगों को है खण्डित किया। मनोबल और उत्साह उनका, इन्होंने है भंजित किया।।
हे यदुनन्दन आप ही, गर इनको वश में कर सकें। तो हे कृष्ण आप ही मेरी, कन्या के लिये अभीष्ट रहें।।
शुकदेव बोले,
श्री कृष्ण ने राजा के, ऐसे प्रण की सुन करी। कस ली अपनी कमर फिर, सात रूप उन्होने धरी।।
खेल खेल में ही उन्होने, सातों बैलों को नाथ लिया। घमण्ड उनका चूर हुआ, और बल पौरुष भी जाता रहा।।
रस्सी से उन्हें बान्ध कर, श्री हरि खेंचने यूं लगे। ज्यों खेल खेल में शिशु कोई, काठ के बैल को खेंचा करे।।

अति विस्मित थे कोसल नरेश, उनका यह कौतुक देखी। अति मुदित होकर प्रभु को, निज कन्या उन दान करी।।
शक्तिमते श्री कृष्ण ने, विधिवत् पाणिग्रहण किया। उनके ही अनुरूप थी, उनकी यह पत्नी सत्या।।

रानियों ने जब यह देखा, कन्या ने श्रेष्ठतम वर पाया। अपने अभीष्ट श्री कृष्ण को ही, पति रूप में प्राप्त किया।।
महा आनन्दित वह हुईं, चहुँ ओर फिर धूम मची। अयोध्या में उत्सव हुआ, महा मुदित थे नर नारी।।

शंख ढोल नगारे और, मृदंग नाद होने लगे। गायन और वादन के स्वर, चहुँ दिशा में गूंज उठे।।
आशीर्वचन कहे द्विजवर ने, मंगल सब गाने लगे। सुन्दर वस्त्र पुष्प माल, आभूषण से नर नारी सजे।।

राजा नग्नजित् ने उन्हें, दस सहस्र दी गौएँ भेंट। तीन सहस्र नवयुवतियाँ भी, दासियां बन कर हुईं भेंट।।
वे सब थीं सुन्दर वस्त्र और, स्वर्ण हार कण्ठ पहरे। संग में नौ सहस्र हाथी, और शतगुणा उससे रथ थे।।

नव कोटि दिये अश्व भी, उससे शतगुणा सेवक थे। कोसल नरेश ने कन्या को, यह सब ही दहेज दिये।।

कन्या और दामाद को फिर, राजा ने चढ़ाया इक रथ पे। विदा उनको कर दिया, विशाल सेना साथ दे।।
कन्या को विदा करते समय, वात्सल्य स्नेह था उमड़ रहा। मानो वा हृदय ही द्रवित हो, अश्रु की राह था बह निकला।।

बहुत नरपति पूर्व में, अपमानित थे हो चुके। कोसल नरेश के बैलों पर, यदुकुल वालों से हार चुके।।
जब उन्होंने यह समाचार सुना, श्रीकृष्ण विजय न सह सके। सत्या के ले जाते हुए, श्री हरि मार्ग में घेर लिये।।

बड़े वेग से कृष्ण पर, बाणों की वर्षा करने लगे। पाण्डव वीर अर्जुन ने, प्रिय मित्र के हित के लिये।।
गाण्डीव धनुष धारण किया, और उन पर प्रहार किया। ज्यों सिंह मारे छोटे पशु, उनको मार पछाड़ दिया।।
दहेज और सत्या को ले, फिर द्वारिका को वह लौट आये। गृहस्थोचित विहार वहाँ, रहकर वह करने लगे।।

श्री कृष्ण की बुआ श्रुतकीर्ति, केकय देश में ब्याही थी। उनके यहाँ सद्गुण सम्पन्न, भद्रा नाम की कन्या थी।।
सन्तर्दन आदि भाइयों ने, जब स्वयं ही यह निश्चय किया। श्री कृष्ण को अर्पित की भगिनी, उन्होंने पाणिग्रहण किया।।

मद्र प्रदेश के राजा की, कन्या थी शुभ लक्षणा। महागुणवती थी वह तो, नाम भी था सुलक्षणा।।
ज्यों गरुड़ ने स्वर्ग से, अमृत का था हरण किया। त्यों ही प्रभु ने अकेले ही, स्वयंवर से उसे हर लिया।।
हे राजन् श्री भगवान की, सहस्रों अन्य भी स्त्रियाँ थीं। भौमासुर का हनन करी, बन्दीगृह से थीं मुक्त करीं।।

७) भौमासुर का वध और सोलह हजार एक सौ राजकन्याओं के साथ कृष्णका विवाह

परीक्षित बोले,
भगवान कृष्ण ने भौमासुर को, क्यों और कैसे मार दिया? उन स्त्रियों को बन्दीगृह में, क्यों उस असुर ने डाला था?
शार्ङ्गधनुर्धारी प्रभु का, यह चरित विचित्र सुनाइए। हे भगवन् अब कृपा कर, पिपासा शान्त कराइए।।

शुकदेव बोले,
भौमासुर ने हे राजन्, वरुण का छत्र था छीन लिया। माता अदिति के कुण्डल औ, देवों का मणिपर्वत छीना।।
देवेन्द्र द्वारिका में आये, श्री कृष्ण से उसकी करनी कही। सत्यभामा को संग ले, श्री कृष्ण ने गरुड़ सवारी करी।।
भौमासुर की राजधानी, प्राग्ज्योतिषपुर में गए। उसमें प्रवेश कर पाना तो, अति कठिन ही काम थे।।
उसके चारों ओर प्रथम, पर्वतों का था दुर्ग बना। तत्पश्चात् शस्त्रों का, वहाँ था घेरा लगा हुआ।।

उसके बाद थीं खाइयां, जिनमें जल था भरा हुआ। फिर बिजली या अग्नि का, घेरा था वहाँ बना हुआ।।
उसके भीतर वायु को, ही था बन्द करके रखा। उसके आन्तरतम में भी, था मुर दैत्य का जाल बिछा।।
चहुँ ओर नगर के मुर दैत्य ने, दस हजार फंदे फेंके। यह फंदे बहुत दुर्गम थे, और यह अति सुदृढ़ भी थे।।

भगवान ने गदा के वार से, पर्वत सारे ही चूर्ण किये। और बाणों के प्रहार से, शस्त्र भी छिन्न भिन्न किए।।
चक्र के द्वारा अग्नि जल, और वायु के घेरे तोड़े। और तलवार से मुर दैत्य के, फंदे सारे काट दिये।।

बड़े बड़े जो यन्त्र थे, विदीर्ण उनको कर दिया। प्रभु के शंख का नाद सुन, वीरों का हृदय भी दहल उठा।।

नगर के परकोटे को, गदा से फिर विध्वंस किया। गदाधर प्रभु की गदा का, कभी वार न निष्फल हो सकता।।

श्री हरि के पञ्चजन्य का, नाद अति भयंकर था। प्रलयकालीन विद्युत की, भाँति वह प्रलयंकर था।।
उसे सुनी मुर दैत्य की, निद्रा टूटी वह बाहर आया। पांच सीस थे दैत्य के, जल के भीतर वह सो था रहा।।

प्रलयकालीन सूर्य और, अग्नि समान तेजस्वी था। भयावह था प्रचण्ड रूप, नहीं आंख था कोई टिका सकता।।
त्रिशूल उठाकर हाथ में, प्रभु की ओर वह यूँ लपका। जैसे सर्प ही उल्टा कोई, हो गरुड़ पर टूट पड़ा।।
ऐसा दीख रहा था वह, पांचों मुख उठाकर के। मानो उनके राही वह, त्रिलोकी को ही निगल ले।।

त्रिशूल अपना घुमा कर के, वेग से छोड़ गरुड़ पे। सिंहनाद फिर उसने किया, अपने पांचों मुखों से।।
पृथ्वी आकाश पाताल और, दसों दिशा में वह फैला। महान् उसके घोष ने, मानो सारा ब्रह्माण्ड भरा।।

मुर दैत्य के त्रिशूल को, भगवान ने देखा आते हुए। तीव्र गति से गरुड़ की, ही दिशा में धाते हुए।।
अति स्फुर्ति से उन्होंने, हस्तकला निज दिखलाई। दो बाण छोड़े प्रभु ने, तीन टूक त्रिशूल हुई।।
उसके साथ अनेकों बाण, दैत्य के मुख में दे मारे। अति क्रुध होकर उसने फिर, प्रभु पे गदा के वार किये।।

किन्तु निज गदा के वार से, प्रभु ने उसे चूर चूर किया। उन तक पहुँच पाती गदा, मौका ही प्रभु ने नहीं दिया।।
अस्त्रहीन होकर वह दैत्य, निज भुजा फैला गया कृष्ण पे। अपने चक्र से खेल खेल में, पांचों सिर प्रभु ने काटे।।

दैत्य के प्राण पखेरु उड़े, और जल में जाय गिरा। ज्यों इन्द्र के वज्र से कटा कोई, पर्वत हो सागर में गिरा।।
थे सात पुत्र उस दैत्य के, ताम्र अन्तरिक्ष श्रवण। विभावसु वसु नभस्वान, और नाम थे उनके अरुण।।
पिता की मृत्यु देखकर, शोकाकुल सब हो गए। अति क्रोध मन में था भरा, प्रतिशोध के निर्णय लिये।।
अस्त्र शस्त्र उठाये उन, पीठ बना उनका सेनापति। भौमासुर के आदेश से, श्री कृष्ण पे फिर चढ़ाई करी।।

श्री कृष्ण पर वह क्रोध से, अस्त्र शस्त्र बरसाने लगे। खड्ग गदा शक्ति ऋष्टि, त्रिशूल बाण उनके शस्त्र थे।।
श्री भगवान की शक्ति तो, अमोघ है राजन् जानो तुम। अपने बाणों से कोटि शस्त्र, तिल तिल करके काटे उन।।

सेनापति और उसके दैत्यों, पर प्रभु के प्रहार से। उनके सिर जांघें भुजा, पांव कवच सब कट गए।।
श्री हरि ने उन सबको ही, यमराज के द्वारे पहुँचाया। प्रभु के चक्र और बाणों से, देखा असुर संहार हुआ।।

भौमासुर के क्रोध की, सीमा कोई नहीं रही। सागर तट पे पैदा हुए, हाथियों की इक सेना ली।।
मदमाते हाथी संग ले, नगर के बाहर वह आया। भार्या सहित प्रभु को उस, आकाश में गरुड़ चढ़े देखा।।
ज्यों सूर्य के आगे वर्षा के, श्यामल मेघ हों छा रहे। और अपने भीतर वह, दामिनी हों छिपा रहे।।
ऐसा ही सुन्दर छटा, उस पल प्रभु की थी बनी। घनश्याम कृष्ण के संग थीं, सत्यभामा स्वर्णिम वर्ण की।।
शतघ्नी नाम की शक्ति फिर, उसने चलाई श्री हरि पर। इक साथ अस्त्र शस्त्र छोड़े, उसने फिर प्रभु की सेना पर।।

विचित्र तीक्ष्ण बाण अब, श्री कृष्ण भी चलाने लगे। भुजायें जांघें गर्दन धड़, असुरों के कटकर गिरने लगे।।
हाथी घोड़े भी मरने लगे, श्री कृष्ण के तीखे बाणों से। दैत्यों के शस्त्र सब तीन तीन, बाणों से प्रभु ने काट दिये।।

श्री कृष्ण सवार थे गरुड़ पे, और गरुड़ के पंख भी थे फैले। उनकी चोट से श्री गरुड़, हाथी थे सब मार रहे।।
चोंच पंख और पंजों की, मार से हाथी पीड़ित थे। आर्त हो युद्ध भूमि से, नगर की ओर वह सब भागे।।
अकेला भौमासुर ही फिर, रणभूमि में लड़ता रहा। जब देखा सारी सेना ने, पीड़ित होकर प्रस्थान किया।।
उसने वह शक्ति चलाई फिर, जिसने था वज्र भी विफल किया। किन्तु उस चोट का गरुड़ पे, तनिक भी नहीं प्रभाव हुआ।।
ज्यों मतवाले गजराज पे, फूलों की माल की चोट हो। उस शक्ति के प्रभाव का, श्री गरुड़ पे वैसा असर हो।।

भौमासुर ने जब देखा, उसकी चाल सब विफल हुई। श्री कृष्ण हनन करने के लिये, त्रिशूल हाथ में उसने ली।।
अभी हाथ से वह छूटा भी नहीं, तीक्ष्ण चक्र वहाँ आया। श्री कृष्ण के चक्र ने, उसका सीस ही काट दिया।।

कुण्डल किरीट से सजा सीस, था जगमग उसका कर रहा। चक्र के इक प्रहार से, धरती पर वह जाय गिरा।।
उसके बन्धु बान्धव सब, हाय हाय पुकार उठे। ऋषि और मुनियों ने वहाँ, साधु साधु उच्चार किये।।
आकाश के देवता गण सारे, स्तुति गीत गाने लगे। सब मिलकर ही कृष्ण पे, फूल फिर बरसाने लगे।।

अब पृथ्वी भगवान के, अति निकट ही आ गई। वैजयन्ती माला के संग, वनमाला गले में पहराई।।
अदिति के जगमग करते, कुण्डल भी श्री हरि को दिये। तप्त स्वर्ण पर रत्नजड़ित, अति विचित्र वह कुण्डल थे।।
वरुण का छत्र दिया उनको, और महामणि इक उनको दी। तत्पश्चात् पृथ्वी देवी, स्तुति प्रभु की करने लगी।।

भूमि बोली,
हे देव देवेश्वर नमस्कार, शंख चक्र गदाधर हे। रूप अपना प्रकट करें, भक्तन् इच्छा पूर्ति के लिये।।
नमस्कार प्रभु आपको, नाभि से प्रकटा कमल। कण्ठ में धारण करें आप, कमलों की माल विमल।।
हैं प्रफुल्लित शान्तिप्रद, नयन आपके कमल सम। सुकुमार आपके चरण हैं, अति कोमल कमल के सम।।
भक्तों के हृदय में सदा बसें, शीतल शान्त उनका हृदय हो। बारम्बार है नमन मेरा, नमस्कार प्रभु आपको।।

सम्पूर्ण धन यश ऐश्वर्य, सम्पद् ज्ञान वैराग्याश्रय। सर्वव्याप्त हैं आप प्रभु, वसुदेव के नन्दन बन प्रकटे।।
समस्त कारणों के प्रभु, कारणभूत ही आप हैं। आप ही हैं इक पुरुष प्रभु, ज्ञान स्वरूप भी आप हैं।।
नमस्कार प्रभु आपको, हैं आप तो स्वयं अजन्मा ही। पर सम्पूर्ण जत् को, जन्म दें प्रभु आप ही।।
सब शक्तिन् के आश्रयभूत, परात्मपर ब्रह्म स्वरूप हैं। जो भी कार्य कारण जग के, सब आपके ही तो रूप हैं।।
आपके चरणों में प्रभु, बार बार मेरा नमस्कार। शतश: नमन मैं करूं प्रभु, करो नमन मेरा स्वीकार।।

सृष्टि जब जग की आप करें, रजोगुण को स्वीकार करें। उसके पालन पोषण को प्रभु, सतोगुण का ही आश्रय लें।।
संहार जब करना चाहें, तमोगुण को स्वीकार करें। इतना सब होने पर भी, नहीं गुणों से कभी ढकें।।
स्वयं प्रकृति रूप धरें, और पुरुष भी आप हैं हे। दोनों के संयोग वियोग के, हेतु काल भी आप बनें।।
यह त्रै रूप भी आप ही हैं, पर तीनों से हैं आप परे। कोई नाम और रूप प्रभु, आपको कभी न बान्ध सके।।
मैं (पृथ्वी) जल अग्नि वायु, आकाश और उनकी तन्मात्रा। मन इन्द्रिय और इन सबके, हैं अधिष्ठातृ जो देवता।।
अहंकार और महत्तत्त्व, किस किस की मैं बात कहूँ? जो भी विद्यमान भासे, चराचर सारा जगत् प्रभु।।

अद्वितीय स्वरूप है आपका, आपमें ही सब भास रहा। वास्तव में हैं सब आप प्रभु, पृथक्ता का यह भ्रम हुआ।।

हे शरणागत वत्सल प्रभु, मम सुत भौमासुर का पुत्र। भगदत्त भयभीत है हो रहा, है आपकी ही शरण यह सुत।।
हे प्रभु अब आप ही, इसकी रक्षा कीजिए। इसके सीस पे हे भगवन्, निज कर कमल रख दीजिये।।
इन कर कमलों की जिन्हें, छत्रछाया प्राप्त हो। सारे जगत् के पाप ताप, स्वत: ही उसके नाश हों।।

शुकदेव बोले,
भक्तिपूर्ण विनम्र भाव, हृदय में जब धर कर आई। पृथ्वी ने श्री कृष्ण की, प्रार्थना स्तुति इस विध गाई।।
भगदत्त को दिया अभय दान, और महल में वह गए। भौमासुर के सब प्रसाद, सर्व सम्पद् सम्पन्न थे।।

वहाँ जाकर प्रभु ने देखा, भौमासुर का अत्याचार। बलपूर्वक था ले आया, राज सुताएँ सोलह हजार।।
अपने यहाँ थी रखी हुईं, उसने सब राजकुमारियाँ। श्री कृष्ण ने जा अन्त:पुर में, देखीं वह सब नारियाँ।।

प्रभु के दर्शन पा कर, वह सब ही मोहित हो गईं। श्री कृष्ण मिलें पतिरूप में, हार्दिक चाहना यह उनकी थी।।
उनकी अहैतुकी कृपा जान, महासौभाग्य अपना माना। मन ही मन प्रियतम जान उन्हें, पति रूप में वरण किया।।

हर राजसुता ने अलग अलग, अपने मन में निश्चय किया। कृष्ण ही हों मेरे पति, पूर्ण हो मेरी अभिलाषा।।
इस विधि महा प्रेम भाव, उनके हृदय उभर आया। और मनोमन श्री हरि पे, न्यौछावर अपना आप किया।।

सुन्दर वस्त्राभूषण से, श्री कृष्ण ने उन्हें सजा दिया। पालकियों में बिठा करी, सबको द्वारिका विदा किया।।
बहुत खजाने रथ घोड़े, अतुल सम्पदा को भेजा। इस भाँति श्री कृष्ण ने, उन सबका उद्धार किया।।
ऐरावत के वंशज थे, वेगवान हाथी वहाँ। चतुर्दन्तधारी हाथी भी, चौंसठ भेजे द्वारका।।

तत्पश्चात् गए अमरावती, प्रभु इन्द के महल में। इन्द्राणी सहित वहाँ इन्द्र ने, सत्यभामा संग प्रभु पूजे।।
श्री हरि ने अदिति के कुण्डल, देव राज को दे दिये। सत्यभामा ने प्रेरणा दी, वहाँ से जब थे लौट रहे।।
श्री कृष्ण ने वहाँ से उन्मूलित, पारिजात को कर लिया। गरुड़ पे उसको धर करी, सब देवों से युद्ध किया।।
इस भान्ति वह पारिजात, प्रभु ले आये द्वारका। सत्यभामा के महल के, उद्यान में रोपन उसे किया।।
अति शोभित वह उद्यान हुआ, सुरभि फैली उसके चहुँ दिशि। स्वर्ग से भी आकर्षित हो, आएं भंवरे मरकन्द लोभी।।

देखो तो सही हे राजन् जब, इन्द्र को काम था आन पड़ा। सीस झुका निज मुकुट से, श्री कृष्ण चरण का स्पर्श किया।।
उनसे सहायता की भिक्षा, इन्द्र ने उस पल मांगी थी। जब अपना स्वार्थ पूर्ण हुआ, उन्हीं से युद्ध की ठान ली।।
यह देवता गण भी वास्तव में, होते हैं कितने तमोगुणी। सबसे बड़ा तो दोष है, उनका धनवान् होना ही।।
धिक्कार है धन ऐश्वर्य ऐसा, जो श्री हरि से दूर करे। इसके लोभ में प्रभु को भी, जीव नित्य ही भूला रहे।।

फिर श्री कृष्ण ने स्वयं ही, विभिन्न रूप धारण किये। एक मुहूर्त में ही सब, स्त्रियों से परिणय किये।।
अविनाशी सर्वव्याप्त प्रभु, सर्वशक्तिमान हैं। ऐसा करना नहीं उनके लिये, आश्चर्य कोई महान् है।।

श्री भगवान की पत्नियों के, अलग अलग सब महलों में। थीं ऐसी दिव्य सामग्रियां, नहीं जगत् में कहीं भी अन्य मिलें।।

अधिक की तो फिर बात ही क्या, प्रभु की लीला को जान सके? अविनाशी श्री कृष्ण नित्य, आत्म आनन्द निमग्न थे।।
लक्ष्मी जी की अंश रूप, सभी भामिनियों के संग। उनका व्यवहार था दीखता, साधारण गृहस्थी के सम।।

ब्रह्मा आदि महादेवता भी, प्रभु का स्वरूप न जान सकें। उनकी प्राप्ति के मार्ग को, कोई न पहचान सके।।
उन्हीं रामापति को उन सबने, पति रूप में प्राप्त किया। निरन्तर ही आनन्द प्रेम, उनका था बढ़ता रहता।।
मधुर स्मित प्रेममयी चितवन, नित्य समागम प्रेमालाप। लज्जायुक्त हा श्री हरि की, सेवा सब करतीं दिन और रात।।

सभी पत्नियों के संग में, वहाँ शतश: दासियाँ रहतीं थीं। फिर भी जब प्रभु पधारते, खुद ही आगे हो लेतीं थीं।।
श्रेष्ठ आसन दे उनको, सब सामग्री से पूजे थीं। चरण कमल पखारतीं, तम्बूल वह अर्पित करती थीं।।
चरण चापन कर करी, विश्रान्ति उनकी हरती थीं। पंखा करतीं इत्र चन्दन, से भी सेवा करती थीं।।
फूलों की माला पहनाकर, थीं केश उनके संवारतीं। शयन करा स्नान दे, भोजन अनेकों थीं देतीं।।
इस विधि अपने हाथों से, वह प्रभु की सेवा करती थीं। अपनी सेवा प्रेम सहित, श्री हरि को अर्पित करती थीं।।

८) कृष्ण का रुक्मिणी के साथ हास-परिहास

शुकदेव बोले,
इक दिन हे राजन् जगद्गुरु, श्री कृष्ण थे सुख से बैठे हुए। रुक्मिणी जी के पलंग पर, वह विश्राम थे कर रहे।।
भीष्मक सुता सखियों सहित, थीं उनकी सेवा में लगीं। अपने प्रिय पतिदेव को, वह थीं पंखा कर रहीं।।

सबके ईश्वर प्रभु खेल खेल में, इस जग की रचना करें। इसकी रक्षा भी स्वयं करें, और आप ही इसका प्रलय करें।।
अपने ही बनाये हुए, धर्म के रक्षण के लिये। वह अजन्मा हरि स्वयं, यदुकुल में अवतीर्ण हुए।।

श्री रुक्मिणी जी का महल तो, अति सुन्दर और सुशोभित था। मुक्ता की लड़ियां थी लटकीं, ऐसे चन्दोवों से सजा।।
दीपक थे मणियों के जले, बेला चमेली महक रहे। फूलों पे भंवरों के झुंड, महागुंजार थे कर रहे।।
सुन्दर झरोखों से छनकर, थीं चन्द्र की किरणें आ रहीं। महल के आन्तरतम में वह, थीं प्रकाश फैला रहीं।।

उद्यान के पारिजात की, पवन में थी सुगन्धि बसी। मन्द गति से शीतल वायु, भी वहाँ थी चल रही।।
अगर धूप के धूम्र भी, झरोखों में से निकल रहे। पलंग पर फेन से कोमल, उज्ज्वल बिछौने थे बिछे।।
श्री कृष्ण अति आनन्दित हो, वहाँ हुए थे विराजमान्। त्रिलोक पति रुक्मिणी जी को, हुए पति रूप में प्राप्तवान्।।

रुक्मिणी जी ने अपनी सखी, के हाथों से चँवर लिया। रत्नजड़ित दण्ड से ही, वह चँवर था सजा हुआ।।
लक्ष्मी रूपा रूपमति, श्री रुक्मिणी थीं डुला रही। अपने प्रियतम श्री हरि को, पंखा थीं करा रहीं।।

कर में जड़ाऊ मुद्रिका, कंकण और चँवर सुशोभित थे। चरणों में भी मणि जटित, पायजेब थे रुन झुन कर रहे।।
आंचल में छिपे वक्ष:स्थल पे, केसर की सुशोभित लालिमा थी। उनके हार की छवि उसी, लाली को लिये थी चमक रही।।
नितम्ब थे बहुमूल्य करधनी, की लड़ियां थीं लटक रहीं। इस प्रकार वह सजी धजी, प्रभु सेवा में निमग्न थीं।।

घुंघराली अलकें उनकी, और कानों के कुण्डल जो। कण्ठ के स्वर्ण हार भी, उनके अति विलक्षण हों।।
उनके चन्द्रमुख की स्मित, अमृत थी ज्यों बरसा रही। अलौकिक रूप लावण्यवती, यह रुक्मिणी तो हैं लक्ष्मी ही।।

जब देखा उन श्री हरि ने, मानुषी लीला के लिये। मनुज तन धारण किया, तो अनुरूप निज तन किये।।
भगवान कृष्ण यह देख कर, उनपर अति प्रसन्न हुए। अनन्य प्रेयसी रुक्मिणी, है मेरे ही परायण यह।।
तब बहुत प्रेम से श्री हरि ने, रुक्मिणी को निहार लिया। और हंसी की फिर उनसे, प्रभु ने उन्हें यह वचन कहा।।

भगवान बोले,
लोकपालन् के समान, जिनका सम्पद् ऐश्वर्य बना। महानुभाव और श्रीमान्, सुन्दर और बलवान् महा।।
उदारता में भी अग्रणी, हे राजसुता तेरे दर आये। महानरपति वे सब ही, तुमको थे वरना चाहते।।

तेरे पिता और भाई भी, तुम्हें उनके संग ब्याहना चाहते थे। इतना ही नहीं शिशुपाल को, उन्होने वाग्दान भी दे थे दिये।।
कामोन्मत्त वह हुए हुए, तव याचक जो थे बने। उनको तुमने छोड़ दिया, और मुझ जैसे को वरण किये।।
जो किसी भी भाँति से, तेरे योग्य नहीं हो सकता। हे राज पुत्री तुमने उसे, अपना पति स्वीकार किया।।

जरासन्ध आदि महाराजाओं, से हम तो भयभीत हुए। सागर की ही शरण में, देखो आन के बस गए।।
बड़े बड़े बलवानों से, वैर है हमने बान्ध लिया। राज्य सिंहासन से भी हमने, अपने को वंचित किया।।

हे सुन्दरी कौन से मार्गका, अनुसरण हम किये जाये हैं। यह भी समझ न पायें लोग, कौन मार्ग अपनाये हैं।।
लौकिक व्यवहार की उचितता, हम तो हे प्रिये न जानें। न ही अनुनय विनय करके, स्त्री को रिझाना ही जानें।।
जो नारियां हम जैसे पुरुष, का अनुसरण ही हैं करती। प्राय: दु:ख क्लेश में ही, जाकर के हैं वह पड़ती।।

हम तो हैं सदा अकिंचन् ही, न पास कभी कुछ रहेगा ही। ऐसे ही जो अकिंचन् हैं, सदा रहते मुझको प्रिय वही।।
अपने को जो धनी समझें, वह प्रेम नहीं हमसे करें। न ही सेवा वह कर सकें, सम्बन्ध भी मुझसे न रखें।।

जिनका धन कुल और ऐश्वर्य, सौन्दर्य हो अपने समान ही। जिनकी आय भी रहे, सदा अपने समान ही।।
मैत्री और विवाह सम्बन्ध, उनके संग ही हो सके। अपने से श्रेष्ठ या अधम से, विवाह नहीं कभी हो सके।।

नहीं दूरदर्शिता तुममें कोई, नहीं इन सबका विचार किया। भिक्षुकों से झूठी महिमा सुन, तुमने था मुझको वर लिया।।
बिन जाने हे वैदर्भी, गुणहीन मुझे स्वीकार किया। तुमसे कहूँ अब भी जानो, कुछ भी तो है नहीं बिगड़ा।।
अपने ही अनुरूप श्रेष्ठ, किसी क्षत्रिय का वरण करो। इह लोक और परलोक की, अभिलाषा सब पूर्ण हो।।

हे चन्द्रमुखी तुम तो जानो, शिशुपाल शाल्व और जरासन्ध। दन्तवक्र आदि नरपति, और तेरे अग्रज रुक्मी संग।।
सब ही मुझसे द्वेष करें, निज समान मुझे न मानें। बल पौरुष मदान्ध हुए, सर्वश्रेष्ठ निज को जानें।।
मान उन दुष्टों का मिटे, इस कारण तुम्हें था हर लिया। सत्य कहूँ तुम्हें हरने में, नहीं अन्य प्रयोजन कोई था।।

निश्चय ही हम हैं उदासीन, नहीं धन स्त्री सन्तति लोलुप। निष्क्रिय रहें सदा ही हम, देह गेह से सम्बन्ध रहित।।
दीपशिखा के समान ही, साक्षीवत् हम सदा रहें। आत्म साक्षात्कार से ही, कृत्कृत् आप्तकाम भए।।

शुकदेव बोले,
श्री रुक्मिणी हे राजन्, प्रभु से क्षण भर भी दूर न थीं। इस कारण यह अभिमान हुआ, हूँ मैं ही सबसे अधिक प्यारी।।

इस गर्व की शान्ति के लिये, प्रभु ने उनसे यह वचन कहे। और वचन यह कह करी, श्री कृष्ण फिर मौन हुए।।

जब अपने परम प्रियतम पति, भगवान की यह वाणी सुनी। अश्रुत पूर्व यह वचन सुनकर, अति भयभीत वह हो गईं।।
हृदय था उनका धड़क रहा, अगाध चिन्ता ने घेरा। रोते रोते हे राजन्, मानो दु:ख का सागर उमड़ा।।

नख लालिमा से जो चरण कमल, कुछ कुछ लाली थे पाये। धरती को कुरेदा उनसे फिर, निज चिन्ता व्यथा यूं दर्शाये।।
अंजन मिश्रित श्यामल अश्रु, वक्ष:स्थल को धोने लगे। मुख भी नीचे को लटका, नहीं दु:ख के पारावार थे।।
वाणी भी अवरुद्ध हुई, स्तब्ध सी वह हो गईं। व्यथा भय और शोक से, विचार शक्ति भी लुप्त भई।।
वियोग की सम्भावना से, ही तत्क्षण वह क्षीण हुईं। हाथों की कंकण उनकी, जाय फिर भूमि पे गिरी।।
चंवर भी हाथ से गिर गया, बुद्धि भी अति विकल हुई। केश भी बिखर गए उनके, और अचेत वह हो गई।।
ज्यों वायु के वेग से, कदली स्तम्ब हो धरा पे गिरा। रुक्मिणी का तन भी त्यों ही, धरती पर जाकर गिरा।।

नहीं रुक्मिणी समझ सकीं, हास्य विनोद गम्भीरता। जब श्री कृष्ण ने देखी, प्रेम विह्वल उनकी दशा।।
स्वभाव से ही करुणामय, श्री कृष्ण हृदय करुणा से भरा। अपनी परम प्रेयसी को, मिले सान्त्वना यह यत्न किया।।

तत्क्षण चतुर्भुजधारी प्रभु, पलंग से उठ नीचे उतरे। रुक्मिणी जी को उठाया उन, केश भी उनके बान्ध दिये।।
अपने शीतल कर कमलों से, मुखारविन्द उनका पोंछा। नयनों के आंसू पोंछ दिये, फिर वक्ष:स्थल को भी पोंछा।।
अनन्य प्रेयसी रुक्मिणी को, अपनी बाहों में भर लिया। उस सती साध्वी प्रेमिका को, हृदय से अपने लगा लिया।।

सान्त्वना देने के लिये, अति कुशल हैं श्री भगवान। अपने भक्तों का उनको ही, एकमात्र आश्रय तू जान।।
जब देखा प्रभु ने हास्य से, बुद्धि भ्रमित उनकी हुई। पति की बातें सुनकर के, अति दीन हो गईं रुक्मिणी।।
तब प्रभु ने समझाया उन्हें, नहीं उनके योग्य यह शोक हो। श्री हरि ने यह वचन कहे, अपनी परम प्रेयसी को।।

भगवान बोले,
वैदर्भी तुम मत मानो बुरा, न ही तुम रूठो मुझसे। मैं जानूँ तुम तो मात्र बस, हो मेरे ही परायण हे।।
हे प्रिय सहचरी तुमसे मैं, प्रेम की बातें सुनूँ सही। इस कारण ही यह छलना भरी, हंसी ठिठोली तुमसे करी।।

मैं तो देखना चाहता था, मेरे इन वचनों को सुनकर। प्रणय कोप से अरुण अधर, फड़के हैं तेरे क्योंकर।।
कटाक्ष पूर्ण दृष्टि तेरी, कैसे रक्तिम हो जाती है? भ्रुवों को जब ऊपर करो, मुखकमल और खिल जाती है।।

मेरी परम प्रिय हे सुन्दरी, जो काज कर्म में व्यस्त रहे। यही तो एको लाभ परम, उस गृहस्थिन् के लिये।।
प्रिय अर्धांगिनी संग वह, हास परिहास यूं करके। आनन्द पूर्वक कुछ पल तो, अपने यूं बिता वह सके।।

शुकदेव बोले,
जब श्री कृष्ण ने प्राणप्रिया, को यूँ बहुत विध समझाया। अपने प्रेम का उनको, विश्वास प्रभु ने दिलवाया।।
उन्होंने तब यह जान लिया, परिहास में ही था ऐसा कहा। अब यह भय भी जाता रहा, प्रियतम त्याग करेंगे मेरा।।
हे राजन् फिर सलज्ज हास्य, और प्रेम पूर्ण चितवन से। प्रभु का श्री मुख निहार के, उन्होने प्रभु को यह वचन कहे।।

रुक्मिणी बोली,
हे कमलनयन यह कथन आपका, सर्वथा उचित ही मानूँ मैं। ऐश्वर्यादि सद्गुण सम्पन्न, प्रभु के योग्य नहीं हूँ मैं।।
किसी भी भाँति हे प्रभु, मैं हो न सकूँ आप समान। निज महिमा में ही स्थित आप, त्रैगुण के स्वामी महान्।।
ब्रह्मा आदि सब देवों से, प्रभु आप सेवित हों सदा। और त्रिगुणी स्वभाव बधित, गुणमयी प्रकृति हूँ मैं कदा।।
काम कामी अज्ञानी जीव ही, प्रकृति का सेवन करें। अपनी कामना पूर्ति को, ही हर पल भटका करें।।

आपके समान मैं, प्रभु भला कैसे हो सकूँ? फिर आपका यह कथन, भी सत्य ही मैं मानूँ।।
नरपतियों से भयभीत हो, आप कहें सागर में छिपे। किन्तु राजा शब्द के, अर्थ तो हैं कुछ भिन्न ही हे।।
पृथ्वी के राजा नहीं, त्रैगुण रूप राजा कहें। मानों उन्हीं के भय से आप, अन्त:करण में छिपे रहें।।
अनुभूति गम्य आत्म स्वरूप, बनकर हैं आप विराजमान्। नहीं इसमें भी संदेह तनिक, वैर लिया हे उनसे ठान।।
किन्तु वह राजा कौन हैं, अपनी ही दुष्ट यह इन्द्रियाँ। इनका तो प्रभु आपसे, नित्य ही है वैर बना।।
राजसिंहासन से कहें, प्रभु आप वंचित रहें। आपका यह कहना भी, हे स्वामी उचित ही भए।।
क्योंकि आपके चरण कमल, की सेवा जो हैं करते। राजपद को अज्ञान का तम, जानी हैं वह दुत्कारते।।
फिर आपकी तो प्रभु बात की क्या, महा तुच्छ ही यह सिंहासन हो। आप तो प्रभु स्वयं ही, पूर्ण ब्रह्माण्ड के स्वामी हों।।

आप कहें प्रभु आपका, मार्ग भी है कुछ स्पष्ट नहीं। लौकिक पुरुषों जैसा भी, आचरण आपका है नहीं।।
निस्संदेह ही सत्य है, प्रभु आपका है करना। जिन ऋषि मुनियों ने प्रभु, अनुकरण आपका है करना।।
उनके पादपद्मों का, मरकन्द पान जो नित्य करें। विषय लिप्त नरपशु तो, अनुमान भी नहीं लगा सकें।।
आपके अनुगामी भक्त भी, हे प्रभु अलौकिक ही रहें। सर्वैश्वर्य स्वामी हैं आप, आपकी तो क्या बात कहें।।

अकिंचन् कहें आप निज को, किन्तु दारिद्र्य तो यह नहीं। वास्तव में आपको छोड़कर, नहीं दूजी वस्तु हैं कहीं।।
फिर अपने पास किसको रखें, कोई दूजा हो तो रख सकें। किन्तु ब्रह्मादि देवों को, सब लोग जा भेंट सामग्री दें।।
वह निरन्तर आपकी ही, प्रभु पूजा करते रहते हैं। आप ही प्यारे हैं उनके, और वह आपके प्यारे हैं।।
धन अभिमान के कारण जो, लोग हैं अन्धे हो रहे। इन्द्रिय तृप्ति ही उनके, जीवन का इक लक्ष्य रहे।
न तो भजन सेवन करें, न ही आपको ध्यायें कभी। वह तो यह भी भूले रहें, मृत्यु है सर पे नाच रही।।

जगत् में जो भी वांछनीय, है कभी किसी जीव को। धर्म अर्थ काम मोक्ष, सब आपके ही तो रूप हों।।
सब वृत्ति प्रवृत्ति और साधन, सिद्धि साध्य के फल स्वरूप। आप स्वयं ही हैं प्रभु, आप ही धारें सगरे रूप।।
आपकी प्राप्ति हेतु ही, विचारवान् सब जग छोड़ें। उन्हीं विवेकी जीवों का, आपसे नाता बन सके।।
जो नर नारी की रति में ही, सुख या दु:ख वशीभूत रहें। नहीं आपके योग्य कभी, ऐसे जीव प्रभु हो सकें।।

भिक्षुक गण ही आपकी, स्तुति सदा करते रहें। किन्तु वह भिक्षुकगण भी, कौन हैं यह कीर्ति कहें?
परम शान्त संन्यासी और, महात्मागण आपके गुण गायें। वह तो दुष्ट अधमतम को भी, दण्ड कभी न दे पायें।।
नहीं अदूरदर्शिता मेरी, मैंने भली भाँति जान लिया। आत्मदान दें प्रेमिकों को, हैं सर्वजगत् के आत्मा।।
यह जान करी ही मैंने प्रभु, आपका वरण है कर लिया। ब्रह्मा देवेन्द्र आदि का, जान बूझ कर त्याग किया।।

आपके भ्रुव संकेत से, उत्पन्न होकर नाचे काल। आपके वेग में सब आशा, अभिलाषा निगले यह काल।।
फिर अन्य लोगों की प्रभु, बात की हम क्या करें। शिशुपाल या दन्तवक्र, या जरासन्ध तो दूर रहे।।

नहीं युक्ति संगत आपका, यह कहना भी आर्यपुत्र। भयभीत हो राजाओं से, सागर में छिपे हैं आप अत्र।।
मेरे स्वयंवर में आए, सब नरपतियों को भगा दिया। शार्ङ्ग धनु: टंकार करी, सबका हृदय विदीर्ण किया।।
निज चरणों में अर्पित मुझ, दासी का यूँ हरण किया। ज्यों कर्कश ध्वनि कर सिंह, वन पशु है दूर भगा देता।।
अपने भाग को स्वयं ही, सबसे है वह ले आता। इसी विधि प्रभु आपने, है मुझको अपना लिया।।

कैसे कहें हे कमल नयन, आपकी अनुयायी को कष्ट हो? अंग पृथु भरत ययाति, गय आदि राजेश्वर जो।।
प्राचीन काल में एकछत्र, साम्राज्य अपने छोड़कर। आपको पाने की ही इक, अभिलाषा निज मन में धर।।

तपस्या हेतु वन को ही, चले गए वे सब राजा। आपका मार्ग ही अपनाया, कौन कष्ट कभी उन्हें हुआ?

आप कहें किसी अन्य ही, राजकुमार का वरण करूँ। सब सद्गुण का आपको, इकमात्र ही आश्रय मैं जानूँ।।
सन्तजन आपके चरण कमल, की सुरभि का बखान करें। उनके आश्रय मात्र से सब, जीवों के ताप पाप मिटें।।

श्री लक्ष्मी का भी सदा, चरणारविन्द में वास रहे। फिर कौनसी स्त्री होगी वह,स्वार्थ परमार्थ जो समझे।।
इन चरणों को त्याग कर, किसी दूजी ओर जो दृष्टि करे? नहीं इक क्षण को भी आपके, श्री चरणों को वह छोड़ सके।।

एक बार जिसने उन श्री, चरण कमल की सुगन्धि ली। उनको छोड़ कर कैसे, किसी अन्य का वरण है कर सकती?
अन्य तो सब जन्म मृत्यु, जरा रोग के भय में रहें। कोई भी बुद्धिमति स्त्री, नहीं उनको कभी वर सके।।

हैं पूर्ण जग के स्वामी आप, आप ही हैं प्रभु आत्मा। लोक परलोक की आशा, पूर्णकर परमात्मा।।
अपने अनुरूप ही जानकर, है मैंने आपका वरण किया। अन्य योनियों में भटकूँ, नहीं इसकी भी मुझको परवाह।।
आपका भजन जो नित्य करें, मिथ्या भ्रम वा निवृत्त करें। अपना स्वरूप तक हे प्रभु, आप उन्हें प्रदान करें।।
इकमात्र मेरी अभिलाषा तो, हे प्रभु बस यह ही है। आपकी चरण शरण में रहूँ, इक आशा मेरी यह ही है।।

गधे के समान ही जो, घर का ही बोझा ढोते हैं। या बैलवत् कामों में जुते, कष्ट सदैव उठाते हैं।।
श्वान समान वे तिरस्कार, सबका जग में सहते हैं। बिलाव समान ही कृपण और, हिंसक बने जो रहते हैं।।
क्रीत दास सम स्त्री की, सेवा में निरन्तर लगे रहें। शिशु पाल आदि जो राजाजन्, जिनका प्रभु संकेत करें।।
उसी अभागिनी के पति, ऐसे जन कभी हो सकें। जिसके कानों में अच्युत की, नहीं लीला कथा प्रवेश करे।।
शंकर और ब्रह्मा आदि, देवेश्वरों की सभाओं में। आपके ही कथामृत का, नित्य गान ही हुआ करे।।

यह मनुज तन तो जीते जी, ही है मृतक समान ही। ऊपर से आपकी दाढ़ी मूंछ, नख रोएँ केश से है ढकी।।
किन्तु इसके भीतर तो है, मांस अस्थि मज्जा भरा। रक्त कीड़े मल मूत्र, कफ पित्त और वायु भरा।।
वही मूढ़ा प्रियतम मान इसे, इसकी सेवा कर सके। आपकी चरण कमल मकरन्द, की सुगन्ध जिसे नहीं मिले।।

हे कमलाक्ष आप तो हैं, सबके ही अन्तरात्मा। मैं सुन्दरी हूँ या गुणवती, नहीं इसपे ध्यान कभी जाता।।

उदासीनता आपकी यह, स्वभाविक ही है हे प्रभु। फिर भी दृढ़ अनुराग ही, चरण कमल में मैं चाहूँ।।

संसार की अभिवृद्धि को, प्रभु रजोगुण स्वीकार करें। उस रजोगुण को नयन भरी, मेरी ओर निहारा करें।।
वह भी तो प्रभु आपका, परम अनुग्रह मुझपर हो। चरण शरण में सदा रहूँ, बस इतनी करुणा मुझपर हो।।

हे मधुसूदन आप कहें, अनुरूप वर कोई मैं वरूँ। आपकी ऐसी बात को भी, हे प्रभु मैं झूठा न मानूँ।।
कभी कभी इक पुरुष से, जो कन्या जीती जाये। राजसुता अम्बा सम वह, प्रीति नहीं अन्य लगा पाये।।

कुल्टा स्त्री का मन तो, विवाह के पश्चात् भी। नित्य नये पुरुष से, आकर्षित हो सदैव ही।।
बुद्धिमान् को चाहिए, उसको पास वह न रखे। उसको अपनाने वाले के, लोक परलोक ही नष्ट होएँ।।
भगवान बोले,
तुमसे यह बातें सुनने को, ही तो हंसी थी तुमसे करी। अक्षरश: ही सत्य तूने, व्याख्या मेरे शब्दों की करी।।

अनन्य प्रेयसी तुम मेरी, मम प्रति प्रेम अनन्य तेरा। मुझसे जो भी कभी चाहो तुम, वह तुम्हें प्राप्त हो सर्वदा।।
एक बात मैं और कहूँ, मुझसे जो भी अभिलाषा करे। किसी अन्य कामना की भाँति, नहीं बन्धन में वह डाल सके।।
मुझसे की अभिलाषा तो, सब बन्धन से मुक्त करे। सम्बन्ध जिसका मुझसे हो, कोई बन्धन न उसे बान्ध सके।।

हे अनघे निष्पाप हे, पति प्रेम तुम्हारा देख लिया। उल्टी सीधी बातें कहकर, विचलित मैं करना चाहता था।।
किन्तु तेरी बुद्धि तो मुझसे, तनिक भी आवृत्त नहीं हुई। पतिव्रत एकाग्र प्रेम, की प्रमाण है तुमने दी।।

मोक्ष का स्वामी हूँ मैं प्रिय, भव सागर से मैं पार करूँ। जो मेरी शरण में आ जाये, मैं जन्म मरण से तार दूँ।।
सकाम जीव तपस्या और, व्रत से जो मुझको भजते हैं। केवल जग के सुख लाभ, ही मुझसे जो चाहते हैं।।
मेरी माया से मोहित वह, मुझको जान न पाते हैं। मानव जन्म यह पाकर भी, व्यर्थ ही इसे गँवाते हैं।।

हे मानिनी सारी सम्पद् और, मोक्ष का मैं अधीश्वर हूँ। मैं ही हूँ आश्रय सबका, मैं ही सबका ईश्वर हूँ।।
मुझको प्राप्त करके भी जो, केवल सुख सम्पद् चाहें। मन्दभागी वह पराभक्ति, मेरी से दूर ही रह जायें।।
विषय सुख तो नरक में, भी प्राप्त यह हो सकें। या नरक सम ही कूकर, सूकर योनि में भी वह मिलें।।
किन्तु उनका मन तो सदा, विषयों में ही भ्रमित रहे। इस कारण उन्हें नरक में, भी जाना नहीं बुरा लगे।।

तुमने है मेरी सेवा करी, जो भव बन्धन से मुक्त करे। जान लो मेरी प्राण प्रिये, कोई दुष्ट न ऐसा कर सके।।
जिन नारियों के चित्त में, दूषित कामना भरी रहे। इन्द्रिय तृप्ति हेतु जो, भान्ति भान्ति के छल करें।।
उनके लिये तो ऐसी सेवा, कर पाना अति कठिन है। निष्काम भाव गृहेश्वरी, उनका पाना अति कठिन है।।

हे प्रिय निज घर में मुझे, तुम जैसी भार्या न दीखे। तुमने तो देखा भी न था, केवल थे मेरे चर्चे सुने।।
फिर भी विवाह में आगन्तुक, राजाओं की उपेक्षा कर। ब्राह्मण के हाथों गुह्य संदेशा, दिया था मुझको प्रेषित कर।।

तेरे हरण की बेला भाई तेरे, मैंने विरूप था कर दिया। अनिरुद्ध के विवाह में तो, भ्राता ने उसका वध ही कर दिया।।
मौन में तुमने सब सहा, मुझसे इक बात भी नहीं कही। कहीं वियोग न हो मुझसे, इस बात से तुम आशंकित थी।।

तेरे इस गुण ने प्रिये मुझे, वशवर्ती है कर लिया। निष्काम प्रेम तेरे ने तो, मुझे अपना दास बना लिया।।

मेरे प्राप्ति हेतु दूत को, गुप्त सन्देश था दे भेजा। किन्तु मेरे आने में, जब विलम्ब तुमने देखा।।
निस्सार भया संसार सब, तन त्यजने का संकल्प किया। अन्य को न दोगी निज तन, ऐसा तेरा दृढ़ निश्चय था।।
इस निहित प्रेम तुम्हारे का, कभी बदला नहीं चुका पाऊंगा। सर्वश्रेष्ठ तव भाव का तो, अभिनन्दन ही करता हूँ।।
शुकदेव बोले,
हे राजन् जानो जगदीश्वर, श्री कृष्ण तो आत्म राम हैं। पर मनुष्य सी लीला को, करें तन धारण वह आप हैं।।
दाम्पत्य प्रेम बढ़ाने को, विनोद भरी नित्य बातें करें। लक्ष्मी रूपा रुक्मिणी संग, प्रभु इस विधि विहार करें।।

जगद्गुरु श्री कृष्ण तो हैं, सारे जग में सर्व व्याप्त। इसी विधि सब पत्नियों के, महलों में वह करें निवास।।
गृहस्थ समान वह रहकर के, गृहस्थ धर्म अनुसरण करें। मानो आदर्श प्रमाण वह, जग के सम्मुख हों धर रहे।।

९) कृष्ण का परिवार तथा अनिरुद्ध के विवाह में रुक्मी का वध

शुकदेव बोले,
श्री कृष्ण की हर पत्नी के, गर्भ से जन्मे दस दस सुत। रूप बल आदि गुणों में, पिता समान थे सभी पुत्र।।
राज सुताएँ देखतीं थीं, नहीं कृष्ण महल कभी छोड़ते। सदा ही मेरे पास रहें, इस कारण हूँ मैं सबसे प्रिय।।
वास्तव में निज पति की वह, महिमा को नहीं जानें थीं। हैं आत्मानन्द में एक रस, स्थित श्री कृष्ण न जानें थीं।।
कमल कली सम सुन्दर मुख, और विशाल भुजा उनकी। कमल नयन और प्रेममयी, मनमोहन चितवन उनकी।।
और मधुर उस वाणी से, स्वयं वह मोहित थीं सदा। निज श्रृंगार के हावभाव से, उनको जीत न सकीं कदा।।

सोलह हजार से अधिक, थीं श्री कृष्ण की पत्नियां। मधुर स्मित तिरछी चितवन से, प्रेम बाण छोड़ें थीं सदा।।
किन्तु किसी विधि भी वह, प्रभु चित्त न चंचल कर पातीं। भ्रुवों की सब संकेत वा, ज्यों की त्यों ही धरी रह जाती।।

ब्रह्मा आदि महा देवता भीं, हरि का स्वरूप न पहचानें। उनकी प्राप्ति के लिये, नहीं मार्ग वह कोई जानें।।
उन्हीं रमारमण श्री हरि को, पति रूप में था पाया। नित्य निरन्तर उनका प्रेम, वर्धित ही होता आया।।
प्रेममयी स्मित मधु चितवन, नव मिलन लालसा मन में भरी। नित्य नए भावों को ले, वे प्रभु की सेवा थीं करतीं।।

सभी पत्नियों संग वहाँ, शतश: दासियाँ रहतीं सदा। फिर भी जब प्रभु पधारते, अवगानी करतीं स्वयं सदा।।
स्वयं ही आगे बढ़कर के, आदर पूर्वक उनको लातीं। उत्तम समिधा से पूजतीं, श्रेष्ठ आसन दे बिठलातीं।।
चरण कमल थीं पखारतीं, ताम्बूल की सेवा वह करती। चरण चापन उनका करी, विश्रान्ति थीं उनकी हरतीं।।
पंखा करतीं फिर सुगन्धि, चन्दनादि अर्पित्त करतीं। पुष्प माल पहरातीं उन्हें, उनके केश संवारतीं थीं।।
स्नान शयन करातीं सब, फिर भान्ति भान्ति के व्यंजन से। भोजन उनको दे करी, सेवा करतीं अपने कर से।।

पूर्व कहा तुमसें राजन्, हर पत्नी के थे पुत्र दस। आठ महारानियों के, विवाह का वर्णन चुका हूँ कर।।
अब रुक्मिणी गर्भ से, जो पुत्र उत्पन्न हुए। उनके नाम भी हे राजन्, अब तू मुझसे सुन ले।।
चारुदेष्ण सुदेष्ण चारुदेह, भद्रचारु सुचारु चारुगुप्त। चारुचन्द्र विचारु और चारु, प्रद्युम्न सहित थे दस पुत्र।।

अपने पिता श्री कृष्ण से, यह किसी बात में न्यून न थे। रूप लावण्य और बल में, सब उनके ही समान थे।।

भानु सुभानु स्वर्भानु और, प्रभानु चन्द्रभानु भानुमान्। बृहद्भानु अतिभानु श्रीभनु, प्रतिभानु सत्यभामा सुत जान।।
साम्ब सुमित्र पुरुजित् और, शतजित् सहस्रजित् विजय। चित्रकेतु वसुमान द्रविड़, क्रतु जाम्बवती सुत थे।।

नग्नजिति सत्या के भी, दस पुत्रों के नाम जान। वीर चन्द्र और अश्वसेन, चित्रगु वेगवान जान।।
वृष आम शंकु वसु, और तेजवान् कुन्ति। यह दसों ही जानो राजन्, थी सत्या की सन्तति।।

सुत कवि वृष् वीर, सुबाहु भद्र और शान्ति। दर्श पूर्णमास अनुज सोमक, इनकी जननी कालिन्दी थी।।
मद्र देश की राजकुमारी, लक्ष्मणा के गर्भ से। श्रीकृष्ण के दस पुत्र, जानो थे उत्पन्न हुए।।
प्रघोष गात्रवान् और, सिंह अपराजित एवं बल। ऊर्ध्वंग महाशक्ति ओज, और दसवां था प्रबल।।

वृष हर्ष अनिल और, वर्धन अन्नाद महाष गृध्र। पावन वह्नि और क्षुधि, थे यह मित्रविन्दा के पुत्र।।
संग्रामजित् और बृहत्सेन, शूर प्रहरण जय सुभद्र। अरिजित वाम आयु सत्यक, हुए यह सब भद्रा के पुत्र।।

इन महारानियों के अतिरिक्त, थीं रोहिणी आदि पत्नियाँ। षोडष सहस्त्र और एक सौ, थीं कृष्ण की अन्य भी पत्नियाँ।।
दीप्तिमान् और ताम्रतप्त, आदि दस दस पुत्र हुए। अब रूक्मिणी सुत प्रद्युम्न, के विवाहों की सुन ले।।
मायावती और रुक्मवती, द्वौ नाम तू जान ले। मायावती की कथा कही, अब रुक्मवती की जान ले।।
भोजकट निवासी रुक्मी की, पुत्री थी रुक्मवती। उसी के गर्भ से महाबली, अनिरुद्ध ने जन्म ली।।
थी श्री कृष्ण की पत्नियों की, संख्या षोड्ष सहस्त्र से अधिक। उनके पुत्रों की संख्या भी, हुई कोटिश: से अधिक।।
परीक्षित् बोले,
हे मुनिवर श्री कृष्ण ने, रणभूमि में था दुत्कारा। इस कारण बदले की घात, में था सदा रुक्मी रहता।।
वह तो सदा श्री कृष्ण का, चाहता था करना हनन ही। शत्रु पुत्र प्रद्युम्न से, कैसे फिर उस कन्या ब्याह दी?
श्री कृष्ण और रुक्मी शत्रु थे, विवाह फिर यह कैसे हुआ? कृपा करी द्विजवर कहें, और शान्त करें मेरी जिज्ञासा।।

नहीं कुछ भी आपसे छिपा प्रभु, वर्तमान सब जानें आप। भूत और भविष्य भी, योगी जन को रहे ज्ञात।।
इन्द्रिय परे या दूरस्थ, या नयनों सों ओझल जो रहें। वह सब बातें भी उनसे, कभी छिपी न रह सके।।।
शुकदेव बोले,
हे राजन् प्रद्युम्न तो, मूर्तिमान् मदन ही थे। रुक्मावती ने-स्वयंवर में वर, सौन्दर्य गुणों पे रीझ के।।
युद्ध में अकेले ही, सब राजा हरा दिये। इस भान्ति प्रद्युम्न ने, रुक्मावती के करण किये।।

अपमानित था श्री कृष्ण से, नहीं क्रोध अग्न थी शान्त हुई। रुक्मी के हृदय में वैर की, ज्वाला थी अभी धधक रही।।
फिर भी भगिनी रुक्मिणी, की प्रसन्नता के लिये। भानजे प्रद्युम्न से, निज सुता के परिणय कर दिये।।

दस पुत्रों को छोड़कर, इक कन्या भी थी रुक्मिणी की। सौन्दर्यवती विशालाक्षी, नाम था उसका चारुमति।।
जब वह कन्या युवा हुई, विवाह योग्य आयु पहुँची। कृतवर्मा के पुत्र बली ने, उसकी पाणिग्रहण करी।।
रुक्मी तो श्री कृष्ण का, था पुराना द्वेषी ही। फिर भी रुक्मिणी रहे प्रसन्न, उसने इक युक्ति करी।।

अपनी पौत्री रोचना को, रुक्मिणी पुत्र से ब्याह दिया। नाते में अनिरुद्ध तो, रुक्मी का नाती ही था।।
रुक्मी जाने तो था यह, नहीं धर्मानुकूल सम्बन्ध यह। भगिनी स्नेह के कारण ही, उसने यह सम्बन्ध किये।।

अनिरुद्ध के विवाह में, सम्मिलित होने के लिये। यदुकुल के सब ही नायक, रुक्मी के यहाँ जा पहुँचे।।
श्री कृष्ण बलराम रुक्मिणी, प्रद्युम्न और साम्ब आदि। भोजकट नगर पधारे थे, यह सब द्वारिका के वासी।।

निर्विघ्न जब विवाह का, उत्सव सब सम्पन्न हुआ। कलिङ्ग नरेश संग अन्य घमण्डी, नरपतियों ने दी सलाह।।
पांसों के खेल में रुक्मी, जीतो तुम बलराम को। है खेल का उनको व्यसन बहुत, पर नहीं खेलना जानें वो।।
उन सबके बहकाने से, रुक्मी ने राम को बुलवाया। उनके साथ फिर खेलने को, चौसर का खेल उसने बिछवाया।।

पहले सौ फिर एक सहस्र, मुहरों को दाव पे दिया लगा। तत्पश्चात् श्री राम ने, दस सहस्र का दाव धरा।।
रुक्मी ने जीत लिया उनको, कलिङ्गपति दिये दाँत दिखा। श्री बलराम की इस विधि, वह था हंसी उड़ा रहा।।
नहीं सह सके इसको वह, बलराम जी कुछ चिढ़ गए। फिर एक लाख मुहरे रुक्मी ने, पुनः दाव पे रख दिये।।
इस बार श्री बलराम ने, उस दाव को जीत लिया। किन्तु धूर्त रुक्मी ने कहा, मैंने ही दाव यह है जीता।।

इस पर श्री बलराम का, क्रोध भयंकर उठ आया। ऐसा क्षुब्ध उनका हृदय हुआ, ज्यों ज्वार हो पूर्णिमा को आया।।
स्वभाव से श्री बलराम के, नेत्र कुछ रत्नारे थे। क्रोध के प्रभाव से, अग्नि सम वह दहक उठे।।
अब दस करोड़ मुद्राओं को, दाव पे उन्होंने लगा दिया। द्यूत नियम अनुसार ही, इस बार भी उन्हें जीत लिया।।
रुक्मी के मन में छल था, उसने कहा मेरी जीत हुई। कलिंग नरेश इस विषय में, विशेषज्ञ हैं सर्वश्रेष्ठ ही।।
सभासद और वह मिलकर ही, इस बात का निर्णय करें। इस चौसर की खेल में, कौन आज है विजयी रहे?

तत्क्षण ही आकाश से इक, गम्भीर वाणी गूंज उठी। धर्मानुकूल इस दाव के, विजेता हैं बलराम ही।।
रुक्मी का यह कथन तो, है सरासर झूठ ही। कि यह चौसर की बाजी, है उसने ही जीत ली।।

इक तो काल ने रुक्मी की, मति आप ही हर ली थी। फिर संगी राजाओं की भी, दुर्मति उसको प्राप्त थी।।
इस कारण आकाश वाणी, की उपेक्षा उसने करी। और श्री बलराम की हंसी उड़ा अपमान करी।।

बलराम जी आप तो वास्तव में, हैं बन बन के ग्वाले ही। पांसा खेलना न जानें, बन में भटकने वाले कभी।।
पांसों और बाणों से तो, बस राजा ही खेल सकें। आप जैसे बनवासी जन, इन खेलों को क्या जानें?

रुक्मी के इस आक्षेप और, राजाओं के उपहास ने। श्री बलराम की क्रोध अग्न में, जैसे घृत के काम किये।।
हाथ में एक मुद्गर उठा, रुक्मी पर प्रहार किया। मंगल कार्य की सभा में ही, रुक्मी को उन्होने मार दिया।।

कलिंग नरेश तो पहले उन्हें, अपने दाँत दिखाता था। श्री बलराम की बार बार, इस विधि हंसी उड़ाता था।।
रंग में भंग यह देखकर, वहाँ से भागने वह लगा। दस कदम भी न था चल पाया, श्री बलराम ने जा पकड़ा।।
दाँत ही तोड़ दिये उसके, फिर मुद्गर की उन चोट करी। अन्य राजागण की भी, अंग अंग भंजित करी।।
रक्त में लथपथ हुए सभी, और महाभयभीत हुए। अपनी जान बचाकर के, सब राजा वहाँ से भाग गए।।

हे राजन् श्री कृष्ण के, सामने आई इक दुविधा। भ्राता का समर्थन गर करते, होती रुष्ट भीष्मक सुता।।
और रुक्मी के वध को, गर वह बुरा बता देते। तो भैय्या बलराम जी, उनसे रुष्ट ही हो जाते।।
इस कारण निज साले की, मृत्यु पर कुछ भी नहीं कहा। ऐसे मौके पर जाना, मौन ही रहना है भला।।

अनिरुद्ध का विवाह हुआ, और शत्रु का वध हुआ। दोनों प्रयोजन सिद्ध कर, फिर यात्रा का आरम्भ हुआ।।
दुल्हन को चढ़ा दिया, अनिरुद्ध संग श्रेष्ठ रथ पर। थे प्रभु के आश्रित श्री, बलराम और यदुवंशी सब।।
भेजकर नगर से वह, द्वारिकापुरी चले आये। विवाह के उपलक्ष्य में, द्वारिका वासी मुदित थे।।

१०) ऊषा-अनिरुद्ध मिलन

परीक्षित बोले,
हे योगेश्वर मैंने सुना, यदुश्रेष्ठ अनिरुद्ध ने। बाणासुर पुत्री ऊषा के, पाणिग्रहण थे कर लिये।।
इस प्रसंग में श्री शंकर, और श्री कृष्ण का युद्ध हुआ। कृपा करी विस्तार से, उस वृतान्त की कहें जरा।।
शुकदेव बोले,
महात्मा बलि की कथा तो तुम, हे राजन् हो सुन चुके। वामन रूप धारी प्रभु को, सब पृथ्वी के दान दिये।।
उनके पुत्र थे एक सौ, ज्येष्ठतम था बाणासुर। था नित्य ही शिव भक्ति निमग्न, औरस पुत्र वह बाणासुर।।
सब सहराते थे उसकी, बुद्धिमता उदारता। समाज में भी यह असुर, मान बहुत ही पाता था।।
अटल प्रतिज्ञ था वह सदा, प्रतिज्ञा पूरी करता था। सब जन थे यह जानते, निज बात से कभी न टलता था।।

परम रमणीक शोणितापुर, में राज्य वह करता था। प्रभु शंकर का वह था भक्त, उनकी कृपा का पात्र था।।
इन्द्रादि सब देव भी उसकी, सेवा करते चाकर वत्। सहस्र भुजाएं थीं उसकी, ऐसा था वह महाबलवत्।।
इक दिन भोले भगवान थे जब, ताण्डव नर्तन में मग्न। सहस्र हाथ से विभिन्न भाँत के, वाद्य बजा उन्हें किया प्रसन्न।।

भक्त और शरणागत के, वत्सल हैं श्री भोले नाथ। सब भूतों के स्वामी बोले, हो जो भी इच्छा वर ले मांग।।
बाणासुर ने उन्हें कहा, भगवान आप अब यहीं रहें। कृपा करें चहुँ ओर से, मेरे नगर की रक्षा करें।।

निज वीर्य के दम्भ में मत्त था, प्रभु शंकर को निकट देखा। सूर्य समान प्रकाशवान्, मुकुट से उनका चरण छुआ।।
प्रणाम करी इस विध उनको, वह उनसे कहने लगा। चराचर जगत् के आप ही, गुरु और ईश्वर हैं सदा।।
जिनके मनोरथ हे प्रभु, पूर्ण नहीं हैं अभी हुए। उनके लिये तो आप सदा, कल्प वृक्ष का रूप धरें।।

आपने तो हे प्रभु मुझे, एक सहस्र भुजायें दीं। किन्तु वह मेरे लिये, बस भार ही बन के रह गईं।।
क्योंकि इस त्रिलोकी में, नहीं मुझ समान है वीर कोई। आपको छोड़ के हे प्रभु, नहीं युद्ध करने के योग्य कोई।।

हे आदिदेव इक बार मेरी, भुजा थीं फड़कीं युद्ध को। मैं भी तब था चल दिया, ढूंढ़ने महा दिग्गजों को।।
किन्तु वह भी भयभीत हो, दूर ही मुझसे भाग गए। तब इन बाहों की चोट से, मैंने मार्ग के पर्वत थे तोड़े।।

बाणासुर का यह वचन सुनी, श्री शंकर कुछ कुपित हुए। और क्रोध में असुर को, फिर उन्होने यह वचन कहे।।
अरे मूढ़ जब तेरी ध्वजा, भंजित हो गिर जायेगी। मेरे समान ही योधा से, तब युद्ध तेरा हो जायेगा।।

वह युद्ध तेरे इस दम्भ को, चूर चूर ही देगा कर। अपने बल पर ऐ असुर, इस विधि तू मान न कर।।
उस बाणासुर की बुद्धि, थी राजन् इतनी भ्रष्ट हुई। लौटा प्रभु की बात सुनी, मन थी हर्षित हो रही।।

श्री शंकर का आदेश सुनी, युद्ध प्रतीक्षा उसको लगी। जिसमें उसके बल वीर्य की, समाप्ति होनेवाली थी।।
थी बाणासुर की इक कन्या, नाम था उसका ऊषा। उस कुमारी ने इक दिन, अद्भुत एक स्वप्न देखा।।
अति रूपवान् अनिरुद्ध से, उसका समागम हो रहा। न तो कभी देखा था उसे, न ही था उसका नाम सुना।।

स्वप्न में ही जब आंखों के, सामने से ओझल वह हुआ। तब कुमारी ऊषा ने, स्वप्न में ही यह वचन कहा।।
प्राण प्रिय कहां हो तुम, और निद्रा उसकी खुल गई। देखा सखियों के बीच हूँ मैं, और लज्जित वह हो गई।।

कुम्भाण्ड नाम से बाणासुर, का इक मन्त्री था राजन्। चित्रलेखा ही उसकी, पुत्री का था नाम जान।।
वह कन्या भी ऊषा की, अतीव प्रिय सहेली थी। कौतूहल उसके मन में उठा, निज सखी से उसने प्रश्न किया।।
हे राजसुता मैं जाने हूँ, नहीं पाणिग्रहण अभी तेरा हुआ। फिर किसको हो तुम ढूंढ रही, रूप कहो क्या मनोरथ का?
ऊषा बोली,
सखी स्वप्न में ही मुझे, अति सुन्दर एक युवक दीखा। थे कमल नयन उसके सुन्दर, और उसका तन था श्यामल सा।।
लम्बी भुजायें थीं उसकी, पीताम्बर था लहरा रहा। इस अनुपम अपने रूप से, मेरा चित्त है उसने चुरा लिया।।

पहले उस निज अधरों का, अधर रस पिलाया मुझे। किन्तु अभी तृप्त थी नहीं हुई, जाने क्यों छोड़ गया वह मुझे।।
दु:ख सागर में डाल के, मुझे तड़पता छोड़ गया। ढूंढ़ रही हूँ सखी मेरी, मेरा प्राणवल्लभ कहाँ गया?

चित्रलेखा बोली
यदि होगा कहीं त्रिलोकी में, हे सखी है जिसने चित्त रहा। गर उसे पहचानो तुम, तो शान्त करूँ तव हृदय व्यथा।।
मैं चित्र बनाऊँ सखी मेरी, चित्तचोर को तुम पहचान लो। फिर चाहे कहीं पे भी वह हो, उसे लाना मेरा काम हो।।
शुकदेव बोले,
यह कहकर बात ही बात में, उसने बहुत से चित्र बना दिये। देव गन्धर्व सिद्ध चारण, पन्नाग दैत्य विद्याधर थे।।
यक्ष और मनुजों के भी, चित्र बनाये फिर उसने। मनुजों में वृष्णी वंशी, श्री शूर और वसुदेव भी थे।।
बलराम और श्रीकृष्ण के भी, चित्र उसने बना दिये। चित्र प्रद्युम्न का देखी, ऊषा कुछ लज्जित सी भासे।।
तत्पश्चात् अनिरुद्ध का, चित्र जब उसने देखा। तब लज्जा के कारण उसका, सीस और भी नीचे झुका।।
मन्द मन्द मुस्काते हुए, फिर अपनी सखी से वह बोली। यही तो हैं मेरे प्राण प्रिय, मेरे वल्लभ हैं यह ही।।
महायोगिनी थी चित्रलेखा, हैं कृष्ण के पौत्र यह जान लिया। आकाश मार्ग से रात्रि में, द्वारिका को प्रस्थान किया।।

श्री कृष्ण से पालित द्वारिका में, जाकर के उसने देखा। सुन्दर पलंग पे अनिरुद्ध, है गहरी नींद में सो रहा।।
निज योग सिद्धि का फिर, उसने आश्रय ले लिया। अपहरण किया अनिरुद्ध का, शोणितपुर वह पहुँची जा।।
अपनी सखी ऊषा को उस, प्रियतम के दर्शन करा दिये। इस विधि उस योगिनी ने, अपने वचन निभा दिये।।

निज प्राण प्रिय के दर्शन पा, प्रफुल्लित ऊषा का मन हुआ। प्रियतम संग विहार किया, आनन्द था उसके मन में भरा।।

राजसुता का अन्त:पुर, जानो राजन् सुरक्षित था। नहीं अन्य पुरुष कोई, उसमें झांक भी था सकता।।

दिन प्रतिदिन ऊषा का प्रेम, वर्धित ही होता गया। भिन्न भिन्न सामग्री से, वह करने लगी प्रियतम सेवा।।
बहुमूल्य वस्त्र और पुष्पमाल, इत्र धूप दीप आसन। सुमधुर पेय भोज्य भक्ष्य, मधुर वाणी सेवा सम्पन्न।।
सब भाँति से अनिरुद्ध का, सत्कार उसने किया। श्री अनिरुद्ध का मन उसने, अपने वश में कर लिया।।
उस कन्या के अन्त:पुर में, छिपे हुए अनिरुद्ध रहे। उसके प्रेम के वश में हो, वह अपना आप भी भूल गए।।
नहीं यह भी उनको याद रहा, यहाँ आए कितने दिन हैं हुए। लौट के भी कहीं जाना है, इसकी याद भी भूल गए।।

यदुकुमार अनिरुद्ध संग, ऊषा का था सहवास हुआ। इससे उसका कौमार्य तो, नष्ट ही था हो चुका।।
अब उसके सुकुमार तन पे, चिन्ह प्रकट वह होने लगे। किसी विधि छिपाये भी, वह नहीं थे छिप सकते।।
मन भी अति प्रसन्न था, स्पष्ट ही दीख रहा था यह। पहरेदारों ने समझ लिया, कोई पुरुष ही कारण इसका भए।।

जाकर उन बाणासुर से कहा-
आपकी राजकुमारी के, जो लक्षण हम हैं देख रहे। उनसे तो ऐसा लगे, कुल कलंकिनी ही वह भए।।
नहीं तनिक संदेह इसमें, दिन रात ही हम वहाँ पहरा दें। निश्चित क्रम अनुसार ही, कड़ी नजर उसपर रखें।।
बाहर का कोई भी जीव, नहीं आपकी कन्या देख सके। फिर कलंकित कैसे हुई, यह न हमको समझ पड़े।।

जब जाना उसकी कन्या का, चरित है दूषित हो गया। बाणासुर अति व्यथित हुआ और, उसके महल की ओर चला।।
वहाँ पहुँचकर देखा उसने, अनिरुद्ध को बैठे हुए। श्री अनिरुद्ध तो स्वयं ही, कामदेव के पुत्र थे।।
त्रिभुवन में उनके जैसा, सौन्दर्य कहीं पे भी न था। कमल समान विशाल नेत्र, और थीं उनकी लम्बी भुजा।।
कुण्डल की जगमग ज्योति, और घुंघराली उनकी अलकें। उनके कपोल की शोभा को, चार चाँद थे लगा रहे।।
थी अधरों पर मुसकान मन्द, प्रेम भरी उनकी चितवन थी। उनके मुख अरविन्द की थी, अनूठी ही शोभा बनी।।

सब प्रकार से सजी धजी, निज प्रियतमा संग वह बैठे थे। और उसके साथ वह, पांसों का खेल थे खेल रहे।।
कण्ठ में पीली बेला की, सुन्दर माला सुशोभित थी। ऊषा के अंग स्पर्श से, उसपर थी केसर लगी हुई।।
पुत्री के सामने बैठे हुए, बाणासुर ने उन्हें देखा। विस्मय से बाणासुर तो, अति चकित ही रह गया।।

श्री अनिरुद्ध ने जब देखा, है अस्त्र शस्त्र सहित आया। आक्रमणकारी सैनिकों को, भी है अपने संग लाया।।
उनको मार गिराने को, लोहे का भयंकर परिघ लिया। इस भाँति अनिरुद्ध डटे, ज्यों कालदण्ड लिये काल खड़ा।।

बाणासुर के सैनिक जब, पकड़ना उनको चाहते थे। उनको मार के अनिरुद्ध, धरा पे ही गिराते थे।।
ज्यों सूकर दल का नायक, श्वानों को मार गिराये कोई। उस भाँति की ही दशा, इन सैनिकों की वहाँ हुई।।
सीस भुजा जंघा आदि, अंग अंग उनके टूटे। जो बचे भी थे भयभीत होई, महल से हुए वह भाग खड़े।।

महाबली बाणासुर ने, जब अपने सामने ही देखा। वह युवक तो उसकी सारी, सेना संहार है कर रहा।।
तब क्रोध से तिलमिलाया वह, नाग पाश में उसे बान्धा। ऊषा को जब प्रियतम के, इस बन्धन का पता लगा।।
शोक और विषाद से, अति विह्वल वह हो गई। नेत्रों से बड़ी अश्रुधारा, व्यथित हो वह रोने लगी।।

११) श्रीकृष्ण का बाणासुर के साथ युद्ध

शुकदेव बोले,
वर्षा के चतुर्मास गए, कहीं अनिरुद्ध का पता न था। इस कारण अति शोकाकुल, उसका सारा परिवार था।।
इक दिन श्री नारद ने आकर, सबको यह समाचार दिया। शोणितपुर में बाणासुर की, सेना से युद्ध का दिया बता।।
फिर नाग पाश में बन्ध जाना, श्री अनिरुद्ध का उसने कहा। जिनके आराध्य हैं श्री कृष्ण, यदुवंशियों ने आक्रमण किया।।

श्री कृष्ण और बलराम संग, उनके अनुयायी चले। प्रद्युम्न सात्यकि गद साम्ब, सारण नन्द उपनन्द चले।।
भद्रादि यदुवंशियों ने, बारह अक्षौणी सेना ली। व्यूह बना शोणित पुरी, चहुँ ओर से घेर ली।।

बाणासुर ने देखा जब, यदुवंशियों की सेना आई। नगरोद्यान परकोटे बुर्ज, और सिंह द्वार है तोड़ रही।।
क्रोध से बहुत वह भड़क गया, उसने भी अपनी सेना ली। बारह अक्षौणी सेना संग, प्रस्थान नगर से बाहर की।।

बाणासुर की ओर से, नन्दी पे थे श्री शिव शंकर। कार्तिकेय और गणों संग, रणभूमि पधारे श्री शंकर।।
श्री कृष्ण और बलराम से, फिर उन्होंने युद्ध किया। हे भारत वह युद्ध तो, अति अद्भुत महाघोर था।।
उसे देखकर गात में, रोमांच ही था हो उठता। श्री कृष्ण से लड़े श्री शंकर, स्वामिकार्तिक से प्रद्युम्न लड़ा।।

कुम्भाण्ड और कूपकर्ण, जा बलराम से भिड़ गए। साम्ब लड़े उसके पुत्र से, बाणासुर से सात्यकि भिड़े।।
ब्रह्मा आदि महादेवता गण, ऋषि मुनि और सिद्ध चारण। गन्धर्व अप्सरा यक्षों ने, चढ़ी विमान किये दर्शन।।

भूत प्रेत प्रमथ गुह्यक, डाकिनी यातुधान वेताल। विनायक प्रेतगण मातृगण, कुष्माण्ड ब्रह्मराक्षस पिशाच।।
यह अनुचर श्री शंकर के, दूर ही सब भगा दिये। श्री कृष्ण के शार्ङ्गधनुष ने, तीक्ष्ण नोकीले बाणों से।।

त्रिशूलधारी श्री शंकर ने, विभिन्न भाँति के छोड़े शस्त्र। श्री कृष्ण ने विरोधी अस्त्रों से, ही शान्त किये वे सब।।
ब्रह्मास्त्र की शान्ति को, ब्रह्मास्त्र का उन्होने प्रयोग किया। वायव्यास्त्र के प्रतिरूप, पर्वतास्त्र को छोड़ दिया।।
आग्नेयास्त्र के बदले में, परिजन्यास्त्र को छोड़ा उन। और पाशुपतास्त्र के, प्रतिरूप में अस्त्र था नारायण।।

तत्पश्चात् श्री कृष्ण ने, जृम्भणास्त्र छोड़ दिया। मोहित किये श्री महादेव, जम्भाई का क्रम चल पड़ा।।
युद्ध विरत हो महादेव, जम्भाई फिर लेने लगे। श्री कृष्ण उधर से मुक्त हो, असुरों की सेना से भिड़े।।
तलवार गदा और बाणों से, संहार वह उसका करने लगे। बाणासुर की सेना का, प्रतिकार वह यूँ करने लगे।।

इधर प्रद्युम्न के बाणों का, वार भी अति तीक्ष्ण था। कार्तिकेय को बाणों की, बौछार से घायल कर दिया।।
उनके अंग अंग से, रक्त की धारा बह निकली। रणभूमि से भाग कर, बैठे वाहन मयूर पे ही।।

श्री बलराम ने तब अपने, मूसल का प्रहार किया। कुम्भाण्ड और कूपकर्ण को, उन्होंने घायल कर दिया।।
रणभूमि में वह गिरे, जब सेना ने यह देखा। उनको हताहत देख कर, सेना सारी गई घबरा।।
सारी सेना उस असुर की, इधर उधर ही बिखर गई। श्री बलराम के वार से, वह तो थी भयभीत हुई।।

रथ पे सवार बाणासुर ने, देखा मेरी सेना त्रस्त हुई। श्री कृष्णादि के प्रहार से, है तहस नहस वह हो रही।।

तब क्रोध से आग बबूला हो, सात्यकि को उस छोड़ दिया। कृष्ण पे ही अब वार करूँ, ऐसा सोच वह दौड़ पड़ा।।

रणोन्मत्त बाणासुर ने, सहस्त्र हाथ उठा लिये। एक साथ ही पांच सौ, धनुष फिर उसने खेंचे।।
इक इक धनु: पे दो दो बाण, उस असुर ने दिये चढ़ा। और इन बाणों को वह, छोड़ने को उद्यत हुआ।।

किन्तु श्री कृष्ण ने एक साथ, सभी धनुष उसके काटे। सारथी रथ तथा अश्व भी, उसके धराशायी किये।।
शंखध्वनि फिर की उन्होने, रणभूमि उससे गूंज उठी। कोटरा नाम की देवी इक, थी धर्म माँ बाणासुर की।।
अपने महा उपासक के, प्राणों की रक्षा के लिये। कृष्ण सम्मुख आ खड़ी हुई, नग्न ही बाल बिखेरे हुए।।

कहीं उसपर दृष्टि न पड़े, श्री कृष्ण ने अपना मुख फेरा। दूजी ओर देखन लगे, उसपर से वह दृष्टि हटा।।
रथ विहीन था असुर हुआ, धनु: भी था उसका कटा। इस कारण बाणासुर अब, अपने नगर को चला गया।।

भोले शंकर के भूत गणों ने, इधर उधर प्रस्थान किया। त्रैसीस और त्रैपाद धारी, ज्वर को उन्होंने फिर छोड़ा।।
दसों दिशा को जलाता हुआ, श्री कृष्ण की ओर ही वह दौड़ा। अपनी ओर आता देखी, प्रतिरूप में कृष्ण ने ज्वर छोड़ा।।
वैष्णव और माहेश्वर अब, दोनों ही लड़ने लगे। अन्त में वैष्णव तेज से, माहेश्वर पीड़ित हुए।।
शिव का ज्वर चिल्लाने लगा, और अति भयभीत हुआ। इधर उधर सब जा देखा, अन्यत्र त्राण कहीं नहीं मिला।।
अति विनम्र हो कर जोड़ी, श्री कृष्ण शरण में आन पड़ा। और चरण में उनके गिरी, प्रार्थना वह करने लगा।।

ज्वर बोला,
अनन्त आपकी शक्ति प्रभु, ब्रह्मा आदि के परमेश्वर। सर्वरूप सबके आत्मा, आप ही हैं महा ईश्वर।।
हैं अद्वितीय आप प्रभु, ज्ञान स्वरूप ही आप हैं। संसार की उत्पत्ति स्थिति, प्रलय कारण भी आप ही हैं।।
श्रुतियां नित्य ही आपका, वर्णन और अनुमान करें। निर्विकार परं ब्रह्म, तेरे चरणन् में प्रणाम हे।।

काल दैव कर्म जीव, स्वभाव शरीर और सूक्ष्म भूत। सूत्रात्म प्राण इन्द्रियाँ ग्यारह, अहंकार और पंचभूत।।
इन सबका संघात रूप, लिंग शरीर जो बन जाये। बीज का अंकुर फूट पड़े, उससे कर्म होते जायें।।
और उन कर्मों से पुन: नव बीज उत्पत्ति हो। हे प्रभु यह सब ही तो, आपकी ही बस माया हो।।
माया के निषेध की, प्रभु आप ही हैं परम अवधि। हे नाथ मैं तो पड़ा, बस केवल आपके शरण ही।।

अपनी लीला से ही प्रभु, अनेक रूप धारण करें। देव लोकमर्यादा और, साधु का स्वयं पोषण करें।।
विपरीत मार्ग गामी असुरों, का संहार भी आप करें। भूमि का भार उतारन को, प्रभु हैं यह अवतार लिये।।

शान्त उग्र और दु:स्सह, भयावह तेज यह आपका। आपके इस ज्वर से मैं, अति संतप्त हूँ हो रहा।।
देहधारी जीवों के सब, पाप ताप तब तक ही रहें। आशा पाश में बन्धे हुए, जब तक न आपकी शरण गहें।।

भगवान बोले,
हे त्रिशीरा तुम पर मैं, अति प्रसन्न हूँ हो गया। निर्भय हो जाओ मेरे ज्वर से, मैंने उसको शान्त किया।।
इस जग में हम दोनों के, संवाद को जो भी याद करे। तुमसे उसे कदाचित् भी, भय किंचित् ही नहीं रहे।।

शुकदेव बोले,
श्री कृष्ण के इस विध कहने पर, प्रणाम माहेश्वर ज्वर ने किया। सीस झुकाया कृष्ण सम्मुख, फिर उसने प्रस्थान किया।।
तब तक बाणासुर भी पुन:, रथ पे सवार हो आ गया। श्रीकृष्ण से युद्ध को, फिर से वह तैय्यार था।।

अपने सहस्त्र हाथों में था, विभिन्न अस्त्र शस्त्र लिये। अतीव क्रोध मन में था भरा, कृष्ण ही क्रोध के पात्र थे।।
चक्रपाणि श्री हरि पर वह, बाणों की वर्षा करने लगा। बाणों की निरन्तर झड़ी लगी, जब श्री कृष्ण ने यह देखा।।
छुरे की तीखी धार सम, चक्र उन्होंने छोड़ दिया। भुजाएँ उसकी यूं काटीं, ज्यों वृक्ष की डाली को काटा।।

भक्त वच्छल प्रभु शंकर ने, जब देखा संकट उसपे पड़ा। बाणासुर की हैं कट गईं, असंख्य बलशाली भुजा।।
चक्रपाणि प्रभु विष्णु के, सामने ही वह आ गए। और उन्होंने आकर के, श्री कृष्ण से यह वचन कहे।।

रुद्र बोले,
वेदमन्त्रों में छिपा, उनका निहित तात्पर्य जो। परम ज्योति स्वरूप आप, स्वयं ही परं ब्रह्म हो।।
निर्मल चिति महात्मागण, स्वरूप का साक्षात् करें। सर्वव्याप्त और निर्विकार, स्वरूप सर्वदा ही रहे।।

आकाश आपकी नाभि है, अग्नि है मुख और जल है वीर्य। दिशायें कान और पृथ्वी चरण, स्वर्ग ही है आपका सीस।।
चन्द्र है मन और सूर्य नेत्र, मैं शिव हूँ आपका अहँकार। इन्द्र आपकी भुजा कहें, उदर है सागर यह महान्।।

धान्य आदि औषधि ही, प्रभु आपके रोम हैं। मेघ केश का रूप धरें, ब्रह्मा ही आपकी बुद्धि है।।
प्रजापति ही लिंग है, और धर्म ही है हृदय। समस्त लोक लोकान्तरों से, जिसकी तुलना की जाये।।
परम पुरुष प्रभु आप हैं, वह ही हम आपका तन जाने। हे प्रभु कण कण में ही, आप सदैव ही व्याप्त रहें।।

अखण्ड ज्योति स्वरूप प्रभु, इस जगत् में धर्म की रक्षा को। संसार में धर्म के अभ्युदय, के ही लिये अवतार यह हो।।
आपके ही प्रभाव से, हम सब भी प्रभु सम्पन्न हों। सातों भुवनों के पालन में, हे प्रभु आप समर्थ हो।।

सजातीय या विजातीय, कोई भेद भाव न छू सके। आप तो इन सबसे परे, अद्वितीय परम पुरुष हैं।।
मायाकृत जाग्रत और स्वप्न, सुशुप्ति भी प्रभु आप हैं। इन तीनों से है अतीत जो, वह तुरिया तत्त्व भी आप हैं।।
कोई अन्य प्रभु आपको, प्रकाशित कभी न कर सके। स्वयं प्रकाश हैं आप तो, हैं सबके कारण आप ही हैं।।
न तो कोई कारण आपका हो, हैं कारण भाव से आप परे। तीनों गुणों की भिन्नता भी प्रभु आप ही प्रकट करें।।
देव मनुष्य पशु पक्षी, सब रूपों में ही भास रहे। भिन्न भिन्न रूप धर कर, विभिन्न गुणों का परिचय दें।।

सूर्य की छाया हैं बादल, उनसे वह आवृत्त हो जाये। बादल और उसके रूपों को, सूर्य प्रकाशित आप करे।।
त्यों ही स्वयं प्रकाश प्रभु, गुणों से आप ढके जायें। फिर गुणधारी सब जीव और गुण प्रकाशित आप करें।।
हैं प्रभु आप अनन्त स्वयं, कोई पार न पा सके। माया से मोहित जीव सदा, देह और गेह अनुरक्त रहे।।
दु:ख के सिन्धु में फिर वह, डूबने और उतरने लगे। दारा सुत में आसक्त सदा, दु:ख सुख के चक्र में पड़ा रहे।।

अतीव कृपा करके प्रभु, मानव तन जीवों को दिया। मनुष्य योनि पाकर भी जो, नहीं इन्द्रियों को वश में करता।।

और आपके श्री चरणों का, आश्रय नहीं जो लेता है। है शोचनीय उसका जीवन, निज को वह धोखा देता है।।

हैं सबके आत्मा और प्रियतम, सब जीवों के ईश्वर प्रभु। मृत्यु का ग्रास है जीव स्वयं, गर आपको वह भूले प्रभु।।
अनात्म दु:ख स्वरूप तुच्छ, विषयों में ही सुख मान के। उनके पीछे ही भटका करे, सत्य उन्हें जी जान के।।
वह तो इतना महामूर्ख है, उसकी क्या हम बात करें। अमृत को वह छोड़कर, विष के पीछे भागा फिरे।।

मैं (शिव) ब्रह्मा और सब देवता, विशुद्ध हृदय जो ऋषि मुनि। आपके ही शरणागत हैं, सब प्रकार सब भाव से ही।।
हैं आप ही हम सबके आत्म, प्रियतम और परमेश्वर भी। आप ही हैं कारण प्रभु, उत्पत्ति स्थिति प्रलय के भी।।
परम शान्त समत्व स्थित, सुहृद् इष्ट हैं सबके आप। इक आत्म अद्वितीय आधार, अधिष्ठान बस इक हैं आप।।
हे प्रभु हम आपकी, ही शरण में पड़ते हैं। संसार से मुक्ति पाने को, हम भजन आपका करते हैं।।

हे देवेश्वर यह बाणासुर, भक्त है परम प्रिय मेरा। यह अनन्य सेवक मेरा, कृपा पात्र यह है मेरा।।
हे प्रभु मैंने इसको, अभय दान है दिया हुआ। इसके परदादा श्री प्रह्लाद, पे रही आपकी सदा कृपा।।
हे प्रभु अब इसको भी, वैसा ही कृपा प्रसाद दें। शरणागत ही जान करी, प्रभु इसे अब क्षमा करें।।

हे भगवन् जो कहें आप, शिरोधार्य तव वचन करूँ। आपका कहना मानकर, ही निर्भय मैं इसे करूँ।।
इस सम्बन्ध में आपने, पहले था जो निश्चय किया। भुजाएँ इसकी काटकर, उसका ही अनुमोदन किया।।

मैं जानूँ यह बाणासुर, दैत्य बलि की सन्तति है। इसलिये नहीं यह हन्ता योग्य, मेरी भी ऐसी उक्ति है।।
मैंने भी तो भक्तराज, प्रह्लाद को है यह वर दिया। तब वंश में उत्पन्न दैत्य का, नहीं वध कभी मुझसे होगा।।
दम्भ यह चूर्ण हो इसका, इस कारण है भुजा काटीं। बहुत बड़ी सेना इसकी, पृथ्वी के लिये भी थार बनीं।।

इसलिये उस सेना का, है मैंने संहार किया। अब जो हैं इसकी बचीं, शेष जो चारों भुजा।।
अजर अमर रहेगी यह, इसको मैंने निर्भय किया। यह बाणासुर आपके, पार्षदों का मुखिया होगा।।

शुकदेव बोले,
श्री कृष्णसे इस विधि, अभय दान जब मिल गया। बाणासुर ने पास आ, धरती पर माथा टेका।।
अनिरुद्ध जी के संग निज, सुता ऊषा को ले आया। रथारूढ़ उनको करके, श्री कृष्ण शरण में ले आया।।

तत्पश्चात् श्री कृष्ण ने, महादेव जी की अनुमति ली। वस्त्राभूषण से भूषित, अनिरुद्ध के संग ऊषा करी।।
इक अक्षौणी सेना संग, उनको आगे भेज दिया। सबसे पहले इन दोनों ने, द्वारिका को प्रस्थान किया।।

द्वारिका में जब श्री कृष्ण, आगमन की सूचना मिली। झण्डियों और तोरणों से, गली गली थी वहाँ सजी।।
सड़के और चौराहों पर, चन्दन का जल छिड़का गया। नगर वासी बन्धु बान्धव, सबने मिली प्रभु स्वागत किया।।
शंख नगारे ढोल की, तुमुल ध्वनि थी हो रही। ऐसे में श्री कृष्ण ने, द्वारिका में प्रवेश किया।।

हे राजन् श्री कृष्ण संग, शंकर जी के इस युद्ध को। और श्री हरि की इस, अद्भुत श्रीविजय की कथा को।।
प्रात:काल में उठकर के, नित्य श्रवण जो करता है। जान लो यह सत्य तुम, नहीं कभी पराजित होता है।।

१२) राजा नृग का गिरगिट योनि से उद्धार

शुकदेव बोले,
राजन् इक दिन साम्ब प्रद्युम्न, चारुभानु और गद आदि। यदुकुमार सब मिलकर के, उपवन में गए भ्रमण को ही ।।
खेल खेल में देर हुई, प्यास से वह आकुल हुए। जल की खोज में भटकते, वह एक कुएँ पर जा पहुँचे ।।
कूप में जल तो था नहीं, विचित्र जीव वहाँ इक दीखा। पर्वत के आकार का, एक बड़ा सा गिरगिट था ।।

आश्चर्य चकित वह हो गए, हृदय में करुणा भर आई। सबने मिली उस जीव को, बाहर करने की यत्न करी ।।
चर्म और सूत की रस्सियों से, वे थे उसको बान्ध रहे। किन्तु सब मिलकर भी, बाहर उसको न कर सके ।।

कौतूहल वश सारा वृतान्त, श्री कृष्ण से जाकर कह दिया। जग जीवनदाता कमलनयन, श्री हरि पहुँचे कूप पे जा ।।
करुणापूर्ण दृष्टि से उन, उस गिरगिट को निहार लिया। बांये हाथ से खेल खेल में, बाहर उसे निकाल दिया ।।

प्रभु कर कमल का स्पर्श पा, वह रूप तो उसका लुप्त हुआ। स्वर्ग के देव समान ही, फिर सुन्दर उसने रूप धरा ।।
उसका तन अब तप्त स्वर्ण, के समान था चमक उठा। वस्त्राभूषण पुष्पमाल, से था अब वह सजा हुआ ।।

यद्यपि श्री कृष्ण तो, सब वृत्तान्त को जाने थे। यह दिव्य पुरुष इस योनि में, क्योंकर आया पहचाने थे ।।
फिर भी सर्वसाधारण सब, इस रहस्य को जान लें। मन में यह बात धरी उन्होने, दिव्य पुरुष को प्रश्न किये ।।
अति सुन्दर है रूप तेरा हे महाभाग कहो कौन हो तुम? मैं तो हूँ ऐसा समझ रहा, निश्चित कोई श्रेष्ठ देव हो तुम ।।

किस कर्म के कारण हे भद्र, इस योनि में तुम्हें आना पड़ा? नहीं इसके योग्य तुम दीख रहे, वर्णन तो अपना करो जरा ।।
यदि उचित इसका समझो, तो हमको भी बतला तुम दो। महानुभाव अब हम सबको, तुम अपना सच्चा परिचय दो ।।

शुकदेव बोले,
अनन्त मूर्ति कृष्ण ने इस भाँति जब प्रश्न किया। तब सूर्य समान ही तेजस्वी, मुकुट झुका उस नमन किया ।।
और प्रभु के चरणों में, वह अपनी कथा कहने लगा। श्री हरि के सम्मुख फिर, उसने अपना वृतान्त कहा ।।

राजा नृग बोले,
महाराज इक्ष्वाकु का पुत्र, राजा नृग हूँ मैं प्रभो। दानी जन की जब कभी, कहीं पे भी प्रभु गणना हो ।।
मेरे नाम की ध्वनि भी तब, निश्चित तव कर्ण पड़ी होगी। समस्त प्राणियों की इक इक, वृत्ति के आप ही हैं साक्षी ।।
भूत भविष्य भी आपका, अखण्ड ध्यान न तोड़ सकें। हे प्रभु कभी आपसे छिपा नहीं कुछ रह सके ।।
फिर भी आपकी आज्ञा का, पालन मैं प्रभु करता हूँ। अपनी सारी पूर्वकथा, आपके चरण में धरता हूँ ।।

नभ में जितने भी तारे हैं, या पृथ्वी पर धूलि कण भी। वर्षा की धारा जितनी गिरें, उतनी ही धेनु दान थीं दी ।।
थीं दुधारू वह सब गौएं, सुन्दर सुलक्षणा कपिला थीं। नवयुवा और सीधी थीं, न्याय युक्त धन से पाईं ।।
सबके बछड़े भी संग थे, सींगों पर थी स्वर्ण मढ़ी। खुर पे भी थी चाँदी चढ़ी, थीं वस्त्राभूषण हार सजीं ।।

सद्गुणी और सुशील जो थे, जिनके परिवार पे कष्ट पड़े। अदम्भी तपस्वी वेदवित्, सच्चरित् विद्या दानी थे ।।

अस युवा श्रेष्ठ ब्राह्मण कुमारों को, धेनु दान मैं करता था। वस्त्र और आभूषण से, धेनु अलंकृत करता था।।

इस विध बहुत सी गौएँ और, पृथ्वी सोना घर अश्व दिये। दासियों सहित दीं कन्यायें, हाथी आदि भी दान दिये।।
तिल के पर्वत और चाँदी बहुत, शैय्या वस्त्र और रत्न दिये। गृह सामग्री रथ आदि, भी मैंने बहुत दान दिये।।
अनेकों यज्ञ किये मैंने, कूप बाँवली बनवाये। इस विधि दान पुण्य में, थे दिन मेरे बीते जा रहे।।

इक दिन महातपी ब्राह्मण इक, जो दान ग्रहण न करता था। उसकी गाय बिछुड़ कर, मेरी धेनुन् में मिली जा।।
अनभिज्ञ था मैं इस बात से, नहीं मुझको कुछ भी ज्ञात हुआ। अनजाने में उस गाय को, किसी अन्य द्विज को दे दिया।।

वह ब्राह्मण जब गाय को, अपने संग ले जाने लगे। वास्तविक स्वामी ने आकर कहा, है मेरी ही गाय यह।।
जिसको दान में थी मिली, उसने कहा यह है मेरी। क्योंकि राजा नृग ने यह, दान में थी यह मुझको दी।।

वह दोनों ब्राह्मण लड़ते हुए, मेरे पास ही आ गये। अपनी अपनी बात वह, थे सत्य सिद्ध करना चाहते।।
इक ने कहा है अभी अभी, यह गाय आपने मुझको दी। दूजे ने कहा यदि सत्य है यह, तो गाय मेरी तुमने हरी।।
दोनों द्विजों की बात सुन, चित्त भ्रमित मेरा हुआ। अनुनय विनय की दोनों से, मैं था धर्म संकट में पड़ा।।
कहा प्रतिरूप में आपको, उत्तम धेनु दूँ एक लाख। कृपा करी के यह गाय, मुझको ही लौटा दें आप।।
सेवक हूँ मैं आपका, बिन जाने यह अपराध हुआ। इस घोर कष्ट और नरक में, गिरने से आप ही लें बचा।।

हे राजन् इसके बदले में, नहीं अन्य मैं कुछ भी लूँगा। गाय का स्वामी यह कहकर, वह स्थान छोड़कर चला गया।।।
दूजे ने कहा यदि एक लाख से, दस सहस्र भी अधिक दिया। तो भी नहीं लूँगा उन्हें, यह कही के दूजा भी गया।।

समय के आने पर प्रभु, जब आयु मेरी क्षीण हुई। दूत आये यमराज के, और ले गए मुझे यमपुरी।।
वहाँ धर्मराज ने पूछा मुझे, कहो राजन् है तेरी इच्छा क्या? पाप का फल चाहो पहले, या चाहो पुण्य का भोगना?
तुम्हारे धर्म दान के कारण तुम, तेजस्वी लोक ऐसा पाओ। जिसके तेज ऐश्वर्य की, कहीं पे भी सीमा न हो।।

हे जगदीश्वर यमराज से, तब मैंने इस विधि कहा। पहले अपने पाप का ही, फल हूँ भोगना मैं चाहता।।
तत्क्षण ही यमराज कहा, पतित अब तुम हो जाओ। और गिरते ही देखा मैंने, गिरगिट का रूप मेरा भया।।

ब्राह्मणसेवक उदार और दानी था आपका भक्त मैं। उत्कट अभिलाषा थी मेरी, कि आपके दर्शन पाऊँ मैं।।
इस विधि आपकी कृपा बनी, नहीं नष्ट हुई मेरी पूर्व स्मृति। हे प्रभु आप परमात्म हैं, थी आपकी बनी कृपा दृष्टि।।
शुद्धात्म महायोगी भी, अभेद हृदय से ध्यान धरें। इन्द्रिय अतीत हैं आप प्रभु, नयनों सम्मुख मेरे कैसे प्रकटे?
मैं तो अनेकों भाँति के, व्यसनों में था फंसा हुआ। दु:खदायी कर्मों में फंसकर, मैं तो था अन्धा हो रहा।।
आपका दर्शन तो तब हो, मुक्ति का समय है जब आता। संसार चक्र से छुटने का, सौभाग्य उदय जब हो जाता।।

हे देवों के परम आराध्य, हे पुरुषोत्तम हे गोविन्द। आप ही हैं स्वामी सबके, व्यक्ताव्यक्त जगत् या जीव।।
अविनाशी आप ही हैं अच्युत, अति पावन कीर्ति आपकी। अन्तर्यामी नारायण हे, स्वामी सब वृत्ति इन्द्रिय के भी।।

हे प्रभु हे कृष्ण हूँ अब, देव लोक में जा रहा। आप ही कृपा करें मुझपें, दें आप ही अब मुझको आज्ञा।।

हे करुणापूर्ण दयानिधे, इक बिनती करूँ मैं आपसे। चाहे कहीं भी क्यों न रहूँ, मेरे चित्त चरण में टिका रहे।।

सब कारण और कार्यों में, हे प्रभु आप हैं विद्यमान्। आप स्वयं ही ब्रह्म हैं, अनन्त आपकी शक्ति महान्।।
नमन करूँ मैं आपको, हे सच्चिदानन्द स्वरूप प्रभु। अन्तर्यामी श्री कृष्ण हे, ईश्वर सब योगिन् के विभु।।
हे वासुदेव स्वीकार करें, आप प्रभु मेरा नमस्कार। आपके श्री चरणों में हो, बार बार मेरा नमस्कार।।

शुकदेव बोले,
इस भाँति राजा नृग ने, श्री हरि की परिक्रमा करी। अपने किरीट से श्री हरि के, चरणों की उस स्पर्श करी।।
फिर उनसे आज्ञा लेकर, सबके देखते देखते ही। उसने फिर प्रस्थान किया, श्रेष्ठ विमान पे चढ़ करी।।
तत्पश्चात् ब्राह्मण प्रेमी, धर्माधार श्री कृष्ण ने। क्षत्रियों को शिक्षा देने को, निज बान्धवों से यह वचन कहे।।
भगवान बोले,
अग्नि सम जो तेजस्वी हों, वह भी ऐसा न कर सकें। ब्राह्मण जन का तनिक सा, भी धन वह न हर सकें।।
फिर दम्भी अभिमानी जो, मिथ्या निज को स्वामी मानें। वह राजा तो इस चोरी को, कैसे कभी पचा पायें?

हलाहल विष को भी मैं तो, विष नहीं कभी मानता। क्योंकि चिकित्सा राही तो, उपचार है उसका हो सकता।।
वास्तव में ब्राह्मण का धन, ही है जग में विष समान। पृथ्वी की औषध कोई भी, नहीं उपचार में सक्षम जान।।

हलाहल केवल उपभोक्ता, के प्राणों का हरण करे। जल के द्वारा अग्नि का, शमन भी सम्भव हो सके।।
किन्तु द्विज धन की अरणि, जो अग्नि उत्पन्न करे। सारे कुल को वह अग्न, समूल नष्ट ही कर डाले।।

यदि उसकी सम्मत्ति बिना, ब्राह्मण का धन भोगा जाये। तब भोक्ता और उसके पुत्र पौत्र, सबको ही नष्ट वह कर जाये।।
बलपूर्वक हठ से यदि, उसका कोई उपभोग करे। पूर्व और आगामी दस दस, पीढ़ियां उसकी नष्ट भएं।।

राज्य लक्ष्मी मद से अन्धे, भूपति जो अति मेढ़ रहें। ब्राह्मण धन को छीनकर, जो अपने पास रखना चाहें।।
वह जान बूझकर अपने लिये, हैं नरक का मार्ग बना रहे। अन्ध पतन के गहन कूप में, गिरेंगे यह न बच सकें।।

उदार हृदयी विशाल कुटुम्बी, द्विज की वृत्ति गर छीने कोई। उसके अश्रुकण से जो धूलि, इस भूमि की है भीगती।।
ब्राह्मण के धनहारी उस, राजा और उसके वंशजों को। उतने ही वर्ष कुम्भीपाक, नरक में दु:ख उपभोग हो।।
अपनी ही दत्त या दूजे की, दी ब्राह्मण जीविका जो हरे। साठ हजार वर्ष पर्यन्त, विष्ठा का कीड़ा बन वह रहे।।

इसलिये यही चाहूँ मैं, नहीं भूल से उनका धन आये। मेरे कोश में ब्राह्मण धन का, कण भी प्रवेश कभी न पाये।।
हर लेना तो दूर रहा, जो उसकी इच्छा भी करे। इस जन्म में तो वह अल्पायु, शत्रु पराजित भी भए।।
इस जन्म में राज्य से भ्रष्ट हो, आगामी भी उसका बिगड़े। मृत्यु पश्चात् दूजों के लिये, वह सर्प रूप ही धर आये।।

इसलिये हे मेरे आत्मीय जन, एक बात पर ध्यान धरो। गर ब्राह्मण से अपराध भी हो, तो भी द्वेष तुम नहीं करो।।
वह चाहे तुमको मार भी दे, गाली दे या फिर शाप भी दे। नमस्कार ही करो उसे, है नमन के ही योग्य वह।।

मैं सावधान हो तीनों समय, ब्राह्मणों को प्रणाम करूँ। तुम भी वैसा ही करो, यही सम्मत्ति तुमको दूँ।।

मेरी इस आज्ञा को, जो भी नहीं कोई मानेगा। क्षमा नहीं उसे करूँगा मैं, दण्ड का भागी वह होगा।।

बिन जाने भी यदि कभी, ब्राह्मण धन का अपहरण हो। अधोपतन के कूप में, डाले वह अपहर्ता को।।
ज्यों ब्राह्मण की गाय तो, अनजाने में थी हरी गई। पर राजा नृग को उसने, कैसी नरक थी दे डाली।।

शुकदेव बोले,
त्रिलोकी पावनकर भगवान, कृष्ण ने यह उपदेश दिया। द्वारिका वासिन् को यह कही, निज महल में उन प्रवेश किया।।

१३) बलरामका व्रज-गमन

शुकदेव बोले,
श्री बलराम के मन राजन्, अति तीव्र उत्कण्ठा भरी। व्रज के बन्धु बान्धव और, नन्दबाबा से मिलने की।।
रथ पे सवार होकर के उन्होने, द्वारिका से प्रस्थान किये। स्वजन को मिलने के लिये, नन्द बाबा के व्रज को चले।।

व्रज के गोप और गोपियां भी, उत्कण्ठित थे मिलने को। अपने मध्य उन्हें पाकर, प्रेम से कण्ठ लगा लियो।।
नन्दबाबा और मैय्या को, बलराम ने प्रणाम किया। आशीर्वाद दे उन्होंने भी, अभिनन्दन उनका किया।।

हे बलभद्र निज अनुज कृष्ण, संग सर्वदा रक्षा करो। हम जानें पुत्र का रूप धरे, तुम दोनों जगदीश्वर हो।।
यह कही गोद में उन्हें लिया, प्रेमाश्रु से अभिषेक किया। वृद्ध गोपों को तत्पश्चात्, श्री बलराम ने नमन किया।।
उनसे छोटे थे जो गोप, उन्होने प्रणाम किया राम को। सम्बन्धानुकूल समवयस्, मिले बलराम फिर सबको।।

ग्वाल बालों के पास जा, किसीसे हाथ मिला लिया। किसीसे मीठी बातें करीं, किसी को गले लगा लिया।।
हास परिहास किसी से किया, श्रान्ति जब सब दूर हुई। सुख से जब वह बैठ गए, पास आए गोपाल सभी।।
कमल नयन श्री कृष्ण ही, इन सबके इक प्रियतम थे। भोग स्वर्ग और मोक्ष सब, थे कृष्ण के हेतु छोड़ दिये।।
श्री बलराम ने उनकी और, बन्धु बान्धव की कुशल पूछी। तो गद्गद् हुई वाणी से, पुन: प्रश्न ग्वालों ने करी।।

गोप बोले,
वसुदेव आदि हमारे बन्धु, बलराम कहो सकुशल हैं न? पत्नी पुत्र सब कुल के संग, तुम भी तो सकुशल हो न?
अब तो परिवार भी आपका, प्रभु कृपा से विस्तृत ही होगा। अपने कुल में रहते हुए, कभी हमरी याद भी आये क्या?

अति सौभाग्य की बात है यह, कँस को तो है नष्ट किया। सुहृद् सम्बन्धी आपने, बड़े कष्ट से लिये बचा।।
और भी बहुत से शत्रुन् को, है मार दिया या जीत लिया। अति सुरक्षित दुर्ग में, अब अपना निवास किया।।

शुकदेव बोले,
श्री बलराम के दर्शन पा, प्रेममयी उस चितवन से। व्रज की गोपियों के चित्त तो, कमल समान ही खिल उठे।।
हँसकर श्री बलराम से, फिर वह यूँ कहने लगीं। कहें प्राण बल्लभ श्री, कृष्ण तो ठीक से हैं सही?

क्या अपने भाई बन्धु और, मात पिता उन्हें याद आयें? क्या निज माता के दर्शन को, कभी यहाँ वह आ पायें?
महाबाहु श्री कृष्ण कभी, क्या हम सबको भी याद करें? हमारा प्रेम सेवा हमरी, क्या विस्मृत तो नहीं हो गये?

आप तो जानें स्वजन और, सम्बन्धी छोड़ने अति कठिन। श्री कृष्ण हेतु माता पिता, भाई बन्धु सब त्यागे हम।।
पति पुत्र और भगिनी भी, पुत्री तक को भी छोड़ दिया। किन्तु बिन पलक के झपके ही, उन्होने हमसे नाता तोड़ा।।

हमारे सौहार्द प्रेम का, बन्धन उन्होंने काट दिया। बहुत दूर परदेस को, ही उन्होने प्रस्थान किया।।
गर चाहतीं तो हम प्रेम के, बन्धन में उन्हें बान्धतीं। किन्तु मधुर मुसकान से, जब कहते हम हैं तुम्हारे ऋणी।।
तुम्हारे उपकार का बदला तो, हम कभी भी नहीं चुका सकें। तब को नारी कहीं हो ऐसी, जो उनपर न विश्वास करे?

इक गोपी कहने लगी, भला हम तो ठहरीं गंवार ही। भोली भाली ग्वालिनें, उनकी मीठी बातों से ठगी।।
किन्तु नगर की नारियां तो, अति चतुर ही हैं होती। चँचल कृतघ्न कृष्ण की, बातों में नहीं वह आ सकतीं।।
फिर दूजी गोपी बोली, सखी कृष्ण तो हैं अद्वितीय ही। उनकी मीठी बातों की, तो तुलना नहीं कहीं हो सकती।।
मनोहरिणी मुसकान और, प्रेममयी चितवन देखी। नगर नारियाँ भी प्रेम में, आकुल तो होती होंगी।।
उनकी बातों में आकर, तन मन होंगी निज वारती। मनमोहन के सामने, चित्त कौन है वश में रख सकती?

तीसरी गोपी ने कहा, इन सब बातों से हमको क्या? गर समय ही है बिताना तुम्हें, तो दूजी बात अब करो जरा।।
उस निष्ठुर का समय यदि, हमारे बिना है बीतता। दु:ख से भरा ही चाहे सही, हमरा भी समय कट जायेगा।।

भाव नयन के सामने, अब उनके कृष्ण ही आ गये। प्रेम भरी बातें हंसी, चारु चितवन सब मन में बसे।।
उनकी अनुठी चाल और, प्रेमालिंगन याद आये। मधुर स्मृति में तन्मय हो, आंखों में आंसू भर आये।।

हे राजन् बलराम तो थे, अति निपुण व्यवहार में। अनुनय विनय करने में, नाना भाँति के कार्य में।।
श्री कृष्ण की हृदय स्पर्शी, और मनभावन सन्देश कही। व्यथित गोपियों के हृदय, को सान्त्वना उससे मिली।।

चैत्र और वैशाख के दो, मधुमास वहीं पे बिता दिये। गोपिन् संग रहकर रात्रिन् में, वहाँ प्रेम का वर्धन थे करते।।
कुमुदिनी की सुगन्ध लिये, थी मन्द समीर वहाँ बहती। पूर्ण चन्द्र की चाँदनी, थी यमुना तट उज्ज्वल करती।।
वन उपवन भी खिल जाते, बलराम का था विहार वहाँ। हो भी क्यों न भगवान का, गोपिन् संग था विहार वहाँ।।
वरुण देव ने निज पुत्री, वारुणी को वहाँ भेज दिया। वृक्ष की कोटर से निकली, सारा वन सुरभित किया।।

मधुधारा की सुगन्धि वह, वायु पे चढ़ी आ पहुँची। मानो प्रिय बलराम को, वायु ने हो उपहार यह दी।।
उस गन्ध से आकृष्ट हो, बलराम वहाँ पर पहुँच गए। गोपिन् के भी संग संग, उसका पान किये बलराम ने।।

बलराम जी को घेरे हुए, गोपियां गान थीं कर रहीं। उनके पावन चरितों का, वह बखान थीं कर रहीं।।
श्री राम भी मतवाले से होकर, थे उस वन में विचर रहे। आनन्द मद से नयन भी, थे मतवाले उनके हुए।।

पुष्प हार था कण्ठ में, उनके शोभा पा रहा। वैजयन्ती माल धारण करके, आनन्दोन्मत्त उनका मन था।।
एक कान में तो उनके, कुण्डल था लटका हुआ। मुखारविन्द पर मधुर सी, मुसकान की थी अनुपम छटा।।
उस पर स्वेद की बून्दें थीं, हिम कण समान ही दीख रहीं। श्री बलराम जी की कान्ति, उस पर थी अति न्यारी बनी।।

श्री बलराम के मन में फिर, जल क्रीड़ा की चाह उठी। इस हेतु से यमुना को, ही उन्होंने पुकार करी।।

किन्तु यमुना जी ने समझा, यह तो मतवाले हो रहे। उनकी बात ही न मानी, उल्लंघन उनकी आज्ञा के किये।।
अति क्रुद्ध हो बलराम ने, हल नोक से यमुना को खेंच लिया। और क्रोध भरे शब्दों में, यमुना को यूँ फटकार दिया।।

बलराम बोले,
मेरे बुलाने पर भी तूने, उल्लंघन मम आज्ञा का किया। यहां न आकर ऐ यमुने, तिरस्कार तूने मेरा किया।।
तेरे स्वेच्छाचार का अब, फल मैं तुझे चखाता हूँ। अपने हल की नोक से अब, तेरे शतश: टुकड़े करता हूँ।।

शुकदेव बोले,
जब बलराम ने इस विधि, यमुना को फटकार दिया। चकित और भयभीत हुई, श्री राम चरण में गिरी वह जा।।
प्रार्थना उनसे करने लगी, लोकाभिराम बलराम हे। आपका अतुल पराक्रम मैं, भूल गई थी जगत् पते।।
अब मैं जानी महाबाहो, तव अंशमात्र श्री शेष जी। सब जग को धारण करें, और सीस धरें यह धरती भी।।

परमैश्वर्य शाली हैं प्रभु, मैं वास्तविक रूप न जान सकी। इस कारण ही हे प्रभु, मुझसे यह अपराध हुई।।
हे सर्वरूप हे भक्त वच्छल, मैं तो आपकी शरण हूँ। अपराध मेरे अब क्षमा करें, मुझे मुक्त करें शरणागत हूँ।।

यमुना जी की प्रार्थना सुन, बलराम जी ने उन्हें क्षमा किया। फिर गोपिन् संग की उन्होने, गजराज समान ही जल क्रीड़ा।।
जल विहार करके जब वह, यमुना जी से बाहर आये। लक्ष्मी ने भेंट किये नीलाम्बर, भूषण और स्वर्ण के हार दिये।।

नीलाम्बर धारण किया, स्वर्ण हार गले में डाले। अंग राग लगाया उन, आभूषण फिर सब पहर लिये।।
श्री बलराम विभूषित हो, शोभित इस विधि होने लगे। मानो इन्द्र का श्वेत गज, ऐरावत ही वह भए।।

हे राजन् यमुना भी अब, उसी मार्ग से बहती है। बलराम ने हल से जो खेंचा, उस मार्ग में सीमित रहती है।।
मानो अनन्त शक्ति श्री, बलराम का यश हो गा रही। अपनी लहरों की ध्वनि से ही, उनकी महिमा हो सुना रही।।

व्रजनिवासिनी गोपिकागण, का माधुर्य ही अनुपम था। श्री बलराम का चित्त तो, ऐसा विमुग्ध उनसे हुआ।।
समय का ध्यान ही नहीं रहा, बहुत सी रातें बीत गईं। पर उनको तो ऐसा लगा, मानो इक रात्री ही हो गई।।
इस विधि बलराम जी, व्रज में विहार करते रहे। वसन्त ऋतु के दो मास, वह तो व्रज में ही रहे।।

१४) पौण्ड्रक वध और काशीपुरी का दहन

शुकदेव बोले,
श्री बलराम जी नन्दबाबा, के व्रज में थे जब गए। करुष राज पौण्ड्रक ने तब, श्री कृष्ण को यह सन्देश दिए।।
जान लो तुम वास्तव में, मैं ही हूँ वासुदेव भगवान। मूर्ख थे बहकाते उसे, आप ही हैं वासुदेव भगवान्।।
जगत् की रक्षा हेतु ही, पृथ्वी पे है अवतार लिया। फल स्वरूप उस मूर्ख ने, भगवान ही निज को मान लिया।।

ज्यों क्रीड़ा रत बाल सब, खेल में इक को राजा कहें। और वह बालक खेल में, राजावत् ही व्यवहार करे।।
त्यों ही अज्ञानी मन्दमति, पौण्ड्रक ने यह काम किया। प्रभु का रहस्य न जाने था, दूत को द्वारिका भेज दिया।।
पौण्ड्रक का भेजा वह दूत, राज्य सभा में जा पहुँचा। श्री कृष्ण के सम्मुख जा, निज राजा का संदेस कहा।।

हूँ एकमात्र मैं वासुदेव, नहीं दूजा कोई हो सके। है मैंने ही अवतार लिया, जीवों पे कृपा करने के लिये।।
तूने तो मिथ्या में ही, निज नाम है वासुदेव धरा। अब तो तुम यह छोड़ दो, मिथ्या जो आचरण तेरा।।

अरे यदुवंशी मूर्खतावश, चिन्ह जो धारण तूने किये। वास्तव में तो यह सारे, चिन्ह ही जानो हैं मेरे।।
यदि भला चाहो अपना, इन्हें छोड़ शरण मेरी आ जाओ। गर स्वीकार तुम्हें यह न हो, तो आओ मुझसे युद्ध करो।।
मन्दमति उस पौण्ड्रक की, बहकी बहकी बातें सुनकर। सभासद और उग्रसेन, हँसे खूब था ऊँचा स्वर।।

जब हँसना बन्द हुआ, तब श्री कृष्ण ने उसे कहा। हे दूत अपने राजा से, जाकर यह तुम कह देना।।
चक्रादि यह अपने सब चिन्ह, ऐ मूढ़ न मैं कभी छोड़ूँगा। आघात करूँगा तुमपर मैं, तुम्हारे बन्धुन् पर इन्हें छोड़ूँगा।।

जिनके बहकाने से मूर्ख, है इस विध तू बहक रहा। उस समय ऐ मूर्ख तू, अपना यह मुख छिपायेगा।।
औंधे मुंह गिरेगा तू, ऐसी तू ठोकर खायेगा। चील गीध बटेर आदि, पक्षिन् से घिरा सो जायेगा।।
शरणदाता निज को माने, उन श्वान की शरण गहेगा तू। तेरे माँस नोच कर जो खांए, उनकी ही चरण पड़ेगा तू।।

तिरस्कार से परिपूर्ण, भगवान का यह संवाद लिये। पौण्ड्र के दूत ने लौट के, स्वामी से जा यह वचन कहे।।
इस ओर श्री कृष्ण भी, अपने रथ पे सवार हुए। काशी की पावन नगरी पर, उन्होने फिर आक्रमण किये।।
करुष देश का राजा भी, उन दिनों काशी में था। निज मित्र काशीराज के, पास ही उसका निवास था।।

श्री कृष्ण के आक्रमण का, समाचार जब उसे मिला। ले दो अक्षौणी सेना संग, पौण्ड्रक नगर बाहर निकला।।
काशी का राजा भी जो, उस पल पौण्ड्रक का मित्र था। पौण्ड्रक की सहायता को, उसके पीछे ही वह आया।।
तीन अक्षौणी सेना भी, उस राजा के संग थी। श्री कृष्ण ने भी पौण्ड्रक की, यह सारी सेना देखी।।

पौण्ड्रक ने भी तलवार गदा, और शंख चक्र धारण थे किये। शार्ङ्ग धनुष और श्री वत्स, के चिन्ह भी उसपे थे।।
वक्ष:स्थल पर इक कृत्रिम, कौस्तुभ मणि थी पड़ी हुई। और कण्ठ में वनमाला, भी थी उसके लटक रही।।
तन पे उसके पीताम्बर था, रथ पे गरुड़ चिन्ह की ध्वजा। अनमोल मुकुट था सीस पे, कानों कुण्डल रहे जगमगा।।
सारा ही वेश यह कृत्रिम था, ज्यों अभिनेता हो मँच पे। अपना सा वेष उसका देखी, प्रभु खिलखिला के हँसने लगे।।

अब शत्रु ने श्री कृष्ण पे, वार निज आरम्भ किये। त्रिशूल गदा मुद्गर शक्ति, ऋष्टि प्रास तोमर फेंके।।
तलवार पट्टिश और बाण, से उनपर प्रहार किया। किन्तु प्रलय अग्न जैसे, सब जीवों को ही दे जला।।
उसी विधि श्री कृष्ण ने, गदा चक्र बाण प्रहार किया। तलवार आदि अस्त्र-शस्त्र, का भी उन्होने वार किया।।
पौण्ड्रक और काशीराज के, हाथी अश्व और रथ जो थे। और पैदल चतुरंगी सेना, तहस नहस सब कर दिये।।

रथ घोड़े हाथी मनुज, गधे और जो ऊंट थे। प्रभु के चक्र से खण्डित हो, इधर उधर वह थे गिरे।।
ऐसा आभास था हो रहा, रणभूमि बनी ज्यों क्रीड़ा स्थली। भूतनाथ श्री शंकर की, अति भयावह वह नगरी।।
उसे देख देख के शूरवीर, थे उत्साहित हो रहे। मानो नव वार ही करने के, संकेत थे उनको मिल रहे।।

अब भगवान श्री कृष्ण, पौण्ड्रक से यूं कहने लगे। अरे पौण्ड्रक निज दूत से, थे सन्देश तूने भेजे।।
निज चिन्ह और शस्त्रास्त्र, सारे ही मैं छोड़ दूँ। सो सावधान अब उन सबको, तुझपर ही मैं छोड़े हूँ।।

मिथ्या में ही दुष्ट तूने, मेरा नाम था धर लिया। अरे मूर्ख उन सब नामों को, तुमसे अब मुक्त मैं कर दूंगा।।
रही तेरी शरण में आने की, तूने जो मुझे बात कही। यदि युद्ध न कर सका तुमसे, तो तेरी शरण पड़ूँगा ही।।

श्री कृष्ण ने इस भाँति, पौण्ड्रक का तिरस्कार किया। अपने तीक्ष्ण बाणों से, रथ भी उसका तोड़ दिया।।
अपने चक्र से सीस उसका, वैसे ही उन्होने काट दिया। जैसे इन्द्र के वज्र ने, पर्वत श्रृंगों को था काटा।।

इसी विधि निज बाणों से, काटा काशी नरेश सीस। धड़ ऊपर से उड़ाकर के, काशीपुर में गिराया सीस।।
जैसे वायु कमल के पुष्प को स्वत: उड़ा ही दें डाली से उसे उतार कर, जाई भूमि पे धरे।।

निज वैरी पौण्ड्रक और उसके, सखा का प्रभू ने हनन किया। फिर राजधानी निज द्वारिका, की ओर उन्होंने मुख किया।।
सिद्ध गण उस समय, वा महिमा गान थे कर रहे। प्रभु की अमृतमयी कथा, का बखान थे कर रहे।।

पौण्ड्रक श्री हरि का राजन्, निरन्तन चिन्तन करता था। वैर भाव से ही सही, सदा उनको चित्त में धरता था।।
इस कारण उसका सारा, बन्धन स्वत: ही कट गया। मिथ्या वेश था प्रभु का धरा, सो हर पल सुमिरन् उन्हीं का था।।
इस कारण भगवान के, सारूप्य को ही उसने पाया। प्रभु से निरन्तर द्वेष का, फल सुखकर उसने पाया।।

राजमहल के द्वार पर, काशी में था इक मुख गिरा। कुण्डल मण्डित मुण्ड देख, लोगों के मन सन्देह भरा।।
कौन है यह किसका सिर है, आपस में बातें करने लगे। जब उनको मालूम हुआ, काशी नरेश का सीस है यह।।
तब रानियाँ और कुमार सब, राजकुल के लोग सभी। नागरिक भी रो रोकर, विलाप करने लगे सभी।।
हा नाथ हा राजन् हे, हाय हाय यह क्या हुआ? काशीपुर का तो जानो, सर्वनाश ही हो गया।।

काशी नरेश के पुत्र का, नाम था सुदक्षिण ही। विधिवत् ही निज पिता की, अन्त्येष्टि उसने करी।।
मन ही मन निश्चय किया, पितृघाती को मारेगा। इस विधि अपने सिर से, पिता का ऋण वह उतारेगा।।
कुलाचार्य और पुरोहित, उसने अपने संग लिये। एकाग्रचिति हो श्री शंकर, की आराधना में वह जुटे।।

काशी नगर में उनकी, एकाग्रचित्त आराधना से। प्रसन्न हो श्री महादेव, वर देने को प्रकट हुए।।
सुदक्षिण ने अपना अभीष्ट, एको वर उनसे मांगा। निज पितृघाती के वध का, उपाय जानना था चाहता।।

श्री शंकर ने उसे कहा, ब्राह्मणों संग मिल यज्ञ करो। ऋत्विभूत दक्षिणाग्न की, अभिचार विधि से आराधना हो।।
प्रमथ गण के सहित वह, अग्न प्रकट हो जायेगी। ब्राह्मणों के अभक्त पे, प्रभाव निज दिखलायेगी।।
यदि विधि विधान पालन किया, संकल्प सिद्ध करेगी तेरा। प्रभु शंकर की आज्ञा पाकर, अनुष्ठान नियम सब ग्रहण किया।।
श्री कृष्ण के वध के लिये, ही था उसने यज्ञ किया। उनको मारने के लिये, पुरश्चरन वह करने लगा।।

अभिचार जब पूर्ण हुआ, अग्नि मूर्तिमान् हुआ। यज्ञकुण्ड से अति भीषण, रूप धरी वह प्रकट हुआ।।
तपे हुए ताम्बे समान थे, लाल केश और दाढ़ी मूंछ। आंखों से लाल अंगोरों के, स्रोत रहे थे जैसे फूट।।

उग्र दंष्ट्र वक्र भृकुटी, ने था मुख को क्रूर किया। निज जिह्वा से मुख के दोनों, कोने था वह चाट रहा।।
नग्न शरीर के हाथ में, था त्रिशूल पकड़ा हुआ। थीं अग्नि की लपटें निकल रहीं, उसे बार बार था घुमा रहा।।

ताड़ वृक्ष समान ही, बड़ी बड़ी उसकी टांगें थीं। उसके वेग से धरती भी, थी सारी ही काँप रही।।
उसकी ज्वाला से दसों दिशा, मानो विदग्ध थीं हो रहीं। द्वारिका ओर वह दौड़ चला, पहुँचा तत्क्षण द्वारिका पुरी।।
अनेकों भूत गण साथ थे, अभिचार अग्न निकट देखी। द्वारिका वासी त्यों ही डरे, ज्यों दावानल से हरिण कोई।।

भयभीत होई के वे सब ही, श्री हरि पे दौड़े आये। भरी सभा में श्री हरि तो, चौसर का खेल थे खेल रहे।।
प्रभु पे जा उन लोगों ने, अति आर्त हो प्रार्थना की। हे त्रिलोकी के स्वामी, अब रक्षा करें आप ही।।
द्वारिका पुरी इस अग्नि में, कहीं भस्म न हो जाये। आपको छोड़ के अन्य कोई, इससे बचा अब न पाये।।

शरणागत वत्सल प्रभु ने, देखा स्वजन भयभीत हुए। विकलता मन में भरे, हैं प्रार्थना हमसे कर रहे।।
तब श्री हरि ने हँसकर के, आश्वासन उन सबको दिया। नहीं होना भयभीत तुम, तव रक्षा को तत्पर हूँ सदा।।

हे राजन् श्री हरि तो, बाहर भीतर की सब जानें। काशी से चली माहेश्वरी, कृत्या को भी वह पहचानें।।
उसके प्रतिकार के लिये, चक्र सुदर्शन को कहा। उस पल वह श्री चक्र भी, निकट विराजमान् था।।

श्री मुकुन्द का प्रियतर अस्त्र, है यह श्री सुदर्शन चक्र। कोटि सूर्य सम तेजस्वी, प्रलयाग्नि सम प्रज्वलन्कर।।
आकाश दिशायें अन्तरिक्ष, उसके तेज से चमक उठे। उस अभिचार की अग्नि के, पल भर में उसने शमन किये।।

श्री कृष्ण चक्र की शक्ति से, कृत्या का मुख विकृत हुआ। उस अग्नि का तेज भी, समूल नष्ट ही हो गया।।
शक्ति थी कुण्ठित हुई, वह लौट के काशी पहुँची जा। ऋत्विज आचार्यों के सहित, सुदक्षिण को भी भस्म किया।।
इस प्रकार अभिचार ने, उसका ही विनाश किया। जिसको था पैदा किया, वही नाश का कारण बन गया।।

कृत्या के पीछे पीछे, सुदर्शन चक्र भी आ पहुँचा। अति विशाल नगरी थी वह, काशी में ही जा पहुँचा।।
थीं बड़ी बात अटारियाँ, सभाभवन बाजार बने। नगरद्वार द्वारों के शिखर, चारदीवारी से थे घिरे।।
खजाने हाथी अश्व रथ, अन्न के थे गोदाम भरे। भगवान के उस चक्र ने, भस्मीभूत सब कर दिये।।
परमानन्दमयी लीलाधर, श्री कृष्ण पास वह लौट आया। इस विधि सुदर्शन ने, अपना कार्य कर दिखलाया।।
पावन कीर्ति भगवान के इस, चरित का जो भी श्रवण करे। एकाग्रता से इसे सुनी, सब पापों से वह मुक्त भये।।

१५) बलराम द्वारा द्विविद वानर का वध

परीक्षित बोले,
हैं सर्वशक्तिमान् स्वयं, सृजन या प्रलय की सीमा परे। उनका गुण रूप लीला आदि, नहीं मन बुद्धि वाणी के विषय।।
उनकी तो हर लीला ही, है लोक मर्यादा से विलक्षण। उनके अलौकिक कर्मों के, श्रवण को है उत्सुक यह मन।।
शुकदेव बोले,
इक महावानर था राजन्, उसका नाम था द्विविद ही। भौमासुर का था सखा, सुग्रीव का था वह मन्त्री।।
मैन्द का था भ्राता वह, भौमासुर की मृत्यु हुई। जब उसने ऐसा जाना, कृष्ण के ही हाथों हुई।।
तब मित्रता निभाने को, राष्ट्र विप्लव किया आरम्भ। महानागर ग्राम खान बस्तियों, को वह करने लगा भस्म।।

कभी महापर्वत वह उखाड़, प्रान्तों को करता चकनाचूर। अनार्त देश में ही जाकर, करता वह ऐसे कर्म क्रूर।।

क्योंकि उसके मित्र के हन्ता, कृष्ण वहीं पर रहते थे। दस सहस्र हाथी के बल, उस इक वानर में थे भरे।।
कभी कभी वह दुष्ट तो जा, सागर में ही खड़ा होता। हाथों से जल को उछाल के, तट के सब नगर डुबो देता।।

ऋषि मुनियों के आश्रमों को, भी था वह दुष्ट उजाड़ता। सुन्दर लता बनस्पति सब, था तोड़ के ही वह रख देता।।
यज्ञ के अग्निकुण्ड में जा, मल मूत्र था वह करता। इसविधि उनकी अग्नि को, दूषित था वह कर जाता।।

भृंगी ज्यों अन्य कीट ले जा, अपनी बिल में ही बन्द करे। मदोन्मत्त वानर उस प्रदेश के, नर नारी कभी हर ले।।
उन्हें ले जा पर्वत की घाटी, और गुफा में डालता। बड़ी बड़ी चट्टानों से, फिर मुंह था उनका बन्द करता।।

देशवासियों का इस विध, तिरस्कार था वह करता। कुलीन स्त्रियों को भी वह, वानर था दूषित करता।।
इक दिन रैवतक पर्वत से, सुन्दर संगीत का स्वर सुना। उसे सुनी वह वानर भी, उस पर्वत पर जा पहुँचा।।

यदुश्रेष्ठ बलराम को, उसने वहाँ बैठे देखा। सुन्दर युवतियों ने उन्हें, चहुँ ओर से था घेरा।।
था इक इक अंग बलराम का, अति सुन्दर और दर्शनीय। वक्ष:स्थल पर लटकी हुई, थी कमल माल अति रमणीय।।

मधुपान करके बलराम, मधुर गीत थे गा रहे। आनन्दोन्माद से नेत्र भी, अति विह्वल हुए जा रहे।।
वहाँ पे श्री बलराम तो, थे अतीव शोभायमान्। ज्यों मदमत्त गजराज ही, वहाँ पे हो विराजमान्।।

दुष्ट वानर वृक्षों की, शाखाओं पर था चढ़ जाता। और अति वेग से वह, उनको था झकझोरता।।
कभी स्त्रियों के सम्मुख आ, किलकारी वह भरने लगता। स्वभाव से ही चँचल उसका चित्त, ऱ्हास परिहास किये जाता।।

वानर की यह ढिठाई देख, स्त्रियाँ वह हँसने लगीं। श्री बलराम के सामने ही, उस वानर ने अवहेलना की।।
कभी भौहें मटकाता वह, कभी अपनी गुदा दिखा देता। कभी गरज गरज कर घुड़कता, और वह उन्हें डरा देता।।

उसकी चेष्टा यह देखकर, बलश्रेष्ठ राम का क्रोध जगा। एक पाषाण का टुकड़ा ही, उस वानर पर फेंक दिया।।
किन्तु उस वार से द्विविद ने, अपने को बचा लिया। अवहेलना कर बलराम की, मधुकलश को उसने उठा लिया।।
मधुकलश को फोड दिया उसने, स्त्रियों के वस्त्र भी जीर्ण किये। फिर हँस हँस कर बलराम की, क्रोधाग्न को वह प्रज्वलित करे।।

था वह वानर मद में उन्मत्त, और महा बलवान था। इस विधि बलराम को जब, वह नीचा दिखाने लगा।।
उसकी ढिठाई देखी उन, अत्याचार भी देखा उसका। देशों की दुर्दशा जो की, उसपर भी विचार किया।।
उस शत्रु के हनन का, फिर उन्होने निश्चय किया। क्रोध से ही भरकर उन्होने, निज हल मूसल लिया उठा।।
बलवान द्विविद ने भी, इक हाथ से शाल वृक्ष तोड़ा। अति वेग से दौड़कर, बलराम के सर पर दे मारा।।
श्री बलराम तो पर्वतवत्, निश्चल ही खड़े रहे वहाँ। सिर पर गिरता हुआ वृक्ष, उन्होने अपने हाथ से थाम लिया।।
सुनन्द नाम के मूसल से, द्विविद पे फिर प्रहार किया। उस वार से मस्तक उसका, दो पाट ही हो गया।।
रक्त की धारा बह निकली, उसकी शोभा थी ऐसी बनी। ज्यों किसी महापर्वत से, गेरु की धारा बह हो रही।।
किन्तु द्विविद वानर ने तो, इसकी भी नहीं परवाह करी। कुपित होई के उखाड़ा वृक्ष, फिर पात भी उसकी झाड़ दी।।
महावेग से श्री बलराम पर, उस वृक्ष से वार किया। किन्तु उस वृक्ष को तो उन्होने, शतश: टुकड़ों में काट दिया।।

अति क्रुध हो दूजा वृक्ष, फिर उसने चला दिया। किन्तु श्री बलराम ने, उसको भी शतधा छिन्न किया।।

इस प्रकार वह वानर भी, युद्ध उनसे करता रहा। इक के बाद दूजे वृक्ष से, वह प्रकार करता रहा।।
इस भाँति लड़ते-लड़ते, सब ओर से वृक्ष ही दिये उखाड़। सारे का सारा ही वन, उस वानर ने दिया उजाड़।।

जब वृक्ष ही कोई नहीं रहे, तो क्रोध और भी भड़क गया। चिढ़कर श्री बलराम पर, चट्टाने वह बरसाने लगा।।
किन्तु अपने मूसल से, बलराम ने उनको चूर किया। जैसे खेल ही हो कोई, उनका वह पे चल रहा।।

तत्पश्चात् उस वानर ने, मुष्टिक अपने बान्ध लिये। ताड़ समान थी लम्बी भुजा, लपका वह बलराम पे।।
उनके निकट ही पहुँच कर, उसने फिर प्रहार किया। अपनी मुष्टि से उस, उनके वक्ष:थल पर वार किया।।

हल मूसल को बलराम ने, एक ओर फिर रख दिया। क्रुध हो दोनों हाथों से, हंसली पर प्रहार किया।।
इससे वह वानर रक्त का, वमन ही करने लगा। और फिर निष्प्राण हो, धरती पर वह जाय गिरा।।
ज्यों आन्धी के आने पर, जल में नैय्या डोला करे। त्यों ही उसके गिरने से, महा वृक्ष और पर्वत हिले।।

आकाश में सब देवों ने मिली, जय जय का फिर घोष किया। सिद्धों ने कहा नमो नम:, ऋषि मुनियों ने साधु कहा।।
सब मिली श्री बलराम पे, फूल ही बरसाने लगे। सब मिलीकर उनकी स्तुति, के गीत गाने लगे।।

इस द्विविद वानर ने तो, अति उपद्रव था किया। इस प्रकार श्री राम ने, इस दुष्ट को मार दिया।।
फिर श्री बलराम जी भी, द्वारिकापुरी को लौट आये। पुरजन और परिजन मिल, उनकी स्तुति सब गाने लगे।।

१६) साम्ब का दुर्योधन पुत्री लक्ष्मणा से विवाह

शुकदेव बोले,
जाम्बवती सुत साम्ब तो, अकेले ही थे महाबली। महावीरों पर सहज ही, विजय प्राप्त उनको होती।।
स्वयंवर से दुर्योधन की, कन्या को वह हर लाये। लक्ष्मणा के अपहरण पर, कौरव थे अति क्रुध हुए।।
कहा बालक यह बहुत ढीठ है, हमको है नीचा दिखलाया। वह तो चाहती न थी इसे, बलपूर्वक इसने हरण किया।।

इसे पकड़ कर बान्ध लें, यदुवंशी रुष्ट हों तो भी क्या? नहीं बिगाड़ कुछ कर सकें, हमरी ही कृपा से राज्य मिला।।
धन धान्य से परिपूर्ण, जिस पृथ्वी का उपभोग करें। हमलोगों की कृपा से ही, उन्होने धरती पाई है वे।।

इस पुत्र के बन्दी होने का, जब उन्हें समाचार मिले। सुनकर यहाँ वह आयें गर, करें दम्भ चूर्ण ही हम उनके।।
उन लोगों का दर्प सब, यूं ही शान्त हो जायेगा। ज्यों प्राणायाम द्वारा होएं, वशवर्ती संयमी की इन्द्रियाँ।।

कर्ण शल भूरिश्रवा, यज्ञकेतु: और दुर्योधन। ऐसा विचार कर उनपे गए, कुरुवंश के जो थे वृद्ध जन।।
उनसे अनुमति पाकर के, ऐसा उद्यम करने लगे। किसी विधि वह सब महारथी, मिलकर साम्ब को पकड़ लें।।
साम्ब ने देखा महावीर, मिलकर मम पीछा कर रहे। सुन्दर धनुष चढ़ाया उन, सिंह समान रण में डटे।।

कर्ण को आगे किया, फिर कौरव वीर भी आ गये। धनुष चढ़ाये साम्ब के, निकट ही आकर वह बोले।।
यहीं पे अब तू रह खड़ा, इस विधि थे उसे ललकार रहे। क्रोध में भरकर उसपर वह, बाणों की वर्षा करने लगे।।

महा ऐश्वर्यमयी कृष्ण के, थे पुत्र यदुनन्दन साम्ब। कौरवों के प्रहार से, कुपित हो गए उनपर साम्ब ।।
जैसे क्षुद्र हरिणों का, पराक्रम गर कहीं देखे सिंह। अति कुपित होकर उनपर, फिर प्रहार करता है सिंह ।।

अपने सुन्दर धनुष को, साम्ब ने फिर टंकार दिया। छ: रथों पे सवार थे जो, उन छ: वीरों पर वार किया ।।
छ: छ: बाण फिर उसने, इक साथ ही सब पर छोड़ दिये। चार चार वह बाण तो, चतु: अश्वों को जाय लगे ।।
इक इक लगा सारथी को, इक इक महावीरों को लगा। अद्भुत कौतुक यह देख करी, विपक्ष भी श्लाघा करने लगा ।।

तत्पश्चात् छ: महावीरों ने, एक साथ प्रहार किया। क्षत विक्षत रथ उसका कर, रथहीन उसे कर दिया ।।
चारों वीरों ने इक इक, बाण मारा चत: अश्वों पर। इक ने सारथी को मारा, इक साम्ब धनु: छिन्न दिया कर ।।

बहुत कठिनाई से इस विधि, कौरवों ने रथहीन किया। और कौरवों ने युद्ध में, साम्ब को फिर बान्ध लिया ।।
तत्पश्चात् उसको और, निज कन्या लक्ष्मणा को ले। हस्तिनापुर वह लौट आये, अपनी विजय बताते हुए ।।

हे राजन् नारद जी ने यह समाचार यदुओं को दिया। यह सुनकर उनका भी क्रोध, कौरवों के प्रति भड़का ।।
महाराजा उग्रसेन की, आज्ञा फिर उन्होंने ली। कौरवों पर आक्रमण की, तैय्यारी फिर होने लगी ।।

कलह प्रधान इस कलियुग के, सब पाप ताप बलराम हरें। यदु और कुरु वंशियों के, युद्ध को उचित वह न मानें ।।
पूरी थी तैय्यारी हुई, उन यदुवंशियों को शान्त किया। स्वयं वह रथ पे हुए सवार, और हस्तिनापुर प्रस्थान किया ।।
कुछ ब्राह्मण और यदुवृद्ध, भी साथ उन्हीं के हो लिये। बीचों बीच बलराम थे, ज्यों तारागण से शशि घिरे ।।

श्री बलराम जी हस्तिनापुर के, बाह्य उपवन में जा बैठे। क्या करना चाहते हैं कौरव, यह पता लगाना चाहते थे ।।
यह कार्य करने के लिये, उद्धव का ही चयन किया। धृतराष्ट्र के पास उसे, यह पता लगाने भेज दिया ।।

श्री उद्धव फिर कौरवों की, राज्यसभा में पधार गए। धृतराष्ट्र पितामह द्रोणाचार्य, बह्लीक दुर्योधन से मिले ।।
विधि पूर्वक करी वन्दना, और निवेदन उन्हें किया। श्री बलराम पधारे हैं, हस्तिनापुर में उन्हें कहा ।।

अपने परम हितैषी प्रिय, बलराम आगमन का जब सुना। कौरव हृदय आनन्द से, ही था परिपूर्ण हुआ ।।
उद्धव का फिर उन्होंने, विधिवत् ही सत्कार किया। मंगल सामग्री हाथ में ले, स्वागत हेतु कुल निकल पड़ा ।।

जैसी भी अवस्था थी, जैसा उनका सम्बन्ध था। तदनुकूल सब लोगों ने, श्री बलराम से मिलन किया ।।
सत्कार हेतु श्री बलराम के, गौ और अर्घ्य किया अर्पित। जो प्रभाव से परिचित थे, चरणों में हुए वह नतमस्तक ।।
उन लोगों ने परस्पर में, फिर कुशल क्षेम सबका पूछा। बन्धु बान्धव का कुशल जान, गम्भीर हो श्री बलराम ने कहा ।।
बलराम बोले,
सर्वसामर्थ राजाधिराज, श्री उग्रसेन ने आज्ञा दी। एकाग्रता से सुनो उसे, अविलम्ब हो उसका पालन भी ।।
उन्होंने कहा हम जाने हैं, अनेक वीर मिली काज किया। अधर्म से ही धर्मात्मा, साम्ब को है हरा दिया ।।
उसको बन्दी भी बना लिया, किन्तु हम सबने यह सहा। नहीं बन्धुजन में कलह हो, बनी रहे यह एकता ।।
अत: इस झगड़े को तुम, अब यहीं पे शान्त करो। नववधु के साथ ही साम्ब को अब तुम भेज दो ।।

शुकदेव बोले,
बलराम की वाणी तो राजन्, अति धीर गम्भीर थी। शूरता पौरुष से पूर्ण, उनकी शक्ति के अनुरूप थी।।
उनकी बातें सुनकरी, कुरूवंशी अति कुपित हुए। और क्रोध आवेग में, इस विधि वह कहने लगे।।

कौरव बोले,
अति आश्चर्य की बात है यह, नहीं काल चक्र कोई टाल सके। तभी तो चरण की पादुका, उस सीस पे है चढ़ना चाहे।।
जो श्रेष्ठ मुकुट से सुशोभित है, तुलना कैसे इनकी हो सके? विवाह का क्या सम्बन्ध किया, भूले से यदुवंशियों से।।
यह उठने बैठने संग लगे, भोजन भी इन्होंने संग किया। राज सिंहासन दे इन्हें, राजा भी हमने बना दिया।।
चँवर छत्र पंखा शंख, मुकुट सिंहासन शैय्या का। उपभोग यह हैं कर रहे, हमने ही करी उपेक्षा।।

बस अब बहुत है हो चुका, नहीं राजचिह्न कोई इनपे रहे। उचित ही है अब इनसे, यह सब छीन लिये जायें।।
ज्यों सांप को दूध पिलाना तो, दाता के लिये है घातक ही। वैसे प्रदत्त हमसे यह चिन्ह, ले हुए विरोधी यदुवंशी।।
यह अभिवृद्धि इनकी हुई, हमारे ही प्रसाद से। शोक है यह निर्लज्ज बनी, हमको ही आदेश दें।।

जैसे सिंह का ग्रास कोई, भेड़ कभी लें जा न सके। त्यों ही यदि भीष्म द्रोण, अर्जुनादि न छोड़ दें।।
तो देवराज श्री इन्द्र भी, उपभोग न कर पायें कभी। कौरवों की किसी वस्तु को, वह भी न हर पायें कभी।।

शुकदेव बोले,
भीष्मादि के बल सम्पद, कुलीनता से मदान्ध हुए। साधारण शिष्टाचार की, भी बात वह भूल गए।।
श्री बलराम को इस विधि, दुर्वचन उन्होने कहे। और यह सब कह कर के, हस्तिनापुर वह लौट गए।।

देखी अशिष्टता दुष्टता उनकी, और उनका दुर्भाषण भी सुना। श्री बलराम का श्री मुख भी, क्रोध के मारे लाल हुआ।।
उनके तेज को उस पल तो, सह पाना भी कठिन था। जोर से फिर बलराम हंसे, और उन्होने यह वचन कहा।।

बलराम बोले,
निज कुलीनता और पौरुष, धन बल का जो अभिमान करें। वह दुष्ट तो सत्य ही, कभी भी शान्ति न चाहें।।
उसको समझाने का साधन, बातचीत नहीं हो सके। दण्ड ही उनके दमन का, एको बस साधन होए।।
ज्यों पशुओं को प्रेम की, पुचकार काम न कर सके। उनको तो इक दण्ड ही, बस सीधी राह पे ले चले।।

सब यदुवंशियों सहित कृष्ण, अति कुपित थे हो गए। और युद्ध करने के लिये, सबके सब तैयार थे।।
शनै: शनै: समझाया उन्हें, और मैं यहाँ चला आया। इन्हें शान्त कर सन्धि हेतु, मैं तो था यहाँ आया।।

फिर भी यह मूर्ख देखो, ऐसी दुष्टता कर हैं रहे। शान्ति इनको प्रिय नहीं, इन्हें कलह क्लेश ही प्रिय लगे।।
दन्भोन्मत्त हो इन सबने, मेरा ही किया तिरस्कार। दुर्वचन भी कह दिये, ऐसा किया इन्होने बकवाद।।

पृथ्वी के नरपति दू रहे, सब लोकपाल और इन्द्रादि। पालन करते जिनकी आज्ञा, कहें उग्रसेन वह राजा नहीं।।
भोज वृष्णी अन्धक वंशी, यादवों के ही बस हैं स्वामी। इस कारण इन दुष्टों की, धृष्टता इतनी बढ़ है गई।।

सुधर्मा सभा अधिकार में कर, जो उसमें हैं विराजते। देवों के पारिजात को भी, जो स्वयं है उखाड़ते।।
और उसको जो उपभोग करें, वह कृष्ण भी अधिकारी नहीं। जब जग की स्वामिनी लक्ष्मी, सदा उनकी सेवा में रहतीं।।
जिनके चरण कमल की वह, उपासना अहर्निश करें। वह लक्ष्मीपति श्री कृष्ण कहें, छत्र चंवर न रख सकें।।

जिनके चरण कमल की रज, सन्त सदा सेवन करें। गंगा आदि तीर्थ को भी, जो रज सदा पावन करे।।
सब लोकपाल किरीटों पे, धूलि वह धारण करें। ब्रह्मा शंकर लक्ष्मी और मैं, हैं अंशमात्र जिनकी कला के।।
जिनके चरणों की धूलि सदा, हम सब धारण करते हैं। यह कहें राज्य सिंहासन के, वे कृष्ण नहीं अधिकारी हैं।।

यह कहें बेचारे यादव तो, इनकी कृपा पे ही जिएं। इनके ही दिये भूमि के इक, टुकड़े का उपभोग करें।।
कहें हम हैं चरण पादुका, और कौरव यह हैं सीस रे। ऐश्वर्योन्मत्त महादम्भी, यह कौरव तो पागल हैं हुए।।
हर बात में है कटुता भरी, नहीं सिर या पैर भी उसका कोई। मुझसा पुरुष तो इन सबका, शासन कर दे पल में ही।।
दण्ड देई इनकी सारी, होश मैं वापिस ले आऊँ। इनकी यह सारी दुष्टता, नहीं सहन मैं कर पाऊँ।।

शुकदेव बोले,
आज मैं सारी धरती को, कौरव हीन ही कर दूँगा। इस भाँति कहते कहते, बलराम के मन अति क्रोध भरा।।
अपने हल को लेकर के, इस भाँति वह हुए खड़े। मानो आज त्रिलोकी को, ही भस्म वह कर देंगे।।

उसकी नोक से बार बार, हस्तिनापुर पे चोट करीं उखाड़ के वह सारी नगरी, हल से गंगा की ओर करी।।
गंगा में डुबोने के लिये, अति वेग से खेंचे उसे गए। डगमग नाव की भाँति ही, हस्तिनापुर डोलन लागे।।
जब कौरवों ने देखा, नगरी तो डूबने है लगी। मन में बहुत घबरा कर के, अब यह युक्ति उन्होने करी।।

लक्ष्मणा को संग लेकर, साम्ब को उन्होने आगे किया। प्राणों की रक्षा के लिये, कुटुम्ब को भी फिर साथ लिया।।
हाथ जोड़ कर शक्तिमते, श्री बलराम की शरण गए। और श्री बलराम से, फिर वह यूं कहने लगे।।

सब जगत् के हैं आधार आप, हे शेष श्री बलराम जी। नहीं प्रभाव हम जान सके, बुद्धि भ्रमित हमरी हुई।।
हम लोगों के अपराध को, हे प्रभु क्षमा कर दीजिये। जग उत्पत्ति स्थिति और, प्रलय का इक कारण हैं हे।।
निराधार हैं स्वयं स्थित, हे सर्व शक्तिमान् प्रभु। ऋषि मुनि सब यही कहें, आप हैं महा खिलाड़ी प्रभु।।
यह लोक तो बस आपके, हाथों के मात्र हैं यन्त्र ही। खिचलौने ही हैं हम सब तो, हैं आपके हाथों तन्त्र सभी।।

सहस्र सीस हैं हे अनन्त, धरा को सीस पे आप धरें। खेल खेल में ही प्रभु, इसको धारण आप करें।।
प्रलय के आने पर प्रभु, सब जग अपने में विलीन करें। आप ही एकाकी प्रभु, अद्वितीय रूप से शयन करें।।

जगत् स्थिति और पालन को, विशुद्ध सत्वमय रूप धरें। यह महाक्रोध भी आपका, नहीं द्वेष के कारण है भये।।
यह तो सब प्राणी मात्र को, शिक्षा देने के लिये। ही तो प्रभु हैं आपने, यह क्रोध रूप धारण किये।।

सब शक्ति को धारण करें, सर्वभूतात्म अनन्त प्रभु। नमस्कार श्री चरणों में, विश्वरचयिता हे विभु।।
बारम्बार है नमस्कार, आपकी शरण हैं हम आये। कृपा करी प्रभु अब तो, आप हमारी रक्षा करें।।

शुकदेव बोले,
कौरवों का नगर था, डगमग डांवाडोल हुआ। उनके मन में थी भरी, घबराहट और आतुरता।।
जब सब कुरुवंशी मिली, श्री बलराम की शरण गए। उनकी स्तुति प्रार्थना सुन, श्री बलभद्र प्रसन्न हुए।।
भय न करो ऐसा कहकर, अभय दान उन्हें दे दिया। श्री बलराम ने कौरवों, के अपराध को क्षमा किया।।

दुर्योधन का निज पुत्री, लक्ष्मणा से बहुत प्रेम था। दिये द्वादशय शत हाथी उसे, षष्टि वर्षीय हर हाथी था।।
दस सहस्त्र दिये अश्व उसे, संग छः हजार रथ सोने के। ऐसे थे वह हिरण्मय, ज्यों सूर्य देव हों चमक रहे।।
एक सहस्त्र दासियां भी, दहेज में उसको संग दीं। सभी दासियां कण्ठ में, स्वर्ण हार थीं पहने हुईं।।

यदुश्रेष्ठ बलराम जी ने, सब दहेज स्वीकार किया। कौरवों का अभिनन्दन भी, फिर उन्होने स्वीकार किया।।
नवदम्पत्ति को संग ले, आरम्भ की द्वारका की यात्रा। लक्ष्मणा और साम्ब संग, द्वारिका को प्रस्थान किया।।

द्वारिका पहुँच बलराम जी, बन्धु बान्धव जन से मिले। समाचार पाने के लिये, सब प्रेमी जन उत्सुक थे।।
यदुवंशियों की भरी सभा में, सारा चरित ही कह दिया। हस्तिनापुर में कौरवों के, साथ जो उन्होंने किया।।

यह हस्तिनापुर आज भी राजन्, है दक्षिण से कुछ ऊँचा। और गंगा की ओर ही, आज भी है कुछ झुका हुआ।।
प्रभु बलराम की वीरता की, गाथा आज भी गा रहा। उनके पराक्रम की कथा, आज भी हमें सुना रहा।।

१७) नारद का भगवान की गृहचर्या देखना

शुकदेव बोले,
देवर्षि श्री नारद ने, हे राजन् जब से सुना। भौमासुर का वध करके, सहस्त्रशः राजसुतान् वरा।।
तब श्री नारद के मन में, इक उत्कट जिज्ञासा उठी। श्री भगवान की दिनचर्या, के दर्शन की चाह वह थी।।

मन ही मन वह सोचन लागे, अहो कैसा आश्चर्य है यह। भगवान ने एक ही तन धर के, षोडश सहस्त्र महलों में।।
एक समय में ही कैसे, ऐसा है कौतुक किया? सभी राजसुताओं का, पाणिग्रह है कर लिया?

यह उत्सुकता मन में लिये, श्री नारद द्वारिका जा पहुँचे। उपवन और उद्यानों में, फूलों से लदे थे वृक्ष खड़े।।
भाँति भाँति के पक्षी वहाँ, वृक्षों पर थे चहक रहे। भँवरे भी फूलों पे उड़ी, गुँजार थे अपनी कर रहे।।

निर्मल शीतल जल से ही, थे वहाँ सरोवर भरे हुए। नील रक्त और श्वेत कमल, उन सबमें थे खिल रहे।।
कुमुद और नवजात कमल की, वहाँ थी मानो भीड़ लगी। हँस और सारस कलरव की, ध्वनि वहाँ थी गूंज रही।।

स्फटिक मणि और चान्दी के, नौ लाख थे महल वहाँ। फर्श में चमक रही थी वहाँ, महामरकत मणि की प्रभा।।
सोने और हीरों की थी, वहाँ बहुत सामग्री पड़ी हुई। सड़क गली चौराहे और, बाजार भी अति सुन्दर थी।।
पशुओं की शालायें और, देव स्थान अति शोभित थे। सभा भवन भी द्वारिका की, शोभा को थे बढ़ा रहे।।
स्थान स्थान पर जल से ही, छिड़काव वहाँ था किया गया। छोटी और बड़ी पताकाएँ, वायु में थीं रही फहरा।।
उनके कारण मार्ग सभी, थे धूप से बचे हुए। वहाँ के सारे स्थान ही, अति सुन्दर और शीतल थे।।

द्वारिका में श्रीकृण का, अन्त:पुर अति सुन्दर था। महालोकपाल भी करते थे, उनकी पूजा और श्लाघा।।
विश्वकर्मा का कला कौशल, मानो सभी था वहाँ भरा। पूरा जोर लगाकर ही, था नगरी का निर्माण किया।।

अन्त:पुर में भगवान की, रानियों के थे महल बने। सोलह हजार से भी अधिक, अन्त:पुर के यह महल थे।।
उनमें से इक महाभवन में, श्री नारद ने प्रवेश किया। वैदूर्य के उत्तम छज्जे थे, और मूंगों के थे स्तम्भ वहाँ।।
नीलमणि की दीवारें, थीं जगमग वहाँ कर रहीं। उनकी चमक तो किसी विधि, किसी भी कम थी नहीं होती।।

विश्वकर्मा ने वहाँ, चन्दोवे अनेकों बनाये थे। मुक्ता की झालरें थीं लटकीं, थे अति सुन्दर वह सजे हुए।।
हाथी दाँत के बने हुए, आसन और वहाँ पलंग थे। श्रेष्ठ मणि और रत्न ही, उन सब में थे जड़े हुए।।

बहुत सी थीं वहाँ दासियाँ, कण्ठ पे पहनें स्वर्ण हार। सुन्दर वस्त्रों से सुसज्जित वह, कर रही थीं वहाँ कार्य।।
बहुत से सेवक भी वहाँ, थे सुन्दर वस्त्रों से सजे। सिर पे पगड़ी बान्धे हुए, कानों में जड़ाऊ कुण्डल थे।।
अपने अपने कामों में, सभी व्यस्त थे हो रहे। इस विधि वह महल को, अति शोभित थे कर रहे।।

अनेक रत्न प्रदीप वहाँ, जगमग करके थे जल रहे। महल के अन्धकार को, वह दीप दूर थे कर रहे।।
अगर धूप का धुआं भी, छनकर था बाहर आ रहा। झरोखों से निकल कर वह, बादल सी छवि बना रहा।।
मणिमय छज्जों पर बैठे, वहाँ पे थे मयूर जो। बादल के ही विभ्रम में, नाचते वह निज सुध बुध खो।।

देवर्षि ने देखा फिर, महल की स्वामिनी रुक्मिणी संग। बैठे हुए हैं श्री कृष्ण, वह उनको रही हैं चंवर कर।।
उस चंवर में स्वर्ण की, डंडी है लगी हुई। रुक्मिणी सम ही रूप गुण, से सुसज्जित दासियाँ थीं।।
सहस्त्रों ही वह दासियाँ, वहाँ सदा उपस्थित रहती थीं। श्री भगवान की सेवा में, हर क्षण वह तत्पर रहती थीं।।

धर्म परायण श्रेष्ठतम, सब जीवों के हैं जो मुकुट। श्री कृष्ण ने देखा नारद को, तत्क्षण ही वह गए उठ।।
पलंग से उठ श्री नारद के, चरणों में मुकुटमय सीस धरा। हाथ जोड़कर उनको फिर, आसन पे अपने बिठलाया।।

नहीं इसमें तनिक सन्देह राजन्, हैं कृष्ण गुरु सगरे जग के। उनके चरण की धोवन गंगा, सारा जग पावन कर दे।।
महाभक्त वत्सल हैं वह, और सन्तों के हैं वही स्वामी। वह ही जाने जाते हैं, ब्रह्मण्य देव नाम से भी।।
ब्राह्मणों को ही अपना, आराध्य देव मानें प्रभु। इस कारण ही तो नारद के, चरण पखारें श्री विभु।।
फिर उनके चरणामृत को, प्रभु ने अपने सीस धरा। और इस अपने नाम को, सार्थक ही उन्होंने किया।।

नर के हैं वह सखा सदा, सर्वश्रेष्ठ नर स्वयं बनें। फिर विधिवत् ही देवर्षि को, पूजा श्री नारायण ने।।
अमृत से भी मीठे और, मित वचनों से स्वागत किया। देवर्षि नारद को फिर, मधुर स्वरों में उन्होंने कहा।।
ज्ञान वैराग्य धर्म यश, श्री ऐश्वर्य से पूर्ण आप। क्या सेवा आपकी हम करें, अब आज्ञा दें हमें आप।।
नारद बोले,
सब लोकों के एकमात्र, स्वामी हैं हे प्रभु आप। भक्तों से प्रेम दुष्टों को दण्ड, नहीं आपके लिये यह नई बात।।
जग की स्थिति और रक्षा से, सब जीवों का कल्याण करें। हम जानें आप स्वेच्छा से ही, हे प्रभु अवतार धरें।।

अति सौभाग्य से आज प्रभु, चरण कमल दर्शन पाया। यह चरण कमल प्रभु आपके, साम्य और मोक्ष के हैं दाता।।

ब्रह्मा और श्री शंकरभी, है जिनका ज्ञान अथाह। अपने हृदय में श्री चरणों का, चिन्तन करें है वह सदा।।
संसार कूप में पतित हुए, जीवों का हैं यह अवलम्बन। इनके आश्रय ही तो जीव, पार हो वहाँ से अविलम्ब।।
इतनी कृपा प्रभु कीजिये, स्मृति सदा हिय में रहे। जहाँ भी रहूँ जैसे भी रहूँ, मन ध्यान में तन्मय सदा रहे।।
शुकदेव बोले,
परम योगेश्वर कृष्ण की, माया को जानना चाहते थे। दूजी पत्नी के महल में, फिर देवर्षि नारद गए।।
वहां देखा निज प्राणप्रिया, के संग कृष्ण चौसर खेलें। सखा उद्धव भी है संग में, उन्हें देख कृष्ण फिर हुए खड़े।।
स्वागत कर आसन दिया, भक्ति भाव से पूजा की। विधिवत् सब सामग्री ही, देवर्षि के चरण धरी।।

अनजान से फिर बनकर प्रभु, श्री नारद से पूछने लगे। हे देवर्षि कहें आप, यहाँ पे कब आगमन हुए?
आप तो आप्तकाम हैं, परिपूर्ण आत्माराम रहें। हम तो ठहरे अपूर्ण ही, क्या सेवा करें अब आप कहें।।

ब्रह्म स्वरूप हे देवर्षि, फिर भी कुछ आज्ञा तो करें। सेवा का अवसर देकर, जन्म हमारा सफल करें।।
नारद यह सब देखकर, और सुनकर थे चकित भए। चुपचाप वहाँ से उठकर के, वह दूजे महल में चले गए।।
उस महल में देखा उन्होंने, नन्हें शिशुओं को दुलार रहे। अगले महल में जब पहुंचे, स्नान को प्रभु तैय्यार थे।।

कहीं तो यज्ञकुण्डों में, प्रभु हवन थे कर रहे। कहीं पंचमहायज्ञों से, देवों को थे वह आराध रहे।।
कहीं ब्रह्मभोज थे करा रहे, कहीं यज्ञशेष खुद पा रहे। कहीं सन्ध्या हैं कर रहे, कहीं मौन ही गायत्री जप में लगे।।
कहीं हाथों में ढाल और, तलवार है उन्होने ले रखी। पैंतरे बदल के फिर उन्हें, चलाने की तैय्यारी हुई।।

कहीं अश्व हाथी या रथ, पे सवार हो विचर रहे। कहीं बन्दी जन हैं स्तुति करें, कहीं शैय्या पर वह सो रहे।।
उद्धव आदि मन्त्रियों सहित, किसी महल में हैं वह वार्ता रत। गम्भीर विषय पर कर रहे, उनके साथ वह परामर्श।।
कहीं उत्तमतम वारांगणागण, से प्रभु हैं घिरे हुए। उनके संग ही मिलकर के, वह जल क्रीड़ा हैं कर रहे।।

वस्त्राभूषण से सुसज्जित, धेनु हैं कहीं दे रहे। श्रेष्ठ ब्राह्मणों के हेतु, दान हैं उनका कर रहे।।
मंगलमय इतिहास पुराण, का श्रवण कहीं कर रहे। किसी पत्नी के साथ वह, हास्य विनोद हैं कर रहे।।
अन्य किसी के महल में, हैं धर्म का सेवन कर रहे। कहीं धन संग्रह और वृद्धि, के कार्य में हैं लगे हुए।।
इस विधि वह अर्थ का, ही सेवन करते से लगें। अन्य कहीं गृहस्थोचित, विषयों का ही उपभोग करें।।

कहीं एकान्त में बैठे हुए, उस परं ब्रह्म का ध्यान करें। गुरु जन के चरणों में कहीं, सब भोग ही वह अर्पित करें।।
सेवा सुश्रूषा करें उनकी, तो कहीं वह युद्ध की बातें करें। देवर्षि ने देखा उन्हें, सन्धि की बातें भी करते हुए।।
कहीं देखा श्री बलराम के, संग कृष्ण हैं बैठे हुए। सत्पुरुषों के कल्याण के, विषय में हैं वह विचार रहे।।

कहीं पुत्र पुत्रियों के लिये, सदृश वधु वर ढूंढ़ कर। धूमधाम से विधिवत् ही, विवाह उनके रहे हैं कर।।
कहीं विदा कर रहे कन्या को, किसी अन्य को हैं बुला रहे। विराट् यह उत्सव देख सभी, विस्मय से थे भर जाते।।

महायज्ञों द्वारा करते कहीं निज कला रूप देव पूजन। अपनी ही कलाओं का, यज्ञों द्वारा करते पूजन।।
कहीं कूप उद्यान और मठ, आदि का करवायें निर्माण। इष्टापूर्त धर्म का, अनुसरण वह कर रहे महान्।।

कहीं श्रेष्ठ यादवों से घिरे, हैं सिन्धु देश के घोड़ों पर। आखेट हेतु जायें वन को, मेध्य पशु का ही करें वध।।

कहीं अन्त:पुर और प्रजा में भी, वह भेस बदल कर जाते हैं। सबका है अभिप्राय क्या, यह वह जानना चाहते हैं।।
हो भी क्यों न श्री कृष्ण तो, हैं योगेश्वर सब योगियों के। कर्त्तव्य करें वह साधारण से, उनको कौन समझ पाये?

इस विधि मनुष्य की सी लीला, करते हुए हृषीकेश की। माया का वैभव देख करी, श्री नारद ने यह वचन कही।।
हे योगेश्वर हे आत्मदेव, माया आपकी कोई न जान सके। ब्रह्मादि महामायावी भी, उसको न पहचान सकें।।
किन्तु आपकी योगमाया, का रहस्य हम जान रहे। चरण कमल की सेवा से, वह अपने आपको प्रकट करे।।

देवों के भी आराध्य देव, फैला यश चौदह भुवनों में। तव पावनकारी लीला का, मैं गान करूं उन भुवनों में।।
हे प्रभु आप की आज्ञा दें, मैं लोकों में विचरण करूँ। लोक लोक में आपकी ही, लीला का मैं गान करूँ।।
भगवान बोले,
मैं ही हूँ धर्म का उपदेशक, पालनकर्ता भी स्वयं हूँ। अनुष्ठान करें जो धर्म का, अनुमोदक उनका मैं ही हूँ।।
धर्म की शिक्षा देने को, जग में हूँ ऐसा कर रहा। पग पग पे मैं धर्म का, ही अनुसरण हूँ कर रहा।।
प्रिय नारद तुमने मेरी, योगमाया जो है देखी। मोहित न होना देखकर, जो दर्शन है तुमने करी।।
शुकदेव बोले,
भगवान कृष्ण गृहस्थों के, पावनकर धर्म थे कर रहे। शास्त्र कथित मर्यादा से, पालन थे उनका कर रहे।।
यद्यपि हैं प्रभु एक ही, नारद ने अलग अलग देखा। हर पत्नी के महल में, उनको विहार करते देखा।।
अनन्त है श्री हरि की शक्ति, और योगमाया का ऐश्वर्य। देवर्षि विस्मय से भरे, बार बार उसे देख कर।।

गृहस्थ बनी द्वारिका में, साधारण सा आचरण था। धर्म अर्थ और काम रूप, पुरुषार्थ में थी महा श्रद्धा।।
देवर्षि नारद का भी, उन्होंने बहुत सम्मान किया। अति प्रसन्न हुए देवर्षि, प्रभु सिमरन् कर प्रस्थान किया।।
सकल जगत् कल्याण अर्थ, प्रभु यह सब व्यवहार करें। अचिन्त्य महाशक्ति माया, को श्री हरि स्वीकार करें।।

मानव की सी लीला करें, न उन्हें कोई पहचान सके। सोलह सहस्र से अधिक ही, पत्नियाँ नित्य उनकी सेवा करें।।
सलज्ज प्रेममयी चितवन से, सेवा और संग विहार करें। किन्तु योग माया उनकी, न कोई भी पहचान सकें।।

भगवान कृष्ण की लीलाएँ, नहीं अन्य कोई भी कर सके। विश्व की उत्पत्ति स्थिति, और प्रलय का कारण वे।।
जो उनकी लीलाओं का, नित्य गान और श्रवण करे। गान श्रवण करनेवालों का, अनुमोदन भी जो करे।।
श्री कृष्ण के चरणों में, परम् प्रेममयी भक्ति पा। मोक्षमार्ग को स्वत: ही वह, प्राप्त हो जाये इस राह।।

१८) जरासन्ध द्वारा बन्दी बनाये गये राजाओं का सन्देश लेकर दूत का श्रीकृष्ण के पास आना

शुकदेव बोले,
जब भोर उदय होने को हो, और मुर्गों की हो स्वर छिड़ी। तब कृष्ण पत्नियाँ जिनके गले, श्री कृष्ण की बईयां हों पड़ी।।
उनके वियोग की आशंका, से ही व्याकुल हो जातीं। इसके लिये उन मुर्गों को, ही दोषी वह ठहरातीं।।

वायु भी पारिजात की, सुगन्ध से था सुरभित होता। स्वर ताल सहित भंवरों का भी, गुंजर स्वर था छिड़ जाता।।

पक्षिन् की नींद भी खुल जाती, बन्दीजन वत् गाने लगते। श्री कृष्ण को जगाने के लिये, मधु स्वर से कलरव वह करते।।

प्रियतम के भुजापाश में, थीं बन्धीं श्री रुक्मिणी। आलिंगन न छुट जाये कहीं, इस बात से आशंकित होती।।
अति सुन्दर और सुहावना, पावनतम यह ब्रह्म मुहूर्त। असह्य भासता था उनको, वियोग के कारण यह मुहूर्त।।

भगवान कृष्ण तो प्रतिदिन ही, ब्रह्म मुहूर्त में उठ जाते। हाथ मुंह प्रक्षालन कर, वह बैठते आत्म ध्यान में।।
माया अतीत स्वरूप के, ध्यान में जब था चित्त टिकता। रोम रोम आनन्द से, उस पल था उनका खिलता।।
श्री हरि का आत्म स्वरूप, अपने पराये से है परे। किसी भी भेद भाव रहित, अद्वितीय अखण्ड एक रहे।।
किसी भाँति की उपाधि का, वहाँ कोई अस्तित्व नहीं। वह अविनाशी सत्य है, नहीं वहाँ दूजा कहीं।।
ज्यों चन्द्र सूर्य आदि सभी, नेत्रों द्वारा ही प्रकाशित हों। और यह नेत्र भी हैं जो, उस सूर्य से ही प्रकाशित हों।।
यह आत्म स्वरूप नहीं किसी, अन्य के द्वारा हो भासित। स्वयं प्रकाश ही रहे सदा, है काल की सीमा से रहित।।
अपने ही स्वरूप में, यह सदा एक रस रहता है। अविद्या न इसे छू सके, उससे अप्रभावित रहता है।।
उत्पत्ति स्थिति और नाश की, कारण भूता ब्रह्मा शक्ति। विष्णु या रुद्र शक्ति भी, कर सके बस अनुमान ही।।
सत्ता स्वरूप तो वह है, एक रस आनन्द स्वरूप। समझाने मात्र को ही कहें, उसको ही ब्रह्म रूप।।
श्री कृष्ण उसी निज आत्म स्वरूप, का ध्यान ही हैं करते। प्रतिदिन ब्रह्म मुहूर्त में, ध्यान निमग्न ही वह रहते।।

तत्पश्चात् विधिवत् ही, निर्मल पावन जल में जाते। कर स्नान पहरते शुद्ध वस्त्र, सन्ध्या वन्दन आदि करते।।
फिर वह अग्निहोत्र करके, गायत्री का मौन जपन करते। हो भी क्यों न स्वयं ही वह, हैं सबके आदर्श बने।।

तत्पश्चात् सूर्योदय पर, सूर्योपस्थान करते। कला रूप निज देव ऋषि, और पितरों का तर्पण करते।।
फिर कुलवृद्धों और ब्राह्मणों की, विधिवत् वह पूजा करते। तत्पश्चात् नव ब्यायी हुई, गायों का दान थे वह करते।।
सीधी और शान्त गाएँ वह, बछड़ों के सहित थीं दीं जातीं। सुन्दर वस्त्र और मोतियों की, माला से थीं सजी हुईं।।
सींग में सोना और खुरों में, चान्दी थी मढ़ी जाती। वस्त्राभूषण से सुसज्जित यह, मृगचर्म और तिल भी संग होती।।
तेरह हजार चौरासी धेनू, प्रतिदिन दान वह करते थे। प्रात:काल की दिनचर्या के, यह अनिवार्य ही अंग थे।।

अपनी विभूति रूपा गौ, ब्राह्मण देवता कुलवृद्ध। गुरुजन और सब प्राणियों को, प्रणाम करते पहले शुद्ध।।
तत्पश्चात् ही मांगलिक, वस्तुओं का वह स्पर्श करते। अपनी दिनचर्या का नित्य, इस विध वह आरम्भ करते।।
यद्यपि श्री हर का तनु तो है, जीव लोक का अलंकार। फिर भी पीताम्बरादि दिव्य, वस्त्रों से करते श्रृंगार।।
कौस्तुभ मणि आदि आभूषण, दिव्य पुष्प माला और हार। चन्दन आदि दिव्य गन्ध, बन जाते उनके अंग राग।।

तत्पश्चात् घृत और दर्पण, में अपना मुखड़ा देखते थे। गाय बैल ब्राह्मण और, देव प्रतिमा दर्शन करते।।
फिर अन्त: पुर के वासी, और सब वर्णों के पुरवासी। पूर्ण करते वह अभिलाषा, इस विधि सारे वर्णों की।।
प्रजा की कामना पूर्ति कर, फिर उसको तुष्टित करते थे। सबको प्रसन्न ही देखकर, आनन्दित स्वयं वह होते थे।।

पुष्पमाल ताम्बूल और, चन्दन अंगराग आदि देते। ब्राह्मण स्वजन मन्त्रीगण, और रानियों को पहले देते।।
उनसे जो भी शेष बचे, वह स्वयं थे काम में ले लेते। सारथी दारुक रथ जोड़ता, तब तक भगवान यह सब करते।।

सुग्रीवादि घोड़ों से जुता, अति अद्भुत सुन्दर रथ था। प्रणाम कर प्रभु के सम्मुख, दारुक खड़ा था हो जाता।।

तत्पश्चात् भगवान कृष्ण, उद्धव और सात्यकि संग ले। अपने हाथ से सारथी, दारुक का हाथ पकड़ करके।।
रथ पर यूँ चढ़ जाते थे, ज्यों भुवन भास्कर सूर्य ही। उदयाचल पे आरूढ़ हो, यात्रा को चल दें अपनी।।

अन्त:पुर की सब स्त्रियाँ, सलज्ज प्रेममयी दृष्टि से। उनको निहारने थीं लगतीं, विदा करतीं अति कष्ट से।।
श्री भगवान भी मन्द मन्द, मुसकान अपने मुख पे लिये। चित्त उसका भी संग ले जाते, महल से निकलते निकलते।।

सब यदुवंशियों को संग ले, सुधर्मा सभा में फिर जाते। उस सुधर्मा सभा की भी, महिमा है अति न्यारी कहें।।
जो भी लोग उस सभा में, जाकर हैं बैठ जाते। भूख प्यास शोक मोह, नहीं मृत्यु जरा सता पाते।।

इस भाँति श्री कृष्ण सभी से, अलग अलग होते विदा। एक ही रूप पुन: धरकर, करते प्रवेश सुधर्मा सभा।।
वहाँ जाकर वह श्रेष्ठतम, आसन पर थे विराजते। अंग कान्ति से सारी ही, दिशाओं में ज्योति फैलाते।।
यदुवंशी वीरों के मध्य, प्रभु की शोभा ऐसी होती। ज्यों तारों से घिरा हुआ, नभ में चमके है शशि।।

विदूषक गण उस सभा में, हास्य करते भाँति भाँति। नटाचार्य अभिनय करते, नर्तकियां भी नर्तन करतीं।।
अलग अलग अपनी टोली, लेकर सब आ जाते थे। श्री हरि की सेवा वह सब, अपनी अपनी विधि करते थे।।

मृदंग वीणा पखावज और, बांसुरी झांझ शंख बजते। सूत मागध और बन्दी जन, नर्तन और स्तुति गान करते।।
कोई कोई व्याख्या कुशल, ब्राह्मण भी वहाँ पधारते। वेद मन्त्रों की व्याख्या वह, विस्तार सहित वहाँ करते।।
कोई पूर्वकालीन पावन कीर्ति, नरपतियों के चरित गाते। इस प्रकार श्री कृष्ण का चित्त, विभिन्न भाँति वह लुभाते थे।।

इक दिन द्वारिका पुरी की, राजसभा के द्वार पर। आ पहुँचा कोई आगन्तुक, अनजाना ही था वह नर।।
उसके आने की सूचना, यक्षगणों ने दी प्रभु को। फिर उस पुरुष को लाकर उन्होने, सभा में प्रभु सम्मुख किये।।

परमेश्वर श्री कृष्ण को, करबद्ध हो उसने नमन किया। उन बीस सहस्त्र राजाओं का, दु:ख उनके सम्मुख धरा।।
जरासन्ध ने दिग्विजय का, क्रम था जब आरम्भ किया। उसके सम्मुख थे नहीं झुके, यह गौरवशाली राजा।।
बलपूर्वक उनको बन्दी बना, जरासन्ध था ले आया। श्री कृष्ण के चरणों में, राजाओं का यह कथन धरा।।

राजा बोले,
मन वाणी से अगोचर हैं, सच्चिदानन्द स्वरूप कृष्ण। जो शरणागत आपकी हो, भय उसके करें नष्ट कृष्ण।।
जन्म मृत्यु रूपा जग के, चक्र से हैं भयभीत हम। नहीं मिटी हमारी भेद बुद्धि, हुए आपके ही हम शरणापन्न।।

अधिकांश जीव सकाम और, निषिद्ध कर्मों में हैं लगे। परम कल्याणकर आपकी, उपासना से विमुख हुए।।
निज जीवन और उन सम्बन्धी, अभिलाषाओं में भटक रहे। किन्तु महाबलवान आप, काल रूप बनकर प्रकटे।।
सर्वदा सावधान आप, करें आशाओं का उन्मूलन। आपके काल स्वरूप को, हे प्रभु हम करें नमन।।

हैं आप स्वयं ही जगदीश्वर, अवतार आपने ग्रहण किया। ज्ञान बलादि कलाओं सहित, जग में है यह रूप धरा।।
दुष्टों को दण्ड देने के लिये, और सन्तों की रक्षा के लिये। हे प्रभु हैं आपने, इस जग में यह रूप धरे।।

जरासन्ध या अन्य कोई, फिर कष्ट हमें कैसे दे सके। निमित्त मात्र ही वह बनें, दुष्कर्म का फल देने के लिये।।
हम सब आपके अपने हैं, दुष्कर्म भी कैसे फल लायें? अब कृपा करें हम पर भगवन्, और कष्ट क्लेश यह हर जायें।।

हम जानें प्रभु राजत्व का, सुख भोग भी रेखा बधित मिले। सच मानें स्वप्न समान सब, विषय सुख ही तुच्छ लगे।।
उस सुख का भोक्ता यह तन भी, है तो मृतक समान ही। इसके कारण ही हम सब, रहें भय से सदा आक्रान्त ही।।
इसके द्वारा ही हम सब, जगत् का भार हैं ढो रहे। निष्काम भावी संकल्प रहित, आत्म स्थिति का त्याग करें।।
महामूढ़ अज्ञानी हम, माया पाश में हैं बन्धे। क्लेशों पर महाक्लेश ही, हम हैं भोगे जा रहे।।

आपके चरण कमल ही प्रभु, शरणागत का मोह शोक हरें। जरासन्ध रूपा कर्मों के, बन्धन से आप ही मुक्त करें।।
यह राजा अकेला ही, दस हजार हाथी सम है। बन्दी बनाया हम सबको, ज्यों भेड़ें शेर के बस में हैं।।

अट्ठारह बार प्रभु आपने, जरासन्ध से युद्ध किया। सत्तरह बार उसका मान, मर्दन करके छोड़ दिया।।
एक बार ही हे प्रभु, आपको जीत वह था पाया। इस कारण ही तो उसका, दम्भ है इतना तीव्र हुआ।।
हम जानें प्रभु आपका, बल और शक्ति अनन्त है। मनुज का सा अभिनय करके, हुए पराजय सम्पन्न हैं।।
हे प्रभु यह जानकर, कि हम सब भक्त हैं आपके। नित्य प्रति हम सबको ही, और भी वह ताड़ा करे।।
हे नाथ आपके सामने, हमने है अपनी कथा कही। आप वही अब करें प्रभु, जैसी हो इच्छा आपकी।।
दूत बोले,
जरासन्ध के बन्दी बने, राजाओं ने यह प्रार्थना की। आपका दर्शन चाहें वह, हैं वह शरणागत आपके ही।।
कृपा कर उन दीनों का, कल्याण आप प्रभु कीजिये। हैं आपकी ही वह शरण पड़े, उबार आप ही लीजिये।।
शुकदेव बोले,
हे राजन् राजाओं का, दूत था इस विधि कह रहा। परम तेजस्वी देवर्षि, श्री नारद वहाँ पे पहुँचे जा।।
हिरण्य जटायें उनकी थीं, इस भाँति से चमक रही। मानो भगवान भास्कर की, पूर्व दिशा प्रकाश छिटी।।

ब्रह्मा आदि समस्त ही, लोकपालों के स्वामी। श्री कृष्ण उठ खड़े हुए, सभासद् सेवकों सहित ही।।
हर्ष सहित वह सीस झुका, वन्दना उनकी करने लगे। देवर्षि नारद ने जब, स्वीकार निज आसन किये।।
विधिवत् प्रभु ने पूजा की, श्रद्धा से उन्हें तुष्ट किया। फिर मधुर वाणी से उन्होने, देवर्षि को यह वचन कहा।।
भगवान बोले,
हे देवर्षे त्रिलोकी में, कुशल मंगल तो है न कहें। तीनों लोकों में सदा, आप तो विचरण करते रहें।।
इससे हम जैसों के लिये, महालाभ यह हो जाये। घर में बैठे ही, समाचार सब मिल जाये।।

ईश्वर के इस रचे हुए, त्रिलोक में ऐसा कुछ नहीं। आप जिसे प्रभु न जानें, नहीं आपसे कुछ अज्ञात कहीं।।
हे देवर्षे अब आपसे, हम यह जानना चाहते हैं। युधिष्ठिर आदि पाण्डव सब, अब क्या करना चाहते हैं?
नारद बोले,
हैं विश्व के निर्माता आप, और महामायावी हैं। नहीं पार आपका पा सकें, मायावी ब्रह्मा आदि हैं।।
घट घट में हे प्रभु आप, अचिन्त्य शक्ति से व्याप्त हैं। ज्यों अग्नि काष्ट में है निहित, आप सर्वथा व्याप्त हैं।।

सत्त्वादि गुणों पर ही, जिनकी दृष्टि टिक जाये। वास्तविक स्वरूप प्रभु आपका, वह सब देख ही न पायें।।
इक बार नहीं अनेकों बार, प्रभु आपकी माया है देखी। पाण्डवों का हाल हैं पूछ रहे, अनजान से बन के आप ही।।
इससे प्रभु मुझको कोई, नव कौतूहल नहीं हुआ। आपकी ही प्रभु यह माया, मैं पहले भी हूँ देख चुका।।

अपनी माया से आप प्रभु, जग रचना और संहार करें। असत्य होकर भी प्रभु, माया से सत्य ही यह भासें।।
क्या सब करना चाहें आप, इसे कौन प्रभु समझ सके? अचिन्त्य रूप प्रभु चरण में, है शतश: मेरा नमन हे।।

तन और तनोवासना में, जीव सदा ही भटका करे। जन्म मरण के चक्र में, वह तो हर पल पड़ा रहे।।
नहीं जाने वह इस तन से, मुक्ति की कोई राह प्रभु। नाना लीला अवतार धरें, हे प्रभु आप उनके हित हेतु।।
अपने पावन यश की प्रभु, ज्योति प्रज्ज्वलित आप करें। जिसके सहारे जीव यह, मुक्त हो इस नश्वर तन से।।

हे प्रभु मैं तो सदा, सदा शरण हूँ आपकी। फिर भी मानुषी लीला कर, आपने बात है जो कही।।
फुफेरे भाई आपके, प्रेमी राजा युधिष्ठिर जो। वह क्या करना चाहते हैं, उनकी आप अब बात सुनो।।

ब्रह्म लोक में भी किसी को, भोग कभी जो प्राप्त हों। राजा युधिष्ठिर को निश्चित, इसी लोक में प्राप्त हों।।
नहीं कामना उनकी कोई भी, फिर भी यज्ञ करना चाहें। राजसूय यज्ञ करके, आरधन आपका करना चाहें।।
कृपा कर हे प्रभु आप, अनुमोदन इस इच्छा का करें। उनके यश में हे प्रभु, पधारने का उपक्रम करें।।
उस श्रेष्ठ यज्ञ में बड़े बड़े, देव और नरपति आयेंगे। आपके दर्शन के लिये, एकत्रित सब हो जायेंगे।।

विज्ञानानन्द घन आप प्रभु, आप स्वयं हैं परं ब्रह्म। श्रवण कीर्तन ध्यान आपका, अन्त्यज को भी करे पावन।।
फिर आपके दर्शन स्पर्शन को, जो नर कभी भी प्राप्त करें। उनके भाग्य की महिमा तो, हम कैसे कभी गा सकें?

आपकी निर्मल कीर्ति प्रभु, चहुँ दिशा में छा रही। तीनों लोकों के हैं प्रभु, आप ही इक मंगलकारी।।
स्वर्ग धरा पाताल में, कीर्ति आपकी व्याप्त है। ज्यों आपकी चरणामृत धारा, तीनों लोकों में व्याप्त है।।
स्वर्ग में है मन्दाकिनी, पाताल लोक में भोगवती। मर्त्यलोक में गंगा के, नाम से जग पावन करती।।

शुकदेव बोले,
उस सभा में जितने भी, यदुवंशी थे राजन् बैठे। जरासन्ध से युद्ध में विजय हो, वह सब यह ही थे चाहते।।
अत: देवर्षि नारद की यह, बात न उनके मन भाई। ब्रह्मा आदि के भी ईश्वर, श्री कृष्ण ने मीठी वाणी कही।।

भगवान बोले,
हे उद्धव मेरे प्रिय हो तुम, सुहृद् और हितैषी हो। भली भाँति जानो तुम तत्त्व, दाता शुभ सम्मत्ति के हो।।
इसलिये हे मित्र तुम्हें, हम अपना उत्तम नेत्र मानें। इस विषय में तुम ही कहो, है मुझको क्या कर्त्तव्य हे?
आपकी बात पे हे उद्धव, है मुझको श्रद्धा कहूँ। तुम जैसी भी सम्मति दो, मैं उसका ही अनुसरण करूँ।।

उद्धव तो यह माने थे, श्री कृष्ण हैं सर्वज्ञ स्वयं। फिर भी अनजान से बनकर के, पूछ रहे हैं सम्मति मेरी।।
तब उनकी इस आज्ञा को, शिरोधार्य उद्धव ने किया। और श्री कृष्ण के सामने, आशय अपना प्रकट किया।।

शुकदेव बोले,
देवर्षि और सभासदों के, फिर श्री कृष्ण के वचन सुने। उन सब पर ही विचार करी, श्री उद्धव यूँ कहने लगे।।
उद्धव बोले,
देवर्षि श्री नारद ने, प्रभु यह सम्मत्ति आपको दी। राजसूय यज्ञ में पाण्डवों के, उपस्थिति है अनिवार्य ही।।
साथ में यह भी उचित कहा, है आपका कर्त्तव्य यह। आपके शरणागत की प्रभु, सब भान्ति से रक्षा भए।।

जब इस दृष्टि से विचार करें, तो राजसूय वही कर सके। दसों दिशाओं पर ही जो, विजय सर्वविधि प्राप्त करे।।
बिना किसी भी संशय के, इस निर्णय तक हम आये। पाण्डव यज्ञ और शरणागत, राजाओं की रक्षा के लिये।।

अनिवार्य है यह कि जरासन्ध, पर ही विजय पाई जाये। इस जरासन्ध को जीतकर, उद्देश्य सफल हो पाये।।
इससे ही वह बन्दी बने, राजा भी मुक्त हो जायेंगे। और हे प्रभु आप भी, महा सुयश को पाएंगे।।

मगधराज वह है महाबली, महीवीरों को हरा वह दे। दस सहस्त्र हाथी का बल, है इक जरासन्ध में।।
उसे हराने में तो बस, इक भीम ही सक्षम हो सके। क्योंकि एक वही तो है, जो बल में उसके समान भए।।

परस्पर युद्ध में एक वीर, ही गर उसको जीत ले। सर्वश्रेष्ठ है नीति यही, जिससे पराजित हो वह सके।।
सौ अक्षौणी सेना ले, यदि वह युद्ध में डट गया। उसपल उसको जीतना, सम्भव नहीं हो पायेगा।।
फिर यह मगधराज है, ब्राह्मण भक्त अति श्रेष्ठ ही। नहीं नकार सकता वह उसे, गर द्विज करे याचना कोई।।

भीम को चाहिये, वह ब्राह्मण वेश में जायें वहाँ। और द्वन्द्वयुद्ध की फिर, उससे भिक्षा मांगे वहाँ।।
नहीं इसमें संशय तनिक, यदि आप वहाँ उपस्थित हों। तो इस द्वन्द्व युद्ध में, निश्चित भीम ही विजयी हों।।

हैं सर्वशक्तिमान् आप, हैं रूप रहित काल स्वरूप। विश्व की सृष्टि और प्रलय, है आप ही का तो शक्ति रूप।।
ब्रह्मा और शंकर तो बस, निमित्त मात्र हैं आपके। इसी भाँति बनें निमित्त भीम, वध तो हो आपकी शक्ति से।।

जब इस भाँति प्रभु आप, करेंगे वध जरासन्ध का। तब उसने जो हैं बन्दी किये, मुक्त वह होंगे सब राजा।।
उनकी रानियाँ फिर अपने, महलों में हर्ष मनायेंगी। उनके शत्रु का नाश किया, वह आपकी महिमा गाएँगी।।
ज्यों गोपियाँ शंखचूड से, मुक्ति की लीला की कहें। शरणागत मुनिजन जो, गजेन्द्र मोक्ष की बात कहें।।
जानकी जी के उद्धार का, भी कथन वह हैं करते। आपके मात पिता की बन्दीगृह, से मुक्ति की हैं हम कहते।।

इस जरासन्ध का वध ही प्रभु, प्रयोजन सिद्ध करेगा बहुत। बन्दी नरपतियों के हैं पुण्य, जरासन्ध पाप परिणाम प्रभु।।
है अति प्रिय प्रभु आपको भी, राजसूय यज्ञ ही। इस कारण पधारें पहले, इन्द्रप्रस्थ में आप ही।।

१९) कृष्णका इन्द्रप्रस्थ में आना

शुकदेव बोले,
हे राजन् श्री उद्धव की, यह सम्मत्ति सर्वथा उचित थी। दोष रहित थी यह कथनी, सर्वविधि से हितकर थी।।
देवर्षि यदुवृद्ध सभी, श्री कृष्ण ने भी उसे मान लिया। सबने मिल इक स्वर से, ही समर्थन उद्धव का किया।।

अन्तर्यामी श्री कृष्ण ने, गुरुजन से फिर अनुमति ली। दारुक जैत्रादि सेवकों को, आज्ञा तत्पश्चात् दी।।
इन्द्रप्रस्थ ही जाने की, अब तैय्यारी तुम करो। शीघ्र ही उस दिशा में, अब प्रस्थान हमारा हो।।

तत्पश्चात् भगवान कृष्ण, यदुराज उग्रसेन पे गए। निज अग्रज बलराम से, भी आज्ञा थे वह ले चुके।।
आत्मजों और रानियों को, उन्होंने आगे कर दिया। उनका सब सामान भी, उनके आगे ही था रखा।।
गरुड़ध्वजा धारी रथ जो, दारुक लेकर था आया। उस रथ पर भगवान ने, फिर आरोहण स्वयं किया।।

तत्पश्चात् रथ हाथी, और अश्वारोही सब। बहुभारी सेना लेकर, चले इन्द्रप्रस्थ की ओर तब।।
मृदंग नगारे ढोल और, शंखों के स्वर गूंज उठे। नरसिंगों की उच्च ध्वनि, मानो हर दिक् में गूंजे।।

श्री कृष्ण की पत्नियाँ, अपनी सन्तानें संग लिये। सुन्दर वस्त्र और आभूषण, सबने थे पहने हुए।।
चन्दन और अंग राग से, पुष्पादि से थीं सजीं। डोली रथ और स्वर्ण पालकियों, पर थीं सारी ही चढ़ीं।।
अपने पति श्री कृष्ण के, पीछे पीछे वे चलीं। रक्षक पैदल सैनिकों के, हाथों में ढाल तलवार थमी।।

इस विधि अनुचरों की भी, पत्नियाँ और वारांगनाएँ। सबकी सब थीं चल रहीं, भली भाँति श्रृंगार किये।।
खस आदि की झोंपड़ी, तम्बू कनात कम्बल आदि। बैलों भैसों और खच्चरों पर, सारी सामग्री लाद करी।।
पालकी ऊंठ छकड़ों और, हथिनियों पे सवार हुईं। सब श्री कृष्ण के साथ थीं, यज्ञ देखने जा रहीं।।

ज्यों महामत्स्य और लहरों की, हलचल से क्षुब्ध सागर सोहे। त्यों ही कोलाहल परिपूर्ण, लहराते हुए पताका से।।
छत्र चंवर और अति श्रेष्ठ, विभिन्न अस्त्रों से। वस्त्र आभूषण मुकुट और, कवच पे गिरती किरणों से।।
श्री कृष्ण की सेवा वह, थी अति शोभित हो रही। राजसूय के दर्शन को, मन में सबके उत्सुकता थी।।

देवर्षि श्री नारद थे, श्री कृष्ण से सम्मानित हुए। श्री हरि के इस निश्चय से, देवर्षि अति प्रसन्न थे।।
प्रभु दर्शन से उनका हृदय, इन्द्रियाँ सब परितृप्त हुईं। विविध सामग्री से पूजी, श्री कृष्ण ने उनको विदा थी दी।।
देवर्षि नारद ने भी, मन ही मन उन्हें प्रणाम किया। दिव्य मूर्ति हृदय में धर, आकाश मार्ग प्रस्थान किया।।
मगधराज के बन्दी जन, नरपतियों का था दूत आया। श्री कृष्ण ने अपनी मधुर, वाणी में उसे यूँ कहा।।
अपने राजाओं से जा, हे दूत तुम यूँ कहना। कल्याण ही होगा तुम सबका, अब भयभीत न तुम रहना।।
शीघ्र ही जरासन्ध का, वध अब मैं करवाऊँगा। तुम लोगों की सारी व्यथा, दूर ही मैं कर जाऊँगा।।

भगवान की ऐसी आज्ञा पा, वह दूत गिरिव्रज चला गया। ज्यों का त्यों भगवान का, संदेशा जा उनको दिया।।
कारागृह से छूटने को, वे सब राजा थे उत्सुक। प्रभु के शुभ दर्शन की वह, थे बाट देखते रात दिवस।।

हे राजन् कृष्ण फिर, यात्रा पे हुए अग्रसर। आनर्त सौवीर और मरु, कुरुक्षेत्र लिये पार कर।।
उनके बीच के गिरि नदी, नगर गांव और बस्तियां। खानें भी सब पार करीं, काफिला उनका आगे बढ़ा।।

दृषद्वती और सरस्वती, यह नदियाँ राह में थीं आतीं। पार करी पहुँचे पांचाल, फिर मत्स्य देश भी पार करी।।
तत्पश्चात् भगवान कृष्ण, इन्द्रप्रस्थ में जा पहुँचे। दुर्लभ दर्शन श्री कृष्ण के, आने के जो समाचार मिले।।

अजातशत्रु युधिष्ठिर का, रोम रोम ही खिल उठा। आचार्य बन्धु बान्धव सहित, नगर से निकले बाहर आ।।

मंगल गीतों की ध्वनि, थी आकाश में गूंज रही। वाद्यों के संग संग उठे, वेदोच्चारण के स्वर भी।।
सब मिलकर बहुत आदर से, स्वागत उनका करने चले। ज्यों इन्द्रियां सारी मिलकर, मुख्य प्राण को मिलन चलें।।

भगवान को देख युधिष्ठिर का, हृदय प्रेम से भर आया। बहुत दिनों के बाद ही, सौभाग्य यह था उन्होंने पाया।।
बार बार श्री कृष्ण का, आलिंगन थे वह कर रहे। हृदय से उन्हें लगाकर के, निज स्नेह प्रकट थे कर रहे।।

श्रीकृष्ण का विग्रह तो, है लक्ष्मी का निवास स्थान। युधिष्ठिर के सब ताप मिटे, दोनों भुजा से उनको थाम।।
सर्वभाव से धर्मराज, आनन्द के सागर में डूबे। नेत्रों से अश्रु बहने लगे, अंग अंग पुलकित हुए।।
इस प्रेम मिलन में उनको कुछ, सुध बुध अपनी नहीं रही। लोक स्मृति भी सारी, विस्मृत उनकी हो गई।।

तत्पश्चात् श्री भीम भी, मातुलेय से गले लगे। श्री कृष्ण बन्धे आलिंगन में, अति आनन्दित भीम हुए।।
प्रेम के आधिक्य में, बाह्य सुधि वह भूल गए। नकुल सहदेव और अर्जुन, फिर बहुत प्रेम से उन्हें मिले।।
अपने प्रियतम श्री कृष्ण का, हार्दिक आलिंगन किया। हृदय का प्रेम नयनों राह, अश्रु बन कर बह निकला।।

अर्जुन ने पुन: श्री कृष्ण का, सप्रेम आलिंगन किया। नकुल और सहदेव ने भी, अभिवादन उनका किया।।
ब्राह्मणों को और कुरुकुल के, वृद्ध बन्धु बान्धव को। श्री कृष्ण ने अभिवादन किया, था सबके यथायोग्य जो।।

कुरु सृंजय और केकय, देश के थे जो नरपति। सम्मान किया श्री कृष्ण का, मान के उनको श्री हरि।।
श्री कृष्ण ने भी सबका, यथा उचित सत्कार किया। सूत मागध बन्दीजन, और द्विजों ने भी स्तुति गान किया।।
गन्धर्व नट विदूषक भी, नृत्य गान करने लगे। मृदंग शंख नगारे और, वीणा ढोल बजाकर के।।
कमल नयन श्री कृष्ण को, वह मुदित करने लगे। अपनी सारी कला ही वह, उनके चरण में धरने लगे।।

परम यशस्वी कृष्ण ने, सुहृद् सज्जनों के सहित। इन्द्रप्रस्थ में प्रवेश किया, जो सब भाँति था सज्जित।।
सभी लोग परस्पर मिल, थे कृष्ण की चर्चा कर रहे। चहुँ ओर श्री कृष्ण के, गुणगान के ही चर्चे थे।।

इन्द्रप्रस्थ के राजपथों पर, सुरभित जल था छिड़का गया। मतवाले हस्तिन् के मद की, गन्ध से था वायु भरा।।
जगह जगह पर रंग रंग की, झण्डियाँ थीं लगाईं गईं। स्वर्णमय तोरण थे बन्धे, स्वर्णकलश थीं जल से भरीं।।
नगर के नर नारी भी सब, पावन स्वच्छ और थे सजे। नव वस्त्राभूषण पुष्पहार, इत्रादि थे धारण किये।।

घर घर में जगह जगह, दीपक थे जलाये गए। दीपावली की छटा समान, थे नर जगमग हुए।।
घर के झरोखों से छनकर, अगर का धूम्र था निकल रहा। हर घर के ऊपर फहराई, थी सुन्दर सी एक ध्वजा।।

स्वर्ण कलश और चाँदी के, शिखर थे जगमग कर रहे। श्री कृष्ण भी शनै: शनै:, परिवार सहित थे बढ़ रहे।।
महलों से भरी पाण्डवों की, राजधानी को देखते। इन्द्रप्रस्थ की नगरी में, वह प्रवेश थे कर रहे।।

युवतियों ने जब सुना, श्री कृष्ण हैं पथ पे आ रहे। मानव नेत्रों के दर्शन का, चरम लक्ष्य ही तो हैं वे।।
अति उत्सुक वह दर्शन को हुईं, अस्त व्यस्त उनके वस्त्र हुए। साड़ी की गांठ और चोटी के, फूल थे उनके बिखर रहे।।
घर का काम काज छोड़ा, सोया हुआ पति भी छोड़ा। श्री कृष्ण का दर्शन पाने को, राजपथ को मुंह मोड़ा।।

सड़क पे थी बहुत भीड़ लगी, श्री कृष्ण की सारी सेना की। हाथी घोड़े रथ पैदल, चतुरंगी सेना उनकी थी।।
अटारियों पे चढ़ी उन्होने, श्री कृष्ण का दर्शन किया। रानियों सहित करी उनपर, फिर फूलों की ही वर्षा।।
मन ही मन श्री कृष्ण का, प्रेमालिंगन उन्होने लिया। प्रेममयी मुसकान और, चितवन से सुस्वागत किया।।

शशि संग आकाश में ज्यों, तारों की शोभा रहे। श्री कृष्ण पत्नियों सहित, थे राजपथ से जा रहे।।
नगर नारियां आपस में, फिर बातें यूँ करने लगीं। इन बड़भागी रानियों की, तो है अर्जित पुण्य बड़ी।।
जिस कारण श्री पुरुषोत्तम, कृष्ण इनको प्राप्त हुए। उन्मुक्त हास्य कटाक्ष से, उनके मन नित्यानन्द भरें।।

श्री कृष्ण इस भान्ति थे, राजपथ पे जा रहे। निष्पापी धनी मानी और, शिल्पकारों ने मान किये।।
मंगल सामग्री से उनका, पूजन और अर्चन किया। सभी नागरिकों ने उनका, सर्वविधि सम्मान किया।।

अन्त:पुर की स्त्रियां भी, श्री कृष्ण देखी आनन्द भरीं। प्रेम और आनन्द से, नेत्र प्रफुल्लित उनकी हुईं।।
प्रेममयी चितवन से ही, श्री कृष्ण का स्वागत किया। इस भाँति श्री कृष्ण ने, राजमहल में कदम धरा।।

भ्रातृ पुत्र श्री कृष्ण को, बुआ कुन्ती ने जब देखा। त्रिभुवन पति को देखकर, हृदय में प्रेम उमड़ आया।।
पलंग से उठ निज पुत्रवधु, द्रौपदी के संग वह आईं। कृष्ण को हृदय लगाया उन्होने, परिपूर्ण तृप्ति उन्होने पाई।।

देवादिदेव श्री कृष्ण को, राजमहल भीतर लाये। अति प्रेम और आदर सहित, युधिष्ठिर आत्म विस्मृति पाये।।
किस क्रम से पूजा करें, विधि विधान भी भूल गए। प्रेमोद्वेग में विधि की, याद ही किसको रह सके?
बुआ कुन्ती और गुरुजन की, भार्याओं का किया अभिवादन। बहिन सुभद्रा द्रौपदी ने, श्री कृष्ण का किया अभिवादन।।

निज सास से थी प्रेरित हुई, द्रौपदी फिर आगे बढ़ी। वस्त्राभूषण मालादि, रानियों को स्वागत में दी।।
रुक्मिणी सत्यभामा भद्रा, जाम्बवती कालिन्दी का। लक्ष्मणा साध्वी सत्या और, मित्रविन्दा कर स्वागत किया।।
इन पटरानियों के सहित, जो अन्य रानियां थीं आईं। यथायोग्य सत्कार किया, रीति के अनुसार ही।।

महाराज युधिष्ठिर ने श्री, कृष्ण को वहाँ पे ठहराया। उनकी सेना सेवकों सहित, पत्नियों को वह स्थान दिया।।
नित्य नव सुख सामग्री, जहाँ पे उनको प्राप्त हो। किसी प्रकार की सुविधा का, जहाँ पे न अभाव हो।।

अर्जुन संग रह श्री कृष्ण ने, खाण्डव वन दहन कराया था। अग्नि को था तृप्त किया, मायासुर को बचाया था।।
उस मायासुर ने ही फिर, श्री हरि की आज्ञा पाकर। श्री युधिष्ठिर के लिये, इक दिव्य सभा तैय्यार दी कर।।

युधिष्ठिर के हृदय में फिर, अति आनन्द भरने के लिये। अनेकों मास तक श्री कृष्ण, इन्द्रप्रस्थ में ही रहे।।
समय समय पर अर्जुन संग, रथ पर वह होते सवार। इधर उधर प्रदेशों में, दोनों मिल करते विहार।।
महावीर सैनिक भी तब, उनकी सेवा में संग रहते। इस भाँति आनन्द से, श्री कृष्ण इन्द्रप्रस्थ में रहे।।

२०) जरासन्ध का वध और बन्दी राजाओं की मुक्ति

शुकदेव बोले,
बहुत ऋषि ब्राह्मण क्षत्रिय, वैश्य आचार्य कुलवृद्धों से। बन्धु बान्धव कुटुम्बी और, भीमादि भाईयों से घिरे।।
महाराजा युधिष्ठिर ने, सम्बोधित फिर श्री कृष्ण किये। राज्य सभा में सब सम्मुख, श्री कृष्ण से यूँ कहने लगे।।

युधिष्ठिर बोले,
हे गोविन्द मैं सर्वश्रेष्ठ, राजसूय करना चाहूँ। आपका और विभूति रूप, देवों का यजन करना चाहूँ।।
हे प्रभु अब करें कृपा, पावन संकल्प यह पूर्ण हो। आपकी चरण पादुका से, सभी अमंगल दूर हों।।
निरन्तर सेवन ध्यान और, स्तुति गान करें जो दिन रात। वह ही हैं पावन वास्तव में, नहीं जन्म मरण सके उनको बान्ध।।
यदि कभी संसार के भी, विषयों की वह अभिलाषा करें। उनकी भी प्राप्ति उन्हें, सहज स्वत: ही हो जाये।।
किन्तु जो प्राणी आपकी, चरण शरण न ग्रहण करे। मुक्ति तो बहुत दूर रही, उसे जग के भोग भी नहीं मिलें।।

हे देव मैं यह चाहूँ, सेवा प्रभाव यह जग देखे। कुरु सृंजयवंशी नरपति, जो नित्य आपका भजन करें।।
और अन्य सब राजा जन, भजन जो आपका न करें। हे प्रभु उनका अन्तर आप, जनता को अब दिखला दें।।

हैं सबके आत्म स्वरूप आप, समदर्शी और हैं परं ब्रह्म। हैं साक्षात् आत्मानन्द, नहीं अपना पराया भेद भ्रम।।
फिरभी जो सेवा करें, भावानुकूल उन्हें फल मिले। ज्यों कल्पवृक्ष भी भाव के, अनुरूप ही फल दे दे।।
उसमें न्यूनता अधिकता, सेवा के अनुकूल ही हो। परस्पर विषमता आदि का, दोष नहीं वहाँ कोई हो।।
भगवान बोले,
हे रिपुदमन श्री धर्म राज, है अत्युत्तम निर्णय यह। मंगलमय आपकी श्री कीर्ति, इससे विस्तृत हो लोकों में।।
यह राजसूय का महायज्ञ, ऋषियों पितरों और देवों को। बन्धु बान्धव और हम सब, प्राणी मात्र को अभीष्ट हो।।

पृथ्वी के सभी राजाओं को, हे राजन् आप जीत लें। सारी पृथ्वी वश में करके, एकत्रित यज्ञ सामग्री करें।।
फिर इस महायज्ञ का आप, अनुष्ठान करें राजन्। चारों ही भाई आपके, हैं इन्द्र वायु आदि के अंश।।
वे सब ही हैं महावीर, हैं परम मनस्वी संयमी आप। अपने सद्गुण कारण सबने, किया अपने वश में मुझको आज।।
जिन लोगों की इन्द्रियाँ, और मन उनके वश में न हो। हे राजन् यह जानें आप, नहीं कर सकें मुझे वश में वो।।

निज तेज, यश लक्ष्मी एवं, ऐश्वर्य और सौन्दर्य से। कोई श्रेष्ठतम देव भी भक्त का, तिरस्कार नहीं कभी कर सके।।
फिर साधारण सा कोई नरपति इस पृथ्वी का कभी। नीचा उसे दिखा पाये, कहाँ हो सम्भावना इसकी कभी?

शुकदेव बोले,
श्री हरि की यह बात सुनी, युधिष्ठिर मन आनन्द भरा। प्रफुल्लित मुख से भाइयों को, दिग्विजय आदेश दिया।।
श्री कृष्ण ने पाण्डवों में, निज शक्ति का संचार किया। विष्णु तेज से ही उनका, अंग अंग था भर गया।।

सृञ्जीवंशी नरपतियों संग, सहदेव को भेजा दक्षिण में। मत्स्य वंश के वीरों संग, नकुल को भेजा पश्चिम में।।
केकय देश के वीरों संग, अर्जुन को उत्तर में भेजा। मद्र देश के वीरों संग, भीम को पूर्व में भेज दिया।।

भीमादि सब वीरों ने, अपने बल और पौरुष से। सब ओर के नरपति, सहज में ही जीत लिये।।
महाराज युधिष्ठिर को, बहुत सा धन लाकर दिया। राजसूय यज्ञ हेतु, उनका मन अति उद्यत था।।

जब महाराजा ने सुना, नहीं जरासन्ध अभी जीता गया। इस कारण चिन्ता से वा, मन ग्रसित ही हो गया।।
श्री कृष्ण ने तब उनको, वही उपाय कह दिया। जो उद्धव ने श्री कृष्ण को, द्वारिका में सुझाया था।।

तत्पश्चात् भीम अर्जुन और उनके संग श्री कृष्ण भी। जा पहुँचे गिरिव्रज में, तीनों ही ब्राह्मण रूप धरी।।
जरासन्ध के राज्य की, थी राजधानी वही राजन्। था ब्राह्मणों का वह भक्त, गृहस्थ धर्म करतास पालन।।
जरासन्ध अतिथियों का, स्वागत सत्कार थे कर रहे। ब्राह्मण वेषधारी तीनों, क्षत्रियों ने यह वचन कहे।।

ब्राह्मण बोले,
कल्याण हो आपका हे राजन्, हम बहुत दूर से आये हैं। आपके हैं अतिथि हम, प्रयोजन एक ही लाये हैं।।
इस कारण हे राजन् हम, आपसे जो भी मांग लें। आप समान ब्राह्मण भक्त, हम जाने निश्चित वह दें।।

तितिक्षु के लिये सहज है, संसार में सब कुछ सह लेना। दुष्ट पुरुष दूजे का है, बुरा से बुरा भी कर सकता।।
समदर्शी के लिये कभी, कोई पराया नहीं होता। और उदार पुरुष के लिये, सर्वस्व दान भी सहज होता।।

समर्थवान् होकर जो नर, इस नश्वर तन के द्वारा। अविनाशी यश गर न पाये, सत्पुरुष भी गान करें जिसका।।
तो सच जानो उसका जीवन, केवल शोचनीय ही है। जितनी भी निन्दा करें उसकी, वह तो बस थोड़ी ही है।।

हरिश्चन्द्र और रन्ति देव की, नहीं छिपी आपसे है कथा। शिबि बलि व्याध कपोत, ने भी अतिथि हित दान दिया।।
सर्वस्व अपना दान कर, अविनाशी पद प्राप्त किया। इसलिये हे राजन् आप, निराश नहीं हमको करना।।

शुकदेव बोले,
जरासन्ध ने हे राजन्, उन लोगों की आवाज सुनी। कलाई पर धनुष की, प्रत्यंचा की रगड़ देखी।।
आकृति भी उनकी देखकर, उसने यह पहचान लिया। ब्राह्मण तो यह हो न सकें, क्षत्रियवत् डीलडौल इनका।।
अब वह यह सोचने लगा, कहीं पे देखा भी है इन्हें। इनकी आकृति को देख के, परिचित का सा आभास होए।।

फिर मन ही मन सोचा उस, क्षत्रिय होकर भी बने ब्राह्मण। भय के कारण ही इन्होने, ऐसा रूप किया धारण।।
जब भिक्षा मांगना ही चाहें, जो चाहें इनको दूँगा मैं। याचक को अपना प्रियतम, दुस्त्यज यह तन भी दूँगा मैं।।

प्रभु विष्णु ने धरी द्विज वेष, धन ऐश्वर्य बलि का छीना। फिर भी बलि की पावन कीर्ति, का चहुँ ओर विस्तार हुआ।।
आज भी बहुत आदर से, उसके गुण गायें सब ही। बलि से इन्द्र की लक्ष्मी छीन, इन्द्र को ही लौटा थी दी।।
इस कारण ही विष्णु ने, ब्राह्मण वेश था धर लिया। बलि ने ब्राह्मण रूप धरी, विष्णु को था पहचान लिया।।
शुक्राचार्य ने बलि को फिर, इस दान से रोका भी था। किन्तु वचन बद्ध थे वह, बलि ने पृथ्वी का दान दिया।।

मैं तो जानूँ निश्चय से, यह तन तो है मृत्यु धर्मा। इस तन राही यश का अर्जुन, ही है जीवन सार्थक करता।।
जो क्षत्रिय ब्राह्मण हित में, जीवन धारण यह नहीं करे। व्यर्थ में ही वह बोझ बनी, इस धरती पर विचरा करे।।

जरासन्ध की बुद्धि तो, अति उदार थी हे राजन्। विचार करी कहा उनको, जो थे बने हुए ब्राह्मण।।
हे ब्राह्मण गण मुझसे आप, यथेच्छित वस्तु माँग लो। सीस भी अपना मैं दे दूँ, यदि आप मुझसे चाहो।।

भगवान बोले,
हे राजन् हम ब्राह्मण तो, अन्न के इच्छुक हैं नहीं। वास्तव में हम क्षत्रिय हैं, हैं हम युद्ध के इच्छुक ही।।

यदि आप चाहें राजन्, तो एक ही भिक्षा हमको दें। द्वन्द्व युद्ध हो आपसे, हम तो बस इतना चाहें।।
यह हैं पाण्डु पुत्र भीम, और यह इनका भ्राता अर्जुन। इन दोनों का मातुल्य हूँ मैं, आपका पुरातन वैरी कृष्ण।।

शुकदेव बोले,
जब श्री कृष्ण ने इस विधि, अपना परिचय उसे दिया। तब राजा ने उच्च स्वरों में, हंसकर उनको यूँ कहा।।
अरे मूर्खों गर मुझसे, युद्ध ही तुम करना चाहो। प्रार्थना तव स्वीकार करूँ, मेरे सामने आ जाओ।।

अति भीरु हो कृष्ण तुम, युद्ध में तुम घबरा जाओ। मम भय से मथुरा छोड़ी, समुद्र शरण में जाय छिपो।।
इस कारण तुम सं तो, द्वन्द्व युद्ध मैं नहीं करूँ। अर्जुन भी नहीं समान मेरे, इससे भी न मैं लड़ सकूँ।।
आयु में मुझसे छोटा है, बल में भी मेरे समान नहीं। युद्ध कौशल में किसी विधि, मुझ सम यह बलवान् नहीं।।

अब भीम की बात रही, वह तो है मेरे जैसा ही। दोनों का हो द्वन्द्व युद्ध, यह तो हो सके सम्भव भी।।
यह कहकर जरासन्ध ने, भीम को इक महागदा दी। स्वयं उठा दूजी गदा, नगर बाहर प्रस्थान करी।।

रणोन्मत्त दोनों ही वीर, अखाड़े में जा हुए खड़े। परस्पर भिड़े वह वज्र सम, गदा की चोट वह करने लगे।।
दाएं बाएं भाँति भाँति के, पैंतरे थे वह बदल रहे। ऐसे थे वह शोभायमान, ज्यों नट युद्ध का अभिनय करें।।

इक योधा की गदा जब, दूजे से जा टकरा जाती। तो ऐसा था भासता ज्यों, दो हाथी की भिड़ाव हुई।।
उनके दान्त आपस में भिड़, यूं घर्षण करने ज्यों लगें। यूं भासे भीषण दामिनी ज्यों, आकाश में ही कड़का करे।।

क्रोधोन्मत्त हो दो हाथी, आपस में जब भिड़ने लगें। आक की डाली तोड़ तोड़, इक दूजे पे प्रहार करें।।
त्यों जरासन्ध और भीम, वेग से गदा चलाने लगे। कन्धे कमर हाथ पांव, हंसलियों पे वार करने लगे।।
इक दूजे की चोट से, ज्यों डालियां चूर्ण हों हो रहीं। उनके अंगों से टकरा, गदायें चूर्ण त्यों होने लगीं।।

गदायें चूर्ण जब हो गईं, दोनों ने निज मुष्टि बान्धी। वेग से मुष्टि प्रहार कर, हनन यत्न होने लगी।।
उनका मुष्टि प्रहार भी, लोहे के घन के समान था। उसका स्वर भी बिजली की, गर्जन से कुछ कम न था।।

जरासन्ध और भीम, हर विधि समान ही थे राजन्। गदा कौशल बल उत्साह, उनका था इक समान राजन्।।
नहीं शक्ति तनिक भी क्षीण हुई, अनेकों दिन ही बीत गए। निरन्तर ही प्रहार हुए, पर विजय पराजय हो न सके।।

रात्रि समय दोनों ही वीर, मित्र समान थे हो जाते। दिन चढ़ते ही इक दूजे पे, प्रहार के क्रम शुरू होते।।

इस प्रकार लड़ते लड़ते, सत्ताईस दिन जब बीत गए। अट्ठाईसवें दिन श्री भीम, फिर बोले श्री कृष्ण से।।
इस युद्ध में तो भाई मेरे, नहीं जीत सकूँ मैं जरासन्ध। इसकी शक्ति का तो कहीं, दीखे ही न मुझको अन्त।।

जरासन्ध की जन्म मृत्यु का, रहस्य कृष्ण तो जाने थे। राक्षसी ने था जोड़ा तन, दिया जीवन दान यह जाने थे।।
भीम के तन में फिर, निज शक्ति का संचार किया। फिर उपाय सोचा उन्होने, जरासन्ध के ही वध का।।

भगवान कृष्ण का ज्ञान तो, अमोघ है राजन् जान लो। मृत्यु उपाय उन्होने जान लिया, फिर भीम को उन्होने संकेत कियो।।

इक वृक्ष की डाली ले उन्होने, उसे दो भाग में चीर दिया। उनके इस संकेत को, महावीर भीम ने समझ लिया।।

जरासन्ध के चरण पकड़, उसे धरती पर फिर दे पटका। इक चरण दबाया चरण से, दूजे को हाथों से पकड़ा।।
भीम के तन में फिर, निज शक्ति का संचार किया। फिर उपाय सोचा उन्होने, जरासन्ध के ही वध का।।

भगवान कृष्ण का ज्ञान तो, अमोघ है राजन् जान लो। मृत्यु उपाय उन जान लिया, फिर भीम को वा संकेत कियो।।
इक वृक्ष की डाली ले उन्होने, उसे दो भाग में चीर दिया। उनके इस संकेत को, महावीर भीम ने समझ लिया।।
जरासन्ध के चरण पकड़, उसे धरती पर फिर दे पटका। इक चरण दबाया चरण से, दूजे को हाथों से पकड़ा।।
फिर उसका तन भीम ने, इस विधि दो में चीर दिया। जैसे वृक्ष की डाली ही, कोई गजराज हो चीर रहा।।

जरासन्ध का तन देखा, जनता ने दो भागों में बंटा। इक इक चरण जंघा भुजा, नेत्र कानादि अलग हुआ।।
मगधराज की मृत्यु पर, हाहाकार प्रजा में मचा। कृष्णार्जुन ने भीम का, आलिंगन कर सत्कार किया।।

शक्तिमते श्री कृष्ण का, स्वरूप कोई न समझ सके। वास्तव में सब जीवों के, हैं जीवन दाता वह ही रे।।
जरासन्ध के सिंहासन पर, पुत्र सहदेव को बिठलाया। कारागृह में बन्दी हुए, राजाओं को छुड़वाया।।

शुकदेव बोले,
बीस सहस्त्र आठ सौ राजा, जरासन्ध ने थे जीते। पर्वतों की घाटी में, थे एक दुर्ग में बन्दी किये।।
श्री कृष्ण ने उनको मुक्त किया, निकल के वह बाहर आये। तन और वस्त्र उनके राजन्, अति मलिन थे हो रहे।।

क्षुधा से थे दुर्बल हुए, मुख उनका था सूख गया। बन्दीगृह में रहने से, था अंग अंग ढीला पड़ा।।
कारागृह से निकलते ही, भगवान को सामने उन देखा। वर्षा के घन मे सम, श्यामल शरीर ही था उनका।।
रेशम का इक अति सुन्दर, पीताम्बर था फहरा रहा। शंख चक्र और गदा पद्म, सहित थी उनकी चार भुजा।।
वक्ष:स्थल पर श्री वत्सचिन्ह, था स्वर्ण रेखा में बना। थे रत्नारे नयन उनके, ज्यों भीतरी भाग हो कमल का।।

सुन्दर मुख उनका मानो, है प्रसन्नता का मण्डल। कानों में है लटक रहे, झिलमिल मकराकृति के कुण्डल।।
सुन्दर किरीट मुक्तामाला, कंगन और करधनी चमक रहे। बाजूबन्द भी अपने अपने, स्थान पे सब शोभित हुए।।

कौस्तुभ मणि सोहे कण्ठ में, वनमाला गले में लटक रही। श्री कृष्ण की मनहर छवि देख, नरपतियों की यह स्थिति हुई।।
मानो नेत्रों के प्यालों से, इस छवि का पान वह कर हों रहे। जिह्वा से ज्यों चाट रहे, और नासिका से उन्हें सूंघ रहे।।
अपनी भुजाओं में उनको, ज्यों बान्ध आलिंगन कर रहे। सभी ताप पाप उनके, श्री कृष्ण दरस से शान्त हुए।।
भगवान के चरणों में अपना, सीस उन्होंने धर दिया। इस विधि श्री कृष्ण को, प्रणाम उन्होंने कर दिया।।

श्री हरि के दर्शन पाकर, अति आनन्दित वह हुए। कारागृह के क्लेश सभी, मानो पल में विस्मृत हुए।।
कर जोड़ी विनम्र भाव से, स्तुति प्रभु की गाने लगे। भगवान कृष्ण के सामने फिर, गद्गद् वाणी में यूँ बोले।।

राजा बोले,
हे दु:ख और भयहारी प्रभु, देवादि देव श्री देवेश्वर। आपके ही हम शरण पड़े करें नमन आपको हे ईश्वर।।

जरासन्ध के बन्दीगृह से, आपने हमें छुड़ा दिया। अब जन्म मृत्यु के चक्र से, भी कल्याण करें हमारा।।
इस चक्र में दु:ख ही दु:ख देखी, हे प्रभु हम हैं ऊब गए। आप ही रक्षा करें नाथ, आपकी ही हम शरण पड़े।।

हे मधुसूदन स्वामी हमारे, नहीं जरासन्ध का दोष कोई। यह तो प्रभु है आपकी, हम पर बहुत ही कृपा हुई।।
नरपति कहलाने वाले प्रभु, हम तो जीव हैं अति तुच्छ। अनुग्रह करके आपने, किया राज्यलक्ष्मी से हमें च्युत।।

राजैश्वर्य के मद में जो, राजागण उन्मत्त हैं हुए। सच्चे सुख कल्याण को, प्राप्त नहीं वह हो सकते।।
हैं आपकी माया से मोहित, अनित्य को नित्य वह मान रहे। क्षण भंगुर सम्पद् के ही, मोह में वह भरमाये रहें।।
ज्यों मूढ़ मृगतृष्णा के, जल को जलाशय मान लें। त्यों ही इन्द्रियासक्त मूढ़, वैकारिक को ही नित्य मानें।।

हे प्रभु पहले तो हम, अन्धे थे धन ऐश्वर्य में। इस धरती को जीतने के, चक्कर में थे हम पड़े।।
इक दूजे से होड़ करी, निज प्रजा का नाश थे हम करते। हम लोगों के जीवन तो, नित्य क्रूरता से थे भरे।।
अपने ही ऐश्वर्य के, मद में थे मदोन्मत्त हम। हैं मृत्यु रूप में आप खड़े, इस शाश्वत सत्य को भूल हम।।

अति गहन गति है काल की, है महा बलवान् यह। यह भी हम भूले प्रभु, यह किसी के टाले नहीं टले।।
हमको इस काल ने श्री हीन, और निर्धन था कर दिया। अहैतुकी इस अनुकम्पा से, दम्भ हमारा चूर्ण हुआ।।
अब हम आपके चरण कमल, का ही सिमरन् करते हैं। हे प्रभु हम आपके ही, शरणापन्न हो बैठे हैं।।

यह तन तो दिन प्रति दिन, क्षीण ही होता जाता है। है रोगों की यह क्रीड़ा स्थली, नित्य क्षय ही होता जाता है।।
इस तन के द्वारा ही जो, राज्य भी भोगा जाये। नहीं उसकी अभिलाषा हमें, है मृगतृष्णा का जल ही वह।।
कर्मों के ही फल स्वरूप, स्वर्गादि भी जो मिलें। उन सब की भी हे प्रभु, है नहीं अभिलाषा हमें।।
केवल पुष्पित वाणी समान, सुनने में ही वह प्रिय लगें। उन सबकी निस्सारता, वास्तविकता में हम जानें।।

अब कृपा करके प्रभु, उपाय हमें वह बतलायें। जिससे आपके चरण कमल, विस्मृत कभी न हो पायें।।
चाहे संसार की किसी भी, योनि में हम जन्म लें। आपके चरण कमल की प्रभु, स्मृति सदा ही बनी रहे।।

चरणारविन्द में आपके, हे प्रभु जो प्रणाम करें। उनके कष्ट क्लेश दु:ख, आप स्वयं ही सारे हरें।।
हे कृष्ण वासुदेव हरि, परमात्म गोविन्द हे। आपके श्री चरणों में ही, है हमारा नमन हे।।

शुकदेव बोले,
कारागृह से मुक्त हुए, राजाओं ने जब स्तुति करी। करुणासिन्धु श्री कृष्ण ने, अति मधुर वचन उनको कही।।

भगवान बोले,
हे राजाजन तुम लोगों ने, है आज जो इच्छा प्रकट करी। तदनुसार आज से ही, सुदृढ़ भक्ति मुझमें होगी।।
निश्चित ही तुम यह जान लो, मैं ही हूँ सबका आत्मा। सबका स्वामी भी मैं हूँ, और मैं ही हूँ परमात्मा।।

है अति सौभाग्यपूर्ण और, आनन्द दे है तुम्हारा निर्णय। सत्य ही हैं वह वचन भी, जो तुमने मुझसे कहे।।
मैं जानूँ धन और सम्पद् के, ऐश्वर्य के मद में चूर हो। बहुत जीव संसार के, उच्छृंखल और मतवाले हों।।

हैहय नहुष वेन रावण, नरकासुर आदि दैत्य जो थे। श्रीमद् के कारण देव और, राजा भी अनेकों च्युत हुए।।

एक बात तुम समझ लो, है ध्रुव सत्य जीवन का यह। यह तन और सम्बन्धी इसके, अन्तवत ही हैं सब यह।।
अत: उनमें न आसक्त हो, मन और इन्द्रिय वश में करो। धर्म से प्रजा को पालो तुम, यज्ञों द्वारा मेरा यजन करो।।

भोग के कारण अब नहीं, सन्तान हो उत्पन्न धर्म अर्थ। वंश परम्परा रक्षण, यह तो है कर्त्तव्य तव।।
प्रारब्ध अनुसार ही जो, दु:ख सुख हानि लाभ मिले। या जन्म मृत्यु जो भी मिले, मम प्रसाद उसे मान के।।
समभाव से उनको सहन करो, चित्त अपना मुझमें लगाकर के। जीवन अपना बिताओ तुम, अब मुझमें ध्यान टिकाकर के।।

देश और सम्बन्धों से, अनासक्त हो जाओ तुम। उदासीन हो सबके प्रति, आत्म राम हो जाओ तुम।।
आश्रम के अनुकूल निज, व्रतों का तुम पालन करो। भजन करो निरन्तर ही, चित्त मुझमें टिका तुम लो।।
ऐसा करने से जानो, मुझको ही प्राप्त हो जाओगे। सत्य ही तुमको मैं कहूँ, मुझ ब्रह्म स्वरूप को पाओगे।।

शुकदेव बोले,
भुवनेश्वर श्री कृष्ण ने, नरपतियों को आदेश दिये। स्नानादि के हेतु फिर, नर नारी बहुत नियुक्त किये।।
जरासन्ध पुत्र सहदेव से, उनका सत्कार करा दिया। राजोचित वस्त्र आभूषण और, माला चन्दन सब दिलवाया।।
भली भाँति उन्होने स्नान किया, वस्त्र आभूषणों से वह सजे। पीने को उत्तम पेय दिये, राज्योचित भोज्य और भोग दिये।।

इस भाँति श्री कृष्ण ने, बन्दी राजा किये सम्मानित। सब क्लेशों से मुक्त हो, सब नरपति हुए अति शोभित।।
कानों में झिलमिल कुण्डल, थे ऐसे उनके चमक रहे। ज्यों वर्षा ऋतु के अन्त पर, तारे हों नभ में चमक रहे।।

स्वर्ण और मोतियों से, श्री कृष्ण ने उनको दिया सजा। श्रेष्ठ अश्वों से जुते हुए, रथों पे उनको दिया बिठा।।
अपनी मधुर वाणी से उन, राजाओं को तृप्त किया। तत्पश्चात् अपने अपने, देशों को उन्हें प्रस्थान किया।।

महाकष्ट से उन्होंने राजाओं को, श्री कृष्ण ने था मुक्त किया। उदारश्रेष्ठ श्री कृष्ण का, सिमरन् नरपतियों ने किया।।
उनके रूप गुण लीला का, चिन्तन वह करते हुए। अपने अपने देश को, सब नरपति फिर चल दिये।।

वहाँ जाकर अपनी प्रजा से, सबने कृष्ण की बात करी। परम पुरुष भगवान की, अद्भुत लीला कथा की कही।।
प्रभु आज्ञा का दक्षता से, फिर वह पालन करने लगे। अपने जीवन को इस विध, सार्थक वह करने लगे।।

इस भाँति श्री कृष्ण ने, जरासन्ध वध करवाया। भीम से द्वन्द्व युद्ध करा, उसको था उन्होने मरवाया।।
उसके पुत्र सहदेव ने भी, सम्मानित उनको किया। भीम और अर्जुन सहित, इन्द्रप्रस्थ की पकड़ी राह।।
इन्द्रप्रस्थ के निकट पहुँच, फिर शंख नाद वीरों ने किया। मित्र गण हुए महामुदित, शत्रुगण को दु:ख ने घेरा।।

इन्द्रप्रस्थ निवासी तो, उस ध्वनि को सुनकर खिल गए। है जरासन्ध मारा गया, उस नाद से यह सन्देश मिले।।
अब राजा युधिष्ठिर का, संकल्प सत्य हो पायेगा। सबने जाना अब राजसूय, यज्ञ यहाँ हो जायेगा।।

भीम और अर्जुन संग, मातुलेय श्री कृष्ण ने। धर्मराज युधिष्ठिर को, वन्दन किये जनार्दन ने।।
फिर उनको सारा वृत्तान्त, गिरिव्रज का बता दिया। जरासन्ध के वध के लिये, जो कृत्य किया सुना दिया।।

भगवान कृष्ण के इस परम, अनुग्रह की जब बात सुनी। महाराजा युधिष्ठिर की, हृदय प्रेम से भर गई।।
प्रेमाश्रु ने नयनों से, फिर बहना आरम्भ किया। वाणी भी गद्‌गद् हुई, मुख से न वचन कोई निकला।।

२१) शिशुपाल वध

शुकदेव बोले,
जरासन्ध के वध की और, महिमा शक्तिमते प्रभु की। धर्मराज युधिष्ठिर ने, हे राजन् जब यूँ सुनी।।
अद्‌भुत यह गुणगान सुनी, अति मुदित वह हो गए। श्री भगवान से फिर राजन्, युधिष्ठिर यूँ कहने लगे।।

युधिष्ठिर बोले,
त्रिलोकी के स्वामी ब्रह्मा, शंकर इन्द्रादि लोकपाल। तरसें प्रभु आपकी आज्ञा को, रहें लालायित वह दिन रात।।
यदि कहीं आज्ञा उन्हें मिले, श्रद्धा से उसे वह सीस धरें। पूर्ण समर्थ लगा अपनी, आज्ञा आपकी वह मानें।।

अति दीन होकर भी हम, निज को मानें भूपति राजा। हैं तो हम दण्ड के ही भागी, किन्तु आप मानें आज्ञा।।
हैं सर्वशक्तिमान् आप, कमलनयन भगवान हैं। आपकी मानुषी लीला में, यह करना अभिनय मात्र है।।

ज्यों उदय अस्त से सूर्य तेज, न वर्धित हो न ही कम हो। वैसे ही किसी कर्म से भी, न उल्लास कोई न ऱ्हास हो।।
सजातीय विजातीय के, भेद से प्रभु हैं आप परे। स्वयं परब्रह्म परमात्म को, कोई भेद प्रभु न छू सके।।

यह मैं मेरा और तू मेरा, अस भाव जो माधव होती है। ऐसी विकृत बुद्धि तो, पशुवत् ही प्रभु होती है।।
अनन्य भक्त हैं आपके जो, यह विकार नहीं उन्हें छू पायें। फिर आपके मन में हे प्रभु, विचार यह कैसे आ पायें?
शुकदेव बोले,
यूं कहकर युधिष्ठिर ने, श्री हरि की फिर अनुमति ली। उचित समय आने पर फिर, सब प्रबन्ध आरम्भ करी।।
फिर वेदवादी ब्राह्मणों को, ऋत्विज आचार्य बना दिया। इसी रूप में राजा ने, इन सबको स्वीकार किया।।

श्री कृष्ण द्वैपायन व्यास देव, भारद्वाज सुमन्तु और गौतम। असित च्यवन वसिष्ठ कण्व, मैत्रेय कवष वैशम्पायन।।
वामदेव सुमति जैमिनी, क्रतु पैल पराशर गर्ग। त्रित विश्वामित्र और अथर्वा, कश्यप धौम्य और शुक्राचार्य।।
आसुरी वीतिहोत्र मधुछन्दा, वीरसेन और परशुराम। अकृतव्रण ही मुख्य ऋत्विज, और आचार्य थे तू जान।।

इसके अतिरिक्त धर्मराज ने, अन्यों को भी बुलवाया। द्रोणाचार्य कृपाचार्य पितामह, को आमन्त्रण भिजवाया।।
पुत्रों सहित धृतराष्ट्र को, संदेशे उन्होंने भेज दिये। दुर्योधन आदि सहित उन्हें, महात्मा विदुर भी न भूले।।

उस राजसूय के दर्शन को, सब ही जन अति उत्सुक थे। सब देश के राजा उनके मन्त्री, कर्मचारी भी सब पहुँचे।।
ब्राह्मण क्षत्रिय वैश्य शूद्र, सब ही चतुर्वर्ण आये। महायज्ञ का दर्शन करने, देश के वासी सब धाये।।

तत्पश्चात् यज्ञभूमि को, ऋत्विज द्विजों ने जुतवाया। उसको जोतने के लिये, सोने का हल इक बनवाया।।
फिर शास्त्रानुसार ही, दीक्षित धर्मराज किये। इस विधि राजसूय के, विधि विधान सब पूर्ण किये।।

प्राचीनकाल में वरुण देव के, यज्ञपात्र सब स्वर्ण के थे। त्यों ही युधिष्ठिर के यज्ञ में, पात्र सभी थे स्वर्ण के।।

पाण्डु नन्दन युधिष्ठिर के, यज्ञ का निमन्त्रण पा। ब्रह्मा शंकर इन्द्रादि सब, इन्द्रप्रस्थ में पहुँचे आ।।
उनके गण और सिद्ध गन्धर्व, विद्याधर नाग मुनि आये। यक्ष राक्षस पक्षी किन्नर, चारण गण भी सब आये।।
महाराजा और रानियाँ भी, इस यज्ञ को देखने आ गये। कोई भी पीछे नहीं रहा, उपस्थित वहाँ पे सभी हुए।।

बिना किसी भी विस्मय के, सबने सत्य यह मान लिया। इस राजसूय यज्ञ हेतु, हैं योग्य युधिष्ठिर सर्वथा।।
क्योंकि श्री कृष्ण के प्रिय भक्त के, लिये तो बड़ी बात नहीं। धर्मराज युधिष्ठिर भी, हैं देवों के समान ही।।
पूर्वकाल में देवों ने, वरुण से ज्यों था करवाया। देवों समान याजकों ने, विधिवत् यज्ञ यह करवाया।।

सोमलता का रस जिस दिन, यज्ञ में था निकालना। भाग्यवान सब याचकों का, और सभी सभासदों का।।
निरीक्षण जो थे कर रहे, यज्ञ की भूल चूक का। अति दक्षता से उन्होने, विधिवत् सब पूजन किया।।

सभी सभासद मिलकर, चिन्तन इस बात का करने लगे। सदस्यों में अब किसकी, पूजा सबसे अग्र आये।।
थी जितनी मति उतने ही मत, नहीं निर्णय सर्वसम्मत हुआ। यह देखी उस सभा में, सहदेव ने यूँ कहा।।

सहदेव बोले,
सदस्यों में सबसे श्रेष्ठ, हैं अग्रपूजा के पात्र एक। यदुवंश शिरोमणि कृष्ण ही, हैं भक्त वत्सल सर्वश्रेष्ठ।।
सब देवों के रूप बनी, यही एक तो प्रकटे हैं। देश काल धन आदि सब, वस्तु भी इनके रूप ही हैं।।

है सारा विश्व ही कृष्णमय, सब यज्ञ भी कृष्ण स्वरूप हैं। भगवान ही अग्नि आहुति और, सब मन्त्रों का रूप हैं।।
ज्ञान मार्ग और कर्म मार्ग, दोनों का हेतु कृष्ण हैं। किस विधि हो प्राप्ति कृष्ण की, यही तो इनका लक्ष्य है।।

इक रस अद्वितीय ब्रह्म हैं वह, जहाँ भेद भाव का नाम नहीं। सब जग उनका ही स्वरूप है, नहीं दूजे का कोई नाम कहीं।।
अपने में रहें स्थित आप, नहीं किसी विकार का काम वहाँ। सृष्टि पालन संहार करें, हैं सब संकल्पमात्र उनका।।
श्री कृष्ण के ही अनुग्रह से, सब कर्मों का अनुष्ठान हो। धर्म अर्थ काम मोक्ष, सब पुरुषार्थ सम्भव हों।।

इसलिये सबसे महान्, हैं भगवान श्री कृष्ण ही। इनकी ही हो अग्रपूजा, है यह सर्वथा उचित ही।।
इनकी पूजा से ही तो, सब प्राणियों की पूजा होती। इसमें ही तो निहित रहती, आपकी अपनी पूजा भी।।

सब जीवों के अन्तरात्मा, पदार्थों में भी वही बसें। भेदभाव से सदा रहित, परम शान्त परिपूर्ण रहें।।
अपने दान धर्म को जो, अनन्त बनाना चाहे कभी। श्री कृष्ण को ही दान करे, है सफलता इसमें ही उसकी।।
शुकदेव बोले,
सहदेव तो श्री हरि की, महिमा को राजन् जाने थे। यह कहकर वह मौन हुए, उनका प्रभाव पहचाने थे।।
यज्ञ सभा में युधिष्ठिर की, जितने भी सभासद थे बैठे। साधु साधु इक स्वर में कहा, सबने उन्मोदन उनके किये।।

धर्मराज युधिष्ठिर ने, द्विजों की यह आज्ञा सुनी। सबका यह निर्णय जाना, अति आनन्दित हृदय हुई।।
प्रेमोद्रेक से विह्वल हो, श्री कृष्ण की करी अग्रपूजा। पत्नी मन्त्री भाई बन्धु, कुटुम्ब भी सारा साथ लिया।।
प्रेम और आनन्द से, श्री हरि के चरण पखारे उन। उन चरण कमल का चरणामृत, किया अपने सीस पे उन धारण।।

फिर रेशम का पीताम्बर और, अमूल्य आभूषण दिये उन्हें। प्रेम आनन्द के अश्रु से, थे उनके नयना भरे।।
अश्रु भरे उन नेत्रों से, प्रभु की छवि न दीखे थी। यह पूजा श्री हरि की देख, सभासदों ने निज कर जोड़ी।।
नमो नम: और जय जय का, महाघोष वह करने लगे। उसीसमय आकाश से, स्वत: पुष्प वर्षित हुए।।

अपने आसन पे बैठा हुआ, शिशुपाल यह सब था देख रहा। श्री कृष्ण का गुणगान सुनी, क्रोध बहुत उसका भड़का।।
आसन से वह उठ खड़ा हुआ, और नहीं वह सह सका। निर्भयता से उठाया हाथ, कटु वचन यूँ कहने लगा।।

हे सभासदो है सत्य ही, श्रुतियों का कहना मानो। काल ही ईश्वर है सबका, सर्वथा सत्य इसे जानो।।
लाख मना करने पर भी, वह अपना काज करा ही ले। इसके प्रत्यक्ष प्रमाण आज, इस सभा में हमने देख लिये।।
मूर्ख बच्चों जैसी यहाँ, बातें सभी हैं कर रहे। वयोवृद्ध ज्ञानवृद्ध सभी, भ्रष्ट मति यहाँ हो गए।।

किन्तु फिर भी मानूं मैं, है यह सर्वथा योग्य ही। अग्रपूजन के हेतु आप, उचित निर्णय ले सकें सभी।।
इसलिये हे सस्पतियो, सहदेव की इस बात पर। ध्यान न दें आप सब, बालक उसको जान कर।।

हैं बड़े बड़े तपस्वी यहाँ, विद्वान और व्रतधारी भी। ज्ञान से ही निज ताप शाप, शान्त कर चुके जो व्रती।।
परम ज्ञानी और परमर्षि, ब्रह्मनिष्ठ भी यहाँ उपस्थित हैं। लोकपाल भी पूजें जिन्हें, ऐसे पूज्य जन भी यहाँ हैं।।

सद्सस्पतियों को छोड़कर, कुल का कलंक यह ग्वाला भला। इस यज्ञ में अग्रपूजन, का अधिकारी कैसे हुआ?
क्या कभी कौवा भी कोई, पुरोडाश का अधिकारी हो? न वर्ण कोई न आश्रम है, न ही कुल इसका उच्च हो।।
सब धर्मों के बाहर है यह, नहीं माने लोक मर्यादा को। वेद को भी न माने यह, स्वेच्छा अनुरूप आचरण हो।।
नहीं इसमें एक भी गुण कहीं, फिर अग्रपूजा यह कैसे हो? इस विषय में निर्णय यह, उचित आपका नाहीं हो।।

आप तो यह सब जाने हैं, ययाति से शापित है वंश। सत्पुरुषों द्वारा जानें, है बहिष्कृत इसका वंश।।
यह सब सर्वदा व्यर्थ में, मधुपान में आसक्त रहें। ऐसे में अग्रपूजन के, योग्य यह कैसे हो सकें?

ब्रह्मर्षियों के द्वारा सेवित, मथुरा नगरी का त्याग किया। वेदचर्चा से विहीन, सागर में दुर्ग बना लिया।।
वहाँ से निकल कर कभी, बाहर जो यह आ जायें। दस्यु की भान्ति ही यह, प्रजा सताते ही जायें।।
शुकदेव बोले,
हे राजन् सच जानो तो, सब शुभ थे उसके नष्ट हुए। इस कारण श्री कृष्ण को, और भी बहुत कटु वचन कहे।।
किन्तु जैसे कोई सिंह कभी, सियार की ध्वनि पे ध्यान न दे। नहीं उत्तर उसका कुछ भी दिया, सब सुनकर भी प्रभु मौन रहे।।

किन्तु वहाँ के सभासद सब, नहीं निन्द यह थे सुन सकते। किसी ने कान ही बन्द किए, कोई बाहर उठकर चले गए।।
किसी ने अति क्रुध होकर, शिशुपाल को गाली दी। विभिन्न विधि से सबने ही, भर्त्सना शिशुपाल की की।।

भगवान की या वा भक्तों की, निन्दा सुन वहाँ से हटे न जो। निज शुभ कर्मों से च्युत होकर, अधोगति को प्राप्त वह हो।।
पाण्डव सत्य कैकय और, सृंजयवंशी नरपति थे जो। शस्त्र वह लेकर हुए खड़े, शिशुपाल के हनन को।।

किन्तु यह सब कुछ देख के भी, न शिशुपाल घबराया तनिक। बिना किसी सोच विचार के, तलवार और ढाल उठा ली उसने।।

भरी सभा में कृष्ण के, सहयोगियों को ललकार लिया। उन लोगों का द्वन्द्व देख, श्री हरि ने आसन अपना त्यजा।।
निज पक्षपाती राजाओं को, कृष्ण ने फिर शान्त किया। अपने में श्री हरि ने फिर, क्रोध का संचार किया।।
उनकी ओर लेकर तलवार, शिशुपाल था लपक रहा। श्री कृष्ण ने तीक्ष्ण चक्र से, पहले ही सीस कटा उसका।।

शिशुपाल के हनन से, बहुत कोलाहल वहाँ पे मचा। उसके अनुयायी राजा सब, करने लगे प्राण रक्षा।।
सबके सब ही उठकर के, उस सभा से भाग ही निकले जा। वहाँ पे बैठे प्राणियों ने, अति अद्भुत एक दृश्य देखा।।
सबके सम्मुख शिशुपाल के, तन से इक ज्योति निकली। उसके तन से निकल करी, श्री कृष्ण में ही वह समा गई।।
ज्यों आकाश से गिरा लूक, धरती में ही समा जाये। सबके देखते देखते ही, शिशुपाल कृष्ण में लीन हुए।।

शिशुपाल के अन्त:करण में भी, वैरभाव की अभिवृद्धि। तीन जन्म से निरन्तर ही, वैर थी वर्धित हो रही।।
द्वेष भाव से ही सही, निरन्तर प्रभु का ध्यान किया। उनका ध्यान किया। उनका ध्यान करते करते, वह उनका पार्षद हो गया।।
सत्य है यह मृत्यु उपरान्त, जो भी गति कभी जिसकी हो। उसके आन्तर का भाव ही, उसकी गति का कारण हो।।

तत्पश्चात् चक्रवर्ती, धर्म राज युधिष्ठिर ने। सदस्यों और ऋत्विजों को, विपुल दक्षिणा दान दिए।।
सबका सत्कार किया उन्होने, विधिवत् यज्ञान्त स्नान किया। इस विधि पाण्डवों का वह, महा यज्ञ सम्पन्न हुआ।।
योगेश्वर श्री कृष्ण ने, राजसूय यूँ करवाया। सुहृद् बान्धव गण के कहे, कुछ मास वहाँ पे निवास किया।।

तत्पश्चात् श्री कृष्ण ने, युधिष्ठिर से फिर अनुमति ली। इच्छा न होने पर भी, विवश ही ज्यों देनी पड़ी।।
निज रानियों और मन्त्रियों के, सहित फिर वह चल दिये। इन्द्रप्रस्थ को छोड़कर, द्वारका पुरी को कृष्ण चले।।

यह आख्यान राजन् तुम्हें, विस्तार से हूँ मैं सुना चुका। बैकुण्ठ वासी जय विजय को, सनकादि ने था शाप दिया।।
इस कारण ही धरती पर, बार बार उन्हें आना पड़ा। निज इष्ट प्रभु विष्णु के, विरोधी का उन्होने रूप धरा।।

राजसूय यज्ञान्त कर, ब्राह्मण क्षत्रियों की सभा में। देव राज श्री इन्द्र सम, युधिष्ठिर अति सुशोभित थे।।
देव मनुज आकाशचारी, सबका ही उचित सत्कार किया। भगवान कृष्ण और यज्ञ की, प्रशंसा से था मन भरा।।
उनकी चर्चा करते हुए, सब अपने अपने लोक गए। सब सुखी हुए यह देखकर, दुर्योधन मन तो डाह से जले।।
यह उज्ज्वल राज्यलक्ष्मी, नहीं पाण्डवों की वह सह सका। पापी कुलनाशक रोग सम, स्वभाव से ही कलह प्रेमी था।।

परम पुरुष श्री कृष्ण की, इस कथा का जो भी श्रवण करे। जरासन्ध वध राजा मुक्ति, यज्ञानुष्ठान का श्रवण करे।।
इसके सिमरन् और कीर्तन से, वह पाप विमुक्त हो जायेगा। श्री हरि की कथा के श्रवण का, ऐसा उत्तम फल पायेगा।।

२२) युधिष्ठिर का राजसूय यज्ञ और दुर्योधन का अपमान

परीक्षित बोले,
अजातशत्रु युधिष्ठिर का, राजसूय यज्ञोत्सव देख। अति प्रसन्न हुए नरपति, ऋषि मुनि और सारे देव।।
किन्तु आपके मुख से सुना, दुर्योधन बहुत पीड़ित हुआ। कृपा करी के आप कहें, इसका था प्रभु कारण क्या?
शुकदेव बोले,
हे राजन् तव पितामह:, युधिष्ठिर थे महात्मा। उनके प्रेम के सूत्र में, बन्धे थे बान्धवजन सदा।।

इस कारण उनके यज्ञ में, स्वीकारे सबने सेवा व्रत। पाकशाला की व्यवस्था में, थे श्री भीम कार्य रत।।
दुर्योधन बने कोषाध्यक्ष, आवाभगत था सहदेव कार्य। विविध सामग्री एकत्रित, करना था नकुल का कार्य।।

गुरुजन की सेवा शुश्रूषा, अर्जुन का ही काम था। चरण प्रक्षालन अतिथिजन का, श्री कृष्ण ने स्वयं सम्भाल लिया।।
द्रौपदी अपने हाथ से, थीं भोजन सभी को परोसतीं। उदार कर्ण के हाथों से, नित्य दान दक्षिणा थी होती।।

इसी विधि सात्यकि और विकर्ण, हार्दिक्य विदुर बह्लीक पुत्र। भूरिश्रवा सन्तर्दन आदि, भिन्न कार्यों में थे नियुक्त।।
अपने अपने स्थानों पर, सब कर्म वही तो करते थे। प्रिय और हितकर युधिष्ठिर के, सब धर्म वह करते थे।।

ऋत्विक् सदस्य बहुज्ञ पुरुष, इष्ट मित्र और बान्धव का। मधुवाणी पूजन सामग्री, और दक्षिणा से सत्कार हुआ।।
भक्तवत्सल प्रभु चरण में जा, शिशुपाल समा गया। तब धर्मराज युधिष्ठिर ने, यज्ञान्त स्नान प्रबन्ध किया।।
अवभृथ अवसर के समय, मृदंग शंख और ढोल बजे। नौबत नगारे नरसिंहे, भाँति भाँति के वाद्य बजे।।

आनन्द में झूम झूम के, नर्तकियाँ नृत्य करने लगीं। गायकों ने भी मिलकर के, नव तानें राग की फिर छेड़ीं।।
वीणा वेणु के साथ साथ, फिर झांझ मंजीरे गूंज उठे। तुमुल ध्वनि इनकी हुई, आकाश भी प्रतिगुंजित हुए।।

सृंजय कम्बोज और कुरु, नरपति केकय कोसल के। अति श्रृंगारित गजराज और, रंग रंग की पताका से सजे।।
रथ अश्व और महावीर, सुसज्जित सैनिक संग लिये। स्वर्ण हार पहने यदुजन, महाराज युधिष्ठिर आगे किये।।
मानो पृथ्वी कंपाते हुए, दल बल सहित थे चल रहे। यज्ञान्त स्नान की यूँ, तैय्यारी थे सब कर रहे।।

यज्ञ सदस्य ऋत्विक् और, बहुत से श्रेष्ठ ब्राह्मण गण। वेदमन्त्रों का उच्च स्वर में, कर रहे थे उच्चारण।।
देव ऋषि पितर गन्धर्व, पुष्प बरसाने लगे। धर्मराज युधिष्ठिर की, स्तुति वह मिलकर गाने लगे।।

इन्द्रप्रस्थ के नर नारी, थे विभिन्न भाँति से सजे। इत्र फुलेल पुष्प हार, वस्त्राभूषण बहुमूल्य थे।।
इक दूजे को विभिन्न रसों, से थे मानो सींच रहे। तन पर इक दूजे के वह, शुभ लेपन थे कर रहे।।
इस विधि क्रीड़ा करते हुए, सब साथ साथ चलने लगे। मंगलमय यज्ञान्त स्नान, करने को सब थे चले।।

तैल गोरस सुगन्धित जल, लेप हल्दी और केसर के। वारांगनाएँ प्रसन्न थीं, पुरुषों पर सब लेपन करके।।
इसी विधि सब पुरुष भी, इन द्रव्यों को लेकर के। उन वारांगनाओं को, थे सराबोर कर रहे।।

इस महोत्सव दर्शन को, देवियां आकाश में आईं। उत्तम विमानों पर चढ़कर, इन्द्रप्रस्थ में वह धाईं।।
त्यों ही सैनिक सुरक्षा में, अनेक राजमहिला आईं। सुन्दर पालकियों पर चढ़, इस अवसर पर थीं आईं।।
पाण्डवों के मातुलेय कृष्ण, और संग में उनके सखा। उन महारानियों पर सबने, विभिन्न भाँति का रंग फेंका।।
उनके मुख फिर लाजभरी, मुसकान से थे खिल उठते। इस भाँति अति शोभित हो, सब ही अति प्रसन्न थे।।

रंग से उन स्त्रियों के, वस्त्र थे सारे भीग गये। उनके तन के अंग अंग, मानो थे उनसे झांक रहे।।
पिचकारी और पात्र में, वे भी रंग थीं भर रहीं। देवर और सखाओं पर, थीं वह उन्हें उढ़ेल रहीं।।
प्रेम की इस उत्सुकता से, थी चोटी भी ढीली पड़ी। उसमें गुंथे फूलों की, इक इक कली थी गिर रही।।

पावन विहार यह देखकर, अशुद्ध चित्त के पुरुष का। काम से मोहित हुआ चित्त, अति चंचल था हो उठता।।

द्रौपदी आदि महारानियों संग, महाराज युधिष्ठिर थे बैठे। स्वर्णहार सुन्दर अश्वों से, उनके रथ से सजे हुए।।
ज्यों राजसूय हुआ मूर्तिमान्, थे वह शोभायमान् हुए। प्रयाजादि क्रियाओं सहित, वह रूप धरी ज्यों हों प्रकटे।।

ऋत्विजों ने फिर विधिवत्, पत्नी संयाज भी करवाया। यज्ञान्त स्नान सम्बन्धी सब, विधि विधान भी करवाया।।
द्रौपदी संग सम्राट् युधिष्ठिर, को आचमन भी करवाया। तत्पश्चात् गंगा स्नान, का उपक्रम उन सबने किया।।
जीवों की दुन्दुभि के साथ, देवों की दुन्दुभियां भी बजीं। महा ऋषि मुनि देव पितर, मनुजों ने पुष्प वर्षा करी।।

महाराज युधिष्ठिर का स्नान, जब गंगा में सम्पन्न हुआ। सभी वर्णों और आश्रमों के, लोगों ने वहाँ स्नान किया।।
महापापी के भी पाप सब, इस स्नान से पावन हो जायें। अपनी पापराशि से सब, तत्काल मुक्त ही हो जायें।।

तदनन्तर धर्मराज ने नव, धोती रेशम की पहरी। अंगवस्त्र भी पहन लिया, विविध आभूषण भी पहरी।।
ऋत्विज सदस्य ब्राह्मण आदि, को भी दिये वस्त्राभूषण। इस भाँति महाराज ने, उन सबका किया पूजन।।

ये महाराजा भगवत्प्रेमी, सबमें भगवान ही देखे थे। भाई बान्धव कुटुम्बी जन, सबका पूजन वह करते थे।।
इष्ट मित्र हितैषी और, सबकी पूजा वह करते थे। सबमें हरि के दर्शन पा, वह नित्य नमन ही करते थे।।

सभी लोग थे देवों के, समान वहाँ शोभायमान्। पहने कुण्डल और पुष्पहार, पगड़ी अंगरखा दुपट्टा तान।।
स्त्री वदन के दोनों कान, थे कर्णफूलों से सजे। घुंघराली काली अलकों से, वह मुख थे शोभित हुए।।
कटि भाग में भी उनके, थीं स्वर्ण की लड़ियां लटक रहीं। इन करधनियों से उनकी, शोभा थी उत्तमतम बनी।।

इस राजसूय यज्ञ में, जितने लोग भी आये थे। ऋत्विज सुशील ब्रह्मवादी, ब्राह्मण क्षत्रिय सब आये थे।।
वैश्य शूद्र राजा और देव, ऋषि मुनि और पितर भी थे। अनुयायियों सहित लोकपालन् की, पूजा करी युधिष्ठिर ने।।
तत्पश्चात् वा अनुमति ले, सब अपने अपने स्थान गए। राजसूय यज्ञ के विधि विधान, सब ही इस विधि पूर्ण भए।।

अमतृ रस का पान कर, ज्यों जीव कभी भी तृप्त न हो। परमभक्त युधिष्ठिर के, महायज्ञ की त्यों ही प्रशंसा हो।।
सब जन उसकी महिमा ही, निरन्तर गाते रहते थे। यह महिमा गा गा कर वह, तृप्त कभी न होते थे।।

अपने सुहृद् बन्धु बान्धव, और कृष्ण को उन्होंने रोक लिया। धर्मराज युधिष्ठिर ने, जाने उनको नहीं दिया।।
उनके वियोग की कल्पना ही, पीड़ित उनको कर देती थी। इस कारण उनकी विदाई की, अवसर उन्होने टाल दी।।

साम्ब आदि यदुवंशी वीर, श्री कृष्ण ने द्वारिका भेज दिये। युधिष्ठिर इच्छा पूर्ण हो, आनन्द उसे देने के लिये।।
स्वयं प्रभु वहीं ठहर गए, पूर्ण मनोरथ उनके किये। धर्मराज युधिष्ठिर के, मनोरथ दुस्तर सिन्धु थे।।
श्री कृष्ण कृपा से ही वह सब, स्वत: पार ही हो गए। अनायास ही सारी चिन्ता से, हे राजन् वह मुक्त हुए।।

प्रभु के प्रिय युधिष्ठिर के, अन्त:पुर का जो सौन्दर्य। सम्पद् यश जो था मिला, राजसूय यज्ञ को कर।।
इक दिन यह सब देख कर, दुर्योधन के मन डाह उठी। ईर्ष्या और द्वेष की अग्न से, अति तप्त हो उसका मन जलने लगी।।

मय दानव मे महल जो, पाण्डव गण के बनाये थे। नर दैत्य सुरपतियों की, विभूतियों से थे वह सजे।।
स्थान स्थान पर स्वर्ग सम, सौन्दर्य था शोभायमान्। द्रौपदी उन सबसे करती, निज पतियों की सेवा महान्।।
उन दिनों उस प्रसाद में, कृष्ण महिषियाँ थीं ठहरीं। धीमी धीमी चाल से वह, उस राजमहल में जब चलतीं।।
उसके नूपुर की झंकार, झंकृत करती सारा महल। उसके संगीत से गूंजते, इन्द्रप्रस्थ के सभी महल।।

कटिभाग भी था उनका सुन्दर, सजी वक्ष:स्थल पे केसर लाल। उसकी लाली से होते लाल, उनके कण्ठ के मुक्ताहार।।
घुंघराली अलकें और कुण्डल, मुख की शोभा थे बढ़ा देते। यह सब देखी दुर्योधन के, हृदय जलन से भर जाते।।
सच जानो तो राजन् उसकी, जलन का मुख्य था कारण एक। दुर्योधन का मन तो था, द्रौपदी में अति आसक्त।।

निज नयन के तारे कृष्ण संग, अपने बन्धु बान्धव सहित। सम्राट युधिष्ठिर थे बैठे, मयदानव निर्मित सभा बीच।।
देवराज सम स्वर्ण सिंहासन, पर थे वह विराजमान्। भोग सामग्री राज्यलक्ष्मी, थी ब्रह्मा के ऐश्वर्य समान।।
बन्दी जन मधुर स्वर में, उनकी स्तुति थे गा रहे। दु:शासन आदि अनुजों सहित, दुर्योधन भी वहाँ आ पहुँचे।।
सिर पे किरीट गले में माल, हाथ में तलवार थी। द्वारपालों और सेवकों को, क्रोध से उसने झिड़क दी।।

उस सभा में मयदानव की, माया थी ऐसी फैली। स्थल को ही जल समझ कर, वस्त्र उसने समेट ली।।
और जल को स्थल ही मान कर, जब उस पर उनका चरण पड़ा। अनायास उस जल में ही, जाकर वह जोर से गिर पड़ा।।

उसको देख के भीम सहित, रानियाँ और नरपति हंसे। युधिष्ठिर ऐसा करने से, उन सबको थे रोक रहे।।
किन्तु संकेत से कृष्ण तो, अनुमोदन थे कर चुके। लज्जित दुर्योधन हो गया, रोम रोम थे क्रोध भरे।।
सभा छोड़ मुंह लटकाये, चुपचाप वह हस्तिनापुर लौटा। यह देखी सत्पुरुषों के, मन में हाहाकार मचा।।
धर्मराज युधिष्ठिर का, मन भी इससे खिन्न हुआ। इतना सब होने पर भी, श्री कृष्ण का मौन नहीं टूटा।।
वह चाहते थे किसी विधि, पृथ्वी का बोझ हल्का होए। सच जानो तो यह भ्रम था हुआ, उनकी ही दिव्य लीला से।।
राजसूय महायज्ञ में, दुर्योधन मन क्यों डाह उठी? यह प्रश्न तुम्हारा था राजन्, उसकी कथा है बतला दी।।

२३) यादववीरों का शाल्व के साथ युद्ध और शाल्व का वध

शुकदेव बोले
मानुषी तनधारी प्रभु का, अद्भुत चरित इक और सुनो। सौभ विमान के स्वामी, शाल्व हनन की अब सुनो।।
शिशुपाल का सखा था वह, रुक्मिणी विवाह में संग आया। जरासन्ध संग यदुपतियों ने, शाल्व को भी था जीत लिया।।

सब नरपतियों के सामने, शाल्व ने भी प्रतिज्ञा ली। यदुवंश का नाश करूँगा मैं, पौरुष मेरा देखना सही।।
यह प्रतिज्ञा करके शाल्व, पशुपति आराधना करने लगा। उन दिनों बस मुट्ठी भर, राख ही वह बस फांके था।।

पार्वती पति श्री शंकर तो, हैं आशुतोष महादानी। शाल्व संकल्प जाना जब, देरी न प्रसन्न होने में लगी।।
एक वर्ष पश्चात् ही, शरणागत पर कृपा करी। उन्होंने प्रकट हो शाल्व से, वर याचना की कही।।

उस समय शाल्व ने, उनसे विमान इक मांग लिया। देव असुर मनुज गन्धर्व, राक्षस और नाग न तोड़ें कदा।।
यथेच्छा उसे ले जा वह विहार कर सके, यादवों लिये हो भयावह। श्री शंकर ने यह सुनकर, तथास्तु उसको कह दिया।।

उनकी आज्ञा पा मय दानव ने, लौह विमान इक ऐसा रचा। विपक्षी विजेता विमान सौभ, शाल्व को फिर दे दिया।।

वह विमान तो जान लो, एक नगर के समान ही था। था अन्धकारमय वा दर्शन, पकड़ना उसको कठिन था।।
निज इच्छा अनुसार उसे, जहाँ चाहे चालक ले जाता। उस विमान को लेकर के, शाल्व जा द्वारका पुरी चढ़ा।।
वृष्णी वंशी यादवों से, द्वेष सदा वा वर्धित था। उनसे वैर को निज मन में, याद सदा वह रखता था।।

महासेना से शाल्व ने, चहुँ ओर से द्वारका को घेरा। फल फूलों से लदे उपवन, उद्यान उजाड़ने वह लगा।।
नगर द्वार और राजमहल, अटारियाँ और दीरें सब। मनोविनोद के स्थान भी, नष्ट भ्रष्ट किये उस सब।।
उस श्रेष्ठ विमान से शाल्व ने, झड़ी लगा दी शस्त्रों की। इस विधि सुन्दर स्थान सब, द्वारका की उस नष्ट करी।।

बड़ी बड़ी चट्टानें वृक्ष, वज्र सर्प और ओले। विलक्षण उस विमान से, द्वारका पर थे बरस रहे।।
बावण्डर फिर ऐसा उठा, चहुँ ओर धूल ही छा गई। उस धूलि से द्वारका, मानो पूर्ण ही ढकी गई।।

त्रिपुरासुर ने पुराकाल में, ज्यों पृथ्वी थी पीड़ित करी। त्यों ही इस विमान ने, द्वारका अति ताड़ित करी।।
वहां के नर नारी सभी, विचलित इससे हो गए। उनको क्षणिक शान्ति भी, पल भर न कभी मिल सके।।

महावीर प्रभु प्रद्युम्न ने, देखा है प्रजा अति कष्ट में। रथ में सवार होकर उन्होंने, ढाढस सभी को बन्धवाये।।
भयभीत न हो यह कह कर, बहुत वीरों को ले संग चले। सात्यकि चारुदेष्ण साम्ब, भाइयों के संग अक्रूर चले।।
कृतवर्मा और भानुविन्द, गद शुक सारण बहुत वीर चले। महावीर धनु: धारण करके, प्रद्युम्न के पीछे हो लिये।।
यह सब ही थे महारथी, कवच इन्होंने पहरे थे। बहुत हाथी अश्व रथ और, थे पैदल सैनिक रक्षा में।।

असुरों के साथ देवों का ज्यों, घोर युद्ध था पहले हुआ। वैसे ही शाल्व की सेना, और यादवों का युद्ध हुआ।।
उसे देख भय के मारे, रोमांचित सब थे हो रहे। प्रद्युम्न के दिव्य अस्त्रों से, पल भर में माया जाल कटे।।
ज्यों सूर्य किरण के सामने, रात्रि का तिमिर न ठहर सके। त्यों ही शाल्व के सैनिक भी, पल भर में सब बिखर गए।।
श्री प्रद्युम्न के बाणों में, थे स्वण पंख और लौह फल। पच्चीस ऐसे बाणों से, किया सेनापति घायल।।

सेनापति के साथ ही, शत बाण शाल्व पर छोड़ दिये। इक इक सैनिक पे एक एक और सारथी पे दस दस छोड़े।।
वाहनों पर भी तीन तीन, बाण उन्होंने दे मारे। यह अद्भुत और महाकर्म, देख के सब ही चकित हुए।।
अपने पराये सब सैनिक, गुणगान उन्हीं का करने लगे। महामना प्रद्युम्न का, कौतुक यह देख सब दंग रहे।।

मयदानव का बनाया हुआ, वह विमान था मायामय। कभी दिखता अनेकों रूपों में, कभी था हो जाता वह लय।।
इस समय वह है कहाँ, यदुवंशी जान ही न पाते। इस कारण विमान को, नष्ट नहीं थे कर पाते।।

कभी पृथ्वी पर आ जाता वह, कभी उड़ता आकाश में। कभी होता पर्वत श्रृंग पर, कभी तेरने लगता वह जल में।।
अताल चक्रवत् ही वह, सदा घूमता रहता था। क्षण भर के लिये ी कभी, अचल नहीं था वह होता।।

विमान और सैनिकों सहित, शाल्व जहाँ भी दिख जाता। वहीं यदुश्रेष्ठ सेनानायक, बाणों की देते झड़ी लगा।।
सूर्य और अगिन्न समान, थे वह बाण अति ज्वलन्त। विषैले सर्प समान ही, वह तो थे अति विषवन्त।।

शाल्व का नगराकार विमान, और सेना अति पीड़ित हुई। यदुवंशियों के बाणों से, शाल्व को मूर्छा प्राप्त हुई।।
शाल्व के भी सेनापति, बाण थे बरसा रहे। यदुवंशी उन बाणों की, वर्षा से पीड़ित हुए।।
किन्तु उन महावीरों ने, अपना मोर्चा न छोड़ा। सोचे थे या तो विजयी होंगे, परलोक अन्यथा सुधरेगा।।

पच्चीस बाण प्रद्युम्न के, शाल्व के मन्त्री ने खाये। अति बलवान द्युमान ने फिर, उनपर गदा प्रहार किये।।
लोहे की उस गदा का, अति भीष्ण प्रहार था। मार लिया मार लिया, यह कही गर्जने वह लगा।।
गदा की चोट से हे राजन्, प्रद्युम्न का वक्ष:स्थल ज्यों फटा। दारुक सुत वा सारथी ने, रणभूमि से उन्हें लिया हटा।।

दो घड़ी में शत्रुदमन, प्रद्युम्न की जब टूटी मूर्छा। सारथी से वह कहने लगे, तुमने बहुत ही बुरा किया।।
रणभूमि से तूने मुझे, हाय क्यों हटा लिया? हमारे वंश का कोई वीर, नहीं रणभूमि से कभी भागा।।
यह कलंक भीरु तूने, मेरे साथ लगा दिया। अति कायर और नपुंसक तू, तूने जो ऐसा काम किया।।
अपने पिता कृष्ण राम के, सामने कैसे जाऊँगा? सब लोग तो यह ही मानेंगे, युद्ध से डर मैं भाग गया।।
उनके पूछने पर कहो, क्या उत्तर मैं दे पाऊँगा? यह कलंक जो माथ लगा, नहीं उसे मिटा मैं पाऊँगा।।

मुझपे हंसेंगी भाभियाँ, पूछेंगी नपुंसक क्यों हुए? अरे वीर तुम युद्ध में, दूजों से कैसे हार गए?
हे सूत यूं रथ को हटा, तूने अपराध अक्षम्य किया। ऐसा लगेगा जैसे मैं, रणभूमि छोड़ के भाग गया।।
सारथि बोला,
आयुष्मन मैंने जो भी किया, सारथि का वह धर्म है। सामर्थ स्वामी मेरे जानें, युद्ध का भी यही धर्म है।।
संकट के समय सारथी ही, रक्षा करे निज रथी की। और इसी विधि रक्षा करे, सारथी की भी रथी।।

शत्रु के गदा प्रहार ने, मूर्छित आपको था किया। इस धर्म अनुसार ही, रण क्षेत्र से दूर मैं ले गया।।
ऐसी अवस्था में स्वामी, यह ही मेरा कर्त्तव्य था। इस कारण ही रणभूमि से, दूर आपको ले गया।।
शुकदेव बोले,
मुंह हाथ धो प्रद्युम्न ने, पहना कवच धनुष पकड़ा। वीर द्युमान के पास चलो, फिर सारथी से ऐसा कहा।।
द्युमान यादव सेना को, उस पल नष्ट था कर रहा। प्रद्युम्न ने उसके पास पहुँच, उसे ऐसा करने से रोका।।
फिर हंसकर द्युमान पर, आठ बाण उन्होंने छोड़ दिये। बाणों से अश्व सारथी ध्वज, धनु: और सीस उसके काटो।।

गद सात्यकि साम्बादि वीर, सेना संहार फिर करने लगे। सौभ विमान से सैनिकों के, सीस सिन्धु में गिरने लगे।।
यादव शाल्व सैनिक इस विधि, प्रहार परस्पर कर थे रहे। सत्ताइस दिन चलता रहा, अति भयानक युद्ध यह।।

धर्मराज के निमन्त्रण पर, श्री कृष्ण गए थे इन्द्रप्रस्थ। राजसूय था हो चुका, शिशुपाल भी हुआ था हत।।

वहां पे ही श्री कृष्ण ने, देखे भयंकर अपशकुन। कुरुवंश के वयोवृद्ध, ऋषि और मुनियों के संग।।
कुन्ति और पाण्डवों से, फिर अनुमति को प्राप्त किया। तत्पश्चात् श्री हरि ने, द्वारका को प्रस्थान किया।।

मन ही मन थे वह सोच रहे, दाऊ संग मैं चला आया। शिशुपाल के मित्रों ने निश्चित्, द्वारिका को घेरा होगा।।
वहाँ पहुँच देखा उन्होंने, विपत्ति आई द्वारिका पे। बलराम वहीं पे ठहर गए, नगर की रक्षा के लिये।।

दारुक ने कहा श्री कृष्ण से,
शीघ्र से शीघ्र हे दारुक, मेरा रथ तुम ले चलो। अति मायावी है शाल्व यह, तनिक भी भय तुम नहीं करो।।

प्रभु की यह आज्ञा पाकर, दारुक रथ पर चढ़ गया। गरुड़ ध्वजा वाले रथ को, फिर शाल्व और वह ले चला।।
ध्वजा देखी यदुवंशियों ने, और शाल्व के सब सैनिकों ने। तत्क्षण जाना हैं आये कृष्ण, अब इस पुण्य रणभूमि में।।

शाल्व की सब सेना राजन्, नष्ट प्राय: थी हो चुकी। प्रभु को देखते ही दारुक पे, शक्ति की उस वार करी।।
अति भयंकर शब्द सहित, वह वेग से चली आकाश में। चहुँ दिशा थीं चमक उठीं, उसके दिव्य प्रकाश से।।
श्री कृष्ण ने जब देखा, सारथी ओर उसे आते हुए। अपने बाणों से उसके, शतश: टुकड़े कर दिये।।

तत्पश्चात् शाल्व पर, षोडष बाणों का वार किया। आकाश गामिनी वाहन वा, बाणों से छलनी किया।।
ज्यों सूर्य असंख्य ही, किरणों से आकाश भरे। उसी विधि ही श्री प्रभु के, बाणों के प्रहार थे।।

शाल्व ने प्रभु कृष्ण की, दाईं भुजा पे छोड़ा बाण। उस भुजा में धारण शार्ङ्ग धनु:, पतित हुआ भूमि पे आन।।
आकाश अथवा पृथ्वी पर, अद्भुत यह दृश देखा जिन्होने। उच्च स्वरों से सब मिलकरा, हाहाकार करने लगे।।
तब शाल्व ने गरजकर, भगवान कृष्ण से यूं कहा। अरे मूर्खह मारे सामने ही, सखा शिशुपाल पत्नी को हरा।।
और भरी सभा में अनायास, फिर शिशुपाल को मार दिया। मेरे मित्र के हनन का, अब देखो प्रतिशोध जरा।।

जानूँ मैं तुम अपने को, अजे ही हो मान रहे। यदि मेरे सामने आज, इस विधि तुम खड़े रहे।।
अपने तीक्ष्ण बाणों से, तुझे वहाँ पहुँचा दूँगा। जहाँ से आज तक कोई, लौट नहीं कभी पाया।।
भगवान बोले,
अरे मन्द बुद्धि नाहक ही, इस विधि तू बहक रहा। तू भूला तव काल है, सीस पे तेरे नाच रहा।।
शूरवीर कभी व्यर्थ में, यूं बकवाद नहीं करते। वह तो निज वीरता के दर्शन, रणभूमि में है दिया करते।।
शुकदेव बोले,
यह कहकर श्री कृष्ण ने, किया गदा प्रहार हंसली पर। तीक्ष्ण प्रहार से कांपा शाल्व, रक्त का वमन-दिया उस कर।।
जब गदा प्रभु पे लौटा आई, तो शाल्व आन्तर्धान हुआ। तत्पश्चात् बीती दो घड़ी, इक मनुज प्रभु पे आ पहुँचा।।
उनको सीस झुकाकर के, उसने फिर प्रणाम किया। रोते हुए फिर यूँ बोला, मुझे माता देवकी ने भेजा।।

उन्होंने कहा महाबाहु कृष्ण, निज पिता से अतिशय प्रेम तेरा। शाल्व ने तव पिता को, कसाईवत् है बान्ध लिया।।
तेरे पिता को पशु समान, वह दुष्ट है ले गया। यह सुनकर श्री कृष्ण का, मुख म्लान अति हो गया।।
साधारण से जीववत्, करुणा और स्नेह से उन सोचा। भ्राता श्री बलराम को तो, कोई देव असुर न जीत सका।।
वह तो दक्ष ही रहें सदा, शाल्व का पौरुष अल्प ही था। उनके वहाँ रहते रहते, कुकर्म यह सम्भव कैसे हुआ?
उनको कैसे जीता उसने, शाल्व पिता तक कैसे पहुँचा? प्रारब्ध बहुत बलवान है, तभी तो उनको बान्ध सका।।

इस भान्ति थे प्रभु सोच रहे, कि शाल्व वहाँ पर आ पहुँचा। संग में उसके माया रचित, वसुदेव सा ही इक मनुज था।।
श्री कृष्ण से वह कहने लगा, अरे मूर्ख यह तेरा जनक है। इसके कारण तू जी है रहा, तेरे सामने ही हो हनन है।।

गर बल पौरुष कुछ है तुझपे, तो आकर इसे बचा तू ले। अब अपने उस पौरुष का, हमको भी कुछ परिचय दे।।

मायावी शाल्व ने इस विधि, भगवान को फटकार दिया। माया रचित वसुदेव का, सीस असि से काट दिया।।
उसे लेकर आकाश स्थित, अपने विमान पे जा बैठा। दो घड़ी तो पिता की गति देख, श्री हरि भी शोक में डूबे जा।।
किन्तु वह तो हैं स्वयं सिद्ध, ज्ञान स्वरूप महानुभाव। शीघ्र ही फिर सत्य का, स्वत: हुआ प्रभु को आभास।।
वह इस सत्य को जान गए, यह तो सब शाल्व की माया है। मय दानव ने जो दी उसे, यह तो वही आसुरी माया ह।।

रणभूमि में श्री कृष्ण ने, सचेत होकर जब देखा। स्वप्नवत् न थे पिता वहाँ, न ही कोई दूत था।।
दूजी ओर विमान पर, शाल्व आकाश में विचरे था। उसका वध करने के लिये, फिर प्रभु का मन उद्यत हुआ।।
कुछ ऋषिजन हे राजन्, ऐसी बात जो कहते हैं। है कृष्ण प्रति अनुचित कथन, यह वह भूल ही जाते हैं।।

अज्ञानियों के आवरण जो, शोक मोह स्नेह भय आदि। और कहाँ वह श्री हरि, ज्ञान विज्ञान स्वरूप ही।।
उनका ऐश्वर्य है एक रस, और है सदा अखण्डित वह। उनके आन्तर में भला, सम्भावना ही अस कैसे भए?

महामुनि और ऋषिजन श्री, कृष्ण चरण रज जो सेवें। इस सेवन के द्वारा ही, आत्म विद्या को प्राप्त करें।
देहादि में आत्म बुद्धि के, अज्ञान आवरण उठा वह दें। आत्म सम्बद्ध अनन्त ही, ऐश्वर्य को वह प्राप्त करें।।
उन सन्तों की परम गति, भगवान कृष्ण ही हैं स्वयं। उनमें मोह कैसे हो सके, जो हैं मोह अतीत स्वयं?

बहुत वेग और उत्साह से, था शाल्व अस्त्र बरसा रहा। शक्तिमान् श्री कृष्ण के, बाणों ने घायल उसे किया।।
कवच धनुष और सीसमणि, छिन्न-भिन्न हुआ सब उसका। गदा चोट से विमान भी, उसका जर्जर हो गया।।

श्री हरि के हाथों से चली, गदा का जब प्रहार हुआ। वह विमान हुआ चकनाचूर, और सागर में जाय गिरा।।
शाल्व हाथ में गदा लिये, पहले ही धरती पर कूदा। दक्षता और अति वेग से, श्री कृष्ण पे वह झपटा।।

शाल्व का यह आक्रमण देख, प्रभु ने उसपर वार किया। गदा उठाये था जो हाथ, उसे गदा सहित ही काट दिया।।
उसका वध करने के लिये, सुदर्शन को धारण किया। प्रलय सूर्य सम तेजस्वी, अति अद्भुत वह अस्त्र था।।
सूर्योदय पर उदयाचल की, शोभा जैसे हो मान्। उसी विधि श्री हरि भी, थे युद्ध में शोभायमान्।।

ज्यों इन्द्र ने वृत्राणसुर का, सीस था वज्र से छेद दिया। श्री कृष्ण ने उस चक्र से, मायावी शाल्व का सिर छेदा।।
कुण्डल किरीट सहित वह सीस, उसके धड़ से अलग हुआ। और शाल्व की सेना में, भयंकर हाहाकार हुआ।।
पापी शाल्व जब मारा गया, उसका विमान भी चूर हुआ। देव भी तब प्रसन्न हुए, आकाश दुन्दुभि नाद हुआ।।
तत्क्षण ही निज मित्रों की, हत्या का बदला चाहता हुआ। अतिक्रुद्ध हो दन्तवक्र, वहां पे ही फिर आ पहुँचा।।

२४) दन्तवक्त्र और विदूरथ का वध

शुकदेव बोले,
शिशुपाल शाल्व पौण्ड्र, तीनों का जब हनन हुआ। उनका ऋण चुकाने दन्तवक्र, अकेला ही वहाँ आ धमका।।
अति क्रोध था मन में भरा, हाथ में थी बस एक गदा। पृथ्वी थी चरण में कांप रही, इतना वह शक्तिशाली था।।

श्री कृष्ण ने देखा जब, इस विधि है वह आ रहा। रथ से फिर वह कूद गए, हाथों में लेकर गदा।।
ज्यों सागर तट की भूमि, रोके सभी ज्वार भाटा। उसी विधि श्री कृष्ण ने, उसको बढ़ने से रोका।।

दम्भोन्माद में चूर था, यह दन्तवक्र करुष नरेश। गदा तानकर फिर उसने, वार्ता का किया श्री गणेश।।
अति सौभाग्य की बात है यह, अज मेरे सामने हो पड़े। वैसे तो तुम मातुल्य मेरे, नहीं हनन के योग्य थे।।
किन्तु एक ओर तो तुम, मम प्रिय मित्रों के हन्ता हो। दूजी ओर मम हनन को भी, तुम आज अति उद्यत हो।।
इस कारण ऐ मन्दमति, हनन तेरा आज करूँगा मैं। वज्र सम निज गदा से, तुझे चूर चूर करूँगा मैं।।

मेरे सम्बन्धी होकर भी, ऐ मूढ़ हो तुम शत्रु बने। जैसे अपने तन में ही, रोग हो कोई लगा रहे।।
अति प्रिय थे मित्र मेरे, उनका तो ऋणी हूँ मैं। तुझे मारकर ही जानो, उऋण उनसे हो सकूँगा मैं।।

ज्यों अंकुश की मार से, गजराज को घायल कोई करे। त्यों ही दन्तवक्र ने कटु, वचन प्रहार किये कृष्ण पे।।
तत्पश्चात् उनके सिर पर, उसने तीव्र प्रहार किया। सिंह समान ही फिर वहाँ, दन्तवक्र वह गरज पड़ा।।
रणभूमि में यह चोट खा, नहीं विचलित किंचित् कृष्ण हुए। दन्तवक्र के वक्ष पर, कौमोदकी से प्रहार किये।।

गदा की चोट से दन्तवक्र का, हृदय विदीर्ण हो गया। बिखरे बाल सभी उसके, रक्तवमन होने लगा।।
भुजा चरण उसके फैले, निष्प्राण वह धरती पर गिरा। ज्यों शिशुपाल की मृत्यु पर, दृश्य यह सबने था देखा।।
त्यों ही दन्तवक्र के शव से, सूक्ष्म ज्योति इक प्रकट हुई। अति विचित्रता से वह ज्योत, श्री हरि में समा गई।।

दन्तवक्र का भाई विदूरथ, अति शोकाकुल हो गया। अपने भ्राता की मृत्यु को, वह किंचित् न सह सका।।
क्रोध वश लम्बी लम्बी, सांसें वह भरने लगा। हाथ में असि और ढाल ले, कृष्ण हनन को वह चला।।
जब श्री कृष्ण ने यह देखा, प्रहार वह करना है चाहता। क्षुरनेमि अपने चक्र का, प्रभु ने आवाहन किया।।

किरीट कुण्डल सहित ही, उसके सीस का छेदन कर दिया। इस विधि श्री कृष्ण ने, शाल्व और सौभ विमान का।।
अजेय दन्तवक्र और, अजित विदूरथ अन्त किया। उनका हनन करके ही उन्होने, द्वारिका में प्रवेश किया।।
देव और मनुष्य सभी, उनकी स्तुति थे गा रहे। महा ऋषि मुनि गन्धर्व सिद्धि, विद्याधर वासुकि नाग जो थे।।
अप्सरा पितर यक्ष किन्नर, चारण थे पुष्प बरसा रहे। सब मिलकर भगवान के, विजय गीत थे गा रहे।।
द्वारका पुरी भी भाँति भाँति, से ही थी सजाई गई। प्रभु पाछे वृष्णीवंशी वीर, यादवों की इक टोली चली।।

योगेश्वर जगदीश्वर हरि, इस भाँति अनेक खेल खेलें। पशुवत् अविवेकी जन समझें, वह कभी भी हार सकें।।
वास्तव में तो प्रभु सदा, सर्वदा ही विजयी भएं। कौन जीव ब्रह्माण्ड में, अतिक्रमण उनकी शक्ति कर सके?

२५) बलरामजी की तीर्थयात्रा और रोमहर्षण सूत का वध

श्री बलराम ने फिर सुना, दुर्योधन आदि एक बार। पाण्डवों के संग हो रहे, हैं युद्ध को ही तैय्यार।।
मध्यस्थ श्री बलराम को, युद्ध रुचिकर था नहीं। वह तो बस चाहते प्रेम थे, दोनों पक्षों के मध्य ही।।
पक्षपात से बचने को, उन्होंने एक उपाय किया। तीर्थ स्नान को हेतु बना, उन द्वारिका से प्रस्थान किया।।
प्रभास क्षेत्र में स्नान कर, तर्पण और ब्रह्म भोज किया। देव पितर ऋषि मनुज, सबको ही उन्होने तृप्त किया।।

तत्पश्चात् कुछ ब्राह्मण, उन्होंने अपने संग लिये। सरस्वति के उद्गति की, दिशा में ही वह चल दिये।।
पृथूदक और बिन्दुसर, त्रितकूप और सुदर्शन तीर्थ। विशाल ब्रह्म चक्रतीर्थ, फिर गए सरस्वति आदि तीर्थ।।

गंगा और यमुना तट पे बसे, अनेकों तीर्थों में गये। प्रधान वह सब तीर्थ करी, नैमिषारण्य में फिर पहुँचे।।
उन दिनों उस क्षेत्र में, महा ऋषि सत्संग थे कर रहे। बड़े बड़े महा ऋषि वहाँ, इक महासत्र थे कर रहे।।

दीर्घकाल के सत्संग के, नियम में थे जो बैठे जन। बलराम को आया देख के, सबने त्यजे अपने आसन।।
उनका स्वागत सत्कार किया, यथायोग्य पूजा करी। किसी ने किया प्रणाम उन्हें, आशीर्वचन किसी अन्य कही।।

अपने संगी ब्राह्मणों संग, फिर आसन राम ने ग्रहण किया। पूजन अर्चन जब हो चुका, उन्होंने फिर सम्मुख देखा।।
व्यास शिष्य श्री रोमहर्षण, थे व्यास आसन पर आसीन। थे तो सूत पर द्विजगण से, ऊँचे आसन पे थे आसीन।।
न तो आसन ही उन्होने त्यजा, न हाथ जोड़ प्रणाम किया। यह देखी श्री बलराम का, क्रोध ही मानो भड़क गया।।
बलराम बोले,
प्रतिलोम जाति का होकर भी, विप्रों से उच्च आसन इसका। धर्म के रक्षक हम लोगों, से भी ऊपर यह बैठा।।
इस कारण दुर्बुद्धि यह, है पात्र मृत्यु दण्ड का। भगवान व्यास का शिष्य है यह, इतिहास पुराण और शास्त्र पढ़ा।।
किन्तु अपने मन पर तो, इसका संयम नहीं हुआ। उद्दण्डी ही यह हो गया, नहीं विनम्र स्वभाव इसका।।
अजितात्मा यह मिथ्या ही, अपने को पण्डित मान रहा। नटवत् अभिनयमात्र ही है, सारा ही अध्ययन इसका।।
इस स्वांग से तो इसका, अपना कोई लाभ न हो। न ही इसके ज्ञान का, अन्य किसी को लाभ हो।।

धर्मचिन्ह धारण करके, जो धर्म का पालन नहीं करे। महा पातक ऐसा जानूँ, है मेरे लिये वध योग्य ही रे।।
इस जगत् में इस कारण, ही है मैंने अवतार लिया। इस कारण ही धरती पर, मनुष्य रूप मैंने धरा।।
शुकदेव बोले,
तीर्थयात्रा के कारण, राम थे यद्यपि हुए उपराम। दुष्टों के वध से भी, नहीं था उनको कोई काम।।
फिर भी इतना कहकर उन्होने, कुशा नोक से प्रहार किया। होनहार ही थी ऐसी, उनके हाथों यह हनन हुआ।।

सूत जी के मरते ही, हाहाकार ऋषियों में हुआ। खिन्नमनी होकर सबने, श्री बलराम से यूँ कहा।।
हे प्रभु आपने यह, बहुत बड़ा अधर्म किया। हे यदुश्रेष्ठ हमने ही इन्हें, ब्राह्मणोचित आसन था दिया।।
जब तक यह सत्र न समाप्त हो, तन की आयु भी थी दी। तनोकष्ट से मुक्त थी, जो भी आयु थी इनको दी।।

अनजाने में ही आपने, ऐसा काम है कर दिया। ब्रह्महत्या समान ही, होगा फल इस कर्म का।।
हम जानें आप योगेश्वर हैं, नहीं शासन वेद भी कर सकें। फिर भी हम सब मिलकर के, प्रार्थना आपसे ही करें।।
आपका अवतार तो, पावनकर है सब जीवों का। स्वेच्छा से ही आप करें, गर प्रायश्चित ब्रह्महत्या का।।
तो इससे हे प्रभु सभी, लोग पायेंगे महाशिक्षा। श्रेष्ठ जन आचरण का ही, जग अनुसरण यह है करता।।

बलराम बोले,
जीवों पर अनुग्रह करके, उनकी शिक्षा के हेतु ही। इस ब्रह्म हत्या के लिये, प्रायश्चित करूँगा निश्चित ही।।
अत: इस निमित्त से, प्रथम श्रेणी का प्रायश्चित जो। प्रबन्ध आप ही कीजिये, उसके लिये जो उचित हो।।

इस सूत की दीर्घायु बल, इन्द्रिय शक्ति जो भी चाहें। आप ही सब मिलकर के, मुझको ही वह बतलायें ।।
अपने योग बल से सब वह, सम्पन्न ही सब कर दूँगा। जैसा भी चाहेंगे आप, वैसा ही मैं कर दूँगा ।।
ऋषी बोले,
हे प्रभु अब आप ही कुछ, उपाय ऐसा कीजिये। आपका शस्त्र पराक्रम और, मृत्यु न इनकी व्यर्थ भए ।।
हम लोगों ने भी प्रभु, जो इनको वरदान दिया। ऐसी युक्ति करें आप, वह भी सत्य ही रहे सदा ।।
बलराम बोले,
हे ऋषिजन जानें आप, है वेदों का यह कथन। अपना ही आत्मा तो, पुत्र रूप में हो उत्पन्न ।।
अत: रोमहर्षण की जगह, उनका पुत्र सुनायेगा यह कथा। आप सभी के सम्मुख वह, कहेगा यह पुराण कथा ।।
अपनी शक्ति से उसे, दीर्घायु मैं देता हूँ। संग संग इन्द्रिय शक्ति, और बल भी उसे देता हूँ ।।

हे ऋषिगण इसके सिवा, भी जो चाहें आप कहें। पूर्ण करूँगा आपकी इच्छा, निस्संकोच हो मुझसे कहें ।।
अनजाने में ही मुझसे, जो अपराध है बन गया। सोच विचार के विद्वद्गण, कहें प्रायश्चित अब उसका ।।
ऋषि बोले,
इल्वल पुत्र बल्वल नामक, इक महाभयंकर दानव है। हर पर्व पे यहां आकर वह, दूषित करे सब सत्र है ।।
यहां आकर के यदुश्रेष्ठ, अपावन वह सब काज करे। पीब रक्त विष्ठा मूत्र, मदिरा और मांस की वर्षा करे ।।
उस पापी का हे प्रभु, अब आप हनन ही कीजिये। है सबसे बड़ी सेवा यह ही, आप मुक्त हमें कीजिये ।।

एकाग्रचित हो तत्पश्चात्, तीर्थों में स्नान करें। द्वादश मास तक भारत की, परिक्रमा करते हुए विचरें ।।
है सर्वोत्तम प्रायश्चित यह, सिद्धि इससे हो जायेगी। ब्रह्महत्या का जो पाप हुआ, उससे मुक्ति मिल जायेगी ।।

२६) बल्वल का वध

शुकदेव बोले,
पर्व का दिन आते ही राजन्, भयंकर आन्धी उठ आई। धूलि की वर्षा हुई, दुर्गन्ध पीब की फैल गई ।।
तत्पश्चात् यज्ञशाला में, बल्वल दैत्य ने वर्षा की। मल मूत्र अपावन वस्तु सब, उसने वहाँ पे फेंक दी ।।
हाथ में त्रिशूल लिये, फिर उसका दर्शन हुआ। उस दानव का डील डौल, भी महा भयंकर था ।।
मानो कालिमा का वहाँ, ज्यों पर्वत हो खड़ा हुआ। शिखा और दाढ़ी मूंछ का, रंग तपे ताम्बे सा था ।।
कराल दंष्ट्र और भौहों ने, मुख उसका विकृत था किया। उसे देख श्री राम ने, हल मूसल का स्मरण किया ।।
दैत्यों का हनन करने वाले, शत्रु दमनकर थे दोनों। उनके स्मरण करते ही, वहाँ पे आ पहुँचे दोनों ।।

आकाशचारी उस दैत्य को, हल के अग्र से खेंच लिया। उस ब्रह्म द्रोही के सीस पर, मूसल का इक वार किया ।।
ललाट उसका फट गया, रक्त वमन उसको हुआ। आर्त स्वर से नाद कर, धरती पर वह गिर पड़ा ।।
ज्यों वज्र के वार से गेरु सम, लाल कोई पर्वत हो गिरा। उसी विधि दैत्य बल्वल, भूमि पर फिर पतित हुआ ।।

नैमिषारण्य के महाभाग, मुनियों ने स्तुति की राम की। कभी व्यर्थ न जाये जो, ऐसी आसीस वचन कही ।।
ज्यों देवगण देवेन्द्र का, महाभिषेक हों कर रहे। उसी विधि उन ऋषियों ने, बलराम के अभिषेक किये ।।

तत्पश्चात् श्री राम को, दिव्य वस्त्राभूषण दी। इक वैजयन्ती माल भी दी, मानो सौन्दर्याश्रम वह थी।।
जो कभी मुरझायें न, उन कमलों से युक्त वह थी। श्रृंगारों से परिपूर्ण, वह दिव्य वैजयन्ती माला थी।।

उन ऋषियों से आज्ञा लेकर, उनकी आज्ञानुसार ही। ब्राह्मणों सहित वह जा पहुंचे, कौशकी सरिता तट पर ही।।
वहाँ स्नान करने फिर वह, उस सरोवर पे गए। जहाँ से सरयू नदी का, उद्गम स्थान प्रकट होए।।
चले सरयू तट के साथ साथ, फिर उसे छोड़ गये प्रयाग। वहाँ स्नान तर्पण किया, पुलहाश्रम फिर पहुँचे जा।।

गण्डकी और गोमति में, विपााश में फिर स्नान किया। सोननद के तट पर जा, फिर उन्होंने स्नान किया।।
वसुदेव आज्ञानुसार गया में, पितरों का पूजन किया। फिर गंगा सागर संगम पर, जाकर भी उन्होने स्नान किया।।
तीर्थ कृत्यों से निवृत्त हो, गए महेन्द्र पर्वत पर। दर्शन किया परशुराम का, और वन्दन भी उनका लिया कर।।
फिर सप्तगोदावरी वेणा पम्पा, भागीरथी में स्नान किया। तत्पश्चात् स्वामिकार्तिक का, दर्शन भी उन्होंने किया।।
महादेव निवास स्थली, श्री शैल फिर जा पहुँचे। फिर द्रविड़ के परम पुण्यमय, बालाजी के दरस किये।।

वहाँ से गए वह कामाक्षी, शिव कांची विष्णु कांची गए। श्रेष्ठ नदी कावेरी में, फिर उन्होंने स्नान किये।।
पुण्यमय श्री रंगक्षेत्र में, बलराम जी फिर जा पहुँचे। श्री रंगक्षेत्र में प्रभु विष्णु, सदा विराजमान् रहें।।

वहाँ से वह श्री विष्णु क्षेत्र, ऋषभ पर्वत पर गए। तत्पश्चात् दक्षिण मथुरा, के भी उन्होंने दरस किये।।
महा पाप नाशक है जो, उस सेतुबन्ध की यात्रा की। दस सहस्त्र धेनु फिर उन्होने, विप्रों को वहाँ दान दीं।।
कृतमाला और ताम्रपर्णी, नदियों में फिर स्नान किया। सप्तकुल पर्वतों में, मलय पर्वत पर गमन किया।।

उस पर्वत पे आगस्त्य मुनि, ने स्वागत वन्दन किया। दक्षिण सागर की यात्रा करी, आगस्त्य मुनि से आज्ञा पा।।
वहाँ पे दुर्गादेवी का, उन्होने फिर दर्शन किया। देवी ने कन्याकुमारी का, रूप वहाँ है धरा हुआ।।

तत्पश्चात् फाल्गुन तीर्थ, अनन्त शयन के क्षेत्र गये। वहाँ श्रेष्ठतम पंचाप्सरस, तीर्थ में फिर स्नान किये।।
श्री विष्णु भगवान का, सान्निध्य वहाँ सदा है रहता। दस सहस्त्र धेनु का वहाँ, श्री बलराम ने दान दिया।।

वहाँ से चल बलराम फिर, केरल त्रिगर्त से होते हुए। श्री शंकर जी के क्षेत्र, गोकर्ण तीर्थ में गए।।
वहाँ श्री शंकर जी सदा, विराज्मान ही स्वयं रहें। जल से घिरे द्वीप में, आर्या देवी निवास करें।।
गोकर्ण तीर्थ से चलकर, श्री बलराम वहाँ आये। तत्पश्चात् शूर्पारक देश, की यात्रा को चल दिये।।
तापी पयोष्णी निर्विन्ध्या, नदियों में फिर स्नान किया। तीर्थ स्नान यह कर कर, दण्डकारण्य वह पहुँचे जा।।

वहाँ से फिर वह नर्मदा, नदी के तट पे चले गये। इस पावन सरिता तट पर, माहिष्मतिपुरी बसे।।
मनुतीर्थ में स्नान कर, प्रभास क्षेत्र में फिर आये। कौरव पाण्डव युद्ध की, ब्राह्मणों से वहीं पे सुन पाये।।
इस महाभीषण युद्ध में, बहुत क्षत्रियों का संहार हुआ। श्री राम ने यह अनुभव किया, पृथ्वी का बहुत भार उतरा।।

रणभूमि में भीम और, दुर्योधन थे लड़ रहे। इक दूजे पर गदा के, प्रहार थे वह कर रहे।।
उसी दिन बलराम जी, इन्हें रोकने के लिये। रणभूमि में कुरुक्षेत्र की, स्वयं ही वह जा पहुंचे।।

श्री कृष्ण नकुल युधिष्ठिर और, सहदेव अर्जुन ने उन्हें देखा। सीस झुका बलराम के, चरणों में प्रणाम किया।।
भयपूर्ण मन से सभी, मौन रहकर हुए खड़े। न जाने क्या कहने को, यह इस पल यहाँ पधार गए।।

भीम और दुर्योधन, दोनों ही युद्ध निमग्न थे। हाथ में गदा उठाये हुए, पैंतरे वह नित्य बदले थे।।
इक दूजे को जीतने को, थे क्रोध से उन्मत्त हुए। उन्हें देख बलराम जी ने, उनसे फिर यह वचन कहे।।

बलराम बोले,
राजा दुर्योधन और भीम, तुम दोनों ही वीर हो। समान ही बल और पौरुष है, धीर वीर गम्भीर हो।।
मैं तो ऐसा माने हूँ, है भीम अधिक बलवान्। गदा युद्ध में दुर्योधन, है निश्चित् अधिक ही प्रतिभावान्।।
तुम जैसे सम योद्धाओं में, विजय पराजय हो न सके। बन्द करो यह युद्ध तुम, क्यों हो व्यर्थ में लड़ रहे?

शुकदेव बोले,
हे राजन् श्री बलराम तो, दोनों के ही हितकारी थे। किन्तु इक दूजे के वैरी, उनकी बात न मान सके।।
इक दूजे की कटु वाणी, और दुर्व्यवहार को याद कर। दोनों उन्मत्त थे हो रहे, दृढ़ वैर भाव हृदय में धर।।

निश्चय किया बलराम ने, है प्रारब्ध बधित ही यह। आग्रह न किया विशेष कोई, और वह द्वारिका लौट गए।।
उग्रसेन और गुरुजन ने, वहाँ पे स्वागत उनका किया। सब बन्धु बान्धव ने इसमें, प्रेम से उनका साथ दिया।।

वहाँ से श्री बलराम पर, नैमिषारण्य के क्षेत्र गए। युद्धादि के विरोध भाव से, पूर्णतय: वह निवृत्त थे।।
ऋषियों ने बहुत प्रेम से, उनसे यज्ञ फिर करवाये। सच जानो तो यह यज्ञ सब, लोक संग्रह हित ही थे।।
क्योंकि यज्ञ जो हैं सारे, श्री बलराम के अंग ही हैं। श्री भगावन से भिन्न कोई, यज्ञ नहीं कहीं भी है।।

भगवान श्री बलराम ने, शुद्ध तत्त्व का ज्ञान दिया। उन सब ऋषियों को उन्होने, आत्म ज्ञान उपदेश किया।।
परिणाम स्वरूप सब विश्व का, अपने में उन्हें अनुभव हुआ। और सारे जगत् में, अपना आप उन्होने देख लिया।।

निज पत्नी रेवती जी के संग, यज्ञान्त स्नान उन्होंने किया। सुन्दर वस्त्र आभूषणों को, फिर धारण उन्होने कर लिया।।
भाई बान्धव स्वजन और, सम्बन्धियों में शोभा त्यों बनी। ज्यों चन्द्रिका नक्षत्रों में, शोभायमान हो रहा शशि।।

हे राजन् श्री बलराम तो, स्वयं श्री ही अनन्त हैं। मन और वाणी से परे, स्वरूप उनका अनन्त है।।
लीला मात्र ही अनुज का, तन धारण उन्होने किया। उनके अद्भुत चरितों की, सम्भव नहीं गणना करना।।

अनन्तऔर अद्भुत कर्मा, सर्वव्यापी प्रभु राम हैं। इनकी लीला अनन्त है, जानो वह अभिराम हैं।।
इनके चरितों को प्रात:, सायं स्मरण जो करता है। श्री हरि का अनन्त प्रिय, वह जन तो हो जाता है।।

२७) सुदामा चरित्र

परीक्षित बोले,
प्रेम और मुक्ति दाता, श्री कृष्ण की शक्ति अनन्त है। ऐश्वर्य और माधुर्य भरी, लीलायें भी अनन्त हैं।।
जिन लीलाओं का आपने, वर्णन अब तक नहीं किया। हे प्रभु उनको सुनने की, अब मन में है जिज्ञासा।।

विषय सुख की खोज में, यह जीव दु:खी है हो गया। बाणावत् इसके चित्त को, वे बेन्धते रहते हैं सदा।।
कौन रसिक होगा ऐसा, प्रभु लीला का जो श्रवण करे। श्रवण करी लीलाओं को, विमुख जो उनसे हो सके?

सच्ची वाणी तो है वही, जो हरि गुणगान ही नित्य करे। है सार्थकता हाथों की यह, प्रभु सेवा में वह लगे रहें।।
जड़ जंगल में सर्वव्याप्त, श्री हरि को जो सिमरे सदा। इसमें ही तो वास्तव में, है इस मन की सफलता।।
कर्ण वही हैं वास्तव में, जो हरि कथा का श्रवण करें। कर्ण पुटों को पात्र बना, कथामृत पान जो नित्य करें।।

सीस वही तो सीस है, जो प्रभु चरण में झुका रहे। चराचर जगत् को प्रभु की जो, चल अचल प्रतिमा माने।।
नमन करे सबको ही वह, प्रभु का हर जा दरस करे। उनका विग्रह सबमें देखी, जो नयना अपने सफल करे।।
तनो अंग जो भगवद् सेवा करें, भक्तों का चरणोदक पायें। सच जानो तो वे अंग ही, जीवन सार्थक निज कर जायें।।
सूत बोले,
जब राजा परीक्षित् ने, ऐसा उनसे प्रश्न किया। श्री शुकदेव का हृदय तब, तल्लीन श्री हरि में हुआ।।
हे शौनक आदि ऋषियो, परीक्षित् के इस प्रश्न पर। श्री शुकदेव ने प्रश्न का, राजा को दिया फिर यूं उत्तर।।
शुकदेव बोले,
इक ब्राह्मण श्री कृष्ण के, परम मित्र थे हे राजन्। विषय विरक्त ब्रह्मज्ञानी, जितेन्द्रिय शान्तिचित्त थे ब्राह्मण।।
थे तो वह गृहस्थ ही, पर संग्रह परिग्रह कोई न था। प्रारब्ध बधित जो भी मिले, सन्तुष्ट उसीमें मन रहता।।
जीर्ण शीर्ण ही वस्त्र थे, उनके और वा पत्नी के भी। निज पति समान वह ब्राह्मणी, क्षुधा से थी अति क्षीण हुई।।

दरिद्रता की प्रतिमूर्ति वह, पतिव्रता थी क्षुधा आर्त। निज पति सम्मुख म्लान मुखी, फिर बोली इस विध जाकर।।
साक्षात् जो लक्ष्मीपति, श्री कृष्ण आपके हैं सखा। शरणागत वत्सल हैं वह, हैं विप्र भक्त यह भी सुना।।

हे आर्यपुत्र हमने यह सुना, हैं आश्रय साधु सन्तों का। उनकी शरण में जाकर अब, कहें आप अपनी व्यथा।।
जब जानेंगे आपका, कुटुम्ब अन्न बिन है दु:खी। धन सम्पद् आपको दे करके, कर देंगे हे स्वामी सुखी।।

वृष्णी भोज अन्धक वंशी, ब्राह्मणों के वह स्वामी हैं। द्वारका में निवास करें, उदारता में शिरोमणि हैं।।
उनके चरण कमल का जो, भक्त नित्य सिमरन् करें। उन प्रेमी भक्तों के लिये, वह अपने आप तक दे डालें।।
यद्यपि धन और विशय सुख, नहीं वांछनीय भक्तों के लिये। इसमें है आश्चर्य कौन, गर निज भक्तों को कृष्ण वह दें?

ब्राह्मण देव की पत्नी ने, जब बहुत बार यह प्रार्थना की। अति विनम्र पुकार सुनी, ब्राह्मण ने यह विचार करी।।
धन की तो कोई बात नहीं, वह तो बस एक बहाना है। जीवन सफल यह हो जाये, श्री कृष्ण दरस ही पाना है।।

यही विचार करके उन्होने, जाने का निश्चय करी कहा। यदि भेंट योग्य ववस्तु हो कोई, तो कल्याणि दे दो जरा।।
पास पड़ोस के ब्राह्मणों से, कुछ मट्ठी चिउड़ा उस मांगा। इक कपड़े में उसे बान्ध कर, श्री कृष्ण अर्थ पति को दिया।।
चिउड़ा लेकर फिर ब्राह्मण, द्वारका ओर ही चल दिये। मार्ग में वह एकाग्रचिति, श्री कृष्ण मिलन की सोचे थे।।

द्वारका में सैनिकों की, थीं तीन दृढ़तर छावनियाँ। इसी प्रकार थीं वहाँ बनीं, सैनिकों की ड्योड़ियाँ।।
वृष्णी और अन्धव वंशी, जो वहाँ पे यादव थे। भागवद् धर्म के पालन ही, उनके धर्म के अंश थे।।

अति कठिन था वहाँ पहुँचना, पर दूजे ब्राह्मणों के संग ही। इन श्री ब्राह्मण देव ने, महलों में प्रवेश किया।।

उन महलों के मध्य में, सोलह सहस्त्र प्रासाद थे। भगवान कृष्ण की रानियों के, अत्युत्तम वे आवास थे।।
उनमें से इक महल में, उस ब्राह्मण ने प्रवेश किया। अति सुसज्जित था वह महल, और अति वह शोभित था।।
उसमें प्रवेश पाते ही, उसको ऐसा आभास हुआ। ब्रह्मानन्द के सागर में, ज्यों प्रवेश हो उसका हुआ।।

भगवान कृष्ण निज प्राणप्रिया, रुक्मिणी संग थे शैय्या पर। सहसा ही उठ खड़े हुए, ब्राह्मण को दूर से देखकर।।
उनके निकट फिर पहुँचकर, निज भुजापाश में बान्ध लिया। इस विधि भगवान ने, निज मित्र का सत्कार किया।।

परमानन्द स्वरूप प्रभु, निज प्रिय सखा के अंग लगे। अंग स्पर्श पाकर उसका, अति आनन्दित वह हुए।।
उनके अति कोमल कमल नयन, प्रेमाश्रु बरसाने लगे। दोनों सखा के मिलन के, कुछ क्षण ऐसे ही बीत गए।।

तत्पश्चात् श्री कृष्ण ने, उन्हें अपने पलंग पर दिया बिठा। स्वयं पूजन सामग्री ले, ब्राह्मण की करी उन्होने पूजा।।
श्री कृष्ण तो हे राजन्, हैं सबके ही पावन कर्ता। फिर भी निज कर से उन्होने, ब्राह्मण का चरण पखार दिया।।
चरणोदक उस ब्राह्मण का, अपने सीस धारण किया। चन्दन अरगजा केसर का, दिव्य गन्ध अनुलेप किया।।

सुगन्धित धूप दीपावली से, फिर अपने मित्र की आरती ली। इस विधि पूजा करके उन्होने, ताम्बूल गाय उसे अर्पित की।।
मधुर वचनों से उन्होने, फिर ब्राह्मण का सत्कार किया। स्वागतम् सुस्वागत्म, कहकर उनको मान दिया।।

उस ब्राह्मण देवता के तन पर, फटे पुराने वस्त्र थे। अति दुर्बल और मलिन, उस ब्राह्मण देवता के तनु थे।।
उसके तन की सारी नसें, ज्यों त्वचा से उसकी झांकें थीं। चंवर झुला के रुक्मिणी जी, उसकी सेवा करने लगीं।।
अन्त:पुर की सब स्त्रियां, यह देखी विस्मित हो गईं। पावन कीर्ति श्री कृष्ण ने, मलिन अवधूत की सेवा की।।

परस्पर इक दूजे से वह, बातें यूँ करने लगीं। दिगम्बर निर्धन भिक्षुक यह, है निन्दनीय निकृष्ट ही।।
न जाने किस जन्म में, इसने कौनसी पुण्य करी। त्रिलोक गुरु श्री श्रीनिवास, ने इस विधि सत्कार करी।।
देखो तो सही निज शैय्या पर, भगवती की सेवा छोड़कर। बलराम सम इस विप्र को, लिया है निज बाहों में भर।।

श्री कृष्ण ने अपने हाथों में, उस ब्राह्मण का हाथ लिया। दोनों ने मिल फिर पूर्व जीवन, की बातों को याद किया।।
आनन्द से सब घटनाओं का, सिमरन् वर्णन वह करने लगे। गुरुकुल के काल को याद करी, दोनों ही अति आनन्दित थे।।
कृष्ण बोले,
धर्म मर्मज्ञ हे ब्राह्मण, दे दक्षिणा गुरुकुल से लौटे। निज अनुरूप स्त्री से क्या, आपने फिर विवाह किये।।
मैं जानूँ आपका चित्त तो, विषय भोगों में आसक्त नहीं। गृहस्थी में रहकर भी वह, हुआ मोह से ग्रस्त नहीं।।
यह भी जानूँ मैं हे विद्वन्, धन आदि में आपकी प्रीति नहीं। ऐसे लोगों का मिलना तो, जगत् में है अति कठिन ही।।
मायामय विषय वासना का, त्याग कोई विरला ही करे। नितान्त वासना रहित हो, बस लोक शिक्षा को कर्म करे।।

हे विप्रश्रेष्ठ क्या याद है, गुरुकुल वास का वह समय? गुरुकुल में ही द्विजातीय गण, ज्ञातव्य ज्ञान को पा सकें।।
उस ज्ञान को पाकर वह, अन्धकार को पार करें। अज्ञान तिमिर उसका नष्ट हो, ज्ञान प्रकाश को प्राप्त करें।।

हे मित्र इस जगत् में, तन का जनक है प्रथम गुरु। उपनयन कर सत्कर्म की, दीक्षा जो दे वह दूजा गुरु।।
वह तो जानो प्रिय मित्र, मेरे समान ही पूज्य है। परमात्म से मिलाये जो, वह तो मेरा ही स्वरूप है।।

वर्णाश्रमियों के जानो, यह तीन गुरु ही होते हैं। गुरु स्वरूप मैं स्वयं ही हूँ, यह मेरे रूप ही होते हैं।।
निज गुरु का उपदेश जो पा, भवसागर स्वत: पार करें। निज स्वार्थ और परमार्थ को, वास्तव में वह ही जानें।।

हूँ मैं ही सबका आत्मा, अन्तर्यामी बन सबमें बसा। पंचयज्ञ गृहस्थ के, ब्रह्मचर्य ध्ययन उपनयन सदा।।
वानप्रस्थी की तपश्चर्या, उपरति संन्यासी की जो सदा। इन सब धर्मों से भी मैं, उतना संतुष्ट नहीं होता।।
जितना सन्तुष्ट करे मुझको, गुरुदेव की सेवा शुश्रूषा। मेरी प्रसन्नता हेतु तो, अत्युत्तम साधन यही बना।।

हे द्विजवर जब गुरुकुल में, हम दोनों का निवास था। उस समय की यह घटना, कहो आपको याद है क्या?
गुरु पत्नी ने हम दोनों को, ईंधन लाने को भेजा था। अति गहन जंगल में ही, हम दोनों पहुँचे थे जा।।
बिना ऋतु के उस समय, भीषण आन्धी तूफान आया। आकाश में दामिनी कड़की थी, जंगल था सारा गूंज उठा।।

सूर्यास्त था हो चुका, चहुँ ओर तिमिर ही था फैला। धरती भी ज्यों जल में डूबी, कहीं ऊंच नीच का पता न था।।
वह वर्षा तो मानो इक, छोटी सी प्रलय ही थी। आन्धी वर्षा के प्रहार से, अति पीड़ा हमको हुई।।
दिशा ज्ञान भी जाता रहा, अति आतुर थे हम हुए। इक दूजे का हाथ पकड़, जंगल में थे भटक रहे।।

जब गुरुदेव सान्दीपनि को, इस बात का ज्ञान हुआ। सूर्योदय होते ही उन, शिष्यों संग खोजना शुरू किया।।
जंगल में वे पहुँचकर, हम दोनों को आतुर देखा। तब उन्होने बहुत प्रेम से, हमको था यह वचन कहा।।
अहो पुत्रो आश्चर्य है, तुमने अति घोर यह कष्ट सहा। हमारे लिये तुम दोनों ने, है कैसा उद्यम किया।।
अपना तन ही सब जीवों को, अतिशय प्रियतम है होता। सेवा में हो संलग्न तूने, नहीं करी उसकी परवाह।।

गुरु ऋण से मुक्ति के लिये, है शिष्यों का कर्त्तव्य यही। तन सहित विशुद्ध भाव से ही, अर्पित हो गुरु सेवा में सभी।।
मैं अतिशय प्रसन्न हूँ, द्विजश्रेष्ठ तुम्हारी सेवा से। सफल हों सब मनोरथ तव, अभिलाषा सब पूर्ण भएं।।
वेदाध्ययन जो है किया, सर्वदा तुम्हें कण्ठस्थ रहे। इहलोक और परलोक में, निष्फल वह कभी नहीं भए।।

हे प्रिय मित्र गुरुकुल में जब, हम दोनों का निवास था। ऐसी अनेक घटनाओं से, जीवन परिपूर्ण हमारा था।।
नहीं किंचित् सन्देह इसमें, है गुरु कृपा ही सर्वोपरि। उससे ही जीव पाये शान्ति, पूर्णता का हो अधिकारी।।
सुदामा बोले,
देवों के परम आराध्य कृष्ण, अब क्या करना हमें है बाकी? सत्य संकल्प परमात्म आप, गुरु कुल सहवास सौभाग्य मिलि।।
छन्दोमय वेद ही मूल हैं, धर्म अर्थ काम और मोक्ष के। चतुर्विध पुरुषार्थ के, वे स्तोत्र प्रभु तव तन में रहें।।
वही आप गुरुकुल में जा, वेदाध्ययन अभ्यास करो। आपकी मानुषी लीला का, नहीं अभिनय तो यह क्या है अहो?
शुकदेव बोले,
भगवान कृष्ण तो हे राजन्, सबके मन की हैं जानें। परम भक्त वह ब्राह्मणों के, क्लेश सब उनके नष्ट करें।।
सन्तों के इकमात्र आश्रय, दीनन् के बन्ध हैं वही। उन ब्राह्मण देव संग उन्होने, बहुत देर तक बात करी।।

निज प्रिय मित्र उस ब्राह्मण संग, विनोद अर्थ वह मुसकाये। प्रेम दृष्टि से निहार उन्हें, श्री कृष्ण ने फिर यह वचन कहे।।
भगवान बोले,
हे द्विजवर मेरे लिये, उपहार हो क्या लेकर आये? मेरे भक्त जब तनिक सी भी, वस्तु मुझको अर्पित करें।।
उनके प्रेम की दी थोड़ी, वस्तु भी बहुत कर मानू मैं। अभक्त की दी महाभेंट से भी, सन्तोष नहीं कभी पाऊँ मैं।।

प्रेम से जो भी फल फूल, पत्ता या जल अर्पित करे। भक्ति भाव से भेंट करी, जो भी मेरे चरण धरे।।
शुद्ध चित्त उस भक्त का, उपहार न केवल ग्रहण करूँ। तुरन्त ही भोग लगाऊँ मैं, और उसका प्रसाद दूँ।।
शुकदेव बोले,
अति संकोची ब्राह्मण वह, यह सब सुनकर भी मौन रहे। चार मुट्ठी चिउड़े जो थे, श्री कृष्ण को उन्होंने नहीं दिये।।
लज्जावश उस ब्राह्मण ने, सीस अपना झुका लिया। हृदय का संकलप कोई, अभाव या प्रभु से नहीं छिपा।।
ब्राह्मण आगमन का कारण और, हृदय की बात उन जान ली। मन ही मन श्री हरि ने, फिर ऐसी विचार करी।।
एक तो यह मम प्रिय सखा, नहीं लक्ष्मी हेतु कभी भजा। निज पत्नी के आग्रह पर, है इस पल यह यहाँ आ गया।।
ऐसी सम्पद् अब दूँगा इसे, देवों के लिये भी जो दुर्लभ। मेरी शरण यह है आया, जग वैभव सब हों प्राप्त सुलभ।।

ऐसा विचार करके प्रभु ने, टटोला उसे वस्त्रों को। चिउड़े की पोटली हाथ आई, उससे पूछा अरे क्या यह कहो?
बहुत आदर से फिर उसे कहा, प्रिय मित्र यह क्या तुम लाये हो? अति प्रिय भेंट यह लाकर के, क्यों इस विधि इसे छिपाये हो?
आपके यह चिउड़े द्विजवर, न केवल मुझको तृप्त करें। यह तो हैं पर्याप्त कहूँ, सब विश्व की तृप्ति के लिये।।

ऐसा कह उसमें से वह, इक मुट्ठी भर खा गये। दूजी मुट्ठी ज्यों ही भरी, भगवती रुक्मिणी ने कर थामे।।
क्योंकि श्री लक्ष्मी तो सदा, भगवत् परायण हैं रहतीं। उन्हें छोड़कर वह तो कभी, अन्य कहीं न जा सकतीं।।

रुक्मिणी जी ने उन्हें कहा, हे भगवान पर्याप्त है यह। इह लोक और परलोक में भी, पूर्ण सम्पद् यह प्रदान करे।।
सर्वत्र समृद्धि पाने को, इक मुट्ठी चिउड़ा काफी है। इतना ही बस आपकी, प्रसन्नता का यह हेतु है।।
हे राजन् ब्राह्मण देवता वह, उस रात रहे प्रभु महल में। भोजन और विश्राम किया, मानो वह हों वैकुण्ठ में।।

श्री कृष्ण से उस ब्राह्मण को, प्रत्यक्ष में कुछ नहीं मिला। फिर भी सन्तोषी ब्राह्मण ने, श्री हरि से कुछ भी न मांगा।।
अपने चित्त की करतूत पर, वह कुछ लज्जित हो गए। श्री कृष्ण मिलन आनन्द में, डूबते उतरते घर को चले।।

मन ही मन थे वह सोच रहे, अहो है कैसा आश्चर्य यह। श्री कृष्ण की ब्राह्मण भक्ति के, इन नयनों से दरस किये।।
जिनके वक्ष:स्थल पे सदा, लक्ष्मी रहें विराजमान्। मुझ अति दरिद्र को हिय लगा, कर दिया कृतकृत्य महान्।।
कहाँ मैं अति पामर दरिद्र, कहाँ लक्ष्मीपति श्री नारायण। निज भुजा में भर लगाया हृदय, जान करी मुझको ब्राह्मण।।

इतना ही नहीं उस शैय्या पर, शयन उन्होंने कराया मुझे। उनकी प्राणप्रिया श्री रुक्मिणी जी, जिस पलंग पर शयन करें।।
ऐसा प्रेम दिया मुझको, मानो मैं सहोदर हूँ उनका। उनके प्रेम की महिमा तो, इस वाणी से नहीं गा सकता।।
अति श्रान्त था यात्रा से, सेवा की महा पटरानी ने। चँवर झुलाया मुझको फिर, रुक्मिणी जी ने निज कर से।।

अहो श्री कृष्ण तो हैं स्वयं, देवों के परम आराध्य देवा। फिर भी ब्राह्मण इष्ट जानी, हर विधि से उन्होने की सेवा।।

चरण दबाये मेरे उन, अपने हाथों से खिलाया मुझे। अति सेवा शुश्रू करी, देवों समान ही पूजा मुझे।।

स्वर्ग मोक्ष पृथ्वी रसातल, की सभी सम्पत्तियों की। है सब योग सिद्धि का मूल, उनके चरणों की पूजा ही।।
परम दयामय कृष्ण ने, तनिक भी धन न मुझे दिया। कहीं दरिद्र धन के मद में, न भूले उनके चरण कदा।।

मन ही मन व इस भाँति, चिन्तन थे करते जा रहे। अपने घर वह जा पहुँचे, इसी विचार में डूबे हुए।।
वहाँ जा देख सारा स्थान, रत्न जडित महलों से घिरा। सूर्य चन्द्र और अग्नि सम, है उनकी तेजस्विता।।
चित्र विचित्र उपवन वहाँ, और उद्यान हैं बने हुए। रंग रंग के पक्षी यूथ वहाँ, मधुमय कलरव हैं कर रहे।।
सरोवरों में भी विविध भाँति, के कमल हैं खिल रहे। कहीं कुमुदिनी कहीं श्वेत, नील सौगन्धिक सब ही थे।।
सुन्दर नर नारी सजे धजे, इधर उधर हैं विचर रहे। उस स्थान को दे करी, ब्राह्मण देव सोचन लागे।।
यह मैं क्या हूँ देख रहा, यह सब किसका स्थान है? इस विध कैसे यह हो गया, यदि यह मेरा स्थान है?

अभी इसी विधि थे सोच रहे, आश्चर्य चकित वह हुए देख। देवों समान सौन्दर्यवान, नर नारी के थे वहाँ भेस।।
बाजों गाजों के सहित, मंगल गीत गाते हुए। उस ब्राह्मण की अगवानी को, वह सब आगे बढ़ आये।।

पतिदेव के आगमन की सुन, आनन्दित हो गई ब्राह्मणी। जल्दी जल्दी उठकर के, वह घर से बाहर आ गई।।
ऐसी थी वह शोभायमान्, ज्यों कमल वन में लक्ष्मी जी। उसका दर्शन था ऐसा शुभ, ज्यों मूर्तिमान हों लक्ष्मी ही।।

पतिदेव का दर्शन पाते ही, पतिव्रता वह उत्कण्ठित हुई। प्रेमाश्रु से कमल नयन, उस ब्राह्मणी की भर गई।।
अति प्रेम से नमन किया, फिर नयना उसने मून्द ली। मानो मन ही मन में वह, आलिंगन पति का कर हो रही।।

स्वर्णहार वह थी पहरे, दासियों के मध्य में। विमानस्थ देवांगनावत्, उसके रूप थे निखर रहे।।
देदीप्यमान यह रूप देख, वह ब्राह्मण अति विस्मित थे। निज पत्नी के संग फिर, उन्होने महल में प्रवेश किये।।
वह महल तो उनका था जैसे, ज्यों देवेन्द्र का हो आवास। मणियों के शतश: स्तम्भों का, फैला था वहाँ प्रकाश।।

हाथी दान्त के बने हुए, थे स्वर्ण पात्रों से मढ़े। उन पलंगों पर दुग्ध फेन सम, श्वेत बिछौने थे बिछे।।
स्वर्ण दण्ड से आभूषित, अनेक चंवर थे वहाँ पड़े। सिंहासन भी वहाँ जो थे, स्वर्ण के ही थे बने हुए।।
कोमल कोमल गद्दियों से, वह सारे थे सज रहे। मोती की लड़ियों वाले, चन्दोवे थे वहाँ सजे।।
स्फटिकमणि की भीतों पर, थी पन्नों की चित्रकारी। रत्नजड़ित स्त्रियों के कर, थी जगमग रत्नदीप न्यारी।।

दीखी सब सम्पद् समृद्धि, नहीं प्रत्यक्ष कारण दीखा। अति गम्भीरता से विप्र ने, मन ही मन यूँ विचार किया।।
मेरे पास इतनी सम्पद्, भला कहाँ से आ गई? भाग्यहीन दरिद्र हूँ, मैं तो जन्म काल से ही।।
फिर सम्पद् समृद्धि का, क्या कारण कहीं हो सके? यदुश्रेष्ठ परमैश्वर्यमयी, श्री कृष्ण की कृपा कटाक्ष है यह।।

यह सब कुछ केवल उनकी, करुणा की ही है देन। लक्ष्मीपति श्री कृष्ण तो हैं, सकल भोग सम्पद् सम्पन्न।।
आप्तकाम वह प्रभु स्वयं, भक्त के मन क जान लें। स्वत: ही सब कुछ उसको दें, मुख से कुछ भी नहीं कहें।।
हैं मेरे सखा यदुश्रेष्ठ श्याम, मेघ से भी बढ़कर उदार। सागर को भी भर देने की, है समर्थ जिनकी अपार।।

किसान के सामने न बरसे, बरसे उसके सो जाने पर। बहुत जल भी बरसाकर के, मानें उसको वह थोड़ा कर।।

मेरे प्रिय सखा देवें तो बहुत, पर मानें उसे थोड़ा करके। प्रेमी भक्त की तनिक भेंट, वह जानें बड़ी करके।।
देखों तो सही मैने उनको, इक मुट्ठी भर चिउड़ा दिया। उदार शिरोमणि कृष्ण ने, किस प्रेम से उसको स्वीकारा किया।।

यही चाहूँ मैं जन्म जन्म, सुहृद् मेरे वह बने रहें। उन्हीं का साख्य और मैत्री, सदा सदा मुझे प्राप्त रहें।।
नहीं चाहूँ अन्य मैं सम्पदा, बस उन्हीं की सेवा प्राप्त हो। इकमात्र गुणनिधान श्री, कृष्ण में मम अनुराग हो।।
उन्हींके प्रेमी भक्तों का, सत्संग मुझको सदा मिलता रहे। उन्हीं के सिमरन् चिन्तन में, जीवन का पल पल बीतता रहे।।

अजम प्रभु धन वैभव के, सब दोषों को है जानें। धनैश्वर्य के मद से ही, धनिकों का पतन हो पहचानें।।
अदूरदर्शी भक्त उनका, भले ही उनसे मांगा करे। भिन्न सम्पद् ऐश्वर्य उसे, मांगने पर भी नाहीं दें।।
महति कृपा है उनकी यह, जो अपने भक्तों पे करें। अकिंचन् भक्त ही वास्तव में, अतीव प्रिय प्रभु को लगें।।

ब्राह्मण देव ने बुद्धि से, ऐसा निश्चय कर लिया। त्यागभाव से अनासक्त हो, पत्नी संग वहाँ निवास किया।।
भगवत्प्रसाद ही जान के, विषयों को ग्रहण वह करने लगे। दिन प्रतिदिन उनकी भक्ति का, वर्धन ही क्षण क्षण होए।।

हे राजन् तुम जान लो, देवों के परम आराध्य प्रभु। भक्तभयहारी यज्ञपति, हैं सर्वशक्तिमान् विभु।।
ब्राह्मणों को अपना प्रभु, और इष्ट वह माना करें। द्विज से बढ़कर अन्य कोई, नहीं जीव जगत् में जान ले।।

श्री कृष्ण के प्रिय सखा, उस ब्राह्मण ने यह जान लिया। हैं प्रभु अजित ही सर्वदा, नहीं किसी के वह अधीन कदा।।
फिर भी अपने सेवकों के, प्रभु सदा अधीन रहें। अजात शत्रु हैं स्वयं जो, पराजित उनसे हो जायें।।
यह जानी उन्हीं के ध्यान में, तन्मय सुदामा हो गए। तीव्र ध्यान आवेग से, अविद्या के सब बन्ध कटे।।
अल्प समय में ब्रह्म धाम, को उन्होंने प्राप्त किया। यह ही तो है सन्त जनों का, एकमात्र बस आसरा।।

ब्राह्मणों को ही श्री हरि, अपना इष्ट माना करें। उनकी ब्राह्मण भक्ति का, यह प्रसंग जो कोई सुने।।
प्रभु के चरण कमल में वह, प्रेम भाव को प्राप्त करे। कर्म बन्ध से सदा सदा, ही मुक्त वह हो जाये।।

२८) कृष्ण की कुरुक्षेत्र में सूर्यग्रहण पर वृन्दावन वासियों से भेंट

शुकदेव बोले,
श्री कृष्ण और बलराम का, इस विधि द्वारिका में वास था। प्रलय काल इव एकबार, सम्पूर्ण सूर्य ग्रहण लगा।।
ज्योतिषी गण के द्वारा उसका, पूर्वाभास था हो गया। इसलिये सब जीवों ने, निज कल्याण विचार किया।।
पुण्योपार्जन को सब जन, समन्तपञ्चक तीर्थ गए। यह तीर्थ ही कुरुक्षेत्र, नाम से भी जाना जाये।।

इसी क्षेत्र में परशुराम ने, धरती क्षत्रिय विहीन करी। उस श्रेष्ठ शस्त्रधारी ने, धारा बहा दी रुधिर की।।
फिर नरपतियों के रक्त के, वहाँ पंच कुण्ड थे बना दिये। ज्यों कोई साधारण नर, पाप निवृत्ति प्रायश्चित करे।।
त्यों ही भगवान परशु ने, महानतन वहाँ यज्ञ किये। शास्त्रोक्त वेदानुकूल, ही वे सारे यज्ञ थे।।
सर्वशक्तिमान हैं वह, नहीं उनका कर्म बन्धन कोई। लोकमर्यादा रक्षण को, फिर भी यह सब उपक्रम करी।।

इस महान् यात्रा के लिये, सब जनता कुरुक्षत्र आई। भारत के सब प्रान्तों की, जन शक्ति वहाँ थी आई।।

वसुदेव अक्रुर और, उग्रसेन आदि वृद्ध आये। गद प्रद्युम्न साम्ब आदि, यदुवंशी थे सब आये।।
अपने पापों का वे सब, प्रायश्चित करने के लिये। इस सूर्यग्रहण के अवसर पर, कुरुक्षेत्र थे जा पहुँचे।।
न प्रद्युम्न सुत अनिरुद्ध, न सेनापति कृतवर्मा आये। सुचन्द्र शुक्र सारणादि संग, द्वारिका की रक्षा में रहे।।
एक तो यदुवंशी सारे, स्वभाव से ही तेजस्वी थे। स्वर्णहार और पुष्प माल, ऊपर से कण्ठ में पहरे थे।।
बहुमूल्य वस्त्र और कवचों से, वे सब ही सुसज्जित थे। तीर्थ यात्रा के पक्ष में, अति शोभित थे चल रहे।।
देव विमानों जैसे रथ, और अत्युत्तम थे उनके अश्व। सागर की तरंगों सम, गतिवान् थे वह अश्व।।
विशालकाय मेघों समान, हाथी थे गर्जन करते। विद्याधरों समान जीव, थे पालकियां उठाये हुए।।
उनमें बैठी भार्याओं संग, थे इस विधि वह शोभायमान्। मानों स्वर्ग के देवता ही, कर रहे हों यह यात्रा महान्।।
कुरुक्षेत्र में पहुंच कर, एकाग्रचित्त से स्नान किया। ग्रहण के उपलक्ष्य में, निश्चित फिर उपवास किया।।

ब्राह्मणों को दिया गोदान, वह धेनु अति सुसज्जित थीं। सुन्दर झालरें वस्त्रों की, पुष्प मालाओं से थीं सजी।।
सोने की जंजीरें भी, थीं उनको पहनाईं गईं। ग्रहण मोक्ष पे पुन: यदुवंशियों, ने विधिवत् फिर स्नान करी।।
सत्पात्र ब्राह्मणों को उन्होने, फिर उत्तम भोजन करवाया। रहे कृष्ण चरण में दृढ़ भक्ति, यह ही उनका संकल्प था।।
श्री कृष्ण ही यदुवंशियों के, इष्ट और आदर्श थे। ब्राह्मणों से अनुमति पाकर, यदुवंशी भोजन को बैठे।।
फिर घनी ठण्डी छाया, वाले वृक्षों के नीचे। स्वेच्छानुसार ही वह, डेरा डाल के बैठ गए।।
विश्राम जब पूर्ण हुआ, सुहृद् सम्बन्धियों से मिले। नरपतियों और मित्रों से, फिर मिलन क्रम आरम्भ हुए।।

वहाँ मत्स्य उशीनर कोसल और, विदर्भ कुरु और सृंजय से। काम्बोज कैकय मद्र और, कुन्ति आनर्त और केरल से।।
अन्य अनेकों देशों से, नरपति भी वहाँ पे थे आये। मित्र और विपक्षी भी, शतश: राजा थे वहाँ आये।।
इनको छोड़ यदुवंशियों के, परम प्रिय गोप नन्द आदि। प्रभु दर्शन को चिरकाल से, गोपियाँ जो उत्कण्ठित थीं।।
वे सब भी वहाँ पहुँचे थे, यादवों ने सबको देखा। इन सबका दर्शन पा के, चित्त प्रफुल्लित उनका हुआ।।

इक दूजे का दर्शन पाया, मिलन और वार्तालाप हुआ। हृदयकमल मुखारविन्द, सबका ही मानो खिला।।
इक दूजे को भुजा में भर, आलिंगन सब थे कर रहे। नेत्रों से उनके प्रेम के, अश्रु थे अविरल झर रहे।।
रोम रोम पुलकित हुआ, वाणी मानो अवरुद्ध हुई। आनन्द सिन्धु में ही जैसे, सबकी थी डुबकी लगी।।

पुरुषों की भाँति स्त्रियाँ भी, थीं आनन्द से भर उठीं। अति सौहार्द पूर्ण मन्द स्मित, अति पावन तिरछी चितवन थीं।।
अपनी भुजाओं में भरकर, गहरा आलिंगन उन्होने किया। यदु स्त्रियों को हृदय लगा, अति आनन्द अनुभव किया।।
नेत्रों से भी प्रेम की, अश्रुधारा बहने लगी। ऐसी प्रेम पूर्ण परस्पर, मिलन उन स्त्रियों की थी।।

वयोवृद्ध जन के चरणों में, छोटों ने प्रणाम किया। छोटों को आसीस दे, उनका प्रणाम स्वीकार किया।।
इक दूजे का स्वागत किया, कुशल क्षेम भी पूछ लिया। फिर श्री कृष्ण की लीलाओं, का गान आरम्भ किया।।

वसुदेवादि निज भ्राताओं, और बहनों को जब देखा। उनके पुत्रों निज मात पिता, भाभियों को जब उन्होने देखा।।
भगवान कृष्ण को देखकर, कुन्ती सब दु:ख भूल गई। उनसे वार्तालाप करी, मानो सब व्यथा उसकी हरी गई।।

कुन्ती बोली,
मैं तो मन्दभागिन् हूँ भैया, नहीं कोई साध मम पूर्ण हुई। आप सम साध स्वभाव, भाई ने भी मम सुधि न ली।।
विपदा जब आई मुझपर, आपने बात भी न पूछी। इससे बढ़कर आप कहें, क्या दु:ख कोई है हो सकती?
किन्तु भैया विधाता ही, विपरीत जिसके हो जाये। बन्धु बान्धव सुत माता पिता, सब ही उसे भुला जायें।।
इस कारण भ्राता मेरे, नहीं दोष कोई आपका। इस संसार में यह ही तो, विधि का है विधान बना।।

वसुदेव बोले,
नहीं उलाहना दो बहिना, बुरा नहीं मानो इसका। जीव तो बस खिलौना है, इस दैव के हाथों का।।
यह सम्पूर्ण लोक ही, ईश्वर के वशवती रहे। अपने अपने कर्म करे, और उनका वह फल भोगे।।
कंस से ताडित- हम बहना, इधर उधर थे बिखरे हुए। कुछ दिन पूर्व ही ईश कृपा, से स्थान निज प्राप्त किए।।

शुकदेव बोले,
हे राजन् वहाँ जितने भी, नरपति गण थे आये हुए। उग्रसेन वसुदेवादि, यदुवंशियों ने सत्कार किए।।
उन्होने भी जब श्री कृष्ण का, पावनतम दर्शन पाया। परम शान्ति और आनन्द, का अनुभव उन्होने पाया।।

भीष्म पितामह द्रोणाचार्य, धृतराष्ट्र गान्धारी आये। दुर्योधनादि पुत्रों सहित, थे वह तीर्थ में आये।।
युधिष्ठिर आदि पाण्डव भी, सह पत्नी थे सब आये। कुन्ति सृंजय विदुर और, कुन्तिभोज कृपाचार्य आये।।
विराट् भीष्मक नग्नजित्, पुरुजित् द्रुपद और काशी नरेश। धृष्टकेतु शल्य दामघोष, विशालाक्ष मिथिला नरेश।।
मद्र और केकय नरेश, युधामन्यु सुशर्मा भी आये। निज पुत्रों सहित बहलीक और, पाण्डव मित्र नरपति आये।।
सौन्दर्य निधि श्री कृष्ण का, विग्रह देखी वह चकित हुए। उनकी रानियों को देखी, वह सब थे विस्मित हुए।।

बलराम और श्री कृष्ण से, सम्मान प्राप्त जब उन्हें हुआ। अति आनन्द और प्रेम से, उन सबका हृदय भरा।।
श्री कृष्ण के स्वजन बान्धवों की, वह प्रशंसा करने लगे। उग्रसेन के सामने, फिर उन्होने यह वचन कहे।।
हे भोजराज श्री उग्रसेन, धन्य है आपका जीवन यह। सच पूछें तो इस जग में, सफल आप ही हैं हुए।।
क्योंकि जिन प्रभु कृष्ण का, अति दुर्लभ दर्श है योगियों को। नित्य निरन्तर आप उन्हीं, श्री हरि का दर्शन करो।।

वेदों ने बहुत आदर से, श्री कृष्ण कीर्ति गान किया। उनका चरणोदक गंगा जल, इस जगत् को पावन करे सदा।।
उनकी वाणी शास्त्र और, कीर्ति है जग पावनी। दूर की बात नहीं है यह, यह बात है हमारे जीवन की।।
समय के फेर से पृथ्वी का, सौभाग्य नष्ट था हो चुका। किन्तु उनके चरण कमल, से जब इसका स्पर्श हुआ।।
सकल शक्तियों का पुन:, इस पृथ्वी में संचार हुआ। सब अभिलाषा और मनोरथ, अब पूर्ण करती है सदा।।

महाराजा उग्रसेन जी, श्री कृष्ण से है गोत्र बन्धन। इसपर विवाह आदि द्वारा, भी हुआ है सम्बन्धन।।
इतना ही नहीं हर पल उनका, दर्शन और स्पर्शन प्राप्त है। चलन वदन सोना उठना, खाना पीना सब साथ है।।
यूँ तो गृहस्थी में बसें आप, जो स्वत: नरक का द्वार है। पर सर्वव्याप्त विष्णु का, वहाँ मूर्तिमन्त निवास है।।
उनके दर्शन मात्र से, सब आप्तकाम ही हो जायें। स्वर्ग तो क्या मोक्ष तक की, भी अभिलाषा नहीं हरे।।

शुकदेव बोले,
नन्दबाबा ने राजन् जब, इस बात को जान लिया। कुरुक्षेत्र आये हैं कृष्ण, जब उनको यह ज्ञान हुआ।।
गोपों सहित सब सामग्री, बैलगाड़ियों पर धरी। प्रिय पुत्रों को मिलने के लिये, उसी ओर प्रस्थान किया।।

नन्दादि गोपों को देख, यदुवंशी सब आनन्द भर। सब इस प्रकार से हुए खड़े, मानो मृत तन में प्राण पड़े।।
इक दूजे से मिलने के लिये, बहुत दिन से सब आतुर थे। इस कारण बहुत देर तक, वह गाढ़ालिंगन में बन्धे।।

अति प्रेम और आनन्द से, विह्वल श्री वसुदेव थे। अपने हिय सप्रेम से, नन्द बाबा उन्हें लगा लिये।।
इक इक करके यादें सब, हृदय पटल पे उभर आईं। कंस की उनको ताड़ना, और क्रूरता भी फिर याद आई।।
यह भी उभर आई स्मृति, कैसे थे पुत्र को ले गये। था नन्द के आंगन उसे धरा, गोकुल में ले जाकर के।।

श्री कृष्ण और बलराम ने, माता पिता को नमन किया। नन्दबाबा और यशोमति को, फिर हिय से अपने लगा लिया।।
प्रेमावेग से भाइयों का, कण्ठ था अवरुद्ध हुआ। माता पिता के सामने, न शब्द एक मुख से निकला।।

महाभाग्यशाली यशोधा और, नन्दबाबा ने उन्हें अंक भरा। भुजापाश में बान्ध करी, गाढ़ालिंगन उनका किया।।
चिरकाल से वियोग के, दु:ख का पारावार न था। उनको कण्ठ लगाकर के, वह सारा ही दूर हुआ।।

देवकी और रोहिणी ने, यशोधा को निज अंक भरा। सुहृदयता उसकी को, फिर फिर दोनों ने याद किया।।
प्रेमावेग के कारण फिर, कण्ठ उनका रूंध गया। रूंधे कण्ठ से दोनों ने, यशुमति से फिर यूं कहा।।

देवकी और रोहिणी बोली,
आपने और श्री नन्द जी ने, जो मैत्री हमसे दिखलाई। हे वज्रेश्वरी उसको हम, कदापि नहीं भुला सकतीं।।
इन्द्र का सब ऐश्वर्य भी न बदला उसका चुका सके। कौन कृतघ्न होगा ऐसा, जो उपकार यह भुला सके?

श्री कृष्ण और बलराम ने जब, निज माता पिता देखे भी न थे। धरोहर मान के इनके पिता, आपके पास थे छोड़ गए।।
आपने इन दोनों की ही, इस प्रकार से रक्षा की। जैसे पलकें हैं सदा, पुतलियों की रक्षा करतीं।।

पालन पोषण और लाड़ प्यार, दुलार दिया सब आपने। इनके मंगल अर्थ ही, उत्सव भी अनेकों रचा दिये।।
वास्तव में तो आप ही, हैं इनके मात पिता। आपकी देख रेख में, नहीं तनिक कष्ट इन्हें छू सका।।

सर्वथा ही निर्भय यह रहे, यह आपके ही अनुरूप था। क्योंकि सत्पुरुष की दृष्टि में, नहीं अपना पराया कहीं रहता।।
श्री नन्दरानी जी आप तो, वास्तव में ही सन्त हैं। आपकी और नन्दबाबा की, महिमा तो अनन्त हैं।।

शुकदेव बोले,
पहले ही मैं कह चुका, थे गोपियों के परम प्रियतम। जीवनाधार सर्वस्व सभी, श्री कृष्ण थे उनके जीवन धन।।
उनका दर्शन पाकर के, जब पलकें थीं गिरने लगतीं। उनके रचयिता विधाता को, ही थीं वह तब कोसतीं।।
उन्हीं प्रेम स्वरूपा गोपियों को, बहुत काल पश्चात् ही। प्राण वल्लभ कृष्ण की, दर्शन आज पुन: प्राप्त हुई।।
उनके मन की लालसा का, हो सके अनुमान नहीं। नेत्रों की राह निज प्रियतम, कृष्ण को हृदय में ले गईं।।

जब श्री हरि ने देखा यह, तदात्म भाव को प्राप्त हुईं। उनमें तन्मय होकर के, वह उनसे एक ही हो गईं।।
उनके पास एकान्त में जा, हृदय से उन्हें लगा लिया। मंगल कुशल सबसे पूछा, फिर हंसकर उन्हें यूँ कहा।।
भगवान बोले,
प्रिय सखियों स्वजन सम्बन्धियों, के काज करने के लिये। तुम सी प्रेयसियां छोड़ कर, वज्र से बाहर हम आ गए।।
शत्रु विनाश करने में ही, बहुत दिनों हम उलझे रहे। क्या तुम लोगों को कभी, हमारी याद भी आया करे?

प्रिय गोपियों मन में तुम्हारे, कहीं यह आशंका तो नहीं? अकृतज्ञ मैं हो गया, यह सोची कहीं रूठी तो नहीं?
निस्संदेह ही जान लो, संयोग वियोग नहीं वश में। प्राणियों का संयोग वियोग, बस प्रभु इच्छा से होये।।

बादल तिनके रुई और, धूलिकण वायु मिला दे ज्यों। फिर स्वच्छ रूप से ही, अलग अलग उन्हें कर दे ज्यों।।
वैसे ही निर्माता सबके, भगवान भी ऐसा ही करें। अपनी इच्छा अनुसार ही, मिलन बिछुड़न सब करते रहें।।

अति सौभाग्य है प्रिय सखियो, यह प्रेम है तुमने प्राप्त किया। यह प्रेम मेरा तो मेरी ही, प्राप्ति है करवा देता।।
मेरे प्रति प्रेमाभक्ति, अमृतत्व जीव को दे ही दे। यह भक्ति तो जीवों को, परम धाम भी दे सके।।

वट पट घट आदि जो भी, भौतिक पदार्थ हैं जानो। आदि अन्त और मध्य में, बाहर भीतर भी तुम जानो।।
उनके मूल कारण पृथ्वी, जल वायु अग्नि आकाश हैं। सब पदार्थों में सर्वत्र, यह सब कारण ही व्याप्त हैं।।
उसी विधि इस जग में भी, जानो जितने भी पदार्थ हैं। पहले पीछे बाहर भीतर, सर्वत्र ही आत्म व्याप्त हैं।।

इसी विधि सबके तन में, यह पंचभूत ही कारण हैं। भोक्ता या जीव के रूप में, आत्म करे तन धारण है।।
किन्तु इन दोनों से परे, मैं अविनाशी हूँ परम सत्य। मेरे आन्तर में इन दोनों की, प्रतीति तुम करो अनुभव।।

शुकदेव बोले,
श्री कृष्ण ने इस विधि, आत्म ज्ञान दिया गोपियों को। पुन: पुन: उसे सिमर कर, लिंग शरीर उनका नष्ट भयो।।
प्रभु से फिर वह जाकर के, एक रूप ही हो गईं। सदा के लिये उन्हें प्राप्त थीं, श्री कृष्ण से फिर वह यूं बोलीं।।

गोपियां बोली,
हे कमलनाभ महायोगेश्वर, जो जन आपका ध्यान करें। अपने हृदय कमल में वह, चरणारविन्द चिन्तन करें।।
संसार कूप में गिरे हुए, हैं जितने भी प्राणी प्रभो। उससे निकलने के लिये, यह चरण ही इक अवलम्बन हों।।
अब ऐसी कृपा प्रभु आप करें, गृहस्थ में भी गर हम रहें। वह चरण कमल सदा सर्वदा, हृदय में ही हमारे बसें।।
क्षणभर भी न हों विस्मृत, हे प्रभु अनुकम्पा यह करें। चरणारविन्द प्रभु आपके, बस एक सहारा हमारा बनें।।

२९) कृष्ण की पटरानियों का द्रौपदी से मिलन

शुकदेव बोले,
श्री भगवान ही गोपियों के, वास्तविक शिक्षक हैं राजन्। शिक्षा द्वारा जो प्राप्त हो, वह तत्त्व भी हैं आप स्वयं।।
इससे पूर्व वर्णन किया, श्री कृष्ण अनुग्रह उनपे हुआ। बन्धु बान्धव और धर्मराज का, कुशल क्षेम अब उन पूछा।।
श्री कृष्ण चरण के दर्शन पा, अशुभ सभी उनके नष्ट हुए। सत्कार किया श्री कृष्ण ने, आनन्दित हो वह कहने लगे।।

युधिष्ठिर बोले,
महापुरुष मन ही मन में, तव चरण कमल मरकन्द पीएं। कभी लीला कथा रस रूप में, वह अमृत मुख से छलक पड़े।।
इतना अद्‌भुत है दिव्य वह रस, एक बार गर प्राणी पी ले। जन्म मरण चक्र कारण, अविद्या को ही नष्ट करे।।
अपने कर्ण कटोरों में, भर भर जो उस रस को पीएं। अमंगल की आशंका भी, उनको कभी न हो सके।।

इक रस हैं ज्ञान स्वरूप आप, अखण्ड आनन्द के सागर हैं। जाग्रत स्वप्न सुषुप्ति का, बुद्धि वृत्तियाँ ही कारण हैं।।
यह तीनों अवस्था ही, स्वरूप तक न पहुँच पायें। स्वयं प्रकाश हैं आप प्रभु, यह दूर से नष्ट ही हो जायें।।
परमहंसों की गति, हैं एकमात्र प्रभु आप ही। समय के फेर से वेदों का, जब होता देखा ऱ्हास ही।।
अचिन्त्य योगमाया का, लेकर अपनी आसरा। उनकी रक्षा के लिये, यह मनुज तन धारण किया।।
आपके श्री चरणों में प्रभु, है बारम्बार प्रणाम हे। नमस्कार हमारा प्रभु, करें आप स्वीकार हे।।

शुकदेव बोले,
जन सब जन श्री कृष्ण का, गुणगान थे इस विध कर रहे। यदु और कुरु स्त्रियों में भी, कृष्ण के चर्चे हो थे रहे।।
त्रिलोक ज्ञात उनकी लीला, का गान थीं वह कर रहीं। अब उन्हीं की बातें तुम, उनके मुख से सुनो सही।।

द्रौपदी बोली,
हे रुक्मिणी भद्रे जाम्बवती, हे सत्यभामे और कालिन्दी। शैब्ये लक्ष्मणा रोहिणि, और कृष्ण पत्नियां अन्य सभी।।
यह तो जरा बतलाओ हमें, भगवान विभु श्री कृष्ण ने। निज माया से जीवों सम, ही व्यवहार करते हुए।।
कहो सभी तुम लोगों के, पाणिग्रहण किस विधि किये? तुम सब पत्नियों संग अकेले, कैसे हैं वह निभा रहे?

रुक्मिणी बोली,
जरासन्धादि सब राजा तो, शिशुपाल से ब्याह मेरा चाहते थे। शस्त्रास्त्र सुसज्जित हो सभी, युद्ध के लिये तैय्यार थे।।
उन सबके बीच से प्रभु मुझे, फिर वैसे ही हर लाये। ज्यों बकरी भेड़ों में से सिंह, निज भाग छीन के ले जाये।।
सच तो यह इस जगत् में, अजेय जितने भी वीर हैं। इनकी चरण धूलि से ही, किरीट सभी के शोभित हैं।।
द्रौपदी जी अब मेरी तो, है यह ही अभिलाषा एक। सब सम्पद् सौन्दर्य के, हैं चरण कमल जो आश्रय एक।।
जन्म जन्म में आराधना, हेतु उनको प्राप्त करूँ। उन्हीं चरण कमलों की मैं, सेवा सदा करती रहूँ।।

सत्यभामा बोली,
अति व्यथित थे मेरे पिता, अपने अनुज की मृत्यु से। अत: उनके वध के कलंक, श्री कृष्ण के सीस ही उन्होने धरे।।
यह कलंक मिटाने को प्रभु ने, ऋक्षराज से युद्ध किया। जाम्बवान् को जीत लिया, और रत्न वह ला पितु को दिया।।
भयभीत हुए अब मेरे पिता, मिथ्या यह कलंक लगाकर के। इक उपाय उन्होने सोचा, धिक्कार से बचने के लिये।।
यद्यपि मेरा वाग्दान, किसी अन्य को ही था कर दिया। फिर भी स्यमन्तक मणि सहित, मुझे प्रभु चरण में जाय धरा।।
जाम्बवती बोली,
हे द्रुपदसुता मेरे पिता, जाम्बवान् न जाने थे। मम स्वामी यह सीतापति हैं, रहस्य न यह पहचाने थे।।
इस कारण सत्ताईस दिन, पर्यन्त प्रभु से युद्ध किया। जब परीक्षा पूर्ण हुई, यह सत्य उन्होंने जान लिया।।

यह राम ही हैं पहचान करी, उन चरणों का आश्रय लिया। स्यमन्तक मणि के साथ ही, उपहार में मुझको भी दिया।।
अब तो यही मैं चाहती हूँ, जन्म जन्म मैं दासी बनूँ। अपनु प्रभु की सदा सर्वदा, सेाव ही करती रहूँ।।

कालिन्दी बोली,
जब श्री हरि ने यह जाना, हूँ चरण स्पर्श को मैं उत्सुक। उसी की आस अभिलाषा में, हुई हूँ मैं तपस्या रत।।
तब अपने सखा अर्जुन सहित, वह यमुना तीरे आये। अनुकम्पा बरसाई उन्होने, स्वीकार किया उन्होने मुझे।।
अब उनकी दासी बनकर, माजन उनके घर का करूँ। चाहूँ जन्म जन्म तक मैं, सदा सेवा उनकी करती रहूँ।।

मित्रविन्दा बोली,
जब श्री हरि ने यह जाना, हूँ चरण स्पर्श को मैं उत्सुक। उसी की आस अभिलाषा में, हुई हूँ मैं तपस्या रत।।
तब अपने सखा अर्जुन सहित, वह यमुना तीरे आये। अनुकम्पा बरसाई उन, स्वीकार किया उन्होने मुझे।।
अब उनकी दासी बनकर, मार्जन उनके घर का करूँ। चाहूँ जन्म जन्म तक मैं, सदा सेवा उनकी करती रहूँ।।

द्रौपदी जी अब मेरी सुनो, था स्वयंवर मेरा हो रहा। वहाँ आकर भगवान ने, सब राजाओं को जीत लिया।।
ज्यों सिंह श्वान यूथों से सदा, निज भाग छीन के ले जाये। त्यों ही प्रभु निज शोभामयी, द्वारिका में मुझे ले गये।।

मेरे भ्राता प्रभु से छुड़वाकर, अपकार मेरा था कर रहे। किन्तु मेरे स्वामी सम्मुख, नहीं तनिक वह ठहर सके।।
अब तो यही मैं चाहती हूँ, मैं नित्य चरण उनका पखारा करूँ। जन्म जन्म तक बस केवल, इतना सौभाग्य ही मैं चाहूँ।।

सत्या बोली,
मेरे स्वयंवर में जो राजा, जीतने मुझको थे आये। उनका बल पौरुष जांचने को, परीक्षण पितु थे ठहराये।।
तीक्ष्ण श्रृंगी महा पराक्रमी, बैल उन्होंने छोड़ दिये। महावीरों के दम्भ उन, सात बैलों ने चूर किये।।
प्रभु ने खेल खेल में ही, उन सबको झपट के पकड़ लिया। बकरी के नन्हें मेमने वत्, उनको नाथ के बान्ध दिया।।

निज बल और विक्रम द्वारा, श्री हरि ने मुझको प्राप्त किया। दासियों चतुरंगी सेना सहित, प्रभु द्वारिका पहुँचे जा।।
मार्ग में जिन क्षत्रियों ने, विघ्न उपस्थित था किया। उन सबको भी सहज में ही, पराजित प्रभु ने कर दिया।।
अब है मेरी अभिलाषा एक, सदा सेवा इनकी करती रहूँ। अवसर यह सदा मिलता रहे, मैं इसी ताक में ही रहूँ।।

भद्रा बोली,
द्रौपदी जी भगवान कृष्ण, मेरे मामा के ही हैं पुत्र। मेरा चित्त तो इनके ही, चरणों में था अनुरक्त।।
जब मेरे पिता ने यह जाना, उन्होने स्वयं ही प्रभु को बुलवाया। अक्षौणी सेना दासियों संग, समर्पित चरण में मुझे किया।।
अपना परम कल्याण तो, बस इसी बात में माने हूँ। कर्मानुसार जहाँ भी जन्मूं, बस इन्हीं चरण में पड़ी रहूँ।।

लक्ष्मणा बोली,
देवर्षि नारद महारानी, हैं प्रभु के अनन्य भक्त। उन्हीं की लीला और अवतार, की चर्चा करते अविरत।।
उन्हीं की लीलायें सुनकर, यह भी मुझको आभास हुआ। समस्त लोकपाल त्यजी, श्री लक्ष्मी जी ने उन्हें बरा।।
मेरा चित्त भगवान के, फिर चरणों में आसक्त हुआ। मम पिता बृहत्सेन का, मुझपे अतीव स्नेह था।।

जब मेरे मन की जानी उन, मम इच्छा पूर्ति के लिये। मेरे पिता ने फिर जानो, आयोजन इस विधि किये।।

ज्यों आपके पिता ने स्वयंवर में, मत्स्यबेध का लक्ष्य बनाया था। उसी विधि मेरे पिता ने भी, लक्ष्य यही निश्चित किया।।
इनमें भेद बस इतना था, यह मत्स्य आवृत्त था बाहर से। वीर तो केवल जल में ही, छाया थे उनकी देख सकते।।
सहस्त्रश: राजा अस्त्र शस्त्र, प्रयोग में जो प्रवीण थे। अपने अपने गुरु सहित, मेरे पिता के राजनगर पहुँचे।।

आगन्तुक सब राजाओं का, मेरे पिता ने फिर सत्कार किया। बल पौरुष अवस्था के, अनुकूल ही उनको स्थान दिया।।
मेरी प्राप्ति की इच्छा से, धनु: बाण सबने उठा लिये। अनेकों राजा उनमें से, प्रत्यंचा भी न चढ़ा सके।।
ज्यों का त्यों ही धनुष को, उन्होने वहाँ पे रख दिया। इक अन्त पे डोरी बान्ध करी, कइयों ने धनुष को खेंच लिया।।
किन्तु दूसरे अन्त से, उसे बान्ध वह नहीं सके। झटका खाकर भूमि पर, अनायास वह जाय गिरे।।

जरासन्ध अम्बष्ट नरेश, भीम और शिशुपाल। दुर्योधन और कर्ण ने भी, डोरी तो ली धनु: पे डाल।।
किन्तु मछली की स्थिति का, पता वह न पा सके। पाण्डववीर अर्जुन ने भी, जल में उसके दरस किये।।
उसकी स्थिति को जानकर, दक्षता से उन्होंने छोड़ा बाण। लक्ष्य भेद किन्तु न हुआ, उससे स्पर्श हुआ बस जान।।

महावीर अभिमानियों के, मान का मर्दन हुआ। लक्ष्य बेध की चेष्टा संग, बहुतों ने छोड़ी मम आशा।।
धनुष उठा श्री हरि ने फिर, क्रीड़ावत् चढ़ा दी प्रत्यंचा। जल में केवल एक बार, प्रतिबिम्ब को उन्होने फिर देखा।।
बाण साध कर मारा उसे, और नीचे मत्स्य गिरा दिया। ठीक दोपहरी में उस पल, अभिजित नाम मुहूर्त था।।
तब सब पृथ्वी पर देवी, जय जय कार की गूंज उठी। देवों ने करी पुष्प वर्षा, आनन्द से फिर दुन्दुभि बजी।।

ऐसे क्षण में रानी मैंने, रंगशाला में प्रवेश किया। मेरे पाद की पायल ने, रुनझुन का स्वर छेड़ दिया।।
उत्तम रेशमी वस्त्र नये, थे मैंने धारण किये। केश भी फूल मालाओं से, थे मेरे तब सजे हुए।।
लज्जा मिश्रित मुसकान भी, अधरों पर फैली मेरे। रत्नों का ज्योतिर्मय हार, थी स्वर्ण का अपने हाथ लिये।।
कुटिल केश से मेरा यह, मुखमण्डल सुशोभित था। स्वर्ण कुण्डलों की आभा, कपोलों को थी रही दमका।।

इक बार उठाया मुख अपना, शीतल हास्य था चन्द्र सम। चहुँ ओर थे बैठे नरपति, डाली उनपर तिरछी चितवन।।
फिर धीरे से निज वरमाला, मैंने प्रभु कण्ठ में डाल दी। हृदय तो उनका ही था हुआ, पहले ही हूँ यह कह चुकी।।

ज्यों ही वरमाला कण्ठ पड़ी, अनेकों वाद्य वहाँ बज उठे। मृदंग पखावज शंख ढोल, नगारे आदि बजने लगे।।
नट नर्तकियाँ सब नाच उठे, गायकों ने भी स्वर छेड़ा। भिन्न स्वरों और रागों का, वहाँ पे फिर आरोह हुआ।।
अपने प्रियतम स्वामी हरि को, वरमाला जब मैंने पहनाई। कामातुर सब नरपतियों के, मन में भीषण डाह उठी।।

चतुर्भुज भगवा ने, निज रथ पे मुझे आरुढ़ किया। चार श्रेष्ठ अश्वों से ही, था उनका रथ जुता हुआ।।
हाथ में शाङ्र्ग धनुष लिये, और कवच पहन वह हुए खड़े। मानो सब राजाओं से, युद्ध हेतु वह तैय्यार थे।।

स्वर्ण के साजो सामान से, लदे हुए उत्तम रथ को। राजाओं के सामने ही, हांका दारुक ने द्वारिका ओर।।
जैसे सिंह कोई हरिणों से, अपना भाग स्वत: ले जाये। उसी विधि भगवान भी, मुझको द्वारका ले आये।।

उनमें से कुछ राजाओं ने, प्रभु का फिर पीछा किया। धनुष लेई युद्ध तत्पर हो, श्री हरि को रोकना उन्होने चाहा।।
किन्तु उनकी सब चेष्ठा तो, उसी भाँति निष्फल हुई। जैसे किसी सिंह को राह में, श्वान रोकना चहो कोई।।

शार्ङ्ग धनुष से छूटे हुऐ, बाणों का फिर कौतुक हुआ। किसीकी भुजा चरण किसीका, सीस किसी का कट के गिरा।।
बहुत से जन उस रणभूमि में, सदा के लिये ही सो गए। और अन्य बहुतेरे ही, छोड़ के रणभूमि भाग गये।।

तत्पश्चात् यदुश्रेष्ठ कृष्ण ने, सूर्य सम प्रवेश किया। स्वर्ग धरा में सर्वत्र, प्रशंसित द्वारिका नगर यह था।।
विशेष रूप से उस दिन वह, नगरी श्रृंगारित थी हुई। झण्डी पताका और तोरण, से थी पूर्ण वह सजी हुई।।
सूर्य का प्रकाश भी, नहीं धरती तक था पहुँच रहा। ऐसा सघन श्रृंगार था, उस दिन द्वारिका का हुआ।।

मेरी अभिलाषा पूर्ण हुई, पिता मेरे अति मुदित थे। निज भाई बन्धु सुहृद् जन, सब सम्मानित उन्होने किये।।
बहुमूल्य वस्त्राभूषण शैय्या, आसन और सामग्री दी। इस विधि निज प्रसन्नता, मेरे पिता ने प्रकट करी।।

श्री हरि तो परिपूर्ण हैं, नहीं कामना कोई भी। प्रेम वश मम पिता ने, बहुत सम्पदा और दासियाँ दीं।।
सैनिक हाथी रथ अश्व, समर्पित उनको बहुत किये। बहुमूल्य शस्त्र अस्त्र भी, उनकी सेवा में लाय धरे।।

पूर्व जन्म में हमने कोई, महा तपस्या की होगी। सबकी आसक्ति छोड़ करी, आराधना प्रभु की करी होगी।।
तभी तो हम इस जन्म में, गृहदासियाँ बनी हैं कृष्ण की। आप्तकाम और आत्म राम, विष्णु स्वरूप श्री कृष्ण की।।

महिषा बोली,
दिग्विजय बेला भौमासुर ने, बहुत नरपतियों को जीता। उनकी कन्याओं हम सबको, निज महल में बन्दी कर लिया।।
श्री हरि ने यह सब जानकर, युद्ध उससे रचा दिया। भौमासुर और उसकी सेना का, प्रभु ने फिर संहार किया।।
पूर्णकाम होकर भी उन्होने, वहाँ से हमको छुड़वाया। पाणिग्रहण करके हमारा, निज दासी हमें बना लिया।।
उनके चरण कमल का ही, हम नित्य चिन्तन करतीं थीं। जन्म मृत्यु रूपा जग से, है मुक्ति की बस राह यह ही।।

साम्राज्य इन्द्रपद इनके भोग, अणिमा गरिमा ऐश्वर्य सब। ब्रह्मापद मोक्ष सालोक्य, सारुप्य मुक्ति नहीं चाहें अब।।
हम तो बस इतना ही चाहें, प्रियतम की चरण रज सीस धरें। श्री लक्ष्मी के वक्ष:स्थल की, केसर से सुगन्धित जो रहे।।

गौ चराते समय गोप, गोपियाँ और सब भीलनियाँ। तिनके घास लता तक भी, स्पर्श को उत्सुक रहते सदा।।
उन्हीं चरण का हम सब भी, स्पर्श सदा ही चाहती हैं। उदार शिरोमणि कृष्ण के, बलिहारी हम जाती हैं।।

३०) कृष्ण के पिता वसुदेव का यज्ञ-महोत्सव

शुकदेव बोले,
भक्तभयहारी सर्वात्मन्, श्री भगवान हैं स्वयं कृष्ण। उनकी पत्नियों का राजन्, उनके प्रति है कितना प्रेम।।
कुन्ती गान्धारी द्रौपदी, सुभद्रा ने यह सब सुना। अन्य राज्य पत्नियों और, प्रभु प्रियतमा गोपियों ने भी सुना।।
उनका अलौकिक प्रेम देख, अति विस्मय सबको हुआ। अति मुग्ध वह हो गईं, नयनों को प्रेम ने सजल किया।।

स्त्रियों के संग स्त्रियां जब, बातचीत में थीं लगीं। पुरुषों की भी आपस में, चर्चा बहुत थी हो रही।।

उसी समय श्री कृष्ण और, बलराम दरस की ले इच्छा। अनेकों ऋषि मुनि मिलकर, उसी स्थल पर पहुँचे आ।।

उनमें सर्वप्रधान थे, श्री वयस कृष्ण द्वैपायन। नारद च्यवन देवल असित, विश्वामित्र और शतानन्द।।
भारद्वाज और गौतम भी, शिष्यों सहित परशु आये। वसिष्ठ गालव भृगु पुलत्स्य, कश्यप अत्रि मार्कण्डेय आये।।
बृहस्पति द्वित त्रित एकत, सनक सनन्दन सनातन थे। सनत्कुमार अंगिरा अगस्त्य, याज्ञवल्क्य और वामदेव आये।।

बैठे हुए सब नरपति गण, युधिष्ठिर संग सब पाण्डव थे। बलराम सहित भगवान कृष्ण, साहसा ही सब हुए खड़े।।
ऋषियों का दर्शन पाते ही, सबने आसन निज त्याग दिये। सबने ही मिलकर के फिर, ऋषियों को प्रणाम किये।।

तत्पश्चात् स्वागत किया, आसन पाद्य और अर्ध्य दिया। पुष्प माल धूप चन्दन, से फिर की उनकी पूजा।।
नरपतियों सहित बलराम और, श्री कृष्ण ने पूजन उनका किया। विधि विधान अनुकूल ही, यह पूजन वन्दन उनका था।।
सुखपूर्वक जब ऋषि बैठे, धर्म रक्षक श्री कृष्ण कहा। उस महा सभा ने मौन होई, श्री कृष्ण का सम्भाषण सुना।।
भगवान बोले,
धन्य हुए हैं आज हम, जन्म सफल हमारा हुआ। महादेवों को भी दुर्लभ जो, उन योगेश्वरों का दरस हुआ।।
अल्प तपस्या है जिनकी, रहें इष्टपूर्ति में सीमित। सब जीवों में न देखें उसे, मूरत में ही देखें निज इष्ट।।
वह आपका दर्शन स्पर्श प्रणाम, कुशल प्रश्न कैसे कर सकें? आपके चरण के पूजन का, सुअवसर उनको कहाँ मिले?

केवल जलतीर्थ ही तीर्थ नहीं, नहीं पत्थर मूर्त देवता। वास्तव में सन्त पुरुष ही हैं, वास्तविक तीर्थ और देवता।।
तीर्थ और मूर्त तो करें, पावन दीर्घ काल में। किन्तु सत्पुरुष कृतार्थ करें, केवल बस दर्शन मात्र से।।

अग्नि सूर्य शशि तारे, पृथ्वी जल एवं आकाश। वायु वाणी और इन सबके, हैं जो देव अधिष्टाता।।
बहुत उपासना से भी नहीं, पूर्व पाप वह नष्ट करें। क्योंकि उनकी उपासना से, नहीं बुद्धि भेद कभी नष्ट भए।।
किन्तु घड़ी दो घड़ी को भी, गर ज्ञानी की सेवा पाये। भेद बुद्धि विनाशक वह, सब पाप ताप मिटा जाये।।

हे सभासद और महात्माजन, वात पित्त और कफ से बना। शवतुल्य इस तन को ही, जो माने निज आत्मा।।
अहं सुत दारा आदि को, ही जो अपना मान रहा। मिट्टी पत्थर काष्ठादि विकार, जो निज इष्ट है जान रहा।।
केवल जल तीर्थ को ही, जो तीर्थ समझा करें। महापुरुष को न पहचाने जो, पशुओं में अधम है गर्दभ वे।।
शुकदेव बोले,
अखण्ड ज्ञान सम्पन्न है, हे राजन भगवान कृष्ण। ऋषि मुनि सब हुए चकित, उनका यह सम्भाषण सुन।।
बुद्धि भ्रमित हुई उनकी, वे प्रभु की बात न जान सके। प्रभु हैं क्या यह कह रहे, वह यह न पहचान सके।।

बहुत देर विचार कर, फिर उन्होने यह निश्चय किया। सर्वेश्वर होने पर भी है, अति साधारण रूप उनका।।
जीव की भाँति यह वर्तन, है लोक संग्रह के लिये। ऐसा समझ वह मुसकाये, और कृष्ण से फिर बोले।।
मुनि बोले,
आपकी माया से प्रभु, मोहित हैं सब हो रहे। प्रजापति मरीचि आदि, या महा तत्त्व के ज्ञानी हे।।
स्वयं ईश्वर होकर भी, प्रभु जीव की सी चेष्टाएँ करें। अपने को छिपाकर के, जीव सा ही आचरण करें।।

हे प्रभु आपकी लीलाएँ, हैं अति विचित्र ही। आश्चर्यमयी है आप प्रभु, वैसी ही आपकी गति विधि।।

ज्यों पृथ्वी तो है एक ही, अनेकों वह विकार धरे। वृक्ष पाषाण घट आदि सब, वह नाम रूप आकार धरे।।
त्यों ही हैं प्रभु आप एक, सदा चेष्टाहीन रहें। जग में अनेकों रूप धरें, सृष्टि पालन संहार करें।।
किन्तु यह सब करते हुए, नहीं लिप्त किसी से आप भएं। सबके तद्रुप से भासें प्रभु, किन्तु सदा निर्लिप्त रहें।।
भेद भाव से रहित सदा, एक रस अनन्त हैं। लीलामात्र चरित है यह, प्रभु आपकी लीला धन्य है।।

प्रकृति परे हैं आप प्रभु, परं ब्रह्म परमात्मा। भक्त के रक्षण दुष्ट दमन को, प्रकट करें रूप अपना।।
अपनी लीला के द्वारा आप, सनातन मार्ग रक्षण करें। सब वर्णाश्रम के रूप में, आप स्वयं ही प्रकट भएं।।

है वेद आपका विशुद्ध हृदय, उसीमें आप प्रभु प्रकट हों। तप स्वाध्याय संयम द्वारा, साक्षात्कार उसी में हो।।
व्यक्तव्यक्त दोनों के ही, अधिष्ठान प्रभु आप हैं। परं ब्रह्म परमात्मा, साक्षात् प्रभु आप हैं।।

ब्राह्मण ही प्रभु वेदों का, आधारभूत हैं स्वयं बने। आपके स्वरूप की प्राप्ति का, हैं वही तो स्थान हे।।
इस कारण ही प्रभु आप, सम्मान करें ब्राह्मणों का। आप ही अग्रण्य रहें, ब्राह्मण भक्तों में सदा।।

सब कल्याण साधनों की, हैं चरम सीमा आप ही। आप ही हैं हे प्रभु, सत्पुरुषों की इकमात्र गति।।
आपसे मिलकर प्रभु हमारे, जीवन सफल यह हो गए। सब विद्या तप और ज्ञान का, परम फल तो आप भएं।।

अनन्त आपका ज्ञान प्रभो, सच्चिदानन्द स्वरूप आप। परं ब्रह्म परमात्मन्, हैं स्वयं भगवान आप।।
अपनी योगमाया से ही, आवृत्त अपने को है किया। अचिन्त्य शक्ति हे आपके, चरणों में है नमन हमारा।।

सभासद और अन्य सभी, नरपतियों की हम क्या कहें? यदुवंशी जो सदैव ही, आहार विहार भी संग करें।।
वह भी न आपको जान सकें, स्वरूप नहीं पहचान सकें। आत्म स्वरूप आदि कारण, माया से निज आवृत्त रहें।।

स्वप्न में यह जीव ज्यों, सत्य ही माने स्वप्न को। नाम मात्र की इन्द्रियों में, स्वप्न में तन आभास जो हो।।
उस स्वप्न के तन को ही अपना, वास्तविक तन वह माना करे। उस काल के लिये तो वह, इस सत्य को भूला रहे।।
इसके अतिरिक्त भी कोई, जाग्रत में उसका तन रहे। इसी उपमा अनुकूल प्रभु, जाग्रत में भी यही जीव करे।।
इन्द्रियों से मोहित हुआ, विषयों में चित्त भटकता है। उस पल विषयों के भ्रम से, विवेक आवृत्त हो जाता है।।
जीव यह जान न पाता है, जागृत संसार से परे आप। प्रवृत्ति में खोया भूले वह, इन सबके कारण भूत आप।।

योग और साधना से प्रभु, महर्षि मुनि आपका ध्यान करें। परिपक्व साधना से हृदय में, चरण कमल धारण करें।।
सब पापों से पावन करनी, गंगाजल का हैं आश्रम जो। अति सौभाग्य से हे प्रभु, हमें आज उनके दर्शन हो।।
आपके भक्त हैं हम प्रभु, हम पर अनुग्रह कीजिये। परम धाम की आपके, प्राप्ति तभी सम्भव भये।।
जब लिंग तनो रूपा जीव, के कोष सारे नष्ट हों। आपकी भक्ति द्वारा ही, हे प्रभु यह सम्भव हो।।
शुकदेव बोले,
प्रभु की इस विधि स्तुति कर, फिर उनसे सबने आज्ञा ली। धृतराष्ट्र और युधिष्ठिर से, अनुमति सबने प्राप्त करी।।
अपने अपने आश्रमों में, जाने का विचार किया। महाभाग वसुदेव ने, जब उनका यह आशय देखा।।

उनके पास ही जाकर के, सादर उन्हें प्रणाम किया। उनके चरण पकड़ के फिर, विनम्र भाव से उन्हें कहा।।
वसुदेव बोले,
सर्वदेवमय हे ऋषिजन, मैं नमस्कार करूँ आपको। कृपा करी के आप सब, मेरी प्रार्थना को सुन लो।।
सब कर्म और वासना का, आत्यन्तिक जिससे नाश हो। हे ऋषिजन उस कर्म के, अनुष्ठान का आदेश दो।।
नारद बोले,
हे ऋषिजन इस विषय में, नहीं किंचित् भी आश्चर्य करें। श्री कृष्ण को अपना शिशु मान, जिज्ञासा है उनके मन में।।
अपने कल्याण का मार्ग वह, हम लोगों से पूछ रहे। उनकी सरल शुद्ध जिज्ञासा, ही इसका कारण भये।।
संसार में जीव की निकटता, अनादर का कारण बने। गंगातट वासी निज शुद्धि, किसी अन्य ही तीर्थ से चाहें।।

श्री कृष्ण की अनुभूति तो, समय के फेर से मिट न सके। जग सृष्टि स्थिति और प्रलय में, वह तो सदा इक रस रहे।।
किसी अन्य निमित्त या गुणों से, वह कभी क्षीण न हो पाये। अविद्या रागादि क्लेश, नहीं पाप पुण्य क्षय कर पायें।।
सुख दु:ख आदि कर्म फल और, गुण प्रवाह खण्डित न करे। अद्वितीय परमात्म आप, स्वयं ही हैं प्रभु जान लें।।
अपनी प्राणादि शक्ति से, आवृत्त जब अपने को करें। तब मूर्ख यह मान लें, मानो वह स्वयं हैं ढके गए।।
बादल कुहरा या ग्रहण से, ज्यों नेत्र आवृत्त भएं। सूर्य को ही मूढ़ तब, आवृत्त है यह मान ले।।
शुकदेव बोले,
तत्पश्चात् उन ऋषियों ने, वसुदेव को सम्बोधित किया। श्री कृष्ण बलराम और, नरपतियों के सम्मुख कहा।।
मुनि बोले,
कर्मवासना और फल का, आत्यन्तिक नाश ही गर चाहें। कर्मों के द्वारा ही गर, नष्ट उन्हें करना चाहें।।
है सर्वोत्तम उपाय यही, यज्ञों द्वारा पूजन करें। श्रद्धापूर्वक सब यज्ञों के, अधिपति श्री विष्णु को पूजें।।

त्रिकाल दर्शी ज्ञानियों ने, शास्त्रानुकूल उपाय कहा। चित्त की शान्ति का सुगम, है यही मोक्ष साधन कहा।।
यही धर्म तो चित्त में आनन्द और उल्लास भरे। न्यायार्जित अपने धन से, श्रद्धापूर्वक प्रभु को पूजें।।
द्विजातीय गृहस्थ के, परम कल्याण का मार्ग है यह। सर्वसमर्थ लगा अपनी, श्रद्धामय पूजन में लगे।।

विचारवान् जीव का, कर्त्तव्य यही है जान लें। यज्ञ-दान आदि द्वारा, धनेच्छा का वह त्याग करे।।
गृहस्थोचित भोगों द्वारा, दारा और सुत की इच्छा त्यजे। स्वर्गादि भी हैं नाशवान्, यह जानी लोकैष्णा त्यजे।।
धीर पुरुष घर में रहकर, त्रै इच्छा का परित्याग करें। तपोवन की राह पे वह, इस विध स्वत: ही चल पड़ें।।

हे समर्थ श्री वसुदेव, ब्राह्मण क्षत्रिय और वैश्य जो। देव ऋषि और पितरों का, ऋण लेकर ही पैदा हों।।
यज्ञ अध्ययन और सन्तान, की उत्पत्ति जब करें। तब ही उनके ऋणों की, मुक्ति सम्भव हो सके।।
इनसे उऋण हुए बिना, जो इस जग का त्याग करे। सत्य ही जानें वसुदेव, उसका पतन ही हो जाये।।

हे वसुदेव अब होके मुक्त, ऋषि और पितर ऋण से। यज्ञों द्वारा देवों का, ऋण भी आप चुका ही दें।।
इस विधि सबसे उऋण होई, अब श्री हरि की शरण गहें। हे महामने आप अब, गृह त्याग की ओर बढ़ें।।
परम भक्ति से आपने, श्री जगदीश्वर की आराधना की। आपको पुत्र रूप में वह, प्राप्त हुए इस कारण ही।।

शुकदेव बोले,
महामना श्री वसुदेव ने, ऋषियों की यह बात सुनी। सीस धरी वा चरण में, फिर उनको प्रणाम करी।।
हे राजन् इस विध उन्होने, ऋषिवर को प्रसन्न किया। ऋत्विजों के रूप में, वरण उनका कर लिया।।
धर्मपूर्वक इस विधि, वसुदेव ने जब उनका वरण किये। पुण्य क्षेत्र कुरुक्षेत्र में फिर, अत्युत्तम यज्ञ उन्होने करवाये।।

वसुदेव ने जब राजन्, इस भान्ति यज्ञ की दीक्षा ली। यदुवंशियों ने शुद्ध हो, सुन्दर नव वस्त्र धारण करी।।
संग में कमल के हार भी, उन्होने कण्ठ में पहन लिये। वस्त्राभूषण धारण कर, राजा भी सुसज्जित हो गये।।

वसुदेव की भार्याओं ने भी, फिर अपना श्रृंगार किया। सुन्दर वस्त्र स्वर्णहार, अंग राग से तन को सजा लिया।।
फिर वे अति आनन्द से, यज्ञशाला की ओर बढ़ीं। उसके सुन्दर हाथों में, मंगलमय विविध सामग्री थी।।

मृदंग पखावज शंख ढोल, और नगारे बजने लगे। नट और नर्तकियों के वहाँ, नर्तन फिर होने लगे।।
सुत और मागध जन का, स्तुति गान आरम्भ हुआ। स्वर मिला गन्धर्वों से, उनकी भार्याओं ने गान किया।।

नयनों में रचाया अंजन और, तन पे भी नवनीत मला। देवकी आदि भार्याओं संग, ऋत्विजों का अभिषेक किया।।
पुराकाल में ज्यों नक्षों सहित, था चन्द्र का अभिषेक हुआ। उसी विधि वसुदेव ने, ऋत्विजों का अभिषेक किया।।

वसुदेव थे दीक्षित यज्ञ में, मृगचर्म ही था धारण किया। किन्तु पत्नियों ने उनकी, पूर्ण श्रृंगार था किया हुआ।।
सुन्दर साढ़ी कंगन हार, पायजेब सहित थे कर्णफूल। आभूषित भार्याओं सहित, वसुदेव की थी शोभानुकूल।।

ऋत्विज और सदस्य जो, वसुदेव के इस यज्ञ में थे। रत्नजड़ित आभूषण और, रेशम के वस्त्र वह पहने थे।।
त्यों ही सुशोभित सब हुए, ज्यों इन्द्र के यज्ञ में पहले थे। उसी समय श्री कृष्ण और, बलराम भी वहाँ पे आ पहुँचे।।
भाई बान्धव दारा सुतों, सहित थे वह शोभायमान्। ज्यों सभी शक्तियाँ ले अपनी, धरती पर उतरे हों भगवान।।
जीवों के इश्वर स्वयं प्रभु, समटि देव श्री संकर्षण। विशुद्ध नारायण रूप में, हुए वह शोभा को प्रपन्न।।

वसुदेव ने हर यज्ञ से, प्रभु विष्णु की उपासना की। ज्योतिष्ठोम पूर्णमास दर्स, प्राकृतिक यज्ञानुष्ठान करी।।
सौरसत्रादि वैकृत यज्ञों, को भी फिर उन्होने किया। अग्निहोत्रादि द्वारा क्रिया और, ज्ञानाश्रय विष्णु को पूजा।।

समय आने पर तत्पश्चात्, दिये ऋत्विजों को वस्त्रालंकार। प्रचुर धन और दक्षिणा दी, उनको शास्त्रन् के अनुसार।।
अलंकृत धेनु पृथ्वी और, रूपवती कन्यायें दीं। सब ऋत्विजों का सत्कार किया, वसुदेव ने इस विधि।।

फिर ऋषियों ने पत्नी संयाजन, नामक यज्ञाङ्ग किया। यज्ञान्त स्नान से सम्बन्धित, अवशेष कर्म फिर करवाया।।
वसुदेव जी को आगे करके, सबने ही फिर स्नान किया। श्री परशु का बनाया हुआ, रामह्रद् वह कुण्ड था।।

इसके बाद फिर वसुदेव, और उनकी पत्नियों ने। अपने सारे वस्त्राभूषण, बन्दी जन को दान दिये।।
नव वस्त्राभूषण पहन कर, फिर भोजन सबको करवाया। ब्राह्मण से ले श्वान पर्यन्त, भूखा कोई नहीं रहा।।

भाई बान्धव और स्त्री सुत, विदर्भ कोसल कुरु काशी। केकय और सृंजय देशों के, आये थे जो भी नरपति।।
सदस्यों ऋत्विजों और देवों, मनुष्यों और पितरों को। चारणों को भी विदाई के, रूप में भेंट अनेक दिया।।

लक्ष्मीपति श्री कृष्ण की, अनुमति फिर सब लेकर के। यज्ञ प्रशंसा करते हुए, अपने घरों को चले गए।।

राजा धृतराष्ट्र और विदुर, युधिष्ठिर भीम और अर्जुन। भीष्म पितामह द्रोणाचार्य, कुन्ती सहदेव और नकुल।।
श्री नारद और श्री वेदव्यास, अन्य स्वजन सम्बन्धी जन। बान्धव सुहृद् यादव छोड़ी, थे सभी वियोग पीड़ा प्रपन्न।।
स्नेहाद्र हृदय से उन, यदुवंशियों को लगाया गले। और अति कठिनाई से फिर, सब अपने अपने देश गए।।

भगवान कृष्ण और राम रहे, वहीं उग्रसेन के संग। नन्दबाबा और सब गोपों का, उन्होने किया पूजन अर्चन।।
उन सबका सत्कार किया, प्रेम विवश बहुत दिन रहे। श्री वसुदेव अनायास ही, इच्छा सिन्धु से पार हुए।।
आनन्द की उनकी सीमा न थी, स्वजन आत्मीय सब साथ थे। श्री नन्दबाबा का हाथ पकड़, वह उनसे यूँ कहने लगे।।
वसुदेव बोले,
हे भ्राता विधाता ने, महाबन्धन है इक बना दिया। स्नेह और प्रेम पाश में ही, जीव को है उन बान्ध दिया।।
महाशूरवीर और योग यति भी, सहज न उसको तोड़ सकें। जीवन के अनुभव से भ्राता, यह ही है मेरा मत हे।।

हम अकृतज्ञों के प्रति, अनुपम मैत्री है आपकी। आप सरीखे सन्त शिरोमणि, का स्वभाव हो ऐसा ही।।
नहीं उऋण हम हो सकें, न ही इसका फल दे सकें। इतना कहें यह मैत्री का, बन्धन सदा अटूट रहे।।
आप सदा इस प्रेम को, हैं निभाते ही आये। बन्दीगृह में पड़े थे हम, प्रिय हितकर कुछ न कर पाये।।
अब यह दशा है हो गई, धन सम्पद् का श्रीमद् हुआ। उस मद से अन्धे हैं हुए, सामने आपको न देखा।।

दूजों को सम्मान देई, नहीं आप चाहें कभी कोई मान। सबका कल्याणकामी है जो, नहीं लक्ष्मी से उसे कोई काम।।
इसमें ही है उसका भी भला, राज्य मद तो करे अन्धा। भाई बन्धु निज स्वजन को, भी नहीं जीव देख सकता।।
शुकदेव बोले,
इस प्रकार कहते कहते, गद्गद् श्री वसुदेव हुए। नन्दबाबा की मैत्री और, उपकार याद करने लगे।।
नयनों में अश्रु भर आये, अविरल वह बहने लगे। निज सखा वसुदेव को वह, प्रसन्न करना चाहते थे।।
श्री कृष्ण और बलराम के भी, प्रेम पाश में वह थे बन्धे। आज कल करते करते, यूँ तीन महीने बीत गए।।
नन्दबाबा वहीं पे रहे, सम्मान दिया यदुवंशियों ने। जी भर कर निज कृतज्ञता को, प्रकट किया यदुवंशियों ने।।
अपना मन वहीं छोड़ के, बिन मन के व्रज की यात्रा की। श्री कृष्ण चरण में मन था टिका, विरह किसे अनुभव होती?

बन्धु बान्धव सब ही जब, विदा वहाँ से हो गए। श्री कृष्ण को ही निज इष्ट देव, यदुवंशी जो माने थे।।
वर्षा ऋतु आगमन का, जब उनको अनुमान हुआ। सबने ही मिल जुल के फिर, द्वारिका को प्रस्थान किया।।
वहाँ पहुँच सब लोगों ने, वसुदेव के यज्ञ की चर्चा करी। बन्धु बान्धव दर्शन मिलन, तीर्थ की सब प्रसंग कही।।

३१) कृष्णद्वारा पिता वसुदेवको ब्रह्म-ज्ञान का उपदेश

शुकदेव बोले,
इक दिन श्री कृष्ण और बलराम, माता पिता के पास गए। प्रात: कालीन प्रणाम को ही, यह उद्यम उनके राजन् थे।।
प्रणाम जब उन्होने कर लिया, वसुदेव ने अभिनन्दन किया। बहुत प्रेम पूर्ण सत्कार करी, दोनों भाइयों से उन्होने कहा।।

महर्षियों के श्री मुख से, वसुदेव ने महिमा थी सुनी। प्रभु के चरित उनकी महिमा, निज नयनों से भी थी देखी।।
इससे विश्वास था दृढ़ हुआ, नहीं साधारण हैं पुरुष यह। इस कारण निज पुत्रों को, प्रेम सहित वह यूं बोले।।

वसुदेव बोले,
हे सच्चिदानन्द स्वरूप कृष्ण, हे महायोगेश्वर संकर्षण। मैं जानूँ तुम दोनों हो, सनातन परम श्री पुरुषोत्तम।।
सम्पूर्ण जगत् के साक्षात्, कारण रूप हो तुम दोनों। प्रकृति और पुरुष के भी, नियामक तुम परमेश्वर हो।।

हो जगत् के आधार तुम, निर्माता भी तुम ही हो। निर्माण सामग्री जो इसकी, वह सब भी तो तुम ही हो।।
स्वामी हो सार जगत् के, मैं जानूँ तुम दोनों ही। तुम्हारी ही क्रीड़ा के लिये, है इसकी निर्माण हुई।।
जिस काल में जिस रूप में, जो कुछ भी यहाँ होता है। वास्तव में सब हो तुम ही, तुमसे ही तो सब होता है।।
प्रकृति रूप से भाग्य जो, और पुरुष रूप से भोक्ता जो। दोनों से परे नियामक भी, साक्षात् प्रभु आप ही हो।।

इन्द्रियों से हो सदा अतीत, नहीं भाव विकार कोई आपमें। जन्म अस्तित्व आदि यह सब, विकार न आपको छू सकें।।
इस चित्र विचित्र जगत् का, निर्माण आपने है किया। स्वयं ही आत्म रूप से, प्रवेश भी इसमें है किया।।
प्राण और जीव के रूप में, पालन पोषण भी स्वयं करो। सृष्टि सामर्थ इन प्राणन् में, हे प्रभु बस आप ही हो।।
आप समान नहीं चेतन वह, वह तो अचेतन ही रहें। स्वतंत्र नहीं वह किसी विधि, परतंत्र ही वरता करें।।
चेष्टाशील प्राणादि में, तो केवल चेष्टा होती है। शक्ति तो उस चेष्टा में, आपकी ही बस होती है।।

चन्द्र कान्ति अग्नि का तेज, और सूर्य की तेज प्रभा। नक्षत्र विद्युत आदि की, स्फुर्णा रूप से जो सत्ता।।
पृथ्वी की शक्ति गन्ध वृत्ति, और पर्वतों में जो है स्थिरता। वास्तव में तो इन सबमें, है केवल आपकी ही सत्ता।।

जल में भी जो निहित है, जीवन दे हैं जो शक्तियाँ। तृप्ति और शुद्धिकर भी, जितनी भी हैं वहाँ शक्तियाँ।।
हैं आपका ही स्वरूप वे, जल और उसका रस आप ही हो। इन्द्रिय अन्त:करण शक्ति, तनो शक्ति स्पन्दन आप ही हो।।
वायु की सब शक्तियाँ भी, जानूँ हैं सब आपकी। दिशा और अवकाश उन, सबमें है शक्ति आपकी।।
आकाश शब्द तन्मात्रा, उनका नाद भी आप ही हो। ओम्कार तथा वर्ण और, वैखरी वाणी आप ही हो।।

इन्द्रियाँ और उनके अधिष्ठातृ, देवता भी सब आप ही हो। बुद्धि की निश्चय शक्ति, विशुद्ध स्मृति भी आप ही हो।।
तामस अहंकार जो, भूतों में उनका कारण है। तैजस अहंकार जो, इन्द्रियों में उनका कारण है।।
इन्द्रिय अधिष्ठातृ देवों में, सात्विक अहं ही कारण है। जीवों के आवागमन का, माया जो इक कारण है।।
वह सभी रूप हैं आप स्वयं, आप ही सगरे रूप धरो। ज्यों मिट्टी आदि पदार्थ में, अनेकों ही विकार हों।।
घट वृक्ष पर्वत में ज्यों, माटी रहे नित्य वर्तमान। वास्तव में माटी ही तो, है कारण इन सबका जान।।
उसी विधि यहाँ जितने भी, विनाशवान् पदार्थ हों। वास्तव में आपका रूप हैं वे, कारण तो आप अविनाशी हो।।

सत्व रज तम तीनों गुण, और उनके हैं परिणाम जो। महत्तत्त्वादि सब आपमें ही, योग माया से कल्पित हों।।
यह जो भी जन्म अस्ति वृद्धि, परिणाम आदि विकार हैं। हैं सर्वथा नहीं यह आपमें, भावादि जो भी विकार है।।
जब कल्पना राही आपमें, इनका दर्शन हम पायें। तब ही इन विकारों के, आपको हम अनुगत पायें।।

जिस पल इस कल्पना की, निवृत्ति नितान्त ही हो जाये। तब आपका निर्विकल्प, परमार्थ रूप ही रह जाये।।

यह जगत् तो त्रैगुण का, ही है बस प्रवाह रूप। देह इन्द्रिय चित्त दु:ख सुख, हैं राग लोभ उसका कार्य रूप।।
सर्वात्म स्वरूप का सूक्ष्म रूप, जो मूढ़ न पहचानें। निज देहाभिमान अज्ञान के, बन्धन में ही वह पड़े रहे।।
कर्म बन्ध में पड़े हुए, वह जन्म मरण में भटका करें। सच्चा स्वरूप जो मुक्ति दे, उसको न वह पहचानें।।

शुभ प्रारब्ध के कारण यह, अति दुर्लभ मानुष तन पाया। इन्द्रिय आदि सामर्थ्य युक्त, सब विधि यह परिपूर्ण था।
किन्तु आपकी माया के वश हो, मैं अपना सच्चा सुख भूला। असावधान होकर मेरा, यह जीवन सारा बीत गया।।
यह तन मैं हूँ और इस तन के, सम्बन्धी मेरे हैं अपने। अहंता-ममता के फंदे में, जगत् यह सारा फंसा रहे।।

यह जानूँ मैं तुम दोनों तो, नहीं मेरे पुत्र हो वास्तव में। वास्तव में सब जीवों और, प्रकृति के स्वामी आप रहें।।
पृथ्वी पे भार बने राजाओं, का संहार करने के लिये। आपने ही था कहा मुझे, हैं आपने प्रभु यह रूप धरे।।

शरणागतवत्सल आप सदा, हैं दीनों के हितकारी। मैं तो चरण कमल की ही, शरण में हूँ हे बनवारी।।
शरणागत के सब ताप भय, तेरे चरण ही पावन कर सकें। इस पल इन्द्रिय लोलुपता से, हे प्रभु मेरा हृदय भरे।।
मृत्यु के ग्रास नश्वर तन में, इस कारण आत्म बुद्धि हुई। और आप परमात्म में, पुत्र बुद्धि मैंने करी।।

प्रसव गृह में ही प्रभु, आपने हमसे था कहा। धर्म मर्यादा रक्षण को, अपनी ही योगमाया द्वारा।।
अजन्मा होकर भी सदा, बार बार मैं जन्म लूँ। तुम दोनों के घर युग युग में, अवतार सदा मैं ग्रहण करूँ।।
हे प्रभो आकाश सम, अनेकों ही तन आप धरो। और समय पर उन सबको, छोड़ते से भी दीखे हो।।
वास्तव में तुम अनन्त हो, सदा एक रस सत्ता धारी। आश्चर्यमयी तेरी माया के, कब समझ सका रहस्य कोई?
सब लोग आपकी कीर्ति का, ही गान प्रभु किया करें। हैं अनन्त प्रभु आप स्वयं, अनन्त आपकी कीर्ति हे।।
शुकदेव बोले,
वसुदेव जी के यह वचन सुनी, श्री कृष्ण तनिक से मुसकाये। सविनय सीस झुकाकर के, फिर मधुर वचन यह पितु से कहे।।
भगवान बोले,
हे पिताश्री आपके तो, हैं हम साधारण पुत्र ही। हमको लक्ष्य बनाकर के, जो ब्रह्म ज्ञान उपदेश करी।।
है युक्ति संगत वह सारा, आप मैं या दाऊ बलराम। सब द्वारिका वासी और चराचर, जग में जड़ जंगम समान।।
सबके सब जो कहा आपने, वैसे ही समझने चाहिये। ब्रह्म स्वरूप ही हैं सारे, यह सत्य जानना चाहिये।।

आत्म तो एक है पिता श्री, निज में ही गुण सृष्टि करे। गुणों के द्वारा पंचभूत, जो भी हैं बनाये गए।।
एक होने पर भी वहाँ, अनेक के दर्शन होते हैं। स्वयं प्रकाश होते हुए भी, वहाँ दृश्य के दर्शन होते हैं।।
अपना स्वरूप होने पर भी, अपने से भिन्न ही दीखें सब। नित्य हैं पर दीखें अनित्य, निर्गुण हो सगुण ही दीखें सब।।

ज्यों आकाश वायु अग्नि, जल पृथ्वी यह पञ्चभूत। अपने कार्य घट आदि में, छोटे या बड़े यह हों प्रतीत।।
वास्तव में सत्ता रूप में, वह तो एक ही रहते हैं। प्रकट अप्रकट न्यून अधिक, एक अनेक नहीं रहते हैं।।
त्यों ही उपाधि भेद से, नानत्व प्रतीत हो आत्म में। जो मैं हूँ वही सब हैं, यह कथन सत्य इस दृष्टि से।।

शुकदेव बोले,
श्री कृष्ण के यह वचन सुनी, वसुदेव ने त्यजी भेद बुद्धि। आनन्दमग्न हुए नि:संकल्प, वाणी भी उनकी मौन हुई।।

३२) कृष्णके द्वारा देवकी के छ: मृत पुत्रों को वापस लौटा लाना

शुकदेव बोले,
हे राजन् उस समय वहाँ, थीं देवमयी श्री देवकी भी। बहुत पहले ही था सुना उन्होने, मृत पुत्र को ला गुरु दक्षिणा दी।।
अति विस्मित थीं वह यह सुनकर, पुत्रों ने यह कौतुक किया। यम लोक से लाकर के, गुरु पुत्र पुन: जीवित किया।।

अब उनको बैठे बैठै, निज पुत्रों की याद आई। कंस ने जिनका हनन किया, उनकी याद में दु:खी वह थीं।।
आतुर हुआ हृदय उनका, नयनों से अश्रु धार बही। श्री कृष्ण और बलराम से, करुण स्वर में वह बोलीं।।

देवकी बोली,
लोकभिराम बलधाम सुना, है तव शक्ति मन वाणी परे। योगेश्वरों के हो ईश्वर तुम, हे कृष्ण तुझे जग ऐसा कहे।।
हो प्रजापतियों के भी ईश्वर, तुम दोनों यह मैं जाने हूँ। तुम आदि पुरुष नारायण हो, यह भी मैं पहचाने हूँ।।

काल चक्र से जिन्होने अपना, धैर्य संयम सतोगुण खोया। शास्त्राज्ञा उलांघकर, स्वेच्छाचार है जिन्होने किया।।
भूमि के भार बने हुए, नरपतियों के हनन हेतु। मेरे गर्भ से हो तुम प्रकट हुए, निश्चित रूप से मैं जानूँ।।

आपके पुरुष अंश से जन्मी जो, माया ही गुणों की जननी है। जग उत्पत्ति स्थिति प्रलय, उनके लेशमात्र से होती है।।
हे सर्वात्मन् आज मैं, तुम्हारी शरण में हूँ आई। अपने हृदय की सुप्त व्यथा, चरण में आपके हूँ लाई।।

बहुत दिन से गुरु संदीपनी, का पुत्र था मृतक हुआ। मैंने सुना गुरु दक्षिणा, देने का जब समय आया।।
उनकी आज्ञा और काल की, प्रेरणा ने कुछ ऐसा किया। तुम दोनों ने मृत पुत्र को, यमपुरी से वापिस ला दिया।।

तुम दोनों तो हो ईश्वर, जानूँ महायोगेश्वरों के। इस कारण मेरी अभिलाषा यह, आज कहूँ पूर्ण करें।।
कंस ने मारा था जिनको, मैं चाहूँ उन मेरे पुत्रों को। सामने मेरे ले आओ, जी भरकर उनका दर्शन हो।।

शुकदेव बोले,
माँ देवकी की यह बात सुनी, भगवान ने नव कौतुक किया। श्री कृष्ण और बलराम ने, सुतल लोक प्रवेश किया।।
निज योगमाया के आश्रय, उन्होने था ऐसा किया। उनको निज लोक में आते हुए, दैत्य राज बलि ने देखा।।
जगतात्म और इष्ट मेरे, मेरे परम स्वामी आये। श्री कृष्ण और बलराम जी, मेरे लोक में हैं धायें।।
उनका हृदय उनके दर्शन से, आनन्द में फिर मग्न हुआ। आसन से उठे कुटुम्ब सहित, प्रभु चरणन् में प्रणाम किया।।

अति मुदित होकर उन्होने, श्रेष्ठासन दिया दोनों को। दोनों ही जब विराज गए, पाद प्रक्षालन उनका किया।।
उनके चरणोदक को फिर, सपरिवार धरा सीस पे। प्रभु का चरणोदक राजन्, ब्रह्मा तक को पावन करे।।

दैत्यराज बलि ने उनको, बहुमूल्य वस्त्राभूषण दिये। चन्दन ताम्बूल दीपक से, फिर प्रभु के पूजन किये।।
अमृत समान भोजन दिया, करी अन्य सामग्री से पूजा। निज तन धन परिवार को फिर, प्रभु चरण में जाय धरा।।

दैत्यराज बलि हे राजन्, प्रभु चरण कमल थे पखार रहे। निज वक्ष:स्थल और सीस पे, उनको थे वह धार रहे।।
प्रेम विह्वल उनका हृदय हुआ, नयनों से अश्रु बह निकले। मुदित होई गद्‌गद् वाणी से, स्तुति प्रभु की करने लगे।।

अनन्त ही हैं आप प्रभु, बलधाम श्री बलराम। शेषादि विग्रह आपमें हैं, आप हैं इतने महान्।।
सच्चिदानन्द स्वरूप प्रभु, हैं सकल जगत् के निर्माता। ज्ञान भक्ति प्रवर्तक आप, परं ब्रह्म परमात्मा।।
आप दोनों को ही हम, नमन करें प्रभु बार बार। आपके चरणों में स्वीकार, हो हमारा नमस्कार।।

आप दोनों का दर्शन, अति दुर्लभ है जीवों के लिये। फिर भी कृपा से आपकी, सुलभ वह ही हो जाये।।
हम रजोगुणी और तमोगुणी, स्वभावी असुरों के लिये। कृपा करी प्रभु आपने, आज हैं निज दर्शन दिये।।

हम और हमारे समान, अन्य भी प्रभु जो दैत्य हैं। दानव गन्धर्व विद्याधर, चारण यक्ष और राक्षस हैं।।
पिशाच भूत प्रमथ नायक, यह आपसे ही सदा ही वैर करें। प्रेम भजन तो दूर रहा, दृढ़ वैर न कभी यह छोड़ सकें।।
आपका विग्रह तो है प्रभु, साक्षात् वेदमय सत्व रूप कोई वैरभाव कोई भक्ति से, कोई कामना से ही भजे रूप।।
उस पद को प्रभु आपकी, कृपा से ही तो प्राप्त करें। समीपस्थ सत्व प्रधान देव, भी जिसे प्राप्त न कर सकें।।

योगेश्वरों के अधीश्वर हे, महा योगेश्वर भी न जानें। आपकी योगमाया का, रहस्य वे भी न पहचानें।।
हम लोगों की फिर बात ही क्या, हे स्वामी मुझपर करें कृपा। चित्त मेरा श्री चरण कमल, में ही रहे सदैव टिका।।
अनपेक्ष हुए परमहंस, जिन पादपद्म को खोजा करें। उनका आश्रय लेकर प्रभु, हम गृहस्थ अन्ध कूप तरें।।
सारे जगत् का आश्रय हैं, प्रभु चरण कमल यह आपके। उनकी शरण ले शान्त होऊँ, एकाकी ही विचरण रहे।।
यदि संग करना ही कहीं, मुझे प्रभु अनिवार्य हो। आपके प्रेमी भक्तों का, ही भगवन् वह संग हो।।

चराचर जगत् के स्वामी और, नियन्ता भी प्रभु आप हैं। कृपा करें प्रभु आज्ञा दें, हम भी हों निष्पाप हैं।।
हमारे पापों का प्रभु, नाश आप ही कीजिये। श्रद्धा सहित तेरी आज्ञा का, जो भी नर पालन करें।।
विधि निषेध के बन्धन से, प्रभु आप उसे तार दें। हम पर भी हे प्रभु आप, कुछ ऐसी ही कृपा करें।।

भगवान बोले,
प्रजापति मरीचि पत्नी ऊर्णा, थी स्वयंभू मन्वन्तर में। उसके गर्भ से उस समय, थे छ: पुत्र उत्पन्न हुए।।
थे देवता वह सभी, रहस्य नहीं कोई छिप सका। ब्रह्मा को निज पुत्री संग, समागम को उद्यत देखा।।
यह देख वह हंसने लगे, ब्रह्मा ने उनको शाप दिया। असुर योनि में हिरण्यकश्यपु, पुत्र उन्हें बना दिया।।
योग माया ने वहाँ से ला, उन्हें देवकी गर्भ में धरा। उनके उत्पन्न होते ही, कंस ने उनका वध करा।।
उन पुत्रों हेतु देवकी माँ, हे दैत्य राज अति आतुर है। वह पुत्र आपके पास हैं, जिन्हें मिलने को वह व्याकुल हैं।।

निज माता के शोक को, हम दूर करना हैं चाहें। इस कारण इनको अब, यहाँ से हम ले जायेंगे।।
तत्पश्चात् स्वत: ही यह, शाप मुक्त हो जायेंगे। आनन्द पूर्वक फिर अपने, लोक को ही यह पायेंगे।।

इन छ: पुत्रों के नाम हैं, स्मर उद्गीथ परिष्वंग। क्षुद्रभृत और घृणि सहित, छटा जान लें हैं पतंग।।
मेरी कृपा से इन्हें पुन:, सद्‌गति प्राप्त हो जायेगी। हे दैत्य राज यह जानो तुम, कल्याण काल इनकी आई।।

शुकदेव बोले,
हे राजन् इतना कहकर, श्री कृष्ण पुन: मौन हुए। दैत्यराज बलि ने फिर, पूजन अर्चन उनके किये।।
श्री कृष्ण और बलराम फिर, शिशुओं को लेकर लौट आये। द्वारिका में फिर पहुँच कर, वह पुत्र देवकी मां को दिये।।

उन पुत्रों का दर्शन पा, मातृ हृदय वात्सल्य भरा। स्नेह आवेग से उनके, स्तनों में दूध उतर आया।।
बार बार उन्हें गोद में ले, थीं छाती से लगा रहीं। कभी सीस सूंघतीं उनका वह, कभी उन्हें पुचकारतीं।।

पुत्र स्नेह में विभोर हो, स्तनपान कराया देवकी ने। प्रभु विष्णु भगवान की, माया से थीं मोहित वे।।
उस माया से ही प्रभु का, सृष्टि चक्र यह चला करे। इस माया से मोहित हो, जीव कलिल में फंसा रहे।।

देवकी जी का दुग्ध तो, जानो राजन् अमृत ही था। हो भी क्यों न श्री कृष्ण ने, उसका था जो पान किया।।
वही अमृतमय दूध फिर, उन बालकों ने पिया। उससे और प्रभु स्पर्श से, आत्म साक्षात्कार हुआ।।

तत्पश्चात् सबने मिल, माँ देवकी को फिर नमन किया। पिता वसुदेव श्री कृष्ण और, बलराम को फिर प्रणाम किया।।
तदनन्तर सबके ही, नेत्रों के फिर समाने। सबके देखते देखते ही, वे देवलोक को चले गए।।

श्री देवकी यह देख कर, अति विस्मित थीं हुईं राजन्। मृत बालक उनके लौटे, पुन: प्रस्थान किये तत्क्षण।।
उन्होने फिर यह निश्चय किया, श्री कृष्ण की है यह लीला कोई। अनन्त शक्ति श्री कृष्ण हैं, हैं परमात्म वह स्वयं ही।।
अद्भुत ऐसे चरित तो, उनके हैं अनेक ही। किसी विधि राजन् कोई, पार न पाये उनका कभी।।
सुत बोले,
हे शौनक आदि ऋषियों, है अमर कीर्ति श्री हरि की। भगवान कृष्ण की यह महिमा, जान लो है अमृतमयी।।
उनका चरित जग के सभी, पाप ताप को दूर करे। भक्त जनों के कर्णपुट, आनन्द सुधा से वह भर दे।।
व्यास सुत श्री शुकदेव ने, है इसका वर्णन स्वयं किया। जो इसका कभी श्रवण करे, या दूजे को सुनाये कदा।।
उसकी सम्पूर्ण चित्त वृत्तियाँ, श्री हरि में लग जायें। उनके ही फिर कल्याणमय, परं धाम को वह जाये।।

३३) सुभद्रा हरण

परीक्षित बोले,
मेरे पितामह अर्जुन ने, किस विधि परिणय किया दादी से? श्री कृष्ण और बलराम की, प्रियतर लाडली भगिनी से?
इस प्रसंग को जानने की, उत्सुकता मेरी बढ़ी। हे द्विजवर अब आप कहें, विस्तार मुझे उस घटना की।।
शुकदेव बोले,
हे राजन् एकबार अर्जुन थे, तीर्थ यात्रा कर रहे। पृथ्वी पर विचरण करते हुए, प्रभास क्षेत्र वह जा पहुँचे।।
वहाँ जाकर उन्होने सुना, श्री बलराम का यह आशय। अपनी बहिन सुभद्रा वह, दुर्योधन को देना चाहें।।
वसुदेव और श्री कृष्ण का, नहीं अनुमोदन इस विषय में। अर्जुन के मन उठी लालसा, सुभद्रा को वह ही पा ले।।
त्रिदण्डी वैष्णव का फिर, रूप उन्होंने धर लिया। इस विधि द्वारिका में अर्जुन, वैष्णव बनकर पहुँचे जा।।

चतुर्मास वर्षा ऋतु के, अर्जुन फिर वहीं पे रहे। सुभद्रा प्राप्ति के लिये, ही उनके यह उद्यम थे।।

बलराम और पुरवासियों ने, वहाँ उनका बहुत सत्कार किया। है छद्म वेश में अर्जुन यह, रहस्य कोई न जान सका।।

इक दिन श्री बलराम ने, आतिथ्य उनका किया। अपने घर उन्हें ले गये, यही निमन्त्रण उनका था।।
त्रिदण्डी उस वैष्णव को, श्रद्धा सहित भोजन दिया। उसने भी बहुत प्रेम से, वह प्रसाद स्वीकार किया।।

भोजन करते समय उसने, सुन्दरी सुभद्रा को देखा। महावीरों के भी मन को, सौन्दर्य वह हरने वाला था।।
उसे देख फिर प्रेम से, अर्जुन के नयना खिल उठे। उसकी प्राप्ति की आशा से, मनोभाव अति क्षुब्ध हुए।।

अपनी पत्नी बनाने का, दृढ़ निश्चय उन्होने कर लिया। हे राजन् तेरे दादा अर्जुन, का भी रूप अति सुन्दर था।।
तनोगठन भावभंगिमा, स्त्रियों का हृदय थी हर लेती। उन्हें देख सुभद्रा के, मन में भी यह चाहना उठी।।
पति इन्हें ही बनाऊँगी, यह निश्चय उन्होने कर लिया। लाज भरी स्मित चितवन से, चित्त उन्हें समर्पित्त कर दिया।।

अब अर्जुन के मन में बस, उसका ही चिन्तन होने लगा। कब इसको हर ले जाऊँ, अवसर की बाट था जोह रहा।।
उसकी प्राप्ति की चाहना ने, था चित्त अर्जुन का भ्रमित किया। तनिक शान्ति उसे न थी, मन हर पल ही विचलित था।।

अब अर्जुन के मन में बस, उसका ही चिन्तन होने लगा। कब इसको हर ले जाऊँ, अवसर की बाट था जो रहा।।
उसकी प्रप्ति की चाहना ने, था चित्त अर्जुन का भ्रफमित किया। तनिक शान्ति उसे न थी, मन हर पल ही विचलित था।।

देव दरस हेतु सुभद्रा, इक दिन रथ पे चढ़ी आई। द्वारिका दुर्ग से बाहर आ, वह दर्शन थी करना चाहती।।
देवकी वसुदेव और, श्री कृष्ण की अनुमति प्राप्त थी। उसी समय श्री अर्जुन ने, सुभद्रा की फिर हरण करी।।

रथ पर सवार हो वीर ने, अपना धनुष उठा लिया। जो सैनिक थे उसकी रक्षा में, तत्क्षण उन्हें भगाा दिया।।
सुभद्रा के निज जन जानो, रोते चिल्लाते ही रहे। सिंहवत् अपना भाग ले, पार्थ सुभद्रा ले चले।।

यह सुनकर बलराम जी, अति क्षुब्ध फिर हो गये। ज्यों पूनम की रात में, ज्वार हों सागर में उठे।।
किन्तु श्री कृष्ण और अन्य सभी सुहृद् बान्धवों ने। चरण पकड़ बलराम के, अनुनय विनय उनसे किये।।
तत्पश्चात् वह शान्त हुए, बहिन को बहुत दहेज दिया। प्रचुर धन सामग्री संग, हाथी रथ अश्व दासिन् को दिया।।

३४) कृष्ण का मिथिला में श्रुतदेव ब्राह्मण और राजा जनक के घर जाना

हे राजन् अब अन्य एक, कथा मैं तुम्हें बताता हूँ। मिथिला के भक्त थै श्रुतदेव, गृहस्थ ब्राह्मण की सुनाता हूँ।।
इकमात्र कृष्ण की भक्ति ही, जीवन प्रयोजन उनका था। परम शान्त और आप्तकाम, ज्ञानी विरक्त भक्ति ने किया।।
गृहस्थ में रहकर भी वह कभी, उद्योग नहीं कोई करते थे। यदृच्छा जो मिल जाता, निर्वाह उसी में करते थे।।

जीवन निर्वाह हेतु प्रतिदिन, प्रारब्ध बधित जो मिल जाता। उससे अधिक उनका कहीं, न कोई संग्रह परिग्रह था।।
सन्तुष्टमन थे उतने में, निज धर्म निभाते थे रहते। वर्णाश्रम अनुसार सदा, तत्पर कर्त्तव्य में थे रहते।।
उस देश के राजा भी जानो, ब्राह्मण समान ही भक्त थे। बहुलाश्व नाम के नरपति वह, प्रतिष्ठित मैथलि वंश में थे।।

नहीं अहंकार का लेश भी था, श्री कृष्ण को वह अति प्यारे थे। श्रुतदेव बहुलाश्व दोनों ही, कृष्ण भक्त अति न्यारे थे।।

दोनों पर ही प्रसन्न हो, श्री कृष्ण ने रथ निज मंगवाया। दारुक संग उसपे हो सवार, फिर मिथिला को प्रस्थान किया।।

श्री नारद वामदेव अत्रि, वेद व्यास और परशुराम। असित आरुणि मैं शुकदेव, बृहस्पति कण्व भी थे वहाँ।।
मैत्रेय और च्यवन आदि, ऋषि भी उनके साथ थे। हे राजन् वह संग संग, जहाँ पे भी थे पहुँचते।।

ग्रामीण और नागरिक प्रजा, पूजा सामग्री ले आते। पूजा करने वालों को, श्री हरि थे ऐसे भासते।।
मानों सब ग्रहों के साथ ही, सूर्य नारायण उदय हुए। ऐसी अनुपम शोभा उन, ऋषियों संग प्रभु की भए।।

उस यात्रा में आनर्त धन्व, कुरूजांगल कंक देश आये। मत्स्य पांचाल कुन्ति मधु, केकय कोसल अर्णादि आये।।
इन देशों के नर नारियों ने, नयनों को पात्र बनाकर के। उन्मुक्त हास्य प्रेमी चितवन, हरि मुख मरकन्द ज्यों पान किये।।

जगद्गुरु के दर्शन पा, अज्ञान सभी का नष्ट हुआ। निज दृष्टि से नर नारियों को, तत्त्व ज्ञान प्रभु दान दिया।।
स्थान स्थान पर देव और, मनुज गान थे कर रहे। सर्वत्र उजाला करके सूर्य, जो सभी अशुभों का क्षण करें।।
इसी विधि श्री कृष्ण थे, विदेह राज की ओर बढ़े। शनैः शनैः यात्रा करते, मिथिला नगरी वह पहुँच गए।।

भगवान के शुभ आगमन का, समाचार जब उन्होने सुना। ग्राम और नगरवासियों के, आनन्द की नहीं रही सीमा।।
अपने हाथों से पूजा की, विविध सामग्री उन्होने ली। प्रभु का स्वागत करने को, सारी प्रजा ही आ पहुँची।।

श्री कृष्ण प्रभु का दर्शन पा, आनन्द प्रेम से खिले हृदय। भगवान के संग देखे वह ऋषि, थे केवल जिनके नाम सुने।।
हाथ जोड़ मस्तक झुका, सबने ही प्रणाम किया। इन सबका दर्शन उन्हें, पहले तो कभी हुआ न था।।

मिथिला नरेश बहुलाश्व ने, और श्रुतदेव ने यह समझा। जगद्गुरु श्री कृष्ण ने, हम लोगों पर करी कृपा।।
इस कारण ही आज वह, हमारे यहाँ पधारे हैं। प्रणाम किया चरणों में गिर, कहा धनभाग्य हमारे हैं।।
दोनों ने कर जोड़कर, एक साथ ही उनको कहा। सब मुनिजन के सहित उन्हें, आमन्त्रित भोजन हेतु किया।।

भगवान कृष्ण ने दोनों की, प्रार्थना स्वीकार करी। एक समय ही फिर उन्होने, पृथक् पृथक् निज रूप धरी।।
उन्हें प्रसन्न करने के लिये, दोनों के घर ही पधारे वह। नहीं वह सत्य यह जान सके, श्री कृष्ण अन्य भी कहीं गए।।

विदेहराज बहुलाश्व तो, राजा महामनस्वी थे। देखा प्रभु संग ऋषि मुनि, घर मेरे हैं पधार गये।।
दुष्ट दुराचारी जीव, नहीं नाम भी जिनका सुन सकें। उन्हीं प्रभु कृष्ण को देखकर, सुन्दर आसन उन्होने मंगवाये।।
ऋषि मुनियों के संग प्रभु, सुख से जब वहाँ बैठ गए। उस समय बहुलाश्व की, अति विचित्र सी दशा भासे।।
प्रेम भक्ति से उनका, हृदय था द्रवीभूत हुआ। यह आवेग प्रेम का, नयनों से आँसू बन के बहा।।
पूज्यतम अतिथियों के, चरणों में उन्होने नमन किया। चरण पखारे उन सबके, फिर कुटुम्ब निज साथ लिया।।
त्रिलोक पावनी उस जल को, सीस पे धारण सबने किया। भगवान और भगवतस्वरूप उन ऋषियों की फिर करी पूजा।।
गन्ध माल वस्त्राभूषण, धूप दीप औश्र अर्ध्य दी। बैल गौ आदि भी फिर, उनके श्री चरणों में धरी।।
इस विधि बहुलाश्व ने, सबके आदर सत्कार किये। सेवा का यह अवसर पा, धन्यभाग्य निज माने थे।।

भोजन करके सब जन ही, महातृप्त जब हो गए। भगवान कृष्ण के चरण तब, बहुलाशय्व ने अपनी गोद धरे।।

बहुत आनन्द प्रेम से वह, धीरे धीरे सहलाने लगा। अति मधुर वाणी से फिर, स्तुति प्रभु की गाने लगा।।
बहुलाश्व बोला,
सब जीवों के आत्मा, साक्षी आप हैं स्वयं प्रकाश। आपके चरणारविन्द का, सुमिरन् है हमें सदा प्राप्त।।
इस कारण ही आपने, कीनी अपनी अनुकम्पा। निज दर्शन देकर हमें, कृतार्थ आज है कर दिया।।

आपने ही यह कहा है प्रभु, अनन्य भक्त है सबसे प्रिय। अर्धांगिनी लक्ष्मी सुत ब्रह्मा, आत्म बलराम से भी प्रिय।।
अपने उन वचनों को ही, सत्य करने के लिये। हे प्रभु हैं आपने, आज हमें दर्शन दिये।।

भला कौन पुरुष होगा ऐसा, जो परम कृपा को जान के। आपकी प्रेम विवशता जान, परित्याग चरण का कभी करे?
जिन्होने जग के पदार्थ और, निज तन को भी मन से त्यागा। परम शान्त उन मुनियों को, आपने अपने आप दिया।।

यदुवंश में जन्म लेई, निज शुभ्र यश विस्तार किया। जन्म मरण के भ्रम में पड़े, जीवों को मुक्त जो करे सदा।।
त्रिलोकी के सब पाप ताप, शान्त स्वत: ही वह करे। अचिन्त्य अनन्त ऐश्वर्य और, माधुर्य निधि हैं आप हे।।
सच्चिदानन्द स्वरूप कृष्ण आकर्षित सबका चित्त करें। ज्ञान स्वरूप नारायण रूप, में तप आप हैं कर रहे।।
है नमस्कार मेरा प्रभो, आपके पावन चरणों में। सीस झुकाए खड़ा हूँ मैं, नमन मेरा स्वीकार करें।।

एक रस अनन्त हे, सब मुनिजन को निज संग ले। कृपा कर के हे प्रभु, कुछ दिन यहाँ निवास करें।।
निज चरण कमल की धूलि, निमि वंश पावन करें। हे प्रभु इस दास की, बिनती यह स्वीकार करें।।

शुकदेव बोले,
सबके जीवन दाता प्रभु ने, प्रार्थना यह स्वीकार करी। राजा बहुलाश्व की हे राजन्, बात उन्होंने मान ली।।
मिथिला के नर नारियों का, कल्याण करने के लिये। कुछ दिनों तक फिर प्रभु, मिथिला नगरी में ही रहे।।

भगवान और सब ऋषियों के, आगमन पे थे बहुलाश्व मग्न। त्यों ही श्रुतदेव भी उन सबको, निज घर में देख हुआ विह्वल।।
नमन किया उनको उसने, और अस्त्र भी निज उछाल दिये। आनन्दोद्रेक से भर कर वह, नर्तन भी करने लगे।।

पीढ़े चटाई कुशा आसन, जो भी मिला उसपर बिछा दिया। भगवान् कृष्ण और मुनियों को, फिर उन पर बिठज्ञ दिया।।
स्वागत अभिभाषण करके, अभिनन्दन उनका किाय। निज पत्नी को संग लेकर, पाद प्रक्षालन फिर किया।।

महाभाग श्रुतदेव ने राजन्, चरणोदक उन सबका लिया। अपने घर और कुटुम्बियों को, उससे मानो सींच दिया।।
सभी मनोरथ पूर्ण हुए, हर्ष से वह मतवाला हुआ। तदनन्तर फल गन्ध, सुवासित खस का जल दिया।।
सुरभित माटी तुलसी कुश, कमलादि जो अनायास मिले। पूजन सामग्री और सतोगुणी, अन्न से पूजन उनके किये।।

श्रुतदेव तब मन ही मन, यूँ थे तर्कना कर रहे। अन्धकूप में गिरा हूँ मैं, इस घर गृहस्थी के।।
श्री कृष्ण और उनका निवास, यह ऋषि मुनि जन हैं जो। जिनकी चरण धूल से ही, तीर्थ भी सारे पावन हों।।
उनका समागम कैसे मिला, यह महाभाग्य कैसे जागा? मुझ भाग्यहीन पर तो हुई, श्री हरि की ही अपार कृपा।।

आतिथ्य स्वीकार करी सब जन, सुख आसन पर जब बैठ गए। श्रुतदेव लिये संग दारा सुत, सेवा में उपस्थित हो गए।।

श्री कृष्ण के चरण कमल का, स्पर्श फिर उन्होंने किया। और प्रभु के चरणों में, फिर उन्होने यह वचन कहा।।
श्रुतदेव बोले,
व्यक्त अव्यक्त प्रकृति से, प्रभु आप अतीत रहें। जीवों से प्रभु आप परे, पुरुषोत्तम का रूप हैं हे।।
नहीं सत्य यह आपने है, मुझको आज ही दरस दिया। प्राप्त हैं आप तो तब से ही, निज शक्ति से जब जग को रचा।।
आत्म सत्ता के रूप में, प्रवेश आपने इसमें किया। इस नाते से सब रूपों में, मिलन आपका हो रहा।।

ज्यों सोया जीव अविद्यावश, पूर्ण स्वप्न को मन में रचे। अनेक रूपों से कर्म वह, करता हुआ सा भी भासे।।
पर वास्तव में सब रूपों में, है उपस्थित स्वयं ही वह। स्वप्न जगत् की सृष्टि में, नहीं उसके सिवा कोई अन्य है।।
त्यों ही प्रभु आपने अपने में, है इस जगत् की रचना की। अपनी माया से रचने इसे, स्वयं ही इसमें प्रवेश की।।
अनेकों रूपों से प्रभु, प्रकाशित आप हैं हो रहे। पर वास्तविकता इतनी ही है, नहीं आप बिना कोई अन्य रहे।।

आपकी लीला कथा नित्य, श्रवण कीर्तन जो करें। आपके ही श्री विग्रह का, पूजन अर्चन जो नित्य करें।।
परस्पर भी जो आपकी, ही चर्चा सदा करते हैं। शुद्ध हृदय हो जायें वह, प्रकाशित आप वहाँ होते।।

लौकिक और वैदिक कर्मों की, वासना से जो बहिर्मुखी। उनसे बहुत हैं दूर आप, उनके हृदय में रहकर भी।।
आपके गुणगान से जिनका, अन्त:करण सद्गुण से भरा। चित्तवृत्तियों से अग्राह्य आप, निकट ही उनके रहते सदा।।

आत्म तत्त्व के ज्ञाता जो, उनके हैं आत्म रूप आप। देह को ही निज आत्मा, मानें जो जन अपने आप।।
उनके लिये जो प्राप्त हो, वह मृत्यु हैं आप स्वयं। महत्तत्त्व और प्रकृति रूप, के शासक हैं आप स्वयं।।
आपकी माया आपको, प्रभु आवृत्त कभी न कर से। किन्तु दूजों की दृष्टि पर, आवरण उसी का पड़ा रहे।।
हे प्रभु आपके चरणों में, नमस्कार मैं करता हूँ। आपकी महिमा क्या गाऊं, मैं सीस चरण में धरता हूँ।।

हैं स्वयं प्रकाश ही आप प्रभु, हम सब आपके हैं सेवक। आज्ञा दें अब आप प्रभु , हम करें आपका कैसे सेवन?
जब तक न दर्शन आपको हो, क्लेश तभी तक टिक सकें। आपके दर्शन से प्रभु, लुप्त स्वत: सब हो जायें।।

शुकदेव बोले,
शरणागत भयहारी कृष्ण ने, श्रुतदेव की प्रार्थना सुनी। उसका कर अपने कर में ले, श्री कृष्ण ने बात यह उससे कही।।
भगवान बोले,
हे श्रुतदेव ऋषि मुनि यह, तुम पर अनुग्रह करने के लिये। ही तो यहाँ पधारे हैं, मेरे संग विचरते हुए।।
निज चरण कमल की धूलि से, यह सबको पावन करें। सब लोकों और लोगों को, पावन करते हुए विचरें।।

देवता पुण्यक्षेत्र तीर्थ, तो शनै: शनै: पावन करें। दर्शन स्पर्शन् अर्चन द्वारा, बहुत दिन में पाप वह धो सकें।।
किन्तु सन्त तो दृष्टिमात्र से, ही सबको पावन करें। देवादि को भी पावनकर, शक्ति सन्तन से प्राप्त होए।।

ब्राह्मण तो जन्म से ही, सब जीवों से है श्रेष्ठ जान। तप विद्या तुष्टि उपासना, भकति से सम्पन्न महान्।।
उसका तो कहना ही क्या, उसकी तुलना कैसे हो सके? अपना यह चतुर्भुज रूप भी, नहीं ब्राह्मणों से मुझे अधिक प्रिय।।
ब्राह्मण है सर्व वेदमय, मैं देवमय हूँ जान लो। इस कारण ही जानो तुम, अतीव प्रिय मेरा ब्राह्मण हो।।

बुद्धिहीन मनुष्य जो, यह बात कदापि न समझें। केवल विग्रह आदि में ही, पूज्य भावना वह रखें।।
गुणों में भी वह जन सदा, दोष का ही दर्शन करें। मेरे स्वरूप निज आत्म रूप, ब्राह्मण का तिरस्कार करें।।

मेरा साक्षात्कार करके ब्राह्मण, निज चित्त में निश्चय कर ले। चराचर जगत् भावना यह, कारण महत्तत्त्व प्रकृति कहे।।
वे सबके सब आत्म स्वरूप, भगवान के ही रूप हैं। दृष्टवान् जो भी जग में, आत्म का ही स्वरूप है।।

इस कारण इन ब्रह्मर्षियों को, मेरा स्वरूप ही तुम जानो। पूर्ण श्रद्धा हृदय में धर, पूजन अर्चन इनका करो।।
यदि ऐसा तुम कर पाये, अनायास ही पूजन मेरा होगा। बहुमूल्य सामग्री लेकर भी, ऐसा पूजन नहीं हो सकता।।

शुकदेव बोले,
श्री कृष्ण का यह आदेश पा, श्रुतदेव ने फिर आराधना की। ब्रह्मर्षियों और श्री कृष्ण की, एकात्म भज्ञव से पूजना की।।
उनकी कृपा से जानो वह, भगवत्स्वरूप को प्राप्त हुए। राजा बहुलाश्व भी जान लो, उसी गति को प्राप्त हुए।।

जिस भी भाव में हे राजन्, भक्त प्रभु पूजन करें। भगवान भी उसी भाव में, भक्तों को पूजा करें।।
अपने दोनों ही भक्तों को, प्रसन्न करने के लिये। श्री हरि फिर कुछ दिन के लिये, मिथिलापुरी में ही रहे।।
साधु पुरुषों के मार्ग का, प्रभु ने उन्हें उपदेश दिया। द्वारका की ओर फिर, श्री हरि ने प्रस्थान किया।।

३५) वेदोंद्वारा कृष्णकी स्तुति

परीक्षित् बोले,
कार्य और कारण से प्रभु, हैं ब्रह्म तो सर्वथा अतीत। सत्व रज तम इन तीनों, गुणों से हैं नितान्त रहित।।
मन वाणी के संकेत से भी, निर्देशित वह न हो सकें। दूजी ओर श्रुतियों का विषय, केवल ब्रह्म ही हो सकें।।
निर्गुन ब्रह्म का यह श्रुतियाँ, प्रतिपादन किस विध कर पायें? निर्गुण का स्वरूप तो है, उनकी पहुँच से बहुत परे।।

शुकदेव बोले,
विधाता ने जीवों के लिये, इन्द्रिय मन और प्राण रचे। इनके द्वारा वह अर्थ धर्म, काम का अर्जन कर सकें।।
उपनिषद जो ब्रह्म का, नित्य प्रतिपादन करें। श्रुतियों को उपनिषदों का, ही जानो स्वरूप कहें।।
पूर्वजों के भी पूर्वज, हैं सनकादि ऋषिवर जो। आत्म निश्चय द्वारा उन्होने, धारण है किया इनको।।
जो भी जीव श्रद्धापूर्वक धारण इनको करता है। अनात्म भाव से मुक्त हो, परमात्म प्राप्त वह करता है।।

इस विषय में तुमको मैं, कथा एक सुनाता हूँ। श्रीमन्नारायण से जुड़ी, मैं गाथा एक सुनाता हूँ।।
देवर्षि नारद का और, ऋषि श्रेष्ठ नारायण का। उस कथा में जान लो, संवाद है सारा भरा हुआ।।

एकदा प्रभु के प्रिय भक्त, देवर्षि श्री नारद जी। विभिन्न लोक विचरण करते, पहुँचे बद्रिका आश्रम ही।।
सनातन ऋषि नारायण का, दर्शन था आशय उनका। इस कारण ही बद्रिका, आश्रम में आगमन हुआ।।

जीवों के कल्याणार्थ, और उनके मोक्ष के ही लिये। कल्प के आरम्भ से ही, हैं धर्म ज्ञान संयम धरे।।
महातपस्या में रत हैं, जीवों के उत्थान हेतु। परं श्रेयस् जीवों का हो, है उनके तप का यही हेतु।।

हे राजन् इक दिन वह थे, कलाप ग्राम के वासियों में। उन सिद्ध ऋषिगण के मध्य, श्री नारायण थे बैठे हुए।।
उसी समय नारद ने आ, नारायण को प्रणाम किया। जो पूछ रहे हो तुम मुझसे, हो अति विनम्र वही प्रश्न किया।।

ऋषियों की उस सभा में, श्री हरि ने उन्हें उत्तर दिया। देवर्षि नारद को फिर, सुनाई उन्होने वह ही कथा।।
पूर्वकाल में जनलोक, के थे जो निवासी जन। वेद तात्पर्य ब्रह्म स्वरूप, के जिज्ञासु थे वह जन।।
विचारवान् उन जीवें में, चर्चा थी इस कथा की हुई। उसी कथा की पुनरावृत्ति, नारद के इस प्रश्न से हुई।।

भगवान बोले,
हे नारद जानो तुम, है बात प्राचीन काल की यह। जनलोक के वासी ब्रह्मा के, ब्रह्मचारी मानस पुत्र थे।।
उन नैष्ठिक ब्रह्मचारी सनक, सनन्दन सनातन आदि का। परम ऋषियों के ब्रह्म सत्र, का आयोजन था हुआ।।

उस समय हे नारद तुम, श्वेतद्वीप में थे गए। मम श्वेतद्वीपाधिपति अनिरुद्ध, मूर्ति के दर्शन आशय थे।।
उस समय ब्रह्म सम्बन्धी, अति सुन्दर चर्चा थी हुई। उसके सम्बन्ध में तो श्रुतियां, भी मौन हैं धारण कर लेतीं।।

स्पष्ट उनका वर्णन न करके, तात्पर्य को लक्षित हैं करतीं। इंगित उसको करती हुईं, वह उसमें ही हैं खो जातीं।।
उस ब्रह्म सत्र में भी, प्रश्न यही था पूछा गया। जो प्रश्न हे नारद आज, तुमने है मुझसे पूछा।।

सनक सनन्दन और सनातन, सनत्कुमार चहुँ भ्राता जान। शास्त्रीय ज्ञान तपस्या और, शील स्वभाव में हैं समान।।
शत्रु मित्र और उदासीन, उनकी दृष्टि में हैं एक। फिर भी उन्होने सनन्दन को, था वक्ता चुना विशेष।।
शेष सब भाई वहाँ, श्रोता बनकर बैठ गए। ब्रह्म ज्ञान के श्रवण के, सब भ्राता ही इच्छुक थे।।

सनन्दन बोले,
प्रात:काल होते ही ज्यों, सम्राट जगाने के लिये। उसके अनुजीवी बन्दीजन, हैं उसके पास चल आते।।
उसके पराक्रम और यश का, गान वह उसके पास करें। इस विधि अपने राजा को, बन्दीजन जगाया करें।।
त्यों ही जब परमात्मा, अपनी बनाई सृष्टि को। अपने में ही लीन कर, निज शक्ति सहित ही सुप्त हों।।
तब प्रलय के अन्त में, श्रुतियां जागृत करें उन्हें। उनको प्रतिपादित जो करें, उन्हीं वचनों को सुनाकर के।।
श्रुति बोली,
हैं सर्वश्रेष्ठ प्रभु आप ही, आप सदा ही अजित रहें। कहीं कभी कोई आपसे, विजय प्राप्त न कर सके।।
जय हो जय हो जय हो प्रभु, हैं पूर्ण ऐश्वर्यवान् आप। चराचर जीव जो भ्रमित करे, उस माया का प्रभु करें नाश।।
जीवों का सहज आनन्द स्वरूप, गुणमयी माया ने है ढका। बन्धन में उन्हें डालने को, सत्त्वादि गुणों को ग्रहण किया।।
साधना ज्ञान क्रिया आदि, जो भी हैं शक्तियाँ जगत् में। हे प्रभु उन सबको ही, आप ही जागृत कर सकें।।
बिन कृपा के आपकी, यह माया न प्रभु मिट सके। यद्यपि तेरे स्वरूप का, प्रभु वर्णन हम न कर सकें।।
जगत् की सृष्टि करके आप, जब माया राही सगुण बनें। या उसका निषेध करी, स्वरूप स्थिति की लीला करें।।
सच्चिदानन्द स्वरूप कभी, विग्रह धरी जब क्रीड़ा करें। यत्किंचित ती आपके, वर्णन में हम सामर्थ्य भयें।।

हमने इन्द्र वरुण आदि, देवों का भी है किया वर्णन। किन्तु सब मन्त्र और ऋषिजन, सब जगत् में पायें ब्रह्म दर्शन।।

जब पूर्ण जगत् यह लीन हो, उस पल भी हे प्रभु आप रहें। ज्यों विकार सब धरती से, उत्पन्न हो उसी में लय भएं।।
त्यों ही इस सारे जगत् की, उत्पत्ति प्रलय भी अपमें हो। किन्तु आपमें हे प्रभु, पृथ्वीवत् कोई विकार न हो।।

आप तो हैं सदा एक रस, और हैं निर्विकार प्रभु। ज्यों घट आदि का वर्णन भी, वास्तव में है मिट्टी का प्रभु।।
त्यों ही इन्द्र वरुण आदि, देवें का वर्णन आपका है। विवेकी ऋषि सबमें ही तो, आपका दर्शन करता है।।
मनोभाव वाणी का कथन, उसे आप में ही स्थित देखे वह। रूप रंग जैसा भी हो, है आपका ही स्वरूप वह।।
जैसे जीव निज चरण को, ईंट काठ पत्थर पे धरे। वास्तव में है वह पृथ्वी पर, सब ही रूप पृथ्वी के कहें।।
चाहे जिस भी नाम या, रूप का वर्णन हम करें। वास्तव में तो हे प्रभु, वह सगरे ही हैं आपके।।

सत्त्व रज और तम की, त्रैगुणी माया में उलझे। भली बुरी क्रियाओं में, ही जीव सदा फंसे रहें।।
उस माया के हैं स्वामी आप, उस नटी को आप नचाया करें। विवेकी पुरुष तो आपकी, लीला के कथा सिन्धु में रहें।।
अपने पाप ताप सभी, उसमें ही धो बहा वह दें। आपकी लीला कथा प्रभु, सब माया मल को दूर करे।।
आत्म ज्ञान द्वारा जो पुरुष, चित्त के कल्मष सब दूर करें। राग द्वेष और कलाकृत्, जन्म मरण भी मिटा जो दें।।
नित्य निरन्तर ही अपने, स्वरूप की अनुभूति में रमें। अखण्ड आनन्द स्वरूप जो, तनिक न विचलित हो सकें।।
अपने पाप ताप सभी, उन्होने शान्त और भस्म किए। ऐसे प्रेमी जन की तो, बात ही क्या हम कह सकें।।

प्राणधारी जीवों के तो, जीवन की सफलता है इसमें। वह आपकी सेवा भजन करें, आपकी आज्ञा ही मानें।।
यदि ऐसा न कर पाये वह, तो स्वास ही उन्होने व्यर्थ लिया। ज्यों लुहार की धौंकनी का, स्वास तो निष्फल है होता।।
महत्तत्त्व अहंकारादि में, आपने जब प्रवेश किया। सृष्टि रचना का कार्य तभी, आपके अनुग्रह से हुआ।।
अन्नमय प्राणमय मनोमय, विज्ञानमय और आनन्दमय। इन पाचों कोषों में प्रभु, पुरुष रूप से आप रहें।।
मैं भाव की स्फूर्ति भी उनमें, आपके कारण होती है। आपके होने से ही प्रभु, उन कोषों का अस्तित्व है।।
उनके न रहने पर भी, प्रभु आप विराजमान् रहें। सबमें रहकर भी प्रभु, असंग सभी से आप रहें।।
वृत्तियों राही अस्ति या, नास्ति रूप में अनुभव जो। उन सबसे तो हे प्रभु, आप सदा ही परे रहो।।
नेति नेति कहकर ही, जब उसका निषेध हो। उस निषेध के साक्षी प्रभु, आप ही फिर शेष रहो।।

आपकी प्राप्ति के हेतु, ऋषियों ने अनेकों मार्ग कहे। मणिपूरक चक्र में अग्नि रूप, उपासना आपकी कोई करे।।
समस्त नाडियों का उद्गम, हृदय से ही तो है होता। दहर ब्रह्म का रूप जो, सूक्ष्म स्वरूप है आपका।।
अरुण वंश का ऋषि उसी, की उपासना में है लगा। विविध विधि से पूजना, आपकी हर कोई कर रहा।।
आपकी प्राप्ति के लिये, श्रेष्ठ जो मार्ग है कहा। हृदय से ही सुषुम्ना का, ब्रह्म रन्ध्र तक पथ बना।।
उस ज्योतिर्मय मार्ग को, जो पुरुष प्राप्त कर लेता है। उससे ऊपर की ओर बढ़े, वह जन्म मरण तर लेता है।।

आपने ही प्रभु देव मनुज, पशु पक्षी आदि योनि रची। सब रूपों में सर्वत्र बसे, हैं प्रभु सर्वदा आप ही।।
कारण रूप में उन सबमें, प्रवेश आपका न हो प्रभु। फिर भी ऐसा आभास हो, मानो हुए आप प्रविष्ट प्रभु।।
विभिन्न आकारों का हरि, आप ही अनुकरण करें। कहीं उत्तम तो कहीं आप, अधम रूप से ही दीखें।।
ज्यों अग्न किसी छोटी या बड़ी जिस काष्ठ में भी प्रविष्ट हो। कर्मों के अनुसार ही वह, प्रचुर अल्प प्रतीत हो।।

इसलिये सत्पुरुष जो, लौकिक पारलौकिक कर्मों में। किसी भाँति न उलझकर, फल से विरक्त ही रहा करें।।
आत्म अनात्म सत्य असत्य, निर्मल बुद्धि से पहचानें। जगत् के मिथ्या रूपों में, वे कभी भी नहीं फंसे।।
समभाव में स्थित सदा एक रस, सत्य स्वरूप को वे जानें। आपके स्वरूप का वह, सर्वत्र साक्षात्कार करें।।

हे प्रभु जिस भी तन में, इस जीव का वास हो। उस जीव के कर्मों द्वारा ही, उस तन का निर्माण हो।।
तनो कार्य कारण रूप, आवरणों से वह है रहित। वस्तुत: उन आवरणों का तो, है ही नहीं कोई अस्तित्व।।
तत्त्वज्ञानी जन ऐसा कहें, सब शक्ति धारण आप करें। सब रूप भी वास्तव में तो, है आपका ही स्वरूप हे।।

अंश न होने पर भी, वह अंश ही कहलाता है। निर्माण नहीं उसका कोई, पर निर्मित वह कहलाता है।।
जीव के स्वरूप पर, विवेकी जब विचार करें। पूर्ण श्रद्धा विश्वास से वह, आपके चरण उपासा करें।।
हे प्रभु आपके चरण ही हैं, पराकाष्ठा वैदिक कर्मों की। वह ही समर्पण स्थान हैं, और मोक्ष स्वरूप भी हैं वे ही।।

अति दुष्कर है हे प्रभु, कोई परम तत्त्व को जान ले। उसीका ज्ञान देने को, अवतार विविध प्रभु आप धरें।।
उनके द्वारा फिर ऐसी, लीलायें प्रभु आप करें। अमृत महासागर से भी, मधुर और मादक जो भएं।।
उनका सेवन करने से, श्रान्ति सारी दूर हो। जो भी भजन करे उनका, परमानन्द को प्राप्त हो।।
प्रेमी जन तो कथा छोड़, नहीं मोक्ष की भी अभिलाषा करें। स्वर्गादि की चाहना तो, उनके लिये अति तुच्छ रहे।।
आपके चरणों के प्रेमी, परमहंसों के सत्संग में। आपकी कथा को सुनकर वह, परम सुख को प्राप्त करें।।
घर तो क्या उसके लिये, निज जीवन तक वह छोड़ें। वह तो आपके चरणों में, ही नित्य निमग्न रहें।।

यह तन जब आपकी सेवा के, पथ का अनुरागी हो जाये। तब निज आत्म सुहृद् हितैषी, के समान आचरण करें।।
आप ही हैं सच्चे हितकर, प्रियतम और जीव के आत्मा। जीव को अपनानेके लिये, रहें आप तत्पर सदा।।
इतना सुगम है मिलन यह, अनुकूल मनुज तन पाकर भी। साख्य भाव आदि द्वारा, नहीं आपको गर उपासे कोई।।
इस नश्वर तन उसके बन्धु, असत् में ही आसक्त रहे। उनको ही उपास करी, अपने आत्म का हनन करे।।
सब वृत्तियां और वासना, उसे अधोगति में ले जायें। है कितना यह कष्टप्रद, सब एक ही तन में भ्रमी रहें।।
फिर उनके अनुकूल ही वह, अनेकों तन धारण करे। पशु पक्षी आदि सब ही, भले बुरे तन वह पाये।।
इस विधि वह भयावह, संसार में ही भटका करे। जन्म मरण के चक्र में, ही सदा वह भ्रमित रहे।।

महाविवेकी योगी यति, प्राण मन इन्द्रियाँ वश में करें। दृढ़ योग अभ्यास से, उपासना हृदय में किया करें।।
जिस पद की उन्हें प्राप्ति हो, वैरी शत्रु भी वही पाये। क्योंकि वह भी आपका, स्मरणन् तो नित्य अनन्य करे।।
जो नारी आपको तन जानी, काम भाव आसक्त रहें। शेषनाग सम लम्बी मोटी, सुकुमार भुजाएं ही चाहें।।
जिस परम पद को वह पायें, हम श्रुतियों को भी वही मिले। यद्यपि हम तो सदा आपको, एक रस अनुभव करें।।
आपके चरण कमल के ही, मकरन्द का नित्य पान करें। आपकी चर्चा में ही प्रभु, हम तो सदा निमग्न रहें।।
हो भी क्यों न प्रभु आप तो, समष्टि में ही रहें सदा। व्यक्त अव्यक्त भाव का, वहाँ भेद नहीं कोई रहता।।

हैं आप अनादि और अनन्त, भला काल बधित कैसे जान सके? श्री ब्रह्मा सनकादि मरीचि, भी आपसे ही जन्में।।
जब सब अपने में समेट कर, आप प्रभु सो जाते हैं। आपके साथ ही सोये जीव, नहीं जान आपको पाते हैं।।

न तो स्थूल जगत् ही रहे, न सूक्ष्म ही रहें वहाँ।। दोनों से बने तन और निमित्त, कोई पल न मुहूर्त रहें वहा।।।
कुछ भी नहीं रहता प्रभु, सब आपमें समा जाये। शास्त्र भी प्रभु उस समय, कहीं दुष्ट न हो पाये।।
ऐसे में प्रभु आपको, कैसे जान पाये कोई? आपका नित्य ही भजन हो, है सर्वश्रेष्ठ प्रभु मार्ग यही।।

हे प्रभु कुछ जन यह मानें, है असत् जग उत्पत्ति। अन्य मानें सत् रूपा, दु:ख नाश से हो मुक्ति।।
कोई आत्मा को प्रभु, अनेक ही माना करें। अन्य कोई कर्मों से प्राप्त, लोक परलोक सत्य मानें।।
यह सब बातें हैं भ्रममूलक, नहीं इसमें सन्देह कोई। ऐसा उपदेश वह करते हैं, मिथ्या आरोप करके ही।।
त्रिगुणमय है पुरुष यह, यह भेद हो अज्ञान से। हे प्रभु हैं आप तो, अज्ञान से सर्वथा परे।।
भेदभाव किसी भाँति भी, आवृत्त आपको नहीं करे। आप तो हैं नित्य ही, ज्ञान प्रकाश स्वरूप हे।।

त्रिगुणात्मिका जगत् यह, केवल कल्पना मात्र ही है। परमात्म और जग से पृथक्, पुरुष भी कल्पना मात्र ही है।।
इस सब असत्य का प्रभु, अधिष्ठान आप ही सत्य हैं। आपकी सत्ता के कारण, प्रतीत हो यह सत्य है।।
भोक्ता भोग्य इन्द्रिय आदि, जितना भी प्रभु जगत् है। आत्म स्वरूप से ज्ञानी तो, माने इसको सत्य है।।
स्वर्ण के कुण्डल या कंकण, वास्तव में तो है स्वर्ण ही। जो सत्य यह जान ले, उन्हें स्वर्ण जान वह छोड़े नहीं।।
त्यों ही यह जगत् भी आत्म में, ही कल्पित और व्याप्त है। आत्म ज्ञानी तो जाने यह, आत्म रूप ही आप है।।

सब जीव और पदार्थों के, अधिष्ठान प्रभु आप हैं। इस भाव से जो उपासे हैं, सर्वात्म उनका भाव है।।
मृत्यु को भी तुच्छ समझ, वह सीस पे उसके चरण धरें। सहज में ही वह भक्त जन, मृत्यु पर विजय पा लें।।
भले विद्वान हो कितने ही, जो जन आपसे विमुख रहें। प्रतिपादित करें जो कर्म को, पशुवत् उन श्रुतियों से बन्धें।।
इसके विपरीत जिनका प्रभु, प्रेम सम्बन्ध है आपसे। न केवल अपने को ही, वह सारा जग पावन करें।।
स्वयं तो मुक्त वह हो जायें, जग को भी बन्धन मुक्त करें। आपसे विमुख हैं जो सौभाग्य नहीं यह प्राप्त करें।।

मन इन्द्रिय बुद्धि आदि, कणों से प्रभु आप परे। चिन्तन कर्म आदि साधन, आप तक न पहुँच सकें।।
फिर भी आप अन्त:करण और बाह्य शक्ति सम्पन्न रहें। स्वत: सिद्ध है ज्ञानवान्, और हैं स्वयं प्रकाश हे।।
किसी भी कार्य के लिये, नहीं आप प्रभु इन्द्रिय आश्रित। आपसे सत्ता पाकर सब, इन्द्रियाँ आप पे हैं आश्रित।।
ज्यों छोटे छोटे राजा, निज प्रजा से कर को प्राप्त करें। और उसे ले जाकर वह, अपने सम्राट को ही दे दें।।
त्यों ही पूज्य देवता और, उनके पूज्य ब्रह्मा आदि। स्वीकार करते हैं पूजा, अपने अधीन प्राणियों की।।
माया के अधीन हो वह, आपकी पूजा करते हैं। आपने जहाँ नियुक्त किया, भयवश कर्त्तव्य वे करते हैं।।

नित्यमुक्त हैं आप प्रभु, माया से अतीत हैं। निज संकल्प मात्र से ही, माया से क्रीड़ा रत हैं।।
आपके ही संकेत से, जगमें कर्म संस्कार जीवों के। चराचर प्राणी उत्पन्न हों, सूक्ष्म शरीर जगें जीवों के।।
हैं परम दयालु आप प्रभु, आकाश सम सबमें समान। न तो है अपना कोई, न ही पराया किसी को जान।।
आपके स्वरूप में, नहीं मन वाणी की गति कहीं। कार्य कारण रूप प्रपंच, का है वहाँ अभाव ही।।
बाह्य दृष्टि से प्रभु, आप शून्य ही जान पड़ें। किन्तु सबके हैं अधिष्ठान, इस कारण परम ही सत्य हैं हे।।

हैं नित्य एक रस आप प्रभु, नहीं जीव आप सम हो सके। वह शासित आपका ही शासक हैं, सम्भव यह तब ही हो सके।।

आपसे उत्पन्न होकर वह, न्यून अपेक्षा में रहे। नियन्त्रण उसका हे प्रभु, आप तभी तो कर सकें।।
नहीं तनिक सन्देह इसमें, सब जीव आपसे उत्पन्न हो। कारण रूप से उनमें बसे, आप ही सबके नियामक हों।।
वास्तव में सम रूप में, आप प्रभु सबमें बसें। आपके उस स्वरूप को, नहीं काई प्रभु जान सके।।
जो समझें उन्होने जान लिया, वह तो जान ही न पायें। केवल अपनी बुद्धि का, विषय जान ही वह जायें।।
बुद्धि द्वारा हे प्रभु, जो भी वस्तु जानी जाये। मति की भिन्नता कारण ही, भिन्न भिन्न वह दर्शाये।।
एक मति के साथ वहाँ, विरोध दूसरी का होए। आपका स्वरूप तो है, सभी मतों से प्रभु परे।।

आपसे उत्पन्न जीव हो, इसका क्या प्रभु अर्थ हो? परिणाम के द्वारा जीव बनो, प्रभु नहीं यह इसका अर्थ हो।।
प्रकृति पुरुष वास्तव में, दोनों ही अजन्मा हैं। वास्तविक स्वरूप जो उनका आप, नहीं वृत्तियों में कभी जन्मा है।।
अज्ञान के कारण इक दूजे, से संयोग हो जाता है। जल और वायु के मिलन सों ज्यों, बुलबुला इक बन जाता है।।
वास्तव में उसकी अपनी, सत्ता कोई है नहीं। वह तो मिलन है दोनों का, स्वतंत्र रूप से कुछ भी नहीं।।
इसी विधि पुरुष में, प्रकृति का जब अध्यास हो। जीवों के विविध नाम और, गुण का तब आभास हो।।
अन्त में ज्यों सागर में, नदियाँ सारी समा जायें। या फूलों का सारा रस, मधु में ही समा जाये।।
त्यों ही सभी उपाधि त्यजी, सब आपमें ही समा जायें। अस्तित्व भिन्नता जीवों की, नहीं आप बिना कहीं रह पाये।।

आपसे पृथक मानी निज को, हैं जन्म मरण के चक्र पड़े। विवेकी सत्य यह जान ले, और आपकी ही प्रभु शरण गहे।।
पूर्ण भक्ति भाव से वह, आपको ही पुकारा करे। इस जन्म मरण के भंवर से, इक आप ही प्रभु छुड़ा सकें।।
आपके शरणागत भक्त, नहीं भयभीत कभी इनसे भएं। वह तो नित्य निरन्तर ही, आपके प्रेम में खोए रहें।।
यह काल चक्र सब ऋतु लिये, है भ्रू विलास प्रभु आपका। भयभीत उसी को कर सके, जो आपकी शरण में नहीं गया।।

हे अजम प्रभु जिन योगियों ने, प्राण और इन्द्रिय वश में किये। श्री सद्गुरु की न शरण लेई, जब मन वश में करना चाहे।।
अति चंचल इस मन को वह, वश में कर ही नहीं पाते। शतश: वृत्तियाँ सामने पा, केवल दु:ख ही हैं पाते।।
उनकी दशा वैसी ही हो, ज्यों कर्णधार बिन नाव की। सागर में यात्रा पर उतरे, मूढ़ इक व्यापारी को।।

शरणागत वत्सल आप प्रभु, अखण्ड आनन्द स्वरूप हैं। अपने में बसे प्रियतम अपने, आप ही आत्म रूप हैं।।
स्वजन देह धन सुत दारा, रथ महल पृथ्वी या प्राण। आपके रहते हे प्रभु, इन सबसे क्या हमको काम?
इस शाश्वत सत्य को न जानी, जो बाह्य सुखों में रमें रहें। संसार की वस्तु कौन भला, कभी सुखी उन्हें कर सके?
नश्वर ही हैं जग के सभी, पदार्थ तो स्वभङ्गव से ही। इक दिन यह मिट ही जाएंगे, कोई रोकना चाहे जितना भी।।
स्वरूप से ही जो सारहीन, अस्तित्व हीन ही हैं सदा। वह कभी सुख दे सकती, है भला किसी को माया क्या?

ऐश्वर्य लक्ष्मी जाति विद्या, तप आदि के दम्भ से रहित। पृथ्वी पर पावन और पावक, हैं वही सन्त सच्चे तीर्थ।।
उनके हृदय में आपके, चरणारविन्द प्रभु सदा रहें। इस कारण चरणोदक उनका, पाप ताप सब नष्ट करें।।
हैं नित्य आनन्द स्वरूप आप, आप ही हैं प्रभु आत्मा। समर्पित आपको मन जो करे, नहीं पुन: वह उलझे कदा।।
विवेक वैराग्य धैर्य क्षमा, शान्ति का जो नाश करें। देह गेह के सब बन्ध त्यजी, वह सदा आपमें रमें रहें।।

जैसे कहें मिट्टी का घट, माटी का ही रूप है। सत् से बना यह जगत प्रभु, नहीं सत् का स्वरूप है।।

कार्य कारण निर्देश ही, उसके भेद का सूचक है। पिता पुत्र दण्ड और घटना, इक होकर ज्यों यह भिन्न हैं।।
कार्य कारण एकत्व जो, सदा एक सा न दीखे। यदि उपादान कारण ही लें, ज्यों कुण्डल में सोना दीखे।।
तो भी कहीं कहीं कार्य की, असत्यता ही प्रमाणित हेा। जैसे कभी कभी रज्जू में, सर्प का ही आभास हो।।
उपादान कारण रज्जू, तो यहाँ पर सत्य है। किन्तु भासित जो उसमें हो, सर्प तो वह असत्य है।।
यदि कहें सर्प तो प्रतीति में, कारण बस रज्जू मात्र नहीं। इसका कारण तो हैं कहें, अविद्या का संग मिलन भी।।
इस उपमा से भी समझ लो, अविद्या सत् का मेल जो हो। उसके ही परिणाम से, जगत् यह सारा उत्पन्न हो।।
ज्यों रज्जू में सर्प की, प्रतीति जानो मिथ्या है। त्यों ही सत् और अविद्या से, जन्मा यह जग भी मिथ्या है।।
केवल व्यवहार की दृष्टि से, जगत् को मानो यदि सत्य। परमार्थिक सत्य न होकर के, है केवल वह व्यवहारिक सत्य।।
अनादि काल से ही यह भ्रम, सृष्टि में है चलता आया। अन्धपरम्परा से ही, अज्ञानी सत् इसे मान रहा।।

विवेक दृष्टि से उसने कभी, विचार ही इसपर नहीं किया। कर्मफल ही सत्य बता, श्रुतियाँ उसे भ्रम में डालें सदा।।
वास्तव में श्रुतियों का आशय, नहीं फल को सत्य बताना है। उसकी प्रशंसा करके जीव को, कर्म में उन्होने लगाना है।

वास्तविकता तो प्रभु इतनी है, नहीं था जग उत्पत्ति से पूर्व। प्रलय के बाद नहीं होगा, नहीं संशय किंचित् भी अचूक।।
मध्य में भी आभास जो हो, मिथ्या ही इसकी प्रतीति है। एकरस परमात्म में, ही हो इसकी अनुभूति है।।
हम श्रुतियाँ इस जगत् का, वर्णन उपमा राही ही करें। मिट्टी में घट लोहे में शस्त्र, स्वर्ण में ज्यों कुण्डल रहें।।
मूल रूप में तो माटी, लौह और सोना ही है। रूप आकार जो भिन्न दीखें, वह केवल नाम मात्र ही हैं।।
त्यों ही परमात्म में वर्णित, यह जगत् जो है भास रहा। केवल मनो कल्पना है, और वह है केवल मिथ्या।।
नासमझ मूर्ख ही तो, इसको सत्य ही माना करें। इसमें ही वह भ्रमित रहें, वास्तविक सत्य न जान सकें।।
माया से मोहित जीव यह, अविद्या को जब अपना ले। स्वरूपभूत आनन्द आदि, गुणों को वह आवृत्त करे।।

गुणजन्य वृत्ति इन्द्रियों और, देह में वह फंस जाता है। उन्हीं को निज स्वरूप जान, वा सेवा में लग जाता है।।
उन्हीं की जन्म मृत्यु को, यह अपना जन्म मरण माने। उसी चक्र में यह सदा, घूमता हुआ निज को जाने।।
ज्यों सर्प की केंचुली से प्रभु, उसका हो सम्बन्ध नहीं। त्यों ही अविद्या माया से, सम्बन्ध आपका हो नहीं।।
सभी ऐश्वर्य प्रभु आपके, सर्वदा आपके संग रहें। अणिमा आदि सब सिद्धियाँ उपस्थित सेवा में रहें।।
ऐश्वर्य धर्म यश श्री ज्ञान, वैराग्य असीमित आपका है। देश काल और वस्तु की, सीमा से परे प्रभु आप हैं।।

योगी यति होकर भी यदि, हृदय में वासना धरी रहे। सारे यत्न करके भी जीव, उन्मूलन गर उनका न करे।।
उसे हृदय में रहकर भी, अति दुर्लभ हैं प्रभु उसके लिये। ज्यों कण्ठ में पहनी मणि जीव, इत: उत: खोजा करे।।
निज इन्द्रिय तृप्ति में ही लगें, विरक्त न निज इन्द्रियों से हों। जीवन पर्यन्त और बाद में भी, केवल दु:ख के ही भागी हों।।
साधक नहीं वह दम्भी हैं, नहीं मृत्यु से छूटे अभी। लोक रिझाव धन उपार्जन, के क्लेश में पड़े अभी।।
आपका स्वरूप प्रभु, कभी वह जान नहीं पायें। निज धर्म कर्म के उल्लंघन से, परलोक का भय भी बना रहे।।

आपका वास्तविक स्वरूप, हे प्रभु जो नर जाने है। पुण्य पाप कर्मों का फल, दु:ख सुख वह न माने है।।
भोग्य और भोक्तृत्व भाव, से ऊपर वह उठ जाये। विधि निषेध के प्रतिपादक, शास्त्र बान्ध उसे न पायें।।

उनकी ओर उस भक्त का, ध्यान भी प्रभु न जा पाये। केवल देहाभिमानियों को, वह प्रभावित कर पायें।।
दूजी ओर जिसे आपके, स्वरूप का प्रभु न ज्ञान हुआ। युग युग में आपकी ही लीला, और गुणों का गान यदि हो सुना।।
उस श्रवण के राही आपको, हृदय में अपने ले जाये। तो प्रेमी भक्त वह आपका, सुख दु:ख से ऊपर उठ जाये।।
पाप पुण्य और विधि निषेध, से स्वत: दूर हो जाता है। मोक्ष स्वरूप हैं गति आप, और वह प्रभु आपको पाता है।।

स्वर्गादि के अधिपति इन्द्र, ब्रह्मा आदि सब प्रजापति। हे प्रभु नहीं आपकी, थाह पा सके वह कभी।।
आश्चर्य है आप स्वयं भी, अपना पार न पा सकें। क्योंकि जब अन्त ही कहीं नहीं, तो कौन उसे कभी जान सकें?
ज्यों आकाश में धूलि के, प्रभु नन्हें नन्हें कण उड़ें। त्यों ही ब्रह्माण्ड अनेकों ही, इक साथ ही आपमें भ्रमण करें।।
ऐसे में भला कोई आपकी, सीमा किस विध प्रभु पा सके। हम श्रुतियाँ भी आपके, स्वरूप की नहीं बता सकें।।
नेति नेति कहते कहते, अन्त में बस निषेध करें। आपमें निज सत्ता को खो, जीवन अपना सफल करें।।
भगवान बोले,
सनकादिक ऋषियों ने नारद, इस विधि यह उपदेश सुना। ब्रह्म और आत्म का एकत्व, प्रतिपादित जिसने किया।।
आत्म स्वरूप को जान कर, उपदेश से कृतकृत् वह हुए। नित्य सिद्ध होने पर भी, पूजन सनन्दन के किये।।

सृष्टि के आरम्भ में ही, उत्पन्न थे हुए सनकादि ऋषि। हैं सबे ही पूर्वज वह, ब्रह्मा पुत्र यह चारों ऋषि।।
आकाशचारी महात्मन् ने, सब वेद पुराण उपनिषद् का। पूर्ण रस दोहन है किया, यही सार है सबका कहा।।

हे देवर्षि उनके समान, तुम भी ब्रह्मा॰ पुत्र हो। उनकी ज्ञान सम्पदा के, वास्तविक उत्तराधिकारी हो।।
तुम भी श्रद्धा सहित इस, ब्रह्म विद्या को धाण करो। और स्वच्छन्द भाव से, इस पृथ्वी पर तुम विचरो।।
यह विद्या जीव की सम्पूर्ण वासना को भस्म कर दे। सब कामना वासना क्षय करी, मुक्ति पल में प्रदान करे।।
शुकदेव बोले,
देवर्षि नारद तो हैं, अति संयमी ज्ञानी पूर्णकाम। नैष्ठिक ब्रह्मचारी हैं वह, श्रवण से धारणा हो अविराम।।
श्रीमन्नारायण ने उन्हें, जब इस विधि उपदेश दिया। श्रद्धापूर्वक उसे ग्रहण किया, फिर नारदजी ने उन्हें कहा।।
नारद बोले,
सच्चिदानन्द स्वरूप आप, हे भगवन् श्री कृष्ण हैं। पावनकीर्ति हैं आप प्रभु, किया कलावतार यह धारण है।।
सब भूतों के कल्याण अर्थ, कमनीय रूप यह है धरा। हे प्रभु आपके चरण कमल, में है नमस्कार मेरा।।
शुकदेव बोले,
इस विधि देवर्षि नारद, और अन्य महात्मा जन सभी। शिष्यों संग श्री नारायण, को नमन करके सभी।।
मेरे पिता श्री कृष्ण द्वैपायन, के आश्रम में चले गए। श्री वेदवयस ने सबके ही, यथज्ञेचित तब सत्कार किए।।
आसन स्वीकार किया उन्होने, और सुख से वह बैठ गए। देवर्षि श्री नारद ने जो, सुना थज्ञ नारायण मुख से।।
वह सारा ही उपाख्यान, मेरे पिता को बता दिया। श्री नारायण का दिया ज्ञान, सारा ही उन दोहरा दिया।।

हे राजन् उसी विधि मैंने, है तुमको भी बतला दिया। मन वाणी से अगोचर है, गुणातीत वह ब्रह्म सदा।।
उन परं ब्रह्म परमात्म का, श्रुतियाँ कैसे वर्ण करती हैं। यही तो प्रश्न तुम्हारा था, उसका उत्तर बस यह ही है।।

वह परमात्म ही विश्व का, संकल्प जान ल करते हैं। उसके आदि मध्य और, अन्त में स्थित वह रहते हैं।।
प्रकृति जीव दोनों के ही, स्वामी जानो वह आप हैं। इन सबकी सृष्टि वह करें, प्रविष्ट हों जीव के साथ हैं।।
तन की रचना करके वह, नियन्त्रण उसका करते हैं। आप ही उसमें रहकर वह, संचालन उसका करते हैं।।
सुशुप्ति में जीव ज्यों, निज तनो अनुसन्धान त्यजे। त्यों ही परमात्म को पाकर, माया से मुक्त यह जीव होए।।
प्रभु तो हैं ऐसे विशुद्ध, केवल चिन्मात्र ही तत्त्व हैं। माया या प्रकृति का, नहीं वहाँ कोई अस्तित्व है।।
वह प्रभु ही जान लो, हैं वास्तव में अभय स्थान। उनका निरन्तर चिन्तन ही, जीव का है कर्त्तव्य जान।।

३६) भस्मासुर का वध व शिवजी का संकट-मोचन

परीक्षित बोले,
प्रभु शंकर ने सम्पूर्ण, भोगों का है त्याग किया। जो देव असुर या मनुज किन्तु, उनकी उपासना है करता।।
वह प्राय: धन और भोग, से सम्पन्न है हो जाता। लक्ष्मीपति स्वयं विष्णु, की जो है पूजा करता।।
है यह देखा गया प्रभु, नहीं धन और भोग को प्राप्त करे। दृष्ट रूप में विडम्बना यह, कैसी है प्रभु आप करें?

त्याग और भोग की दृष्टि से, दोनों दीखें विरोधी से। किन्तु उपासक तो उनके, स्वरूप विरुद्ध ही फल पायें।।
मेरे मन का सन्देह यह, प्रभु आप ही निवृत्त कीजिये। शिव उपासना भोग दे, अकिंचन् लक्ष्मीपति से रहे।।

शुकदेव बोले,
हे राजन् शिव तो रहें, सदा अपनी शक्ति से युक्त। अहं के अधिष्ठाता हैं वह, सत्त्वादि गुणों से युक्त।।
अहं के भी हैं तीन भेद, हे राजन् तू जान ले। वैकारिक तैजस और तामस, यह ही हैं तीनों जान ले।।

त्रिविध इस अहंकार से, फिर सोलह विकार हुए। दस इन्द्रियाँ पंचमहाभूत, इक मन मिलकर सोलह हुए।।
सबके अधिष्ठातृ देवों में, गर इक की भी हो उपासना। सब ऐश्वर्यों को वह भक्त प्राप्त वह स्वत: है कर सकता।।

किन्तु राजन श्री हरि तो, हैं परं पुरुष प्रकृति परे। गुणों को कोई विकार भी, उनको कभी न छू सके।।
प्रभु सर्वज्ञ हैं और सभी के, अन्त:करण के साक्षी हैं। जो भी उनका भजन करे, हो गुण से परे वह आप ही है।।

तुम्हारे दादा युधिष्ठिर ने, अश्वमेध जब यज्ञ किया। तब भगवान से विविध भाँति के, धर्मों का उन्होने श्रवण किया।।
उस समय उन्होंने भी, प्रभु से यह ही था प्रश्न किया। सर्वशक्ति सम्पन्न कृष्ण, परमेश्वर ही हैं सदा।।
जीवों के कल्याणार्थ, यदुवंश में वह अवतीर्ण हुए। युधिष्ठिर की जिज्ञासा देख, श्री हरि अति प्रसन्न हुए।।
पिपासा शान्त करने के लिये, फिर उन्होने उत्तर दिये। धर्म राज के प्रश्न के, प्रत्युत्तर में कहने लगे।।

भगवान बोले,
हे राजन् तुम जान लो, जिसपर अतीव मैं कृपा करूँ। शनै: शनै: उसका सब धन, उससे मैं ही छीन लूँ।।
जब वह निर्धन हो जाये, बन्धु बान्धव न ध्यान करें। दु: आकुल उसको न देखें, वह सब ही उसको छोड़ दें।।

फिर पुन: धन के लिये, उद्योग वह जब करने लगे। मेरी कृपा से उसका यह, उद्योग भी तब निष्फल भए।।
बार बार यूँ विफल होई, जब मन उसका विरक्त हो। धन को ही दु:ख कारण जान, जब उससे वह विमुख हो।।

मेरे प्रिय भक्तों का आसरा ले, जब संगति वह उनकी करे। मेरी अहैतुकी कृपा की तब, वर्षा उसपे होने लगे।।

सूक्ष्म सच्चिदानन्द स्वरूप, परं ब्रह्म को वह पाये। अति दुष्कर मेरी आराधना, और प्रसन्नता वह पाये।।
इस कारण ही साधारण जन, मुझको न चाहें कभी। मुझे छोड़ मेरे अन्य रूप, देवों को ही ध्यायें सभी।।

हैं अन्य देवता आशुतोष, शीघ्र द्रवित वह हो जायें। अपने भक्तों को शीघ्र ही, साम्राज्य लक्ष्मी भी दे दें।।
उसे पाकर वह उश्रृंखल, प्रमादी और उन्मत्त बनें। वरदाता देवें को भूलें, और तिरस्कार उनका ही करें।।

शुकदेव बोले,
ब्रह्मा विष्णु और महादेव, हे राजन् जानो हैं समर्थ। शाप और वरदान की है, इन तीनों की ही सामर्थ्य।।
किन्तु इनमें श्री महादेव, और ब्रह्मा शीघ्र प्रसन्न भए। रुष्ट भी वह शीघ्र हों, वर या शाप वह जल्दी दें।।
किन्तु प्रभु श्री विष्णु का, स्वरूप तो इनसे भिन्न ही हो। इस विषय में हे राजन्, प्राचीन इक इतिहास सुनो।।
महात्मा जन तो प्राय, कथन उसी का करते हैं। वृकासुर को वर दे शंकर, संकट में पड़े यह कहते हैं।।

शकुनि पुत्र वृकासुर की, बुद्धि थी अति बिगड़ी हुई। इक दिन कहीं जाते हुए, देवर्षि की उसे भेंट हुई।।
तत्क्षण ही उनसे पूछा, हे देवर्षि यह कहें मुझे। इन तीनों देवों में से, कौन प्रसन्न अति शीघ्र भए?

देवर्षि नारद ने कहा, प्रभु शंकर को आराधो तुम। इससे मनोरथ को अपने, शीघ्र सफल कर पाओ तुम।।
थोड़े से गुणों से प्रभु, शीघ्रतिशीघ्र प्रसन्न हों। किन्तु तनिक अपराध से ही, वह जानो अति कुपित हो।।

रावण और बणासुर ने, बन्दीजन वत् ही स्तुति थी की। इसीसे वह हुए प्रसन्न, अतुल्य वैभव उनको दी।।
बाद में जब रावण ने था, कैलाश को उठा लिया। और बाणासुर की नगरी की, रक्षा का शिव ने भार लिया।।
उनके कारण श्री महादेव, थे संकट में पड़ गए। ऐसे उन आशुशोष की, कथा का है प्रसंग यह।।

श्री नारद का उपदेश पा, केदार क्षेत्र गया वृकासुर। अग्नि को ही मान लिया, श्री शंकर का उसने मुख।।
अपने तन का मांस काट, उसमें हवन वह करने लगा। छ: दिन तक वह इसी विधि, उपासना उनकी करता रहा।।
प्रभु शंकर का नहीं दरस हुआ, इससे वह अति व्यथित हुआ। सातवें दिन केदार के, तीर्थ में उसने स्नान किया।।
भीगे बालों के साथ ही, निज मस्तक छेदना चाहता था। श्री शंकर नहीं मिले उसे, अति खिन्न इस कारण था।।

ज्यों जग में कोई दु:खी होई, आत्म हत्या करना चाहे। तो करुणावश हम जैसे जन, उसे बचाने आ जायें।।
त्यों ही करुणा सागर शंकर, अग्नि कुण्ड में प्रकट हुए। गला काटने से पहले, दोनों कर उसके पकड़ लिये।।
उनके स्पर्श को पाते ही, सब अंग उसके पूर्ण भए। पहले की भाँति ही वह, ज्यों के त्यों सब हो गए।।

श्री शंकर ने वृकासुर से, अति प्रेमपूर्वक कहा। बहुत हुआ अब बस करो, मैं वर देने को हूँ आया।।
जो भी वर तुम चाहो वत्स, मन चाहा वर मांग लो। निज शरणागत भक्तों के, जल से ही मेरी तुष्टि हो।।
क्यों व्यर्थ में तुम अपने, तन को कष्ट हो दे रहे? मेरी प्रसन्नता के लिये, क्यों पीड़ित निज तन किये?

भयानक सब जीवों के लिये, अति पापी वृकासुर था। अति भयंकर वर उसने, श्री शंकर से मांग लिया।।

यदि प्रसन्न हैं आप प्रभु, तो मुझको एको वर दो। जिसके सिर पर मैं हाथ धरूँ, मृत्यु को ही वह प्राप्त हो।।

उसकी यह प्रार्थना सुन राजन्, पहले तो रुद्र अनमने हुए। फिर हंसकर कहा तथास्तु, और यह वर उसे दे दिये।।
ऐसा वर उसको देकर, ज्यों सर्प को अमृत दिया पिला। प्रभु से यह वर पाकर के, उस असुर के मन उठी लालसा।।
क्यों न श्री पार्वती को, हर कर के ले जाऊँ मैं? महादेव के सीस पे हाथ धरी, सच्चाई वर की आजमाऊँ मैं।।
यह सोची के वह असुर, यत्न ऐसा करने लगा। श्री शंकर के सीस पे ही, वह हाथ था निज धरना चाहता।।
अपने ही दिये वर से अब, श्री रुद्र भयभीत हुए। उस असुर से बचने के, उपाय नहीं थे सुझ रहे।।

वह पीछा उनका करने लगा, और रुद्र थे डर कर भाग रहे। पृथ्वी स्वर्ग दिशाओं के, अन्त तक वह जा पहुँचे।।
किन्तु फिर भी उस असुर को, निज पीछा करते हुए देखा। भयभीत हुए थे कांप रहे, उत्तर की ओर फिर कदम धरा।।
महादेवता सब मिल कर भी, उपाय नहीं कोई खोज सके। महाविकट संकट यह देख, वह बस मौन ही रह गए।।
अन्त में वह प्रकृति परे, श्री हरि के अपने लोक गए। तम से परे प्रकाशमय, वैकुण्ठ लोक में जा पहुँचे।।

श्री नारायण का अपना, निवास है वैकुण्ठ में। अभय दान सब जग को दे, सदा शान्त जो स्थित रहें।।
उन संन्यासी जन की गति, हैं वह श्रीमन्नारायण। उस वैकुण्ठ में जाकर के, नहीं जीव का होता पुनर्जन्म।।

भक्तभयहारी प्रभु ने फिर, देखा हैं शंकर संकट में। अपनी योगमाया से फिर, उन ब्रह्मचारी के रूप धरे।।
दूर से धीरे धीरे वह, फिर वृकासुर ओर बढ़े। मूंज मेखला मृगचर्म, रुद्राक्ष माल और दण्ड थे लिये।।
प्रभु के इक इक अंग से, थी ज्योति ऐसी निकल रही। मानो निज तेज सहित अग्नि, स्वयं वहाँ प्रज्वलित हुई।।
वह हाथ में कुशा थे लिये हुए, विनम्र भाव ही था उनका। वृकासुर को देखकर, झुककर उन्होने प्रणाम किया।।

भगवान बोले,
शकुनि नन्दन श्री वृकासुर, बहुत शान्त क्लान्त हैं दीख रहे। क्या बहुत दूर से आये हैं, विश्राम तनिक तो कीजिये।।
देखें न यह तन ही तो, मूल है सारे सुखों का। सर्वकामना पूर्ति करे, कष्ट नहीं दे इसको आप।।

सर्वसमर्थ हैं आप तो, इस पल क्या करना चाहें? यदि आप समझें उचित, तो बात मुझे वह बतलायें।।
क्योंकि इस संसार में, है प्राय: देखा जाता। सहायकों के द्वारा भी लोग, हैं बहुत काज निज लेते बना।।

शुकदेव बोले,
भगवान के इक इक शब्द से, राजन् था अमृत बरस रहा। उनके ऐसा कहने पर, पहले तो उसने विश्राम किया।।
तत्पश्चात् क्रमश: अपनी, वह सारी कथा बताने लगा। तप वरदान प्राप्ति और, शंकर जी का जो किया पीछा।।

भगवान बोले,
अच्छा तो ऐसी बात है, पर हम तो नहीं विश्वास करें। हे वृकासुर महादेव की, सत्यता आप क्या न जानें?
दक्ष प्रजापति शाप से, वह तो पिशाच है हो गया। वह तो प्रेत पिशाचों का, सम्राट आजकल है बना।।

हे दैत्यराज आप तो, हैं इतने महान् ही। फिर भी इन छोटी छोटी, बातों पे करें विश्वास अभी?

यदि आप अभी भी जगद्गुरु, मानी करें विश्वास उस पर। निज सीस पर ही कर धरी, परीक्षा उसकी लेवें कर।।
हे दानवश्रेष्ठ उस शिव की, बात यदि असत्य रहे। तो उस असत्यवादी का, आप स्वयं ही हनन करें।।
जिससे पुन: कभी वह धूर्त, झूठ बोल ही न पाये। भोले भाले भक्तों को वह, पुन: कभी न छल पाये।।

शुकदेव बोले,
प्रभु ने ऐसी मोहितकर, अद्भुत मीठी बातें कहीं। विवेक बुद्धि उस दैत्य की, पूर्णतय: ही नष्ट हुई।।
भूल के उस दुर्बुद्धि ने, अपने ही सीस पे हाथ धरा। तत्क्षण ही उसका सीस फटा, और धरती पर वह गिर पड़ा।।
जैसे आकाश से बिजली ही, हो उस दैत्य पे आन गिरी। उसी समय देवों ने जय जय, नमो नम: साधु कही।।

उस पापी की मृत्यु से, देव पितर ऋषि गन्धर्व। अति प्रसन्न सब हो गए, पुष्प वर्षा उन दीनी कर।।
प्रभु शंकर भी उस समय, विकट संकट से मुक्त हुए। श्री हरि ने ही इस विधि, संकट सब उनके हरे।।

भयमुक्त हुए श्री शंकर से, अब प्रभु पुरुषोत्तम ने कहा। हर्ष है इस दुष्ट को, इसके पापों ने नष्ट किया।।
महापुरुषों के प्रति कोई, प्राणी जब अपराध करे। कौन भला होगा ऐसा, जो कुशल फिर भी रह सके?
फिर जगद्गुरु विश्वेश्वर आप, आपका जो अपराध करे। ऐसा पामर जगत् में, कहें कुशल कैसे रह सके?

श्री भगवान तो हैं स्वयं, अनन्त शक्ति के सागर हे। उनकी इक इक शक्ति तो, मन वाणी की सीमा से परे।।
प्रकृति से सर्वथा अतीत, वह हैं स्वयं परमात्मा। श्री शंकर संकट मोचन की, कथा जो है कहता सुनता।।
संसार के सब पाशों से वह, स्वत: मुक्त हो जाता है। शत्रु का कोई भय उसे, नहीं सता कभी पाता है।।

३७) महर्षि भृगु के द्वारा त्रिदेवों की परीक्षा

शुकदेव बोले,
हे राजन् एकबार पावनी, सरस्वती नदी के तट पर। यज्ञ आरम्भ करने के लिये, हुए महर्षि मुनि एकत्र।।
इस विषय पर उन सबमें, विवाद था इक चल रहा। ब्रह्मा शिव और विष्णु में, है कौन सबसे बड़ा?

ब्रह्मा शिव और विष्णु की, परीक्षा लेने के लिये। ब्रह्मा पुत्र श्री भृगु जी, उनके पास भेजे गये।।
सबसे पहले वह महर्षि, श्री ब्रह्मा की सभा में गये। ब्रह्मा जी के धैर्य आदि, गुण वह जांचना चाहते थे।।
न तो उनको नमन किया, न ही स्तुति करी उनकी। उनको ऐसा आभास हुआ, निज तेज से दमकें ब्रह्मा जी।।
उनके आन्तर में देखा, थी क्रोध की ज्वाला भड़क उठी। पर ब्रह्मा जी ने सोचा, यह है तो अपना पुत्र ही।।
मन में उठे निज क्रोध का, विवेक से उन्होने शमन किया। अरणि मन्थन की अग्न ज्यों, जल से दे कोई बुझा।।

वहाँ से फिर महर्षि भृगु, श्री कैलास को चल दिये। देवाधिदेव श्री शंकर ने, जब देखा निज भ्राता आये।।
आनन्दित हो वह हुए खड़े, और भुजा निज फैला दी। वह भुजा निज भ्राता का, आलिंगन करना थी चाहती।।

किन्तु महर्षि भृगु ने वह, आलिंगन न स्वीकार किया। लोक और वेदों की तुमने, मर्यादा को है उलांघ दिया।।
इस कारण तेरे आलिंगन में, नहीं हूँ मैं बन्धना चाहता। भृगु की ऐसी बात सुनी, श्री शंकर का क्रोध भड़का।।
आंखें उनकी चढ़ गईं, त्रिशूल भी उन्होने लिया उठा। महर्षि भृगु का हनन ही, उस पल उद्देश्य बना उनका।।

भगवति सती चरणों में गिरीं, अनुनय विनय उन बहुत करी। इस भाँति शंकर जी के, क्रोध की उन्होने शमन करी।।
अब महर्षि आगे बढ़े, वैकुण्ठ ओर वह चल दिये। प्रभु विष्णु के निवास स्थल, वैकुण्ठ में वह जा पहुँचे।।

श्री लक्ष्मी की आगोश में, प्रभु विष्णु सीस थे धरे हुए। इसविधि अपने लोक में, वह विश्राम थे कर रहे।।
श्री भृगु ने वहाँ पहुँचकर, वक्ष:स्थल पर आघात किया। अपने पांव की चोट से, आहत श्री विष्णु को किया।।
भक्त वत्सल श्री विष्णु, लक्ष्मी सहित ही उठ बैठे। शैय्या से नीचे उतर कर, मुनिवर को फिर प्रणाम किये।।

भगवान बोले,
हे द्विजवर भले पधारे आप, स्वागत सुस्वागत आपका। इस आसन पर बैठ कर, तनिक विश्राम तो करें जरा।।
आपके शुभ आगमन का, हे प्रभु मुझको पता न था। इस कारण उचित रूप से मैं, नहीं स्वागत आपका कर सका।।
क्षमा करें अपराध मेरा, सीस झुकाये हूँ मैं खड़ा। क्या सेवा करूँ मैं आपकी, प्रभु आप ही दें आज्ञा।।

आपके श्री चरणारविन्द, तो कमल समान ही हैं कोमल। यूं कहकर फिर श्री हरि, सहलाने लगे उनका चरण कमल।।
आपके चरण का जल द्विजवर, पावन कर दे तीर्थ को भी। मेरे सहित करें पावन वैकुण्ठ, आन्तर बसे लोक पालों को भी।।

आपके चरण के स्पर्श से, हे विप्रश्रेष्ठ मेरा पाप धुला। श्री लक्ष्मी का आज हूँ मैं, एकमात्र आश्रय बना।।
आपके चरण चिन्ह से, चिन्हित यह मेरा वक्षस्थल। सदा सर्वदा के लिये, बने लक्ष्मीजी का निवास स्थल।।

शुकदेव बोले,
अति गम्भीर वाणी में, श्री हरि जब इस विधि बोले। परम सुखी हुए महर्षि, सन्तुष्ट ऋषि भृगु हो गए।।
भक्ति के आवेग से, कण्ठ भी उनका भर गया। नयनों से छलके अश्रु, वाणी ने फिर मौन धरा।।

वहाँ से लौट के वह राजन्, पुन: ब्रह्मवादिन के पास गए। उनके सत्र में पहुँचकर, ब्रह्मा शिव विष्णु से जो हुए।।
सारे ही अपने अनुभव, सामने उनके धर दिये। विस्मित हुए सब ऋषि मुनि, संशय उनका सब निवृत्त हुए।।
तब से श्री विष्णु को ही, सर्वश्रेष्ठ वह माने हैं। शान्ति अभय के हैं वही, उद्गम स्थान यह जाने हैं।।

साक्षात् धर्म ज्ञान वैराग्य, अष्ट विधि के सब ऐश्वर्य। प्रभु विष्णु से प्राप्त हों, उनका यश है चित्त शुद्धि कर।।
सब शास्त्र यही तो कहते हैं, प्रभु विष्णु ही हैं एक गति। शान्त समचित्त और अकिंचन्, अभय प्रद ऋषि और मुनियों की।।
सत्त्व ही प्रियमूर्ति उनकी, और ब्राह्मण उनके इष्ट हैं। निष्काम शान्त विवेकी जन, करें उनका भजन ही नित्य हैं।।

राक्षस असुर और देवता, गुणमयी माया ने रूप धरे। सत्वमय देवमूर्ति को ही, उनकी प्राप्ति का साधन कहें।।
प्रभु स्वयं ही हैं बने, सब पुरुषार्थ का स्वरूप। वास्तव में यह तीनों ही, हैं उनके ही अपने रूप।।

सरस्वति तट पे ऋषियों ने, राजन् थी जो युक्ति रची। जीवों का संशय मिट जाये, इस कारण थी उद्यम करी।।
परम पुरुष भगवान के, चरण कमल को उन सेवा। उन ऋषियों ने श्री हरि का, परम पद फिर प्राप्त किया।।

सूत बोले,
हे ऋषिवर श्री पुरुषोत्तम की, यह कमनीय कीर्ति कथा। जन्म मृत्यु रूपा जग के, भय सारे देती है मिटा।।

व्यास सुत श्री शुकदेव के, मुख से यह निसृत हुई। अति सुरभित यह सुधा धारा, अमृतरूपा है मधुमयी।।
संसार के इस विकट और, दीर्घ पथ का पंथी जो। निज कर्णपुटों से इस रस का, निरन्तर पान जो करता हो।।
जग में इत: उत: भ्रमण कर, श्रान्ति जो है उसे हुई। वह क्लेश सारी उसकी, तत्क्षण शान्त है हो जाती।।

३८) कृष्णका मरे हुए ब्राह्मण-बालकों को वापस लाना

शुकदेव बोले,
हे राजन् इक दिन द्वारिका में, इक ब्राह्मणी के घर पुत्र हुआ। पृथ्वी का स्पर्श पाते ही वह, तत्क्षण मृत्यु को प्राप्त हुआ।।
निज बालक का मृत तन लेकर, राजमहल पे गया ब्राह्मण। द्वार पे रखा मृतक पुत्र, और विलाप उसने किया प्रारम्भ।।

ब्राह्मण बोले,
नहीं तनिक सन्देह इसमें, यह राजा का ही दोष है। ब्राह्मण द्रोही धूर्त कृपण, राजा के कर्म का दोष है।।
इस कारण ही नवजात शिशु, मेरे की है मृत्यु हुई। हिंसक दु:शील अजितेन्द्रिय के, राज्य में तो हो यही गति।।

शुकदेव बोले,
इसी विधि उस ब्राह्मण का, दूजा तीजा बालक भी मरा। हर बार पुत्र शव को ब्राह्मण राज द्वार पे डाल गया।।
और जाते जाते वह फिर, बात वही दोहरा गया। नवम् शिशु की मृत्यु पर, जब राज द्वार पर वह आया।।
श्री कृष्ण के साथ वहाँ, अर्जुन भी थै बैठे हुए। ब्राह्मण की उन्होने सुनी बात, और वह उससे यूँ बोले।।

अर्जुन बोले,
हे ब्राह्मण यह द्वारिका जो, आपका है निवास स्थान। क्या धनुर्धारी क्षत्रियों का, हुआ है वहाँ अभाव नितान्त?
ऐसा लगे यदुवंशी तो, हैं केवल द्विज वंश से ही। किसी यज्ञ में बैठे हैं, यह प्रजा पालना त्याग करी।।

जिनके राज्य में धन स्त्री, या पुत्रों के वियोग से। ब्राह्मण दु:खी हो जायें कभी, वह तो क्षत्रिय हो न सके।।
वह तो बस नटवत् ही, क्षत्रिय का है रूप धरे। जीवन यह व्यर्थ ही है उसका, बस पेट का पोषण काज रहे।।
हे द्विजवर ऐसा समझूँ मैं, पुत्र वियोग ने दीन किया। आपकी सन्तान की, प्रभफ करूँगा मैं रक्षा।।
गर अपनी प्रतिज्ञा यह, मैं पूर्ण न कर पाया। आग में कूद मरूँगा मैं, प्रायश्चित यह मेरा होगा।।

ब्राह्मण बोले,
भगवान कृष्ण और बलराम, धनुर्शिरोमणि श्री प्रद्युम्न। अद्वितीय योधा अनिरुद्ध भी, जब शिशु रक्षा में नहीं समर्थ।।
यह सब जगदीश्वर मिलकर भी, जब यह काम न कर सके। तब तुम अकेले ही अर्जुन, कैसे इसे कर पाओगे?
ऐसा कथन तुम्हारा तो, केवल दर्शाये मूढ़ता। तुम्हारे इस कथन पर मैं, विश्वास नहीं हूँ कर सकता।।

अर्जुन बोले,
हे द्विजवर यह जानें आप, नहीं कृष्ण राम या मैं प्रद्युम्न। विश्व विख्यात गाण्डीव धनु: का, धारक मैं तो हूँ अर्जुन।।
हे ब्राह्मण मेरे बल पौरुष का, तिरस्कार न कीजिये। क्या आप यह न जानें प्रभु, श्री शंकर भी सन्तुट हुए।।
अधिक बात मैं क्या करूँ, अपना पौरुष दिखला दूँगा। मृत्यु को भी जीत के मैं, सन्तति आपकी ला दूँगा।।

शुकदेव बोले,
हे राजन् जब ब्राह्मण को, दिलाया पौरुष का विश्वास। लोगों से उसने की चर्चा, लौटा वह मन में ले नई आस।।
उसकी पत्नी के प्रसव का, समय निकट जब आ गया। आतुर हो अर्जुन निकट पहुंच, ब्रज्ञह्मण उसको यूं कहने लगा।।
इक बार मेरे शिशु को तुम, मृत्यु से बचा ही लो। बल पौरुष की जा बात कही, इक बार प्रमाण दो।।

यह सुनकर फिर अर्जुन ने, निर्मल जल से आचमन किया। भगवान शंकर को उसने, विनम्र होई कर नमन किया।।
फिर दिव्य अस्त्रों शस्त्रों को, याद अर्जुन ने किया। प्रत्यंचा चढ़ा गाण्डीव पे, उसको फिर अपने हाथ लिया।।

अर्जुन ने निज बाणों को, अभिमन्त्रित मन्त्रों से किया। प्रसव गृह को उन बाणों से, चहुँ ओर से घेर लिया।।
सूतिका गृह के ऊपर नीचे, आस पास सब बाण थे। बाणों के इक पिंजरे में ही, जैसे थे वह बान्धे गए।।

तत्पश्चात् ब्राह्मणी के, गर्भ से शिशु का जन्म हुआ। वह शिशु तो बार बार, अतीव रुदन था कर रहा।।
सबके देखते देखते ही, सशरीर वह अन्तर्धान हुए। तन के सहित नवजात शिशु, आकाश में ही फिर जाय छिपा।।

अब कृष्ण सम्मुख उस ब्राह्मण ने, निन्दा अर्जुन की करी। देखो तो सही मेरी मूढ़ता, विश्वास मैंने अर्जुन की करी।।
नपुंसक और इस दम्भी की, बातों को मैंने मान लिया। प्रद्युम्न अनिरुद्ध बलराम और, श्री कृष्ण भी जिन्हें न सके बचा।।
उनकी रक्षा करने में, सामर्थ को अन्य है हो सकता? उस ब्राह्मण ने पुन: पुन:, अर्जुन को कोसना शुरू किया।।
अपने ही मुख से अपनी, बढ़ाई है जो करता रहा। धिक्कार है उस अर्जुन को, धिक् धिक् उसकी वीरता का।।
दुर्बुद्धि तो देखो इसकी, है विमूढ़ता ने ग्रसा। लौटाना वह शिशु चाहे, जिसे रेखा ने हमसे छीना।।

जब ब्राह्मण इस विधि उन्हें, भला बुरा कहने लगा। निज योग बल से अर्जुन, संयमनी पुरी ही पहुँचे जा।।
यहीं पे तो यमराज का, है निवास यह था सुना। किन्तु वह ब्राह्मण बालक, वहाँ भी उसको नहीं मिला।।
फिर वह शस्त्र अपने लेकर, इन्द्र अग्नि निर्ऋति लोक गए। सोम वायु वरुण आदि, की पुरियों में भी गए।।
अतलादि से नीचे और, स्वर्गादि से ऊपर भी गए। महर्लोकादि और अन्यान्य, अनेक स्थानों पर वह गए।।

किन्तु कहीं भी ब्राह्मण बालक, का पता उन्हें नहीं चला। प्रतिज्ञा न पूरी हुई, अग्नि प्रवेश का विचार किया।।
किन्तु भगवान कृष्ण ने, उन्हें ऐसा करने से रोका। और व्यथित हुए अर्जुन को, फिर उन्होने यह वचन कहा।।

भगवान बोले,
भ्राता अर्जुन नहीं इस विधि, अपने आपको तुम कोसो। ब्राह्मण के सब शिशुओं का, दर्शन कराऊँगा तुमको।।
आज जो जन आपकी अपकीर्ति, हे अर्जुन हैं कर रहे। वे ही फिर हम लोगों की, निर्मल कीर्ति पुन: गायेंगे।।
शुकदेव बोले,
सर्वशक्तिमते श्री कृष्ण ने, यूँ अर्जुन को समझाया। निज दिव्य रथ पे फिर उसको, अपने साथ उन बिठलाया।।
फिर रथ को पश्चिम की, दिशा ओर वह ले चले। कृष्णार्जुन ने इस विधि, पश्चिम को प्रस्थान किये।।

सात पर्वतों वाले उन, सात द्वीपों को पार किया। सात समुद्र और लोकालोक, पर्वत को भी उलांघ लिया।।
तत्पश्चात् अति गहन, अन्धकार में प्रवेश किया। इतना गहरा वह तिमिर था, नहीं हाथ को हाथ था सूझ रहा।।

उस गहन अन्धकार में, राह भूली अश्व वहाँ भटके। शैब्य सुग्रीव मेघपुष्प, बलाहक चारों अश्व थे।।
योगेश्वरों के परमेश्वर, श्री कृष्ण ने जब ऐसा देखा। सहस्त्र सूर्य सम तेजस्वी, निज चक्र को उन्होने आगे किया।।

अपने ज्योतिर्मय तेज सहित, सुदर्शन मनोगति से चला। भगवान के द्वारा ही उत्पन्न, उस घोर तम को चीरता।।
ऐसा आभास था हो रहा, प्रभु राम का बाण ज्यों हो छुटा। धनुष से छूट वह असुरों की, सेना में हो प्रविष्ट हुआ।।

सुदर्शन चक्र के द्वारा, जो मार्ग प्रशस्त था हो रहा। उस पर चलते चलते रथ, अन्तिम छोर तक जा पहुँचा।।
अन्धकार के दूजे पार, व्यापक असीम इक ज्योति थी। अर्जुन की आंखें उसे देख, अनायास चुंधिया गईं।।
विवश हुए अर्जुन ने फिर, आंखें अपनी बन्द करीं। तत्पश्चात् प्रभु के रथ ने, दिव्य जल में प्रवेश की।।
आन्धी के कारण वह जल, था तरंगित हो रहा। महातरंगों के कारण, अति सुन्दर था वह भास रहा।।
बहुत सुन्दर महल था एक वहाँ, मणियों के सहस्त्रों स्तम्भ थे। ज्योति थी चहुँ दिशा फैली, जगमग जगमग थे चमक रहे।।

उस महल में भगवान शेष, स्वयं विराजमान् थे। उनके तन थे अति अद्भुत, और वह महाभयान थे।।
सहस्त्र शीश थे शेष के, उस पर थी मणियों की छटा। थे द्वौ नेत्र हर सीस में, जो दीख रहे थे भयावह।।
तन उनका कैलास सम, श्वेत वर्ण का था सारा। नील वर्ण की जिह्वा थी, वैसा ही उनका कण्ठ था।।

फिर अर्जुन ने देखा राजन्, शेष की सुखमय शैय्या पर। परम् पुरुषोत्तम प्रभु वहाँ, सुख से शयन रहे हैं कर।।
वर्षाकालीन मेघ सम, है उनकी तनो कान्ति श्यामल। उस पर लहराये अति सुन्दर, रेशम का इक पीताम्बर।।
प्रसन्नता से मुख कमल खिला, नेत्र भी उनके विशाल हैं। अति मनभावन नेत्र वह, मन को हर लें तत्काल हैं।।

बहुमूल्य मणि से जटित मुकुट, कुण्डल कान्ति से चमके अलक। आठ भुजाएँ उनकी जो, हैं सब ही अजानु भुज।।
कण्ठ में है कौस्तुभ मणि, वक्ष: स्थल पर श्री वत्स चिन्ह। घुटनों तक है लटक रही, वरमाला उनकी अविछिन्न।।

अर्जुन ने देख नन्द सुनन्द, श्री हरि के अपने पार्षद। चक्र सुदर्शन आदि सब, लिये निज मूर्तिमान आयुध।।
पुष्टि कीर्ति श्री और अजा, यह चारों शक्तियाँ साथ लिये। ब्रह्मा आदि के अधिपति, प्रभु की सेवा सब ऋद्धि करें।।

भगवान कृष्ण ने अपने ही, स्वरूप श्री अनन्त को। सविनय फिर प्रणाम किया, वैसा ही फिर अर्जुन ने कियो।।
श्री शेष का रूप देख, थे अर्जुन कुछ भयभीत हुए। प्रणाम कर श्री कृष्ण संग, कर जोड़ी वह थे खड़े।।
ब्रह्मादि लोकपालों के भी, स्वामी श्री भूमा पुरुष ने। हंसते हुए मधुर और, गम्भीर स्वरों में शब्द कहे।।

अनन्त बोले,
श्री कृष्ण और हे अजुन, तुम दोनों के दर्शन के लिये। ही वह ब्राह्मण शिशु मैंने, थे अपने पास बुला लिये।।
धर्म की रक्षा के लिये, तुम दोनों धरती पर आये। मेरी कलाओं के सहित, अवतार यह हो धारण किए।।
पृथ्वी पे बने हैं भार जो, उन दैत्यों का संहार करो। शीघ्रातिशीघ्र अब तुम दोनों, मेरे पास ही लौट आओ।।

तुम दोनों ही ऋषिश्रेष्ठ, नारायण नर के रूप हो। सर्वश्रेष्ठ हो तुम दोनों, और आप्त काम स्वरूप हो।।
फिर भी जगत् की स्थिति, और लोक संग्रह के लिये। धर्म का तुम आचरण करो, प्रमाणित करने के लिये।।

शुकदेव बोले,
भूमा पुरुष ने श्री कृष्ण और अर्जुन को संदेश दिया। उसको स्वीकार कर दोनों ने, फिर नमस्कार उनको किया।।
आनन्द से ब्राह्मण शिशुओं को, फिर उन्होने अपने साथ लिया। जिस राह से जिस विधि आये थे, उसीसे पहुँचे द्वारका जा।।
निज आयु के अनुसार ही, ब्राह्मण बालक थे बड़े हुए। रूप आकृति थी वैसी ही, जैसी थी जन्म के समय।।
भगवान कृष्ण और अर्जुन ने, उनके पिता को सौंपा उन्हें। इस विधि उस ब्राह्मण के, सन्ताप सभी उन्होने हरे।।

आश्चर्य चकित थे अर्जुन तो, श्री विष्णु धाम का दर्शन पा। जीवों का बल पौरुष जाना, है बस केवल कृष्ण कृपा।।
यह अनुभव हुआ उनको, मन ही मन उन्होने नमन किया। श्री कृष्ण का वैभव देख कर, कृत्कृत्य हुआ मन उनका।।

ऐसी ही अनेकों अन्य भी, करीं लीलाएँ भगवान ने। ऐश्वर्य और वीरता से, परिपूर्ण थीं सब लीलाएँ।।
लोकदृष्टि से साधारण, जीव बनी के वह रहे। सांसारिक विषयों का वह, उपभोग से करते दीखे थे।।
महाराजाओं समान ही, अति श्रेष्ठ यज्ञ भी उन्होने किये। आदर्श महापुरुषों की तरह, आचरण थे श्री भगवान के।।
ब्राह्मण आदि सब प्रजावर्ग, के मनोरथ पूर्ण किये। ज्यों समयानुकूल प्रजा के लिये, इन्द्र हैं वर्षा कर देते।।

अनेकों अधर्मी राजा प्रभु ने, अपने आप ही मार दिये। अर्जुन आदि द्वारा अन्य, बहुतों के हनन करा दिये।।
धर्मराज युधिष्ठिर आदि, धार्मिक राजाओं द्वारा। अनायास ही सारी धरती पर, धर्म पुन: स्थापित किया।।

३९) द्वारिका में कृष्ण की लीला-विहार का वर्णन

शुकदेव बोले,
द्वारका नगरी की राजन्, छटा ही कुछ अलौकिक थी। राजपथों पर मदमाते, हाथी की मद ज्यों हो छिड़की।।
सुसज्जित योधा और अश्व, स्वर्णमय रथों की भीड़ थी। चहुँ ओर हरित ही थे उपवन, जहाँ भी दृष्टि जाती थी।।
वृक्षों की पंक्तियाँ भी थीं, फूलों के गुच्छों से लदीं। उनपर बैठै भंवरों की, गुंजन से ज्यों नगरी गूंजी।।
भाँति भाँति के पक्षी भी, कलरव सदा वहाँ करते। सब प्रकार की सम्पदा से, नगर कोष भरपूर थे।।
वीरश्रेष्ठ यदुवंशी सब, उस नगरी में बसते थे। उसका सेवन करने में वह, निज सौभाग्य समझते थे।।
स्त्रियाँ भी वहाँ अति सुन्दर, वेशभूषा थीं पहनतीं। अंग अंग से तरुणाई, ही थी उनकी झांकती।।

अपने महलों में जब वह, थीं कंदुक से खेलतीं। जब अंग कोई कहीं दिख जाता, मानो ज्यों बिजली कौंधती।।
श्री लक्ष्मीपती भगवान की, द्वारिका थी अपनी नगरी। इसीमें उनका वास था, यही महिमा थी उस नगरी की।।
सोलह हजार पत्नियों के, थे श्री कृष्ण प्राण वल्लभ। अलग अलग महलों में सबके, अलग अलग ही थी सम्पद्।।
जितनी थी पत्नियां उनकी, उतने ही अद्भुत रूप थे। उन संग विहार करते थे वह, विभिन्न रूप धारण करके।।

सब पत्नियों के महलों में। अति सुन्दर सरोवर थे। नीले पीले श्वेत लाल, कमल थे निर्मल जल में खिले।।
वह जल उनकी पराग से, सदा ही सुरभित था रहता। सारस हंसादि वहाँ, पक्षी यूथों का किलोल था।।
उन सरोवरों में कभी, कभी नदियों में विहार करते। भगवान कृष्ण पत्नियों संग, क्रीड़ा में यूं थे रमते।।
उनकी पत्नियाँ उनको जब, आलिंगन में थीं भरतीं। उनके वक्ष:स्थल की केसर, श्री अंग में प्रभु के थी लगती।।

उस समय गन्धर्व मिल, उनका यश गाने लगते। सूत मागध बन्दी जन, आनन्द से वाद्य बजाते थे।।
मृदंग ढोल नगारों और, वीणा के स्वर थे गूंजते। इस मंगल ध्वनि से वहाँ, वायु मण्डल प्रतिध्वनित थे।।

हंसी हंसी में पत्नियाँ, पिचकारी से थीं भिगो देतीं। प्रभु से भी प्रतिरूप में, थीं इसी विधि वह भीगतीं।।
भार्याओं के संग श्री हरि, थे इस विधि क्रीड़ा करते। ज्यों यक्षराज कुबेर हों, यक्षणियों संग विचर रहे।।

जल के भीगे वस्त्रों में से, अंग थे उनके झांकते। चोटियों और जूड़ों में गुंथे, फूल भी थे तब गिर जाते।।
कृष्ण पे पानी डालने को, पिचकारी जब लेना चाहतीं। उनके पास पहुँचकर वह, आलिंगन उनका कर लेतीं।।
पति स्पर्श से आन्तर में, प्रेम भाव वर्धित होती। मुख कमल खिलता उनका, शोभा और भी बढ़ जाती।।

पत्नियों के वक्ष:स्थल पर, जो थी केसर रचाई गई। भगवान कृष्ण की वनमाला, उस केसर से तब रंग जाती।।
विहार में वह होते मग्न, घुंघराली अलकें लहरातीं। इक दूजे पे जल उचील, यह क्रीड़ा थी उनकी चलती।।
निज भार्याओं संग प्रभु, थे इस विधि विचरते। ज्यों हथिनियों से घिरा, गजराज कोई क्रीड़ा करे।।

श्री कृष्ण और सब रानियां, इस जल क्रीड़ा के पश्चात्। नट नर्तकियों को देते दान, निज वस्त्र आभूषण उतार।।
गायन वादन ही है एक, साधन जिनकी आजीविका का। राजाओं को प्रसन्न करी, जीवन यापन उनका होता।।

हे राजन् इस विधि ही, प्रभु विहार करते उन संग। उनका गमन हसन वदन, उनकी यह मनहर चितवन।।
हास विलास आलिंगन से, चित्तवृत्ति उन्हीं में टीकी रहती। कोई अन्य स्मृति भी रानियों को, इक पल विचलित नहीं थी करती।।

उनके तो जीवन सर्वस्व, हृदयेश्वर बस कृष्ण थे। श्री श्यामसुन्दर के ही चिन्तन, में मग्न थे उनके चित्त रहते।।
कभी मौन ही रहतीं बहुत देर, कभी उन्मत्त हो बातें करतीं। कभी तो प्रभु के सामने ही, उनके विरह में विह्वल होतीं।।
और न जानें क्या क्या वह, अटपटी थीं बातें करतीं। उनकी ही बात की एक झलक, तुमको अब दिखलाऊँ सहीं।।

माहिष्या बोली,
अरी कुररी रात बहुत बीत गई, चहुँ ओर है सन्नाटा छाया। अपनी अखण्ड शक्ति को छिपा, हमारा प्रियतम है सो रहा।।
तू भी क्यों नहीं सो जाती, क्यों रात्री भर विलाप करे ? कमलनयन श्री कृष्ण की, लीलाभरी मधु चितवन से।।
उनके कटाक्ष और हास्य से, क्या तेरे हृदय तो नहीं बिंधे? अन्यथा हमरे समान ही, क्यों इस विध विरह में तू जले?

अरी चकोरी रात्रि को, क्यों नेत्र तूने निज बन्द किये? क्यों करुण स्वर से पुकारे तू, क्या पति तेरे विदेश गए?
हा तू है अति दु:खियारी, प्रभु दासी क्या बनना चहो? हमारे समान तेरे हृदय में भी, भाव हैं क्या यह उठ आये?
उनके चरणों पे चढ़ी हुई, पुष्प माल को क्या सखी। तू भी अपने केशों में, है धारण करना चाहती?

अहो सागर तव गर्जन तो, निरन्तर ही चलती रहे। क्या नींद नहीं आती तुझे, अनिद्रा रोग क्या लगा तुझे?
अरे नहीं नहीं हम जान गई, है हमारे श्याम की करनी यह। धैर्य गाम्भीर्य स्वाभाविक गुण, उन्होंने तेरे छीन लिये।।
क्या इस कारण हमारे समान, तुम भी व्याधि ग्रसित भए? इस व्याधि का संसार में, नहीं कोई उपचार भए।।

हे चन्द्रदेव अति भीषण रोग, क्या राजयक्ष्मा हुआ तुम्हें? इस कारण ही क्या दिन प्रति दिन, क्षीण हो होते जा रहे?

अपनी किरणों से अब तुम, नहीं अन्धकार भी हटा सकते। क्या प्रिय श्याम सुन्दर की तुम, रहस्य की बातें हो भूले?
इस कारण वाणी भी क्या, तुम्हारी कह कुछ नहीं सके? क्या उसकी ही चिन्ता से, तुम हो मौन यह धारे हुए?

ऐ मलयानिल तुम ही कहो, क्या हमने तेरा बिगाड़ किया? जो हमारे हृदय में तू, काम संचार है कर रहा।।
हमारे व्यथित हृदय की, दशा न क्या तू जानत है? प्रभु की तिरछी चितवन से, वह तो पहले ही आहत है।।

अरे मेघ तव तन का तो, सौन्दर्य है हमारे प्रियतम सा। निश्चित ही है तू अति प्रिय, यदुवंश शिरोमणि का।।
तभी तो हमारी ही भाँति, हो उनके प्रेम पाश में बन्धे। हमारी भाँति ही तुम भी, उनका ही ध्यान हो कर रहे।।
उत्कण्ठित हो तुम उनके लिये, चित्त में है तेरे चिन्ता। बार बार उन्हें याद कर, हो बहा रहे अश्रुधारा।।
अरे श्यामल घन हम सच ही कहें, घनश्याम से नाता जोड़ना। तो जैसे घर बैठे ही है, निमन्त्रण पीड़ा को देना।।

अरी कोकिला तेरा कण्ठ तो, अति सुरीला है जानो। हमारे ही प्रियतम समान, मधुर स्वरों में तुम गाओ।।
तेरी वाणी में सच जानो, है सुधा रस अमृत मिला। प्रेमी के विरह में दग्ध, विरहणियों को जीवन देता।।
तुम ही कहो हम इस समय, क्या सेवा तेरी कर सकें? अमृत रस तू बरसा रही, हम तो इसे पीकर ही जिएं।।

प्रिय पर्वत अति उदार हो तुम, पृथ्वी को हो धारण किये। अटल अचल खड़े हो तुम, न कुछ सुनते न कुछ कहते।।
क्या तुम किसी अति विषम, चिन्ता में हो कहो मग्न हुए? ऐसा लगे तेरी चिन्ता, की भी अब हम समझ गये।।
हमारी भाँति ही तुम्हारी, चाहना भी है तीव्र हुई। ऊंचे ऊंचे श्रृंगों पर अब, श्री हरि के चरण पड़ें तो सही।।

हे सागर पत्नियों नदियो यह, ग्रीष्म ऋतु का है बेला। कुण्ड हैं शुष्क भये तुम्हारे, नहीं कमल पुष्प कोई खिला।।
अति क्षीण तुम दीख रही, क्या कारण है इसका कहो? ज्यों प्रियतम श्री कृष्ण की, चितवन जब हमें प्राप्त न हो।।
अपना हृदय ही खोकर के, अति दीन क्षीण यह तन होता। मेघों से प्रिय सागर का, जल नहीं क्या तुमको प्राप्त हुआ?

सुस्वागत है प्रिय हंसो, आओ तो आसन पर बैठो। दूध पियो प्रिय हंसो, कोई श्याम सुन्दर की बात कहो।।
हम तो तुमको श्याम सुन्दर, का ही दूत हैं मान रही। नहीं वशीभूत जो किसी के भी, वह श्याम कुशल से हैं तो सही?
उनकी मित्रता और प्रीति, अति अस्थिर क्षणभंगुर है। कहा था हमको प्रियतमा, क्या बात यह उनको याद है?
जाओ अब उनकी ओर से, अनुनय विनय न हमसे करो। जब वह ही मान न दें हमें, उनपे जीवन यह व्यर्थ क्यों हो?
क्षुद्र के दूत हो तुम हंस, हम उसके पास नहीं जायेंगी। हमारी इच्छा पूर्ति को, कहो क्या वह आना चाहें कभी?
तो जाओ उन्हें बुला लाओ, और बात भी हमसे कराओ तुम। पर इतना सावधान रहना, नहीं लक्ष्मी को संग लाओ तुम।।
क्या लक्ष्मी को छोड़ के वह, नहीं यहाँ आना चाहते? क्या प्रेम उन्हीं का अनन्य है, ऐसी बात वह माना करें?
हममें से क्या कोई इक भी, उनके जैसी है नहीं? अनन्य प्रेम करे कृष्ण से, क्या दूसरी स्त्री कोई नहीं?

शुकदेव बोले,
योगेश्वर श्री कृष्ण में, अनन्य प्रेम पत्नियों का था। इस कारण ही हे राजन्, परम पद उन्होने प्राप्त किया।।
श्री कृष्ण की लीला अनेक, हैं गीतों राही गाईं गईं। हैं इतनी मधुर मनोहर वह, चित्त को हैं स्वत: लुभा लेतीं।।
उनको सुनकर नारी मन तो, बलात् ही वहाँ खिंचा आये। जिनके नेत्रों ने देखा उन्हें, उनको तो फिर हम क्या कहें?

जिन बड़भागी स्त्रियों ने, श्री कृष्ण को अपना पति माना। उनके श्री चरणों को उन्होने, बहुत प्रेम से सहलाया।।
स्नान और अन्न पान दिया, विभिन्न भाँति से सेवा की। उनकी तपश्चर्या की, तो वर्णन हो ही नहीं सकती।।

भगवान कृष्ण सत्पुरुषों के, हैं एकमात्र आश्रय राजन्। वेदोक्त धर्मों का उन्होने, है पुन: पुन: किया आचरण।।
अपने जीवन की राही, लोगों को है दिखला दिया। धर्म अर्थ और काम का, उत्तम साधन घर ही सदा।।

इस कारण ही गृहस्थोचित, श्रेष्ठ धर्म व्यवहार किया। सोलह सहस्त्र एक सौ आठ, थी उनकी रानियों की संख्या।।
उनमें श्री रुक्मिणी आदि, आठ थीं पटरानियां। उनका और उनके पुत्रों का, क्रम से मैं हूँ वर्णन कर चुका।।

उनके सिवा जो अन्य थीं, श्री भगवान की पत्नियाँ। सबने प्रभु के दस दस, पुत्रों को उत्पन्न किाय।।
नहीं इसमें तनिक आश्चर्य कदा, श्री हरि तो हैं सत्य संकल्प। हैं सर्वशक्तिवान् वही, हो पूर्ण सहज उने संकल्प।।
भगवान के महापराक्रमी , अठारह पुत्र थे महारथी। उनका यश था जग में फैला, अब नाम भी उनके सुनो सही।।

प्रद्युम्न अनिरुद्ध दीप्तिमान, साम्ब मधु और भानु। वृक अरुण पष्कर और, बृहद्भानु चित्रभानु।।
वेदबाहु श्रुतदेव सुनन्दन, चित्रबाहु विरूप कवि। न्याग्रोध सहित जानो, यह सारे थे महाबली।।

श्री कृष्ण के इन पुत्रों में भी, श्रेष्ठतम प्रद्युम्न थे। रुक्मिणी पुत्र गुणों में वह, अपने पिता समान ही थे।।
रुक्मी की कन्या से था, श्री प्रद्युम्न ने विवाह किया। उसी के गर्भ से पुन:, अनिरुद्ध ने था जन्म लिया।।
महाबलि अनिरुद्ध को, नहीं कोई पराजित कर सके। दस सहस्त्र हाथियों का, बल थे वह अपने में लिये।।

रुक्मी के थे दौहित्र वह, नाना की पोती ब्याही। उसके ही गर्भ से पुत्र वज्र, ने उनके जन्म पाई।।
ब्राह्मणों के शाप से, जो मूसल था पैदा हुआ। उस मूसल के द्वारा ही, यदुवंशियों का जब नाश हुआ।।
एक अकेले वज्र ही, तब बचे थे रह गए। वज्र पुत्र हुए प्रतिबाहु, उनके फिर सुबाहु हुए।।
सुबाहु के सुत शान्तसेन, और उसके पुन: शतसेन हुए यह ही यदुवंशियों की, तू कुल परम्परा जान ले।।

इस वंश में कोई भी, ऐसा न पुरुष हुआ राजन्। जिसकी न हो बहुत सन्तति, अल्पायु शक्ति रहित निर्धन।।
वे सब भी तुम जान लो, अतीव ब्राह्मण भक्त थे। ऐसे महायशस्वी और, पराक्रमी सब यदुवंशी थे।।
सहस्त्रों वर्ष लगाकर भी, गणना न जिनकी कर सकें। उन सबका वर्णन कहो, फिर कैसे यहाँ हो सके?

है ऐसा सुना यदुवंश के, बालकों की शिक्षा के लिये। तीन करोड़ अट्ठासी लाख, आचार्य वहाँ नियुक्त थे।।
ऐसे में यदुवंशियों की, संख्या की गणना कैसे हो? श्री उग्रसेन की सुरक्षा में, इक नील सैनिक नियुक्त हों।।

देवासुर का पुराकाल में, राजन् जब संग्राम हुआ। अनेक भयंकर असुरों का, उस पल वध था हो गया।।
वे ही मनुष्य बनकर जन्में, अति दम्भी और गुमानी थे। भोली भाली जनता को, वह असुर बहुत सताने लगे।।

प्रभु की आज्ञा पाकर के, उन सब के दमन के लिये। देवों ने यदुकुल में थे, अवतार धारण कर लिये।।
उनके कुलों की संख्या, थी एक सौ इक राजन्। भगवान कृष्ण को ही अपना, आदर्श स्वामी मानें वे जन।।
उनके अनयायी यदुवंशी, सब भाँति उन्नत हुए। धन धान्य और सम्पद से, वे सब जन ही सम्पन्न थे।।

यदुवंशियों का चित्त राजन्, हर क्षण कृष्ण में रहता था। अपने तन की भी हर पल, सुधि वह भूला रहता था।।
सोना बैठना घूमना फिरना, बोलना खेलना स्नान आदि। यन्त्रवत् थीं हो रहीं, तन की सभी क्रिया उनकी।।
यह कार्य स्वत: सब हो जाते, नहीं अपनी याद उन्हें रहती। बिना किसी मनोभाव के, सब तनोक्रिया थीं हो रहीं।।

श्री हरि का चरण धोवन, गंगा तो सबसे महान् है। समस्त तीर्थों में उसकी, सबसे ऊंची बनी शान है।।
तीर्थ स्वरूप प्रभु ने स्वयं, यदुकुल में जब अवतार लिया। उनकी अपेक्षा गंगा की, महिमा का न्यू आभास हुआ।।
श्री प्रभु के स्वरूप की, है अद्भुत महिमा जान लो। प्रेमी और द्वेषी दोनों ही, उनके स्वरूप को प्राप्त हों।।
बड़े बड़े देवता भी, जिन लक्ष्मी हेतु उद्यत हों। वह ही भगवान की सेवा में, नित्य निरन्तर तत्पर हों।।
इक बार प्रभु का नाम सुनें, या इक बेरी उचार लें। तत्क्षण सभी अमंगल का, पावन नाम वह नाश करे।।
ऋषियों के वंशजों में, जिन धर्मों का आचरण हो। उन सबको श्री कृष्ण के, द्वारा संस्थापित जान लो।।

अपने हाथ में काल रूप, चक्र वह धारे रहते हैं। फिर कौन बड़ी यह बात है, पृथ्वी का भार उतारे हैं।।
भगवान कृष्ण स्वयं ही, हैं आश्रय सब जीवों के। सब जा सदा विराजें वह, पर देवकी गर्भ से जन्म लें।।
यदुवंशी वीर पार्षद बन, उनकी सेवा करते हैं। अपनी भुजबल से प्रभु, नाश अधर्म का करते हैं।।
चराचर सब जगत् का दु:ख, स्वभाव से ही वह मिटाते हैं। अपनी मधुर मुसकान से, वह सबमें प्रेम जगाते हैं।।
वास्तव में सारे जग में, श्री हरि की ही जय जय हो। जय हो जय हो कृष्ण की, हर पल उनकी विजय हो।।

प्रकृति परे परमात्म ने, दिव्य तन किया धारण। उस राही धर्म रक्षण हेतु, अनेक चरित् किये चित्रण।।
इक इक कर्म उन श्री हरि का, जो याद करे बन्धन वा कटे। यदुश्रेष्ठ श्री कृष्ण के, चरणों की सेवा जो चाहें।।
उनकी ही लीलाओं का, श्रवण उन्हें करना चाहिये। इस राही ही अपने सारे, बन्धन मुक्त वह कर पायें।।

श्री कृष्ण की मनहरणी लीला, का जो जीव करे श्रवण। उन्हीं का कीर्तन वह करे, करे उन्हीं का वह सिमरन्।।
उसकी यह भक्ति ही उसे, परम धाम पहुँचाती है। यद्यपि काल गति राजन्, अति दुष्कर मानी जाती है।।
किन्तु भगवान के धाम में तो, कोई ठौर नहीं वह पाती है। वास्तव में उस लोक तक, पहुँच भी नहीं वह पाती है।।
उसी धाम की प्राप्ति को, सम्राट निज साम्राज्य त्यजें। तपश्चर्या के हेतु वह, जंगल की जटिल राह पकड़ें।।
उन कथाओं का नित्य ही, चाहिए श्रवण हो जीव को। उनके कीर्तन से राजन्, वह परम धाम को प्राप्त हो।।

इति दशम स्कन्ध

*** नैतिक सिद्धान्त लचीले नहीं होते, छोटा झूठ भी आखिर झूठ ही होता है।**

*** कोई इतना अमीर नहीं हुआ कि उसे पड़ोसी की जरूरत ही न पड़े।**

*** शक्ति यदि सृजन न बन सके तो वह विनाश बन जाती है।**

*** आत्मबल की सफलता का सबसे बड़ा प्रमाण यही है कि इतने सारे युद्धों के बावजूद भी दुनिया अभी तक कायम है।**

*** सुन्दर दृष्टि मौन को वाचाल बना देती है, कृपालु दृष्टि विरोध को सहमति बना देती है। क्रूर दृष्टि सौन्दर्य को विकृत बना देती है।**

एकादश स्कन्ध

१) यदुवंशियों को ऋषियोंका शाप ३३९

२) वसुदेव और नारद सम्वाद और भागवत धर्म का उपदेश ३४१

३) राजा जनक तथा नौ योगीश्वरों का संवाद ३४३

४) भगवान से स्वधाम पधारने के लिये देवताओंकी प्रार्थना ३५८

५) उद्धव गीता ३६२

- १) दत्तात्रेय के २४ गुरु ३६५
- २) लौकिक और पारलौकिक भोगों में असारता ३७५
- ३) बद्ध, मुक्त और भक्त पुरुषोंके लक्षण ३७९
- ४) सत्संग की महिमा और कर्मत्याग की विधि ३८३
- ५) भगवान का हंसरूप से सनकादि ऋषियोंको दिये हुए उपदेश का वर्णन ३८५
- ६) भक्तियोग की महिमा और ध्यान-विधि का वर्णन ३८८
- ७) भिन्न-भिन्न सिद्धियों का वर्णन ३९२
- ८) भगवान की दिव्य विभूतियों का वर्णन ३९५
- ९) वर्णाश्रम धर्म का निरूपण ३९८
- १०) भक्ति, ज्ञान और यम-नियमादि साधनों का वर्णन ४०६
- ११) कामी पुरुषों के गुण-दोषों का वर्णन ४११
- १२) तत्वज्ञान, प्रकृति और पुरुष का विवेचन ४१५
- १३) ब्रह्मज्ञान ४१९
- १४) प्रकृति के तीन गुण ४२५
- १५) ऐल गीत ४२८
- १६) क्रिया-योग का वर्णन ४३१
- १७) परमार्थ-निरूपण ४३४

६) उद्धव का बदरिकाश्रम जाना ४३८

७) यदुकुल संहार और भगवान का स्वधाम गमन ४४२

एकादश स्कन्ध

१) यदुवंशियों को ऋषियोंका शाप

शुकदेव बोले,
श्री कृष्ण ने बलराम और, यदुवंशियों को साथ लिया। अनेकों दैत्यों का उन्होने, मिलकर के संहार किया।।
कौरवों और पाण्डवों में भी, प्रबल कलह उत्पन्न किया। शीघ्र ही मार काट करी, पृथ्वी का भार हल्का किया।।

कौरवों ने अत्याचार करी, पाण्डवों को अति कुपित किया। द्रुपद सुता के खेंचे केश, छलपूर्ण की द्यूत क्रीड़ा।।
दोनों पक्ष के राजाजन, एकत्रित थे जो वहाँ हुए। पाण्डवों को निमित्त बना, प्रभु ने उनके हनन किये।।
इस भाँति श्री कृष्ण ने, भूमि का भार उतार दिया। इस कारण ही धरती पर, मानुष तन था उन्होने धरा।।

प्रमाण के द्वारा ज्ञान का, विषय नहीं श्री कृष्ण जान। उनके भुजबल से सुरक्षित हैं, यदुवंशी धरती पे जान।।
पृथ्वी के भारभूत राजा, और उनकी सेना मारी गई। लोक दृष्टि से पृथ्वी की, बोझ दूर ही हो गई।।
भगवान ने फिर विचार किया, वस्तुत: न धरती हल्की हुई। अजेय यदुवंशी तो हैं, पृथ्वी पर ही बचे अभी।।

मेरे आश्रित है यह यदुवंश, जन धन हाथी अश्व का बल। यह विशाल वैभव इनका, बना रहा इन्हें उच्श्रृंखल।।
अन्य कोई देवजन भी, नहीं इन्हें पराजित कर सकें। बांसों के परस्पर घर्षण से, ज्यों भीषण अग्नि जन्मे।।
इनमें भी आपस में ही, कलह उत्पन्न कराऊँगा। तत्पश्चात् निश्चिन्त हो, निज धाम गमन कर पाऊँगा।।

भगवान हैं सर्वशक्तिमान्, और हैं स्वयं सत्य संकल्प। इस भाँति मन ही मन में, ऐसा निश्चय लिया उन्होंने कर।।
ब्राह्मणों के शाप को, बहाना उन्होने बना लिया। उसके निमित्त से ही सारे, यदुवंश का फिर नाश किया।।
सबको ही समेटकर, प्रभु अपने धाम में ले गये। अन्तत: यदुवंशियेां के भी, भार न अवनि पर रहे।।

प्रभु की वह निर्मल मूर्ति, त्रिलोक सौन्दर्य से थी परे। अपने सौन्दर्य माधुर्य से, सबका मन थे वह मोह रहे।।
वाणी उपदेश उनके मधुर, और अति वह दिव्य थे। उनका स्मरण जो कर पाते, वह चित्त तो कृष्ण ने थे छीने।।
चरण कमल भी श्री हरि के, त्रिलोक पावनी सुन्दर थे। जिसने भी उनका दर्शन पाया, वह उन्हीं की सेवा में लगे।।
बहिर्मुखता मिटी उसकी, वह कर्म प्रपंच से उठ गया। प्रभु ने अपनी कीर्ति का, अनायास ही यूँ विस्तार किया।।
महाकवियों ने अति सुन्दर, भाषा में है वर्णन किया। प्रभु के प्रयाण के बाद ही, इस कीर्ति का गान होगा।।
इसके श्रवण और सुमिरन से, सुगमता से तर जायेंगे। अज्ञान रूप तिमिर में पुन:, वह भरमा नहीं पायेंगे।।
तत्पश्चात् भगवान ने, प्रयाण किया निज धाम को। धरती का भार उतार कर, पुन: प्राप्त हुए निज धाम को।।

परीक्षित बोले,
थे महा उदार यह यदुवंशी, ब्राह्मणों के थै परम भक्त। कुलवृद्धां की सेवा में वह, थे निरन्तर रहते रत।।
उनका चित्त भी सर्वदा, था कृष्ण में ही लगा रहता। क्या अपराध हुआ उनसे, क्यों ब्राह्मणों ने उन्हें शाप दिया?

क्या कारण था उस शाप का, और कहें स्वरूप था क्या? श्री कृष्ण ही थे आत्म स्वामी, वह ही थे प्रियतम और सखा।।

फिर उनमें कलह यह हुई कैसे, यह समझ नहीं आ रहा। दूजी ओर अद्वैत दर्शी, ऋषियों के मन भेद कैसे उठा?
हे विप्रवर अब आप ही, संशय यह मेरा दूर करें। यह सब किस कारण हुआ, कृपा करी कर आप कहें।।

शुकदेव बोले,
सब सुन्दर पदार्थों का, था जिस एक में मिलन हुआ। भगवान कृष्ण ने ऐसा ही, अलौकिक तन धारण किया।।
पृथ्वी पर कल्याण कर, मंगलमय उन आचरण किया। द्वारका धाम में जाकर फिर, उन्होने पूर्णकाम ने की क्रीड़ा।।
अपनी उदार कीर्ति का, इस विध उन्होने विस्तार किया। अन्त में अपने ही कूल के, संहार का उन्होने संकल्प किया।।
पृथ्वी का भार उतारन को, अब यही काज था शेष बचा। निज कुल के उपसंहार की श्री हरि ने फिर करी इच्छा।।

भगवान ने अपने जीवन में, थे पुण्य कर्म ऐसे किये। जिनका गान ही करके सब, कलि मल नष्ट हैं हो जाते।।
उग्रसेन की द्वारका में, वसुदेव के घर थे वह रहते। यादवों के संहार को, वह काल रूप बनी थे बैठे।।
उस समय श्री कृष्ण ने जब, ऋषिवर को वहाँ से विदा किया। विश्वामित्र असित कण्व, दुर्वासा भृगु और अंगिरा।।
कश्यप वामदेव अत्रि, नारद वसिष्ठ सम महा ऋषि। द्वारका निकट पिण्डारक क्षेत्र, में निवास सबने करी।।

यदुवंश के कुछ उद्दण्डी बाल, इक दिन वहाँ पे जा पहुँचे। खेल खेल में ही उनके, पास वह यदुवंशी आये।।
विनम्रता थी कृत्रिम उनकी, चरणों में उन्होने प्रणाम किया। ऋषियों पे फिर जाकर के, उनसे प्रश्न यह पूछ लिया।।

जाम्बवती सुत साम्ब था, स्त्री वेश में सजा हुआ। ऋषिवर पे फिर जाकर उन, ब्राह्मणों से यह प्रश्न किया।।
हे द्विजवर यह सुन्दरी, हे प्रभु कृपा से गर्भवती। आपके चरणों में आकर, यह प्रश्न पूछना है चाहती।।
किन्तु यह है सकुचा रही, नहीं इसके मुख से निकले वाक्। अमोघ ज्ञान है आपका, हे ऋषिवर हैं सर्वज्ञ आप।।
पुत्र की है इसे लालसा, और प्रसव का भी है समय पास। आपके चरण में आई यह, मन में धरे बस एक आस।।
अब आप ही कृपा करके, इसको यह बतलाइए। होगी कन्या या पुत्र इसे, संशय यह दूर कराइए।।

उन कुमारों ने इस विधि, ऋषियों का जब उपहास किया। भगवत्प्रेरणा से उनमें, क्रोध का फिर संचार हुआ।।
वह बोले अरे मूर्खों, इक मूसल उत्पन्न करेगी यह। तुम्हारे सारे कुल का ही, सर्वनाश करेगा वह।।
मुनियों की यह बात सुनी, वह बालक अति भयभीत हुए। साम्ब का पेट खोला तुरन्त, वहाँ से लौह मूसल निकले।।

पश्चाताप मन में उठा, अनर्थ यह हमने क्या किया। अति अभागे हैं हम सब, लोग करेंगे सब निन्दा।।
इस प्रकार घबराये वह, निज निवास को लौट गए। वह मूसल जो था निकला, उसको भी थे संग लिये।।

चेहरे थे फीके पड़े, और थे मुख कुम्हला गये। सभी यादवों के सम्मुख, भरी सभा में वह पहुँचे।।
राजा उग्रसेन को उन्होने, सारी घटना की कही। अपनी मनो व्यथा उन्होने, राजा के सामने जाय धरी।।

ब्राह्मणों के शाप की, जब उनके मुख से बात सुनी। अपनी आंखों से ही जब, मूसल की भी दर्शन करी।।
सभी द्वारका वासी तब, विस्मित और भयभीत हुए। वह जाने थे ब्राह्मण शाप, झूठ नहीं कभी हो सकते।।

महाराज उग्रसेन ने उस, मूसल का चूर्ण करवाया। लौह के बचे टुकड़े सहित, सागर में उसे फिंकवाया।।

श्री कृष्ण से इस सम्बन्ध में, नहीं सम्मत्ति कोई ली। ऐसा ही था काल चक्र, प्रभु की ऐसी ही प्रेरणा थी।।

उस लौह के टुकड़े को राजन्, इक मछली ने निगल लिया। वह चूरा भी तरंगों संग, बही किनारे जाय लगा।।
थोड़े ही दिनों में बिना गांठ, इक घास के रूप में वहां उगा। वह घास भी तो वास्तव में, लौह चूर्ण का ही रूप था।।

मछुए ने सागर में से, जब अन्य मछलियों को पकड़ा। वह मछली भी संग थी, जिसने वह लोहा था निगला।।
उसको चीर के पेट से, जब वह टुकड़ा निकाला गया। जरा नाम के व्याध ने, निज बाण की नोक में लगा लिया।।

भगवान तो हैं स्वयं सर्वज्ञ, शाप उलट भी सकते थे। फिर भी ऐसा करना वह, उचित नहीं थे मान रहे।।
काल रूप धारी प्रभु ने, अनुमोदन ही उसका किया। ब्राह्मणों का उसे शाप जान, प्रभु ने कुछ भी नहीं किया।।

२) वसुदेव और नारद सम्वाद और भागवत धर्म का उपदेश

शुकदेव बोले,
देवर्षि नारद के मन में, थी राजन् इक लालसा। भगवान कृष्ण की सन्निधि में, मैं भी रहकर देखूं कदा।।
श्री कृष्ण सुरक्षित द्वारिका से विदा तो थे वह हो चुके। किन्तु पुन: पुन: आकर, प्राय: वह वहाँ रहते थे।।

हे राजन् इस जगत् में, कौन प्राणी होगा ऐसा? इन्द्रियाँ प्राप्त करके भी जो, प्रभु सेवन करना नहीं चाहता?
ब्रह्मादि सब देवों के भी, हैं उपास्य जो चरण कमल। दिव्य गन्ध मधु मरकन्द रस, अलौकिक रूप सुकुमार स्पर्श।।
मंगलमय उन चरणों का, जो सेवन करना न चाहे। चहुँ ओर से मृत्यु से घिरा, शान्ति बस वहाँ पे ही पाये।।

इक दिन श्री देवर्षि नारद, वसुदेव के यहाँ जा पहुँचे। वसुदेव ने अभिनन्दन किया, आराम से जब वह बैठ गए।।
विधिवत् पूजा कर उनकी, पुन: उन्हें प्रणाम किया। विनम्र भाव से श्री वसुदेव, ने फिर उनको यूँ कहा।।

वसुदेव बोले,
पुत्रों के लिये संसार में, निज माता पिता का आगमन। संसार प्रपंच में उलझे हुए, दीनों हित सन्त पदार्पण।।
अति सुखकर मंगलमय हो, प्रभु आप स्वयं हैं भगवन्मय। आपका गमन आगमन तो, है सबके लिये कल्याणमय।।

देवों के चरित जीवों के लिये, कभी सुखमय कभी दु:खमय बनें। भगवत्प्रेमी हैं आप प्रभु, हैं हृदय प्राण सब भगवन्मय।।
आपका तो सारा जीवन, सब चेष्ठा है कल्याणकर। जीवमात्र का हो भला, सब कार्य हों भाव यह हृदय में धर।।

जो जन जिस भी भाव से, देवजनों का भजन करें। देवजन परछाई बन, उसी भाव में उनको मिलें।।
देवताजन तो स्वयं सभी, कर्मों के अधीन हैं। दीनबन्धु हैं सत्पुरुष, अपनाएं वह साधन हीन जो हैं।।

आपके शुभागमन और, दर्शन से हैं कृत्यकृत्य हुए। तथापि उन साधनों के, सम्बन्ध में प्रश्न हैं कर रहे।।
श्रद्धा भाव से जिनका जीव, गर श्रवण भी कर पाये। तो सभी ओर से भयप्रद इस, संसार से मुक्त वह हो जाये।।

पूर्व जन्म में हे ऋषिवर, मैंने आराधना तो थी करी। किन्तु मुक्तिदे श्री हरि को, मुक्ति चाह से आराधा नहीं।।
मैं तो पुत्र रूप में ही, उनकी प्राप्ति था चाहता। श्री हरि की लीला से ही, मुग्ध था मैं तब हो रहा।।

हे सुव्रत अब आप मुझे, उपदेश ऐसा दीजिये। जन्म मृत्यु रूपा भव भय, से जो मुझको मुक्त करे।।
इस संसार में तो दु:ख भी, सुख का रूप धरी आ जाये। विचित्र मोह का रूप धरी, बन्धन में यह बान्धे जाये।।

शुकदेव बोले,
भगवान के स्वरूप और, गुण की वह थे सुनना चाहते। इस कारण ही वसुदेव ने, नारद से यह प्रश्न किये।।
उनका यह प्रश्न सुनी नारद, तन्मय हुए भागवद् गुणों में। अति आनन्द प्रेम से भर, श्री वसुदेव से यूं बोले।।

नारद बोले,
अति सुन्दर है यह निश्चय तेरा, भागवत् धर्म सम्बन्धी है। सब विश्व का जीवन दाता यह, और यह जगत् पावनी है।।
यह भागवत धर्म ही जानो तुम, है इक ऐसी वस्तु जग में। कानों से श्रवण वाणी से कथन, और सिमरन् हो इसका चित्त से।।
हृदय से इसे स्वीकार करी, जो भी इसका पालन करे। वह तो पावन हो जाए, तत्क्षण अनुमोदन मात्र से।।
चाहे सारे जगत् का ही, या प्रभु का भी वह द्रोही हो। यह भागवत् धर्म ही शुद्धि की, सर्वश्रेष्ठ इक राह हो।।

जिनके गुण लीला नाम का, श्रवण कीर्तन सिमरन् भी। पतित पावनी है सदा, कल्याण करे पतितों का भी।।
कल्याण स्वरूप मम आराध्य, प्रभु श्रीमन्नारायण का। हे वसुदेव मुझे आपने, है स्मरन् करा दिया।।

आपने जो है प्रश्न किया, इसके ही सम्बन्ध में। सन्त जन प्राचीन इक, इतिहास हैं कहा करते।।
ऋषभ के नौ योगेश्वर सुत, महात्मन् श्री विदेह का। परस्पर है संवाद यह, जिसका है यह इतिहास बना।।

तुम जानो स्वयंभुव मनु के, प्रख्यात पुत्र थे प्रियव्रत। उनके थे अग्नीध्र पुन:, नाभि हुए अग्नीध्र पुत्र।।
नाभि के पुत्र थे श्री ऋषभ, जिन्हें शास्त्र प्रभु का अंश कहें। मोक्ष धर्म उपदेश को ही, उन्होने थे अवतार लिये।।
उनके पुन: हुए सौ पुत्र, सब ही थे वेदों में विद्वान्। सर्वज्येष्ठ श्री भरत थे, श्री हरि के प्रेमी भक्त जान।।
उन्हीं के नाम से भूमि खण्ड यह, भारत वर्ष है कहलाया। पूर्व में यह अलौकिक स्थल, अजनाभ वर्ष था कहलाता।।

राजर्षि भरत ने सब, पृथ्वी का उपभोग किया। किन्तु अन्त में छोड़ इसे, पकड़ी उन्होंने वन की राह।।
तपश्चर्या द्वारा उन्होने, उपासना वहाँ प्रभु की करी। प्रभु को फिर वह प्राप्त हुए, तीन जन्म पश्चात् ही।।

ऋषभ देव के अन्य जो, निन्यानवें कहें पुत्र थे। भारत वर्ष के चहुँ ओर, नव द्वीप जो स्थित थे।।
उनके वह अधिपति हुए, और शेष ब्राह्मण हो गये। इक्यासी पुत्र कर्मकाण्ड, के रचयिता थे हुए।।

शेष नौ जो पुत्र बचे, महाभज्ञग्यवान् वह हुए। आत्म विद्या में निपुण वह, सब के सब संन्यासी भए।।
आत्म विद्या सम्पादन में, बहुत परिश्रम उन्होने किया। दिगम्बर रहते थे प्राय:, परमार्थ का उपदेश दिया।।
नाम थे उनके कवि हरि, अन्तरिक्ष प्रबुद्ध पिप्पलायन। आविर्होत्र और द्रुमिल, चमस और थे करभाजन।।
इस कार्य कारण व्यक्त अव्यक्त, जगत् को भागवत् रूप जान। स्वच्छन्द विचरते धरती पर, आत्म से उसे अभिन्न मान।।

जहां चाहते वह चले जाते, नहीं रोक टोक कोई थी उन्हें। देवता सिद्ध गन्धर्व यक्ष, किन्नर मनुज और नागों में।।
मुनि चारण भूतनाथ, विद्याधर ब्राह्मणों आदि में। स्वच्छन्द ही विचरण वह करते, वह सब ही जीवन मुक्त थे।।

३) राजा जनक तथा नौ योगीश्वरों का संवाद

शुकदेव बोले,
एकबार विदेहराज, महात्मा श्री निमि ने। अजनाभ वर्ष में एक महान्, यज्ञ के आयोजन किये।।
महर्षियों द्वारा ही वह, यह यज्ञ थे करवा रहे। स्वच्छन्दचारी नौ योगेश्वर, उस यज्ञ में जा पहुँचे।।

थे परम प्रेमी प्रभु के वह, सूर्य समान तेजस्वी थे। उन्हें देख राजा निमि, और आवहनीय जो अग्न थे।।
ऋत्विज आदि सब ब्राह्मण भी, सम्मान सें उनके खड़े हुए। प्रभु के परम प्रेमी जानी, निमि ने आसन उन्हें दिये।।
प्रेम और आनन्द से, फिर उनकी पूजा करी। इस विधि राजा निमि ने, योगेश्वरों को सम्मान दी।।

उन नव योगेश्वरों के अंग, निज कान्ति से थे चमक रहे। साक्षात् ब्रह्मापुत्र मानो, सनकादि मुनीश्वर ज्यों हो खड़े।।
सविनय सीस झुकाकर के, राजा ने उन्हें प्रणाम किया। परम प्रेम के सहित फिर, योगेश्वरों से यह प्रश्न किाय।।

विदेह बोले,
हे भगवन् मैं आपको, प्रभु का पार्षद ही जान रहा। जग के जीवों का पावनकर, ही विचरण आपका है होता।।
अति दुर्लभ है जीवों के लिये, मानव तन को पा लेना। यदि भाग्य से यह मिल भी जाये, मृत्यु का भय है बना रहता।।
इस क्षणभंगुर जीवन में, प्रभु के प्रेमी उन भक्तों का। और सन्तों का दरस तो, इससे भी है दुर्लभ मिलता।।

हे निष्पाप महात्मा जन, हमारी जिज्ञासा शान्त करें। क्या परम हितकर जीव का, कृपया उसका स्वरूप कहें।।
उसके साधन की भी कहें, हो उसकी प्राप्ति किस विधि? आधे क्षण का सत्संग भी, जीवों के लिये है परम निधि।।

हे योगेश्वरो यदि श्रवण का, आप जानें हमें अधिकारी। भागवत धर्म उपदेश करें, आप हम पर कृपा करी।।
भगवान तो हैं सदा एक रस, जन्मादि विकारों से रहित। श्री कृष्ण प्रसन्न हो उनसे, भागवत धर्म जो हैं कथित।।
उनका पालन करने वाले, अपने शरणागत भक्तों को। अपना स्वरूप भी दान दें, भक्त वत्सल श्री हरि तो।।

नारद बोले,
भगवत्प्रेमी सन्तों से जब, राजा निमि ने प्रश्न किया। बहुत प्रेम से उन राजा का, और प्रश्न का सम्मान किया।।
ऋत्विजों और सदस्यों के, सहित थे राजा निमि बैठे। उनके प्रश्न के प्रत्युत्तर, में योगीश्वर यूं बोले।।

कवि योगेश्वर बोले,
भक्त हृदय से तनिक भी, दूर न हों अच्युत कभी। नित्य निरन्तर पूजना हो, उनके चरण कमल की ही।।
यह ही इस संसार में, परम कल्याण का है साधन। सर्वथा है भयशून्य यह, ऐसा है निश्चित मत मेरा।।
नश्वर देह गेह में जो जन, अहंता और ममता भरें। इस कारण चित्त वृत्ति जिनकी, सर्वदा ही उद्विग्न रहे।।
इन चरणों की उपासना से, उनका भय भी जाता रहे। उपासना का अनुष्ठान करी, वह सर्वभय निवृत्त भएं।।

निज मुख से भगवान ने, जो उपाय हैं बतलाये। भोले भाले अज्ञानी भी, सुगमता से उनको पायें।।
यह ही भागवत धर्म जानो, उनका ही पालन करो। इनका अवलम्बन लिये जीव, नहीं विघ्नों से कभी पीड़ित हो।।

विधि विधान बिन जाने भी, गर इस पथ का अनुसरण करे। निमीलित नेत्रों से भी गर, वह प्रभु की ओर दौड़ा करे।।
न तो मार्ग में फिसले वह, न ही राह में पतित हो। ऐसा भक्त उनका जनो, नहीं फल से कभी वंचित हो।।

भागवत धर्म अनुयायी को, विशेष कर्म का विधान नहीं। तन मन वाणी इन्द्रिय बुद्धि, या अहं की राही करे जो भी।।
इस जन्म या अनेकों ही, जन्म का जो स्वभाव बने। उस स्वभाव से विवश हो, जो भी कर्म वह जग में करे।।
वह सब ही हैं हरि के लिये, श्री नारायण के अर्पित्त हों। इसी भाव से अर्पित्त करे उन्हें, सरलतम भागवत धर्म यह हो।।

ईश्वर विमुख है जीव जो, प्रभु की माया से मोहित। सच्चा स्वरूप भूला अपना, स्वरूप से है हुआ वह च्युत।।
मैं देव हूँ मनुज हूँ इस भ्रम में, ही वह खोया है रहता। देहादि में करे अभिन्वेष, जरा मृत्यु रोग भयभीत सदा।।
निज गुरु को ही आराध्य मान, परम प्रियतम उसे जान ले। भक्ति द्वारा श्री प्रभु का ही, उसे भजन करना चाहिये।।

यदि सच पूछो तो कहें तुम्हें, नहीं परमात्म से भिन्न कुछ भी। किन्तु न होकर भी उनकी, प्रतीति भासे सत्य ही।।
इसका चिन्तन करने से ही, इसमें यह मन लगने से ही। न होकर के भी यह सब, सत्य सी है भासती।।
ज्यों द्रष्टा की इक वृत्ति ही, सम्पूर्ण स्वप्न को रची आये। नाना भान्ति के मनोरथ वह, जाग्रत या कल्पना में रचे।।
जीव का यह मन ही तो, संकल्प विकल्प में पड़ा रहे। विचारवान् को चाहिये, इस मन को ही रोक ले।।
इस मन को बन्दी करते ही, अभय पद वह पायेगा। सब भय से वह मुक्त हो, परमात्म को पा जायेगा।।

प्रभु के जन्म और कर्म की, प्राख्यात अनेकों लीलायें। मंगलमय उन लीलाओं का, सदा श्रवण करना चाहिये।।
भगवान के बहुत से नाम भी, याद दिलायें उन सबकी। उनका गान ही करो सदा, संकोच लाज सब छोड़ कर।।
किसी भी व्यक्ति वस्तु या, किसी स्थान में न आसक्ति हो। उनके गुण नाम का गान करी, सर्वत्र ही तुम विचरण करो।।

विशुद्ध व्रत का इस विधि, जो नियम धारण करे। प्रियतम के नाम संकीर्तन से, प्रेम अंकुर वहाँ उपजे।।
द्रवीभूत हुआ चित्त उसका, साधारण जीवों से हो भिन्न। लौकिक मान्यता धारणा से, ऐसा जीव रहे परिछिन्न।।
दम्भ के कारण नहीं नहीं, हो मतवाला स्वभाव से। कभी उन्मुक्त हास्य हो वा, कभी फूट फूट के रोने लगे।।
कभी उच्च स्वरों में वह, श्री हरि को पुकारा करे। मधुर स्वर कभी कण्ठ भरी, वह उनका गुणगान करे।।
निज प्रियतम का कभी कभी, नयनों सम्मुख वह दरस करे। कभी रिझाने को उनको, नृत्य ही वह करने लगे।।

आकाश वायु अग्नि और जल, पृथ्वी नक्षत्र ग्रह प्राणी। दिशायें वृक्ष नदी सागर, और जो है सब वनस्पति।।
यह सभी प्रभु के शरीर हैं, सब रूपों में वह प्रकटे स्वयं। यह जान करी वह भक्त तो, करता है सबको ही नमन।।
जो भी सामने आ जाये, प्राणी हो या अप्राणी हो। अनन्य भाव से भक्त को तो, प्रभु का ही वहाँ दर्शन हो।।

ज्यों भुभुक्षु भोजन का, एक ग्रास जब ग्रहण करे। तुष्टि पुष्टि क्षुधा निवृत्ति, एक साथ ही सब होए।।
त्यों ही भगवत्शरण में जा, श्री हरि का भजन करने लगे। हर क्षण में उसे भगवत्प्रेम, निज प्रेमास्पद अनुभूति मिले।।
उनके अतिरिक्त सभी अन्य, वस्तु में उसे वैराग्य हो। इन तीनों की प्राप्ति ही, उस भक्त को इक साथ हो।।

इस विधि जो हर क्षण ही, अपनी प्रत्येक वृत्ति द्वारा। श्री हरि के ही चरण कमल, की उपासना है करता।।
प्रभु के प्रति प्रेमा भक्ति, संसार से उसे वैराग्य हो। निज प्रियतम के स्वरूप की, स्फूर्ति निश्चित प्राप्त हो।।

वह भक्त इस भाँति से, भागवत आप हो जाता है। इन सबके मिल जाने से, वह परम शान्ति पाता है।।

परीक्षित बोले,
कृपा करी योगेश्वर अब, लक्षण कहें भगवद्भक्त का। कैसा उसका स्वभाव हो, और हो उसका धर्म क्या?
जीवों के संग व्यवहार में, है आचरण उसका कैसा? है कथन वदन उसका कैसा, किस कारण प्रभु को वह प्यारा?

हरि योगेश्वर बोले,
सब जीवों में आत्म बन, नियन्ता रूप से स्थित हैं प्रभु। न्यून अधिक न देख कहीं, जो सबमें ही देखे विभु।।
आधेय या अध्यस्त रूप, हैं प्रभु ही सबमें स्थित देखे। इस विधि सारे जगत् का, परिपूर्ण जो अनुभव ले।।
ऐसी सिद्ध दृष्टि का पुरुष, है उत्तम प्रभु प्रेमी तू जान। उसको ही हे राजन्, परम प्रेमी भागवत तू मान।।

श्री हरि से जो प्रेम करे, उनके भक्तों से हो मैत्री। अज्ञानी और दु:खी जन पर, रहे जिसकी सदा कृपा दृष्टि।।
भगवान के द्वेषी जन की वह, सदा उपेक्षा किया करे। उसको ही हे राजन् तू, मध्यम् भागवत जान ले।।

प्रभु के श्री विग्रह की तो, जो पूजा श्रद्धा से करे। पर प्रभु भक्त या अन्यों की, सेवा शुश्रुषा वह नहीं करें।।
साधारण श्रेणी का ही उसे, भागवद भक्त तुम जान लो। हे राजन् भक्तों के भी, त्रै भान्ति यह भेद हों।।

जो अपनी सब इन्द्रियों से, विषय ग्रहण तो करता ह। इच्छा प्रतिकूल भी जो मिले, नहीं द्वेष वह उससे करता है।।
न ही अनुकूल के मिलन से, वह हर्षित कभी हो जाये। है मेरे प्रभु की सब माया, इस दृष्टि से देखे जाये।।
परम उत्तम वही भागवत है, हे राजन् तुम जान लो। उसको तो हर रूप में ही, अपने प्रभु का दर्शन हो।।

जन्म मृत्यु भूख प्यास, श्रम कष्ट भय और तृष्णा। यह तन प्राण इन्द्रिय मन, बुद्धि पायें यह धर्म क्रमश:।।
श्री हरि की स्मृति में ही, जो जन इतना तन्मय रहे। बार बार मिलने पर भी, जो इनसे मोहित नहीं भए।।
उसको ही हे राजन् तू, उत्तमतम भागवत है जान। जिसके मन कर्म भोगेच्छा, विषय प्रवृत्ति हो अभाव नितान्त।।
उनके वासना बीज भी, जहाँ उदय न हो सकें। हैं वासुदेव में ही वह बसें, उत्तमतम वही भक्त हैं रे।।

सत्कुल में जन्म तप आदि का, जिसको नहीं गुमान है। कर्म वर्ण आरम जाति, में नहीं अहं का भाव है।।
निश्चित ही वह प्रेमी प्रभु का, उत्तम प्रेम वह प्राप्त करे। वही उत्तमतम है प्रभु भक्त, हे राजन् तू यह जान ले।।

धन सम्पद् या इस तन में नहीं, जिसे अपना पराया भाव रहे। भेद दृष्टि से रहित हो जो, सबमें ही प्रभु दर्शन वह करे।।
समत्व भाव में रहे सदा, विक्षेप नहीं की मन में उठे। प्रभु का उत्तम भक्त वह, आन्तर में सदा शान्त रहे।।

महादेवगण और ऋषि मुनि, जिनको निज आन्तर में खोजें। भगवान के उन चरणारविन्द से, इक क्षण जो न विमुख भए।।
निरन्तर उनकी सन्निधि और, सेवा में जो संलग्न रहे। त्रिभुवन की राज्यलक्ष्मी पा, स्मृति का तन्तु न तोड़े।।
उस राज्यलक्ष्मी और वह, क्षणभर भी दृष्टि नहीं करे। भक्त वैष्णवों में वह ही, अग्रगण्य है जान ले।।

रासलीला में नृत्य से, विभिन्न पाद विन्यास किया। निखिल सौन्दर्य माधुर्य निधि, प्रभु की चरण नख मणि द्वारा।।
जिन भक्तों के हृदय का, विरह ताप है दूर हुआ। उनके हृदय को ताप वह, कैसे पुन: है छू सकता?

ज्यों चन्द्र उदय हो जाने पर, सूर्य का ताप न छू सके। इसी भान्ति कोई दु:ख भी, विचलित उन्हें न कर सके।।

विवशता से भी गर कोई, उनके नाम का गान करे। उसके सम्पूर्ण पापों को, प्रभु स्वत: ही नाश करें।।
जिसने श्री हरि के चरण हैं, प्रेम की रज्जू से बान्धे। श्री हरि चरण उसका हृदय, नहीं इक क्षण को भी त्यज सकते।।
ऐसी भक्त ही वास्तव में, प्रभु भक्तों में महान् है। उसका तो प्रभु भक्तों में, सबसे ही ऊंचा स्थान है।।

राजा जनक बोले,
परम कारण प्रभु विष्णु की, माया है अति मोहिनी। बड़े बड़े मायावियों को, है मोहित वह कर लेती।।
पहचान उसे कोई नहीं सके, मैं उसे जानना चाहता हूँ। कृपा करी बतलायें आप, स्वरूप जानना चाहता हूँ।।

मृत्यु का ग्रास बना हूँ मैं, साधारण सा इक जीव हूँ। विभिन्न ताप संसार के, सन्तप्त हुआ मैं जीव हूँ।।
भगवत्कथा रूपा अमृत, का पान जो आप हैं करा रहे। सब तापों की इक औषधि, इस कथा को ही बता रहे।।
इस कारण आपकी वाणी का, सेवन नहीं तृप्त मुझे करता। कृपया अब और भी कहें आप, सुनकर जी मेरा नहीं भरता।।

अन्तरिक्ष योगेश्वर बोले,
जिस शक्ति से परमात्म वह, सब भूतों का कारण बनें। वह आदि पुरुष ही विषय भोग, या मोक्ष का उनको साधन दें।।
निज भक्तों की सिद्धि अर्थ, स्वनिर्मित पंचभूतों द्वारा। देव मनुज पशु आदि, तन की सृष्टि वह करें सदा।।
उनकी उस शक्ति को ही, कहते हैं माया राजन्। अनिर्वचनीय उस शक्ति का, स्वयं करें कार्य निरूपण।।

पंचभूतों द्वारा निर्मित, इन प्राणी शरीरों में। उन्होंने स्वयं प्रवेश किया, अन्तर्यामी रूप में।।
पहले अपने को इक मन, फिर पंच ज्ञानेद्रियों में बांटा। फिर स्वयं ही पंच कर्मेन्द्रियों, का उन्होंने रूप धरा।।
इन दस रूपों में विभक्त हो, उन्हीं द्वारा भोग कराने लगे। विषयों के उपभोग में, यही दसों तो साथ दें।।

अन्तर्यामी के द्वारा ही, इन्द्रियां यह सब प्रकाशित हों। इनके द्वारा संसार के सब, विषयों का फिर उपभोग हो।।
पंचभूत द्वारा निर्मित, तन को ही माने अपना आप। आसक्त उसी में हो जाये, माया का यह स्वरूप जान।।

कर्मेन्द्रियों के द्वारा फिर, सकाम कर्म वह करता है। शुभ कर्म का फल वह सुख पाये, अशुभ फल दु:ख वह पाता है।।
निज को तन धारी ही मानी, इस जग में भटकने लगता है। यह ही राजन् तू जान ले, भगवान की अद्भुत माया है।।

इस भाँति अनेकों ही, योनियों को वह प्राप्त हो। अमंगल कर अनेकों ही, कर्मफल उसे प्राप्त हों।।
विवश ही वह जन्म मृत्यु, पुन: मृत्यु जन्म में पड़ा रहे। महाभूतों के प्रलय तक ही, निरन्तर चक्र यह चलता रहे।।
अनादि और अनन्त काल, प्रलय के आ जाने तक। स्थूल और सूक्ष्म द्रव्यों को, खेंचे अव्यक्त की ओर तब।।

पृथ्वी पर निरन्तर तब, सौ वर्ष तक सूखा रहे। नहीं कहीं पर जल बरसे, वर्षा का नहीं नाम रहे।।
प्रलय काल में सूर्य की, ऊष्णता और भी तीव्र भए। त्रिलोकी को वह तपाने लगे, इसी को प्रभु की माया कहें।।

संकर्षण के मुख से तब, प्रचण्ड अग्नि निकला रे। वायु से प्रेरित होकर के, पाताल से निकलें तब लपटें।।
ऊंची ऊंची उठकर के, चहुँ ओर वह फैलायें। तत्पश्चात् प्रलयकालीन, संवर्तक मेघ भी आ जायें।।

हाथी की सूण्ड सम मोटी धारा, सौ वर्ष तक बरसाये। माया वशीभूत हुआ ब्रह्माण्ड, उसमें ही डूब जाये।।

ज्यों बिन गन्ध को भी, वायु यह हर लेती है। निज कारण जल में पृथ्वी, जा पुन: लीन हो जाती है।।
वह ही वायु जल के भी, रस का जब शोषण करे। वह ही जल अपना कारण, अग्नि रूप ही जाय बने।।

अन्धकार फिर अग्नि का, रूप जब हर लेता है। तब वह अग्नि वायु में, जा विलीन हो जाता है।।
आकाश जब वायु की, स्पर्श शक्ति को छीन ले। वह वायु जा आकाश में, ही जानो फिर लीन भए।।

काल रूप ईश्वर स्वयं, आकाश का गुण शब्द हरे। तामस अहंकार में, आकाश जा फिर लीन भये।।
इन्द्रियां और बुद्धि फिर, राजस में जा लीन हों। सात्विक अहं से जन्मे देव, संग मन का वहीं प्रवेश हो।।

अपने तीनों कार्यों को लेकर, अहं महत्तत्त्व में लीन हों। महत्तत्त्व प्रकृति में और प्रकृति, पुन: ब्रह्म में लीन हों।।
फिर इससे उल्टे क्रम से, सृष्टि की उत्पत्ति हो। यह सब राजन् जान लो, श्री हरि की ही माया हो।।

सृष्टि स्थिति और संहार, यह त्रैगुणी माया ही करे। इसके वर्णन आपसे, हे राजन् हैं कर दिये।।
और क्या सुनना चाहें आप, अब उसकी ही बात करें। जिज्ञासा आपके मन में जो, उसे आप अब प्रकट करें।।

राजा बोले,
हे महर्षि जिसका मन ही, उसके वश में है नहीं हुआ। प्रभु की इस दुस्तर माया का, है पार वह कैसे पा सकता?
अब कृपा कर के देववर, आप ही हमें यह बतलायें। जिनकी बुद्धि मोटी है, जो तन को ही आत्म मानें।।
वह भी अनायास ही, पार इसे कैसे करें? उनके कल्याण के हेतु प्रभु, आप ही अब कोई राह कहें।।

प्रबुद्ध योगेश्वर बोले,
नर नारी के सम्बन्ध के, बन्धनों में है बन्धा जीव। सुख प्राप्ति दु:ख निवृत्ति को, महाकर्मों में है लगा जीव।।
जो जीव इस माया से, पार उतरना हैं चाहें। ध्यान यह करना चाहिये, फल तो विपरीत ही वह पायें।।
सुख के बदले दु:ख मिले, दु:ख निवृत्ति न हो पाये। जिस दु:ख से मुक्ति चाहें, वह दिन दिन बढ़ता जाये।।

इक धन की उपमा ही लो, दिन प्रतिदिन दु:ख बढ़ता जाये। प्राप्ति ही महाकठिन है, कहीं भाग्य से गर वह मिल जाये।।
आत्म के लिये तो जानो यह, धन मृत्यु स्वरूप ही हे। जो इसमें उलझ जाये, उसे अपना आप हो विस्मृत है।।
इसी विधि घर और पुत्र, स्वजन सम्बन्धी और पशु धन। यह सब नश्वर अनित्य ही हैं, संसार में हैं जो भी साधन।।
यदि भाग्यवश इन सबको, कोई जुटा भी कभी पाये। तो भी कहो सुख शान्ति क्या, इनके राही कोई पाये?

जो इस दुस्तर माया का, पार कभी पाना चाहे। मृत्यु पश्चात् जो लोक मिलें, उन्हें भी नश्वर वह जाने।।
इस लोक की वस्तु के समान, सीमित है उनका काल भी। वहाँ भी जो उपभोग मिलें, हों कर्म फल अनुसार ही।।
पृथ्वी के छोटे राजा, ज्यों आपस में होड़ करें। अपने से श्रेष्ठ ऐश्वर्य सुख, वालों से ईर्ष्या द्वेष करें।।
न्यून ही जिनका सुख दीखे, घृणा भाव वहाँ पे रहे। फिर कर्मफल जब पूर्ण हों, वहाँ से निश्चित पतन होए।।
नाश वहाँ भी निश्चित है, इस भय से न वह छूट सकें। जितना काल भी वहाँ रहें, इस भय से ही वे ग्रसित रहें।।

निज कल्याण जो चाहे जीव, वह गुरु की जा के शरण रहे। विद्वान गुरु शब्द ब्रह्म, वेदों का पारदर्शी रहे।।
परं ब्रह्म को वह जाने, तत्त्व का द्रष्टा वह हो। शब्द ज्ञान समझा वह सके, अनुभव का पुट भी उसमें हो।।
चित्त शान्त ही हो उसका, व्यवहार प्रपंच में नहीं फंसे। ऐसे सन्त ही जान ले, वास्तव में गुरु हो सकें।।

गुरु को ही अपना प्रियतम, आत्म और इष्ट माने। निष्कपट भाव से जिज्ञासु, उनकी ही सेवा करे।।
उनके पास ही रहकर वह, भागवत धर्मों को जाने। भक्ति भाव के साधनों की, शिक्षा उनसे ग्रहण करे।।
इन्हीं साधनों से सार्वत्म, प्रभु प्रसन्न हैं हो जाते। भक्त को निज स्वरूप ही, दान में हैं वह दे देते।।

पहले निज तन सन्तान आदि, में मन अनासक्त करे। फिर प्रभु के ही भक्तों में, अपनी प्रीति करना सीखे।।
जीवों के प्रति यथायोग्य दया, मैत्री और विनय रखे। निष्कपट भाव से इन सबकी, शिक्षा वह साधक ग्रहण करे।।

पावनता बाह्य शरीर की, आन्तर की भी शुद्धि हो। छल कपट का त्याग हो, निज धर्म का अनुष्ठान हो।।
सहनशीलता और मौन, स्वाध्याय और ब्रह्मचर्य हो। शीतोष्णादि में हो समत्व, आर्जवता संग हो।।

नियन्ता और चैतन्य स्वरूप, सर्वत्र प्रभु का दरस करे। हो अनिकेत एकान्त सेवी, जो भी मिले सन्तुष्ट रहे।।
गृहस्थ हो तो पावन शुद्ध, वस्त्र ही पहना करे। हो त्यागी तो जीर्ण शीर्ण, वस्त्रों में भी सन्तुष्ट रहे।।

प्रभु प्राप्ति का साधन जो कहें, उन शास्त्रों में श्रद्धा हो। अन्य भी किसी शास्त्र की, किसी विधि न निन्दा हो।।
प्राणायाम द्वारा मन का, वाणी का संयम मौन से हो। वासना रहित ही होकर के, सारे कर्मों का संयम हो।।
वाणी सत्य ही कहे सदा, इन्द्रियां निज गोलकों में ही रहें। मन चंचल हो न भागे, मौन स्थिर ही सदा रहे।।

अद्भुत हैं प्रभु की लीलायें, हैं दिव्य उनके जन्म कर्म और गुण। जिज्ञासु को चहिये बस, उनका श्रवण मनन कीर्तन।।
यज्ञ दान तप और जप, सदाचार का पालन हो। तन की जो भी चेष्टा हो, श्री हरि के ही अर्पित हो।।
दारा सुत घर निज जीवन, प्राणा जो निज को प्रिय लगें। सब प्रभु के ही समर्पित्त हों, चरणों में निवेदन उन्हें करें।।

जिन सन्तों ने श्री हरि को, अपने में साक्षात् किया। अपने स्वामी के रूप में, अपने में ही उनको देखा।।
उनके प्रति हो प्रेम भाव, स्थावर जंगम की सेवा हो। उनमें भी विशेषतया, मनुष्य तन धारी हैं जो।।
मनुष्यों में भी परोपकारी, जन की सदा सेवा करे। भगवत्प्रेमी सन्तों में सदा, सेवा भाव ही बना रहे।।

भगवान के पावन यश का ही, परस्पर वार्तालाप हो। साधकों का इक दूजे प्रति, प्रेम का ही बस भाव हो।।
सन्तुष्ट रहें आपस में वह, और प्रपंच से रहित हों। आध्यात्मिक शान्ति का उन्हें, हर क्षण नित्य ही अनुभव हो।।

श्री कृष्ण कोटिश: पापों को, इक क्षण में ही भस्म करें। भक्त तो याद करें उनको, दूजों से भी करवायें।।
साधन भक्ति का इस विधि, अनुष्ठान करते करते। प्रेम भक्ति का उस भक्त के, हृदय में जागृत हो जायें।।
प्रेम के आवेग से तन, उसका पुलकित हो जाये। भक्त तो अपने प्रियतम के, भाव में ही नित्य खोया रहे।।

कभी तो उसको यह चिन्ता, अनायास ही घेर ले। क्या करूँ मैं कहां जाऊँ, नहीं मेरे प्रभु अभी मुझे दिखे।।
कौन मिलायेगा उनसे, यह सोच सोच वह रोने लगे। फिर कभी भगवान की ही, लीला स्फूर्ति को वह देखे।।

गोपियों के डर से छिपे, ऐश्वर्य रूप प्रभु जब देखे। उनकी लीला यह देख कर, उन्मुक्त हास्य से वह खिले।।
कभी उनके दर्शन प्रेम की, अनुभूति से हो आनन्द मग्न। बातें वह उनसे करने लगे। जान के उनको अपने संग।।
उनके गुणों का गान करे, कभी नृत्य कर के रिझाये उन्हें। कभी अपने निकट न देख उन्हें, इधर उधर उनको ढूंढे।।
उनसे एकत्व ही पाकर वह, कभी उनकी सन्निधि में रहे। परम शान्ति का अनुभव पा, कभी वह मौन ही हो जाये।।

जो इस विधि भागवत धर्मों की, शिक्षा राजन् ग्रहण करें। उनके द्वारा ही प्रेमा भक्ति, को जीव जो प्राप्त करें।।
श्री हरि के परायण होकर वह, अनायास ही माया को तरें। अन्यथा इसकी पकड़ से, निकलना है अति दुस्तर हे।।

राजा बोले,
हे ऋषिवर परमात्म का, स्वरूप आप तो जाने हैं। सर्वश्रेष्ठ हैं ऋषि आप, नारायण को पहचाने हैं।।
कृपा करी के आप मुझे, उनके स्वरूप की आज कहें। आपकी ही करुणा गर हो, तो ही हम उनको जान सकें।।

पिप्पलाद योगेश्वर बोले,
इस जग की उत्पत्ति स्थिति, और प्रलय का कारण जो। उपादान और निमित्त, यह दोनों ही कारण हों।।
किन्तु हैं स्वयं कारण रहित, रहें साक्षी रूप में विद्यमान। जाग्रत स्वप्न सुषुप्ति इन, त्रै का ही साक्षी उनको जान।।
समाधि अवस्था में भी वह, एक रस ही सदा रहें। उनकी सत्ता से ही सारा, जग है सत्तावान् भये।।
तन इन्द्रिय प्राण और अन्त:करण, उनसे ही सत्ता पायें। निज कार्यों में समर्थ वह हों, नारायण ही उन्हें जान ले।।

ज्यों चिंगारी अग्नि को, प्रकाशित कभी न कर सके। ज्यों आत्म स्वरूप में, कभी मन की गति न हो सके।।
न वाणी की है गति वहाँ, न नेत्र ही उनको देख सकें। हैं बुद्धि से अचिन्त्य वह, प्राणेन्द्रियां पास न पहुंच सकें।।
नेति नेति कहकर ही, श्रुतियां भी मौन हो जाती हैं। वर्णन न उनका कर सें, निषेध ही वह किये जाती हैं।।
इस विधि ही निषेध का, मूल वह दर्शाती हैं। आत्म सत्ता में ही तो, निषेध भी यह हो पताी है।।
बिन इस आत्म सत्ता के, निषेध कोई कैसे कर सके? किसमें हो यह निषेध वृत्ति, नहीं इसका उत्तर कहीं मिले।।

सृष्टि से पूर्व इक वह ही था, सृष्टि के निरूपण के लिये। त्रैगुणी प्रकृति कहकर, उसीके वर्णन किये गए।।
ज्ञान प्रधान कहें महत्तत्त्व, क्रिया प्रधान सूत्रात्मा। जीव उपाधि धारक वह, अहं रूप वर्णित किया।।
वास्तव में जहाँ जो भी, जितनी भी हैं शक्तियाँ। हैं सब वह तो ब्रह्म ही, अनन्त हैं उनकी शक्तियाँ।।
दृश्य अदृश्य कार्य कारण, सत्य असत्य सब ब्रह्म ही है। कहाँ तक वर्णन उसका करूँ, जो उससे परे वह ब्रह्म ही है।।

न तो आत्म जन्मे कभी, न इसका कभी मरण हो। न ही यह कभी न्यून हो, न ही कभी वर्धित यह हो।।
परिवर्तनशील हैं जितने भी, इस जग में पदार्थ जो। भूत भविष्य वर्तमान, सबकी सत्ता का साक्षी जो।।
देश काल वस्तु से अलग, वह इनसे कभी न हो आवृत्त। विनाशवान् सब सृष्टि में, इक वही तो है अविनाशी तत्त्व।।
उपलब्धि का वह विषय नहीं, केवल उपलब्धि स्वरूप है। उपलब्धि कर्ता भी वह नहीं, बस केवल ज्ञान स्वरूप हे।।
ज्यों प्राण तो सदा ही एक हैं, अनेकों नाम ही वह धरें। स्थान भेद के कारण ही, उसके अनेकों नाम पड़ें।।
त्यों ही ज्ञान तो एक ही है, इन्द्रियों से जब संयोग हो। उस एक ज्ञान में ही जानो, अनेकता की तब कल्पना हो।।

इस जग में चहुँ प्रकार के, जीव हैं कहे गये। अण्डज जो अण्ड से पैदा हों, पक्षी सर्प आदि भए।।
नाल से बन्धे जो हों पैदा, जरायुज पशु और मनुज कहें। उद्भिज्ज वृक्ष और वनस्पति, धरती को चीर के ही निकलें।।
कुछ अन्य जीव तो स्वेद सों, ही उत्पन्न हों जान ले। किन्तु इन सभी शरीरों में, प्राण शक्ति तो एक रहे।।
सुषुप्ति अवस्था में जानो, इन्द्रियां निश्चेष्ठ ही हो जायें। अहंकार तब लीन हो, लिंग शरीर भी नहीं रहे।।
कूटस्थ आत्मा गर न हो, तो यह स्मृति भी किसे रहे? अति सुख से मैं सोया था, यह बात भी फिर कौन कहै?
यह याद ही तो प्रमाण है, आत्मा के अस्तित्व का। तन की हर अवस्था में, वह साक्षी तो है सदा रहता।।

श्री कमलनाभ के चरणों में, जब तीव्रतम भक्ति भए। वह भक्ति ही अग्न बनी, चित्त का सब मल दग्ध करे।।
चित्त शुद्ध हो जाने पर, आत्म तत्त्व हो साक्षात्। ज्यों सूर्य की हो अनुभूति, जब दूर हों नेत्र के विकार।।

राजा बोले,
हे योगीश्वरों आप हमें, कर्मयोग उपदेश दें। हो जिसके द्वारा शुद्ध जीव, नैष्कर्म को प्राप्त करें।।
कतृर्त्वभाव कर्म और, कर्मफल जो निवृत्त करे। ऐसे परम ज्ञान को, जीव कैसे प्राप्त करे?

यही प्रश्न इक बार प्रभु, निज पिता के सामने था पूछा। ब्रहमा के मानस पुत्रों, सनकादि से था प्रश्न किया।।
सर्वज्ञ होकर भी उन्होने, मम प्रश्न का उत्तर नहीं दिया। कृपा करी मुझको कहें, किस कारण उन्होने मौन धरा?

आविर्होत्र योगेश्वर बोले,
कर्म अकर्म और विकर्म, बस केवल वेद ही जान सकें। लौकिक रीति से न कोई, व्यवस्था इनकी कर सके।।
वेद हैं जानो ईश्वर रूप, तात्पर्य को उनका जान से? बड़े बड़े विद्वान भी, अभिप्राय न उनका समझ सकें।।
इस कारण अनाधिकारी जान, उन्होने तुम्हें उत्तर नहीं दिया। बचपन तुम्हारा देखकर, मौन ही उन उचित समझा।।

परोक्षवादात्मक वेद हैं, कर्म निवृत्ति आशय इनका। किन्तु यह कर्म विधान ही, प्रत्यक्ष रूप में है करता।।
ज्यों मिष्ठान्न के लोभ में, बालक को औषध दी जाये। त्यों स्वर्गादि के प्रलोभन हैं, केवल अज्ञानी के ही लिये।।
उनके लोभ में आकर जीव, श्रेष्ठ कर्म में प्रवृत्त हो। किन्तु वास्तविक प्रयोजन तो, सब कर्मों की ही निवृत्ति हो।।

अज्ञान नहीं निवृत्त हुआ, इन्द्रियाँ भी जिसकी वश में नहीं। अपनी मनमानी से जो, त्यागे वेदोक्त कर्म को भी।।
वेद विहित कर्मों को त्यजी, विकर्म रूप अधर्म करे। इस कारण मृत्यु पश्चात्, पुन: मृत्यु को ही प्राप्त होए।।

वेदोक्त कर्म का जो जीव, अनुष्ठान सदा ही करता है। फल की कामना छोड़ सभी, प्रभु चरण में कर्म जो धरता है।।
कर्म निवृत्ति के रूप में, प्राप्त हो जो ज्ञान सिद्धि। ऐसे कर्मयोगी को, सहज में ही है मिल जाती।।
स्वर्गादि रूपा फल का, जो वर्णन है वेदों में किया। उन सबका तात्पर्य तो, नहीं है फल की सत्यता।।
कर्मों में रुचि तो उत्पन्न हो, साधक कर्म करे तो सही। इसी उद्देश्य को लेकर के, यह सब बातें हैं कहीं गईं।।

जो शीघ्र से भी अति शीघ्र, हृदय ग्रन्थी भेदन चाहे। मैं और मम की कल्पित यह, गांठ खोलना जो चाहे।।
वैदिक और तान्त्रिक दोनों ही, पद्धतियों का आश्रय ले। श्री हरि का उस साधक को, आराधना करना चाहिए।।

पहले सेवा आदि करके, गुरु से दीक्षा प्राप्त करे। फिर उनके श्री चरणों में, विधिवत् अनुष्ठान रीति सीखे।।
प्रभु का जो भी रूप निज, प्रिय इष्ट उसे जान पड़े। उसी के द्वारा पुरुषोत्तम, भगवान की वह पूजा करे।।

स्नान आदि से इस तन को, सन्तोष से अन्त:करण मांजे। तत्पश्चात् प्रभु विग्रह के, सामने जाकर वह बैठे।।
प्राणायाम आदि द्वारा, फिर नाड़ी शोधन करे। तत्पश्चात् विधि पूर्वक, मन्त्रादि का आश्रय ले।।
देवों का फिर न्यास करी, अंगों की रक्षा करे। उसके बाद भगवान की, साधक फिर पूजा करे।।

पुष्पादि पदार्थों से, जन्तु पहले निकाल ले। पृथ्वी का जल आदि से, भली भाँति मार्जन करे।।
पूर्व की सामग्री, प्रभु के विग्रह से धो दे। पूजा योग्य बना के उसे, आसन पर फिर बिठलाये।।
मन्त्रोच्चारण करके फिर, जल आदि वहाँ छिड़के। पाद्य अर्ध्य आदि पात्रों, को पुन: स्थापित करे।।
एकाग्र चित्त हो तदनन्तर, हृदय में प्रभु का ध्यान धरे। सामने के श्री विग्रह में, फिर उनका चिन्तन करे।।
उचित मन्त्रों से पुन:, हृदादि अंगों का न्यास करे। इष्ट देव का मूल मन्त्र, द्वारा फिर पूजन करे।।
देश काल अनुकूल ही, जो भी पूजन सामग्री मिले। पूजा सामग्री से प्रभु को, श्री विग्रह या हिय में पूजे।।

अपने अपने उपास्य के, विग्रह के हृदयादि अंग। आयुधादि उपांग और पार्षदों सहित वा मूल मन्त्र।।
इन सबके द्वारा पाद्य अर्ध्य, आचमन और मधुपर्क दे। स्नान वस्त्र आभूषण और, गन्ध पुष्प दधि आदि दे।।
अक्षत से तिलक और माला, धूप दीप नैवेद्य से। अपने इष्ट की प्रेम सहित, विधिवत् वह पूजा करे।।
स्तोत्रों द्वारा स्तुति करी, फिर करे प्रभु को नमस्कार। वन्दन करे वह श्री हरि का, फिर भक्त सह परिवार।।

भगवन्मय अपने को जानी, प्रभु विग्रह का पूजन करे। निर्माल्य को अपने सीस धरी, यथा स्थान प्रभु स्थापित करे।।
अपने हृदय में ही पुन:, प्रभु को प्रतिष्ठित वह करे। इस विधि उपासक वह, अपनी पूजा सम्पन्न करे।।

अग्नि, सूर्य जल आदि में, अतिथि और निज हृदय में। आत्म रूप भगवान की, जो इस विधि पूजा करे।।
निश्चय जानो वह शीघ्र ही, सब बन्धन से मुक्त हो। सांसर में रहता हुआ भी वह, प्रभु के ही भाव से युक्त हो।।

राजा बोले,
परम स्वतंत्र भगवान रहें, सदा ही भक्तों के वश में। भक्ति के वशीभूत हो वह, अवतार अनेकों ही धरें।।
अनेकों हो लीलायें उनकी, कृपा करी वर्णन करें। जो हो चुकीं होंगी भी जो उनकी कहें।।

द्रुमिल योगेश्वर बोले,
अनन्त हैं श्री हरि राजन्, उनके गुण भी अनन्त हैं। गणना जो मूढ़ करना चाहें, बालवत् वे अज्ञ हैं।।
पृथ्वी के धूलि कणों को तो, सम्भव है कोई गिन भी ले। सब शक्तिन् का आधार प्रभु, उनका कोई पार न पा सके।।

पंचमहाभूतों की उन्होने, अपने में ही सृष्टि करी। यह सृष्टि जो है हुई, है उनके अपने आप से ही।।
इनके द्वारा विराट तनु, ब्रह्माण्ड का वह निर्माण करें। अन्तर्यामी रूप से वह, फिर उसमें प्रवेश करें।।
उन आदि देव नारायण को, पुरुष नाम से पुकार लें। यह प्रथम अवतार है, उन नारायण का जान ले।।

विराट् ब्रह्माण्ड रूप तन में, उनके हैं तीनों लोक स्थित। उन्हीं की इन्द्रियों से हैं बनीं, जीवों की ज्ञान कर्मेन्द्रियां सब।।
उनके स्वरूप से स्वत: सिद्ध, ज्ञान का संचार हो। उनके श्वास प्रश्वास से ही, सम्पूर्ण बल संचार हो।।
इन्द्रियों में ओज और कर्म की, शक्ति वहीं से प्राप्त हो। जग की सृष्टि स्थिति प्रलय, उनके ही गुणों का काज हो।।
इस विराट् तन के धारी, आदि कर्ता नारायण हैं। वह स्वयं ही तो सब सृष्टि के, जान लो राजन् उद्गम हैं।।

जगत्पोत्पत्ति के हेतु, रजोगुण से जन्मे ब्रह्मा प्रथम। फिर संसार स्थिति हेतु, सत्व अंश किया धारण।।
धर्म और ब्राह्मण रक्षक वह, यज्ञपति श्री विष्णु बने। अपने ही तमोगुणी अंश से, संहारक फिर वह रुद्र बने।।
इस भाँति उन्हीं में ही, निरन्तर क्रम यह चलता रहे। प्रजा उत्पत्ति स्थिति और, संहार स्वत: होता रहे।।

दक्ष प्रजापति की इक, कन्या का नाम था मूर्ति। वह मूर्ति ही धर्म की, तुम जानो थीं बनी पत्नी।।
उनके गर्भ से श्री हरि ने, ऋषिश्रेष्ठ ही बन करके। नर नारायण के रूप में, अवतार थे धारण किये।।

जो धर्म आत्म तत्त्व का, साक्षात्कार ही करवा दे। भगवद् आराधन रूप उस, कर्म के थे उपदेश दिये।।
समस्त कर्म बन्धन काटी, नैष्कर्म स्थिति यह दे। स्वयं भी इस ही धर्म के, उन्होने हैं अनुष्ठान किये।।
उनके श्री चरण कमल तो, महा ऋषि मुनि सदा सेवें। वहीं कर्म आचरण करते हुए, बद्रिकाश्रम में विराज रहे।।

उनके तप को देख कर, इन्द्र के मन संशय यह उठे। निज घोर तपस्या द्वारा यह, मेरा धाम छीनना हैं चाहते।।
तप में विघ्न उपस्थित कर, इन्द्र ने कामदेव भेजे। निज दल बल स्त्री वसन्त, थे सब उस अपने साथ लिये।।
नारायण की महिमा का, कामदेव को ज्ञान न था। निज अप्सरागण बसन्त और सुरभित वायु ले जा पहुँचा।।
बद्रिकाश्रम में उसने जा, स्त्री कटाक्ष बाण साधे। श्री आदि देव नारायण को, आहत थे वह करना चाहते।।

नर नारायण ने जाना, है इन्द्र का ही कुचक्र यह। भयभीत हुए कामादि को, हंसकर उन्होने यह वचन कहे।।
हे कामदेव हे मलयानल, देवांगनागण न तुम डरो। आओ अभी ठहरो यहाँ, आतिथ्य स्वीकार हमारा करो।।
अभी जरा तुम रुको सही, आश्रऊ को सूना नहीं करो। न ही मन में आश्चर्य था, न ही कोई अभिमान ही हो।।

जब ऋषि नर नारायण ने, अभय दान दे यूं कहा। तब कामदेव आदि सबका, सीस लज्जा से झुका।।
परम दयालु नर नारायण, से वह यूं कहने लगे। नहीं आश्चर्य कोई इसमें, प्रभु आप तो हैं माया से परे।।
निर्विकार हैं आप प्रभु, आप तो हैं नित्य आत्म राम। योगेश्वर धीर पुरुष नित्य, चरणन् में करें प्रणाम।।

भक्ति के प्रभाव से, आपकी भक्त उलांघें अमरावती। परम पद वह प्राप्त करें, उत्क्रमण उसका कर।।
जब वह भजन में लीन हों, तो देवता गण विघ्न डालें। साधना से विचलित वह हों, इस कारण ही सब यत्न करें।।
जो जन नित्य ही कर्मकाण्ड, में संलिप्त हुए रहते हैं। यज्ञादि द्वारा देवों को, बलि का भाग वह देते हैं।।
आपके कर कमलों की प्रभु, वह छत्रछाया में रहें सदा। विघ्नों के सीस पे चरण धर, वह आगे ही बढ़ जायें सदा।।

भूख प्यास गर्मी सर्दी, आन्धी पानी का कष्ट सहें। रसनेन्द्रिय और जननेन्द्रिय के, वेग भी विचलित नहीं करे।।।
अपार सिन्धु सम इन सबको, अनेकों साधक तर जायें। किन्तु फिर भी क्षुद्र क्रोध के, वशीभूत वह हो जायें।।
गौ खुर के खड्डे समान, है जिसका अस्तित्व नहीं। आत्म नाशक उस क्रोध के वश, वह अपनी तपस्या खो दें सभी।।

मदन वसन्त आदि ने जब, मिल कर इस विधि गाई स्तुति। निज योग बल से श्री हरि ने, अनेकों रमणियां प्रकट करीं।।
अद्भुत रूप लावण्य से, वह सब ही सम्पन्न थीं। वस्त्राभूषणों से सजी, प्रभु सेवा में संलग्न थीं।।

इन्द्र अनुचरों ने देखा, लक्ष्मी रूपा उन स्त्रियों को। चेहरा उनका फीका पड़ा, जब देखा उस सौन्दर्य को।।
श्री हीन थे स्वयं हुए, वह उनपर मोहित हो गए। उनके तन की दिव्य सुगन्ध, के थे वह वशीभूत हुए।।

सीस झुकाया उन सबने, श्री नारायण हंसने लगे। अपने अनुरूप किसी एक, स्त्री को ग्रहण हो कर सकते।।
स्वर्ग लोक की तुम्हारे वह, शोभा बहुत बढ़ायेगी। ऐसा कहकर श्री हरि ने, उनको यह सम्मत्ति अनुमति दी।।

जो आज्ञा कही अनुचरों ने, प्रभु का आदेश स्वीकार किया। सीस झुकाकर फिर उन्होने, श्री हरि को नमस्कार किया।।
प्रभु की सर्वश्रेष्ठ रचना, अप्सरा को उन्होने आगे किया। उर्वशी को लेकर के, स्वर्ग को उन्होने प्रस्थान किया।।

वहाँ पहुँचकर इन्द्र को, पुन: किया उन्होने नमन। देवों की भरी सभा में फिर, किया नर नारायण गुण वर्णन।।
उसे सुनी देवेन्द्र तो, अति विस्मित और भयभीत हुए। प्रभु के बल और प्रभाव की, महिमा वह न पहचाने थे।।

प्रभु विष्णु निज स्वरूप में, हैं एक रस सदैव स्थित। फिर भी करें अवतार ग्रहण, जगत् के कल्याण हित।।
हंस दत्तात्रेय सनकादि, पिता ऋषभ बनकर वह प्रकटे। आत्म साक्षात्कार के, अनेकों साधन उन्होने कहे।।
ह्यग्रीव का अवतार लेई, मधु कैटभ का संहार किया। उन असुरों द्वारा हरे गए, वेदों का फिर उद्धार किया।।

प्रलयकाल में मत्स्यावतार, था उन्होने धारण किया। भावी मनु सत्यव्रत पृथ्वी, औषधियों की करी रक्षा।।
वराह रूप धर पृथ्वी को, रसातल से उभार लिया। उसी समय हिरण्याक्ष का, श्री हरि ने संहार किया।।
कूर्मावतार किया धारण, पीठ पे मंद्राचल को धरा। अमृतमन्थन के कार्य को, इस भाँति सम्पन्न किया।।
उन्हीं प्रभु श्री विष्णु ने, अपने शरणागत भक्त को। ग्राह के मुख से छुड़वाया, आर्त हुए गजेन्द्र को।।
एकबार बालखिल्य मुनि, तप से अति क्षीण थे हो गए। कश्यप ऋषि की सेवा में, समिधा थे वन से ला रहे।।

गाय के खुर से बने हुए, इक खड्डे में वह जाय गिरे। श्रान्त वह इतने थे हुए, मानो सागर में ही हों गिरे।।
प्रभु की स्तुति करी उन्होने, प्रभु ने उनका उद्धार किया। उनके ही उद्धार को, था प्रभु ने यह अवतार लिया।।
वृत्रासुर के वध पर जब, इन्द्र को ब्रह्महत्या लगी। भयभीत होई जब इन्द्र छिपे, तब प्रभु ने उनकी रक्षा करी।।
असुरों ने अनाथ देवांगनागण, को जब बन्दी लिया बना। तब भी भगवान ने ही उनको, उस चंगुल से था छुड़वाया।।
प्रह्लादादि सन्तों को जब, हिरण्यकश्यपु ने दिया सता। उनको निर्भय करने के लिये, नृसिंह रूप प्रभु ने धरा।।
उस असुर का हनन कर, भक्तों को दिया प्रभु अभय दान। हिरण्यकश्यपु वध को ही, धरा यह रूप उन्होने महान्।।

देवासुर संग्राम में, दैत्य नायकों का किया वध। देवों की रक्षा के लिये, यह रूप लिया था उन्होने धर।।
भिन्न भिन्न मन्वन्तरों में, अनेक कला अवतार लिये। इन अवतारों का रूप धर, त्रिभुवन की वह रक्षा किये।।
फिर वामन अवतार लिया, याचक का उन रूप धरा। दैत्यराज बलि से फिर, इस पृथ्वी को उन्होने छीन लिया।।
अदिति नन्दन देवों में, धरती को फिर बांट दिया। बलि ने था जो छीन लिया, साम्राज्य उन्हें लौटा दिया।।

श्री परशुराम के रूप में उन, क्षत्रियों का किया संहार। पृथ्वी क्षत्रिय विहीन करी, उन्होंने इक्कीस बार।।
हैहय वंश के प्रलय अर्थ, भृगुवंश में अग्नि बनी जन्मे। उन्हीं ने रामावतार में, सागर पर थे सेतु बान्धे।।
रावण और उसकी लंका को, धाराशायी किया उन्होने। उनकी कीर्ति सब लोकों के, मल को ही पावन कर दे।।
सीता पति भगवान राम, हैं विजयी सदा सर्वदा। है कीर्ति उनकी अमर, नहीं क्षीण हो सके वह कदा।।

श्री हरि तो अजन्मा हैं, पर पृथ्वी भार उतारन को। यदुवंश में ही लेंगे जन्म, और ऐसे कर्म करेंगे वो।।
बड़े बड़े महादेवता भी, जो कर्म कभी न कर सकें। आगे चलकर श्री बुद्ध के, रूप में पुन: वह प्रकटेंगे।।
यज्ञ के अधिकारियों को, यज्ञ करते देख कर। भाँति भाँति के तर्क से, लेंगे उनको मोहित कर।।
फिर कलियुग के अन्त में वह, कल्कि अवतार बन आएंगे। क्षुद्र राजाओं कावे फिर, धरती से वह उठायेंगे।।
श्री हरि की कीर्ति अनन्त है, जानें आप उसे राजन्। प्रभु के अनेकों जन्म कर्म, का ऋषिगण करें गायन।।

राजा बोले,
हैं आप श्रेष्ठ आत्म ज्ञानी, और भगवान के भक्त आप। कृपा कर अब ऐसे, लोगों की कहें गति आप।।
नहीं कामना जिनकी शान्त हुई, भोगों की लालसा मिटी नहीं। मन और इन्द्रियां भी जिनकी, हैं अपने वश में नहीं।।
जो जन श्री भगवान का, भजन भी कभी नहीं करते। हे ऋषिवर कहें ऐसे जन, किस गति को प्राप्त हैं वह करते?

चमस योगेश्वर बोले,
विराट पुरुष के मुख से राजन्, सत्व प्रधान हुए ब्राह्मण। भुजाओं से उत्पन्न हुए, सतो रज प्रधान क्षत्रिय गण।।
जांघों से रज तम प्रधान, वैश्य उत्पन्न हो गए। तमो प्रधान शूद्रों का, उत्पत्ति स्थान उनके चरण भए।।
जंघा से प्रकटा गृहस्थाश्रम, हृदय से प्रकटा ब्रह्मचर्य। वक्ष:स्थल से हुआ वानप्रस्थ, संन्यास का स्थान कहा मस्तक।।
इन चहुँ वर्ण और आश्रमों के, रचयिता हैं भगवान स्वयं। वही नियन्ता स्वामी भी, वह ही सबके हैं आत्म स्वयं।।
इन वर्ण आश्रमों में रहकर, जो जीव न उनका भजन करे। पूजन अर्चन तो दूर रहा, अनादर ही जो उनका करे।।
वह अपने स्थान वर्ण आश्रम, से भी च्युत हो जाता है। मनुष्य योनि से भी गिरकर, वह अध: योनि को पाता है।।

स्त्रियां और शूद्र आदि, हैं हरि कथा वंचित हुए। हरि नाम संकीर्तन से, वह अति दूर हैं हो गए।।
आप समान भक्तों की, दया के ही वह हैं पात्र। कथा कीर्तन की सुविधा दे, आप करें उनका उद्धार।।

ब्राह्मण क्षत्रिय और वैश्य, वेदाध्ययन तो हैं करते। यज्ञोपवीत इत्यादि से, श्री हरि के चरण निकट पहुँचे।।
फिर भी वेदों का वास्तविक, तात्पर्य न समझ कर। मोहित हैं वह हो रहे, केवल अर्थवाद में पड़।।

कर्म रहस्य न समझें वह, मूर्ख मानें निज को पण्डित। मीठी बातों में भूले वह, हुए मिथ्या में ही वे दम्भित।।
सारहीन शब्द माधुरी, में ही जन वह पड़े रहें। बढ़ चढ़ कर पुष्पित बातें करें, दूजों को भी वह भड़का दें।।

हैं रजोगुण प्रधान वह, अति घोर संकल्प करें। क्रोध भी सर्प समान हो, कामना की न सीमा रहे।।
दम्भ और गुमान से, यह जन नित्य ही प्रीत करें। प्रभु भक्तों की यह पापी, प्राय: हंसी उड़ाया करें।।

यह मूर्ख कुल वृद्धों को नहीं, कामिनी को उपासा करें। एकत्रित होकर आपस में, मनोरथ बड़े बनाया करें।।

गृहस्थाश्रम में यह जन, स्त्री का संग ही सुख मानें। यदि यज्ञ भी करें कभी, तो अन्न दान वह नहीं करें।।
विधि विधान पे नहीं चलें, न ही यह किसी को दक्षिणा दें। कर्म रहस्य से अनभिज्ञ, केवल जिह्वा रसना चाहें।।
क्षुधा शान्ति तन की पुष्टि, ही इनका इक काज रहे। निज रसना पूर्ति को यह, पशुओं की हत्या भी कर दें।।

धन वैभव कुलीनता, विद्या दान बल सौन्दर्य। कर्म आदि का गुमान सब, देता है इनको अन्धा कर।।
भगवत्प्रेमी सन्तों का, ईश्वर का भी अपमान करें। यह दुष्ट निज दुष्कर्मों से, या प्रभु से भी कभी नहीं डरें।।

वेद तो पुन: पुन: राजन्, इस सत्य को दोहराते हैं। श्री हरि तो आकाश समान, सब जीवों में रहते हैं।।
वह ही हैं अपने आत्मा, और वह ही सबके प्रियतम हैं। किन्तु मूढ़ तो वेदों की, वाणी से अनभिज्ञ हैं।।
केवल निज मनोरथ की, ही बातें करते रहते हैं। परस्पर वह बड़ी बड़ी, कल्पना ही करते रहते हैं।।

जिन कर्मों में जीव की, जग में स्वभाविक हो रुचि। मैथुन मांस और मद्य की, और स्वत: हो प्रवृत्ति।।
इनमें प्रवृत्त उसे करने का, विधान तो हो ही नहीं सके। ऐसी स्थिति में विलक्षण ही, अवसर पर उसकी आज्ञा मिले।।
विवाह यज्ञ या सौत्रमणि, के द्वारा ही व्यवस्था है। इन स्थितियों में ही उनके, उपभोग की कही अवस्था है।।
उच्छृंखलता का नियन्त्रण कर, मर्यादा वहाँ है स्थापित की। वास्तव में उनसे उठा देना, है श्रुति का तो तात्पर्य यही।।

धन का तो वास्तव में जानो, एकमात्र है फल धर्म। धर्म से ही परम तत्त्व के, ज्ञान और निष्ठा हों सम्पन्न।।
इस अनुभूति में जानो, परम शान्ति व्याप्त है। कामोपभोग में धन यह लगे, अहो कितने खेद की बात है।।
गृहस्थ या स्वार्थ में ही, गर धन का उपयाग करें। यह भी भूलें यह सब तो, अन्तत: मृत्यु ग्रास बनें।।
यह तन ही है मृत्यु धर्मा, और मृत्यु इसकी अटल है। नहीं छूट पाये कोई इससे, यह नियम तो अविचल है।।

सौत्रमणि यज्ञ में भी, सुरा को बस सूंघा जाये। उसके पान की आज्ञा तो, उस यज्ञ में भी कहीं न पाये।।
यज्ञ में भी पशुओं के बस, स्पर्शमात्र का विधान है। हिंसा की कहीं आज्ञा नहीं, बलि का फिर कहाँ काम है?
इसी विधि अपनी विवाहिता, धर्मपत्नी के साथ भी। केवल विषय उपभोग को ही, मैथुन की आज्ञा नहीं मिली।।
परम्परा की रक्षा को, सन्तोत्पत्ति के लिये। ही तो इस सम्बन्ध के, विधान हैं किये गए।।
अर्थवाद के वचनों में, फंसे हुए हैं विषयी जो। अपने इस शुद्ध धर्म से, सर्वथा हैं अनभिज्ञ वो।।

इस विशुद्ध धर्म को, जो जन नहीं हैं जानते। अति दुष्ट हैं घमण्डी वे, पर निज को श्रेष्ठ हैं मानते।।
वह भ्रमित जन ही पशुओं की, हिंसा में हैं पड़े रहते। मृत्यु के बाद वही पशु, उस हन्ता को हैं खाते।।

यह तन तो है वास्तव में शव, सम्बन्धी भी इस संग छूटें। जो अपने इस तन से ही, प्रेम के बन्धन में बन्धें।।
अन्य शरीरों में भी आत्मा, अपना प्रभु ही है रहता। इसे भूल वह अन्य के, तन से द्वेष ही है करता।।
उस मूर्ख का जान लो, अध: पतन निश्चित ही है। मानव तन पाकर भी उसने, जन्म किया यह व्यर्थ है।।

आत्म ज्ञान सम्पादन कर, कैवल्य मोक्ष जिस न पाया। किन्तु नहीं पूरा मूढ़ भी वह, है बीच में ही वह लटक रहा।।
अर्थ धर्म और काम के, तीनों पुरुषार्थ में फंसे रहें। इक क्षण के लिये भी ऐसे जन, कभी शान्ति न पायें।।
हाथों में वह कुल्हाड़ी ले, अपने ही चरण पे वार करें। ऐसे ही लोगों को शास्त्र, आत्मघाती की उपमा दें।।

यह आत्मघाती जन तो, अज्ञान को ज्ञान ही माने हैं। नहीं शान्त की उनकी कर्म हों, न शान्ति कभी यह पाते हैं।।
इनके मनोरथों पर सदा, काल प्रभु हावी रहे। इनके हृदय की जलन या, विषाद कभी नहीं मिट सके।।

अन्तर्यामी श्री हरि से, जो जन हैं विमुख हुए। अति परिश्रम से वे सब, धन सम्पद् एकति करते।।
घर पुत्र मित्र सम्पद्, जीन भर वह जोड़ा करें। किन्तु अन्त में सबका सब, यहीं छोड़ कर जाना पड़े।।
न चाहते हुए भी विवश ही, कूच यहाँ से करना पड़े। श्री कृष्ण विमुख जो जीव हैं, जाकर नरकों में ही गिरें।।

राजा बोले,
कृपा करी योगेश्वरों, आप ही हमको बतलायें। कौन समय किस रंग का, कौन आकार प्रभु धर आयें?
किन नामों और रूपों से, जीव उन्हें उपासा करे? कृपा करी के आप कहें, किस विध उनको पा सकें?

करभाजन बोले,
हे राजन् हैं चार युग, सत्य त्रेता द्वार कलि। इनमें अनेकों नाम रूप, रंग आकृतियां प्रभु की हुईं।।
उनकी उपासना के लिये, हैं विभिन्न विधियाँ कहीं। अब उनकी ही बात तुम, राजन् मुझसे सुनो सही।।

सत्ययुग में भगवान के, श्री विग्रह का रंग कहा श्वेत। चतुर्भुजा और सीस जटा, धरे वल्कल वस्त्र ही उनका वेष।।
काली मृगचर्म यज्ञोपवीत, और रुद्राक्ष की हो माला। दण्ड कमण्डलु धारी वह, है बना रूप उनका मतवाला।।

सत्ययुग के जीव अति शान्त हों, है वैरभाव का अभाव वहाँ। सुहृद् हितैषी हैं सबके, समदर्शन ही सदा रहे वहाँ।।
मन और इन्द्रियाँ वश में कर, ध्यान रूप तप के द्वारा। सबके प्रकाशक श्री हरि की, आराधना हैं वह करते सदा।।

हंस सुपर्ण वैकुण्ठ धर्म, योगेश्वर अमल ईश्वर पुरुष। अव्यक्त परमात्मा नामों से, प्रभु स्तुति में रहते सदा रत।।
इन नामों को लेकर वह, प्रभु के गुण और लीला गायें। यही आराधना है उनकी, इस राही वह प्रभु को पायें।।

त्रेता युग में जानो राजन्, उनके विग्रह का रंग है लाल। चतुर्भुजाएं हैं उनकी, त्रिमेखला लें कटिभाग में धार।।
हिरण्यकेश हैं श्री हरि के, वह यज्ञ के रूप में रहते हैं। स्रुक् स्रुवा आदि यज्ञ पात्र, धारण वह किये रहते हैं।।

उस युग के मनुष्यों की, है धर्म में अति निष्ठा। वेद अध्ययन अध्यापन में, है उनकी प्रवीणता।।
ऋक् यजु: और सामवेद, इस वेदत्रयी का आश्रय लें। सर्ववेद स्वरूप प्रभु, की उपासना किया करें।।

त्रेता युग में अधिकांश लोग, विष्णु यज्ञ और पृश्नीगर्भ। सर्वदेव उरुक्रम वृषाकपि, जयन्त उरुगाय नाम लेकर।।
प्रभु के गुण लीला आदि का, कीर्तन ही वह करते हैं। उस युग में इस विधि वे, प्रभु की उपासना करते हैं।।

द्वापर युग में प्रभु विग्रह का, रंग है राजन् श्यामल सा। सांवले से उनके तन पर, है पीताम्बर लहराता।।
कलियुग में भी अनेकों तंत्र, विधि विधान जो हैं वरतें। प्रभु की जिस विधि पूजा हो, अब उसका वर्णन सुन ले।।

कलियुग में भगवान का, विग्रह होता है कृष्ण वर्ण। ज्यों नीलमणि से कान्ति की, धारा निकलती है हर क्षण।।
त्यों ही उनकी अंग कान्ति भी, अति उज्ज्वल ही है भासे। अंग उपांग और पार्षदों से सदा संयुक्त वह हैं रहते।।
बुद्धिमान श्रेष्ठ पुरुष, अस यज्ञ आराधना हैं करते। नाम गुण लीला के कीर्तन, की प्रधानता जहाँ रहे।।

हैं शरणागत के रक्षक, चरणारविन्द हैं ध्यान गम्य। माया मोह से पराजय का, संसार में श्री हरि करें अन्त।।
भक्तों की वांछित वस्तु के, हैं दाता स्वयं कामधेनु। तीर्थ को भी तीर्थ करें, हैं आप स्वयं तीर्थ स्वरूप।।
श्री ब्रह्मा आदि देवता भी, नमन करें बस आपको ही। स्वीकार करें प्रभु आप उसे, जो शरण में पहुंचे आपकी।।
सब विपद् विनाशक आप प्रभु, हैं जहाज भवसिन्धु का। आपके श्री चरणों की ही, वन्दना हूं प्रभु कर रहा।।
कलियुग के जन इस विधि, प्रार्थना उनसे करते हैं। इस प्रकार कहकर ही वह, स्तुति प्रभु की करते हैं।।

आपके चरण कमल की प्रभु, महिमा कौन गा सके? रामावतार में आपने, कैसे दुर्लभ थे काज किये।।
पिता दशरथ के वचनों की, लाज निभाने के लिये। राज्यलक्ष्मी छोड़कर, वन वन में भटका किये।।
धर्म निष्ठा की प्रभु, आप तो हैं परासीमा। सीता माता के चाहने पर, माया मृग का पीछा भी किया।।
प्रेम की हैं पराकाष्ठा आप, पार नहीं कोई पा सके। उन चरण कमल का आपके, हम तो बस वन्दन करें।।

विभिन्न युगों के जीवन जान, विभिन्न विधि से उपासा करें। अपने युग के अनुरूप ही, नाम रूप से पुकारा करें।।
धर्म अर्थ काम मोक्ष, इन चारों पुरुषार्थों के। हैं एक मात्र ही स्वामी वह, निस्संदेह तू जान ले।।

कलियुग में बस संकीर्तन से, सारे काज ही सध जायें। स्वार्थ और परमार्थ सब, इस राह सफल ही हो जायें।।
इस युग के गुण ज्ञाता जो, सार ग्राही हैं पुरुष श्रेष्ठ। प्रशंसा करें वह कलियुग की, है उनका यह अति श्रेष्ठ।।

अनादि काल से जीव यह, संसार चक्र में भटका करे। भगवान की लीला गुण कीर्तन, से अधिक न कोई लाभ रहे।।
संसार में भटकन इस राही, सदा सदैव के लिये मिटे। परम शान्ति का ही तब, उस जीव को अनुभव होए।।

सत्ययुग त्रेता और द्वापर की, प्रजा तो राजन् यह चाहे। कलियुग में वह जन्म ले, सौभाग्य उदय वा हो जाये।।
क्योंकि इस कलियुग में ही, श्री नारायण के शरणागत। उन्हीं के आश्रित उनके ही, उत्पन्न होंगे कहीं कहीं भक्त।।
द्राविड़ देश में भक्तों की, संख्या तनिक अधिक होगी। ताम्रपणी कृत्माला पयोष्णी, कावेरी प्रतीचि महानदी।।
उसी प्रदेश में ही तो हैं, यह सब ही नदियां बहतीं। उसकी धरा को यह नदियां, ही हैं पल पल सींचती।।
इनके जलपान से जीव का, अन्त:करण शुद्ध हो जाय। तत्पश्चात् श्री वासुदेव का, स्वत: भक्त वह हो जाये।।

ऐसा करना अभी बाकी है, यह करना अभी है अनिवार्य। इस कर्म वासना भेद की, बुद्धि का कर के त्याग।।
शरणागतवत्सल प्रेम दानी, प्रभु की जो भी शरण गया। देव ऋषि और पितरों के, ऋण से स्वत: वह मुक्त हुआ।।
प्राणी मात्र कुटुम्बी जन, अतिथि ऋण से उऋण वह हो। न किसी का सेवक वह बने, न ही किसी के अधीन हो।।

अनन्य भाव से जो प्रेमी, प्रियतम प्रभु के चरण भजे। अन्य भाव सब छोड़ करी, जो केवल पूजन उनका करे।।
किसी भाँति का पाप कर्म, फिर उससे हो ही न पाये। यदि भूले से वहाँ कभी, ऐसा कर्म हो भी जाये।।
परम पुरुष श्री हरि जो हैं, उसके हृदय में बैठे हुए। सब मल धोई बहा वह दें, और हृदय शुद्ध है कर देते।।

नारद बोले,
मिथिला नरेश श्री निमि ने, योगेश्वरों से उपदेश सुना। भागवत धर्मों का वर्णन सुन, प्रफुल्लित मन उनका हुआ।।
निज ऋत्विक और आचार्यों को, संग लेकर फिर पूजा करी। ऋषभनन्दन ने महाश्रेष्ठ, उन नव योगेश्वरों की।।

तत्पश्चात् सब लोगों के, सम्मुख ही देखते देखते। सबके सामने सिद्ध वह, दृष्टि से अन्तर्धान हुए।।
विदेहराज निमि ने फिर, श्रवण जो उनसे था किया। आचरण किया उन धर्मों का, और परम गति को प्राप्त किया।।

आपके सामने महाभाग, जिनका है वर्णन मैंने किया। श्रद्धा सहित गर आप भी, आचरण करेंगे इन सबका।।
सब आसक्ति त्याग कर, आप परम पद पाओगे। अन्त में सब भ्रम छूटेंगे, श्री हरि के धाम ही जाओगे।।
आपका और मां देवकी का, यश तो सब जग में व्याप्त है। शक्तिमते हरि ने स्वयं, लिया आपके घर अवतार है।।

प्रभु के दर्शन आलिंगन और, वार्तालाप जो उनसे किये। उनका शयन आसन भोजन, वात्सल्य सभी में दर्शाये।।
इन सब राही आपने, निज हृदय शुद्ध है कर लिया। हैं आप परम पावन हुए, नहं किंचित् मल भी कहीं रहा।।

शिशुपाल पौण्ड्रक शाल्वादि, का वैर भाव था कृष्ण प्रति। वा चाल ढाल लीला विलास, वदन और चितवन उनकी।।
इन सबको था याद किया, नहीं नियम बधित स्वभाव से ही। इसपर भी उनकी चित्तवृत्ति, कृष्णाकार ही हो गई।।
प्रभु के वैरी होकर भी, सारूप्य मुक्ति वह पा गये। फिर प्रेम से जो चिन्तन करे, सन्देह क्या उनकी मुक्ति रहें?

हे वसुदेव श्री कृष्ण को, न केवल पुत्र ही मानें आप। हैं अविनाशी सर्वेश्वर वह, सर्वात्म उनको जानें आप।।
लीला अर्थ मनुष्य का, रूप है उन्होने धारण किया। साधारण से बनकर विचरें, ऐश्वर्य अपना लिया छिपा।।

पृथ्वी पे भारभूत जो बने, असुर हैं राजा वेश में। उनका नाश और सन्तों की, रक्षा के ही उद्देश्य से।।
जीवों को परम शान्ति, और मुक्ति देने के लिये। ही इस भूमि पर उन्होने, अवतार हैं धारण किये।।
इस कारण से ही जगत् में, वा कीर्ति गाई जाती है। श्री हरि की महिमा गाकर, जगती पावन हो जाती है।।

शुकदेव बोले,
श्री नारद के मुख से यह सुनी, अति विस्मित दोनों हुए। महाभाग श्री वसुदेव, और देवकी दोनों चकित थे।।
माया मोह का अवशेष जो, था उनमें अभी बचा हुआ। नारद जी का उपदेश सुन, तत्क्षण वह जाता रहा।।

अति पावन है इतिहास यह, हे राजन् तुम जान लो। मुक्ति प्रदान यह कर सके, महत्ता यह पहचान लो।।
एकाग्र चित्त करके अपना, जो भी इसका श्रवण करे। शोक मोह सब दूर हों, बह्म पद वह प्राप्त करे।।

४) भगवान से स्वधाम पधारने के लिये देवताओंकी प्रार्थना

शुकदेव बोले,
वसुदेव को उपदेश कर, श्री नारद जब चले गए। सनकादि और देवतागण, प्रजापतियों सहित ब्रह्मा आये।।
भूतगणों को संग लिये, सर्वेश्वर महादेव आये। मरुद्गणों को संग लेकर, देवेन्द्र द्वारका को आये।।
सभी आदित्यगण आठों वसु, अश्विनीकुमार ऋभु आये। अंगिरा के वंशज ऋषि, ग्यारह रुद्र विश्वेदेव आये।।
अप्सरा एवं साध्य गण, गन्धर्व नाग और सिद्ध आये। चारण गुह्यक ऋषि पितर, विद्याधर किन्नर सब आये।।
इन सबके आगमन का, उद्देश्य था श्री कृष्ण दर्शन। मनुज सा मनोहर रूप धरी, श्याम तनु का आकर्षण।।
निज विग्रह प्रकट करी प्रभु ने, कीर्ति का विस्तार किया। सब लोकों के पाप ताप, स्वत: ही हर ले जो सदा।।

सब भाँति सम्पद् ऐश्वर्य, से थी समृद्ध द्वारका। अलौकिक दीप्ति से इस पल, थी दीप्तिमान हुई द्वारका।।

अनुपम छवि श्री कृष्ण का, वहीं पे उन्होने दर्शन पाया। निर्निमेश नयनों से वा, रूप माधुरी पान किया।।
फिर भी न तृप्त हुए जो नयन, अपलक देखते रहे उन्हें। उन सबके दो नयन तो, निरन्तर श्याम पे ही थे टिके।।

स्वर्ग उद्यान नन्दन वन के, चैत्ररथ आदि पुष्पों से। जगदीश्वर श्री कृष्ण के, रूप थे आवृत्त कर दिये।।
चित्र विचित्र पदों और, अर्थ पूर्ण निज वाणी से। देवतागण सब मिल कर, प्रभु की स्तुति गाने लगे।।

देव बोले,
कर्मों के विषम फंदों से, मुमुक्षु जो मुक्ति चाहे। निज हृदय में भक्ति भाव से, आपके चरणों को ध्याये।।
निज बुद्धि इन्द्रिय प्राण मन, वाणी से है नमन किया। उन्हीं चरण कमल में आपके, है साष्टांग नमन हमारा।।

त्रिगुणात्मिका माया के, रज आदि गुण स्वीकार करें। अचिन्त्य माया शक्ति से, अपने में जग की रचना करें।।
स्वयं ही पालना भी करें, आप स्वयं संहार करें। किन्तु हे अजित सब करके भी, आप सदा निर्लिप्त रहें।।
राग द्वेषादि दोषों से, प्रभु आप सदा मुक्त हैं। निज स्वरूप परमानन्द में, अखण्ड रूप से युक्त हैं।।

राग द्वेष से दूषित है, हे प्रभु जिनकी चित्त वृत्ति। उपासना वेदाध्ययन दान, तप यज्ञादि कर्मों से भी।।
शुद्धि न वैसी हो सके, जैसी श्रद्धापूर्ण जन की। हे स्तुति योग्य परमात्मन्, सन्तुष्ट हों वे आपकी कथा से ही।।
आपकी लीला कथा और, कीर्ति में जिनकी हो श्रद्धा। दिन दिन बढ़ती श्रद्धा से, चित्त पल में शुद्ध है हो जाता।।

प्रेमाद्र निज हृदय में, मुमुक्षु जिन्हें धारण करें। पंचरात्र उपासक चतुर्व्यूह, रूप में पूजन जिनका करें।।
ऐश्वर्य प्राप्ति हेतु श्रीकृष्ण, संकर्षण अनिरुद्ध प्रद्युम्न। की उपासना में ही वह, अहर्निश रहते हैं मग्न।।
स्वर्गलोक अतिक्रमण कर, जितेन्द्रिय जिसे पाना चाहें। भागवत धाम की प्राप्ति को, तीनों समय वह पूजा करें।।
त्रैवेद कथित विधि अनुसार, हाथों में हविष्य लेकर। याज्ञिक जन दें आहुति और, चिन्तन में ही रहें तत्पर।।
आत्म रूपिणी माया के, जिज्ञासु जो योगी जन। निज आन्तर्देश में आपके ही, श्री चरण कमल का करें चिन्तन।।
आपके प्रेमी जन प्रभु, आराध्य उन्हीं को माना करें। वही चरण कमल प्रभु आपके, सब पाप हमारे भस्म करें।।
विषय वासना के लिये, वह अग्नि सम ही हो जायें। पाप ताप हमारे सब, उस अग्न में दग्ध ही हो जायें।।

आपके वक्ष:स्थल पे प्रभु, श्री लक्ष्मी जी का वास है। मुरझाई हुई वनमाल से भी, श्री लक्ष्मी जी को डाह है।।
फिर भी उपेक्षा कर उनकी, भक्तों की माल स्वीकार करें। इस मुरझाई माला से भी, पूजा उनकी प्रभु सीस धरें।।
ऐसे भक्त वत्सल प्रभु के, चरण सदैव हृदय में रहें। विषय वासना दग्ध कर, यह अग्न रूप धारण करें।।

वामनावतार में दैत्यराज, बली दत्त पृथ्वी को नापा। निज पग उठाया आपने, वह सत्यलोक में जा पहुँचा।।
ऐसा था वह भास रहा, महा विजय ध्वज ज्यों हो कोई। श्री ब्रह्मा ने पखारा उसे, गंगा की तीनों धारायें बही।।
यह तीनों लगती थीं ऐसे, ज्यों तीनों विजय पताका हों। उन्हें देख असुर सेना, भय से हुई अक्रान्त अहो।।
देव सेना निर्भय हुई, ऐसा उनका प्रभाव था। साधु पुरुषों के लिये वह, चरण वैकुण्ठ की राह बना।।
दुष्टों के लिये वही चरण प्रभु, बने अधोगति का कारण हैं। उन्हीं आपके पाद पद्म का, हम सब भी करें भजन हैं।।
सब पाप ताप को नष्ट कर, निज वेग में उन्हें बहा ही दें। चित्त की मल सब धो कर, वह पावन हमारा चित्त करे।।

ब्रह्मापर्यन्त जितने भी, हैं इस जग में तनधारी। त्रैगुण के परस्पर घर्षण से, जीते मरते रहते हैं सभी।।
सुख दु:ख के ही थपेड़ों में, वशीभूत हुए वह हैं रहते। आपके ही अधीन हैं वह, ज्यों बैल स्वामी के वश रहे।।
काल स्वरूप प्रभु आपके, ही अधीन वह सदा रहें। आदि मध्य और अन्त में, वे आपके ही आश्रित रहें।।
प्रकृति पुरुष से परे आप, स्वयं प्रभु पुरुषोत्तम हैं। कल्याण करें प्रभु आप ही, हम चरण कमल प्रपन्न हैं।।

जग उत्पत्ति स्थिति लय के, हैं परम कारण आप प्रभु। प्रकृति पुरुष महत्तत्त्व के, नियन्त्रण कर्ता आप विभु।।
शीत ग्रीष्म और वर्षा काल, यह तीन नाभियां कहीं जिसकी। उस संवत्सर रूप में, क्षय ओर ले जायें आप ही।।
अबाध गति प्रभु आपकी, और अति गम्भीर है। पुरुषोत्तम हैं आप प्रभु, आप ही महा धीर हैं।।

आपसे शक्ति पाकर के, अमोघ वीर्य हो पुरुष का। महत्तत्त्व गर्भ स्थापित करे, जब मिलन हो उससे माया का।।
तत्पश्चात् वह महत्तत्त्व त्रिगुणी माया अनुसरण करें। पृथ्वी जल तेज वायु आकाश, अहं और मन की परत बने।।
सात आवरणों वाले इस, ब्रह्माण्ड की रचना आप करें। इस ब्रह्माण्ड का वर्ण प्रभु, सुवर्ण ही फिर बने।।

हे हृषीकेश हैं आप ही, अधीश्वर सारे जगत् के। माया के गुणों से बने हुए, पदार्थ लिप्त न कर सकें।।
उपभोग करते हुए से लगें, पर आवृत्त आप कभी न हों। अन्य तो उनको त्याग के भी, उनसे सदा भयभीत ही हों।।

आपके साथ हे प्रभु महारानियां सोलह सहस्त्र। मन्द स्मित तिरछी चितवन, भ्रुव बाण चलायें आप पर।।
स्वर ताल आलाप से, वह काम बाण छोड़ा करें। विविध भाँति से आपका, मन आकर्षित करना चाहें।।
फिर भी असफल ही रहें सदा, नहीं विचलित आपको कर सकें। हे प्रभु आप तो सर्वदा, निज स्वरूप में स्थित रहें।।

त्रिलोक की पापराशि को, धो देने के लिये प्रभु। दो प्रकार की सरिताएं, प्रवाहित आपने करी विभु।।
आपकी अमृत लीला से, परिपूर्ण है आपकी कथा नदी। पाद प्रक्षालण के जल से, निकली हैं दूजी गंगा जी।।
सत्संगी और विवेकी जन, कानों से कथा का पान करें। तन को गंगा में डुबोकर वह, भली भाँति से स्नान करें।।
दोनों ही तीर्थों का वह, सेवन हैं सदा करते। अपने पाप ताप सभी, उनमें ही हैं वह बहा देते।।
बादरायण बोले,
श्री ब्रह्मा और शंकर संग जब देवों ने स्तुति करी। प्रणाम करी भगवान को, आकाश में जा ठहरे सभी।।
अपने धाम को जाने को, सब ही फिर तैय्यार हुए। श्री हरि के सम्मुख फिर, ब्रह्मा ने यह वचन कहे।।
ब्रह्मा बोले,
हमने ही हे प्रभु आपसे, थी मिलकर यह प्रार्थना की। पृथ्वी का भार उतारें आप, यह याचना आपसे थी कर।।
स्वीकार कर के प्रार्थना, काज यह पूर्ण कर दिया। इस धरती पे पधार कर, सब दैत्यों का संहार किया।।

सत्यपरायण साधु जन, के कल्याण के ही लिये। धर्म संस्थापन भी किया, निज कीर्ति से दसों दिक् भरे।।
उसका श्रवण करी के सब, निज मन की मैल को धो ही दें। सर्वोत्तम यह रूप धरी, यदुवंश में हैं अवतार लिये।।
जगत् के हित के लिये प्रभु, अनेकों ही लीलायें कर। उदारता और पराक्रम से, हैं सारी ही भरी हुईं।।

साधु स्वभाव जो जीव प्रभु, कलियुग में श्रवण करें इनका। अज्ञान के तिमिर को सहज ही, कीर्तन से करेंगे पार सदा।।

यदुवंश में आपने, जो अवतार था प्रभु धरा। एक सौ पच्चीस वर्ष की, अवधि वह पूर्ण कर चुका।।

हे सर्वाधार अब कोई भी, नहीं काम हमारा ऐसा बचा। जिसकी पूर्णता हेतु, धरती पे वास अनिवार्य बना।।
ब्राह्मणों का शाप तो, आपके कुल को मिल ही चुका। उस अमोघ शाप से वह, नष्ट प्राय: ही हो चुका।।

वैकुण्ठ नाथ गर जानें उचित, अब कृपा यह कीजिये। अपने परम धाम में, पुनरागमन अब कीजिये।।
आपके सेवक हैं प्रभु, हम सारे ही लोकपाल। सारे लोकों का पालन, और पोषण है आपके हाथ।।
भगवान बोले,
ब्रह्मा जी आपने जैसा कहा, पहले ही निश्चय कर हूँ चुका। आपने जो कहा था मुझे, सब काज है पूर्ण कर दिया।।
भूमि का भार उतार दिया, पर एक काज अभी है बाकी। बल विक्रम वीरता शूरता, धन से उन्मत्त हैं यदुवंशी।।
यह सारी ही पृथ्वी को, ग्रसने को हैं बैठै तैय्यार। किन्तु बलवत् है इन्हें रोका, ज्यों तट रोके सागर प्रहार।।

घमण्डी और उद्दण्ड हुए, यदुवंशियों के नाश बिना। इस धरती से ब्रह्मा जी, गर मैंने प्रस्थान किया।।
मर्यादा का उल्लंघन कर, सब जग संहार करेंगे यह। है अन्त का अब आरम्भ हुआ, ब्राह्मणों के इस शाप से।।
इसका अन्त हो जाने पर, मैं अपने धाम को जाऊँगा। आपके धाम भी ब्रह्मा जी, तब होता हुआ मैं जाऊँगा।।
शुकदेव बोले,
हे राजन् जब अखिलपति, श्री कृष्ण ने उनसे यूँ कहा। ब्रह्मा जी ने प्रणाम कर, सब देवों सहित प्रस्थान किया।।
द्वारका में महा अपशकुन, वृद्धों ने देखे होते हुए। भगवान के पास वह जब गए, श्री कृष्ण ने उन्हें यह वचन कहे।।
भगवान बोले,
हे गुरुजन द्वारका में महा, अपशकुन आजकल दीख रहे। विप्रों से शापित हुआ वंश, अटल वाक् उनके जानें।।
यदि अपने प्राणों की, हम सब हैं रक्षा चाहें। मेरे विचार से हम सबको, अब यहाँ न रहना चाहिये।।
इस शुभ कार्य के लिये अब, और न तनिक विलम्ब करें। परम पवित्र प्रभास क्षेत्र, के लिये आज ही निकल चलें।।

अति प्रसिद्ध है माहात्म्य, जानें इस क्षेत्र प्रभास का। दक्ष प्रजापति शाप से, शशि क्षय रोग से ग्रस्त हुआ।।
तब इसी क्षेत्र में जाकर के, चन्द्रमा ने था स्नान किया। तत्क्षण ही उस पाप जन्य, रोग से था वह मुक्त हुआ।।
साथ ही उसे कलाओं की, अभिवृद्धि भी थी प्राप्त हुई। है ऐसी आप महिमा जानें, उस प्रभास क्षेत्र की।।

प्रभास क्षेत्र में जाकर के, हम सब भी करेंगे स्नान। देव पितरों का तर्पण कर, तैयार करेंगे हम पकवान।।
श्रेष्ठ ब्राह्मणों को फिर हम, वह भोजन करवायेंगे। सत्पात्र ब्राह्मणों को पुन:, दक्षिणा दान दिलवायेंगे।।
उनकी आशिश को पाकर हम, महा संकट से तर जायेंगे। ज्यों जहाज से ही सागर को, पार सहज कर पायेंगे।।

शुकदेव बोले,
श्री कृष्ण ने अब आज्ञा यह दी, सारा कुल ही तैय्यार हुआ। प्रभास क्षेत्र में जाने का, इक मत से सबने निश्चय किया।।
अपने अपने रथों को, तैयार सब करने लगे। श्रेष्ठ अश्वों को जोती, रथ उन्होने सजा लिये।।

हे राजन् यह जानो तुम, थे उद्धव प्रेमी कृष्ण के। अपने प्रियतम सखा के वह, जानो मुख्य ही सेवक थे।।

जब यदुवंशियों को उन्होने, यात्रा के लिये देखा तैय्यार। भगवान की आज्ञा भी सुनी, जाने अपशकुन यह है अपार।।
जगदाधिपति भगवान के, पास गए एकान्त में। उनके चरण में सीस धरी, फिर उन्होने प्रणाम किये।।
हाथ जोड़ कर श्री कृष्ण के, सम्मुख ही वह जा खड़े हुए। विनीत भाव से प्रभु चरण में, प्रार्थना वह करने लगे।।

५) उद्धव गीता

उद्धव बोले,
हे योगेश्वर आप तो हैं, देवादि सबके अधीश्वर ही। आपकी लीला श्रवण और, कीर्तन से जीव हो पावन ही।।
हैं आप तो सर्वसामर्थ प्रभु, नहीं कछु भी जग में हो असम्भव। चाहते तो ब्राह्मण शाप भी, आप थे कर सकते निष्फल।।
किन्तु प्रभु नहीं किया वैसा, इस कारण है अनुमान हुआ। यदुवंश को अब समेट कर, इस लोक का त्याग करेंगे क्या?

किन्तु हे केशव आप बिना, क्षण भर भी मैं न जी सकूँ। आपके श्री चरणों के त्याग, की कल्पना से भी मैं डरूँ।।
हे जीवन सर्वस्व मेरे, मेरे स्वामी मेरी बिनती सुनें। कृपा करी के अपने संग, आप मुझे भी ले चलें।।

प्रिय कृष्ण आपकी तो, है हर लीला मंगलमयी। जीव के कर्णपुटों को है, यह अमृत रस से भर देती।।
जिसने इक बार चखा यह रस, अन्य विषय सब फीके लगें। इसे छोड़ उसका चित्त तो, किसी अन्य विषय में नहीं रमे।।
उठते बैठते सोते जागते, हम प्रभु आपके संग रहे। आपके संग ही खेले हम, भोजन और स्नान भी संग किये।।
हर चेष्टा आपके संग रही, अब किस किस की गणना करें? आप हमारे प्रियतम क्या, हैं आप तो अपना आत्म हे।।
ऐसी स्थिति में हे प्रभु, हम कैसे आपको छोड़ सकें? आपके प्रेमी गण तो प्रभु, यह कल्पना करते भी डरें।।

आपकी पहनी हुई माला, प्रेम से हमने पहनी प्रभु। आपके चर्चित चन्दन की, लेप भी तन पर करी प्रभु।।
वस्त्र आभूषण पहन आपके, अपने को हम सजाते रहे। आपकी जूठन खाने वाले, हम सेवक हैं आपके।।
आपकी इस माया से प्रभु, नहीं है कोई भय हमें। हो आपसे कभी वियोग प्रभु, बस यह नहीं हम सह सकें।।

अति दुस्तर आपकी माया है, यह तो हम हैं जान रहे। महा ऋषि मुनि दिगम्बर बन, ब्रह्मचर्य पालन करें।।
अध्यात्म विद्या के लिये, अति कठिन वह तप करें। संन्यासियों के चित्त निर्मल हों, अति दुष्कर साधना से।।
तब जाकर कहीं वृत्तियों की, शान्ति उनकी हो पाये। नैष्कर्म्य अवस्था पा, ब्रह्म धाम वह पहुँच जायें।।

हे योगेश्वर हम जैसे तो, कर्म मार्ग में भटका करें। भक्त जनों के संग मिली, हम आपकी ही चर्चा करें।।
मनुष्य का सा रूप धरी, प्रभु आपने जो लीला करी। उसके सिमरन् और कीर्तन में, जीवन सारी अब बीतेगी।।
आपकी चाल ढाल और स्मित, चितवन हास परिहास को। याद करी के हम प्रभु, तल्लीन उसीमें जायेंगे हो।।
केवल इस राह से ही प्रभु, दुस्तर माया तर जायेंगे। किन्तु प्रभु आपके विरह की, व्यथा नहीं सह पायेंगे।।
शुकदेव बोले,
देवकी नन्दन कृष्ण से, जब उद्धव ने यूं प्रार्थना की। अनन्य प्रेमी अपने सखा, उद्धव से उन यह बात करी।।
भगवान बोले,
महाभाग उद्धव तुमने, जो कुछ भी है मुझे कहा। सच जानो मैं भी वह, ही हूँ अब करना चाहता।।
ब्रह्मा शंकर और इन्द्रादि, लोकपाल भी यही चाहें। उनके लोकों से होते हुए, अब अपने धाम को हम जायें।।

इस धरती पर देवों का, काम था जितना भी करना। वह तो सारा काज ही, सम्पूर्ण है अब हो चुका।।
श्री ब्रह्मा की प्रार्थना पर, मैं इसी काज को आया था। दाऊ बलराम के सहित ही, था पृथ्वी पर अवतार लिया।।

यह यदुवंश तो ब्राह्मणों के, शाप से भस्म है हो चुका। परस्पर कलह और युद्ध से, नितान्त नष्ट हो जायेगा।।
आज के सातवें दिन सागर, का प्रकोप ऐसा होगा। इस द्वारका पुरी को वह, अपने में ही लय कर लेगा।।

जिस पल इस मर्त्यलोक का, मैं त्याग करूँगा हे उद्धव। तत्क्षण ही इसके सारे, मंगल हो जायेंगे नष्ट।।
थोड़े ही दिनों में फिर, कलियुग का प्रभाव होगा। इस धरती पर जब जान लो, बोल बाला उसका होगा।।
जब मैं यह धरती छोड़ दूँ, तब तुम भी यहाँ पर मत रहना। अधर्म प्रधान कलियुग में, साधु स्वभाव तुम न रहना।।

निज आत्मीय जन बन्धु बान्धव, से स्नेह अब त्याग दो। अनन्य भाव से अब सखे, मुझमें ही तेरा अनुराग हो।।
मुझमें ही अब मन लगा, पृथ्वी पर विचरण करो। समदृष्टि से ही सदा, स्वच्छन्द तुम्हारा रमण हो।।

इस जग में मन जो भी सोचे, या इन्द्रियां जो भी ग्रहण करें। वाणी बोले आंखें देखें, या जो कुछ भी श्रवण सुनें।।
वे सब ही हैं नाशवान्, है स्वप्नवत् मन का विलास। मिथ्या ही उसे जानो तुम, यह सब तो है माया मात्र।।

जिसका चित्त अशान्त है, अनेकता में वह पड़ा रहे। पागल की भाँति ही उसके, चित्त मतें भ्रम बना रहे।।
इस भ्रम के हो जाने पर, गुण दोष की कल्पना हो। इस ग्रन्थी से ही कर्म अकर्म, विकर्म रूप सब भेद हो।।

हे उद्धव अपनी सारी, इन्द्रियां अपने वश में करो। इन्द्रियां ही नहीं वृत्तियां सारी, अब प्रिय सखा तुम रोक लो।।
फिर अपने आत्म में ही, इस जग विस्तार का अनुभव ले। जानो यह आत्म इन्द्रिय परे, मुझ ब्रह्म से अभिन्न हो।।

वेदों का मुख्य तात्पर्य, ज्ञान विज्ञान तुम जानोगे। निज आत्म अनुभव में ही, आनन्द मग्न हो जाओगे।।
सब देवता आदि तनधरी, का आत्म निज को जानोगे। किसी विघ्न बाधा से तुम, पीड़ित फिर हो नहीं पाओगे।।
क्योंकि वास्तव में विघ्नकर, अनात्म भी निज को जानोगे। अनुकूल या प्रतिकूल सभी में, आत्म को पहचानोगे।।

गुण दोष भेद बुद्धि से जो, पुरुष अतीत ही हो जाये। निषेध कर्म से निवृत्ति, बालक वत् वह स्वत: पाये।।
शास्त्र विहित कर्म का, अनुष्ठान तो वह करता है। किन्तु गुण बुद्धि को वह, उन कर्मन में न धरता है।।

श्रुतियों का केवल ज्ञान नहीं, साक्षात्कार है जिसने किया। इस कारण जिसका निश्चय, दृढ़ अटील है हो गया।।
शान्त हों सब वृत्तियां उसकी, सर्व भूत हितकर वह हो। सम्पूर्ण जगत् में उसे, बस इक मेरा ही दर्शन हो।।
इस कारण पुन: जन्म मरण के, चक्र में कभी वह न आये। इस तन में ही रहता हुआ, जीवन मुक्त वह हो जाये।।

शुकदेव बोले,
जब भगवान श्री कृष्ण ने, उद्धव को यह उपदेश दिया। प्रणाम करी के फिर उनको, जिज्ञासु उद्धव ने पूछा।।
उद्धव बोले,
सब योगों का कारण हैं आप, आप ही निहित सार हैं प्रभु। योग स्वरूप योगेश्वर आप, सब योगों के आधार प्रभु।।
मेरे परम कल्याण हेतु, कृपा अब प्रभु कीजिये। संन्यास रूपा त्याग का, उपदेश मुझे अब दीजिये।।

विषयों के चिन्तन में लग, जो विषयात्म ही हो गये। विषय भोग और कामना त्याग, अति दुष्कर उनको भासे।।
उनमें भी जो लोग प्रभु, आपसे हैं विमुख हुए। मैं मानूं उनके लिये, यह त्याग असम्भव ही होए।।

मैं भी हूँ ऐसा ही प्रभु, मेरी मति भी मूढ़ हुई। यह मैं हूँ यह मेरा है, इसी भाव में डूब रहा।।
माया के आपके खेल में, मैं भ्रमित हूँ हो रहा। देह गेह दारा पुत्र और, धन में हूँ मैं खो रहा।।
आपने जो संन्यास धर्म, का उपदेश है प्रभु किया। सुगमता से मैं उसपे चलूँ, कृपया राह दें मुझे बता।।

भूत भविष्य वर्तमान, सबमें हैं एक रस मेरे प्रभो। स्वयं प्रकाश आत्म स्वरूप, किसी अन्य से न प्रकाशित हों।।
कोई देवता भी प्रभु, नहीं तत्त्व ज्ञान मुझे दे सकें। आप ही में सामर्थ है, मुझ मूढ़ को जो यह ज्ञान दें।।
ब्रह्मा आदि महादेवता सब, हैं तन के अभिमान बन्धे। इस कारण आपकी माया से, ही हैं मोहित हो रहे।।
इन्द्रिय गम्य विषयों को ही, इस कारण सत्य वह मान रहे। इस कारण प्रभु आप ही, मुझ मूढ़ को उपदेश करें।।

चहुं ओर से दु:खों की, दावानल ने मुझे तप्त किया। इस कारण विरक्त हुआ, मैं आपकी शरण में हूँ पड़ा।।
देश काल से आप परे, सर्वज्ञ सर्वशक्ति सम्पन्न। निर्दोष आप हैं अविनाशी, नर के सखा श्री नारायण।।
भगवान बोले,
यह जग है क्या यहाँ क्या होए, जो जीव विचार यह करता है। अपनी विवेक शक्ति से वह, चित्त की वासना से बचता है।।
सब जीवों में भी विशेषकर, मनुष्य का अपना आत्मा। अपने हित और अहित का, स्वयं ही ज्ञान वह है रखता।।
हर अनुभव और अनुमान से, हित अहित का निर्णय ले। इस विषय में जीव को, पूर्ण समर्थ तू जान ले।।

धीर पुरुष जो सांख्य योग, के विशारद हैं हुए। इस अति दुर्लभ मानुष, योनि को प्राप्त करके।।
इंद्रिय मन के आधार रूप, आत्म सत्ता को जान लें। मुझ आत्म तत्त्व का पूर्णतय:, प्रकट में साक्षात्कार करें।।

मैंने ही तो इस जग में, अनेकों तन बनाये हैं। भिन्न भिन्न योनि वाले, सब पाद के जीव बनाये है।।
किन्तु मेरे सवप्रिय उनमें, मनुष्य का तन ही जान ले। उसमें भी एकाग्रचिति, तीक्ष्ण बुद्धि ही जान सके।।
बुद्धि द्वारा न ग्रहण हो, अनुमान में जो न आ सके। अहंकार अदि से भिन्न, मुझ ईश्वर का अनुभव करें।।
इस विषय में महात्मन् ने, प्राचीन है इक इतिहास कहा। तेजस्वी श्री दत्तात्रेय और, राजा यदु संवाद यह था।।

धर्म मर्मज्ञ राजा यदु ने, एक बार था यूँ देखा। त्रिकालज्ञ युवा अवधूत, ब्राह्मण है निर्भय विचर रहा।।
तब उस अवधूत से, यह प्रश्न उन्होने किया। परम को कैसे जान सकें, दत्तात्रेय से उन्होने पूछा।।

यदु बोले,
हे ब्राह्मण हूँ मैं देख रहा, आप कर्म तो करें नहीं। अति निपुण यह बुद्धि प्रभु, कहाँ से आपको प्राप्त हुई?
परम विद्वान होकर भी आप, हैं शिशुवत् ही विचर रहे। है कैसी यह बुद्धि प्रभु, जिसके आसरे आप रहें?

आयु यश सुन्दरता और, सम्पद् की प्राय: आशा में। प्रवृत्त हो जीव धर्म अर्थ, काम या तत्त्व जिज्ञासा में।।
संसार में तो इस विधि ही, आचरण हैं देखे गए। अकारण कहीं किसी की भी, प्रवृत्ति देखी न जाये।।

हूँ मैं देख रहा भगवन्, हैं कर्मों में आप सामर्थ्य। हैं विद्वान और निपुण अति, प्रशंसनीय है भाग्य सौन्दर्य।।
वाणी से तो जैसे हैं, अमृत बिन्दु टपक रहे। फिर भी आप जड़ और उन्मत्त, पिशाच समान ही विचर रहे।।
न तो कोई चाहना ही है, न ही कोई र्क करें। आपके इस आचरण का, आधार है क्या भगवन् कहें।।

काम और लोभ की अग्नि में, सांसारिक जन हैं जल रहे। आपके दर्शन से भासे, आप नितान्त ही मुक्त रहें।।
उनके ताप की आंच भी, आपको छू ही न पाये। ज्यों दावानल से बचा हाथी, गंगा स्नान में मस्त रहे।।

संसार के सुख धन दारा सुत, इनके भी स्पर्श से मुक्त आप। निज स्वरूप में स्थित हैं, सदा सर्वदा आप अबाध।।
अपने ही आत्म में आप, नित्य आनन्द में कैसे रहें? मैं यह जानना चाहता हूँ, कृपा करी मुझे आप रहें।।

भगवान बोले,
हमारे पूर्वज यदुराज की, बुद्धि थी नितान्त शुद्ध। ब्राह्मण भक्ति से परिपूर्ण, था उनका अन्त:करण शुद्ध।।
महाभाग श्री दत्तात्रेय, को उन्होने यह प्रश्न किया। विनम्र भाव सत्कार से, वह सामने खड़े थे सीस झुका।।
जिज्ञासा देखी राजा की, श्री दत्तात्रेय मुदित हुए। सप्रेम श्री यदुराज से, उन्होने फिर यह वचन कहे।।
ब्राह्मण बोले,
अपनी बुद्धि से राजन्, बहुत गुरुओं का आश्रय लिया। उनसे शिक्षा पाकर मैं, स्वच्छन्द हूँ जग में विचर रहा।।
मेरे उन गुरुओं के नाम, जिज्ञासु हो तुम जान लो। उनसे क्या शिक्षा ग्रहण कर, यह रहस्य पहचान लो।।

१) दत्तात्रेय के २४ गुरु

पृथ्वी वायु जल आकाश, अग्नि चन्द्रमा सूर्य कपोत। अजगर सिन्धु भंवरा पतंगा, और शहद निकाले जो।।
हाथी हरिण मत्स्य शिशु, पक्षीकुरर वेश्यापिंगला। सर्प मकड़ी भृंगीकीट और, बाण रचयिता कुमारी कन्या।।
यह सब ही हैं मेरे गुरु, नाम जो उपरि मैंने कहे। शिक्षा क्या पाई इनसे, कैसे पाई अब यह सुन ले।।

इन चौबीस गुरुओं का, आश्रय मैंने लिय राजन्। शिक्षा है ग्रहण की लोक में, देख के उनका आचरण।।
हे नहुष पुत्र जो भी सीखा, जैसा भी है मैंने सीखा। ज्यों का त्यों वह सब ही, आज हूँ तुम्हें बता रहा।।

धैर्य और क्षमा की तो, शिक्षा ली मैंने धरती से। क्या क्या उत्पात आघात जीव, इस धरती पर नहीं करे?
न तो प्रतिकार वह ले कभी, न ही रोए या चिल्लाये। प्रारब्धानुकूल ही वह जाने, जग में सब चेष्ठा हैं करते।।
समय समय पर भिन्न विधि, जाने बिन जाने आघात करें। धीर पुरुष को चाहिये, विवशता दूजे की समझे।।
न धरती वह अपना खोए, न ही उनपर क्रोध करे। दूजे से अप्रभावित वह, अपने मार्ग पर चलता रहे।।

पर्वत और वृक्ष सभी, जो पृथ्वी के ही विकार हैं। सदा सर्वदा वह करें, दूजों का उपकार हैं।।
उनकी सारी चेष्टाएँ, परहित कारक होती हैं। वास्तव में उनका जन्म ही, जान लो केवल परहित है।।
साधु पुरुष को चाहिए, वह शिष्य उन्हीं का बन जाये। उनसे ही परोपकार की, शिक्षा ग्रहण वह करता रहे।।

शरीर की भीतरी वायु, प्राण से मैंने यह सीखा। आहार की इच्छा उतनी हो, जिससे सन्तुष्ट वह हो जाता।।
त्यों ही साधक को चाहिए, उतना ही भोजन वह ले। जिसके द्वारा उसका बस, जीवन निर्वाह सुलभ भए।।

इन्द्रियों की तृप्ति हेतु, न बहुत विषय को चाहे वो। उतना ही उपभोग करे, जिससे बुद्धि न विकृत हो।।
न यह मन ही चंचल हो, वह व्यर्थ की बातों में न लगे। अनिवार्य जो हैं जीवन के लिये, बस वही विषय वह ग्रहण करे।।

तन के बाहर की वायु से, इक अन्य ही शिक्षा मैंने ली। अनेक स्थान पर जाये वह, पर आसक्त नहीं होती।।
किसी भी विषय के गुण दोष, वह कभी न अपनाये। पर वैसा ही आचरण करे, जीव को भी यही चाहिये।।
विभिन्न कर्म स्वभाव के, विषयों से तो सम्पर्क हो। आवश्यकता अनुसार ही ले, पर लक्ष्य में अपने वह स्थिर हो।।
किसी गुण या दोष को देखकर, वह प्रभावित न होए। किसी आसक्ति या द्वेष के, बन्धन में वह नहीं पड़े।।
गन्ध नहीं वायु का गुण, वह तो गुण है पृथ्वी का। किन्तु उस गन्ध का वाहन तो, वायु ही है सदा करता।।

इतना सब करने पर भी, नहीं आवृत्त गन्ध से वह होता। सुगन्ध या दुर्गन्ध का, आवरण नहीं उसपर पड़ता।।
त्यों ही जब तक सम्बन्ध हैं, जीव का इस पार्थिव तन से। तब तक भूख प्यास व्याधि, सबका ही वहन अनिवार्य रहे।।
किन्तु जो तन न जानकर, अपने को माने आत्मा। आश्रित सा दीखे तनोगुण पर, पर निर्लिप्त सदा रहता।।

जितने भी पदार्थ हैं यहां, कारण भिन्न उनके भासें। वास्तव में आकाश तो, अखण्ड और सदा एक रहे।।
त्यों ही चर अचर जो भी, सूक्ष्म स्थूल शरीर हैं। आत्म ही सबमें स्थित रहे, भिन्न भिन्न जो शरीर हैं।।
ज्यों सूत की माला में, सूत तो हर जा व्याप्त रहे। साधक को चाहिए आत्म को, सर्वत्र सभी में वह देखे।।
नहीं जान सके कोई उसको, आकाश की तुलना निकट भए। आकाश रूप से ही साधक, आत्म तत्त्व को जान ले।।

आग लगे पानी बरसे, अन्न उत्पन्न हो या नष्ट हो। वायु की प्रेरणा से बादल, आयें या परिछिन्न हों।।
इन सबसे आकाश तो, सदा अछूता है रहता। आकाश के दृष्टिकोण से, इस भेद की सत्ता है भला क्या?
काल भेद से भिन्न भिन्न, ज्यों सृष्टि उत्पन्न लय हो। किन्तु आत्म के साथ नहीं, उनका कहीं संस्पर्श हो।।

स्वभाव से ही जल स्निग्ध मधुर, और स्वच्छ सदा है रहता। अपने स्पर्श से ही सबको, पावन है यह कर देता।।
गंगा आदि तीर्थ का तो, नाम ही पावन सबको करे। त्यों ही साधक शुद्ध हो, पावन मधुर स्वभाव से।।
जल से शिक्षा लेकर साधक, अपने दर्शन और स्पर्शन से। पावन ही सबको कर दे, अपने नामोच्चारण से।।

तेजस्वी और ज्योतिर्मय, अग्नि ज्यों राजन् होती है। किसी अन्य के तेज से, वह क्षीण नहीं होती है।।
संग्रह परिग्रह हेतु उसपे, जानो है कोई पात्र नहीं। सब भक्षण कर उर में धरे, पर दोष से हो वह लिप्त नहीं।।
त्यों साधक भी हो देदीप्यमान, अपने ही तप के तेज से। विषयों के उपभोग में भी, मन इन्द्रिय निज वश में रखे।।
न दोष ही निज में आने दे, न ही इन्द्रियों से लिप्त भए। दर्शन में उपभोग भी हो, आन्तर में निर्लिप्त रहे।।

ज्यों अग्नि कहीं तो प्रकट रहे, कहीं अव्यक्त ही वह रहे। त्यों ही साधक कहीं व्यक्त रहे, और कहीं वह गुप्त रहे।।
कहीं ऐसे रूप में वह प्रकटे, हो उपास्य कल्याणकामियों का। अग्नि समान ही नष्ट करे, यजमान अशुभ सब काल का।।
अतीत और भावी के सब, पाप स्वत: वह भस्म करे। ज्यों अग्नि हवन सामग्री सब, अपने आप भक्षण करे।।

ज्यों काष्ठ के तदरूप हो, अग्नि भिन्न आकार धरे। लम्बी चौड़ी टेढ़ी सीधी, जस लकड़ी हो वैसी ही भए।।
किन्तु वास्तव में उसका, अपना तो है कोई रूप नहीं। सर्वव्याप्त आत्म का भी, त्यों अपना रूप है कोई नहीं।।

माया रचित इस जग के, भिन्न नाम रूप में व्याप्त रहे। सम्बन्ध नहीं उनसे कोई, फिर भी वैसा प्रतीत होए।।

फिर चन्द्रमा से मैंने, है शिक्षा एक ग्रहण करी। काल जिसकी गति कभी, जानी नहीं है जा सकती।।
उसके प्रभाव से शशि कला, नित्य ही घटती बढ़ती रहे। किन्तु चन्द्र न घटे बढ़े, वह तो ज्यों का त्यों ही रहे।।
त्यों ही जन्म से मृत्यु तक, हो जो भी अवस्था तन की है। आत्म से उसका जानें, नहीं सम्बन्ध कहीं भी है।।

ज्यों अग्नि की लपट या, दीपक की जो शिखा जले। क्षण क्षण में उत्पन्न होकर, क्षण क्षण में वह नष्ट होए।।
हर पल क्रम यह चलता रहे, नहीं नयन से दृष्टिगोचर हो। त्यों ही तन परिवर्तित नित्य, वेगवान् इस काल से हो।।
अज्ञानवश ही जीव यह, दर्शन न इसका कर सके। इस कारण इस तन के ही, मोह में फंसा वह भ्रमित रहे।।

हे राजन् फिर सूर्य से, इक नव शिक्षा प्राप्त करी। अपनी तीक्ष्ण गर्मी से, पृथ्वी का जल वह खेंचे सभी।।
फिर समय आने पर वह, पुन: विमोचन उसका करे। त्यों ही योगी पुरुष भी, इन्द्रियों से विषय यह ग्रहण करे।।
किन्तु उचित समय पर वह, उन सबका ही दान करे। इन्द्रियों के किसी विषय में भी, कभी लिप्त वह न होए।।

जल के विभिन्न पात्रों में, सूर्य ज्यों प्रतिबिम्बित भए। स्थूल बुद्धि का पुरुष उसे, भिन्न भिन्न समझा करे।।
किन्तु वास्तव में तो जानो, सूर्य अनेक न हो सके। वह तो अपने आप में, एक रस ही सदा रहे।।
त्यों ही उपाधि भेद से, आत्म भी भिन्न ही दर्शाये। वास्तव में स्थूल मति वाला, ही ऐसा समझे जाये।।
स्वरूपत: सूर्य समान ही, आत्म भी सदैव एक रहे। उपाधि भेद से उसमें नहीं, कोई भेद कभी हो सके।।

अत्यधिक स्नेह किसी एक से, या आसक्ति कहीं हो जाये। निज स्वातंत्र्य खाकर बुद्धि, महा दीन हीन ही हो जाये।।
कपोत की भाँति फिर अति, क्लेश ही उसे उठाना पड़े। हे राजन् कपोत से अब, शिक्षा यह धारण कर ले।।
जंगल में इक कपोत ने, नीड़ था अपना बना लिया। निज पत्नी के संग वह, अनेकों वर्ष तक उसमें रहा।।

उस पक्षी युगल के हृदय में, निरन्तर स्नेह बढ़ता रहा। आसक्त थे निज गृहस्थ में, नहीं अन्य था कोई दीख रहा।।
दृष्टि से दृष्टि अंग से अंग, बुद्धि से थी बुद्धि बन्धी। इक दूजे के बिना कहीं, कोई दृष्टिगोचर उन्हें न थी।।

इक दूजे पर दोनों का, था ऐसा विश्वास बना। इक साथ शयन विचरण भ्रमण, वार्तालाप उनका होता।।
नि:शंक हो इक दूजे के संग, खेलते खाते पीते थे। इस विधि पति पत्नी नित्य, आनन्द में ही रहते थे।।

उस कपोत का अतिशय प्रेम, निज पत्नी पर था राजन्। महा कष्ट उठाकर भी सदा, इच्छा करता उसकी पूर्ण।।
निज कामुक पति की कामना, वह भी पूर्ण थी सदा करती। इस विधि इक दूजे संग, सुख से रहती थी दम्पत्ति।।
समय आते ही कपोती के, प्रथम गर्भ फिर ठहर गया। निज पति समीप नीड़ में, ही जा उसने अण्ड दिया।।

प्रभु की अचिन्त्य शक्ति से, काल क्रम जब पूर्ण हुआ। फूटे अण्ड और उनमें से, शिशुओं ने फिर रूप धरा।।
इक इक अंग और रौएं, अतिशय कोमल थे शिशुओं के। नन्हें नन्हें हाथ और, पाद थे नन्हें शिशुओं के।।

अब उस दम्पत्ति की आंखें, जाकर निज शिशुओं पे टिकीं। महा प्रेम और आनन्द से, लालन पालन उनका होने लगा।।
लाड़ लड़ाते वह उनसे, मीठी बाली उनकी सुनते। उनका कूजन सुन कर, आनन्द में थे वह खो जाते।।

सुकुमार पंखों से वह शिशु, जब मात पितु को थे छूते। भोली सी चेष्टायें कर, फुदक फुदक वह कूदते।।
उनका मधुर कूजन सुनकर, हर्षित माता पिता होते। अपने शिशुओं को देख देख, थे आनन्द में वह खोते।।

सच जानो तो राजन् वह, थे मोहित प्रभु की माया से। इक दूजे के स्नेह बन्धन में, थे वह परस्पर बन्धे हुए।।
नन्हें शिशुओं के लालन और, पालन में थे अति व्यग्र वह। सारी ही दीन दुनियाँ से, मानो थे हुए अनभिज्ञ वह।।

इक दिन दोनों ही पति पत्नी, भोजन लेने थे वन में गए। कुटुम्ब था अब विस्तृत उनका, पालन पोषण अनिवार्य थे।।
चिरकाल तक चहुँ ओर वह, जंगलों में थे विचर रहे। इस कारण बहुत देर तक, नहीं अपने घर वह लौट सके।।

संयोगवश उसी काल में, एक शिकारी आ पहुँचा। नीड़ के पास कपोत के, शिशुओं को उस देख लिया।।
जाल फैला शिकारी ने, उन बच्चों को पकड़ लिया। कपोत कपोती का मन तो, उन शिशुओं में था अड़ा।।
शिशुअन् के लालन-पालन को, उत्सुक थे वह सदा रहते। दाना लेकर अब दोनों, अपने नीड़ पे जा पहुँचे।।

अपने आत्मज निज हृदय अंश, जब देखे जाल में फंसे हुए। व्यथित हुए आर्त स्वर में, देखा क्रन्दन वह कर रहे।।
उनकी स्थिति यह देख कर, व्यथित कपोती हो गई। रोती और चिल्लाती हुई, उनके पास वह पहुँच गई।।

अपने मोह की रज्जू में, थी पूर्णतय: वह जकड़ी हुई। प्रभु की माया से चित्त उसकी, थी दीन और अति व्यथित हुई।।
देखी आत्मज फंसे जाल में, निज तन की सुधि उसे नहीं रही। जा पहुँची उनके पास वह, और स्वयं भी जाल में फंस गई।।

फिर देखा उस कपोत ने, मम प्राण प्रिय शिशु हैं फंसी। मेरी प्राण स्वरूपा पत्नी भी, उसी दशा में जा पहुँची।।
अति व्यथित होकर कपोत, दारुण विलाप करने लगा। उस समय अति दयनीय, ही उसकी थी मनोदशा।।

हूँ अभागा मैं दुर्मति, सत्यानाश मेरा हुआ। न ही तृप्ति मिली मुझै, न पूर्ण हुई मेरी आशा।।
धर्म अर्थ और काम का, है मूल स्त्रोत यह गृहस्थाश्रम। यह ही नष्ट है हो रहा, अब होऊँ किसके शरणापन्न?

मेरी प्राण प्रिया तो मुझको ही, इष्ट थी अपना मान रही। सर्वथा योग्य थी मेरे वह, मेरे संकेत पे नाचे थी।।
आज एकाकी इस घर में, है उसने मुझे छोड़ दिया। निज शिशुओं को संग लेकर, परलोक गमन संकल्प किया।।

मेरे शिशु गए पत्नी गई, अब संसार में क्या करूँ? पत्नी बिना विधुर जीवन, यह व्यथापूर्ण मैं क्या करूँ?
इस सूने से घर में अब, किसके लिए मैं जिऊँ भला? मेरे भी जीवन का अब, कोई प्रयोजन नहीं रहा।।

कपोत शिशु जो व्याध के, फंदे में थे तड़प रहे। स्पष्ट था यह दीख रहा, हैं मृत्यु के वह ग्रास बने।।
किन्तु यह मूर्ख कपोत, दीन इतना हो गया। जान बूझकर मृत्यु के, उस फंदे में कूद पड़ा।।

अति क्रूर वह व्याध था, उसका तो मानो भाग्य जगा। उसको हर्ष अपार हुआ, कपोत का सारा कुटुम्ब मिला।।
उन सबको ही लेकर के, वह बहेलिया आगे बढ़ा। अति प्रसन्न था वह इससे, उसका तो काज ही बन गया।।

विषयों और संगियों सहित ही, कुटुम्बी सुख अपना माने। उनके भरण पोषण में ही, क्षण क्षण उसका व्यतीत भए।।
अपनी सुध बुध ही उसे नहीं, शान्ति भला उसे कैसे मिले? कपोत समान ही कुल सहित, वह तो बस कष्ट ही कष्ट सहे।।

यह मानव तन जानो राजन्, खुला द्वार है मुक्ति का। इसे पाकर भी कपोत सम, जो है गृहस्थ में उलझा हुआ।।
बहुत ऊँचा उड़कर भी वह, अधोगति ही पाता है। शास्त्रों में आरूढ़ च्युत, ही कहा उसे जाता है।।
दत्तात्रेय बोले,
बिन इच्छा के ज्यों प्राणी, पूर्व कर्म से दु:ख पाये। लाख प्रयत्न भी चाहे करे, रोक उसे नहीं वह पाये।।
त्यों ही स्वर्ग या नरक में भी, इन्द्रिय सम्बन्धी सुख तो मिलें। सुख दु:ख के रहस्य को, विवेकी पुरुष जो जान ले।।
उसके लिये तो शास्त्र सब, आदेश हैं एक ही दे रहे। न इनके लिये इच्छा वह करे, न ही कोई भी यत्न करे।।

बिन मांगे बिन इच्छा के, अनायास जो मिल जाये। रूखा सूखा स्वादिष्ट मधुर, अधिक या कम जो भी पाये।।
बुद्धिमान को चाहिये, वह उससे ही निर्वाह करे। अजगर समान भक्षण करके, उदासीन ही सदा रहे।।

यदि भोजन न भी मिले, प्रारब्ध ही उसको जान ले। यदि भूखा भी रहना पड़े, वह कोई चेष्टा नहीं करे।।
अजगर समान प्रारब्ध के, अधीन उसे जो भी मिले। जीव को चाहिये उसमें ही, वह सदा सन्तुष्ट रहे।।

देह इन्द्रिय और मनोबल, यदि तीनों भी हों उसपे। तो भी उसको चाहिये, निश्चेष्ट सदा वह बना रहे।।
निद्रारहित होने पर भी, सुप्त सा वह भज्ञसा करे। कर्मेन्द्रियों के होते हुए, चेष्टा कोई न उनसे करे।।
हे राजन् अजगर से ही, यह शिक्षा है मैंने ली। किस विध जीवन में जीना है, यह उससे है सीख ली।।

सागर से सीखा मैंने, साधक गम्भीर प्रसन्न रहे। अथाह अपार असीम ही, भाव उसका होना चाहिये।।
किसी भी कारण से कभी, क्षोभ न मन में उत्पन्न हो। उसका जीवन तो सदा, सागर समान ही शान्त हो।।
ज्वार भाटा और तरंग, विचलित उसे न कर सकें। इन सबसे ही अछूता रह, सिन्धु सदा ही शान्त रहे।।

वर्षा ऋतु में नदियों में, महा बाढ़ भी आ जाये। किन्तु सागर में जाई वह, नहीं सागर को बढ़ा पायें।।
न ही निदियों का सूखना, ग्रीष्म ऋतु में सुखाये उसे। ऐसा ही कुछ मनोभाव, साधक का होना चाहिये।।
गर कुछ रुचिकर मिल जाये, उससे न प्रफुल्लित हो। न ही उसके वियोग से, उसका आन्तर कभी व्यथित हो।।

हे राजन् पतंगों से, इक नव शिक्षा मैंने ली। हो रू से मोहित जलें स्वयं, जलती अग्नि में कूद करी।।
त्यों ही जिस पुरुष की इन्द्रियां, उसके अपने वश में नहीं। स्त्री के हाव भाव देखी, सुध बुध अपनी खो बैठे वहीं।।
घोर तम के नरक में, पतत जीव वह हो जाये। इस विधि सर्वनाश अपना, सभी ओर से कर जाये।।
सच जानो तो नारी यह, है देवों की माया ऐसी। जीव को पुरुष या मोक्ष की, प्राप्ति से वंचित हैं करती।।

कामिनी कंचन वस्त्राभूषण, नश्वर मायिक पदार्थ जो। मूढ़ इन्हीं में फंसा हुआ, लालायित हो उपभोग को जो।।
विवेक बुद्धि अपनी खोकर, पतंगेवत् वह नष्ट हो। हिरण्मय दमक देखी उनकी, अपना आप दे उनमें खो।।
संन्यासी का है धम यह, गृहस्थी को न कष्ट दे। भंवरेवत् भिक्षुक बन के, जीवन निर्वाह अपना करे।।
तन संरक्षण के लिये, भोजन जितना अनिवार्य भए। अनेक घरों से जाकर के, टुकड़े एकत्रित वह करे।।

छोटे बड़े आकार के, भिन्न भिन्न ही पुष्पों से। सार ग्रहण करे भंवरा, बिन किसी भेद भाव के।।
त्यों ही बुद्धिमान को, शास्त्र कहीं भी कोई मिले। छोटे बड़े शास्त्रों के, सार को वह निचोड़ ले।।

मधुमक्षिका से राजन्, एक अन्य है शिक्षा ली। सायंकाल या कल के लिये, परिग्रह न भिक्षा करे कोई।।
भिक्षा पात्र गर हो कोई, तो केवल उसके हाथ हों। रखने के लिये बस उदर ही, एक ही बर्तन उसका हो।।
गर भूले से भी उसने, संग्रह कभी कोई कर लिया। मधुमक्खी के समान ही उसका, जीवन दूभर हो जायेगा।।

संन्यासी बात यह समझ ले, किसी भाँति भी परिग्रह न करे। प्रात: या सायं की उसे, सोच न करनी चाहिए।।
गर यह नियम वह भूल गया, और भूल से भी संग्रह किया। तो संग्रह के साथ ही, वह निज जीवन भी देगा गंवा।।

हाथी से यह सीखा मैंने, नहीं चरण से भी स्त्री छुए। काठ की भी बनी स्त्री का, कदापि न वह स्पर्श करे।।
यदि ऐसा करेगा वह, तो हाथी सम बन्ध जायेगा। ज्यों हथिनी का अंग संग, है हाथी को बान्ध देता।।

विवेकी पुरुष के लिये तो है, स्त्री मृत्यु ही मूर्तिमयी। भोग्य रूप में स्त्री को, वह स्वीकार न करे कभी।।
यदि स्वीकार किया उसने, तो उसका अन्त वही होगा। हाथी भी अपने से बली, हाथी से है मारा जाता।।

मधु निकालने वाले पुरुष, से मैंने यह शिक्षा ली। अति परिश्रम से जग में, धन संचित करता है लोभी।।
न तो किसी को दान ही दे, न स्वयं ही वा उपभोग करे। ज्यों मधुहारी मधुमक्खी का, सब संचित मधु ले जाये।।
त्यों ही संचित धन की ताक में, अन्य कई जन बैठे रहें। कोई अन्य ही उसके संचित, धन का फिर उपभोग करे।।

मधुमखियों का संचित मधु, वह स्वयं कभी न खा पायें। उनके उपभोग से पहले ही, मधुहारी उसे ले जाये।।
गृहस्थी त्यों ही अति श्रम से, पदार्थ एकत्रित तो करे। उनको भोगने की इच्छा, ही उसके मन भरी रहे।।
किन्तु उससे पहले ही, संन्यासी ब्रह्मचारी भोगे। अतिथि और अभ्यागत की, गृहस्थ प्रथम सेवा करे।।
तत्पश्चात ही वह स्वयं, भोजन भी कर पायेगा। उनके उपभोग के बाद ही, वह स्वयं कुछ खायेगा।।

फिर हरिण से सीखा यह राजन्, न विषय सम्बन्धी गीत सुने। संन्यासी को चाहिये, वह सदा ही उनसे दूर रहे।।
व्याध के गीत से मोहित हो, ज्यों हरिण वहाँ बन्ध जाता है। इसी विधि स्वर मोह में पड़ा, संन्यासी च्युत हो जाता है।।

क्या जाने हो राजन् तुम, ऋष्य श्रृंग मुनि की कथा? हरिणी के गर्भ से उत्पन्न हो, संगीत में मन आसक्त हुआ।।
स्त्रिय विषय सम्बन्धी जो, वाद्य गायन नृत्य देखा। उसके ही वशीभूत हुआ, उनके हाथों कठपुतली बना।।

अब राजन् तुम यह सुनो, मछली से मैंने क्या सीखा। कांटे से लगा मांस का, है तो इक छोटा टुकड़ा।।
किन्तु उसके लोभ में आ, वह अपने प्राण गंवा देती। स्वाद के लोभी जीव की भी, दुर्गति यही तो है होती।।
यह जिह्वा मन को मथ कर, अति व्याकुल ही कर जाये। इसके वश में हुआ जी, अनायास ही मारा जाये।।

विवेकी जीव अनाहार से, अन्य इन्द्रियां तो जीत सके। किन्तु इस रसना इन्द्रिय को, वह वश में न कर सके।।
आहार बन्द कर देने पर, यह और प्रबल हो जाती है। व्यथित करी उसके मन को, और भी यह तड़पाती है।।

सब इन्द्रियों को जीत के भी, जितेन्द्रिय जीव न हो पाये। जब तक रसना इन्द्रिय को, अपने वश में हो पाये।।
यदि एक रसना इन्द्रिय, उसके वश में हो गई। तो मानो सब इन्द्रियां ही, उसके हैं ज्यों वशीभूत हुई।।

प्राचीन काल में हे राजन्, मिथिला में इक वेश्या थी। पिंगला नाम की वेश्या वह, थी विदेह नगरी रहती।।

उससे जो सीखा मैंने, अब मैं तुम्हें सुनाता हूँ। सावधान होकर सुनो, मैं अपनी कथा बताता हूँ।।

अति रूपवती वह पिंगला, जानो थी स्वेच्छाचारिणी। इक रात्रि बहुत बन ठन कर, निज भवन के द्वार पे थी बैठी।।
अपने रमण स्थान में, कोई पुरुष ले जाना चाहती थी। वस्त्राभूषणों से सजकर, बहुत दीर्घकाल प्रतीक्षा की।।

वास्तव में नहीं पुरुष की, उसे तो धन की कामना थभ। इतनी दृढ़ थी कामना, अब किसी भी पुरुष को देखती।।
यह विचार आता उसे, यह तो होगा कोई महा धनी। धन दे मेरा उपभोग करे, थी यह ही चाहना उसकी।।

आगन्तुक उसे छोड़कर, कुछ आगे जब थे बढ़ जाते। उसे संकेतोपजीविनी के, मन में फिर भाव थे यह आते।।
निश्चित ही इस बार कोई, ऐसा धनी अब आयेगा। बहुत सा धन वह देगा मुझे, आनन्दित कर जायेगा।।

उसके चित्त की दुराशा यह, निरन्तर ही बढ़ती जाती। द्वार पे अपने बहुत देर तक, वह इस आस में टंगी रही।।
कभी बाहर और भीतर जाती, आंखों की नींद भी चली गई। इसी द्वन्द्व में हे राजन्, रात्रि भी आधी बीत गई।।

आशा और वह भी धन की, यह तो जानो है बहुतर बुरी। धन की बाट में मुख सूखा, चित्त अति व्याकुल हुई।।
अपनी ही यह वृत्ति देख, उसके चित्त में वैराग्य उठा। अपनी आाश को उसने, दु:ख का मूल ही जान लिया।।
उसके वैराग्य का कारण तो, थी वास्तव में उसकी चिन्ता। किन्तु ऐसा वैराग्य भी तो, हेतु बन जाता है सुख का।।

पिंगला के चित्त में जब, वैराग्य भाव यह उदय हुआ। एक गीता का रूप धरी, वह उसके कण्ठ से बह निकला।।
वही गीत है राजन् मैं, आज तुम्हें सुनाता हूँ। आशा की फांसी पर लटके, जीव की गति बताता हूँ।।
दृढ़ शस्त्र गर है काई, जो इस पाश को काट सके। वह तलवार वैराग्य की है, हे राजन् तू जान ले।।

वैराग्य न जिसका उदय हुआ, चित्त नहीं जिसका ऊबा। तन और इसके बन्धन से, वह मुक्त नहीं होना चाहता।।
जैसे अज्ञानी पुरुष कोई, ममता को त्यजना न चाहे। इसके द्वन्द्व में पड़ा हुआ, अपने को सुखी ही माना करे।।

पिंगला वेश्या बोली,
हाय देखो इन इन्द्रियों के, ही अधीन मैं हो गई। मेरे अन्धे मोह का, यह विस्तार तो देखो सही।।
जिनका कोई अस्तित्व नहीं, उनसे सुख की मैं आशा करूँ। विषय सुख की लालसा में, उनके पीछे भागी फिरूँ।।
कितने खेद की बात है यह, सचमुच मैं कितनी मूढ़ा हूँ। मिथ्या सुख की आशा में, सच्चा सुख कहां यह भूली हूँ।।

देखो तो सही मेरे निकटतम, मेरे हृदय में हैं मेरे स्वामी। सच्चे प्रेम सुख परमार्थ, के हैं एको वही धनी।।
हाय उन्हें छोड़ा मैंने, और तुच्छ पुरुष मैंने सेवे। जो मेरी एको कामना भी, पूर्ण नहीं कभी कर सकते।।
उल्टे वह दु:ख आधि व्याधि, शोक और मोह ही दें मुझे। मैं उनका सेवन करूँ, है मेरी मूर्खता यह।।

अति निन्दनीय आजीविका, वेश्यावृत्ति का आश्रय लिया। व्यर्थ हो अपने तन मन को, पीड़ा और क्लेश में डाल दिया।।
अहो खेद की बात है, यह तन तो मैंने बेच दिया। लम्पट लोभी और निन्दनीय, पुरुषों के हाथों यह पड़ा।।
महामूढ़ हूँ मैं इतनी, तन से रति सुख चाहती हूँ। धन के सुख में लिप्त हुई, धिक् धिक् इस जीवन को करूँ।।

यह तन तो है एक घर, अस्थि के बांस और स्तम्भ लगे। चर्म रोएं और नख से, आवृत्त यह वक्र अस्थि भए।।

नव द्वार हैं इस घर के, जहां से मल हर पल निकले। संचित सम्पत्ति इस घर की, केवल मल और मूत्र भए।।
मुझे छोड़कर इस जग में, होगी कौन ऐसी मूढ़ा। स्थूल तन ही प्रिय मानी, सेवन हर पल इसका किया।।

वैसे तो यह तन जानो, है विदेहों की नगरी। जीवन मुक्त के रहने का, भी तो है इक स्थान यही।।
किन्तु महामूढ़ा दुष्ट मैं, हूँ संसार में एक ही। अविनाशी परमात्म को छोड़, अन्य की कामना में पड़ी।।

मेरे हदय में बैठे प्रभु, सब जीवों के प्रियतम हैं। परम हितैषी सुहृद् स्वामी, अविनाशी मेरी आत्म हैं।।
अपने आपको अब इनके, चरणों में अर्पित कर दूँगी। अपना मूल्य चुकाकर के, अब मैं मोल इनको लूंगी।।
निरन्तर इनके संग ही, अब विहार करूँगी मैं। लक्ष्मीवत् अब इनका, नहीं कभी भी साथ त्यजूँगी मैं।।

अरे मूर्ख चित्त तू मुझे बता, इन विषयों से तुझे क्या मिला? या उन विषयों के दाता, पुरुषों से क्या सुख तुझे मिला?
वह तो स्वयं ही पल पल पर, जन्मते मरते रहते हैं। अपनी या पुरुषों की नहीं, देवों की बात भी कहते हैं।।
क्या वह भी उपभोगों से, भार्या का तृप्त कभी कर पाये? वे तो हैं स्वयं कराह रहे, काल के गाल में पड़े हुए।।

निश्चित ही कभी कोई कहीं, पुण्य कर्म मेरा होगा। जिसने प्रभु विष्णु को मुझपर, आज है प्रसन्न किया।।
तभी तो इस दुराशा से, वैराग्य है मेरे मन उठा। यह वैराग्य तो जानूँ मैं, निश्चित ही सुखकर होगा।।

यदि भाग्य मन्द होते मेरे, तो ऐसे दु:ख मुझे क्यों मिलते? जिनसे वैराग्य का जन्म हो, वह कष्ट ही सहने न पड़ते।।
वैराग्य के द्वारा ही तो जीव, सब बन्धन अपने काट सके। इसी राह से जीव वह, परम शान्ति लाभ करे।।

प्रभु का यह उपकार मैं, सीस झुका स्वीकार करूँ। आदर पूर्वक उनकी यह कृपा, अब मैं अपने सीस धूरँ।।
विषय भोग की सारी ही, दुराशा अब मैं छोड़ दूँ। उन जगदीश्वर की चरण, शरण में आज मैं जाय पड़ूँ।।

प्रारब्ध अनुकूल अब, जो भी मिले मैं ग्रहण करूँ। सन्तोष और श्रद्धा सहित, उससे ही मैं निर्वाह करूँ।।
किसी अन्य पुरुष की ओर मेरी, दृष्टि नहीं अब जायेगी। आत्म स्वरूप निज हृदयवेश्वर, संग रमण में जीवन जायेगी।।

संसार कूप में पतित जीव, विषयों से है अन्धा हुआ। काल रूप अजगर के ही, मुख में है यह पड़ा हुआ।।
यदि भाग्य मन्द होते मेरे, तो ऐसे दु:ख मुझे क्यों मिलते? जिनसे वैराग्य का जन्म हो, वह कष्ट ही सहने न पड़ते।।
काल रूप अजगर ने ग्रसा, गर दक्षता से यह देख ले। सब विषयों से विरक्त हो, यह जीव स्वयं निज रक्षा करे।।

दत्तात्रेय बोले,
हे राजन् पिंगला वेश्या ने, अपने मन में निश्चय किया। अपने प्रिय धनिकों की आशा, मिलन लालसा को त्यागा।।
शान्त भाव से वह जाकर, अपनी सेज पे सो गई। कोई दुराशा उसका मन, व्यथित नहीं थी कर सकती।।

सच जानो यह राजन् तुम, आशा में भरा है महादु:ख। निराशा में ही जानो तुम, राजन् सबसे बड़ा है सुख।।
पिंगला ने जब पुरुष की, आशा को मन से त्याग दिया। तब ही सुख की निद्रा में, प्रवेश उसका हो सका।।

अति प्रिय विषय जो जीव के, उनका संग्रह करना चाहे। प्रिय वस्तु का परिग्रह ही, उसके दु:ख का कारण बन जाये।।
विवेकवान् इस सत्य को, स्पष्ट रूप से जान ले। अकिंचनवत् ही वह अपना, जीवन फिर व्यतीत करे।।

तन की बात तो दूर रही, मन से भी संग्रह नहीं करे। सुख स्त्रोत अनन्त उस, परमात्म को वह प्राप्त करे।।

एक कुरर पक्षी इक दिन, था मांस का टुकड़ा चोंच लिये। बलवान पक्षी अन्य उसे, घेर के छीनना थे चाहते।।
चोंचों से प्रहार कर, उन्होने उसे बहुत तंग किया। सुखी तभी वह हो पाया, जब टुकड़ा मुख से फेंक दिया।।

मान या अपमान का, नहीं ध्यान है मुझे कोई। घर और परिवार की भी, कोई चिन्ता मुझे नहीं।।
अपने ही आत्म में रणम, और क्रीड़ा मैं करता हूँ। शिशु से यह सीखा मैंने, उस सम ही मौज में रहता हूँ।।
जग में दो भान्त के जीव ही, परम आनन्द में मग्न रहें। एक तो भोला भाला शिशु, दूजा जो गुणातीत भए।।

इक बार कुमारी कन्या का, वरण करने के लिये। कई लोग उसके घर में, अनायास ही जा पहुँचे।।
उसके परिवार के लोग सब, उस दिन थे बाहर गए। कन्या ने ही उन सबके, आतिथ्य के साधन किये।।

उनको भोजन कराने का, प्रबन्ध वह करने लगी। भीतर एकान्त में जाकर के, धान कूटने वह लगी।।
उसकी कलाई में शंख की, अनेकों ही चूड़ियाँ थीं। इक दूजे संग घर्षण से, वे सब ही थीं खनक रहीं।।

वह स्वयं धान है कूट रही, लोगों को पता यह चल जाता। इस कारण कुमारी ने, लज्जासूचक ही उसे समझा।।
इक इक करके सारी ही, चूड़ियाँ उसने तोड़ दीं। केवल दो दो चूड़ियां ही, दोनों हाथों में रहने दीं।।

अब पुन: वह युक्ति से, धान कूटने में लगी। वह दो दो चूड़ियां भी किन्तु, पुन: पुन: बजने लगी।।
तब एक एक चूड़ी उसने, अपनी फिर से तोड़ दी। इक इक चूड़ी थी कलाई में, अब ध्वनि सब मौन हुई।।

लोगों का आचार विचार, निरखता था मैं जा रहा। विचरण करता करता मैं, उसी स्थान पर जा पहुँचा।।
उस कुमारी कन्या से, यह शिक्षा मैंने पाई। बहुत जन का साथ साथ रहना, बन जाये कलह का कारण ही।।
दो व्यक्ति भी जब लौ रहें, बात चीत तो होती रहे। उस कन्या की चूड़ी समान, एकाकी विचरण चाहिए।।

बाण बनानेवाले से, फिर एक नई शिक्षा पाई। अभ्यास से मन वशीभूत करे, आसन और श्वास को जीत कर।।
फिर दक्षता से एकाग्र करी, इक लक्ष्य में उसको साथ ले। इस राह से ही साध्य को, साधक सहज ही प्राप्त करे।।

परमानन्द परमात्म में, जब मन स्थिर यह हो जाये। कर्मवासना की धूलि, शनै: शनै: फिर धुल जाये।।
सत्त्वगुण जब वर्धित हो, रज और तम स्वत: क्षीण भयें। ज्यों ईंधन के बिन अग्नि, अपने आप ही शान्त भए।।

मैंने देखा जो बाण के, निर्माण में था तन्मय हुआ। उसके निकट से बहुत बड़ा, दल बल एक था निकल गया।।
राजा की थी सवारी वह, अति धूमधाम से जा रही। किन्तु उसने जाना ही नहीं, उसकी दृष्टि बाण पे थी टिकी।।
इसी विधि से चित्त जिसका, निज आत्म में निरुद्ध हो। बाह्य या भीतर किसी, वस्तु का उसे आभास न हो।।

सांप से हे राजन् मैंने, एक नई शिक्षा पाई। सर्प की भाँति संन्यासी, विचरे सदा एकाकी ही।।
न ही मण्डली में रहे, न वह मठ ही बनाये कभी। न ही एक स्थान में रहे, न प्रमाद वह करे कभी।।
एकान्त गुहा में पड़ा रहे, पहचान उसे कोई नहीं सके। न ही सहायता किसी से ले, मितभाषी ही वह सदा रहे।।

इस नश्वर तन के लिये, घर का भी क्यों झंझट करें? व्यर्थ है यह और दु:ख का, मूल भी है यह जान ले ।।
दूजे द्वारा निर्मित घर में, सांप सदा ही है रहता । बहुत सुख आराम से, निज समय व्यतीत है वह करता ।।

अब तुम जानो मकड़ी से, क्या शिक्षा मैंने पाई । पूर्व कल्प में प्रभु ने ही, सारे ब्रह्माण्ड की रचना की ।।
बिना किसी भी अन्य के, निज माया से यह जग रचा । कल्पान्त में फिर उसे, निज काल शक्ति से समेट लिया ।।
भेदभाव से रहित हुए, वह फिर एकाकी रह गये । उत्पत्ति स्थिति प्रलय में बस, नारायण वह एक रहे ।।
हैं अनिष्ठान सबके स्वयं, अपना आधार वह आप हैं । प्रकृति पुरुष दोनों के ही, नियामक वह प्रभु आप हैं ।।
कार्य कारणात्मक जगत् के, आदि कारण परमात्मा । उकनी काल शक्ति से ही, सब गुण पायें साम्यता ।।
कैवल्य स्वरूप अद्वितीय वह, स्वयं रहें विराजमान् । आनन्द घन वह आप हैं, अनुभव गम्य हैं वह महान् ।।
किसी उपाधि से भी वह, सम्बन्धित कभी न हो सकें । अपनी ही काल शक्ति से वह, त्रैगुणी माया को क्षुब्ध करें ।।
प्रथम यह उससे महत्तत्त्व, क्रिया शक्ति रचना करते हैं । त्रैगुण की पहली अभिव्यक्ति, इस महत्तत्त्व को कहते हैं ।।
सब भाँति की सृष्टि का, मूल कारण है वही । उसीमें व्याप्त है सब जगत्, ज्यों ताना बाना सूत में ही ।।
इसी के कारण जीव यह, जन्म मरण के चक्र पड़े । पुन: पुन: नव तन पाये, फिर मृत्यु को प्राप्त करे ।।

ज्यों मकड़ी निज आन्तर से, ही जाला उत्पन्न करे । मुख द्वारा फैला के उसे, उसमें ही पुन: विहार करे ।।
अपने आप में ही उसको, पुन: निगल वह है जाती । परमेश्वर और जगत् की, उपमा भी है कुछ वैसी ही ।।
अपने से जग उत्पन्न करें, फिर जीव बनी उसमें विचरें । फिर उस सारे जगत् को, अपने में ही पुन: लीन करें ।।

हे राजन् भृंगी कीट ने, एक अन्य शिक्षण दिया । स्नेह द्वेष या भय से भी, एकाग्र यह चित्त है जब होता ।।
जान बूझ के चाहे हो, चाहे अनजाने में ही करे । जिसमें इक टक लग जाये, स्वरूप उसी का यह पा ले ।।

ज्यों भृंगी कीट कोई ले जाकर, अपने स्थान में बन्द करे । उससे भयभीत हुआ वह कीट, उसका चिन्तन करते करते ।।
निज तन को त्यागे बिना, उसके ही तद्रूप भये । अपना रूप ही नहीं रहे, भृंगी का वह रूप धरे ।।
इतने गुरुओं से राजन्, यह सब शिक्षा मैंने पाई । अब कहूँ जो निज तन से सीखा, हो सावधान अब सुनो वही ।।

यह तन भी जानो रिपुदमन, है मेरा अपना गुरु बना । विवेक और वैराग्य की, यह ही तो शिक्षा है देता ।।
मृत्यु और जन्म तो सदा, साथ ही इसके हैं रहते । दु:ख पे दु:ख ही मिलें उन्हें, जब लौ हैं तन पकड़े रहते ।।
यद्यपि इस तन की राही, तत्त्व विचार तो कर सकूँ । तथापि इस तन को कभी, नहीं अपना मान के मैं जाऊँ ।।
सियार और श्वानों का ही, इक दिन यह खाद्य बन जायेगा । यह जान कर इस तन से, सदा असंग ही हूँ रहता ।।

इस तन का प्रिय करने के लिये, अनेकों कामना जीव करे । सभी कर्म उस जीव के, उसी उद्देश्य से हुआ करें ।।
दारा सुत और धन सम्पद्, हाथी घोड़े नाकर चाकर । घर द्वार भाई बन्धु, सबका ले वह विस्तार कर ।।
उनके पालन पोषण में, ही सदैव वह लगा रहे । महाकष्ट सहकर भी वह, धन का संचय करता रहे ।
आयु पूर्ण होने पर, तन तो स्वयं वह नष्ट भए । वृक्ष समान वह अपने बीज, इस धरती पर छोड़ दे ।।
दूजे तन का बीज डाल, उसकी व्यस्था यह कर दे । उसके लिये भी दु:ख का ही, मानो यह नव निर्माण करे ।।

ज्यों एक पति की अनेकों ही, पत्नियाँ उसको खेंचा करें। अपनी अपनी ओर ही, आकर्षित सब करना चाहें।।
त्यों ही जीव की इन्द्रियाँ, विभिन्न दिशा में खेंचे उसे। चाहे जिह्वा कभी रसना, कभी प्यास से वह आकुल होए।।
जननेन्द्रिय दूजी ओर, सम्भोग की ही चाहना करे। कोमल स्पर्श ही चाहे त्वक्, उदर भोज ही चाहा करे।।
मधुर स्वरों की लालसा में, कर्ण सदा उत्सुक रहें। सुगन्ध के पीछे नासिका, जा जा पर भटका करे।।
चंचल नेत्र यह रूप के, बांवरे ही हुए रहते हैं। कर्मेन्द्रिय और ज्ञानेन्द्रियों के, स्वभाव ही जानो ऐसे हैं।।

अपनी अचिन्त्य माया से, प्रभु ने अनेकों योनि रचीं। वृक्ष सरीसृप पक्षी पशु, डांस मत्स्य की रचना की।।
किन्तु बहुत योनि रचकर भी, सन्तोष उनको नहीं हुआ। मनुष्य के शरीर की, रचना का फिर संकल्प किया।।
ऐसी बुद्धि दी उसको, जो ब्रह्म को भी दर्शा सके। इसकी रचना करके प्रभु, अति आनन्दित हो गए।।

है तो नश्वर ही यह तन भी, मृत्यु धर्मा ही है सदा। किन्तु परम पुरुषार्थ की, प्राप्ति है यह करवा सकता।।
अनेक जन्म के बाद ही, यह दुर्लभ मानुष तन मिले। बुद्धिमान को चाहिये, वह इसका सदुपयोग करे।।

मृत्यु से पूर्व अति शीघ्र ही, मोक्ष हेतु कुछ यत्न करे। मानव जीवन का यह ही, जानो मुख्य उद्देश रहे।।
सभी योनियों में जानो, विषय भोग तो मिल सकें। उनके संग्रह में लगकर यह, अमूल्य जन्म न तू खो दे।।

यह सब सोच विचार कर, मुझे इस जग से वैराग्य हुआ। ज्ञान की ज्योति से आन्तर, अब है ज्योतिर्मय हुआ।।
न तो कहीं आसक्ति है, न रहा कहीं कोई अहंकार। स्वच्छन्द हो रहा पृथ्वी पर, अब मेरा विचरण व्यवहार।।

केवल गुरु से ही राजन्, सुदृढ़ बोध नहीं हो सकता। अपनी बुद्धि से भी है, बहुत विचार की आवश्यकता।।
बहुत ऋषियों ने एक ही, अद्वितीय एकाकी ब्रह्म का। अनेक भाँति से बार बार, अनकों विधि है गान किया।।
गर अपनी बुद्धि से ही, तुम विचार न पाओगे। वास्तविक स्वरूप उसका है क्या, कैसे जान तुम पाओगे?

भगवान बोले,
प्रिय उद्धव गम्भीर बुद्धि, दत्तात्रेय ने उपदेश किया। अवधूत ने राजा यदु को, इस विधि सब ज्ञान कहा।।
राजा ने फिर आदर सहित, वन्दन पूजन उनका किया। प्रसन्नता पूर्वक अनुमति ले, दत्तात्रेय ने प्रस्थान किया।।

हमारे पूर्वजों के भी पूर्वज, यदुराज ने यह उपदेश सुना। सब आसक्ति त्याग कर, समत्व भाव उन्होने पाया।।
तुम भी सभी आसक्ति त्यज, समत्व भाव में आ जाओ। उपदेश का गर अनुसरण हो, सहज ही ऐसा कर पाओ।।

२) लौकिक और पारलौकिक भोगों में असारता

भगवान बोले,
साधक को चाहिये प्रिय उद्धव, सब भाँति मेरी शरण रहे। जो मैंने कहे हैं उसके लिये, हो दक्ष धर्म अनुसरण करे।।
उनसे बिना विरोध किये, निष्काम भाव को अपनाये। वर्णाश्रम कुल अनुकूल ही, सदाचार अनुष्ठान करे।।

निष्काम होने के लिये, एक उपाय है कहा। स्वधर्म का पालन करते हुए, चित्त शुद्ध है जो जाता।।
तत्पश्चात् विवेक की, जागृति आन्तर में होये। उसके प्रकाश में साधक फिर, पुन: पुन: यह विचार करे।।

शब्द स्पर्श रूप आदि, विषयों को जो सत् जानें। उनकी प्राप्ति के ही लिये, यत्न सब उनके रहें।।
इस सबका उद्देश्य तो, सुख की प्राप्ति होता है। किन्तु वास्तव में इन सबका, फल तो दु:ख ही होता है।।

इस सम्बन्ध में जान लो, विचार यूँ करना चाहिये। स्वप्न और कल्पना राह, अनेक मनोरथ जीव करे।।
जागृत अवस्था में भी कभी, उन विषयों का अनुभव करे। किन्तु सारशून्य हैं सब, इस कारण वह व्यर्थ रहें।।
त्यों ही इन्द्रियों के कारण, भेद बुद्धि जो है हुई। इन्द्रिय जन्य ही है वह तो, इस कारण है वह व्यर्थ ही।।
नानत्व के कारण भेदात्मक, बुद्धि यह असत्य ही है। वास्तव में इसका कहीं, जानो नहीं अस्तित्व है।।

मेरी शरण में जीव जो, निष्काम कर्म ही नित्य करे। बहिर्मुखी करने वाले, सकाम कर्म का त्याग करे।।
हृदय में आत्म ज्ञान की, तीव्र जिज्ञासा जब उठे। कर्म विषयक विधि विधान, स्वत: ही उसके सब छूटें।।

अहिंसा आदि यमों का वह, आदर पूर्वक पालन करे। किन्तु शौचादि नियमों का, पालन बस उतना ही करे।।
जितनी अपनी शक्ति हो, और आत्म ज्ञान से विरोध न हो। यम और नियम से भी बढ़कर, जिज्ञासु का कर्त्तव्य यह हो।।
मेरे स्वरूप का ज्ञाता और, परम शान्त जो गुरु भये। मेरा स्वरूप ही जान उसे, जिज्ञासु सेवा करे।।

अभिमान रहित हो शिष्य सदा, किसी से द्वेष वह नहीं करे। कर्मों में सदा कुशल हो, प्रमाद से सदा वह दूर रहे।।
ममत्व भाव से रहित हो, गुरु चरण में दृढ़ अनुराग हो। अमन्सक वह कभी नहीं भए, दक्षता से सब काज हो।।
सत्य की जिज्ञासा सदा, उसके मन में बनी रहे। दोष दृष्टि को त्यागे वह, और व्यर्थ की बातें नहीं करे।।

जिज्ञासु का परम धन तो, आत्म ही है जान लो। दारा सुत घर खेत और, स्वजन और धन आदि जो।।
उन सबमें बस एक रस, आत्म का सदा दर्शन पाये। उदासीन वह सदा रहे, ममत्व आरोपण नहीं करे।।

हे उद्धव ज्यों अग्नि में, काष्ठ जो है जल रहीं उसको प्रकाशित कर अग्नि, है तो उससे भिन्न ही।।
त्यों ही विचार से जान ले, पंचन्कृत् यह स्थूल तन। और सत्तरह तत्त्वां से बना, यह जो जीव का सूक्ष्म तन।।
दोनों ही दृश्य और जड़ हैं, उनका है ज्ञाता आत्मा। प्रकाशित कर स्वयं प्रकाश, उनका साक्षी है आत्मा।।
अनित्य हैं शरीर यह, नाना रूप हैं और जड़ हैं। आत्म तो नित्य एक है, वह तो जानो चेतन ही है।।
देह और आत्म जानो, इक दूजे से भिन्न हैं। देह की अपेक्षा जान लो, आत्म महा विलक्षण है।।

जब अग्न प्रज्वलित हो काष्ठ में, वह काष्ठ के सारे गुण ले ले। उत्पत्ति प्रलय गुरुता लघुता, अनेकता सब गुण ग्रहण करे।।
पर वास्तव में उन गुणों से, है अग्नि का सम्बन्ध नहीं। किसी भी गुण से वह अग्नि, कभी प्रभावित हो नहीं।।
त्यों ही जब आत्म अपने को, तन ही मानने लगे कभी। देह की जड़ता अनित्यता, अनेकता उसमें भासें सभी।।

ईश्वर से नियमित माया के, गुणों ने ही निर्माण किया। स्थूल और सूक्ष्म तन को, गुणों ने ही तो है रचा।।
जीव को तन और तन को जीव, जिस पर भूल से समझ लिया। स्थूल शरीर के जन्म मरण, सूक्ष्म के आवागमन का।।
आत्म पर आरोप किया, इस भ्रम में जब जीव पड़ा। जन्म मृत्यु रूपा संसार, इसी अध्यास को प्राप्त हुआ।।
आत्म तत्त्व स्वरूप ज्ञान, इस अज्ञान की जड़ काटे। जन्म मृत्यु के चक्र से, पुन: जीव यह उभर सके।।

इस जन्म मृत्यु रूपा जग का, कारण है बस अज्ञान ही। इसको दूर तो कर सके, निज आत्म की जिज्ञासा ही।।
प्रकृति और उसके जगत्, से है कहें अतीत यह। द्वैत की गन्ध से है रहित, अपने में स्थित है आत्म यह।।
अन्य कोई आधार नहीं, अपना आधार वह है आप। स्थूल और सूक्ष्म तन में, जो सत्य बुद्धि बनी है आप।।
सत्य ज्ञान द्वारा उसको, क्रमश: मिटाना चाहिये। शनै: शनै: अभ्यास से, ही तो ऐसा हो पाये।।

आचार्य और शिष्य तो, ऊपर नीचे की काष्ठ हैं। उपदेश ही उन दोनों के, मध्य की मन्थन काष्ठ है।।
इनके घर्षण से ज्ञान अग्न, जो प्रज्वलित होती है। विलक्षण सुख दे वह अग्न, सर्व अमंगल हरती है।।
विवेकी शिष्य सद्गुरु से, इस यज्ञ में शुद्ध ज्ञान पाये। गुण रचित यह विषय माया, सब उसमें भस्म ही हो जाये।।
तत्पश्चात् वह गुण भी जलें, जिनसे है जग की रचना हुई। सबके भस्म हो जाने पर, बिन आत्म अन्य न कुछ रहती।।
तब यह ज्ञान अग्नि भी, निज वास्तविकता में शान्त हो। ज्यों समिधा न मिलने पर, अग्न स्वत: ही शान्त हो।।

हे उद्धव कर्मों का कर्ता, और सुख दु:ख का है जो भोक्ता। यदि मानो अनेक उसे, फिर जगत् काल वेद आत्मा।।
पदार्थ स्थिति प्रवाह से, सब नित्य सत्य तुम माने हो। बाह्य आकृति के भेद से ही, यदि ज्ञान को जाने हो।।
उनके साथ ही गर मानो, यह ज्ञान बदलता है रहता। तो जन्म मरण के चक्र से, नहीं मुक्त कभी हो सकता।।
पुन: पुन: इसी चक्र में, फिर भरमाता जायेगा। आत्म की नित्य सत्ता में, स्थित नहीं हो पायेगा।।
यदि ऐसा मान भी लो उद्धव, देह काल से है बधित जीव। जन्म मरण अवस्था उनकी, भी गर मानो सदा नित्य।।
फिर यहां भी कर्मों का कर्ता, और सुख दु:ख का जो भोक्ता है। वह भी तो परतंत्र ही, सदा दिखाई देता है।।
यदि स्वतंत्र हो इसमें जीव, तो दु:ख भला वह क्यों भोगे? और दूजों के अधीन है जो, कौन विषय सुख दे सके?
इस मत के अनुसार जीव, कभी मुक्त न हो सके। स्वयं विवश जो सदा रहे, स्वार्थ परमार्थ कहां मिले?

यदि यह मानो कर्मकुशल, सदा सुखी ही रहते हैं। और कर्म में अकुशल जन, दु:ख में भ्रमित ही रहते हैं।।
तो भी जीवन में देखा है, महा कार्य कुशल नहीं सुख पाते। और महामूढ़ के भाग्य में भी, कभी दु:ख निकट हैं नहीं आते।।
अपनी बुद्धि या कर्म से, जो सुख का हैं दम्भ भरते। वास्तव में यह अभिमान तो, व्यर्थ ही उनका बना रहे।।

यदि यह मान भी ले कोई, सुख दु:ख हैं उसके अपने अधीन। तो भी यह तो मानेगा ही, है स्वयं भी वह मृत्यु अधीन।।
नहीं ऐसी विद्या कोई जाने, मृत्यु का न प्रभाव हो। काल न उसपर वार करे, और कभी मृत्यु न हो।।

जब मृत्यु उसके सीस पे, निरन्तर नृत्य है कर रही। तो कौन कामना सामग्री, किस भोग की सुख है दे सकती?
जिस जीव को फांसी के लिये, है वध स्थान पे लाया गया। को पुष्प चन्दन स्त्री आदि, विषय उसे शान्त है कर सकता?

लौकिक सुख समान ही हैं, पारलौकिक सुख भी सदोष। वहाँ भी अपने बराबर के, लोगों से सदा रहे होड़।।
अपने से अधिक हो जिसके पास, वहाँ पे दोष ही दीखा करे। और अपने से न्यून प्रति, घृणा का भाव भी उभर पड़े।।
प्रतिदिन क्षीण हों पुण्य जब, सुखों का भी क्षय भये। और समय के प्रभाव से, इक दिन पूर्ण वह नष्ट भयें।।
फिर कामना की पूर्ति में भी, सम्भावना विघ्नों की रहे। यजमान ऋत्विज और कर्म, आदि में कभी जो त्रुटि भये।।
ज्यों हरी भरी खेती भी, अधिक वृष्टि से नष्ट हो। त्यों ही स्वर्ग मिलते मिलते, विघ्नों से कभी अप्राप्य हो।।

यदि बिना किसी विघ्न के, यज्ञ याग पूर्ण भी हो जायें। उनके द्वारा जो लोक मिलें, उनकी भी अब मुझसे सुन ले।।
यज्ञ करनेवाला पुरुष, देवों की आराधना करता है। यज्ञों द्वारा उन्हें पूज करी, वह स्वर्ग लोक में जाता है।।
जो दिव्य भोग कमाये हैं, निज पुण्य कर्मों के द्वारा। देवों समान उन भोगों का, उपभोग वहाँ है वह करता।।

पुण्यों के अनुरूप उसे, हिरण्मय एक विमान मिले। उसपे आरूढ़ सुर सुन्दरियों, के संग वह विहार करे।।
गन्धर्व गण सब मिल कर, उसक गुण ही गाया करें। सुन्दर रूप लावण्य वा, सबका मन लुभाया करे।।

जहाँ ले जाना चाहे वह, वहीं विमान वह जा पहुँचे। सारी दिशाओं में उसकी, घंटियों की झंकार उठे।।
अप्सरा गण के संग वह, नन्दन वन में विहार करे। देवों के उस लोक में, वह सुध बुध अपनी खो बैठे।।
यह सत्य भी भूले वह, जब पुण्य समाप्त हो जायेंगे। न चाहते हुए भी हम, यहाँ से धकेले जायेंगे।।

जब तक पुण्य उसके शेष बचें, चैन से रहे वह स्वर्ग में। किन्तु क्षीण होते उनके, नीचे तो उसको गिरना पड़े।।
इच्छा न होने पर भी, ऐसा होना अनिवार्य है। यही गति है काल की, यह चक्र तो अपरिहार्य है।।

कुसंगत में पड़कर कोई, अधर्म की राह पे गर चले। इन्द्रियों के वशीभूत हो, मनमानी गर वह करने लगे।।
लोभवश कण कण में, कृपणता वा दर्शाने लगे। स्त्री लम्पट हो जाये वह, या प्राणियों को सताने लगे।।

शास्त्र विरुद्ध पशु बलि दे, भूतों प्रेतों की पूजा करे। तब तो पशुओं से भी नीच, वह नरक लोक में जा पहुँचे।।
अन्त में घोर अन्धकार, और अज्ञान में वह भटके। स्वार्थ और परमार्थ भी, दोनों से ही वह रहित भए।।

जितने भी सकाम और, बहिर्मुखी हैं कर्म जानो। उसका फल बस दु:ख ही है, इस सत्य को तुम मानो।।
तन में अहंता ममता भर, जो जीव उसी में रमा रहे। जन्म पे जन्म और पुन: पुन:, मृत्यु पे मृत्यु प्राप्त करे।।
ऐसी स्थिति में मृत्यु धर्मा, जीव भला क्या सुख पाये? जन्म मरण और मरण जन्म, के चक्र में वह घूमे जाये।।

समस्त लोक और लोकपाल भी, सीमा बधित हैं आयु लिये। इस कल्प की आयु भी पाकर, हैं मुझसे सदा भयभीत वे।।
किसी अन्य की बात ही क्या, हैं ब्रह्मा भी भयभीत स्वयं। काल से सीमित दो परार्ध, की आयु है जिनकी स्वयं।।

तीनों गुण ही सब इन्द्रियों को, उनके कर्म में प्रेरित करते हैं। इन्द्रियों द्वारा फिर जानो, सगरे कर्म ही होते हैं।।
अज्ञानवश इन गुणों और, इन्द्रियों को माने अपना आप। उनके कर्मों के सुख दु:ख का, भोक्ता बन जाये जीव आप।।

जब तक गुण अधीन रहे, तन को ही मैं मेरा समझे। आत्म से एकत्व की, अनुभूति तब लौ न होए।।
नानात्व में पड़ा हुआ, पराधीन ही सदा रहे। काल अथवा कर्म का, शासन उसपे लगा रहे।।

जब तक परतंत्रता है बनी, तब लौ भय भी बना रहे। अहं ममत्व के भाव से, हर पल ही वह ग्रसित रहे।।
आत्म की अनेकता और, परतंत्रता वह माने। वैराग्य न हो उसको कभी, बहिर्मुखी वह कर्म करे।।
शोक मोह की प्राप्ति ही, वे जन निरन्तर करते रहें। इनसे न निवृत्त वह हों, इसी भंवर में पड़े रहें।।

जब माया के गुणों में, क्षोभ उत्पन्न हो उद्धव। मुझ आत्म में ही काल जीव, वेद लोक सब भासें तब।।
स्वभाव धर्म आदि यह सब, नानात्व भासने तब लगें। अनेकों ही नामों से फिर, निरूपण मेरा करने लगें।।

जानो यह सब हैं मायामय, वास्तविक सत्य है आत्मा। मेरा सत्य स्वरूप तो, जानो है इक आत्मा।।

उद्धव बोले,
जीव तो देहादि रूप, और गुण में ही प्रभु है रहता। फिर देह के कर्म सुख दु:ख आदि, फल रूप में कैसे नहीं बन्धता?
आत्म तो गुणों से है, सर्वथा ही कहें निर्लिप्त। देह आदि के सम्पर्क से, वह तो है नितान्त रहित।।
फिर इन सबके बन्धन में, कैसे यह बन्ध जाता है? नित्य निर्लिप्त होकर भी, क्यों बन्धा सा यह दर्शाता है?

बद्ध अथवा मुक्त पुरुष, का व्यवहार कसे होता है? कैसे लक्षण हैं उसके, जिनसे पहचाना जाता है?
भोजन कैसे हो उसका, मल आदि त्याग वह कैसे करे? कैसे सोए कैसे बैठे, चलना फिरना कैसे होए ?

हे अच्युत हर प्रश्न के, मर्मज्ञ हैं प्रभु श्रेष्ठ आप। इस कारण मेरे प्रश्न का, उत्तर भी दें प्रभु आप।।
गुण संसर्ग से इक आत्म, नित्य बद्ध ही जान पड़े। और असंगता से पुन:, नित्यमुक्त ही वह होए।।
अति भ्रमित हूँ मैं हुआ, समझ नहीं कुछ आ रहा। कृपा कर के हे अच्युत, आप ही संशय हरें मेरा।।

३) बद्ध, मुक्त और भक्त पुरुषोंके लक्षण

भगवान बोले,
है आत्म बद्ध या मुक्त है, इस प्रकार का विचार जो। मेरे अधीन रहने वाले, सतोगुण के ही कारण हो।।
तत्त्व की दृष्टि से जानो, ऐसा हो ही नहीं सके। सब गुण हैं माया में ही, है इक इन्द्रजाल ही यह।।
न मुझमें कोई बन्धन है, न ही है मेरा मोक्ष कोई। यह दोनों तो जान प्रिय, हैं माया की दृष्टि से ही।।

ज्यों स्वप्न घटित हो बुद्धि में, बिन हुए वहाँ पर भासे वह। वास्तविकता नहीं कोई वहाँ, है तो सब मिथ्या ही वह।।
त्यों ही शोक मोह सुख दु:ख तनो जन्म और मृत्यु सभी। संसार प्रतीति है माया में, वास्तविकता में कुछ भी नहीं।।

तनधारी को मुक्ति का, अनुभव आत्म विद्या दे। अविद्या की उसको जानो, बन्धन अनुभव दे दे।।
यह दोनों ही जान लो, अनादि शक्तियाँ हैं मेरी। मेरी माया से रचीं गईं, नहीं वास्तविकता इनकी कोई।।

हे उद्धव तुम तो स्वयं, विवेकवान् हो विचार करो। वास्तव में जीव तो एक ही है, मेरे अंश रूप में कल्पित हो।।
वस्तुत: है मम स्वरूप वह, मुझसे भिन्न न हो सके। आत्म ज्ञान पा मुक्त भए, न जाने सत्य तो बद्ध रहे।।
यह अज्ञान भी तुम जानो, है अनादि ही कहें। इस कारण बन्धन को भी, तू अनादि जान ले।।

मुझ एक में ही सदा, जीव निरन्तर रहता है। पर विरोधी धर्मों में वह विचरता सा दर्शाता है।।
कभी शोक आनन्द कभी, विपरीत धर्म जो जान पड़े। उस बद्ध और मुक्त जीव का, भेद सुनो अब कहूँ तुझे।।

बद्ध और मुक्त के भेद से, जीव और ईश्वर रहते हैं। भिन्न भिन्न होकर भी वह, एक शरीर में रहते हैं।।
यह तन जानो इक वृक्ष है, हृदय ही उसमें नीड़ है। दो पक्षी वहाँ यदृच्छया रहें, नाम ईश्वर और जीव है।।
वे दोनों ही चेतन हैं, इस कारण दोनों समान हैं। अभिन्न सखा हैं यह दोनों, नहीं बिछुड़न का कहीं काम है।।
तनोवृक्ष के सुख दु:ख रूपा, फल जीव पक्षी भोगे। न भोगे जो असंग रहे, उस साक्षी को ईश्वर कहें।।
ज्ञान आदि बल के कारण, जीव से इसको श्रेष्ठ कहें। साक्षी रूप में रहे वहां, किसी बन्धन में नहीं पड़े।।

सबका साक्षी अभोक्ता वह, निज स्वरूप को जाने है। जीव और जग की वास्तविकता, वह द्रष्टा तो पहचाने है।।
किन्तु भोक्ता जीव तो, अपना स्वरूप न जान सके। न ही दूजे परमात्म को, वह कभी पहचान सके।।
अविद्या से युक्त जीव, नित्य बद्ध ही है रहता। विद्या स्वरूप ईश्वर तो, नित्य मुक्त ही है सदा।।

देह में स्थित रहकर भी, विज्ञानी तो रहे नित्य मुक्त। ज्यों स्वप्न खुल जाने पर, स्वप्न से जागा हुआ पुरुष।।
स्वप्न देह में रहकर भी, वास्तव में वह वहाँ स्थित नहीं। किन्तु अज्ञानी पुरुष तो, माने निज को इक देह ही।।
ज्यों स्वप्न का द्रष्टा स्वप्न में, स्वप्न से बन्ध जाता है। इसी विधि अज्ञानी भी, माया में भरमाता है।।

इन्द्रियाँ तो अपने विषय, शब्दादि सब करें ग्रहण। नियमानुसार गुण ही तो, गुणों को करते हैं ग्रहण।।
निर्विकार अपने स्वरूप को, जो विज्ञानी जान ले। विषयों के ग्रहण या त्याग में, वह नहीं कोई अभिमान करे।।

यह तन तो है रेखा बधित, जो भी कर्म इस राही हों। तनोकर्म या मनो कर्म, सब गुणों के ही अधीन हों।।
अज्ञानी पुरुष व्यर्थ में ही, अपने को कर्ता मान ले। इस अभिमान के ही कारण, वह बन्धन में जाय पड़े।।

सोना बैठना गमन स्नान, दर्शन स्पर्शन भोजन या घ्राण। श्रवणादि सब विषयों से, विवेकी जन हों विरक्तवान्।।
गुण को ही कर्ता भोक्ता मान, अपने को कर्ता न माने। कर्म वासना और फल, उस विद्वान को न बान्धे।।
प्रकृति में रहते हुए भी वह, नित्य असंग ही रहें सदा। स्पर्श जल और गन्ध से ज्यों आकाश सूर्य वायु हैं सदा।।
उनके विमल मति की असि, असंग भाव ने तीक्ष्ण की। सब संशय उससे छिन्न करी, दृढ़ता से है दूर करी।।
जैसे कोई स्वप्न में, अनायास ही जाग उठे। त्यों ही इस भेद बुद्धि के, सब भ्रम उनके दूर हुए।।

प्राणेन्द्रिय मन बुद्धि की, सारी चेष्टायें जिनकी। बिन संकल्प ही हों सदा, हैं मुक्त सदा वह देह वासी।।
उस मुक्त जीव के तन को कभी, हिंसक गर पीड़ा पहुँचाये। चाहे दैवयोग से कोई, उनकी पूजा करने लग जाये।।
न तो दु:खी वे हों कभी, और न ही वे मुदित भयें। पीड़ा मिले या हो पूजा, दोनों में ही वह सम रहें।।

गुण और भेद की दृष्टि से, जो महात्मन् हुए परे। न तो भले की स्तुति करें, न बुरे की निन्दा ही करें।।
अच्छी बात किसी की सुन, वह उसको साराहें नहीं। बुरी बात किसी अन्य की सुन, भर्त्सना न वह करें कभी।।
गुण दोष दोनों से रहित, मौनी समदर्शी मुक्त है। वह ही जीव तू जान ले, उद्धव जीवन मुक्त है।।

न तो भला बुरा ही वह, काम कभी भी हैं करते। न कुछ सोचें भला बुरा, न ही वैसा कुछ हैं करते।।
इस प्रकार समभाव में, आनन्द मग्न वह सदा रहें। जड़वत् ही वे इस जग में, विचरण भी करते रहें।।

वेदों के पारंगत भी, यदि ब्रह्म ज्ञान से शून्य हों। उनका सारा परिश्रम ही, जान ले पूर्ण निष्फल हो।।
ज्यों बिना दूध की गाय को, कोई कितना भी पाला करे। हृष्ट पुष्ट उसे करने का, लाभ नहीं कुछ उसे मिले।।

दुग्धदोहा गाय और, व्याभिचारिणी स्त्री जो। दुष्ट पुत्र पराधीन तन, नहीं धन जो दिया सत्पात्र को।।
मेरा गुणगान हीन वाणी, त्यों ही व्यर्थ तू जान ले। इन सबका रक्षक जीवन भर, दु:ख पर बस केवल दु:ख झेले।।

जिस वाणी से लोकपावनी, मम लीला वर्णन न हो। जग उत्पत्ति स्थिति प्रलय, इनका गुण दर्शन न हो।।

मेरे राम और कृष्ण रूप का, यशोगान जिस रा न हो। वह वाणी तो वन्ध्या है, उसका लाभ भला किसको हो?
बुद्धिमान पुरुष तो सदा, ऐसी वाणी से दूर रहे। न तो उच्चारे उसे कभी, न वह कभी उसे श्रवण करे।।

ऐसा निश्चय करके फिर, नानात्व के भ्रम को दूर करे। आत्म जिज्ञासा विचार से, चित्त मुझमें एकाग्र करे।।
निर्मल चित्त को सर्वव्यापी, परमात्म के अर्पित्त करे। जग के सब व्यवहार से, उपराम तत्पश्चात् भये।।
गर अपने इस मन को तुम, परब्रह्म में स्थिर न कर सको। निरपेक्ष भाव से सम्पूर्ण, कर्म मुझे अर्पित्त करो।।

मेरी कथाएँ जनो तुम, हैं सब लोक पावनी। श्रद्धा से श्रवण उनका करो, हैं वे कल्याणकरिणी।।
बार बार अवतार मेरे, उनकी लीलाओं का गान करो। सुमिरन् और अभिननय उनका, जानो महापावनी हो।।

धर्म काम और अर्थ का, सेवन हो बस मेरे लिये। भक्त तो हर ही हाल में, मेरे आश्रित सदा रहे।।
ऐसा करके प्रिय उद्धव, अनन्य भक्ति वह प्राप्त करे। मुझ अविनाशी पुरुष प्रति, एकाकी भाव उसका रहे।।

सत्संग ही रहा है जान ले, मम भक्ति की प्राप्ति का। भक्ति प्राप्त कर जीव वह, मेरी उपासना है करता।।
मेरे सान्निध्य के अनुभव से, अन्त:करण फिर शुद्ध हो। सन्तों के उपदेश फिर, उसके जीवन में सिद्ध हों।।
मेरा जो सच्चा स्वरूप, उन सन्तों ने है बतलाया। उस परम पद को सहज ही, प्राप्त वह भक्त है कर लेता।।
उद्धव बोले,
महासन्त जन हे प्रभु, आपकी कीर्ति गाया करें। क्या लक्षण हैं सन्त के, आप ही मुझको बतलायें।।
आपके श्री चरणों में प्रभु, भक्ति कैसी चाहिये? सन्त जिसका करें आदर, कैसी अनुरक्ति चाहिये?

ब्रह्मा आदि सब देव और, सत्यादि लोक चराचर जग। सबके स्वामी हैं आप प्रभु, आपके ही हैं अधीन सब।।
मैं तो हूँ विनम्र प्रेमी, और आपका शरणागत हूँ।क्ति। भक्ति भक्त का गुह्य रहस्य, प्रभु बतलायें मुझको अब।।

प्रकृति परे पुरुषोत्तम आप, चिदाकाश स्वरूप हैं परं ब्रह्म। नहीं आपसे कुछ भी भिन्न प्रभु, विविध रूप करें धारण।।
अपनी लीला हेतु ही प्रभु, स्वेच्छा से है अवतार लिया। भक्ति और भक्त का मर्म प्रभु, आपके बिन को कह सकता
भगवान बोले,
प्रिय उद्धव तुम जान लो, मम भक्त कृपा की मूर्त है। नहीं वैर भाव किसी जीव प्रति, महादु:ख में भी सदा मुदित है।।
सत्य ही उस भक्त के, जीवन का सार है जान लो। उसके मन में कभी कोई, नहीं पाप वासना उत्पन्न हो।।
समदर्शी वह भक्त मेरा, सर्वभूत हितकर ही हो। बुद्धि भी उसकी जानो, नहीं कामना से कभी कलुषित हो।।

संयमी मधुर स्वभावी वह, आन्तर में पवित्र हो। संग्रह परिग्रह से दूर रहे, नहीं चेष्ठा कभी कोई उसकी हो।।
सीमित ही हो भोजन उसका, और सदा वह शान्त रहे। बुद्धि उसकी सदा स्थिर रहे, है मेरा ही भरोसा उसे।।
आत्म तत्त्व के चिन्तन में, सदा ही वह संलग्न रहे। अहर्निश वा चित्त तो, बस मुझमें ही टिका रहे।।

गम्भीर स्वभाव प्रमाद रहित, और है वह अति धैर्यवान्। भूख पिपासा शोक मोह, जन्म मृत्यु उसके वश में जान।।
अपने लिये न चाहे मान, पर दूजों को सदा मान दे। सभी का मित्र सुहृद् बने, मेरी बात निपुणता से कहे।।
हृदय है उसका करुणामय, मेरे तत्त्व ज्ञान का बोध उसे। यथार्थ में ऐसा ही जीव, मेरी सत्यता जान सके।।

वेदों शास्त्रों ने हे उद्धव, मानव धर्म उपदेश किया। उनके पालन से अन्त:करण, शुद्धि आदि गुण पा लेता।।
उनका जो अतिक्रमण करे, नरक का दु:ख वह प्राप्त करे। किन्तु मेरे भक्त तो उनको भी, विक्षेप जान के त्याग दे।।
केवल मेरे भजन में ही, निरन्तर लगा वह रहता है। जग सारा उस भक्त को, महासन्त ही कहता है।।

कैसा हूँ कौन मैं कितना बड़ा, यह बातें चाहे न जाने। अनन्य भाव से मेरा ही, भजन जो जन करना जानें।।
मेरे मत से जानो उद्धव, वही हैं मेरे प्रिय भक्त। मेरे विग्रह भक्तों के दर्शन, स्पर्शन् पूजन में रहते रत।।
श्रद्धा हृदय में धर करी, सेवा स्तुति प्रणाम करें। मेरे ही गुण कर्मों का, नित्य वह कीर्तन किया करें।।

मेरी कथा श्रवण में श्रद्धा हो, निरन्तर मेरा ध्यान करें। जो मिले मुझी को समर्पित हो, आत्म निवेदन वह करें।।
मेरे दिव्य जन्म और कर्मों की, चर्चा वह करता रहे। पर्वों को अति उत्साह से, ही वह सदा मनाया करे।।
संगीत नृत्य और वाद्यों से, मम मन्दिर में उत्सव करे। अन्य भी सब लें भाग वहाँ, इसके लिये प्रेरित करे।।

वार्षिक पर्व के दिनों में, मेरे स्थानों की यात्रा करे। शोभा यात्रा निकला कर, उपहार से मेरी पूजा करे।।
वैदिक या तान्त्रिक पद्धति से, दीक्षा फिर वह ग्रहण करे। नित्य निरन्तर वह मेरे, व्रतों का ही पालन करे।।

मन्दिरों में मेरे विग्रह ही, स्थापना में श्रद्धा रखे। अकेला गर न कर सके, अन्यों का वह सहयोग ले।।
पुष्प वाटिका बाग बगीचे, क्रीड़ा स्थान वह बनवाये। मेरे लिये ही नगर और, मन्दिर निर्माण वह करवाये।।
सेवकवत् निष्कपट भाव से, मन्दिरों की सेवा करे। झाड़ बुहार लीप पोत, छिड़काव करी चौक पूरे।।

अभिमान दम्भ से दूर रहे, न ही शुभ कर्मों का बखान करे। मुझे समर्पित दीपक के, प्रकाश से भी निज काम न ले।।
फिर मुझे चढ़ाया हुआ धन तो, अपने काम कैसे ले सके? किसी अन्य देव को अर्पित की, वस्तु न पुन: चढ़ाये मुझे।।

संसार में जो सबसे अधिक, अपने को प्रिय अभीष्ट लगे। वह वस्तु मम चरण धरी, समर्पित्त मुझको ही कर दे।।
ऐसा करने से वह वस्तु, अनन्त फल दे बन जाये। मेरे राही ही वह भक्त, मनोवांछित सब फल पाये।।

जाने सूर्य अग्नि वैष्णव, गौ ब्राह्मण और आकाश। वायु जल पृथ्वी आत्म, और सम्पूर्ण जो प्राणी आप।।
यह सब ही मेरी पूजा के, स्थान हैं उद्धव जान ले। ऋक् यजु: और सामदेव, मन्त्रों से सूर्य में पूजे मुझे।।
हवन के द्वारा अग्नि में, आतिथ्य से ब्राह्मण में पूजे। हरी घास आदि द्वारा, गौर में मेरी पूजा करे।।
इस विधि सारे रूपों में, मुझको ही वह उपास ले। मेरा भक्त इन सबमें ही, हर पल मेरा दरस करे।।

भाई बन्धु सम वैष्णव जन, का वह भक्त सत्कार करे। निरन्तर ध्यान टिकाकर के, हृदयाकाश में पूजे मुझे।।
मुख्य प्राण जानी मुझको, वायु में मेरी पूजा करे। जल और पुष्प आदि से, जल में आराधना मेरी करे।।

माटी की बनी वेदी में, गुप्त मन्त्र से न्यास कर। उपर्युक्त भोगों द्वारा, आत्म में आराधना करे मेरी।।
समदृष्टि से सब प्राणियों में, वह पूजन करे मेरा। क्षेत्रज्ञ आत्म रूप से, सब प्राणियों में है वास मेरा।।

इन सभी स्थानों में जान, श्री हरि हैं स्वयं विराजमान्। शंक चक्र गदा पद्म लिये, चतुर्भुज शान्तमूर्ति महान्।।
ऐसा ध्यान करते हुए, चित्त अपना एकाग्र करे। एकाग्र भाव से ही सदा, मम पूजन करना चाहिए।।

जो जीव एकाग्र चित्त से, इष्ट और पूर्त काज करे। इन राही मेरा पूजन कर, मेरी श्रेष्ठ भक्ति को प्राप्त करे।।
सन्तों की सेवा से वह, मम ज्ञान भी पा जाता है। इस भाँति वह शनैः शनैः, मुझे प्राप्त हो जाता है।।

हे उद्धव यह है मेरा मत, सत्संग और भक्ति चाहिये। इन दोनों का साथ साथ, अनुष्ठान करना चाहिये।।
यह द्वौ साधन छोड़कर, नहीं अन्य है कोई उपाय कहीं। भव सिन्धु से तार सकें, यह दोनों उत्तम साधन ही।।
सन्त पुरुष तो मुझको ही, अपना आश्रय हैं मानते। मैं भी उनके पास रहूँ, यह सत्य तू जान ले।।

परम रहस्य की गोपनीय, इक बात बताता हूँ तुझे। मेरा प्रिय सेवक सुहृद् और, तुम परम प्रिय हो सखा मेरे।।
इस पर श्रवण के लिये, जिज्ञासा भी तेरे मन में भरी। इस कारण प्रिय उद्धव, यह सुनने के हो पात्र तुम्हीं।।

४) सत्संग की महिमा और कर्मत्याग की विधि

भगवान बोले,
संसार की सब आसक्ति को, सत्संग ही जानो नष्ट करे। इस कारण सत्संग ही, जानो मुझे पूर्ण वश में करे।।
न योग न साधन स्वाध्याय, न धर्म का पालन मुदित करे। तपस्या त्याग इष्टापूर्त, दक्षिणा भी वस न मुदित करे।।
व्रत यज्ञ वेद तीर्थ, यम नियम में भी सामर्थ्य नहीं। सत्संगवत् करे मुझे वश में, ऐसी किसी में सामर्थ्य नहीं।।

हे अनघ नहीं यह इक युग की, सब युगों की ही यह बात है। दैत्य राक्षस पशु पक्षी, गन्धर्व आदि करें प्राप्त है।।
अप्सरा नाग सिद्ध चारण, गुह्यक और विद्याधर पायें। सत्संग राही ही उद्धव, यह सब हैं मुझ तक आयें।।
मानव योनि में वैश्य शूद्र, स्त्री और अन्यज आदि। रजोगुणी ओर तमोगुणी, परम पद पायें जीव सभी।।
वृत्रासुर प्रह्लाद बलि, वृषपर्वा और बाणासुर। मयदानव सुग्रीव विभीषण, हनुमत जाम्बवन्त गजेन्द्र।।
जटायु तुलाधार वैश्य, धर्मव्याध कुब्जा आदि। यज्ञपत्नियां व्रज की गोपियां, और अन्य भी लोग सभी।।
सत्संग के ही प्रभाव से, मुझे प्राप्त वह कर सके। यह ही है राह जो सुलभ, मेरी प्राप्ति करवा दे।।

न तो था वेदाध्ययन किया, न ही विधिवत् की उपासना। न महाव्रत थे धारण किये, न कीनी कोई तपश्चर्या।।
बस केवल सत्संग से ही, मुझको प्राप्त वे हो गए। इसी राह पे चल कर, सहज वह मुझ तक पहुँच गए।।

गोपियां धेनु यमलार्जुन, व्रज के हरिण आदि पशु। कालिय नाग आदि सब, थे इस वषिय में सर्वथा मूढ़।।
इतना ही नहीं अन्य भी, ऐसे हैं बहुत जन हुए। प्रेम पूर्ण मन से ही जो, अनायास मुझे प्राप्त हुए।।

सांख्य दान व्रत तप यज्ञ, स्वाध्याय श्रुतियों की व्याख्या। संन्यास आदि साधनों से, नहीं साधक मुझे पा सकता।।
किन्तु सत्संग के द्वारा तो, अति सुलभ हूँ मैं होता। सत्संगी की पकड़ में तो, सहज ही हूँ मैं आ जाता।।

दाऊ बलराम के सहित मुझे, अक्रूर जब मथुरा लाये। प्रगाढ़ प्रेम से गोपियों के, हृदय थे मेरे रंग में रंगे।।
मेरे प्रेम की तीव्र व्यथा से, थीं पीड़ित वह-हो रहीं। मेरे सिवा कोई दूसरी वस्तु नहीं सुखदाई थी।।

तुम जानो उद्धव उनका, हूं मैं ही एकमात्र प्रियतम। बहुत सी रास की रातें बीतीं, ज्यों हो बस आधा ही क्षण।।
वृन्दावन में वह रात्रियां, अब बनीं कल्प सम मेरे बिना। पल पल न बीते उनका, अब वृन्दावन में मेरे बिना।।

महानदियाँ सागर में मिल, निज नाम रूप हैं खो देती। वैसे ही वे गोपिकागण, थीं मुझमें तन्मय हुईं।।
लोक परलोक और अपना तन, अपने कहलाने वाले जन। पति पुत्र आदि की भी, सुध बुध खोई थी प्रेम में उन।।

बहुत सी गोपियां तो उनमें, मेरे स्वरूप को न जानें। भगवान न जान कर मुझको, केवल अपना प्रियतम मानें।।
प्रियतम भाव से ही उनकी, मुझे मिलने की अभिलाषा थी। साधन योग विहीन ही वह, शतश: सहस्त्रश: बाला थीं।।
केवल संग के प्रभाव से ही, उन्होंने मुझको प्राप्त किया। बिना ज्ञान और ध्यान के ही, परब्रह्म परमात्म जान लिया।।

इस कारण उद्धव सुनो, इक युक्ति हूँ तुम्हें कह रहा। श्रुति स्मृति विधि निषेध, प्रवृत्ति निवृत्ति केा भूलो जरा।।
श्रोतव्य और सुने हुए, विषयों का भी परित्याग करो। सब व्यवहार में मेरी ही, भावना अपने हिय धरो।।
सबके आत्म स्वरूप मुझ, एकाकी की शरण पड़ो। मेरी शरण को प्राप्त कर, निर्भय सर्वत्र ही हो जाओ।।
उद्धव बोले,
सनकादि के भी योगेश्वर प्रभु आप हैं परमेश्वर। उपदेश श्रवण हूँ कर रहा, पूरा ध्यान ही मैं धरकर।।
किन्तु फिर भी एक मेरा, सन्देह नहीं है मिट रहा। कृपा कर अब दूर करें, हे भगवन् संशय मेरा।।
स्वधर्म का पालन मैं करूँ, या सब त्यजी आपकी शरण गहूँ? दुविधा में है मन भ्रमित, करी कृपा कहें मैं क्या करूँ?
भगवान बोले,
परोक्ष रूप से जिस परमात्म का वर्णन है किया जाता। वास्तव में हैं प्रत्यक्ष वह, हैं सबके वही जीवन दाता।।
परा वाणी अनहद् नाद, सप्राण आये मूलाधार में। मणिपूरक चक्र में पश्यन्ती, वाणी का सूक्ष्म रूप धरे।।
कण्ठस्थ विशुद्ध चक्र में, तत्पश्चात् वह जा पहुँचे। वहाँ से मध्यमा वाणी के, रूप में फिर वह प्रकट होएं।।
क्रमश: मुख में आकर फिर, ह्रस्व दीर्घ मात्रा बने। स्वर और वर्ण वह बन कर, वैखरी वाणी का रूप धरें।।

अग्नि आकाश में ऊष्मा या, विद्युत बनी अव्यक्त रहे। बलपूर्वक काष्ठ मन्थन से, जब वायु का सहयोग मिले।।
अति सूक्ष्म चिंगारी के, रूप में प्रथम वह प्रकट हो। आहुति मिलने पर उसका, रूप अति प्रचण्ड हो।।
त्यों ही मैं भी शब्द ब्रह्म, रूप से क्रमश: प्रकट होऊं। परा पश्यन्ती मध्यमा और वैखरी वाणी रूप धरूं।।

इसी प्रकार जो बोलना, और हाथों से काम करना। पाद गमन गुदा मूत्रेन्द्रिय, से मल मूत्र का त्यजना।।
सूंघना चखना देखना, संकल्प विकल्प छूना सुनना। बुद्धि से समझ अहं से दम्भ, महत्तत्त्व का जो ताना बाना।।
तीनों गुणों के सब विकार, अब किस किस की मैं बात करूँ? सब कर्ता कारण और कर्म, स्वयं ही ता मैं आप बनूँ।।

सबका जीवन दे ईश्वर ही, ब्रह्माण्ड कमल का कारण है। अव्यक्त एक यह आदि पुरुष, तीनों गुण जग करे यह धारण है।।
जैसे उपजाऊ धरती में, एक बीज कहीं डाल दें। शाखा पत्र पुष्प आदि, अनेक रूप धारण वह करे।।
काल गति से त्यों ही इस, माया का आश्रय लेकर। शक्ति विभाजन द्वारा ही अनेक सा भासे परमेश्वर।।

ज्यों तन्तु के ताने बाने में, वस्त्र है रहता ओत प्रोत। त्योंही यह सारा विश्व भी, परमात्म में है ओत प्रोत।।
सूत बिना किसी वस्त्र का, है कोई अस्तित्व नहीं। किन्तु वस्त्र के बिना भी, सूत्र तो रहता है त्यों ही।।
जग के न रहने पर भी, परमात्म त्यों ही है रहता। किन्तु इस जग की जान लो, परमात्म बिन न कोई सत्ता।।
संसार वृक्ष यह अनादि है, प्रवाह रूप से नित्य है। स्वरूप है कर्म की परम्परा, मोक्ष भोग इसके फल हैं।।

संसार रूप इस वृक्ष के, दो बीज हैं जान ले। पाप और पुण्य दोनों ही, बीजों के हैं नाम यह।।
असंख्य वासना है जड़ें, और तना हैं तीनों गुण। महाभूत मुख्य शाखायें हैं, शब्दादि पंच विषय के रस।।
एकादश इन्द्रियां हैं शाखा, दो पक्षी यहां निवास करें। नीड़ बनाकर केअपना, ईश्वर जीव यहां दोनों रहें।।
वात पित्त और कफ रूपा, यहां तीन भाँति की छाल है। सुख दु:ख के दो प्रकार, के लगते यहाँ फल हैं।।
अति विशाल हैं वृक्ष यह, है सूर्य मण्डल तक फैला। इसका भेदन कर मुक्त पुरुष, नहीं चक्र में कभी पुन: पड़ता।।

शब्द रूप रस आदि विषय में, जो जन लिप्त हैं हो रहा। गीध समान ही हैं वह जन, कामना से वा चित्त भरे।।
सुख दु:ख रूपा फल वृक्ष का, वह जन भोगते रहते हैं। अनेक भाँति के कर्मों के बन्धन में फंसे वह रहते हैं।।
अरण्यवासी परमहंस, विषयों से जो विरक्त हैं। राजहंस समान वह, सुख का फल ही सदा चखते हैं।।
वास्तव में हूं मैं एक ही, यह अनेक रूप जो भास रहे। यह सारे तो जाने उद्धव, हैं केवल ही मायामय।।
जिसने गुरुजन के द्वारा, भली भाँति यह जान लिया। उसने ही तो वेदों के, वास्तविक रहस्य को है जाना।।

गुरुदेव की उपासना रूप, अनन्य भक्ति के द्वारा। अपने ज्ञान की खडग को, अब तीखी तुम करो जरा।।
धैर्य और दक्षता से, फिर जीव भाव को काट दो। परमात्म स्वरूप होकर पुन:, यह वृत्ति अस्त्र भी तुम त्यजो।।
अपने अखण्ड स्वरूप में, स्थिर होकर फिर आप रहो। अविछिन्न है परमात्म एक, यह सत्य तुम जान लो।।

५) भगवान का हंसरूप से सनकादि ऋषियोंको दिये हुए उपदेश का वर्णन

भगवान बोले,
सत्व रज और तम जानो, हैं तीनों गुण बुद्धि के। इन तीनों का नहीं कोई, सम्बन्ध जान ले आत्म से।।
रज और तम इन दोनों को, सत्त्व के द्वारा जीत ले। फिर सत्त्व के द्वारा सत्त्व की, वृत्तियों को भी शान्त करे।।

सत्त्वगुण की वृद्धि से, मेरी भक्ति को प्राप्त करे। वास्तव में यह भक्ति ही, जीव का स्वधर्म भए।।
निरन्तर सत्त्व के सेवन से, ही सतोगुण वृद्धि हो। मेरी भक्ति रूप स्वधर्म में, जीव की तब प्रवृत्ति हो।।

सर्वश्रेष्ठ है वही धर्म, जिससे सतोगुण वर्धन हो। उसी द्वारा रजोगुण और, तमोगुण का फिर मर्दन हो।।
जब दोनों यह नष्ट हों, इनके द्वारा जो अधर्म हो। वह भी शीघ्र स्वत: ही, अपने आप ही शान्त हो।।

शास्त्र जल प्रजाजन देश, समय कर्म जन्म और ध्यान। मन्त्र संस्कार जैसे भी, यह दस लक्षण हों जान।।
सात्विक हों तो सतोगुण की, राजसिक हों तो रजोगुण की। तामसिक हों तो तमोगुण की, स्वत: है वृद्धि हो जाती।।
सात्विक महात्मा तो इसमें, सात्विक को ही सराहें सदा। तामस की वह निन्दा करें, उपेक्षित ही रज रहे सदा।।

जब लग आत्म साक्षात्कार, जीव को न हो जाये। सूक्ष्म स्थूल और कारण तन, त्रैगुण न निवृत्त हो जायें।।
तब लौ शास्त्रादि सेवन से, सतोगुण का वर्धन ही करे। क्योंकि इनकी राही ही, धर्म की अभिवृद्धि भए।।
धर्म की वृद्धि से पुन:, अन्त:करण वा शुद्ध भये। तत्पश्चात् ही आत्म तत्त्व, का ज्ञान उसे मिल सके।।

बांसों के संघर्षण से, जो अग्नि उत्पन्न होये। सारे वन को दग्ध कर, ही पुन: वह शान्त होये।।
त्यों ही इस तन की उत्पत्ति, है गुण विषमता से हुई। विचार के मन्थन से इसमें, ज्ञान अग्न है जल सकती।।

सब तन और सब गुणों को, यह अग्नि भस्मीभूत करे। तत्पश्चात् यह अग्नि भी, स्वत: शान्त ही हो जाये।।
उद्धव बोले,
सब जीव इस तथ्य को, प्राय: जानते हैं भगवन्। सब कष्ट विपत्ति का घर तो, यह विषय वासना है भगवन्।।
कुत्ते बकरे या गर्दभवत्, जीव सदा दु:ख सहन करें। क्या कारण है फिर भी वे, इन भोगों में पड़े रहें?
भगवान बोले,
अज्ञान के कारण जीव जब, निज स्वरूप भूला रहे। सूक्ष्म स्थूलादि तन में, अहं बुद्धि ही वह रखे।।
इस कारण ही उसका जो, सत्त्वगुण प्रधान था मन। रजोगुण की ओर झुकी, उससे ही व्याप्त हो सम्पूर्ण।।

रजोगुण की प्रधानता, जिस पल मन में हो जाये। संकल्प विकल्प का तान्ता वहाँ, निरन्तर ही फिर लगा रहे।।
विषयों के चिन्तन में लगे, दुर्बुद्धि जा फंसे काम में। इस फंदे से मुक्ति उद्धव, जानो अति दुष्कर भए।।

अब वह अज्ञानी कामवश, अनेकों कर्म ही करने लगे। इन्द्रियों के वशीभूत हुआ, वह दु:खदे कर्म ही नित्य करे।।
रजोगुण के तीक्ष्ण मोह से, वह मोहित अब हुआ रहे। इस कारण इस पाश से, मुक्त नहीं वह हो सके।।

विवेकी जीव का चित्त भी, कभी रज या तम से हो विक्षिप्त। तथापि विषयों प्रति सदा, वह दोष दृष्टि से ही हो युक्त।।
अति दक्षता से सदा, वह अपना चित्त एकाग्र करे। इस कारण वहां विषयों की, आसक्ति का अभाव भए।।

साधक को चाहिये आसन और, प्राणों पर वह विजय पाये। अति दक्ष हो सब काल में ही, अपना मन मुझमें स्थिर करे।।
शनै: शनै: अभ्यास करे, देखी असफलता नहीं डरे। और अधिक उत्साह से वह, इसी अभ्यास में लगा रहे।।
मेरे शिष्यों सनकादि ने, यह स्वरूप कहा योग का। सब ओर से मन को खेंचकर, पूर्ण मुझमें दे लगा।।
उद्धव बोले,
हे प्रभु जिस काल और, रूप में आपने था कहा। सनकादि महा ऋषियों को, था योग का उपदेश दिया।।
आपके उस रूप को, भगवन् मैं जानना चाहता हूँ। इसी जिज्ञासा को लिये, मैं आपके चरण में बैठा हूँ।।
भगवान बोले,
सनकादि महा ऋषि गण, ब्रह्मा के मानस पुत्र हैं यह। योग की पराकाष्ठा का, किया अपने पिता से प्रश्न यह।।
सनकादिक बोले,
यह चित्त तो सदा गुण रूपा, विषयों में ही आसक्त रहे। और यह गुण भी पिता श्री, इस चित्त में सदा प्रविष्ट रहें।।
सदा इक दूजे से मिली, अभिन्न रूप में यह रहें। संसार में बद्ध जीव इन्हें, अलग अलग न कर सके।।
संसार से उठी मुमुक्षु जो, मुक्ति को पाना चाहे आप कहें हमें आज पितु, वह कैसे इनको अलग करे?
भगवान बोले,
हैं सब देवों के शिरोमणि, स्वयंभू प्राणदे ब्रह्माजी। महर्षियों ने जब प्रश्न किया, ध्यान मग्न हुए ब्रह्मा भी।।
फिर भी वह इस प्रश्न का, कारण मूल न जान सके। कर्म प्रधान थी वा बुद्धि, यह सत्य नहीं पहचान सके।।

ब्रह्मा जी ने तब उद्धव, भक्ति भाव से ध्याया मुझै। उनके सम्मुख मैं प्रकट हुआ, हंस रूप तब धर कर के।।
मुझे देख सनकादि ने, श्री ब्रह्मा को आगे किया। मेरे चरणन् का वन्दन कर, हैं कौन आप मुझसे पूछा।।

सनकादि तो थे उद्धव, जिज्ञासु परम तत्त्व के। उनके पूछने पर उनको, सुनो जो उत्तर मैंने दिये।।
हंस बोला,
परमार्थ वस्तु में तो, नानात्व कहीं न हो सके। फिर आपका प्रश्न यह, युक्ति संगत कैसे हो सके?
यदि आपके इस प्रश्न का, उत्तर भी मैं न देना चाहूँ। तो किस जाति गुण क्रिया, सम्बन्धादि का आश्रय लूं।।

देव मनुष्य पशु पक्षी, जितने भी हैं तन यहां। पंचभूतात्मक हैं सारे, इस कारण इन्हें अभिन्न कहा।।
परमार्थ रूप से भी जानो, यह सब ही अभिन्न हैं। आपका प्रश्न हैं कौन आप, केवल वाणी विकार ही हैं।।
नहीं विचार का पुट इसमें, इस कारण यह निरर्थक है। मन वाणी दृष्टि या अन्य, इन्द्रियों से भी जो ग्राह्य है।।
वास्तव में वह सब मैं ही हूँ, मुझसे भिन्न है कछु नहीं। तत्त्व विचार की दृष्टि से, इस सिद्धान्त को समझें सही।।

चिन्तन करते करते चित्त, यह विषयाकार ही हो जाये। सत्य इतना जान लो, यह विषय चित्त में प्रवेश करें।।
फिर भी यह विषय और चित्त दोनों, हैं जीव की उपाधि ही। चित्त और विषय दोनों से ही, नहीं आत्मा का सम्बन्ध कोई।।

बार बार विषय चिन्तन से, है चित्त विषय आसक्त हुआ। और इन विषयों का भी, है चित्त में प्रवेश हुआ।।
अपने वास्तविक स्वरूप से, अभिन्न मुझे जब जान ले। परमात्म को साक्षात् करी, इन दोनों का ही त्याग करे।।

जाग्रत स्वप्न सुषुप्ति हैं, तीनों अवस्था बुद्धि की। गुण अनुसार ही यह होएं, हैं परम का यह स्वभाव ही।।
जीव तो जानो इन तीनों, वृत्तियों का ही साक्षी है। इन सबसे है विलक्षण यह, श्रुति युक्ति अनुभूति यह है।।

बुद्धि वृत्तियों का यह बन्धन, आत्म पे गुण आरोप करे। इन तीनों से विलक्षण और, तीनों में जो अनुगत रहे।।
मुझ तुरीय तत्त्व में स्थित होई, बुद्धि बन्धन परित्याग दे। तब विषय और चित्त दोनों का, अपने आप अभाव भए।।

अहंकार ने ही जानो, है यह बन्धन बना लिया। इस कारण ही अखण्ड सत्य, परमानन्द स्वरूप छिपा।।
इस तत्त्व को जानकर, विरक्त ही अब हो जाओ। तुरीय स्वरूप में स्थित हो, संसार की चिन्ता छोड़ दो।।

भिन्न भिन्न पदार्थों की, जब तक सत्यता बनी रहे। तद्रूपता अहं और ममत्व, जब तक निवृत्त न होए।।
तब तक जागता हुआ भी वह, अज्ञानी सोया रहता है। ज्यों स्वप्न ले रहा सुप्त जीव, जागृत अपने को कहता है।।

नाना रूपात्मक देहादि, जो प्रपंच भी हैं बने। वास्तव में आत्म के बिन, नहीं किसी का कुछ अस्तित्व रहे।।
उनके कारण वर्ण और, आश्रम में भी जो भेद हों। स्वर्गादि फल और उनके, कारणभूत जो कर्म हों।।
आत्म की दृष्टि से यह, सारे ही पदार्थ हैं मिथ्या। ज्यों स्वप्न द्रष्टा के लिये, हैं स्वप्न पदार्थ मिथ्या सदा।।

जाग्रत में इन्द्रियों के द्वारा, बाह्य पदार्थ जो दीखें। क्षणभंगुर हैं वह सभी, इन्द्रिय ग्राह्य जो हो सकें।।
उन इष्ट पदार्थों का ही वह, अनुभव स्वप्न में है करता। वासनामय विषयों का वह, अनुभव हृदय में है करता।।
सुषुप्ति में जा पुन: उन्हें, अपने में ही लय कर ले। वास्तव में इन तीनों का, अनुभवी तो बस एक रहे।।
जाग्रत में इन्द्रिय स्वप्न में मन, सुषुप्ति में संस्कारों का। है स्वामी वह एक ही, साक्षी तीनों गुणों की अवस्था का।।
जिस स्वप्न देखा जो मैं सोया, वह ही मैं हूँ जाग रहा। इस स्मृति आधार पर, है आत्म एक यह सिद्ध होता।।

गुणों की तीनों अवस्था यह, मेरी माया में ही कल्पित हैं। मम अंश स्वरूप जीव में, ही तीनों यह कल्पित हैं।।
आत्म के दृष्टिकोण से, है इनका अस्तित्व नहीं। ऐसा निश्चय करके तुम, जाओ सत्पुरुष की शरण ही।।
अनुमान ओर सत्पुरुषों के, सत्संग उपनिषद् का श्रवण कर। तीक्ष्ण ज्ञान की खड्ग से, संशय मूल को छिन्न कर।।
निज हृदयस्थ मुझ परमात्म, का ही हर पल भजन करो। इसी राह से हे पुत्रो, मुझको फिर तुम जान सको।।

मनोविलास यह जगत है, इसका दर्शन जो हो रहा। वास्तव में तो जानो तुम, है ही यह नष्टप्राय:।।
अताल चक्र की भाँति ही, है भ्रम चक्र यह अति चंचल। अभेद ज्ञान स्वरूप आत्म, भासे रूप अनेकों धर।।
यह तन इन्द्रियां और अन्त:करण, है तीनों गुण की रचना स्वरूप। स्वप्न समान है माया खेल, अज्ञान से ही है यह कल्पित।।

देहादि रूप दृश्य से, अब दृष्टि हटाकर के। तृष्णा रहित हो इन्द्रियों के, सारे ही व्यापार त्यजे।।
आत्मानन्द के अनुभव में, नितान्त मग्न वह हो जाये। दर्शन में तो देहादि का, अहारादि प्रपंच दीखे।।
किंतु उसको असत्य जान, हैं पहले ही वह छोड़ चुके। इस कारण उनके लिये, पुन: भ्राँति न उत्पन्न करे।।
जब तक देह पात न हो, संस्कार मात्र ही प्रतीति हो। पर वास्तव में उस देह में, नहीं उसकी कोई आसक्ति हो।।

ज्यों मदिरा में मत्त जीव, नहीं देह का अनुसन्धान करे। हैं तन पे वस्त्र या गिर गए, यह भी नहीं उसे याद रहे।।
वैसे ही जिस तन द्वारा, है आत्म साक्षात्कार किया। सिद्ध पुरुष उस तन पर, दृष्टि नहीं है कभी धरता।।
प्रारब्ध वश बैठा या उठा, कहीं पे गया या आया वह। तन की सारी अवस्था से, है नितान्त निरासक्त वह।।

प्राण और इंद्रियों सहित यह, तन भी है प्रारब्ध बधित। जब तक कर्म हैं इसे बचे, तब लौ है उनसे यह बधित।।
किन्तु जिसने निज आत्म का, एक बार साक्षात्कार किया। समाधि तक वह योग में, ही आरूढ़ सदा रहता।।
स्त्री पुत्र धनादि सहित, तन रूप प्रपंच को उसने त्यजा। स्वप्न की भाँति वह पुन:, नहीं इन्हें कभी अपना सकता।।

हे सनकादि महर्षिगण, तुमको हैं जो आज कहे। सांख्य और योग दोनों के, अति गुह्य रहस्य हैं यह।।
मैं स्वयं भगवान ही, तत्त्व ज्ञान देने के लिये। यहाँ पे आज हूँ आ पहुँचा, यह सत्य अब जान लें।।
हे विप्रवर जानें आप, हूँ मैं ही अधिष्ठान परम। योग सांख्य सत्य ऋत तेज, श्री कीर्ति दम की गति परम।।

समस्त गुणों से रहित हूँ मैं, नहीं किसी की भी अपेक्षा मुझे। फिर भी समत्व असंगता गुण, सब मेरा ही सेवन करें।।
मैं ही सबका हितैषी सुहृद् प्रियतम और हूँ आत्मन्। वह तो गुण परिणाम नहीं, वास्तव में उसे नित्य जान।।
प्रिय उद्धव इस विध मैंने, मुनियों के संशय छिन्न किये। परम भक्ति से पूजा कर, फिर उन्होने स्तुति गान किये।।

भली भाँति मम पूजा और, स्तुति जब सम्पन्न हुई। श्री ब्रह्मा के सामने ही, अन्तर्धान मम छवि हुई।।
तत्पश्चात् अपने ही, धाम को मैं लौट आया। प्रिय उद्धव इस विध मैंने, था उनको उपदेश दिया।।

६) भक्तियोग की महिमा और ध्यान-विधि का वर्णन

उद्धव बोले,
ब्रह्मवादी महात्मा जन, कल्याण के साधन कहें अनेक। अपनी अपनी दृष्टि से, कहो कृष्ण क्या सब हैं श्रेष्ठ?
अथवा किसी एक की है, कहो स्वामी प्रधानता? भक्ति योग को आपने, निरपेक्ष साधन अभी कहा।।

इस राही ही सब ओर से, आसक्ति को मन है त्यजता। और आपमें ही भगवन्, यह तन्मय है हो जाता।।

भगवान बोले,
प्रलय काल में प्रिय उद्धव, थी लुप्त हुई वेदवाणी। सृष्टि के समय पुन: मैंने, श्री ब्रह्मा को उपदेश दी।।
मेरे ही भागवत धर्म का, उपदेश हैं इसमें भरा। ब्रह्मा ने निज ज्येष्ठ पुत्र, स्वयंभू मनु को बतलाया।।
उसने पुन: भृगु अंगिरा, मरीचि पुलह अत्रि से कहा। पुलस्त्य क्रतु सप्त प्रजापतियों, ने इसको फिर ग्रहण किया।।

तत्पश्चात् ब्रह्मर्षियों की, सन्तान ने इसको प्राप्त किया। देवता दानव गुह्य मनुष्य सिद्ध गन्धर्वों ने पाया।।
विद्याधर चारण किन्देव, किन्नर नाग और राक्षस। किम्पुरुष आदि सबने, निज पूर्वजों से लिया प्राप्त कर।।
सब जाति और व्यक्तियों के, स्वभाव भिन्न भिन्न ही हैं। तीनों गुणों के कारण ही, वासना सबकी भिन्न हैं।।
इस कारण उन सबमें और, बुद्धि वृत्तियों में भेद हैं। एक ही वेदवाणी के, सब अर्थ करें अनेक हैं।।
ऐसी अलौकिक है वाणी, विविधता यह स्वभाविक है। अपने गुण और रूप के, अनुकूल यह भेद स्वभाविक है।।

इसी भाँति स्वभाव भेद, और उपदेश के भेद से। जीव की बुद्धि इसे, विविधता से ही ग्रहण करे।।
कुछ लोग तो हो विचारहीन, वेद विरुद्ध आचरण करें। पाखण्ड का अवलम्बन ले, अपना स्वार्थ ही साधा करें।।

प्रिय उद्धव सबकी बुद्धि, है मेरी माया से मोहित। इस कारण अपने कर्म संस्कार, रुचि में ही वह है भ्रमित।।
उसके अनुसार ही वे सब, आत्म कल्याण की बात कहें। एक नहीं उसके भी लिये, अनेकों यह साधन कहें।।

पूर्व मीमांसा धर्म को, साहित्य आचार्य कहें यश को। योग वेत्ता सत्य और, दम शम आदि संयम को।।
दण्डनीतिकार ऐश्वर्य को, और त्यागी कहें त्याग को। मानव जीवन का परम लाभ, लोकायतिक कहें भोग को।।

यज्ञ तप दान व्रत, यम नियम की कहें कर्म योगी। उत्पत्ति क्षय वाले हैं लोक, कर्मों के फल स्वरूप सभी।।
कर्मों के फल जब क्षीण हो, उनसे दु:ख ही दु:ख मिले। सच पूछो तो उनकी गति, वास्तव में अज्ञान भए।।
उनसे जो भी सुख मिले, है वह तो नागण्य ही। भोग काल में भी यह लोक, सदोष हैं शोक से पूर्ण ही।।

सभी ओर से हे उद्धव, जो निरपेक्ष है हो गया। किसी भी कर्म या फल की ओर, दृष्टि नहीं कभी रखता।।
अपना अन्त:करण है वह, मुझे समर्पित कर चुका। उसके आत्म रूप में, मेरा परमानन्द स्फुरित होता।।
जिस आत्यन्तिक परम सुख का, वह जीव अनुभव करे। विषय लोलुप जीव उसे, कभी प्राप्त न कर सके।।

सर्वविधि जो अकिंचन है, सब संग्रह परिग्रह से रहित। जितेन्द्रिय है जो हो चुका, समदर्शी ओर है शान्त चित्त।।
मेरी प्राप्ति में ही जो, सान्निध्य मेरा अनुभव करे। सदा सर्वदा के लिये, पूर्ण संतुष्ट ही वह भए।।
उसके लिये आकाश का, इक इक कण है आनन्द भरा। सर्व दिशा से उस पर तो, आनन्द ही मानो बरस रहा।।

जिसने अपने आपको, है मुझको ही सौंप दिया। न तो ब्रह्मापद चाहे वह, न पद चाहे वह इन्द्र का।।
सर्वभौम सम्राट भी, बनना नहीं वह कभी चाहता। स्वर्ग से भी अत्युत्तम वह, रसातल राज्य नहीं चाहता।।
योग की महासिद्धियों या, नहीं मोक्ष की भी अभिलाषा करे। हर क्षण वह तो जानो उद्धव, मुझमें ही बस लीन रहे।।

तुम जैसे प्रेमी भक्त मुझे, हे उद्धव हैं जितने प्रियतम। मेरे सुत ब्रह्मा आत्म शंकर, सहोदर राम नहीं उन सम।।
अर्धांगिनी श्री लक्ष्मी जी, मेरा ही अपना आत्मा भी। सच जानो हे प्रिय मित्र, न हो उतना प्रिय कभी।।

निरपेक्ष हुआ जो जगत् के, चिन्तन से है हुआ उपरत। मेरे ही मनन और चिन्तन में, है जो रमा हुआ सतत।।
राग द्वेष से रहित हो वह, सबमें समदृष्टि रखे। मैं तो चलता हूँ सदा, ऐसे महात्मा के पीछे।।
उनके चरणों की धूलि, उड़कर जब मुझपर पड़े। पावन मुझे भी वह कर दे, रहता हूँ सदा इस आशा में।।

निष्किंचन है जो हुआ, जिसका चित्त प्रेम के रंग में रंगा। अपने तन मन में भी वह, अहंता ममता नहीं रखता।।
संसार की सारी वासना, उसकी शान्त हैं हो चुकी। स्वभाव से ही उदारता, दया प्रेम है सब जीवों के प्रति।।
कोई कामना भी उसकी, बुद्धि को स्पर्श न कर सके। परमानन्द स्वरूप मेरा, वह हर पल अनुभव करे।।
मेरे उस स्वरूप को, अन्य कोई न जान सकें। निरपेक्ष ही होकर के केवल, उस आनन्द को प्राप्त करे।।

मेरे भक्त अभी तक जानो, जो जितेन्द्रिय है नहीं हुआ। और जगत के विषय भी, उसकी राह बाधा बनें कदा।।
वह भी क्षण क्षण बढ़ती हुई, मेरी भक्ति के प्रभाव से। विषय वासना से कदाचित, नहीं पराजित हो सके।।

लकड़ी के महाढेर को ज्यों, प्रज्वलित अग्नि दग्ध करे। त्यों ही मेरी भक्ति भी, सारे पाप जला ही दे।।
योग ज्ञान धर्मानुष्ठान, जप पाठ और तप त्याग। हे उद्धव नहीं उस विधि, कर सकें सब मुझको प्राप्त।।
ज्यों दिन दिन बढ़ने वाली, मेरी अनन्य प्रेमा भक्ति। सहज में ही हे उद्धव, मेरी प्राप्ति है करवाती।।

सन्तों का प्रियतम आत्मा मैं, भक्ति से पकड़ में आता हूँ। एक यही साधन जानो, जिसके मैं वश हो जाता हूँ।।
अनन्य भक्ति मेरी जानो, उनको भी पावन है करती। जाति दोष उनको मुक्त करे, जो जन्म से हैं चाण्डाल ही।।

इसके विपरीत ही जानो तुम, जो जन हैं मम भक्ति से रहित। सत्य दया परिपूर्ण धर्म, विद्या भी जो है तपस्या युक्त।।
वह भी भली प्रकार से, पावन न उनको कर सकें। ज्यों अनन्य भक्ति मेरी, सहज में ही पावन कर दे।।

जब लौ सारा तन उसका, रोमांचित ही न हो जाये। द्रवीभूत हो चित्त भी, जब लौ गद्गद् न हो जाये।।
आनन्द के अश्रुन् की अविरल, धारा न नयनों से बहे। आन्तर बाहर भक्ति की, बाढ़ में ही न डूबा रहे।।
तब लौ चित्त की शुद्धि की, सम्भावना है नहीं कोई। भक्ति प्रेम के बिन चित्त को, पावन कर न सके कोई।।

प्रेम से गद्गद् हो वाणी, द्रवीभूत हो चित्त इक दिक् बहे। क्षणभर के लिये भी अश्रु का, जिसका तान्ता न टूट सके।।
कभी उन्मुक्त उनका हास्य हो, कभी उच्च स्वरों में गाने लगे। नृत्य में कभी वह झूम उठे, नहीं लोक लाज उसे रोक सके।।
मेरा वह भक्त अपने को नहीं, अब जग को ही पावन करे। उसका अनुगामी जगत् भी, सहज ही मुझ तक आ पहुँचे।।

ज्यों आग में तपा हुआ सोना, अपनी मल सब छोड़ दे। पूर्णतय: ही चमक कर, निज शुद्ध स्वरूप को प्राप्त करे।।
त्यों ही भक्ति की राही, सब कर्म वासना मुक्त हो। वास्तविक स्वरूप जो है उसका, मुझको ही वह प्राप्त हो।।

ज्यों अंजन के द्वारा जब, नेत्रों के सब दोष मिटें। सूक्ष्म वस्तु देखन की, समर्थ भी उनमें आने लगे।।
मेरी लीला कथा का श्रवण और, कीर्तन चित्त की जब मल धोए। त्यों त्यों वास्तविक तत्त्व के, उसको दर्शन होने लगें।।

नित्य निरन्तर जो जीव, विषयों का चिन्तन है करता। उसका चित्त तो विषयों में ही निरन्तर है फंसता।।
मेरा सुमिरन् नित्य ही, जो प्राणी करता रहता है। उसका चित्त मुझमें ही, जानो तल्लीन हो जाता है।।

इसलिये प्रिय उद्धव अन्य, साधन और चिन्तन तुम छोड़ो। मेरे ही चिन्तन से तुम, अपने चित्त को शुद्ध कर लो।।
नहीं मेरे सिवा कहीं अन्य कोई, है स्वप्न के राज्य समान ही। एकाग्र चिति हो इस कारण, अब भजन करो तुम मेरा ही।।

संयमी पुरुष को चाहिए, एकान्त में चिन्तन मेरा करे। स्त्री और उनके प्रेमियों के, संग से सदा वह दूर रहे।।
स्त्री लम्पट पुरुषों के, संग से क्लेश और बन्धन हो। वैसा क्लेश और बन्धन जान, अन्य किसी संग से न हो।।

उद्धव बोले,
हे कमल नयन कृपा करके, आप मुझे यह बतलायें। किस रूप और किस भाव में, मुमुक्षु आपका ध्यान करें?
भगवान बोले,
न अति ऊंचा न नीचा हो, ऐसे सुख आसन पर बैठे। अपने तन को सीधा रख, निज हाथ गोद में ही धरे।।
दृष्टि को नासिका के, अग्र भाव पे टिकाये तब। पूरक कुम्भक और रेचक, प्राणायाम से नाडी करे शुद्ध।।
शनै: शनै: प्राणायाम का, अभ्यास बढ़ता वह जाये। संग ही वह निज इन्द्रियों को, वशीभूत करता जाये।।

कमल नाल में पतले से, सूत समान जो है रहे। हृदय कमल में ओंकार, का ही चिन्तन वह करे।।
प्राण के द्वारा खेंच उसे, घण्टानाद सम स्थिर करे। उस स्वर का तान्ता आन्तर में, उसके टूटने न पाये।।

इस विधि प्रतिदिन तीन समय, ओंकार सहित अभ्यास करे। दस दस बार प्राणायाम का, अभ्यास वह इस विध करता रहे।।
यह प्राणायाम विधिवत् ही, गर उद्धव किया जाये। इक मास में इस अभ्यास से, प्राणवायु वश में आये।।

तत्पश्चात् चिन्तन करे, यह हृदय है एक कमल। तन में है वह स्थित ऐसे, दण्ड ऊपर और नीचे है कमल।।
अब ध्यान इस विध करे, वह कमल खिला है ऊपर को। हैं अष्ट पंखुड़ियां उसकी, बीच में पीत कर्णिका हो।।

कर्णिका पे क्रमश: सूर्य चन्द्र, अग्नि का फिर न्यास हो। तदनन्तर अग्नि में, मेरे इस रूप का स्मरण हो।।
ध्यान हेतु मेरा यह रूप, जानो है अति मंगलमय। उस स्वरूप का ध्यान अब, हे उद्धव तू जान ले।।

मेरे अंगों का गठन तू, जान सुडौल और सुन्दर है। रोम रोम में शान्ति है, मुख कमल प्रफुल्लित सुन्दर है।।
घुटनों तक पहुँचे लम्बी, चतु: अजानुभुज मेरी। मनहर मूर्धा मरकत मणि, सम है स्निग्ध कपोल मेरी।।
मधुर मुसकान की मुखपर, है अनूठी छटा बनी। सम कर्ण में दोनों ओर, मकराकृति कुण्डल चमक रही।।
वर्षाकालीन मेघ के सम, है तन यह श्यामल सुन्दर। उसपर है लहरा रहा, रेशम का पीला अम्बर।।
श्री वत्स और श्री लक्ष्मी का, चिन्ह बना वक्ष:स्थल पर। शंख चक्र गदा और पद्म, लिये चहुँ हाथ में धारण कर।।
कण्ठ में झूले वनमाला, चरणों में हैं नूपुर पहने। गले में कौस्तुभ मणि का, प्रकाश है झिलमिल सा छिटके।।
किरीट कंगन करधनी, बाजूबन्द सब हैं चमक रहे। अपने अपने स्थानों पर, शोभित हो सारे दमक रहे।।
इक इक अंग है अति सुन्दर, और है वह हृदय हारी। सुन्दर मुख प्रेममयी चितवन, ज्यों कृपा की हो वर्षा करी।।
इस सुकुमार मेरे रूप का, ध्यान करना चाहिये। अपने मन को मेरे इक इक, अंग में लगाना चाहिये।।

निज इन्द्रियों को विषयों से, विवेकवान् तो खेंच ले। मन की लगाम को बुद्धि रूप, सारथी के हाथों में दे।।
फिर अपने इस चित्त को, मुझमें ही एकाग्र करे। चाहे किसी भी अंग पे, फिर मेरे वह ध्यान धरे।।

जब मेरे सारे तन में, ध्यान उसका जाने लगे। तब अपने चित्त को खेंचकर, इक स्थान में केंद्रित वह करे।।
अन्य अंगों के चिन्तन से, चित्त को अपने उठाये वह। मन्द मन्द स्मितपूर्ण मम, मुख पे ही चित्त टिकाये वह।।

जब मुखारविन्द पर, चित्त उसका स्थिर हो जाये। वहां से उसे उठाकर के, फिर आकाश में स्थित करे।।
आकाश का भी चिन्तन त्यजी, स्वरूप में फिर आरूढ़ हो मेरे अतिरिक्त अन्य कोई, कहीं पे चिन्तन फिर न हो।।

इस विधि जब चित्त उसका, पूर्ण समाहित हो जाये। एक ज्योति ज्यों दूजी में, मिल के एक ही हो जाये।।
त्यों ही अपने में मुझको, और मुझमें ही अपने को। उस भक्त को निरन्तर ही, एकत्व का अनुभव हो।।

इस तीव्र ध्यान के द्वारा जो, यागी चित्त मुझमें लगा ही ले। उसके चित्त से अनेकता और उसका ज्ञान निवृत्त भए।।
एकत्व की प्राप्ति हेतु फिर, सब कर्म का भ्रम भी दूर हो। वह तो एकाकी भाव से, सदा ही मुझको प्राप्त हो।।

७) भिन्न-भिन्न सिद्धियों का वर्णन

भगवान बोले,
इन्द्रिय प्राण और मन को, जब साधक निज वश में करे। प्रिय उद्धव अपने चित्त को, जब मुझमें वह एकाग्र करे।।
मेरी धारणा में जब बैठै वह, बहुत सी सिद्धियां आ जायें। बहुत प्रलोभन दे कर, विचलित उसको करना चाहें।।

उद्धव बोले,
कौन धारणा हे अच्युत, कौनसी सिद्धि है देती? संख्या में हैं कितनी ये, प्रभु सिद्धियां जो हैं कहीं?
योगी जन को हे अच्युत, आप ही सिदधियां हैं देते। कृपा कर मेरे लिये, अब इनका वर्णन कीजिये।।
भगवान बोले,
धारणायोग के परम श्रेष्ठ, योगियों ने यह प्रश्न किया। अष्टादश भाँमित की सिद्धि, का उन्होने वर्णन किया।।

आठ सिद्धियां उनमें से, प्रधान रूप में मुझमें रहें। दूसरों में तो गौण ही, इन सबका आभास भए।।
सतोगुण के विकास से, अन्य दस सिद्धियां मिलें। तीन सिद्धियां उनमें से, इस तन की ही जान ले।।
अणिमा महिमा और लघिमा, इन तीनों के नाम कहे। इन्द्रियों की है इक सिद्धि, प्राप्ति नाम से जिसे कहें।।
लौकिक पारलौकिक विषय, इच्छानुसार अनुभव करे। प्राकाम्य नाम से ही जानो, वह सिद्धि जानी जाये।।
माया और उसके कार्यों को, इच्छानुसार जो कर सके। योग में इशिता नाम से, सिद्धि वह जानी जाये।।

विषयों में रहकर के भी, जो उनमें आसक्त न हो। उस सिद्धि को वशिता के, नाम से ही तुम जान लो।।
जिस भी सुख की कामना हो, उसकी परिसीमा पाये। कामावासायिता नाम से, अष्टम् सिद्धि जानी जाये।।
स्वभाव से ही मुझमें सदा, यह आठों सिद्धियाँ हैं रहतीं। अंशत: ही वह पा सकें, जिनको भी दूं जो भी सिद्धि।।

इनके अतिरिक्त भी जान लो, अनेक सिद्धियाँ हैं कही। नहीं सता सकता तन को, भूख प्यास का वेग कभी।।
अति दूर की वस्तु देख ले, और श्रवण भी उसका कर सके। मन के साथ ही तन भी यह, तत्काल वहीं पे जा पहुँचे।।

इच्छानुसार ही रूप धरे, परकाया प्रवेश करे। इच्छा के अनुकूल ही, वह तन भी अपना छोड़ सके।।
अप्सरा के संग देवों की, क्रीड़ा का दर्शन कर ले। आज्ञा मानें सब निर्विरोध, सत्संकल्पी वह भये।।

यह दस सिद्धियां जो कहीं, सतोगुण विकास से होती हैं। सतोगुण वर्धन विशेष हो, तब ही सम्भव यह होती हैं।।
त्रिकालज्ञ हो जाना और, द्वन्द्वों के वश में न होना। दूजे के मन के भाव को, स्वत: हो सम्भव जानना।।

अग्नि सूर्य जल विष आदि, की शक्ति को स्तम्भित करना। और किसी से भी जग में, कभी पराजित न होना।।
यह पांचों सिद्धियां भी उद्धव, योगी जन को प्राप्त हैं। योगधारणा से जो मिलें, उनका यह नाम विस्तार है।।
कौन सी धारणा से जानो, अब कौन सी सिद्धि मिलती है। अब तुमको बतलाता हूँ, किस विध को सिद्धि मिलती है।।

पंचभूतों की सूक्ष्मतम, मात्रायें हैं मेरा ही तन। जो मेरे उसी तन की, उपासना में सदा रहे मग्न।।
मन को तद् आकार बना, उसमें ही लगा दे जो। तन्मात्रक मेरे तन के बिना, अन्य नहीं कुछ सोचे वो।।
अणिमा नाम की सिद्धि को, प्राप्त वह कर लेता है। पत्थर की चट्टान में भी, प्रवेश की अणुता पाता है।।

व्यावहारिक ज्ञान का केन्द्र हूं मैं, महत्तत्त्व रूप में प्रकाशित हो। उसमें ही मन जो लीन रे, महिमा की सिद्धि प्राप्त हो।।
आकाशादि सब पंचभूत, हैं जानो यह शरीर मेरे। अलग अलग गर करे ध्यान, महत्ता उनकी प्राप्त करे।।

वायु आदि चतु: भूत के, परमाणु मेरा रूप जान। तदाकार चित्त करे योगी, उनको मेरा ही रूप जान।।
लघिमा सिद्धि को प्राप्त करे, सूक्ष्मतम वह रूप धरे। परमाणु रूप सूक्ष्म बनने, की सामर्थ्य उसे प्राप्त होए।।
सात्त्विक अहं मम रूप जान, चित्त में उसे जो धारा करे। बनी सब इन्द्रियों का अधिष्ठाता, प्राप्ति सिद्धि को वह पाये।।

महत्तत्त्वाभिमानी सूत्रात्मा, में निज मन जो स्थिर करे। मुझ अव्यक्तजन्मत: की, प्राकाम्य सिद्धि सह प्राप्त करे।।
इच्छानुसार वह भोग सभी, इस सिद्धि से पा सके। त्रिगुणी माया के स्वामी मुझ, काल रूप पे चित्त जो धरे।।
जीवों और उनके तनों को वह, इच्छानुसार प्रेरित करे। इस सामर्थ्य का नाम ही, ईशित्व सिद्धि तू जान ले।।

तुरीय और भगवान के, नाम से जिसको कहते हैं। मेरे नारायण स्वरूप में, योगी जो चित्त को लगाते हैं।।
मेरे स्वभाविक गुण उनमें, स्वत: प्रकट होने लगें। वशिता नामक सिद्धि ही, जान ले इसका नाम कहें।।

निर्गुण स्वरूप ब्रह्म मैं ही हूँ, जो इस सत्य को जान ले। अपने निर्मल मन को वह, मम ब्रह्म स्वरूप में लीन करे।।
कामावासयिता नाम की, सिद्धि को वह प्राप्त करे। आनन्द स्वरूप सिद्धि पा, आप्त काम वह स्वत: भए।।

मेरे श्वेतद्वीप स्वामी का रूप, है अति शुद्ध और धर्ममय। उसकी धारणा जो करे, छ: उर्मियों से वह मुक्त भए।।
भूख प्यास जन्म मृत्यु और शोक मोह से हो वह परे। हे उद्धव मेरे शुद्ध स्वरूप, सहज में ही वह प्राप्त करे।।

समष्टि प्राण के रूप में, हूँ मैं ही आकाशात्मन्। मन द्वारा जो मेरे इस, अनहत् नाद का करे चिन्तन।।
दूर श्रवण नामक सिद्धि, से सम्पन्न वह हो जाये। आकाश में विविध प्राणियों की, बोली को सुने समझ पाये।।

नेत्रों को जो सूर्य में, और सूर्य को नेत्रों में भर ले। दोनों के संयोग में ही, फिर मेरा वह ध्यान करे।।
दृष्टि उसकी अति सूक्ष्म हो, दूर दर्शन सिद्धि पाये। इस राही सब संसार को, स्वत: ही देखे वह जाये।।

प्राण वायु के सहित जो, मन और तन मुझमें छोड़ दें। मेरी धारणा करके वह, मनोजव सिद्धि प्राप्त करे।।
वह योगी जहाँ भी जाने का, तत्पश्चात् संकल्प करे। तत्क्षण ही उसका शरीर, उसी स्थान पर जा पहुँचे।।

मन को उपादान बना, जब देवता तन धरना चाहे। अपने मन के अनुकूल वह, वैसा ही रूप फिर धर पाये।।
उसने तो निज चित्त को, मेरे साथ है जोड़ दिया। इस कारण ही विविध रूप, इच्छानुकूल है धर सकता।।

जो योगी परकाया में, ही प्रवेश पान चाहे। उस शरीर में मैं ही हूँ, ऐसा फिर वह भाव धरे।।
ऐसा करने से उसका प्राण, वायु रूप धारण करे। निज तन छोड़ी दूजे तन में, भंवरे वत् स्वत: प्रवेश करे।।

गर योगी अपने तन का, परित्याग करना चाहे। एड़ी से गुदा द्वार दबा, प्राणवायु क्रमश: खेंचे।।
हृदय वक्ष:स्थल कण्ठ और, मस्तक में उसे ले जाये। ब्रह्मरन्द्र से ब्रह्म में लीन करी, फिर इस तन का त्याग करे।।

देवों की विहार स्थली में, क्रीड़ा वह यदि करना चाहे। मेरे शुद्ध सत्त्वमय, स्वरूप की भावना वह करे।।
सतोगुण के अंश से जो, उत्पन्न हों सुर सुन्दरियाँ। विमान चढ़ी आ पहुँचे पास, उसके वह सुर सुन्दरियाँ।।

मेरे सत्य संकल्प रूप में, निज चित्त जिसने स्थित किया। जिस काल में जैसा भी संकल्प, वह योगी है कर लेता।।
उसी समय संकल्प वह, उसका सत्य ही हो जाये। ऐसी साधना से योगी, सत्य संकल्पी हो जाये।।

ईशित्व और वशित्व इन, दोनों सिद्धियों का स्वामी मैं। नहीं मेरी आज्ञा कोई टाल सके, हूँ सबका परम स्वामी ही मैं।।
मेरे उस भाव का चिन्तन कर, जो उसी भज्ञव से युक्त भये। मेरे समान उसकी आज्ञा, कभी न कोई टाल सके।।

मेरी धारणा कर मेरी भक्ति से, चित्त है जिसका शुद्ध हुआ। जन्म मृत्यु आदि अदृष्ट, विषय भी जान है वह लेता।।
भूत भविष्य और वर्तमान, तीनों को ही वह जान ले। सहज में ही त्रिकालज्ञ, मेरा भक्त वह हो जाये।।

ज्यों जलचर जल के द्वारा, कभी नष्ट नहीं हो सकता। त्यों ही मुझमें निज चित्त लगा, जिस योगी ने है शिथिल किया।।
योगमय उसके तन को, कोई तत्त्व नष्ट न कर सकें। अग्नि जल वायु आदि पदार्थ, प्रभावित उसे न कर सकें।।

श्री वत्स चिन्ह शंख गदा, चक्र पद्म आदि से सजा। ध्वज छत्र चंवर से सजे हुए, मेरे अवतारों को जिस ध्याया।।
मेरे ऐसे भक्त को, जीत कोई भी न पाये। हे उद्धव वह सहज में, अजेय स्वत: ही हो जाये।।

इस भाँति से जो मुनि, मेरी उपासना है करता। योग धारणा के द्वारा, है मुझमें ही वह चित्त धरता।।
जिनका वर्णन है मैंने किया, वह सभी सिद्धियाँ प्राप्त करे। ऐसा योगी सहज में ही, इन सबसे सम्पन्न हो जाये।।

निज प्राण इन्द्रिय और मन पर, विजय जो प्राप्त है कर चुका। संयमी मम स्वरूप को ही, धारण जो है कर रहा।।
कोई भी सिद्धि ऐसी नहीं, जो दुर्लभ हो उसके लिये। उसे तो सारी सिद्धियाँ, सहज स्वत: ही प्राप्त भए।।

भक्तियोग या ज्ञान योग, का अभ्यास जो जन करें। इन उत्तम योगों द्वारा, जो मुझसे एक ही हो के रहें।।
उनके लिये कहें श्रेष्ठ पुरुष, यह सिद्धियां भी हैं विघ्न ही। समय का दुरुपयोग हो, उनके कारण व्यर्थ ही।।

जन्म औषधि तप मन्त्र से, जो भी सिद्धियाँ प्राप्त हों। योग के द्वारा वह सारी, सिद्धियाँ स्वत: ही प्राप्त हों।।

किन्तु इन सबकी परासीमा, सारूप्य सालोक्य की है प्राप्ति। मुझमें चित्त लगाये बिना, नहीं किसी साधन से हो सकती।।
सांख्य योग धर्म आदि, बहुत साधन कहे ब्रह्मवादियों ने। सब साधन और सिद्धियों का, हेतु इक मुझे ही जान ले।।

ज्यों स्थूल पंचमहाभूतों के, बाहर और भीतर है जो। सूक्ष्म तन्मात्रा के बिना, नहीं उसका अस्तित्त्व हो।।
त्यों ही सब जीवों में मैं, द्रष्टा बनकर रहता हूं। उन सबके बाहर भी मैं, दृश्य बनकर बैठा हूँ।।
बाहर आन्तर का भेद तो, मुझमें कभी न हो सके। निरावरण अद्वितीय मुझे, आत्म रूप ही जान ले।।

८) भगवान की दिव्य विभूतियों का वर्णन

उद्धव बोले,
हैं आप स्वयं ही परं ब्रह्म, न आदि कोई न अन्त भए। निरावरण अद्वितीय तत्त, उत्पत्ति स्थिति प्रलय कारण हे।।
श्रेष्ठ न्यून सब जीवों में, प्रभु रहें आप ही नित्य स्थित। किन्तु न जानें आपको, जो नहीं निज इन्द्रिय जित।।
वास्तविक उपासना आपकी, कोई ब्रह्मवेता ही कर सके। आपको जाने क्या कोई, वह तो बस आपमें लीन भए।।

जिन आपके रूप विभूतियों की, महर्षि उपासना करते हैं। परम भक्ति से पूजन कर, सिद्धि प्राप्त वे करते हैं।।
हे प्रभु अब उन सबका, आप मुझे विस्तार कहें। सबके हैं जीवनदाता आप, अन्तरात्म सबमें हैं बसे।।
अपने को छिपाकर ही, आप प्रभु सब लीला करें। आप तो सबको देखें प्रभु, पर कोई न आपको देख सके।।
जग के प्राणी आपकी, माया से सदा मोहित रहें। उससे आवृत्त वह हुए हुए, प्रभु आपको कैसे वह देखें?

पृथ्वी स्वर्ग पाताल और, दिशाओं में हैं जो विभूतियाँ। कृपा कर वर्णन करें, ऐश्वर्य पूर्ण जो विभूतियाँ।।
तीर्थ को तीर्थ करें, आपके पावन चरण कमल। आपके चरणों में प्रभु, है मेरा सविनय वन्दन।।

भगवान बोले,
सर्वश्रेष्ठ ज्ञाता हो तुम, प्रश्न के मर्म के हे उद्धव। कुरुक्षेत्र में कौरव पाण्डव का, जब हुआ आरम्भ युद्ध।।
शत्रु से युद्ध के लिये जब, अर्जुन था तत्पर हुआ। तब रणक्षेत्र में यही प्रश्न, उसने था मुझसे पूछा।।

निज बन्धु बान्धव का हनन, वह भी क्षुद्र राज्य के लिये। अर्जुन की धारणा में, था अति निन्दनीय कर्म यह।।
साधारण जीवों के समान, वह भी यह ही था सोच रहा। यह सब मारे जायेंगे, मैं बनूँगा इन सबका हन्ता।।
यही सोचकर धर्मयुद्ध से, वह उपराम था हो गया। अपने कर्त्तव्य धर्म को, भी वह उस पल भूल गया।।
तब उसको युद्ध क्षेत्र में, बहुत युक्ति से मैंने समझाया। वीर शिरोमणि अजुन ने, तब मुझसे था यही प्रश्न किया।।

सब जीवों का मैं आत्म हूँ, सुहृद और मैं हूँ ईश्वर। सब वस्तु और जीव का, रूप भी लूं मैं आप ही धर।।
इनकी उत्पत्ति और स्थिति, प्रलय का कारण मैं ही हूँ। गतिवान् जो हैं जग में, उन सबकी गति भी मैं ही हूँ।।
अपने अधीन करे जो जग को, मैं ही बनूं वह काल भी। तुम जानो मैं ही तो हूँ, मूल अवस्था जो गुण की।।
जो भी गुणवान पदार्थ हैं, स्वभाविक गुण हूँ मैं उनका। क्रिया शक्ति प्रधान हैं जो, प्रथम कार्य हूँ सूत्रात्मा।।
महान् हैं जो शक्ति प्रधान, प्रथम कार्य महत्तत्त्व हूँ। सूक्ष्म रूप में जीव हूँ, और दुर्जय रूप मैं यह मन हूँ।।

वेदों का प्राकट्य स्थान, हिरण्यगर्भ मैं ही हूँ जान। मन्त्रों में त्रिमात्रा युक्त, ओंकार मुझको पहचान।।

अक्षरों में अकार हूँ मैं, छन्दों में त्रिपदा गायत्री। देवों में मुझे इन्द्र जान, और अष्टवसु में हूँ अग्नि।।
द्वादश आदित्यों में जान, विष्णु रूप आप मैं हूँ। एकादश रुद्रों में जान, नीललोहित रुद्र मैं हूँ।।

ब्रह्मर्षियों में हूँ मैं भृगु, और राजर्षियों में हूँ मनु। देवर्षियों में मैं नारद हूँ, ओर धेनु में हूँ कामधेनु।।
सिद्धेश्वरों में हूँ कपिल मुनि, और पक्षियों में हूँ मैं गरुड़। पितरों में हूँ मैं अर्यमा, प्रजापतियों में हूँ मैं दक्ष।।

दैत्यों में जानो तुम उद्धव, दैत्यराज प्रह्लाद हूँ मैं। हूं औषधियों में सोमरस, नक्षत्रनाथ चन्द्रमा हूँ।।
यक्ष राक्षसों में कुबेर, ही तुम मुझको जान लो। गजराजों में हूँ ऐरावत, जलचर स्वमाी वरुण जानो।।
द्युतिवान् तपने वालों, में हूँ सूर्य तुम जान लो। जीवों में हूं नृप रूप मैं, उद्धव यह पहचान लो।।
अश्वों में हूँ उच्चै:श्रवा, धातुओं में स्वर्ण हूँ मैं। सर्पों में हूँ वासुकि, दण्डधारियों में यम हूँ मैं।।

हूँ नागराजों में शेषनाग, हे अनघ तू इतना जान ले। सींग दाढ़ के जीवों में, उनका नृप सिंह पहचान ले।।
संन्यासाश्रम हूँ आश्रमों में, वर्णों में हूँ ब्राह्मण मैं। तीर्थ नदियों में हूँ गंगा, जलाशयों में सागर हूँ मैं।।
अस्त्र शस्त्रों में हूँ धनुष, धनु: धारियों में त्रिपुरारी हूँ। निवास स्थानों में सुमेरु मैं, दुर्गम स्थानों में हिमालय हूँ।।
वनस्पतियों में हे उद्धव, अश्वत्थ तू मुझको जान ले। और धान्यों में अति पवन, जौ मुझे ही मान ले।।

पुरोहितों में हूँ मैं वसिष्ठ, वेदज्ञों में हूँ बृहस्पति। सन्मार्ग प्रवर्तकों में ब्रह्मा, हूँ स्वामि कार्तिक सेनापति।।
पंचमहायज्ञों में जान, स्वाध्याय यज्ञ हूँ मैं स्वयं। अहिंसा व्रत हूँ व्रतों में मैं, पावनकर नित्य हूँ शुद्ध पवन।।
अग्नि सूर्य जल हूँ मैं आप, वाणी भी मैं आप हूँ। आत्म रूप में जान लो, सबके आन्तर में मैं रहूँ।।

अष्ट योगों में जानो, मनो निरोध समाधि हूँ। विजय के इच्छुक जन में मैं, मन्त्र बल बनकर रहूँ।।
आत्म अनात्म विवेक रूप, कुशलों में कौशल मैं हूँ। ख्यातिवादियों में जानो, विकल्प बनकर मैं ही रहूँ।।

स्त्रियों में हूँ मनुपत्नी, शतरूपा जानो मैं ही। पुरुषों में स्वयंभू मनु हैं जो, जान लो उनको तुम मैं ही।।
मुनीश्वरों में हूँ नारायण, ब्रह्मचारियों में सनत्कुमार। इन सब रूपों में उद्धव, अब तू ले मुझे पहचान।।

इच्छा त्याग से प्राणी सब, अभय दान स्वत: पायें। धर्मों में वही सच्चा, संन्यास हूँ मैं जान ले।।
आत्म स्वरूप का अनुसन्धान, हूँ मैं अभय साधनों में। मधुर वचन हूँ जानो मैं, अभिप्राय प्रकटकर साधनों में।।
मौन भी मेरा रूप है, नर नारी युगल हूँ प्रजापति। उसके तन के दो भागों से, थी प्रथम युगल उत्पत्ति हुई।।

दक्षता से जो जागे सदा, मैं हूँ वह संवत्सर रूप। उस काल को जान ले, उद्धव तू मेरा ही स्वरूप।।
ऋतुओं में हूं बसन्त मैं, मासों में हूँ मार्गशीर्ष। नक्षत्रों में अभिजित को तू, जान ले मेरा ही रूप।।
युगों में सत्ययुग जान मुझे, ऋषि देवल असित विवेकीजन। कवियों में शुक्राचार्य हूँ, व्यासों में श्री कृष्णद्वैपायन।।

सृष्टि की उत्पत्ति प्रलय, जीवों की जन्म मृत्यु। विद्या अविद्या ज्ञाता में, जानो मैं वासुदेव हूँ।।
प्रेमी भक्तों में तुम उद्धव, किम्पुरुषों में मैं हनुमत हूँ। विद्याधरों में जान ले, उद्धव मैं सुदर्शन हूं।।

रत्नों में हूँ पद्मराग, रक्त वर्ण का जो होए। सुन्दर वस्तुओं में तू, कमल कलि मुझे जान ले।।

तृण में कुशा मुझको जानो, धेनु का घृत हूँ हविष्य में। व्यवसायियों में जान ले, लक्ष्मी रूप मेरा वास रहे।।
छल कपट में द्यूत हूँ मैं, तितिक्षु की हूँ तितिक्षा मैं। सात्विक जीवों में जो बसे, जान हूँ वह सतोगुण मैं।।

उत्साह और पराक्रम मैं, बलवानों का आप हूँ। भगवद्भक्तों में भक्तियुक्त, निष्काम कर्म मैं आप हूँ।।
वैष्णवों के हैं पूज्य जो, वासुदेव संकर्षण और प्रद्युम्न। अनिरुद्ध नारायण हयग्रीव, वराह ब्रह्मा और नृसिंह।।
इन नव विग्रह में जानो, सर्वश्रेष्ठ वासुदेव मैं हूँ। इन सबमें सर्वप्रथम, श्रेष्ठमूर्ति वह मैं ही हूँ।।

गन्धर्वों में हूँ विश्वावसु, अप्सरा की अब बात कहूँ। सर्वश्रेष्ठ ब्रह्मा की अप्सरा, पूर्वचिति भी मैं ही हूँ।।
पर्वतों में हूँ स्थिरता मैं, पृथ्वी में गन्ध भी मैं ही हूँ। शुद्ध अविकारी गन्ध तो, है मेरा ही रूप कहूँ।।

जल में हूँ रस रूप मैं, तेजस्वियों में मैं अग्नि हूँ। सूर्य चन्द्र और तारों की, प्रभा भी जान ले मैं ही हूँ।।
आकाश का एकमात्र गुण, शब्द भी जान लो मैं ही हूँ। ब्राह्मण भक्तों में मैं बलि, और वीरों में मैं अर्जुन हूँ।।
सब जीवों की उत्पत्ति, स्थिति प्रलय भी मैं ही हूँ। हर ही रूप में जान ले, बस उद्धव इक मैं ही हूँ।।

चरण में चलने की शक्ति, वाणी में बाद शक्ति मैं हूँ। मल त्याग पायु द्वारा, हाथों की पकड़ भी मैं ही हूँ।।
जननेन्द्रिय में आनन्द के, उपभोग की शक्ति मैं ही हूँ। त्वक् में स्पर्श नयनों में दरस, रसना में स्वाद भी मैं ही हूँ।।
कानों में श्रवण की शक्ति मैं, नासिका में घ्राण भी मैं ही हूँ। सब इन्द्रियों की जान तू ले, इन्द्रिय शक्ति बस मैं ही हूँ।।

पृथ्वी वायु आकाश जल, पंचभूत तेज अहं महत्तत्त्व। जीव अव्यक्त और प्रकृति, सत्त्व रज तम यह तीनों गुण।।
यह सब जान लो मैं ही हूँ, और इनसे परे हूँ ब्रह्म भी मैं। जग में जो दीखे न दीखे, जान ले वह सब ही हूँ मैं।।

इन तत्त्वों की गणना जो, और लक्षण सहित है उनका ज्ञान। तत्त्वज्ञान रूपा उसका, फल भी तू मुझको ही जान।।
हूँ ईश्वर मैं औश्र जीव भी, मैं ही हूँ गुण और मैं ही गुणी। आत्म भी सबका मैं ही हूँ, नहीं मेरे सिवा कहीं कुछ भी।।

परमाणुओं की गर चाहूं मैं, सम्भव है गणना कर सकूँ। किन्तु निज विभूतियों की, गणना नहीं मैं कर सकूँ।।
कोटिश: ब्रह्माण्ड जो, हैं मेरे द्वारा रचे गये। जब उनकी ही न गणना हो, विभूति को फिर गिन सके?

जिसमें भी तेज श्री कीर्ति ऐश्वर्य लज्जा त्याग हो। सौन्दर्य सौभाग्य पराक्रम, तितिक्षा और विज्ञान हो।।
यह सब ही और अन्य भी, श्रेष्ठ गुण हैं जहां भरे। उन सबको प्रिय उद्धव तू, मेरा अंश ही जान ले।।

तेरे प्रश्न पर हे उद्धव, संक्षेप से है तुझको कहा। तेरे लिये किया वर्णन, अपनी कुछ विभूतियों का।।
मनोविकार मात्र हैं यह, नहीं यह परमार्थ की वस्तु। मन से कल्पित वाणी से कथित, नहीं होती परमार्थ वस्तु।।

इसलिये वाणी को तुम, स्वच्छन्द भाषण से रोको। इस मन के संकल्प विकल्प, का तान्ता तुम बन्द करो।।
प्राणों को निज वश में करो, और इन्द्रियों का तुम दमन करो। सात्विक बुद्धि के द्वारा तुम, प्रपंच की बुद्धि शान्त करो।।
पुन: पुन: भवसिन्धु में, फिर न तुम भरमाओगे। जन्म मृत्यु के चक्र से, मुक्त सहज हो जाओगे।।

बुद्धि द्वारा जो साधक, मन वाणी न वशीभूत करे। उसके व्रत तप और दान सब, त्यों ही जानो क्षीण भए।।
ज्यों कच्चे घड़े में भरा जल, ठहर नहीं कभी पाता है। त्यों ही सब साधन उसका, निष्फल ही हो जाता है।।

मेरे प्रेमी भक्त को चाहिये, वह मेरे परायण हो जाये। भक्तियुक्त बुद्धि से वाणी, मन और प्राण को वश में करे।।
ऐसा जब कर लेगा वह, कुछ करना शेष नहीं रहता। जो साधक ऐसा कर ले, वह कृत्सन्कृत है हो जाता।।

९) वर्णाश्रम धर्म का निरूपण

उद्धव बोले,
वर्णाश्रम धर्म पालन, जो जन नियम से हैं करते। और समान रूप से जो, कहा जीव मात्र के लिये।।
वह धर्म जिसकी राही, आपकी भक्ति प्राप्त हो। हे कमलाक्ष अब कहें आप, कैसे वह धर्मानुष्ठान हो?
जिससे आपके चरणों में, भक्ति प्राप्त प्रभु हो जाये। उस भक्ति की राही ही, आपके चरण में जा पहुँचे।।

हंस रूप अवतार हे माधव, श्री ब्रह्मा के हेतु धरा। हे महाबाहु फिर ब्रह्मा को, परम धर्म उपदेश किया।।
है बहुत काल हुआ उसको, धरती से प्राय: लुप्त हुआ। क्योंकि बहुत दिनों से अब, उपदेश है उसका नहीं हुआ।।

पृथ्वी और ब्रह्मा सभा में, जहाँ वेद मूर्तिमान रहें। आपको छोड़ के हे अच्युत, कौन हो इस ब्रह्माण्ड में ?
जो आपके इस धर्म का, प्रवचन प्रभु कभी कर सके? या प्रवर्तन करे अथवा, संरक्षण कोई कर सके?

प्रवर्तक रक्षक उपदेशक, इस धर्म के हैं आप ही। मधु दैत्य को मार के, थी रक्षा करी वेदों की।।
वैसे ही अपने धर्म की, रक्षा भी प्रभु आप करें। जब पृथ्वी से निज लीला का, संवरण करेंगे आप हे।।
तब तो इस धर्म का प्रभु, पूर्ण लोप हो जायेगा। हे स्वयं प्रकाश प्रभु आप कहें, तब कौन इसे बचायेगा?

सब धर्मों के मर्मज्ञ आप, उस धर्म का वर्णन कीजिये। जिसके राही आपकी, भक्ति प्राप्त प्रभु हो सके।।
संग में यह भी आप कहें, किसके लिये है विधान क्या? किस राही इस जीवन में, अनुसरण हो धर्म का?

शुकदेव बोले,
भक्त शिरोमणि उद्धव ने, हे राजन् जब यह प्रश्न किया। अति प्रसन्न हुए श्री कृष्ण, सनातन धर्म उससे कहा।।
है जीवों का कल्याणकर, धर्म परीक्षित यह जानो। इस धर्म को ही सबके लिये, परं मंगलमय तुम जानो।।

भगवान बोले,
तब प्रश्न धर्ममय है उद्धव, इससे ही परम कल्याण भये। वर्णाश्रम धर्मी जीव को, मोक्ष की प्राप्ति हो सके।।
सावधान होकर सुनो, उपदेश तुम्हें मैं करता हूँ। जो धर्म मोक्ष दिला सकें, अब उनकी मैं कहता हूँ।।

इस कल्प के आदि में, था प्रथम सत्ययुग चल रहा। सब जीवों का उस समय, हंस नाम इक वर्ण था।।
जन्म से ही लोग तब, कृत्कृत्य सब होते थे। इस कारण कृतयुग भी कोई, उस ही युग को कहते थे।।

केवल प्रणव ही वेद था तब, ऋषभ रूप धरी मैं था धर्म। तप शौच दया और, सत्य रूप थे चार चरण।।
निष्पाप और तपस्वी थे, उस काल के भक्त जन। हंस रूप उपासते थे, परम शुद्ध मुझे परमात्मन्।।

तत्पश्चात् हे उद्धव, त्रेतायुग जब आरम्भ हुआ। मम हृदय के श्वास प्रश्वास से, त्रयीविद्या प्राकट्य हुआ।।
ऋक् साम और यजुर्वेद, सब मेरे हृदय से ही निकला। उध्वर्यु उद्गाता कर्म रूप, त्रैक्षज्ञ रूप में मैं प्रकटा।।

मुख से ब्राह्मण भुजा से क्षत्रिय, और जंघा से वैश्य हुए। चरणों से शूद्र प्रकटे, जान विराट् पुरुष के।।
उनके स्वभाव आचरण से ही, उनकी जानो पहचान हो। कर्मानुकूल ही उद्धव तुम, सब वर्णों को जान लो।।

विराट् रूप भी मैं ही हूँ, उरुस्थल से प्रकटा गृहस्थाश्रम। हृदय से हुआ ब्रह्मचर्याश्रम, वक्ष से वानप्रस्थाश्रम।।
मेरे मस्तक से संन्यासाश्रम, की उत्पत्ति जान लो। इस विधि चहुँ आश्रम ही, मुझमें तुम पहचान लो।।

उत्तम स्थानों में उत्पन्न वर्णाश्रम अनुकूल ही। स्वभाव भी उत्तम हो गए, जन्म स्थान अनुकूल ही।।
मध्यम स्थानों में उत्पन्न हो, स्वभाव भी मध्यम हो गए। अधम स्थानों में उत्पन्न हो, स्वभाव भी अधम ही हो गए।।

शम दम तप पवित्रता, संतोष क्षमा और आर्जवता। मेरी भक्ति दया और सत्य, यह स्वभाव है ब्राह्मण का।।
तेज बल धैर्य वीरता, सहिष्णुता और उदारता। ब्राह्मणभक्ति कर्मण्यता, स्थिरता ऐश्वर्य गुण क्षत्रिय का।।
आस्तिकता दानशीलता, अदम्भ और ब्रज्ञह्मण सेवा। धन संचय से सन्तोष नहीं, स्वभाव जान यह वैश्य का।।

ब्राह्मण गौ और देवों का, निष्कपट भाव से हो सेवन। उसमें से जो मिल जाये, सन्तुट उसी में हो वा मन।।
शूद्र वर्ण का जान ले, उद्धव यही स्वभाव है। विद्या और ज्ञान का जानो, वहाँ प्राय: अभाव है।।

अशुचि असत्य में रहे, चोरी नित्य ही जो करे। ईश्वर और परलोक की, परवाह नहीं वह कभी करें।।
व्यर्थ कलह क्लेश और, काम क्रोध तृष्णा वश में। अन्त्यज तो तू जान ले, सदा पड़े ही हैं रहते।।

चहुँ वर्ण और आश्रमों का, साधारण धर्म भी उद्धव जान। मन वाणी तन से सभी, अहिंसक हों उद्धव तू जान।।
सत्य पे सदा दृढ़ रहें, चोरी किसी की नहीं करें। काम क्रोध और लोभ से, सदा ही वे जन बचते रहें।।
निज कामों के करने से, सब जीवों का हो भला। जिनसे सभी प्रसन्न हों, उन कर्मों को वह करें सदा।।

ब्राह्मण क्षत्रिय और वैश्य का, गर्भाधान संस्कार हो। यज्ञोपवीत संस्कार से, द्वितीय जन्म उन्हें प्राप्त हो।।
गुरुकुल में वह रह कर, अपनी इन्द्रियां वश में करें। आचार्य से वेदाध्ययन करें, उस पर फिर विचार करें।।

वर्ण अनुसार ही मेखला, मृगचर्म धारण करें। दण्ड रुद्राक्ष कमण्डलु और, यज्ञोपवीत धारण करें।।
सीस पे लम्बी जटा रखें, रंगदार न आसन हो। केवल कुशा पे ही बैठें, दन्त और वस्त्रों में ध्यान न हो।।
स्नान भोजन हवन जप, मल मूत्र त्याग समय मौन रहें। न काटें नख और कक्ष तथा, गुप्तेन्द्रिय बाल नहीं काटें।।

पूर्ण ब्रह्मचर्य का ही, पालन वह करता रहे। स्वेच्छा से स्वयं कभी, वीर्यपात वह नहीं करे।।
यदि स्वप्न आदि में कहीं, वीर्य स्खलित भी हो जाये। जल में स्नान कर प्राणायाम, और गायत्री का जपन करे।।

पावन चित्त हो ब्रह्मचारी, एकाग्रचित्त वह सदा रहे। अग्नि सूर्य आचार्य गौ ब्राह्मण, गुरु वृद्ध और देव पूजे।।
सायं और प्रात: मौन रही, सन्ध्या उपासना वह करे। गायत्री मन्त्र का जाप भी, नियमित रूप से किया करे।।
आचार्य को हे उद्धव वह, मेरे स्वरूप ही जान ले। न साधारण जीव सम, दोष दृष्टि वह उसमें करे।।
न तिरस्कार उसका करे, आचार्य पूज्य सदा होता है। गुरु तो जान ले हे उद्धव, सर्ववेदमय होता है।।

प्रात: और सायंकाल, जो कुछ भी शिक्षा में मिले। केवल भोजन ही नहीं, सब कुछ वह गुरु सम्मुख धरे।।

उनकी आज्ञानुसार फिर, अति संयमित निज मन करके। भिक्षा आदि का यथोचित, ब्रह्मचारी उपयोग करे।।

यदि आचार्य जायें कहीं, तो उनका अनुगमन करे। जब सो जायें गुरु तो, दक्ष हो दरी पे ही सोए।।
यदि श्रान्त हों वह कभी, तो चरण उनके दबाये वो। और यदि वह हों बैठे, आदेश की उनके प्रतीक्षा हो।।
अति नीच अमानी होकर के, सेवा शुश्रूषा उनकी करे। आचार्य के आज्ञा पालन में, वह सदा तत्पर रहे।।

जब तक विद्या अध्ययन शिष्य का, पूर्ण ही न हो जाये। सब भोगों से वह दूर रही, गुरुकुल में ही निवास करें।।
निज ब्रह्मचर्य व्रत को कभी, खण्डित न वह होने दे। गुरुकुल में रह ब्रह्मचारी वह, विद्याध्ययन में लगा रहे।।

यदि मूर्तिमान वेदों के स्थान, ब्रह्मलोक को वह जाना चाहे। नैष्ठिक ब्रह्मचर्य के व्रत को वह, जीवन पर्यन्त ही धार ले।।
आजीवन फिर वेदों का, स्वाध्याय करता रहे। अपने आचार्य की सेवा में, जीवन समर्पित्त वह करे।।

ऐसा ब्रह्मचारी जान लो, ब्रह्म तेज से सम्पन्न हो। डसकधल पाप उसके जानो, तेज से स्वत: ही नष्ट हों।।
अग्नि गुरु अपने तन में, और सम्पूर्ण जीवों में। मेरी ही उपासना, उसको सदा करनी चाहिये।।
यही भाव रखे सदा, इक परमात्म सबमें बसे। सर्वत्र उसीका दर्शन पा, सबमें वह मुझको पूजा करे।।

ब्रह्मचारी वानप्रस्थी और संन्यासी, को यह चाहिये। स्त्री दर्शन स्पर्शन् या, वार्तालाप न उनसे करे।।
हंसी मजाक तो उनसे वह, दूर से ही बस त्याग दे। मैथुन रत गृहस्थी पर, दृष्टिपात भी नहीं करे।।

पावनता आचमन स्नान, सन्ध्या उपासना सरलता। तीर्थ सेवन जपन और, सब जीवों में दर्शन मेरा।।
मन वाणी और शरीर का, संयम ही हो सर्वदा। समान नियम यह जान लो, है चारों ही आश्रमों का।।
अस्पृश्य को न कभी स्पर्श करे, अभक्ष्य का न भक्षण करे। है वार्तालाप जिनसे वर्जित, उनसे कभी वह न बोले।।

इन नियमों के पालन से, ब्रह्मचारी हो तेजवान्। उसका तप और तेज तो, जानो हो अग्नि समान।।
कर्म संस्कार सभी उसके, उस अग्नि में भस्म हों। शुद्ध चित मेरा भक्त बन, मुझको ही वह प्राप्त हो।।

नैष्ठिक ब्रह्मचर्य की, गर इच्छा न हृदय में हो। गृहस्थाश्रम प्रवेश की, गर चाहना उसके मन में हो।।
विधिवत् ही वेदाध्ययन, सम्पूर्ण जब वह कर ले। आचार्य को दक्षिणा भेंट कर, उनसे वह फिर अनुमति ले।।
सामावर्तन संस्कार करा, स्नातक वह फिर बन जाये। ब्रह्मचर्याश्रम का इस विध वह फिर त्याग करे।।

तत्पश्चात् गृहस्थ या, वानप्रस्थ आश्रम में प्रवेश करे। यदि ब्राह्मण हो ब्रह्मचारी, संन्यास भी वह ले सके।।
अथवा उसको चाहिए, क्रमश: आश्रम प्रवेश करे। मेरा आज्ञाकारी भक्त, बिन आश्रम के कभी नहीं रहे।।
विपरीत कर्म से आश्रम का, परिवर्तन कभी वह नहीं करे। न ही स्वेच्छाचार में, मेरा भक्त कभी प्रवृत्त होये।।

ब्रह्मचर्य आश्रम पश्चात्, गृहस्थ में जाना गर चाहे। शास्त्रोक्त लक्षणों से सम्पन्न, कुलीना से वह विवाह करे।।
हो अपने अनुरूप वह, आयु में अपने से छोटी। सर्वोत्तम तो यह ही है, वह कन्या हो निज वर्ण की।।
कामवश यदि अन्य किसी, वर्ण की कन्या वह चाहे। क्रमश: अपने से निम्न वर्ण, की कन्या से सम्बन्ध करें।।

यज्ञ याग आदि कर्म, अध्ययन और दान का। ब्राह्मण क्षत्रिय वैश्य को, है समान अधिकार मिला।।

किन्तु अध्यापन दान ग्रहण, और यज्ञ कराना जो। उसका तो अधिकार बस, केवल ब्राह्मण को ही हो।।

इन तीनों वृत्तियों का भी, विश्लेषण जब ब्राह्मण करे। प्रतिग्रहण की वृत्ति को वह, तप तेज यश नाशी जाने।।
अध्यापन और यज्ञ से ही, वह जीवन यापन करे। यदि इन दोनों वृत्तियों में, पराधीनता दीनता वह देखे।।
तो अन्न कट जाने के बाद, जो दाने खेत में हो पड़े। उन्हें बीन कर ही ब्राह्मण, निज जीवन का निर्वाह करे।।

ब्राह्मण तन को पाना उद्धव, अति दुर्लभ है संसार में। तुच्छ विषय उपभोग ही, इसका लक्ष्य न हो सके।।
जीवन भर कष्टों को सहे, तपश्चर्या ही वह करे। तत्पश्चात् आनन्द स्वरूप, मोक्ष प्राप्त वह कर सके।।

घर में रहकर ही जो ब्राह्मण, निष्काम भाव से करे धर्म। खेत में बिखरे धान्य से, करे वह निज जीवन यापन।।
सदा ही वह सन्तुष्ट रहे, समर्पित सदा वह हो मुझ पे। निज तन प्राण अन्त:करण, आत्म मुझ पे अर्पित करे।।
मुझे छोड़ के कहीं पे भी, उसकी आसक्ति नहीं रहे। बिन संन्यास धारण किये, परम पद ही वह पा ले।।

मेरा भक्त ब्राह्मण कभी, विपदा में गर पड़ जाये। उस कष्ट से उसको हैं, जो जन सहज बचा लेते।।
उनको सब विपदाओं से, शीघ्र ही हूं मैं बचा लेता। महासिन्धु बीच में जीव का, ज्यों रक्षण करती है नौका।।

राजा को पिता समान ही, प्रजा पालन करना चाहिये। उनको सारे कष्टों से, उन्हें बचाना चाहिये।।
ज्यों गजराज अन्य सभी, गजों की रक्षा है करता। धीर बनी वह राजा भी, अपना उद्धार स्वयं करता।।

जो नृप इस विधि प्रजा का, संरक्षण ही है सदा करता। सब पापों से मुक्त वह, शीघ्र स्वत: ही हो जाता।।
अन्तकाल में सूर्य सम, तेजोमयी विमान चढ़े। इन्द्र के संग वह सुख भोगे, इन्द्र लोक में जाकर के।।

अध्यापन या यज्ञ याग से, जीवन यापन गर न होए। तब ब्राह्मण को चाहिये, वह वैश्य वृत्ति का आसरा ले।।
जब तक विपदा न दूर हो, तब तक वह वैसा ही करे। आपत्ति गर आन पड़े, क्षत्रियवत् खड्ग उठा वह ले।।
किन्तु किसी भी स्थिति में वह, नहीं न्यून की सेवा करे। शास्त्रोक्त विधि से सदा, अपना जीवन व्यतीत करे।।

इसी विधि यदि क्षत्रिय भी, प्रजापालन करके जी न सके। तो व्यापार आदि इन सब, वैश्य वृत्ति का आश्रय ले।।
यदि विपदा बहुत आन पड़े, तो आखेट भी कर सके। अथवा अध्यापन भी करे, पर कभी न नीच की सेवा करे।।

आपत्ति काल में वैश्य वृत्ति, शूद्र वृत्ति का आश्रय ले। दूजे की सेवा करके ही, अपना जीवन निर्वाह करे।।
कारुवृत्ति के आसरे, शूद्र भी चटाई आदि बुने। किन्तु आपत्ति काल के ही, यह धर्म हैं सब कहे।।
विपदा जब यह टल जाये, तो लोभ कभी भी नहीं करे। निम्न वृत्ति का आश्रय ले, जीविकोपार्जन नहीं करे।।

वेदाध्ययन रूप ब्रह्मयज्ञ, और तर्पण रूप हो पितृयज्ञ। हवन रूप हो देवयज्ञ, बलि आदि अधिभूत यज्ञ।।
अन्नदान के अतिथि यज्ञ से, गृहस्थ मेरा पूजन करे। मेरे स्वरूप ऋषि देव पितर, जीव और प्राणी पूजे।।

अनायास जो प्राप्त हो, या शास्त्र विधि से उपार्जित हो। अपने उस पावन धन से, गृहस्थ का यह धर्म हो।।
भृत्यादि आश्रित प्रजा को, किसी विधि कोई कष्ट न हो। न्याय और विधिपूर्वक ही, गृहस्थी का सब यजन हो।।

गृहस्थ पुरुष कुटुम्ब में, हे उद्धव कभी आसक्त न हो। महा विस्तृत भी हो कुटुम्ब, प्रमाद कभी न भजन में हो।।
विवेकी जीव इस लोक को, विनाशवान् ज्यों मान ले। परलोक के भी सब भोगों को, अन्तवन्त वह जान ले।।

दारा सुत भाई बन्धु, गुरु जन का मिलन बिछुड़न। है जैसे किसी प्याऊ पर, बहोटी जन का एकत्रण।।
सबको अपनी अलग अलग, राहों पर ही जाना है। अन्त में तो इन सबसे ही, निश्चित वियोग हो जाना है।।
ज्यों स्वप्न तभी तक रह सके, जब लौ निद्रा न टूटे। त्यों ही सबका सम्बन्ध भी, इस तन के रहने तक ही रहे।।

गृहस्थ को चाहिए इस विधि, विचार का वह आश्रय ले। अनासक्त हुआ बिना बन्धन के, अतिथि समान वह घर में रहे।।
तन आदि में अहमत्व भाव, घर में ममत्व जो न करे। घर गृहस्थी उसके लिये, बन्धन कभी न बन सके।।

शास्त्र विहित कर्म जो, गृहस्थ के लिये हैं कहे गए। भक्त तो घर में ही रहकर, उन राही मुझे उपासा करे।।
यदि हो पुत्रवान् वह, तो वानप्रस्थ में वह जाये। गर प्रवृत्ति हो उसकी यह, संन्यास चाहे धारण कर ले।।

जो जन इस विधि से उद्धव, गृहस्थाश्रम में नहीं रहे। आसक्त होई स्त्री पुत्र, और धन की कामना में ही फंसे।।
मूढ़ता वश स्त्री लम्पट, और कृपण वह बनें रहें। हाहाकार करते हुए, वह मैं मेरे में बन्धे रहें।।

वह सोचें हाय हमरे, मात पिता हैं वृद्ध हुए। पत्नी के आत्मज तो, हैं अभी छोटे छोटे।।
मेरे न रहने पर यह, दीन अनाथ हो जायेंगे। जीवन यापन कैसे होगा, महादु:ख यह पायेंगे।।

इस विधि वासना से जिसका, चित्त है विक्षिप्त हुआ। वह मूढ़ विषय भोगों से, तृप्त नहीं कभी हुआ।।
उन्हीं में उलझा हुआ पुरुष, है अपना जीवन खो देता। मरकर भी वह घोर तमोमय, नरक में ही तो है जाता।।
भगवान बोले,
हे उद्धव यदि गृहस्थ जीव, वानप्रस्थाश्रम जाना चाहे। पत्नी सौंपे निज पुत्रों को, या उसको अपने संग वह ले।।
फिर शान्त चित्त से आयु का, तृतीय भाग व्यतीत करे। वानप्रस्थाश्रम में वह, विधिवत जाकर वन में रहे।।

वन में पावन कन्द मूल, और फल जो भी मिल जायें। उन्हीं को खा अपने तन का, निर्वाह उसे करना चाहिये।।
वल्कल ही वस्त्र बने उसका, घास पात से काम ले। अथवा मृगचर्म से ही अपना, कार्य सिद्ध करता रहे।।

मूंछ दाढ़ी केश रोम, तन की मल भी न हटाये वह। दातुन भी वह नहीं करे, त्रिकाल जल में निमग्न हो वह।।
धरती पर ही वह पड़ा रहे, ग्रीष्म में पञ्चाग्नि तपे। वर्षा ऋतु में खुले में रह, वर्षा की वह बौछार सहे।।
जाड़े में वह कण्ठ तक, शतल जल में डूबा रहे। इस विधि घोर तपस्यामय, जीवन वह व्यतीत करे।।

कन्द मूल को आग में ही, भून के वह भक्षण करे। या ऋतु अनुकूल ही खाये फल, और उनसे अपना पेट भरे।।
यदि आवश्यक हो कूटना, ऊखल या सिल पर कूट ले। या दाँतों से चबाकर ही, भक्षण उनका वह करे।।

कौन पदार्थ किस समय, उसे कहां से लाना चाहिये। को अनुकूल रहे उसके, यह भी जानना चाहिये।।
अपने जीवन निर्वाह के लिये, वह कन्द मूल वह स्वयं लाये। देश काल जो न समझें, उनका दिया वह न खाये।।
या किसी अन्य समय के भी, संचित जो भी पदार्थ हों। उनसे वानप्रस्थी को, किसी से कोई काम न हो।।

जंगली अन्न से ही चरु, पुरुडोश वह तैय्यार करे। उन्हीं के द्वारा समयोचित, वैदिक कर्म वह किया करे।।
वानप्रस्थ हो जाने पर, नहीं पशुओं से मम यजन करे। चाहे ऐसा यजन उसका, वेद विहित ही हुआ करे।।
वानप्रस्थी के लिये, अग्निहोत्र का है विधान किया। दर्श पौर्णमास चतुर्मास्य, गृहस्थ समान है कर सकता।।

तप से शुष्क हो मांस वा, इक इक नस उसकी दीखे। तप राही मेरी आराधना कर, प्रथम वह ऋषि लोक जाये।।
वहाँ से पुन: वह मेरी ही, प्राप्त है पहुँच जाता। क्योंकि यह तप जो जान ले, है स्वरूप ही इक मेरा।।

स्वर्ग ब्रह्मलोक या अन्य किसी, क्षुद्र फल को हिय धरे। उस जैसा है मूढ़ कौन, जो इस तप का अनुष्ठान करे?
इस तप का अनुष्ठान यदि, निष्काम भाव से हो सदा। अति कष्टदे तप उद्धव, है मोक्ष का फल भी दे सकता।।

आश्रमोचित नियम पालन, जब सम्भव न हो उसके लिये। वृद्धावस्था से कांपे तन, वानप्रस्थी असमर्थ भए।।
तब निज भावना द्वारा वह, यज्ञाग्नि आन्तर ले जाये। मन मुझमें लगा कर, प्रवेश वह उस अग्नि में करे।।

काम्य कर्म के फल स्वरूप, जिन भी लोकों की प्राप्ति हो। यदि यह समझ में आ जाये, सब नरक समान ही दु:ख दे हो।।
लोक और परलोक प्रति, मन में जब वैराग्य जगे। विधिवत् यज्ञाग्नि को त्याग, संन्यास में फिर प्रवेश करे।।

संन्यास का है इच्छुक जो, वेद विधि अनुकरण करे। अष्ट श्राद्ध प्राजापत्य यज्ञ, द्वारा मेरा यजन करे।।
तत्पश्चात् अपना सर्वस्व, ऋत्विज को वह दान दे। यज्ञाग्नियों को फिर वह, अपने प्राणों में लीन करे।।
किसी स्थान वस्तु या व्यक्ति की, फिर वह अपेक्षा नहीं करे। इस भाँति से जग में वह, स्वच्छन्द ही विचरण करे।।

ब्राह्मण जब मन में उद्धव, संन्यास का निश्चय कर ले। स्त्री सुत बन्धु बान्धव बन, देव उपस्थित विघ्न करें।।
वह सोचें हम सबकी ही, अवहेलना यह है करने लगा। हम सबको उलांघ कर, परमात्म को यह पा लेगा।।

यदि वस्त्र कोई धारण करे, तो केवल एक लंगोटी हो। या छोटा सा एक वस्त्र, जो ढके उस लंगोटी को।।
आश्रमानुसार दण्ड और, कमण्डलु वह धारण करे। आपत्ति काल को छोड़ कर, कोई अन्य वस्तु वह न रखे।।

आंखों से देख के धरती को, फिर उसपे वह कदम धरे। मुख वाक् सत्य से पावन हो, कपड़े से छान के जल पीये।।
तन के जो भी काज करे, सोच विचार के ही करे। बुद्धि विवेक से पूर्ण ही, संन्यासी का हर काज भये।।

तन निश्चेष्ट ही हो पड़ा, वाणी मौन ही हो जाये। है प्राणायाम इस मन का दण्ड, यह तीन दण्ड वह धार ले।।
केवल तन के राही ही जिस, बांस के दण्ड को है पकड़ा। इन तीनों दण्डों के बिना, नहीं दण्डी स्वामी हो सकता।।

जातिच्युत और गोघाती, पतितों को ही छोड़ के। अन्य चतुर्वर्णों से वह, भिक्षा सदा ही ग्रहण करे।।
अनजाने सात घरों से ही, जितना अन्न उसे मिल जाये। संन्यासी को चाहिये, उसमें ही वह सन्तोष करे।।

इस भाँति भिक्षा लेकर, बाहर जाये जलाशय पर। जल से पवित्र भिक्षा करे, हाथ पांव वहाँ धोकर।।
फिर शास्त्रानुसार वह, यथोचित्त सबको भाग दे। तत्पश्चात् जो शेष बचे, मौन होई के ग्रहण करे।।
न तो परिग्रह हो कल के लिये, न अधिक ही मांग के वह लाये। एक समय की भिक्षा पा, संन्यासी सदा संतुष्ट रहे।।

पृथ्वी पर संन्यासी को, एकाकी विचरना चाहिए। इन्द्रियां सब वशीभूत हों, आसक्ति कहीं नहीं चाहिये।।
अपने आप में मस्त रहे, आत्म प्रेम में तन्मय हो। प्रतिकूलता में हो धैर्यवान्, सर्वत्र प्रभु का अनुभव हो।।

निर्जन एकान्त स्थान में, निर्भयता से संन्यासी रहे। निरन्तर मेरी भावना से, हृदय उसका विशुद्ध रहे।।
अपने से मुझको अभिन्न और अद्वितीय ही माने वह। अखण्ड भाव से इस चिन्तन, में ही सदा निमग्न हो वह।।

चित्त के बन्धन मोक्ष पर, ज्ञान निष्ठ हो करे विचार। बन्धन है इन्द्रिय चंचलता, उनका संयम है मोक्ष द्वार।।
मन और पंच ज्ञानेन्द्रियां, निश्चित ही वह जीत ले। भोगों की क्षुद्रता जान कर, संन्यासी उनसे मुख मोड़े।।
अपने आप में ही हर पल, परमानन्द अनुभव करे। इस विधि मेरी भावना से, पृथ्वी पर वह सदा विचरे।।

नगर गांव बस्ती या, यात्रियों में जाये भिक्षा अर्थ। वन आश्रमों से परिपूर्ण पवित्र देश नदी पर्वत।।
सम्पूर्ण पृथ्वी में कहीं, ममत्व भाव वह न जोड़े। मेरा ही सब जान के, धरती पर वह विचरा करे।।

भिक्षा के लिये भी वह, वानप्रस्थी आश्रम जाये। कटे खेत के धान्य से, शीघ्र चित्त शुद्ध कर पाये।।
जो मोह अभी है बचा हुआ, शीघ्र दूर ही हो जाये। तत्पश्चात् सिद्धि की, उपलब्धि उसे हो जाये।।

दृश्यमान इस जगत् को, नहीं माने सत्य विचारवान्। संन्यासी सत्य यह जाने है, प्रत्यक्ष ही है वह नाशवान्।।
यहां पे अपने चित्त को, संन्यासी कभी लगाये न। लोक-परलोक एषणास, अब उसको सताये न।।

मन वाणी और प्राणों का, संघात रूप जो जगत् है। आत्म में स्थित यह सारा ही, वह माने मायामय है।।
इस विचार के द्वारा ही, आसक्ति सब वह छिन्न करे। निज स्वरूप में स्थित रहे, नहीं याद कभी इस जग को करे।।

ज्ञाननिष्ठ विरक्त और, मुमुक्षु जो है मेरा भक्त। या मोक्ष भी न कभी चाहे जो, नहीं किसी भी मर्यादा में बद्ध।।
गर चाहे तो वह आश्रमों और, उनके चिन्हों को छोड़ दे। शास्त्र विधि निषेध त्यजी, चाहे स्वच्छन्द ही वह विचरे।।

बुद्धिमान होकर भी वह, बालकवत् खेला करे। अति दक्ष औश्र निपुण है वह, किन्तु जड़वत् ही रहा करे।।
है विद्वान किन्तु फिर भी, पागल जैसा व्यवहार करे। है वेद विधि का ज्ञाता वह, आचरण अनियत ही उसका रहे।।

वेदो के कर्मकाण्ड की, व्याख्या में वह नहीं पड़े। पाखण्ड की वह नहीं करे, तर्क वितर्क से बचा रहे।।
जहाँ कोरा वाद विवद हो, वहाँ से सदा वह दूर रहे। किसी अवस्था में ी किसी का, पक्षधर कभी न वह बने।।

धैर्यवान् हो इतना कि, मन में कभी उद्वेग न हो। न ही उसके अपने कारण, किसी भी जन को उद्वेग हो।।
गर निन्दा कोई करे उसकी, तो हंसकर उसको सहन करे। किसी भी परिस्थिति में वह, नहीं दूजे का अपमान करे।।
अपने तन हेतु उद्धव, नहीं वैर करे संन्यासी कभी। ऐसा वैर तो कर सकें, धरती पर केवल पशु ही।।

जल के भिन्न भिन्न पात्रों में, ज्यों चन्द्रमा प्रतिबिम्बित हो। त्यों ही इक परमात्म निज में, और सब जीवों में ही स्थित हो।।
सबका आत्म तो एक है, पंचभौतिक तन भी है एक। नहीं भेद कहीं हो सके, फिर वैर विरोध क्यों हों अनेक?

यदि किसी दिन समय पर, भोजन न मिले संन्यासी को। इससे तो संन्यासी का, चित्त कभी न व्यथित हो।।

यदि बराबर मिलता रहे, तो भी उसको हो हर्ष नहीं। हर्ष विषाद से रहित है वह, है धैर्यवान् हर हाल में ही।।
वह जाने हर परिस्थिति, रेखा की ही है देन। हर हाल में वह सन्तुष्ट रहे, दैव की उसको जान देन।।

भिक्षा वृत्ति उचित ही है, ऐसा करना ही चाहिये। इस राही ही प्राणों की, अपने वह रक्षा कर पाये।।
प्राण रहे ही तत्त्व का, विचार भी सम्भव हो सके। तत्त्व ज्ञान पाकर ही तो, जीव मुक्त भी हो सके।।

रेखा बधित अच्छी बुरी, जैसी भी भिक्षा मिल जाये। उसीसे भूख मिटाकर के, संन्यासी वह संतुष्ट रहे।।
जैसा भी वस्त्र बिछौना मिले, उसीसे काम चला वह ले। उसमें अच्छे बुरेपन की, कभी वह कल्पना नहीं करे।।

परमेश्वर होकर भी मैं, लीलावत् नियम निभाऊँ सब। शौच आचमन स्नान और, अन्य भी हैं जो नियम सब।।
ज्ञाननिष्ठ भी लीलावत्, ज्यों ही उनका पालन करे। विधि विधान काकिंकर बन, वह इस जग में न विचरे।।

ज्ञान निष्ठ को तो कभी, नहीं भेद प्रतीति कहीं होती। किंचित्मात्र जो थी रही, साक्षात्कार से नष्ट हुई।।
मृत्यु पर्यन्त कभी कभी, यह भेद गर प्रतीत भी हो। देहपात तत्पश्चात् वह, मुझमें ही बस लीन हो।।

यह तो ज्ञान की बात कही, अब वैराग्य की तुम सुनो। वैराग्यवान् की दृष्टि क्या, अब उद्धव तुम यह सुनो।।
संसार भोग का फल दु:ख है, जब यह निश्चय हो जाये। जितेन्द्रिय पुरुष उस पल ही, विरक्त इससे हो जाये।।
यदि मेरी प्राप्ति के साधनों को, ऐसा जीव नहीं जाने। भगवत् चिन्तन में तन्मय जो, ऐसे सद्गुरु की शरण गहे।।

श्रद्धा रखे गुरु में वह, और गुरु भक्ति दृढ़ करे। दोष दर्शन उसमें न हो, मेरा ही दर्शन वहाँ करे।।
जब तक ब्रह्म का ज्ञान न हो, मेरा ही रूप उन्हें जानकर। गुरु की वह सेवा करे, मेरी मूर्त उन्हें मानकर।।

पंच इन्द्रियां और यह मन, अपने नहीं जिसने जीते। इंद्रिय अश्व और बुद्धि सारथी, जिसके नहीं अपने वश में।।
जिसके हृदय में ज्ञान नहीं, न ही जहां वैराग्य है। त्रिदण्डी संन्यासी बनकर, केवल जो करे व्यापार है।।
संन्यास धर्म का केवल वह, सत्यानाश है कर रहा। पूज्य देवों मुझको निज को, भी वह है ठगना चाहता।।
है वेषमात्र संन्यासी वह, नहीं वासना क्षीण हुई उसकी। वास्तव में है वह खो देता, लोक परलोक यह दोनों ही।।

शान्ति और अहिंसा हैं, संन्यासी के मुख्य धर्म। तप और भगवद्भाव हैं, वानप्रस्थी के मुख्य धर्म।।
गृहस्थी के हैं मुख्य धर्म, जीवों की रक्षा यज्ञ याग। ब्रह्मचारी का है मुख्य धर्म, आचार्य प्रति सेवा का भाव।।

पत्नी संग सहवास करे, गृहस्थ भी बस ऋतुकाल में ही। ब्रह्मचर्य तप शौच सन्तोष, यही मुख्य धर्म हैं उसके भी।।
जीवों के प्रति हो प्रेम भाव, दया की दृष्टि सब पे रहे। मेरी उपासना तो सबको, हर हाल में करनी चाहिये।।

इसी विधि अनन्य भाव से, जो जन मेरी सेवा करें। अपने वर्णाश्रम धर्म, को विधिवत् पालन करें।।
सब जीवों में मुझे देखकर, जो मेरा ही पूजन करें। उनको अविचल भक्ति मेरी, शीघ्राति शीघ्र ही प्राप्त भए।।
सब लोकों का हूँ स्वामी मैं, उत्पत्ति प्रलय कारण हूँ ब्रह्म। नित्य निरन्तर बढ़ती हुई, भक्ति से हो वह मुझे प्रपन्न।।

स्वधर्म के पालन से गृहस्थ, निज अन्त:करण को शुद्ध करे। इस भाँति मेरा स्वरूप, सहज ही वह जान सके।।
ज्ञान विज्ञान से सम्पन्न हो, शीघ्र वह मुझको प्राप्त करे। वर्णाश्रमों के सदाचार रूप, धर्म तुझे बतला दिये।।

यदि इन सबके पालन में, मेरी भक्ति का पुट लग जाये। परम कल्याण स्वरूपा मोक्ष, अनायास ही इससे मिल जाये।।
हे साधु स्वभाव उद्धव, जो प्रश्न था तूने मुझसे किया। उसका उत्तर विस्तार से, है तुमको अब दे दिया।।
निज धर्म का पालन करके भक्त, परब्रह्म को प्राप्त हो कैसे। हे उद्धव यह गुह्य रहस्य, हैं तुमको बतला दिये।।

१०) भक्ति, ज्ञान और यम-नियमादि साधनों का वर्णन

भगवान बोले,
शास्त्र श्रवण राही उद्धव, आत्मवान् जो हो गया। केवल युक्ति अनुमान पे ही, आश्रित नहीं निश्चय जिसका।।
दृश्य जगत् की निवृत्ति कर, विज्ञान भी मायामय जाने। मुझमें ही इन दोनों को जान, उनको मुझमें ही लीन करे।।

ज्ञानी पुरुष का इक क्ष्य, जान लो उद्धव मैं ही हूँ। साधन साध्य स्वर्ग अपवर्ग, उनका सब कुछ मैं ही हूँ।।
मुझसे अधिक किसी अन्य से, प्रेम नहीं वह है करता। मैं ही प्रियतम हूँ उसका, बस मुझको ही है वह वरता।।

ज्ञान और विज्ञान से, सम्पन्न सिद्ध पुरुष हैं जो। वह ही तो हैं जान सकें, मेरे वास्तविक स्वरूप को।।
ज्ञानी पुरुष निज ज्ञान से, करें अन्त:करण में मुझे धारण। जानो उद्धव है परम प्रिय, ऐसा ज्ञानी मुझे इस कारण।।

तनिक सा तत्व ज्ञान भी, सिद्धि जो प्रदान करे। तप तीर्थ दान जप चित्त शुद्ध, नहीं अन्य कोई भी साधन दे।।
ज्ञान से निज आत्म स्वरूप, हे उद्धव तुम जान लो। ज्ञान विज्ञान से हो सम्पन्न, भक्ति युक्त मेरा भजन करो।।

महा ऋषि मुनि जन ने, ज्ञान का ही आश्रय लिया। अपने चित्त में अधिपति, आत्मा का उन्होने भजन किया।।
इसकी राही ही वे सब, परम सिद्धि को प्राप्त हुए। ज्ञान विज्ञान की राही वे, सहज ही मुझ तक आ पहुँचे।।

तीनों विकार का रूप यह तन, हे उद्धव जानो जो है। आध्यात्मिक दैविक अधिभौतिक, सब आत्म पे आश्रित है।।
न तो था पहले ही यह, न यह अन्त में ही होगा। केवल मध्य में ही यह तो, दृश्यमान् है हो रहा।।
जादू के खेल समान यह, बस केवल मायामात्र ही है। वास्तव में इसका जानो, नहीं कोई अस्तित्व है।।
जन्म अस्तित्व और वर्धन, बदलाव घटाव नष्ट होना। छ: विकार जानो इसके, नहीं इनसे कछु सम्बन्ध तेरा।।
है वास्तव में असत् यह तन, विकार न उसमें हो सकें। पहले न था न बाद में हो, अस्तित्व मध्य में हो न सके।।
उद्धव बोले,
हे विश्वरूप परमात्मन्, आप ही हैं जगत के स्वामी। वैराग्य विज्ञान युक्त यह, सनातन ज्ञान हो दृढ़तम ही।।
उसी विधि प्रभु स्पष्ट कर, आप मुझे यह समझायें। ब्रह्मा आदि भी खोजें जिसे, भक्ति का मर्म वह बतलायें।।

इस भवसागर में पड़ा जीव, त्रैताप की मार है खा रहा। आन्तर और बाहर से वह, निरन्तर पीड़ित हो रहा।।
हे स्वामी आपके युगल चरण, अमृत बरसायें उसके लिये। उनकी छत्रछाया बिना, नहीं अन्य सहारा दीख पड़े।।

है अन्ध कूप में पतित प्रभु, दीन यह सेवक आपका। काल रूपा सर्प ने, निज पाश में इसको है जकड़ा।।
फिर भी विषयों के क्षुद्रभोग, से तृष्णा इसकी नहीं मिटती। कृपा कर उद्धार करें, मुक्तिदे वाक् की वर्षा करी।।
भगवान बोले,
आज प्रश्न यह उद्धव तुम, मुझसे हो जो पूछ रहे। यही प्रश्न पितामह से धर्मराज ने थे किये।।

उस समय हम सब भी, वहाँ पे विद्यमान थे। महाभारत युद्ध के अन्त में, युधिष्ठिर शोक से व्याकुल थे।।
बन्धु बान्धव संहार देख, हृदय विह्वल था हो रहा। बहुत धर्मों का आख्यान सुनी, पितामह से फिर प्रश्न किया।।
मोक्ष के हैं साधन क्या, उनसे था युधिष्ठिर ने पूछा। पितामह के मुख से जा सुना, वही धर्म तुम्हें मैं सुनाऊँगा।।
ज्ञान विज्ञान वैराग्य और, श्रद्धा से वह परिपूर्ण है। वह मोक्ष धर्म जानो उद्धव, भक्ति भाव परिपूर्ण है।।

प्रकृति पुरुष महत्तत्त्व, अहं, पंच तन्मात्रा बने नौ। पंचज्ञानेन्द्रियां कर्मेन्द्रियां, संग मन मिली एकादश हो।।
पंचभूत और तीनों गुण, सब मिलकर अट्ठाईस बनें। ब्रह्मा से तृण पर्यन्त ही, सब कार्यों में दर्शन वा भए।।
इनमें भी इक परमात्म ही, सब भाँति से व्याप्त हो। यह ही है परोक्ष ज्ञान, मेरा मत यह जान लो।।

जिस एक तत्त्व के अनुगत ही, सभी तत्त्व थे दीख रहे। सब तत्त्वों को न देख के, केवल इक ब्रह्म ही जब दीखे।।
तब ही निश्चित रूप से, अपरोक्ष ज्ञान इसको जानो। किस विध प्राप्त यह हो सके, अब उसकी भी तुम सुन लो।।
यह तन आदि जितने भी, त्रिगुणात्मक पदार्थ हैं। उनकी उत्पत्ति स्थिति प्रलय, का दर्शन ही इक साधन है।।

सृष्टि के आदि अन्त में, जो तत्त्व कारणभूत भएं। हर काज में हो वह ही अनुगत, वही मध्य में भी रहे।।
फिर सबके प्रलय हो जाने पर, अधिष्ठान जो शेष रहे। उस साक्षी को ही सत्य तू, परमार्थ वस्तु जान ले।।

श्रुति प्रत्यक्ष महापुरुष और, अनुमान हैं चार प्रमाण। इनके आधार पे दृश्य जगत्, अस्थिर और नश्वर ही जान।।
विवेकवान् विकारी जान, सत्य नहीं उसे मानता। कल्पना रूप प्रपंच से, विरक्त ही है वह हो जाता।।

स्वर्गादि फलदे यज्ञादि, कर्मों के फल भी हैं नश्वर। ब्रह्मलोक पर्यन्त भी जो, अदृष्ट हैं सुख सब हैं नश्वर।।
प्रत्यक्ष विषय सुख के समान, अमंगल और दु:खदायी हैं। साथ न यह निभायें कभी, यह तो जानों हरजाई हैं।।

भक्तियोग का वर्णन तो, पहले भी हूँ मैं कर चुका। किन्तु हे अनघ उद्धव उसमें, है तेरा अनुराग बड़ा।।
इस कारण फिर से तुमको, मैं उसकी बात सुनाता हूँ। किस विध वह भक्ति प्राप्त हो, साधन श्रेष्ठ सुझाता हूँ।।

मेरी भक्ति प्रिय उद्धव, जो भी प्राप्त करना चाहे। मेरी कथामृत में सदा, अविचल निज श्रद्धा रखे।।
मेरे गुण लीला नामों का, कीर्तन ही वह सदा करे। मम पूजा में हो निष्ठा, स्तोत्रों से स्तुति गान करे।।

सेवा पूजा में प्रेम हो, साष्टांग प्रणाम करे। मुझसे भी बढ़कर के वह, मम भक्तों की पूजा करे।।
सब भूतों में भक्त वह, मेरा ही दर्शन करे। अपने हर अंग की चेष्टा बस मेरे लिये ही वह करे।।
वाणी से गुणगान करे, मन मुझको अर्पित कर दे। अपनी सर्वकामना वह, बस मेरे ही चरण धर दे।।

धन भोग और प्राप्त सुख, सब मेरे लिये ही छोड़ दे। यज्ञ दान हवन व्रत जप, तप भी सब मेरे लिये करे।।
इन धर्मों का पालन करके, जो आत्म निवेदन मुझे करे। उसके हृदय में प्रेममयी, मेरी भक्ति जाग उठे।।
जिसे मेरी भक्ति प्राप्त हुई, अब उसके लिये है शेष क्या? अन्य किसी वस्तु का वहाँ, अस्तित्व ही भला कहाँ रहता?

जब इन धर्मों के पालन से, चित्त में सतोगुण बढ़ जाये। शान्त चित्त हुआ आत्म में, ही निरन्तर वह टिके।।
धर्म ज्ञान वैराग्य और, ऐश्वर्य स्वत: ही प्राप्त हों। ऐसी स्थिति में भक्त को, कदाचित नहीं अभाव हो।।

यह जग जानो है उद्धव, केवल कार्य कल्पना का। नाम तो है इसका जानो, पर अस्तित्व नहीं इसका।।
रजोगुण का आवेग उसे, असत् में ही प्रेरित करे। इसमें लगा चित्त इन्द्रिय सहित, इधर उधर भटका करे।।
धर्म ज्ञान आदि उसके, फिर स्वत: लुप्त हो जाते हैं। अधर्म अज्ञान मोह के, साम्राज्य वहाँ छा जाते हैं।।

जिससे मम भक्ति जाग उठे, है उद्धव वास्तविक धर्म वही। ब्रह्म आत्म का एकत्व जहां, साक्षात् है ज्ञान वही।।
विषयों से निसंग निर्लेप हो, है वास्तव में वैराग्य यह। अणिमा आदि सिद्धियों को, ही ऐश्वर्य तू जान ले।।
उद्धव बोले,
हैं किन भाँति के यम नियम, दम शम हैं क्या यह कृष्ण कहें? तितिक्षा और धैर्य है क्या, हे प्रभु आप यह मुझे कहें।।
दान तप शौर्य सत्, और ऋत के भी स्वरूप कहें। है त्याग क्या क्या अभीष्ट धन, यज्ञ दक्षिणा की भी कहें।।
पुरुष का सच्चा बल है क्या, भग और लाभ भी किसे कहें? उत्तम विद्या लज्जा श्री, सुख दु:ख की भी बात कहें।।

है पण्डित कौन और कौन मूर्ख, सुमार्ग कुमार्ग के लक्षण क्या? भाई बन्धु और घर है क्या, कहें स्वर्ग और नरक है क्या?
धनवान कौन निर्धन है कौन, कृपण कौन है यह भी कहें। ईश्वर किसको कहते हैं, प्रभु आप ही बतलायें।।
मेरे इन प्रश्नों का प्रभु, कृपा कर के उत्तर दें। इनके विरोधी भावों की, भी प्रभु आप व्याख्या करें।।
भगवान बोले,
अहिंसा सत्य अस्तेय असंगता, लज्जा अपरिग्रह आस्तिकता। ब्रह्मचर्य मौन स्थिरता क्षमा, अभय यह द्वादश यम है कहा।।
फिर नियम की संख्या भी, द्वादश ही है कही गई। बाह्य आन्तरिक पावनता, जप तप हवन श्रद्धा कही।।
अतिथि सेवा मेरी पूजा, परोपकार तीर्थ यात्रा। सन्तोष और गुरु सेवा, नियमों का है वर्णन यह किया।।
निष्काम और सकाम भी, साधन जो हैं उद्धव जानो। यम नियम दोनों के लिये, महा उपयोगी तुम मानो।।
जो इन यम और नियमों का, पालन करते हैं सदा। उनकी इच्छानुसार उन्हें, भोग मोक्ष दें दोनों सदा।।

बुद्धि का मुझमें पूर्णत:, लग जाना है शम कहें। इन्द्रिय संयम ही दम है, दु:ख को सहना तितिक्षा कहें।।
जिह्वा और जननेन्द्रिय पर, विजय ही जानो धैर्य है। है कामना त्याग ही तप कहें, वासना विजय ही शौर्य है।।
किसी से भी द्रोह न करना, अभयदान ही दान है। यह ही गुण तो जीव के, उसे जग में करें महान् हैं।।
रामस्वरूप और सत्य रूप, परमात्म का सबमें दर्शन। यह ही वास्तव में सत्य है, इतना जानो उद्धव तुम।।

सत्य मधुर भाषण को ही, महात्मा जन ने ऋत कहा। है कर्मों में अनासक्ति शौच, कामना त्याग संन्यास कहा।।
धर्म ही धन है जीव का, मैं परमेश्वर ही यज्ञ हूँ। है ज्ञानोपदेश ही दक्षिणा, प्राणायाम ही उत्तम बल कहूँ।।
मेरा ऐश्वर्य ही भग जानो, मेरी भक्ति उत्तम लाभ है। ब्रह्म आत्म जो अभेद करे, वह ही तो सच्ची विद्या है।।
मोक्ष और बन्धन के जो, वास्तविक तत्त्व को जान ले। विज्ञानी जन उसको ही, वास्तव में पण्डित कहें।।

देहादि में जिसकी है, अहं बुद्धि वह है मूर्ख। जो मेरी ओर ही ले आये, है वह ही जान तू सुमार्ग।।
चित्त की बहिर्मुखता को, ही कुमार्ग तू जान ले। सतोगुण बुद्धि स्वर्ग है, तमोगुण वर्धन को नरक कहें।।
गुरु ही सच्चा बन्धु जान, और सखे जान मैं ही हूँ गुरु। आन्तर में सबके बैठा, मैं ही बनके सबका गुरु।।
मानव तन ही है सच्चा घर, इसमें सद्गुण कुमाये जो। सच्चा धनी उसको ही जान, इन गुणों से कोष भराये जो।।

अभाव बोध से रहे ग्रसित, असन्तोषी वह दरिद्र है। अजितेन्द्रिय ही जान ले, सबसे बड़ा जो कृपण है।।
जिसकी चित्तवृत्ति कभी, किसी विषय में न आसक्त हो। वह ही तो स्वतंत्र है, परम समर्थ वह ईश्वर हो।।
चित्त जिसका विषयों में, ही सदा आसक्त रहे। है वही सर्वदा असमर्थ, परतंत्र ही वह बना रहे।।
प्रिय उद्धव जो भी प्रश्न, तुमने मुझसे थे किये। उन सबके उत्तर दिये, हैं मोक्ष मार्ग में सहायक यह।।

गुण और दोषों के लक्षण, कहाँ तक बतलाऊँ तुझे। सबका सारांश प्रिय मित्र, इतना ही तू समझ ले।।
गुण दोषों पे दृष्टि धरना, ही महादोष तू जान ले। न दृष्टि इनपे धरे शान्त, है सर्वोत्तम ही गुण यह।।

उद्धव बोले,
हैं सर्वशक्ति सम्पन्न आप, हैं वेद आपकी ही आज्ञा। किसी कर्म की विधि कही, और किसी का है निषेध किया।।
कर्मों के गुण और दोष के, परीक्षण पे आधारित हैं। विधि निषेध हे कमलनयन, क्या इनसे ही हों प्रेरित हैं?

वर्ण और आश्रम भेद, प्रतिलोम अनुलोम वर्णसंकर। कर्मों से उपयुक्त और, अनुपयुक्त जो प्राप्त द्रव्य।।
देश आयु और काल, स्वर्ग नरक का भेद भी। इसका बोध भी हो सके, हे केशव वेदों से ही।।

आपकी वाणी जानूँ प्रभु, निस्संदेह ही वेद है। किन्तु उनमें तो है भरा, सब विधि और निषेध है।।
गुण भेद दृष्टि ही प्रभु, यदि जीव के आन्तर में न हो। तो जीवों के कल्याण की, समर्थ प्रभु वहाँ कैसे हो?

आपकी वाणी वेद प्रभु, है सर्वश्रेष्ठ मार्गदर्शक। पितर देव जीवों के लिये, है यह एक दिशा सूचक।।
उन द्वारा अदृष्ट वस्तु, स्वर्ग नरक का बोध हो। साधन साध्य क्या लोक में है, इसका निर्णय भी उसीसे हो।।

नहीं तनिक सन्देह इसमें, गुण दोष में है जो भेद दृष्टि। नहीं किसीकी कल्पना मात्र वह, तव वाणी वेदों ने ही कही।।
किन्तु आपकी वाणी ही, निषेध करे प्रभु भेद का। विरोधाभास यह देखकर, भ्रम है मुझको हो रहा।।
कृपा कर के आप ही, मेरा भ्रम यह दूर करें। क्या तात्पर्य है इस सब का, प्रभु आप ही मुझे कहें।।
भगवान बोले,
वेदों में और अन्यत्र भी, है मैंने ही उपदेश दिया। जीवों के कल्याण हेतु, है पात्र भेद से योग कहा।।
ज्ञान कर्म और भक्तियोग, का मार्ग बतलाया उन्हें। इनके अतिरिक्त अन्य कोई, उपाय नहीं कल्याण के।।

कर्म और उनक फल से, विरक्त जो जन हैं हो गए। उनका त्याग जो कर चुके, ज्ञान के वे अधिकारी भए।।
कर्म और उनके फल से, नहीं जिन्हें वैराग्य हुआ। नहीं दु:ख बुद्धि हुई उनमें, उन हेतु कर्म का योग कहा।।

न तो जो अति विरक्त हैं, और न ही अति आसक्त हैं। पूर्व के शुभ कर्म से ही, मेरी कथा में जो अनुरक्त है।।
उस श्रद्धा के राही वह, भक्तियोग अधिकारी बना। भक्तियोग के द्वारा ही, सिद्धि है वह पा सकता।।

कर्म के सम्बन्ध में है, जितने भी विधि निषेध कहे। वे सब तो कर्म का, विधान तब लौ ही कहें।।
अथवा मेरी लीला कथा के, श्रवण में न वा रुचि भए। उसके कीर्तन आदि में न, गर श्रद्धा उसकी उपज पड़े।।

निज वर्णाश्रम के अनुकूल, अपने धर्म में स्थित रहे। निष्काम होई यज्ञों से, मेरी आराधना करता रहे।।

निषिद्ध कर्म से दूर रहे, केवल विहित कर्म ही करे। फिर स्वर्ग नरक दोनों में ही, उसको जाना नहीं पड़े।।
निज धर्म में निष्ठा हो जिसकी, इस तन में रहते रहते ही। निषिद्ध कर्म को त्यागें वह, नहीं मलिन करें रागादि भी।।
आत्म साक्षात्कार रूप, विशुद्ध तत्त्व ज्ञन पाये। अनायास मम भक्ति भी, सहज प्राप्त उसे हो जाये।।

इस विधि निषेध रूपा कर्म, का अधिकार मिला जिससे। इस मानव तन को पाना, अति दुर्लभ उद्धव जान ले।।
स्वर्ग नरक दोनों के ही, वासी इसकी इच्छा करें। क्योंकि केवल इस तन राही, चित्त की शुद्धि हो सके।।
किसी भी तन में गुण बुद्धि या अभिमान हो जाने पे। वास्तविक स्वरूप की प्राप्ति के, साधन में प्रमाद भए।।

यह मानव तन भी यद्यपि, है तो काल का ग्रास ही। किन्तु इसकी राही ही, आत्मोपलब्धि हो सकती।।
बुद्धिमान यह जानकर, सदा सर्वदा दक्ष रहे। मृत्यु आने से पूर्व ही, वह तो साधन ऐसा करे।।
तनत्व भाव को छोड़ कर, वह आत्म भाव से युक्त हो। जिससे जीवन-मृत्यु के, चक्र से सदा वह मुक्त हो।।

तन रूपा वृक्ष पे जीव ने, है नीड़ अपना बना लिया। इस नीड़ में बैठा हुआ पक्षी, सोचे आनन्द में वह बसा।।
त्यों ही तन छोड़ी अनासक्त, जीव मोक्ष का भागी बने। किन्तु उसमें आसक्त जीव, दु:ख ही दु:ख सदा भोगे।।

दिवस रैन हर क्षण उद्धव, तन की आयु को क्षीण करें। जो इस सत्य का दर्शन पा, मन में भय से कांप उठे।।
तन में आसक्ति छोड़ के वह, तत्त्व ज्ञान को प्राप्त करे। निरपेक्ष हो जन्म मरण से वह, निज आत्म में शान्त रहे।।

सब शुभ फलों की प्राप्ति का, मूल भी है मानव का तन। अति दुर्लभ होने पर भी, सुलभता से हुआ प्रपन्न।।
भव सागर तरने के लिये, सुदृढ़ नौका इसको जानो। शरणापन्न गर तुम हो जाओ, गुरु को ही केवट जानो।।
तेरी नैय्या का पतवार, वह निज कर में थाम लें। लक्ष्यानुकूल वायु मैं बनूँ, जब तू मुझको याद करे।।
इतना सब होने पर भी, भवसागर जो नहीं तरे। वह तो अपने हाथों ही, निज आत्म का हनन करे।।

कर्मों में दोष का दर्शन पा विरक्त जीव जब हो जाये। जितेन्द्रिय होकर योग में, जब स्थित वह हो जाये।।
अभ्यास के द्वारा अपना मन, मुझमें फिर टिका वह ले। गर यह मन चंचल हो कभी, इधर उधर भटकने लगे।।
अति दक्ष हो युक्ति से, समझाये और मनाये उसे। जिस भी नीति से सम्भव हो, उसको अपने वश में करे।।

इन्द्रिय और प्राणों को वह, अपने वश में सदा रखे। क्षण भर के लिये इस मन को, स्वतंत्र कभी वह न छोड़े।।
इक इक भाव कर्म उसका, सदा निरखता वह रहे। सतोगुणी बुद्धि से मन, शनै: शनै: निज वश में करे।।

ज्यों अश्वारोही अश्व को जब, निज वश में करना चाहे। अपने मनोभाव की, पहचान उसे देना चाहे।।
अपनी इच्छानुसार ही, उसे चलाने के लिये। बार बार फुसलाकर वह, अपने वश में उसे करे।।
उसी विधि इस मन को भी, मीठी बात सुनाकर के। वशीभूत उसे कर लेना, ही है योग तू जान ले।।

सांख्य शास्त्र में सृष्टि का, जो भी क्रम है बतलाया। तदनुकूल ही सृष्टि का, चिन्तन साधक है करता।।
जिस क्रम से तन आदि का, प्रकृति में लय है कहा गया। साधक के चिन्तन का भी, वह क्रम है चलता रहता।।
जब लगे यह मन स्थिर न हो, तब लौ चिन्तन यह चलता रहे। इस चिन्तन से विवेकवान्, विमुख किंचित् भी न होए।।

जग में दु:ख दर्शन पाकर, जो जीव है हुआ विरक्त। स्वरूप का ही चिन्तन करे, गुरु जन उपदेश को समझ कर।।

तन को ही आत्म मान कर, जो मन हर पल चंचल रहे। इस अभ्यास से अति शीघ्र चंचलता वह छोड़ दे।।

यम नियम आसन प्राणायाम, प्रत्याहार धारणा और ध्यान। समाधि आदि साधनों से, आत्म विद्या वह ले पहचान।।
और मेरे विग्रह की, वह उपासना किया करे। कर्म ज्ञान या भक्तियोग से, ही मन परम में लग सके।।

वैसे तो योगी कभी कोई, निन्दित कर्म है नहीं करता। किन्तु प्रमाद वश उससे कहीं, अपराध भी हो जाये कदा।।
तो योग द्वारा ही दुष्कर्म, अपना तुरन्त वह दग्ध करे। अन्य प्रायश्चित के भ्रम में, वह योगी कभी नहीं पड़े।।

अपने अपने अधिकार में, जो भी निष्ठा है जिसकी। वह निष्ठा ही जानो तुम, गुण के नाम से कही गई।।
गुण दोष और विधि निषेध, है सबका तात्पर्य यही। किसी विधि छूटे विषयासक्ति, है इन सबका लक्ष्य यही।।
है कर्म तो जन्म से ही अशुद्ध और अनर्थ का मूल है। कर्मों का नियमन ही तो, शास्त्रों का तात्पर्य है।।
जहाँ तक भी हो सम्भव, प्रवृत्ति यह रोकनी चाहिये। कर्मों से तो जीव को, संकोच ही करना चाहिये।।

कर्मों में दु:खदर्शन कर, उनसे है जो विरक्त हुआ। सभी भोग वासना को, दुख रूप ही जिसने जान लिया।।
इस दुविधा से साधक वह, छुटकारा पाने के लिये। दृढ़ निश्चय श्रद्धा प्रेम सहित, मेरा ही सदा भजन करे।।

मेरे द्वारा बतलाये गए, मेरी भक्तियोग का आश्रय ले। प्रेम और श्रद्धामय हृदय से, जो मेरा भजन ही सदा करे।।
उस साधक के हृदय में आ, मैं ही स्वयं विराजू वहाँ। मेरे आते ही वासना और, संस्कार हों सारे दग्ध वहाँ।।

मुझ सर्वात्म का उसे, साक्षात्कार जब हो जाये। हृदय की सब ग्रन्थी खुले, संशय सारे फिर छिन्न भएं।।
ज्ञान वैराग्य की उसे कहें, नहीं कोई आवश्यकता। मेरी भक्ति के द्वारा ही, कल्याण है उसका हो जाता।।

कर्म तपस्या और ज्ञान, वैराग्य योगाभ्यास दान। धर्म और अन्य भी हैं, कल्याण के साधन जो महान्।।
उनके द्वारा स्वर्ग अपवर्ग, मेरा परं धाम या कोई अन्य। जो भी प्राप्त करे कोई, और समझे अपने को वह धन्य।।
मेरी भक्त तो भक्तियोग के, प्रभाव से अनायास ही। यदि कभी चाहे इन्हें, तो सहज प्राप्त करे सबको ही।।

अनन्य प्रेमी और धैर्यवान् मम भक्त तो कुछ चाहता ही नहीं। यदि उस साधु को दे दूं कुछ, या देना भी गर चाहूँ कभी।।
किसी अन्य वस्तु की तो उद्धव, बात ही हम क्या कहें। वे तो कैवल्य मोक्ष को, भी लेना कभी न चाहें।।
सर्वश्रेष्ठ कल्याणकर, है निरपेक्षता ही उद्धव। निरपेक्ष और निष्काम जो हो, मम भक्ति प्राप्त लेता है कर।।

बुद्धि अतीत उस परं तत्त्व, को प्राप्त महात्मन् जो हुए। उन समदर्शी मेरे प्रेमी, अनन्य भावी भक्तों के।।
विधि निषेध पे आश्रित इन, पाप और सब पुण्यों से। हे उद्धव तू जान ले, कोई सम्बन्ध नहीं रहते।।

मेरे द्वारा बतलाये गए, योग का जो जन आश्रय लें। ज्ञान भक्ति और कर्म मार्ग, का जो जन अनुसरण करें।।
परं ब्रह्म के तत्त्व को, सहज जान वह जाते हैं। कल्याण स्वरूप मम परं धाम, को ही जन वह पाते हैं।।

११) कामी पुरुषों के गुण-दोषों का वर्णन

भगवान बोले,
मेरी प्राप्ति के हे उद्धव, तीन मार्ग हैं मैंने कहे। भक्ति ज्ञान और कर्मयोग, इन तीनों को जान ले।।

HHH(४११)HHH

इन्हें छोड़ इन्द्रियों द्वारा, जो क्षुद्र भोग ही भोगा करें। जन्म मृत्यु रूपा जग के, चक्र में पुन: पुन: भटकें।।

अपने अपने अधिकार से, धर्म में है जो भी निष्ठा। उसको ही तू जान ले, गुण नाम से है कहा गया।।
इसके विरुद्ध अनाधिकार, चेष्टा को ही दोष कहें। वस्तु से नहीं इन दोनों की, व्यवस्था हो अधिकार से।।

समान हो वस्तु फिर भी उसे, शुद्ध अशुद्ध कहा जाये। गुण दोष शुभ अशुभ, का विधान जो किया जाये।।
भली भाँति निरीक्षण और, परीक्षण ही अभिप्राय हो। योग्य अयोग्य देख के ही, स्वभाविक वृत्ति नियन्त्रित हो।।

इसके द्वारा ही धर्म का, सम्पादन भी हो सके। जग व्यवहार भी ठीक चले, जीवन निर्वाह भी हो सके।।
सहज प्रवृत्ति से वासना के, जाल में न फंसे जीव। शास्त्रानुकूल ही जीवन हो, मन को वश में ही करे जीव।।
इस कारण ही मनु रूप धरी, मैंने धर्म का है उपदेश किया। धर्म भार ढोने वालों को, दी आचार की संहिता।।

पृथ्व तेज जल वायु आकाश, हैं मूलभूत शरीरों के। ब्रह्मा से ले पर्वत वृक्ष, इन पंचभूतों से ही हैं बनें।।
इस दृष्टि से जब देखो, सारे तन ही समान हैं। आत्म भी सबमें एक ही है, भेद कहो फिर कहाँ पे है?

यद्यपि सारे तनो में ही, पंचभूत समान हैं। फिर भी वेदों ने वर्णाश्रम, के भिन्न-भिन्न दिये नाम हैं।।
ताकि वासना मूलक यह, वृत्ति करें नियन्त्रण में। धर्म अर्थ और काम मोक्ष, चारों पुरुषार्थ सिद्ध करें।।

देश काल फल निमित्त, अधिकारी और धान्य आदि। सब वस्तु के गुण दोष का, विधान किया है मैंने ही।।
ताकि इन कर्मों में कहीं, उच्छृंखल वृत्ति न हो जाये। नियम में ही गर रहें सभी, मर्यादा भंग न हो पाये।।

देशों में अपावन देश है वह, कृष्णसार मृग जहाँ न हो। अथवा जिसके निवासी जन, ब्राह्मण भक्त न उद्धव हों।।
हों स्थान जो संस्कार रहित, और ऊसर ही बनें रहें। उन स्थानों को हे उद्धव, अपावन ही तू जान लें।।

जिस समय में कर्मयोग्य, सामग्री स्वत: ही मिल जाये। वही समय हे उद्धव, तू पावन काल है जान ले।।
जहां कर्म सामग्री ही न मिले, या स्वभाविक जो दोष कहे। जिन कारण कर्म न हो सें, वह ही काल अशुद्ध कहें।।
वस्तु की शुद्धि अशुद्धि के, हैं अनेक कारण तू जान। द्रव्य वचन संस्कार काल, महत्व या अल्पत्व जान।।

शक्ति बुद्धि और वैभव, या इसके विपरीत है जो। उनसे भी पावन अपावन, की व्यवस्था जान लो।।
वहाँ भी स्थान और आयु का, विचार पहले किया जाये। तदनुसार ही दोष का, भी आकलन किया जाये।।

धान्य काष्ठ और हाथी दान्त, अस्थि सूत मधु नमक। तेल घी आदि रस सब, सोना पारा तैजस् पदार्थ।।
चर्म और घट आदि पदार्थ, समय आने पर स्वत: पावन हों। वायु की गति अग्नि में ज्वलन्, माटी या जल से पावन हों।।

यदि अपावन वस्तु कोई, किसी अन्य को शुद्ध करे। मिट्टी के लेप या छीलने से, जब गंध लेप उसका नहीं रहे।।
वस्तु जब अपने पूर्ववत्, सहज आकार में आ जाये। तब उस वस्तु को जानो, शुद्ध समझना चाहिये।।

स्नान दान तप और आयु, सामर्थ्य और संस्कार कर्म। चित्त शुद्धि के हैं सब साधन, सबसे ऊपर है मेरा स्मरण।।
इनसे शुद्ध होकर ब्राह्मण, और श्रेष्ठ क्षत्रिय के लिये। वैश्य हेतु कर्त्तव्य कर्म, हैं शास्त्रों में विहित कहे।।

गुरु मुख से सुनकर हृदय में, भली प्रकार से धारण मन्त्र। और मुझे समर्पित करने से, पावन हो जाते हैं कर्म।।
इस भाँति देश काल पदार्थ, कर्ता मन्त्र और कर्म। इन छः की शुद्धि है धर्म, और अशुद्धि कहें अधर्म।।

कहीं कहीं तो शास्त्र विधि से, गुण भी दोष ही बन जाये। और कहीं तो दोष भी, गुण में परिवर्तित हो जाये।।
इस कारण गुण दोष की, वास्तविकता कहीं पे है नहीं। गुण दोष भेद कल्पित ही हैं, इससे तो निश्चय हो यह ही।।

पतित का सा आचरण करी, न पतित पाप का भागी भए। श्रेष्ठ पुरुष के लिये उसे, सर्वथा सर्वदा त्याज्य कहें।।
प्रिय उद्धव तुम जान लो, पहले ही जो भू पर सोया। उससे अधःपतन उसका, सम्भव हो ही नहीं सकता।।

जिन गुण दोषों से जीव का, चित्त ही उपरत हो जाये। उन उन वस्तुन् के बंधन से, जीव मुक्त स्वतः हो जाये।।
यह धर्म निवृत्ति रूप, परम कल्याण का साधन है। शोक मोह और भय के, मिटाव का बने यह कारण है।।

विषयों में भी कहीं पे जब, गुण आरोप किया जाये। उस वस्तु के प्रति चित्त, आसक्त स्वतः ही हो जाये।।
आसक्ति से उपलब्धि की, कामना अपने आप जगे। गर विघ्न कोई राह में आयें, तो कलह क्लेश वहाँ भड़के।।

वह कलह असह्य क्रोध का, रूप फिर धारण करे। हित अहित का बोध भी, क्रोध के कारण नहीं रहे।।
इस क्रोध से शीघ्र ही, विवेक शक्ति का नाश हो। चेतन शक्ति लुप्त हो, जड़वत् ही फिर व्यवहार ो।।

चेतन स्मृति के लोप से, मानवता का भी ऱ्हास हो। शून्यवत् अस्तित्व हीन, पशु सम ही व्यवहार हो।।
मूर्छित या मृतप्रायः सा, ही वह जीव हो जाता है। न परमार्थ हो कुछ भी, न स्वार्थ ही कुछ सध पाता है।।
विषय चिन्तन से जीव वह, विषय रूप हो जाता है। वृक्ष समान ही वा जीवन, जड़वत् ज्यों हो जाता है।।

श्रुतियां जो स्वर्ग आदि, फलों का हैं वर्णन करतीं। उन लोकों को वह भी तो, परम फल हैं नहीं कहतीं।।
तत्पश्चात् ही मोक्ष में, उनकी रुचि भी जाग उठे। जैसे औषध पिलाने को, मिष्ठान्न लोभ शिशु को दें।।

विषय भोग संसार के, बन्धु बान्धव निज प्राण भी। जन्म से ही हो जीव सदा, आसक्त इन सबके प्रति।।
इन सबमें आसक्ति ही, आत्मोन्नति में बाधक है। नहीं तनिक सन्देह इसमें, वह ही अनर्थ का कारण है।।

निज परम लाभ को भूले वह, स्वर्गादि को ही सत् मानें। देवादि योनियों में भटकें, फिर जड़ योनिन को प्राप्त करें।।
ऐसी अवस्था में कोई, विद्वान यह कैसे कह सके? या वेद फिर से उन्हें, विषय प्रवृत्त क्योंकर करें?

वेदों का वास्तविक अभिप्राय, दुर्बुद्धि न समझ सकें। कर्मासक्त पुष्पित वाणी, को ही परम फल माना करें।।
किन्तु वेदवेत्ता जन तो, वास्तविक तत्त्व को जाने हैं। हैं कर्म ही श्रुति का तात्पर्य, यह नहीं वह माने हैं।।

विषयासक्त कृपण लोभी, स्वर्ग को ही सब कुछ जानें। रंग रंग के पुष्पों समान, उनमें ही परम लाभ मानें।।
अन्त में देव और पितृलोक, को प्राप्त वह कर भी लें। विपरीत दिशा में भटकें वह, निज आत्म धाम न समझ सकें।।

साधना समझें बस कर्म की, और फल उसका इन्द्रिय तृप्ति। इस कारण दृष्टि उनकी, धुंधली ही है हो चुकी।।
वह तो इस सत्य को भी भूले, जिससे जग की उत्पत्ति हुई। जो स्वयं बना जग रूप भी, हूँ परमात्म मैं हृदय में ही।।

यदि हिंसा और मांस भक्षण, में हो चित्त का राग बना। यदि छोड़ न सके उसे, तो यज्ञ की राही विधान किया।।
परिसंख्या विधि यह कही, स्वभाविक वृत्ति को है रोका। सन्ध्या वन्दन आदि समान, अपूर्व विधि इसे नहीं कहा।।

मेरा अभिप्राय जाने बिना, विषय लोलुप हिंसा करें। दुष्ट वह इन्द्रिय तृप्ति हेतु, हत पशु से ही मम यजन करें।।
देव पितर भूपतियों के, यजन का फिर वह दम्भ करें। यह सारा खिलवाड़ वह, केवल रसना कारण ही करें।।
स्वर्गादि परलोक सब, स्वप्न दृश्य सम हैं उद्धव। वर्णन तो उनका मीठा लगे, पर वास्तव में वह हैं असत्।।

सत्त्व रज या तमोगुण में, स्वयं रहें वह जन स्थित। इन्द्रादि सब जो गुण अधीन, उनकी उपासना में है रत।।
इह लोक में देव यजन करके, हम स्वर्ग लोक को पायेंगे। दिव्य आनन्द को भोग वहां, पुन: जन्म जब पायेंगे।।

महा कुलीन ही होगा कुल, महा प्रसाद वहाँ होंगे। अति विस्तृत कुल होगा मम, कुटुम्बी सब सुखी होंगे।।
ऐसा सोच सोच उनका, चित्त क्षुब्ध ही हो जाये। ईश्वर सम्बन्धी वार्तालाप, वह जन न इक पल सह पायें।।

प्रिय उद्धव वेदों में, तीन काण्ड हैं कहे गए। कर्म उपासना और ज्ञान, यह तीनों तू जान ले।।
मैं भी इस रहस्य को, गुह्य ही रखना चाहता हूँ। क्योंकि इसके श्रवण के योग्य न सबको पाता हूँ।।

वेदों का नाम है शब्द ब्रह्म, हैं वह मेरी ही मूर्ति। इस कारण उनका रहस्य, जानना है कठिन अति।।
उनकी थाह को पा लेना, तो अति कठिन ही काम है। तात्पर्य न जान सकें उनका, विद्वान जो अति महान् हैं।।

असीम शक्ति से परिपूर्ण, अनन्त ब्रह्म मैं हूँ स्वयं। वेदवाणी विस्तार भी, मैंने ही किया है स्वयं।।
ज्यों कमल नाल में अति सूक्ष्म, सूत्र रहे है विद्यमान्। त्यों ही जीव के आन्तर में, अनाहत नाद वह वाणी जान।।

अमृतमय वेदमूर्ति हैं, श्री हरि स्वयं हिरण्यगर्भ। उपाधि उनकी प्राण है, अभिव्यक्ति है अनाहत शब्द।।
अपने हृदय से ज्यों मकड़ी, निज मुख राह जाल निगलती है। और समय आने पर वह, पुन: अपने में ही निगलती है।।
त्यों ही विषय संकल्प कर, इस मन को अपना निमित्त बना। हृदय से अनेकों मार्ग की, वैखरी वाणी को प्रकट किया।।

फिर उसको अपने में ही, पुन: लीन हैं कर लेते। इस भाँति श्री हरि स्वयं, अनेकों लीला हैं करते।।
हृदगत सूक्ष्म ओंकार, द्वारा अभिव्यक्त हो स्पर्श स्वर। इस वाणी से विभूषित हैं, ऊष्मा और अन्त:स्थ।।
उसमें ऐसे छन्द हैं, उत्तरोत्तर जो बढ़ते जायें। चार चार वर्णों की वह, वृद्धि ही पाते जायें।।
उनके द्वारा विचित्र यह, भाषा है विस्तृत हुई। वाणी विस्तार की है जानो, हे उद्धव प्रक्रिया यही।।

चार चार हैं वर्ण अधिक, उनमें से कुछ छन्द जान। कुछ एक के उनमें से, हे उद्धव तू सुन ले नाम।।
गायत्री उष्णिक बृहती पंक्ति, जगती अतिछन्द और अनुष्टुप। अत्यष्टि अतिजगती विराट्, और जान है इक त्रिष्टुप।।

कर्मकाण्ड में वेदवाणी, क्या क्या है विधान करे? उपासना काण्ड में किन किन, देवों का बखान करे?
ज्ञान काण्ड में कौन कौन, अनुभव का आख्यान करे? श्रुति के इस रहस्य को, मुझ बिन कोई न जान सके।।

स्पष्ट ही हूँ मैं कह रहा, वह कर्म में मेरा विधान करें। उपासना काण्ड में देवों के, रूप में मेरा वर्णन करे।।
ज्ञानकाण्ड में उन सबका, श्रुतियां स्वयं निषेध करें। सम्पूर्ण श्रुतियों का है बस, यह तात्पर्य तू जान ले।।

मेरा आश्रय लेकर के वह, मुझमें ही भेद आरोप करें। फिर मायामात्र ही कहके उसे, वह सबका निषेध करें।।
अन्ततः मुझमें ही वे सब, श्रुतियां भी शान्त हो जाती हैं। अधिष्ठान हूँ मैं सबका, बस शेष मुझी को पाती हैं।।

१२) तत्वज्ञान, प्रकृति और पुरुष का विवेचन

उद्धव बोले,
किन्तु कुछ अन्य तो संख्या यह छब्बीस है ऐसा कहें। कोई कहे पच्चीस इसे, कोई सात नौ या छः कहें।
कोई चार कहें इसको, तो अन्य कोई ग्यारह कहें। अन्य ऋषि मुनियों का मत, इस संख्या को सत्रह कहे।।
कोई सोलह कहें इसे, कोई तेरह ही बतलायें। भिन्न भिन्न संख्यायें सब, यह ऋषि मुनि क्यों बतलायें?
हे सनातन कृष्ण आप, ही यह तत्त्व बता सकें। कृपा कर के आप ही, संशय अब यह दूर करें।।

भगवान बोले,
इस विषय में वेदज्ञ, ब्राह्मण जो भी कहें उद्धव। वास्तव में उचित ही हैं, अपने दृष्टिकोण से सब।।
मेरी माया को जिसने, स्वीकार है उद्धव कर लिया। उसके लिय कुछ भी कहना, है भला असम्भव क्या?

जो तुम कहो वह नहीं उचित, जो मैं कहूँ वही सत्य है। जग के कारण भूत में, ऐसा विवाद स्वभाविक है।।
मेरी शक्ति और गुणन् का, रहस्य जान न पायें जन। इस कारण अपनी अपनी, मनोवृत्ति जानें सत्य वे जन।।

गुण क्षोभ के कारण ही, विविध कल्पना है जन्मी। प्रपंच मात्र है यह केवल, वास्तविकता इसकी कुछ भी नहीं।।
इन्द्रियां जब वशीभूत हों, और चित्त यह शान्त भए। तब सारा प्रपंच यह, अपने आप ही शान्त भए।।
इसकी निवृत्ति के साथ ही, सारे तर्क वितर्क मिटें। शान्त चित्त तो सत्य में, ही सर्वदा स्थित रहें।।

तत्त्वों का इक दूजे में, है अनुप्रवेश जानो उद्धव। तत्त्वों की जो भी संख्या बतलाना चाहें वक्ता सब।।
तदनुसार ही कारण और, कार्य का संयोग कर। अपनी इच्छित संख्या को, दें हैं सत्य सिद्ध वह कर।।

इक तत्त्व में ही अन्य बहुत, तत्त्वों का हो अन्तर्भाव। नहीं इसमें बन्धन कोई, किसका हो किसमें अन्तर्भाव।।
कभी घट पट आदि कार्य में, कारण मिट्टी या सूत रहे। तो कभी माटी सूत का, घट पट में अन्तर्भाव रहे।।

जिस वाणी ने जिस कार्य को, जिस कारण में है कहा। या जिस भी कारण को, जिस कार्य के अन्तर्भूत किया।।
तदनुसार ही तत्त्वों की, जितनी संख्या स्वीकार करी। हैं हमको स्वीकार्य सभी, युक्ति संगत वह हैं सब ही।।

जिन लोगों ने यह संख्या, छब्बीस है स्वीकार करी। अनादि काल से जीव को, मानें वह अविद्या ग्रसित ही।।
नहीं अपने आपको जान सकें, कोई अन्य ज्ञान उरसे दे सके। इस कारण ईश्वर को मिला, छब्बीस तत्त्व वहाँ हैं कहे।।

जो इन तत्त्वों की संख्या, पच्चीस ही हैं मानते। तन में बासे जीव ईश्वर में, नहीं भेद तनिक वह मानते।।
इस कारण उनमें भेद की, कल्पना मानो व्यर्थ है। ज्ञान तो सत्त्वात्मिका, प्रकृति का जानो इक गुण है।।

तीनों ही गुणों को गर, प्रकृति से भिन्न ही मान लें। तत्त्वों की संख्या स्वतः, ही अट्ठाईस हो जाये।।
प्रकृति पुरुष महत्तत्त्व, अहंकार आकाश और वायु कहा। तेज जल और पृथ्वी मिली, नौ तत्त्व की गणाना कर हूँ चुका।।

श्रोत्र त्वक् चक्षु नासिका, रसना हैं पंच ज्ञानेन्द्रियां। वाक् पाणि पाद पायु;, उपस्थ हैं पंच कर्मेन्द्रियां।।
कमेन्द्रियों से हों पाच कर्म, नहीं तत्त्वों की संख्या बढ़े। कर्मेन्द्रिय स्वरूप ही, इनको मानना चाहिये।।

सृष्टि आदि में प्रकृति, कार्य कारण रूप रहे। ग्यारह इन्द्रियां पंचभूत कार्य, कारण महत्तत्त्वादि को कहें।।
तीनों गुणों के आसरे ही, उत्पत्ति स्थिति संहार करें। प्रकृति और वा अवस्था का, अव्यक्त ही बस साक्षी रहे।।
पुरुष से ईक्षण शक्ति पा, महत्तत्त्वादि आपस में मिलें। प्रकृति के आसरे वा बल से, सृष्टि की यह रचना करें।।

तत्त्वों की संख्या को, जो जन सात ही मान लें। पंचभूत संग छटा जीव, सप्तम् को परमात्म कहें।।
साक्षी जीव और साक्ष्य जगत्, है दोनों का अधिष्ठान वह। इस विधि से हे उद्धव, इनको ही तत्त्व तू जान ले।।

जो जन तत्त्वों की संख्या, छ: ही करके हं जानते। पंचमहाभूतों के संग, छटा परमात्म हैं मानते।।
वह परमात्म अपने ही, बनाये हुए पंचभूतों से। युक्त होई देहादि रचे, और जीव बनी प्रवेश करे।।

कारण के रूप में चार ही, तत्त्वों को जो स्वीकार करें। आत्म से उत्पन्न तेज जल, और पृथ्वी को वह मान लें।।
जग के सारे पदार्थ ही, इन सब से ही उत्पन्न हों। उकने मत से सब कार्यों का, इनमें ही समावेश हो।।
तत्त्वों की संख्या अन्य कई, सत्रह करके ही जानें। पंचभूत तन्मात्रा ज्ञानेन्द्रिय, इक मन और इक आत्म मानें।।

अन्य कई जन तत्त्वों की, संख्या हैं षोड्श बतलाते। गणना उनकी भी है यही, मन आत्म में समावेश करें।।
अन्य जो तेरह तत्त्वों की, ही संख्या हैं मानते। पंचभूत पंचज्ञानेन्द्रियां, इक मन हैं वह मानते।।
एक है जीवात्मा और, है एक परमात्मा। इस विधि तेरह तत्वों की, संख्या को है उन्होने गिना।।

पंचभूत पंचज्ञानेन्द्रियां और आत्म इक स्वीकार करें। इस विधि ग्यारह तत्त्व की, वह जन हैं गणना करें।।
आकाशादि पंचभूत, संग मन बुद्धि और अहंकार। अष्ट प्रकृति और नवम् पुरुष, कई अन्य हैं करें स्वीकार।।

इस विधि ऋषि मुनियों ने, भिन्न भिन्न गणना की तत्त्वों की। है सबकी संख्या युक्ति युक्त, सो उचित है सबका कथन ही।।
तत्त्वज्ञानी किसी भी मत में, दोष नहीं है देखता। उनके लिये तो सब कुछ ही, उचित ही है दीखता।।
उद्धव बोले,
प्रकृति में पुरुष और पुरुष में, प्रकृति अभिन्न प्रतीत हो। हे कृष्ण आप ही अब कहो, यह भिन्नता कैसे स्पष्ट हो?
इस भिन्नता को लेकर ही, मेरे हृदय में है सन्देह उठा। सर्वज्ञ आप बाण युक्ति से, निवारण करें प्रभु इसका।।

आपकी कृपा शक्ति से ही, ज्ञान जीव को हो सके। और आपकी माया शक्ति ही, प्रभु आवृत्त उसको करे।।
अपनी माया की गति, प्रभु आप स्वयं ही जाने हैं। नहीं अन्य कोई इसका, रंग ढंग पहचाने है।।
संशय मेरा हे प्रभु, बस केवल आप मिटा सकें। आपके बिन समर्थ नहीं, जो दूर इसे कोई अन्य करे।।
भगवान बोले,
प्रकृति पुरुष तन आत्मा, इनमें भेद विकार हैं। प्राकृत जग में जन्म मरण, वृद्धि ऱ्हास के विकार हैं।।
गुणों के क्षोभ से बना है जग, इस कारण यह विकार रहें। मेरी माया को प्रिय मित्र, त्रिगुणात्मक तू जान ले।।
अध्यात्म अधिदैव अधिभूत, नाम से है इनको कहें। इन तीनों को हे उद्धव, प्रकृति के भेद तू जान ले।।

ज्यों नेत्रेन्द्रिय अध्यात्म है, उनका विषय रूप अधिभूत है। नेत्रगोलक में स्थित जो, सूर्य अंश अधिदैव है।।

इक दूजे के आश्रय से, ही यह तीनों सिद्ध हों। इस कारण यह तीनों ही, आपस में सापेक्ष हों।।
आकाश में स्थित सूर्य तो, तीनों की अपेक्षा से है मुक्त। क्योंकि अपने आप में, वह तो रहे है स्वत: सिद्ध।।
उसके ही प्रकाश से, प्रकाशित है सब कुछ होता। इसी विधि सब इन्द्रियों का, भेद है त्रैविध ही होता।।

प्रकृति से बने महत्तत्त्व, और उससे पुन: बने अहंकार। गुण क्षोभ से उत्पन्न अहंकार, है प्रकृति का ही एक विकार।।
सत्व रज और तम रूप, अहं के भी तीन भेद हों। अज्ञान और विभिन्नता का, मूल यह अहं ही हो।।

भाव अभाव अस्ति नास्ति, सगुण निर्गुण यह मिथ्या विवाद। नहीं इनसे सम्बन्धित आत्म, वह तो ज्ञान स्वरूप है आप।।
निज वास्तविक स्वरूप मुझसे, जो जन विमुख हैं हो रहे। इस विवाद से वह जन तो, कदापि मुक्त न हो सकें।।
उद्धव बोले,
आपसे विमुख प्रभु, जो जीव हैं हो रहे। पाप पुण्य के फल स्वरूप, ऊंची नीची योनि पायें।।
व्यापक है जो आत्मा, तन तन में कैसे जाये? अकर्ता होते हुए भी वह, कर्म क्योंकर कर पाये?
नित्य ही है जो सदा, उसका जन्म मरण कैसे हो? इन सारे प्रश्नों का प्रभु, आपके बिन दे उत्तर कौन?

आत्म ज्ञान से रहित जीव, तो सोच भी न पायें यह विषय। इस विषय के ज्ञानी जो, इस संसार में नहीं मिलें।।
आपकी माया के भ्रम में, प्रभु सभी जीव हैं पड़े हुए। कृपा कर अब आप ही, रहस्य यह मुझको समझायें।।
भगवान बोले,
कर्म संस्कार का पुंज है, हे उद्धव यह जीव का मन। संस्कारानुसार ही मिलें भोग, पंचेन्द्रियां भी मिलें संग।।
लिंग शरीर ही कहें इसे, कर्मानुसार ही भ्रमण करे। इक तन से दूजे तन में, इक लोक से दूजे लोक चले।।

आत्मा इससे भिन्न है, नहीं उसका सम्बन्ध इससे। अचल और कूटस्थ है वह, आना जाना कहीं न होये।।
किन्तु अपने को जब वह, लिंग शरीर है मानता। अहं उसी में भरकर के, माने वह आ और जा है रहा।।

मन है कर्मों के अधीन, दृष्ट और श्रुत विषय का चिन्तन हो। तदाकार उनके होकर, यह उनमें ही फिर लीन हो।।
शनै: शनै: वा स्मृति ध्यान, पूर्वानुसन्धान भी नष्ट हो। तन के सिवा कुछ और भी है, यह भी न उसको याद हो।।

देवादि शरीरों में, इतना तल्लीन वह हो जाये। अपने पूर्व शरीर का, स्मरण भी उसे न न रह पाये।।
किसी भी कारण से कहें, इसकी विस्मृति जो। उसको ही तुम वास्तव में, है मृत्यु उद्धव जानो।।

किसी भी तन को जीव जब, मैं जान कर स्वीकार करे। अभिन्न भाव हो तन से जब, उसको ही तो जन्म कहें।।
ज्यों स्वप्न और मनोरथ में, तन में जब अहमत्व भरो। उसको ही तो जान लो, स्वप्न मनोरथ तुम कहो।।

वर्तमान में जीव को, नहीं पूर्व तन की याद रहे। ज्यों इक स्वप्न में जीव को, पूर्व स्वप्न नहीं याद रहे।।
है तो पूर्व सिद्ध स्वयं, पर वर्तमान इस स्वप्न में। अपने को नवीन सा, ही जीव समझा करे।।

मन या तन की सृष्टि से, या इन्द्रियों के आश्रय से। आत्म वस्तु में उत्तम, मध्यम अधम तीन गुण भासें।।

उनमें अभिमान से ही आत्म, में बाह्य आन्तर भेद लगे। त्यों पुत्र का शत्रु मित्र हेतु, पिता को ही कहा जाये।।

अति सूक्ष्म गति है काल की, नयनों से न दर्शन होये। प्रतिक्षण इस तन की उत्पत्ति और विनाश उससे होये।।
सूक्ष्मतम है यह इस कारण, इसका आभास ही न होये। हर क्षण ही तो जन्म मरण, इस तन में हैं हो रहे।।

ज्यों काल के प्रभाव से, विशेष अवस्थाएं बदलें। दीपक की लौ सरिता प्रवाह, या वृक्ष के फल की गति बदले।।
त्यों ही जीवों के तन की, अवस्था भी है बदलती। आयु अवस्था आदि भी, किसी की स्थिर है नहीं रहती।।

उस दीपक की है वही ज्योति, या प्रवाह का वही है जल। ऐसा कथन तो है मिथ्या, क्योंकि वह तो बदलें प्रतिपल।।
त्यों ही विषय चिन्तन में, है जिसकी आयु व्यर्थ हुई। अविवेकी की है समझ मिथ्या, कि पुरुष तो है फिर भी वह ही।।

यद्यपि भान्त वह जीव भी, न कर्मबीज से जन्मे मरे। वास्तविक स्वरूप में तो है वह, अजन्मा और मृत्यु परे।।
फिर भी भाँति वश जन्मता, और मृत सा वह दर्शाता है। ज्यों काष्ठ में अग्नि जन्मा सा, और नष्ट सा ही दर्शाता है।।
गर्भाधान और गर्भवृद्धि, जन्म शिशुत्व कुमारावस्था। युवा प्रौढ़ जरावस्था और, मृत्यु तन की नवम् अवस्था।।

यह तन जीव से भिन्न है, अवस्था हों ऊँची नीची। उसके संकल्प अनुसार ही, अवस्थाएँ यह हैं सारी।।
अज्ञानी गुणों से संग कर, इन्हें अपना मान के भटका करे। विवेक कभी गर जागृत हो, इन सबका ही वह त्याग करे।।

पिता पुत्र के जन्म से, और पुत्र पिता की मृत्यु से। अपने अपने जन्म मरण, का अनुमान लगा सके।।
जन्म और मृत्यु से ग्रसित, दोनों का जो है द्रष्टा। जन्म और मृत्यु से युक्त, तन कैसे है वह हो सकता?

जैसे बीज बो देने पर, धान्य आदि उपज पड़े। परिपक्व हो जाने पर, फिर उसको काट दिया जाये।।
किन्तु जो उसकी उत्पत्ति, और कट जाने का है साक्षी। वह पुरुष तो धान्य से, है सर्वथा पृथक् ही।।
त्यों ही इस तन और इसकी, अवस्था का है जो साक्षी। वह तो है इस शरीर से, उद्धव जानो पृथक् ही।।

अज्ञानी पुरुष इस भाँति नहीं, आत्म विवेचन कभी करें। प्रकृति और तन से वह तो, आत्म को भिन्न न जानते।।
विषय उपभोग को भी वे जन, सच्चा सुख हैं मान रहे। उसीसे मोहित होकर वह, जन्म मरण में भटक रहे।।

अविवेकी जन कर्मानुकूल, जन्म मरण में भ्रमते रहें। सात्विक कर्मों में आसक्ति, देव और ऋषिलोक को ले जाये।।
राजस कर्म मनुष्य और, असुर योनियों में डालें। तामस कर्म पशु पक्षी, और भूत प्रेत की योनि दें।।

किसी अन्य का गायन नृत्य देख, जब जीव रे अनुकरण उनका। स्वयं भी तान वह छेड़ दे, भूले न स्वयं सके वह गा।।
त्यों ही जब जीव भी बुद्धि के, गुणों का है दर्शन करता। निष्क्रिय होकर भी वह उनका, अनुकरण ही है करने लगता।।

ज्यों नदी या तालाब के, जल में जब विक्षेप उठे। उसमें प्रतिबिम्बित वृक्ष भी, उस संग हिलते डुलते से लगें।।
भ्रमणशील नेत्रों से ज्यों, पृथ्वी भी दीखे घूमती सी। ज्यों स्वप्न में दृष्ट पदार्थ जो, होते हैं सब मिथ्या ही।।
वैसे ही उद्धव जान तू, विषय अनुभव रूप है यह संसार। नित्य मुक्त है आत्मा, नहीं उसमें कोई भी व्यवहार।।

नहीं हैं विषय सत्य किन्तु, जो जीव करे चिन्तन इनका। जन्म मृत्यु रूपा जग से, वह निवृत्त कभी नहीं होता।।

ज्यों स्वप्न में सब अनर्थ भी, वास्तविक ही भासा करें। जागृति को पाये बिना, नहीं भ्रम यह निवृत्त हो सके।।

प्रिय उद्धव इस कारण तुम, दुष्पूर्ण विषय कभी न भोगो। न ही सन्तुष्टि हो इनसे, न ही इन्द्रियां कभी तृप्त हों।।
आत्म ज्ञान से जानो तुम, है भ्रम मूलक सब भेद भाव। प्रतीति मात्र ही है केवल, है सत्यता का वहाँ अभाव।।

गर्दन से पकड़ असाधु पुरुष, तुमको गर बाहर भी करे। वाणी द्वारा अपमान या, उपहास और निन्दा करे।।
मारे पीटे बान्धे तुम्हें, या आजीविका छीन ले। मूत्र करे थूके या किसी विधि, विचलित वह करना चाहे।।
उपद्रव से उसके ज्ञानी, कभी भी विचलित हो न सके। वह तो जाने अज्ञानी यह, निज परमार्थ भी है भूले।।
आत्म दृष्टि से अपने को, इस ही साधन से बचा सके। सब विपदा से बचने का, है एक ही साधन जान ले।।
उद्धव बोले,
हैं सर्वश्रेष्ठ वक्ता प्रभु, मैं आपकी शरण में ही पड़ूँ। दुर्जन करं जो तिरस्कार, मैं तो उसको न सह सकूँ।।
कृपा कर कहें आप ही, उपदेश आपका कैसे समझूँ? विधि आप ही बतलायें, जीवन में कैसे धार सकूँ?

आपके भागवत धर्म में, जो प्रेम भाव से हों संलग्न। आपके चरण कमल में हैं, शान्त हुए जिन सन्त के मन।।
जानूँ मैं महा विद्वान भी, अपमान नहीं यह सह सकते। प्रकृति महा बलवान् है, मन तिरस्कार कैसे सहे?

१३) ब्रह्मज्ञान

भगवान व्यास बोले,
वास्तव में जानो राजन्, प्रभु लीला कथा ही श्रवणीय है। हैं प्रेम मुक्ति के दाता वह, वह ही तो इक भजनीय है।।
उनके परम प्रेमी उद्धव, ने इस विधि जब प्रार्थना की। यदुवंश शिरोमणि कृष्ण ने, सराहना कर उसे उत्तर दी।।
भगवान बोले,
देवगुरु बृहस्पति के, हो शिष्य तुम हे उद्धव। दुर्जन की कटुवाणी जो सहे, जग में वह सन्त तो है दुर्लभ।।
मर्मभेदी बाणों से बिंधा, भी न हृदय त्यों हो पीड़ित। दुष्टों के कटुवचनों के बाण, ज्यों कर दें उसको आहत।।
महात्मन तो इस विषय में, प्राचीन इतिहास कहा सकते। पावनकर इतिहास वह मुझसे, एकाग्रमनी होकर सुन ले।।

दुष्टों ने इक भिक्षुक को, था अति ताड़ित किया। किन्तु अपने धैर्य को, उस भिक्षुक ने न छोड़ा।।
अपने ही पूर्व जन्म के, कर्मों का फल उसे जान लिया। यही जान अपने मन के, उद्‌गारों को था प्रकट किया।।
उसीका इस इतिहास में, हे उद्धव वर्णन सुनो। अब हूँ जो तुम्हें सुना रहा, ध्यान से वह इतिहास सुनो।।

पुराकाल में अवन्तिपुर में, एक ब्राह्मण था रहता। खेती व्यपार आदि करके, था धन एकत्रित बहुत किया।।
अति कामी लोभी और कृपण, उसका स्वभाव था जान लो। क्रोधावेश तो पल पल ही, भड़कता था उसका जानो।।

बन्धु बान्धव अतिथिगण को, नहीं प्रसन्न था उसने किया। आदर सत्कार तो दूर रहा, नहीं मीठा वचन भी कभी कहा।।
धर्म कर्म से सुना ही, जानो उसका घर था बना। धन सम्पद् अपनी से वह, निज तन भी सुखी था न करता।।

दुर्स्वभाव और कृपणता से, सम्बन्धी सब उनके दु:खी भए। सन्तति भाई बन्धु पत्नी, नौकर चाकर नहीं खुश थे।।
मन ही मन उसका अनिष्ट, वे सब जन ही चाहते थे। उसके मन को जो प्रिय लगे, ऐसा व्यवहार न करते थे।।

लोक और परलोक से, वह ब्राह्मण था गिर गया। यक्षों के समान ही वह, धन की रखवाली में था पड़ा।।
न ही उससे धर्म कमाता था, न ही वह भोग था भोग रहा। बहुत दिनों तक इस विधि, जीवन था उसका बीत गया।।
विधि अनुसार उस द्विज ने, यज्ञ कभी था नहीं किया। इस कारण उस पर बिगड़े, पंचयज्ञ के भागी देवता।।

उन भागी देवों का उसने, तिरस्कार जो था किया। जिसके बल से था धन टिका, वह पूर्व पुण्य भी क्षय हुआ।।
महा उद्योग परिश्रम से, एकत्रित था जो धन किया। उसकी आंखों के सामने ही, नष्ट भ्रष्ट वह सब हुआ।।

उस नीच ब्राह्मण का धन, कुछ कुलबन्धुओं ने छीना। अन्य जो बचा था उसको भी, चोरों ने अपहरण किया।।
अग्नि लग जाने से कुछ, दैवी प्रकोप से नष्ट हुआ। और समय के फेर से, जो शेष था वह भी नष्ट हुआ।।
कुछ साधारण जन ने लिया, फिर भी था जो तनिक बचा। शासक ने दण्ड के रूप में, उस सब धरन का हरण किया।।

इस विध उसकी सारी ही, सम्पद् का उद्भव ऱ्हास हुआ। न तो धर्म कमाया उसने, न ही उसने उपभोग किया।।
उसके बन्धु बान्धव ने, भी उससे मुख मोड़ लिया। अति भयंकर चिन्ता ने, उस ब्राह्मण को आ घेरा।।

मन अति खेद से उसका भरा, धन नाश से हृदय में जलन हुई। असुअन् से गला रूंधा उसका, थी चिन्ता की प्रसाद मिली।।
चिन्ता करते करते उसकी, संसार प्रति दु:ख बुद्धि हुई। उसके हृदय में फिर उत्कट, वैराग्य जागृत हो गई।।
ब्राह्मण बोले,
मन ही मन वह सोचन लागा, अहो बहुत ही खेद है यह। इतने दिन तक अपने को, व्यर्थ में इतने दु:ख दिये।।
जिस धन हेतु निज प्राणों को, भी था दांव पे लगा दिया। न तो सुख मुझे दे सका, न धर्म कर्म में ही वह लगा।।

प्राय: यह देखा जाताहै, कृपण का धन न सुख दे उसे। धनोपार्जन रक्षण की, चिन्ता इह लोक में उसे ग्रसे।।
धन से उसने जीन में, कभी धर्म कमाया ही नहीं। इस कारण नरक को ही जाये, वह जीव मरण उपरान्त भी।।

तनिक सा कुष्ठ रोग भी ज्यों, सुन्दरतम रूप बिगाड़ दे। त्यों ही तनिक सा लोभ भी, जीवों की बुद्धि भ्रष्ट करे।।
यशस्वियों का पावन यश और, गुणियों के गुण नाश करे। धनोपार्जन और वर्धन, संरक्षण और खर्च में।।
उसके भोग और नाश में, जहाँ भी देखो परिश्रम हो। भय चिन्ता और भ्रम का ही, सामना वहाँ सदैव हो।।

चोरी हिंसा असत्य दम्भ, काम क्रोध और गर्व अहम्। वैर अविश्वास भेद बुद्धि, स्पर्धा लम्पटता द्यूत मद।।
धन के कारण हैं माने गए, जीव के यह पंद्रह अनर्थ। कल्याण कामी तो दूर से ही, त्यजे परमार्थ विरोधी अर्थ।।

भाई बन्धु माता पिता, दारा सुत और सब बान्धव। स्नेह बन्धन में बन्धे हुए, दीखें बस एक जान ही सब।।
कौड़ी के कारण वह सब, इस विध छिन्न हो जाते हैं। तुरन्त ही इक दूजे के वह, शत्रु ज्यों बन जाते हैं।।

तनिक से धन के लिये क्रुध, और क्षुब्ध हो जाते हैं। सौहार्द और सम्बन्ध सभी, इक पल में छुट जाते हैं।।
इक दूजे के प्राणों के ही, यह प्यासे बन जाते हैं। सर्वनाश इक दूजे का, ही यह जन कर जाते हैं।।

देवों के लिये भी वांछनीय, है मानव जन्म जानो। उसमें भी सर्वश्रेष्ठ है, ब्राह्मण का तन यह जानो।।
यह दोनों पाकर भी जो जन, अनादर इनका हैं करते। स्वार्थ परमार्थ नष्ट करें, अशुभ को प्राप्त हैं वह करते।।

देव ऋषि पितर प्राणी, बन्धु बान्धव या अन्य को। इन भागीदारों को धन देकर, जो जीव नहीं सन्तुष्ट हो।।
उपभोग स्वयं ही करे उसका, है वह तो यक्ष समान ही। धन का रखवाला कृपण वह, होगा अधोगति को प्राप्त ही।।

मैं निज कर्त्तव्य से च्युत हुआ, प्रमाद वश आयु खोई। धन बल और पौरुष भी, इस अर्थ के हेतु ही खो दी।।
विवेकवान् निज साधनों से, मोक्ष तक भी जा पहुँचे। वे खोये मैंने अर्थ हित, धन की व्यर्थ ही चेष्टा में।।
यह संसार तो निश्चित ही, किसी माया से मोहित है। इस कारण न देख सके, अनर्थ का मूल यह अर्थ ही है।।

विकराल गाल में काल के, पड़ा हुआ है मानव तन। धन दे देव और लोगों से, धन से हो भोगों को प्रपन्न।।
उनको जो पूर्ण करते रहें, पुन: पुन: जन्म और मृत्यु दें। उन सकाम कर्मों से भला, लाभ क्या उसको हो सके?

नहीं तनिक सन्देह इसमें, श्री हरि हुए मुझपे प्रसन्न। तभी तो ऐसी दशा देकर, वैराग्य किया मुझमें उत्पन्न।।
जग में दु:खबुद्धि मेरी जागी, वैराग्य ही नौका बने मेरी। इस भव सागर से निश्चित ही, यह मुझको पार लगायेगी।।

हूं ऐसी अवस्था में पहुँचा, दे आत्म लाभ ही सन्तुष्टि। अब दक्ष रहूं परमार्थ पति, जो कुछ आयु मेरी शेष बची।।
तप द्वारा इस तन को मैं, क्षीण ही करूँगा अब। त्रिलोक पति और देवगण, सहयोग दें मम संकल्प में सब।।
निराश नहीं मैं अभी हुआ, आयु थोड़ी है शेष बची। दो घड़ी में थी खट्वांग ने, भगवत् धाम की प्राप्ति की।।

भगवान बोले,
उज्जैन निवासी ब्राह्मण ने मन में उद्धव निश्चय किया। मैं और मेरे की ग्रन्थी का, भेदन इस विधि कर दिया।।
तत्पश्चात् वह शान्त होई, मौनी संन्यासी हो गया। किसी स्थान वस्तु या व्यक्ति में, नहीं आसक्ति का भाव रहा।।
मन इन्द्रियों और प्राणों को, उस अपने वश में कर लिया। स्वच्छन्द रूप से पृथ्वी पर, अब ब्राह्मण वह विचरने लगा।।
भिक्षा हेतु ही नगर और, ग्रामों में तो वह जाता था। किन्तु जाता इस विधि, कोई पहचान न पाता था।।

वह भिक्षुक अवधूत जब, अति वृद्ध और क्षीण हुआ। उसपे आक्षेप थे करते दुष्ट, करी तिरस्कार उसे तंग किया।।
कोई दण्ड छीन लेता उसका, कोई भिक्षा पात्र ही ले जाता। कमण्डलु अन्य उठाता कोई, आसन कोई अन्य ही ले जाता।।
रुद्राक्ष और कन्धा लेकर, कोई अन्य था भागता। तो कोई लंगोटी और वस्त्र, ही इधर उधर था कर देता।।

कोई वस्तु दे उसको या, दिखला कर छीन पुन: लेता। नदी तट पे बैठ के मांगी हुई, मधुकरी का भक्षण जब करता।।
कभी पापी थूक देते उसपर, या मूत्र भी कभी थे कर देते। उस मौनी अवधूत को वह, विवश ही सब विधि कर देते।।
इस पर भी जब न बोलता वह, तब उसे पीटने वह लगते। कोई चोर उचक्का कह कर के, डांट डपट थे उसे देते।।
कोई कहता इसे बान्ध लो, रज्जू से बान्धने फिर लगते। विभिन्न विधि से वे सब जन, व्यथित उसे करना चाहते।।

तिरस्कार उसका करके, कोई ताने थे उसपर कसते। देखो धर्म के ढोंग अब इस कृपण ने हैं रचा लिये।।
धन सम्पद् सब जाती रही, स्त्री पुत्रों ने त्याग दिया। अब भिक्षुक बनकर मांगना, ही है बना व्यापार इसका।।

देखो तो सही है हृष्ट पुष्ट, धैर्य में यह पर्वत समान। मौन ही धारण करके अब, बनाना चाहे अपना काम।।
यह तो बगुले से भी बड़ा, है महा ढोंगी बना। है अति दृढ़ निश्चय इसका, नहीं विचलित यह किसी विधि होता।।

कोई हंसी उड़ाता था उसकी, अधोवायु कोई था छोड़ता। ज्यों पालतू पक्षभ पशु कोई, पिंजरे में बन्द है कर लेता।।
त्यों ही उसे वह बान्धकर, थे अपने घरों में बन्द करते। इस विधि उस अवधूत से, थे दुर्व्यवहार सभी करते।।

किन्तु वह ब्राह्मण तो सदा, मौन ही रहकर सब सहता। कभी सहनी पड़ती उसे, ज्वर आदि सब तनो पीड़ा।।
शीत ऊष्ण आदि सुख दु:ख, कभी दैवी कष्ट था आ पड़ता। भौतिक कष्टों से दुर्जन भी, चाहते थे उसको तड़पाना।।
किन्तु यह सब होते हुए भी, निर्विकार उसका मन रहता। पूर्व कर्म फल जान इन्हें, सहर्ष वह था सब कुछ सहता।।

नराधम तो उसे धर्म से, च्युत ही थे करना चाहते। इस कारण वह बार बार, दुश्चेष्टा थे इसकी करते।।
फिर भी वह अति दृढ़ता से, था निज धर्म में स्थित रहता। सात्विक धैर्य का ले आश्रय, उद्‌गार कभी यह प्रकट करता।।
ब्राह्मण बोले,
न मनुष्य न देव ही, न तन न ग्रह सुख दु:ख यह दें। कर्म और काल आदि ही, इस सुख दु:ख का कारण कहें।।
श्रुतियां और महात्मा जन, मन को ही परम कारण कहें। इस कारण संसार का, चक्र यह सारा चला करे।।

यह मन तो अति बलावन् है, इसने ही सारी सृष्टि रची। विषय और उसके कारण गुण, और सम्बन्धी वृत्तियों की।।
उन वृत्तियों के अनुसार ही, त्रिगुणात्मक कर्म हों। कर्मों के अनुकूल ही, विविध जीव की गतियां हों।।

मन के द्वारा सब चेष्टा हो, आत्म तो निष्क्रिय रहे। सनातन सखा वह जीव का, ज्योतिर्मय ज्ञान से सब देखे।।
मन के द्वारा ही उसकी अभिव्यक्ति जान लो है होती। विषयों का भोक्ता बन बैठे, मन को स्वीकार करके वह ही।।
कर्मों से आसक्त हो, वह उनसे बन्ध जाता है। सदा मुक्त होकर भी वह, बद्ध सा दर्शाता है।।

स्वधर्म का पालन दान नियम, यम वेदाध्ययन सत्कर्म। ब्रह्मचर्यादि सब श्रेष्ठ व्रत, इक उद्देश्य से हों धारण।।
अन्तिम फल इन सबका, है मन की एकाग्रता। श्री हरि में ही यह टिक जाये, इसको ही परम है योग कहा।।

मन शान्त समाहित है जिसका, सत्कर्म का फल वह पा चुका। नहीं अन्य कुछ भी पाना, उसे लिये अब शेष रहा।।
जिसका मन अति चंचल है, या प्रमाद से भरा हुआ। दानादि शुभ कर्मों का, उसको तो लाभ कुछ नहीं हुआ।।

मन के वश में सब इन्द्रियां हैं, नहीं मन किसी इन्द्रिय के वश में। अति बलवान् यह मन ही तो, अति भयंकर देव भए।।
इस अति दुर्जेय मन को जो, अपने वश में कर सके। वही देव देव है उसको ही, इन्द्रिय विजेता जान ले।।

वास्तव में यह मन ही तो, जीव का प्रबल है शत्रु जान। असह्य वार इसका होए, भेदे हृदयादि मर्मस्थान।।
है अति कठिन इसे जीतना इस शत्रु को ही जीते जीव। इसको जीतेब बिन व्यर्थ ही, दूजों से वैर कमाये जीव।।
जग के लोगों को शत्रु मित्र, और उदासीन यह मान ले। अपने वास्तविक शत्रु से, जीव सदा अनभिज्ञ रहे।।

साधारणत: तो जीव की, बुद्धि ही होती है अन्धी। तभी तो मनोकल्पित तन में, है मैं और मेरे से बन्धी।।
फिर भ्रम फंद में फंसा कहे, यह मैं हूँ यह अन्य है। परिणाम स्वरूप अज्ञान के, तिमिर में ही हो भटकन है।।

यदि यह भी मान लें कि, जीव ही सुख दु:ख कारण है। तो भी आत्म से इसका, जानो क्या सम्बन्ध है?
माटी का तन सुख दु:ख दे, और माटी तन ही उसे भोगे। यदि अपने ही दाँतों में कभी, अपनी जिह्वा कट भी जाये।।

उसकी पीड़ा होने लगे, जीव व्यथित ही हो जाये। तो किसपे क्रोध करेगा वह, किसको दोषी ठहराये?

यदि माने देव ही हैं, जीव के दु:ख का कारण। तो भी क्या हानि आत्म की, होगी समझो इसके कारण?
यदि दु:ख कारण देव मानें, तो इन्द्रिय रूप में भोक्ता वह। समान रूप से सारे ही, शरीरों में है देवता वह।।
यदि निज तन के इक अंग से, दूजे को चोट पहुँचे कभी। तो किस पर क्रोध किया जाये, हैं दोनों एक के अंग ही।।

यदि आत्मा को ही तुम, सुख दु:ख का कारण जानो। वह तो अपना आप ही है, नहीं अन्य कोई उसको मानो।।
क्योंकि वास्तव में आत्म से, भिन्न तो कोई है ही नहीं। यदि प्रतीति अन्य की हो, तो है वह केवल मिथ्या ही।।
इसलिये न ही कोई सुख है, न ही दु:ख भी है कहीं। फिर क्रोध किस कारण हो, उसका निमित्त तो कोई नहीं।।

यदि ग्रहों को ही मानें, हैं निमित्त सुख दु:ख के। तो अजन्मा आत्म की, उनसे क्या हानि होये?
उनका प्रभाव भी तो जानो, मृत्यु धर्मा तन पर हो। उनकी पीड़ा का भागी तो, उनसे प्रभावित तन ही हो।।
आत्म तो उन ग्रहों से, और उस तन से है परे। फिर भला किस पर वह, किस कारण से क्रोध करे?

यदि कर्म को ही मानें, हैं निमित्त सुख दु:ख का। तो अजन्मा आत्म की, उनसे क्या हानि होये?
उनका प्रभाव भी तो जानो, मृत्यु धर्मा तन पर हो। उनकी पीड़ा का भागी तो, उनसे प्रभावित तन ही हो।।
आत्म तो उन ग्रहों से, और उस तन से है परे। फिर भला कसि पर वह, किस कारण से क्रोध करे?

यदि कर्म को ही मानें, सुख और दु:ख का कारण। तो आत्म को उन सुख दु:ख से, है भला क्या प्रफयोजन?
जड़ और चेतन दोनों रूप, एक पदार्थ के जब हों। तब ही तो यह सुख-दु:ख, दोनों रूप ही भासित हों।।
इस प्रकार से कर्मों का, आधार ही सिद्ध नहीं होता। फिर क्रोध किस कारण हो, है क्या उसकी सार्थकता?

गर काल को ही मान लें, है सुख और दु:ख का कारण। आत्म स्वरूप ही काल है, उसपे प्रभाव हो किस कारण?
अग्नि न अग्नि जलाये कभी, न बर्फ ही बर्फ को गला सके। त्यों ही आत्म स्वरूप काल, आत्म का सुखी दु:खी न करे।।
शीतोष्ण सुख दु:ख आदि, सब द्वन्द्वों से है परे आत्म। फिर क्रोध किया जाये, व्यर्थ जान किसके कारण?

प्रकृति स्वरूप धर्म कर्म, सम्बन्ध गन्ध से है रहित। कोई द्वन्द्व किसी भाँति भी, कर न सके आत्म को स्पर्श।।
जन्म मृत्यु में भ्रमित यह, अहंकार द्वन्द्वों में रहे। न भयभीत कभी वह हो, जो इस सत्य को जान ले।।

पुराकाल में महर्षियों ने, इस निष्ठा का आश्रय लिया। मैं भी अब परमात्म का, आश्रय ग्रहण ही कर लूँगा।।
मुक्ति और प्रेम के दाता श्री, भगवान के चरण की सेवा करूँ। इस दु:ख अज्ञान के सागर को, अनायास ही पार करूँ।।

भगवान बोले,
इस विधि ब्राह्मण का धन, जानो उद्धव क्या नष्ट हुआ। उसका सब दु:ख क्लेश तो, स्वत: दूर ही हो गया।।
संसार से विरक्त हो, वह संन्यासी हो गया। और धरती पर स्वच्छन्द ही, वह विचरण करने लगा।।
दुष्टों ने उसे सताया बहुत, फिर भी निज धर्म पे अटल रहा। उस मौनी अवधूत के, मन में था गीत यह चल रहा।।

इस जग में जीव को अन्य कोई, सुख दु:ख नहीं दे सकता। यह तो केवल भ्रममात्र है, जान लो उसके ही मन का।।

इस मन की सब वृत्तियों को, उद्धव मुझमें ही तन्मय करो। सारी शकति लगाकर के, अपने मन को वश में करो।।
यह भिक्षु गीत तो मूर्तिमान्, ब्रह्म ज्ञान निष्ठा ही भये। सुने सुनाये इसको जो, और चित्त में जो धारण करे।।
सुख दु:ख आदि द्वन्द्वों के, वशीभूत कभी वह न होये। उनके मध्य सिंहवत् सदा, निर्भय हो वह नाद करे।।
भगवान बोले,
प्रिय उद्धव अब तुमको मैं, सांख्य शास्त्र निर्णय कहूँ। पुराकाल के महर्षि मुनियों ने, जो कहा वही निश्चय कहूँ।।
इस तत्त्व को जीव जब, भली भाँति से समझ ले। सुख दु:ख भेद बुद्धि मूलक, का भ्रम वह तत्काल त्यजे।।

युगों से पूर्व प्रलय काल में, आदि सत्य युग में भी। जब जब विवेक हो जीव को, उन सारे कालों में भी।।
सम्पूर्ण दृश्य द्रष्टा जगत्, और जीव हा विकल्प अशेष। भेद भाव कहीं रहे नहीं, केवल ब्रह्म ही रहें शेष।।

नहीं तनिक संदेह इसमें, नहीं ब्रह्म में कोई विकल्प कहीं। अद्वितीय एक आत्म है वह, मन वाणी की वहाँ गति नहीं।।
माया उसमें प्रतिबिम्बित जीव, के रूप में ब्रह्म ही भास रहा। द्रष्टा और दृश्य के रूप में, मानो दो में वह विभक्त हुआ।।

उनमें इक को प्रकृति कहें, है कार्य कारण रूप धरा। दूजा ज्ञान स्वरूप है जो, पुरुष ही उसको नाम दिया।।
जीव कर्म अनुसार ही प्रकृति को मैंने क्षुब्ध किया। शुभ अशुभ अनुकूल ही, त्रैगुण का प्राकट्य हुआ।।

फिर क्रिया शक्ति प्रधान सूत्र, और ज्ञानमय महत्तत्त्व प्रकटे। वास्तव में यह दोनों ही, हैं आपस में मिले हुए।।
महत्तत्त्व में जब विकार हुआ, अहंकार फिर व्यक्त हुआ। यह अहंकार ही जीवों में, मोह उत्पन्न हैं कर देता।।

है अहंकार भी त्रैगुणी, सात्विक राजस और तामस है। पंचतन्मात्रा इंद्रिय और, मन का यह ही कारण है।।
इस कारण जड़ और चेतन, दोनों ही वह रूप धरे। तामस से तन्मात्रा पांच पुन: उनसे पंचभूत उपजे।।
राजस अहं से इन्द्रियां, देव सतोगुण से प्रकटे। इन्द्रियों के अधिष्ठाता, एकादश देव यह जान ले।।

मुझसे ही पा प्रेरणा, यह सभी पदार्थ मिल गए। ब्रह्माण्ड रूप यह अण्ड फिर, इन्होने मिलकर उत्पन्न किये।।
हे उद्धव यह अण्ड ही, जानो उत्तम निवास मेरा। नारायण बनी विराजा मैं, जब यह जल में स्थित हुआ।।
मेरी नाभि से विश्व कमल, की फिर उत्पत्ति हुई। उस कमल में ही जानो, श्री ब्रह्मा जी की जन्म हुई।।

विश्व सृष्टि के अन्त:करण हैं ब्रह्मा जी जानो तुम। महा तपस्या रत वह हुए, सृष्टि से पूर्व यह जानो तुम।।
पृथ्वी अन्तरिक्ष स्वर्ग, तीनों लोकों की रचना की। संग ही इन सब लोकों के, लोकपाल की रचना हुई।।

देवों के रहने के लिये, स्वर्गलोक को रच दिया। भूत प्रेत आदि के लिये, अन्तरिक्ष में वास दिया।।
मनुष्य हेतु पृथ्वी लोक, का ही निश्चय किया गया। महर्लोक तपलोक आदि, तीनों से उपरि दिये बना।।
उन लोकों में जानो उद्धव, सिद्ध जन को निवास दिया। इस विधि से सृष्टि का, निर्माण क्रमश: होने लगा।।

सृष्टि कार्य में श्री ब्रह्मा, हैं अति समर्थ और महाकुशल। असुर और नागों के लिये, बने सुतल वितल और अतल।।
त्रिगुणात्मक कर्मानुकूल, विविध गति जो प्राप्त हों। इन तीनों लोकों में ही, इन सबका जानो वास हो।।

योग तप संन्यास से, उत्तम गति की प्राप्ति हो। मह: जन: तप: लोक और, सत्य लोक की प्राप्ति हो।।

भक्ति योग के द्वारा तो, मेरा धाम ही प्राप्त करे। मेरे धाम को प्राप्त हो, आवागमन फिर बन्द होए।।
कर्म और संस्कारों से, युक्त है यह सारा जगत्। कर्मफल का विधान करूँ, मैं ही काल रूप बनकर।।
छोटी बड़ी मोटी पतली, जो वस्तु न्यून या महान् है। प्रकृति पुरुष दोनों के ही, संयोग का यह परिणाम है।।

है आदि और अन्त में जो, वह ही तो रहे मध्य में भी। उसको ही सत्य तू जान ले, विकार है कल्पना मात्र ही।।
ज्यों कंगन कुण्डल आदि, सोने के ही विकार हैं। या घट और सकोरे जो, माटी के ही प्रकार हैं।।
पहले भी थे सोना मिट्टी, बाद में भी वह ही रहें। अत: बीच में भी उनका, रूप तो भिन्न न हो सके।।
जो जिस भी किसी कर्म के, आदि और अन्त में हा। उसको ही मध्य में भी, सत्य तू उद्धव जान लो।।

परमात्म की ईक्षण शक्ति, जब लौ अपना काम करे। जब लौ पालन पोषण की, प्रवृत्ति उसकी बनी रहे।।
तब लौ जीवों के कर्म भाग, का चक्र यह चलता रहे। पिता पुत्र के रूप में, सृष्टि क्रम यह नहीं रुके।।

विविध लोक की सृष्टि स्थिति, संहार की है लीला स्थली। जान ले हे उद्धव है यह, विराट की ही अपनी छवि।।
जब काल रूप से व्याप्त हो, प्रलय का मैं संकल्प करूँ। भुवनों सहित विनाश की, लपेट में मैं इसको ले लूँ।।

उसके लय हो जाने की, प्रक्रिया भी अब मुझसे सुन ले। तन तो अन्न में लीन हो, अन्न लीन हो बीज में।।
आकाश पुन: जाकर के, शब्द तन्मात्रा में मिले। इन्द्रिय निज कारण देवों में, वह राजस अहं में जाय मिलें।।

नियन्ता राजस अहं का, सतो अहं रूपा मन है। उसमें ही जा लीन हो, यह दृष्ट राजस् अहं जो है।।
महातत्त्व में जाकर लीन हो, त्रिविध यह अहंकार जान। महत्तत्त्व है ज्ञान शक्ति और, है क्रिया शक्ति रज प्रधान।।
अपने कारण गुणों में ही, जाकर लीन वह हो जाये। अव्यक्त प्रकृति में जाकर, गुण लीन यह हो जायें।।
और प्रकृति निज प्रेरक, अविनाशी काल में लीन भए। प्रलय का उद्धव जान लो, इस विधि क्रम चलता रहे।।

काल लीन हो जीव में, जीव हो मुझ आत्म में लीन। अजन्मा आत्म नित्य है, नहीं हो किसी के वह अधीन।।
उपाधि रहित है वह सदा, निज स्वरूप में स्थित रहे। जग की सृष्टि और लय का, अधिष्ठान और है अवधि वह।।

इस प्रकार विवेक की, दृष्टि से जो है देखता। उसके चित्त में प्रपंच का, यह भ्रम हो ही नहीं सकता।।
कदाचित् स्फूर्ति भी गर हो, तो हृदय में अधिक न ठहर सके। ज्यों सूर्योदय हो जाने पर, तिमिर आकाश में टिक न सके।।

कार्य और आकरण द्वौ का, हूँ मैं ही साक्षी हे उद्धव। सृष्टि से प्रलय लय से सृष्टि, संख्या विधि बता दी सब।।
इसे जान सन्देह की, सारी ग्रन्थी ही खुल जाये। अपने वास्तविक स्वरूप में, जीव स्थित पुन: हो जाये।।

१४) प्रकृति के तीन गुण

भगवान बोले,
हर व्यक्ति में भिन्न भिन्न, गुण प्रकाशित हों उद्धव। उनके कारण स्वभाव भी, भिन्न ही हों सबके उद्धव।।
किन गुण के कौन स्वभाव बनें, अब मैं तुम्हें बताता हूँ। द होई के तुम सुनो, गुह्य रहस्य सुझाता हूँ।।

सर्वप्रथम सतोगुणी की, ही वृत्तियां तुम जान लो। दम शम तितिक्षा विवेक, तप सत्य दया पहचान लो।।

रजोगुणी प्रवृत्तियां जान, इच्छा प्रयत्न गर्व तृष्णा। भेद बुद्धि विषयोपभोग दम्भ, देवों से धन की याचना।।
युद्ध हेतु मदोन्मत्तता, यश में आसक्ति परिहास जान। पराक्रम हठपूर्ण उद्योग, हैं रजोगुण के परिणाम।।

क्रोध लोभ मिथ्या भाषण, हिंसा याचना और दम्भ। श्रम कलह शोक मोह भय, विषाद दीनता निद्रा भ्रम।।
आशा और कर्महीनता, यह सब तम के गुण जानो। क्रमश: लक्षणों से उद्धव, गुणों को ही अब पहचानो।।

यह मैं हूँ और यह मेरा है, इस प्रकार की बुद्धि जो। तीनों गुणों के मिश्रण का, है परिणाम यह जान लो।।
मन इन्द्रिय विषय और प्राण के, कारण वृत्तियों का जन्म हो। वे सब भी हैं त्रैगुणी, हे उद्धव तुम जान लो।।

धर्म अर्थ और काम में, जीव सब संलग्न रहें। सत्व से श्रद्धा रज से रति, तम से धन उन्हें प्राप्त भए।।
सकाम कर्म गृहस्थाश्रम, स्वधर्म आचरण में हो प्रीति। तब भी तीनों गुणों का, जान ले इसको मिश्रण ही।।
शान्तमनी जितेन्द्रिय तो, सतोगुणी ही हो सके। कामना से जानो रजोगुणी हिंसा तमोगुणी का परिचय दे।।
निष्काम होई जब नर नारी, नित्य कर्म से आराधें मुझे। तब उनको तू सतोगुणी, ही उद्धव पहचान ले।।

सकाम भाव से कर्मों राह, आराधन जो मेरा करें। है रजोगुणी उसका पूजन, उसे रजोगुणी तू जान ले।।
निज शत्रु की मृत्यु और, हानि करने के लिये। यही भाव मन में धरी, तमोगुणी मेरी पूजा करे।।

सत्व रज तम इन तीनों, गुणों का कारण चित्त ही है। उनसे नहीं मेरा कहीं, कदाचित् कछु सम्बन्ध है।।
इन्हीं गुणों के द्वारा जीव, तन धन में आसक्त हो। यह आसक्ति ही उसके, बन्धन का फिर कारण हो।।

निर्मल शान्त है सतोगुण, है प्रकाश से परिपूर्ण। रज और तम का मर्दन कर, होता है उसका वर्धन।।
तब सुख धर्म और ज्ञान का, पात्र जीव यह बन जाये। सत्व गुण का ऐसा ही, प्रभाव दर्शन में आये।।

भेद बुद्धि दे रजोगुण, स्वभाव है उसका आसक्ति तमोगुण और सतोगुण को दबा, कर ही हो रज की वृद्धि।।
दु:ख कर्म यश और लक्ष्मी, ही इसका परिणाम हो। रजोगुण प्रधान जीव, इन सबसे ही सम्पन्न हो।।

तम का स्वरूप अज्ञान ही है, स्वभाव आलस्य मूढ़ता है। सत्व और रज दबाकर ही, जीव में यह गुण बढ़ता है।।
भाँति भाँति की आशा कर, वह शोक मोह में पड़ा रहे। निद्रा आलस करे वशीभूत, हिंसा की प्रवृत्ति बढ़े।।
हो चित्त प्रसन्न हों इन्द्रियां शान्त, मन अनासक्त हो तन निर्भय। मम प्राप्ति का उत्तम साधन, सतोगुण वर्धन ही समझ ले।।

कर्म करते करते जब जीव की बुद्धि चंचल हो। असंतुष्ट हो ज्ञानेन्द्रियां, विकारवान कर्मेन्द्रियां हों।।
हो मन विभ्रान्त और तन भी, अस्वस्थ ही हो जाये। तब रजोगुण प्रधान हुआ, ऐसा साधक समझ ले।।

ज्ञानेन्द्रियों के द्वारा चित्त, विषय न ठीक से ग्रहण करे। खिन्न हो निज असमर्थता पर, लीन जब वह होने लगे।।
मन सूना हो अज्ञान और, विषाद की जब हो वृद्धि। तब समझना चाहिये, तमोगुण की यह है वृद्धि।।
सतोगुण वर्धन देवों को, और रजोगुण असुरों को। तमोगुण का वर्धन तो, बलवान करे राक्षसों का।।

सतोगुण में हो जागृति, रजोगुण में स्वप्न होएं। सुषुप्ति अवस्था का मूल, तमोगुण ही तू जान ले।।
इन तीनों में तुरीय तो, एक समान ही व्याप्त रहे। शुद्ध एक रस आत्म ही, उसको उद्धव तू जान ले।।

वेदों के अभ्यास में, तत्पर हुए हैं जो ब्राह्मण। उत्तरोत्तर उपरि लोकों में, ही होता है उनका गमन।।
तमोगुण से जड़ योनि मिले, अधोगति ही प्राप्त हो। रजोगुण का परिणाम है, यह मानव तन जान लो।।

सतोगुण की वृद्धि में, जिसके तन का प्रमाण हो। स्वर्ग लोक की उपलब्धि उसको जानो निश्चित हो।।
रजोगुण के वर्धन में, जो अपना तन छोड़े हैं। मनुष्य लोक को प्राप्त हो, रज में जो तन छोड़े है।।
किन्तु जो त्रिगुणातीत हुआ, जीवन्मुक्त ही हो गया। मुझको ही वह प्राप्त हो, इन तीनों गुणों से उठा हुआ।।

मुझको ही समर्पित कर, जब धर्म का आचरण हो। निष्काम भाव से किया गया, सात्विक ही उसे जान लो।।
जिस कर्म के करने में, फल की कामना बनी रहे। वह कर्म है राजासिक, हे उद्धव तू जान ले।।
किसी अन्य को सताने या, दर्शाने का भाव जो हो। वह ही कर्म है तामसिक, इतना तुम पहचान लो।।

शुद्ध आत्मा ज्ञान है सात्विक, ऐसी समझ जब उपज पड़े। कर्ता भोक्ता निज को माने, राजस ज्ञान ही जान उसे।।
आत्म को तन ही मानना, है सर्वथा तामसिक ज्ञान। तीनों से विलक्षण मेरे स्वरूप, का वास्तविक तू निर्गुण जान।।

वनस्थान ही सतोनिवास है, है ग्राम वास ही राजसी। द्यूत घर में रहना ही, जान ले वास है तामसी।।
इन सबसे ही बढ़कर के, मेरे मन्दिर में रहना। निर्गुण निवास है वही जान, मेरे ही संग में रहना।।

सात्विक जीव तो जान ले, अनासक्त भाव से कर्म करे। राग से अन्धा होकर ही, राजसी कर्ता कर्म करे।।
पूर्व अपर विचार से, नितान्त रहित है तामसिक। निर्गुण कर्ता मेरे शरणापन्न हैं अहंकार से वह रहित।।

आत्म ज्ञान विषयक श्रद्धा, ही सात्विक है जान ले। कर्मों में गर हो श्रद्धा, राजसिक उसे मान ले।।
अधर्म और अज्ञान में, तमोगुणी की श्रद्धा हो। मेरी सेवा में श्रद्धा ही, जानो निर्गुण श्रद्धा हो।।

आरोग्यदे पावन स्वत: प्राप्त, भोजन ही है सात्विक। रसना इन्द्रिय का रुचिकर, स्वादु आहार है राजसिक।।
दु:खदे और अपावन है, आहार जो हर दृष्टि से। उसको ही तामसपूर्ण, आहार तू उद्धव जान ले।।

आन्तर्मुखी आत्म चिन्तन, से जिस सुख की प्राप्ति हो। उस सुख को ही सात्विक, हे उद्धव तुम जान लो।।
बहिर्मुखी विषयों से प्राप्त, होने वाला सुख राजस है। अज्ञान दीनता से जो मिले, वह सुख ही तो तामस है।।
जो सुख मेरी राही मिले, वह तो जानो अप्राकृत है। मेरे द्वारा प्राप्त जो हो, वह सुख गुणातीत ही है।।

द्रव्य देश फल काल ज्ञान, कर्म कर्ता और श्रद्धा। देव मनुज तिर्यगादि, यह सारी व्यवस्था औश्र न्ठिा।।
त्रिगुणात्मक ही यह हैं, और प्रकृति के भाव सब। चाह हों इन्द्रिय ग्राह्य वह, या हों शास्त्र कथित ही सब।।
लोक लोकान्तर सम्बधित, या बुद्धि से हों विचार किये। इन सबको तीनों गुणों के, अधीन ही तू जान ले।।

जितनी भी योनि या गति, जीव को उद्धव प्राप्त हों। वे सब उनके गुणों और, कर्मों के ही आधार पे हों।।
सब गुण हैं जीव के चित्त में ही, अनायास वह उनको जीत सके। इन्हें जीत के भक्तियोग से, जो मुझमें परिनिष्ठ भए।।
अन्तत: मेरे वास्तविक स्वरूप, प्राप्त वह कर लेता है। मोक्ष जिसको कहते हैं, वह सहज में ही पा लेता है।।

अति दुर्लभ है यह मानव तन, तत्त्व ज्ञान इस राही मिले। उसमें निष्ठा रूप में, विज्ञान यहाँ सम्भव होये।।

बुद्धिमान इसे प्राप्त कर, गुणों में न आसक्त हो। वह तो मेरे भजन में, ही सदा अनुरक्त हो।।

विवेकवान् हो अति दक्ष, सतोगुण सेवन करे। रज और तम को जीते वह, इन्द्रियां अपने वश में करे।।
अपने में आसक्ति का, वह लेशमात्र न रहने दे। मेरे स्वरूप को समझ कर, वह मेरे भजन में लगा रहे।।

योगयुक्ति से निज चित्त की, वृत्तियों को वह शान्त करे। निरपेक्ष वह होकर के, सतोगुण को भी जीत ले।।
गुण युक्त जब होकर के, वह जीव भाव निज छोड़ दे। आत्म में एकत्व पा, अभिन्न वह मुझसे हो जाये।।

चित्त की सत्त्वादि सभी, वृत्तियों से मुक्त होकर। लिंग शरीर रूप अपनी, उपाधि को भी त्यागकर।।
मुझ ब्रह्म की अनुभूति पा, एकत्व में जब स्थित वह हो। फिर बाह्य या आन्तर के, किसी विषय से क्षुब्ध न हो।।

१५) ऐल गीत

श्रीभगवान बोले,
मेरे स्वरूप की प्राप्ति का, है मानव तन मुख्य साधन। सच्चे प्रेम से ही मेरी, भक्ति करते हैं जो जन।।
अपने अन्त:करण में स्थित, मुझको ही वह प्राप्त करे। आनन्द स्वरूप आत्म को पा, आनन्द स्वरूप वह स्वत: भए।।

सभी योनियां और गतियां, जीव की है त्रिगुणमयी। उनसे मुक्त हो सके जीव, ज्ञान निष्ठा के द्वारा ही।।
सत्वादि गुण जो दीख हरे, हैं बस केवल मायामात्र। ज्ञान प्राप्त जिसने किया, उनमें बस वह वर्ते मात्र।।
उनके द्वारा व्यवहार करी, भी वह उनसे नहीं बन्धे। वास्तव में उन गुणों की, है नहीं कोई सत्ता कहें।।

जो केवल विषय सेवन में ही, और उदर पोषण में लगे। साधारण जीव को चाहिये, उनके संग से वह दूर रहे।।
उनका अनुसरण जो जन करें, वे भी उस दुर्गति को पायें। ज्यों अन्धे का ले आसरा, अन्ध जा कूप में गिर जाये।।

सम्राट इलानन्दन का उद्धव, नाम था जानो पुरुरवा। उर्वशी के विरह में था, पहले तो वह बेसुध हुआ।।
शोक दूर हो जाने पर, उसके मन में वैराग्य जगा। तब उसने गाई थी, वैराग्य भरी यह ही गाथा।।

उनको छोड़ के भागती, थी चली जा रही उर्वशी। उसके पीछे वह दौड़ पड़ा, नग्न ही पागल की भाँति।।
विह्वल हो वह पुकारे था, थोड़ी देर तो ठहर जा। हे देवी निष्ठुर हृदय, मुझको छोड़ के मत तू जा।।

उर्वशी ने चित्त उसका, था अपने वश में किया। क्षुद्र विषय सेवन से अभी, तृप्त नहीं था वह हुआ।।
इतना आसक्त था विषयों में, नहीं काल का कुछ आभास रहा। रात्रियां बीतीं वर्षों की, उसको कुछ पता ही नहीं चला।।

ऐल बोला,
हाय देखो मेरी मूढ़ता, काम वासना में मैं पड़ा। चित्त अपावन हुआ मेरा, नहीं काल का भी आभास रहा।।
उर्वशी ने निज भुजा से, कण्ठ मेरा ऐसा पकड़ा। अनमोल समय निज आयु का, न जाने कितना खो दिया।।
विस्मृति की भी इक सीमा हो, मैं तो बिलकुल ही भूल गया। सूर्य उदय या अस्त हुआ, मैं तो यह भी न जान सका।।
अहो खेद की बात है यह, मैं तो पूर्ण ही लुट गया। बहुत वर्षों के बहुत दिन बीते, मुझे मालूम भी नहीं हुआ।।

मोह मेरा इतना बढ़ा, नरदेव हूँ मैं सम्राट बड़ा। यह भूल इक स्त्री के, हाथों मैं खिलौना मात्र बना।।

देखो मैं वह सम्राट हूँ, जो मर्यादित प्रजा करे। मेरे और मेरे राज्य के, तृणवत् ही मैंने परित्याग किये।।
पागल होकर मैं नग्न ही, उस कामिनी के पीछे भागा। रोता बिलखता मैं रहा, यह भी कोई जीवन है क्या?

गधे की भाँति ही मुझे, दुल्लत्ती स्त्री से मिली। यह सब सहकर भी मैंने, उसकी ही अनुगमन करी।।
ऐसे में प्रभाव तेज, स्वामित्व मेरा सब खत्म हुआ। व्यर्थ है सब विद्या उसकी, स्त्री ने जिसका चित्त हरा।।
तप त्याग शास्त्र अभ्यास से, लाभ न उसको हो कोई। एकान्त सेवन और मौन, उसका तो हो सब निष्फल ही।।

मैं हानि लाभ निज न देखूं, फिर भी पण्डित मानूं निज को। कैसा मैंने आचरण किया, धिक्कार है इस कारण मुझको।।
चक्रवर्ती सम्राट में, स्त्री के फंदे में फंसा। गधे बैल की भाँति मैं, उसके द्वारा ही हांका गया।।

वर्षों तक ही मैं उसके, अधरों की मदिरा पीता रहा। उस मादक मदिरा न मेरी, तृष्णा को नहीं शान्त किया।।
सच ही है आहुति से, अग्न शान्त कभी न होए। जितनी समिधा उसमें डालो, उतनी और वह भड़क पड़े।।

मेरा चित्त चुराया कुलटा ने, उस फन्दे से कैसे निकलूँ? जीवन्मुक्तों के आत्मराम, स्वामी की मैं शरण पड़ूँ।।
इन्द्रिय अतीत श्री हरि को छोड़, उद्धार मेरा कौन कर सके? मुझ काम कूप में पतित को, उन बिन कौन उबार सके?

वैदिक सूक्त के वचनों से, उस देवी ने समझाया मुझे। यथार्थ ज्ञान दिया मुझको, पर मोह ग्रसित मन बुद्धि थे।।
सब सुनकर भी अति भयंकर, मोह वह मेरा नहीं मिटा। इन्द्रियां ही नहीं मेरे वश में थीं, मैं समझ उसे कैसे सकता?

रज्जू स्वरूप न जानकर, जो उसमें सर्प है देख रहा। अति व्यथित वह है हुआ, रज्जू का इसमें दोष है क्या?
इसी भाँति उर्वशी ने, भी क्या मेरा बिगाड़ किया? इन्द्रिय अधीन मैं स्वयं हुआ, यह तो है अपराध मेरा।।

दुर्गन्ध भरा यह मलिन तन, है अपावन और अपवित्र। सुकुमार्य सुगन्धित पावनता, यह सब गुण तो हैं पुष्पोचित।।
किन्तु अज्ञान के कारण ही, सुन्दर समझा असुन्दर को। मेरे समान मूढ़ मूर्ख, इस जग में दूजा कौन हो?
है मात पिता का ही यह तन, या है यह सम्पद् पत्नी की? स्वामी का क्रीत दास है यह, या है यह समिधा अग्नि की?

अथवा श्वान या गीधों का, भोजन ही इसे जान लें। अपना कहें हम इस तन को, या बन्धु बान्धवों का कहें?
बहुत सोच विचार के भी, निर्णय नहीं कुछ कर पायें। मल मूत्र भरा अपावन ही, है यह तन इतना तो लें जान।।
पक्षी खाकर अन्त में, विष्टा रूप ही इसे करें। या इसके सड़ जाने पर, कीड़े ही इसमें पड़ें।।
अग्नि में भस्म होकर, या राख की ढेरी बन जाये। ऐसे तन पर आसक्त हो, सुध बुध भूली मन यही कहे।।
अहो कैसा सुन्दर मुख है, है इस स्त्रभ की नाक सुघड़। मंद मंद मुसकान यह, इसकी है कितनी मनहर।।

त्वक् मांस रुधिर स्नायुः, मेदा मज्जा और अस्थि ढेर। मल मूत्र से है यह भरा हुआ, यह ही तो है इस तन की टेर।।
गर इसमें ही जीव रमा, तो उसको जानो कीट समान। नहीं कीट और उसमें रहे, अन्तर कोई भी तू जान।।

विवेकवान् जीव जो, अपने कल्याण को है चाहता। स्त्री और लम्पट पुरुषों का, संग करे वह त्याग सदा।।
विषय इन्द्रिय संयोग से ही, मन में विकार उत्पन्न होए। इनके बिना विकार का, अवसर ही कहीं नहीं रहे।।

जो वस्तु नहीं देखी कभी, न ही जिसका श्रवण हुआ। उसे लिये मन में कभी, विकार उठे कैसे भला?

विषयों संग इन्द्रियों का, संयोग जो जन नहीं करते। उनके मन निश्चल शान्त, अपने आप हैं हो जाते।।

इन इन्द्रियों की राही कभी, स्त्री का संग मन नहीं करे। स्त्री लम्पट पुरुषों से, भी सदैव वह दूर रहें।।
मुझ जैसे की तो बात ही क्या, बड़े-बड़े विद्वान भी। अपने मन और इन्द्रियों का, विश्वास नहीं कर सकें कभी।।

भगवान बोले,
राज राजेश्वर पुरुरवा के, मन में ज्यों यह उद्‌गार उठा। उर्वशी लोक परित्याग किया, तत्क्षण ही वह शान्त हुआ।।
ज्ञान उदय हो जाने से, मोह उसका जाता रहा। हृदयस्थ आत्म रूप में, मेरा फिर साक्षात्कार किया।।

पुरुरवावत् बुद्धिमान, तत्काल कुसंग को छोड़ के। सत्पुरुषों का संग करी, उनसे उपदेश वह प्राप्त करे।।
उसके मन की आसक्ति को, स्वत: नष्ट वह कर देंगे। चित्त की मल सब धोय करी, पावनता वहाँ भर देंगे।।

सत्पुरुषों के लक्षण जानो, सदा ही वह निरपेक्ष रहें। सागर समान है शान्त हृदय, चित्त मुझी में लगा रहे।।
सबमें स्थित भगवान के, ही वह सदा दर्शन करें। नहीं अहंकार का लेश कहीं, फिर ममत्व कहाँ रह सके?
शीतोष्ण सुख दु:ख आदि, द्वन्द्वों में रहें सदा एक रस। परिग्रह नहीं वह कर सकते, तन मन बुद्धि किसी स्तर पर।।

संतों के सौभाग्य की, महिमा उद्धव कौन गा सके? हे महाभाग मेरी लीला कथा, में ही उनका चित्त रमा रहे।।
है जीव की सर्वहितु वही, जो जन उसका सेवन करते। सारे पाप ताप उनके, मेरी कथा से ही हैं धुल जाते।।

आदर और श्रद्धा सहित जो जन, मम लीला कथा का श्रवण करें। उसका गायन अनुमोदन कर, मेरे ही परायण हो जायें।।
मेरी अनन्य भक्ति उन्हें, प्रसाद रूप में प्राप्त हो। प्रेममयी उस भक्ति राह, वे जन मुझको ही प्राप्त करें।।

अनन्त अचिन्त्य कल्याणमय, गुण का आश्रय मैं हूँ उद्धव। मेरा स्वरूप तू जान ले, आनन्द विशुद्ध आत्म अनुभव।।
साक्षात् परब्रह्म हूँ मैं, जिसे मेरी भक्ति मिल गई। वह तो सन्त ही हो गया, उसे कुछ भी पाना शेष नहीं।।

जिसने ऐसे सन्त जनों की, चरण शरण है ग्रहण करी। सांसारिकता कर्मजड़ता अज्ञान की उनकी निवृत्ति हुई।।
अग्नि देव का आश्रय जिस भी जीव ने ले लिया। शीत भय या अन्धकार, कैसे दु:ख उसको देगा?

इस भीषण भव सागर में, निरन्तर डूब उतर जो रहे। ब्रह्मवेत्ता शान्त सन्त ही, इक आश्रय उनका हो सकें।।
जैसे जल में डूब रहे, लोगों के लिये हो दृढ़ नौका। उसी विधि यह सन्त जन, देते हैं उसको पार लगा।।

ज्यों अन्न से जीवों के, प्राणों की जानो रक्षा हो। दीन दुखियों का त्यों ही, रक्षक मुझको जान लो।।
परलोक में जीवों के लिये, ज्यों धर्म ही इक पूंजी रहे। त्यों ही संसार से भीत जो जन, हैं सन्त परम आश्रय उनके।।

सूर्य आकाश में उदय होई, सबके नेत्रों में ज्योति दे। जिससे वे संसार को, और सूर्य को भी देख सकें।।
त्यों ही सन्त जन जीव को, अन्तर्दृष्टि का दान दें। जिससे वह श्री हरि और, उनके सन्तों को देख सकें।।

इस जग में अनुग्रहशील, देव जानो तुम सन्तों को। सुहृद् हितैषी सन्त हैं, हैं अपने प्रियतम आत्म वो।।
और अधिक मैं क्या कहूँ, सन्त में तो मैं स्वयं बसूँ। सन्तों में जानो उद्धव, विद्यमान् मैं सदा रहूँ।।

आत्म साक्षात्कार से, आसक्ति पुरूरवा की मिटी। उर्वशी के लोक की, स्पृहा नहीं कोई शेष रही।।
अनासक्त होकर के वह, आत्म राम ही हो गया। स्वच्छन्द रूप से धरती पर, विचरण वह करने लगा।।

१६) क्रिया-योग का वर्णन

उद्धव बोले,
जिस क्रियायोग का आश्रय ले, भक्त जो पूजन करते हैं। जिस उद्देश्य से जिस विधि, वह आपका अर्चन करते हैं।
अपने ही आराधन स्वरूप, क्रिया योग की आप कहें। भक्त वत्सल प्रभु उसका, वर्णन मेरे लिये करें।।

देवर्षि नारद प्रभु व्यास, और आचार्य बृहस्पति। सब महर्षिजन ने बार बार, है एक ही बात कही।।
क्रियायोग के द्वारा हो, आपकी जो आराधना। जीवों के कल्याण हेतु, है वह ही उत्तम साधना।।

सर्वप्रथम यह क्रिया योग, आपने ही बतलाया था। आपसे ही ग्रहण कर, ब्रह्मा ने भृगु आदि से कहा।।
प्रभु शंकर ने अर्धांगिनी, पार्वती को आदेश दिया। ब्राह्मण क्षत्रिय सब वर्णों के, कल्याण का यह साधन बना।।
ब्रह्मचर्य गृहस्थादि सब, आश्रमों का मंगलकर सदा। स्त्री शूद्रादि के लिये भी, सर्वश्रेष्ठ साधन यह कहा।।

शंकरादि जगदीश्वरों के, हैं ईश्वर आप है कमलनयन। मैं प्रेमी भक्त हूँ आपका, हुआ आपके ही मैं शरणपन्न।।
कृपा कर प्रभु कर्म बन्ध, स मुक्त मुझे करें आप। मुक्ति कर इस पावन विधि, का वर्णन मुझे करें आप।।

भगवान बोले,
है कर्मकाण्ड इतना विस्तृत, उसकी कोई सीमा ही नहीं। संक्षेप में कहूँ विधिवत् मैं, पूर्व अपर क्रम से ही।।
हे उद्धव तीन विधि कही, जान ले मेरे पूजन की। वैदिक तान्त्रिक और मिश्रित, हैं तीनों के नाम ही।।
इन तीनों में से जो विधि, अनुकूल जाने मेरा भक्त। वही विधि अपनाकर मेरे, आराधन में हो वह अनुरक्त।।

अपने अधिकार अनुसार प्रथम, शास्त्र शरण में वह जाये। यज्ञोपवीतादि से विधिवत्, फिर संस्कृत वह हो जाये।।
द्विजत्व प्राप्त कर श्रद्धा और, भक्ति से पूजन मेरा करे। अब इसकी विधि है क्या, उद्धव तू मुझसे सुन ले।।

पिता और गुरु जानी, निष्कपट हृदय से पूजे मुझे। मूर्ति वेदी अग्नि सूय, जल अथवा हृदय में दर्शन ले।।
चाहे तो ब्राह्मण रूप में, मेरी आराधना किया करे। पूजा की सब सामग्री ले, वह मेरी पूजना किया करे।।

प्रात:काल दातुन करके, तन को स्नान से शुद्ध करे। फिर वैदिक तान्त्रिक दोनों ही, मन्त्रों का वह आश्रय ले।।
मिट्टी और भस्म का लेप कर, पुन: स्नान वह भक्त करे। इस विधि अपने तन को, पावन ही बना वह ले।।

तत्पश्चात: वेदोक्त जो, सन्ध्या वन्दन नित्य कर्म करे। फिर मन में मम आराधना का, सुदृढ़ वह संकल्प करे।।
वैदिक तान्त्रिक विधि से वह, फिर मेरा पूजन करे। यह पूजन ही कर्मों के, बन्धन से मुक्त उसे कर सके।।

आठ प्रकार का जानो मेरा, विग्रह है शास्त्रों में कहा। पत्थर लकड़ी धातु मिट्टी, चन्दन आदि का हो वह कहा।।
अचल प्रतिमा पूजन में, आवाहन प्रतिदिन न होए। न ही नित्य प्रति उसका, विसर्जन करना चाहिये।।

चल प्रतिमा के सम्बन्ध में, विकल्प अन्य हैं दिये गए। उनमें गर चाहे तो करे, न चाहे तो न भी करे।।

किन्तु बालुका प्रतिमा का, गर पूजन मेरा भक्त करे। उसमें आवाहन और विसर्जन, नित्य ही करना चाहिये।।
मिट्टी चन्दन और चित्रमयी, प्रतिमा को स्नान न करवाये। मार्जन से पावन उन्हें करे, पर अन्य सभी को स्नान वह दे।।

विधि विधान और मन्त्रों से, आवाहन प्रतिमा में करके। उत्तम पदार्थों से मेरा, पूजन वहाँ किया जाये।।
किन्तु निष्काम भक्त मेरा, अनायास प्राप्त पदार्थों से। भावना मात्र से ही मेरा, पूजन अपने हिय में करे।।

धातु या पत्थर से बनी, प्रतिमा का जब पूजन हो। स्नान वस्त्र और आभूषण, सबका वहाँ उपयोग हो।।
मिट्टी की ही वेदी या फिर, बालुकामयी गर प्रतिमा हो। मन्त्रां द्वारा ही अंगों और, प्रधान देवों की पूजा हो।।

यदि अग्नि में पूजो मुझे, घृत मिश्रित सामग्री सों। उसकी आहुति से मेरी, हवन के द्वारा पूजा हो।।
सूर्य को मान प्रतीक मेरा, गर उपासना की जाये। अर्घ्यदान और उपस्थान, ही जानों हैं प्रिय मुझे।।
बहुत प्रेम से ही उसको, जानो मैं स्वीकार करूँ। अपने भक्त के प्रेम की, मैं सदा सत्कार करूँ।।

गर भक्ति भाव से रहित कोई, महा सामग्री भेंट करे। बहुमूल्य सामग्री वह, सन्तुष्ट मुझे न कर सके।।
भक्ति और श्रद्धा सहित दिया, जल भी मुझे सन्तुष्ट करे। धूप दीप नैवेद्य गन्ध, के समर्पण की क्या कहें।।

सर्वप्रथम उपासक मम, पूजन सामग्री एकत्र करे। अग्र भाग कर पूर्व दिशा, कुशा आसन बिछा वह ले।।
पूर्व या उत्तर दिशा में वह, फिर अपने मुख को करे। पावन होकर कुशा के, आसन पर फिर जा बैठे।।
अचल ही हो गर मेरी प्रतिमा, सम्मुख जा कर वह बैठे। तत्पश्चात् ही पूजा का, कार्य वह आरम्भ करे।।

विधिवत् करे फिर अंग न्यास, फिर वह कर न्यास करे। तत्पश्चात् ही विग्रह में, फिर वह मन्त्र न्यास करे।।
प्रतिमा पे पूर्व सामग्री जो, हाथ से उसको दूर करे। जल भरा कलश प्रोक्षण पात्र, की पूजा गन्ध पुष्प से करे।।

निज तन और पूजन सामग्री, प्रोक्षण पात्र के जल से धोए। पाद्य अर्घ्य आचमन हेतु, तीनों पात्र में कलशों से जल ले।।
पूजा पद्धति अनुसार, सामग्री से वह पात्र भरे। हृदय सिर शिखामन्त्र से फिर, अभिमन्त्रित पात्रों को करे।।
अन्त में गायत्री मन्त्र से, अभिमन्त्रित करे पात्रों को। इस विधि पूजा की उसकी, तैय्यारी फिर पूरी हो।।

प्राणायाम के द्वारा फिर, प्राणवायु जब शुद्ध भए। शरीरस्थ अगिग्न को भी, भावना से ही शुद्ध करे।।
अपने हृदय कमल में फिर, मेरा जीव कहा का ध्यान धरे। अति सूक्ष्म श्रेष्ठ दीप शिखा सम, मेरी कला को वह देखे।।
महा सिद्ध ऋषि मुनि चित्त में, ओंकार का ध्यान करें। अ उ म् बिन्दु और नाद, इन पंच कला का ध्यान करें।।
अन्त में मेरी जीव कला, का ध्यान वह हैं धरते। इस विधि से योगी जन, मुझको प्राप्त ही हैं करते।।

है आत्म स्वरूपिणी, मेरी जीव कला जानों। उसके तेज से अन्त:करण, और तन जब परिपूर्ण हो।।
मानसिक उपचार से, मन ही मन पूजन उसका करे। फिर तन्मय होकर प्रतिमा में, आवाहन मेरा करे।।
तत्पश्चात् मन्त्रों द्वारा, अंग न्यास वहाँ मेरा करे। और उसी में मेरी वह, पूजा का विधान करे।।

मेरे आसन में धर्म आदि, इन गुण की कल्पना वह करे। विमला आदि शक्तियों की, उसमें भावना वह करे।।
उस आसन पर अष्टदल, कमल है उज्ज्वल भास रहा। उसकी कर्णिका का केसर, चहुँ दिशा को उजला कर रहा।।
ऐसी मन में भावना, आसन की जब हो जाये। पाद्य आचमन और अर्घ्य, आदि प्रस्तुत फिर करे।।

फिर भोग मोक्ष सिद्धि हेतु, मम पूजन वह किया करे। वैदिक तान्त्रिक विधि का ही, इसके लिये वह आश्रय ले।।

सुदर्शन चक्र पंजचन्य शंख, कौमोदकी गदा और खड्ग। बाण धनुष और हल मूसल, इन आयुधों का ध्यान धर।।
अष्ट दिशाओं में ही इन, आठों की पूजा करे। कौस्तुभ मणि वैजयन्ती माल, श्री वत्स को यथास्थान पूजे।।

नन्द सुनन्द प्रचण्ड चण्ड, महाबल बल कुमुद कुमुदेक्षण। इन आठ पार्षदों का वह, अष्ट दिशा में करे पूजन।।
दुर्गा विनायक व्यास और, विष्वक्सेन चहुँ कोनों में। सामने श्री गरुड़ को ही, स्थापन करी के वह पूजा।।
बायीं ओर रखे गुरु को, लोकपालादि हों पूर्व में। प्रोक्षण अर्ध्य दान आदि दे, पूजे सब फिर इस क्रम से।।

चन्दन खस कपूर केसर, आदि सुगन्धित द्रव्यों से। सुवासित जल से ही मुझे, नित्य स्नान वह करवाये।।
स्वर्ण धर्म अनुवाक् और, महापुरुष आदि विद्या। पुरुषसूक्तादि मन्त्रों से, करे पाठ साम गायन द्वारा।।

वस्त्राभूषण यज्ञोपवीत, पत्र माल और गन्ध ले। चन्दन आदि से प्रेम सहित, भक्त मेरा श्रृंगार करे।।
श्रद्धा सहित उपासक फिर, आचमन पाद्य अर्पित करे। चन्दन पुष्प अक्षत् दीप, आदि सामग्री चरण धरे।।
गुड़ खीर घृत पूरी पुए, हल्वा लड्डू दही दाल आदि। विविध व्यंजनों से मेरा, तैय्यार करे नैवेद्य सभी।।

भगवान के श्री विग्रह को, दातुन वह कराये फिर। उबटन आदि लगाकर के पंच स्नान कराये फिर।।
सुरभित द्रव्य लेपन करे, दर्पण प्रभु को दिखाये फिर। नित्य भोग लगाये उन्हें, पर्वो। पे करे गायन नृत्य।।

पूजा के पश्चात् फिर, कुण्ड में अग्नि स्थापन हो। मेखला गर्त और वेदी से, कुण्ड शोभायमान वह हो।।
हाथ से वायु कर उसमें, अग्नि प्रज्वलित वह करे। तत्पश्चात् उस अग्नि को, एकत्रित ही वह कर दे।।

वेदी के चहुँ ओर फिर, बीस बीस वह कुशा धरे। मन्त्र पठन के साथ वह, जल प्रक्षालन उनपे करे।।
विधिपूर्वक़ फिर समिधा का, आधान रूप वह कर्म करे। उत्तर भाग में अग्नि के, होम की समिधा वह धरे।।
प्रोक्षण पात्र के जल से फिर, उन सबका प्रोक्षण करे। तत्पश्चात् अग्नि में वह, इस विधि मेरा ध्यान धरे।।

तप्त स्वर्ण समान है, मेरा विग्रह यह मूर्तिमान। इक इक रोम से बरस रही, मानो शान्ति हुई वर्षावान्।।
लम्बी हैं चतुर्भुजा, मेरे विग्रह की शोभायमान्। शंख चक्र और गदा पद्म, हैं उनमें विराजमान।।
कमल कर्णिका के समान, है पीत वसन फहरा रहा। सीस मुकुट हाथ कंगन, कटि देश करधनी से दमका।।
भुजा में बाजूबन्द है, वक्ष:स्थल पर श्री वत्स चिन्ह। कण्ठ में मणि कौस्तुभ चमके, वनमाल है लटकी घुटनों तक।।

अग्नि में इस विधि मेरे, विग्रह का वह ध्यान करे। तत्पश्चात् सूखी समिधा, घृत में वह डुबोकर के।।
अज्यभाग आघार नामक, आहुति अग्नि में दे। दो दो आहुति देकर के, हवन और भी करता रहे।।
घृतमिश्रित अन्य सामग्री की, फिर आहुति अग्न में दे। इस विधि उपासक वह, यज्ञ मेरा करता रहे।।

तत्पश्चात् निज इष्ट मन्त्र, या अष्टाक्षरी मन्त्र से। पुरुष सूत के षोड्श मन्त्रों, से हवन वह करता रहे।।
धर्मादि देवों के लिये भी, बुद्धिमान् फिर हवन करे। विधिवत् मन्त्रादि से वह, स्विष्टकृत आहुति भी दे।।

अन्तर्यामी रूप से जो, अग्नि में ह विराजमान्। प्रभु की पूजा कर करी, नतमस्तक वह हो वहाँ।।
अष्ट दिशा में पार्षदों को, हवन कर्मांग से बलि वह दे। फिर प्रतिमा के सम्मुख बैठी, श्री परब्रह्म का स्मरण करे।।

भगवत्स्वरूप मूलमन्त्र, का जपन वह फिर करे। ॐ नमो नारायणाय, यही मन्त्र वह उचारा करे।।
तत्पश्चात् श्री हरि को, आचमन वह करवाये। उनका प्रसाद विष्वक्सेन, आदि के सामने फिर धरे।।
अपने इष्ट की सेवा में, मुखवास अर्पित वह करे। ताम्बूलादि देकर उन्हें, फिर पुष्पांजलि चरण धरे।।

मेरी लीला कथा का गायन और, वर्णन अभिनय उनका करे। प्रेम में उन्मत्त होकर के, मेरा भक्त नृत्य भी करने लगे।।
स्वयं सुने मेरी लीला कथा, अन्य को भी सुनाये वह। संसार को भूली उस समय, मुझमें तन्मय हो जाये वह।।

प्राचीन ऋषि मुनियों के रचित, या भक्तों द्वारा कहे गए। स्तव स्तोत्रों से स्तुति करी, प्रार्थना वह मुझसे करे।।
प्रसन्न हों मुझपर प्रभु, निज कृपा से जीवन मेरा भरे। ऐसा कहकर वह दण्डवत, प्रणाम प्रभु के चरण करे।।

निज सीस धरे मम चरणों पर, हाथों से चरण मेरे पकड़े। फिर मनोव्यथा है उसकी जो, मेरे चरण में उसे धरे।।
हूँ डूब रहा भवसागर में, मृत्यु का मगर है मेरे पीछे। भयभीत हूँ मैं प्रभु शरणापन्न, आप ही मेरी रक्षा करें।।

इस भाँति मेरी स्तुति करी, मेरी माला निज सीस धरे। मेरा प्रसाद ही मान उसे, आदर से सीस झुका वह दे।।
विसर्जन गर करना चाहे, तो ऐसी भावना हृदय में हो। प्रतिमा से दिव्य ज्योति निकली, मम हृदय में वह विलीन हो।।

जिस भी प्रतिमा में उद्धव, मेरी श्रद्धा जागृत हो जाये। उसी में मेरी पूजा वह, श्रद्धा पूर्ण हृदय से करे।।
मैं सर्वात्मा तो जानो, सबके ही हृदय में रहूँ। अपने हृदय में भी जानो, मैं ही तो उद्धव स्थित हूँ।।
इस भाँति जो वैदिक तान्त्रिक, क्रिया से मेरी पूजा करें। इह लोक और परलोक में, वांछित सिद्धि मुझसे पायें।।

समर्थवान गर भक्त हो, सुन्दर मन्दिर निर्माण करे। मेरा विग्रह उस मन्दिर में, वह विराजमान् करे।।
पुष्प उद्यान लगाये वह, नित्य मेरा पूजन करे। पर्व यात्रा महोत्सवों की, व्यवस्था वह करता रहे।।

पर्व उत्सव और प्रतिदिन, मेरी पूजा के लिये। खेत नगर बजार गांव, जो मेरे नाम अर्पित्त करें।।
मुझ समान ऐश्वर्यवान्, ऐसे जन हो जाते हैं। मम विग्रह प्रतिष्ठित कर, इक छत्र राज्य वह पाते हैं।।
मन्दिर के निर्माण से, त्रिलोक का राज्य वह पाते हैं। पूजा की व्यवस्था करके वह, ब्रह्म लोक को जाते हैं।।
और इन तीनों का ही, जीवन में जो अनुष्ठान करें। ऐसे भक्त जानो उद्धव, मुझ समान ही हो जायें।।

निष्काम भाव से भक्त जो, मेरा पूजन करता है। मम भक्ति योग को प्राप्त करी, पुन: मुझे प्राप्त करता है।।
स्वयं या किसी अन्य ने हो, ब्राह्मण देव को जीविका दी। उस आजीविका की जिस भी, जीव ने कभी भी हरण करी।।
महा पतन उसका होए, उभर नहीं वह पाता है। कोटिश: वर्ष पर्यन्त ही, विष्टा का कीट बन जाता है।।

ऐसे कर्मों में जो भी जन, सहायता दूजे की करें। प्रेरणा दें या फिर ऐसे, कर्मों का अनुमोदन करें।।
उसके समान ही उस फल के, भागीदार वह बन जायें। यदि अधिक हाथ उसमें रहे, तो फल भी अधिक ही वे पायें।।

१७) परमार्थ-निरूपण

भगवान बोले,

प्रकृति पुरुष दोनों के ही, व्यवहार में भेद का दर्शन हो। द्रष्टा और दृय के भेद से, द्वौ भाँति जगत् के दर्शन हों।।
फिर भी परमार्थ दृष्टि से, अधिष्ठान रूप है एक ही। न तो कर्मों की निन्दा करे, न ही करे उनकी स्तुति।।

दूजों के स्वभाव की जो, हैं निन्दा या स्तुति करते। परमार्थ पथ से शीघ्र ही, ऐसे जन च्युत हैं हो जाते।।
साधन तो द्वैत बुद्धि का, निषेध ही है सदा करता। प्रशंसा निन्दा उस भ्रम को, और भी अधिक है देती बढ़ा।।

राजस अहं का कार्य है, उद्धव जानो सब इन्द्रियाँ। बाह्य तन की न सुधि रहे, जब निद्रित हों यह इन्द्रियाँ।।
जो मन शेष तब रह जाये, स्वप्न में वह भटका करे। उसके भी लीन हो जाने पर, मृतवत् जीव सुशुप्त भए।।
अद्वितीय आत्म स्वरूप भूल, नानात्व का जब दर्शन करे। स्वप्न समान ही वह मिथ्या, दृश्यों में जा बद्ध भए।।
अथवा मृत्यु समान ही, अज्ञान में लीन वह हो जाये। अपने सत्य स्वरूप से, वह दूर ही हो जाये।।

जब दैत्य कहीं पे है ही नहीं, तो भला बुरा वहाँ क्या होगा? वाणी से कथन हो वस्तु का, या मन से चिन्तन हो उसका।।
ज्ञान से जब लौ इनकी, असत्यता का न भान हो। भयभीत यह करती रहें, नितान्त निवृत्ति न जब लौ हो।।

प्रत्यक्ष या परोक्ष है, जो कुछ भी वस्तु उद्धव। सर्वव्याप्त शक्तिमान्, आत्म ही तो है वह सब।।
विश्व सृष्टि की जहां, जो प्रतीति है हो रही। है उपादान कारण भी वह, और निमित्त कारण भी वही।।
वह ही विश्व भी स्वयं बने, स्वयं ही वह बनाये उसे। संहारित भी आप ही है, स्वयं ही वह संहार करे।।

व्यवहार दृष्टि से देखें गर, है आत्म भिन्न ही विश्व से। किन्तु आत्म दृष्टि से तो, नहीं भिन्न कुछ आत्म से।।
जो भी प्रतीत हो उसके सिवा, निर्वचन न उसका हो सके। आत्म स्वरूप भी हे उद्धव, अनिर्वचनीय जान ले।।
तीनों गुणों के कारण ही, प्रतीति है यह हो रही। द्रष्टा दर्शन और दृश्य की, त्रिविधता है माया में ही।।

ज्ञान विज्ञान के अत्युत्तम, रहस्य जो हैं तुम्हें कहे। मेरे इस कथन का, गुह्य अर्थ जो जान ले।।
न तो प्रशंसा ही करे, न निन्दा करे किसी की भी। सूर्य समान ही जग में वह, रखे सदैव समभाव ही।।

प्रत्यक्ष अनुमान शास्त्र और, आत्मानुभूति प्रमाण से। उत्पत्ति और विनाशशील, यह जग अनित्य असत्य भासे।।
इस सत्य को जानकर, जग में सदा असंग रहे। इस जग में विचरण उसका, संग रहित ही हुआ करे।।

है आत्म ही द्रष्टा प्रभु, और देह दृश्य है आप कहें। स्वयं प्रकाश है आत्मा, और देह को जड़ जानें।।
फिर जन्म मृत्यु रूपा जग, न तन को हो न आत्म को। जन्म मृत्यु की यह भाँति, भगवन् कहें फिर किसकी हो

आत्म अविनाशी गुण रहित, शुद्ध स्वयं प्रकाश है। किसी भी आवरण का, नहीं इसपे हो प्रभाव है।।
दूजी ओर है देह यह, विनाशवान और गुणबधित। प्रकाश हीन यह है अशुद्ध, और कहें है यह आवृत्त।।
अग्निवत् आत्म प्रकाशवान्, तन को काष्ठवत् जड़ कहें। फिर जन्म मृत्यु रूपा जग का, अस्तित्व कहें प्रभु कहाँ रहे?

भगवान बोले,
प्रिय उद्धव वस्तुत: तो, संसार का है अस्तित्व नहीं। देह इन्द्रियों और प्राणों संग, आत्म सम्बन्ध की जो भ्रांति।।
जब लौ यह भ्राँति बनी रहे, अविवेकी सत्य ही जाने इसे। तब लौ ही उसकी स्फुर्णा को, सत्य ही वह माना करे।।

ज्यों स्वप्न में जानो उद्धव, अनेकों विपदा आन पड़ें। वास्तव में वे हैं नहीं, पर जब लौ स्वप्न यह न टूटे।।
अस्तित्व उनका बना रहे, स्वप्न में सत्य ही मानें उन्हें। त्यों ही संसार यह है नहीं, किन्तु जो विषय चिन्तन में पड़े।।

उनके लिये अस्तित्व तो, इस जग का ही बना रहे। जन्म मृत्यु रूपा जग की, निवृत्ति न उनके लिये भए।।

स्वप्न द्रष्टा स्वप्न में, महा विपदा है झेलता। विपदा दूर वह नाही हो, जब लौ स्वप्न है चल रहा।।
किन्तु जब वह जाग उठे, निद्रा उसकी भंग हो। न तो स्वप्न की विपदा रहे, न मोह आदि विकार ही हों।।

शोक हर्ष भय क्रोध लोभ, जन्म मृत्यु और मोह स्पृहा। अहंकार पे घटित हों सब, नहीं सम्बन्ध कहीं आत्म का।।

देह इन्द्रिय मन और प्राण स्थित, आत्म उनके तदरूप हो। अपना स्वरूप उन्हें माने जब, जीव ही उसका नाम हो।।
गुण कर्म रचित लिंग तन, है आत्म का सूक्ष्मतम रूप। कहीं कहें महत्तत्त्व उसे, और कहीं सूत्रात्म स्वरूप।।
काल रूप परमेश्वर के, अधीन फिर वह हो जाये। जन्म मृत्यु रूपा जग में, वह इधर उधर भटका करे।।

मन वाणी प्राण और यह तन, हैं अहंकार के कार्य ही। देव मनुज आदि सब रूप, भासें इसमें निर्मूल ही।।
विवेकवान् उपासना से, ज्ञान खड्ग तीक्ष्ण करे। देहाभिमान की मूल को, उस असि से काट दे।।
आशा तृष्णा त्याग के वह, नितान्त मुक्त ही हो जाये। निर्द्वन्द्व होकर के वह, पृथ्वी पर फिर विचरा करे।।

विवेक जागृत होते ही, द्वैत कहीं पर नहीं रहे। आत्म अनात्म चिन्तन को, ही वास्तविक ज्ञान तू जान ले।।
वही अद्वितीय परमात्म, इसके मध्य में भी रहे। नहीं उसके सिवा कहीं कुछ भी, उद्धव तू यह जान ले।।

कंगन कुण्डल आदि बहुत, आभूषण बनें स्वर्ण के। किन्तु आभूषण जब न हों, स्वर्ण तो ज्यों का त्यों रहे।।
पहले भी सोना ही था, अन्त में भी सोना होगा। बीच में आभूषण कहा, तब भी तो सोना ही रहा।।
त्यों ही जगत् के आदि अन्त, और मध्य में मैं ही रहूँ। उद्धव तुम जानो वास्तव में, सत्य तत्त्व इक मैं ही हूँ।।

हैं तीन अवस्था इस मन की, जाग्रत स्वप्न सुषुप्ति कहो। तीनों गुण ही जानो उद्धव, इन तीनों के कारण हों।।
फिरा जग के भी हैं तीन भेद, अध्यात्म अधिभूत अधिदैव कहें। जिसकी सत्ता में तीनों, अवस्था सत्य सी भासा करें।।

समाधि में जाकर के जब, यह त्रिविधता नहीं रहे। फिर भी जिस तुरीय तत्व, की सत्यता बनी रहे।।
इन तीनों से ही परे, है इनमें अनुगत तत्त्व जो। सत्य ही जानो तुम उद्धव, उस परं ब्रह्म परमात्म को।।

आदि से पूर्व जो था नहीं, न ही प्रलय के बाद रहे। वास्तव में वह नहीं मध्य में, है केवल कल्पना मात्र ही वह।।
निश्चित सत्य यह जान लो, जो भी पदार्थ जिससे बने। जिससे प्रकाशित वह होए, वास्तविक स्वरूप उसको जाने।।

विकारमयी राजन सृष्टि, कुछ है तो नहीं पर दीखे है। वास्तव में तू जान ले, यह स्वयं प्रकाश ब्रह्म ही है।।
इन्द्रिय विषय मन पंचभूत, हैं जितने भी जहाँ नाम रूप। इन चित्र विचित्र रूपों में, केवल ब्रह्म ही हो प्रतीत।।

श्रवण मनन और निदिध्यासन, स्वानुभूति ही है साधन। आत्म ज्ञानी गुरुदेव ही, इनमें हैं सहायी परम।।
विचार द्वारा स्पष्ट ही, अनात्म का निषेध हो। सब संयश को छिन्न करी, निज आत्म में ही मग्न हो।।
आनन्द स्वरूप में लीन हो, वासना सारी शान्त हो। इसी विधि साधक कहें, आनन्द स्वरूप को प्राप्त हो।।

अब निषेध प्रक्रिया जान, हो इस विधि तू विचारवान्। है पृथ्वी का विकार यह तन, न ही इसको तू आत्म मान।।

इन्द्रियां और उन सबके ही, अधिष्टातृ हैं जो देवता। प्राण वायु जल अग्नि मन, को भी आत्म नहीं कहा।।
गुणों की साम्य अवस्था भी, प्रकृति ही है तू जान ले। दृश्यमात्र सब ही है जड़, नहीं आत्म यह हो सके।।

जिसने मेरे स्वरूप को, हे उद्धव है जान लिया। वृत्ति इन्द्रिय समाहित हों, उसको है उनसे लेना क्या?
यदि विक्षिप्त भी वह रहें, हानि उनसे न होए। है गुणमय बाह्य अन्त:करण, नहीं आत्म से सम्बन्धित यह।।
आकाश में बादल छा जायें, या सब छिन्न भिन्न वह हों। सूर्य तो इन अवस्था से, तनिक प्रभावित नाहीं हो।।

वायु नहीं सुखा सके, अग्नि नहीं जलाये उसे। जल गीला न कर सके, धूलि न मैला करे उसे।।
ऋतु के गुण गर्मी सर्दी, आकाश प्रभावित नहीं करें। यह सब तो हैं क्षणिक ही, आने जाने सब भाव ही रे।।
आकाश तो इन सबका ही, एक रस अधिष्ठान है। त्यों ही आत्म भी तीन गुण से, अप्रभावित जान है।।

वृत्तियाँ और कर्म भी, स्पर्श न आत्म का करे। वे तो इन सबसे जानो, हैं सर्वथा ही परे।।
जो अहं बुद्धि रखे इनमें, वह ही इनसे बन्ध जाये। जन्म मृत्यु रूपा जग में, सदा भटकता ही रहे।।

इन माया निर्मित गुणों का, और उनके सब कार्यों का। सर्वथा त्याग करे तब तक, जब लौ नहीं मुझमें मन टिका।।
भक्ति योग द्वारा जब लौ, मन का मल न निकल जाये। तब लौ इनके संयोग से, पुन: पुन: वह उभरा आये।।

पूर्ण चिकित्सा के बिना, नहीं रोग समूल मिट सके। बार बार ही उभर कर, जीव को वह पीड़ित करे।।
त्यों ही जिस मन की वासना, संस्कार नहीं पूर्ण मिटे। स्त्री पुत्र धन आदि में, गर आसक्ति शेष रहे।।
कुयोगी को बार बार, वह बेधित करते रहें। अनेकों बार योग के, पथ से उसे वह भ्रष्ट करें।।

शिष्य पुत्र आदि द्वारा, जो विघ्न उपस्थित देव करें। उन विघ्नों के वशीभूत हो, गर मार्ग से च्युत भी हो जाये।।
तो भी पूर्वाभ्यास से, योगी पुन: पथ पे जा आये। कर्मादि में प्रवृत्ति नहीं, उसकी राह रोक पाये।।

जन्म से मृत्यु तक, जीव कर्म संलग्न रहे। इष्ट अनिष्ट उनमें देखी, हर्ष विषाद को प्राप्त करे।।
किन्तु जिसने तत्व का, साक्षात्कार है कर लिया। प्रकृति में स्थित रहता हुआ, कर्म तो है वह सब करता।।
हर्ष विषाद आदि विकार, आवृत्त उसे न कर सकें। आत्म साक्षात्कार से, सब आशा तृष्णा नष्ट भए।।

स्वरूप में है जो स्थित हुआ, तन को तो मानो भूल गया। है तन वा खड़ा या बैठा है, है गतिवान् या सो रहा।।
मल मूत्र है त्याग रहा, अथवा भोजन है कर रहा। स्वभाविक कर्म है कर रहा, उसको तो यह भी नहीं पता।।

यदि ज्ञानी की दृष्टि में, बाह्य विषय आ भी जायें। आत्मा से ही भिन्न उन्हें, मान कभी वह न पाये।।
स्वप्न में दृष्ट पदार्थ ज्यों, जागृति पे सत्य नहीं रहते। अपने से भिन्न त्यों ही ज्ञानी, कोई अन्य पदार्थ न देखे।।

विविध गुणों और कर्मों से, युक्त हैं देह इन्द्रियां आदि। आत्म था उन्हें मान रहा, अज्ञान अविवेक के कारण ही।।
आत्म ज्ञान हो जाने पर, अज्ञान की जब निवृत्ति हुई। स्वत: ही भेद दर्शी यह, बुधि भी उसकी शान्त हुई।।
वृत्तियों के द्वारा उद्धव, न ग्रहण आत्मा हो सके। न ही त्याग भी सम्भव है, अज्ञान निवृत्ति अभीष्ट भए।।

ज्यों सूर्य उदय हो जाने पर, नयनों का तिमिर सब दूर हो। वास्तव में किसी नयी वस्तु, का निर्माण वहाँ न हो।।

त्यों ही मेरे स्वरूप का, अपरोक्ष ज्ञान जब हो जाये। बुद्धिगत अज्ञान का, आवरण स्वत: ही उठ जाये।।

है स्वयं प्रकाश आत्मा, और नित्य अपरोक्ष है। अज्ञानादि विकारों का, नहीं हो सके आरोप है।।
है जन्म रहित अप्रमेय वह, वृत्ति आरुढ़ वह हो नहीं। ज्ञान आदि के द्वारा भी, संस्कार हो उसका कोई नहीं।।
तब भेदभाव से रहित हो, अद्वितीय एक आत्म रहे। वाणी और प्राण सबका, प्रवर्तक आत्म जान ले।।

अद्वितीय आत्म तत्व में, नाम रूप आरोपण कर। विविधता उसमें मानना, है जानो केवल भ्रम मात्र।।
वास्तव में यह ही मोह है, सत्य देखने जो न दे। इस भ्रम का भी जान लो, अधिष्ठान आत्म ही भए।।
वास्तव में आत्म के बिन, अन्य कहीं कुछ है ही नहीं। अधिष्ठान की सत्ता में, ही अध्यस्त की सत्ता बनी।।

अनेकों अभिमानी पण्डित, इस ही भ्रम में पड़े रहें। विभिन्न नाम और रूप से, इन्द्रियां यह जग ग्रह करे।।
इस कारण यह है सत्य, किन्तु है वाग्विलास ही यह। क्योंकि वास्तव में इन्द्रियों की, सत्ता कहीं पर नहीं रहे।।
यदि योग साधना पूर्ति से, पूर्व ही तन को रोग ग्रसे। तो साधक को चाहिए, इन साधनों का वह आश्रय ले।।

चन्द्र सूर्य की धारणा से, शीतोष्ण को वह नष्ट करे। आसन द्वारा वात आदि, रोगों को वह दूर करे।।
तपस्या मन्त्र औषधि का, भी आश्रय साधक ले ले। ग्रह आदि कृत विघ्नों को, इस विधि वह दूर करे।।

काम क्रोध आदि विघ्न, गर राह में उसकी आन पड़ें। मम चिन्तन नाम संकीर्तन, के द्वारा उन्हें दूर करे।।
दम्भ मद आदि विघ्न, पतन की ओर ले जायें गर। शनै: शनै: उन्हें दूर करे, महापुरुषों की सेवा कर।।

अनेकों योगी उपाय कई, करें एक उद्देश्य से। यह तन युवावस्था में, सुदृढ़ सदा ही बना रहे।।
अणिमा आदि सिद्धि हेतु, योग साधना वह करें। किन्तु विवेकवान् तो, व्यर्थ ही इन सबको जाने।।
वृक्ष पे लगा हुआ फल ज्यों, निश्चित विनाश को ही पाये। त्यों ही इस तन को मृत्यु से, कोई बचा ही न पाये।।

श्रद्धासहित दीर्घकालीन, निरन्तर योगाभ्यास से। यदि यह तन सुदृढ़ भी हो, वहाँ बुद्धिमान न भरमाये।।
अपनी साधना छोड़ कर, सन्तुष्ट नहीं वह उसमें हो। मेरी प्राप्ति के लिये, साधन मं सदा संलग्न वह हो।।

मेरा आश्रय लेकर जो, मम कथन का ही अनुसरण करे। कोई विघ्न न विचलित कर सके, योग में ही सलग्न रहे।।
उसकी सारी कामना, नष्ट स्वत: ही हो जाये। आत्म आनन्द की अनुभूति, में मग्न वह हो जाये।।

६) उद्धव का बदरिकाश्रम जाना

उद्धव बोले,
जिसका मन वशवर्ती नहीं, अति कठिन उसे योग साधन। जिनका वर्णन किया आपने, कैसे जीवन में करे सम्पन्न?
हे प्रभु अब आप ही, सुगम सरल साधन कहें। जिससे जीव अनायास ही, परम पद को पा सकें।।

हे कमलाक्ष यह जानें आप, योगीजन सब साधन करें। मन को एकाग्र करना चाहें, पर यत्न में अपने विफल रहें।।
बार बार चेष्टा करके, जब चित्त टिका नहीं पाते हैं। मन वशीभूत न कर सकें, इस कारण व्यथित हो जाते हैं।।

हैं विश्वेश्वर पद्म लोचन, आप ही जग का करें नियमन्। विवेकवान तो आपकी ही, चरण शरण को करें ग्रहण।।

अनायास ही वे जन तो, सिद्धि प्राप्त कर लेते हैं। नहीं माया कुछ भी बिगाड़ सके, अभिमान रहित वे होते हैं।।
किन्तु दूजी ओर जो, प्रभु चरण कमल न थाम सकें। वह योगी और कर्मी तो, अपने पर ही घमण्ड करें।।
निश्चित ही आपकी मया ने, उन जन की है मति हरी। इस कारण पड़ दम्भ में, वह निज को श्रेष्ठ है मान रही।।

हैं सबके सुहृद् हितैषी आप, अनन्य सेवकों के अधीन। नहीं तनिक आश्चर्य प्रभु, बलि आदि के भी हुए अधीन।।
आपके चरण कमल में तो, ब्रह्मादि भी निज सीस धरें। रामावतार में आप प्रभु, वानरों के भी मित्र बने।।

सबके हैं प्रियतम स्वामी आप, हैं सबके आत्म आप ही। निज शरणागत को प्रभु, दे दें आप सब दान ही।।
जो दिया प्रभु आपने, अपने अनन्य भक्तों को। उसे देख कर कौन भक्त, भला छोड़ सके आपके चरणों को?
बुद्धि समझ यह न पाये, विवेकी फंसे क्यों भोगों में? विषयों में ही फंसाकर यह, विस्मृति गर्त में डाल दें।।
आपके ही श्री चरणों की, रज के हैं उपासक हम हरि। है को वस्तु जग में ऐसी, जो हमारे लिये दुर्लभ होगी?

अन्तर्यामी बन के प्रभु, सब जीवों के आन्तर में बसें। गुरु बनी बाहर बैठे, सब पाप ताप उनका दूर करें।।
अपना वास्तविक स्वरूप प्रभु, हैं उनके लिये प्रकट करते। ब्रह्म ज्ञानी ब्रह्मा समान, दीर्घायु भी गर पा लें।।
आपकी कृपा का हे प्रभु, प्रत्युपकार न कर सकें। उसकी स्मृति में पल पल वह, नित्य आनन्द निमग्न रहें।।

शुकदेव बोले,
ब्रह्मा आदि ईश्वरों के भी, परमेश्वर हैं भगवान कृष्ण। वे ही तीन गुण से करें ब्रह्मा, विष्णु रुद्र रूप धारण।।
जग की उत्पत्ति और स्थिति, प्रलय का खेल वह खेला करें। प्रेमी उद्धव के प्रश्न पर, सस्मित प्रभु कहने लगे।।

भगवान बोले,
प्रिय उद्धव अब मैं तुम्हें, भागवत धर्मों की बताता हूँ। महा फलदाई मंगलकारी, उनकी मैं बात सुझाता हूँ।।
श्रद्धा हृदय में धर कर, जो इनका अनुसरण करे। भव भय रूप दुर्जेय मृत्यु, को सहज वह जीत ले।।

मेरे भक्त को चाहिये, सब कर्म वह मेरे लिये करे। कर्मों में शनै: शनै:, मेरी ही वह स्मृति भरे।।
अल्प समय में मन और चित्त, समर्पित्त मुझे हो जायेंगे। उसके मन और आत्मा, मम धर्मों में रम जायेंगे।।

मेरे भक्त और साधु जन, जिस पावन स्थान पे वास करें। मेरे भक्त को चाहिए, वहीं जाकर उनके संग रहे।।
देव असुर या मनुजों में, जो भी मेरे भक्त मिलें। उनके ही आचरणों का, अनुसरण सदा वह करते रहें।।

जब जब पर्व कोई आये, उत्साह से उसे मनायें वह। सबके साथ ही मिल कर, या एकाकी ही मनायें वह।।
नृत्य गान वादन सहित, मम यात्रा का उत्सव करें। राजसी ठाठ बाठ से, आयोजन उसका वह करें।।

मेरी उपासना से जिसका, अन्त:करण है शुद्ध हुआ। आकाश सम बाहर भीतर, है मुझको ही वह देखता।।
निरावरण परमात्म को, सबके हृदय में स्थित देखे। अपने और अन्य के हृदय में भी, मुझको ही बैठा देखे।।

इस ज्ञान दृष्टि का आश्रय ले,ख जो सबमें मेरे दरस करे। सब वस्तु और जीवों में, जो मुझे देख सत्कार करे।।
ब्राह्मण या चाण्डाल हो, हो चोर या ब्राह्मण भक्त हो। सूर्य हो या चिंगारी हो, अति क्रूर या कृपालु हो।।

इन सबके प्रति हो समदृष्टि, इक समान सबको जाने। वह ही है सच्चा ज्ञानी, उद्धव यूं उसको पहचाने।।

सभी जीव भूतों में वह, मेरी भावना हिय धरे। मम भक्त निज दोषों पे, सहज में ही विजय पा ले।।
स्पर्धा ईर्ष्या अहंकार, तिरस्कार सब दूर हों। मेरा ही सबमे दर्शन हो, इनका फिर कहाँ पे स्थान हो?

अपने ही जन गर हंसी करें, उसको न दिल से लगाये वह। मैं हूँ भला वह है बुरा, ऐसी दृष्टि ही त्यागे वह।।
लोक लाज को छोड़ के, सबमें मेरा दर्शन करे। कुत्ता चाण्डाल गधा या गौ, सबको दण्डवत् प्रणाम करे।।
समस्त जीवों में जब लौ, मेरी भावना न उपजे। मन वाणी तन संकल्प से, कर्मों राह मुझे उपासा करे।।

हे उद्धव जब इस विधि, अभ्यास वह साधक है करता। अल्प काल में ही सबमें, वह ब्रह्म का दर्शन है करता।।
ऐसी दृष्टि हो जाने पर, संशय संदेह सब दूर हों। सर्वत्र ही मेरा दर्शन पा, स्वत: वह जग से उपरत हो।।

मेरी प्राप्ति के लिये हैं, जितने भी साधन कहे। मैं जानूं उन सबमें ही, सर्वश्रेष्ठ साधन है यह।।
सब जीवों और पदार्थों में, मेरा ही दर्शन करे। मन वाणी और शरीर की, सब वृत्तियां ही उपासें मुझे।।

मेरा भागवत धर्म है यह, हे उद्धव तुम जान लो। इक बार करे अनुसरण जो, राह में बाधा कोई न हो।।
यह धर्म निष्काम है, और जानो यह निर्गुण है। इस कारण इस धर्म को, मैंने कहा सर्वोत्तम है।।

इस धर्म में निष्फलता, की बात तो दूर रहे। यदि भय शोक आदि कर्म, या रोने अथवा भागने के।।
ऐसे निरर्थक कर्म भी गर, निष्काम भाव से मुझको दे। तो वे भी मम प्रसाद से, धर्म का हेतु बन जायें।।

विवेकी का विवेक और, चतुर का है चातुर्य यही। इस विनाशी तन से वह, प्राप्ति करे अविनाशी की।।
यह रहस्य ब्रह्म विद्या का, है उद्धव तुमको कह दिया। विस्तार से भी इसे समझाया, संक्षेप में भी है इसे कहा।।
देवों के लिये भ कठिन है, इस रहस्य को समझना। फिर मर्त्य लोक के, जीवों की तो है बात ही क्या।।

जिस युक्ति युक्त ज्ञान का, है स्पष्ट कर वर्णन किया। उसके मर्म को जीव जो, भली भाँति है समझ लेता।।
उसके हदय की ग्रन्थी सब, छिन्न भिन्न हो जाती है। मुक्त स्वत: वह हो जाये, कोई बन्धन रह नहीं पाती है।।

तेरे प्रश्न का हे उद्धव है भली भाँति उत्तर दिया। हमारे इस वार्तालाप को, अंगीकार जो कर लेगा।।
वेदों के परम रहस्य को, जीव जान वह जायेगा। परम सनातन ब्रह्म को, सहज प्राप्त हो जायेगा।।

मेरे भक्तों में इसे स्पष्ट करी, जो भली भाँति समझायेगा। अति प्रसन्न मुझे करके, स्वरूप मेरा वह पायेगा।।
उसे आत्म ज्ञान करा दूँगा, अपना ही रूप बना दूँगा। ऐसे ज्ञान के दाता पे, मैं अपना आप लुटा दूँगा।।

तेरा मेरा संवाद यह, अति पावन है उद्धव जानो। अपने को भी पावन करे, हे उद्धव यह पहचानो।।
प्रतिदिन जो इसका पाठ करे, और दूजों को भी सुनायेगा। इस ज्ञान दीप के द्वारा जो, मेरा दर्शन सबको करायेगा।।
एकाग्रचित्ति श्रद्धा सहित, जो श्रवण भी करता जायेगा। परा भक्ति को प्राप्त करी, सब बन्धन से छुट जायेगा।।

प्रिय सखा क्या समझ लिया, भली भाँति ब्रह्म का स्वरूप? चित्त का शोक और मोह तो, हुआ न पूर्णतय: ही दूर?

दम्भी नास्तिक अश्रद्धालु, शठ और भक्ति हीन जो हो। यह ज्ञान कभी भी मत देना, उद्धव उद्दंड उस पुरुष को ।।

यह सब दोष न हों जिसमें, जो ब्राह्मण भक्त और प्रेमी हो। साधु स्वभाव पावन चरित, के लिये नित्य श्रोतव्य हो ।।
शूद्र और स्त्री का भी, गर मुझमें हो भक्ति भाव। तो वे भी इसका उद्धव, उपदेश निश्चित करें प्राप्त ।।

ज्यों दिव्य अमृत को पाकर, कुछ पाना शेष नहीं रहता। त्यों यह ज्ञान पाया जिसने, कुछ जानना शेष नहीं रहता ।।
मोक्ष धर्म काम और, अर्थ रूप फल जीव को। ज्ञान कर्म वाणिज्य और, दण्ड से क्रमश: प्राप्त हों ।।
किन्तु तुम सम अनन्य उत्तम, भक्त का फल इक मैं ही हूँ। चहुं प्रकार के फल जो कहे, तेरे लिये सब मैं ही हूँ ।।

सब कर्मों को त्याग कर, जब आत्म समर्पण करे जीव। विशेष प्रिय मेरा हो जाये, मेरा माननीय हो ऐसा जीव ।।
जीवत्व भाव से छुड़ाके उसे, अमृत स्वरूप मैं दे ही दूँ। मोक्ष सहज वह प्राप्त करे, उसको तो निज स्वरूप मैं दूँ ।।

शुकदेव बोले,
उद्धव को अब योग मार्ग, की पूर्ण शिक्षा मिली। श्री कृष्ण की वाणी सुन, नयनों में थी अश्रु भरी ।।
प्रेमावेग से कण्ठ भी, था उनका अवरुद्ध हुआ। कर बद्ध हुए थे मौन खड़े, वाणी से कुछ नहीं कहा ।।

चित्त प्रेम से विह्वल था, धैर्य से उसे सम्भाला उन। गद्‌गद् चित्त से अपने ही, फिर भाग्य को सलहा उन ।।
यदुवंश शिरोमणि कृष्ण के, चरणों में सीस निज धर दिया। चरण स्पर्श किया कर जोड़ी, फिर उनको यह वचन कहा ।।

उद्धव बोले,
ब्रह्मा और माया आदि के, हैं मूल कारण आप प्रभु। मोहान्ध हुआ था भटक रहा, सत्संगति से हुआ दूर प्रभु ।।
अग्नि के निकट जो पहुँच गया, शीत और तम कहाँ रहें? उनके कारण भय जो हों, उनका स्थान फिर कहाँ रहे?

आपकी मोहिनी माया ने, था ज्ञान दीप मेरा छीना। कृपा करी प्रभु आपने, निज सेवक को लौटा दीना ।।
मेरे ऊपर प्रभु आपने, महा अनुग्रह की वर्षा करी। आपकी इस दिव्य कृपा, प्रसाद का अनुभव कर के भी ।।
कौन कहीं होगा ऐसा, परित्याग जो चरण कमल का करे? आपकी शरण को छोड़ करी, अन्य किसी का आश्रक्ष ले?

अपनी माया से आपने, सृष्टि वर्धन का हेतु किया। दशार्ह वृष्णि अन्धक और सावतवंशी यदुकुल को चुना ।।
सुदृढ़ स्नेह पाश में था, उनके संग मुझे बान्ध दिया। आत्मबोध की इस तीक्ष्ण, तलवार से आज उसे काटा ।।

हे महायोगेश्वर आपके, चरणों में है मम नमस्कार। कृपा करें शरणागत पे, दें भक्ति का दान अपार ।।
हे प्रभु मुझ दीन पर, अब अनुग्रह ऐसा आप करें। आपके चरण कमल में ही, अनन्य भक्ति मेरी बनी रहे ।।

भगवान बोले,
प्रिय उद्धव मेरी आज्ञा से, अब बद्रीवन को तुम जाओ। मेरा ही आश्रम है वहां, मेरे पादतीर्थ गंगा पाओ ।।
उसका पान स्नान सेवन, नित्य ही तुम करते रहो। इस विधि से शीघ्र ही, परम पावन तुम हो जाओ ।।

अलकनन्दा के दर्शन से, बस पाप ताप तेरे नष्ट भयें। वहां वन के कन्दमूल खाना, वल्कल ही तेरा वस्त्र बनें ।।
किसी भोग की हो नहीं कामना, नि:स्पृह: बनी तुम वहाँ रहो। नहीं अपेक्षा किसी से हो, बस अपने आप में मस्त रहो ।।

शीतोष्ण या सुख दु:ख, जो भी सजन में आन मिलें। समत्व भाव में उन सबमें, चित्त यह तेरा टिका रहे।।
सौम्य स्वभावी होकर के, इन्द्रियों को वश में करना। हो शान्त चित्त समाहित धी, मेरे अनुभव में निमग्न रहना।।

जो शिक्षा दी है तुम्हें उद्धव, एकान्त में अनुभव तुम करना। वाणी और चित्त लगा मुझमें, भागवत धर्म में रम जाना।।
तीनों गुण उनकी गतियां, फिर पार करोगे सहज ही तुम। मेरे परमार्थ स्वरूप में, अनन्त: जाय मिलोगे तुम।।
शुकदेव बोले,
जब श्री हरि ने स्वयं ही, उद्धव को यह उपदेश दिया। परिक्रमा करके प्रभु की, उसने चरण में सीस धरा।।
नहीं तनिक सन्देह इसमें, श्री उद्धव थे द्वन्द्वों से परे। क्योंकि श्री भगवान के, निर्द्वन्द्व चरण की शरण में था।।
फिर भी वहाँ से चलते समय, चित्त में प्रेमावेश उठा। नयनों से अश्रुधार बही, प्रभु चरण कमल को धो दिया।।

प्रभु से प्रेम करके राजन्, नहीं त्याग उनका हो सके। उनके वियोग की कल्पना से, अति कातर थे उद्धव हुए।।
थे विह्वल वह हो रहे, बार बार मूर्छा आती। कुछ समय बाद फिर कृष्ण की, पादुका उन्होने निज सीस धरी।।
बार बार प्रभु चरण में, उन्होने फिर प्रणाम किया। बोझिल हृदय से उद्धव ने, वहाँ से फिर प्रस्थान किया।।

हृदय में दिव्य छवि प्रभु की, उद्धव ने धारण करी। महाप्रेमी उस भक्त ने, तपमय अपनी जीवन कर ली।।
जग के एकमात्र बन्धु, श्री कृष्ण के उपदेशानुसार। उनकी अपनी स्वरूप भूत, परम गति को किया प्राप्त।।

प्रभु शंकर आदि योगेश्वर, रहें जिन प्रभु की सेवा में रत। निज मुख से अपने प्रेमी, उद्धव को दिया उन ज्ञानामृत।।
आनन्द महासागर का परम, सार है यह ज्ञान सुधा। श्रद्धा सहित जो करे सेवन, तत्काल ही बन्धन से छुटता।।
स्वयं तो मुक्त वह हो जाये, सब जग को भी वह मुक्त करे। उसके संग से सारा ही, जगत् मुक्त यह हो जाये।।

ज्यों भंवरा जानो राजन्, विभिन्न पुष्प का सार ले। पुष्पों का रस लेकर वह, मधु रूप ही उसे करे।।
त्यों ही श्री भगवान ने, ज्ञान विज्ञान का सार दिया। प्रिय भक्तों की मुक्ति हेतु, वेद सार यह प्रकट किया।।
जरा रोग के भय से, निवृत्त करने के लिये। क्षीर सिन्धु का मन्थन कर, थे अमृत निसृत किये।।
निवृत्ति प्रवृत्ति दोनों ही, मार्ग के अपने भक्तों को। प्रभु ने था अमृत दिया। निज भक्तों के कल्याण को।।
वह ही श्री पुरुषोत्तम हैं, सब जग के मूल कारण। उनके ही श्री चरणों में, है मेरा श्रद्धा पूर्ण नमन।।

७) यदुकुल संहार और भगवान का स्वधाम गमन

परीक्षित बोले,
महा भागवत उद्धव जी, जब बद्रीवन को चले गए। भगवान कृष्ण ने द्वारका में, कौन फिर कौतुक किये?
यदुवंश शिरोमणि कृष्ण का कुल, ब्राह्मणों ने शापित किया। श्री कृष्ण का विग्रह तो, सबकी आंखों का तारा था।।
उस अपने दिव्य रूप का, सबकी आंखों का तारा था। कृपा करी विवरण कहें, श्री हरि की इस लीला का।।

स्त्रियों के नयना जब, उनके विग्रह पर टिक जाते। पूर्ण समर्थ लगाकर भी, कोई हटा उन्हें न पाते।।
उनके रूप माधुर्य का, वर्णन सुनें जब सन्त हजन। कर्ण पुटों से प्रवेश कर, जा हृदय में अंकित हो वा तन।।
अनुराग रंग भरे काव्य में, उनकी अनुपम दिव्य शोभा। सम्मान बढ़ा दे कवियों का, उनकी तो हम करें बात ही क्या?

महाभारत के युद्ध में जब, श्री अर्जुन के रथ पे थे खड़े। उनका दर्शन करते करते, जिन योद्धाओं ने प्राण त्यजे।।
सारूप्य मुक्ति उन्हें मिल गईं, ऐसा अद्भुत विग्रह वह था। उस दिव्यतम निज रूप का, तिरोभाव उन्होने कैसे किया
शुकदेव बोले,
श्रीकृष्ण ने जब देखा राजन्, महा उत्पात हैं हो रहे। आकाश धरा और अन्तरिक्ष, अपशकुनों से हैं भरे।।
सुधर्मा सभा में बैठे हुए, सारे ही यदुवंशियों से। उस समय श्री कृष्ण ने, थे गम्भीर यह वचन कहे।।
भगवान बोले,
द्वारका में अति भयंकर, उत्पात हैं देखो हो रहे। यमराज की मानो ध्वजा बनी, अनिष्ट सूचना दे रहे।।
अब तो घड़ी भर भी रुकना, है उचित नहीं हमारे लिये। स्त्री बालक और वृद्ध सभी, शंखोद्धार क्षेत्र जायें।।
प्रभास क्षेत्र को हम सब, अब प्रस्थान करेंगे वहाँ। पश्चिम से बही सरस्वति, सागर से जाय मिलती है जहाँ।।

वहाँ स्नान कर पावन हो, उपवास करें एकाग्रचिति। स्नान और चन्दन से फिर, पूजा करेंगे देवों की।।
गौ भूमि स्वर्ण वस्त्र, हाथी घोड़े रथ घर देकर। ब्राह्मणों का सत्कार करें, स्वस्ति वाचन वहाँ पे कर।।
अमंगल नाशिनी है यह विधि, और परं मंगल जननी। देव द्विज गौ पूजन ही, है परम लाभ इस जन्म की।।
शुकदेव बोले,
वयोवृद्ध यदुवंशियों ने, श्री कृष्ण की जब यह बात सुनी। तथास्तु कहकर सबने, श्री कृष्ण की अनुमोदन की।।
तुरन्त ही नौकाओं से, सागर के उस पार हुए। तत्पश्चात् रथों पे चढ़, प्रभास क्षेत्र की ओर चले।।

वहाँ पहुँचकर यादवों ने, भगवान के आदेशानुसार। अतीव श्रद्धा भक्ति से, सम्पन्न किया शान्ति पाठ।।
और भी विविध भाँति के, मांगलिक कार्य उन्होने किये। किन्तु थी दैव ने मति हरी, मैरेय मदिरा वह पीने लगे।।
उसके मद से तो बुद्धि का, पूर्णतय: ही नाश हो। पीने को तो वह मीठी लगे, पर अन्तत: सर्वनाश ही हो।।

उस तीव्र मदिरा को पीकर, सब ही उन्मत्त हो गए। और घमण्डी वीर वह, इक दूजे से लड़ने लगे।।
सच जानो तो श्री कृष्ण की, माया ने था उनका चित्त हरा। क्रोध से आग बबूला हो, इक दूजे पे आक्रमण किया।।
धनुष बाण भाला असि, गदा तोमर और ऋष्टि। विविध अस्त्र शस्त्र लेकर, सागर तट पर ही युद्ध करी।।

रथ अश्व हाथी गधे, ऊंठ बैल और खच्चर। सब पर ही जा सवार हुए, वे भैसों और मनुष्यों पर।।
इक दूजे को बाणों से, घायल वह करने लगे। ज्यों जंगली हाथभ आपस में, दांतों से वार हों कर रहे।।
सबके वाहनों पर उनकी, ध्वजाएं थीं फहरा रहीं। पैदल सैनिकों की भी थी, आपस में महा होड़ लगी।।

प्रद्युम्न लड़े वहाँ साम्ब से, अक्रूर भोज से भिड़ गए। अनिरुद्ध सात्यकि से लड़े, संग्रामजित सुभद्र से।।
श्री कृष्ण के भाई गद भिड़े, कृष्ण पुत्र गद से ही। सुमित्र सुरथ से जाय भिड़े, थे अति भयंकर योधा सभी।।

अन्य भी सब क्रोधोन्मत्त हो, थे नाश करने पर तुले। निशल उल्मुक सहस्त्रजित, शतजित और भानु आदि भिड़े।।
भगवान कृष्ण की माया ने, था मोहित उनको किया। मदिरा के नशे ने तो, उन्हें अन्धा ही था कर दिया।।
दशार्ह अन्धक वृष्णी भोज, सात्वत मधु माथुर अर्बुद। शूरसेन विसर्जन कुकुर, कुन्ती वंशीय लोग सब।।
सौहार्द प्रेम सब भूल के, मार काट करने लगे। मूढ़ता वश अपने ही, बन्धुओं की हत्या करने लगे।।

पुत्र ने पिता भाई ने भाई, नानी ने नाना को मारा। मित्र का मित्र सुहृद् का सुहृद्, बना भान्जा मातुल हत्यारा।।
चाचा अपने ही भतीजे, का वध करने में लगा। एक गोत्र के लोगों ने, निज गोत्र के लोगों को मारा।।

अन्त: में उन लोगों के, जब सारे बाण ही नष्ट हुए। धनु: टूटे और अन्य भी, अस्त्र शस्त्र सब भ्रष्ट हुए।।
सागर तट पे थी लगी, एरका नाम की घास जो। फिर अपने हाथों से उन, सबका उन्मूलन कियो।।
ऋषियों से शापित लौह मूसल, के चूर्ण से थी यह उपजी। उस चूर्ण ने ही तट पर, थी इस घास की रूप धरी।।

उनके हाथों में आते ही, उस तृण ने रूप अपना बदला। वज्र समान ही अति कठोर, मुद्गरों का उसमें प्रभाव था।।
रोष से भर उसी घास से, प्रहार विपक्षियों पर किया। जब श्री कृष्ण बलराम ने, उन्हें ऐसा करने से रोका।।
आततायी वह मूढ़मति, शत्रु उन्हें ही मान गए। उनका हनन करने के लिये, वे उनकी ओर ही दौड़ पड़े।।

अब कृष्ण और बलराम भी उत्तेजित हुए क्रोध से। मुट्ठी भर एरका घास ले, वह भी प्रहार करने लगे।।
मुष्टि भर एरका घास का, मुद्गर समान ही वार था। रणभूमि में यादवों का, उसके द्वारा ही विनाश हुआ।।

ज्यों बांस की रगड़ से उत्पन्न, दावानल बांस को भस्म करे। त्यों ही ब्राह्मणों से शापित, माया मोहित सब यादव थे।।
स्पर्धामूलक क्रोध ने, विध्वंस उनका कर दिया। इस विधि यदुवंशियों का, प्रभास क्षेत्र में नाश हुआ।।

जब श्री कृष्ण ने यह देखा, सब यदुवंशी हैं मारे गए। सन्तोष की उन्होने सांस ली, पृथ्वी के भार सब उतर गए।।
सागर तट पे एकाग्रचित, होकर बलराम भी जा बैठे। परमात्म चिन्तन करके, आत्म स्वरूप में स्थिर हुए।।
आत्म जा आत्म में मिला, मानव तन उन्होने छोड़ दिया।
अश्वत्थ वृक्ष के नीचे वह, धरती पर ही जा बैठे। यह सब देख के कृष्ण तो, महा मौन ही थे हुए।।

उनके अंग की कान्ति से, देदीप्यमान उनका रूप था। शंख चक्र गदा पद्म सहित, चतुर्भुज वह रूप था।।
धूम्र रहित अग्नि समान, प्रकाश था उनका फैल रहा। सब दिशा का तिमिर वह, प्रकाश था मानो हर रहा।।

वर्षा कालीन मे सम, श्यामल वर्ण था उस तन का। तप्त स्वर्णवत् दीप्तिवान्, ज्योति प्रकाश था चमक रहा।।
रेशम का पीताम्बर था, थी ओढ़नी भी उसके समान। वक्ष:स्थल पर श्री वत्स चिन्ह, था मंगलमय शोभायमान्।।

मुख पर सुन्दर मुसकान थी, श्यामल अलकें थीं कपोल पे। सुकुमार नेत्र अरविन्द थे, मकराकृति कुण्डल कानों में।।
कन्धे पे यज्ञोपवीत था, कमर में करधनी लटक रही। सीस मुकुट हाथों कंगन, भुजा में बाजूबन्द बन्धी।।
वक्ष:स्थल पर हार था, चरणों में नूपुर मधुर। मुद्रिका थी सब आंगुली में, कण्ठ में कौस्तुभ की दमक।।

घुटनों तक थी वनमाला, आयुध सब मूर्तिमान् हुए। अपने प्रभु की सेवा में, वे संलग्न थे हो रहे।।
दाईं जांघ पे बायां चरण, रख कर बैठे थे श्री हरि। रक्तिम् तवले थे चमक रहे, ज्यों रक्त कमल की पंखुड़ी।।

हे राजन् जरा नाम का, एक वहां शिकारी था। मूसल का बचा छोटा टुकड़ा, निज बाण में उसने लगाया था।।
दूर से रक्तिम चरण उसे, हरिण के मुख सा दीख पड़ा। हरिण जानकर उसने वह, अपने बाण से बेन्ध दिया।।

निकट पहुँच कर उस देखा, चतुर्भुज रूप यह प्रभु का था। महा अपराध था कर चुका, अति भयभीत वह हो गया।।
कांप रहा था भय से वह, श्री कृष्ण के चरणों में गिरा। हे मधुसूदन अति पापी मैं, बिन जाने पाप यह कर बैठा।।

हैं आप यशस्वी निर्विकार, क्षमा करें यह पाप मेरा। हैं सर्वशक्तिमान प्रभु, महात्मा जन ने है यह कहा।।
आपक स्मरन्मात्र ही, अज्ञान तिमिर को दूर करे। हा खेद मम हाथों ही, हैं अनिष्ट यह आज हुये।।

निरपराध हरिणियों का, हन्ता मैं महापापी हूँ। अभी अभी मारें मुझे, न पुन: कभी यह पाप करूँ।।
मर जाने पर पुन: कभी, अपराध न यह कर पाऊँगा। आपसे महापुरुष का पुन:, हनन नहीं कर पाऊँगा।।

पारदर्शी सब विद्या के, श्री ब्रह्मा भी न समझ सकें। उनके पुत्र रुद्र आदि, माया का पार न पा सकें।।
सबकी दृष्टि प्रभु आपकी, माया से ही आवृत्त रहे। हम जैसे पाप योनि, फिर उसके विषय में क्या कहें?
भगवान बोले,
हे जरे नहीं भयभीत तू हो, उठ और अपना मोह त्याग। तूने तो मेरा काम किया, मेरी आज्ञा से कर स्वर्ग वास।।
महा पुण्यवान जन भी, वह स्वर्ग लोक न पा सकें। मेरी आज्ञा से तू जा, वहीं पे तेरा निवास रहे।।
शुकदेव बोले,
हे राजन् श्री कृष्ण तो, स्वेच्छा से करें यह तन धारण। जरा नामक व्याध को, आदेश दिया प्रभु ने उस क्षण।।
तब उस व्याध ने तीन बार, श्री हरि की परिक्रमा करी। नमस्कार प्रभु को किया, स्वर्ग गया वह विमान चढ़ी।।

श्री कृष्ण का सारथी दारुक था, वन में उनको खोज रहा। उनकी माल की तुलसी की, गन्ध से जब संकेत मिला।।
उस गन्ध को सूंघ कर, अनुमान उसको हो गया सामने की ओर से, उनके सम्मुख वह जा पहुँचा।।

वहाँ जाकर देखा दारुक ने, पीपल के नीचे बैठै कृष्ण। असह्य तेज के आयुध सब, हुए मूर्तिमान सेवा संलग्न।।
उन्हें देखी दारुक का हृदय, प्रेमोद्वेग से भर गया। नेत्रों से अश्रुधार बही, रथ से कूदी प्रभु चरण पड़ा।।
दारुक बोला,
रात्रि समय जब चन्द्रमा, अस्त ही प्रभु हो जाये। राह पे चलता पथिक ज्यों, राह देख ही न पाये।।
आपके चरण कमल के जब, दर्शन मुझको नहीं मिलें। उस समान ही मेरी भी, दशा प्रभु होने लगे।।
दृष्टि नष्ट हुई मेरी, चहुँ ओर हुआ अन्धकार। अब न तो दिशा का ज्ञान ही है, न ही है शान्ति का आधार।।
शुकदेव बोले,
अभी दारुक अपने वचन, भगवान को कह ही था रहा। गरुड़ ध्वज और अश्वोंसहित, प्रभु रथ आकाश में उड़ने लगा।।
उनके पीछे पीछे ही, प्रभु के दिव्य आयुध भी चले। यह सब देखी दारुक तो, आश्चर्य चकित ही रह गये।।
तब भगवान ने उसे कहा, दारुक तुम द्वारका को जाओ। आपसी कलह से यदुवंश, संहार हुआ यह बतलाओ।।
भैय्या बलराम की परम गति, की भी उनको बात कहो। स्वधाम को ही मैं चला गया, यह भी सूचना उनको दो।।

उनको कहना परिवार सहित, नहीं कोई रहे अब द्वारका में। लीन करेगा नगरी सब, सागर न मेरे रहने पे।।
अर्जुन की सुरक्षा में, इन्द्रप्रस्थ को सब जायें। निज धन सम्पद् और कुटुम्ब, मेरे मात पितु भी ले जायें।।

मैंने जिस भागवत धर्म का, उपदेश है दारुक दिया। तुम भी उसका ही आश्रय ले, ज्ञान निष्ठ ही रहो सदा।।
अब सबकी करो उपेक्षा तुम, यह दृश्य भी माया का समझो। मम माया रचना जान इसे, शान्तमनी तुम हो जाओ।।
भगवान का यह आदेश पा, दारुक ने उनकी परिक्रमा की। उनके चरण कमल पे सीस धरी, उस बारम्बार प्रणाम करी।।

उदास निरास मन से फिर, द्वारका ओर वह चल पड़ा। कृष्ण ने धरा को क्या छोड़ा, मानो जीवन उत्साह गया।।
शुकदेव बोले,
दारुक जब चला गया राजन्, ब्रह्मा शिव पार्वती आये। लोकपाल इन्द्रादि सभी, प्रजापति मरीचि आदि आये।।
महा ऋषि मुनि और पितर सिद्ध, गन्धर्व और विद्याधर आये। यक्ष राक्षस नाग चारण, किन्नर अप्सरा सब आये।।
गरुड़ लोक के पक्षी विविध, मैत्रेय आदि ब्राह्मण आये। श्री हरि का परम धाम को, प्रस्थान वह देखना थे चाहे।।
श्री कृष्ण जन्म और लीला का, थे वह वर्णन कर रहे। सारे आकाश में ही उनके, विमान खचाखच भर गए।।
महाभक्ति प्रेम से कृष्ण पर, थे पुष्प वह बरसा रहे। अपनी श्रद्धा और भक्ति थे, चरण में उनके चढ़ा रहे।।

सर्वव्याप्त श्री कृष्ण ने, देखा ब्रह्मा और देवों को। स्वरूप में स्थित किया आत्म, और कमल नयन निज बन्द किाये।।
श्री हरि का विग्रह है आधार, भक्तों के ध्यान धारण का। है परम रमणीक आश्रय वह, सम्पूर्ण ही लोकों का।।
अग्न देव की योग धारणा, द्वारा उसे जलाया नहीं। स्वधाम को पधारे प्रभु, अपने शरीर के सहित ही।।

गूंजे नगारे स्वर्ग में, आकाश से बरसे फूल बहुत। श्री कृष्ण के पीछे पीछे ही, चल दिये मंगल सकल।।
हे राजन् इस लोक से, सत्य धर्म और धैर्य गया। कीर्ति और श्री देवी ने, भी उनका अनुसरण किया।।

भगवान कृष्ण की गति जान, है राजन् मन वाणी से परे। ब्रह्मादि देव भी इस कारण, नहीं दर्शन उनका पा सके।।
अपने धाम को जाते हुए, भगवान को उन्होने न देखा। इस कारण इस घटना से, चित्त उनका अति विस्मित था।।

मेघों को त्यजकर बिजली, आकाश में जब प्रविष्ट हो। जीव नहीं कोई देख सके, दामिनी की उस चाल को।।
त्यों ही महादेवता भी, श्री कृष्ण की गति न देख सके। महायोगमय गति देख, ब्रह्मा शंकर अति चकित थे।।
प्रभु के ही गुण गाते हुए, वह अपने लोक को चले गए। इस भाँति सब देवों ने, फिर प्रस्थान वहाँ से किये।।

ज्यों नाटक में नट राजन्, अनेक भाँति के स्वांग भरे। वास्तव में सब रूपों से, नट तो सदा निर्लिप्त रहे।।
त्यों ही श्री हरि का जन्म लेना, लीला और तिरोभाव उनका। केवल है विलास मात्र, श्री हरि की अपनी माया का।।
वह स्वयं ही जग की सृष्टि करें, आप ही वहाँ प्रवेश करें। आप ही यहाँ विहार करें, फिर निज लीला संहार करें।।
अपने अनन्त महिमामय, स्वरूप में स्थित वह हो जायें। वास्तव में तो श्री हरि, सदा एक रस ही रहें।।

गुरु संदीपनी का पुत्र, था यमपुरी को चला गया। तन सहित ही उसको था, श्री कृष्ण ने लौटा लिया।।
ब्रह्मास्त्र से आपका तन भी राजन्, पूर्ण विदग्ध था हो चुका। किन्तु श्री हरि कृपा से ही, पुन: जीवन दान था तुझे मिला।।
उनकी शरणागत वत्सलता, है ही कुछ ऐसी राजन्। महाकाल श्री शंकर को, किया पराजित युद्ध में उन।।
अपने तन के घाती व्याध, को भी स्वर्ग में भेज दिया। निज तन को धरा पर रखते सदा, उनके लिये यह कठिन था क्या?

श्री कृष्ण तो हैं सब जगत् के, उत्पत्ति स्थिति प्रलय कारण। तथापि अपने इस तन को, नहीं रखना चाहा जग में उन्होने।।
इस राही दर्शाया यह, मानव तन का प्रयोजन क्या? आत्मज्ञ का है आदर्श यही, नहीं तनो बचाव की हो चेष्ठा।।
प्रात:काल उठकर जो जीव, इस कथा का कीर्तन है करता। एकाग्र भक्ति से तिरोभाव, प्रभु का है स्मरन् करता।।
भगवान का परम श्रेष्ठ वही, परम पद वह पायेगा। सहज ही परम धाम को, प्राप्त वह हो जायेगा।।

श्री कृष्ण के विरह में व्याकुल, दारुक जा पहुँचा द्वारका। वसुदेव और उग्रसेन, के चरणों में जाय गिरा।।
अपने अश्रुओं से उनके, चरणों को वह धोने लगा। फिर तनिक जब वह सम्भला, कहा विवरण विनाश का।।
अति व्यथित हुए सब जन यह सुनी, शोक ने उनको घेर लिया। असह्य शोक के कारण फिर, मूर्छा ने उन्हें आ ग्रसा।।
भगवान कृष्ण के वियोग में, विह्वल वे सब लोग हुए। सीस पीटते हुए सभी, फिर उसी स्थान पर जा पहुँचे।।

जहाँ भाई बन्धु सारे, निष्प्राण ही थे पड़े हुए। देवकी रोहिणी वसुदेव, प्रिय पुत्रों को न देख सके।।
उनकी विरह व्यथा से, थे वह अति पीड़ित हुए। श्री कृष्ण और बलराम के, विरह में मूर्छित वे हुए।।

भगवद् विरह से व्याकुल हो, वहीं पे उन्होने प्राण त्यजे। अब जीकर भी वह क्या करते, नहीं कृष्ण राम धरती पे रहे।।
स्त्रियों ने पतियों के शव, पहचाने और उनके गले लगीं। उनके साथ ही बैठकर, चिता में भस्म वह हो गईं।।

श्री बलराम की पत्नियों ने, उनके तन को साथ लिया। श्री वसुदेव की पत्नियां, बैठीं उनके शव संग जा।।
पुत्र वधुओं ने भी अपने, पतियों के फिर शव लिये। और सबके ही सब वह, अग्नि के अर्पित्त हुए।।
श्री कृष्ण की रुक्मिणी, आदि थीं जो रानियां। उनके ध्यान में मग्न हो, उस अग्नि में प्रवेश किया।।

अर्जुन निज प्रियतम सखा के, विरह में अति व्यथित हुए। फिर भगवान के ही कथित, गीतोपदेश उन्होने याद किये।।
प्रभु की वाणी को याद करी, उन अपने आपको सम्भाला। यदुवंश के जिन भी लोगों के, नहीं पिण्ड दान का कर्ता रहा।।
अर्जुन ने विधि विधान से, श्राद्ध सभी का करवाया। सखा प्रति कर्त्तव्य निज, अर्जुन ने यूं निभा दिया।।
भगवान कृष्ण गए धरती से, यह देखा जब सागर ने। निवास स्थान उनका छोड़ी, सब द्वारका को वह निगल गए।।

भगवान कृष्ण सदा सर्वदा, अब वहाँ निवास करें। उस स्थान का स्मरन्मात्र ही, पाप ताप सब नष्ट करे।।
सर्वमंगलों का भी वह, मंगलकारी स्थान है। श्री कृष्ण के वास से, हुआ धन्य धन्य वह स्थान है।।

पिण्ड दान करने के बाद, स्त्रियां और वृद्ध थे जो बचे। बच्चों संग उनको लेकर, अर्जुन इन्द्रप्रस्थ लौटे।।
सबको ही यथायोग्य वहाँ, अर्जुन ने बसा दिया। अनिरुद्ध के पुत्र वज्र का, वहाँ पे राज्याभिषेक किया।।

सभी पाण्डवों को राजन्, था अर्जुन से ही पता चला। यदुवंशियों का संहार हुआ, और श्री कृष्ण तिरोभाव हुआ।।
राज्य पद पर तुमको ही, अभिषिक्त फिर उन्होने किया। स्वयं हिमालय की ओर ही, उन सबने प्रस्थान किया।।

देवों के भी परम आराध्य, श्री कृष्ण की तुमको कथा कही। उनके जन्म और कर्म की, लीला सारी बतला दी।।
श्रद्धा पूर्ण जीव जो, कीर्तन इस कथा का करे। सम्पूर्ण पाप ताप उसके, स्वत: नष्ट ही हो जायें।।

निखिल सौन्दर्य निधि हैं, भक्तभय हारी श्री कृष्ण। उनके दिव्य अवतार और, पराक्रम से जिनका सम्बन्ध।।
परम आनन्दमयी उनकी, दिव्य बाल लीला का। उनकी अन्य लीलाओं का, संकीर्तन जो भी है करता।।
इस भागवत पुराण में या, अन्यत्र कहीं वर्णित किया। परमहंस मुनियों के लक्ष्य, श्री कृष्ण की भक्ति है पाता।।

इति एकादश स्कन्ध

HHH(४४७)HHH

द्वादश स्कन्ध

१) कलियुग के राजाओं का वर्णन ४४९

२) कलियुग के दोषों का वर्णन ४५१

३) राज्य और युगधर्म, नाम संकीर्तन से
कलियुग के दोषों से बचने का उपाय ४५६

४) विभिन्न प्रकार के प्रलयों का वर्णन ४५९

५) शुकदेव का हितोपदेश ४६२

६) शुकदेव का पूजन व प्रस्थान, परीक्षित् की मुक्ति,
जनमेजय का सर्प-यज्ञ और वेदों के शाखा-भेद ४६३

७) मार्कण्डेय वृत्तान्त व प्रलय दर्शन ४७१

८) भगवानके अङ्ग, उपाङ्ग और आयुधों का वर्णन ४८१

९) श्रीमद्भागवत की महिमा ४८४

* मनुष्य अपने ही दोषों से शंकित होता है।
* मौन रहने से कलह नहीं होती और जागते रहने से भय नहीं होता।
* ऐसे व्यक्ति को जीने का अधिकार नहीं जो समय के साथ नहीं चल सकता।
* रचनात्मक सोच मन और मस्तिष्क के लिये सदा ही उपयुक्त है।
* दुनिया में कुछ ऐसे भी महापुरुष होते हैं, जो अपना पेट चाहे ना भर सके, पर पड़ोसियों को न्यौता देते हैं।
* यदि पर्वत भी वृक्ष के समान तेज आंधी से हिल उठे तो फिर दोनों में अन्तर ही क्या रहा?
* अतीत का अध्ययन करो, जीओ वर्तमान में और भविष्य के लिये तैयार रहो।
* जो सत्य विषय है उनमें सब का एक मत है, विवाद सिर्फ झूठे विषयों मे होता है।
* बाधायें ऐसी डरावनी चीजें है, जो लक्ष्य से निगाहें हटते ही आपको दिखने लगती हैं।
* जीवन की बाजी में हारजीत तो हमारे हाथ नहीं, पर बाजी खेलना हमारे हाथ में है।

द्वादश स्कन्ध

१) कलियुग के राजाओं का वर्णन

परीक्षित बोले,
यदुवंश शिरोमणि कृष्ण जब, थे अपने धाम पधार गये। तब पृथ्वी पर हे द्विजवर,ख कहें किस वंश के राज्य हुए?
और अब इस धरती पर, किसका राज्य हो जायेगा? कृपा करी कर हे मुने, आप यह दें मुझे बता।।

शुकदेव बोले,
बृहद्रथ का अन्तिम वंशज, होगा जान पुरञ्जय ही।।
उसका मन्त्री शुनक ही, निज स्वामी का हन्ता होगा। निज पुत्र प्रद्योत को वह सिंहासन पर बिठलायेगा।।
प्रद्योत पुत्र पालक होगा, उसका विशाखशूप होगा। राजक होगा पुन: पुत्र उसका, नन्दीवर्धन उसका सुत होगा।।
प्रद्योत के वंश में जान तू, नरपति होंगे यह पांच। सबकी संज्ञा ही होगी, प्रद्योतन नाम से जान।।
एक सौ अड़तीस वर्ष तक, पृथ्वी पर राज्य करेंगे यह। सुख वैभव सब राज्य के, आनन्द सहित भोगेंगे यह।।

तत्पश्चात् शिशुनाग, नाम का फिर राजा होगा। शिशुनाग पुत्र हो काकवर्ण, पुन: उसका क्षेमधर्मा होगा।।
क्षेमधर्मा का पुत्र, क्षेत्रज्ञ होगा जानो। क्षेत्रज्ञ का विधि सार, उसका अजातशत्रु जानो।।
तत्पश्चात् होगा दर्भक, दर्भक पुत्र अजय होगा। अजय से नन्दिवर्धन और, महानन्दि का जन्म होगा।।
शिशुनाग के वंश में, जान यह दस राजा होंगे। कलियुग में तीन सौ साठ वर्ष, इस वंश के ही राज्य होंगे।।
महानन्दि की शूद्रा पत्नी के, गर्भ से नन्द उत्पन्न होगा। अति बलवत् होगा वह नन्द, युद्ध में भी दुर्जेय होगा।।

महापद्म नामक निधि का, होगा अधिपति महानन्दि। लोग पुकारेंगे उसे, महापद्म के नाम से ही।।
क्षत्रिय राजाओं के, नाश का कारण बनेगा वह। शूद्र ही होंगे राजा फिर, धर्मरहित सब होंगे वह।।

इस पृथ्वी पर एकछत्र, शासक होगा महापद्म। उसकी अवहेलना करने में, नहीं होगा कोई समर्थ।।
कारण बनेगा वह राजन्, क्षत्रियों के विनाश का। इस कारण वह दूसरा, परशुराम कहलायेगा।।
सुमाल्य आदि नाम के, उसके आठ पुत्र होंगे। राजा होकर वे सभी, शत वर्ष यह पृथ्वी भोगेंगे।।

कौटिल्य वात्स्यायन चाणक्य, नामों से प्रख्यात ब्राह्मण। पुत्रों सहित ही नन्द का, फिर कर देगा वह हनन।।
उनका हनन को जाने पर, मौर्यवंशी राजा होगे। चन्द्रगुप्त चाणक्य से ही, राज्यपद अभिषिक्त होंगे।।
चन्द्रगुप्त के पुत्र का, नाम होगा वारिसार। वारिसार के पुत्र का, अशोक वर्धन होगा नाम।।
उसका पुत्र होगा सुयश, सुयश का पुत्र संगत होगा। संगत का शालिशूक और, पुन: उसका सोमशर्मा होगा।।

शतधन्वा उसका पुत्र हो, शतधन्वा सुत बृहद्रथ हो। मौर्यवंशी दस राजाओं का, कलियुग में यूं राज्य हो।।
यह नरपति एक सौ, सन्तालीस वर्ष तक राज्य करें। बृहद्र का इक सेनापति, पुष्पमित्र शुंग जान ले।।
अपने स्वामी को मारकर, राजा यह आप बन जायेगा। उसका पुत्र हो अग्निमित्र, सुज्येष्ठ नामक उसका सुत होगा।।

वसुमित्र हो सुज्येष्ठ पुत्र, उसका पुन: भद्रक होगा। भद्रक का पुलिन्द उसका घोष, और उसका वज्रमित्र होगा।।
वज्रमित्र का सुत भागवत, उसका पुत्र हो देवभूति। एक सौ बारह वर्ष तक, पृथ्वी पालें यह नरपति।।

शुंगवंशी नरपतियों का, राज्यकाल जब समाप्त हो। कण्ववंशी राजाओं के, हाथ में ही तब पृथ्वी हो।।
पूर्ववर्ती राजाओं से, न्यून ही होंगे इनके गुण। इस कुल के अन्तिम राजा, अब द्यूवभूति की बात सुन।।
अति लम्पट उस राजा को, मारेगा मन्त्री वसुदेव। वह कण्ववंशी अपनी बुद्धि, बल से बनेगा नरदेव।।
उसका पुत्र भूमित्र हो, उसका पुन: हो नारायण। नारायण पुत्र सुशर्मा तो, होगा बहुत ही यश सम्पन्न।।

कण्ववंशीय चार यह नरपति, काण्वायन कहलायेंगे। कलियुग के तीन सौ पैंतालीस, वर्ष यह राज्य चलायेंगे।।
कण्ववंशी सुशर्मा का, इक शूद्र सेवक होगा बलि। आन्ध्र जाति का होगा वह, और होगा वह दुष्ट अति।।
सुशर्मा का हनन करके, राज्य प्राप्त करेगा वह। कुछ समय तक पृथ्वी पर, स्वयं ही राज्य करेगा वह।।
तत्पश्चात् उसका भाई, कृष्ण बनेगा नरपति। कृष्ण पुत्र हो श्रीशान्तकर्ण, पौर्णमास हो उसकी सन्तति।।

पौर्णमास का पुत्र लम्बोदर, उसका पुन: चिबिलक होगा। चिबिलक पुत्र मेघस्वाति, उसका पुन: अटमान होगा।।
अटमान पुत्र अनिष्टकर्मा, उसका पुत्र हालेय होगा। हालेय का तलक उसका पुत्र, जान पुरीषभीरु होगा।।
पुरीषभीरु का पुत्र तो, राजा सुनन्दन ही होगा। राजा बलि के वंशजों का, जान यही तू क्रम होगा।।

सुनन्दन पुत्र होगा चकोर, उसके होंगे पुन: आठ पुत्र। बहु नाम ही पायेंगे, सब ही उसके आठों पुत्र।।
इन सबमें अनुज होगा, शिवस्वाति के नाम से। शत्रु दमन करेगा वह, महावीर वह होगा काम से।।
शिवस्वाति के पुत्र का, नाम होगा गोमति। पुरीमान के नाम से, प्राख्यात हो उनका पुत्र भी।।

पुरीमान सुत हो मेद:शिरा, उस का होगा शिवस्कन्द। यज्ञश्री हो उसका पुत्र और विजय उसका नन्दन।।
विजय के होंगे दो पुत्र, चन्द्रविज्ञ और लोमधि। चार सौ छप्पन वर्ष तक, भोगेंगे पृथ्वी राज्य सभी।।

अवभृति नगरी के पुन:, होंगे तैंतीस राजा जान। सात अभीर दस गर्दभी, सोलह यह होंगे कंक जान।।
अति लोभी होंगे यह सब, आठ यवन फिर आयेंगे। तत्पश्चात् चौदह तुर्क, भूमि के पति बन जायेंगे।।
दस गुरण्ड और एकादश, मौन नरपति होंगे फिर। मौनों को छोड़कर यह भोगें, राज्य सहस्र निन्यानवे वर्ष।।
एकादश मौन नरपतियों का, त्रै शत वर्ष शासन होगा। अपना काल पूरा करके, जब राज्य समाप्त इनका होगा।।
किलकिला नाम की नगरी में, फिर भूतानन्द राजा होगा। भूतानन्द भ्राता वंगिरी हो, शिशुनन्दि यशोनन्दि द्वौ भ्राता।।
और भाई प्रवीरक सब मिलकर, करें राज्य एक सौ छ: वर्ष। इन सब ही राजाओं की, बात तो पूर्ण दी है कर।।

इनके तेरह पुत्र सब, बहलिक ही कहलायेंगे। क्षत्रिय पुष्पमित्र वा पुत्र, दुर्मित्र राज्य फिर पायेंगे।।
बहलिक वंशी नरपति राजन्, करेंगे विविध देशों में राज। उनमें से सात तो आन्ध्र देश, के होंगे नरपति जान।।
सात ही कोसल देश के, अधिपति हो जाएंगे। विदूर भूमि के राज कोई, निषेध के स्वामी कोई होंगे।।

तत्पश्चात् मगध का, राजा होगा विश्वस्फूर्जि। पूर्वोक्त पुरंजय छोड़ के यह, होगा पुरंजय द्वितीय ही।।

ब्राह्मणादि उच्च वंशों का, विनाश प्राय: यह कर देगा। पुलिन्द यदु मद्रादि मलेच्छ, प्राय: उन्हें यह बना देगा।।

महादुष्ट बुद्धि होगी इसकी, ब्राह्मण क्षत्रिय का नाश करे। वैश्यों का भी नाश करी, शूद्रों का ही रक्षक भए।।
अपने बल और वीर्य से, क्षत्रियों को यह उजाड़ेगा। पद्मवती पुरी को ही अपनी, राजधानी वह बनायेगा।।
हरिद्वार से प्रयाग तक, सुरक्षित होगी पृथ्वी उनकी। यह क्षेत्र विस्तृत होगा, राजन् उसके राज्य का।।

ज्यों ज्यों घोर कलियुग के, आगमन हे राजन् होंगे। सौराष्ट्र अवन्ती अभीर शूर, अर्बद औ मालव देश के।।
ब्राह्मण गण सब जान ले, संस्कार शून्य हो जायेंगे। राजाजन भी जान ले, तब शूद्र तुल्य हो जायेंगे।।

सिन्धुतट और चन्द्रभागा के, तटवर्ती प्रदेशों पर। कौन्तीपुर और जान, काश्मीर देश के मण्डल पर।।
प्राय: शूद्रों और म्लेच्छों, का ही राज्य हो जायेगा। संस्कारहीन ब्रह्म तेज रहित, बस नाम मात्र ब्राह्मण होगा।।

यह सब राजाजन होंगे, आचार से मलेच्छ प्राय: ही। एक समय में भिन्न भिन्न, प्रातों में राज्य करेंगे सभी।।
झूठ अधर्म और स्वल्प, दान की पराकाष्ठा होंगे। छोटी छोटी बातों से ही, अति क्रुध यह जन हो जायेंगे।।

स्त्री शिशु गौ और ब्राह्मण, का भी वध करेंगे जन। पर स्त्री धन के हरण में, न तनिक संकोच करेंगे जान।।
न तो बढ़ती में देर लगे, और घंटे भी तत्क्षण ही। क्षण में तुष्ट या रुष्ट भएं, शक्ति और आयु न्यून होगी।।

परम्परागत संस्कार, इन लोगों में न होंगे कोई। कर्त्तव्य कर्म के पालन में, भी न रुचि इनकी होगी।।
रज और तम से अन्धे हुए, राजवंश में होंगे मलेच्छ। प्रजा का शोषण करेंगे यह, करेंगे हर पल लूट खसोट।।

शासक जन भी जब ऐसे, स्वभाव के हो जायेंगे। प्रजा में भी वैसे स्वभाव, और गुण वृद्धि पायेंगे।।
इक ओर राजाजन मिली, उन सबका शोषण करें। दूजी ओर इक दूजे को, भी उत्पीड़ित वह करें।।
अन्तत: वह सबके सब, स्वत: नष्ट हो जायेंगे। उनके अपने आचरण ही, नष्ट उन्हें कर जायेंगे।।

२) कलियुग के दोषों का वर्णन

शुकदेव बोले,
है काल अति बलवान यह, कलियुग ज्यों ज्यों बढ़ जायेगा। धर्म सत्य क्षमा पावनता, दया आयु बल घट जायेगा।।
स्मरणशक्ति का भी जानो, लोप ही होता जायेगा। कलियुग में बस धन का ही, बोलबाला रह जायेगा।।
धनी को ही कुलीन सद्गुणी, सदाचारी सब मानेंगे। शक्तिवान् धर्म न्याय को, अपने अनुकूल ही कर लेंगे।।

विवाह हेतु कुल शील और, योग्यता परख नहीं होगी। आपसी रुचि युवाओं की, आधार बने सम्बन्धों की।।
व्यावहारिक निपुणता का, आधार सत्य नहीं होगा। छल कपट जितना होगा, व्यवहार कुशल उतना होगा।।
शील और संयम नहीं, श्रेष्ठ करे नर नारी को। उनकी उत्तमता का बस, रति कौशल ही आधार हो।।
ब्राह्मण की पहचान भी, गुण स्वभाव से न होगी। यज्ञोपवीत ही बस केवल, उसकी पहचान बतायेगी।।

संन्यासी और ब्रह्मचारी की, पहचान उनके चिन्ह होंगे। वस्त्र दण्ड कमण्डल से, वह पहचाने जायेंगे।।
बाह्य चिन्ह धारण करना, ही प्रवेश दे आश्रम में। धन देने में असमर्थ जो हों, न्याय नहीं वह पायेंगे।।

बोलचाल में जो जितना, अधिक चतुर ही हो पायेगा। जग में उतना ही बड़ा, पण्डित वह माना जायेगा।।

निर्धनता ही असाधु या, दोषी की होगी पहचान। जितना बड़ा दम्भी होगा, लेंगे लोग उसे साधु मान।।
विवाह हेतु इक दूजे की, स्वीकृति ही होगी पर्याप्त। विधि विधान संस्कार का, न होगा कोई अनुष्ठान।।
केशादि विन्यास ही, या नव वस्त्र धारण करना। इसको ही स्नान और पावनता, का चिन्ह माना जायेगा।।

दूर के ही तालाब को, मानेंगे जन जन तीर्थ। निकट के गंगा गोमति या, मातु पितु की उपेक्षा कर।।
लम्बे केश ही तनो सौन्दर्य, की पहचान मानेंगे जन। सर्वोत्तम पुरुषार्थ होगा, निज तन का पालन पोषण।।
जितनी भी ढिठाई से, बात कर से जो कोई। उतनी ही सत्यता उसकी, सिद्ध मानी जायेगी।।

योग्यता का लक्षण होगा, अपने कुटुम्ब को पालना। धर्म का सेवन तो केवल, निज यश के कारण होगा।।
दुष्टों का ही साम्राज्य जब, धरती पर हो जायेगा। राजा होने का भी तब, कोई नियम नहीं रह जायेगा।।
वैश्य और शूद्र भी, महाबली ही होगा जो। वही राजा बन बैठेगा, चाहे निर्दयी क्रूर वह हो।।
लोभी इतने होंगे राजा, लुटेरे ही बन जायेंगे। प्रजा की पत्नियाँ और पूँजी, उनकी वह हर जायेंगे।।
उनसे हो भयभीत प्रजा, जंगल पर्वत को धायेगी। भाँति भाँति के कन्द मूल, मधु मांस शाक वह खायेगी।।
फल फूल गुठली आदि से, अपना पेट भरेगी वह। कलियुग के राज्य में यूँ, जीवन यापन करेगी वह।।

वर्षा न होने से कभी, जब अकाल हो जायेगा। तब भी नि:सहाय प्रजा पर, कर बोझा लादा जायेगा।।
कभी असह्य शान्ति होगा, कभी पाला भी पड़ जायेगा। कभी आन्धी कभी ऊष्णता, कभी बाढ़ भूकम्प आ जायेगा।।
इन उत्पात्तों और आपसी, संघर्षों से होगी पीड़ित। प्रजा चैन न पायेगी, और वह जानो होगी नष्ट।।

भूख प्यास और विविध, चिन्ता से आतुर होंगे। न ही रोग मुक्त वह हो, आयु में भी लघु होंगे।।
कलिकाल के दोष से हे राजन्, तन छोटे क्षीण रोगी होंगे। वर्णाश्रम धर्म के ज्ञाता जो, वेदज्ञ नष्टप्राय: होंगे।।

धर्म में भी पाखण्ड की, ही बनेगी प्रधानता। डाकू लुटेरों के समान, ही होंगे राजा महाराजा।।
चोरी झूठ और हिंसा ही, आजीविका बनेगी लोगों की। यह कुकर्म ही हे राजन्, धर्म बनेगी जीवों की।।

चतुर्वर्ण के लोग सब, शूद्र समान हो जायेंगे। बकरी सम छोटी गाय हो, दूध भी कम हो जायेंगे।।
वानप्रस्थी संन्यासी जो, विरक्त आश्रमी हैं होते। व्यापार ही करने लगेंगे वह, घर गृहस्थ जुटा कर के।।
जिनसे वैवाहिक हुआ सम्बन्ध, उनको सम्बन्धी मानेंगे। अन्य किसी के प्रति नहीं, कोई कर्त्तव्य निभाएंगे।।

धान जौ गेहूं आदि, सब धान्य भी होंगे अति लघु। वृक्षों में शमी समान, रहें कंटीले वृक्ष लघु।।
दामिनी तो बहुत चमकेगी, पर वर्षा बहुत ही कम होगी। अतिथि सत्कार या वेद ध्वनि, से सूनी सब घर होगी।।

कलियुग का अन्त होते होते, स्वभाव गधे सा ही होगा। विषयी जीव गृहस्थी का, बोझा ढोने वाला होगा।।
ऐसी स्थिति में धर्म की, रक्षा करने वाला होगा। सतोगुण को स्वीकार करी, श्री हरि ही रूप धरी आयेंगे।।

सर्वव्याप्त प्रभु विष्णु हैं, सर्वशक्तिमान् राजन्। चराचर जगत् के सद्गुरु, उनको ही मानो तुम राजन्।।

साधु सज्जन पुरुषों के, धर्म की रक्षा के लिये। जन्म बन्ध उनका काटी, भव भय मुक्त करने के लिये।।
स्वयं प्रभु अवतार लेई, बार बार यहाँ आते हैं। भक्तों की रक्षा के लिये, वह नित नव रूप धराते हैं।।

शम्बल ग्राम में उन दिनों, विष्णुयश नामक हो ब्राह्मण। अति उदार हृदय उसका, हो भगवद्भक्ति से पूर्ण।।
उसके घर ही श्री कल्कि, भगवान जन्म ले आयेंगे। कलियुग में इस नाम से, ही वह जाने जायेंगे।।

अष्ट सिद्धि सब सद्गुण के, हैं एकमात्र आश्रय हरि। चराचर सारे जगत् के, हैं वह ही रक्षक और स्वामी।।
देवदत्त नाम के द्रुतगामी, अश्व पे वह होंगे सवार। अपनी तलवार से दुष्टों का, करेंगे श्री हरि संहार।।

उनके रोम रोम से, तेज की किरणें फूटेंगी। तीव्र गति के अश्व चढ़ी, पृथ्वी पर विचरण होगी।।
राजाओं के वेश में, छिपे हुए कोटि दस्यु। उनके ही हाथों से फिर, वे सब पाएंगे मृत्यु।।

हे राजन् सब डाकुओं का, जब संहार हो जायेगा। तब नगर ग्राम की प्रजा का, हृदय पावन हो जायेगा।।
प्रभु कल्कि के अंगराग का, स्पर्श करी जो वायु बहे। वह पावनतम वायु फिर, जन जन के अंग का स्पर्श करे।।
श्री हरि के श्री विग्रह की, सुगन्ध प्राप्त कर पायेंगे। इससे सब जन ही राजन्, पावन स्वत: हो जायेंगे।।

सत्वमूर्ति श्री भगवान, हों उनके हृदय में विराजमान्। पूर्ववत् ही हृष्ट पुष्ट, बलवती होगी उनकी सन्तान।।
धर्म के रक्षक और स्वामी, हैं श्री हरि नयनाभिराम। कल्कि अवतार के रूप में, जब भू पे हों वह विराजमान्।।
उसी समय सत्युग का, पुन: आगमन हो जायेगा। प्रजा की सन्तति में स्वत:, सतोगुण तब भर जायेगा।।

चन्द्र सूर्य और बृहस्पति, इक ही समय और एक साथ। पुष्प नक्षत्र के प्रथम पल, में प्रवेश करें जब प्राप्त।।
यह सब नक्षत्र जब मिल कर, एक ही राशि में आये। इस ही पल में हे राजन्, सत्युग आगमन हो जाये।।

चन्द्रवंश या सूर्यवंश, में जितने भी राजा हुए। या कभी होंगे भी वह, उन सबके वर्णन कर दिये।।
तेरे जन्म से लेकर के, राजा नन्द के अभिषेक तक। एक सहस्र एक सौ पन्द्रह, वर्ष समय बीतेगा तब।।

आकाश में जिस पल जानो, सप्तर्षि यह उदय हों। सर्वप्रथम वहाँ पे दो, ही तारों का दर्शन हो।।
उनके बीच में दक्षिणोत्तर, रेखा पर समभाग में। अश्विनी आदि नक्षत्रों में, एक नक्षत्र फिर दृष्ट भए।।

उस नक्षत्र के साथ ही, सप्तर्षिगण वहाँ रहें। मनुष्यों की गणना से वह, शत वर्ष पर्यन्त रहें।।
तेरे जन्म के समय भी, और इस पल भी जान ले। मघा नामक नक्षत्र पर, इस क्षण भी वह स्थित रहें।।

सर्वशक्तिमते प्रभु ही, शुद्ध सत्त्वमय विग्रह लिये। अपनी लीला संवरण कर, जब परम धाम वह पधार गए।।
अपनी लीला संवरण कर, जब परम धाम वह पधार गए। उसी समय संसार में थे, कलियुग के प्रवेश हुए।।
उसी के कारण जीवों की, गति मति सब भ्रष्ट हुई। पाप की ओर ही उन सब की, प्रवृत्ति भी बढ़ गई।।

जब तक श्री लक्ष्मीपति, के चरण रहे इस धरती पर। तब तक कलियुग निज चरण, धर न सका इस पृथ्वी पर।।
जब यह सप्तर्षि राजन्, मघा नक्षत्र पर चलें। उसी समय कलियुग का, प्रारम्भ हो तू जान ले।।
देवों की गणना से कलियुग, की आयु है द्वादश शत वर्ष। मनुष्यों की गणना से जान, चार लाख बत्तीस हजार वर्ष।।

मघा से चल जब सप्तर्षि, पूर्वाषाढ़ा में जायेंगे। तब राजा नन्द का ही, साम्राज्य वहाँ पे जायेंगे।।
तभी से कलियुग की वृद्धि, होने लगेगी हे राजन्। लक्षण सभी दिख जायेंगे, जिनके हैं पूर्व किये वर्णन।।
विद्वानों का है यह मत, जिस दिन स्वधाम किया प्रभु प्रयाण। उस दिन उसी समय से तू, कलियुग का प्रारम्भ जान।।

देवों की गणना से जब, वर्ष बीतेंगे इक सहस्र। कलियुग के अन्तिम दिनों में, श्री कल्कि की कृपा से तब।।
जीवों के मन में फिर से, सात्विकता भर जायेगी। वास्तविक स्वरूप निज जानेंगे, सत्युग आरम्भ हो जायेगी।।

हे राजन् तुमसे मैंने, मनुवंश का है वर्णन किया। संक्षेप से ही उसका विस्तार, तेरे लिये है कर दिया।।
जैसे मनुवंश की गणना हो, त्यों ही प्रत्येक युग में मानो। ब्राह्मण वैश्य शूद्र की भी, परम्परा वह ही जानो।।

जिन महात्मा पुरुषों का, वर्णन है तुमसे किया। केवल नाम और उनकी कथा, का ही है अवशेष बचा।।
उनकी कीर्ति मात्र ही, जहाँ तहाँ सुनने को मिले। उनके रूप तो रहे नहीं, दर्शन न उनके हो सकें।।

भीष्म पितामह के पिता, शान्तनु के भाई देवापि। और इक्ष्वाकु वंशीय मरु, कलाप ग्राम में स्थित हैं अभी।।
महायोगबल सम्पन्न हैं वह, महासिद्धियाँ हैं उनपे। कलि काल के अन्त में, कल्कि भगवान की आज्ञा से।।

पुन: यहाँ वह आयेंगे, पूर्ववत् विस्तार करें। वर्णाश्रम धर्म का, फिर से वह प्रचार करें।।
सत्युग त्रेता द्वापर कलियुग, हैं जानों यह चारों युग। क्रमानुसार प्रभाव निज, दिखलायें यह चारों युग।।

परीक्षित जिन राजाओं का, वर्णन है तुमसे किया। वे सब और अन्य भी जो, पृथ्वी पे कभी हुए राजा।।
इस पृथ्वी को वे सब ही, मेरी मेरी कहते रहे। किन्तु अन्त में सबके सब, धूलि में जा धूलि हुए।।

इस तन को चाहे कोई, कितना बड़ा भी राजा कहे। किन्तु कीट का विष्ठा या, राख की ढेरी बनेगा यह।।
इस तन या इसके नातों के, कारण जो सताये अन्य को। न तो स्वार्थ ही जाने वह, न ही जाने परमार्थ को।।
क्योंकि जीवों का उत्पीड़न, तो है जानो नरक द्वार। जो भी जीव करे ऐसा, कभी हो न सके उसका उद्धार।।

उसकी सोच तो यही रहे, शासक थे दादा परदादा। अब कोई विधि ऐसी करूँ, रहे यह पृथ्वी मेरी सदा।।
मेरे बाद मेरे पुत्र पौत्र, कैसे इसका उपभोग करें। मेरे वंशज ही धरती के, स्वामी सदा ही बने रहें।।

पंचभूत का बना यह तन, वे अपना आप ही माना करें। अभिमानी जन यह पृथ्वी को, अपना ही हैं मान रहे।।
अन्त में यह तन और पृथ्वी, दोनों को छोड़ के जाना पड़े। पृथ्वी और तन तो पीछे रहें, स्वयं अदृश्य वे हो जायें।।

यह पृथ्वी और इसके, विविध विधि उपभोगों में। जो राजा उत्साह और, बल पौरुष से थे लगे।।
उन सबको ही काल के, विकराल गाल में जाना पड़ा। अब तो उनका नाम भी, इतिहास ही बनकर रह गया।।

शुकदेव बोले,
जब पृथ्वी देखे हे राजन्, हैं विजय को सब राजा उद्यत। उनकी मूर्खता देख के, तब पृथ्वी भी देती हैं हंस।।
अहो कैसा आश्चर्य है यह, हैं स्वयं जो मृत्यु मुख में पड़े। वे ही राजा लोग आज, मुझे जीतना हैं चाहते।।

नहीं उनसे है छिपा यह सत्य इक दिन मृत्यु वह पायेंगे। फिर भी मेरी विजय की कामना, व्यर्थ व्यथित उन्हें नित्य करे।।
पानी के बुलबुले सम, है क्षणभंगुर यह मानुष तन। कामान्ध भरोसा इसका करें, सदा धोखें में रहें वे जन।।

वे सोचें पहले हम जीतें, मन के सहित पांचों इन्द्रियां। बाह्य शत्रु न जीत सकें, आन्तरिक शत्रु जीते बिना।।
तत्पश्चात् हम जीतेंगे, शत्रु के मन्त्री आमात्य। नागरिक नेता और सकल, सेवा को भी करेंगे वश।।
जो भी विजय मार्ग में मेरे, विघ्न कभी बन आयेगा। निश्चित उसे जीतेंगे हम, परास्त शीघ्र हो जायेगा।।

इस भाँति शनै: शनै: क्रम से होगी अधीन धरा। फिर सिन्धु ही मेखला बन, करे मेरे राज्य की रक्षा।।
अपने मन में इस भाँति, आशा अनेक बनायें वह। सिर पे है काल नाचे उनके, यह सत्य भूल ही जायें वह।।

इक द्वीप जो वश में हो जाये, वह दूजे द्वीप की चाहना करें। शक्ति और उत्साह से फिर, सागर की यात्रा वह करें।।
उसको वश में करके यह, थोड़ा भूभाग ही प्राप्त करें। मन इन्द्रियों को वशीभूत करी, जीव तो मुक्त भी हो सके।।
इतने श्रम और संयम का, कैसा क्षुद्र है फल यह तो। महावीर मनु उनके पुत्र भी, नहीं संग ले जा सके मुझको।।
जहाँ से आये थे वे सब, वहाँ पे ही वे लौट गए। खाली हाथ ही आये थे, और खाली हाथ ही चले गए।।
अब यह मूर्ख राजा जन, हैं युद्ध में मेरी विजय चाहते। यह समझें इस भाँति ही, वश में मुझे यह कर सकें।।

जिनके चित्त में बात यह, है दृढ़ता से अंकित हुई। इस धरती का हूँ स्वामी मैं, और यह भूमि है मेरी।।
उन दुष्टों के राज्य में, पुत्र पिता से ही लड़े। मेरे छोटे टुकड़े के लिये, भाई भाई का हनन करे।।

परस्पर वे इक दूजे से, हैं ऐसा झगड़ा करें। मेरी है पृथ्वी तेरी नहीं, ऐसी बात वह कहा करें।।
इस प्रकार मूढ़ राजा, आपस में स्पर्धा करें। मेरे लिये यह करें हनन, और अन्त में आप ही जाय मरें।।

पृथु पुरुरवा गधि नहुष, भरत अर्जुन सहस्त्रबाहु। मान्धाता सगर राम खट्वांग, धन्धुमार रघु और तृणबिन्दु।।
ययाति शर्याति शान्तनु गय, भगीरथ कुवलयाश्व कुकुत्स्थ। नल नृग हिरण्यकश्यिपु, लोकद्रोही रावण वृत्रासुर।।
नमुचि शम्बर भौमासुर, हिरण्याक्ष और तरकासुर। शक्तिशाली नरपति बहु, और भी हुए हैं बहुत असुर।।
महाबुद्धिमान् और वीर थे, दिग्विजयी थे यह सब ही। किन्तु अन्त में तो जाकर, मृत्यु का ग्रास बने सब ही।।

पूर्ण चित्त लगाकर के, ममत्व भाव था मुझमें भरा। यह पृथ्वी मेरी ही है, ऐसा भाव उनके मन था।।
किन्तु विकराल काल ने यह, लालस पूर्ण न होने दी। अब देखो बल पौरुष उनकी, और उनका तन भी कहाँ रही?
केवल कथा मात्र ही तो, उनकी शेष है रह गई। अन्य कोई उपलब्धि भी, इस धरती पर नहीं रही।।

महापुरुष हैं बहुत हुए, इस जग में जानो राजन्। विस्तृत था यश सब लोकों में, पर कूच हुआ सबका राजन्।।
उनकी सब कथायें जो, तुमको हैं सुनाईं गईं। ज्ञान वैराग्य जगे तेरा, प्रयोजन है बस इतना ही।।
केवल वाग्विलास ही न, इसको समझना तू राजन्। परमार्थ तत्त्व से परिपूर्ण, है इन सबका ही चिन्तन।।

भगवान कृष्ण का गुणगान, सर्व अमंगल को हरे। महात्मा जन सदा उनकी, कथामृत का ही पान करें।।
अनन्य प्रेममयी भक्ति, श्री कृष्ण की जो पाना चाहे। नित्य निरन्तर श्री हरि के, गुणों का ही वह श्रवण करे।।

परीक्षित बोले,
हे भगवन् इस कलियुग में, मैं तो बस दोष ही देख रहा। किस उपाय से इस युग में, दोषों का नाश हो पायेगा?
इसके अतिरिक्त अन्य भी, युगों का वर्णन कीजिये। उनका स्वरूप धर्म उनका, कल्प की स्थिति बताइए।।
प्रलय काल के भान का, काल रूप भगवान का। कृपा करी वर्णन करें, सर्व व्याप्त भगवान का।।

३) राज्य और युगधर्म, नाम संकीर्तन से कलियुग के दोषों से बचने का उपाय

शुकदेव बोले,
सत्युग में धर्म के, चार चरण हों राजन जान। सत्य दया तप और दान, हैं चारों चरणों के नाम।।
पूर्ण निष्ठा सहित सभी, स्वधर्म का पालन करते हैं। भगवान का है स्वरूप धर्म, यह मान के ही वह रहते हैं।।

संतोषी और अति दयावान, हैं लोग इस युग के जान। व्यवहार हो उनका मित्रवत्, और मन में वह रहें शान्त।।
इन्द्रियां मन वशीभूत हों, समत्व भाव में वह रहें। सुख दु:ख आदि द्वन्द्व उन्हें, अशान्त कभी न कर सकें।।
अधिकांश लोग हों समदर्शी, और वह आत्मवान हों। स्वरूप स्थिति अभ्यास में ही, तत्पर अन्य गणमान्य हों।।

धर्म समान अधर्म के भी, जानो राजन् हैं चार चरण। हिंसा असत्य असन्तोष, और कलह है चौथा चरण।।
त्रेता युग में यह सब ही, प्रभाव अपना दिखायेंगे। धर्म चरण का शनै: शनै:, चतुर्थांश ही क्षीण भए।।

उस युग में ब्राह्मणों की, प्रधानता ज्यों की त्यों रहे। अति हिंस और लम्पटता, का दर्शन कहीं न होये।।
कर्मकाण्ड तपस्या में, निष्ठा सबकी बनी रहे। अर्थ धर्म और काम रूप, त्रिवर्ग का सब सेवन करें।।
कर्म प्रतिपादक वेदों का, अध्ययन सभी जन करते हैं। पारदर्शी इस विषय में, विद्वान अधिकतर होते हैं।।

हिंसा असन्तोष झूठ, और द्वेष हों वर्धित द्वापर में अधर्म के यह चारों चरण, पुष्टि पायें इस युग में।।
इनके कारण तप सत्य, दया दान सब क्षीण भएं। द्वापर युग में इन सबका, बल आधा ही रह जाये।।

उस काल में लोग सब, कर्मकाण्डी यशस्वी हों। वेद अध्ययन अध्यापन में, ही सदा वह तत्पर हों।।
विस्तृत हों कुटुम्ब सबके, प्राय: धनवान् सुखी सब हों। क्षत्रिय और ब्राह्मण दोनों, वर्ण यहाँ पे प्रधान हों।।

कलियुग में तो अधर्म के, ही चरणों की दृढ़ता हो। उसके कारण धर्म के, चारों चरण ही क्षीण हों।।
चतुर्थांश ही बस उनका, शेष बचा रह जाता है। अन्त में यह अंश भी, पूर्णतय: लय हो जाता है।।

लोभी और दुराचारी, कठोर हृदय होते हैं लोग। व्यर्थ मतें ही इक दूजे से, वैर मोल लेते हैं लोग।।
लालसा और तृष्णा की, लहरों में हैं वह झूलते। दुर्भागी उन लोगों में, हैं शूद्र प्रधान बने रहते।।

सत्त्व रज तम तीनों ही, गुण हैं सभी प्राणियों के। काल की प्रेरणा पा, शरीर मन और प्राण में।।
समय समय पर इन सबका, ऱ्हास और विकास हो। सब ही जीवों का वर्तन, तीनों गुणों के चक्र में हो।।

मन बुद्धि और इन्द्रियाँ जब, सतोगुण में स्थित हो काज करें। उस काल को ही राजन् सत्ययुग समझना चाहिये।।
सत्त्वगुण जब हो प्रधान, तप और ज्ञान में प्रेम बढ़े। इसके द्वारा ही राजन्, सत्ययुग पहचान तू ले।।

धर्म अर्थ लौकिक और, परलौकिक सुखों में रुचि भए। तन मन और इन्द्रियाँ यह, रजोगुणी बनी कार्य करें।।
हे राजन् तब जान लो, त्रेतायुग का ही काम है यह। यह सब चिन्ह तो जान लो, त्रेता की ही पहचान भएं।।

असन्तोष लोभ तृष्णा अभिमान, दम्भ मत्सर की अधिकता हो। जीव की रूचि और उत्साह, भी सकाम कर्म में हो।।
वह युग ही द्वापर युग है, यह ही चिन्ह हैं उस युग के। रज तम मिश्रण प्रधानता, को द्वापर तू जान ले।।
झूठ कपट तन्द्रा निद्रा, हिंसा विवाह और शोक मोह। भय दीनता की प्रधानता ही, तमोगुण प्रधान कलियुग समझो।।

कलियुग के राज्य में लोगों की, मति क्षुद्र हो जाती है। अधिकांश लोग हों अति निर्धन, पर आहार बढ़ जाती है।।
मन्दभागी अति होकर भी, चित्त कामना पूर्ण रहे। इस युग की नारियाँ भी, दुष्टा और कुलटा अधिक रहें।।

देश और गांव गांव में, लुटेरे प्रचुर ही रूप धरें। नव मत चलाकर पाखण्डी, मनमाना वेद के अथ दें।।
इस भाँति से वेदों को, भी वह कलंकित करते रहें। प्रजा का शोषण कर राजा, कमाई उनकी सब हर लें।।
ब्राह्मण जो जाने जायें, केवल निज पेट ही पाला करें। या अपनी जननेन्द्रिय की, तृप्ति में ही लगे रहें।।

ब्रह्मचारी ब्रह्मचर्य से, रहित अपावन ही होंगे। गृहस्थी न भिक्षा देकर, स्वयं ही भिक्षा मांगेंगे।।
वानप्रस्थी ग्रामों में ही, जाकर के बस जायेंगे। अति लोभी अर्थ पिशाच ही, संन्यासी हो जायेंगें।।

नारी का आकार तो, छोटा ही होता जायेगा। आहार बढ़ेगा उसका बहुत, मर्यादा भंग हो जायेगा।।
बहुत सन्तति होगी उन्हें, लज्जा जो भूषण उनका। उसे त्याग वह नारियाँ, कहेंगी कटु वचन ही सदा।।
चोरी और कपट में भी, वह अति निपुण हो जायेंगी। साहस भी बढ़ जायेगा, संकोच नहीं कर पायेंगी।।

वाणिज्यों के हृदय राजन्, अति क्षुद्र हो जायेंगे। कौड़ी से वे लिपटे रहें, और धोखा धड़ी कमायेंगे।।
धन सम्पन्न होने पर भी, बिन आपत्ति काल आये। सत्पुरुष करें जिसकी निन्दा, उस क्षुद्र व्यापार को अपनायें।।

स्वामी भले हो सर्वश्रेष्ठ, गर धन से रहित वह हो जाये। सेवक गण यह देख कर, उसे छोड़ चले जायें।।
जितना भी पुराना सेवक हो, पर उसपे विपदा आन पड़े। तब उस युग के स्वामी तो, उस सेवक को भी छोड़ दें।।
दुधारु गाय भी जिस पल, दूध देना बन्द करें। उस युग के लोग तो उनके भी, परित्याग से न संकोच करें।।

कलियुग के पुरुष अति लम्पट हों, चाहें बस वासना की तृपित। बस इस कारण ही प्रेम करें, सम्बन्ध का हो इक हेतु यही।।
विषय वासना वशीभूत, अति दीन यह हो जायें। माता पिता भाई बन्धु, सुहृद् मित्र भी त्यज जायें।।

शूद्र तपस्वी वेश धरी, दान ग्रहण करने लगें। मिथ्यारूप वह धर कर, अपना पेट भरने लगें।।
जिन्हें धर्म का तनिक भी ज्ञान नहीं, ऊंचे सिंहासन जा बैठें। गुरु बन कर वह जन ही, धर्म का फिर उपदेश करें।

कलियुग की प्रजा राजन्, सूखे से अति पीड़ित हो। इक ओर मार दुर्भिक्ष की, दूजे कर की भी वृद्धि हो।।
तन में केवल अस्थि पिंजर मन में बस उद्वेग भरे। प्राण रक्षण के लिये, इक टुकड़ा अन्न का नहीं मिले।।

कलियुग में तन को ढांपना, भी प्रजा को दुर्लभ हो। अन्न भी नहीं मिले उसको, कि उदर की ज्वाला शान्त हो।।
पीने को पानी नहीं मिले, सोने के लिये न धरती मिले। स्नान और आभूषण की, फिर समिधा कहाँ मिल सके?

दाम्पत्य जीवन भी उनकी, सहज सरस नहीं हो सकती। आकृति प्रकृति चेष्ठा भी, पिशाचवत् ही सब होंगी।।

कलिकाल में किंचित् धन के लिये, वैर विरोध करेंगे लोग। पुरानी मैत्री सद्भाव, कौड़ी हेतु ही त्यजेंगे लोग।।
कौड़ी कौड़ी के हेतु वह, बन्धु बान्धव का हनन करें। सर्वप्रिय अपने प्राणों से, भी हाथ उन्हें धोनें पड़ें।।

कलियुग के क्षुद्र प्राणी केवल, कामना वासना पूर्ण करें। अपना ही उदर भरना उनके, जीन का इक उद्देश्य भए।।
वृद्ध माता पिता रक्षण, पालन पोषण न पुत्र करें। निपुण योग्य अपने सुत की, मात पितु भी उपेक्षा करें।।

चराचर जगत् के परम पिता, परम गुरु हैं श्री हरि। उनके चरणों में समर्पित हैं, ब्रह्मा और इन्द्र आदि।।
उनका ऐश्वर्य अनन्त है, हैं इक रस सदा स्वरूप स्थित। किन्तु कलियुग के लोगों का, पाखण्डी हर लेते हैं चित्त।।
अपने कर्म और भावों से, प्रभु के विमुख वह हो जायें। भगवान की पूजा मूढ़ वह, कभी भी फिर न कर पायें।।

मृत्यु समय में आतुर हो, गिरते या फिसलते विवश ही हो। श्री हरि के नाम का उच्चारण, अनायास गर मुख से हो।।
सभी कर्म बन्धन उसके, छिन्न भिन्न हो जाते हैं। उत्तम से उत्तम गति, ऐसे जन पा जाते हैं।।
किन्तु हाय इस कलियुग का, कैसा विपरीत प्रभाव हो। उन प्रभु की आराधना में, नहीं जीव का अनुराग हो।।

कलियुग में अनेकों ही, दोष हैं हे राजन् जानो। सब वस्तु दूषित हो जायें, स्थान भी दोष प्रधान हों।।
अन्त:करण सब दोषों का, मूल स्त्रोत तू जान ले। किन्तु जब अन्त:करण में ही, श्री हरि आकर निवास करें।।
उनकी सन्निधि मात्र का, ऐसा कुछ प्रभाव हो। श्री प्रभु का हो वास जहाँ, सब दोषों का ही अभाव हो।।

उनके रूप गुण लीला धाम, और नाम के श्रवण से। उनके संकीर्तन ध्यान से, पूजन से और आदर से।।
श्री हरि जीव के आन्तर में, आकर के हों विराजमान्। कोटिश: जन्म के पाप भी, क्षण भर में हो फिर दग्ध जान।।

ज्यों अग्नि सोने से मिल, अशुद्धि उस की दूर करे। त्यों ही प्रभु हृदयस्थ हो, अशुभ संस्कार सभी कर हलें।।
विद्या तपस्या प्राणायाम, जीवों से मैत्री तीर्थ स्नान। व्रत दान और जप आदि, किसी भी साधन से तू जान।।
अन्त:करण की वास्तविक, शुद्धि बस हो न पाती है। पुरुषोत्तम हिय में आएं जब, त्यों जैसी हो जाती है।।

मृत्यु का समय है निकट आया, हे राजन् हो सावधान। पूर्ण शक्ति से हिय में, श्री कृष्ण को करो विराजमान्।।
सब वृत्तियां एकाग्र करी, गर ऐसा तुम कर पाओगे। तो निश्चय ही तुम जान लो, परम गति को पाओगे।।

जीव जो मृत्यु निकट हो, प्रभु ध्यान ही करना चाहिये। परमाश्रय सबके सर्वात्मा, श्री हरि को चित्त में बिठाइए।।
उनके ध्यान में जो रहें, प्रभु अपने में उन्हें लीन करें। उस भक्त को वह अपना, स्वरूप भी सहज ही दे डालें।।

यूं तो राजन् जान लो, है कलियुग दोषों का ही कोष। किन्तु एक महागुण भी, इसमें जानो है विशेष।।
इसमें श्री कृष्ण के नाम का, संकीर्तन गर किया जाये। सब आसक्ति मिट जाये, परमात्म प्राप्त ही हो जाये।।

सत्ययुग में हरि के ध्यान से, त्रेता में महायज्ञों द्वारा। द्वापर में विधिवत् पूजा से, जो फल प्राप्त है हो जाता।।
कलियुग में श्री भगवान का, नाम संकीर्तन गर करें। इस कीर्तन द्वारा सहज ही, सारे फल वह प्राप्त करें।

४) विभिन्न प्रकार के प्रलयों का वर्णन

शुकदेव बोले,
परमाणु से द्विपरार्ध तक, काल का है स्वरूप कहा। कितने वर्ष का हो हर युग, यह भी तुम्हें बता है दिया।।
अब तुम कल्प की स्थिति और, उसके प्रलय की भी सुनो। इक सहस्त्र चतुर्युगी को, ही ब्रह्मा का ही दिन जानो।।
ब्रह्मा का यह इक दिन ही, जान कल्प कहलाता है। इक कल्प में हैं चौदह मनु, ऐसा ही कहा जाता है।।

कल्प अन्त में उतना ही, समय प्रलय भी रहता है। यह प्रलय ही ब्रह्मा की, रात्रि भी जाना जाता है।।
तीनों लोक प्रलय हों तब, लीन यह हो जाते हैं। नैमित्तक प्रलय के नाम से, यह राजन् जाने जाते हैं।।
सारे विश्व को ब्रह्मा जी, अपने में ही समेट लें। पहले ब्रह्मा फिर शेषशायी, श्री नारायण भी शयन करें।।

यूँ रात के बाद दिन आये, दिन बीते रात्रि हो जाये। इक क्रम से जब ब्रह्मा का, काल सौ वर्ष हो जाये।।
जीवों के दृष्टिकोण से, दो परार्ध जब समाप्त हों। सप्त प्रकृतियाँ तब अपने, मूल कारण में लीन हों।।

यह ही तो राजन् तू जान, प्राकृतिक लय कहलाता है। पंचभूत से बना ब्रह्माण्ड, स्थूल रूप त्यज जाता है।।
कारण रूप में स्थित होकर, यह लय वहीं हो जाता है। मानो निज अण्डकोश में ही, पुन: समा यह जाता हे।।

प्रलय समय आ जाने पर, मेघ न बरसें पृथ्वी पर। किसी को अन्न ही नहीं मिले, जानो सौ सौ वर्ष तक।।
भूख प्यास से व्याकुल हो, सारी प्रजा विक्षिप्त भए। इक दूजे का भक्षण ही, उन सब का फिर काज बने।।

काल के इस उपद्रव से, सारी प्रजा ही क्षीण हो। प्रलय कालीन सांवर्तक, सूर्य का फिर प्रहार हो।।
अपनी प्रचण्ड किरणों से वह, सागर और पृथ्वी रस खेंचे। जीवों का तन भी शुष्क करे, धरती को पुन: वह जल न दे।।
श्री संकर्षण भगवान के, मुख से तब अग्नि प्रकटे। प्रलयकालीन यह अग्नि फिर, वायु के वेग से और बढ़े।।
अतल तल नीचे के सात, लोकों यह भस्म करे। वहाँ के प्राणी तो पहले, ही प्राण हों छोड़ चुके।।
नीचे से अग्नि की लपटें और, ऊपर से सूर्य प्रचण्ड ताप। ऊपर नीचे चहुँ ओर ही, ब्रह्माण्ड सब जल कर हों राख।।
मानो गोबर का उपला कोई, बनकर अंगार हो दहक रहा। तत्पश्चात् प्रलयकालीन, वायु का है प्रहार होता।।
शतश: वर्ष धूलि से ही, आकाश यह पूरा ढका रहे। तत्पश्चात् रंग रंग के, बादल आकाश में छा जायें।।
ब्रह्माण्ड के भीतर का सब जग, इक सागरवत् ज्यों हो जाये। जो कुछ भी है ब्रह्माण्ड में, जल में मग्न सब हो जाये।।

पृथ्वी के गुण गन्ध को फिर, जल अपने में लीन करे। गन्ध का गुण जब लीन हो पृथ्वी का प्रलय ही हो जाये।।
जल में घुल मिल कर पृथ्वी, फिर जल रूप हो जाती है। अपने कारण में ही जा, उसमें समा यह जाती है।।

तत्पश्चात् तेज तत्व, जल के गुण रस को ग्रस ले। नीरस होकर फिर जल यह, तेज में ही समा जाये।।
तेज के गुण रूप को, वायु फिर लय अपने में करे। रूप रहित हो तेज फिर, वायु में लीन ही हो जाये।।
आकाश वायु गुण स्पर्श को, अपने में अब मिला ही ले। स्पर्शहीन होकर वायु, आकाश में ही जा शान्त भए।।
तामस अहं आकाश के गुण, शब्द को तत्पश्चात् ग्रसे। शब्दरहित होकर आकाश तामस अहं में लीन भए।।
तैजस अहं इन्द्रियों को, अपने में ही लय करे। इन्द्रिय वृत्तियों को भी वह, लीन निज में करता है।।

इस विध राजन् जान तू ले, प्रलय का क्रम यह चलता है।।

तत्पश्चात महत्तत्त्व, अहंकार अपने में ग्रसें। त्रैगुण पुन: महत्तत्त्व को, अपने में ही लीन करें।।
यह सब महिमा है काल की, हे राजन् तुम जान लो। उनसे प्रेरित अव्यक्त प्रकृति, द्वारा गुणों का ग्रसन हो।।

केवल प्रकृति ही शेष फिर, हे राजन् है रह जाती। चराचर जग का मूल कारण, जानो है वह प्रकृति ही।।
अव्यक्त अनादि अनन्त और, वह नित्य और अविनाशी है। अपने कार्यों को लीन कर, जब साम्य अवस्था पाती है।।
तब काल के अंग वर्ष मास, दिन रात क्षण आदि कारण। परिणाम क्षय वृद्धि आदि, तब कोई विकार न हो धारण।।

स्थूल या सूक्ष्म रूप में तब मन वाणी या तीनों गुण। महत्तत्त्वादि विकार सब, प्राण बुद्धि और इन्द्रिय गण।।
और उनके देवता, कुछ भी शेष नहीं रहते। सृष्टि के लोक और कल्पना, उनकी स्थिति भी शेष नहीं रहते।।

स्वप्न सुशुप्ति जाग्रत तब, तीनों अवस्था नहीं रहें। आकाश जल पृथ्वी वायु, अग्नि और सूर्य भी नहीं रहे।।
सुप्त अवस्था के समान, सभी शून्य सा रहता है। तर्क के द्वारा तो इसका, अनुमान न सम्भव होता है।।
यह अव्यक्त ही जगत् का, मूलभूत है तत्त्व कहें। इसी अवस्था का नाम, प्राकृत प्रलय तू जान ले।।
प्रकृति पुरुष द्वौ शक्ति भी, तब काल प्रभाव से क्षीण हों। और विवश वह होकर के, निज मूल रूप में लीन हों।।

आत्यन्तिक प्रलय का अब, स्वरूप सुझाया जाता है। मोक्ष जिसको कहते हैं, रहस्य बताया जाता है।।
बुद्धि इन्द्रिय वा विषयों में, जो भासित है हो रहा। उनका वास्तविक अधिष्ठान, ज्ञान स्वरूप ही है कहा।।
आदि अन्त के सहित है वह, इस कारण वह सत्य नहीं। दृश्यमात्र है वह सभी, अधिष्ठान से भिन्न कोई सत्ता नहीं।।

जैसे दीपक नेत्र रूप, हैं तेज से भिन्न यह जानों नहीं। त्यों ही बुद्धि इन्द्रिय विषय, अधिष्ठान ब्रह्म से भिन्न नहीं।।
यद्यपि दर्शन में तो, भिन्न से ही वह भासित हों। ज्यों रज्जू में सर्प का, आभास मात्र तो एक ही हो।।
किन्तु वास्तव में दोनों का, कहीं कोई सम्बन्ध नहीं। अधिष्ठान और अध्यस्त का हो, वास्तव में सम्बन्ध नहीं।।

जाग्रत स्वप्न सुशुप्ति यह, हैं तीन अवस्था बुद्धि की। विश्व तैजस प्रज्ञ रूप, प्रतीति हो नानात्व की।।
केवल मायामात्र है वह, बुद्धिगत ही नानात्व है। इकमात्र सत्य है आत्मा, नहीं उससे कोई सम्बन्ध वा है।।

उत्पत्ति प्रलय से ग्रसित विश्व, समूह है अनेकों अंगों का। कभी ब्रह्म में यह भासित सा हो, और कभी यह नहीं होता।।
ज्यों आकाश में मेघ कभी, होता है कभी नहीं होता। किन्तु आकाश तो सर्वथा, सदा ही विद्यमान रहता।।

जगत् के व्यवहार में हैं, जो भी अव्ययी पदार्थ। उनके न होने पर भी, अव्यव हैं माने जाते सत्य।।
क्योंकि वह तो कारण हैं, जिनसे पदार्थ यह है बना। ज्यों वस्त्र के न होने पर भी, सूत का है अस्तित्व बना।।
उसी विधि कार्य रूप, इस जगत् के अभाव में। जगत् के कारण रूप अव्यव, की स्थिति तो बनी रहे।।

किन्तु यह कार्य कारण भाव, भी वास्तविक नहीं ब्रह्म में। क्योंकि कारण सामान्य है, कार्य विशेष वस्तु जानें।।
यह मोह भी जो है दीख रहा, जानो है केवल भ्रम मात्र। दोनों ही भाव अपेक्षक हैं, हैं इक दूजे पर ही आश्रित।।
इक दूजे के बिना नहीं, इनकी स्थिति कहीं हो सकती। दोनों के आदि अन्त भी हैं, हैं इस कारण यह मिथ्या ही।।

प्रपंच रूप विकार यह, हैं स्वप्न विकार के ही समान। तो भी ब्रह्म स्वरूप आत्म, ही है इसका अधिष्ठान।।
इस कारण उससे तो यह, भिन्न हो ही नहीं सकता। आत्म से भिन्न रूप में, नहीं इसका निरूपण हो सकता।।

यदि आत्मा से पृथक्, सत्ता भी मानें इसकी। तो भी आत्म के समान, चित्त रूप प्रकाशित यह होगी।।
इस भाँति भी आत्म में, वह एक रूप ही है सदा। आत्म से भिन्न इसका, अस्तित्व हो ही नहीं सकता।।

यह तो निश्चित सत्य जान, सत्य में है नानात्व नहीं। यदि सत्य परमार्थ में, नानात्व स्वीकार करे कोई।।
यह तो है फिर वैसा ही, ज्यों महाकाश घटाकाश भेद। या आकाश के सूर्य में, और प्रतिबिम्ब में हो भेद।।

जैसे एक स्वर्ण के ही, अनेकों रूप घड़े जायें। कंगन कुण्डल अनेकों ही, आभूषण उसके बन जायें।।
इसी विधि निपुण विद्वान, लौकिक और वैदिक वाणी से। उस आत्म रूप भगवान का, अनेकों विधि वर्णन करें।।

बादल सूर्य से उत्पन्न हो, और उससे ही प्रकाशित हो। सूर्य अंश नेत्रों के लिये, फिर भी दर्शन में बाधक हो।।
उसी विधि यह अहं भी तो, ब्रह्म से ही उत्पन्न हो। ब्रह्म से ही अस्तित्व पा, उससे ही यह प्रकाशित हो।।
ब्रह्म अंश जीव की, राह में यह बाधा बने। इस कारण निज स्वरूप का, साक्षात्कार न हो सके।।

सूर्य से प्रकट हुए बादल, पुन: जब खं भ्रम हों। तब निज स्वरूप सूर्य के, दर्शन में ने समर्थ हों।।
त्यों ही जब जीव के आन्तर में, जिज्ञासा की ज्योति जले। अहं उपाधि नष्ट हो, स्वरूप साक्षात्कार भए।।

विवेक खड्ग को कर में ले, मायामय अहं को जब काटे। इस बन्धन से हो मुक्त जीव, अपने स्वरूप में जाय टिके।।
यह ही तो माया मुक्त है, आत्म की वास्तविक स्थिति। आत्यन्तिक प्रलय के नाम से, यह ही है जानी जाती।।

तत्त्वदर्शी जन सब ही, कहते हैं यह सत्य भारत। ब्रह्मा से तृण पर्यन्त हैं, यहाँ पे जितने भी पदार्थ।।
वह सब ही हर काल में, जन्मते मरते रहते हैं। उत्पत्ति और प्रलय तो यह, नित्य ही होते रहते हैं।।

परिणाम वस्तु जग की, हो दीप शिखा या नदी प्रवाह। क्षण क्षण ही सब परिवर्तित हो, नहीं नित्य कोई रहता कदा।।
उनको देख के जीव यह, अनुमान सहज ही लगा सके। काल वेग में यह तन भी, नित्य बदलते जा रहे।।
इस कारण वे हर क्षण ही, उत्पत्ति प्रलय को प्राप्त हों। जैसे आकाश में तारागण, नित्य ही गतिवान हों।।
किन्तु स्पष्ट रूप से, उनकी गति नहीं दीख सके। त्यों ही काल के कारण जो, उत्पत्ति और प्रलय भए।।
उसका न तो दर्शन हो, न अनुमान ही हो सके। माया मोहित जीव सदा, निज को नित्य ही माना करे।।

चार प्रकार के प्रलय का, राजन् तुमको कह दिया। नित्य नैमित्तिक प्राकृतिक, आत्यन्तिक प्रलय है इन्हें कहा।।
वास्तव में तो काल की, अति सूक्ष्म गति ही है ऐसी। इसकी चाल न समझ सके, सृष्टि का प्राणी कोई।।

सब जीवों और शक्तियों के, हैं नारायण इक आसरा। है सब उन्हीं की लीला कथा, जो भी संक्षेप में तुम्हें कहा।।
भगवान की पूर्ण लीला का, वर्णन कौन भला कर सके? स्वयं प्रजापति ब्रह्मा भी, उनके वर्णन में असमर्थ रहे।।

अति दुस्तर भव सागर से, जो जन होना चाहें पार। अथवा दु:ख दावानल से, जो हुए हैं व्यथित अपार।।
श्री हरि लीला कथा श्रवण, है उनके लिए एको साधन। भवभय रोग से छुटने का, उत्तमतम है यही रसायन।।

नहीं अन्य नौका कोई, जो भव से पार ले जा सके। इस महा रसायन का सेवन, मनोरथ सब पूर्ण करे।।

जो राजन् है तुमको कहा, श्रीमद्भागवत का पुराण। सनातन ऋषि नर नारायण, ने सर्वप्रथम किया उद्गान।।
श्री नारद ने उनसे सुनकर, मेरे पिता को सुनाया था। श्री कृष्ण द्वैपायन व्यास ने, इस विधि इसको पाया था।।

बाद्रायण श्रीमन्व्यास ने, प्रसन्न होई यह मुझे दिया। वेदतुल्य इस संहिता का, उपदेश था मेरे लिये किया।।
नेमिषारण्य में शौनकादि, ऋषि महासत्र करेंगे जब। उनके प्रश्न पूछने पर, पौराणिक वक्ता सूत जी तब।।
उन लोगों को इस परमहंस, संहिता का श्रवण करायेंगे। भवसागर पार ले जाये जो, वह नोका उन्हें दे जायेंगे।।

५) शुकदेव का हितोपदेश

शुकदेव बोले,
श्रीमद्भागवत पुराण में, पुन: पुन: कीर्तन हुआ। विश्वात्म श्री हरि के, गुणों का है चिन्तन हुआ।।
ब्रह्मा रुद्र भी जानो तुम, हे राजन् हैं हरि का स्वरूप। उनके प्रसाद और क्रोध की, लीला का है अभिव्यक्त रूप।।

हे राजन् यह पशुबुद्धि, अब तुम ऐसी छोड़ दो। मैं मरूँगा यह अविवेकी की, धारणा अब तुम छोड़ दो।।
मानो यह तन पहले न था, अब है फिर नष्ट हो जायेगा। क्यों अपने को तन ही समझो, नहीं लागू यह तुम पर होता।।

ज्यों बीज से अंकुर उससे पुन:, बीज की ही हो उत्पत्ति। त्यों ही इक देह से दूजा देह, पुन: जीते की ही उत्पत्ति।।
किन्तु तुम तो किसीसे भी, उत्पन्न नहीं हुए राजन्। न ही पुत्र पौत्र के तन में, जन्म पुन: लोगे राजन।।
ज्यों अग्नि तो काष्ठ से, सर्वथा भिन्न ही है रहती। काष्ठ की उत्पत्ति विनाश, प्रभावित उसे न कर सकती।।
त्यों ही तुम जानो राजन्, इस तन से सर्वथा भिन्न हो। इसके जन्म मरण आयु, प्रभाव से तुम परिच्छिन्न हो।।

स्वप्नावस्था में ज्यों लगे, हाय मैं मारा गया। मेरा सीस कटा और लोग मुझे, ले जा श्मशान में देंगे जला।।
किन्तु यह सारी अवस्थायें, हैं तन की ही दीखती। आत्म का तो जान लो, इनसे कछु सम्बन्ध नहीं।।
द्रष्टा तो उन सारी ही, अवस्थाओं से है परे। जन्म और मृत्यु रहित, शुद्ध तत्त्व स्वरूप है वे।।

ज्यों घट के टूट जाने पर, आकाश पूर्ववत् रहे अखण्ड। पर घटाकाश अब नहीं रहा, मानो मिला महाकाश अखण्ड।।
वास्तव में नहीं भेद हुआ, दोनों पूर्ववत् एक रहे। त्यों ही देहपात पे लगे, जीव और ब्रह्म एक हुए।।
वास्तव में इक ब्रह्म ही था, उससे भिन्न था कुछ नहीं। भिन्नता या अब्रह्मता थी, केवल प्रतीति मात्र ही।।

यह मन ही तन विषय और, कर्मों की कल्पना सारी करे। अविद्या के कारण जानो, इस मन की सृष्टि भए।।
वास्तव में संसार चक्र, में भ्रमण का कारण है माया। माया के कारण ही जीव, है आवागमन में पड़ा हुआ।।

तेल तेल का पात्र और, बाती अग्नि संयोग जो हो। तब लौ ही तो दीपक में, दीपकत्व कुछ शेष हो।।
त्यों ही आत्म का कर्म मन, तन इसमें चैतन्य जो। इनके साथ ही बना रहे, आत्म का सम्बन्ध जो।।
तब लौ ही जन्म मरण, के चक्र में पड़ा रहे। त्रैगुणी वृत्तियों सहित, उत्पत्त स्थिति और नाश भए।।

ज्यों दीपक के बुझ जाने से, तत्त्व तेज का विनाश न हो। त्यों ही संसार के नाश से, उस आत्म तत्त्व का नाश न हो।।

कार्य कारण व्यक्त और, अव्यक्त सबसे है वह परे। आकाश सम सबका आधार, वह तो सदा निश्चल रहे।।
नित्य है वह अनन्त है, अपनी उपमा वह आप भए। आत्म की आत्म बिना, दूजी उपमा न हो सके।।

अपनी विशुद्ध विवेकवान्, बुद्धि का अब आश्रय लो। परमात्म के चिन्तन से, अब इसको भरपूर करो।।
अपने ही अन्तर में स्थित, परमात्म को साक्षात् करो। हे राजन् इस राही तू, अपने आप को पहचान लो।।

मृत्यु की भी हो मृत्यु तुम, तुम तो स्वयं ही ईश्वर हो। ब्रह्मशाप से प्रेरित तक्षक की, पहुँच से बहुत परे तुम हो।।
भस्म न कर पायेगा वह, उसकी क्या हम बात कहें। स्वयं मृत्यु और मृत्यु समूह, पास न तेरे फटक सके।।

यह ही तव अनुसन्धान हो, इस प्रकार चिन्तन कर तू। सर्वाधिष्ठान परब्रह्म हूँ मैं, अधिष्ठान ब्रह्म मैं ही हूँ।।
इस प्रकार अपने को तुम, वास्तविक स्वरूप में स्थित करो। वास्तविक स्वरूप तेरा जानो, इक रस अखण्ड अनन्त ही हो।।

तब विषपूर्ण जिह्वा अपनी, चाहे लपलपाये वह। अपने होठों के कोनों को, चाटता ही भले आये वह।।
अपने विषपूर्ण दंश से, चाहे तव चरण को वह डसे। क्षणभर को भी हे राजन्, वह विचलित तुम्हें न कर सके।।
निज आत्म में स्थित हुए, इस तन की बात तो दूर रही। इस सम्पूर्ण विश्व को ही, निज से न पृथक् देखोगे कभी।।

हे आत्म स्वरूप परीक्षित् जो, प्रश्न था तुमने मुझसे किाय। विश्वात्म भगवान की, लीला से वह सम्बन्धित था।।
उत्तर उसका मैंने दिया, अब और कहो क्या सुनोगे तुम? प्रभु की लीला का गान सुना, इस पर अब अन्य क्या सुनोगे तुम।।

६) शुकदेव का पूजन व प्रस्थान, परीक्षित् की मुक्ति, जनमेजय का सर्प-यज्ञ और वेदों के शाखा-भेद

सूतजी बोले,
व्यास सुत शुकदेव मुनि, आत्म अनुभव सबमें करें। चराचर सारे जगत् प्रति, सम दृष्टि से वह वरतें।।
प्रभु शरणागत और श्री, शुकदेव मुनि से सुरक्षित जो। राजा परीक्षित् ने उनका, उपदेश प्रेम से ग्रहण कियो।।
सीस झुकाकर अब उनके, चरणों के अधिक निकट आये। अंजलि बान्धी मुनिवर से, प्रार्थना वह करने लगे।।

परीक्षित् बोले,
हैं करुणा के स्वरूप आप, मुझपर परम उपकार किया। आनन्द निधि श्री हरि का, सत्य स्वरूप वर्णन किया।।
उनकी दिव्य लीलाओं का, वर्णन आपसे है सुना। आपकी कृपा से हे द्विजवर, अनुगृहीत और कृत्कृत्य हुआ।।

निज स्वार्थ और परमार्थ के, ज्ञान शून्य हैं जग के जीव। दु:खों के दावानल में, नित्य विदग्ध हैं जग के जीव।।
भगवन्मय महात्मा जन, अनुग्रह उनपर सदा करें। जीवों का कल्याण ही, उनका सहज स्वभाव भए।।

मेरे सहित अनेकों ने, आपके श्री मुख से सुना। श्री भागवत महापुराण का, पुण्यमय यह श्रवण किया।।
पग पग पर श्री हरि की, लीला का यहाँ वर्णन है। उसके गान में आत्म राम, महापुरुषों का रमण है।।

अभय पद ब्रह्म और आत्म का, एकत्व साक्षात्कार दिया। परम शान्त स्वरूप ब्रह्म में, स्थित मुझे करा दिया।।
तक्षक या कोई अन्य भी, चाहे मृत्यु का निमित्त बने। दल के दल मृत्यु भी अब, भयभीत मुझे न कर सकें।।

हे द्विजवर अब आज्ञा दें, मैं वाणी अपनी मौन करूँ। संस्कार कामना शून्य चित्त, परमात्म में विलीन करूँ।।
परमात्म में इन्हें लय कर, अब त्यागूं मैं अपने प्राण। आपके द्वारा मिला मुझे, विज्ञान सहित जो परम ज्ञान।।
उसमें निष्ठा पाकर के, अज्ञान है नष्ट हुआ मेरा। श्री हरि के कल्याणमय, स्वरूप का साक्षात्कार मिला।।

सूतजी बोले,
श्री शुकदेव से इस विधि, परीक्षित् ने फिर वचन कहा। तत्पश्चात् प्रेम पूर्वक, अर्चन पूजन उनका किया।।
परीक्षित से विदा लेकर, महात्मा जन को संग लिाय। समागत भिक्षु जन के संग, वहाँ से फिर प्रस्थान किया।।

राजर्षि परीक्षित् ने, बाह्य आसरे सब छोड़े। अन्तरात्मा अपने को, समाहित किया परमात्म में।।
ध्यान मग्न ऐसे हुए वह, श्वास प्रश्वास भी बन्ध हुआ। ऐसा आभास होने लगा, ज्यों वृक्ष के ठूंठ हो कोई पड़ा।।

गंगा के तट पर उन्होने था, कुशा को ऐसे बिछा दिया। अग्र भाव था पूर्व ओर, निज मुख उत्तर की ओर किया।।
आसक्ति और सब संशय तो, पूर्व ही छिन्न थे हो चुके। ब्रह्म आत्म एकत्व स्थित, वह ब्रह्म स्वरूप ही हो गए।।

शृंगी ऋषिकुमार ने था, क्रुध होकर यह शाप दिया। अब उनका भेजा तक्षक, राजा को डसने आ गया।।
राह में कश्यप नाम के, इक ब्राह्मण को उसने देखा। सर्प विष की चिकित्सा में, अति निपुण वह ब्राह्मण था।।
तक्षक ने बहुत धन देकर, कश्यप को लौटा दिया। राजा के निकट न पहुँचे वह, ऐसा उसने उपाय किया।।
निज इच्छानुरूप वेश, तक्षक था धारण कर सकता। इस वरदान के कारण उस, ब्राह्मण का फिर वेश धरा।।
राजा परीक्षित् निकट जा, फिर उनको डस लिया उसने। किन्तु राजा तो पहले ही, थे ब्रह्म भाव में स्थित हुए।।
तक्षक के विष की अग्नि से, तन उनका अब जल गया। सामान्य तन समान ही, जलकर वह राख की ढेरी हुआ।।
पृथ्वी आकाश दिशाओं में, हाहाकार होने लगा। राजा की देखी परम गति, देवासुर जीव सब विस्मित था।।

देवों के दुन्दुभि नाद, स्वत: ही फिर होने लगे। अप्सरा और गन्धर्व मिली, गायन फिर करने लगे।।
साधु साधु कहकर के, देवता हर्ष मनाने लगे। और वह आकाश से, फूल फिर बरसाने लगे।।

जनमेजय ने जब सुना, मेरे पिता को तक्षक ने डसा। अति क्रुध होकर उसने, ब्राह्मणों को निज संग लिया।।
विधिवत् हवन कुण्ड में, यज्ञ वह करने लगा। सर्पों का अग्नि कुण्ड में, आवाहन वह करने लगा।।

तक्षक ने देखा जनमेजय, के सत्र की जलती अग्नि में। महा सर्प सब स्वत: ही, भस्म हैं होते जा रहे।।
अति भयभीत हुआ तक्षक, इन्द्र शरण में जा पहुँचा। बहुत सर्प हुए भस्मीभूत, पर तक्षक वहाँ पे न आया।।
यह देखी जनमेजय, ब्राह्मणों से फिर यूँ बोला। सर्प अधम यह तक्षक क्यों, भस्म है अब तक नहीं हुआ?

ब्राह्मणों ने कहा राजन्, तक्षक है इन्द्र की शरण गया। हैं उसकी रक्षा कर वह रहे, तक्षक को स्तम्भित है किया।।
इस कारण ही अभी तक, वह अग्नि कुण्ड में नहीं गिरा। और अभी तक तक्षक वह, भस्मीभूत है नहीं हुआ।।

जनमेजय थे अति बुद्धिमान् और थे वह महावीर। ब्राह्मणों की उन बात सुनी, और ऋत्विजों से वह बोले फिर।।
हे ब्राह्मण गण आप सब, इन्द्र सहित ही बुलायें उसे। तक्षक को बुलाकर के, अग्नि में ही गिरायें उसे।।

उस यज्ञ में फिर ब्राह्मणों ने, सह इन्द्र बुलाया तक्षक को। अग्नि कुण्ड में इस भाँति, आवाहन उन्होने कियो।।
मरुद्गण के सहचर इन्द्र, सहित ऐ तक्षक तू आ जा। शीघ्र ही आ और आकर के, अग्निकुण्ड में तू जल जा।।

उन ब्राह्मण गण ने जब, आकर्षण मन्त्र का पाठ किया। तब तो इन्द्र भी अपने स्थान, स्वर्ग से विचलित हो गया।।
तक्षक के सहित विमानारूढ़, इन्द्र बहुत घबरा गया। और विमान भी उसका तब, था चक्कर खाने लगा।।

अंगिरा नन्दन बृहस्पति, ने देखा जब यह दृश्य। देवेन्द्र विमान और तक्षक संग, आकाश से हो रहे हैं पतित।।
अग्नि कुण्ड में शीघ्र ही, प्रवेश वह पाने जा रहे। तब राजा जनमेजय से, बृहस्पति ने यह वचन कहे।।

बृहस्पति बोले,
नहीं आपके योग्य कर्म, तक्षक का यह हनन राजन्। अमृत पान है कर यह चुका, सो अजर अमर यह हुआ राजन्।।
जगत् के सब प्राणी अपने, कर्मानुसार ही गति पायें। जीवन मरण और मरणोत्तर, गति कर्म से ही पायें।।
कर्मों के अतिरिक्त नहीं, सुख दु:ख अन्य कोई दे सके। सांप चोर आग विद्युत, या भूख प्यास सब निमित्त बनें।।
कथन मात्र ही है यह सब, वास्तविकता इतनी जानो। अपने प्रारब्ध कर्म का ही, उपभोग करें प्राणी जानो।।

बहुत से निरपराध सर्प, अग्नि में तूने जला दिये। इस अभिचार यज्ञ का फल, केवल जीव हिंसा ही भए।।
इस कारण इस यज्ञ को, तुरन्त तू राजन् बन्द करो। इस जग में सब जीवों के, भोग प्रारब्ध वश ही हों।।

सूत बोले,
जनमेजय ने हे ऋषियों, बृहस्पति का मान किया। उनकी आज्ञा को उसने, आदर दे शिरोधार्य किया।।
सर्पसत्र उस बन्द किया, और बृहस्पति की पूजा की। विधिवत् उनका पूजन कर, श्रद्धा अपनी प्रकट करी।।

प्रभु की महामाया से ही, हे द्विजवर यह सब हुआ। ब्राह्मण का क्रोध राजा को शाप, उनकी मृत्यु और यह सत्र हुआ।।
अनिर्वचनीय यह माया, जीव को मोहित यह करे। प्रभु का स्वरूप होकर भी जीव, क्रोधादि के वश में भए।।
गुण वृत्तियों के वशीभूत हुआ, यह तन में ही भरमा जाए। दूजों को भी दु:ख वह दे, और स्वयं भी उसको भोगा करे।।
अपने प्रयत्नों से इसको, निवृत्त न कर पाये कोई। प्रभु के स्वरूप का भजन ही, माया निवृत्ति की राह कही।।

यह दम्भी यह कपटी है, बुद्धि से दम्भ कपट का स्फुरण। इसको ही माया जान ले, यह सब है माया का ही कर्म।।
आत्मवादी जहां आत्म की, ही चर्चा में नित्य लगें। भयभीत हुई यह माया वहां, मोह आदि प्रकट न कर सके।।
माया आश्रित नाना विषाद, नहीं परमात्म स्वरूप में। परमात्म तो इनसे परे, सदा ही निर्विशेष रहे।।
वाद विवाद तो दूर रहा, मन जो संकल्प विकल्प करे। परमात्म के ध्यान में तो, वह मन ही स्वत: मौन भए।।

कर्म सामग्री और कर्म, और उन द्वारा जो हो साध्य। इन तीनों के संयोग से, जीव बने अहंकारात्मक।।
यह सब जहाँ पे हैं नहीं, वह आत्म रूप परमात्मा। न तो बधित ही हो किसीसे, न विरोध वहाँ भासता।।
उस परम स्वरूप के विचार, में जो जीव खो जाता है। मायामय मन ही लहरें लांघ, आत्म में स्थित हो जाता है।।

मुमुक्षु और विचारवान्, परमपद जो ध्याया करे। नेति नेति कहकर वह, अन्य का स्वत: निषेध करें।।

श्री विष्णु के परम पद, को ही प्राप्त वह करते हैं। न निषेध कभी न त्याग हो, उस परम पद को पाते हैं।।
सब श्रुतियां और महात्मा जन, इक मत से इसे स्वीकार करें। अन्त:करण को शुद्ध करी, निज मन को जो एकाग्र करें।।
अनन्य प्रेम से परिपूर्ण, शुद्ध हुए हृदय द्वारा। परम पद आलिंगन कर, वहीं पे जायें वह समा।।

श्री विष्णु का है यह स्वरूप, यही परम पद है उनका। तन में रहे न अहं भाव, और मिटे सारी ममता।।
वे ही जन प्रभु विष्णु का, परम पद यह पा सकें। मैं मम में भरमाये हुए, दुर्जन दूर ही रह जायें।।

इस परम पद को जो चाहे, सहनशील वह हो जाये। कटुवचन सुनकर के भी, अपमान वह किसी का नहीं करे।।
इस मृत्यु धर्मा तन में, अहंता ममता नहीं करे। इस देह के कारण किसी से भी, वैर द्वेष वह नहीं करे।।

श्री कृष्ण का ज्ञान अनन्त है, उन्हीं के चरण का ध्यान किया। उसी ध्यान में बैठकर, श्री भगवत महापुराण पढ़ा।।
उनके ही श्री चरणो में, मैं सीस झुका के नमन करूँ। और इस पुराण को मैं, पूर्ण अब सम्पन्न करूँ।।

शौनक बोले,
श्री वेदव्यास के शिष्य पैल, महर्षि और अन्य महात्मा। थे वेदों के आचार्य महा, वेदों का विभाजन उन्होने किया।।
क्योंकर यह विभाजन कर पाये, कृपया यह हमें बतलायें। इसका सारा वृत्तान्त आप, कृपा करी अब बतलायें।।

सूत बोले
परमेष्ठि श्री ब्रह्मा जब, पूर्णतय: एकाग्र हुए। सृष्टि ज्ञान सम्पादन ही, एकमात्र उनके हेतु थे।।
उनके हृदय आकाश से, विलक्षण अनहत् नाद उठा। कण्ठ तालु आदि सब ही, के घर्षण से रहित वह था।।
निज मनोवृत्ति को रोक कर, चित्त को जो एकाग्र करे। ऐसा जीव निज आन्तर में, उस अनहत् नाद को सुन सके।।

महायोगी जन उस अनहत, नाद की करें उपासना। द्रव्य क्रिया कारक रूपा, मल का करें ऱ्हास वहाँ।।
परम गति रूपा मोक्ष, को वह जन फिर प्राप्त करें। जन्म मृत्यु रूपा यह चक्र, उनके लिये फिर नहीं रहें।।

उसी अनहत नाद से, ओम्कार है प्रकट हुआ। अ उ म की तीनों, मात्रा से वह युक्त कहा।।
इस ओम्कार की शक्ति से, अव्यक्त प्रकृति व्यक्त भए। अव्यक्त अनादि ओम्कार, है स्वयं प्रकाश परमात्म वे।।
परम ब्रह्म परमात्मन् ही, जिनको है कहा जाये। उनके स्वरूप का बोध भी, ओम्कार से हो पाये।।

श्रवणेन्द्रिय की शक्ति, लुप्त ही जब हो जाये। तब भी ओम्कार का, प्रकाशक तत्त्व जो सुन पाये।।
सुशुप्ति और समाधि में, सबका अभाव भी जाने जो। वह ही तो परमात्म का, जान विशुद्ध स्वरूप हो।।
वही ओम्कार परमात्म के, हृदयाकाश में प्रकट हो। वह ही तो अभियक्त करे, वेद रूपा वाणी को।।

अपने आश्रय परब्रह्म का, साक्षात् वाचक है यह। उपनिषद् वेद और मन्त्रों का, यह ही सनातन बीज भए।।
हे शौनक इस ओम् के, तीन वर्ण हैं जान ले अ उ म के नाम से, इन तीनों को पहचान ले।।

सत्त्व रज तम तीनों गुण, ऋक् यजु: साम यह तीनों नाम। भू भुव: स्व: यह तीन अर्थ, जाग्रत स्वप्न सुशुप्ति जान।।
इन तीन वृत्ति के रूप में, तीन संख्यावाले भावों को। ही धारण यह हैं करते, यह रूप तू इसका जान लो।।

तत्पश्चात् श्री ब्रह्मा ने, ओमकार से ही रचा। अन्त:स्थ ऊष्म स्वर, ऱ्हस्व दीर्घ लक्षण दिया।।
यूं अक्षर साम्राज्य की, श्री ब्रह्मा ने सृष्टि करी। इसी विधि सम्पूर्ण, वर्णमाल उन्होने रच दी।।

उसी वर्णमाला द्वारा, उन अपने चारों मुखों से। होता उध्वर्यु उद्गाता, और ब्रह्मा भी रच दिये।।
इन चार ऋत्विजों के, कर्म बताने के लिये। ओमकार व्याहृतियों सहित, चारों वेद फिर प्रकट किये।।
निज पुत्र मरीचि आदि को, वेदाध्ययन में देखा कुशल। वेदों की शिक्षा देकर, उन सबको किया उनमें सफल।।
धर्म के उपदेश में, वे सभी कुशल जब हो गये। अपने पुत्रों को उन्होने, फिर अध्ययन यह करवाये।।

उन लोगों के ही नैष्ठिक, ब्रह्मचारी शिष्य प्रशिष्यों ने। सम्प्रदाय रूप में वेदों की, रक्षा कर चतुर्युगों में।।
द्वापर युग के अन्त में, ऋषियों ने किया विभाजन उनका। ब्रह्मवेत्ता ऋषियों ने, देखा ऱ्हास है होने लगा।।
समय के फेर से जीवों की, आयु और बुद्धि क्षीण हो। आत्मसात् न करें वेद, शक्ति उनकी हीन हो।।
तब अपने हृदय में विराजमान्, परमात्म की प्रेरणा से। उन वेदों के ऋषियों ने, अनेकों ही विभाग किये।।

श्री ब्रह्मा शंकर आदि ने, इस वैवस्वत मन्वन्तर में। विनती की जीवन दाता, धर्म रक्षक जब श्री हरि से।।
ऋषि पराशर के द्वारा, सत्यवती के गर्भ से। धर्म की रक्षा के लिये, निज अंश कला के रूप में।।
व्यास का रूप ही धर करी, अवतार उन्होंने धर लिया। इस युग में उन्होंने ही, चतुर्विभाग वेदों का किया।।

मणियों के समूह से ज्यों, विभिन्न मणि छांटी जायें। मन्त्र समूहों से त्यों ही, श्री व्यास देव ने चयन किये।।
भिन्न मन्त्रों से ऋक् यजु:, साम अर्थव संहिता की। चार शिष्य बुला अपने, इक इक संहिता उनको दी।।

बह्वृच नामक प्रथम ऋक्, संहिता दी पैल को। यजु: की निगद् नामक संहिता, दी वैशम्पायन को।।
सामश्रुतियों की छान्दोग्य संहिता दी श्री जैमिनी को। अथर्वांङ्गिरस संहिता का, ज्ञान दिया प्रमन्तु को।।

पैल मुनि ने पुन: अपनी, संहिता के दो विभाग किये। इन्द्रप्रमिति और वाष्कल को, इक इक भाग फिर सिखलाये।।
वाष्कल ने पुन: अपनी, शाखा के किये चार विभाग। भिन्न भिन्न निज शिष्यों को, सौंप दिये चारों विभाग।।
बोध्य याज्ञवल्क्य पराशर, अग्निहोत्र को पठाया उन। अब परम संयमी इन्द्रप्रमीति, के विभोग की बात तू सुन।।
माण्डूकेय ऋषि को अपनी, संहिता फिर पढ़ाई उन। देवमित्र माण्डूकेय शिष्य थे, सौभरि आदि को पठाया उन।।

संहिता के किये पांच विभाग, पाण्डूकेय पुत्र शाकल्य ने। वात्स्य मुद्गुल शालीय गौखल्य, शिशिर को पढ़ाया उन्होने।।
इक अन्य शिष्य शाकल्य के थे, नाम था जातुकर्ण्य मुनि। निज संहिता के किये त्रै विग, उससे निरुक्त सम्बन्धित थी।।
अपने शिष्य बलाक पैज, वैताल विरज् पढ़ाये उन। निरुक्त के साथ ही शिष्यों को, ज्ञान फिर समझाये उन।।

वाष्कल पुत्र वाष्कलि ने फिर, इक शाखा रची उन सब में से। उस शाखा के नाम तो, वालखिल्य ही हो गए।।
बालायनी भज्य और कासान ने, उस शाखा को ग्रहण किया। पूर्वोक्त सम्प्रदाय अनुकूल, इन ब्रह्मर्षियों ने इन्हें धारा।।
ऋग्वेद सम्बन्धित बह्वृच, शाखाओं को ग्रहण किया। वेद विभाजन के इतिहास, श्रवण से जीव मुक्त होता।।

कुछ शिष्य थे वैशम्पायन के, चकराध्वर्यु नाम था। गुरु के ब्रह्म हत्या जनित, पाप का प्रायश्चित इन्होने किया।।

इस व्रत का अनुष्ठान किया, इसीसे नाम यह इन्हें मिला। याज्ञवल्क्य के नाम से, इक अन्य मुनि भी शिष्य था।।
गुरु वैशम्पायन से, जाकर उन्होने यूँ कहा। हे गुरुवर अति क्षीण हैं, शक्ति से चकराध्वर्यु सदा।।
इनके व्रत के पालन से, लाभ है कितना हो सकता? प्रायश्चित आपका सम्पन्न हो, करूँगा मैं उग्र तपश्चर्या।।

दम्भपूर्ण यह वचन सुनी, वैशम्पायन अति क्रुध हुए। नहीं चाहिये तुमसा शिष्य मुझे, ब्राह्मण ा जो अपमान करे।।
अभी तक तुमने मुझसे, अध्ययन किया कभी ज्ञान जो। शीघ्रतम उसे त्याग कर, यहाँ से अब प्रस्थान करो।।

देवरात सुत याज्ञवल्क्य ने, गुरु की आज्ञा पाते ही। उनसे ज्ञान जो पाया था, यदुर्वेद की वमन करी।।
वहाँ से फिर वह चल दिये, जब मुनियों ने यह देखा। याज्ञवल्क्य ने यजुर्वेद का वमन है कर दिया।।
चित्त में उनके लोभ उठा, किस विध इसको हम अपना लें। किन्तु ब्राह्मण के रूप में तो, हम इसे ग्रहण न कर सकें।।
यह सोची तीतर रूप धरा, और संहिता को चुरा लिया। इस कारण यजुर्वेद की, अति रमणीय वह शाखा।।
तैत्तरीय के नाम से, ही जानो प्रसिद्ध हुई। इसी नाम से जग में, वह प्रचलित है हो गई।।

याज्ञवल्क्य ने फिर सोचा, मैं ऐसीर श्रुतियाँ प्राप्त करूँ। गुरु के पास भी जो न हो, ऐसा ज्ञान मैं पा ही लूँ।।
इसी उद्देश्य को लेकरी, उपासना सूर्य की करने लगे। याज्ञवल्क्य मुनि ने फिर, सूर्योपस्थान आरम्भ किये।।
याज्ञवल्क्य बोले,
ओमकार स्वरूप प्रभु सूर्य को, नमस्कार मैं करता हूँ। काल स्वरूप हं स्वयं आप, जगत् आत्म आपको नमन करूँ।।
ब्रह्मा से ले तृण पर्यन्त हैं चतुर्विध प्राणी जो। हृद् देश में सबे और बाहर, आकाश में आप ही व्याप्त हों।।
फिर भी उपाधि धर्मों से, आवृत्त आप न हो सकें। सबमें सब बनकर स्वयं रहें, फिर भी हैं आप अद्वितीय हे।।
क्षण लव निमेष अवयवों से, मलिकर संवत्सर जो बने। उनके द्वारा और जल के, आकर्षण और विकर्षण से।।
सब लोकों की जीवन यात्रा, हैं प्रभु आप ही चला रहे। प्राण बने सबमें स्वयं, आप ही तो विचरा करें।।

सब देवों में सर्वोत्तम आप, जो जन उपासें आपको। वेदविधान से तीनों सम, जिन द्वारा आपका पूजन हो।।
उनके सब दु:ख और पापों को, सबीज ही आप भस्म कर दें। हैं मूल कारण सृष्टि के, स्वामी हैं सक ऐश्वर्यों के।।
आपके इस अति तेजोमय, मण्डल का हम ध्यान करें। चित्त पूर्ण एकाग्र करी, पूजा आपकी हम करें।।

अन्तर्यामी आप प्रभु, हैं सबके ही आत्म स्वरूप। चराचर प्राणी जगत् के, हैं प्रभु आपके ही आश्रित।।
अचेतन मन इन्द्रिय और, प्राणों के आप ही प्रेरक हैं। जीवन दाता हैं आप प्रभु, आप ही इनके धारक हैं।।

अन्धकार रूप अजगर मुख में, यह लोक अचेतन पड़े रहें। करुणा स्वरूप प्रभु आप ही, दृष्टि से इन्हें चेतन करें।।
समय समय के अनुठान, परम कल्याण का साधन जो। आप ही उनमें लगाकर के, आत्माभिमुख करें जीव को।।
त्यों दुष्टों को भयभीत करी, राजा निज राज्य में विचरा करे। त्यों ही आक्रान्त कर दुष्टों को, ब्रह्माण्ड में विचरण आप करें।।
चहुँ दिशा में दिक्पाल, अंजलि बान्धे खड़े रहें। आपके श्री चरणों में वह, उपकार समर्पित्त करते रहें।।

उभय चरण प्रभु आपके, वन्दित हैं महानुभावों से। गुरु जानी सब ऋषि मुनि, त्रैलोक में वन्दना करते रहें।।
मैं भी आपके चरण कमल, की ही शरण में हूँ प्रभु। अब तक जो किसी को नहीं मिला, यजुर्वेद प्राप्त हो मुझे प्रभु।।

सूत बोले,
याज्ञवल्क्य ने सूर्य का , जब इस विधि गुणगान किया। अति प्रसन्न होकर उन्होने, अश्व रूप फिर स्वयं धरा।।
यदुर्वेद के उन मन्त्रों का, उन्होने फिर उपदेश किया। जिनका ज्ञान अभी तक, था नहीं किसी को प्राप्त हुआ।।

याज्ञवल्क्य मुनि ने फिर, मन्त्र रच दिये। यजुर्वेद के विभाग पंद्रह, उन मुनि ने कर दिये।।
वाजसनेय शाख के, नाम से वही प्रसिद्ध हैं। कण्व माध्यन्दिन आदि ऋषिगण, द्वारा हुई वह सिद्ध हैं।।

महर्षि कृष्णद्वैपायन ने, जैमिनी मुनि को पढ़ा दिया। साम संहिता उनको दी, यह पहले हूँ कह चुका।।
उनके पुत्र सुमन्तु थे, और उनके पुत्र थे सुन्वान्। पुत्र और पौत्र को उन्होने, दिया इक इक संहिता का ज्ञान।।

जैमिनी मुनि के एक शिष्य, का नाम था सुकर्मा। महापुरुष सुकर्मा ने, ज्यों वृक्षों की हों बहु शाख।।
ऐसे ही सामदेव की, अनेक शाख करी उन्होने। कोमलनिवासी हिरण्यनाभ, पौष्यञ्जि आवन्त्य शिष्य वा थे।।
सामवेद की शाखाएँ, इस विध उन्होने जान लीं। पौष्यञ्जि और अवन्त्य के, शिष्यों की संख्या पांच सौ थी।।
उत्तर दिशा निवासी वे, कहलाये औदीच्य सामवेदी। इन प्राच्य सामवेदियों ने, इक इक संहिता अध्ययन करी।।

पौष्यञ्जि के थे शिश्य अय, लौगाक्षि और मांगलि। अन्य के नाम भी जान ले, कुल्य कुसीद और कुक्षि।।
इनमें से प्रत्येक ने, शत् शत संहिता अध्ययन करी। इस विधि वेद की संहिता, विस्तृत ही होती रही।।

हिरण्यनाभ का शिष्य था, जान ले कृत के नाम से। चौबीस संहिता के उसने, निज शिष्यों को ज्ञान दिये।।
परम संयमी आवन्त्य ने, शेष दीं अपेन शिष्यों को। इस भाँति तुम जान लो, सामवेद विस्तार भयो।।

सूत बोले,
अथर्व वेद के ज्ञाता थे, सुमन्तु मुनि था पहले कहा। निज संहिता का ज्ञान उन्होने, प्रिय शिष्य कबन्ध को दिया।।
कबन्धस ने उस संहिता को, दो भागों में फिर बांटा। पथ्य और वेददर्श को, उन्होने पुन: पढ़ा दिया।।

वेददर्श के चार शिष्य थे, शोल्कायीन और ब्रह्मबलि। अन्य के नाम भी जान लें, मोदोश और पिप्पलायनि।।
पथ्य के थे पुन: तीन शिष्य, उनके भी तुम नाम सुनो। कुमुद शुनुक और तीसरे, अथर्ववेता जाजलि हों।।
अंगिरस शुनक के दो शिष्य, थे बभ्रु और सैन्धवायन। उन्होंने दो संहिता का, पुनश्च किया था अध्ययन।।
सैन्धवायनादि के शिष्य, सावर्ण्य आदि भी हुए। नक्षत्रकल्प शान्ति कश्यप, अंगिरसादि बहुत विद्वान हुए।।

यह सब अथर्ववेद के, थे आचार्य तू जान ले। पौराणिकों के सम्बन्ध में, अब तू बात मुझसे सुन ले।।
पुराणों के हुए आचार्य छ:, त्रय्यरूणि कश्यप सावर्णि। अकृतवर्ण और वैशम्पायन, हरीत हैं इनकी नाम कही।।

मेरे पिता के भी मुख से, इक इक पुराण भी इन्होने पढ़ी। भगवान व्यास से मम पिता ने, थी उनकी अध्ययन करी।।
उन छ: आचार्यों से ही था, मैंने यह अध्ययन किया। सभी संहिता को मैंने, उन ऋषियों से था समझा।।

यह छ: संहिता छोड़कर, थीं अन्य मूल चतु: संहिता। उनको भी हम सब ने मिली, मम पिता से था अध्ययन किया।।
अकृतव्रण तो श्री परशुराम, जी के अपने शिष्य थे। कश्यप सावर्णि और मैंने, उनके साथ ही मिलकर के।।

पिता रोमहर्षण जी से, ज्ञान उनका पाया था। इस विधि पुराणों का, प्रचार होता आया था।।

महर्षिगण ने वेद और, शास्त्रों में हैं लक्षण कहे। उन सबके आधार पे, पुराण हैं पहचाने जाते।।
स्वस्थ और अति दक्ष होई, अब वे लक्षण तुम सुनो। उन लक्षणों से ही तुम, पुराणों की पहचान करो।।

महाविद्वान पुराणों के, दस लक्षण बताते हैं। विश्वसर्ग विसर्ग और वृत्ति, रक्षा मन्वन्तर वंश हैं।।
वंशानुचरित और संस्था, हेतु और उपाश्रय हैं। अन्य आचार्य पुराणों के, लक्षण पांच ही माने हैं।।
दोनों ही बात हैं उचित कहीं, हैं महापुराण के दस लक्षण। और लघु पुराणों के, कहें हैं उन पांच लक्षण।।

मूल प्रकृति में लीन गुण, क्षोभ को जब प्राप्त हों। तब ही तो महत्तत्त्व की, जानो तुम उत्पत्ति हो।।
महत्तत्त्व से त्रैगुणी, अहंकार का जन्म हो। तामस राजस और सात्विक, इन तीनों के नाम हों।।
त्रिविध अहं से हों उत्पन्न, तन्मात्रा इन्द्रिय और विषय। इस उत्पत्ति क्रम का ही, नाम सर्ग तू जान ले।।

परमेश्वर के अनुग्रह से, सृजन सामर्थ्य जो प्राप्त हो। पूर्व कर्म और वासना, भली बुरी वहाँ जो भी हो।।
चराचर जीव की तदनुकूल, महत्तत्त्व उपाधि रचे। इक में से दूजे में जाये, इसको ही विसर्ग कहें।।

चर प्राणिन् का जीवन निर्वाह, अचर पदार्थ से ही हो। चर प्राणियों के जीवन निर्वाह का, साधन दुग्ध आदि ही हो।।
कामना वश हो जीव ने, कुछ तो हैं आप निश्चित करी। कुछ की निर्णय उसने करी, शास्त्राज्ञा अनुसार ही।।

युग युग में प्रभु अवतार लें, पशु पक्षी मनुज और ऋषि बने। देवादि का भी रूप धरी, लीला वह अनेक करें।।
वेद विरोधी जन का वह, अवतार बनी संहार करें। विश्व की रक्षा के लिये, ही अवतार यह लीला करें।।
इस कारण उसका नाम भी, रक्षा ही है कहा गया। प्रभु की अवतार लीला को, इसी नाम से जाना है जाता।।

मनु देवता मनुपुत्र, इन्द्र और सप्तर्षि कहे। और प्रभु के अंशावतार कहे, छ: बातों की विशेषता से।।
समय युक्त जो है रहता, मन्वन्तर उसको हैं कहते। जितने भी राजाओं की, सृष्टि हुई थी ब्रह्मा से।।
उनकी भूत भविष्य और, वर्तमान की सन्तति परम्परा। वंश ही कहलाते हैं, वंशानुचरित चरित्र उनका।।

विश्व और ब्रह्माण्ड स्वभाव से, ही प्रलय को प्राप्त हों। नैमित्तिक और प्राकृतिक, नित्य आत्यन्तिक नाम हों।।
तत्त्वज्ञ विद्वानों ने, इसी को संस्था है कहा। हेतु नाम से पुराणों में, है व्यवहार जिसका होता।।
वह जीव ही है जानो, सर्ग विसर्ग का हेतु कहा। अविद्या वश अनेक भाँति के, कर्मों में वह उलझ गया।।
चैतन्य प्रधान दृष्टि से, अनुशयी वह कहलाता है। उपाधि की दृष्टि से वह, प्रकृति रूप कहलाता है।।

जीव की वृत्तियां जान लो, त्रै भाँति की हैं होती। नाम भी उनके जान लो, जाग्रत स्वप्न और सुषुप्ति।।
विश्व तैजस और प्राज्ञ, हैं, इनके मायामय रूप। इनके अभिमानी रूप में और, तुरीय में भी लक्षित जो रूप।।
वही ब्रह्म है जान लो, उपाश्रय रूप से कहा गया। इस भाँति से जान लो, वर्णन है इनका किया गया।।
नाम रूप से युक्त हैं जो, गर उनपे विचार करें। तो सत्ता मात्र वस्तु के, रूप में हैं वह सिद्ध होते।।

वास्तव में वह सत्ता ही, विशेषता बनी प्रतीत हो। किन्तु वह सत्ता तो सदा, इन नाम रूप से पृथक् ही हो।।

इस उपमा से ही जानें तन, और ब्रह्माण्ड उत्पत्ति से। मृत्यु और महाप्रलय तक, हैं जो विशेष अवस्थाएँ।।
उनके रूप में परम सत्य, ब्रह्म ही तो प्रतीत हों। किन्तु उन सबसे सर्वथा, ही पृथक् परब्रह्म हों।।
अधिष्ठान और साक्षी के, रूप में है यह वाक्य भेद। पुराणोक्त परब्रह्म ही, है सभी का आश्रय तत्त्व।।

आत्म विचार और योगाभ्यास, में चित्त जब लग जाये। सभी त्रैगुणी वृत्तियां और, जाग्रतादि अवस्था त्यजे।।
उपराम होई फिर शान्त वृत्ति, में स्वत: यह स्थित भए। तत्त्वमसि आदि वाक्यों से, आत्म ज्ञान फिर उदय भए।।
आत्म वेत्ता पुरुष तब, कर्म वासना प्रवृत्ति से। अविद्या सब कार्यों से, स्वत: ही वह निवृत्त भए।।

पुरातत्त्व वेत्ता ऐतिहाहसिक, विद्वानों ने यह बात कही। इन्हीं लक्षणों के द्वारा, पुराणों की पहचान कही।।
ऐसे लक्षणों से युक्त, अठारह पुराण हैं कहे गए। अब उन सभी पुराणों, नाम आप सब जान लें।।

ब्रह्म पद्म विष्णु शिव, लिंग गरुढ़ नारद पुराण। भागवत पुराण अग्नि पुराण, स्कन्ध और भविष्य पुराण।।
ब्रह्मवैवर्त मार्कण्डेय, वामन और वराह पुराण। मत्स्य कूर्म ब्रह्माण्ड पुराण, संख्या है इनकी अठारह जान।।

हे शौनक श्री व्यास की, शिष्य परम्परा ने जिस विध। वेद पुराण संहिताओं का, पठन पाठन किया जिस विध।।
उनका विभाजन है किया, वह भी तुम्हें सुना दिया। इसके पाठक और श्रोता का, ब्रह्म तेज है वर्धित हो जाता।।

७) मार्कण्डेय वृत्तान्त व प्रलय दर्शन

शौनक बोले,
चिरंजीवि हों सूत आप, हैं वक्ताओं के शिरोमणि। संसार के अन्धकूप में, भटक रहे हैं जीव सभी।।
उनको निकाल परमात्म का, साक्षात्कार करवायें आप। कृपा करी हमारे भी, इक प्रश्न का दें अब उत्तर आप।।
ऋषि मृकण्ड सुत मार्कण्डेय, लोग कहें चिरायु हैं। जग यह प्रलय ने जब निगला, तब भी वह बचे चिरायु हैं।।

हे सूत इसी कल्प में, हमारे ही वंश में वह जन्मे। श्रेष्ठ भृगुवंशी हैं वह, इतना तो हम हैं जानते।।
हमारे अनुसार तो अभी तक, प्रलय नहीं इस युग में हुई। फिर उनकी यह बात कहें, सत्य है कैसे हो सकती?

कि सारी धरा प्रलय सागर, में थी जिस पल डूब गई। उसमें श्री मार्कण्डेय की, थी डूबन उभरन बनी हुई।।
अक्षय वट के पत्ते में, अति अद्भुत उनको दरस हुए। श्री बालमुकुन्द थे सो रहे, उनके दर्शन उन्होने पाये।।

है मन में सन्देह उठा, और हम जानना चाहे हैं। पौराणिकों में सम्मानित आप, महायोगी हैं हम जाने हैं।।
कृपा करी के सूत जी, यह संशय दूर कराइए। गुह्य रहस्य जो है इसका, आप हमें बतलाइए।।

सूत बोले,
हे शौनक जी आपने, अति सुन्दर है प्रश्न किया। मन में भ्रम है जो लोगों के, सहज ही मिट वह जायेगा।।
इस कथा में सर्वोत्तम, श्री नारायण की महिमा है। इसका गान करने से सब, कलिमल नष्ट हो जाता है।।

मृकण्ड ऋषि ने पुत्र के, संस्कार समय समय पे किये। मार्कण्डेय ने विधिवत् ही, वेदाध्ययन सारे किये।।
तप और स्वाध्याय से, सम्पन्न वह पूर्णतय: हुए। आजीवन ब्रह्मचर्य का, व्रत था धारण वह किये।।

अति शान्त थे मन में वह, सीस पे लम्बी जटायें थी। वल्कल ही उनका वस्त्र था, कमण्डलु दण्ड हाथों में थी।।
मेखला यज्ञोपवीत था, उने तन पे शाभायमान्। मृगचर्म कृष्ण रुद्राक्ष माल, और कुशा थी उनकी पूंजी जान।।
आजीवन ब्रह्मचर्य व्रत के, पालन हेतु ही यह सब थे। अग्निहोत्र सूर्योपस्थान, गुरुवन्दन नित्य वह करते थे।।
ब्राह्मण सत्कार मानस पूजा, मैं ब्रह्म हूँ यही विचार था। प्रभु आराधना को उनका, यह सब ही आधार था।।

सायं प्रात: भिक्षा लाकर, गुरु चरण धरी रहते वह मौन। गुरु आज्ञा पा एक बार, दिन में करते थे अन्न ग्रहण।।
अन्यथा वह उपवास करी, तपपूर्ण थे रह जाते। इस विधि तप स्वाधयय रत, कोटिश: वर्ष वह ऋषि रहे।।
प्रभु की यूँ आराधना कर, मृत्यु पर भी वह विजयी हुए। जिस मृत्यु को महायोगी जन, भी कभी न जीत सकें।।

दक्ष प्रजापति ब्रह्मा शंकर, और ब्रह्मा के अन्यान्य पुत्र। मनुज देव पितर आदि, सब प्राणी हुए आश्चर्य युक्त।।
मार्कण्डेय की मृत्यु विजय, देख के विस्मित सभी हुए। नैष्ठिक ब्रह्मचारी और योगी, श्री मार्कण्डेय स्वयं थे।।
तप स्वाध्याय और संयम से, सभी अविद्या क्लेश मिटे। शुद्ध अन्त:करण से वह, परमात्म ध्यान निमग्न हुए।।

महायोग से महायोगी ने, निज चित्त हरि में जोड़ दिया। इस भाँति साधन करते, छ: मन्वन्तर समय गया।।
इस सातवें मन्वन्तर में, इन्द्र को जब पता चला। उनके तप से इन्द्र का मन, शंकित और भयभीत हुआ।।
यह तप किस विधि भंग हो, इन्द्र उपाय यह करने लगा। इन्द्र ने उनके तप में फिर, विघ्न डालना शुरू किया।।

तप भंग करने के लिये, ऋषि मार्कण्डेय आश्रम में। गन्धर्व अप्सरा काम वसन्त, मलयानिल लोभ और मद भेजे।।
इन्द्र की आज्ञा पाकर के, वे सब ऋषि के आश्रम पहुँचे। श्री मार्कण्डेय का आश्रम था, हिमालय श्रृंग के उत्तर में।।
पुष्पभद्रा नाम की, नदी वहां पर बहती है। उसके पास ही चित्रा नामक, एक शिला भी बैठी है।।

अति पावन है आश्रम वह, चहुँ ओर है रुखों की पंक्तियाँ। सघन लताओं ने उनको, ज्यों हो आलिंगन में लिया।।
वृक्षों के उस झुरमुट में, महात्मा ऋषि निवास करें। पावन निर्मल जल के आशय, सब ऋतुओं में समान रहें।।

मतवाले भँवरे अपनी, संगीतमय गुँजार से। करें मन आकर्षित लोगों का, कहीं कोयल है कूजन करें।।
पंख फैला कर के मयूर, कलापूर्ण कहीं नृत्य करें। कहीं अन्य पक्षियों के, झुण्ड मिली खेला करें।।

मार्कण्डेय मुनि का पावनतम, ऐसा सुन्दर आश्रम था। इन्द्र के द्वारा भेजे हुए, वायु ने वहाँ प्रवेश किया।।
झरनों की नन्हीं नन्हीं, बून्दों को एकत्रित किया। जाकर सुगन्धित पुष्पों को, पवन ने अपने अंक भरा।।
काम भाव उत्तेजित कर, वह शनै: शनै: बहने लगा। माया फैला पहुँचा वहाँ, वसन्त कामदेव का सखा।।

चन्द्र ने भी ऊपर होकर, निज किरण जाल को फैलाया। थे धरती पे झुके वृक्ष, लताओं का आलिंगन पा।।
नव कपोल फल और फूल, के गुच्छे थे लटक रहे। सहस्त्रश: डालीयुक्त वृक्ष, अति शोभायमान थे।।

वसन्त का साम्राज्य देख, वहाँ कामदेव ने प्रवेश किया। गायन वाद्य को संग लिये, गन्धर्व यूथ भी आ पहुँचा।।
चहुँ ओर थीं स्वर्ग की, सुन्दर अप्सरा गण चलीं। काम बना नायक सबका, हाथों में पुष्प की धनु: सजी।।
सम्मोहन आदि बाण सब, थे उस धनुष पे चढ़े हुए। इस भाँति दल बल सहित, काम देव प्रविष्ट हुए।।

अग्निहोत्र पश्चात् ऋषि, भगवद् उपासना कर थे रहे। तेजस्वी थे इतने वह, ज्यों मूर्तिमान् अग्नि हों खड़े।।
नेत्र निमीलित थे उनके, जब ऋषिवर का दर्शन हुआ। है पराजय अति कठिन, श्री मदन को यह आभास हुआ।।
इन्द्र सेवकों ने जिस पल, मुनिश्रेष्ठ का दरस किया। उनकी अक्षुण्ण श्रेष्ठता और, तप को उन्होने पहचान लिया।।
उनके सम्मुख अप्सरागण, नृत्य फिर करने लगीं। गन्धर्वों ने भी मधुर वाद्य, और गायन की स्वरें छोड़ी।।

कामदेव ने पुष्पनिर्मित, अब अपने धनुष बाण पर। पंचमुखी निज बाण को, ऋषिवर पे साध दिया तब।।
शोषण उद्दीपन सम्मोहन, तापन और उन्मादन। यह पांचों मुख उस बाण के, जान लें आप श्री शौनक।।
कामदेव उस बाण से, निज लक्ष्य भेदना चाहते थे। वसंत संग मिली लोभ भी, विचलित उन्हें करना चाहते थे।।

पुञ्जिस्थली नाम की, सौन्दर्यवती इक अप्सरा थी। ऋषि सामने वह युवती, गेंद थी अपनी खेल रही।।
स्तनों के भार से बार बार, कमर थी लचक रही उसकी। चोटी के पुष्प और माल सब, थी धरती पे गिर रही।।

कभी कभी तिरछी चितवन से, इधर उधर वह देखती। गेंद के संग संग नेत्र भी, चहुँ ओर थी उसकी घूम रही।।
अति हाव भाव से वह युवती, गेंद की ओर थी दौड़ रही। उसी समय उसकी करधनी, दो भागों में टूट गई।।
वायु ने उसकी झीनी, साड़ी को दिया तन से हटा। कामदेव ने इसको ही, उपयुक्त समय अपना समझा।।
मुनि को अब मैं जीतूँगा, यह जानी बाण निज छोड़ दिया। किन्तु सब उद्योग ही, उसका निष्फल हो गया।।
ज्यों असमर्थ अभागे का, यत्न नहीं कोई फल लाता। त्यों ही मदन का बाण भी, विचलित न मुनि को कर सका।।

अपरिमित तेज से थे सम्पन्न, ऋषिश्रेष्ठ श्री मार्कण्डेय। काम वासना आदि मिल, तप भ्रष्ट थे उसका करना चाहते।।
किन्तु अब उनके तेज में, स्वयं ही वह जलने लगे। ज्यों सोया सांप जगाकर के, छोटे बच्चें भागते।।
उसी विधि यह सब भी, जान बचाकर भाग गए। सब मिलकर भी मुनिवर को, विचलित तनिक न कर सके।।
इतना ही नहीं उनका मन तो, स्थिर और अति शान्त रहा। उनका मन तनिक भी न डोला, इस का भी अहं भाव न था।।
महापुरुषों के लिये तो, है क्या आश्चर्य की बात यह? कोई प्रलोभन भी उनको, विचलित कभी न कर सके।।

देवेन्द्र ने देखा कामदेव, निज सेना संग निस्तेज हुआ। ऋषि आश्रम से हतप्रभ हो, निष्फल ही वह लौट आया।।
है परम प्रभावी ब्रह्मर्षि, इन्द्र ने जब यह सुना। उनकी महिमा को सुन कर, आश्चर्य चकित वह हो गया।।

तप स्वाध्याय धारणा, ध्यान और समाधि से। मार्कण्डेय अपने चित्त को, प्रभु में निमग्न थे कर देते।।
उनपर कृपा प्रसाद की, वर्षा करने के लिये। मुनि मनहर नरोत्तम नर, और नारायण वहाँ प्रकट हुए।।

इक का तन था गौर वर्ण, और दूजे का श्यामल था। नव कमल समान थे खिले नेत्र, और थी उनकी चतुर्भुजा।।
मृगचर्म था इक धारण किये, दूजे ने वल्कल था पहरा। गले में यज्ञोपवीत और, हाथ में उनके थी कुशा।।
कमण्डलु था और बांस का, सीधा दण्ड थे लिये हुए। नारायण नर दोनों के, रूप अति शोभित यूं थे।।
ब्रह्मा और इन्द्रादि के भी, परम पूज्य नर नारायण। थे वह कुछ ऊंचे कद के, वेद किये थे उन्होने धारण।।

श्री हरि के साक्षात् रूप, नर नारायण को जब देखा। मुनिवर ने अति आदर से, अपना आसन फिर त्यजा।।
धरती पे दण्डवत् लोटकर, प्रणाम उन्होंने कर दिया। श्री प्रभु के दर्शन पाकर, आनन्दित रोम रोम उनका हुआ।।

सब इन्द्रियाँ और अन्त:करण, शान्ति सागर में ज्यों डूबा। तन पुलकित था नेत्रों में, प्रेम का जल फिर भर आया।।

तत्पश्चात् उन दोनों को, आसन पर बिठलाया उन। चरण पखारे प्रेम से, किया अर्पित अर्ध्य धूप चन्दन।।
माला आदि से प्रभु की, पूजा वह करने लगे। श्री नर नारायण सुख पूर्वक, आसन पर थे बैठे हुए।।
मार्कण्डेय पर कृपा के, प्रसाद की वर्षा हो थी रही। नर नारायण की पूजा कर, फिर ऋषिवर ने स्तुति करी।।
मार्कण्डेय बोले,
मैं अल्पज्ञ जीव प्रभु, कैसे महिमा आपकी गा सकूँ? ब्रह्मा शंकर संग जीव सभी, प्रेरणा मैं भी आपसे लूँ।।
आप से प्रेरित प्राण ही, इस तन में संचार करें। उनसे मन वाणी और इन्द्रिय, भी निज शक्ति प्राप्त करें।।

अपने अपने कर्मों की, शक्ति यह आप से ही पायें। वचन विचार क्रिया शक्ति, में यह अपनी लग जायें।।
सबके प्रेरक परम स्वतंत्र, हैं आप ही प्रभु महान्। किन्तु निज भक्त के प्रेम के, बन्धन में हों बन्धायमान्।।

विश्व की रक्षा के लिये, अनेक रूप धरे आपने। मत्स्य कूर्मादि अनेक, अवतार ग्रहण किये आपने।।
त्यों ही यह दोनों रूप भी, आपने हैं धारण किये। नर नारायण के रूप में, प्रभु आज हैं प्रकट हुए।।
त्रिलोकी का कल्याण हो, दु:ख उसके सब निवृत्त भएं। जीव मृत्यु को जीत ले, इस कारण हैं यह रूप धरे।।
हैं सबके रक्षक आप प्रभु, मकड़ी सम निज से सृष्टि करें। फिर सम्पूर्ण विश्व को, अपने में लीन भी आप करें।।

चराचर जगत् का पालन और, नियमन् भी प्रभु आप करें। आपके श्री चरणों में प्रभु, मेरा है प्रणाम हे।।
जो भी आपके श्री चरण, की शरण प्रभु ग्रहण करें। काल क्लेश और गुण कर्म, उन्हें स्पर्श न कर सकें।।
वेद मर्मज्ञ ऋषि मुनि, आपकी प्राप्ति के लिये। निरन्तर ही प्रभु आपका, स्तवन वन्दन पूजन करें।।

चहुँ ओर से जीव को, भय ने है आक्रान्त किया। स्वयं ब्रह्मा भी है भयभीत, आपके काल रूप से सदा।।
उनकी आयु की सीमा भी, दो परार्ध तक ही रहे। फिर उनके द्वारा निर्मित जो, उन प्राणियों की क्या बात कहें।।
ऐसे में प्रभु आपके, चरण शरण बिन ठौर नहीं। परम कल्याण शान्ति सुख, का साधन कोई और नहीं।।
आप ही मोक्ष स्वरूप हैं, हैं सब जीवों के परम गुरु। सर्वश्रेष्ठ हैं आप ही, आप ही सत्य और ज्ञान स्वरूप।।
देह गेह आदि यह सब, आत्म स्वरूप को ढक ही दें। निष्फल असत्य और नाशवान्, केवल प्रतीति मात्र हैं ये।।
इन सबको त्याग के हे प्रभु, मैं आपकी चरण शरण में पड़ूँ। आपके शरणागत हो सब, पायें अभीष्ट मैं यह जानूँ।।

परम सुहृद् हैं जीवों के, हैं त्रैगुण आपकी ही मूर्ति। उत्पत्ति स्थिति लय इस जग की, करें गुणों के द्वारा ही।।
है सब यह लीला आपकी, पर सतोगुणी प्रभु की मूर्ति। परम शान्ति दे जीवों को, न दे वह रज और तम मूर्ति।।
उनसे तो दु:ख और मोह, भय की वृद्धि होती रहे। रज और तम तो जीव को, बन्धन में ही सदा डालें।।

आपके भक्तों के लिये, परम प्रिय है मूर्त जो। नर नारायण का रूप प्रभु, अति प्रिय है आपको।।
बुद्धिमान इस रूप की, ही उपासना करते हैं। पञ्चरात्रानुयायी सत्त्व को ही, आपका विग्रह माने हैं।।
उसकी उपासना के द्वारा, नित्य वैकुण्ठ धाम मिले। सर्वथा है वह भय रहित, नित्य आनन्द से पूर्ण रहे।।

रजोगुण और तमोगुण को, वह आपकी मूर्त न माने। सतोगुणी आपके रूप को, ही प्रियतर वह हैं जानें।।

अन्तर्यामी सर्वव्यापक, सर्वरूप और जगद्गुरु। हैं परम आराध्य आप, और आप हैं शुद्ध स्वरूप।।
लौकिक और वैदिक वाणी, सभी अधीन हैं आपके। वेद मार्ग प्रवर्तक भी, प्रभु आप स्वयं ही बनें।।
नरोत्तम नर और ऋषिश्रेष्ठ, नारायण को मैं नमन करूँ। इस युगल स्वरूप प्रभु के मैं, श्री चरणों का वन्दन करूँ।।

हर जीव की इन्द्रिय उनके विषय, उनके प्राणों और हृदय में। यद्यपि हे प्रभु आप, विराजमान सबमें रहें।।
किन्तु आपकी माया से, है बुद्धि यह मोहित हुई। है इन्द्रिय जाल में यह फंसी, आपको नहीं हैं देखती।।
फिर भी सारे जगत के, गुरु तो आप ही हैं प्रभु। कृपा से आपकी ज्ञान के, कोश वेद जब मिलें प्रभु।।
उनके आधार पे जीव फिर, साक्षात् करे प्रभु आपका। वेदों में वह ज्ञान प्रभु, पूर्ण रूप से है रहता।।
वही स्वरूप का आपके, रहस्य प्रकट है कर सकता। ब्रह्मा आदि मनीषि सब, करें यत्न प्राप्त उसने करने का।।
फिर भी वह मोह में पड़ जायें, नहीं पार आपका पा सकें। आप भी लीला विहारी प्रभु, नित्य नई लीला करें।।

विभिन्न मतधारी जो जन, जैसा भी सोचा विचार करें। वही शील स्वरूप रूप धरी, उनके सामने आप ही प्रकट भएं।।
वास्तव में देहादि सभी, उपाधि में हैं आप निहित। विशुद्ध ज्ञानधन आपकी, उपासना में ही रहूँ मैं रत।।
सूत बोले,
ज्ञानी मुनि मार्कण्डेय ने, जब इस विधि उनकी स्तुति करी। मुदित हो नर नारायण ने, मुनिवर को यह वचन कही।।
भगवान बोले,
ब्रह्मर्षि श्रेष्ठ हो माननीय, चित्त को है एकाग्र किया। तप स्वाध्याय संयम और, अनन्य भक्ति से सिद्ध हुआ।।
आजीवन ब्रह्मचर्य व्रत की, तुम्हारी निष्ठा हमने देखी। प्रसन्न हुए हैं तुम पर हम, कल्याण हो सदा तुम्हारी।।
सबका वरद स्वामी हूँ मैं, अपना अभीष्ट वर मांग लो। हे ऋषिवर अब तनिक भी, मुझसे न तुम संकोच करो।।
मार्कण्डेय मुनि बोले,
शरणागत भयहारी प्रभु, देवदेवेश भी आप हैं। जय हो जय हो प्रभु आपकी, बस इतना ही पर्याप्त है।।
कृपा करी के आपने, मनहर निज रूप का दरस दिया। ब्रह्मा शंकर आदि ने भी, आराधन आपका ही किया।।
योग साधाना और तप से, निज मन को एकाग्र किया। आपके सुन्दर और मनहर, श्री चरण कमल का दर्शन पा।।
कृतार्थ वह भी हो गये, जीवन सफल हुआ उनका। सुन्दर अनुपम रूप वही, मम नेत्र सम्मुख है प्रकट किया।।
हे प्रभु मुझे आपने, धन्य धन्य है कर दिया। आपके यह दर्शन पाकर, जन्म सफल मेरा हो गाय।।

महानुभावों के शिरोमणि, पावनकीर्ति प्रभु कमलनयन। आपने आज्ञा है जो दी, मैं उसको करूँ शिरोधारण।।
आपके श्री चरणों में प्रभु, अब एक ही वर हूँ मांग रहा। आपकी माया का स्वरूप, हूँ प्रभु देखना मैं चाहता।।
इससे मोहित सब लोक और, लोकपाल जितने भी हैं। अद्वितीय परं ब्रह्म में, भेद अनेकों देखे हैं।।
सूत बोले,
मार्कण्डेय मुनि ने इस विधि, नर नारायण की पूजा की। और तदेच्छा अनुकूल, वर भी उनसे मांग ली।।
प्रभु ने भी हंसकर कहा, ठीक है ऐसा ही होगा। तत्पश्चात् श्री बदरीवन, को प्रस्थान उन्होंने किया।।

अपने आश्रम में रहकर, मुनि के चित्त यह चिन्तन था। प्रभु की माया का दर्शन, जाने मुझको कब होगा?

अग्नि सूर्य चन्द्र और जल, पृथ्वी वायु आकाश में। अपने अन्त:करण में भी, प्रभु का थे वह दर्शन करते ।।
सर्वत्र उन्हीं का दर्शन पा, मनोभाव से उनको पूजते। कभी कभी तो हृदय में थे, प्रेमोद्वेग उमढ़ आते ।।
उस प्रवाह के वेग में, डूबते उतरते रहते वह। किस विधि प्रभु की पूजा हो, यह भी भूल थे जाते वह ।।

इक दिन सन्ध्या के समय, पुष्पभद्रा नदी के तट पर। मुनि थे तन्मय हो गए, श्री हरि की उपासना रत ।।
अनायास उस पल द्विजवर, अति भीषण आन्धी चली। घनघोर मे आकाश भरे, विकराल ध्वनि होने लगी ।।
दामिनी भी चमक चमक कर, थी आकाश में कड़क रही। रथ के धुरे सम मोटी मोटी, जलधारा फिर पृथ्वी पे गिरी ।।

इतना ही नहीं मुनिवर ने, देखा सागर हैं घुमड़ रहे। मानो चहुँ ओर से पृथ्वी को, अब यह सागर निगलेंगे ।।
आन्धी के वेग से सागर में, अति भयंकर लहर उठी। अति भीषण थी भंवर भी, ध्वनि थी कान को चीर रही ।।
स्थान स्थान पे महामगर, थे सागर में उछल रहे। जल के इस उद्वेग से, वह भी मानो थे व्यथित हुए ।।

बाहर भीतर चहुँ ओर ही, केवल जल ही था दीख रहा। केवल पृथ्वी मात्र नहीं, ज्यों स्वर्ग भी उसमें डूबे था ।।
प्रलय कालीन बादल बरस, सागर को और भी भर था रहा। वर्ष द्वीप पर्वत सहित, सागर ने निगली सारी धरा ।।

पृथ्वी अन्तरिक्ष स्वर्ग और, सब ज्योतिर्मण्डल उसके संग। दिशाओं सहित तीनों ही लोक, हुए पूर्णतय: ही जल निमग्न ।।
बस केवल मार्कण्डेय ही, उस पल अकेले बचे रहे। फैलाये जटा उद्विग्नवत्, वह इधर उधर थे भाग रहे ।।
अपने प्राण संरक्षण की, चेष्टा थे वह कर रहे। अन्धे प्राणी के समान, वह इत उत थे भटक रहे ।।

अति व्याकुल भूख प्यास से थे, नहीं साधन कोई सूझ रहे। कहीं मगर कहीं तिमिलिंग मच्छ, उनके ऊपर थे टूट रहे ।।
किसी ओर से वायु के झोंके, कहीं लहरों का तीव्र प्रहार। आकुल व्याकुल थी कर रही, उनको इन सबकी ही मार।
इस विधि भटकते भटकते, अज्ञान तिमिर में वह पड़े। पृथ्वी आकाश से अनभिज्ञ, थक कर वह बेहोश हुए ।।

कभी महाभवर में पड़ जाते, लहरों की मार कभी थे खाते। इक दूजे पर जलचर प्रहार, की लपेट में वह आते ।।
कभी शोक ग्रसित वह होते थे, मोह में थे कभी वह फंस जाते। कभी दुःख के सभी निमित्त बनते, तनिक सा सुख कभी पा जाते।।
अति भयभीत कभी होते, कभी मृत्यु को भी पा जाते। भाँति भाँति के रोग कभी, उनको आकर सता जाते ।।
श्री हरि के मायाचक्र में, मुनिवर भ्रमित थे हो रहे। प्रलयकालीन उस सागर में, कोटिश: वर्ष यूं भटका किये ।।

प्रलय के इस जल में शौनक, बहुत काल जब भटक लिया। पृथ्वी के इक टीले पर, बरगद छोटा सा फिर दीखा ।।
लाल लाल फल थे उसपे, और पत्तों का रंग था हरा। बरगद के ईषाण कोण पर, एक डाल में पत्ते का ।।
दोना था इक बना हुआ, मनहर शिशु वहाँ था लेटा। उसके तन की कान्ति से सब, तिमिर दूर था हो रहा ।।

मरकत मणि समान था, शिशु वह श्यामल वर्ण का। मुख कमल से उसके ज्यों, अद्भुत सौन्दर्य था फूट रहा ।।
गर्दन शंख समान थी, और था वक्ष:स्थल चौड़ा। थीं भ्रुवें अति सुन्दर उसकी, शुक चोंच समान थी नासिका ।।

काली घुँघराली अलकें थीं, सुन्दर कपोल पर लटक रहीं। श्वास के वेग से कभी कभी, वह अलकें थीं हिल जातीं ।।
शुभ्र सुधामयी वा स्मित में, उनकी लाली मिश्रित हुई। नयनों के कोने रक्तिम थे, ज्यों कमल का भीतरी भाग ही ।।

उसकी चितवन मुसकान यह, थी चित्त को हर रही। पीपल के पत्ते समान, छोटी सी उसकी तोंद थी।।
अति गम्भीर नाभि उसकी, थी स्वास के संग संग हिल रही। ऐसी मनमोहिनी छवि ने फिर, ऋषि की चित्त अपने वश की।।

नन्हें नन्हें हाथों की, अंगुलियाँ अति सुन्दर थीं। दोनों करकमलों से उस, एक चरण थी पकड़ी हुई।।
मुख कमल में अपना चरण डाल, वह स्वयं ही था उसे चूस रहा। यह दृश्य देख मुनिश्रेष्ठ का, हृदय अति विस्मय से भरा।।

उस दिव्य शिशु के दर्शन पा, श्रान्ति सारी दूर हुई। आनन्द से नयना भर गए, हृदय कमल उनकी खिली।।
तन भी पुलकित हो गया, मन में अनेकों भाव भरे। नन्हें शिशु को देखी वह, जिज्ञासा से उत्सुक हुए।।
मोहवश बुद्धि भ्रमित थी, कुछ सोच विचार वह नहीं सके। वह तो यह सब देख के, स्तब्ध ही बस रह गए।।

उस शिशु के उदर में उन्होने, देखा व्योम पर्वत समुद्र। ज्योतिर्मण्डल और देखा, उसके भीतर ही अन्तरिक्ष।।
दीप वर्ष दिशायें और, देवता दैत्य वन प्रदेश। नदियाँ नगर खानें और, गांव अहीर बस्ती प्रदेश।।
युग कल्पों के भेद युक्त, काल आदि सब कुछ देखा। जग व्यवहार सम्पन्न हो, जिन काल वस्तुओं के द्वारा।।
देखा वह सब उसके उदर, में ही विद्यमान था। यह पूर्ण विश्व सत्य इव, ही था वहाँ पे भास रहा।।

हिमालय पर्वत और नदी, उसके तट पर आश्रम वही। और वहाँ पे बसे ऋषि, सबकी दर्शन प्रत्यक्ष हुई।।
इस प्रकार सब विश्व का, दर्शन करते करते ही। शिशु के दिव्य प्रश्वास से, बाहर उन्होने प्रस्थान करी।।
प्रलयकाल के सागर में, ऋषि मार्कण्डेय जाय गिरे। सागर के मध्य भूखण्ड पे, उसी बरगद के दरस हुए।।
उसके पत्ते के दोने में, वही शिशु था सोया हुआ। सुधामयी मुसकान से था, मुखमण्डल उसका खिला।।

प्रेममयी चितवन से ऋषि, शिशु को था निहार रहा। शिशु रूप में इन्द्रिय अतीत, प्रभु की देखी उन्होने क्रीड़ा।।
नेत्रों राही वह पहले ही, हृदय में घर थे कर चुके। उनका आलिंगन करने को, श्रम से फिर ऋषिवर उठे।।

किन्तु श्री हरि तो हैं द्विजवर, योग के भी महास्वामी। सबके हृदय में छिपे रहें, योगियों के परम स्वामी।।
मार्कण्डेय ऋषि अभी नहीं, पास थे उनके पहुँच सके। तत्क्षण ही प्रभु उनकी, दृष्टि से ओझल हुए।।
ज्यों अभागे जीव का, परिश्रम सारा व्यर्थ हो। बिन फल दिये ही वह सब श्रम, न जाने कहाँ पे जाये खो।।

वह शिशु जब आंखों के सामने से हुआ अन्तर्धान। बरगद वृक्ष वह प्रलय दृश्य, और जल भी हुए जब अन्तर्धान।।
मार्कण्डेय मुनि ने देखा तब, पहले के समान ही। वह तो है विद्यमान, अपने उस आश्रम में ही।।

सूत बोले,
इस भाँति अनुभव किया, मुनिवर ने योगमाया का। उनको दर्शन यह हुआ, श्री नारायण के वैभव का।।
इस माया से मुक्ति का, उपाय प्रभु को ही जाना। उनकी शरणागत वह हुए, साधन एक यही माना।।

मार्कण्डेय मुनि बोले,
प्रभु आपकी यह माया, है तो आभासमात्र ही। सत्य ज्ञान समान ही, प्रकाशित यह है हो रही।।
महाविद्वान जन भी प्रभु, इसके खेल से मोहित हों। अभयप्रद आपके उभ चरण, ही प्रभु मेरा आश्रय हों।।

सूत बोले,
शरणागत के भाव को, मुनि मार्कण्डेय प्राप्त हुए। नन्दी पर होकर सवार, आकाश मार्ग से जाते हुए।।
श्री शंकर पार्वती गणों सहित, उसी स्थान पर आ गउए। उसी अवस्था में उन्हें, मार्कण्डेय मुनि के दरस हुए।।

मुनि की ध्यान अवस्था देख, माता के हृदय वात्सल्य भरा। श्री शंकर जी से उन्होने, उस पल फिर यह वचन कहा।।
तूफान के बन्द हो जाने पर, सागर और मछली शान्त ज्यों हों। इस ब्राह्मण का देखें भगवन्, तन इन्द्रिय चित्त त्यों शान्त हों।।
सर्वसिद्धि के दाता आप, इस ब्राह्मण पर कृपा करें। इसके तप का प्रत्यक्ष फल, इसे प्रभु अब आप दें।।

महादेव बोले,
लोक परलोक की वस्तु कोई, नहीं चाहें यह ब्रह्मर्षि। अन्य तो क्या यहां मोक्ष की भी, आकांक्षा मन में नहीं होती।।
घट घट वासी अविनाशी प्रभु, के चरण कमल में भक्ति है। इस कारण इनके मन में, नहीं अन्य काई आसक्ति है।।

यद्यपि हैं यह निश्किंचन् ही, नहीं कुछ भी यह चाहें हमसे। फिर भी बात करूँगा मैं, इन महात्मा पुरुष से।।
सन्तों का समागम गर, इस जीवन में प्राप्त हो। जीवमात्र के सफलता, हे देवी इसी में आप्त हो।।

सूत बोले,
सबके हृदयस्थ अन्तर्यामी, सब विद्या स्रोत हैं श्री शंकर। सब सन्तों के इक आश्रय, आदर्श यही सबके शंकर।।
भगवती से श्री शंकर ने, जब इस विधि यह कथन किया। मार्कण्डेय मुनि के निकट ही, तत्पश्चात् वह पहुँचे जा।।

मुनि की सारी वृत्तियां तब, भगवन्मय थीं हो रहीं। अपने तन और जगत् की, सुध बुध उन्हें तनिक न थी।।
यह भी जान सके न वह, कौन सम्मुख पधारे हैं। विश्वात्मा शंकर गौरी सहित, उनको ही निहारे हैं।।

नहीं छिपा था कुछ भी शंकर से, कैलास पति सब जाने थे। कहाँ पे मुनि का चित्त टिका, भली भाँति पहचाने थे।।
जैसे वायु आकाश में, अनायास ही प्रवेश करे। योगमाया से श्री शंकर, हृदय में मुनि के जा पहुँचे।।

मुनिवर ने देखा हृदय में तो, प्रभु शंकर का है दरस हुआ। सिर पे उनके चमक रहीं, हिरण्मय और पीत जटा।।
तीन नेत्र और दस भूजा, प्रभु की हैं शोभायमान। हृष्ट पुष्ट है तन उनका, उदयाचल सूर्य सा तेजवान।।
तन पे बाघाम्बर धारी हैं, हाथों में शूल खट्वांग ढाल। डमरू खप्पर तलवार धनुः, और लिये रुद्राक्ष माल।।

हिय में प्रभु श्री शंकर का, रूप देखी यह अकस्मात। आश्चर्य चकित हुए मार्कण्डेय, विस्मय को वह हुए प्राप्त।।
है कौन यह कहां से आये है, ऐसी वृत्तियों का उदय हुआ। समाधि त्यजी चित्त उनका, उससे बाहर हो गया।।

जब आंखें खोलीं अपनी, देखा त्रिलोकी के स्वामी। पार्वती और निज गणों सहित, खड़े जगद्गुरु सबके स्वामी।।
सीस झुका उनके चरणों में, मुनिवर ने प्रणाम किया। स्वागत आसन् पाद्य अर्घ्य, गन्ध धूप और दीप दिया।।
पुष्प माल आदि द्वारा, फिर पूजा उनकी करी। भगवती और गणों के सहित, अर्चना श्री शंकर की करी।।

मार्कण्डेय मुनि ने फिर, श्री शंकर से वह वचन कहे। आत्म अनुभूति महिमा से, हैं पूर्णकाम प्रभु आप हे।।
विस्तृत हों जग में शान्ति सुख, सब आपकी शान्ति और सुख से। क्या सेवा करूं मैं आपकी, आपही मुझे आदेश दें।।

त्रिगुणातीत सदा शिव हैं आप, सतोगुणी हैं शान्त स्वरूप। नमन करूँ प्रभु आपको, रजोगुणी सर्व प्रवर्तक रूप।।
तमोगुण से युक्त है, अघोर स्वरूप प्रभु आपका। चरणन् में हो नमस्कार, आपके हे प्रभु मेरा।।

सूत बोले,
सन्तों के परम आश्रम, देवाधिदेव प्रभु शंकर की। मुनि मार्कण्डेय ने जब, इस प्रकार से स्तुति करी।।
अति सन्तुष्ट श्री रुद्र हुए, प्रसन्न चित्त हो हंसने लगे। तत्पश्चात् मुनिवर को, श्री शंकर ने यह वचन कहे।।

महादेव बोले,
ब्रह्मा विष्णु और महादेव, हैं वरदाताओं के स्वामी। हमारे दर्शन ऋषिवर जानें, नहीं निष्फल हो सकते कभी।।
मृत्यु धर्मा यह जीव भी, हमसे अमरत्व को पा सके। सो जो भी हो इच्छा तेरी, वह ही वर मुझसे मांग ले।।

स्वभाव से ही ब्राह्मण तो हों, पर उपकारी शान्तचित्त। द्वेष रहित और समदर्शी, वह हों सदा ही अनासक्त।।
पूर्ण यत्न लाग करी, जीवों का दु:ख हरना चाहें। अनन्य प्रेमी हैं भक्त मेरे, विशेषता उनकी यह जानें।।

ऐसे ब्राह्मणों की पूजा, उपासना और उनकी वन्दना। सब लोकपाल और लोक भी, करते हैं उनका स्तवन सदा।।
प्रभु ब्रह्मा सबके ईश्वर, साक्षात् श्री विष्णु स्वयं। और रहूँ मैं भी सदा, उनकी सेवा में संलग्न।।

मुझमें विष्णु और ब्रह्मा में, अपने में या सब जीवों में। अणुमात्र का भेद भी, ऐसे जन की न देख सकें।।
सर्वत्र सदा एक रस, आत्म का वह दरस लें। इस कारण ही हम तुम जैसे, महात्मा जन की स्तुति करें।।

केवल जलमय तीर्थ ही, हे मुनिवर तीर्थ नहीं होते। न मूर्तिमात्र ही देव भएं, पावन करें वह बहुत काल में।।
सबसे बड़े तीर्थ और देव, हैं आप जैसे सन्त ही। होते हैं सब पवित्र सदा, जिनके बस दर्शन मात्र से ही।।

आप समान ब्राह्मणों को, हम तो करें बस नमस्कार। जग में आप जैसे ब्राह्मण, ही बनें धर्म का आधार।।
एकाग्रचित्त और स्वाध्याय, तपस्या ध्यान धारणा से। वेदमय तन हमारा धारें, समाधि के द्वारा ही वे।।

तुम जैसे महानुभावों के, चरितों के श्रवण और दर्शन से। महापातकी अन्त्यज भी, पावनतम हैं हो जाते।।
तुम लोगों के सम्भाषण और, सहवास से वह अति पावन हों। हे मुनिवर इस बात में तो, तनिक भी न सन्देह हो।।

सूत बोले,
चन्द्रमौलेश्वर शंकर की, हर बात रहस्य से पूर्ण थी। गुह्यतम अर्थ धर्म की, उसमें जानो ज्यों निहित थी।।
इक इक अक्षर उनका मानो, अमृत सिन्धु था समेटे हुए। मार्कण्डेय मुनि निज कर्णों से, पान उसका करते रहे।।
किन्तु तृप्त वह नहीं हुए, प्रभु माया में थे वह भटके। इस भकन से वह मुनिवर, अति श्रान्त थे हो चुके।।
कल्याणमयी शिव की वाणी, का श्रवण करी सब क्लेश गया। प्रभु शंकर से विनम्र होई, मुनिश्रेष्ठ ने फिर यह वचन कहा।।

मार्कण्डेय बोले,
सर्वशक्तिमते प्रभु की, यह लीला है बुद्धि से परे। सब जगत् के स्वामी होकर भी, देखो तो सही यह क्या कहें।।
अपने अधीन रहनेवाले, मुझे जैसे क्षुद्र पापियों की। वन्दना और यह स्तुति करें, अहो लीला तो देखो इनकी।।

प्राणियों को धर्म का, रहस्य सुझाने के लिये। प्रवचनकर धर्मज्ञों के, आचरण का अनुमोदन करें।।
धर्ममय आचरण की, स्तुति भी यह गाया करें। ताकि अन्य जीव भी, उनका ही अनुसरण करें।।

ज्यों जादूगर दर्शक के लिये, अनेकों खेल दिखाया करे। किन्तु उनके प्रभाव से, अस्तित्व न उसका बदल सके।।
वैसे ही प्रभु आप भी, अपनी जनमोहिनी माया की। वृत्ति प्रभु करें स्वीकार, करें किसी की महिमा स्तुति।।
किन्तु आपकी महिमा में, नहीं कोई त्रुटि प्रभु आ सके। आप तो अपने आप में, प्रभु सदा परिपूर्ण रहें।।

स्वप्न दृष्टा के समान, पूर्ण सृष्टि प्रभु आप रचें। अपने मन से ही आप प्रभु, सम्पूर्ण विश्व का सृजन करें।।
इसमें प्रवेश करके प्रभु, गणों के द्वारा कर्म करें। अकर्ता होकर भी प्रभु, कर्ता समान ही दीखा करें।।

त्रिगुण स्वरूप होकर के भी प्रभु आप सदा ही परे रहें। आत्म स्वरूप में स्थित सदा, सब ज्ञान मूल हैं आप ही हे।।
कैवल्य अद्वितीय ब्रह्म स्वरूप, आप ही तो हैं प्रभु। आपके श्री चरणों में प्रभु बार बार मैं नमन करूँ।।

आपका दर्शन ही प्रभु, है इस जीवन का परम लाभ। उससे बढ़कर कौनसा, वरदान प्रभु मैं मांगूं आज?
आपके दर्शन पा के जीव, पूर्णकाम स्वत: हो जाये। सत्य हो संकल्प उनका, नहीं कोई कामना रह पाये।।

आप स्वयं परिपूर्ण हैं, भक्तों की कामना पूर्ण करें। आपका दर्शन पाकर भी, चाहूं प्रभु एक ही वरम मुझे दें।।
श्री हरि में और उनके ही, शरणागत प्रिय भक्तों में। अविचल भक्ति मेरी सदा, प्रभु रहे आपके चरणों में।।

सूत बोले,
मार्कण्डय ने मधु वाणी से, प्रभु शंकर की स्तुति पूजा करी। प्रेरित हो भगवति पार्वती से, प्रभु ने उसने यह वचन कही।।

महादेव बोले,
हे महर्षि सम्पूर्ण ही, कामना तेरी पूर्ण भये। परमात्म में अनन्य सदा, भक्ति तुम्हारी बनी रहे।।
कल्प पर्यन्त ही पावन यश, ऋषिश्रेष्ठ तेरा विस्तृत रहे। अजर अमर हो जाओ तुम, यही वरदान तुम्हें हम दें।।

ब्रह्म तेज तेरा ब्राह्मण, रहे सदा अक्षुण्ण ही। वर्तमान भूत भविष्य का, प्राप्त हो ज्ञान तुम्हें सब ही।।
ज्ञान वैराग्यमय अधिष्ठान, स्वरूप स्थिति को प्राप्त करो। पुराण का आयार्यतत्व, मुनिवर तुमको प्राप्त हो।।

सूत बोले,
त्रिलोचन महादेव ने यूं, मार्कण्डेय को वर दिया। मुनिवर की तपस्या का, भगवती को वर्णन किया।।
प्रलय सम्बन्धी उनके जो, अनुभव थे उनकी भी कही। भार्गव श्री मार्कण्डेय को, परम फल योगे की प्राप्त हुई।।
प्रभु के अनन्य प्रेमी वह हुए, अजर अमर वह हो गए। भक्तिपूर्ण हृदय लिये, सदा धरती पर वह विचरा करें।।
प्रभु की योगमाया से, अद्भुत अनुभव जो था हुआ। महाज्ञानी मार्कण्डेय का, वृत्तान्त आपको सुना दिया।।

अनेक कल्प की सृष्टि प्रलय, का अनुभव जो मुनि को हुआ। श्री प्रभु की अपनी माया का, ही अपना वह वैभव था।।
उन्हीं के लिये वह सीमित था, वह अनुभव तो तत्कालिक था। सर्व साधारण जन को नहीं, यह उनके लिये ही प्रकट हुआ।।
कोई जन इस अनुभव को, माया की रचना न जानें। अनादि काल से पुन: पुन:, हो सृष्टि प्रलय यह ही मानें।।

इस कारण नहीं आपके, मन में यह शंका कभी हो। इसी कल्प के पूर्वज्ञ मार्कण्डेय, कैसे इतने दीर्घायु हों।।

मार्कण्डेय चरित जो, आपको है शौनक कहा। प्रभु चक्रपाणि के प्रभाव, और महिमा से वह है भरा।।
श्रवण और कीर्तन इसका, जो जन प्रेम से किया करें। कर्म वासना से उत्पन्न, यह जन्म मरण का चक्र तरें।।

८) भगवानके अङ्ग, उपाङ्ग और आयुधों का वर्णन

शौनक बोले,
परम भक्त भगवान के बहुज्ञों के हैं शिरोमणि। शास्त्रों के सिद्धान्तों के, महामर्मज्ञ है आप ही।।
इसी विषय में एक प्रश्न, पूछना आपसे हम चाहें। कृपा करी हे सूत जी, संशय हमारा दूर करें।।

विधि अनुकूल क्रिया योग का, ज्ञान प्राप्त करना चाहें। विधिवत् उसका अनुसरण कर, मृत्यु धर्मा भी अमर भएं।।
पञ्चरात्रादि तंत्रज्ञाता, श्री लक्ष्मीपति विष्णु धायें। किन किन तत्त्वों से उनकी, आराधना ऐसे भक्त करें?
चरणादि अंग उनके और, गरुड़ादि उनके उपांग। सुदर्शनादि आयुध और, कौस्तुभादि भूषण महान्।।
किस विध कल्पना इनकी करें, किस विधि उपासना इनकी हो? हे सूत जी कहें आप, कल्याण आपका सदा ही हो।।

सूत बोले,
श्री गुरुदेव के चरणों में, हे शौनक मैं नमन करूँ। वेद पञ्चरात्रादि ग्रन्थों, की अब तुमसे बात कहूँ।।
प्रभु विष्णु की विभूतिन् का है, जो वहाँ वर्णन किया। उनका कथन सबके लिये, हूँ अब सुनो मैं कर रहा।।

प्रभु के विराट स्वरूप में है, यह तीनों लोक जो दीख रहे। प्रकृति सूत्रात्मा महत्तत्त्व, अहंकार पंचतन्मात्रा से।।
ग्यारह इन्द्रियाँ और पंचभूत, षोडश विकार से यह बना। यह ही तो है पुरुष रूप, श्री भगवान का जो कहा।।
पृथ्वी इसके चरण हैं, और स्वर्ग मस्तिष्क है। नाभि है इसकी अन्तरिक्ष, सूर्य ही उनके नेत्र हैं।।
वायु ही नासिका है उसकी, और दिशायें उसके कान। यह ही तो विराट का, पुरुष रूप है तू पहचान।।

प्रजापति ही लिंग है, लोकपाल गण हैं भुजा। चन्द्रमा उन यमराज भ्रुवें, और है मृत्यु उसकी गुदा।।
लज्जा ऊपर का होंठ है, और लोभ को निचला होंठ कहा। हे चन्द्र की चान्दनी दन्तावली, भ्रम को है मुसकान कहा।।

हैं वृक्ष रोम और बादल ही, विराट् पुरुष के बाल हैं। रूप यही है विराट् का, सब अंगों की पहचान यह है।।
अपने परिमाण से जानो ज्यों, है व्यष्ठि पुरुष सात बित्त का। समष्टि पुरुष आकार वही, लोक संस्थिति सहित कहा।।

प्रभु स्वयं तो अजन्मा हैं, कौस्तुभ मणि निमित्त बने। चैतन्य स्वरूप आत्म ज्योति, जीव में वह धारण करे।।
सर्वव्यापी उसकी प्रभा, वक्षःस्थल पे करें धारण। वह ही तो श्री वत्स का रूप वहाँ लेती है धर।।

सत्त्वादि तीन गुण युक्त, उनकी माया वनमाला बने। छन्द ही हैं पीताम्बर उनका, तीन अक्षर का जो प्रणव भए।।
वही यज्ञोपवीत बनी, उनके तन पे सदा रहे। सांख्य योग के रूप में, मकराकृति कुण्डल हैं उनके।।
सब लाकों का अभयप्रद जो, ब्रह्मलोक ही उनका मुकुट भए। यह ही श्रृंगार श्री हरि के, उनको अति शोभित करें।।

है मूल प्रकृति शेष शैय्या, जिसपे वह रहें विराजमान्। धर्म ज्ञानमय सत्त्वगुण, ही, नाभिकमल तू उनका जान।।

मन इन्द्रिय तन शक्तियुक्त, प्राण हैं कौमोदकी गदा। जलतत्त्व रूप पंचजन्य शंख, तेजस्वरूप चक्र उनका।।

निर्मल आकाश स्वरूप खड्ग, तमोमय अज्ञान को ढाल कहा। शार्ङ्ग धनुष है काल रूप, और कर्म ही तरकश है उनका।।
इन्द्रियों को ही भगवान के, बाण रूप है कहा गया। क्रिया शक्ति रूप मन ही रथ है, तन्मात्रा बाहरी भाग कहा।।
वरदे अभय मुद्रा ही, है उनकी क्रियाशीलता। सूर्य या अग्नि मण्डल को, पूजा स्थली है उनकी कहा।।
अन्त:करण की शुद्धि ही, है उनकी मन्त्र दीक्षा। सब पापों की विनष्टि ही, है श्री हरि की सच्ची पूजा।।

ऐश्वर्य धर्म यश लक्ष्मी, ज्ञान और वैराग्य हैं जो। यह छ: हैं लीला कमल, श्री भगवान के जान लो।।
अपने कर कमलों में प्रभु, इसको धारण किये रहते हैं। धर्म और यश ही क्रमश:, चंवर और पंखा उनके हैं।।
अपने धाम वैकुण्ठ को ही, हैं छत्र रूप से धारे हुए। तीनों वेद ही गरुड़ वह है, श्री हरि का जो वहन करें।।

आत्म स्वरूप श्री हरि से, बिछुड़ नहीं जो कभी सकती। वह उनकी आत्म शक्ति, ही जानो स्वयं हैं श्री लक्ष्मी।।
पार्षद नायक विश्वविश्रुत, विष्वक्सेन पांचरात्रादि। श्री भगवान के जान लो, आगम रूप हैं यह ही।।
अणिमा महिमादि अष्टसिद्धि, को हैं कहें स्वभाविक गुण। द्वारपाल तू जान लो, उनके हैं नन्द और सुनन्द।।

हे द्विजवर चतुर्व्यूह के, रूप में प्रभु जाने जायें। वासुदेव संकर्षण और प्रद्युम्न, अनिरुद्ध रूप हैं धरे हुए।।
जाग्रत के अभिमानी देव, विश्व बनी वह प्रकटें आप। शब्द स्पर्श आदि विषय, उस रूप में ग्रहण करें वह आप।।
स्वाभिमानी तेजस् बन, बिन बाह्य विषय उपभोग करें। मनोमन ही देखें अनेक विषय, और वह उनको ग्रहण करें।।
सुषुप्ति के अभिमानी देव, प्राज्ञ रूप वह स्वयं धरें। संस्कार रूप अज्ञान से, आवृत्त वह ही आप भयें।।
सबके साक्षी रूप में, तुरीय बन के वही रहें। सारे ज्ञान के अधिष्ठान, रूप बनी वह स्वयं रहें।।

अङ्ग उपांग आयुध और, आभूषणों से वह युक्त रहें। वासुदेव संकर्षण और प्रद्युम्न, अनिरुद्ध चतु:मूर्ति रूप धरें।।
इन रूपों में प्रकट हुए, श्री हरि ही स्वयं प्रकाशित हों। विश्व तैजस् प्राज्ञ और, तुरीय रूप सब उनके हों।।

सर्वरूप भगवान वही, हैं वेदों के मूल कारण। वह हैं स्वयं प्रकाश सदा, अपनी महिमा से परिपूर्ण।।
निज माया से ब्रह्मा आदि, रूपों का निर्माण करें। सृष्टि स्थिति संहार का, कार्य वह इनके द्वारा करें।।
इन सब नामों और कर्मों से, ज्ञान न उनका आवृत्त हो। निज स्वरूप में ही सदा, सव्दा वह तो स्थित ही हों।।
यद्यपि शास्त्रों में उनके, नाम रूप हैं भिन्न कहे। किन्तु अपने भक्तों को, वह आत्म रूप से हैं मिलते।।

सच्चिदानन्द स्वरूप कृष्ण, स्वयं हैं अर्जुन के सखा। यदुवंश शिरोमणि रूप में, अवतार आपने है लिया।।
धर्मविरोधी राजाओं को, भस्म आपने कर दिया। सदा एक रस है रहता, पराक्रम हे प्रभु आपका।।
गोपिकागण नारद आदि, स्तुति गान सदैव करें। नाम और लीला गुण का, श्रवण ही सब मंगल कर दे।।
हम सब सेवक हैं आपके, कृपा कर प्रभु रक्षा करें। अन्य आश्रय सब छोड़ी, प्रभु हम तो आपकी शरण पड़े।।

शौनक बोले,
श्री शुक ने परीक्षित को, भागवत की कथा में था कहा। ऋषि गन्धर्व नाग अप्सरा, यक्ष राक्षस और देवों का।।
एक सौरगण होता है, प्रतिमाह यह सातों की बदलें। यह बारह गण अपने स्वामी, द्वादश आदित्यों संग रहें।।

क्या काम करें और उनके, अन्तर्गत को को व्यक्ति हों? सूर्य रूप में भी जानें, भगवान स्वयं ही प्रकट हों।।
उनके विभाग को भी हम सब, श्रद्धापूर्वक सुनना चाहें। कृपा करी हे सूत जी, आप हमें वह बतलाये।।

सूत बोले,
सब जीवों का आत्मा, हैं प्रभु विष्णु स्वयं। उनके वास्तविक स्वरूप से, अनभिज्ञ हैं लोक यह सम्पूर्ण।।
सब लोकों के व्यवहार हेतु, सूर्य मण्डल निर्माण हुआ। वह ही तो सब लोकों में, भ्रमण है नित्य किया करता।।

अन्तरात्मा सब लोकों के, और सबके आदि कर्ता। श्री हरि ने ही अन्तर्यामी, सूर्य का रूप है स्वयं धरा।।
अद्वितीय एक हैं वह स्वयं, ऋषियों ने विविध वर्णन किया। वह ही तो हैं एक मूल, सारी वैदिक क्रियाओं का।।

हैं एक प्रभु माया द्वारा, काल देश यज्ञादि क्रिया। कर्ता स्रुवा आदि करण, का रूप है उन्होने स्वयं धरा।।
योगादि कर्म और वेदमन्त्र, शाकव्यादि है द्रव्य कहा। फलरूप से नौ भाँति का, वर्णन है उसका किया गया।।
काल रूप धारी सूर्य, व्यवहार व्यवस्थित करते हैं। चैत्रादि द्वादश मासों में, भिन्न गणों के सहित विचरते हैं।।

धाता नामक सूर्य संग, अप्सरा हैं कृतस्थली। हेति राक्षस वासुकि सर्प, रथकृत यज्ञ पुल्स्य ऋषि।।
और गन्धर्व तुम्बरु सब, मिल कर चैत्र में कार्य करें। अब वैशाख मास के, कार्यवाहकों की सुन ले।।
अर्यमा सूर्य पुलह ऋषि, प्रहेति राक्षस अथौजा यक्ष। अप्सरा मुंजिकस्थली, नारद गन्धर्व कच्छनीर सर्प।।

मित्र सूर्य अत्रि ऋषि, पौरुषेय राक्षस तक्षक सर्प। अप्सरा मेनका हा हा गन्धर्व, और रथस्वन नामक यक्ष।।
ज्येष्ठ मास के कार्य के, निवाहक इनको जान लें। आषाढ़ मास में वरुण सूर्य, वसिष्ठ ऋषि संग रम्भा रहे।।
सहजन्य यक्ष हूहू गन्धर्व, और नाग है शुक्र कहा। और चित्रस्वन राक्षस सब, निज कार्यों का करें निर्वाह।।

इन्द्र नामक सूर्य का, कार्यकाल है श्रावण मास। विश्वावसु गन्धर्व और, श्रोता यज्ञ एलापत्र नाग।।
ऋषि अंगिरा अप्सरा प्रम्लोचा, वर्य नामक राक्षस जान। अपने अपने कार्य का, सम्पादन यह करें महान्।।

भाद्रपद के सूर्य का, नाम हैं जानें विवस्वान्। व्याघ्र राक्षस और गन्धर्व, उग्रसेन हैं साथ जान।।
असारण यक्ष भृगु ऋषि, अनुम्लोचा अप्सरा। और सहयोग इसे मिलता, ऋषिश्रेष्ठ श्री गौतम का।।

माघ मास में पूषा नामक, सूर्य हे शौनक काम करे। धनंजय नाग वात राक्षस, सुषेध गन्धर्व भी संग रहे।।
सुरुचि यक्ष घृताची अप्सरा, गौतम ऋषि भी साथ रहे। फाल्गुन मास के सूर्य का, पर्जन्य नाम तू जान ले।।
क्रतु यक्ष वर्चा राक्षस, भारद्वाज ऋषि सेनजित अप्सरा। विश्व गन्धर्व ऐरावत सर्प, हैं उसके महायोगी कहा।।

मार्गशीर्ष मास में, सूर्य का नाम कहें अंशु। ऋषि कश्यप तार्क्ष्य यक्ष, गन्धर्व ऋत्सेन राक्षस विद्युत्छत्रु।।
उर्वशी नामक अप्सरा और, महाशंख नाग उनके संग रहें। पौष मास में सूर्य के, नाम भग ही जान ले।।
राक्षस स्फूर्ज अरिष्टनेमि गन्धर्व, ऊर्ष यक्ष आयु ऋषि। कर्कोकटक नाग वा संग रहें, और अप्सरा नाम है पूर्वचिति।।

अश्विन मास में त्वष्टा सूर्य, संग में जमदग्नि ऋषि। कम्बल नाग तिलोत्तमा अप्सरा, ब्रह्मपोत राक्षस संग कही।।
शत्जित यक्ष धृतराष्ट्र गन्धर्व, इस काल में उसका साथ दें। कार्तिक को विष्णु नाम के, सूर्य का काल ही जान ले।।

अश्वतर नाग रम्भा अप्सरा, सूर्यवर्चा है गन्धर्व कहें। ऋषि विश्वामित्र सत्यजित गन्धर्व, मखापोत राक्षस संग रहें।।

हे शौनक इन सबको ही, सूर्य विभूति जान ले। प्रतिदिन प्रात: और सायं, जो जन इनका स्मरण करें।।
सम्पूर्ण पाप वा नष्ट हों, पावनतम वह हो जायें। इस विधि सूर्य उपासना से, मनोवांछित फल वह पायें।।

छ: गण अपने संग लिये, सूर्य से सम्बन्धित। ऋक् यजु: साम के मन्त्रों से, करें उनकी स्तुति निर्बाधित।।
गन्धर्व जन सदा उनके, यश का गान ही हैं करते। नृत्य करते करते ही, अप्सरा गण वा आगे चलें।।

नाग गण रज्जू की तरह, उनके रथ को थामे रहें। सजायें रथ का साज वह, बलवान राक्षस धकेलें उसे।।
बालखिल्य नामक साठ हजार, निर्मल स्वभावी ब्रह्मर्षि। सूर्य और किये मुख चलें, कण्ठ से गायें उसकी स्तुति।।
अनादि अनन्त अजन्मा प्रभु, श्री हरि ही कल्प कल्पान्तर में। निज स्वरूप का विभाग कर, लोकों का पालन करते रहें।।

९) श्रीमद्भागवत की महिमा

सूत बोले,
भगवद्भक्ति रूप ही, है सबसे प्रधान धर्म। उस संग विश्वविधाता श्री, कृष्ण को भी हो मेरा नमन।।
ब्राह्मण गण को भी अब, पुन: करूँ मैं नमस्कार। श्रीमद्भागवतोक्त धर्म, का करूँ अब संक्षिप्त विस्तार।।

हे शौनकादि ऋषिगण, आपने प्रश्न जो था किया। तदनुकूल प्रभु विष्णु का, अद्भुत यह चरित सुना दिया।।
सब जीवों के कल्याण का, है इसमें रहस्य छिपा। है सबके लिये श्रवणीय यह, श्रीमद्भागवत जो कहा।।
सर्वपापहारी प्रभु का, संकीर्तन है यहाँ हुआ। हैं सबके हिय में विराजमान, वह स्वामी जीवन प्राण सखा।।

इसी में परम गोपनीय, ब्रह्म तत्त्व है वर्णित हुआ। जग उत्पत्ति स्थिति लय, प्रतीत उसी में हो है रहा।।
इसी पुराण में परम तत्त्व, का अनुभवात्मक ज्ञान दिया। उसकी प्राप्ति के साधन का, भी है स्पष्ट निर्देश किया।।

प्रथम स्कन्ध में भक्तियोग, का निरूपण यहाँ हुआ। उसके पुत्र रक्षक उसके, वैराग्य का भी वर्णन किया।।
राजा परीक्षित् की कथा, नारद व्यास प्रसंग कहा। उसी सन्दर्भ में नारद का, चरित भी सामने आ गया।।

ब्राह्मण से शापित राजर्षि, कर अनशन बैठे गंगा तट। ऋषि प्रवर शुकदेव जी से, किस विध हुए वह वार्ता रत।।
इसकी सारी कथा भी, प्रथम स्कन्ध में है कही। राजर्षि परीक्षित् की, मुक्ति नींव इसी में पड़ी।।

योगधारणा के द्वारा, इस तन को कैसे त्यागें। संक्षिप्त चर्चा अवतारों की, ब्रह्मा नारद संवाद कहे।।
महत्तत्त्वादि के क्रम से, प्राकृतिक सृष्टि की उत्पत्ति। इन सब विषयों की चर्चा, द्वितीय स्कन्ध में है हुई।।

तृतीय स्कन्ध आरम्भ में है, विदुर और उद्धव संवाद। तत्पश्चात् श्री मैत्रेय से, विदुर मिले हुआ उनका संवाद।।
फिर पुराण संहिता, के विषय में प्रश्न है। प्रलय काल में परमात्म की, स्थिति का यहाँ निरूपण है।।

गुण क्षोभ से प्राकृतिक सृष्टि, महत्तत्त्वादि का वर्णन है। सप्त प्रकृति विकृति द्वारा, कार्य सृष्टि का वर्णन है।।
तत्पश्चात् ब्रमाण्ड की, उत्पत्ति का स्वरूप कहा। उसमें विराट पुरुष की, स्थिति निरूपण है हुआ।।

स्थूल और सूक्ष्म काल का, स्वरूप है फिर बताया गया। लोकपद्म उत्पत्ति हुई प्रलय, सिन्धु से धरा उद्धार हुआ।।

वराह रूप में प्रभु द्वारा, हिरण्याक्ष का वध हुआ। देवता पशु पक्षी और, मनुष्यों का फिर सृजन हुआ।।
रुद्रों की उत्पत्ति का भी, प्रसंग यहाँ पे आता है। अर्ध नर नारी स्वरूप, का विवेचन यहीं पे है।।
उसमें स्वयंभू मनु और, शतरूपा की उत्पत्ति हुई। शतरूपा है स्त्रियों की, अत्युत्तम आद्या प्रकृति।।
कर्दम प्रजापति का चरित, उनसे मुनि पत्नियों का जन्म। अवतार जन्म श्री कपिल का, माँ देवहूति संवाद प्रसंग।।

चौथे स्कन्ध में है कहा, उत्पत्ति क्रम प्रजापतियों का। मरीचि आदि नौ प्रजापति, का वर्णन है इसमें किया।।
दक्ष यज्ञ विध्वंस की भी, कथा इसी में है कही। राजर्षि ध्रुव और पृथु, की भी बात यहीं पे कही।।
प्राचीनबर्हि और नारद के, संवाद का यहाँ पे वर्णन है। पंचम स्कन्ध में प्रियव्रत के, उपाख्यान का वर्णन है।।
नाभि ऋषभ और भरत के, चरित हैं यहाँ पे कहे गए। द्वीप वर्ष समुद्र पर्वत, और नदियों के वर्णन किये।।
ज्योतिष्चक्र विस्तार और, पाताल का भी वर्णन हुआ। नरकों की हो स्थिति कहाँ, यह सब भी बतला दिया।।

अब षष्ट स्कन्ध में विषय हैं जो, उनकी भी बात सुन लें। प्रचेताओं से दक्ष की, उत्पत्ति की यहाँ बात कहें।।
दक्ष सुताओं की सन्तति, असुर मनुज पशु देवता। पर्वत और खगों के जन्म, और कर्म को भी कहा।।

वृत्रासुर की उत्पत्ति, और परम गति भी कही। अब सप्तम स्कन्ध में विषय जो, उनकी बात भी सुन सही।।
हिरण्यकश्यिपु और हिरण्याक्ष, दैत्यों के जन्म कर्म की कही। दैत्य प्रह्लाद के अत्युत्तम, चरित की चर्चा यहाँ हुई।।

अष्टम स्कन्ध में है सारे, मन्वन्तरों की कही कथा। प्रभु विष्णु के अवतार कहे, गजेन्द्र मोक्ष का दिया बता।।
कूर्म मत्स्य वामन धन्वन्तरि, ह्यग्रीव आदि का कहा। देवों और दैत्यों ने मिल, अमृत हेतु सागर को मथा।।
इन दोनों के संग्राम का भी, वर्णन है उसमें किाय। नवम् स्कन्ध में मुख्य रूप से, वर्णन है राजवंशों का।।
इक्ष्वाकु के जन्म कर्म, वंश विस्तार को वहाँ कहा। महात्मा सुद्युम्न इला और, तारा का उपाख्यान कहा।।
सुकन्या का चरित कहा, सूर्यवंश का कहा वृत्तान्त। राजा शशाद और नृग के, चरित कहे सारे महान्।।
शर्याति खट्वांग मान्धाता, सौरभि सगर और कुकस्थ। कोसलेन्द्र भगवान राम का, सर्वपाप हारी चरित्।।
इन सब उत्तम चरितों का, वर्णन है यहाँ किया गया। निमि का देह त्याग और, जनकों की उत्पत्ति कहा।।

भृगुश्रेष्ठ श्री परशुराम ने, क्षत्रियों का संहार किया। राजा पुरुरवा चन्द्रवंशी, की भी यहाँ पे कही कथा।।
ययाति नहुष दुष्यन्त सुत, भरत की भी यहां बात कही। शन्तनु वा सुत भीष्मादि, की भी चर्चा संयित हुई।।
नवम् खण्ड में इन सबकी, कथाओं को है कहा गया। ययाति पुत्र यदु वंश का, अन्त में है विस्तार हुआ।।

इसी यदुवंश में जगत्पति, भगवान कृष्ण अवतीर्ण हुए। अपार हैं उनकी लीलायें, बहुत असुरों के संहार किये।।
दशम स्कन्ध में है उनका, ही पावन कीर्तन हुआ। वसुदेव की पत्नी देवकी के, गर्भ से उनका जन्म हुआ।।
गोकुल में नन्दबाबा के, घर में जा पालन हुआ। दूध के साथ पूतना के, प्राणों का भी उन्होने पान किया।।
बचपन में ही छकड़े को, उन्होंने पांव से उल्ट दिया। तृणावर्त बकासुर और, वत्सासुर मर्दन किया।।

धेनुकासुर को उन्होने, परिवार सहित ही मार दिया। और प्रलम्बासुर का भी, उन्होंने ही उद्धार किया।।
दावानल से घिरे हुए, गोपों की उन रक्षा करी। कालिय नाग का दमन किया, यमुना जल पावन करी।।

अपने बाबा श्री नन्द को, अजगर मुख से निकाल लिया। उनका तो बचपन ही था, चमत्कार से भरा हुआ।।
गोपियां पति रूप में, श्री कृष्ण को थीं वरना चाहतीं। व्रत किया उन गोपियों ने, प्रसन्न हो अच्युत ने वर दी।।
यज्ञपत्नियों पर उनकी, हुई कृपा तत्पश्चात्। ब्राह्मण न उसे पा सके, हुआ उन्हें बहुत पश्चाताप।।

श्री कृष्ण ने गोवर्धन गिरि, धारण की जब लीला की। इन्द्र और कामधेनु ने आ, उनकी यज्ञाभिषेक करी।।
शरद् ऋतु की रात्रियाँ थीं, रास क्रीड़ा से सम्पूर्ण। रास रचाई ी हरि ने, व्रज ललनाओं को ले संग।।

शंखचूड़ अरिष्ट और, केशि वध की लीला हुई। अक्रूर आये फिर मथुरा से, कंस ने थी आमन्त्रण दी।।
बलराम और श्री कृष्ण ने फिर, मथुरा को प्रस्थान किया। अक्रूर के रथ पे बैठे, पहुँचे दोनों फिर मथुरा जा।।

ब्रज की सब ललनाओं ने, इस प्रसंग पे विलाप किया। अति दारुण और मार्मिक है, वर्णन उसका जो किया गया।।
मथुरा पहुँच कर राम श्याम, ने देखी उसकी शोभा। कुवलयपीड मुष्टिक चाणूर, और कंस का फिर संहार किया।।

विद्या अध्ययन को हेतु बना, संदीपनी गुरु के यहाँ गए। गुरु दक्षिणा रूप में, उनका मृतक पुत्र लौटा लाये।।
भगवान कृष्ण जब मथुरा में, जानो निवास थे कर रहे। उद्धव और बलराम संग, यदुओं के प्रिय हितकर किये।।

बहुत बार जरासन्ध भी, आया वहाँ महासेना ले। प्रभु ने उद्धार किया सब का, भूमि का भार हरा उन्होने।।
मुचुकुन्द से कालयवन को, भस्मीभूत करा दिया। रातों रात पहुँचाये सब, द्वारका पुरी को दिया बसा।।

कल्प वृक्ष सुधर्मा सभा, स्वर्ग से वहाँ वह ले आये। शुत्रदल को पराजित कर, प्रभु ने श्री रुक्मिणी हरण किये।।
बाणासुर संग युद्ध में, महादेव पे छोड़ा जृम्भनास्त्र। महादेव जम्भाई लेने लगे, असुर भुजा काटीं उस पल।।
प्राग्ज्योतिष्पुर स्वामी, भौमासुर का फिर हनन किया। षोडश सहस्त्र कन्याओं से, इक साथ प्रभु ने विवाह किया।।

शिशुपाल पौण्ड्क शाल्व और, दन्तवक्र शम्बासुर द्विविद पीठ। मुर पंचजन्यादि दैत्यों के, बल पौरुष की भी बात है की।।
प्रभु ने कैसे उनका हनन किया, है यह भी बतलाया गया। भगवान के चक्र ने सम्पूर्ण, काशी को ही जला दिया।।
फिर महाभारत के युद्ध में, पाण्डवों को निमित्त बना। भीषण भार धरा का उन्होने, इक बार में ही उतार दिया।।

एकादश स्कन्ध में हे ऋषियों, इस बात का है वर्णन हुआ। यदुवंश को संहारा प्रभु ने, ब्राह्मण शाप को निमित्त बना।।
भगवान कृष्ण और उद्धव का, संवाद यहां अति अद्भुत है। आत्म ज्ञान और धर्म का, निरूपण वहाँ पे पूर्ण है।।
अन्त में वहाँ पे यह भी कहा, निज आत्म योग प्रभाव से। भगवान कृष्ण ने किस विधि, मर्त्यलोक परित्याग दिये।।

द्वादश स्कन्ध में भिन्न युगों, की बात है कही गई। उसमें बसे लोगों के, व्यवहार की भी है वर्णन की।।
कलियुग के लोगों की गति, कैसी विपरीत हो कहा गया। त्रै उत्पत्ति चार प्रकार की, प्रलय का भी वर्णन किया।।

तत्पश्चात् परम ज्ञानी, परीक्षित् का तनो त्याग हुआ। वेदों की शाख प्रशाखा का, विभाग प्रसंग पुन: है कहा।।
महर्षि मार्कण्डेय की, है कही वहाँ सुन्दर कथा। भगवान के अंग उपांगों का, स्वरूप कथन वर्णन किया।।
सबसे अन्त में विश्वात्म, भगवान सूर्य का कह दिया। सूर्य के सारे गणों का भी, वहाँ पे है वर्णन हुआ।।

इस सत्संग के अवसर पर, था आपने मुझसे जो पूछा। ह शौनकादि ऋषियो, उसका है वर्णन कर दिया।।

नहीं तनिक सन्देह इसमें, कि इस अवसर पर मैंने। हर भाँति से भगवान की ही, लीला के हैं कीर्तन किये।।

गिरते पड़ते फिसलते, छींकते हुए या दु:ख में भी। श्री हरये: नम: बोल उठे, विवश होकर उच्च स्वर में ही।।
वह नर भी सब पापों से, मुक्त स्वत: हो जाता है। फिर उसकी तो बात ही क्या, जो प्रेम से इसको गाता है।।

देश काल और वस्तु से, रहें सदा परे श्री भगवान। यदि हों संकीर्तन उनके गुण, लीला आदि और सारे नाम।।
उनके प्रभाव महिमा आदि, का गर श्रवण करे कोई। तो आकर उसके हृदय में, स्वयं विराजें श्री हरि।।
उसके हृदय में घर करके, वह उसके सब दु:ख दूर करें। ज्यों आन्धी बादल दूर करे, और सूर्य तिमिर सारा हर ले।।

जिस वाणी से भगवान के, गुणों का वर्णन कभी न हो। लीला और नामों का उनके, जिस द्वारा न कभी गायन हो।।
भावपूर्ण होने पर भी, वह वाणी है अर्थहीन। असुन्दर ही है वह भाषा, चाहे रचना में हो प्रवीण।।
उत्तम विषयों की बात करे, फिर भी वह असत्कथा। बिन प्रभु का गुणगान किये, सत्य नहीं कुछ हो सकता।।

जिस वाणी द्वारा श्री हरि के, पावन यश का गुणगान हो। रमणीय रुचिकर और प्रतिक्षण, नवनूतन उसका ज्ञान हो।।
अनन्त काल तक उससे सदा, आनन्द की अनुभूति मिले। सागर समान गहरा और, अपरिमित दु:ख भी शुष्क भए।।

रस भाव और अलंकार, से ही युक्त चाहे हो वाणी। पावनकर श्री कृष्ण नाम, से स्निग्ध जो हुई नहीं।।
कौवे की उच्छिष्ट फेंकने, हेतु ही पर्याप्त है वो। मानसवासी हंस प्रभु, चरणारविन्द रत भक्त हैं जो।।
वह उसका सेवन नहीं करें, उस वाणी से सदा दूर रहें। निर्मल हृदय साधु जन तो, सदा हरि के संग निवास करें।।

जिसकी रचना मधुर नहीं, हैं शब्द भी जिसके दोष युक्त। किन्तु हर श्लोक में जहाँ जड़े, श्री हरि के नाम सुयश सूचक।।
वह वाणी नष्ट है कर देती, जीव के सगरे पापों को। उसका ही श्रवण गायन कीर्तन, सत्पुरुषों द्वारा सतत हो।।

मोक्ष प्राप्ति का साधन, अति निर्मल है ज्ञान जो। उसकी भी शोभा नहीं बने, गर भगवद्भक्ति रहित वह हो।।
सर्वश्रेष्ठ भी हो कर्म, गर प्रभु के अर्पित नहीं हुआ। दु:खदे अमंगल रूप वह, वरणीय है कैसे हो सकता?

वर्णाश्रमानुकूल आचरण, तप और अध्ययन हेतु जो। कठिन परिश्रम का फल तो, यश और लक्ष्मी की प्राप्ति हो।।
किन्तु भगवान के गुण लीला, नाम आदि का श्रवण। उनके चरणारविन्द की, स्मृति प्रदान करे कीर्तन।।

श्री कृष्ण चरण की याद सदा, पाप ताप सब नष्ट करे। सर्व अमंगल नष्ट करी, परम शान्ति वह हिय भरे।।
अन्त:करण की शुद्धि की, है सर्वोत्तम राह वो। भगसद्भक्ति वैराग्य मिले, स्वरूप ज्ञान अनुभूति हो।।

धन्य धन्य हैं ऋषिवर हे, बहुत प्रेम से हृदय में उन्हें धरें। आदिदेव अन्तर्यामी, सर्वात्म देव को हृदय धरें।।
हैं सबके वह आराध्य देव, उनका आराध्य है कोई नहीं। श्री नारायण को हिय बसा, भजन आप करें उनका ही।।

राजर्षि परीक्षित् जब, थे अनशन व्रत पर बैठे। महर्षियों की सभा में वह, श्री शुक से श्रवण थे कर रहे।।
वहीं बैठकर मैंने भी, आत्म तत्त्व का श्रवण किया। परमर्षि शुकदेव से, मैंने भी था इसे सुनो।।
उसका स्मरण करा कर के, अनुग्रह आपने मुझपे किया। इस कारण हे ऋषिश्रेष्ठ, ऋणी हुआ मैं आपका।।

इक इक लीला वासुदेव की, है श्रवण योग्य करें उनका कीर्तन। इस प्रसंग में उनकी ही, महिमा का किया मैंने वर्णन।।
अशुभ सभी संस्कार यह, अपने में बहाकर ले जाये। एकाग्र चित्त हो एक पहर, जो भी इसका श्रवण करे।।
अथवा एक क्षण मात्र ही, जो नर प्रतिदिन कीर्तन करे। श्रद्धापूर्ण हृदय से जो, इसका श्रवण भी नित्य करे।।
उसके तन के सहित उनका, अन्त:करण भी हो पावन। इसकी महिमा है अपरम्पार, कर सके कोई कैसे गायन?

द्वादशी या एकादशी को, जो भी इसका श्रवण करे। दीर्घायु वह हो जाये, तनोरोग नहीं विघ्न बने।।
संयम से निराहार रह, जो भी इसका पठन करे। पूर्व पाप के साथ साथ, पाप प्रवृत्ति भी नष्ट भए।।

निज अन्त:करण और इन्द्रियों को, जो नर अपने वश में करे। उपवास करी पुष्कर मथुरा, या द्वारका जा कर इसे पढ़े।।
सब भय से वह मुक्त हो, विचलित कोई न कर सके। इसका श्रवण जो नित्य करे, या उच्चारण किया करे।।
देवता पितर सिद्ध मुनि, मनु नरपति कीतन उसका सुनें। अति सन्तुष्ट वह होकर के, अभिलाषा उसकी पूर्ण करें।।
ऋक् यजु: और सामवेद के, पाठ से जो भी फल मिले। मधु दूध और घृत की, नदियाँ उसके चहुँ ओर बहें।।
ऐसी सुख समृद्धि मिले, श्रीमद्भागवत के पाठ से। संयम पूर्वक जो भी विप्र, इस संहिता का अध्ययन करे।।
प्रभु द्वारा कथित परम पद को, वह ब्राह्मण फिर प्राप्त हो। इसके अध्ययन से ऋतम्भरा, प्रज्ञा उसकी जागृत हो।।
सागर पर्यन्त भूखण्ड का, राज्य क्षत्रिय को मिल जाये। वैश्य कुबेर का पद पाये, शुद्र पाप सों मुक्त भए।।

सबके स्वामी हैं प्रभु, कलि मल दल के हैं ध्वंजस वो। बहुत पुराण करें वर्णन वा, किन्तु न निरन्तर वर्णन हो।।
सर्वत्र श्रीहरि का ही, गुणगान वहाँ पे नहीं मिलता। भागवत महापुराण में तो, पग पग पर यह वर्णन हुआ।।

जन्म मृत्यु आदि सारे, विकारों से हैं रहित वह। देश काल के भेद रहित, है स्वयं ही आत्म तत्त्व वह।।
उत्पत्ति स्थिति प्रलय जग की, करतीं हैं जो भी शक्तियाँ। नहीं हैं उनसे भिन्न कोई, स्वरूपभूत हैं उनकी कहा।।
ब्रह्मा शंकर इन्द्रादि, हैं जितने भी लोकपाल। नहीं स्तुति वे उनकी गा सकें, प्रभु को ही करूँ मैं नमस्कार।।

प्रकृति आदि नौ शक्तियों का, निज स्वरूप में कर संकल्प। चराचर इस जग को है रचा, अधिष्ठान रूप में आप हैं स्थित।।
जिनका अपना परम पद, है अनुभूति स्वरूप केवल। देवों परम आराध्य प्रभु, के चरणन् में है मेरा नमन।।

श्री शुकदेव तो अपने ही, आत्म आनन्द में मग्न थे। अखण्ड अद्वैत में स्थित थे वह, भेद दृष्टि से निवृत्त थे।।
फिर भी श्याम सुन्दर की, मंगलमय लीलाओं ने। मनोहरणी मधुमयी, उनकी सुन्दर क्रीड़ाओं ने।।
उनकी वृत्तियों को अपने, में आकर्षित कर लिया। जग के प्राणियों पर उन्होने, फिर करी अपनी कृपा।।
भगवत् तत्त्व प्रकाशित कर, यह पुराण विस्तृत किया। व्यास सुत शुकदेव के, चरणों में है प्रणाम मेरा।।

सूत बोले,
दिव्य स्तुतियों के द्वारा, ब्रह्मा वरुण रुद्र इन्द्र। मरुद्गण गुणगान में, जिनके सदा रहते निमग्न।।
अंग पद क्रम उपनिषदों सहित, वेदों राह जिनका गान करें। साम संगीत के मर्मज्ञ, जिनका गायन नित्य करें।।
योगी जन ध्यान के द्वारा हुए, निश्चल और तल्लीन मन से। जिनका भावमय दर्शन, नित्य प्राप्त करते रहें।।
किन्तु यह सब होने पर भी, देवता दैत्य या मनुज कोई। स्वरूप न जान सके जिनका, उनको है मेरा नमन ही।।

कच्छप रूप में जब प्रभु ने, अवतार था धारण किया। यह मन्दराचल मथनी की तरह, था पीठ पे उनकी घूम रहा।।
मन्दराचल के श्रृंगों की, नोक से जो घर्षण हुआ। उसे खुजलाने से उनको, तनिक सा सुख था मिल गया।।
निद्रावान थे प्रभु हुए, श्वास की भी कुछ गति बढ़ी। उस श्वास वायु से सागर के, जल पर थी आघात हुई।।

उसका संस्कार ही आज भी, सागर में है शेष बचा। उसी ठेस के कारण ही, है ज्वार भाटा उठा उतरा।।
दिन रैन यही क्रम चलता रहे, नहीं अभी तक विश्राम मिला। प्रभु की वही प्रभावी श्वास, करे आपकी रक्षा सदा।।

अब पुराणों के भिन्न भिन्न, विस्तार की ऋषिवर आप सुनें। श्लोक संख्या अलग-अलग, उनका जोड़ भी आज सुनें।।
प्रतिपाद्य विषय श्री भागवद् का, उसका प्रयोजन भी सुनें। दान पद्धति और दान, पाठ की भी महिमा सुनें।।

ब्रह्म पुराण के श्लोकों की, संख्या जानें दस हजार। पद्म पुराण के श्लोकों की, कहीं संख्या है पचपन हजार।।
श्री विष्णु पुराण में, तेईस हजार है कही गई। और शिव पुराण की, संख्या चौबीस हजार कही।।

श्रीमद्भागवत में कहें, श्लोक हैं अठारह हजार। नारद पुराण में पच्चीस सहस्त्र, मार्कण्डेय में हैं नौ हजार।।
अग्नि पुराण में पंद्रह सहस्त्र, चार सौ श्लोक हैं कहे गए। भविष्य पुराण की श्लोक संख्या, साढ़े चौदह हजार जान ले।।
ब्रह्मवैवर्त पुराण की, संख्या है अठारह हजार। और लिङ्ग पुराण में, श्लोक कहें हैं ग्यारह हजार।।

चौबीस हजार श्लोक हैं, वराहपुराण में कहे गए। इक्कीस हजार एक सौ हैं, स्कन्धपुराण में कहे गए।।
वामनपुराण में दस हजार, कूर्मपुराण में सत्तरह हजार। मत्स्यपुराण में श्लोक कहे, हैं पूरे चौदह हजार।।
गरुड़पुराण के श्लोकों की, संख्या है उन्नीस हजार। और ब्रह्माण्डपुराण में, श्लोक कहे द्वादश हजार।।

सब पुराणों की मिलकर, है श्लोक संख्या चार लाख। हूँ पहले ही मैं कह चुका, श्री भागवत की है अठारह हजार।।
पहले पहल श्री विष्णु ने, अपने नाभि कमल में स्थित। और जग से भयभीत हुए, ब्रह्मा पर की थी करुणा अमित।।
करुणा करके ब्रह्मा के लिये, ही पुराण यह था रचा। आदि मध्य अन्त इसका, वैराग्य जनक कथा से भरा।।

श्री हरि की जो भी लीला कथा, इस महापुराण में है कही। आनन्द लें देव और सत्पुरुष, सब इसके सेवन से ही।।
सब उपनिषदों का सार है, जानें आप परब्रह्म ही। आत्म से अद्वितीय वह, वह ही सद्वस्तु एकाकी।।
श्रीमद्भावतमहापुराण का, प्रतिपाद्य विषय है वही। इकमात्र प्रयोजन है इसका, कैवल्य मोक्ष की प्राप्ति।।

भाद्रपद मास की पूर्णिमा को, स्वर्ण सिंहासन पर धरी। जो श्रीमद्भागवत दान करे, प्राप्त हो उसको परम गति।।

अन्य पुराणों की शोभा, सन्तों की सभा में तब तक हो। जब लौ सर्वश्रेष्ठ पुराण, श्री भागवत का वहाँ दरस न हो।।
यह श्रीमद्भागवत तो है, उपनिषदों का सार रूप, इसका सुधा रस पान कर, जो नर हुए हैं पूर्ण तृप्त।।

किसी अन्य पुराण शास्त्र में, उनका मन नहीं रम सके। ज्यों नदियों में है गंगा, देवों में हैं विष्णु कहें।।
वैष्णवों में श्री शंकर जी, ही सर्वश्रेष्ठ हैं कहे गए। वैसे ही पुराणों में, श्रीमद्भागवत को जान ले।।
जैसे सम्पूर्ण क्षेत्रों में, काशी को ही कहें सर्वश्रेष्ठ। वैसे ही सब पुराणों में, श्रीमद्भागवत है सर्वश्रेष्ठ।।

सर्वथा निर्दोष है यह, श्रीमद्भागवत महापुराण। भगवान के प्रिय वैष्णवों का, अति प्रियतर यह ग्रन्थ जान।।

जीवन्मुक्त जो परमहंस, माया से हैं सदा परे। सर्वश्रेष्ठ अद्वितीय और, पावन ज्ञान की यहाँ कहें।।
सबसे बड़ी विलक्षणता, इस ग्रन्थ की एक कहें। है भक्ति ज्ञान वैराग्ययुक्त, जो नैष्यकर्म भी यहाँ कहें।।
इसका श्रवण मनन पठन, जो भी जीव करने लगे। भगवद्भक्ति उसे प्राप्त हो, और मुक्त वह हो जाये।।

भगवत्तत्त्व ज्ञान का है, श्रेष्ठ प्रकाशक यह पुराण। नहीं इसकी तुलना कर सके, अन्य कहीं कोई पुराण।।
पहले श्री नारायण ने, स्वयं इसे ब्रह्मा को दिया। फिर ब्रह्मा रूप से उन्होंने ही, श्री नारद को उपदेश किया।।
नारद जी के रूप में फिर, श्री कृष्ण द्वैपायन वयस को। तदनन्तर व्यास जी ने, यह ज्ञान दिया शुकदेव को।।
शुकदव ने अति करुणा करी, दिया राजर्षि परीक्षित को। उनके निमित्त ही संहिता यह, प्राप्त हुई है हम सब को।।
श्री हरि तो हैं परम शुद्ध, माया मल से सदा रहित। शोक मृत्यु न जा सकें, तनिक भी उनके कहीं निकट।।
उन्हीं सत्य स्वरूप परमेश्वर का, हम सब मिलकर ध्यान करें। उनके ही श्री चरणों में, हम सब अपना सीस धरें।।

सर्वसाक्षी भगवान श्री, वासुदेव को ही करें नमस्कार। जिन्होने मुमुक्षु ब्रह्मा को, कृपा करी दिया यह सत्व सार।।
ब्रह्म स्वरूप श्री योगीराज, शुकदेव को भी हम नमन करें। संसार सर्प के दंश से, भयभीत परीक्षित् के लिये।।
इसका प्रतिपादन करके, मुक्त उसे था कर दिया। सर्प ने उसको डसा तो था, पर विचलित नहीं वह तनिक हुआ।।

देवों के परम आराध्य प्रभु, हैं हमरे स्वामी और सर्वस्व। अविचल भक्ति बनी रहे, कृपा करें प्रभु ऐसी अब।।
कर्मवश गर बार बार, जन्म भी लेकर आना पड़े। आपके चरण कमल में प्रभु, निश्चल हमारी भक्ति रहे।।

श्री भगवान के नामों का, श्रवण और संकीर्तन ही। पाप सर्वथा नष्ट करे, हो वहाँ पे आत्म समर्पण ही।।
उनके चरणों में नमन ही, सब दु:खों को शान्त करे। उन्हीं परम तत्त्व स्वरूप श्री, हरि को है मम नमन हे।।

व्यास बोले,
हैं सच्चिदानन्द स्वरूप प्रभु, सबका मन आकर्षित करें। निज सौन्दर्य माधुर्य से, अनन्त सुख की वर्षा करें।।
जिनकी शक्ति से विश्व की, उत्पत्ति स्थिति और प्रलय हो। श्री कृष्ण चरण में भक्ति रस, आस्वादन को नित नमन हो।।

नैमिषारण्य में सूत जी, थे आसन पे स्वस्थ बैठे। प्रभु की सुधामयी लीला के, रसिक भी थे वहाँ बैठे हुए।।
उसके आस्वादन में कुशल, शौनकादि ने प्रणाम किया। ऋषियों ने फिर मिलकर के, श्री सुत से यह प्रश्न किया।।

अनिरुद्ध नन्दन वज्र का, राज्याभिषेक किया मथुरा में। अपने पौत्र परीक्षित् को, राज्य दिया हस्तिनापुर में।।
धर्मराज युधिष्ठिर फिर, हिमालय पर्वत पर गये। तब वज्र और परीक्षित् ने, कौन कौन से कर्म किये?

सूत बोले,
प्रभु नारायण नरोत्तम नर, देवी सरस्वति और व्यास। शुद्ध चित्त से इन सबको, सर्वप्रथम करें नमस्कार।।
भगवत्तत्त्व प्रकाशितकर, इतिहास पुराण रूप का। फिर जय जय उच्चार करें, श्रीमद्भागवत स्वरूप का।।

युधिष्ठिरादि पाण्डव जब, स्वर्गारोहण को हिमालय गए। तब सम्राट परीक्षित् इक दिन, मथुरा नगरी जा पहुँचे।।
इस यात्रा का उद्देश्य तो, उनका बस इतना ही था। श्री कृष्ण पौत्र वज्रनाभ, से ही उनको मिलना था।।

जब वज्रनाभ ने यह जाना, मम पिता तुल्य हैं आ रहे। परीक्षित् के आने की सुन, हृदय प्रेम द्रवीभूत हुए।।
नगर से बाहर आकर के, स्वागत स्वयं उन्होंने किया। चरणों में प्रणाम किया, फिर अपने महल प्रवेश किया।।

वीर परीक्षित् तो जानें, भगवान के प्रेमी भक्त थे। नित्य निरन्तर भाव यह था, श्री कृष्ण चरण में रहते थे।।
श्री कृष्ण के प्रपौत्र का, बहुत प्रेम से आलिंगन किया। तत्पश्चात् जा अन्त:पुर, रोहिणी आदि को नमन किया।।
कृष्ण पत्नियों ने भी मिली, सम्राट का अति सम्मान किया। विश्राम करी सुख से बैठे, तब वज्रनाभ को उन्होने कहा।।
परीक्षित् बोले,
तुम्हारे पिता प्रपितामह ने, बहुत संकटों से रक्षण किया। मेरे पिता और पितामह को, बार बार था उभार लिया।।
वास्तव में मेरी भी तो, रक्षा है उन्होंने करी। उन उपकारों की गणना या, प्रत्युपकार न हो सकती।।
तेरे लिये अब इस कारण, एक प्रार्थना मैं करूँ। सुख पूर्वक निज काज में, लगे रहो इतना चाहूँ।।

अपने कोष और सेना की, तुम तनिक भी चिन्ता नहीं करो। न ही शत्रु दमन का, अपने मन पे बोझ तू लो।।
यदि कोई कर्त्तव्य है तव, तो वह है केवल इतना। माताओं की सेवा में, प्रेम से लगे रहो तू सदा।।

यदि आपत्ति विपत्ति कोई, तेरे ऊपर कभी आ जाये। अथवा अन्य किसी कारण, क्लेश कोई मन में आये।।
तो मुझे बतलाकर के, निश्चिन्त ही तुम हो जाना। सब चिन्ता तेरी दूर करूँ, मन में व्यथित न तुम होना।।
राजा के वचन यह सुनकर, वज्रनाभ अति मुदित हुए। तत्पश्चात् परीक्षित् को, उन्होने यह मृदु वचन कहे।।
वज्रनाभ बोले,
आपने मुझको जो कहा, है सर्वथा आपके योग्य ही। धनुर्वेद की शिक्षा तो, मुझे आपके ही पिता ने दी।।
महा उपकार किया मेरा, नहीं रही मुझे कोई चिन्ता। उनकी कृपा से ही मैंने, क्षत्रियोचित शौर्य यह है पाया।।
अब तो चिन्ता है मुझको, बस केवल एक ही बात की। उसके ही सम्बन्ध में अब, विचार करें कुछ आप ही।।

यद्यपि मथुरा मण्डल के, राज्य पें मैं अभिषिक्त हूँ। तथापि इस प्रदेश में, मैं निर्जन वन में ही रहूँ।।
मैं न जानूँ यहाँ की प्रजा, कहाँ पे है सारी गई। राज्य का सुख तब ही मिले, जब प्रजा संग में रहे सभी।।

सूत बोले,
वज्रनाभ ने यह बात, जब परीक्षित् से कही। सन्देह निवारण करने को, शाण्डिल्य को उन आमन्त्रण दी।।
यही महर्षि शाण्डिल्य, नन्दादि के पुरोहित थे। अपनी कुटी को छोड़ कर, परीक्षित् पास वह आ गए।।
विधिवत् वज्रनाभ ने, उनका स्वागत सत्कार किया। इक ऊँचा आसन देकर, उन्हें वहाँ विराजमान् किया।।
वज्रनाभ के मन की बात, परीक्षित् ने उनको कही। शाण्डिल्य ऋषि ने मुदित हो, सान्त्वना फिर उसको दी।।

शाण्डिल्य बोले,
दत्तचित्त होकर सुनो, रहस्य व्रजभूमि का कहूँ। व्रज का अर्थ है व्याप्ति, है वृद्ध वचन यह तुझे कहूँ।।
व्यापक होने के कारण ही, व्रज है इसका नाम पड़ा। त्रिगुणातीत परब्रह्म ही, व्यापक हैं यह समझें जरा।।
वह सच्चिदानन्द स्वरूप, अविनाशी ज्योतिर्मय है। जीवन्मुक्त पुरुष तो सदा, स्थित उन्हीं में रहते हैं।।

परब्रह्म रूप व्रजधाम में, नन्द नन्दन श्री कृष्ण रहें। है सच्चिदानन्द स्वरूप हर अंग, आप्तकाम आत्म राम हैं वे।।
प्रेम के ही रस में निमग्न, हुए हैं जो भी रसिक गण। वे ही अनुभव कर सें, श्री प्रेम स्वरूप सच्चिदानन्द।।

भगवान श्रीकृष्ण ही आत्मा हैं, राधा नाम से जानें इन्हें। श्री कृष्ण तो आत्म में ही, नित्य निरन्तर रमण करें।।
रस रहस्य के मर्मज्ञ, ज्ञानी उन्हें आत्म राम करें। काम शब्द का अर्थ तू, अभिलाषा ही जान ले।।

वज्र में श्री कृष्ण के जो, वांछित पदार्थ हैं कहे। गौएँ ग्वालबाल और, गोपिकागण ही हैं वे।।
उनके संग लीला विहार, नित्य यहाँ पे प्राप्त है। इस कारण ही कृष्ण का, नाम इक आप्त काम है।।

रहस्य लीला प्रभु की यह, है प्रकृति से परे। दूजे भी अनुभव कर सकें, प्रभु जब प्रकृति से खेलें।।
प्रकृति संग इस लीला में, तीनों गुण का आभास हो। इन द्वारा सृष्टि स्थिति और, प्रलय का सब आभास हो।।
श्री हरि की लीला जानें, है यह दो प्रकार की। इक है वास्तविक लीला, यह दूजी है व्यवहार की।।

वास्तविक लीला को अपनी, केवल भगवान ही जान सकें। या उनके हैं रसिक जो, भक्त उसे पहचान सकें।।
जीवों के सामने जो लीला, श्री भगवान की हो रही। वह लीला तो जान लें, उनकी है व्यावहारिकी ही।।
वास्तवी लीला के बिना, व्यवहारी न हो सके। किन्तु व्यवहारी लीला का, प्रवेश न वास्तवी में होए।।

तुम दोनों भगवान की, जिस लीला को हो देख रहे। व्यावहारिकी लीला है यह, श्री हरि की इतना जानें।।
पृथ्वी और स्वर्गादि लोक, सब इसके ही अन्तर्गत हैं। इस पृथ्वी पर तो बसा, जानें यह मथुरामण्डल है।।

यहीं पे है वह व्रजभूमि, जहाँ प्रभु की लीला नित्य रहे। वास्तवी रहस्य लीला वह, निहित रूप से होती रहे।।
प्रेम पूर्ण हृदय वाले, प्रभु में आसक्त रसिक हैं जो। कभी कभी इस लीला का, सर्वत्र ही उनको दर्शन हो।।

अट्ठाईसवें द्वापर का, अन्तकाल जब आ जाये। प्रभु की रहस्य लीला के, अधिकारी यहां एकत्र भएं।।
जैसा कि इस काल में, कुछ समय पूर्व थे हुए। निज अन्तरंग प्रेमियों संग, भगवान फिर अवतार लें।।

अधिकारी भक्त जन भी उन संग, आस्वादन इस लीला का करें। प्रभु के इस अवतार का, प्रयोजन बस इतना ही रहे।।
इस भाँति जब श्री हरि, अवतार धारण करते हैं। प्रभु प्रेमी देवता और ऋषि, सब ओर रूप तब धरते हैं।।

प्रभु के नित्य अन्तरंग, पार्षद हैं प्रथम श्रेणी में। इनका तो भगवान से, कभी वियोग न हो सके।।
दूजे तो बस केवल प्रभु, को पाने की इच्छा करें। अन्तरंग लीला में वह, प्रवेश हैं पाना चाहते।।
तीसरी श्रेणी में कहें, हैं देवता आदि सभी। देवों आदि के अंश से, थी जिन्होने अवतार ली।।
प्रभु ने व्रजभूमि से हटा, पहले ही द्वारका पहुँचाया। मथुरामण्डल से उनका, इस विध प्रस्थान था करवाया।।

ब्राह्मण शाप को निमित्त बना, मूसल जो उत्पन्न हुआ। उसीको अपना निमित्त बना, देवों को स्वर्ग में भेज दिया।।
पुन: निज अधिकारों पर, स्थापित उनको कर दिया। किन्तु जिनके मन में थी, केवल प्रभु पाने की इच्छा।।
उन्हें प्रेमानन्द स्वरूप बना, अन्तरंग पार्षद पद दिया। प्रभु की नित्य लीला में, यहाँ गुप्त रूप से रहें सदा।।
किन्तु उनके दर्शन के, जो अधिकारी नहीं भएं। ऐसे जीवों के लिये, वह तो सदा अदृश्य रहें।।

व्यावहारिक लीला में प्रभु की, जो जीव हैं स्थित रहते। नित्य लीला के दर्शन के, अधिकारी वह नहीं होते।।
इस कारण यहाँ पे जो, इस भाव में हैं आते। सब ओर ही सूना और निर्जन, वन प्रदेश हैं वह पाते।।
वास्तविक लीला में स्थित हैं जो, भक्तों का दर्शन उन्हें न हो। इस कारण हे वज्रनाभ, तुम तनिक भी चिन्ता नहीं करो।।
मेरी आज्ञा से यहां, अनेकों गांव बसाओ तुम। इसीसे निश्चय ही जानो, मनोरथ सिद्धि पाओ तुम।।

भगवान कृष्ण ने जहाँ पे भी, जैसी लीला है करी। गांव अनेक बसाओ तुम, उसके अनुकूल नाम से ही।।
इस भाँति दिव्य ब्रजभूमि का, सेवन तुम करते रहो। मथुरा मण्डल में इस विधि, राज्य तुम अपना करो।।
गोवर्धन डीग मथुरा और, महावन गोकुल बसाओ तुम। नन्दगांव और बरसाना में, छावनी अपनी बनाओ तुम।।

उन उन स्थानों में रहकर, श्री भगवान की लीला स्थली। नदी पर्वत घाटी सरोवर, कुण्ड और कुंजन वन आदि।।
इन सबका अति प्रेम से, तुम्हें सेवन करना चाहिये। सम्पन्न होगी प्रजा तेरी, प्रसन्नता स्वयं भी पाइए।।

सच्चिदानन्दमय ब्रजभूमि का, यत्न से तुम करो सेवन। हे प्रिय तात् तुम्हारे लिये, कहूँ मैं यह आशीर्वचन।।
भगवान कृष्ण की लीला का, जो भी स्थान जहाँ पे है। ठीक से पहचानोगे तुम, जो लीला भूमि जहाँ पे है।।

इस ब्रजभूमि का सेवन, निरन्तर जब कर पाओगे। किसी दिन श्री उद्धव जी के, दर्शन भी तुम पाओगे।।
निज माताओं के साथ तुम, फिर उन्हीं से जान यह जाओगे। इस भूमि और भगवान का, गुह्य सार तुम पाओगे।।
सूत बोले,
मुनिवर श्री शाण्डिल्य ने, उन दोनों को यूँ समझाया। कृष्ण स्मरण करते हुए, निज आश्रम को प्रस्थान किया।।
उनकी बातें सुनकर के, दोनों ही हुए उनसे प्रसन्न। वज्रनाभ परीक्षित् के, पूर्ण थे उस पल प्रेम से मन।।

ऋषि बोले,
परीक्षित् वज्रनाभ को, इस भाँति उपदेश दे। शाण्डिल्य मुनि जब पुन:, अपने आश्रम को लौटे।।
तब दोनों राजाओं ने, कैसे उनका अनुसरण किया? कौन से कामों को किस विध, फिर उन्होने सम्पन्न किया?

सूत बोले,
इन्द्रप्रस्थ से बहुत धनिकों को, परीक्षित् ने फिर बुलवाया। मथुरा में रहने के लिये, स्थान उन्हें फिर दिलवाया।।

मथुरा मण्डल के ब्राह्मण भी, बुलवाये सम्राट ने। बुलाये प्राचीन वानर भी, श्री कृष्ण के जो अति प्रेमी थे।।
आदरणीय उन्हें जानकर, मथुरा में बसा दिया। इस प्रकार सम्राट श्री, परीक्षित् की सहायता पा।।
महर्षि शाण्डिल्य की, कृपा से खोजे सभी स्थान। प्रेमी गोप गोपियों संग, जहाँ हुई प्रभु लीला महान्।।
लीला स्थलों का ठीक ठीक, पता वज्रनाभ को लगा। लीला के अनुरूप ही उन, स्थानों को फिर नाम दिया।।
भगवान के श्री लीला विग्रह, उन स्थानों पर स्थापित किये। और अनेकों गांव भी, उसने वहाँ बसा दिये।।
स्थान स्थान पर प्रभु नाम के, कुएँ और कुण्ड खुदवाये। शिवादि देव स्थापित किये, कुंज बगीचे लगवाये।।

विभिन्न नाम से भगवद् विग्रह, स्थापित उन्होंने करवा दिये। गोविन्द देव किसी को कहा, हरि देव किसी को नाम दिये।।
वज्रनाभ ने अपने राज्य में, एकमात्र ही काम किया। सारे शुभ कर्मों द्वारा, श्री कृष्ण भक्ति प्रचार किया।।

अति आनन्दित स्वयं हुए, वा प्रजा भी थी आनन्द भरी। प्रभु के नाम और लीला का, वह कीर्तन करती रहती।।
परमानन्द के सिन्धु में, सदा निमग्न वह थी रहती। वज्रनाभ के राज्य की, महिमा वह सदा गाती रहती।।

श्री कृष्ण विरह की वेदना से, व्याकुल थीं उनकी रानियाँ। निज प्रियतम पतिदेव की, सोलह हजार वह रानियाँ।।
पटरानी कालिन्दी को, आनन्दित जब उन्होने देखा। सरल भाव से द्वेष रहित हो, उसको जाकर यह पूछा।।

कृष्ण पत्नियाँ बोली,
बहिन कालिन्दी हम जैसी, तुम भ तो कृष्ण की पत्नी हो। विरह व्यथा में दग्ध हैं हम, पर तुम तो अति आनन्दित हो।।
क्या कारण है कल्याणि कहो, किस विध कैसे यह हो पाया? विरह व्यथा ने तेरा मन, कहो है कैसे नहीं ग्रसा?

सूत बोले,
उनका प्रश्न यह सुन कर, यमुना जी हंसने लगीं। सोचा मम पति की पत्नियाँ, हैं सब यह मेरी बहिनें ही।।
द्रवीभूत हुआ हृदय उनका, दया का सागर उमड़ा वहाँ। कृष्ण की अन्य पत्नियों को, फिर उन्होने यह वचन कहा।।

करें आत्मा में ही नित्य रमण, श्री कृष्ण तो आत्म राम हैं। राधारानी उनकी आत्मा हैं, उनकी सेवा मेरा काम है।।
दासी की भाँति ही नित्य, मैं सेवा उनकी करूँ। उसका ही प्रभाव यह है, विरह का स्पर्श मैं न पाऊँ।।

श्री कृष्ण की जितनी भी, रानियाँ और महारानियाँ हैं। श्री राधा जी के अंश का, ही तो सब विस्तार हैं।।
भगवान कृष्ण और राधा तो, इक दूजे के सम्मुख रहें। परस्पर में उनका तो, नित्य ही संयोग रहे।।
श्री राधा का स्वरूप ही, अंशत: विद्यमान जहाँ। श्री भगवान का नित्य संयोग, सदा प्राप्त ही रहे वहाँ।।

श्री कृष्ण ही हैं राधा, और राधा ही श्री कृष्ण हैं। उन दोनों का प्रेम ही, जान लो तुम वंशी यह है।।
राधा की सखी चन्द्रावली, श्री कृष्ण चरण की सेवा करे। नखचन्द्र की सेवा में रत है, इस कारण नाम है यह पाये।।

श्री राधा कृष्ण की सेवा में, सदा लालायित वह रहे। इसीलिये कोई अन्य कभी, रूप न धारण वह करे।।
मैंने यहीं पर राधा में, रुक्मिणी आदि सबको देखा। तुम लोगों का भी कृष्ण से, वास्तविक वियोग कभी नहीं हुआ।।
किन्तु इस रहस्य का है, तुम लोगों को ज्ञान नहीं। इस कारण ही विरह में हो, उनके लिये व्याकुल बनी।।
पहले भी श्री अक्रूर जी, जब कृष्ण को मथुरा ले गये। नन्दगाँव से कृष्ण ने, जिस पल थे प्रस्थान किये।।

गोपियों को तब कृष्ण से, विरह की जो प्रतीति हुई। वास्तव में विरह नहीं था वह, केवल आभास मात्र ही थी।।
वास्तव में विरह नहीं था वह, अति व्यथित वह थीं हुई। उद्धव ने जब समाधान किया, तब इस बात को समझ सकीं।।
यदि श्री उद्धव का सत्संग, तुम सब को भी प्राप्त हो। तुम भी प्रियतम श्री कृष्ण संग, नित्य विहार का सुख पाओ।।

सूत बोले,
हे ऋषिगण कालिन्दी ने, जब उनको यूं समझाया। सदा मुदितमनी यमुना से, उन्होंने पुन: यह जाय कहा।।
उनके हृदय में उस समय, तीव्र लालसा थी भरी। जिस किसी भाँति भी वह, उद्धव के दर्शन पायें सही।।
जिससे अपने प्रियतम संग, नित्य संयोग ही बना रहे। एक प्रतीक्षा थी मन में, सौभाग्य यह कैसे उनका जगे।।

कृष्ण पत्नियाँ बोली,
धन्य है जीवन तेरा सखी, नहीं प्राणनाथ से वियोग कभी। उनके विरह की वेदना, नहीं झेलनी तुमको कभी पड़ी।।
जिनकी कृपा से तुम्हें मिली, अभीष्ट अर्थ की यह सिद्धि। हम भी उन्हीं श्री राधिका, रानी की दासी हुईं।।

किन्तु है तुमने अभी कहा, उद्धव की कृपा से हो यह सके। उनके मिलने पर ही तो, मनोरथ सारे पूर्ण भएं।।
इस कारण ही कालिन्दी, ऐसा कोई उपाय कहो। शीघ्रातिशीघ्र ही उद्धव का, अब दर्शन हमको भी हो।।

सूत बोले,
श्री कृष्ण की रानियाँ जब, यमुना जी से यूँ बोलीं। भगवान की षोडश कला का वह, चिन्तन करके कहने लगीं।।
कालिन्दी बोली,
भगवान कृष्ण ने परम धाम, जब जाने का निश्चय किया। निज मन्त्री श्री उद्धव को, बुलाकर के उन्होने कहा।।
साधना करने की भूमि, जानो है बद्रिका आश्रम। वहीं पे जाकर हे उद्धव, करो साधना तुम सम्पन्न।।
भगवान की यह आज्ञा पाकर, श्री उद्धव गए बद्रिका धाम। साक्षात् स्वरूप में अपने वह, वहीं पे हैं विराजमान्।।
जो भी जिज्ञासु साधक, उनके पास वहाँ जा पहुँचे। श्री हरि से पाया ज्ञान जो, उपदेश वह करते हैं रहते।।

साधना की फल स्वरूपा, भूमि है यह व्रजभूमि। इसके रहस्यों सहित ही, पहले थी उद्धव को सौंपी।।
किन्तु जब श्री हरि स्वयं, इस भूमि से हुए अन्तर्धान। स्थूल दृष्टि से हुई ओझल, फल रूप भूमि भी जान।।
इस कारण ही इस समय, प्रत्यक्ष रूप से अब उसका। और श्री उद्धव का भी, दर्शन हो नहीं सकता।।

फिर भी यहाँ है एक स्थान, जहाँ उद्धव नित्य निवास करें। वहीं पे श्री उद्धव जी का, प्रत्यक्ष दरस भी हो सके।।
गोवर्धन पर्वत के निकट, है गोपियों की विहार स्थली। लता बेल अंकुर में है, उद्धव का वास वहाँ निश्चित ही।।
इस रूप में रहने का, उद्देश्य एक ही है उनका। प्रभु की प्रियतमा गोपियों की, चरण रज उनपे पड़े सदा।।

इक अन्य बात भी उद्धव के, सम्बन्ध में निश्चित है कही। श्री हरि ने उत्सव रूप निज, प्रदान है उनको करी।।
श्री भगवान का उत्सव ही, उद्धव जी का अंग है। भिन्न नहीं कभी हो सकें, दोनों ही रहें संग हैं।।
वज्रनाभ को संग लेकर, अब तुम वहाँ पे ही जाओ। कुसुम सरोवर के निकट, वहीं पे जाकर तुम ठहरो।।

भगवद्भक्तों की मण्डली, फिर एकत्रित तुम करो। वीणा वेणु मृदंगादि, वाद्यों को निज संग लो।।
प्रभु के नाम और लीला का, कीर्तन और गुणगान करो। भगवत्सम्बन्धी काव्य और, कथाओं का तुम श्रवण करो।।
भगवन्नाम से सम्बन्धित, सरस गीतों का गान करो। इस भाँति महान् यह, उत्सव तुम आरम्भ करो।।

वह महान् उत्सव जानो, जब इस भाँति विस्तृत होगा। तब जानो निश्चित ही वहाँ, श्री उद्धव का दर्शन होगा।।
भली भाँति वह आपके, मनोरथ पूर्ण करेंगे सब। श्री उद्धव से ही पाओ तुम, सत्त्व तत्त्व का ज्ञान तब।।

सूत बोले,
कालिन्दी की यह बातें सुन, अति मुदित हुईं सब रानियाँ। सबने ही मिलकर फिर, श्री यमुना जी को प्रणाम किया।।
वहाँ से लौट वह वज्रनाभ, और परीक्षित् पास आईं। कालिन्दी की सब बातें, सविस्तार उन्हें बतलाईं।।

उनकी बातें सुनकर के, परीक्षित् अति प्रसन्न हुए। वज्रनाभ को साथ ले, सब रानियों संग वहाँ पहुँचे ।।
उस स्थान पर पहुँचकर, यमुना ने जैसा बताया था। तत्काल ही वह कार्य सब, उन सबने मिली आरम्भ किया ।।

वृन्दावन में गोवर्धन के, पास है जो लीला स्थली। कुसुम सरोवर पर जो है, सखियों की विहार स्थली ।।
श्री कृष्ण संकीर्तन का, उत्सव वहाँ आरम्भ हुआ। हर्षोल्लास परिपूर्ण हो, सबने उसमें भाग लिया ।।

वृषभानु सुता श्री राधा और, प्रियतम की वह लीला स्थली। इस संकीर्तन उत्सव की, शोभा से सम्पन्न हुई ।।
वहाँ के निवासी भक्त जन, एकाग्र चित्त वहाँ हो गए। दृष्टि वृत्ति और मन उनके, अन्यत्र कहीं न जाते थे ।।

सबके देखते देखते ही, फिर वहाँ पे विस्तृत तृणों से। गुल्म और लताओं के, समूह से उद्धव प्रकट हुए ।।
श्यामवर्ण था तन उनका, पीताम्बर उसपर शोभित था। गले में उनके वनमाला, संग थीं गुंजा की माला ।।
मुख से उनके बार बार, एक ही स्वर था निकल रहा। गोपिका वल्लभ कृष्ण की, लीलाओं का वह गान था ।।
संकीर्तन उत्सव की शोभा, उनके आने से बढ़ी। स्फटिकमणि की अट्टालिका ज्यों, चमके जब हो चान्दनी ।।
सभी लोग आनन्द के, महासागर में निमग्न हुए। सुध बुध अपनी खो बैठे, वह अपना आप भी भूल गये ।।

थोड़ी देर के बाद जब, चेतनावान् वह पुन: हुए। दिव्य लोक से उतर कर, सामान्य लोक में जब पहुँचे ।।
श्री उद्धव को भगवान के, स्वरूप में उन्होने देखा स्थित। मनोरथ पूर्ण हुए अपने, यह जानी मन था उनका मुदित ।।
सबके मन ही कृष्ण की, भक्ति से परिपूर्ण हुए। वह उनकी पूजा करने लगे, सम्मान उन्हीं का करने लगे ।।
सूत बोले,
वहाँ एकत्रित सब जन को, श्री कृष्ण कीर्तन रत देखा। श्री उद्धव ने सबका ही, प्रेम सहित सत्कार किया ।।
हृदय लगा परीक्षित् को, प्रेम अपना प्रकट किया। प्रेम से पूर्ण होकर के, उसको फिर यह वचन कहा ।।
उद्धव बोले,
हे राजन् तुम धन्य हो, कृष्ण भक्ति परिपूर्ण हो। श्री कृष्ण संकीर्तन के महोत्सव, में तुम हुए निमग्न हो ।।
अति सौभाग्य से कृष्ण पत्नियों, प्रति तुम्हारी भक्ति है। और वज्रनाभ प्रति, प्रेमपूर्ण आसक्ति है ।।
हे तात् यह सब तो, है तेरे अनुरूप ही। हो भी क्यों न यह तन वैभव, सब दिया है तुमको कृष्ण ने ही ।।
उनके प्रपौत्र के प्रति, प्रेम तेरा यह स्वभाविक है। इसे देख सच पूछो तो, नहीं हुआ मुझे आश्चर्य है ।।

नहीं तनिक सन्देह इसमें, हैं यह जन अति भाग्यवान्। सारे द्वारकावासियों में, इनके ही भाग्य सर्वोत्तम जान ।।
इनके वज्र में निवास हेतु, प्रभु ने अर्जुन को आज्ञा दी। इस कारण ही तो सब यह, पहुँचे हैं आ इस पुण्य भूमि ।।

श्री कृष्ण का मन रूपा चन्द्र, चान्दनी से है युक्त हुआ। उसकी चान्दनी है जानो, श्री राधा जी के मुख की प्रभा ।।
उनकी लीला स्थली वृन्दावन, उससे नित्य सुशोभित है। हे राजन् तुम जान लो, वह सर्वदा यहाँ विराजित हैं ।।

नित्य परिपूर्ण चन्द्र है यह, विकार नहीं कोई हो सके। प्राकृत शशि की भाँति वह, न्यून या वर्धित नहीं भए ।।
उनकी सोलह कलाओं से, सहस्त्रश: चिन्मय रश्मि फूटें। इससे सहस्त्रों भेद भी, उनमें आभासित से होएं ।।
इन सभी कलाओं युक्त कृष्ण, रहें व्रजभूमि में विराजमान्। उनके स्वरूप और इस भू में, हे राजन् नहीं तू अन्तर जान ।।

इस विचार की दृष्टि से, हे राजन् गर तू देखे। प्रभु अंग में स्थित हैं व्रजवासी, यह सत्य तू जान ले।।
यह व्रजवासी शरणागत को, नित्य अभय प्रदान करें। इनका स्थान श्री कृष्ण के, दाहिने चरण में जान ले।।

श्री कृष्ण ने इस अवतार में, योगमाया से सबको ग्रसा। उसके ही प्रभाव से, निज स्वरूप इन्हें भूल गया।।
साधारण बनकर इस कारण, यह जन सदा हों दु:खी सुखी। हे राजन् यह सत्य है, जान तू निस्संदेह ही।।

बिन कृष्ण के प्रकाश के, स्वरूप बोध न किसी को हो। जीवों के अन्त:करण में, श्री कृष्ण तत्त्व प्रकाश है जो।।
माया से आवृत्त वह रहे, इस कारण सत्य न जान सकें। अपने वास्तविक स्वरूप को, जीव नहीं पहचान सकें।।

अठ्ठाइसवें द्वापर के अन्त, जब प्रभु स्वयं अवतार लें। श्री कृष्ण तब प्रकट हो, माया आवरण यह दूर करें।।
उनके प्रकाश को जीव यह, प्राप्त तभी तो कर सके। किन्तु वह समय तो बीत गया, आज जीव फिर क्या करे?
उनके प्रकाश की प्राप्ति का, साधन अब दूजा कहें। उस काल से अन्य समय में यदि, कृष्ण प्रकाश कोई चाहे।।
श्रीमद्भागवत की शरण में, ही वह जीव चला जाये। क्योंकि उसकी राही ही, यह तत्त्व प्रकाशित हो पाये।।

भगवान के भक्त जहाँ जब भी, श्रीमद्भागवत का श्रवण करें। इस पावनतम ग्रन्थ का, जब भी संकीर्तन करें।।
उस समय श्री कृष्ण वहाँ, साक्षात् रहें विद्यमान्। एक या आधे श्लोक के भी, पाठ का जहाँ पे होता गान।।
अपनी प्रियतमा गोपिन् संग, कृष्ण वहाँ पे सदा बसें। इस महापुराण में जान लें, श्री कृष्ण विराजमान् रहें।।

पावनतम भारतवर्ष में, जिनको जन्म का भाग्य मिला। मानव जन्म यह पाकर भी, जिन्होने श्री भागवत नहीं सुना।।
मानो अपने ही पापों के, अधीन हुए वह जन स्वयं। जैसे अपने हाथों ही, किया हो उन्होंने आत्म हनन।।
जो बड़भागी प्रतिदिन ही, श्रीमद्भागवत सेवन करें। निज मात पिता और पत्नी के, तीनों कुल का उद्धार करें।।

श्रीमद्भागवत का स्वाध्याय, और श्रवण जो नित्य करें। विद्या के प्रकाश को, स्वत: विप्र वह प्राप्त करें।।
क्षत्रिय जन भी सहज ही, शत्रु पर विजय पा लें। वैश्यों को धन मिल जाये, शूद्र निरोग ही बने रहें।।

स्त्रियां और अन्त्यज भी, गर श्री भागवत श्रवण करें। अपनी अपनी इच्छा की, पूर्ति वह इस राह पायें।।
कौन भाग्यवान होगा ऐसा, जो नित्य न सेवन इसका करे? इसके सेवन के द्वारा, जन्म मरण से जीव तरे।।

अनेक जन्म की साधना से, जीव जो पूर्ण सिद्ध हो। तब ही श्रीमद्भागवत की, प्राप्ति का उदय सौभाग्य हो।।
श्री भागवत की ही राही, प्रभु का प्रकाश उसे मिल सके। श्री हरि के चरण कमल में ही, भक्ति फिर उसकी जगे।।

पुराकाल में श्री सांख्यायन की, कृपा से यह भागवत मिला। देवगुरु श्री बृहस्पति को, उन्होने यह उपहार दिया।।
उन्होने पुन: कृपा करके, फिर मुझको यह शास्त्र दिया। इस गुरु कृपा कारण ही मैं, प्रियतम सखा हुआ कृष्ण का।।

हे राजन् श्री बृहस्पति ने, आख्यायिका इक थी सुनाई मुझे। उसीको आज हूँ कर रहा, राजन् सुनो इसे ध्यान से।।
श्रीमद्भागवत श्रवण के, सम्प्रदाय का क्रम है कहा। गुरु बृहस्पति का वही कथन, मेरे मुख से सुनो जरा।।
बृहस्पति बोले,
पुरुष रूपधारी हरि ने, जब सृष्टि का संकल्प किया। निज माया से अपने ही, दिव्य उस विग्रह द्वारा।।

तीन पुरुष प्रकटे वहाँ, रजोगुण प्रधान हैं श्री ब्रह्मा। सतोगुण प्रधान श्री विष्णु हैं, तमोगुण प्रधान को रुद्र कहा।।
इन तीनों को श्री हरि ने, क्रमश: यह अधिकार दिया। जग की उत्पत्ति पालन और, संहार का उनको काम दिया।।
प्रभु के श्री नाभि कमल से, ब्रह्मा जो थे प्रकट हुए। अपने मन के भाव फिर, प्रभु चरण में उन्होने धरे।।
ब्रह्मा बोले,
नार (जल) में शयन करें हैं आप, नारायण नाम से सिद्ध हैं। हैं आदि पुरुष सबके कारण, प्रभु आपके चरण में नमन है।।
आपने मुझको हे प्रभु, सृष्टि के कार्य में लगा दिया। इस कारण हे देव मेरे, है मेरा मन भयभीत हुआ।।
है पापरूप रजोगुण यह, कहीं आपकी याद न भूले मुझे। इस कारण अब कृपा करी, कोई ऐसा साधन कहें।।
स्मृति निरन्तर बनी रहे, इक पल न आपको भूलूँ मैं। रजोगुणी होकर के भी, रहूँ नित्य निमग्न आपमें मैं।।
बृहस्पति बोले,
ब्रह्मा जी ने श्री हरि से, जब इस विधि प्रार्थना की। पूर्वकाल में श्री हरि ने, उन्हें भागवत की उपदेश की।।
फिर उन्हें कहा हे ब्रह्मा तुम, निज मनोरथ सिद्धि को। इस श्रीमद्भागवत का, सेवन सदा ही करते रहो।।

इस उपदेश को पाकर के, श्री ब्रह्मा अति मुदित हुए। श्री कृष्ण की नित्य प्राप्ति, का उद्देश्य हिय में लिये।।
और सप्त आवरणों का, भेदन करने के लिये। श्रीमद्भागवत सप्ताह के, परायण श्री ब्रह्मा ने किये।।

सप्ताह यज्ञ की विधि से उन्होने, सात दिन सेवन किया। श्रीमद्भागवत के सेवन से, मनोरथ सब उनका पूर्ण हुआ।।
इस कारण ही वह जानो सदा, भागवत स्मरन ही करते हैं। और सृष्टि विस्तार का, कर्त्तव्य वह अपना करते हैं।।
पुन: पुन: सप्ताह यज्ञ का, अनुष्ठान वह करते हैं। स्मृति न विस्मृत हो कभी, इस कारण वह करते हैं।।
उन परम पुरुष ने विष्णु को, प्रजा पालन में लगाया था। ब्रह्मा की भाँति उन्होने भी, अभीष्ट मनोरथ अपना कहा।।

विष्णु बोले,
आपकी आज्ञा से प्रभु, कर्म और ज्ञान उद्देश्य से। प्रजा का मैं पालन करूँ, प्रवृत्ति निवृत्ति राह से।।
काल क्रम से धर्म की, हानि होगी जब जब भी। उसकी स्थापना करूँगा मैं, लेकर विभिन्न अवतार ही।।

भोग के इच्छुक जन को मैं, यज्ञों का फल निश्चित दूँगा। मुमुक्षु और विरक्त हैं जो, उनको भी वांछित फल दूँगा।।
उनकी इच्छा अनुसार ही, पांच विधि की मुक्ति जो। निश्चित वह प्राप्त होगी, मेरे ही द्वारा उनको।।

किन्तु जो जन मोक्ष भी, नहीं कभी चाहें प्रभु। कैसे करूँ पालन उनका, यह बात नहीं मैं समझ सकूँ।।
अपनी और लक्ष्मी जी की, रक्षा मैं कैसे करूँ? इसका भी उपाय प्रभु, आपसे ही अब मैं पूंछूँ।।

बृहस्पति बोले,
श्री विष्णु की यह प्रार्थना सुन, आदि पुरुष श्री कृष्ण ने। उनको श्रीमद्भागवत के, ही उपदेश प्रदान किये।।
यही कहा उनको भी फिर, मनोरथ सिद्धि के लिये। श्रीमद्भागवत शास्त्र का, पाठ नित्य ही कीजिये।।

उस उपदेश को पाकर के, प्रभु विष्णु अति प्रसन्न हुए। श्री लक्ष्मी संग हर मास में वह, भागवत चिन्तन करने लगे।।
इससे परमार्थ पालन में, और संसार की रक्षा में। श्री विष्णु हर भाँति से, समर्थ और अति सफल हुए।।

प्रभु विष्णु स्वयं वक्ता बने, श्री लक्ष्मी प्रेम से श्रवण करें। भागवत कथा का श्रवण यह, इक मास में ही सम्पन्न भए।।

किन्तु जब श्री लक्ष्मी जी, स्वयं ही वक्ता बन जायें। और श्री विष्णु श्रोता बनी, इस शुभ कथा का श्रवण करें।।
तब रसास्वादन इसका, दो मास तक हुआ करे। अति सुन्दर और रुचिकर फिर, यह कथा तब हुआ करे।।

इसका कारण भी जान लें, श्री विष्णु हैं अधिकारारूढ़। जगत् की पालना के लिये, हैं यत्नशील और चिन्तातुर।।
किन्तु श्री लक्ष्मी जी तो, रहें इन झमेलों से परे। निश्चिन्त हृदय से कथा का, रसास्वादन ही अद्भुत भए।।
तत्पश्चात् श्री रुद्र ने भी, सामर्थ्य वृद्धि की प्रार्थना की। इनको ही संहार की, कार्य सिद्धि प्रभु ने थी दी।।

रुद्र बोले,
हे मेरे प्रभु देवादिदेव, शक्ति आपने दी मुझमें। नित्य नैमित्तिक प्राकृतिक, संसार की शक्तियां हैं मुझमें।।
आत्यन्तिक संहार तो, किन्तु मैं नहीं कर सकूँ। अति दु:खदे है यह मेरे लिये, इस कारण याचना आज करूँ।।

बृहस्पति बोले,
रुद्र की प्रार्थना सुनकर के, उनको भी वही उपदेश दिया। उनके लिये श्री श्रीमद्भागवत, का प्रभुने आख्यान किया।।
सदाशिव रुद्र ने एक वर्ष में, एक परायण फिर किया। इस क्रम से श्री भागवत की, कथा का सेवन उन्होने किया।।
इस सेवन के राही ही, तमोगुण को उन्होने विजय किया। आत्यन्तिक संहार की, शक्ति को भी प्राप्त किया।।

उद्धव बोले,
श्री भागवत के माहात्म्य में, यह आख्यान था मैंने सुना। गुरु बृहस्पति से ही, माहात्म्य मुझे यह ज्ञात हुआ।।
श्री भागवत का उपदेश मिला, उनके चरण में सीस धरा। श्री गुरु से यह प्रसाद पा, अति आनन्दित मैं हुआ।।

तत्पश्चात् प्रभु विष्णु की, विधि का मैंने अनुसरण किया। भली भाँति इक मास तक, भागवत का रसास्वादन किया।।
उसके प्रसाद से कृष्ण का, प्रियतम सखा मैं बन गया। तत्पश्चात् श्री हरि ने, कीनी मुझ पर इक और कृपा।।
व्रज में अपनी प्रियतमा, गोपियों का सम्पर्क दिया। कृपा करी उनकी सेवा, में नियुक्त मुझे कर दिया।।

निज लीला परिकरों संग, यद्यपि प्रभु नित्य विहार करें। गोपिकागण से इस कारण, कृष्ण वियोग न हो सके।।
तथापि भ्रम वशीभूत जो, विरह व्यथा अनुभूति थी। मेरे मुख द्वारा श्री हरि ने, भागवत संदेश थी उनको दी।।

अपनी बुद्धि अनुसार ही, उन्होने उपदेश यह ग्रहण किया। विरह व्यथा से मुक्त हुईं, गोपियां यह उपदेश पा।।
भागवत के इस गुह्य रहस्य को, समझ तो मैं भी नहीं सका। किन्तु यह चमत्कार उसका, प्रत्यक्ष ही मैंने देख लिया।।

बहुत काल पश्चात् जब, ब्रह्मादि देवता सब आये। स्वधाम पधारने की प्रभु को, वह प्रार्थना करके चले गए।।
उसपल अश्वत्थ की मूल पास, प्रभु के संग था मैं खड़ा। श्रीमद्भागवत रहस्य का, प्रभु ने मुझको उपदेश दिया।।
मेरी बुद्धि में उसके प्रति, दृढ़ विश्वास बिठा दिया। उसका ही प्रभाव तो, मुझपर भी कुछ ऐसा हुआ।।

बद्रिकाश्रम में रहकर, भी मैं यहाँ निवास करूँ। व्रज की लताओं बेलों में, में नित्य निरन्तर बसा रहूँ।।
उसीके बल से स्वेच्छा से, नारद कुण्ड में रहूँ विद्यमान। श्रीमद्भागवत के सेवन से, हो कृष्ण तत्त्व प्रकाशवान्।।

इस कारण यहाँ उपस्थित सब, भक्तों की कार्य सिद्धि के लिये। श्री भागवत पाठ करूँगा मैं, यदि सहायता तेरी मिले।।
सूत बोले,
यह सुनकर परीक्षित् ने, प्रणाम श्री उद्धव को किया। तत्पश्चात् श्री उद्धव को, राजा ने यह वचन कहा।।
श्रीमद्भागवत कथा का, निश्चिन्त होई कीर्तन करें। हैं हरि के प्रियतम दास आप, है मेरे योग्य जो आज्ञा दें।।
जो सहायता भी मुझसे, इस कार्य में सम्भव बन पाये। पूर्ण सामर्थ्य लगाकर ही, चरण में अर्पित हो जाये।।
परीक्षित् का यह वचन सुनी, श्री उद्धव अति प्रसन्न हुए। तत्पश्चात् परीक्षित् को, उद्धव ने यह वचन कहे।।
उद्धव बोले,
हे राजन् श्री कृष्ण ने, जब से यह पृथ्वी तल त्यजा। अति बलवान कलियुग का, प्रभुत्व है तब से हो गया।।
इस शुभ अनुष्ठान का, आरम्भ यहां पे जब होगा। अति बलवान यह कलियुग, विघ्न राह में धर देगा।।

अब दिग्विजय को तुम जाओ, कलियुग को वश में करो अपने। तुम्हारे सहयोग से वैष्णवी, रीति का अब आश्रय ले।।
एक मास तक भागवत की, कथा का रस मैं चखाऊँगा। इस रस से सब श्रोताओं को, गोलोक धाम पहुँचाऊँगा।।
सूत बोले,
श्री उद्धव की यह बात सुनी, उत्साहित राजा हुए। कलियुग पे विजय वह पायेंगे, यह सोच करी वह मुदित थे।।
किन्तु विचार जब यह उठा, वंचित रहूँ मैं कथा से। इस भाव के उठते ही, व्याकुल हुए वह चिन्ता से।।
उस समय श्री उद्धव से, अभिप्राय अपना प्रकट किया। अपने मन का भाव उन्होने, उद्धव जी से यूँ कहा।।

तेरी आज्ञा अनुसार तात्, कलियुग को करूँगा निज वश में। किन्तु श्रीमद्भागवत की, प्राप्ति कैसे मुझे हो सके?
मैं भी आपके चरणों की, शरण में ही हूँ आया। मुझ पर भी हे तात् रहे, अनुग्रह आपका बना सदा।।
उनके इस वचन को सुन कर, हृदय उद्धव का द्रवीभूत हुआ। उद्धव ने करुणा युक्त हो, राजा को यह वचन कहा।।
उद्धव बोले,
तुमको तो राजन् किसी विधि, चिन्ता नहीं करनी चाहिये। तुम ही तो मुख्य अधिकारी हो, जानो इस भागवत शास्त्र के।।
जग के लोग नाना विधि के, कर्मों में निमग्न रहें। भागवत श्रवण की बात तो, प्राय: यह जान ही नहीं सकें।।
तुम्हारे ही प्रसाद से, भागवत कथा यह पायेंगे। अधिकांश लोग इस कथा की राह, शाश्वत सुख को पायेंगे।।
महर्षि शुकदेव तो हैं, श्री कृष्ण के अपने ही स्वरूप। नहीं तनिक सन्देह इसमें, कहें वही तुम्हें यह कथा रूप।।

उस कथा श्रवण से राजन् तुम, परम धाम को पाओगे। श्री कृष्ण के नित्य धाम के, अधिकारी हो जाओगे।।
तत्पश्चात् इस धरती पर, भागवत कथा विस्तृत होगी। प्रचारित यह भागवत कथा, तुम्हारे माध्यम से ही होगी।।
सूत बोले,
उद्धव जी की यह बात सुनी, परीक्षित् ने प्रणाम किया। उनकी परिक्रमा करके, दिग्विजय को फिर प्रस्थान किया।।
वज्र ने भी अपने पुत्र, प्रतिबाहु का अभिषेक किया। निज राजधानी मथुरा का, राजा उसे बना दिया।।

माताओं को संग ले, वह उसी स्थान पर जा पहुँचे। उद्धव प्रकट थे हुए जहाँ, उस स्थान पे जा रहने लगे।।
श्रीमद्भागवत सुनने की, जिज्ञासा उनके मन में थी। इस कारण ही वज्र थे, निवास वहाँ पर जाकर की।।

श्री वृन्दावन धाम में, गोवर्धन पर्वत के निकट। श्रीमद्भागवत की धारा, इक मास यूं बहती रही अविरत।।
जो प्रेमी गण श्रोता बन, रसास्वादन थे कर रहे। उनकी दृष्टि को सभी ओर, श्री कृष्ण दरस होने लगे।।
प्रभु की सच्चिदानन्दमयी, लीला प्रकाशित हो गई। साक्षात् श्री कृष्ण की, दरस चहुँ दिशि होने लगी।।

सब श्रोतागण ने उस पल, अपने को प्रभु में स्थित देखा। श्री कृष्ण के दांयें चरण में, वज्र ने निज को स्थित देखा।।
श्री कृष्ण के विरह शोक से, तत्काल मुक्त वह हो गये। अपने ही स्वरूप स्थित, सुशोभित वहां पे वह हुए।।
रोहिणी आदि माताओं ने, रास रात्रि में प्रकाशित। श्री कृष्ण रूपा चन्द्र के, विग्रह में देखा निज को स्थित।।
चन्द्रकला के रूप में, निज को देखी विस्मित हुईं। निज प्राण प्रिय के विरह की, वेदना से वह मुक्त हुईं।।
उनके ही परम धाम में, प्रविष्ट वह फिर हो गईं। प्रियतम से एक रूप होकर, वह उनमें ही खो गईं।।

इसके अतिरिक्त अन्य भी, जो श्रोता वहाँ उपस्थित थे। प्रभु की नित्य अन्तरंग, लीला में जा सम्मिलित हुए।।
इस स्थूल व्यवहारिक जगत् से, तत्काल वह अन्तर्धान हुए। गोवर्धन कुंज और वृन्दों में, वह सदा विचरते हैं रहते।।
वृन्दा काम्यादि वन में, और वहाँ की दिव्य गौओं में। कृष्ण के साथ विचर कर वह, आनन्द का अनुभव हैं करते।।
जो जन श्री कृष्ण के प्रेम में, नित्य निमग्न ही हैं रहते। उन भावुक भक्तों को तो, दर्शन भी उनके हैं होते।।
इस भगवत्प्राप्ति की कथा, का श्रवण कथन करेंगे जो। श्री हरि मिल जायेंगे उन्हें, सब दु:खों का स्वत: अन्त हो।।
ऋषि बोले,
हे श्री सूत जी अति उत्तम, बात है आपने बतलाई। आयुष्मान चिरंजीवि हों, करते रहें उपदेश यूँ ही।।
आपके श्री मुख से हमने, श्रीमद्भागवत रहस्य सुना। इस महापुराण का हमने, अभूतपूर्व माहात्म्य सुना।।

कृपा करी अब हमें कहें, श्रीमद्भागवत स्वरूप की। उसका प्रमाण भी आप कहें, और कहें श्लोक की संख्या भी।।
कृपया यह भी बतलायें, इसके श्रवण की विधि है क्या। श्रीमद्भागवत के वक्ता, और श्रोता के हैं लक्षण क्या?
सूत बोले,
श्रीमद्भागवत और श्री, भगवान का है स्वरूप एक। हैं सच्चिदानन्द स्वरूप वह, हैं यह दोनों ही अभेद।।
श्री हरि के माधुर्य भाव, की अभिव्यक्ति जहाँ पे हो। उनके दिव्य रस सिन्धु का, आस्वादनदे जो वचन हो।।
उसको ही श्रीमद्भागवत, का स्वरूप आप समझें। श्री कृष्ण में जिसकी है प्रीति, उस भावुक भक्त का हृदय है ये।।

ज्ञान विज्ञान भक्ति और, जो इनके अंगभूत हैं। साधना के चतुष्टय को, जो प्रकाशित करते हैं।।
इस माया के मर्दन को, हैं सर्व सामर्थ जो। उसको ही श्री भागवत का, सत्य स्वरूप तुम जान लो।।

श्रीमद्भागवत है अनन्त, अक्षर है स्वरूप इसका। इसके नियत प्रमाण को, जान भला है कौन सकता?
पुराकाल में प्रभु विष्णु ने, ब्रह्मा को दिग्दर्श दिया। चार श्लोकों में इसका, उनको था उपदेश किया।।

अथाह सिन्धु है भागवत का, जो भी डुबकी लगाये यहाँ। अनमोल रत्न हैं यहाँ भरे, असीमित कोष वह पाये यहाँ।।
वास्तव में ब्रह्मा विष्णु, और शिव त्रिपुरारी के सिवा। निज अभीष्ट यहाँ पाने को, सामर्थ नहीं कोई हो सकता।।

बुद्धि आदि वृत्तियां जिनकी, हैं परीमित सीमाओं में। ऐसे साधारण जीवों का, कल्याण करने के लिये।।

श्री व्यास ने शुकदेव और, परीक्षित् का संवाद दिया। श्रीमद्भागवत शास्त्र के, रूप में उसका गान किया।।
इसकी श्लोक संख्या है, अठारह हजार जान लें। भवसागर में जो प्राणी, कलि रूप ग्राह से ग्रसित हुए।।
उनके लिये यह ग्रन्थ ही, है सर्वोत्तम आसरा। भवसागर से तरने को, उत्तमतम नौका इसे कहा।।

इस श्री कृष्ण कथा का, आश्रय जो जन हैं लेते। उन श्रोताओं के भेद भी, अब आप मुझ से सुन लें।।
दो प्रकार के श्रोता हैं, श्रीमद्भागवत के माने गए। इक को कहें प्रवर श्रोता, और दूजे को अवर कहें।।

पुन: प्रवर (उत्तम) श्रोताओं के, बहुत भेद हैं कहे गए। चातक हँस शुक और मीन, मुख्य चार यह भेद कहे।।
अवर (नीच) के भी हैं भेद अनेक, उनको भी अब जान लें। वृक् भूरुण्ड वृष और उष्ट् आदि मुख्य हैं नाम यह।।

चातक कहें उस पक्षी को, मेघों का बरसा जल ही पियें। उसी की आस में बैठा रहे, नहीं अन्य जल वह कोई छुए।।
इसी विधि जो श्रोता भी, अन्य सभी कुछ छोड़ के। श्री कृष्ण कथा श्रवण व्रत ले, चातक वह ही कहलाये।।

जल में मिश्रित दूध ज्यों, हँस अलग करी पान करे। जल को भिन्न करे दूध से, हँस कभी जल न छुए।।
अनेक शास्त्र का श्रवण करी, सार भाग जो ग्रहण करे। उस श्रोता को ही हँस की, श्रेणी का श्रोता जान लें।।

ज्यों तोते को भली भाँति, पाठ हो पठाया गया। मधुर वाणी से शिक्षक और, आगन्तुक का वह मन हरता।।
कथा वाचक व्यास के, मुख से उपदेश जो सुनकर के। सुन्दर और मित वाणी में, पुन: सबको सुना जो दे।।
कथा व्यास और अन्य सभी, श्रोता हों प्रसन्न उससे। ऐसे भागवत के श्रोता, शुक नाम से हैं जाने जाते।।

क्षीर सिन्धु की मछली ज्यों, सदा मौन ही है रहती। अपलक नयनों से निहारती, सदा दुग्ध पान वह है करती।।
निर्निमेष नयनों से ही, जो जीव कथा को निहारे सदा। शब्द न मुख से कहे कोई, रसास्वादन करे कथा का सदा।।
ऐसा प्रेमी श्रोता ही है, मीन नाम से कहा गया। उत्तमतम श्रोताओं के, हैं मुख्य यह ही भेद कहा।।

अब अधम कोटि के भी, श्रोताओं के भेद सुनें। वृक् नाम है भेड़िये का, अब उसका लक्षण भी जानें।।
वन में वेणु की मधुर ध्वनि, सुनने में मृग मस्त रहें। उन्हें डराने के लिये, भयंकर गर्जना वृक् करे।।
कथा श्रवण में जो मूर्ख, उद्विग्न करे श्रोताओं को। उच्च स्वर से जो बोल उठे, वृक् सम ही उसको जाने।।

हिमालय के शिखरों पर, भूरूण्ड जाति का पक्षी हो। शिक्षाप्रद् वाक् सुने जब वह, पुन: उच्चारण त्यों ही हो।।
किन्तु उस वाक् को वह स्वयं, आचरण में कभी भी न लाये। दूजों को ही सुनाये वह, भूरूण्ड वही तो कहलाये।।

वृष कहते हैं बैल को, मीठे अंगूर या कड़वी खली। दोनों का वह भक्षण करे, समान ही दोनों को जानी।।
उसी विधि जो सुनी हुई, सारी बातों को ग्रहण करे। सार असार वस्तु का, भेद वह किन्तु न जाने।।
अन्धी बुद्धि वाला श्रोता, वृष ही वह कहलाता है। सत्य असत्य विवेचन से, दूर ही वह रह जाता है।।

मधुर आम भी छोड़ के, कटु नीम ही खाये ऊंठ तो। श्री हरि की सुधामय कथा त्यजी, अन्य श्रवण ही रुचिकर हो।।
संसार की विपरीत ही, बातों में जो जन है रमता। ऐसे श्रोताजन को ही, उष्ट्र नाम से है कहा।।

थोड़े से इस भाँति के, भेद हैं यहाँ बताये गए। अतिरिक्त श्री श्रोताओं के, भेद अनेक हैं जान ले।।

भ्रमण और गधा आदि, बहुत भाँति के भेद कहे। स्वभावित भेद यह देख के, श्रोता को परखना चाहिए।।

विधिवत् प्रणाम करके जो जन, वकता सम्मुख ही जा बैठें। सांसारिक वार्ता त्यज के जो, श्री भागवत श्रवण ही किया करें।।
अति विनम् हो कर जोड़ी, श्री हरि की लीला कथा समझें। शिष्य भाव में कुशल हों वह, भली भाँति वे कथा सुनें।।
पवित्र ही हो उनका आन्तर, सदा प्रेम हो भक्तों में। ऐसे ही श्रोता को आप, उत्तम श्रेणी का जान लें।।

अब श्रीमद्भागवत के, वक्ता के भी लक्ष्मण कहें। नहीं अन्य उपेक्षा कोई हो, चित्त हरि चरण में लगा रहे।।
सबका सुहृद् और दीनों का, सदा ही जो हितकारी हो। अनेक युक्ति युक्त हो, तत्त्वबोध करा दे जो।।

हे द्विजवर भारतवर्ष की, पावनतम है धरा यही। श्रीमद्भागवत कथा की यहाँ, जो है सेवन विधि कही।।
उसकी बतलाऊँ आपको, ध्यान से इसकी बात सुनो। इसी से श्रोता के मुख की, परम्परा कहें विस्तृत हो।।
श्रीमद्भागवत का कहें, सेवन हो चार प्रकार से। सात्विक राजसिक तामसिक, और निर्गुण उसे जान लें।।

यज्ञ की भाँति ही जहाँ, तैय्यारी हो सब करी गई। बहुत पूजा सामग्री से, सम्पन्न हो जो हो रही।।
उत्सुकता और परिश्रम से, सप्ताह में जो सम्पन्न हो। प्रसन्नतापूर्वक किया गया, है राजस यज्ञ यह जान लो।।

इक दो मास में शनै: शनै:, कथा श्रवण जो होता है। बिन श्रम के जहाँ भागवत् का, रसास्वादन होता है।।
पूर्ण प्रसन्नता दे वह कथा, आनन्द सदा वर्धित करे। इस विधि कथा का सेवन, सात्विक ही है कहलाये।।

जो कभी भूल से छोड़ दे, आये याद पुन: आरम्भ करें। अश्रद्धा और आलस्य से, वर्ष पर्यन्त जो चला करे।।
तामस सेवन इसे कहें, न करने से तो है अच्छा। ऐसा सेवन भी भागवत का, सुख प्रदान है कर देता।।

वर्ष मास या दिनों का, आग्रह जब न किया जाये। प्रेम और भक्ति सहित सदा, जब भागवत श्रवण किया जाये।।
उस सेवन को ही जानो, निर्गुण सेवन है कहा। अत्युत्तम है यह सेवन, श्रीमद्भागवत का कहा।।

राजा परीक्षित् और श्री, शुकदेव का जो संवाद हुआ। इस भागवत के सेवन को, निर्गुण ही है कहा गया।।
उसमें भी जो सात दिनों, का है वर्णन किया गया। राजा की बची आयु है वह, सप्ताह का नियम है नहीं कहा।।

भारत वर्ष की छोड़ के, अन्य सभी स्थानों में भी। त्रिगुण या निर्गुण सेवन हो, अपनी रुचि अनुसार ही।।
जैसे कैसे भी हो सके, श्रीमद्भागवत सेवन करो। जहां तहां भी बन पड़े, श्रवण ही उसका करते रहो।।

श्री कृष्ण कथा का श्रवण, और कीर्तन ही जिनको है प्रिये। जिनका हृदय इस रसास्वादन, को लालायित सदा रहे।।
मोक्ष भी वांछित नहीं उन्हें, उनका तो बस धन है एक। श्रीमद्भागवत ही है बना, जीवन आधार उनका विशेष।।

दु:खपूर्ण इस संसार से, घबराकर जो मुक्ति चाहें। इस भव रोग की औषध भी, श्री भागवत में ही वह पायें।।
अत: कलिकाल में सबको ही, सेवन इसका करना चाहिये। यत्न पूर्वक सेवन से, सब दु:खों से मुक्ति पाइये।।
इसके अतिरिक्त अन्य जो जन, विषयों में ही रमण करें। संसार के सुखों में ही, जो सदा भरमाये रहें।।

कलियुग में सामर्थ्य धन, विधि ज्ञान से हैं जो हीन। कर्म मार्ग (यज्ञादि) से मिलने वाली, सिद्धि से वह हों विहीन।।

ऐसी दशा में उन सबके, लिये भी है उचित यही। श्रीमद्भागवत कथा सेवन ही, उनके लिये है श्रेष्ठ विधि।।
यह कथा श्री भागवत की, धन पुत्र स्त्री हाथी अश्व। सब वाहन गृह आदि दे, राज सहित दे पूर्ण यश।।

सकाम भाव निज हृदय धरी, श्रीभागवत का जो आश्रय लें। मनोवांछित उत्तम भोगों को, इस जग में वह प्राप्त करें।।
भोग भोग कर अन्त में, श्री भागवत का ही संग पायें। श्री हरि के परम धाम को, अन्त में प्राप्त वह हो जायें।।

जिनके यहाँ श्री भागवत की, कथा वार्ता हो सदा। और जो जन उस कथा का, श्रवण ही करते रहें सदा।।
अपने धन और तन राही, जो सेवा सहायता उनकी करें। उनके अनुग्रह से ही वे, भागवत सेवन का पुण्य पायें।।
कामना हो दो वस्तु की, या धन की या फिर कृष्ण की हो। श्री कृष्ण बिना जो भी चाहो, उसको धन ही जान लो।।

श्रोता और वक्ता भी हैं, दो प्रकार के माने गए। एक श्री कृष्ण को ही चाहें, दूजे धन के पीछे जायें।।
यदि वक्ता श्रोता एक सा हो, तो कथा का पूर्ण रस मिले। सुख ही बरसे चहुँ ओर, वृद्धि सदा उनकी होए।।

गर दोनों की भावना, भिन्न भिन्न ही बनी रहे। रस आभास में फल की, हानि ही दोनों की भए।।
श्रोता और वक्ता दोनों जहां, श्री कृष्ण के हैं प्रेमी। विलम्ब चाहे वहाँ हो जाये, पर सिद्धि निश्चित है मिलती।।

धनेच्छुक के लिये कहें, सिद्धि सम्भव तब हो पाये। जब उनके अनुष्ठान का, विधि विधान पूर्ण भए।।
सर्वथा गुणहीन भी हो, श्री कृष्ण का प्रेम यदि। विधि विधान वह जाने न, उसमें भी रह जाये कमी।।
किन्तु उसके हृदय भरा, यदि कृष्ण का प्रेम है। सर्वोत्तम है विधि यही, प्रेम ही उसका नेम है।।

कथा की पूर्ति पर्यंत, सकामी पुरुष को चाहिये। सावधान वह रहे सदा, विधि विधान पालन करे।।
श्रीमद्भागवत के वक्ता और, श्रोता दोनों पालन करें। प्रात:काल स्नान करके, नित्य कर्म पूर्ण कर लें।।
प्रभु चरणामृत का पान करें, पूजा की सब सामग्री लें। श्रीमद्भागवत ग्रन्थ का, और व्यास का वह पूजन करें।।
तत्पश्चात् प्रसन्न मनी हो, श्रीमद्भागवत कथा कहें। उसी विधि प्रसन्न मन से, श्रोता इसका श्रवण करे।।

मौन हो दूध या खीर का, भोजन वह जन नित्य करें। ब्रह्मचर्य का पालन हो, और भूमि पर शयन करें।।
क्रोध लोभ आदि को त्याग, शान्तचित्त वह सदा रहें। प्रतिदिन कथा के अन्त में, कीर्तन हरि का किया करें।।
कथा समाप्ति के दिन वह, रात्री में जागरण करें। ब्रह्म भोज करा दें दक्षिणा, ब्राह्मणों को संतुष्ट करें।।

कथावाचक को वस्त्र और, आभूषण भी यथोचित दें। सामर्थ्यवान को चाहिये, गौ भी अर्पित उसे करें।।
इस प्रकार शास्त्रानुकूल, विधि विधान जो पूर्ण करे। स्त्री घर सुत और राज्य, धनादि जो भी अभीष्ट भए।।
अपना सभी मनोवांछित, फल जीव वह प्राप्त करे। किन्तु श्री भागवत कथा में यह, सकाम भाव न शोभा दे।।

श्री शुक के मुख से निकला, यह श्रीमद्भागवत शास्त्र तो। कलियुग में साक्षात् ही, श्री कृष्ण प्राप्ति का साधन हो।।
नित्य प्रेमानन्द स्वरूप, फल प्रदान यह करता है। वक्ता और श्रोता दोनों को, श्री कृष्ण प्रेम से भरता है।।

द्वादश स्कन्ध समाप्त

गौ-महिमा

तुम जग-जीवनकी जननी हो, दूध-दही देनेवाली।
तुम गोकुलकी भी गरिमा हो, मोहनकी हो तुम प्यारी।।
तेरे सबल पुत्र हे माता। हैं जीवनके भाग्य-विधाता।
कृषकोंके नयनोंके तारे, मिटा रहे हैं कष्ट हमारे।।
धरती जोते, पानी ढोते, वाहक बनकर बोझा ढोते।
फैलाते हैं गौरव तेरा, गौ माता, अभिनन्दन तेरा।।
तुमसे जीवन हैं हम पाते, दूध, दही, घी, मक्खन खाते।
सन, तृण, तेल, अन्न, पट पाते, बदलेमें हैं क्या दे पाते।।
तुम घूम-घूम तिनके चरती हो, दुख सहती पर दुख हरती हो।
नहीं किसीसे कुछ कहती हो, जगमें जीवन भर देती हो।।
पर तेरी सुधि जब हैं लाते, नयन अश्रुसे हैं भर आते।
करते हैं हम वन्दन तेरा, गौ माता, अभिनन्दन तेरा।।

गौ सेवा एक परम धर्म है। सद्गृहस्थ को अवश्य गौ सेवा करनी चाहिए। उससे ऐहिक पारलौकिक समस्त सिद्धियाँ प्राप्त हो जाती हैं। जिसके पुत्र न होता हो गौ सेवा से पुत्र की निश्चित प्राप्ति हो सकती है। राजा दिलीप इसके प्रत्यक्ष में भी उत्तीर्ण हुए उसी से उन्हें पुत्र की प्राप्ति हुयी थी। संसार में उन्होंने गौ सेवा का एक आदर्श उपस्थित किया था। जिसके पुत्र न होता हो स्त्री में कोई रोग न हो तो गौ सेवा से प्रार्थना करने पर पुत्र अवश्य हो सकता है। सच्ची भावना हो गौ पर विश्वास हो तो। गौ में समस्त देवताओं का निवास रहता है। उसी के दूध से प्राण की रक्षा होती है और जीवनपर्यन्त ही माता की तरह दूध पिलाकर स्वास्थ्य को बनाये रखती है। उस गौ की रक्षा करना मनुष्य मात्र का परम कर्त्तव्य है। साथ ही साथ उसके बच्चे की भी रक्षा करना उचित है।

आयुर्वेद की दृष्टिसे वत्सशेष दूध निर्दोष और विशेष लाभदायक होता है। इसलिए सबसे पहले बच्चे को पिलाना अत्यन्त आवश्यक है बच्चे को जब छोड़ते हैं तब गौ जैसे ही पिनहाती है तुरन्त बच्चे बुरी तरह से खींच लेते हैं। वह दूध के लिए छटपटाता रहता है। बाद में भी दूध नहीं छोड़ते। ऐसी अवस्था में वह कैसे जीवित रह सकता है। भूसा खा नहीं सकता। वह भूख के कारण सूख-सूखकर मर जाता है। यह कितना भारी अनर्थ है और कितना पाप है। गृहस्थ तो कुछ दूध छोड़कर बच्चों को बचाने की चेष्टा भी करते हैं किन्तु काशी का आभीर वर्ग तो कसाई का काम करता है। वह तो दुहने के पहले और बाद में एक बूँद भी दूध नहीं छोड़ता जान-बूझकर बच्चों को मार डालता है यह कितना भारी अनर्थ है गौ हत्या से भी बढ़कर यह बध कहलाता है। इसका कोई प्रायश्चित्त नहीं जो है भी उसे मनुष्य कर नहीं सकता। अत: आरम्भ में जबतक बच्चा भूसा न खा सके तबतक थोड़ा-थोड़ा दूध अवश्य पिलाना चाहिए जिससे उसकी प्राण रक्षा हो सके। अन्यथा ऐसे प्राणियों को महान कष्ट होता है और घोर नरक की प्राप्ति होती हैं।

ज्यो अत्यन्त क्रूरतापूर्वक बछड़ों को खींचकर दूध नहीं पीने देते हैं वे नीच मनुष्य मरकर कुम्भीपाक नरक में डाले जाते हैं जहाँ खौलते हुए तेल की कढ़ाई में पड़े तड़पते रहते हैं। ऐसी भीषण यातना दी जाती है और इनका कुल भी सन्तति से हीन हो

जाता है। इसलिए जब तक बच्चा भूसा खाने लायक न हो तबतक थोड़ा-थोड़ा दूध दोनों समय अवश्य पिलाना चाहिए।

धनी मानी सेठों का कर्त्तव्य है कि सब मिलकर एक विशिष्ट संस्था बना ले और एकत्रित से गौ रक्ष रक्षा की समुचित ढंग से व्यवस्था करें प्रत्येक नगर में धन का यही सदुपयोग बताया गया है।

गौ, ब्राह्मण, वेद, पतिव्रता स्त्री, सत्यवादी, उदार और दानवीर इन सातों के द्वारा पृथ्वी टिकी हुई है। अत: इनकी रक्षज्ञ करना परम कर्त्तव्य है। कुछ आधुनिक अल्पवयस्क धनी वर्ग कुवासनाओं की पूर्ति में धन का दुरूपयोग करते हैं जिससे उनकी चित्तवृत्ति भगवान से विमुख हो जाती है और उनके पतन की संभावना होती है। दुर्लभ मानव जीवन पाकर नश्वर क्षणिक विषयों में आसक्त होना बुद्धिमत्ता नहीं। जीवन का लक्ष्य भगवत्प्राप्ति है। उसका मूल धर्म है और धर्म का मूल धन है अत: धन का उपयोग धर्म कार्य में लगाना चाहिए। यदि नहीं करेंगे तो सब यहीं पड़ा रह जायगा, कोई साथ में नहीं जायगा। साथ में जानेवाला तो केवल धर्म हैं।

गौएँ लोक की मातायें कही गई हैं। प्राण देकर भी गौ रक्षा करनी चाहिये। यदि गौओं की रक्षा करते समय कुछ झूठ भी बोला जाय, तो निन्दनीय नहीं, गौ हत्यारे को शक्ति भर जो भी दण्ड दिया जा सके देना चाहिये। गौ रक्षा करना प्रत्येक व्यक्ति का धर्म है अजन्मा होकर भगवान गौओं और ब्राह्मणों की रक्षा के लिये ही जन्म लेते हैं। समस्त देवता और पितर गौ के शरीर में निवास करते हैं। गौ के गोबर में लक्ष्मीजी रहती हैं। गौ की सेवा करना समस्त देवताओं की रक्षा करना है। गौ भागी जा रही हो और कसाई उसके पीछे लगा हो, वह यदि पूछे गौ इधर से गई, तो वहाँ सत्य बोलना अनुचित ही नहीं अधर्म है वहाँ जैसे हो तैसे गौ को बचाना चाहिये।

विश्व का पालन गौ के बिना हो नहीं सकता। गौ के दो रूप हैं। पृथ्वी रूप से वह सबको अपने ऊपर धारण करती है और कामधेनु रूप से प्राणियों का इस लोक तथा परलोक में कल्याण करती है। गौ का रोम-रोम पवित्र है। उसका गोरस अमृत है। मूत्र, पुरीष सभी पापों को नाश करनेवाला है, उसके दुग्ध से प्राणियों का पोषण होता है। परलोक में जहाँ कोई भी सगा सम्बन्धी, धन, वैभव नहीं जा सकता, जिस वैतरिणी नदी को प्राणी किसी प्रकार पार नहीं कर सकता, वहाँ भी इस गौ की ही पूँछ पकड़कर पार होता है। उन गौओं पर जब क्रूरकर्मा पुरुष अत्यधिक अत्याचार करते हैं, तब भगवान अवतार लेकर गौओं के दु:खों को दूर करते हैं।

गाय का दूध स्वर्णभस्म मिश्रित होता है जिसके सेवन से मेधा व स्मृति दोनों को बढ़ावा मिलता है। आध्यात्मिक पक्ष से देखे तो गाय माता का स्वरूप ही है, ममता का प्रतीक है। इससे प्राप्त गोमूत्र, दूध, दही, घी और गोबर मिलाकर ही पंचगव्य का निर्माण होता है जो विशिष्ट प्रकार के अनुष्ठानों में प्रयोग में लाया जाता है। गौ सेवा से गृहलक्ष्मी में भी वृद्धि होती है।

गाय धरती पर आनेवाला एक दिव्य प्राणी है जो धरती पर सुख शान्ति का प्रतिनिधित्व एवं प्रकृति को ताकत देती है। गाय को केवल दूध देनेवाला पशु न समझें। गायों के गोमूत्र द्वारा मनुष्य में होनेवाले समस्त रोगों का १००% निवारण होता है। गोमूत्र के बारे में कहा जाता है यह कई रोगों की दवा है। जो रोग अन्य चिकित्सा पद्धति से नियंत्रित नहीं होते वह गौमूत्र के सेवन से नियंत्रित हो जाते हैं। मातृ दुग्ध की तरह ही गोमूत्र भी मानव जाति के लिए वरदान हैं। गौमूत्र में मानव शरीर के लिए सभी पोषक तत्त्व पाये जाते हैं, जो रोग प्रतिरोधक क्षमता को बढ़ाकर शरीर को स्वस्थ रखते हैं तथा शरीर के विभिन्न अंगों को नयी ऊर्जा व ताकत प्रदान करते हैं

गौमूत्र सेवन से- बुद्धि, मुख, आंख, श्वसन तंत्र, कण रोग, त्वचीय रोग, मूत्राशय व मूत्र प्रणाली, हार्मोनस, विकृति पाचन तंत्र के रोग, आसानी से दूर हो जाते हैं। इसके अलावा १) गौमूत्र शरीर में व्याप्त विष को निष्कासित करता है। २)

कर्करोग, मधुमेह, पथरी जैसे कष्टदायी रोगों का शमन करता है। ३) रक्त में डब्ल्यू.बी.सी. की वृद्धि कर रोग प्रतिरोधक क्षमता बढ़ाता है, यदि कोई रोग है तो उससे लड़ने की शक्ति प्रदान करता है। ४) शरीर के लिए नियमित आवश्यक तत्व चांदी, कैल्शियम, लोहा, मैंगनीज, सोडियम, तांबा, इंजाईज्म, एसिड प्रचुर मात्राओं में प्रदान करता है। ५) गुस्सैल व्यक्तियों द्वारा इसका सेवन करने से मन मस्तिष्क नियंत्रण में रहता है। ६) इन दिनों मोटापा घटाने के तरह-तरह की रासायनिक दवाएं बाजार में उपलब्ध हैं जिनसे नुकसान के अलावा कुछ हाथ नहीं लगता। गौमूत्र का सेवन कीजिए तथा बिना किसी अन्य प्रभाव के फायदा उठाइए। ७) दंत रोग में विशेष लाभदायी। ८) हृदय रोगों को यह आसानी से ठीक करता है। ९) कब्ज में इसे अवश्य लें। गौमूत्र आजकल बाजारों में गौक्षरण, गौमूत्र, गौ अमृत के नाम से उपलब्ध है। जिसे आप खरीदकर भी सेवन कर सकते हैं।

गायों का इस संपूर्ण मानव समाज पर अनंत उपकार है। गाय किसी एक धर्म या समुदाय की नहीं बल्कि समस्त जीवों के लिए कल्याणकारी है। ऐसी पवित्र एवं पूजनीय गोमाता की आज इस देश में प्रतिदिन ५० हजार निर्मम हत्याएं हो रही हैं। गायों द्वारा ही पृथ्वी पर मानव जीवन के लिए उपयुक्त वातावरण निर्मित होता है। १२० भारतीय गायों की प्रजातियों में से अब मात्र १६ प्रजातियां ही रह गई हैं। अत: अविलंब गायों की रक्षा के लिये ठोस कदम उठाये जाने चाहिये। अन्यथा पृथ्वी की बरबादी को बचाया नहीं जा सकता। गौएँ लोक की माता हैं, जो गौओं की रक्षा नहीं करता उनके वध में प्रत्यक्ष या अप्रत्यक्ष सहायता देता है, वह दस्यु है, वर्णाश्रम से बहिष्कृत है। गोवध का इतना बड़ा पाप है कि उसका प्रायश्चित प्राण त्याग ही है। प्राचीन काल में ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य तथा शूद्रादि सभी गौ सेवा में निरत रहते थे। देवता के समान उसकी पूजा करते थे। उनमें पशु बुद्धि रखना पशुता ही नहीं पाप भी है। गौ के समस्त अंगों में सभी देवता वास करते हैं। गौ की पूजा करने से सब देवता पूजित होते हैं।

गाय विश्व की माता है। गायकी सेवा करने से, तैंतीस करोड़ देवताओं की सेवा का फल मिलता है। गाय के प्रति हर एक व्यक्ति को उत्साह रखना चाहिए। गाय की सेवा से पुण्य तो होगा ही। आज समाज में जो प्रदूषण हो रहा है प्रदूषण रोकने में कई प्रकार की असुविधायें आ रही हैं, वो गो-मूत्र और गोबर के माध्यम से रोकी जा सकती हैं।

गंगा का जल और गाय के दूध से लेकर मलमूत्र तक हमारे लिए औषध है इसलिए गाय की रक्षज्ञ एवं सेवा के लिए तत्पर रहना चाहिये। भारत को सुरक्षित एवं समृद्धिशाली बनाने के लिए गौवंश का संरक्षण आवश्यक है। गाय की सेवा करने से गोपाल की कृपा हमें प्राप्त होती है। जिस नवजात शिशु को जननी का दूध नसीब नहीं हो उसको यदि भारतीय नस्ल की गौमाता का दूध उपलब्ध किया जाए तो उस शिशु का शारीरिक और मानसिक पोषण उसी प्रकार सम्भव होगा जैसे कि जननी का दूध पीनेवाले शिशु का।

करते रहोगे गौ की सेवा, भव-सागर तर जाओगे। जीवन में पुण्य कमाकर, मुक्त सदा हो जाओगे।।

गौवंश में जो दुधारू गायें है उसका गोबर और गोमूत्र अमृततुल्य है। कोई भी गाय हमारे सर पर बोझ नहीं है बल्कि हमारे अपने स्वास्थ्य के लिये लाभदायक है। गोमूत्र से उच्च रक्तचाप, मधुमेह एवं कर्करोग जैसी असाध्य, भयंकर बीमारियां दूर हो जाती है। मानव जीवन का आधार ही गौवंश, जन्म से मृत्युपर्यंत हमारा नाता जुड़ा हुआ है। हमारे देश को स्वावलम्बी बनाने के लिये गोमाता का होना आवश्यक है। भगवान कृष्ण ने तो गोप बनकर गोपालन को ही अपना कर्म बनाया और गोपाल कहलाये। तथा राक्षसों से संरक्षण प्रदान कर गोविन्द कहलाये। गाय ही सब समय पुष्टि का साधन है। गाय हमारे धर्म, अध्यात्म, स्वास्थ्य, कृषि एवं अर्थ समस्या का केंद्र रही है। अपने तन और मन को शुद्ध रखने के लिए गौ का दूध अमृत समान है। हमें गो कत्ल

के विषय में जागरूक होना चाहिए। अच्छी व्यवस्था कायम करने के लिये देश में गौमाता की रक्षा करना हमारा परम कर्त्तव्य है। गौ के बिना हमारा जनजीवन निराधार एवं शून्य हो जायेगा और चारों ओर अन्धेरा ही नजर आयेगा। भारत की संस्कृति के आधार गौ, गंगा, गीता, गायत्री तथा गोविन्द हैं। गौ का पालन, उसका संरक्षण, संवर्धन गोवर्धन को धारण करने जैसा है। हमारे समाज में सेवाभावी गोमाता महानुभावों से नि:स्वार्थ भावना से सेवा करने की जागरूकता करने का आव्हान है। गौवंश की रक्षा करना हम भारतीयों का सिर्फ दायित्व भी नहीं बल्कि कर्त्तव्य भी है। कृषि प्रधान देश भारत वर्ष का भविष्य गौवंश की रक्षा से ही है। प्राकृतिक खाद्य और खेती के लिए बैल गोवंश का संरक्षण अति अनिवार्य है।

गोमाता भारतीय सभ्यता और संस्कृति में पूज्यनीय है। एक गाय में अनेक व्यक्तियों को दुग्धपान कराने की सामर्थ्य है। गौ-सेवा के समस्त कार्य भारतीय सभ्यता और संस्कृति के पोषक हैं। जब पृथ्वी पर अत्याधिक अत्याचार बढ़ गये तो पृथ्वी भी गाय के रूप में ही ब्रह्माजी से याचना करने गई। गाय में समस्त देवी-देवताओं का निवास होता है। अत: देव समान गाय सेवा अनिवार्य है। भारतीय धर्म-दर्शन एवं शास्त्र में गौमाता के लिये बताया गया है कि इसकी सेवा से बड़ा पुण्य कोई अन्य कार्य नहीं है। गाय हमारे उपास्य देवता, इष्ट देवता है। गाय चराना ही गो-उपासना है। गाय की सेवा ही भगवान की पूजा है। गाय के सींग के मूल भाग में ब्रह्मा रहते है, मध्य में केशव और सींगके अग्रभाग में शंकर रहते हैं। गौवंश की सेवा करने से मनुष्य पापरहित हो जाता है और गौलोक को प्राप्त करता है। गौ की सेवा करनेवाले को कपिला गाय के दान का पुण्य प्राप्त होता है। गायोंमें सारे यज्ञोंकी प्रतिष्ठा है। यदि गाय नहीं रहेगी तो यह सृष्टि भी नहीं रहेगी। गाय के बिना सृष्टि की कल्पना नहीं की जा सकती। वेदों की स्तुति भी गाय में ही है। छ: अंगों के सहित वेद की उत्पत्ति गाय में है ऐसा पुराणों में वर्णन मिलता है। गाय मनुष्य को बल, बुद्धि, आरोग्य, सुख-समृद्धि, ऐश्वर्य एवं कीर्ति प्रदान करती है। गाय अनादिकाल से विश्व का कल्याण करनेवाली ममतामयी माता के समान है। गौ सेवा करनेवाले व्यक्ति को संसार के सभी सुख प्राप्त होते हैं। चाहे धर्म का युग हो अथवा विज्ञान का युग हो गौ महिमा निर्विवाद है जो सभी धर्म और जाति के लोगोंद्वारा स्वीकार की जाती रही है और भविष्यमें भी होती रहेगी। औषधि के रूप में गोबर खाद रसायन, कीटनाशक के रूप में सहज उपलब्ध है। भारत एक कृषिप्रधान देश हैं और गाय हमारे धर्म, अध्यात्म, स्वाथ्य, कृषि एवं अर्थव्यवस्था का केंद्र है। गाय के गोबर से उच्च कोटि की प्राकृतिक खाद उत्पन्न होती है। गाय से ही बैल का जन्म होता है जो खेती के काम आता है और गरीब किसान का अनमोल मित्र है। गाय जिस घर में होती है वहाँ श्वास-उच्छवास से वायुमण्डल शुद्ध होता है। गाय के चरण स्पर्श से रज कण शक्तिमान बनते हैं और गाय के दर्शन मात्र से ही कष्टोंका निवारण होता है। गाय के दूध, दही, घी, मूत्र, गोबर से निर्मित पंचगव्य एक अद्‌भुत और सर्वशक्तिमान पदार्थ है। मनुष्य के लिये प्राण है जो यज्ञ हवन में सामग्री के काम आते हैं। गाय को कामधेनु की उपाधि से सुशोभित किया है। सभी कामनाओं को पूरा करनेवाली गाय की रक्षा करनेवाला मनुष्य संसार के सभी कष्टों से मुक्ति पाता है। गाय में ३३ करोड़ देवी-देवताओं का वास है। सर्वदेवमयी गाय श्रेष्ठ है। इसमें लक्ष्मी का निवास है। गाय के स्थान को तीर्थभूमी कहा जाता है। गाय की रक्षा करना सारी मूक समृद्धि की रक्षा करना है। हमारे देश की सुख-समृद्धि भी गाय से जुडी हुई है। स्वर्णभूमि भारत में गौवंश की महिमा वर्षों से गायी जाती है जो गोमाता का वंश, विस्तार, स्थान देश को समृद्धि की ओर ले जाता है। यह हमारी संस्कृति का अभिन्न अंग है। गाय की सेवा बौद्धिक विकास करनेवाली, पाप का क्षरण करनेवाली, ईश्वर का दर्शन करानेवाली, धर्म और अर्थ का विकास करनेवाली परंपरा है। गाय में शत्-प्रतिशत मातृत्व है। उसका मनुष्य जाति से माता का सम्बन्ध है। वह जो कुछ भी देती है उसे कही गुना करके वापिस देती है। गाय हमें जीवनपर्यंत दूध देते रहती है।

हिन्दू संस्कृति में सोलह संस्कारों में पंचगव्य का ही उपयोग होता है। गाय सत्य परमात्मा का स्वरूप है। गाय माँ समान वन्दनीय एवं पूजनीय है। गाय की रक्षा एवं सेवा सामाजिक दायित्व है। आज रासायनिक पदार्थों व रासायनिक खाद्यों से भूमि बंजर होती जा रही है परंतु गाय का गोबर और गौमूत्र उसे बंजर होने से रोक रहा है। गाय ऊर्जा का सर्वोत्तम और सस्ता साधन है। गाय एक चलता-फिरता मंदिर है। गाय सेवा से कभी चूकना नहीं चाहिए। गाय राष्ट्रीय पशु है। गौ सेवा करनेवाला नित्य गो दान का फल पायेगा।

गाय विश्वकी माता है। सूर्य, वरुण, वायु आदि देवताओंको यज्ञ, होममें दी हुई आहुतिसे जो खुराक, पुष्टि मिलती है, वह गायके घीसे ही मिलती है। होममें गायके घीकी ही आहुति दी जाती है, जिससे सूर्यकी किरणें पुष्ट होती हैं। किरणें पुष्ट होनेसे वर्षा होती है और वर्षासे सभी प्रकारके अन्न, पौधे, घास आदि पैदा होते हैं, जिनसे सम्पूर्ण स्थावर-जंगम, चर-अचर प्राणियोंका भरण-पोषण होता है।

हिन्दुओंके गर्भाधान, जन्म, नामकरण आदि जितने संस्कार होते हैं, उन सबमें गायके दूध, घी, गोबर दिया जाता है, उसमें गायका पञ्चगव्य (दूध, दही, घी, गोबर और गोमूत्र) का सेवन कराया जाता है। यज्ञोपवीत-संस्कार होनेपर वे वेद पढ़नेके अधिकारी होते हैं। अच्छे ब्राह्मणका लड़का भी यज्ञोपवीत संस्कारके बिना वेद पढ़नेके अधिकारी होते हैं। अच्छे ब्राह्मणका लड़का भी गायके गोबरका लेप करके शुद्धि करते हैं। विवाहके समय गोदानका भी बहुत माहात्म्य है। पुराने जमानेमें वाग्दान (सगाई) के समय बैल दिया जाता था। जननाशौच और मरणाशौच मिटानेके लिये गायका गोबर और गोमूत्र ही काममें लिया जाता है; क्योंकि गायके गोबरमें लक्ष्मीका और गोमूत्रमें गङ्गाजीका निवास है।

जब मनुष्य बीमार हो जाता है, तब उसको गायका दूध पीनेके लिये देते हैं; क्योंकि गायका दूध तुरंत बल, शक्ति देता है। अगर बीमार मनुष्यको अन्न भी न पचे तो उसके पास गायके घी और खाद्य पदार्थोंकी अग्निमें आहुति देनेपर उसके धुएँसे उसको खुराक मिलती है। जब मनुष्य मरने लगता है, तब उसके मुखमें तुलसीमिश्रित गंगाजल या गायका दही देते हैं। कारण कि कोई मनुष्य यात्राके लिये रवाना होता है तो उस समय गायका दही देना मांगलिक होता है। जो सदाके लिये यहाँसे रवाना हो रहा है, उसको गायका दही अवश्य देना चाहिये। जिससे परलोकमें उसका मंगल हो। अन्तकालमें मनुष्यको जैसे गंगाजल देनेका माहात्म्य है, वैसा ही माहात्म्य गायका दही देनेका है।

वैतरणीसे बचनेके लिये गोदान किया जाता है। श्राद्ध-कर्ममें गायके दूधकी खीर बनायी जाती है; क्योंकि पवित्र होनेसे इस खीरसे पितरोंकी बहुत ज्यादा तृप्ति होती है। मनुष्य, देवता, पितर आदि सभीको गायके दूध, घी आदिसे पुष्टि मिलती है। अत: गाय विश्वकी माता है।

गायके अंगोंमें सम्पूर्ण देवताओंका निवास बताया गया है। गायकी छाया भी बड़ी शुभ मानी गयी है। यात्राके समय गाय या साँड़ दाहिने आ जाय तो शुभ माना जाता है और उसके दर्शनसे यात्रा सफल हो जाती है। दूध पिलाती गायका दर्शन बहुत शुभ माना जाता है। गाय महान् पवित्र होती है। उसके शरीरका स्पर्श करनेवाली हवा भी पवित्र होती है। उसके गोबर-गोमूत्र भी पवित्र होते हैं। जहाँ गाय बैठती है, वहाँकी भूमि पवित्र होती है। गायके चरणोंकी रज (धूल) भी पवित्र होती है।

गायसे अर्थ, धर्म, काम और मोक्ष इन चारोंकी सिद्धि होती है। गोपालनसे, गायके दूध, घी, गोबर आदिसे धनकी वृद्धि होती है। कोई भी धार्मिक कृत्य गायके बिना नहीं होता। सम्पूर्ण धार्मिक कार्योंमें गायका दूध, दही, घी, गोबर और गोमूत्र काममें आते हैं। कामनापूर्तिके लिये किये जानेवाले यज्ञोंमें भी गायका घी आदि काममें आता है। बाजीकरण आदि प्रयोगोंमें भी गायके दूध और घीकी मुख्यता रहती है। निष्कामभावसे गायकी सेवा करनेसे मोक्ष होता है। गायकी सेवा

करनेमात्रसे अन्त:करण निर्मल होता है। भगवान् श्रीकृष्णने भी बिना जूतीके गायोंको चराया था, जिससे उनका नाम गोपाल पड़ा। प्राचीन कालमें ऋषिलोग वनमें रहते हुए अपने पास गायें रखा करते थे। गायके दूध-घीका सेवन करनेसे उनकी बुद्धि बड़ी विलक्षण होती थी, जिससे वे बड़े-बड़े ग्रन्थोंकी रचना किया करते थे। आजकल तो उन ग्रन्थोंको ठीक-ठीक समझनेवाले भी कम हैं। गायके दूध-घीसे वे दीर्घायु होते थे। गायके घीका एक नाम आयु भी है। बड़े-बड़े राजालोग भभ उन ऋषियों के पास आते थे और उनकी सलाहसे राज्य चलाते थे।

गाय इतनी पवित्र है कि देवताओंने भी उसको अपना निवास-स्थान बनाया है। जिसका गोबर और गोमूत्र भी इतना पवित्र है, फिर वह स्वयं देवताओंका पूजन हो जाता है, जिससे सब देवताओंको पुष्टि मिलती है। पुष्ट हुए देवताओंके द्वारा सम्पूर्ण सृष्टिका संचालन, पालन, रक्षण होता है।

प्राचीन कालसे जो यज्ञ, होम होते आये हैं, उनका संग्रह अभी बाकी है। उसी संग्रहसे अभी वर्षा हो रही है। परंतु अभी यज्ञ आदि न होनेसे वैसी व्यवस्था नहीं रही है, इसलिये कहीं अतिवृष्टि और कहीं अनावृष्टि हो रहीं है। वर्षा भी बहुत कम हो रही है। कर्तव्य पालन के अन्तर्गत यज्ञ, होम, दान, तप आदि सब कर्म आ जाते हैं। गीताने भी यज्ञ आदिको कर्त्तव्य-कर्मके अन्तर्गत ही माना है। अगर मनुष्य अपने कर्त्तव्यका पालन करेंगे और जो समयपर वर्षा करेंगे।

जिन देशोंमें गायें नहीं हैं अथवा जिन देशोंके लोग यज्ञ आदि नहीं करते, वहाँ भी अपने कर्त्तव्य कर्मका पालन तो होता ही है। वहाँके लोग अपने कर्त्तव्यका पालन करते हैं तो देवता भी अपने कर्त्तव्यका पालन करते हैं अर्थात् वहाँ वर्षा आदि करते हैं।

गायोंके गोबर-गोमूत्रसे अनेक रोग दूर होते हैं। उनसे बनी खादके समान कोई खाद नहीं है। गायके दूधके समान कोई दूध नहीं है। गायसे होनेवाले लाभोंकी गणना नहीं की जा सकती।

बैलोंसे जितनी बढ़िया खेती होती है, उतनी ट्रैक्टरोंसे नहीं होती। देखनेमें तो ट्रैक्टरोंसे और रासायनिक खादसे खेती जल्दी हो जाती है, पर जल्दी होनेपर भी वह बढ़िया नहीं होती। बैलोंसे की गयी खेतीका अनाज बड़ा पवित्र होता है। गोबर-गोमूत्रकी खादसे जो अन्न पैदा होता है, वह बड़ा पवित्र, शुद्ध, निर्मल होता है।

खेतका और गायका घनिष्ठ सम्बन्ध है। खेतमें पैदा होनेवाले घास आदिसे गायकी पुष्टि होती है और गायके गोबर-मूत्रसे खेतकी पुष्टि होती है। विदेशी खाद डालनेसे कुछ ही वर्षोंमें जमीन खराब हो जाती है अर्थात् उसकी उर्वरा शक्ति नष्ट हो जाती है। परंतु गोबर-गोमूत्रसे जमीनकी उपजाऊ शक्ति ज्यों-की-त्यों बनी रहती है। इसलिये पुराने जमानेमें खेतोंमें खाद डालनेकी प्रथा ही नहीं थी और सौ-सौ वर्षोंतक खेतोंमें अन्न पैदा होता रहता था। विदेशोंमें रासायनिक खादसे बहुत-से खेत खराब हो गये हैं, जिनको उपजाऊ बनानेके लिये वे गोबर काममें ले रहे हैं।

गायका दूध जितना सात्त्विक होता है, उतना सात्त्विक दूध किसीका भी नहीं होता। हमारे देशकी गायें सौम्य और सात्त्विक होती है, जिसको पीनेसे बुद्धि तीक्ष्ण होती है और स्वभाव सौम्य, शान्त होता है। विदेशी गायोंका दूध तो ज्यादा होता है, पर उनके दूधमें उतनी सात्त्विकता नहीं होती तथा उनमें गुस्सा भी ज्यादा होता है। अत: उनका दूध पीनेसे मनुष्यका स्वभाव भी क्रूर होता है। विदेशी गायोंके दूधमें घी कम निकलता है और वे खाती भी ज्यादा हैं।

एक बार घोड़ोंको भैंसका दूध पिलाया, जिससे घोड़े खूब मोटे हो गये। परंतु जब नदी पार करनेका काम पड़ा, तब वे घोड़े पानीमें बैठ गये। भैंस पानीमें बैठा करती है, इसलिये वही स्वभाव घोड़ोंमें भी आ गया।

ऊँटनीका दूध भी निकलता है, पर उस दूधका दही, मक्खन होता ही नहीं। उसका दूध तामसी होनेसे दुर्गतिमें ले जानेवाला होता है। स्मृतियोंमें ऊँट, कुत्ते, गधे आदिको अस्पृश्य बताया गया है। बकरीका दूध नीरोग करनेवाला एवं

पचनेमें हल्का होता है, पर वह गायके दूधकी तरह बुद्धिवर्धक और सात्त्विक बात समझनेके लिये बल देनेवाला नहीं होता।

गायके दूधसे निकला घी अमृत कहलाता है। स्वर्गकी अप्सरा उर्वशी राजा पुरूरवाके पास गयी तो उसने अमृतकी जगह गायका घी पीना ही स्वीकार किया। गायके गोबरमें लक्ष्मीजीका और गोमूत्रमें गंगाजीका निवास माना गया है। इसलिये गायके गोबर-गोमूत्र भी बड़े पवित्र है। गोबरसे लिपे हुए घरोंमें प्लेग, हैजा आदि भयंकर बीमारियाँ नहीं होतीं। इसके सिवाय युद्धके समय गोबरसे लिपे हुए मकानोंपर बमका उतना असर नहीं होता, जितना सीमेंट आदिसे बने हुए मकानोंपर होता है।

गौके शरीरमें समस्त देवगण निवास करते हैं और गौके पैरोंमें समस्त तीर्थ निवास करते हैं। गौके गुह्यभागमें लक्ष्मी सदा रहती हैं। गौके पैरोंमें लगी हुई मिट्टीका तिलक जो मनुष्य अपने मस्तकमें लगाता है, वह तत्काल तीर्थजलमें स्नान करनेका पुण्य प्राप्त करता है और उसकी पद-पदपर विजय होती है। जहाँपर गौएँ रहती हैं उस स्थानको तीर्थभूमि कहा गया है, ऐसी भूमिमें जिस मनुष्यकी मृत्यु होती है वह तत्काल मुक्त हो जाता है, यह निश्चित है। गौओंके शरीरसे अनेक प्रकारकी मनोरम सुगन्ध निकलती है तथा बहुतेरी गौएँ गुग्गुलके समान गन्धवाली होती हैं। गौएँ समस्त प्राणियोंकी प्रतिष्ठा (आधार) हैं और गौएँ ही उनके लिये महान् मंगलकी निधि हैं। गौएँ ही भूत और भविष्य हैं। गौएँ ही सदा रहनेवाली पुष्टिका कारण तथा लक्ष्मीकी जड़ हैं। गौओंको जो कुछ दिया जाता है, उसका पुण्य कभी नष्ट नहीं होता। गौएँ ही सर्वोत्तम अन्नकी प्राप्तिमें कारण हैं। वे ही देवताओंको उत्तम हविष्य प्रदान करती हैं। स्वाहाकार (देवयज्ञ) और वषट्कार (इन्द्रयाग) ये दोनों कर्म सदा गौओंपर ही अवलम्बित हैं। गौएँ ही यज्ञका फल देनेवाली हैं। उन्हींमें यज्ञोंकी प्रतिष्ठा है। गौएँ ही भूत और भविष्य हैं। उन्हीमें यज्ञ प्रतिष्ठित हैं अर्थात् यज्ञ गौओंपर ही निर्भर हैं।

महातेजस्वी पुरुषप्रवर, प्रात:काल और सायंकाल सदा होमके समय ऋषियोंकी गौएँ ही हवनीय पदार्थ (घृत आदि) देती हैं।

जो लोग (नवप्रसूतिका दूध देनेवाली) गौका दान करते हैं, वे जो कोई भी दुर्गम संकट आनेवाले होते हैं उन सबसे, अपने किये हुए दुष्कर्मोंसे तथा समस्त पाप-समूहसे भी तर जाते हैं।

जिसके पास दस गौएँ हों, वह एक गौका दान करे। जो सौ गायें रखता हो, वह दस गौओंका दान करे और जिसके पास एक हजार गौएँ मौजूद हों, वह सौ गौएँ दानमें दे दे तो इन सबको बराबर ही फल मिलता है।

जो सौ गौओंको स्वामी होकर भी अग्निहोत्र नहीं करता, जो हजार गौएँ रखकर भी यज्ञ नहीं करता तथा जो धनी होकर भी कृपणता नहीं छोड़ता- ये तीनों मनुष्य अर्घ्य (सम्मान) पानेके अधिकारी नहीं हैं।

जो उत्तम लक्षणोंसे युक्त कपिला गौको वस्त्र ओढ़ाकर बछड़ेसहित उसका दान करते हैं और उसके साथ दूध दुहनेके लिये एक कांस्यका पात्र भी देते हैं, वे इहलोक और परलोक दोनोंपर विजय पाते हैं।

जो लोग जवान, सभी इन्द्रियोंसे सम्पन्न, सौ गायोंके यूथपति, बड़ी-बड़ी सींगोंवाले गवेन्द्र वृषभ (साँड़) को सुसज्जित करके सौ गायोंसहित उसे श्रेष्ठ श्रोयि ब्राह्मणको दान करते हैं, वे जब-जब इस संसारमें जन्म लेते हैं, तब-तब महान ऐश्वर्यके भागी होते हैं।

गौओंका नाम-कीर्तन किये बिना न सोये। उनका स्मरण करके ही उठे और सबेरे-शाम उन्हें नमस्कार करे। इससे मनुष्यको बल एवं पुष्टि प्राप्त होती है। गौओंके मूत्र और गोबरसे किसी प्रकार उद्विग्न न हो- घृणा न करें और उनका मांस न खाय। इससे मनुष्यको पुष्टि प्राप्त होती है। प्रतिदिन गौओंका नाम लें, उनका कभी अपमान न करें। यदि बुरे स्वप्न दिखायी दें तो मनुष्य गोमाताका नाम ले। प्रतिदिन शरीरमें गोबर लगाकर स्नान करे, सूखे हुए गोबरपर बैठे। उसपर थूक न फेंके, मल-मूत्र न छोड़े तथा गौओंके तिरस्कारसे बचता रहे।

अग्निमें घृतसे हवन करे। घृतसे ही स्वस्तिवाचन कराये। घृतका दान करे और स्वयं भी गौका घृत ही खाय। इससे मनुष्य सदा गौओंकी पुष्टि एवं वृद्धिका अनुभव करता है।

जो मनुष्य सब प्रकारके रत्नोंसे युक्त तिलकी धेनुको, गोमती-मन्त्रसे अभिमन्त्रित करके ब्राह्मणको दान करता है, वह किये हुए शुभाशुभ कर्मके लिये शोक नहीं करता।

सदा गौओंका दर्शन करो गौएँ सबपर कृपादृष्टि करती हैं। गौएँ हमारी हैं और हम गौओंके हैं। जहाँ गौएँ रहें, वहीं हम रहें। जो मनुष्य इस प्रकार रातमें या दिनमें, सम अवस्थामें या विषम अवस्थामें तथा बड़े-से-बड़े भय आनेपर भी गोमाताका नामकीर्तन करता है, वह भयसे मुक्त हो जाता है।

गोमाताका दर्शन एवं उन्हें नमस्कार करके उनकी परिक्रमा करें। ऐसा करनेसे सातों द्वीपोंसहित भूमण्डलकी प्रदक्षिणा हो जाती है। गौएँ समस्त प्राणियोंकी माताएँ एवं सारे सुख देनेवाली हैं। वृद्धिकी आकांक्षा करनेवाले मनुष्यको (जलाधिनाथ वरुणके पुत्र पुष्कर-द्वीपके स्वामी सर्वशास्त्रोंके ज्ञाता पुष्कर भगवान परशुरामके पूछनेपर इस विद्याका उपदेश करते हुए उनसे कहते हैं) हे विप्रवर, अब मैं गोमती-विद्याका वर्णन कर रहा हूँ, यह गोमती-विद्या समस्त पापोंका समूल उन्मूलन करनेवाली है, इसे आप पूर्णतया एकाग्रचित्त होकर सुनें।

गौएँ नित्य सुरभिरूपिणी- गौओंकी प्रथम उत्पादिका माता एवं कल्याणमयी, पुण्यमयी, सुन्दर श्रेष्ठ गन्धवाली हैं। वे गुग्गुलके समान गन्धसे संयुक्त हैं। गायोंपर ही समस्त प्राणियोंका समुदाय प्रतिष्ठित है। वे सभी प्रकारके परम कल्याण अर्थात् धर्म, अर्थ, काम एवं मोक्षकी भी सम्पादिका हैं। गायें समस्त उत्कृष्ट अन्नोंके उत्पादनकी मूलभूता शक्ति हैं और वे ही सभी देवताओंके भक्ष्यभूत हविष्यान्न और पुरोाश आदिकी भी सर्वोत्कृष्ट मूल उत्पादिका शक्ति हैं। ये सभी प्राणियोंको दर्शन-स्पर्शादिके द्वारा सर्वथा शुद्ध निर्मल एवं निष्पाप कर देती हैं। वे दुग्ध, दधि तथा घृत आदि अमृतमय पदार्थोंका क्षरण करती हैं तथा उनके वत्सादि समर्थ वृषभ बनकर सभी प्रकारके भारी बोझा ढोने और अन्न आदि उत्पादनका भार वहन करनेमें समर्थ होते हैं। साथ ही वेदमन्त्रोंसे पवित्रीकृत हविष्योंके द्वारा स्वर्गमें स्थित देवताओंतकको ये ही परितृप्त करती हैं। ऋषि-मुनियोंके यहाँ भी यज्ञों एवं पवित्र अग्निहोत्रादि कार्योंमें हवनीय द्रव्योंके लिये गौओंके ही घृत, दुग्ध आदि द्रव्योंका प्रयोग होता रहा है (अत: वे गायोंका विशेष श्रद्धा-भक्तिसे पालन करते रहे हैं) जहाँ कोई भी शरणदाता नहीं मिलता हैं वहाँ विश्वके समस्त प्राणियोंके लिये गायें ही सर्वोत्तम शरण-प्रदात्री बन जाती हैं। पवित्र वस्तुओंमें गायें ही सर्वाधिक पवित्र हैं तथा सभी प्रकारके मंगलजात पदार्थोंकी कारणभूता हैं। गायें स्वर्ग प्राप्त करनेकी प्रत्यक्ष मार्गभूता सोपान हैं और वे निश्चित रूपसे तथा सदासे ही समस्त धन-समृद्धिकी मूलभूत सनातन कारण रही हैं।

वास्तवमें गौएँ और ब्राह्मण दोनों एक कुलके ही प्राणी हैं, दोनोंमें विशुद्ध सत्त्व विद्यमान रहता है। ब्राह्मणोंमें वेदमन्त्रोंकी स्थिति है तो गौओंमें यज्ञके साधनभूत। इन दोनोंके द्वारा ही यज्ञ सम्पन्न होकर विष्णु आदि देवताओंसे लेकर समस्त चराचर प्राणियोंका आप्यायन होता है। यह सारा विश्व शुद्ध सत्त्वसे परिपूर्ण देवता, ब्रामण, गाय, साधु-संत-महात्मा तथा पतिव्रता सती-साध्वी, सदाचारिणी नारियोंके पुण्योंके आधारपर ही टिका हुआ है। ये ही धार्मिक प्राणी सम्पूर्ण विश्वको सदा धारण करते हैं और जहाँ जिस मार्गसे वे जलराशिको लाँघती हुई नदी आदिको पार करती हैं, वहाँ-वहाँ गंगा, यमुना, सिन्धु, सरस्वती आदि नदियाँ या तीर्थ निश्चित रूपसे विद्यमान रहते हैं। गौ-रूपी तीर्थमें गंगा आदि सभी नदियाँ तथा तीर्थ निवास करते हैं और गौओंके रज:कणमें सभी प्रकारकी निरन्तर वृद्धि होनेवाली धर्म-राशि एवं पुष्टिका निवास रहता है। गायोंके गोबरमें साक्षात् भगवती लक्ष्मी निरन्तर निवास करती हैं और इन्हें प्रणाम करनेमें चतुष्पाद धर्म सम्पन्न हो जाता

है। अत: बुद्धिमान् एवं कल्याणकामी पुरुषको गायोंको निरन्तर प्रणाम करना चाहिये।

जिस गौसे यह स्थावर-जंगम अखिल विश्व व्याप्त है, उस भूत और भविष्यकी जननी गौको सिर झुकाकर प्रणाम करना चाहिए। जो पुरुष गौओंकी सेवा करता है और सब प्रकारसे उनका अनुमान करता है, उसपर संतुष्ट होकर गौएँ उसे अत्यन्त दुर्लभ वर प्रदान करती हैं। गौओंके साथ मनसे भी कभी द्वेष न करे, उन्हें सदा सुख पहुँचाये, उनका यथोचित सेवा करता है, वह समृद्धिका भागी होता है।

अपने शास्त्रोंके अनुसार हिन्दूधर्ममें तैंतीस करोड़ देवता माने गये हैं। सम्पूर्ण-विश्व-चराचर-जगत्के जड़-चेतन सभी अवयवोंके अधिष्ठातृ देवता होते हैं और इन सभी देवी-देवताओंका निवास गौ मातामें होनेके कारण गौ विश्वरूप हैं। इतना ही नहीं, यहाँतक कहा गया है कि गाय चराचर जगत्की माता है यानी अखिल विश्वका आधार गौ माता ही है। यही कारण है कि केवल गौकी पूजा एवं सेवासे सम्पूर्ण देवी-देवताओंका आराधन हो जाता है।

हम सब मनुष्य गोमाताके ही अंग हैं। हमलोग गोमाताके शरीरके साथ अपनी एकरूपता देखना सीखें। गौके शरीरको कष्ट होनेपर वह कष्ट हमीकों होगा- यह भाव मनमें धारण करें। यदि कोई मनुष्य गौको कष्ट देता है या उसे काटता है या और किसी भी तरहसे दु:ख देता है तो वह केवल गौको ही दु:ख देता है तथा गौके दुखी रहनेपर भी हम सब सुखी रह सकते हैं- यह हीन भाव मनसे हटा दें। गौका हमारे साथ अवयवी और अवयवका सम्बन्ध है। हम गौके ही अंग है, इसलिये जो दु:ख गौको मिलता है, वह हमींको प्राप्त होता है- ऐसा मानना चाहिये और इसी भावनासे गौका पालन तथा रक्षण करना चाहिये। दूसरे शब्दोंमें स्वयं अपने ऊपर दु:ख आनेपर जिस लगनके साथ उसका प्रतिकार किया जाता है उसी तीव्रताके साथ गौके कष्टोंको दूर करनेकी चेष्टा करनी चाहिये।

गौ एक निरा दूध देनेवाला पशु ही नहीं है, प्रत्युत वह अपने कुटुम्बका हकदार है, या यों कहिये कि मालिक हैं और हम उसके परिवारके लोग हैं- यह भाव सदा मनमें जीवित और जाग्रत् रहना चाहिये।

वह प्राणीमात्रकी निरूपम माता है, मानव-वंशोंका पालन करनेवाली है और मानवमात्र उसके अवयव हैं। जो मनुष्य अपने-आपको गौके शरीरका अवयव मानेगा, वह गोमांस-भक्षणसे पूर्णतया निवृत्त होगा ही। गौको माता कहनेका अर्थ यही है कि उसे हम पवित्र एवं पूज्य दृष्टिसे देखें। गौ हमारी परम पूजनीय, वन्दनीय एवं पालनीय माता है।

गौको माता कहनेवाले कुछ लोग गौके शरीरमें नाना देवताओंका निवास मानते हैं; किंतु यह सब मानते हुए भी उनका आचरण ऐसा होता है मानो वे यह कुछ भी नहीं मानते। इसका कारण उनका धर्मविषयक अज्ञान ही है। गायके शरीरमें सभी देवताओंको स्थित समझकर जो कभी उनके ऊपर क्रोध तथा प्रताडना नहीं करता है वह महान् ऐश्वर्यको प्राप्त करता है और स्वर्गलोकमें प्रतिष्ठा प्राप्त करता है।

जो मनुष्य प्रतिदिन स्नान करके गौका स्पर्श करता है, वह सब प्रकारके पापोंसे मुक्त हो जाता है। जो गौओंके खुरसे उड़ी हुई धूलिको सिरपर धारण करता है वह मानो तीर्थके जलमें स्नान कर लेता है और सभी पापोंसे छुटाकारा पा जाता है।

ऋग्वेद, यजुर्वेद, सामवेद तथा अथर्ववेद- ये सभी वेद भी गौओंमें ही प्रतिष्ठित हैं।

पृथ्वीमें जितने भी पवित्र तीर्थ हैं सभी गायोंके देहमें रहते हैं। विष्णु सर्वदेवमय हैं, गाय इन विष्णुके शरीरसे उत्पन्न हुई है, विष्णु और गाय- इन दोनोंके ही शरीरमें देवता निवास करते हैं। इसीलिये मनुष्य गायोंको सर्वदेवमयी मानते हैं।

गायोंका दान, गायोंकी पूजा- स्तुति प्रमुखरूपसे करनी चाहिये, क्योंकि दानोंमें गोदान प्रमुख हैं। इसीसे सभी देवता गौ माताके साथ अपनी पूजा करानेके लिये विविध अंगोंपर निवास करने लगे। गौ माताके मल-मूत्रकी महानता समाजमें

सर्वकालमें विद्यमान रहे। प्राणीमात्रके अनन्त उपकारोंको अकेली सम्पन्न करनेवाली गौकी किसीसे उपमा नहीं दी जा सकती, गौ निरुपमा है, वास्तवमें गौके समान उपकारी जीव मनुष्यके लिये दूसरा कोई भी नहीं है। गौएँ सदा लक्ष्मीकी जड़ हैं। उनमें पापका लेशमात्र भी नहीं है। गौएँ ही मनुष्योंका सर्वदा अन्न और देवताओंको हविष्य देनेवाली हैं।

गौएँ ही यज्ञका संचालन करनेवाली तथा उसका मुख हैं। वे विकाररहित दिव्य अमृत धारण करती और दुहनेपर अमृत ही देती हैं। वे अमृतकी आधारभूत हैं। सारा संसार उनके सामने नतमस्तक होता है। इस पृथ्वीपर गौएँ अपनी काया और कान्तिसे अग्निके समान हैं। वे महान् तेजकी राशि और समस्त प्राणियोंको सुख देनेवाली हैं। गौओंका समुदाय जहाँ बैठकर निर्भयतापूर्वक साँस लेता है, उस स्थानकी शोभा बढ़ा देता है और वहाँके सारे पापोंको खींच लेता है। गौएँ स्वर्गकी सीढ़ी हैं। गौएँ स्वर्गमें भी पूजी जाती हैं। गौएँ समस्त कामनाओंको पूर्ण करनेवाले देवियाँ हैं। उनसे बढ़कर दूसरा कोई नहीं है।

गाय, भूमि और सरस्वती- ये तीनों समान नामवाली हैं- इन तीनों वस्तुओंका दान करना चाहिये। इन तीनोंके दानका फल भी समान ही है। ये तीनों वस्तुएँ मनुष्योंकी सम्पूर्ण कामनाएँ पूर्ण करनेवाली हैं। गौएँ सम्पूर्ण प्राणियोंकी माता कहलाती हैं। वे सबको सुख देनेवाली हैं। जो अपने अभ्युदयकी इच्छा रखता हो, उसे गौओंको सदा दाहिने करके चलना चाहिये। गौओंको लात न मारे। उनके बीचसे होकर न निकले। वे मंगलकी आधारभूत देवियाँ हैं, अत: उनका सदा ही पूजा करनी चाहिये।

यज्ञके लिये ही बैलोंको जोतना या हाँकना श्रेयस्कर माना गया है। उससे भिन्न कर्मके लिये बैलोंको जोतना या डंडे आदिसे हाँकना निन्दनीय है। विद्वान पुरुषको चाहिये कि जब गौएँ स्वच्छन्दतापूर्वक विचर रही हों अथवा किसी उपद्रवशून्य स्थानमें बैठी हों तो उन्हें उद्वेगमें न डाले। जब गौएँ प्याससे पीडित हो जलकी इच्छासे अपने स्वामीकी ओर देखती हैं (और वह उन्हें पानी नहीं पिलाता है), तब वे रोषपूर्ण दृष्टिसे बन्धु-बान्धवोंसहित उसका नाश कर देती हैं। जिनके गोबरसे लीपनेपर देवताओंके मन्दिर और पितरोंके श्राद्धस्थान पवित्र होते हैं, उनसे बढ़कर पावन और क्या हो सकता है? जो एक वर्षतक प्रतिदिन स्वयं भोजनके पहले दूसरेकी गायको एक मुट्ठी घास खिलाता है, उसका वह व्रत समस्त कामनाओंको पूर्ण करनेवाला होता है।

नन्दा, सुभद्रा, सुरभि, सुशीला और बहुला। ये सभी गौएँ समस्त लोकोंके कल्याण तथा देवताओंको हविष्यके द्वारा परितृप्त करनेके लिये आविर्भूत हुई थीं। फिर देवताओंने इन्हें महर्षि जमदग्नि, भरद्वाज, वसिष्ठ, असित और गौतम मुनिको समर्पित किया और उन्होंने इन्हें प्रसन्नतापूर्वक ग्रहण किया। ये सभी गौएँ सम्पूर्ण कामनाओंको प्रदान करनेवाली कामधेनु कही गयी हैं। गौओंसे उत्पन्न दूध, दही, घी, गोबर, मूत्र और रोचना- ये छ: अंग (गोषडङ्ग) अत्यन्त पवित्र हैं और प्राणियोंके सभी पापोंको नष्ट कर उन्हें शुद्ध करनेवाले हैं। श्रीसम्पन्न बिल्व-वृक्ष गौओंके गोबरसे ही उत्पन्न हुआ है। यह भगवान् शिवजीको अत्यन्त प्रिय है। चूँकि उस वृक्षमें पद्महस्ता भगवती लक्ष्मी साक्षात् निवास करती हैं, इसीलिये इसे श्रीवृक्ष भी कहा गया है।

संसारके सभी मंगलप्रद बीज एवं सुन्दर-से-सुन्दर आहार तथा मिष्टान्न आदि सब-के-सब गौके दूधसे ही बनाये जाते हैं। सभी प्रकारकी मंगल-कामनाओंको सिद्ध करनेके लिये गायका दही लोकप्रिय है। देवताओंको परम तृप्त करनेवाला अमृत नामक पदार्थ गायके घीसे ही उत्पन्न हुआ है। ब्राह्मण और गौ- ये दो नहीं हैं, अपितु एक ही कुलके दो पहलू या रूप हैं। ब्राह्मणमें तो मन्त्रोंका निवास है और गौमें हविष्य स्थित हैं; इन दोनोंके संयोगसे ही विष्णुस्वरूप यज्ञ सम्पन्न होता है।

गौ सब कार्योंमें उदार तथा वास्तवमें समस्त गुणोंकी खान है। वह साक्षात् सम्पूर्ण देवताओंका स्वरूप है। सब प्राणियोंपर उसकी दया बनी रहती है। गौओंकी प्रत्येक वस्तु पावन है और समस्त संसारको पवित्र कर देती है। गौका मूत्र, गोबर, दूध, दही और घी- इन पञ्चगव्योंका पान कर लेनेपर शरीरके भीतर पाप नहीं ठहरता। इसलिये धार्मिक पुरुष प्रतिदिन गौका दूध, दही और घी खाया करते हैं। गव्य पदार्थ सम्पूर्ण द्रव्योंमें श्रेष्ठ, शुभ और प्रिय हैं। जिसको गायका दूध,

दही और घी खानेका सौभाग्य नहीं प्राप्त होता, उसका शरीर मलके समान है। अन्न आदि पाँच रात्रितक, दूध सात रात्रितक, दही बीस रात्रितक और घी एक मासतक शरीरमें अपना प्रभाव रखता है। जो लगातार एक मासतक बिना गव्यका भोजन करता है उस मनुष्यके भोजनमें प्रेतोंको भाग मिलता है; इसलिये प्रत्येक युगमें सब कार्योंके लिये एकमात्र गौ ही प्रशस्त मानी गयी है। गौ सदा और सब समय धर्म, अर्थ, काम और मोक्ष- ये चारों पुरुषार्थ प्रदान करनेवाली है।

जो गौकी एक बार प्रदक्षिणा करके उसे प्रणाम करता है, वह सब पापोंसे मुक्त होकर अक्षय स्वर्गका सुख भोगता है। जैसे देवताओंके आचार्य बृहस्पतिजी वन्दनीय हैं, जिस प्रकार भगवान लक्ष्मीपति सबके पूज्य हैं, उसी प्रकार गौ भी वन्दनीय और पूजनीय है। जो मनुष्य प्रात:काल उठकर गौ और उसके घीका स्पर्श करता है, वह सब पापोंसे मुक्त हो जाता है। गौएँ मनुष्योंकी बन्धु हैं और मनुष्य गौओंके बन्धु हैं। जिस घरमें गौ नहीं है, वह गृह बन्धुरहित है।

गोमूत्र, गोबर, गोदुग्ध, गोदधि, गोघृत और गोरोचना- यह षडङ्ग पीनेके लिये उत्कृष्ट वस्तु तथा दु:स्वप्न आदिका निवारण करनेवाला है। गोरोचना विष और राक्षसोंका (राक्षसजन्य कष्टोंका) विनाश करती है। गौओंको ग्रास देनेवाला स्वर्गको प्राप्त होता है। जिसके घरमें गौएँ दु:खित होकर निवास करती हैं, वह मनुष्य नरकगामी होता है। दूसरेकी गायको ग्रास देनेवाला स्वर्गको और गोहितमें तत्पर रहनेवाला ब्रह्मलोकको प्राप्त होता है। गोदान, गो-माहात्म्य-कीर्तन और गोरक्षणसे मानव अपने कुलका उद्धार कर देता है। यह पृथ्वी गौओंके श्वाससे पवित्र होती है। उनके स्पर्शसे पापोंका क्षय होता है।

गौएँ समस्त प्राणियोंकी प्रतिष्ठा हैं। गौएँ परम मंगलमयी हैं। गौएं परम अन्न और देवताओंके लिये उत्तम हविष्य हैं। वे सम्पूर्ण प्राणियोंको पवित्र करनेवाले दुग्ध और गोमूत्रका वहन एवं क्षरण करती हैं और मन्त्रपूत हविष्यसे स्वर्गमें स्थित देवताओंको तृप्त करती हैं। ऋषियोंके अग्निहोत्रमें गौएँ होमकार्यमें प्रयुक्त होती हैं। गौएँ सम्पूर्ण मनुष्योंकी उत्तम शरण हैं, गौएँ परम पवित्र, महामंगलमयी, स्वर्गकी सोपानभूत, धन्य और सनातन (नित्य) हैं। ब्राह्मण और गौएँ एक ही कुलकी दो शाखाएँ हैं।

एकके आश्रयमें मन्त्रकी स्थिति हैं और दूसरीमें हविष्य प्रतिष्ठित है। देवता, ब्राह्मण, गौ, साधु और साध्वी स्त्रियोंके बलपर यह सारा संसार टिका हुआ है, इसीसे वे परम पूजनीय हैं। गंगा आदि पवित्र नदियाँ गोस्वरूपा ही हैं।

मनुष्योंके व्यवहारके अयोग्य सामान्य तृण-पत्तों-घास आदिको चरकर जो गौ निरन्तर प्रतिदिन दूधका प्रस्रवण करती है तथा उस दूधसे घी-दही आदिका निर्माण होकर देवता भी आहुतियोंसे संतुष्ट होते हैं।

स्पर्श कर लेने मात्रसे ही गौएँ मनुष्यके समस्त पापोंको नष्ट कर देती हैं और आदरपूर्वक सेवन किये जानेपर अपार सम्पत्ति प्रदान करती हैं, वे ही गायें दान दिये जानेपर सीधे स्वर्ग ले जाती हैं, ऐसी गौओंके समान और कोई भी धन नहीं है।

गायें स्पर्श करनेसे सब पापोंका हरण कर लेती हैं और अपने दूधसे सबका पालन-पोषण करती हैं, दान करनेपर सीधे स्वर्गकी प्राप्ति करा देती हैं। उसकी प्रदक्षिणासे सारे विश्वकी प्रदक्षिणा हो जाती है।

जो गौओंको भोजनके लिये प्रतिदिन जल और तृणसहित कुछ भोजन प्रदान करता है, उसे अश्वमेधके समान फलकी प्राप्ति होती है, इसमें तनिक भी संदेह नहीं हैं। गौओंको खुजलाना तथा उन्हें स्नान कराना भी गोदानके समान फलवाला होता है। जो भयसे दु:खी (भयग्रस्त) एक गायकी रक्षा करता है, उसे सौ गोदानका फल प्राप्त होता है। पृथ्वीमें समुद्रसे लेकर जितने भी बड़े तीर्थ-सरिता-सरोवर आदि हैं, वे सब मिलकर भी गौके सींगके जलसे स्नान करनेके षोडशांकके तुल्य भी नहीं होते। जिनके घर साक्षात् स्वयं लक्ष्मीस्वरूपा सवत्सा गौओंसे अलंकृत हैं उनके पाप-ताप भला कैसे टिक सकते हैं? ब्राह्मण और गौएँ वस्तुत: एक ही कुलकी वस्तुएँ हैं, जिन्हें दो भागोंमें विभक्त कर दिया गया है, एक ओर तो ब्राह्मणमें मन्त्र स्थित हैं और दूसरी ओर गौमें हविष्य स्थित हैं, गौओंसे ही यज्ञकी पूर्ति होती है और गौओंसे ही देवताओंकी प्रतिष्ठा होती है तथा गौओंसे ही पद, क्रम एवं व्याकरण आदि छ: अंगोंसहित सभी वेद अभिव्यक्त हुए। गौएँ जिनके आगे, पीछे, हृदयके

सामने नित्य निवास करती हैं और गौओंके बीचमें ही जो निवास करते हैं तथा जो गौओंकी नित्य भक्ति करते हैं, उपासना करते तथा प्रतिदिन गौओंका दान करते हैं ऐसे पुण्यात्मा पवित्र पुरुष पृथ्वीपर भी दुर्लभ हैं और स्वर्गमें भी दुर्लभ हैं।

गौओंको गोग्रास दान करनेसे महान् पुण्यकी प्राप्ति होती है। गौओंको चराकर उन्हें जलाशयतक घुमाकर जल पिलानेसे मनुष्य अनन्त वर्षोंतक स्वर्गमें निवास करता है। गौओंके प्रचारणके लिये गोचरभूमिकी व्यवस्था कर मनुष्य नि:संदेह अश्वमेधयज्ञका फल प्राप्त करता है। गौओंके लिये गोशालाका निर्माणकर मनुष्य पूरे नगरका स्वामी बन जाता है और उन्हें भोजन खिलानेसे मनुष्यको महान सौभाग्यकी प्राप्ति होती है।

रुग्णावस्थामें गौओंको ओषधि प्रदान करनेसे स्वयं मनुष्य सभी रोगोंसे मुक्त हो जाता है। गौओंको भयसे मुक्त कर देनेपर मनुष्य स्वयं भी सभी भयोंसे मुक्त हो जाता है। चण्डालके हाथसे गौको खरीद लेनेपर गोमेधयज्ञका फल प्राप्त होता है तथा किसी अन्यके हाथसे गायको खरीदकर उसका पालन करनेसे गोपालकको गोमेधयज्ञका ही फल प्राप्त होता है। गौओंकी शीत तथा धूपसे रक्षा करनेपर स्वर्गकी प्राप्ति होती है।

गौओंके उठनेपर उठ जाय और बैठनेपर बैठ जाय। गौओंके भोजन कर लेनेपर भोजन करे और जल पी लेनेपर स्वयं भी जल पीये। गोमूत्रसे स्नान करे, अपनी जीवनयात्राका गोदुग्धपर अथवा गोमयसे नि:सृत जौ द्वारा निर्वाह करे। इसीका नाम गोव्रत है। एक माहतक ऐसा करनेवाले गोव्रतीके सम्पूर्ण पाप सर्वथा नष्ट हो जाते हैं। किसी एक गौका पालन करते हुए उसे जौ खिलाता रहे और उसके गोबरसे जौ निकालकर उसे धोकर उसका सेवन करे तो इस प्रकार एक महीनेतक करनेसे वह अत्यन्त पवित्र हो जाता है। एक महीना बीत जानेपर उस गायको भक्तिपूर्वक किसी ब्राह्मणको दान कर दे, यह भी एक प्रकारका गोव्रत कहा गया है, जो सभी पापोंको नष्ट कर देनेवाला है।

अपनी शक्तिको ठीकसे समझकर तीन दिन या सात दिनोंतक जौ आदिसे गौओंके भोजन आदिकी व्यवस्था करनेसे मनुष्य सम्पूर्ण पापोंसे मुक्त हो जाता है और उसे महान् पुण्यकी प्राप्ति होती है।

गौओंके निवास करनेसे वहांकी पृथ्वी भी शुद्ध हो जाती है। जहाँ गायें बैठती हैं वह स्थान, वह घर सर्वथा पवित्र हो जाता है। वहाँ कोई दोष नहीं रहता। उनके नि:श्वासकी हवा देवताओंके लिये नीराजनके समान है। गौओंको स्पर्श करना बड़ा पुण्यदायक है और उससे समस्त दु:स्वप्न, पाप आदि भी नष्ट हो जाते हैं। गौओंके गरदन और मस्तकके बीचमें साक्षात् भगवती गंगाका निवास है। गौएँ सर्वदेवमयी और सर्वतीर्थमयी हैं। उनके रोएँ भी बड़े ही पवित्रताप्रद और पुण्यदायक है।

गायके गोमयसे उपलिप्त स्थान सब प्रकारसे पवित्र स्थान कहा गया है। इसलिये यज्ञशाला और भोजन बनानेके स्थानको गोमयसे लीपना चाहिये। गोमूत्रमें भगवती गंगा तथा गोदधि, गोदुग्ध और गोघृतमें सोम।

वे गौएँ सभी प्रकार पूजनीय, कीर्तनीय और नमस्करणीय हैं। उन्हें सदा भोजन देना चाहिये और उनकी सेवा भी करनी चाहिए। गायोंकी सेवासे मनुष्य निर्मल और दु:ख तथा शोकरहित श्रेष्ठ लोकोंको प्राप्त करता है। इसलिये धर्मपरायण मनुष्योंको बहुत प्रयत्नपूर्वक गायोंकी सेवा अवश्य करनी चाहिये। गौओंका गोबर और मूत्र सम्पूर्ण अलक्ष्मीका नाश करनेवाला कहा गया है। गायों, गोकुल, गोमय आदिपर थूक-खखार नहीं छोड़ना चाहिये। गायोंकी धूलि सब प्रकारसे पवित्रकारिणी और समस्त विघ्नों तथा अलक्ष्मीको दूर करनेवाला है। ये सब मंगलमय पदार्थ भूत, प्रेत, पिशाच, राक्षस आदिसे रक्षा करनेवाले हैं, परममंगल तथा कलिके दु:ख-दोषोंका नाश करनेवाले हैं।

जो प्रात:काल उठकर अपना मुख गोघृतपात्रमें रखे घीमें देखता है उसकी दु:खदरिद्रता सर्वदाके लिये समाप्त हो जाती है और फिर पापका बोझ नहीं ठहरता।

गायोंको भोजनका ग्रास देनेसे महान् पुण्यकी प्राप्ति होती हैं। अपने घरमें जितनी गौओंको रख सके रखे, पर अत्यन्त सुखपूर्वक ही रखें; उनमेंसे किसीको भी भूखी-प्यासी न रखे। जो व्यक्ति अपने घरमें गौओंको दुखी रखता है उसे नरककी ही प्राप्ति होती है, इसमें कोई संदेह नहीं। किसी दूसरेकी गायको भोजन देकर मनुष्य महान पुण्यका भागी होता है। पूरे जाड़े भर किसी दूसरेकी गायको ग्रास प्रदान करनेवाला व्यक्ति ६०० वर्षोंतक श्रेष्ठ स्वर्गका उपभोग करता है और भोजनके समय पहले ही यदि ६ मासतक गोग्रास निकालकर उन्हें नित्य प्रदान करता है तो वह स्वर्ग-सुखको प्राप्त करता है। जो एक वर्षतक सायंकाल तथा प्रात:काल देवताओंके निमित्त बने सात्त्विक भोजनके प्रथम भागको नित्य निरालस्य होकर गायोंको प्रदान करता है और द्वितीय अवशिष्ट भागका जो स्वयं भोजन करता है। जो गौओंके चलनेके मार्गमें, चरागाहमें जलकी व्यवस्था करता है, वह वरुणलोकको प्राप्तकर वहाँ दस हजार वर्षोंतक विहार करता है और जहाँ-जहाँ उसका आगे जन्म होता है वह वहाँ सभी आनन्दोंसे परितृप्त रहता है। गोचरभूमिको हल आदिसे जोतनेपर चौदह इन्द्रोंपर्यंत भीषण नरककी प्राप्ति होती है।

गायोंको घास प्रदान करनेसे वह व्यक्ति अगले जन्ममें रूपवान् हो जाता है और उसे लावण्य तथा महान् सौभाग्यकी प्राप्ति होती है। गायोंको औषध प्रदान कर मनुष्य सर्वथा नीरोग हो जाता है। यदि मनुष्य गायकी विपत्तिमें औषधि, नमक, जल प्रदान करता है, भोजन प्रदान करता है, तथापि वह गाय यदि मर भी जाय तो सहायक व्यक्तिको पाप नहीं लगता और न उसे यमयातना भोगनी पड़ती है।

गायोंको बेचना भी कल्याणकारी नहीं है। गायोंका नाम लेनेसे भी मनुष्य पापोंसे शुद्ध हो जाता है। गौओंका स्पर्श सभी पापोंका नाश करनेवाला तथा सभी प्रकारका सौभाग्य एवं मंगलका विधायक है। गौओंका दान करनेसे अनेक कुलोंका उद्धार हो जाता है। मातृकुल, पितृकुल और भार्याकुलमें जहाँ एक भी गौ निवास करती है वहाँ रजस्वला और प्रसूतिका आदिकी अपवित्रता भी नहीं आती और पृथ्वीमें अस्थि, लोहा होनेका, धरतीके आकार-प्रकारकी विषमताका दोष भी नष्ट हो जाता है। गौओंके श्वास-प्रश्वाससे घरमें महान शान्ति होती हैं।

सभी लोकोंके ऊपर गौओंका लोक गोलोक प्रतिष्ठित है। जहाँ गौएँ सभी आकाशचारियोंके ऊपर निवास करती हैं वहाँ गौएँ विभिन्न विमानोंके ऊपर अप्सराओंसे घिरी रहती हैं। जिन विमानोंमें किंकिणीका जाल लगा रहता है और वीणा-मुरज आदि वाद्य बजते रहते हैं वहाँ गोलोकमें सभी कामनाओंकी पूर्तिरूपी नदियोंका जल बहता है और दूध, खीर, घी कीचड़के रूपमें कहता है। जहाँकी पुष्करिणियोंमें वैदूर्य मणिके कमल खिले रहते हैं, जहाँ जल अत्यन्त निर्मल होता है और सुवर्णकणोंसे निर्मित बालुकाएँ होती हैं वहाँ मनमें संकल्प करते ही सिद्धि उपस्थित हो जाती है। गायोंकी भक्ति करनेसे मनुष्य उन्हीं लोकोंमें जाता है।

गोभक्त मनुष्य जिस-जिस वस्तुकी इच्छा करता है, वह सब उसे प्राप्त होती है। स्त्रियोंमें भी जो गौओंकी भक्त है, वे मनोवाञ्छित कामनाएँ प्राप्त कर लेती हैं। पुत्रार्थी मनुष्य पुत्र पाता है और कन्यार्थी कन्या। धन चाहनेवालेको धन और धर्म चाहनेवालेको धर्म प्राप्त होता है। विद्यार्थी विद्या पाता है और सुखार्थी सुख। गोभक्तके लिये यहाँ कुछ भी दुर्लभ नहीं है।

गाय अर्थ, धर्म, काम और मोक्षको सिद्ध करनेवाली, लोक-परलोकमें सहायता करनेवाली और नरकोंसे उद्धार करनेवाली है। जो लोग विदेशी संस्कृति, सभ्यतासे प्रभावित हैं तथा केवल भौतिक चकाचौंधमें फँसे हुए हैं, वे भी गायका महत्त्व नहीं समझ सकते। वे ऋषि-मुनियोंकी बातोंको तो मानते नहीं और स्वयं जानते नहीं। ऋषि-मुनियोंने, राजा-महाराजाओंने, धर्मात्माओंने गोरक्षाके लिये बड़े-बड़े कष्ट सहे तो क्या वो बेसमझ तो नहीं थे। गायकी सेवासे अर्थ, धर्म, काम और मोक्ष-ये चारों पुरुषार्थ सिद्ध होते हैं। गायोंकी रक्षाके उद्देश्यसे ही गोशालाएँ बनानी चाहिये, दूधके उद्देश्यसे नहीं। जितनी

गोचरभूमियाँ हैं, उनकी रक्षा करनी चाहिये तथा सरकारसे और गोचर-भूमियाँ छुड़ाई जानी चाहिये।

गायोंसे रुपये पैदा किये जा सकते हैं, पर रुपयोंसे गायें पैदा नहीं की जा सकतीं। गायोंकी परम्परा तो गायोंसे ही चलती है। जब गायें नहीं रहेंगी, तब रुपयोंसे क्या होगा? उल्टे देश निर्बल और पराधीन हो जायगा। गायें भी खत्म हो जायँगी, रुपये भी। रुपये तो गायोंके जीवित रहनेसे ही पैदा होंगे। गायोंको मारकर रुपये पैदा करना बुद्धिमानी नहीं है। बुद्धिमानी तो इसीमें है कि गायोंकी वृद्धि की जाय। गायोंकी वृद्धि होनेसे दूध, घी आदिकी वृद्धि होगी, जिनसे मनुष्योंका जीवन चलेगा, उनकी बुद्धि बढ़ेगी। बुद्धि बढ़नेसे विवेकको बल मिलेगा, जिससे सत् तत्त्वकी प्राप्ति होगी। सत्-तत्त्वकी प्राप्ति होनेपर पूर्णता हो जायगी अर्थात मनुष्य कृतकृत्य, ज्ञात-ज्ञातव्य और प्राप्त-प्राप्तव्य हो जायगा। गौएँ स्वर्गकी सीढ़ी हैं, गौएँ स्वर्गमें भी पूजी जाती हैं, गौएँ समस्त कामनाओंको पूर्ण करनेवाली देवियाँ हैं, उनसे बढ़कर और कोई श्रेष्ठ वस्तु नहीं है।

तीर्थस्थानोंमें जानेसे, ब्राह्मणोंको भोजन करानेसे जो पुण्य प्राप्त होता है, सभी व्रत-उपवासों एवं तपस्याओंमें जो पुण्य है, महादान करनेमें जो पुण्य है, श्रीहरिके पूजनमें जो पुण्य है, पृथ्वीकी परिक्रमा करनेमें जो पुण्य है, वेदवाक्योंके पठन-पाठनमें जो पुण्य है, वे सभी पुण्य मनुष्यको केवल गायोंको तृण खिलानेमात्रसे तत्काल मिल जाते हैं।

जो पुरुष गौओंकी सेवा और सब प्रकारसे उनका अनुगमन करता है, उसपर सन्तुष्ट होकर गौएँ उसे अत्यन्त दुर्लभ वर प्रदान करती हैं। गौओंके साथ मनसे भी कभी द्रोह न करे, उन्हें सदा सुख पहुँचाये, उनका यथोचित सत्कार करे और नमस्कार आदिके द्वारा उनका पूजन करता रहे। जो मनुष्य जितेन्द्रिय और प्रसन्नचित्त होकर नित्य गौओंकी सेवा करता है, वह समृद्धिका भागी होता है।

गौओंका सदा दान करना चाहिये, सदा उनकी रक्षा करनी चाहिये और सदा उनका पालन-पोषण करना चाहिये। जो मूर्ख उन्हें डाँटते तथा मारते-पीटते हैं, वे गौओंके दु:खपूर्ण नि:श्वाससे पीड़ित होकर घोर नरकाग्निको प्राप्त हो जाते हैं। गोलोक की नन्दा, सुमनसा, स्वरूपा, सुशीलका, कामिनी, नन्दिनी, मेध्या, हिरण्यदा, धनदा, धर्मदा, नर्मदा, सकलप्रिया, वामनलम्बिका, कृष्णा, दीर्घशृंगा, सुपिच्छिका, तारा, तोयिका, शान्ता, दुर्विषह्या, मनोरमा, सुनासा, गौरा, गौरमुखी, हरिद्रावर्णा, नीला, शफ्त्री, पञ्चवर्णिका, विनता, अभिनता, भिन्नवर्णा, सुपत्रिका, जया, अरुणा, कुण्डोध्री, सुदती और चारुचम्का- इन गौओंके बीचमें नील वृषभ स्वच्छन्द विचरण करता है।

मृत प्राणिके एकादशाहके दिन सुन्दर सुदृढ़ शक्तिसम्पन्न नील वृषको, उसके वाम-भागमें चक्र और दक्षिण-भागमें शूल अंकित करके गायोंके समूहमें छोड़ देना चाहिये जो जगत्का कल्याण करेगा।

वायु, अग्नि, सुवर्ण, समुद्र और देवताओंको दिया हुआ अमृत झूठा नहीं होता वैसेही बछड़ोंको पिलाती हुई गौ भी कभी दूषित नहीं होती। ये गौएँ अपने दूध और घीसे समस्त जगत्का पोषण करती है। सभी लोग इन गौओंके अमृतमय पवित्र दूधरूपी ऐश्वर्यकी इच्छा करते हैं। गायें चंद्रमासे निकले हुए अमृतसे उत्पन्न शान्त, पवित्र, समस्त कामनाओंको पूर्ण करनेवाली और समस्त प्राणियोंके प्राणोंकी रक्षा करनेवाली हैं। गौएँ विश्वकी माता मानी गयी हैं। स्वयम्भू गंगाजीने जब लोकसृष्टिकी कामना की थी, तब उन्होंने समस्त प्राणियोंकी जीवन-वृत्तिके लिये पहले-पहल गौओंकी ही सृष्टि की थी। प्राचीन युगोंमें भारतमें जो विबुध-विस्मयकारी वैभव विद्यमान होनेकी विस्तृत चर्चा पुराणोतिहासोंमें मिलती है, उस वैभवका मूलाधार गायें ही हैं। यहाँके ऋषि-मुनियोंका जीवन-निर्वाह, धार्मिक क्रिया-कलाप एवं विविध प्रकारकी विद्याएँ गौओंपर ही निर्भर हैं। गोघृतमें कुरूपता, पाप, राक्षस-बाधा-नाशकादि अनेक गुण कहे गये हैं।

नमो देव्यै महादेव्यै सुरभ्यै च नमो नम:। गवां बीजस्वरुपायै नमस्ते जगदम्बिके॥

जगन्माता ! तुम गौओं की बीज स्वरुपा देवी हो, तुम्हें नमस्कार है। तुम महादेवी सुरभि को बारंबार नमस्कार है। निष्पापे! तुम समस्त देवताओं की माता यज्ञ की कारणरुपा और संपूर्ण तीर्थों की तीर्थ रुपा हो, तुम्हें सदा नमस्कार हैं।

ब्रह्मा, विष्णु, महेश, शेष, शारदा, दिनेश, सर्वदेवों को रोम-रोम में बसाती है।
चौदह भुवन, ब्रह्माण्ड, त्रिलोक पूज्य, माताओं की माता, कामधेनु कहाती है।
कीजै गऊ सेवा, वेद, शास्त्र व पुराण कहें, मानव जीवन श्रेष्ठ सुफल बनाना है।
मुक्तिदायिनी है गऊ माता कवि बाबूराम, प्राण देके, प्राण गऊ वंश का बचाना है।
गौ वन्दना- त्वं माता सर्वदेवानां त्वं च यज्ञस्य कारणम्। त्वं तीर्थं सर्वतीर्थाणां नमस्तेऽस्तु सदानघे।।
या लक्ष्मी: सर्वभूतानां या देवेषु व्यवस्थिता। धेनुरूपेण सा देवी मम पापं व्यपोहतु।।

कुछ लोग गोवध की वकालत करते पाए जाते हैं। उनका तर्क यह होता है कि ऐसी बूढ़ी गायों को, जो दूध नहीं देतीं अथवा उन बूढ़े बैलों को, जो खेती के लिए किसी काम के नहीं रह जाते, काटने में क्या हर्ज है ? इन लोगों का यह तर्क स्वार्थपरता से भरा हुआ और निरर्थक है। बूढ़ी गायें और बूढ़े बैल भी हमारे बड़े काम के होते हैं। वे हमें जीवनपर्यंत खाद और ईंधन के लिए गोबर और गोमूत्र देते रहते हैं।

गाय तथा गोवंश की वृद्धि हमारे देश के लिए स्वास्थ्य एवं आर्थिक दृष्टि से अत्यंत उपयोगी है। इससे प्राप्त गोमूत्र एवं गोबर से रामबाण औषधियां तथा सोने जैसी मूल्यवान रासायनिक खाद बनाकर कृषि एवं राष्ट्र को समृद्ध बनाया जा सकता है। वेदों में गोबर में लक्ष्मी का वास कहा गया है। यह बात शत-प्रतिशत सच है। हमारे मनीषियों के गोवंश के गोबर की उपयोगिता को ध्यान में रखते हुए ही यह बात कही होगी। इतना ही नहीं, गाय और गोवंश की उपयोगिता तो उसकी मृत्यु के पश्चात भी बनी रहती है।

गोवंश की उपयोगिता में पहला स्थान गोमूत्र और गोबर का है। दूसरा स्थान गाय से प्राप्त होने वाले बछड़ों तथा बछियों का होता है, जो जवान होकर बैल अथवा सांड तथा गाय बनती हैं। तीसरा स्थान दूध का है।

जिस प्रकार गाय का दूध स्वास्थ्य का आधार है, उसी प्रकार गोमूत्र भी अनेक औषधियों का मूल है। आज विदेशों में भी यह बात स्वीकार की जाने लगी है। गाय के मूत्र से इतनी सारी दवाएं बनती हैं कि इसे फार्मसी का दर्जा दिया जा सकता है। गोमूत्र का उपयोग कैंसर जैसे रोग के उपचार के लिए भी किया जाता है।

गोवंश खाद का चलता-फिरता कारखाना है। गोवंश के गोबर एवं मूत्र से बनी खाद की विशेषता यह है कि इससे खेतों की उत्पादन क्षमता में वृद्धि होती है। रासायनिक खादों की तरह इस खाद से खेतों की उत्पादन-क्षमता नष्ट होने का खतरा बिल्कुल नहीं होता। उलटे गोबर की खाद डालने से खेतों में अगली फसल में भी उसका प्रभाव बना रहता है।

गाय से दूध तो मिलता ही है, अपने जीवन-काल में गाय कम से कम पांच-छ: बछड़े या बछियां ऊपर से दे जाती है, जो किसान के लिए बहुत उपयोगी होते हैं। फिर भी मूलधन के रूप में गाय की उपयोगिता में किसी भी तरह की कमी नहीं आती। इस तरह पंद्रह-बीस वर्ष में गाय के रूप में उसके मूल धन में पांच-छ: गुना वृद्धि हो जाती है। गोवंश के गोबर खाद के अलावा ईंधन के लिए उपले भी बनाए जाते हैं। उपलों से तैयार किया गया भोजन विश्व में किसी भी तरह के ईंधन से बने भोजन से श्रेष्ठ माना गया है। उपलों के कारण ईंधन के लिए जंगलों की अंधाधुंध कटाई रुक जाती है। इसके अलावा ईंधन पर किए जाने वाले खर्च की भी बचत होती है। उपलों की राख अनाज को संरक्षित रखने एवं बर्तन साफ करने के काम आती है। इतना ही नहीं, गोवंश सीमेंट की भी चलती-फिरती फैक्टरी है। मिट्टी-गारे से बनाए जाने वाले मकानों को

बनाने में गोबर का इस्तेमाल जरूरी होता है। सीमेंट, कांक्रीट और लोहे की छड़ों से बनाए जाने वाले मकानों से हमारे देश में सबको छत नसीब नहीं हो सकती। कच्चे मकान जब अधिक मात्रा में बनेंगे, तभी सब को छत नसीब होगी। कच्चे मकानों की मरम्मत और फर्श को लीपने के लिए भी गोबर बहुत उपयोगी होता है। गोबर से फर्श लीपने पर वह स्थान वैक्टीरिया रहित हो जाता है। ऐसे स्थानों पर बीमारियों के कीटाणु प्रवेश नहीं कर सकते। इतना ही नहीं गोबर से लीपे हुए मकानों में एटोमिक रेडियोधर्मी किरणों से बचाव की भी शक्ति होती है।

इस तरह पशु-विज्ञान एवं अर्थशास्त्र में गोवंश आमरण उपयोगी बना रहा है। गोवंश की उपयोगिता कभी समाप्त नहीं होती। इसलिए हमें गोवंश की रक्षा और संवर्धन में हमेशा तत्पर रहना चाहिए।

घर-घर में जिनको पूजने की आज तक प्रथा। जिनके बिना अधूरी है श्री कृष्ण की कथा।।
दूध जिनका औषधि अमृत समान है। गौमाता यहां दिव्य शक्तियों की खान है।।
इन माताओं की वेदना को अब न पचाओ। जान पर भी खेल के गौवंश बचाओ।।
गौमाता के उपकार को जो भूल पाएंगे। मरने के बाद भी नहीं मुक्ति को पाएंगे।।
गौभक्त का हर युग में ही सम्मान हुआ है। कन्हैया एक ग्वाला था भगवान हुआ है।।
गौ महिमा जिनको आज भी स्वीकार नहीं है। भारत में उनको रहने का अधिकार नहीं है।
पशु होकर भी जो मां बनी मानव समाज की। उसको ही भूलने लगी पीढ़ी ये आज की।।
जयकारें जिनके गूंजते भारत के व्यौम में। देवता रमते हैं जिनके रोम-रोम में।।
उनके लिए सेवाएं सुबह और शाम दो। गौशालाओं को मां के मंदिरों का नाम दो।।
गौभक्त आप हैं इसी विश्वास के लिए। जीभर के दान दीजिए गौ ग्रास के लिए।।
मिलजुल कर एक साथ काम इतना कीजिए। गौवंश की रक्षा को प्राथमिकता दीजिए।।
जिनके हृदय में गौ के प्रति प्यार नहीं है। भारत में उनको रहने का अधिकार नहीं है।

गाच बचेगी तो देश बचेगा- अति प्राचीन काल से भारत में गोवंश का संरक्षण और सम्मान किया जाता रहा है। १९२१ में महात्मा गांधी की अध्यक्षता में वरिष्ठ कांग्रेसी नेता हकीम अजमल खां बेग, डा. अंसारी आदि ने सर्वसम्मति से गोवंश हत्या बंद करने का प्रस्ताव पारित किया था। संविधान बनने पर धारा ४८ में गोवंश को ग्रामीण अर्थव्यवस्था, कृषि की रीढ़ कह इसकी सुरक्षा व संवर्धन की बात कही गई। लेकिन सरकार ने अपनी गलत समझ से कानून बनाया कि बूढ़े व १४ साल से अधिक आयु के बैल को रोजगार के लिए कत्ल किया जा सकता है। यह नहीं सोचा गया कि जिसके पसीने की रोटी, दाल, खाकर देश के प्राण चलते हैं उसे मारना कितना गलत है। सरकार ने हजारों कत्लेखाने खुलने दिए जहां जवान गाय, बैल, बछड़े, गाभिन मवेशी मारे जाते हैं। बूढ़े बैल के नाम पर गोहत्या का रास्ता खोल दिया गया। गांधी, विनोबा, खान अब्दुल गफ्फार खान की गोवंश रक्षा की बात भुला दी गई। सरकार को चाहिए कि वह तत्काल गोवंश को राष्ट्रीय कृषि उपयोगी पशु घोषित कर गांव से बाहर बेचने पर रोक लगा दे। जिन राज्यों में गोवंश रक्षा कानून लागू है वहां से भी रात में चोरी छिपे और सांठगांठ से पशुओं को ठूंस-ठूंस कर ट्रकों में भरकर पड़ोसी राज्यों में कत्ल के लिए ले जाया जाता है। पशु के सींग डंडे मारकर तोड़ दिए जाते हैं और जीभ काट दी जाती है। अरब देशों को मांस का निर्यात कर विदेशी मुद्रा कमाई जाती है। आस्ट्रेलियाई कंपनी गोमांस के डिब्बे पर गांधीजी का चित्र छापती है तो संसद में विरोध होता है लेकिन यही सरकार देश में ३६ हजार कत्लखाने चलाने दे रही है। केंद्रीय कानून बनाकर यह पाप बंद किया जाए। गाय बचेगी तो देश बचेगा।

गाय विश्व में सर्वाधिक दूध देनेवाली स्तनधारी प्राणी है। एक गाय दिन में औसत ४० हजार बार जबड़ा चलाती है। गाय को दुहने में दस से बीस मिनट तक लगते हैं और एक गाय को २४ घंटे में तीन बार दुहा जा सकता है। गाय के पेट में चार हिस्से होते हैं जिसके कारण वह आसानी से घास और भूसा खाती चली जाती है और फिर बाद में आराम से जुगाली करके उसे पचा लेती है।

गाय का दूध है अमृत- गाय का दूध पृथ्वी का सर्वोत्तम आहार है। इसे मृत्युलोक का अमृत कहा गया है। मनुष्य की शक्ति एवं बल को बढ़ानेवाला गोदुग्ध जैसा दूसरा कोई श्रेष्ठ पदार्थ इस त्रिलोकी में नहीं है।

देवकार्य तथा औषधि के रूप में इसका विशेष रूप से उपयोग होता है। पंचामृत बनाने में इसका अनुपात सर्वाधिक रहता है। गाय का दूध पीला तथा स्वर्ण जैसे गुणों से युक्त होता है। इसमें विटामिन ए पाया जाता है। गाय का दूध जीर्णज्वर, मानसिक रोग, मूर्च्छा, भ्रम, संग्रहणी, पाण्डुरोग, दाह, तृषा, हृदयरोग, शूल, गुल्म, रक्तपित्त और योनि रोग आदि में उत्तम प्रयोज्य है। प्रतिदिन गाय के दूध के सेवन से अनेक प्रकार के रोग यूं ही दूर हो जाते हैं एवं वृद्धावस्था का विशेष प्रभाव नहीं होने पाता। इसके सेवन से शरीर में तत्काल शक्ति स्फुरण होने लगता है। एलोपैथी दवाओं, रासायनिक खादों तथा प्रदुषण आदि के कारण, हवा, पानी, एवं आहार के द्वारा शरीर में जो विष एकत्रित होता है, उसे नष्ट करने की शक्ति मात्र गो दुग्ध में है। गाय के दूध में दैवी तत्वों का निवास है। विशेष रूप से गो दुग्ध में तेजस्ताव अधिक एवं पृथ्वी तत्व कम होने के कारण व्यक्ति प्रतिभा सम्पन्न होता है और उसकी ग्रहण शक्ति बढ़ती है। ओज की वृद्धि होती है। बुद्धि निर्मल बनती है एवं विचार सात्विक बनते हैं।

गौएँ ही मनुष्यों अथवा समस्त प्राणियोंके जीवनका अवलम्ब हैं। गौएँ कल्याण-मंगलका परम निधान है। पहलेके लोगोंका ऐश्वर्य गौपर अवलम्बित था और आगेकी उन्नति भी गौपर ही अवलम्बित है। गौएँ ही सब समय पुष्टिका साधन रही हैं। संसारकी रक्षाके लिये वेद और यज्ञ ही दो श्रेष्ठ उपाय हैं और इन दोनोंका संचालन गायके दूध, घी और बैलोंके द्वारा उत्पन्न किये व्रीहिसे निर्मित चरु, पुरोडाश, हविष्य आदिसे ही सम्पन्न होता है। गायोंसे सात्त्विक वातावरणका निर्माण होता है। गायें अत्यन्त पवित्र हैं, इसलिये जहाँ रहती हैं, वहाँ कोई भी दूषित तत्त्व नहीं रहता।

सभी गाँवोंमें गोचरभूमि रहनी चाहिये। गोचर भूमि गाँवके चारों ओर कम-से-कम एक हजार हाथके परिणाममें होनी चाहिये। उसमें पीपल आदिके या दूसरे फलदार वृक्ष रखे जा सकते हैं। गौएँ ही यज्ञका संचालन करनेवाली और उसकी मुखरूपा हैं। गायें विकाररहित दिव्य अमृत धारण करती और दूहनेपर अमृत ही प्रदान करती हैं। वे अमृतकी आधार हैं। समस्त लोक उनको नमस्कार करते हैं। इस पृथ्वीपर गायें अपने तेज और शरीरमें अग्निके समान हैं।

गौ भारतकी राष्ट्रिय समृद्धि और सम्पदाकी विशिष्ट प्रतीक रही है। तपोवन-संस्कृतिकी यह महत्त्वपूर्ण अंग थी। गृहस्थोंकी ही नहीं आश्रममें रहनेवाले ऋषियोंकी समृद्धिका परिचय भी उनके यहाँ रहनेवाली गौओंकी संख्यासे मिलता है।

जबसे पाश्चात्त्योंकी सभ्यता-संस्कृतिका हमारी सभ्यता- संस्कृतिके साथ सम्मिश्रण हुआ है, तबसे भारतीय शिक्षा-विधानके लोप होनेसे अधिकांशत: शास्त्र-पुराणादिकी अनभिज्ञताके कारण गो-ब्राह्मणादिके प्रति शास्त्रीय धार्मिक बुद्धिका लोप-सा हो गया है। गोवंश आज व्यावहारिक उपयोगिताकी दृष्टिसे भौतिक तुलापर तौला जा रहा है; किंतु स्मरण रहे कि आजका भौतिक विज्ञान गोवंशकी उस सूक्ष्मातिसूक्ष्म परमोत्कृष्ट उपयोगिताका पता ही नहीं लगा सकता, जिसे भारतीय शास्त्रकारोंने अपनी दिव्यदृष्टिसे प्रत्यक्ष कर लिया था। गोधनका धार्मिक महत्त्व भावजगत्से सम्बन्ध रखता है और वह या तो ऋतम्भरा प्रज्ञाद्वारा अनुभवगम्य है अथवा शास्त्रप्रमाणद्वारा जाना जा सकता है, भौतिक यन्त्रोंद्वारा नहीं।

धर्मशास्त्र तो गोधनकी महानता और पवित्रताका वर्णन करता ही है, किंतु भारतीय अर्थशास्त्रमें गोपालन और गोरक्षणका विस्तृत विवरण मिलता है। जिस भूमिमें खेती न होती हो, उसे गोचर बनानेका आदेश अर्थशास्त्रका ही है। इस प्रकार गोधन अर्थ और धर्म दोनोंका प्रबल पोषक है। अर्थसे ही काम (कामनाओं) की सिद्धि होती है और धर्मसे ही मोक्षकी। अतएव गोधनसे अर्थ, धर्म, काम, मोक्ष- चारोंकी प्राप्ति होती है। इसीलिये भारतीय जीवनमें गोधनका इतना ऊँचा माहात्म्य है। गाय सूखे तृण भक्षण करके जन्मभर उन्हें दुग्ध-घृत जैसे पौष्टिक द्रव्य प्रदान करती हैं। गोमातासे मानव-समाजको जो लाभ है, उससे मानवजाति गोमाताकी सदा ऋणी रहेगी।

गाय वैदिक कालसे ही भारतीय धर्म और संस्कृति सभ्यताकी प्रतीक रही है। स्वयं वेद गायको नमन करता है। गोदानके बिना हमारा कोई भी धार्मिक कृत्य सम्पन्न नहीं होता। व्रत, जप, उपवास सभीमें गौ और गोप्रद:त्त पदार्थ परमावश्यक हैं। गाय अपनी उत्पत्तिके समयसे ही भारतके लिये पूजनीय रही है। उसके दर्शन, पूजन, सेवा-शुश्रूषा आदिमें आस्तिक जन पुण्य मानते हैं। किसी पूज्य-से-पूज्य व्यक्तिकी भी विष्ठा पवित्र नहीं मानी जाती, किंतु गोमूत्र गंगाजलके समान पवित्र माना गया है।

धर्म और संस्कृतिका प्रतीक होनेके साथ-साथ गाय भारती कृषिप्रधान अर्थव्यवस्थाकी भी रीढ़ है। देशमें सदैवसे गोधनको ही धन माना जाता रहा है। प्राचीन कालमें तो किसी भी वस्तुका मूल्यामन गौके द्वारा ही होता था। हमारे यहाँ गोपालन पश्चिमी देशोंकी भाँति केवल दूध और मांसके लिये नहीं होता। अमृततुल्य दूधके अतिरिक्त खेत जोतने एवं भार ढोनेके लिये बैल तथा भूमिकी उर्वरता बनाये रखनेके लिये उत्तम खाद भी हमें गायसे ही प्राप्त होता है, जिसके अभावमें हमारे राष्ट्रकी अर्थव्यवस्थाका शकट किसी प्रकार चल नहीं सकता।

भूमिकी उर्वरता और उत्पादन शक्ति बनाये रखनेके लिये उत्तम खादकी अनिवार्य अपेक्षा सर्वमान्य हैं। वृद्धता अथवा रोगके कारण गाय यदि दूध और बछड़े देने योग्य न रहे तो भी खाद तो वह जबतक जीवित रहती है, देती ही है। कृत्रिम रासायनिक खादसे प्रारम्भमें भले ही उत्पादनमें कुछ वृद्धि दिखायी दे, पर स्वल्पकालमें ही उससे भूमिकी उत्पादनशक्तिका ह्रास हो जाता है और वह प्राय: ऊसर बन जाती है। फसलोंके रोग भूमिके अस्वस्थ और रोगी होनेके कारण होते हैं और भूमिके रोगी होनेका कारण है प्राकृतिक खाद है। रासायनिक खाद भूमिको जीवांश (ह्यूमन्स) प्रदान नहीं करती। ये रासायनिक पदार्थ भूमिको संतुष्ट नहीं रख सकते। इनके उपयोगसे वृद्धि और क्षयका कभी संतुलन नहीं हो सकेगा। रासायनिक खाद का उपयोग करनेसे केवल यही हानि नहीं कि भविष्यमें उससे उपज काम होगी, अपितु यह भी कि उससे भूमिका स्वास्थ्य बिगड़ेगा। फलस्वरूप अस्वस्थ भूमिसे अन्न और चारा भी दूषित उत्पन्न होगा, जिससे मनुष्यों और पशुओंके स्वास्थ्यपर विपरीत प्रभाव पड़ेगा। भारतीय कृषिकी उन्नतिके लिये रासायनिक खादका उपयोग कभी हितकर नहीं हो सकता। इसके साथ ही रासायनिक खादमें काम आनेवाला गन्धक और मशीनोंका विदेशोंसे आयात करना पड़ता है, जो भारतकी अर्थ-व्यवस्थापर एक बड़ा भार है। अत: भारतकी कृषि-अर्थव्यवस्थाकी उन्नतिके लिये गोवंशका सम्यक् संरक्षण और संवर्धन परमावश्यक है।

हमारे देशकी अधिकांश जनता आज भी शाकाहारी है। अत: दूध ही भारतकी अधिकांश जनताका सर्वश्रेष्ठ पौष्टिक आहार है। स्वास्थ्यकी दृष्टिसे गो-दुग्ध, गोदधि, गोतक्र अत्यावश्यक है। उससे अनेक प्रकारके रोग दूर होते हैं। इसी प्रकार आयुर्वेद एवं आधुनिक विज्ञानके अनुसार भी शरीर-स्वास्थ्य एवं रोगनिवृत्तिके लिये गायके दूध, दही, मट्ठा, मक्खन, घृत, मूत्र, गोबर आदिका अत्यन्त उपयोग है। किंतु दूधकी जो मात्रा आज हमारे देशमें उपलब्ध है, वह बहुत ही निराशाजनक है। भारतमें प्रतिव्यक्ति दूधकी खपत केवल ४.७५ औंस है, जबकि अमेरिका, डेन्मार्क, स्विट्जरलैंड आदि देशोंमें प्रतिव्यक्ति ५० औंस तक है। भोजनविशेषज्ञों के मतानुसार एक व्यक्तिको प्रतिदिन कम-सेकम १३ औंस दूध चाहिये।

गायको पर्याप्त मात्रामें संतुलित आहार देनेमात्रसे उसका दुग्धोत्पादन लगभग ४०-५० प्रतिशत बढ़ाया जा सकता है। अत: कम दूध देनेवाली गायोंकी दुग्धोत्पादन-क्षमता बढ़ानेके लिये अनुभूत प्रयोग करना देशके सर्वविध हितमें है (अच्छे साँड़ोंके साथ सम्बन्ध कराने और गो-संतानोंका गौका सम्पूर्ण दूध पिलानेसे दो-तीन पीढ़ियोंमें ही आशातीत गोवंशकी उत्तम स्थिति और दुग्धवृद्धि हो सकती है। हमारे यहाँ गोपालन दुग्ध, बैल और खादके लिये किया जाता है। अत: केवल दूध और बैल-शक्तिकी दृष्टिसे गोवंशकी उपयोगिता निश्चित करना ठीक नहीं है।

पूज्या गौ माताके बिना हिन्दू-जाति, हिन्दूधर्म, हिन्दूसभ्यता-संस्कृतिकी कभी भी रक्षा नहीं हो सकती। पूज्या गौ माताके कारण ही हिन्दू-जातिका अस्तित्व बचा हुआ है और हिन्दू-जाति दिखलायी पड़ रही है। यदि पूज्या गौ माता समाप्त कर दी गयी तो हिन्दू-जाति भी सदा-सर्वदाके लिये समाप्त हो जायगी, इसमें तनिक भी संदेह नहीं है। पूज्या गौ माताका घृत और पूज्य ब्राह्मणोंद्वारा उच्चारित वेदमन्त्र दोनों ही यज्ञमें काम आते हैं और यज्ञ हिन्दू-जातिका प्राण है।

मुसलमानी कालमें जब भारतके और हिन्दू-जातिके महान् दुर्दिन आये तो मुसलमानोंने भारतमें प्रवेश किया और यहाँकी धर्म-संस्कृतिको मिटाना प्रारम्भ कर दिया। हमारे परम पवित्र देव-मन्दिर तोड़ डाले गये, पर हमने फिरसे मन्दिर बना डाले। मुसलमानोंने गौको मारना चाहा, पर हमने अपने प्राण देकर भी उसे बचा लिया। उन्होंने अत्याचार किये और बड़े-बड़े जुल्म ढाये, पर लाख प्रयत्न करनेपर भी वे हमारी श्रद्धाको, भावनाको और गौओंके प्रति श्रद्धा-विश्वासको हमारे हृदयसे, मनसे नहीं मिटा सके और हम पुन: पहले-जैसे बनकर और छाती तानकर खड़े हो गये। देशका महान दुर्भाग्य तो तब सामने आया जबकि हिन्दुओंके अंदर ही कुछ पथभ्रष्ट मनुष्योंने समाजको दिग्भ्रमित कर डाला और गौको एक सामान्य पशुकी संज्ञा दे दी। गौ को कभी भूलकर भी भैंस, बकरी आदि अन्य पशुओंकी भाँति साधारण पशु नहीं मानना चाहिये। गोमाता भवसागरसे पार लगानेवाली साक्षात् देवी है, यह मानना चाहिये।

जो गायको भूखी रखता है और जो गायको प्यासी रखता है और गायको धूपसे तथा सर्दीसे नहीं बचाता और गर्मी-सर्दीसे रक्षा नहीं करता, उसका कभी श्रेय नहीं होता है। गायको पूरा भरपेट खिलाना चाहिये और स्वच्छ पानी पिलाना चाहिये। गायकी खूब सेवा-शुश्रूषा करनी चाहिये और खूब प्रसन्न रखना चाहिये। गायें लोकमाता हैं। नित्यप्रति भोजन बनाते समय सबसे पहले गायके लिये रोटी बनाना चाहिये। गोग्रास निकालना चाहिये और गायको नित्यप्रति रोटी खिलानी चाहिये। गोग्रासका बड़ा महत्त्व है।

गाय उसी ब्राह्मणको दान देना चाहिये जो वास्तवमें गायको पाले और गायकी रक्षा-सेवा करे। यवनोंको और कसाईको न बेचे। अनाधिकारीको गायका दान देना घोर पाप करना है। गायको कभी भूलकर भी अपनी जूठी वस्तु नहीं खिलानी-पिलानी चाहिये। गाय माता साक्षात् जगदम्बा हैं। इन्हें जूठी वस्तु खिला-पिलाकर भला कौन सुखी रह सकता है? जिस देशमें गोमाताके रक्तका एक भी बिन्दु गिरता है, उस देशमें किये गये योग, यज्ञ, जप, तप, भजन-पूजन, दान-पुण्य आदि सभी शुभ कर्म निष्फल हो जाते हैं और सब धर्म-कर्म भी व्यर्थ हो जाते हैं। गोरक्षार्थ यदि प्राण भी दे देने पड़ें तो सहर्ष दे देनेसे निश्चित रूपसे श्रीगोलोकधामकी प्राप्ति होती है, इसमें तनिक भी संदेह नहीं।

जो गोमाताके बछड़ोंको-बैलोंको हलोंमें जोतकर उन्हें बुरी तरहसे मारते-पीटते हैं, सताते हैं, काँटी चुभाते हैं, गाड़ीमें जोतकर उनके ऊपर उनकी सामर्थ्यसे बाहर बोझा लादते हैं, उन्हें घोर नरककी प्राप्ति होती है और उनके किये हुए दान-पुण्य सब निष्फल हो जाते हैं। यदि तीर्थयात्रा करनेकी इच्छा हो और मन करता हो, परंतु शरीरमें बल न होनेके कारण और पासमें धन न होनेके कारण असमर्थता हो तो चिन्तित होनेकी आवश्यकता नहीं है। पूज्या गोमाताके दर्शन करो, गोमाताकी

पूजा करो और सर्वतीर्थमयी गोमाताकी परिक्रमा करो। गोमाताको मधुर पक्वान्न, गुड़ या मीठी रोटी खिलाओ, इस तरह सब प्रकारसे उसकी सेवा करो। घर बैठे तैंतीस करोड़ देवी-देवताओंका पूजन हो गया, कारण कि गोमातामें समस्त देवताओंका निवास है। घर बैठे ही समस्त तीर्थोंकी यात्राका सुफल प्राप्त हो जायगा। यह बड़ा ही सरल और सुलभ साधन है, इसे करनेसे न चूको। जो लोग गोरक्षाके नामपर, गोशालाओंके नामपर रूपये-पैसे इकट्ठा करते हैं और उन रुपयोंको गोरक्षामें न लगाकर स्वयं ही खा जाते हैं, उनसे बढ़कर पापी और दूसरा कौन होगा। गोमाताके निमित्त आये हुए पैसोंमेंसे एक पाई भी कभी भूलसे भी अपने काममें मत लगाओ और जितना बने अपनी ओरसे गोहितमें तन-मन-धन लगाते रहो। पर गौके हकका द्रव्य और स्वत्व कभी भूलकर भी मत लो। गोमाताके नामपर पैसा खानेवालोंको नरकका कीड़ा बनना पड़ता है।

भारतीय संस्कृतिकी दृष्टिसे गौका महत्त्व तो गायत्री और गंगासे भी बढ़कर है। गायत्रीकी साधनामें कठिन तपस्या अपेक्षित है। गंगासेवनके लिये भी कुछ त्याग करना ही पड़ता है, परंतु गौका लाभ तो घर बैठे ही मिल जाता है। दु:खकी बात यह है कि आज गौको साधारण पशु समझकर उसकी उपेक्षा की जा रही है और लोग उसका महत्त्व नहीं समझ पा रहे हैं। यदि वाक् गायत्री है, प्राण गंगा है तो मन गौ है। मनकी शुद्धिके बिना न तो कोई साधना हो सकती है और न भौतिक उपलब्धिका सुख ही प्राप्त हो सकता है। मनुष्यकी सम्पूर्ण क्रियाओंका मूल मन है और गौ मनकी शुद्धिका मूल हेतु है। मानव-जीवनसे पशु-जगत्का यों भी घनिष्ठ सम्बन्ध है, फिर दिव्य पशु तो मानव-जीवनकी आधारशिला है। वेदमें सामान्य और दिव्य पशुओंका पर्याप्त विवेचन हुआ है। गौ और गौकी संतान दोनों ही दिव्य पशु हैं। गौ सर्वपूज्या है तथा सर्वसेव्या है। हमें इस लोक में भोजन और परलोकमें पुण्य गोमाताकी ही कृपासे प्राप्त होता है। गौ स्वयं तृण खाकर दूध देती है, जिससे अनेक स्वादिष्ट, पौष्टिक पदार्थ बनते हैं, गौओंके बच्चे बैल खेती करके हमें खाद्यान्न देते हैं। इस प्रकार रोटी, दाल, भात और साग तो हमें गौ माताके पुत्र बछड़ोंसे ही मिलता है और दूध, दही, घी, मक्खन तथा खोयाके अनेक पदार्थ प्रत्यक्ष गौ मातासे मिलते हैं। मरनेपर जो वैतरणी नदी पार करनी पड़ती है वह गौकी पूँछ पकड़कर ही पार की जा सकती है।

जिस राज्य में गौका वध होता है, वह राज्य आध्यात्मिकतासे दूर हटता जाता है, वे आध्यात्मिकतासे हीन, अशान्त, संशयालु तथा भोगी होते हैं। जो राष्ट्र गौरक्षामें प्रमाद करता है, वह इस संसारमें यश और श्रीसे हीन हो जाता है। लोकमान्य तिलक, महामना मालवीयजी, महात्मा गांधी, स्वामी हासानन्दजी आदि महानुभावोंने गोहत्या रोकनेके बहुत प्रयत्न किये। काँग्रेसके साथ गोरक्षा-सम्मेलन होते थे, महात्मा गांधीजीने खिलाफतके आन्दोलनमें सहयोग देते हुए कहा था कि मैं मुसलमानोंके इस आनदोलमें इसलिये सहयोग देता हूँ कि वे गौकी रक्षा करें। उन दिनों प्राय: सभी मुसलमानोंके मौलवीयोंने व्यवस्था दी थी कि गोवध करना इस्लाम-धर्म में आवश्यक नहीं। उन दिनों सभी मुसलमान नेता गोरक्षाका समर्थन करते थे। अँगरेजोंसे इसलिये असहयोग करना चाहिये कि ये गोहत्या कराते हैं। उन दिनों काँग्रेसी नेताओंकी गोभक्ति और गोरक्षाके विचारोंको सुनकर सभीको पूर्ण विश्वास था कि जिस दिन स्वराज्यकी घोषणा होगी, उसी दिन गोहत्या-बंदीकी भी घोषणा हो जायगी। लोग कहा भी करते थे कि गोवध-बंदीकी बातें अभी क्यों करते हो, हत्याकी जड़ तो ये अँगरेज हैं, जिस दिन ये अँगरेज चले जायँगे, उस दिन एक लेखनीकी नोकसे गोवध बंद हो जायगा।

हम तो गौको पशु नहीं मानते हैं। हम तो गौको माता कहते हैं। भारतीय संस्कृतिमें गौको देवता माना गया है। हम लोग प्रतीक-उपासक हैं। जैसे सभी जानते हैं- मन्दिरोंकी प्रतिमाएँ पाषाणकी होती हैं किंतु हम उनमें देवत्वकी भावना करते है। भारतीय दण्ड-विधानमें एक नियम है जो मूर्तिको कोई दूसरे पाषाणसे तोड़ देता है, तो उसे दण्ड इसीलिये दिया जाता है कि उसने मूर्ति-पूजाकी भावनाको ठेस पहुँचायी। जब पाषाणकी मूर्तिको न तोड़नेका नियम है तो जिस गौमें हम तैंतीस

कोटि देवताओंका वास मानते हैं, उसे जो छुरीसे काटकर हमारी भावनाओंपर आघात करता है तो उसे दण्ड क्यों न दिया जाय? उनके लिये नियम-कानून क्यों न बनाया जाय?

हम कहते हैं कि भावनाके बिना तो कोई काम होता नहीं। राष्ट्रिय ध्वजमें भावनाके अतिरिक्त और क्या है। भावना निकाल देनेपर वस्त्रका टुकड़ा मात्र है। महापुरुषोंकी समाधियोंपर पुष्प क्यों चढ़ाते हैं। मन्दिरोंमें भावना ही तो है, अपने स्वजनोंकी भस्मको इतना व्यय करके त्रिवेणीमें ले जाते हैं, इसमें भावना ही तो है। भावनाके बिना मानवता नहीं, गौके प्रति हमारी भावना ही है। वह भावना सौ दो सौ या हजारों-लाखोंकी नहीं, अपितु करोड़ों-करोड़ों हिन्दुओंकी भावना है, प्रजातन्त्रीय सरकारको इतने लोगोंकी भावनाकी रक्षा करनी ही पड़ेगी। जो सरकार गोवधका समर्थन नहीं करेगी, उसे प्रोत्साहन नहीं देगी वह भारतमें कभी टिक नहीं सकती। अत: गोवधपर अविलम्ब प्रतिबन्ध लगाना चाहिये।

गायका दूध और उससे तैयार होनेवाले पदार्थ सबके स्वादिष्ट एवं पोषक आहार हैं। दूधमें पकाये हुए चावलको जिसे आधुनिक भाषामें खीर कहते हैं- संस्कृतमें परमान्न कहा गया है और घीको हमारे यहाँ सर्वश्रेष्ठ रसायन माना गया है। इतना ही नहीं, घृतरहित अन्नको हमारे शास्त्रोंमें अपवित्र कहा गया है। घी और चीनीसे युक्त खीरका भोजन ब्राह्मणोंके लिये विशेष तृप्तिकारक होता है।

इस पृथ्वीपर गौएँ अपने तेज और शरीरमें अग्निके समान हैं। वे महान् तेजकी राशि और समस्त प्राणियोंको सुख देनेवाली है। गौओंका समुदाय समस्त प्राणियोंको सुख देनेवाला है। गौओंका समुदाय जहाँ निर्भयतापूर्वक बैठकर साँस लेता है, उस स्थानकी श्री बढ़ जाती है और वहाँका सारा पाप नष्ट हो जाता है। गौएँ स्वर्गकी सीढ़ी हैं, वे स्वर्गमें भी पूजी जाती हैं। गौएँ समस्त कामनाओंको पूर्ण करनेवाली देवियाँ हैं, उनसे बढ़कर दूसरा कोई नहीं है। गाय दया-धर्मकी मूर्तिमंत कविता है। इस गरीब और शरीफ जानवरमें हम केवल दया ही उमड़ती देखते हैं। यह लाखों, करोड़ों हिंदुस्थानियोंको पालनेवाली माता है। इस गायकी रक्षा करना ईश्वरकी सारी मूक सृष्टिकी रक्षा करना है। जिस अज्ञात ऋषि या द्रष्टाने गोपूजा चलायी, उसने गायसे सिर्फ शुरुआत की, इसके सिवा और कोई ध्येय हो नहीं सकता है। इस पशुसृष्टिकी फरियाद मूक होनेसे और भी प्रभावशाली है। गोरक्षा हिंदू-धर्मकी दुनियाको दी हुई एक कीमती भेंट है।

गोमाता जन्म देनेवाली माँसे कहीं बढ़कर है। माँ तो साल, दो साल दूध पिलाकर हमसे फिर जीवनभर सेवाकी आशा रखती है। पर गोमाताको तो सिवा दाने और घासके कोई सेवाकी आवश्यकता ही नहीं। माँकी तो हमें उसकी बीमारीमें सेवा करनी पड़ती है। परंतु गोमाता स्वयं केवल जीवनपर्यन्त हमारी अटूट सेवा ही नहीं करती, बल्कि उसके मरनेके बाद भी हम उसके चर्म, हड्डी, सींग आदिसे अनेक लाभ उठाते हैं। उपनिषदोंमें गो महिमा है। रामायण, इतिहास, पुराण और महाभारत स्मृतियोंमें गोमाहात्म्य भरा है। गो को सुरभि, कामधेनु, अर्च्या (पूज्या), विश्वकी आयु, रुद्रोंकी माता, वसुओंकी पुत्री कहा गया है और सर्वदेवपूज्या माना गया है। ऋषि-मुनियोंने उनके महत्त्वको समझा। गोसेवा और गोवंशकी उन्नति भारतीय संस्कृतिके अभिन्न अंग है। गोसेवा सांस्कृतिक और धर्म कर्त्तव्य है।

सामान्य जनताकी गोपालनकी प्रवृत्ति कम होती जा रही है तथा जो लोग गोपालन करते हैं वे भी स्वार्थवश दूधके लोभमें (विदेशी) जर्सी गायको रखना चाहते हैं जो वास्तवमें गाय ही नहीं है। इसका पालन गोसेवा नहीं है। गोबर, गोमूत्र और गायोंका आवास स्वास्थ्यप्रद माना जाता है जो विदेशी गायोंमें नहीं है। गौ माताके जो लक्षण अपने शास्त्रोंमें बताये गये हैं वे लक्षण केवल भारतवर्षकी देशी गायोंमें ही उपलब्ध हैं। भारतीय गायोंका विशिष्ट लक्षण है उनका गलकम्बल और पीठका ककुद्, इसलिये गोदान आदिमें भी जर्सी गायोंको देना धनका अपव्यय मात्र है। गौ माताकी सेवासे जो भी

आध्यात्मिक और आर्थिक लाभ है, वह देशी गौकी सेवासे ही है।

गोकी बड़ी महिमा बताता आर्य-जन-साहित्य है। गो-रोम-रोम निवास करते देवता सब नित्य हैं॥
गो-पुच्छ द्वारा झाड़नेसे रोग भग जाते सभी। गो-मूत्र गो-मयके बिना शुचिता नहीं होती कभी॥
तब एक गोका मूल्य-अंकन बृहद राज्याधिक्य था। गो ही नहीं बछड़े वृषभ सबका उचित आतिथ्य था॥
गोके लिये थे गोत्र जिससे श्रेष्ठ गो-रक्षा बने। कश्यप, भरद्वाजादि सब मिल गोत्रके कक्षा बने॥
परम्परासे गोत्र अबतक वंश-परिचय दे रहा। गो-एषणा प्राचीन आर्योंका सदान्वेषण रहा॥
सब तुच्छ है पुत्रैषणा वित्तैषणा दारैषणा। सुर-असुर-वन्दित मोक्षदायिनि लोक-ख्यात गवेषणा॥

सृष्टिमें सहस्रों जीव-जन्तु हैं, किन्तु जितना आदर-सम्मान गौ माताने पाया है उतना किसी अन्य पशुने नहीं। गौके उपकारोंको मानव कभी भुला नहीं सकता। गौकी गणना शुद्ध शाकाहारी जीवोंमें होती हैं; क्योंकि वह घास-फूस खाकर ही उदर-पूर्ति कर लेती है। गायका मूत्र औषधियोंके शोधनमें प्रयुक्त होता है। गोमूत्रका प्रयोग ग्रामोंमें सामान्यजन भी किया करते हैं। लीवर, तिल्ली, पाचन-यन्त्रोंमें विकार होनेपर इनके सुधारके लिये गोमूत्रका प्रयोग सफलता देता है। गोबरका प्रयोग भी शोथादि विकारोंके शमनके लिये किया जाता है।

पर्यावरणके संरक्षणकी दृष्टिसे गायका कोई विकल्प नहीं। गाय अपने श्वास-प्रश्वासके द्वारा अनगिनत कीटाणुओंसे क्षेत्रको शुद्ध करती है। विश्वके प्राय: सभी जीवोंका मल-मूत्र अत्यन्त विषाक्त होता है। धार्मिक दृष्टिकोणसे भी कई ऐसे उपपातक है, जिनके प्रायश्चितमें पञ्चगव्य प्राशनका विधान किया गया है।

गायको तृण खिलानेका बहुत ही पुण्य बताया गया है। तीर्थस्थानोंमें जानेसे, ब्राह्मणोंको भोजन करानेसे जो पुण्य प्राप्त होता है तथा सभी व्रतों और उपवासोंमें एवं तपस्याओंमें जो पुण्य स्थित है, महादान देनेमें जो पुण्य है, श्रीहरिकी पूजामें जो पुण्य है, पृथ्वीकी परिक्रमामें जो पुण्य है तथा समस्त सत्यवाक्योंमें शास्त्रीय वेद-वाक्योंमें जो पुण्य है और मनुष्यको समस्त यज्ञोंमें यज्ञ-दीक्षा ग्रहण कर जो पुण्य अर्जित होता है- वे सभी पुण्य केवल गायेंको तृण खिलानेभरसे तत्क्षण ही मिल जाते हैं।

एक बार एक ऋषि जलमें डुबकी लगाये समाधिस्थ पड़े थे। एक मछली के जालमें फँस गये। बाहर निकालनेपर उन्हें देख सभी भयभीत हो गये। सूचना मिलनेपर देशका राजा उपस्थित हुआ, उसने ऋषिकी पूजा एवं स्तुति की तथा सादर राज्यमें चलनेका आग्रह किया। ऋषिने कहा- इस मछुवेको मेरे बराबर तौलकर धन दे दो, तब हम चल सकते हैं। यह सुनकर राजाने ऋषिको तराजूके एक पलड़ेमें बिठाया और दूसरे पलड़ेमें वह प्रचुर धन-धान्य-सोना-चाँदी आदि रखता गया, परंतु वह सब हलका रहा और ऋषिके भारका पलड़ा भारी रहा। निराश होकर राजाने ऋषिसे ही समाधानकी प्रार्थना की। ऋषि बोले- यह सब हमारे बराबर नहीं हो सकते। अमूल्य धन होनेसे एक गौ अवश्य हमारे समान हो सकती है। तब राजाने प्रसन्न होकर मछुवेको धन-धान्यसहित एक गौ देकर संतुष्ट किया और ऋषिको अत्यन्त आदरपूर्वक अपने राजभवनमें ले गया।

भारतवर्षमें नगरोंमें गाय रखना आज सचमुच एक समस्या बन गयी है। गायके चारे एवं भूमिकी कमी है। इसकी उचित व्यवस्था होना आवश्यक है। नगरसे बाहर अच्छी-अच्छी गौशालाओंकी स्थापनाका प्रबन्ध किया जाना चाहिये। वहाँ अच्छी नस्लमी गाय और बछड़े पैदा कराये जायँ गायोंको पर्याप्त दाना-चारा मिले। उनकी स्वच्छता, सेवा और चिकित्साकी उचित व्यवस्था हो। नगरके जो लोग गाय पालना चाहें, वे अपनी गाय गौशालामें रख दें और उनके पालनका खर्चा दें इन दूध देनेवाली गायोंके अतिरिक्त एक ऐसा अन्य विभाग भी होना चाहिये, जहाँ लूली, लँगड़ी, अपाहिज, बूढ़ी गायें रह सकें और उनपर होनेवाला खर्च दानी-मानी सज्जनोंसे प्राप्त किया जाय।

गो स्वर्गतुल्य सुखप्रद है। गोरस आदिके द्वारा यह सबको सुख देती है। गोसेवा और गोदानके फलस्वरुप मिलनेवाले आभूत-सम्प्लव जनलोक, तपोलोक, सत्यलोक और गोलोकरूप अक्षय्य लोकोंकी प्रतिष्ठा गौके रोम-रोममें है। गो-सेवाके फलस्वरूप प्राची-प्रतीची आदि दसों दिशाओंमें गोसेवककी कीर्ति फैलती है तथा दिशाओंका आधिपत्य प्राप्त होता है। इससे परिलक्षित होता है कि गौमें दसों दिशाओंकी प्रतिष्ठा है। गौएँ ही भूत और भविष्य हैं। उन्हींकी रक्षा, प्रतिष्ठा और सेवाके अनुसार भूत और भविष्यकी सिद्धि है।

गोभक्तोंको धनदकी नव निधियोंका स्वामित्व सुलभ होता है। सेवकके प्रति वात्सल्यसम्पन्न होनेके कारण तथा मातृवत् दुग्धपानसे सुपुष्ट करनेवाली होनेके कारण गौ माता है। गो-सेवा और गोरस-सेवनसे प्रज्ञाशक्ति और प्राणशक्ति पुष्ट होती है, इन्द्रियोंमें अनुपम बलका संचार होता है। ब्रह्मविद्याकी अधिष्ठात्री होनेसे सरस्वती वाग्देवी हैं। ब्रह्माणी होनेसे सरस्वती बुद्धिकी अधिष्ठात्री हैं। गोरस-सेवनसे सत्त्वगुण उद्दीप्त होता है। सत्त्वोद्रेकके कारण बुद्धि विशद होती है। इस दृष्टिसे गोकी सरस्वती संज्ञा है। गोरस साक्षात् सोमरस और अन्न है। आधिदैविक रीतिसे जगत् अग्नि-सोमात्मक है। इस प्रकार गो की विश्वरूपता सिद्ध है। गो को विश्वकी प्रतिष्ठा कहा गया है। गोदान करनेवाला गोदानका अक्षय्य फल प्राप्त करता है। गो चेतन होनेसे भोक्ता है और गोरसरूपसे भोग्य है।

गो का अर्थ गाय, पृथ्वी, इन्द्रिय, किरण तथा रत्न आदि होता है। पृथ्वीको धारण करनेवाली विप्र, वेद, सती आदि सात वस्तुओंमें गौका उल्लेख सर्वप्रथम है। अघ्न्या, रोहिणी, माहेन्द्री, इज्या, कल्याणी, दोग्ध्री, शतौदना, घटोध्नी, पावनी, बहुला, भद्रा, अदिति, जगती, इन्द्राणी, अर्च्या, ज्योतिः, कामदुघा, विश्रुता, चन्द्रा, वशा, पर्जन्यपत्नी, आतिथेयी, यज्ञपदी, विश्वायुः, सावित्री, सरस्वती आदि गौके प्रसिद्ध पर्याय हैं। गौका यौगिक अर्थ गतिशील है। जो चलती है गतिशील है, वह गौ है। सम्पूर्ण संसार गतिशील होनेसे गोरूप है। विश्वकी आध्यात्मिकी और आधिदैविकी अभिव्यक्ति गौ है। इसकी रक्षाके विश्वरक्षा और इसकी हत्यासे विश्वहत्या सुनिश्चित है। गोरस आदिसे विश्वका पोषण करनेवाली गौकी जहाँ लौकिक उपयोगिता है, वहाँ गोसेवा, गोदान और गोरक्षा आदिके फलस्वरूप गोलोक आदिको देनेवाली गौकी पारलौकिक उपयोगिता भी शास्त्रसिद्ध है।

बैलोंको जगत्का पिता समझना चाहिये और गौएँ संसारकी माता हैं। उनकी पूजा करनेसे सम्पूर्ण पितरों और देवताओंकी पूजा हो जाती है। जिनके गोबरसे लीपनेपर सभा-भवन, पौंसले, घर और देवमन्दिर भी शुद्ध हो जाते हैं, उन गौओंसे बढ़कर और कौन प्राणी हो सकता है? जो मनुष्य एक सालतक स्वयं भोजन करनेके पहले प्रतिदिन दूसरेकी गायको मुट्ठी भर घास खिलाया करता है, उसको प्रत्येक समय गौकी सेवा करनेका फल प्राप्त होता है।

गोसेवाकी शिक्षा स्वयं श्रीरामजी अयोध्यावासियोंको देते हुए कहते हैं- मैं इस रामावतारमें गोसेवा नहीं कर सका। लोगोंने मुझे महाराज श्रीदशरथजीका पुत्र समझकर गोसेवा नहीं करने दिया, इसलिये मैं गोसेवाके लिये ही अगला कृष्णावतार धारण करूँगा। लाखों संत-महात्माओंने गोरक्षाके लिये अपने प्राणोंकी आहुति दे दी, परंतु आजतक गोवध बंद नहीं हो सका। गोसेवासे अपुत्री पुत्रको, धनहीन व्यक्ति धनको प्राप्त करता है तथा किसी भी कामनासे गौकी सेवा करनेवाला मनोऽभिलषित फलको प्राप्त करता है।

परीक्षाकी दृष्टिसे देखें तो सैकड़ों गायोंके बीचमें आपकी गाय बँधी हो तो उस समय अपने गायके बछड़ेको खोल दीजिये, वह बछड़ा सैकड़ों गायोंके बीचमें भी अपनी माँको ढूँढ़ लेगा। भैंसका पाड़ा दस भैंसोंके बीचमें बँधी अपनी माँको नहीं ढूँढ़ पायेगा। गाय भयंकर गर्मीमें भी जंगलोंमें चरकर आती है। उसे तनिक भी गर्मी नहीं लगती। भैंस माघके महीनेमें

भी थोड़ी-सी गर्मी पड़ी, उसी वक्त चाहे गंदा पानी-कीचड़ क्यों न हो, उसमें जाकर लोटने लगेगी। इस प्रकार हर दृष्टिसे गौ माता पूज्या है। गौकी सेवासे ही सुख-शान्ति प्राप्त हो सकती है।

गौओंका दूध बछड़ोंके पीनेसे जूठा नहीं होता। जैसे चन्द्रमा अमृतका संग्रह करके फिर उसे बरसा देता है, उसी प्रकार ये रोहिणी गौएँ अमृतसे उत्पन्न दूध देती हैं। जैसे वायु, अग्नि, सुवर्ण, समुद्र और देवताओंका पीया हुआ अमृत ये वस्तुएँ उच्छिष्ट नहीं होतीं, उसी प्रकार बछड़ोंके पीनेपर उन बछड़ोंके प्रति स्नेह रखनेवाली गौ भी दूषित या उच्छिष्ट नहीं होती।

प्रत्येक व्यक्तिके जीवन में चार माताएँ होती हैं- पहली हैं जन्मदात्री जननी, दूसरी गोमाता, तीसरी भूमाता और चौथी है जगन्माता परमेश्वरी। बालकोंको माताके दूधके स्थानपर विराजता है गोमाताका दूध। बालकोंसे लेकर बूढ़ोंतक सभीका पूर्णहार होता है। गायोंके शरीरमें चौदह लोक विराजते हैं। गायोंकी हर वस्तु कृमिनाशक शक्तिसे भरपूर होती है। इसीलिये घरोंके अंदर-बाहर भी गोमयसे शुद्धि कर देते है।

गायें दुर्बल शरीरवाले व्यक्तिको हृष्ट-पुष्ट कर देती हैं एवं निस्तेजको देखनेमें सुन्दर बना देती है। इतना ही नहीं, अपने मधुर शब्दसे घरोंको मंगलमय बना देती है। गायें, विप्र, वेद, सती, सत्यवादी, निर्लोभी और दानी- इन सप्त महाशक्तियोंके बलपर पृथ्वी टिकी है। इसका निरादर समस्त देवताओंका निरादर है। सम्पूर्ण विश्वका पोषण करनेवाली है।

शास्त्रोंमें स्थल-स्थलपर गौकी गरिमा, महिमा एवं सर्वोपादेयता निर्दिष्ट की गयी है। गौका दर्शन, स्पर्श और अर्चन परम पुण्यमय है। गायके स्पर्शमात्रसे आयु बढ़ती है। जिस भूमिपर गाय श्वास लेती है वह परम शोभामयी है, वहाँसे पाप पलायित हो जाता है। धार्मिक, सांस्कृतिक एवं आर्थिक आदि सभी दृष्टियोंसे गोमाता परमोपकारिणी है, इसका विनाश राष्ट्रका विनाश है। यह भारतकी अतुलनीय अमूल्य सम्पत्ति है।

हिन्दुओंके गर्भाधान, जन्म, नामकरण आदि जितने संस्कार होते हैं, उन सबमें गायके दूध, घी, गोबर आदिकी मुख्यता होती है। जननाशौच और मरणाशौच मिटानेके लिये गायका गोबर और गोमूत्र ही काममें लिया जाता है।

गायकी छाया भी बड़ी शुभ मानी गयी है। यात्राके समय गाय या साँड़ दाहिने आ जाय तो शुभ माना जाता है और उसके दर्शनसे यात्रा सफल हो जाती है। गाय महान् पवित्र होती है। उसके शरीरका स्पर्श करनेवाली हवा भी पवित्र होती है। उसके गोबर-गोमूत्र भी पवित्र होते हैं। जहाँ गाय बैठती है, वहाँकी भूमि पवित्र होती है। गायके चरणोंकी रज (धूल) भी पवित्र होती है। गायकी सेवा करनेमात्रसे अन्त:करण निर्मल होता है। गायके दूध-घीसे वे दीर्घायु होते है। एक गायका पूजन करनेसे सब देवताओंका पूजन हो जाता है, जिससे सब देवताओंको पुष्टि मिलती है। पुष्ट हुए देवताओंके द्वारा सम्पूर्ण सृष्टिका संचालन, पालन, रक्षण होता है।

गोबर-गोमूत्रकी खादसे जो अन्न पैदा होता है, वह बड़ा पवित्र, शुद्ध, निर्मल होता है। गायका दूध जितना सात्त्विक होता है, उतना सात्त्विक दूध किसीका भी नहीं होता। हमारे देशकी गायें सौम्य और सात्त्विक होती हैं, इसलिये उनका दूध भी सात्त्विक होता है, जिसको पीनेसे बुद्धि तीक्ष्ण होती है और स्वभाव सौम्य, शान्त होता है। विदेशी गायोंका दूध तो ज्यादा होता है, पर उनके दूधमें उतनी सात्त्विकता नहीं होती तथा उनमें गुस्सा भी ज्यादा होता है। अत: उनका दूध पीनेसे मनुष्यका स्वभाव भी क्रूर होता है। विदेशी गायोंके दूधमें घी कम होता है और वे खाती भी ज्यादा हैं।

गोबरसे लिपे हुए घरोंमें प्लेग, हैजा आदि भयंकर बीमारियाँ नहीं होतीं। इसके सिवाय युद्धके समय गोबरसे लिपे हुए मकानोंपर बमका उतना असर नहीं होता, जितना सीमेंट आदिसे बने हुए मकानोंपर होता है। आजकल गोबरसे गैस पैदा की जाती है। उस गैससे बिजली भी पैदा की जाती है, जिसको कई जगह काममें लिया जाता है। गैस निकलनेके बाद

गोबरकी तेजी कम हो जाती है और वह खेतोंमें देनेके लिये बढ़िया खाद हो जाती है। संखिया, भिलावा आदि बड़े-बड़े जहरोंकी शुद्धि भी गोमूत्रसे ही होती है। सोना, चाँदी आदि धातुएँ भी गोमूत्रसे शुद्ध की जाती हैं। भस्म बनाते समय उन धातुओंको तपाकर तेलमें, गायके दूधकी छाछमें और गोमूत्रमें बुझाकर शुद्ध किया जाता है। जब गायें नहीं रहेंगी, तब देशकी क्या दशा होगी, कितनी आफतें आयेंगी- इसका अंदाजा नहीं लगाया जा सकता।

गोरक्षासे सब तरहका लाभ है- इस बातको धर्मप्राण भारतवर्ष ही समझ सकता है, दूसरे देश नहीं समझ सकते; क्योंकि उनके पास गहरी धार्मिक और पारमार्थिक बातोंको समझनेके लिये वैसी बुद्धि नहीं है और वैसे शास्त्र भी नहीं हैं। जो लोग विदेशी संस्कृति, सभ्यतासे प्रभावित हैं तथा केवल भौतिक चकाचौंधमें फँसे हुए हैं, वे भी गायका महत्त्व नहीं समझ सकते। वे ऋषि-मुनियोंकी बातोंको तो मानते नहीं और स्वयं जानते नहीं। स्वार्थबुद्धि अधिक होनेसे मनुष्यकी बुद्धि भ्रष्ट हो जाती है, बुद्धि तामसी हो जाती है, फिर उसको अच्छी बातें भी विपरीत दीखने लगती हैं। आजकल मनुष्योंमें स्वार्थ-भावना बहुत ज्यादा बढ़ गयी है, जिससे उनमें गोरक्षाकी भावना कम हो रही है। सनातन वैदिक धर्मका प्राण गोमाताका वंश है। गोमाताकी महिमा वेदों, पुराणों और समस्त धर्मग्रन्थोंमें हम पढ़ते हैं। वैष्णव, शैव, शाक्त और बौद्ध, जैन तथा आर्यसमाजमें गोमाताका जय-जयकार किया गया है। प्राचीन कालमें किसी व्यक्तिकी धन-सम्पत्तिका माप उसके पास होनेवाली गौओंकी संख्यासे होता था। यज्ञोंमें ऋत्विजोंके लिये दक्षिणा-रूपमें गाय ही देनेका विधान था। गो जातिके लिये हृदयमें अगाध प्रेम होना चाहिये।

गौएँ जंगलमें निवास करती हैं, तृणोंका भक्षण करती हैं और बिना किसीके अधिकृत क्षेत्रका जल अथवा गड्ढा, नदी, तालाबका जल पीती हैं, वे दूध देती हैं, भार वहन करती हैं, पापोंको दूर करती हैं, गायोंके इस गोरस (दूध-दही) आदिपर सारा विश्व-प्राणी समुदाय टिका है- जीवनयापन करता चला आ रहा है। प्रसन्न होनेपर गायें सारे पाप-तापको धो डालती हैं और दान देनेपर गायें सीधे स्वर्गलोकको ले जाती हैं। ये ही विधिपूर्वक पालन करनेपर वैभव-धन या समृद्धिका रूप धारण कर लेती हैं। ऐसी गायोंके समान संसारमें कोई भी सम्पत्ति या समृद्धि नहीं है। गौएँ सामान्य घास चरती हैं और बदलेमें दूध-दही, गोमय आदि निरन्तर कुछ-न-कुछ देती ही रहती हैं, लेती भी कुछ नहीं। ये पापको दूर करती हैं और मित्रोंका संवर्धन करती हैं। बैल भी सबसे सीधा देवता है और अन्न-उत्पादन कर सबको खिलाता-जिलाता रहता है। उसीके द्वारा जो अन्न उत्पन्न किया जाता है उससे संसार जीता है। गायके तुल्य ही सजातीय गोधन अर्थात् बैलके समकक्ष कोई सम्पत्ति नहीं है। जंगलमें रूखे-सूखे तृणोंका भक्षणकर साधारण जलका पान कर गौएँ दुग्धरूपी अमृतका क्षरण करती हैं और जिसकी गोबर-गोमूत्र आदि वस्तुएँ संसारको पवित्र कर डालती हैं, ऐसी गौओंके समान और अन्य कोई सम्पत्ति नहीं है। गौओंकी अधिष्ठात्री आदिजननी सुरभी गोलोकमें प्रकट हुईं। वह गौओंकी अधिष्ठात्री देवी, गौओंकी आदि, गौओंकी जननी तथा सम्पूर्ण गौओंमें प्रमुख थीं। समस्त गौओंसे प्रथम वृन्दावनमें उन सुरभीका ही जन्म हुआ है।

एक समयकी बात है, वाराहकल्प बीत रहा था। देवी सुरभीने दूध देना बंद कर दिया। उस समय त्रिलोकीमें दूधका अभाव हो गया था। तब देवता अत्यन्त चिन्तित होकर ब्रह्मलोकमें गये और उनकी स्तुति करने लगे। तदनन्तर इन्द्रने ब्रह्माजीकी आज्ञा पाकर देवी सुरभीकी स्तुति आरम्भ की।

इन्द्रने कहा- देवीको नमस्कार है। महादेवी सुरभीको बार-बार नमस्कार है। जगदम्बिके, तुम गौओंकी आदिकारण हो; तुम्हें नमस्कार है। श्रीराधा-प्रियाको नमस्कार है। देवी पद्मांशाको बार-बार नमस्कार है। श्रीकृष्ण-प्रियाको नमस्कार है। गौओंको उत्पन्न करनेवाली देवीको बार-बार नमस्कार है। सबके लिये जो कल्पवृक्षस्वरूपा हैं तथा क्षीर, धन और बुद्धि प्रदान करनेके लिये सदा तत्पर रहती हैं, उन भगवती सुरभीको बार-बार नमस्कार है। शुभा, सुभद्रा और गोप्रदा नामसे

शोभा पानेवाली देवीको बार-बार नमस्कार है। यश, कीर्ति और धर्म प्रदान करनेवाली देवीको बार-बार नमस्कार है।

इस प्रकार स्तुति सुनते ही जगज्जननी भगवती सुरभी संतुष्ट और प्रसन्न हो उस ब्रह्मलोकमें ही प्रकट हो गयीं। वह सनातनी देवी देवराज इन्द्रको परम दुर्लभ अभीष्ट वर देकर गोलोकको चली गयीं। देवता भी अपने-अपने स्थानोंको चले गये। अब विश्व सहसा दूधसे परिपूर्ण हो गया। दूधसे घृत बना और घृतसे यज्ञ सम्पन्न होने लगे तथा उनसे देवता संतुष्ट हुए।

उन दिनोंकी बात है, जब महर्षि गौतम ब्रह्मगिरिके आश्रममें रहते थे। अनावृष्टिके कारण घोर अकाल पड़ा। अन्नके बिना चारों ओर हाहाकार मच गया। उस समय मुनिवर श्रीवसिष्ठजी कुछ मुनियोंके साथ गौतमके आश्रमपर पहुँचे। महर्षि गौतमने उनका सादर अभिनन्दन किया और अन्न देकर उनके प्राणोंकी रक्षा की। वे प्रतिदिन प्रात:काल अन्नके बीज मैदानमें बो देते। बीज उनके तपके प्रभावसे संध्याके पूर्व ही बढ़कर फल दे देते। अन्न एकत्रित कर लिया जाता। वही ऋषियोंके आहारके काम आता।

बारह वर्षके बाद पुन: वृष्टि हुई। तप्त वसुन्धरा शीतल हो गयी। सर्वत्र हरियाली दीखने लगी। उस समय कैलास पर्वतपर महासती श्रीपार्वतीने श्रीशंकरजीसे कहा- आप गंगाजीको सिरपर और मुझे अपने अममें रखकर मेरा अपमान करते हैं। परंतु श्रीशंकरजीने उनकी बातपर कोई ध्यान नहीं दिया।

खिन्न होकर श्रीपार्वतीजीने अपने आज्ञाकारी पुत्र श्रीगणेशजीके पास जाकर अपनी व्यथा-कथा कह सुनायी। माताके दु:खसे दुखित होकर श्रीगणेशजी अपने बड़े भाई कार्तिकेयके साथ दीन ब्राह्मणके वेशमें महर्षि गौतमकी कुटियापर पहुँचे। वहाँपर उन्होंने ऋषियोंसे कहा- ऋषियों। दुर्भिक्ष समाप्त हो गया। पृथ्वी अन्न-जलसे पूरित हो गयी है। अब आप लोगोंका इस आश्रमपर अधिक समयतक ठहरना उचित नहीं है।

ब्राह्मण-वेषधारी श्रीगणेश और कार्तिकेयकी यह बात ऋषियोंके मनमें बैठ गयी। वे चलनेके लिये तैयार हो गये। उस समय महर्षि गौतमने कहा- दुष्कालके समय अन्न देकर मैंने आपलोगोंके प्राणोंकी रक्षा की है। अब मेरी इच्छाके विपरीत आपलोगोंका जाना उत्तम नहीं है। यहाँ कुछ समयतक और रहनेके लिये मैं आपलोगोंसे अनुरोध करता हूँ

गौतमकी बात सुनकर ऋषियोंने अपने जानेका विचार छोड़ दिया।

तब श्रीगणेशजीने श्रीकार्तिकेयजीसे कहा- आप गौतम ऋषिके खेतमें गायका रूप धारण करके चले जायँ। ऋषिकी दृष्टि पड़ते ही आप गिर पड़ें, जैसे मृत्यु हो गयी हो। कार्तिकेयने वैसा ही किया। गायके वेषमें वे गौतम ऋषिके खेतमें जाकर खेती नष्ट करने लगे। गौतमने इन्हें देखा, बस, वे मृत्युतुल्य हो धराशायी हो गये।

यह दृश्य देखते ही ऋषिगण वहाँसे चलनेकी तैयारी करने लगे। गौतमके आग्रह करनेपर ऋषियोंने कहा- गायकी मृत्युसे यह पापस्थली हो गयी है। अत: नृपश्रेष्ठ भगीरथकी भाँति यदि आप श्रीगंगाजीको यहाँ लाकर गायको जीवित और इस स्थानको पवित्र करें तो हमलोग यहाँ रह सकते हैं।

ऋषियोंकी बात सुनकर महर्षि गौतम श्रीगंगाजीको लानेके लिये त्र्यम्बक पर्वतपर जाकर तपस्या करने लगे। अन्तमें प्रसन्न होनेपर श्रीशंकरजीने उन्हें श्रीगंगाजीको देनेका वचन दिया। तब गौतमने पुन: कहा- भगवन्। ये गंगाजी गायका उद्धार करके सागरमें मिलें और मेरे नामको भी प्रसिद्ध करें। श्रीशंकरजीने कहा- यह गंगा गौतमी और गोदावरीके नामसे प्रसिद्ध होगी तथा अत्यन्त पुण्य देनेवाली होगी।

इतना कहकर शंकरजीने श्रीगंगाजीको महर्षि गौतमके हाथों दे दिया। गौतम प्रसन्नचित्त हो ब्रह्मगिरि लौटे। वहाँपर श्रीगंगाजीकी तीन धार हो गयी। एक धार मृत गौको जीवित कर दक्षिणकी ओर सागरमें मिल गयी। दूसरी धार पृथ्वीको

वेधकर पातालमें और तीसरी आकाश-मार्गसे स्वर्गको चली गयी। दक्षिण सागरमें मिलनेवाली पुण्यतोया गंगा गोदावरी और गौतमीके नामसे प्रसिद्ध है।

गोरक्षा, अबला स्त्रीकी रक्षा, गुरु और ब्राह्मणकी रक्षाके लिये जो प्राण दे देते हैं। वे मनुष्य इन्द्रलोक (स्वर्ग) में जाते हैं। प्राचीन कालमें गौओंका अग्रपूजासे सम्मान किया जाता था। उन्हें सब प्रकारकी सुख-सुविधा प्रदान की जाती थी। प्राणियोंको अग्रपूजाका मान देते हुए सर्वोपरि मान गौओंको देना चाहिये। उन्हें प्रमुख स्थान दें, तभी मानवजातिका कल्याण होगा। सभी प्रकारके धनों और अन्नोंमें गोरसका स्थान प्रमुख है। खाने-पीनेमें दूध, दही, घी, छाछ आदि गव्य पदार्थ प्रमुख रहने चाहिये। इसके लिये अग्रपूजाका स्थान गौको देना चाहिये।

पर्वत भी गोचरभूमि है। पर्वत गाायेंका संरक्षण करनेवाला है। अर्थात् अनेक गौएँ साथ लेकर उन्हें पर्वतपर चरानेके लिये जाना उचित है। पर्वतको गोत्र कहा गया है। वह गौओंका संरक्षक है।

वेदों, पुराणों, स्मृतियों, श्रीमद्भागवत, महाभारत तथा अन्यान्य ग्रन्थोंमें गोमहिमापर प्रचुर साहित्य उपलब्ध होता है। गोमातामें समस्त देवताओं, ऋषियों, मुनियों और तीर्थोंका निवास बताया गया है। गोरक्षाके लिये ईश्वरको स्वयं अवतार लेना पड़ता है। गाय धरतीके सदृश मानी जाती है। राक्षसोंके अत्याचारसे पीड़ित होकर धरतीद्वारा गायका रूप धारण कर परमात्माकी गुहार लगानेकी घटना धर्मग्रन्थोंमें वर्णित है। गोमहिमा अनन्त है, जिसके पीछे परमब्रह्म परमात्मा श्रीकृष्णके स्वरूपमें विचरण करता है। गौ हमारी संस्कृतिका प्राण है। यह गंगा, गोमती, गायत्री, गीता, गोवर्धन और गोविन्दकी भाँति पवित्र है। गोपालन, गोसेवा, गो-दान हमारी संस्कृतिकी महान् परम्परा रही है। गोसेवा सुख और समृद्धिका मार्ग प्रशस्त करती है। यह लक्ष्मी-प्राप्ति, विद्या-प्राप्ति और पुत्र-प्राप्तिका साधन है। गो-दर्शन, गोस्पर्श, गो-पूजन तथा गो-स्मरणसे मनुष्यके सभी पाप नष्ट हो जाते हैं। गोमूत्र, गोबर, गोदुग्ध, गोदधि, गोघृत आदि सभी पदार्थ अति पावन, आरोग्यप्रद, आयुवर्धक और शक्तिवर्धक हैं।

गौके समान इस संसारमें कोई क्षमाशील प्राणी नहीं है। गौ अपने अमृतमय गोरसका पान कराकर इस भौतिक जगत्में हमारा कल्याण करती है।

जहाँ गौएँ निवास करती हैं, वहाँ सर्वत्र सुख और शान्तिका वास होता है। गौके शरीरमें ३३ कोटि देवता निवास करते हैं। गौके खुरसे उड़नेवाली धूल भी अत्यन्त पवित्र है। श्रीकृष्ण गाय चराकर संध्या-समय जब घर लौटते हैं तो गोरजसे अलंकृत उनके मुखकी अलौकिक शोभा देखने योग्य होती है। गौ-विहीन गृह बन्धुशून्य गृह है।

भगवान श्रीकृष्णने गोविन्द और गोपाल बनकर गोवर्धनको धारण किया और गौ-गोपोंकी रक्षा की। श्रीकृष्णका गौओंके साथ अभिन्न सम्बन्ध है। गौएँ भी अपनेको श्रीकृष्णके सम्पर्कमें आकर धन्य समझती हैं। वे उन्हें स्नेहमयी दृष्टिसे निहारती हैं। वंशीकी टेर सुनकर चाहे वे कितनी भी दूर क्यों न हों दौड़कर उनके पास पहुँचकर चारों ओरसे उन्हें घेरकर खड़ी हो जाती हैं

गोविन्द गिरि चढ़ गाय बुलावत। गायँ बुलाई धूमर-धौरी टेरत वेणु बजाय॥
आगे गाय पाछें गाय इतन गाय उत गाय, गोविन्द को गायन बिच रहिबौ ही भावै।
गायन के संग धावै गायन में सचुपावै, गायन की खुर रज अंग लपटावै॥
गायन सों बृज छौ वैकुण्ठ हूँ कौ, सुख बिसराय कै गायन हेतु गिरि कर लै उठायो॥

गौ हमारी सभ्यता और संस्कृतिकी मेरुदण्ड है। गौविहीन भारतीय संस्कृतिकी तो कल्पना ही नहीं की जा सकती। गौ हमारी राष्ट्र-लक्ष्मी है। वह हमारी समृद्धिकी आधारशिला है। गौने हमें जीवनदायिनी शक्ति दी है, हमें आरोग्य, आनन्द और

शान्ति प्रदान की है। गौ हमारी सारी आर्थिक योजनाओं और सारी आध्यात्मिक शक्तियोंकी स्रोत है।

पारसी लोग साँड़की पूजा करते हैं। सूखे गोबरसे एक प्रकारका तेज निकलता है, जिससे लाखों विषैले कीट तत्क्षण ही नष्ट हो जाते हैं। गौके सूखे गोबरको जलानेसे मक्खी-मच्छर आदि मर जाते हैं। गौके सम्पर्कमें रहनेसे चेचक-जैसे रोग नहीं होते। हमारे देश में गोपालन पश्चिमी देशोंकी भाँति केवल दूधके लिये नहीं होता है, प्रत्युत अमृततुल्य दूधके अतिरिक्त खेत जोतनेके लिये एवं भार ढोनेके लिये बैल तथा भूमिकी उर्वरता बनाये रखनेके लिये उत्तम खाद भी हमें गायसे प्राप्त होती है, जिसके अभावमें हमारे राष्ट्रकी अर्थव्यवस्थाका संकट किसी प्रकार दूर नहीं किया जा सकता।

विश्वमें कितनी ही नवीन संस्कृतियाँ उत्पन्न हुईं तथा धर्म-मजहब उत्पन्न हुए और कालके मुखमें समा गये, इनकी कोई गिनती नहीं है। इस आर्य-हिन्दू-संस्कृतिपर भी समय-समय पर बड़ी-बड़ी विपत्तियाँ आती रहीं और उत्थान-पतन भी होत रहा, परंतु फिर भी वह आजतक जीवित है।

स्वप्नमें गौ अथवा साँड़के दर्शनसे कल्याण-लाभ एवं व्याधि नाश होता है। इसी प्रकार स्वप्नमें गौके थनको चूसना भी श्रेष्ठ माना गया है। स्वप्नमें गौका घरमें ब्याना, बैल अथवा साँड़की सवारी करना, तालाबके बीचमें घृत-मिश्रित खीरका भोजन भी उत्तम माना गया है। इनमेंसे घीसहित खीरका भोजन तो राज्य-प्राप्तिका सूचक माना गया है। इसी प्रकार स्वप्नमें ताजे दुहे हुए फेनसहित दुग्धका पान करनेवालेको अनेक भोगोंकी तथा दहीके देखनेसे प्रसन्नताकी प्राप्ति होती है। जो बैल अथवा साँड़से युक्त रथपर स्वप्नमें अकेला सवार होता है और उसी अवस्थामें जाग जाता है, उसे शीघ्र धन मिलता है। स्वप्नमें दही मिलनेसे धनकी, घी मिलनेसे यशकी और दही खानेसे यशकी प्राप्ति निश्चित है। इसी प्रकार यात्रा आरम्भ करते समय दही और दूधका दीखना शुभ शकुन माना गया है। स्वप्नमें दही-भातका भोजन करनेसे कार्यसिद्धि होती है तथा बैलपर चढ़नेसे द्रव्य-लाभ होता है एवं व्याधिसे छुटकारा मिलता है। इसी प्रकार स्वप्नमें साँड़ अथवा गौका दर्शन करनेसे कुटुम्बकी वृद्धि होती है। स्वप्नमें भी काली वस्तुओंका दर्शन निन्द्य माना गया है, केवल कृष्णा गौका दर्शन शुभ होता है।

पदार्थोंमें माँ वसुन्धराका, मानवतामें जननीका, सरिताओंमें भागीरथीका, देवोंमें भगवान पद्मनाभ विष्णुका, नक्षत्र-मण्डलमें भगवान बृहस्पतिका, ऋषियोंमें अगस्त्यका, देवियोंमें भगवती दुर्गाका तथा वृक्षोंमें सहकार (आम) का जो स्थान है, वही स्थान पशु-परम्परामें गौ माताका है। भारतीय संस्कृतिमें इस प्राणीको मातृत्वका गौरव प्रदान करके इसका जो माहात्म्य दर्शाया गया है वह उसके सहज औदार्यका अंशमात्र है। व्यवहारमें वह मानवकी अर्थसिद्धिका द्वार है। वह सागरके गर्भसे उद्भूत चतुर्दश रत्नोंकी शृंखलाकी एक विलक्षण कड़ी है।

वह करुणाकी प्रतिमूर्ति एवं त्यागकी पराकाष्ठा है। वाणीसे विहीन होकर भी अपनी जिस प्राकृतिक वत्सलतासे वह बछड़ेके लिये अपने हृदयका रक्त उड़ेलनेको तत्पर रहती है वह वात्सल्य वाग्विलसित, किंतु स्वार्थ-लोलुप मानव-समाजमें अलभ्य नहीं तो दुर्लभ अवश्य है।

तृणोंके आहारपर जीवन धारण कर मानवमात्रके लिये अलौकिक सुधारसका सम्प्रदान करना गौ माताके ही उपयुक्त है। जब हम पशु-समुदायको आहार, निद्रा, भय एवं मैथुनका विशेष्य मात्र स्वीकार करते हैं तो हमारे अन्तश्चक्षु सम्भवत: इस तथ्यसे अनभिज्ञ रह जाते हैं कि जो त्याग एवं नि:स्वार्थ-सेवकी भावना मनुष्यमें वर्षोंकी तपस्याके पशचात् भी बड़ी कठिनतासे प्रवेश कर पाती है, वही एक माँके रूपमें गोधनमें सहज विद्यमान रहती है। आध्यात्मिक रूपसे एतावता वह हम लुब्ध मानवोंसे कहीं उच्चतर है।

वंशीधर, वंशीवट बीच निज वंशी आप, कहिये बजाने फिर कब जुट जायँगे?

सार्थक गोपाल नाम कब कीजियेगा नाथ? गो-विघातकोंके दल कब लुट जायँगे?
होगी धर्म-स्थापना नरायण बताओ कब? दीन जन कब दीनतासे छुट जायँगे?
आँखें खोल निद्रा छोड़ साहसके साथ जरा, सोते हुए भारतीय कब उठ जायँगे?

गाय खाती है घास और देती है अमृततुल्य दूध। सारे विश्वमें गायके समान उपयोगी जानवर कहीं भी उपलब्ध नहीं है।

अखिल विश्वमें गौके सदृश उपकारी अन्य कोई भी प्राणी नहीं है। यह वह अनुपम विभूति है, जिसकी हमारे वेदोंने भूरि-भूरि प्रशंसा की है। आर्य हिन्दू-जातिने अनादिकालसे निरन्तर गोभक्ति, गोपालन, गोसेवा, गोपूजा एवं गो-सत्कारको अपने जीवनका सर्वोत्कृष्ट कर्त्तव्य समझा है। इस जातिके वेद, शास्त्र, स्मृतयाँ, पुराण और इतिहास गौके प्रति उत्कृष्ट भावनाओंसे ओत-प्रोत हैं। आर्योंके पवित्र हृदयोंमें पापनाशिनी धेनु-माताका माहात्म्य दृढ़तापूर्वक अमित है, हजारों-लाखोंने गोरक्षार्थ अपना सर्वस्व न्योछावर किया है। अपने प्राणोंतककी बलि चढ़ायी है, संसारके सब प्रकारके कष्ट-क्लेश, आपद्-विपद् झेलकर भी गोरक्षा की है। राजाओंने राज्य त्यागे हैं, योगियोंने योगानन्द छोड़ा है, युग-पुरुषोंने नंगे पाँव वन-वन घूम-फिरकर गौओंको चराया है, गौका अनुसरण करते हुए वे गौके बैठनेपर बैठे हैं, चलनेपर चले हैं, चारा चरनेपर भोजन किया है, पानी पीनेपर पानी पिाय है, सोनेपर सोये हैं और जागनेपर जागते रहे हैं। ऐसे महामानवोंकी गोभक्ति प्रशंसनीय, श्लाघनीय एवं अनुकरणीय है।

वेद जो गौको रुद्रोंकी माता, वसुओंकी पुत्री, आदित्योंकी बहिन तथा घी-दूधरूप अमृतका केन्द्र मानता है और उसका वध न करनेकी आज्ञा देता है।

श्रुति कहती है कि गायका घी आयुकी वृद्धि करनेवाला है, बुद्धिवर्धक है। गायका दही स्वादिष्ट एवं रुचिवर्धक होता है, गोमूत्र और गोमय अनेक रोगोंके जन्तुओंकी शक्तिका समूल नाशक है। जहाँ गोशाला होती है, वहाँकी हवा कीटाणुरहित शुद्ध होती है। वह स्थान देवमन्दिर-जैसा है। वैदिक यज्ञ-यागमें, देवपूजनमें, पञ्चामृत एवं पंचगव्यका उपायोग अवश्य किया जाता है। धर्मग्रन्थोंमें स्पष्ट निर्देश है कि- गौको दु:ख मत दो। गौको भूखी-प्यासी मत रखो। गौको लकड़ीसे, पत्थरसे, लातसे- किसी भी प्रकारसे ताडित मत करो। उसे प्रसन्न रखनेपर लक्ष्मीदेवी, सरस्वतीदेवी, महाकालीदेवी एवं सभी देव-देवियोंकी प्रसन्नता प्राप्त होती है। गोमांसाहारी व्यक्ति साक्षात् राक्षस है, मांसाहारी व्यक्ति जंगल कब्रिस्तान है।

गौ देवी सम्पदाकी प्रथम निधि है। यह व्यक्तिको स्वावलम्बन प्रदान करती है। व्यक्तिके पास प्रकृति-प्रदत्त शरीर तो है ही और भूमिपर वह जन्म लेता है, अत: व्यक्ति अपने शरीर तथा थोड़ी-सी भूमिके साथ बस देवविग्रह स्वरूप एक गौ रख ले तो फिर उसे अपने जीवनयापन र्साक जीवनयापन-हेतु किसी अन्य सहारेकी आवश्यकता नहीं है। वह अपना सम्पूर्ण जीवन आरामसे परमधर्म परोपकार करते हुए भवबन्धनसे मुक्त रहकर मुक्तिभाक् हो जाता है अर्थात् पूर्णत्व प्राप्त कर लेता है।

गौका गोरस-दूध, दही, मट्ठा, घी, मलाई आदि अनेक पदार्थोंके रूपमें तथा विविध रसोंसे व्यक्तिकी क्षुधा शान्त कर सकता है। गोमूत्र उसे आधि-व्याधिसे दूर रख सकता है। गोबर उसे शुचिताके साथ-साथ अग्नि तथा भोज्य पदार्थके पाचनका साधन, उसकी भूमिको उर्वराशक्ति प्रदान कर सकता है और उसकी संततियाँ उसके लिये तमाम आवश्यक वस्तुएँ सुलभ करानेमें निरन्तरता प्रदान करनेके साथ-साथ उसके लिये आवश्यक होनेपर वाहनकी व्यवस्था भी प्रदान कर सकती हैं। इस प्रकार गौ सर्वार्थसिद्धिका एक सम्पूर्ण साधन तथा भारतीय संस्कृतिका मूलाधार है, भारतीय दर्शनका आध्यात्मिक मूल है। गाय रखने तथा उसकी सेवामात्रसे ही परोपकारकी साधना स्वयमेव सिद्ध हो जाती है। गोमाता व्यक्तिको अपरिग्रही और परोपकारी बना देती है।

जीवके इतने महान् पुरुषार्थकी साधिका होनेके बाद भी गौका स्वरूप स्वयंमें कितना शान्त, कितना निश्चिन्त, कितना सौम्य तथा कितना प्रसन्न होता है कि उसे देखकर ही व्यक्तिका चित्त शान्त और प्रफुल्लित हो उठता है। गौओंकी स्वाभाविक चालमें एक अजीब-सा मोहक गाम्भीर्य होता है जो कि हमें बिना आतुर हुए अपने कार्योंको पूर्ण करनेकी प्रेरणा प्रदान करता है।

गौ और पृथ्वी एक-दूसरेके पूरक हैं। पृथ्वी जीवोंका आधार है और गौ जीवोंका जीवनाधार है। इस प्रकार गौ और पृथ्वीका तादात्म्य है। गौके गोबर तथा मूत्र पृथ्वीकी उर्वराशक्तिकी अभिवृद्धि करते हैं और यह अभिवृद्धि भी स्वाभाविक होती है। इसमें स्थायित्व एवं निरन्तरता होती है। अत: यह पृथ्वीको अत्यन्त प्रिय होता है। पुराणों तथा शास्त्रोंमें गौको पृथ्वीका जीवन्त रूप माना गया है।

गौकी प्रकृति, उसके द्वारा प्राप्त नैसर्गिक एवं स्वाभाविक स्वावलम्बन, उसका पृथ्वीके साथ तादात्म्य तथा उसके सौम्यादि गुणोंके खान होनेके कारण ही भारतीय मनीषा, समाज एवं संस्कृतिमें गौका इतना महत्त्व है और इसे सभी दृष्टिसे संरक्षणीय तथा अघ्न्य माना गया है।

विज्ञानकी चरमोत्कर्षकी अवस्थामें भी व्यक्ति निजमें अत्यन्त अपूर्ण होता है, किंतु गौका सांनिध्य हमें बरबस पूर्णता प्रदान करता है जो कि सामाजिक दर्शनकी मूलभूत अवधारणा है। व्यष्टिसे समष्टि बनती है, अत: व्यष्टिकी आवश्यकतासे समष्टिकी आवश्यकताएँ भिन्न नहीं होतीं। मात्र गौकी संख्याकी वृद्धि समष्टिकी आवश्यकताएँ पूरी करेगी, यह तो सामान्य अमशास्त्रकी बात है।

गो सब जगकी माता है यह निश्चय है। गो सर्व-विभव-दात्री है, परम सदय है।।
गो-भक्ति पतितको भी पावन कर देती। गो-सेव करती पाप-ताप सब क्षय है।।१।।
गो-पावन-तनमें देव सभी रहते हैं। ऐसा सब वेद-पुराण ग्रन्थ कहते हैं।।
माँके समान करते न समादर गोका। वे मूढ दुखोंकी ज्वालामें दहते हैं।।२।।
गो घास-फूस तृण-पात स्वयं चरती है। पर दुग्ध अमृत-सा वह प्रदान करती है।।
गो प्राणिमात्रका करती पालन-पोषण। गो निर्बलोंको कर सबल रोग हरती है।।३।।
गो है जिस घरमें, है आराम वहाँपर। गो है जिस घरें, है सुरधाम वहाँपर।।
गो है जिस घरमें, श्री-सुख-शान्ति वहाँ है। गो है जिस घरमें, है बस राम वहाँपर।।४।।
गोकी सेवासे सुप्त भाग्य जग जाते। गो-सेवासे सब दैन्य-दु:ख भग जाते।।
गोकी सेवासे दनुज देव बन जाता। गो-सेवासे धन-धान्य ढेर लग जाते।।५।।
था समय, मान पाती थी गो भारतमें। घर-घर पूजी जाती थी गो भारतमें।।
गो-सेवक थे सब भारतके नर-नारी। सुख-बादल बन बरसी थी गो भारतमें।।६।।
गो-वध-कारण गिर रहा, देश दिन-दिन है। गो-वध-कारण बढ़ रहा क्लेश दिन-दिन है।।
हम दीन-हीन, बल-क्षीण हुए जाते हैं। गो-वध-कारण घट रहा शेष दिन-दिन है।।७।।
गो-वधिक नहीं कुछ भी विचार करते हैं। भारी पातकसे तनिक नहीं डरते हैं।।
कितना जघन्य अपराध कि जिससे पलते। उसके गलपर ही हाय छुरी धरते हैं।।८।।
गो-सेवाका फिर भाव जगे जन-मनमें। गो-प्रेम प्रकट हो फिर मानव-जीवनमें।।
गो-रक्षा-हित तन मन धन भेंट चढ़ा कर। सब जुट जायें दृढ़तासे गो-पालनमें।।९।।

फिर तनिक कष्टका नाम न रहने पाये। फिर नहीं किसीको भी दुख-दैन्य सताये।।
सच कहता हूँ, उपहास न इसे समझना। यह पिछड़ा भारत फिर ऊँचा उठ जाये।।१०।।

गाय एक उदार प्राणी है, वह हमारी सेवा और प्रेमको पहचानती है तथा हमें अधिक-से-अधिक लाभ देनेके लिये तैयार रहती है, इसलिये हमें उसकी सेवा करनी है। सेवासे दो बातें गृहीत हैं- एक तो हम बिना उपयोगके किसीकी सेवा नहीं कर सकते और दूसरे सेवा किये बिना हम उपयोग लेंगे तो वह अपराध होगा और हमें वह अपराध हरगिज नहीं करना है।

गोमूत्र अद्वितीय खादके रूपमें सिद्ध हुआ है, गोमूत्र अमोघ औषध है एवं आणविक शक्तिके निर्माणमें सहायक हो ऐसा शोध चल रहा है।

जिस समाजमें कृतज्ञताकी जगह कृतघ्नता की भावना बढ़ती है, वह समाज कभी शान्तिसे नहीं रह सकता। गोरक्षा मानवताके रक्षणकी बुनियाद है। गायका दूध स्वास्थ्यके लिये सर्वोत्तम है यह निर्विवाद सत्य है। डॉक्टर-वैद्य बीमारोंके लिये गोदुग्धका सेवन ही हितकर बताते हैं। बच्चों, स्त्रियों और बूढ़ोंके लिये तो गोदुग्ध अमृत है।

सनातन भारतने इस माताके उपकारोंको स्मरण करके इसे परिवारमें स्थान दिया, अवध्य माना और अपने भोजनसे पहले गोमाताके लिये गोग्रास निकालनेका धर्म प्रचारित किया।

गो-सेवक एवं गोभक्त जन आज भी परलोक-साधनके लिये प्रतिदिन नियमित रूपसे दोनों समय (सुबह एवं शाम) गोग्रास देनेके उपरान्त ही भोजन ग्रहण करते हैं। गोग्रासका फल यह होता है कि मरणोपरान्त जीवको दूसरे लोकमें जाते समय मार्गमें यमदूतोंद्वारा होनेवाले आक्रमणसे गायें जीवोंकी रक्षा करती हैं, इसलिये गायोंको गोग्रास देना चाहिये। प्रातःकाल उठकर गौ माताको प्रणाम करना चाहिये। इससे अन्नपूर्णा भगवती प्रसन्न होती हैं तथा धन-धान्य-सम्पदा प्राप्त होती है। गोग्रास देनेसे गृहस्थाश्रमी जन आन्तरिक सुखका अनुभव करते हैं। पवित्रतासे बनाया हुआ भोजन गोग्रासके लिये उत्तम होता है।

गायके दूधमें जो पोषक तत्त्व पाये जाते हैं, वे किसी अन्य (भैंस या बकरी) के दूधमें सुलभ नहीं होते। माँके दूधके पश्चात् गो-दुग्धका ही स्थान है। आयुर्वेदमें गो-दुग्ध, गो-दधि एवं गो-नवनीतको बालक, युवा, वृद्ध तथा रोगी-सभीके लिये कल्याणकारी और अमृतके सदृश उपयोगी कहा गया है। गाय हमारे देशकी एक अमूल्य सम्पत्ति है। गाय हमारे दुग्ध-जगत्की देवी है। वह भूखोंको खिलाती है, नग्नोंको पहनाती है एवं मरीजोंको उत्तम स्वास्थ्य प्रदान करती है। उसकी ज्योति चिरन्तन है। हिंदू, मुस्लिम, सिख, ईसाई, जैन, बौद्ध आदि किसीने भी गो-वधका समर्थन नहीं किया। प्रत्येक दृष्टिसे गो-वधपर शत-प्रतिशत नियन्त्रण अनिवार्य है। गो-वधसे भारतीय सभ्यता एवं संस्कृतिकी छवि धूमिल होती है।

अस्तु, भारतवर्षके उज्ज्वल भविष्यका पुनर्निर्माण गो-सेवा, गोवंशकी रक्षा एवं गोमाताके आशीर्वादपर ही आधारित है। भारतीय संस्कृतिका मूलाधार वास्तवमें गौ माता ही है। गौको सर्वदेवमयी बतलाया गया है। अथर्ववेदमें उसे रुद्रोंकी माता, वसुओंकी दुहिता, आदित्योंकी स्वसा और अमृतकी नाभि-संज्ञासे विभूषित किया गया है। सम्पूर्ण देवी-देवताओंकी आराधना केवल गौ माताकी सेवासे ही हो जाती है।

गोसेवा भगवत्प्राप्तिके अन्यतम साधनोंमेसे एक है। इससे भगवान शीघ्र प्रसन्न हो जाते हैं। यह बड़ी ही विचित्र बात है कि भगवान जहाँ मनुष्योंके इष्टदेव हैं, वहीं गौ उनकी भी इष्टदेवी है। अतएव गोसेवासे लौकिक लाभ तो मिलते ही हैं, पारलौकिक लाभकी प्राप्ति भी हो जाती है।

गायें समस्त पापोंका विनाश करती हैं। जिस घरमें गाय नहीं है, जहाँ वेद-ध्वनि नहीं होती और जो बालकोंसे भरा-पूरा न हो, वह घर-घर नहीं है, अपितु श्मशान है। प्रातःकाल और यात्रा-समय गोदर्शनसे पुण्य और सफलता मिलती है। गौ

मनुष्योंको सौभाग्य प्रदान करती है। दानमें दिये जानेपर वह अक्षय स्वर्गलोकको प्राप्त कराती है तथा ठीक प्रकारसे पालन-पोषण किये जानेपर अपार धन-सम्पत्ति प्रदान करती है; अत: गायोंसे बढ़कर और कोई दूसरा धन नहीं है।

जो भी व्यक्ति गायकी सेवा-शुश्रूषा करता है, वह सभी पापोंसे छुटकारा पा जाता है।

गोसेवासे ही अहिंसा-धर्मको सिद्ध कर भगवान महावीर एवं गौतम बुद्धने अपने महान् धर्मोंको सम्पूर्ण विश्वमें फैलाया था। गौएँ वेद एवं शुद्ध ज्ञान-विज्ञानकी जननी हैं और पवित्रताओंकी मूल स्रोत तथा सीमा हैं। गायकी श्वास-वायुसे घर पवित्र होता है, गायके स्पर्शसे पाप दूर होते हैं। अत: गोसेवामें सबका हित और कल्याण निहित है।

भारतीय जीवनमें गोमहिमा इतने भीतरतक समा गयी है कि वेदोंके सारभाग उपनिषदोंको हम गौकी संज्ञा देते हैं; स्मृतियोंको हम गौका दूध मानते हैं और पुराणों तथा काव्यग्रन्थोंको हम गोघृत-जैसा तुष्टि, पुष्टि और सर्वतोमुखी इष्ट-अभीष्टकी सिद्धिका हेतु मानते हैं।

भक्तिके क्षेत्रमें भगवान्‌को गौ, गोप और गोपियाँ सर्वाधिक प्रिय हैं। हिंदू कहलानेका अधिकारी भी वही है, जिसकी श्रद्धा, निष्ठा, भक्ति-अनुरक्ति गोवंशके संरक्षण, संवर्धन और गोसेवामें है।

भारतवर्ष एक धर्मपरायण आध्यात्मिक देश है, जहाँ मानव के जन्मसे लेकर मृत्युपर्यंत समस्त क्रिया-कलापोंके मूलमें ऐहिक तथा आमुष्कि कल्याण-प्राप्तिकी अभिलाषा निहित रहती है, साथ ही यहाँके जनमानसका विश्वास है कि प्रत्येक वर्ण और समुदायके नर-नारियोंको धर्म, अर्थ, काम तथा मोक्ष-रूप पुरुषार्थचतुष्टयको सहज ही प्राप्त करा देनेवाली होनेसे गोसेवाका माहात्म्य सर्वश्रेष्ठ और सर्वोपरि है। भारतीय धर्मशास्त्रोंके पन्ने-पन्ने और पंक्ति-पंक्तिपर भगवत्सेवा, पूजा-उपासना, व्रत-उपवास, त्याग-तपस्या, दान-दया, सत्य-अहिंसा, सेवा-संयम, तीर्थ-दर्शन और गंगा-स्नान आदिके करने-करानेका माहात्म्य उल्लिखित है और यह भी वर्णित है कि उक्त समस्त कल्याणमूलक क्रिया-कलापोंके अनुष्ठानसे जो-जो पुण्य प्राप्त होता है, वह सब पुण्य केवल गोसेवा करनेसे सहज ही उपलब्ध हो जाता है।

गाय हमारे लिये एक मित्रके रूपमें है, जिससे कभी कोई अपराध नहीं हुआ है और उसकी कृतज्ञता में कभी कोई कमी नहीं आयी है। वह हमारी पाई-पाई चुका देती है और हमारी रक्षा करती है। गाय मानवको सभी प्रकारके मनोऽभिलषित भोग और ऐश्वर्य प्रदान करनेवाली है।

विषाणूजन्य अनेक संक्रामक रोग गायोंद्वारा स्पर्श की हुई वायुके लगनेसे अनायास ही नष्ट हो जाते हैं। आयुर्वेदमें बतलाया गया है कि गोमूत्रका सेवन करनेसे समस्त प्रकारके रक्तदोष, उदर-रोग, नेत्ररोग और कर्णरोग नष्ट हो जाते हैं। गोमय सारी अपावनता, दुर्गन्ध एवं विषाक्त कीटाणुओंको नष्ट कर देता है। गोदुग्ध एवं गोघृतका सेवन शरीरको न केवल रसायनवत् बलकारक एवं पुष्टि-प्रदायक है, बल्कि मानवको विशुद्ध बुद्धि एवं मेधासे संयुक्तकर प्रज्ञावान् बना देता है। उसमें शुद्ध सत्त्वका प्रादुर्भाव हो जाता है। धर्मशास्त्रोंमें उल्लेख मिलता है कि पञ्चगव्यका सेवन करनेसे मानवकी समस्त पापराशिका क्षय उसी प्रकार हो जाता है, जैसे प्रज्वलित अग्निसे ईंधन भस्म हो जाता है।

साक्षात् परब्रह्म परमात्माकी भी सहज ही प्राप्ति करा देती है। प्रत्येक प्राणी के परम प्राप्तव्य, परमाराध्य और परम इष्टदेव तो एकमात्र अनन्त कोटि ब्रह्माण्ड-नायक परब्रह्म परमेश्वर ही हैं, परंतु यह कितने रहस्यकी बात है कि उन्हीं आनन्दकन्द सच्चिदानन्द परमात्माकी आराध्या, सेव्या और पूजनीया गोमाता है। गोमाताका सेवक कभी दु:खी एवं दरिद्री नहीं होता। भगवती विष्णुप्रिया लक्ष्मीजी उस स्थानपर स्वाभाविक रूपसे उपस्थित रहती हैं, जहाँपर गोवशंको सदा सम्मान मिलता है। धन-सम्पत्ति, संतति-सुख, स्वास्थ्य एवं सद्गुण बिना प्रयासके गोभक्तके साथ रहते हैं। गोपालनव्रत स्वार्थ नहीं वरन्

परमार्थ है। गोमाता मन-वचन एवं कर्मसे सम्माननीय, पूजनीय एवं आदरणीय हैं। इन्हें अपमानित करनेका अर्थ होता है देवताओंका कोपभाजन बनना। इनके प्रति अपशब्द कहना और सुनना भी नहीं चाहिये। गोमाताका छोटा-सा अपराध भी वंश-विनाशकी शक्ति रखता है। गौओंको हाँकते-जोतते पीडित नहीं करना चाहिये। यदि वे भूखी-प्यासी होकर देखती हैं तो उत्पीडकके सम्पूर्ण वंशको नष्ट कर देती हैं।

जो गोमाता पञ्चगव्यसे पाप-ताप हरती, यागादिकोंमें दानके द्वारा दानीके यज्ञ-दोष हरती एवं अन्तिम अवस्थामें वैतरणीसे उद्धार करती है, ऐसी माताकी तथा उसके सेवाकी यशोगाथाका कोई गान नहीं कर सकता।

आज विश्वके समस्त राजनीतिज्ञ धर्मके वास्तविक स्वरूपको न समझकर दिशाविहीन, किंकर्तव्यविमूढ़, हतप्रभ एवं ज्ञानबुद्धिसे शून्य होकर देश-प्रदेशकी जनभावनाओंके साथ जनताका और अपना भी अहित ही कर रहे हैं। नि:संदेह इसमें विश्वरूप-धर्म और विश्वधारिणी गौ माताकी उपेक्षाके साथ-साथ अनीश्वरवादिता एवं देवता आदिके प्रति अश्रद्धाका भाव ही प्रधान कारण है। समस्त शुभ कर्मोंका फल षड्वर्ग-संयम, मन, बुद्धि एवं आत्माकी परिशुद्धि तथा नित्य पराशान्तिकी प्राप्ति ही कही गयी है और वह गोसेवासे शीघ्र एवं अनायास ही प्राप्त हो जाती है।

गौएँ वेद एवं शुद्ध ज्ञान-विज्ञानकी जननी हैं और पवित्रताओंकी मूल स्रोत तथा सीमा हैं। गायका गोबर और दूध भी बहुत गुणकारी है। गायका गोबर शुद्ध, रोगाणुनाशक, औषधिगुणसम्पन्न है। खाद तथा जैविक गैस और दूषित परमाणुओंके प्रभावको रोकनेके लिये इसका प्रयोग किया जा सकता है। इसी प्रकार गायका मूत्र धार्मिक अनुष्ठानोंमें तो काम आता ही है, उसका औषधिकी दृष्टिसे महत्त्व भी बहुत है। वह रोगाणुनाशक एवं कीटनियन्त्रक है। गायके दूध, दही, घी, मूत्र और गोबरके रसके मिश्रणको आजकी भाषामें स्वास्थ्यप्रद टॉनिक कहते हैं। धार्मिक कार्योंमें यही पञ्चगव्य की संज्ञासे अभिहित होता है। इन्हीं गुणोंके कारण महात्मा गाँधीने गायके सम्बन्धमें कहा था- मैं गायको सम्पन्नता और सौभाग्यकी जननी मानता हूँ।

दुनियाके अन्य राष्ट्रोंमें जो धार्मिक दृष्टिसे गौको माँ नहीं कहते, वहाँ गायोंकी संख्या बहुत है। जैसे अर्जेनटाइनामें १००० के पीछे २०८९ गाय और बैल होते हैं, ऑस्ट्रेलियामें यह संख्या ३६५, कोलम्बियामें ९१९ और ब्राजीलमें ७२८ है।

भारतमें अनुमानत: २५०० गोशालाएँ हैं। इनकी स्थापना तो अहिंसा, करुणा, जीवदया और सेवाकी भावनासे ही हुई है। इसलिये हमारा कर्त्तव्य है कि उनका संचालन भी नैतिक भावनासे हो। हम यह देखें कि गोशालाएँ और गोसदन निष्काम सेवा, अध्ययन और प्रशिक्षणके केन्द्र भी बनें।

सागर मन्थनसे सर्वप्रथम पाँच गौएँ प्रादुर्भूत हुईं। क्षीरसागरसे प्राप्त नन्दा, सुभद्रा, सुरभि, सुशीला तथा बहुला नामक इन गौओंको लोकमाता कहकर देवताओंद्वारा पाँच महर्षियों-जमदग्नि, भरद्वाज, वसिष्ठ, असित तथा गौतमको इसीलिये प्रदान कर दिया गया कि ब्राह्मण और गौ एक ही कुलके दो भाग हैं। अत: गौएँ महाभाग महर्षियोंको दी गयीं।

देव-तृप्ति तथा लोक-पालनके लिये आविर्भूत गौ माताके सींगोंके अग्रभागमें समस्त तीर्थों, मध्यमें सभी कारणोंके कारण-स्वरूप देवाधिदेव भगवान सदाशिव तथा सींगोंकी जड़में ब्रह्मा-विष्णुका निवास है। गोमाताके नेत्रोंमें प्रकाशस्वरूप भगवान सूर्य, ज्योत्स्नाके अधिष्ठाता देव चन्द्रमाका निवास है और चारों चरणोंमें सत्य-अहिंसा-दया तथा शान्तिरूप चतुष्पाद धर्मदेवताका अधिष्ठान है। वृषभ ही साक्षात् गोरूपधारी धर्म है।

इतिहास साक्षी है कि जबतक गोवंशका विकास, संवर्धन तथा उसकी पूजा होती रही, तबतक हम आर्थिक तथा आध्यात्मिक दृष्टिसे विकासके सर्वोच्च शिखरपर आरूढ़ रहे।

गोवंशके प्रतापसे ही भारतकी भूमि सोना उगलती थी तथा विश्वमें सोनेकी चिड़िया कहलानेका इसे ही गौरव प्राप्त था।

वैदिक धर्म तथा भारतीय सांस्कृतिक चार आधारशिलाएँ गौ, गंगा, गीता एवं गायत्रीमें भी गौका स्थान हर प्रकारसे सर्वोच्च माना गया है। यह कहनेमें कोई अतिशयोक्ति नहीं होगी कि गोवंश हमारी अमूल्य धरोहर है, जिसके विकासपर हमारा विकास भी आधारित है।

देशमें जितना दूध पैदा होता है उसमें ४४ प्रतिशत गायोंसे मिलता है। दुग्ध-उत्पादनमें भारतीय गाय अभी बहुत प्रगति करनेकी क्षमता रखती है। भारतीय कृषिमें गौका योगदान सदा रहेगा। गौ-सेवा हमारी संस्कृति और सभ्यताने हमें सिखायी है, इसका एक ठोस आधार है। यदि देशकी कृषिका सर्वांगीण विकास करना है तो दुग्ध-उत्पादन बढ़ाना होगा। वर्तमानकी १८५ ग्राम दुग्ध प्रतिव्यक्ति प्रतिदिनकी मात्राको बढ़ाकर लगभग २२० ग्राम करना होगा जो कि संतुलित आहार और पोषणके लिये आवश्यक है। गौ-दुग्ध-पान प्रत्येक भारतीयकी विशेषतया हमारे किसानकी आवश्यक खुराक है। यदि प्रत्येक नागरिकको स्वस्थ रखना है और खुशहाल रखना है तो गौ-संवर्धन करना होगा।

किसी भी प्रकारका गोवंश- बूढ़ा, अपंग, अनुत्पादक, लूला, लँगड़ा और अंधा देश और पालकपर भार-स्वरूप नहीं है। उसे अनुपयोगी कहना ठीक नहीं हैं। गोबरकी खाद धरतीका प्राकृतिक आहार है, इससे धरतीकी उर्वराशक्ति बनी रहती है।

किसी भी प्रकारका निकम्मा कहा जानेवाला गोवंश सिर्फ अपने गोबरसे अपने पालकको जो कुछ वह खाता है, उससे अधिक आय दे देता है, यदि उसके गोबरका, गोमूत्रका, समुचित उपयोग किया जाय। किसी भी गोवशंको निकम्मा, अनुपयोगी मानकर उसको मारना अथवा मारनेकी अनुमति देना, देशकी आर्थिक व्यवस्थाके लिये कितना हानिकारक है, यह प्रमाणित हो जाता है।

गायके गोबरमें कितनी विलक्षण शक्ति है, इसका अनुसंधान रूस में करके अनुभव किया गया है। गायके गोबरका लेप मकानोंके बाहर दीवालों और छतोंपर कर देनेसे बाहरसे रेडियेशनकी किरणें मकानमें प्रवेश नहीं कर सकतीं।

गोमूत्र खेतीके लिये बहुत उपयोगी होता है, उसमें धरतीको बिना किसी प्रकारके हानि पहुँचाये बहुत अच्छी कीटाणुनाशक शक्ति होती है। गोमूत्रका उपयोग मानवती कई बीमारियोंमें औषधके रूपमें और पेटमें कृमि-नाशके लिये किया जाता है। गोमूत्रकी उपयोगिता, यह अनुसंधानका एक अच्छा विषय है।

गाँवके लोगोंको बिना धुएँका स्वच्छ ईंधन मिलता, जिसके कारण उनकी आँखोंमें बीमारियाँ उत्पन्न होती हैं, आँख कमजोर हो जाती है, उससे छुटकारा मिलता। गोबरकी कोई लागत नहीं आती, गैससे निकला हुआ गोबर खेतीके लिये ज्यादा प्रभावशाली होता है, क्योंकि उसमेंसे गैस निकल जानेसे धरतीकी उर्वराशक्ति बढ़ानेमें वह ज्यादा समर्थ हो जाता है। ऐसे पशु की अनुपयोगी समझकर हत्या करना अज्ञानता है।

पर्यावरणको स्वच्छ और संतुलित रखनेके लिये प्रकृतिका अपना नियम होता है, उसमें छेड़-छाड़ करनेसे उसके दुष्परिणाम होते ही हैं, इसी प्रकार कई प्रकारके सरकारके हिंसात्मक परीक्षण विदेशी मुद्रा कमानेके लोभमें बुरी तरह असफल हुए हैं, देशको और जनताको बहुत बड़ी आर्थिक हानि उठानी पड़ी है।

सर्वशक्तिमान जगदीश्वरने इस सृष्टिमें जो पदार्थ बनाये हैं, वे निष्प्रयोजन नहीं, किंतु एक-एक वस्तु अनेक-अनेक प्रयोजनोंके लिये रची है। इसलिये उनसे वे ही प्रयोजन लेना न्याय है अन्यथा अन्याय। पक्षपात छोड़कर गाय आदि पशु और कृषि आदि कर्मोंसे सब संसारको असंख्य सुख होते हैं। विदेशी शासनके दौरान भी गोवंशके सहारे ही इस देशका गरीब कृषक जीवित रहा है।

गायके गोबरसे घरोंको लीपने-पोतनेसे रोगाणु नष्ट होते हैं तथा वातावरण स्वच्छ एवं स्वास्थ्यप्रद रहता है, आजके

विज्ञान ने इस तथ्यको स्वीकार कर लिया है। आयुर्वेद-चिकित्सा-शास्त्रमें गोमूत्रको रोगनाशक माना गया है तथा गोमूत्रका उपयोग अनेक आयुर्वेदिक औषधियों-जैसे संजीवनी-वटी आदिमें किया जाता है।

आजके युगमें आम आदमी मानसिक रूपसे तनावग्रस्त है, लोग मानसिक श्रम की तुलनामें शारीरिक श्रमसे बचनेकी कोशिश करते हैं, इसीका परिणाम है कि हृदयरोग भीषण रूपसे घर-घरमें फैला हुआ है, लेकिन ऐसे लोगोंके लिये गायका दूध तथा घी बहुत उपयोगी है, क्योंकि गायके दूधमें विटामिन ए प्रचुर मात्रामें होता है। इसमें चर्बीकी मात्रा कम होती है। गायका दूध माताके दूधके बाद पूर्णतया सुपाच्य और परिपूर्ण भोजन है। गायके दूधमें अन्य खनिज, विटामिन आदि भी प्रचुर मात्रामें होते हैं, जो भोजनके लिये जरूरी माने जाते हैं। कोई मनुष्य चाहे तो जीवनभर गायके दूधपर निर्भर रहकर अपने-आपको स्वस्थ रख सकता है। इसी प्रकार गायका दूध-दही आदि तथा उससे बने पदार्थ अन्य पशुओंके दूध आदिकी तुलनामें अधिक स्वादिष्ट एवं स्वास्थ्यवर्धक होते हैं।

आज बढ़ती हुई जनसंख्या एवं औद्योगीकरणके प्रसारके परिणाम-स्वरूप दिन-प्रति-दिन ऊर्जाका संकट गहराता जा रहा है। लेकिन गायके गोबरसे खाद ही नहीं गैस-प्लांटमें ऊर्जाका उत्पादन भी सस्ता, सुलभ तथा दैनिक जीवन के लिये उपयोगी है, गैस-प्लांटमें उपयोग किये गये गोबरकी उर्वरा-शक्ति बढ़ जाती है। लेकिन यह गोवंशकी वृद्धिसे ही सम्भव है। गोबर-गैस-प्लांटका प्रसार होनेसे ही ईंधनके लिये वनोंकी कटाईपर नियन्त्रण होने तथा पर्यावरण-संरक्षणकी सम्भावनाएँ हैं। देशमें बिजलीकी कमी है और बड़े-बड़े विद्युत-उत्पादन-केन्द्रोंकी स्थापनाके पश्चात् भी यह कमी प्रतिवर्ष बनी रहती है। अधिकाधिक गोबर-गैस-प्लांटकी स्थापनासे विद्युतकी कमीकी पूर्ति आसानी तथा सस्तेमें की जा सकती है।

प्राकृतिक संतुलन और पर्यावरणीय संरक्षणकी दृष्टिसे हमारे अस्तित्वको बनाये रखनेके लिये भी जीवनमें गायका अत्यन्त महत्त्वपूर्ण स्थान है। अनुपयोगी गोवंश प्रत्यक्ष ही नहीं अप्रत्यक्ष-रूपमें लाभ भी पहुँचाता है। गोवंशकी रक्षा करना न केवल धार्मिक दृष्टिसे अपितु आर्थिक दृष्टिसे भी सर्वथा उचित है।

भारत अवनी अन्न बहुत-सा है उपजाती। इसीलिये है कनक-प्रसविनी मानी जाती।
इसी अन्नसे तीस कोटि मानव पलते हैं। दीन तम-भरे सदन मध्य दीपक बलते हैं।
गोसुत-गात-विभूतिसे अन्नराशि उद्भूत है। भारतीय गौरव सकल गो-गौरव-संभूत है॥

गाय वस्तुत: अमूल्य है। उसकी तुलना किसीसे नहीं की जा सकती। परम पिताको प्राप्त करानेमें गुरु, गाय, गङ्गा, गीता एवं गायत्री- ये पांच परम सहायक हैं। गाय स्वभावसे सात्त्विक, सौम्य एवं संतोष करनेवाली होती है। वह सात्त्विक बल, ओज एवं स्फूर्तिसे परिपूर्ण होती है। गाय स्वभावसे धीर एवं गम्भीर है। उसका गुण तथा स्वभाव सात्त्विक है। उसके रोम-रोमसे सात्त्विक विकिरण होता है। उसके प्रभाव-क्षेत्रमें आनेसे मनुष्यकी चित्तवृत्ति शान्त होती है। सात्त्विक मन और बुद्धिसे ही परमात्माकी प्राप्ति की जा सकती है। गाय घास, भूसा, छिलका, चूनी, चोकर तथा खली आदि ऐसी सामान्य वस्तुएँ ग्रहण करती है जो मनुष्यके ग्रहण करनेके योग्य नहीं है और कम मूल्यवान होती हैं, किंतु बदलेमें अमृत-जैसा दूध, सहोदर-जैसे बैल, अत्यन्त उपयोगी और औषधिरूप गोमय तथा गोमूत्र देती है।

गायके गुण और स्वभावके अनुरूप उसका दूध भी शरीरको स्फूर्ति, तेज एवं सात्त्विक बलसे परिपूर्ण करनेवाला, बुद्धिको कुशाग्र एवं सात्त्विक बनानेवाला तथा हमारे जन-जीवनके आरोग्यका आधार है। परमात्मतत्त्वको प्राप्त करनेकी साधना सात्त्विक मन-बुद्धिसे ही हो सकती है। गायका दूध, दही, मक्खन, घी तथा छाछ- ये सभी मन और बुद्धिको सात्त्विक बनानेवाले हैं। गायके दूधका कोई विकल्प नहीं है। यह एक दिव्य पदार्थ है। गाय जिस परिवार में रहती है, उस परिवारसे

अत्यन्त प्रेम करती है। परिवारके प्रत्येक सुख-दु:खका अनुभव करती है।

प्रेम, दया, करुणा, सहनशीलता- जैसे दिव्य गुणोंकी अधिष्ठात्री गौ माता ठीक माँकी तरह है। वह स्वभावसे अति कोमल है। उसकी रक्षा करनेका दायित्व शासन एवं समाज का है। जो व्यक्ति उसकी रक्षा करता है, उसके उपकारको वह कभी भूलती नहीं। जब कभी रक्षा करनेवालेके प्राण संकटमें होते हैं, वह अपने सूक्ष्म और दिव्य शरीरसे उसके पास उपस्थित होकर उसकी रक्षा करती है।

आयुर्वेद अनेक रोगोंमें गोमूत्रको औषधके रूपमें प्रयोग करनेका विधान करता है। जिगर, पीलिया, रक्तचाप, मधुमेहमें यह विशेष उपयोगी है। कुछ लोग गोमूत्र-मिश्रित गोलियाँ बनाकर अनेक रोगोंमें उसका सेवन करते हैं।

भारतमें जो करीब १९ करोड़ गोवंश है वह निकम्मा और देशके ऊपर भाररूप है। इस तथ्यसे इनकार नहीं किया जा सकता कि इन पशुओंकी दूध देनेकी और भार ढोनेकी क्षमता विश्वमें सबके कम है। शताब्दियोंके उपेक्षापूर्ण व्यवहारके कारण भारतीय गोवंश इस स्थितिको पहुँचा है। लेकिन वैज्ञानिक अनुसंधानोंसे पता चलता है कि भारतीय गोवंशमें उत्पादनकी क्षमता है और समुचित सेवा-शुश्रूषासे इसे बढ़ाया जा सकता है। वर्तमान हीन अवस्थामें भी गोवंशका हमारी आर्थिक समृद्धिमें उल्लेखनीय योगदान है। जो गाय-बैल जीवनभर हमारी सेवा करते हैं और देशको अपने श्रम तथा तपश्चर्यासे समृद्ध बनाते हैं, उन्हें अनुपयोगी हो जानेपर कसाइयोंके हाथ बेच देना कितना बड़ा अन्याय है।

मानवके अनेक रोगोंका गोमूत्रद्वारा शमन होता है। गोमूत्रमें जीवाणुओंका नाश करनेकी अद्भुत शक्ति है।

हमारे देशकी गरीबीको दूर करने और लाखों बेरोजगारोंको काम दिलानेकी दृष्टिसे भी गोपालनका भारी महत्त्व है। देशमें यदि गोवंशकी हत्या पूर्णतया बंद हो जाय तथा गोसंवर्धनका कार्यक्रम विधिवत् चलाया जाय तो नि:संदेह लाखों लोगोंको काम मिल सकेगा और गोपालनकी रुचि बढ़ेगी। गोदुग्ध सर्वश्रेष्ठ पौष्टिक आहार है। गोदुग्धमें सबसे अधिक विटामिन होते हैं। गोदुग्धके उपयोगसे मनुष्यका शरीर और मस्तिष्क दोनों बलवान बनते हैं। संसारके प्राय: सभी वैज्ञानिकोंने गोदुग्धको गुणकारी माना है और उसके उपयोगपर बल दिया है। हमें अपनी देशी गायोंकी ही नस्लको सुधारना चाहिये। उनसे हमें उत्तम दूध भी मिलता है और उनके बछड़े भी बढ़िया बैल होते हैं।

परमात्माने अपने ही अंश हम जीवधारियोंके लिये कई अमूल्य एवं जीवनोपयोगी वस्तुएँ दी हैं- जैसे- जल, वायु, मिट्टी, अग्नि तथा प्रकाश आदि। गायके माध्यमसे प्राप्त गोबर भी उन अमूल्य वस्तुओंमेंसे एक है।

गोबर मल नहीं है, मलशोधक है। सभी प्राणधारियोंके उच्छिष्टोंमेंसे गोबर ही एक ऐसा विशिष्ट पदार्थ है जो मल नहीं है, अपितु मलशोधक है। ऐश्वर्यकी देवी लक्ष्मीको पवित्रता पसंद है और गोबर शुचिताकारक है। गोबरके बिना भूमि पवित्र नहीं होती। भूमिको गोबरके लेपसे पवित्र करके ही देवी लक्ष्मीका आह्वान किया जाता है। गोबरसे पवित्र की गयी भूमिपर देवी लक्ष्मीका प्राकट्य होता है।

गोबरकी राखसे बर्तनोंकी सफाई- करोड़ों रुपयेकी बचत- भारतके गाँवों, कस्बों तथा शहरोंमें रहनेवाले करोड़ों लोग भी अपने बर्तनोंकी सफाई गोबरकी राखसे करते हैं। यदि यह सफाई किसी क्लीनिंग-पाउडरसे की जाय तो लाखों टन पाउडर लगेगा, जिसका मूल्य करोड़ों रुपये होगा। क्लीनिंग-पाउडरसे की गयी सफाईमें सफाई करनेवालेके हाथोंमें चर्मरोग होनेका अंदेशा रहता है। इसके अलावा थोड़ी मात्रामें जो पाउडर बर्तनोंमें लगा रह जाता है, वह मनुष्यके शरीरमें जाकर नुकसान पहुँचाता है, साथ ही इससे पवित्रता नहीं आती। गोबरकी राख बिना मूल्यके लोगोंको मिल जाती है और किसी प्रकारसे हानिकारक भी नहीं है। यह अत्यन्त पवित्र मानी जाती है।

जो गोबर सूख जाता है वह जलानेके काम आता है। कंड़ोंकी आग मंदी एवं प्रदूषणरहित होती है। उससे निकलनेवाला धुआँ हानिकारक नहीं होता, जबकि कोयलेका धुआँ प्रदूषणकारी होता है।

यदि हम गोबरकी उपयोगिताको समझ लें तो हमारे देशसे बीमारी, गरीबी तथा बेरोजगारी स्वयं समाप्त हो जायगी। आयुर्वेदमें तो अनेक मूल्यवान् भस्मों तथा औषधोंका निर्माण केवल गोबरके कंडोंकी मंदी एवं प्रदूषण-रहित आगसे ही किया जाता है। प्रसूतिका स्त्रियोंके शरीरकी सेकाई भी मंद-मंद प्रदूषण रहित गोबरके कंडोंकी आगसे ही की जाती है। किंतु दुर्भाग्य है कि आज गायके दूध तभा घीकी तरह गायका गोबर भी दुर्लभ होता जा रहा है। हमारा देश रासायनिक खाद और कीटनाशकोंके फेरमें जबसे पड़ा है, गरीब और कर्जदार होता जा रहा है।

भारत की गाय केवल दुधार पशु नहीं है अपितु यह लौकिक एवं पारलौकिक सारी कामनाएँ पूरी करनेवाली कामधेनु है। इससे लाखों परिवारोंका पालन-पोषण होता है।

अक्सर तो गाय और भैंस का दूध ही उपलब्ध होता है उसके गुण भी ज्यादातर लोगों को पता होते हैं। गाय, भैंस के दूध के अलावा अन्य पशुओं का दूध भी पीने योग्य होता है। उनके दूध में कई गुण होते हैं। गाय का दूध सर्वोत्तम गुणोंवाला होता है। इसके दूध की तुलना मां के दूध के साथ की जाती है। गाय का दूध आयुवर्द्धक होता है। यह पित्तनाशक होता है। गाय का दूध वीर्य वर्द्धक और पुष्टिकरण होता है। गाय का दूध बुद्धिवर्द्धक होता है।

हृदय रोगियों, दृष्टि संबंधी रोगियों के लिए गाय का दूध लाभदायक होता है। कब्ज दूर करता है। गाय का दूध बचपन का विकास करने, यौवन को बनाए रखने और बुढ़ापे को दूर रखने में उपयोगी होता है। गाय का घी भी कई प्रकार के विकारों को दूर करता है।

जिस आँगनमें गाय नहीं अपशकुन माना जाता, गोदान तो भारत-भूमिपर महादान कहलाता।।

भारत-जैसे कृषि-प्रधान देशके लिये गोवंश आर्थिक एवं सामाजिक व्यवस्थाका केन्द्र-बिन्दु रहा है और इसीलिये भारतको सोनेकी चिड़िया की संज्ञा दी गयी थी। जबसे गोवंशका ऱ्हास प्रारम्भ हुआ तबसे आर्थिक दशा बिगड़ने लगी और भारत विदेशी तथा अपने घरेलू ऋण-चक्रमें फँस गया है। अब भी हमारी बहुत-सी समस्याओंका समाधान गोवंशके उचित उपयोगसे सम्भव है।

कृषि-क्षेत्रमें बैल ही अन्नोत्पादनमें सहायता करता है और गाय अमृतके समान दूध देती है जो कि संसारकी समस्त भोज्य-सामग्रीमें एक करामाती चमत्कार है। मानवसमाज भी इन दो प्रमुख पशुओंका लालन-पालन पूरी सावधानी से करता है, जिससे कि वे सर्वत्र प्रसन्नतापूर्वक विचरण कर सकें।

गोबरसे तो वायोगैस भी निकाली जाती है, जो एक स्वच्छ एवं साफ ईंधन है। वायोगैस निकल जानेके बादका अवशेष पदार्थ तो सर्वश्रेष्ठ उर्वरक तथा धरतीको सँवारनेवाली वस्तु है।

जिसमें लेशमात्र भी हिंदुत्व है वह अपने देश ही नहीं, संसार भरकी गोमाता तथा गोवंशको पूजनीय, उपासनीय तथा रक्षणीय मानेगा, पर आजकलके युगमें जब धर्म भी आर्थिक तराजूपर तौला जा रहा है, गोभक्त भारतके नये विचारवाले इसका आर्थिक पहलू भी जानना चाहेंगे।

गोधन आज भी हमारे गाँव और गरीबका जीवनाधार है। यह ऊर्जा, रासायनिक उर्वरक, जहरीले कीटनाशक तथा पर्यावरण-प्रदूषणके विश्वव्यापी संकटसे मुक्ति दिलानेवाला अमोघ उपाय है और स्वावलम्बन, स्वदेशी और विकेन्द्रित अर्थव्यवस्थाकी कुंजी है। ग्रामोदय तथा सर्वोदयकी लक्ष्य-प्राप्ति एवं ग्राम-राज एवं राम-राजकी स्थापनाके स्वप्नको

साकार करनेवाली संजीवनी-शक्ति गोधन ही है।

गायके अर्थशास्त्र और समाजशास्त्र एवं ग्राम-आधारित विकेन्द्रित स्वरोजगार-मूलक स्वावलम्बी व्यवस्थापर महाविद्यालयों और विश्वविद्यालयोंमें अध्ययन, अध्यापन तथा शोध-अनुसंधानका समुचित प्रबन्ध करना चाहिये।

इस हेतु प्रान्तीय स्तरपर गो-रक्षण-संवर्धन-बोर्ड अथवा गो-ग्राम-विकास-परिषद या निगमका गठन अत्यावश्यक है। जिसमें सरकारी अधिकारियोंके साथ गोसेवा, विकास, शोध, अनुसंधान आदि कार्योंमें संलग्न स्वयंसेवी संस्थाओंके प्रतिनिधियों अथवा विशेषज्ञोंको प्रमुखतासे स्थान दिया जाय।

आजका शिक्षित समाज भले ही धार्मिक मान्यताओंको पूरी तरह स्वीकार न करे, परंतु उसके व्यावहारिक पक्षको तो उसे स्वीकार करना ही होगा। गाय न केवल जीवित अवस्थामें ही वरन् मरनेके बाद भी उसके हर अङ्ग उपयोगी हैं। चमड़ेसे जूते, सींगसे कई प्रकारके खिलौने, हड्डीसे खाद आदि कई उपयोगी चीजें बनती हैं। गोशालाएँ जितनी ही समृद्ध होंगी मनुष्य भी उतना ही पुष्ट होगा। गाय एवं गोशालासे मनुष्यकी पुष्टता जुड़ी है। भारतमें ८९% गाय एवं ६९% भैंसका उपयोग दूधके लिये होता है। पर पर्याप्त संरक्षणके अभावमें ५८% गायें ही दूध देती हैं।

यदि गायके चारेमें अधिक हरा चारा दिया जाय तो बहुत अधिक मात्रामें विटामिन ए प्राप्त किया जा सकता है।

गायका गोबर एवं गोमूत्र, खुजली एवं दाद आदि त्वचा-रोगोंसे बचाता है। गोबरसे लीपे स्थानपर मक्खी नहीं आती। गोमूत्र औषध है। जिगर तथा तिल्ली आदि रोगोंके निदानमें भी साधक है। गोमूत्र कीटनाशक होनेके कारण फसलपर लगे कीटोंको भी छिड़काव करनेपर नष्ट कर देता है। वस्तुत: गो अमृतकुण्ड है। पञ्चगव्य-सेवनसे मनुष्य सदैव निरोगी जीवन व्यतीत कर सकता है। रक्तके विषाणुओंपर पञ्चगव्यके प्रयोगसे विजय प्राप्त की जा सकती है।

आर्थिक-सामाजिक एवं सांस्कृतिक सभी दृष्टियोंसे गाय, बैल उपयोगी ही नहीं अनिवार्य हो गये हैं।

गोवर्धन केवल एक पर्वत नहीं है। गोवर्धन संस्कृति का नाम है। गोवर्धन पर्वत है तो समझना होगा कि पर्वत कैसे बनते हैं? जब गौवंश की वृद्धि होती है तब पर्वत बनते हैं। इसी कारण गोवर्धन माने जहां गाय का संवर्धन होता हो। जब गौवंश बढ़ता है, तब पर्यावरण अर्थात् प्रकृति की चादर अभेद्य रहती है। मानव पर प्राकृतिक आपदाएं कभी नहीं आती। भूकंप, बाढ़, सूखा, महामारी मानव को अल्मौत नहीं देती लेकिन जब गौवंश का नाश होता है, तब पर्यावरण की चादर तार-तार हो जाती हैं। प्रकृति से मां का अस्तित्व गायब हो जाता है। वह चण्डिका बन जाती हैं। प्राकृतिक प्रकोपों से मानव त्राहि-त्राहि करता है। भगवान श्रीकृष्ण को गोपाल कहा जाता है। वे गऊमाता के बहुत बड़े सेवक थे। वे गऊएं चराते थे एवं उन्हें प्यार भी बहुत करते थे। गऊएं उनकी बंशी की धुन सुनकर उनके आस-पास मंडराती थी एवं मग्न होकर बंशी सुनतीं। भगवान श्रीकृष्ण ने गऊपालन की महत्ता को बहुत पुष्ट किया। गऊ को मात्र दूध देनेवाला प्राणी नहीं समझा, उसे मां का दर्जा दिया। दूध न देने के बाद भी गऊ एक बहुमूल्य जानवर का कार्य करती है। इसके मूत्र एवं गोबर के प्रयोग से कई प्रकार के लघु उद्योग पनपते हैं, खाद बनती है एवं रोग निवारक औषधियां बनती हैं। गऊपालन से पर्यावरण हृष्ट पुष्ट हो गया। प्रकृति माता प्रसन्न हो गईं। इसका नाम गोवर्धन इसलिए है कि जहां गौ सवंर्द्धन हो। यदि गऊवंश सुरक्षित नहीं तो पर्वत नहीं होंगे। पर्यावरण नष्ट हो गए एवं प्राकृतिक प्रकोप का आतंक मानव को त्राहि-त्राहि करने पर मजबूर कर देगा।

आयुर्वेदकी दृष्टिसे गौ हमारी माता है। भारतीय संस्कृति की रीढ़ है। इसका स्थान सर्वोपरि है। सृष्टिकालसे ही गोमहिमा सुविख्यात है। पुराकालमें ऋषिकुल और गुरुकुलके आश्रममें गायें होती थीं। ब्रह्मचारियोंको गोमाताकी सेवामें कठोर परिश्रम करना पड़ता था। गौ माताकी सेवामें उन्हें व्यायामसे अधिक परिश्रम पड़ता था। जिससे स्वास्थ्य बहुत ही उत्तम

होता था। किसी प्रकारकी व्याधि नहीं होने पाती थी। शरीर पूर्णरूपसे नीरोग रहता था।

जन्मसे मृत्युपर्यंत किसी भी अवस्थामें दुग्ध निषिद्ध नहीं है। स्वास्थ्यकी दृष्टिसे दुग्धको पूर्णाहार माना गया है। शरीर-संवर्धन-हेतु इसमें प्रत्येक तत्त्व विद्यमान हैं। मानवकी शारीरिक, मानसिक, आध्यात्मिक शक्ति बढ़ानेवाला गोदुग्ध ही है। प्राचीन काल में ऋषि-मुनि गोदुग्ध पीकर तृप्त होते, तपस्या करते तथा गोसेवामें रत रहते थे। सुश्रुतसंहितामें दुग्धको सभी प्राणियोंका आहार बताया गया है। चरक-संहितामें गोदुग्धको जीवनी-शक्तियोंमें सर्वश्रेष्ठ रसायन कहा गया है। गोदुग्ध जीवनके लिये उपयोगी, जराव्याधिनाशक रसायन, रोग और वृद्धावस्थाको नष्ट करनेवाला, क्षतक्षीण-रोगियोंके लिये लाभकर, बुद्धिवर्धक, बलवर्धक, दुग्धवर्धक तथा किंचित् दस्तावर है और क्लम (थकावट), चक्कर आना, मद, अलक्ष्मी, श्वास, कास (खाँसी), अधिक प्यास लगना, भूख, पुराना ज्वर, मूत्रकृच्छ्र, रक्तपित्त- इन रोगोंको नष्ट करता है। दुग्ध आयु स्थिर रखता है, आयुको बढ़ाता है।

गायका मट्ठा- यह त्रिदोषनाशक, पथ्योंमें उत्तम, दीपन, रुचिकारक, बुद्धिजनक, बवासीर और उदर-विकारनाशक है।

गायका मक्खन- यह हितकारी, वृष्य, वर्णकारक, बलकारक, अग्निदीपक, ग्राही, वात-पित्त-रक्तविकार, क्षय, बवासीर, अर्दित और कासको नष्ट करता है। बालकोंके लिये अमृततुल्य लाभकारी है।

गोघृत- यह कान्ति और स्मृतिदायक, बलकारक, मेध्य, पुष्टिकारक, वात-कफ-नाशक, श्रमनिवारक, पित्तनाशक, हृद्य, अग्निदीपक, पाकमें मधुर, वृष्य, शरीरको स्थिर रखनेवाला, हव्यतम, बहुत गुणोंवाला है और भाग्यसे ही इसकी प्राप्ति होती है।

आयुर्वेदशास्त्रानुसार सम्यक्-रूपसे गोमूत्र-सेवनसे कुष्ठादि अन्य चर्मरोग नष्ट हो जाते हैं। गोमयको स्वच्छता प्रदान करनेवाला पवित्र माना गया है। अधिकांश भारतीय जन अपने घरोंको गोबरसे लीपकर शुद्ध करते हैं। गोबर कीटाणुनाशक होता है। शरीर-शुद्धिकरण-हेतु पञ्चगव्यका प्रयोग होता है। आयुर्वेदकी दृष्टिसे गौ तथा गव्य पदार्थोंकी अद्वितीय महिमा है। गोसेवासे सभी सिद्धियाँ प्राप्त होती हैं। गोसेवासे समस्त पुण्य अविलम्ब प्राप्त होते हैं। आयुर्वेदके उत्थानके लिये गोरक्षण अति आवश्यक है। इससे पीडित रोगियोंके रोगका निवारण होगा, भारतीय संस्कृतिका पुनरुत्थान होगा और जनता स्वास्थ्य-लाभ कर सकेगी।

अन्य दुग्धोंकी अपेक्षा गौका दूध विशेष रूपसे रस एवं विपाकमें मधुर, शीतल, दुग्धको बढ़ानेवाला, स्निग्ध वात-पित्तनाशक तथा रक्तविकारनाशक, गुरु और बुढ़ापेके समस्त रोगोंका शामक है, यह सर्वदा सेवन-योग्य है। काली गौका दुग्ध वात-नाशक तथा अधिक गुणवान होता है। पीली (लाल) गौका दुग्ध वात तथा पित्त-शामक होता है। श्वेत गौका दूध कफकारक तथा गुरु होता है और लाल एवं चितकबरी गौका दूध वातनाशक होता है।

गौका धारोष्ण दुग्ध बलकारक, लघु, शीत, अमृतके समान, अग्निदीपक, त्रिदोषशामक होता है। प्रातःकाल पिया हुआ दूध वृष्य, बृंहण तथा अग्निदीपक होता है, दोपहरमें पिया हुआ दूध बलवर्धक, पित्तनाशक होता है और रात्रिमें पिया हुआ दूध बालकके शरीरको बढ़ाता है, क्षयका नाश करता है, बूढ़ोंके शरीरमें तेज उत्पन्न करता है। अनेक विकारोंको शान्त करता है। इसलिये दूध प्रतिदिन पीना चाहिये। अपने शरीर को सुडौल, सुन्दर और चुस्त बनाना हो तो गायका दूध ही पीये। गौका घृत विशेष रूपसे नेत्रके लिये उपयोगी है। यह वृष्य, अग्निदीपक, रस एवं विपाकमें मधुर, शीत तथा तीनों दोषोंका शामक है और मेधा, लावण्य, कान्ति, ओज तथा तेजकी वृद्धि करनेवाला, अलक्ष्मी, पाप तथा भूतबाधा-नाशक है। गुरु, बलवर्धक, पवित्र, आयु बढ़ानेवाला, कल्याणकारक, रसायन, उत्तम गंधवाला, देखनेमें मनोहर तथा सब घृतोंमें अधिक बलवान है।

सनातन धर्ममें गायको माताके समान सम्मानजनक स्थान प्राप्त है। गाय सदैव कल्याणकारिणी तथा पुरुषार्थ-चतुष्टयकी सिद्धि प्रदान करनेवाली है। मानवजातिकी समृद्धि गायकी समृद्धिके साथ जुड़ी हुई है। गोमाताका हमारे उत्तम स्वास्थ्यसे

गहरा सम्बन्ध है। गाय आधिदैविक, आधिदैहिक एवं आधिभौतिक तीनों तापोंका नाश करनेमें सक्षम है। इसी कारण अमृततुल्य दूध, दही, घी, गोमूत्र, गोमय तथा गोरोचना- जैसी अमूल्य वस्तुएँ प्रदान करनेवाली गायको शास्त्रोंमें सर्वसुखप्रदा कहा गया है। आधुनिक दृष्टिसे गोमूत्रमें पोटेशिम, कैल्शियम, मैग्नेशियम, क्लोराइड, यूरिया, फास्फेट, अमोनिया, क्रिएटिनिन आदि विभिन्न पोषक क्षार विद्यमान रहते हैं।

आयुर्वेदीय ग्रन्थोंमें वर्णित पञ्चगव्य-घृतका चिकित्साकी दृष्टिसे बहुत महत्त्व है। इसके निर्माणमें ताजा गोबरका रस तथा गायका ही मूत्र, दूध, दही और घी प्रयुक्त होता है। पञ्चगव्य-घृतके सेवनसे उन्माद, अपस्मार, शोथ, उदररोग, बवासीर, भगंदर, कामला, विषमज्वर, तथा गुल्मका निवारण होता है। सर्पदंशके विषको नष्ट करने-हेतु यह उत्तम औषध है। चिन्ता, विषाद आदि मनोविकारोंको दूर कर पञ्चगव्यघृत स्नायुतन्त्रको परिपुष्ट बनाता है।

शरीरकी रक्षाके लिये आवश्यक क्षार-लवणादिकी कमीसे होनेवाले जितने भी रोग हैं गोमूत्रके सेवन से दूर हो जाते हैं। गायके मूत्रमें कारबोलिक एसिड होनेसे उसकी स्वच्छता और पवित्रता बढ़ जाती है। वैज्ञानिक रीतिसे गोमूत्रमें फॉसफेट, पोटाश, लवण, नाइट्रोजन, यूरिया, यूरिक-एसिड होते हैं, जिन महीनोंमें गाय दूध देती है, उसके मूत्रमें लेक्टोज विद्यमान रहता है, जो हृदय और मस्तिष्कके रोगोंमें बहुत लाभदायक होता है। आठ मासकी गर्भवती गायके मूत्रमें पाचक रस (हार्मोन्स) अधिक होते हैं।

गौ और पृथ्वी- ये दोनों गौके ही दो स्वरूप हैं। इनमें कोई भेद नहीं है। गौ और पृथ्वी इन दोनोंमें अभिन्नता है। ये दोनों ही परस्पर एक-दूसरीकी सहायिका और सहचरी हैं। मृत्युलोककी आधारशक्ति पृथ्वी है और देवलोककी आधारशक्ति गौ है। पृथ्वीको भूलोक कहते हैं और गौको गोलोक कहते हैं। भूलोक अधोलोक (नीचे) में है और गोलोक ऊर्ध्वलोक (ऊपर) में है। भूलोककी तरह गोलोकमें भी श्रेष्ठ भूमि है। संसारमें पृथ्वी और गौसे अधिक क्षमावान् और कोई नहीं है। अत: ये दोनों ही महान हैं।

शास्त्रोंमें गौ को सर्वदेवमयी और सर्वतीर्थमयी कहा गया है। अत: गौके दर्शनसे समस्त देवताओंके दर्शन और समस्त तीर्थोंकी यात्रा करनेका पुण्य प्राप्त होता है। जहाँ गौका निवास होता है, वहाँ सर्वदा सुख-शान्तिका पूर्ण साम्राज्य उपस्थित रहता है। गो-दर्शन, गोस्पर्श, गोपूजन, गोस्मरण, गोगुणानुकीर्तन और गोदान करनेसे मनुष्य सर्वविध पापोंसे मुक्त होकर अक्षय स्वर्गका भोग प्राप्त करता है। गौओंकी परिक्रमा करनेसे ही बृहस्पति सबके वन्दनीय, माधव (विष्णु) सबके पूज्य और इन्द्र ऐश्वर्यवान् हो गये।

गौके गोबर, गोमूत्र, गोदुग्ध, गोघृत और गोदधि आदि सभी पदार्थ परम पावन, आरोग्यप्रद, तेज:प्रदह, आयुवर्द्धक तथा बलवर्द्धक माने जाते हैं। यही कारण है कि आर्यजातिके प्रत्येक श्रौत-स्मार्त शुभ-कर्ममें पञ्चगव्य और पञ्चामृतका विधान अनादिकालसे प्रचलित और मान्य है।

गौके जब बछड़ी-बछड़े पैदा होते हैं, तब सर्वप्रथम वे केवल अपनी माताके दुग्धका पान करके ही तत्क्षण वायुके वेगके सदृश दौड़ने लगते हैं। संसारमें गोवत्सके अतिरिक्त अन्य किसी भी मनुष्यसे लेकर कीट-पतङ्गादितकके प्राणीके नवजात शिशुमें इस प्रकारकी विचित्र शक्ति और स्फूर्ति नहीं पायी जाती, जो कि गोवत्स की तरह उत्पन्न होते ही इतस्तत: दौड़ने लग जाय। इसीलिये मानवजातिमें जब बालक पैदा होते हैं, तब उन्हें सर्वप्रथम मेधाजनकके लिये मधु और गोघृतमें सुवर्ण घिसकर अथवा केवल गोघृतमें सुवर्ण घिसकर वह पदार्थ बालकको चटाया जाता है। पश्चात् उसे गौका दुग्ध पिलाया जाता है। अतएव गौको माता कहा जाता है।

सोना-चाँदी और रत्न-मणि, सब धन है केवल नामका। यदि है कोई धन जगतमें, गो-धन है बस कामका।।

गौ स्वर्ग और मोक्षकी सीढ़ी है। यह परम पावन और सबकी कामना पूर्ण करनेवाली मङ्गलदायिनी देवी है। गोमाताकी सेवासे पुरुषार्थ-चतुष्टयकी प्राप्ति और ऐहिक-आमुष्मिक कल्याणकी प्राप्ति होती है। गोसेवासे मनुष्यके अगणित कुलोंका उद्धार और उनकी यम-यातनासे मुक्ति होती है। गोसेवासे पुत्रप्राप्ति, लक्ष्मीप्राप्ति, विद्याप्राप्ति, यशप्राप्ति, ज्ञानप्राप्ति, बलप्राप्ति और दीर्घायुकी प्राप्ति होती है।

गाव: स्वर्गस्य सोपानं गाव: स्वर्गेऽपि पूजिता:। गाव: कामदुहो देव्योनान्यत्किञ्चित्परं स्मृतम्।।

गौएँ स्वर्गकी सीढ़ी हैं, गौओंकी स्वर्गमें भी पूजा होती है। गौएँ समस्त अभिलषित वस्तुओंको देनेवाली हैं, अत: गौओंसे बढ़कर और कोई श्रेष्ठ वस्तु नहीं है।

गौओंके मध्यमें ईश्वरकी स्थिति होती है। गौएँ सर्वश्रेष्ठ तथा पवित्र, पूजन करने योग्य और संसारमें सबसे उत्तम हैं। गौओंको यज्ञका अङ्ग और साक्षात् यज्ञरूप कहा गया है। गौओंके बिना यज्ञ कथमपि नहीं हो सकते। गौएँ मनुष्योंकी बन्धु हैं और मनुष्य गौओंके बन्धु हैं। जिस घरमें गौ नहीं है, वह घर बन्धुशून्य है।

गौएँ स्वर्गमें ऋषियोंके मन्त्रपूत घृतसे देवताओंको तृप्त करती हैं। अत: गौएँ हवनमें प्रतिष्ठित हैं। गौएँ समस्त प्राणियोंकी उत्तम शरण (आश्रय) हैं। गौएँ परम पवित्र और मङ्गलदायिनी हैं। गौएँ स्वर्गकी सीढ़ी हैं और गौएँ धन्य और सत्य-सनातन हैं। जहाँपर गौएँ रहती हैं उस स्थानको तीर्थभूमि कहा गया है। ऐसी भूमिमें जिस मनुष्यकी मृत्यु होती है, वह तत्काल मुक्त हो जाता है, यह निश्चित है।

गौ एकादश रुद्रोंकी माता, अष्ट वसुओंकी कन्या और द्वादश आदित्योंकी बहन है, जो कि अमृतरूप दुग्धको देनेवाली है। जिसके पास गौएँ रहती हैं, वह तो एक प्रकारसे इन्द्र ही है।

वेदोंसे लेकर समस्त धार्मिक ग्रन्थोंमें और समस्त सम्प्रदायवादियोंके धर्मग्रन्थोंमें एवं प्राचीन-अर्वाचीन ऋषि-महर्षि, आचार्य विद्वानोंसे लेकर आधुनिक विद्वानोंतक सभीकी सम्मतिमें गोमाताका स्थान सर्वश्रेष्ठ और सर्वमान्य है।

गौ एक अमूल्य स्वर्गीय ज्योति है, जिसका निर्माण भगवानने मनुष्योंके कल्याणार्थ आशीर्वाद-रूपमें पृथ्वीलोकमें किया है। अत: इस पृथ्वीमें गोमाता मनुष्योंके लिये भगवान्‌का प्रसाद है। भगवान्‌के प्रसादस्वरूप अमृतरूपी गोदुग्धका पान कर मानवगण ही नहीं, किंतु देवगण भी तृप्त और संतुष्ट होते हैं। इसीलिये गोदुग्धको अमृत कहा जाता है। यह अमृतमय गोदुग्ध देवताओंके लिये भोज्य-पदार्थ कहा गया है। अत: समस्त देवगण गोमाताके अमृतरूपी गोदुग्धके पान करनेके लिये गोमाताके शरीरमें सर्वदा निवास करते हैं।

गोमाता हमें प्रतिधुक् (ताजा दुग्ध), शृत (गरम दुग्ध), शर (मक्खन निकाला हुआ दुग्ध), दही, मट्ठा, घृत, खीस, वाजिन (खीसका पानी), नवनीत और मक्खन ये दस प्रकारके अमृतमय भोजनीय पदार्थ देती है, जिनको खा-पीकर हम आरोग्यता, बल, बुद्धि एवं ओज आदि शारीरिक बल प्राप्त करते हैं और गौके दुग्धादि पदार्थोंके व्यापारद्वारा तथा गौके बछड़ा-बछड़ी एवं गोबरद्वारा हम प्रचुरमात्रामें विविध प्रकारके अन्न पैदाकर धनवान् बन जाते हैं। धारोष्ण दूध हितकारी होता है। अत: गोमाता हमें बल, अन्न और धन प्रदान कर हमारा अनन्त उपकार करती है। अत: मानवजातिके लिये गौसे बढ़कर उपकार करनेवाला और कोई शरीरधारी प्राणी नहीं है। इसीलिये हिंदूजातिने गौको देवताके सदृश समझकर उसकी सेवा-शुश्रूषा करना अपना परम धर्म समझा है। गोधन भारतीय संस्कृति और सभ्यताका अन्यतम रक्षक है। अत: गोजातिका ह्रास हिंदूजाति और हिंदूधर्मका ह्रास है। इसलिये सभी दृष्टिसे गोवंशकी रक्षा परमावश्यक है।

सारे विश्वमें धार्मिक और सामाजिक क्षेत्रोंमें गौकी महिमा स्पष्ट है। आज सारी दुनियाका डेयरी-उद्योग प्राय: गायपर ही निर्भर है। गायका दूध, दही, घी आदिका उपयोग केवल भोजनके रूपमें ही नहीं, अपितु आयुर्वेदिक दवाइयों एवं यज्ञ-याग, अभिषेक-जैसे शुभ कार्योंमें भी किया जाता है। यात्राके अवसरपर घरसे बाहर निकलते समय गौका दर्शन महान शगुन माना गया है। गायका सामाजिक, धार्मिक, आर्थिक एवं आध्यात्मिक सभी क्षेत्रोंमें विशिष्ट योगदान है। वेदादि शास्त्रों तथा सभी धर्म-सम्प्रदायों आदिमें उसकी महिमा गायी गयी है और उसकी सेवा करनेका विशिष्ट निर्देश भी दिया गया है।

मानव-जीवनका प्रधान साधन गायें थीं। गौके पालन-पोषण से समाज सुखी था, वह स्वास्थ्य और शान्तिका अनुभव करता था। रंग- सर्वांग काली श्यामा एवं कपिला गाय सर्वोत्तम मानी जाती है। लाल, बादामी या चितकबरे रंगवाली गाय भी श्रेष्ठ मानी गयी है। सफेद-मोतिया या भूरे आदि रंगकी भी गायें अच्छी होती हैं।

संसार भरके सभी देश-देशान्तरोंमें दूधके लिये ही गाय पाली जाती है, जबकि भारतमें गोसेवा दूधके साथ-साथ भावनात्मक भी है। भारतीय गायें मनुष्यकी नित्य सहचरी हैं। प्रारम्भसे ही इन गायोंको मनुष्यका स्नेह एवं प्रेम प्राप्त हुआ। जबकि अन्य देशोंकी गायोंका इतिहास यह है कि वे बहुत समयतक जंगलोंमें हिंसक पशुके रूपमें घूमते रहनेके बाद मनुष्योंके घरमें आकर पाली गयीं। विदेशी गोजाति और भारतीय गायकी आकृति तथा स्वभावमें भिन्नता होती है।

हिमालय पर्वतके उत्तरी भागोंमें चामरी जातिकी गायें होती हैं। ये जंगली और पालतू दोनों होती हैं। इनका शरीर घने और लंबे रोओंसे ढका रहता है। बर्फीले प्रदेशमें रहनेके कारण ही प्रकृतिने शायद इनके शरीरको बालोंसे ढक दिया है। इनकी गर्दन और पीठ बराबर, मुँह नीचे और पैर छोटे-छोटे होते हैं। सींग पीठकी ओर झुके हुए होते हैं।

जंगली गायोंका रंग काला तथा पालतू गायोंका काला एवं सफेद मिला हुआ होता है। सफेद रंगकी चामरी गायकी पूँछका चमर बनता है। पालतू गायोंके सींग नहीं होते। जिस व्यक्तिके पास श्राद्धके लिये कुछ भी न हो वह यदि पितरोंका ध्यान करके गोमाताको श्रद्धापूर्वक घास खिला दे तो उसको श्राद्धका फल मिल जाता है।

बूढ़ी, बेकाम गायोंके लिये गोसदनोंकी स्थापना करना-कराना, जिनमें गायके अपनी मौत मरनेके समयतक उसके लिये आवश्यक चारे-पानी और चिकित्साकी सुव्यवस्था हो। नस्ल न बिगड़े, इस दृष्टिसे वहाँ गायोंको बरदाया न जाय।

गायकी नस्ल-सुधारका प्रयत्न करना, जिससे गायें प्रचुर दूध देनेवाली हों, बैल मजबूत हों और मरे हुए गाय-बैलोंकी अपेक्षा जीवित गाय-बैलोंका मूल्य बढ़ जाय। इस प्रकार गायको आर्थिक स्वालवम्बी बनाना। गायको भरपेट चारा-दाना मिले- इसके लिये व्यवस्था करना। गोचरभूमि छोड़ना एवं छुड़वाना। नये-नये चारेकी खेती कराना। यथासाध्य गायके ही दूध, दही, घी का व्यवहार करना और कम-से-कम एक गायका पालन करना।

गोजातिमें भाँति-भाँतिकी नस्ल, शक्ति, लक्षण एवं गुण होते हैं। इनका साधारण ज्ञान पालकको अवश्य होना चाहिये। गो-पालनमें स्वत:के देख-रेखकी उतनी ही आवश्यकता है, जितनी कि गृहस्थीके अन्य विशेष कार्योंमें। यदि विश्वसनीय तथा चतुर ग्वाले मिल जायँ तो भी संचालककी दिलचस्पी रहनी चाहिये क्योंकि स्वत:की देख-रेखपर गोशालाका भविष्य निर्भर रहता है। यदि पालक स्वत: गोसेवा-प्रेमी होगा तो अन्य सेवक भी सेवा करनेमें विशेष रुचि रखेंगे। अत: प्रत्येक पालक का कर्त्तव्य है कि वह अपनी गोशालाकी व्यवस्था एवं दिनचर्यासे भली-भाँति परिचित रहे और अपनी शालाके पशुओंको पहचाने। उनके चारे-दाने और पानीकी उचित व्यवस्था एवं शालाकी स्वच्छतापर ध्यान देता रहे। इससे सेवकोंमें सदा तत्परता बनी रहेगी और काम सुचारू रूपसे चलेगा।

गृहिणी अपने बच्चों तथा परिवारकी जिस तत्परतासे सेवा करती है, उसे उसी तत्परतासे जीवनके मूल पोषक तत्त्वोंको

देनेवाली गौकी भी सेवा करनी चाहिये। चाहे जितना भी श्रीसम्पन्न घर क्यों न हो दूध, दही, घी, और मट्ठेके बिना वह अर्पूण-सा ही रहेगा।

जलवायुकी विभिन्नताका प्रभाव गो पर पड़ता है, अतएव सुदूर प्रान्तकी गायको मँगानेके पहले अपने देशकी जलवायु और उपजका ख्याल कर लेना चाहिये। नस्ल सुधारनेके लिये यदि दूर-देशोंकी गायोंको रखनेका शौक हो, तो उनके लिये यथासम्भव वे ही चारे-दाने प्रस्तुत करने चाहिये, जिनपर वे वहाँ पाली गयी थीं। उनके बर्धानेके लिये उसी देशका उत्तम साँड़ भी होना चाहिये।

स्थान और शालाके बार-बार परिवर्तनसे कुछ दिनोंके लिये गाय बिदक जाती है और दूध भी कुछ कम हो जाता है। भलीभाँति परिचित न होनेसे वह मौका पाकर अपनी पूर्व-परिचित शालाको भाग जाती है। अतएव जब नये स्थानपर गाय लायी जाय तो उसे कम-से-कम ५ या ७ दिनतक बाँधकर ही रखना चाहिये और भलीभाँति खिला-पिलाकर प्रेमपूर्वक व्यवहार करना चाहिये, ताकि वह अपनी नयी शालासे भलीभाँति परिचित हो जाय।

गोसेवाके लिये गो-प्रेमी मनुष्य रखना चाहिये। ग्वाला शान्त-स्वभाव, स्वच्छ आदतोंका, ईमानदार, परिश्रमी और अनुभवी होना चाहिये। नित्य नये सेवकोंसे गाय सुगमतापूर्वक दूध नहीं दुहाती और न पूरा दूध ही देती है। इसलिये सेवकोंको बार-बार नहीं बदलना चाहिये। गायोंसे दुर्व्यवहार करनेवाले सेवक को रखना ठीक नहीं है।

गायोंको सद्व्यवहारसे सदा प्रसन्न एवं संतुष्ट रखना चाहिये। उन्हें किसी भाँतिसे चिढ़ाना और क्रोध करनेका अवसर देना ठीक नहीं है। नम्र व्यवहारसे गायें ममतामयी, स्नेहमयी एवं शान्त रहती हैं। ऐसी अवस्थामें वे सुगमतासे और पूर्ण रूपसे दूध दुहाती हैं। कभी-कभी गाय पर्याप्त चारा-दाना खानेपर भी दूध नहीं देती, इसके कारणको यत्नपूर्वक ढूँढ़कर उसका विधिवत् उपचार करना चाहिये। यदि कोई लाभ होनेकी सम्भावना न हो तो उसे शालासे अलग करके केवल चराईपर रहनेवाले पिंजरापोलके पशुओंके साथ छोड़ दे।

गायसे सदैव प्रेमपूर्ण व्यवहार करना चाहिये। दुलारसे पाली गयी गाय शान्त प्रकृतिकी और क्रोध-रहित होगी। क्रोधमें रहनेसे उसका दूध कम हो जायगा। साथ ही दूधमें मक्खनकी मात्रा भी कम हो जायगी। गाय स्वभावसे ही वात्सल्यमयी है, अतएव गायसे हर समय और खास तौरपर दुहते समय अच्छा व्यवहार करना चाहिये।

गायके बछड़े या बछियाको पहले दूध पीनेके लिये छोड़ दे। असलमें दूध तो बच्चेके पालनके लिये ही बनता है। बच्चेको देखकर ही गाय प्राय: गोबर या मूत्र करती है। थनमें दूधके भर आनेपर गाय प्राय: गोबर या मूत्र करती है। कुछ देर दूध पी लेनेके बाद बच्चेको गायके पास ही बाँध देना चाहिये, ताकि वह उसे चाटती और दुलार करती रहे। बच्चेको उसके पाससे हटा देनेपर वह दुखी हो जाती है। दूध दुह लेनेपर बच्चेको फिर छोड़ दे, ताकि वह रहा-सहा दूध पी सके और कुछ देर अपनी माँ के साथ रहकर उसे आनन्द दे सके। यदि बच्चेको अधिक देरतक छोड़ दिया जायगा तो थनोंके कटनेका अंदेशा रहेगा।

गाय व्यवस्थाप्रिय जीव है। वह पहचानी हुई जगहपर एक ही व्यक्तिसे सुगमतापूर्वक दुही जानी चाहिये। नित्य नये ग्वालोंके बदलनेसे गाय संकुचित हो जाती है और पूरा दूध नहीं देती।

प्रतिदिन एक नियमित समयपर, ठीक १२ घंटेके बाद, गाय दुही जानी चाहिये। ज्यादातर लोग सूरज उगनेके पहले और दिन छिपनेके लगभग गायको दुहते हैं। अपनी जरूरत देखकर गाय दुहनेका समय बाँध लेना चाहिये। कभी जल्दी और कभी देरमें न दुहे। सभी गायें एक दिनमें दो बार, सुबह और शामको दुही जाती हैं। परंतु कुछ गायें, जो बहुत अधिक दूध देती हैं, वे २४ घंटेके अंदर तीन बारतक दुही जाती हैं।

दूध दुहनेके पहले गायको सानी खिला देनी चाहिये और उसके लिये पानी पीनेकी भी सुविधा रखनी चाहिये। गायें काफी पानी पीती हैं, अत: पानीका प्रबन्ध अच्छा होना जरूरी है।

शान्त प्रकृतिकी उत्तम गायको पिछले दोनों पैरोंमें बन्धन लगाकर नहीं दुहना चाहिये। अच्छी जातिकी गायें दुहनेपर लात नहीं चलातीं, इसलिये बन्धनकी कुटेव उन्हें न डाले, वरना वे लात चलाने लगेंगी। लात मारनेवाली गायको ही दौना लगाना चाहिये, प्रेमपूर्वक पाली गयी सूधी गायके दौना बिना लगाये भी दुहा जा सकता है।

उचित सेवा और व्यवहार पाकर गाय सदैव शक्ति भर दूध देगी। दूध बढ़ानेके कृत्रिम उपायोंसे गायकी पाचनक्रियापर प्रभाव पड़ता है, जिससे शरीरके भीतरी अवयवोंपर विशेष जोर पड़ता है। उसकी प्रजनन-शक्ति भी क्षीण पड़ जाती है। गाय दूध देना कम कर दे, तो कारणकी खोज करनी चाहिये। यदि कोई खराबी मिले तो उसका उपचार, उचित औषधिके द्वारा करना चाहिये। दवाओंके जरिये दूधको बढ़ानेकी कोशिश करते रहनेसे गायका स्वास्थ्य खराब हो जाता है। एक बार दूधके बढ़ जानेपर भी कमजोर पड़ जानेके कारण भविष्यमें गाय कम दूध देगी।

गायको दुहते समय संगीत या मधुर वचन सुनानेसे वह प्रसन्न होकर अपनी शक्तिभर पूरा दूध देती है। यह प्राचीन तथा अर्वाचीन दोनों ही समयके विद्वानोंने माना है। भगवान कृष्णकी मोहनी मुरली में गायोंके लिये कितना आकर्षण भरा रहता था, यह सभी जानते हैं। अमेरिका आदि देशोंकी वैभवशाली गोशालाओंमें तो संगीतका प्रबन्ध रहता है।

गेहूँ या जौका पतला दलिया राँधकर और उसमें गुड़ मिलाकर मौसमके माफिक गुनगुना या ठंडा खिलानेसे दूध बढ़ जाता है, क्योंकि इससे गायकी ताकत बढ़ती है। जो मनुष्य गायोंको ताडना देता है, उसे रौरव नरककी प्राप्ति होती है। बँधी हुई गाय प्रसन्न नहीं रहती।

स्वतन्त्रतापूर्वक धीमी-धीमी गतिसे अपनी रुचिके अनुसार घूम-घूमकर चरनेसे गाय प्रसन्न रहती है। निरन्तर बँधी रहनेसे वह संकुचित हो जाती है। शालाके बाहर घूमनेसे गायको खुली और साफ हवा मिलती है। यदि गोचरभूमि नदीके किनारे हो तो बहुत अच्छा है; क्योंकि वह प्यास लगनेपर बहता हुआ साफ पानी भरपेट पी सकेगी। बहते हुए निर्मल जलमें खनिज-लवण काफी होते हैं। सूर्यकी किरणें गायको स्वस्थ रखने और उसकी दूध देनेकी शक्तिको विकसित करनेके लिये बहुत जरूरी हैं। इनसे विटामिन डी का संचार होता है।

गाय धीमी-धीमी गतिसे चलनेवाला एक शान्तिप्रिय जीव है, अतएव उसे भगाना और मोटर गाड़ियोंसे चौंकने देना ठीक नहीं है। एक बार नियमित रूपसे समय और स्थानकी आदत पड़ जानेपर वह शालासे बाहर निकलकर स्वत: ही वहाँसे चली जायगी और शामको उसी तरह लौट भी आयेगी। किंतु गायोंके साथ एक चरवाहा जरूर रहना चाहिये ताकि वे इधर-उधर भटक न जायँ। गायोंको सामूहिक चेतना बहुत होती है, जिस तरफ एक गाय जाने लगेगी, बाकी सब गायें भी उधर ही चल देंगी।

जबतक सम्पूर्ण गोवंश-हत्या बंद नहीं होती, तथा सरकारी कुनीतियाँ सुनीतियोंमें परिवर्तित नहीं होतीं, तबतक गोपालन एवं संवर्धनका पावन कार्य अत्यन्त कठिन है।

मछलीपालन, मुर्गीपालन तथा वृक्षारोपण आदिके लिये सरकार अनेक प्रोत्साहन दे रही है, किंतु गोपालन, गोवंसर्धन एवं गोसंरक्षणके लिये शासन एवं योजना-आयोगकी कोई ठोस योजना नहीं।

गोवंश भारतीय सभ्यता एवं संस्कृतिका मूल स्रोत है। उसकी हत्या देशकी अस्मितापर प्रहार है तथा आर्थिक, नैतिक एवं आध्यात्मिक पतन के लिये उत्तरदायी है।

देध-धर्मका नाता है- गौ हमारी माता है। श्रीगंगा, गीता, गोमाता- मानवताकी निर्माता।

गोपालन एवं गौशालाकी एक सीमा है। उससे अधिक गाय गौशाला नहीं रख सकती। इस समय देशमें सरकारी आँकड़ोंके अनुसार १९ करोड़ गोवंश हैं। देशभरकी गौशालाएँ पूर्ण क्षमताके साथ गायोंको रखना चाहें तो भी २८ लाखसे ज्यादा गोवंश रखना सम्भव नहीं है। अत: जबतक किसान गायें नहीं पालेगा, तबतक वे पूर्ण सुरक्षित तथा संवर्धित नहीं हो सकतीं। आज भी भारत भाग्यशाली है कि इसकी ७२% जनसंख्या गाँवोंमें रहती है। गायोंको पालकर गाँवोंको खुशहाल बनाया जा सकता है। इससे बढ़ती हुई नगरीय व्यवस्थामें हम मददगार होंगे तथा दुनियामें बढ़ रहे असंतुलनको संतुलित करनेमें गोवंश भी सहायक होगा।

जिस गोवंशको किसान अनुपयोगी मानकर लेनेसे इनकार कर देते हैं वैसे गोवंश गोशालामें रह जाते हैं। गरीब किसानोंकी आर्थिक स्थिति ठीक करनेका एकमात्र उपाय गाय है। किसानोंको गोपालनके बारेमें ठीक प्रकारसे बताया जाय और वह उस गायकी ठीकसे सेवा करे तो एक लीटर दूध देनेवाली गाय भी उसकी आर्थिक स्थितिको परिवर्तित कर सकती है। अपने घरमें बने चावलसे निकले माड़, सब्जीके छिलके एवं घास-फूस आदिसे भी उस गायका पोषण हो जाता है। उस गायसे प्राप्त दूधसे उसका भोजन बन जाता है, गायका बछड़ा बच्चोंका खिलौना होता है। इस प्रकार वह गाय उसके परिवारका अविभाज्य अङ्ग बन जाती है और हर डेढ़ वर्षमें गायसे मिलनेवाला बच्चा उसकी पूँजीगत आय होती है।

गायके दूधमें एक अद्भुत औषधीय गुण है। गायके दूधसे बनी छाछ किसी भी प्रकारके नशे जैसे- गाँजा, भाँग, चिलम, तंबाकू, शराब, हीरोईन, स्मैग इत्यादिसे होनेवाले प्रभावको ही कम नहीं करती, अपितु इसके नियमित सेवनसे नशेका सेवन करनेकी इच्छा भी धीरे-धीरे कम हो जाती है। गायके दूधमें स्वर्ण-तत्त्व पाये जाते हैं। यह तत्त्व माँके दूधके अतिरिक्त दुनियामें अन्य किसी भी पदार्थमें नहीं मिलता। यह बुद्धिवर्धक, बलवर्धक एवं स्वास्थ्यवर्धक भी है। इस प्रकार गाय तथा गोवंश हमारे लिये हर दृष्टिसे उपयोगी है।

ऐसे भयावह समयमें जहाँ महँगाई अपने ताण्डवपर है, अपनी उदारतासे मुक्तहस्त होकर नगर-नगरमें गोशालाएँ और उनके रख-रखावके लिये चरागाह, पीनेके लिये पानीकी व्यवस्था हो तो इन गोमाताओंके आशीर्वादसे हम सशक्त मेधावी राष्ट्रके सच्चे सपूत कहला सकते हैं।

जननी जनकर दूध पिलाती केवल साल छमाहीभर। गोमाता पय-सुधा पिलाती रक्षा करती जीवनभर॥

गायोंको चरनेके लिये पर्वतोंपर भेजना चाहिये। पर्वत भी गोचरभूमिकी श्रेणीमें आते हैं। पर्वतका पर्याय गोत्र है, जिसका एक अर्थ गायोंको त्राण देनेवाला भी होता है। पर्वतोंपर गौओंको पर्याप्त चारा और जल तो सुलभ रहता ही है, उन्हें शुद्ध वायु और व्यायामलाभ भी हो जाता है।

राजवर्ग तथा प्रजावर्ग दोनोंकी ओरसे गोचरभूमि छोड़ी जाती थी। पुण्यलाभकी दृष्टिसे धर्मशाला, पाठशाला, कूप और तालाब आदि बनवानेकी प्रथाकी भाँति गोचरभूमि खरीदकर कृष्णार्पण करनेकी उस युगमें प्रथा थी। आज भी वे गोचरभूमियाँ विद्यमान हैं और उनके दानपत्रोंमें स्पष्ट अंकित है- इस गोचरभूमिको नष्ट करनेवाले यावच्चन्द्रदिवाकर नरकवास करेंगे।

गौओंद्वारा मनचाहा दूध देना तभी सम्भव है, जब उन्हें भरपेट संतुलित आहार मिले। आज देशमें पशुओंके लिये आहार-सामग्रीकी भारी कमी है। गोचर-भूमिका क्षेत्रफल सीमित हो गया है। ऐसी स्थितिमें पशुओंके लिये चारे-दानेकी कमी होना स्वाभाविक है।

पशु-आहारमें सबसे पहला स्थान स्वच्छ जलका आता है। जल पशुओंके आहारको चबाने, पाचन-क्रिया एवं अवशोषणमें सहायक होनेके अतिरिक्त पचे हुए आहारको शरीरके भिन्न-भिन्न भागोंमें ले जानेमें सहायक होता है।

इसलिये पशुओंको स्वच्छ जल न पिलानेसे पशुओंमें बीमारी फैलती है।

हरा चारा ही गायके लिये समुचित भोजन है। पहले समयमें ग्रामोंके आसपास गोचरभूमि छोड़ी जाती थी, गोचर-भूमि छोड़नेके धार्मिक महत्त्वका विश्वास भी लोगोंके मस्तिष्कमें था। गायें तथा अन्य पशु उस भूमिपर अपने मुँहसे हरी-हरी घास चरते थे और स्वच्छन्द विचरण करनेसे उनका व्यायाम भी हो जाता था। स्वच्छन्द विचरण कर अपने मुँहसे अपनी इच्छासे चरनेवाली गौसे आजकी बँधी हुई गायकी कोई तुलना ही नहीं है। दूधकी मात्रा तथा उसकी गुणात्मकतामें भी दोनोंमें बहुत अन्तर है। हरे चारेके पोषक तत्त्व सुपाच्य होते हैं जो गायोंको आसानीसे प्राप्त हो जाते हैं। इनमें विटामिन तथा खनिजोंकी प्रचुर मात्रा होती है और स्वादिष्ट होनेके कारण पशु भी चावसे खाते हैं।

एक संतुलित आहार और उचित देख-रेख तथा चिकित्सा पानेवाली गाय भरपूर दूध देगी और हमें अमूल्य भोजनके साथ स्वास्थ्य तथा खुशहाली भी प्रदान करेगी। सूखी रोटी, सड़ी दाल, गंदी जूठन आदि वस्तुएँ भी कभी गौ को नहीं खिलाये।

प्राचीन भारत में तो पालकाप्य-जैसे महर्षि तथा ऋतुपर्ण, नल एवं नकुल-जैसे महाराज गो-चिकित्सक एवं पशु-चिकित्सक थे। आपस्तम्ब और संवर्त आदि स्मृतियोंके वचनोंसे यह बात और भी पुष्ट हो जाती है उपकारकी दृष्टिसे गो-चिकित्सा करते समय यदि कुछ हानि भी हो जाय तो उसमें भली नीयतसे काम करनेवालेको कोई अपराध नहीं लगता।

औषधं स्नेहमाहारं ददद् गोब्राह्मणेषु च। दीयमाने विपत्ति स्यात् पुण्यमेव न पातकम्॥

अर्थात् यत्नपूर्वक गो-चिकित्सा करने अथवा गर्भसे मरा हुआ बच्चा निकालनेमें यदि गायपर कोई विपत्ति भी आ जाय तो प्रायश्चित्त करनेकी आवश्यकता नहीं है। यदि गौ और ब्राह्मणको उनके लाभके लिये कोई औषध, तैल, आहार आदि दिया जाय और उससे उनपर कोई विपत्ति आ जाय तो भी पाप नहीं होता, वरं पुण्य ही होता है।

पशुओंको भी रोग उतना ही कष्ट देते हैं, जितना कि मनुष्योंको। अन्तर इतना ही है कि हम मनुष्य विवेक-साधन तथा उपायोंद्वारा किसी सीमातक रोग दूर करके कष्टका निवारण कर लेते हैं; किंतु बेचारे मूक, असहाय, विवश तथा केवल पूँछ हिलानेतकका उपाय कर सकनेवाले पशु रोगग्रसित होकर कष्टोंको सहते रहते हैं। पर मनुष्य-जातिकी शोभा इसमें नहीं है। जिसने अपनी बुद्धि तथा सामर्थ्यका उपयोग अपने ही लिये किया।

स्वस्थ गाय, बैल और भैंसका तापमान प्राय: १०१° से १०४° तक होता है, नाड़ीकी गति प्रतिमिनट ४५ से ५० बारतक है और साँस प्रतिमिनटमें १०-१२ बार आती है। इससे विपरीत हो तो पशुको रोगी समझना चाहिये।

गाय और बैलकी अधिक-से-अधिक आयु प्राय: २५ वर्षकी होती है। जलवायु, लालन-पालन तथा परिश्रम आदिके कारण इसमें कमी-वेशी भी हो सकती है। आमतौरपर इनकी औसतन आयु १२ वर्षके लगभग होती हैं एक बछिया ३ वर्षकी उम्रके आस-पास बिया जायगी। कोई-कोई गायें १२-१४ महीने बाद दुबारा बिया जाती हैं। कम-से-कम गायको १८-२० महीने बाद दुबारा जरूर बिया जाना चाहिये।

१०-१२ वर्षकी उम्रतक गाय ५-७ अच्छे बछड़े-बछिया दे देती है। कोई-कोई गाय १०-१२ बच्चे भी जनती है, परंतु प्राय: १५-१६ वर्षकी उम्रके बाद वह बच्चे देना बंद कर देती है।

गाय एक मूक प्राणी है। वह अपने दु:खकी व्यथा कह नहीं सकती। किंतु उसका दु:ख-दर्द आपको समझना होगा। वह निरीह प्राणी है, अपनी व्यथा कैसे बतायेगी। उसे तो दर्द सहन करनेकी असीम शक्ति प्राप्त है।

प्राचीन कालसे भारतमें गोपालनकी दृष्टिसे गोशाला-गोसदन एवं पिंजरापोल आदि संस्थाएं स्थापित की जाती रही हैं, जिनमें अपंग-बूढ़ी तथा दूध न देनेवाली गायोंका भरण-पोषण तो होता ही है, साथ ही साधनरूपमें दूध देनेवाली स्वस्थ

और सुन्दर गायोंका भी संवर्धन किया जाता है। वर्तमान समयमें देशमें कितनी गोशालाएँ हैं यह ठीक-ठीक नहीं कहा जा सकता, परंतु सरकारी अनुमानके अनुसार तीन हजार गोशाला-पिंजरापोल भारतमें बताये जाते हैं।

असहाय और अशक्त गायका पालन-पोषण करने और उसे सुख पहुँचानेकी चेष्टा करनेमें तो दयाका प्रश्न ही नहीं है। इसमें तो कृतज्ञताजनित विशुद्ध कर्त्तव्यपालन है। जिस गोमाताने अपनी अच्छी हालतमें हमारी अपार सेवा की, जिसका जन्म ही हमारी भलाईके लिये हुआ और जिसकी उदारतापर ही हमारा जीवन निर्भर रहता है, जिसने हमें अमृत-सा दूध दिया, खेतीके लिये बैल दिये, खेतके लिये खाद दी और अब भी दे रही है, उसका दूध सूख जानेपर या उसके लूली-लँगड़ी, बीमार और असहाय हो जानेपर उसका पालन-पोषण करनेसे मुँह मोड़ लेना तो एक प्रकारकी घोर कृतघ्नता और कर्त्तव्यसे विच्युति है।

पिंजरापोलोंकी स्थापना वस्तुत: उन सहृदय पुरुषोंकी विशुद्ध धार्मिक भावनासे हुई थी जिनके हृदयमें बड़ी सुकोमल-सुमधुर दयाकी वृत्ति थी और जो वृद्ध माँ-बापकी सेवा करनेकी भाँति ही बूढ़ी गोमाताकी सेवाको भी अपना परम कर्त्तव्य मानते थे। पिंजरापोल नयी संस्था नहीं है। जैन और बौद्धोंके समयमें भी ऐसी संस्थाएँ थीं। मुसल्मानी कालमें भी थीं और उनमें केवल गायोंका ही नहीं, बीमार और असहाय अन्यान्य पशु-पक्षियोंका भी इलाज और भरण-पोषण किया जाता था। यह एक ऐसा पवित्र धर्म समझा जाता रहा है कि सारा समाज इसमें हाथ बँटाता है और व्यापारी लोग अपने व्यापारपर लाग लगाकर इस कार्यमें सहायता करते हैं। अपंग प्राणीकी सेवामें एक परम पुण्यकी और पवित्र कर्त्तव्य-पालनकी श्रद्धा थी और वह सच्ची थी। इसीसे लोग अपने-अपने घरोंमें भी अशक्त प्राणियोंकी सेवा अपने हाथों करते थे। जब कोई गृहस्थ ऐसी परिस्थितिमें पड़ जाता कि खुद तन और धनसे सेवा नहीं कर सकता था तब उसके पशुको सँभालना पिंजरापोलका काम था। इस प्रकार पिंजरापोल न केवल पशु-पीड़ाका निवारण करता था, वरं धार्मिक भावसम्पन्न असमर्थ गृहस्थका बोझ भी हलका करके उसे इस योग्य बना देता था कि वह नया उपयोगी पशु लाकर उससे लाभ उठा सके।

युगपरिवर्तनके साथ-साथ पिंजरापोलोंकी कार्य-पद्धतिमें भी उचित परिवर्तनकी आवश्यकता हो गयी है। यह कहना व्यर्थ है पिंजरापोल और गोशालाएँ सर्वथा व्यर्थ और हानिकारक संस्थाएँ हैं। मूल उद्देश्यकी रक्षा करते हुए उनको आर्थिक दृष्टिसे भी जितना उपयोगी और जितना स्वावलम्बी बनाया जा सके, उतना बनाना चाहिये। सुधारके लिये सदा ही तैयार रहना चाहिये, परंतु सुधारके नामपर संहार न हो जाय, इसकी सावधानी रखनी चाहिये। अवश्य ही, नवीनताके मोह-मदमें अंधे होकर प्राचीनता मात्रकी जड़ उखाड़ने जाना जैसे बड़ी भूल है, वैसे ही प्राचीनताके नामपर अड़कर धर्मसे अविरुद्ध नवीन उपयोगी पद्धतिको स्वीकार न करना भी कम भूल नहीं है।

लोग पैसा तो दे देते हैं, पर समय नहीं दे पाते। जो सभापति, मन्त्री और कार्य-कारिणीके सदस्य होते हैं, वे प्राय: केवल नामके ही होते हैं। समयके अभाव, दिलचस्पी न होने तथा गोपालनकी पद्धतिके अज्ञानसे वे कुछ भी नहीं कर पाते। बहुत-से तो जाते ही नहीं। जिनके जिम्मे प्रबन्धका भार रहता है, वे भी न तो अनुभवी होते हैं न क्रियाशील। इससे प्रबन्धमें त्रुटियाँ बनी ही रहती हैं।

पर्याप्त वेतन देकर सुयोग्य अनुभवी पुरुषोंको प्राय: नियुक्त किया नहीं जाता और कोई करना भी चाहते हैं तो सुयोग्य सेवाभावी व्यक्ति मिलते नहीं। कहीं कोई अनुभवी पुरुष रखे भी जाते हैं तो उनके समक्ष कार्य करनेमें कई प्रकारकी संस्थागत कठिनाइयाँ आती हैं। नियम तथा प्रणाली में भी समय तथा पशुपालन-विज्ञानकी जानकारीके अभावसे कोई खास सुधार नहीं किया जाता।

वृद्ध, अपंग, बीमार, दुर्बल और ठाँठ गाय, असहाय बैल और ऐसे ही बछड़े-बछड़ी आदिके पालन-पोषणकी पूरी

व्यवस्था हो, जिसमें वे जीवनके अन्तिम श्वासतक सुखपूर्वक खा-पीकर रह सकें। गोजातिका ऋण तो उतर ही नहीं सकता, परंतु सच्ची कृतज्ञता प्रकट करने और मानव-हृदयकी बड़ी कोमल दयावृत्तिकी रक्षा करनेके लिये इसकी बड़ी आवश्यकता है। विश्वासी सद्गृहस्थोंको बैल बनानेके लिये बछड़े देकर बदलेमें बछड़ियाँ ले ली जायँ और उन्हें अच्छी दुधार गायें बनाया जाय। असमर्थ सद्गृहस्थोंकी अच्छी जातिकी गाभिन गायें, जिन्होंने दूध देना बंद कर दिया है, पालन करनेके लिये कम खर्चपर पिंजरापोलोंमें ले ली जायँ और ब्यानेके बाद उन्हें वापस दे दिया जाय। इसी प्रकार असमर्थ गृहस्थोंके छोटे बछड़े-बछड़ियोंका भी पालन किया जाय। ऐसे गाय-बछड़ोंको कोई मालिक बेचना चाहे तो उन्हें पिंजरापोल अच्छी दुधार गाय और मजबूत बैल बनानेके लिये खरीद ले।

पिंजरापोलोंके पास प्राय: जमीन होती ही है। नहीं तो जमीनका प्रबन्ध किया जाय और उसमें उपयोगी घास-चारेकी खेती की जाय और प्रचुर मात्रामें घास-चारा उपजाया जाय।

गोचरभूमिमें सामान्य-कृषिके आधारपर अन्नादि उपजानेका प्रयास नहीं करना चाहिये, कारण गौशालाकी भूमिमें गायका खाद्य याचारा उपजाना ही उचित है। पर्याप्त चारा हो जानेपर अतिरिक्त भूमिमें कृषि भी की जा सकती है।

सूखे और हरे चारेका भंडार किया जाय तथा काफी मात्रा में भंडार होनेपर कम-से-कम दो वर्षके लिये अपनी आवश्यकताका सामान रखकर शेष उचित मूल्यपर गृहस्थोंको बेचा जाय।

अच्छे गोचिकित्सक को रखा जाय और साथ ही एक अस्पताल या दवाखाना रहे। बीमार पशुओंका सावधानीसे इलाज हो, जिस समय पशुओंमें कोई संक्रामक रोग फैलने लगे, उस समय यदि उन्हें दवाके जलसे नहलाने, प्रतिरोधक दवा या इंजेक्शन देनेकी पूरी व्यवस्था हो तो रोगका विस्तार सहज ही रूक जाय और बहुत-से पशुओंके प्राण अनायास ही बच जायँ। गायोंको भर्ती करते समय यदि गोशालाके डॉक्टर गायकी परीक्षा कर लिया करें तो सर्वोत्तम है।

नये पिंजरापोल, गोशालाएँ बनाये जायँ तो उनको शहरोंमें न बनाकर ऐसे स्थानोंमें बनाना चाहिये जहाँ खुली जगह हो। चारों ओर विस्तृत खेत हों। नदी-तट हो तो बहुत अच्छा है, जलका पूरा प्रबन्ध तो अवश्य हो।

गौओंके लिये एक ऐसा गोष्ठ बनाना चाहिये जिसमें कुत्ते, मक्खी, मच्छर, डाँस, चोर आदिका कोई भी विघ्न न हो। गोबर, गोमूत्र तथा बचे-खुसे घास-चारेका कूड़ा पड़ा न रह जाय। गौओंका गोष्ठ सारे देवताओंका निवास-स्थान है। उसमें मल नहीं डालना चाहिये। समझदार आदमीको चाहिये कि गोष्ठको अपने शयन करनेके कमरेकी तरह साफ-सुथरा रखे। इसे सर्दी, वायु और धूलसे समान भावसे प्रयत्नपूर्वक बचाये रखना चाहिये। गौ सामान्य प्राणी होनेपर भी उसे अपने प्राणोंके समान देखना चाहिये। गोबर और गोमूत्रसे कभी घृणा न करे। सूखे चूनेसे गोशालाको सदा साफ रखे। गर्मियोंमें ठंडे पेड़ोंकी छायामें, वर्षा और शिशिर-कालमें थोड़े गरम और जोरकी हवा न आनेवाले घरोंमें तथा जाड़ेमें गर्म और बिना कीचड़के घरमें गायोंको रखे। जूठन, कफ, थूक, मूत्र, विष्ठा आदि किसी प्रकारके भी मलको गोशालामें न छोड़े। बछड़ेको कभी लाँघके न जाय। कुलटा स्त्री और नीच मनुष्योंको गोशालामें न जाने दे। जूता पहनकर अथवा हाथी, घोड़ा, गाड़ी या पालकीपर सवार होकर गायोंके बीचमें न जाय।

गाय तथा बछड़ोंको रखनेके लिये पर्याप्त मात्रामें जगह हो तथा उनको रखनेके लिये पर्याप्त मात्रामें कोठे हों। उन्हें अच्छा खाद्य मिले, गायों तथा बछड़ोंकी ठीक तरहसे देखभाल हो। गाय-बछड़ोंको चरानेके लिये पर्याप्त मात्रामें जमीन हो तभी अच्छी गौशाला बन सकती है। व्यवस्थापनका यह कर्त्तव्य है कि गायोंका दूध उचित मूल्यपर जनताको उपलब्ध करायें, उसी प्रकार किसानोंको उचित मूल्यपर खाद दें और जितना बन सके उतना अनाथ, अपंग व्यक्तियोंको बिना मूल्य दूध वितरण करें।

किसानोंको गाय-बछड़े उचित मूल्यपर दें तथा समय-समयपर शिबिर लगाकर पशुपालन-हेतु लोगोंमें जागृति-निर्माण करें और सबसे बड़े परिणाममें आज जो हजारों गाय-बछड़े कसाईखानेमें जाते हैं उन्हें रोकें तथा पशुवध, गोहत्या न हो इसलिये भरसक प्रयत्न हो। शुद्ध गोरक्षा-गोसेवा आदिके बिना देशमें आचार, श्री, ऐश्वर्य और शान्ति-स्थापन सम्भव नहीं है।

निरन्तर अन्न-वस्त्रका अभाव, चोरी, डाका, हत्या-लूट आदि उपद्रव और सभी प्रकारकी अशान्ति, दु:ख तथा क्लेशोंकी परम्परा ही पनपती जा रही है एवं व्याप्त होती चली जा रही है। जहाँ गायोंको तनिक भी क्लेश होता है वहाँ जप-पूजा-पाठ, यज्ञ, तप आदिमें भी सिद्धि नहीं मिलती, पूर्ण फलकी प्राप्तिकी कल्पना ही दुर्घट है।

भारत धर्मप्राण ऋषि-मुनियोंका देश होनेके कारण गौमाताके प्रति अनादिकालसे असीम श्रद्धा-भक्ति रखता रहा है। भारतमें गाय तथा गोवंशको अवध्य माना जाता रहा है। भारतमें विदेशी-विधर्मी मुसलमानोंके आधिपत्य जमानेके बाद यहाँ गोहत्याका कलंक जारी हुआ। मुस्लिम शासनकालमें छत्रपति शिवाजी, महाराणाप्रताप, गुरु गोविंदसिंह आदि राष्ट्रवीरोंने गोहत्याके कलंक के विरुद्ध निरन्तर संघर्ष किया। शिवाजीने तो बाल्यावस्थामें ही एक गोहत्यारे कसाईका वध कर, गायको मुक्त कर अपनी गोभक्तिका परिचय दिया था।

१८५७ का प्रथम स्वातन्त्र-समर गौमाताकी हत्यासे उत्पन्न आक्रोशका ही परिणाम था। जब अंग्रेज सरकारने कारतूसोंमें गायकी चर्बीका प्रयोग शुरू किया तो गोभक्त भारतीय सैनिक यह सहन नहीं कर पाये कि विदेशी विधर्मी अंग्रेज सरकार गायकी चर्बीके माध्यमसे उनका धर्म भ्रष्ट करे। वीर मंगल पाण्डेने बैरकपुर छावनीमें गायकी चर्बीसे अपवित्र कारतूसोंको छूनेसे इनकार करके खुला विद्रोह किया था। इस विद्रोहकी सजा उस गोभक्त, धर्मप्रेमी ब्राह्मण सैनिकको फाँसीके रूपमें दी गयी थी। स्वातन्त्रवीर सावरकरने अपने १८५७ का प्रथम स्वातन्त्र-समर नामक ग्रन्थमें अनेक तथ्य प्रस्तुत कर यह स्पष्ट किया है कि हिन्दू सैनिक सब कुछ सहनेको तैयार थे, किंतु गायकी चर्बीसे युक्त कारतूसोंको उन्होंने छूनेसे स्पष्ट इनकार कर विद्रोह कर डाला था।

सर्वप्रथम बैरकपुर (बंगाल) छावनीकी १९ वीं पल्टनको २९ मार्च, १८५७ को गायकी चर्बीसे युक्त कारतूस प्रयोगके लिये दिये गये। उससे पहले ही छावनियोंमें यह समाचार फैल चुका था कि विदेशी विधर्मी अंग्रेज हिन्दुस्तानियोंको ईसाई बनाने, उन्हें अपने धर्मसे भ्रष्ट करनेके लिये गौमाताकी चर्बी-लगे कारतूस मुँहसे खोलनेको बाध्य करेंगे। बैरकपुर छावनीमें जैसे ही सैनिकोंको चर्बीयुक्त कारतूस दिये गये कि गोभक्त सैनिक मंगल पाण्डे खुली परेड में बंदूक लेकर गरज पड़े- हम गोमाताके भक्त सनातनधर्मी हैं। चर्बी-लगे अपवित्र कारतूसोंको छूकर अपना धर्म भ्रष्ट कदापि नहीं करेंगे।

अंग्रेज सार्जेन्ट मेजर हूसनने मंगल पाण्डेको गिरफ्तार करनेका आदेश दिया। कोई भी हिन्दुस्तानी सैनिक इसके लिये तैयार नहीं हुआ। इसी बीच मंगल पाण्डेने अंग्रेज अफसरपर गोली दागकर उसे मार डाला। गोलीकी आवाज सुनकर लेफ्टिनेन्ट बाम सामने आया तो गोभक्त मंगल पाण्डेने उसे भी गोलियोंसे भूल डाला। परिणामत: अन्तमें मंगल पाण्डेको ८ अप्रैल, १८५७ को फाँसीपर लटका दिया गया। देश और धर्मके लिये, गो-प्रेमके लिये वीर मंगल पाण्डेकी यह १८५७ के स्वातन्त्र समरकी पहली शहादत थी।

आजके समयमें दूधके लिये गोशाला चलाना व्यावहारिक नहीं है। व्यवस्था-खर्च, सेवकोंका खर्च भारी पड़ जाता है। दूधके लिये गायें उसीको रखनी चाहिये जो स्वयं भी सेवा करे और उसके घरवाले भी सेवा कर सकें। सेवकों के भरोसे गोसेवा सम्भव नहीं। गोशालाओंका जन्म दूधकी पूर्तिके लिये नहीं हुआ है। दूधके लिये तो घर-घरमें गायें रखनेका रिवाज था। दूध न देनेवाली या लूली-लँगड़ी जिनको कोई न सँभाले, ऐसी असहाय गायोंके लिये गोशालाओं-पिंजरापोलोंकी

स्थापना हुई थी। आज भी गोशालाओंकी आवश्यकता गोसदनकी गायोंके लिये ही है। गोरक्षाके निमित्त शहरोंमें लागबाग-बित्ती आदिके रूपमें व्यापार से जो धर्मादा निकाला जाता था, उसीपर गोशाला-पिंजरापोल चलते थे। इन पिंजरापोलोंके कारण शहरमें आवारा गायोंका घूमना बंद हो जाता था। आज पिंजरापोलोंकी शक्ति बहुत कम रह गयी है। असहाय गायोंको सँभालना उनके बूतेके बाहर है।

गोमूत्र महान् औषधि है। आयुर्वेदकी अनेक दवाइयाँ गोमूत्रकी सहायतासे बनती हैं। गोमूत्रद्वारा फसलोंमें कीटनाशकोंका काम होता है, गोबर-गोमूत्रका खाद बूढ़ी, लूली, लँगड़ी गायोंको बचायेगा। अब किसानके लिये बूढ़ी गायें भाररूप न रहकर उपादेय हो जायँगी।

गोवंश सदैवसे भारतीय धर्म, कर्म एवं संस्कृति-सभ्यताका मूलाधार रहा है। कृषि-प्रधान देश होनेसे गोवंश भारतीय अर्थ-व्यवस्थाका भी स्रोत रहा है। भारतीय स्वतन्त्रता-संग्रामके अमर सेनानियों- लोकमान्य बालगंगाधरजी तिलक, महामना मालवीय, गोखले प्रभृतिने यह स्पष्ट घोषणा की थी कि स्वराज्य मिलते ही गोवध तुरंत बंद कर दिया जायगा।

भारतीय मनीषियोंने सम्पूर्ण गोवंशको मानवके अस्तित्व, रक्षण, पोषण, विकास और संवर्धनके लिये अनिवार्य बना दिया था। इसीलिये भारतमें गो-दुग्धने जन-समाजको विशिष्ट शक्ति, बल एवं विशुद्ध बुद्धि प्रदान की। गोबर-गोमूत्रने खेतीको पोषण दिया, बैल-ऊर्जाने कृषि, भारवहन, परिवहन तथा ग्रामोद्योगोंके लिये सम्पूर्ण तकनीकी विकसित करनेमें मदद की और मृत चर्मने चर्मोद्योग-सहित अनेक हस्तोद्योगोंका विकास किया। इस प्रकार गोधन भारतकी समृद्धिका आधार बन गया।

महात्मा गाँधीने कहा था- भारतमें गाय बचेगी तो ही मनुष्य बचेगा। गाय आज तो मृत्युके किनारे खड़ी है। यह नष्ट हो गयी तो उसके साथ हम भी यानी हमारी सभ्यता भी नष्ट हो जायगी।

गोवंशकी रक्षा ईश्वरकी सारी मूक सृष्टिकी रक्षा करना है। भारतकी सुख-समृद्धि गौके साथ जुड़ी हुई है। भारतमें गोवंशके प्रति करोड़ों लोगोंमें आस्था है, उसकी उपेक्षा नहीं की जानी चाहिये। जबतक भारतकी भूमिपर गोरक्त गिरेगा, तबतक देश सुख-शान्ति और धन-धान्यसे वंचित रहेगा।

गौओंकी परिक्रमा करनी चाहिये। वे सदा सबके लिये वन्दनीय हैं। गौएँ मंगलका स्थान हैं, दिव्य हैं। स्वयं ब्रह्माजीने इन्हें दिव्यगुणोंसे विभूषित बनाया है। जिनके गोबरसे ब्राह्मणोंके घर और देवताओंके मन्दिर भी शुद्ध होते हैं।

प्रतिदिन भक्तिभावसे गौओंको गोग्रास देनेमें श्रद्धा रखनी चाहिये। जो प्रतिदिन गोग्रास अर्पण करता है उसने अग्निहोत्र कर लिया, पितरोंको तृप्त कर दिया और देवताओंकी पूजा भी सम्पन्न कर ली।

जो राजा गो-ब्राह्मणकी सहायता करता है, उसका गुणगान स्वर्गमें भी होता है।

हिमालय प्रदेशका एक पर्वतीय भाग-विशेष कूर्माचल अथवा कुमाऊँके नामसे जाना जाता है। इसीका पौराणिक नाम मानस-खण्ड किंवा उत्तर कुरुदेश भी है। वर्तमानमें कुमाऊँसे अल्मोड़ा, पिथौरागढ़ तथा नैनीताल-इन तीन जनपदोंका बोध होता है। अपनी प्राकृतिक सौन्दर्य-रचनाके लिये यह विख्यात है। हरे-भरे वन-प्रदेशों तथा सुरम्भ हरी-भरी घाटियोंके लिये यह क्षेत्र अत्यन्त प्रसिद्ध है। यहाँका प्राकृतिक जीवन अत्यन्त सौम्य, शान्त एवं सादगीपूर्ण है। प्रकृतिका अत्यन्त सानिध्य होनेसे यहाँके प्राणिजगत्-जीवजगत्में भी अत्यन्त सहजता एवं स्वाभाविकता है।

हरे-भरे जंगल तथा विस्तृत घास-भरे चरागाह यहाँके गोवंशके लिये प्रकृति-प्रदत्त वरदान है। पहाड़ोंकी तलहटीमें बसे यहाँके ग्राम्य-जीवनका मुख्य आधार गौ ही है। जंगलके बाहुल्यसे हरा चारा वर्षभर विद्यमान रहता है।

अच्छे लोग गायके प्रति करुणाका भाव रखते हैं और गायको कोई कष्ट नहीं देते। न केवल वियतनाम, थाईलैंड और

कम्बोडिया अपितु अन्य अनेक देशोंने भी गौको पर्याप्त महत्त्व दिया है। ईसा पशुवधके विरोधी थे। बाइबिलमें वृषभको देवता माना गया है। फिलस्तीनमें खुदाईके उपरान्त गौकी मिट्टीकी कुछ मूर्तियाँ भी प्राप्त हुई थीं। यहूदी लोगोंमें गौका बड़ा आदर था। उनकी कुछ कथाओंके पढ़नेसे ज्ञात होता है कि वे बहुत ही निपुण गोपालक थे।

मिस्त्रमें भी गाय-बैलोंकी पूजा होती थी। उनकी हथोर नामक देवी गौ ही है। हथोरके समान आपिस वृषभकी भी उपासना की जाती है। पिरामिड और खुदाईसे प्राप्त मन्दिरों और शिला-लेखोंसे यह ज्ञात होता है कि प्राचीन मिस्त्रकी संस्कृतिमें गाय और बैलकी उपासना होती थी, मिस्त्रमें गोहत्या नहीं होती थी। गोहत्या करनेवालेको प्राणदण्ड मिलता था। जिस प्रकार हिन्दू वैतरणी पार करनेके लिये गायकी पूँछ पकड़ते हैं, उसी प्रकार मिस्त्रवासी गायकी पूँछ पकड़कर नील नदी पार करते हैं।

जब सिकन्दर भारतसे लौटकर यूनान जाने लगा था तो वह अपने साथ एक लाख उत्तम जातिकी गौएँ यहाँसे ले गया था।

पूर्वी देशों, विशेष रूपसे जापानमें मानव-स्वास्थ्यको लेकर जो नयी-नयी जागरूकता पैदा हो रही है, उसमें गौके दूधका सेवन व्यापक रूपसे बढ़ रहा है। जिस तरहसे अनेक देशोंमें जगह-जगह मशीनोंके माध्यमसे सिक्के डालकर शीतल पेय प्राप्त किये जा सकते हैं, वैसे वहाँ मशीनोंके माध्यमसे जगह-जगह दूधकी व्यवस्था उपलब्ध है।

हालैंड, जर्मनी, बेल्जियम, डेन्मार्क, आस्ट्रेलिया आदि देश गौके दूधके उत्पादनमें इतने आगे बढ़ गये हैं कि इनमेंसे कुछ देशोंमें यदि यह कहा जाय कि यहाँ दूधकी नहरें बहती हैं तो कोई अतिशयोक्ति नहीं होगी।

प्राचीन कालसे ही भारतीय समाजमें गायको गोमाताके नामसे ही सम्बोधित किया जाता है। भारत मूलत: कृषि-प्रधान देश है और गाय एवं बैल (वृषभ) का कृषिमें प्रमुख स्थान है। छठी सदी ईस्वी-पूर्वसे भारतके स्वतन्त्र होनेतक गौ तथा वृषभको प्राय: अधिकांश शासकोंद्वारा सिक्कोंपर स्थान मिला है, जो इनकी महत्ता एवं उपयोगिताको दर्शाता है। गायका सबसे अच्छा अमन प्राचीन भारतके लिच्छवी गणराज्यके शासक अंशुवर्माके सिक्कोंपर मिलता है। वृषभका अमन पञ्चमार्क, एरण, औदुम्बर, अयोध्या, कौशाम्बी, सातवाहन, उज्जयिनी, क्षत्रप, यौधेय, कृष्णराज (कलचुरी), सामन्तदेव, जहाँगीर, इन्दौर रियासत तथा स्वतन्त्र भारत के प्रथम सिक्कोंपर मिलता है।

लिच्छवी गणराज्य- प्राचीन भारतका प्रमुख गणराज्य लिच्छवी गणराज्य था, जो अब नेपाल कहलाता है। जिस प्रकार भारतवर्षमें चन्द्रगुप्त मौर्यके कालको प्रामाणिक मानते हैं, उसी प्रकार नेपालके इतिहासकार अंशुवर्माके कालको आधार मानकर चलते हैं। वह सिंहके समान बलवान् था। राजा अंशुवर्माने जो सिक्का प्रचलित किया वह उन्हींके नामसे प्रसिद्ध हुआ।

ब्राह्मण और गौ दोनों ब्रह्माजीकी संतान हैं। ब्रह्माजीकी संतति होनेसे ही उनकी ब्राह्मण संज्ञा हुई है। इसी प्रकार गौएँ भी ब्रह्माजीकी ही पुत्री हैं। इन दोनोंके सहयोगसे वैदिक यज्ञकी सिद्धि होती है। ब्राह्मणोंमें वेदमन्त्र प्रतिष्ठित हैं और गौओंमें हविष्यकी स्थिति है।

यहाँ गौ कहनेसे गोमाताका ग्रहण तो होता ही है, धरती माताका भी ग्रहण होता है। ये दोनों ही गोशब्दके वाच्यार्थ हैं। इसके सिवा धरती भी ब्रह्माजीकी ही पुत्री है और इसका आधिदैविक रूप भी गौ ही है। राजा पृथुने गोरूपमें ही पृथ्वीका दोहन किया था। असुरभावापन्न राजाओंके भारसे पीडित होकर पृथ्वीने गोरूपसे ही भगवान्‌को पुकारा था और महाराज परीक्षित्‌ने दिग्विजयके समय गोरूपमें ही पृथ्वीका दर्शन किया था। वस्तुत: धेनु और धरतीमें कोई भेद नहीं है। इन दोनों रूपोंमें प्रतिष्ठित हुई गौसे हविष्य (हवनीय पदार्थ) की उत्पत्ति होती है। धेनुसे दूध और धरतीसे अन्न होता है। ये दोनों हवि

हैं। अन्नका संस्कार करके नाना भाँतिके हवनोपयोगी पदार्थ तैयार किये जाते हैं। इसी प्रकार दूधसे भी दही, घी आदि अनेक प्रकारके हविष्य बनते हैं। ब्राह्मणोंद्वारा उच्चारित वेदमन्त्रसे गौके द्वारा प्रस्तुत किये हुए हवनीय पदार्थोंकी जो अग्निमें आहुति दी जाती है, उससे भाँति-भाँतिके विभिन्न यज्ञ सम्पन्न होते हैं।

दुग्धवती, खरीदी हुई, विद्याके प्रभावसे पायी हुई, प्राणोंकी भी अपेक्षा न कर पराक्रमसे पायी हुई, विवाहमें ससुर आदिसे मिली हुई, दु:खसे छुड़ायी हुई और अपने पोषणके लिये आयी हुई गौ प्रशंसनीय मानी जाती है। बलवती, शीलसम्पन्न तथा तरुण और उत्तम गन्धवाली सभी गौएँ प्रशंसनीय मानी जाती हैं, परंतु जैसे नदियोंमें गंगा नदी श्रेष्ठ मानी जाती है, इसी प्रकार गौओंमें कपिला गौ उत्तम मानी जाती है। सुन्दर स्वभाववाली, घास आदि चरनेमें अभ्यस्त, जवान, बछड़ेवाली, न्यायसे प्राप्त की हुई, दुधार गाय ब्राह्मणको देनी चाहिये।

बिना सींगकी तथा बूढ़ी गौका दान करनेसे दाताके भोग नष्ट होते हैं। लँगड़ी, लूली और कानी गौका दान करनेसे दाताका अध:पतन होता है और हानि होती है। अत्यन्त दुबली गौका दान करनेसे घर-बार नष्ट हो जाते हैं।

जो गौएँ पानी नहीं पी सकतीं, घास-चारा नहीं खा सकतीं, जिनकी इन्द्रियाँ क्षीण हो चुकी हैं, जो दूध नहीं दे सकतीं ऐसी गौओंका दान करनेवाला पुरुष सुखहीन लोकोंको प्राप्त होता है।

जिसका घास खाना और पानी पीना समाप्त हो चुका हो, जिसका दूध नष्ट हो गया हो, जिसकी इन्द्रियाँ काम न दे सकती हों, अर्थात् जो बूढ़ी और रोगिणी होनेके कारण जीर्ण-शीर्ण शरीरवाली हो गयी हों, ऐसी गौका दान करनेवाला मनुष्य, ब्राह्मणको व्यर्थ कष्टमें डालता है और स्वयं भी घोर नरकमें पड़ता है। क्रोध करनेवाली, मरकही, रूग्णा, दुबली-पतली तथा जिसका दाम न चुकाया गया हो, ऐसी गौका दान करना कदापि उचित नहीं है।

बाँझ, बीमार, अङ्गहीन, दुष्ट स्वभाववाली, बूढ़ी, जिसकी संतान मर गयी हो तथा अन्यायसे प्राप्त की हुई गायका दान नहीं करना चाहिये। जो मनुष्य देवताके लिये ऐसी गायका दान करता है, वह उलटा बहुत-से क्लेशोंको भोगकर नीची गतिको प्राप्त होता है। भड़की हुई, क्लेश भोगती हुई, कमजोर और रोगिणी तथा जिसका मूल्य नहीं चुकाया गया है, ऐसी गायका दान नहीं करना चाहिये। जिस गायसे लेनेवाले ब्राह्मणको क्लेश हो, वैसी गाय दाताके सभी लोकोंको विफल कर देती है, वह किसी भी उत्तम लोकमें नहीं जा सकता। जो दुबली हो, जिसका बछड़ा मर गया हो तथा जो ठाँठ, रोगिणी, अङ्गहीन और बूढ़ी हो, ऐसी गौ ब्राह्मणको नहीं देनी चाहिये।

जो स्वाध्यायसम्पन्न, शुद्धयोनि (कुलीन), शान्तचित्त, यज्ञपरायण, पापसे डरनेवाला, बहुज्ञ, गौओंपर क्षमाका भाव रखनेवाला, मृदुलस्वभाव, शरणागतवत्सल और जीविकाहीन हो, ऐसे ब्राह्मणको गो-दानका उत्तम पात्र बताया गया है। जो जीविकाके बिना बहुत कष्ट पा रहा हो तथा जिसको खेती या यज्ञ-होम करने, प्रसूता स्त्रीको दूध पिलाने तथा गुरु-सेवा अथवा बालकका लालन-पालन करनेके लिये गौकी आवश्यकता हो, उसको साधारण देश-कालमें भी दूध देनेवाली गौका दान करना चाहिये।

जो ब्राह्मण स्वाध्यायपरायण, कुलीन, प्रशान्त, अग्निहोत्री, पापसे डरनेवाला, बहुत विषयोंका जानकार, स्त्रियोंमें क्षमाशील, धर्मात्मा, गो-सेवामें तत्पर और व्रतोंका पालन करते-करते थक गया है, उसीको सुपात्र कहते हैं।

दुराचारी, पापी, लोभी, असत्यवादी तथा देवयज्ञ और श्राद्धकर्म न करनेवाले ब्राह्मणको किसी तरह गौ नहीं देनी चाहिये।

जो मनुष्य वध करनेके लिये गौ माँग रहा हो उसको और नास्तिकको तथा कसाई और गौसे जीविका चलानेवालेको भी गौ नहीं देनी चाहिये। वैसे पापियोंको देनेवाला पुरुष अक्षय नरकमें पड़ता है।

उशीनर, विष्वगश्व, नृग, भगीरथ, प्रसिद्ध यौवनाश्व-मान्धाता, मुचुकुन्द, भूरिद्युम्न, नैषध, सोमक, पुरूरवा, चक्रवर्ती भरत, जिसके वंशके सभी राजा भारत कहलाये, शूरवीर दशरथपुत्र रामचन्द्र, प्रसिद्ध कीर्तिवाले अन्य नरेन्द्र और विशालकर्मा राजा दिलीप- ये सभी गोदान करके दिव्य लोकोंको प्राप्त हुए।

गायकी दूसरी संतान है- बछिया। उसका समुचित-रूपसे पालन करनेपर आगे चलकर वह भी एक अच्छी गाय बन सकती है। गायसे दो प्रकारके लाभ होते हैं- लौकिक और पारलौकिक। पारलौकिक लाभ होता है उसके दानसे। शास्त्रोक्त रीतिसे गौका दान करके मनुष्य अत्यन्त भयंकर वैतरणी नदीको सहज ही पार कर सकते हैं। यदि दूसरोंके लिये गोदान किया गया तो वे भी वैतरणी पार तो होंगे ही, उनके उद्धाररूप पुण्यकर्मसे हम भी धर्मके भागी हो सकते हैं। लौकिक लाभ भी आगे चलकर पारलौकिक लाभमें परिणत हो जाता है। गाय घरपर रहेगी तो हमारे लिये दूध देगी- यह लौकिक लाभ है। उस दूधका दो प्रकारसे उपयोग हो सकता है- एक तो दही जमाकर या दूधसे ही घी बना लिया जाय अथवा दूधके द्वारा ही नानाप्रकारके खाद्य पदार्थ-दुग्धान्न तैयार कराये जायँ। घी और दुग्धान्न दोनों ही मानव-जीवनके लिये अत्यन्त उपयोगी वस्तुएँ हैं। घी परम पवित्र एवं सात्त्विक वस्तु है। इसके सेवनसे शरीर और मन दोनों शुद्ध होंगे। फिर शुद्ध विचारसे सदाचारकी वृद्धि होगी और सदाचारसे अन्त:करणकी पवित्रताके साथ-ही-साथ आयुकी भी वृद्धि होगी। इस तरहके शुद्ध, सात्त्विक एवं सदाचारपूर्ण जीवनमें सदा अधिकाधिक धर्मका सम्पादन होता रहेगा। घीके द्वारा यज्ञ करके भी हम धर्मोपार्जन कर सकते हैं। तीसरा लाभ है व्यापार। घीका व्यापार करके सुख-सम्पत्तिका उपार्जन होगा, उससे फिर यज्ञ और दान होंगे और उन दोनोंसे पूर्ववत् धर्मकी वृद्धि होती रहेगी।

घीकी ही भाँति दुग्धान्नसे भी व्यापार, धनोपार्जन, यज्ञ, दान और धर्म-प्राप्तिकी परम्परा सुस्थिर रह सकती है। वह श्राद्धमें भी उपयोगी है। श्राद्धसे पितरोंका उद्धार और उससे धर्मका सम्पादन भी होगा ही। दुग्धान्नका दान भी धर्मके एक अङ्गकी पुष्टि कर सकता है। जीवन-निर्वाहमें भी दुग्धान्नका बहुत बड़ा उपयोग है। स्वास्थ्य-सम्पादन तो उसकी खास विशेषता है ही। स्वस्थ शरीरसे योग्य संतानका उत्पादन और उसके द्वारा पितरोंके उद्धाररूपी धर्मका पालन भी अवश्यम्भावी है। इस तरह गाय अनेक शाखाओं तथा परम्पराओंसे हमें अर्थ और कामकी प्राप्ति करानेके साथ ही धर्मके सम्पादनमें भी अत्यधिक सहायता पहुँचाती है।

गोमाता सम्पूर्ण जगत्के मानवोंको प्रत्यक्ष या अप्रत्यक्ष-रूपसे भगवान्के निकट पहुँचनेमें सहायता करती रहती है। गौके समान मनुष्यमात्रकी सच्ची हितकारिणी दूसरी कोई नहीं है; हम सब लोगोंको तन, मन, धनसे गोमाताकी सेवा और रक्षामें तत्पर रहना चाहिये। इस संसारमें गौ एक अद्भुत प्राणी है, जो वास्तवमें सबके लिये महनीय, अमूल्य और कल्याणप्रद है। भारतीय संस्कृतिमें मानव-जीवन प्राप्त करनेका परम उद्देश्य है- अपना कल्याण करना अर्थात् अक्षय सुखकी प्राप्ति। इसके लिये अपने शास्त्रोंमें गो-सेवा से सरल कोई दूसरा साधन नहीं है।

मृत्युलोककी आधारशक्ति पृथ्वी और देवलोककी आधारशक्ति गौ है। पृथ्वीको भूलोक और गौ को गोलोक कहते हैं। भूलोक-अधोलोक (नीचे) में है और गोलोक- उर्ध्वलोक (ऊपर) में है। यह अत्युत्तम श्रेष्ठ लोक है। जन्म-जन्मान्तरकी परम साधनाके उपरान्त मानव-जीवनके लक्ष्यको पूर्ण कर लेनेवाले प्राणियोंको गोलोककी प्राप्ति होती है, जहाँ पहुँचकर प्राणी इस मृत्युलोकमें वापस नहीं लौटता, इसीका नाम है जन्म-मरणके बन्धनसे मुक्त होना अथवा स्वयंका कल्याण करना। इस गोलोकमें ही गौओंका निवास है।

गौएँ अपने कर्मसे प्रजाओंका और मुनियोंका धारण-पोषण करती रहती हैं। इनके व्यवहारमें शठता, कपटता नहीं होती,

ये सदा पवित्र कर्ममें ही लगी रहती हैं।

जहाँ गौका निवास होता है, वहाँ सर्वदा सुख-शान्तिका पूर्ण साम्राज्य उपस्थित रहता है। गोदर्शन, गोस्पर्श, गोपूजन, गोस्मरण, गोगुणानुकीर्तन और गोदान करनेसे मनुष्य सर्वविध पापोंसे मुक्त होकर अक्षयलोकका भोग प्राप्त करता है। गौकी परिक्रमा करनेसे सम्पूर्ण पृथ्वीकी परिक्रमा हो जाती है।

गायका दूध सर्वश्रेष्ठ है, यह बच्चोंको जीवन, जवानोंको स्वास्थ्य तथा बूढ़ोंको शक्ति प्रदान करता है। गायका विशुद्ध और ताजा दूध सर्वापेक्षा हितकर और विश्वस्त पोषक तत्त्वोंसे भरा होता है और उसमें लाभदायक जीवाणु तथा दूसरे स्वास्थ्यप्रद उपकरण होते हैं।

हमारा देश भारत सदासे धर्म-प्रधान रहा है। इसके कल्याणके लिये गो-रक्षा अनिवार्य धर्म कर्त्तव्य है। संसारके जो उपकार गोमाताने किये हैं, उनके महत्त्वको जानते हुए भी जो लोग गौकी उपेक्षा करते हैं, गो-रक्षाके प्रश्नपर ध्यान नहीं देते, वे कर्त्तव्य-रहित और अन्यायी हैं।

गाव: पवित्रं माङ्गल्यं गोषु लोका: प्रतिष्ठिता:। गावो वितन्वते यज्ञं गाव: सर्वांघसूदना: ॥

गायोंको नियमित ग्रास मात्र देनेसे भी मनुष्य स्वर्गलोकमें सम्मानित होता है। जिस घरमें गाय नहीं है, जहाँ वेद-ध्वनि नहीं होती और जो घर बालकोंसे भरा-पूरा न हो वह घर घर नहीं है, अपितु श्मशान है।

हम अपने घरको श्मशान न बनायें। गो-पालन करें, घी, दूधकी नदियाँ प्रवाहित करें, जिससे हमारा परिवार, हमारा गाँव, हमारा प्रदेश, हमारा देश भारतवर्ष पुन: पूर्वप्रतिष्ठाको प्राप्त कर सके। गोसंरक्षण, गोपालन और गोसंवर्धन सर्वथा सर्वत्र होना चाहिये। जब ऐसा होगा तभी हमारा देश कल्याण प्राप्त कर सकेगा और राष्ट्रकी प्रतिष्ठा ऊँची हो सकेगी।

हम जानते हैं कि गाय हमारे एक मित्रके रूपमें है, जिससे कभी कोई अपराध नहीं हुआ, जो हमारी पाई-पाई चुका देती है और घरकी-देशकी रक्षा करती है। धर्म, संस्कृति और सार्वजनिक स्वास्थ्यके साथ भी गाय जुड़ी रही है। यही नहीं सृष्टि-रचनामें भी गायको प्रथम स्थानप्राप्त है। अमृत-तुल्य दुग्ध पेय देनेके अतिरिक्त अपनी पवित्रता, शालीनता, निष्काम-सेवा और धर्मरक्षामें भी गाय पुरोगामिनी रही है। भारतकी परम पावन धरती माता गोवंशसे ही अनुप्रणित है। वैदिक परम्परामें गाय अनेक अर्थोंमें भारतीय जीवनसे जुड़ी है। जीवनके संचारसे है, जीवनकी गतिसे है, जीवनके लाभसे और जीवनके आधार से है। गाय हमारी कृषि-विकास एवं भारतीय अर्थ-व्यवस्थाकी आधार-शिला है, अति प्राचीन कालसे ही इसका महत्त्वपूर्ण स्थान रहा है। प्राचीन परम्परा और भारतीय कृषि-संस्कृतिमें गायका विशेष और पूजनीय स्थान रहा है। गो-भक्ति और गो-सेवाको उच्च स्थान प्राप्त है। गौएँ सर्वश्रेष्ठ, पवित्र तथा पूजा करने योग्य और संसारभरमें सबसे उत्तम ईश्वरीय देन हैं, क्योंकि अमृत-तुल्य दूध-दही, घी आदि हव्यके बिना संसारका कोई यज्ञ सम्पन्न नहीं हो सकता। गाय अपने दूध, दही, घी, गोबर, मूत्र, हड्डी, चमड़ा, बालों और सींगोंसे हमारा सब प्रकारका हित-कल्याण करती है। गोधनके बराबर जगत्में अन्य कोई धन नहीं है।

हम पशु तथा तुम हो मनुज, पर योग्य क्या तुमको यही?
हमने तुम्हें माँ की तरह, है दूध पीने को दिया, देकर कसाई को हमें, तुमने हमारा वध किया॥
क्या वश हमारा है भला, हम दीन हैं, बल हीन हैं, मारो कि पालो, कुछ करो तुम हम सदैव आधीन हैं।
प्रभु के यहाँ से भी कदाचित, आज हम असहाय हैं, इससे अधिक अब क्या कहें, हा। हम तुम्हारी गाय हैं॥
जारी रहा क्रम यदि यहाँ, यों ही हमारे नाश का, तो अस्त समझो सूर्य भारत-भाग्य के आकाश का॥

जो कि तनिक हरियाली रही, वह भी न रहे पायगी, यह स्वर्ण-भारत-भूमि बस, मरघट-मही बन जायगी।।

जब-जब भारतमें गोवंशका ऱ्हास हुआ - देवत्व-ममत्व-स्नेह-भावका विनाश हुआ है, तब-तब पुन: देवत्व-भाव पैदा करनेके लिये, गोवंशकी रक्षाके लिये कोई-न-कोई दैवीशक्ति भारतमें अवतरित हुई है।

देशकी बहुसंख्यक जनता आज भी गोवशंको नष्ट होते देखकर दुखी है, ८० प्रतिशत ग्रामीण भारतके गोभक्त नर-नारी, गाय और उसके वंशको बचाना चाहते हैं, किंतु इतने विपुल बहुमतकी भावनाको एक संगठित शक्तिके रूपमें जाग्रत् करके गोहत्याका प्रचण्ड प्रतिरोध करनेके लिये सुयोग्य, कर्मठ और सुदृढ़ नेतृत्वकी आवश्यकता है, उसका आज नितान्त अभाव है। समुचित गोपालनके लिये गोशाला सुन्दर, स्वच्छ और विचारपूर्वक बनायी जानी चाहिये, क्योंकि अच्छे स्थानमें रहनेपर पशु सुखी और स्वस्थ रहते हैं। विदेशोंमें बड़ी-बड़ी धनराशि लगाकर भव्य गोशालाओंका निर्माण किया जाता है। वहाँकी गोशालामें तो कहीं-कहीं बिजली तथा रेडियो तकका भी प्रबन्ध होता है।

जहाँतक संभव हो गायोंके रहनेकी जगह शान्त, खुली हुई और बस्तीसे दूर हो तो अच्छा है। इससे गाड़ी आदिके आने-जाने, बस्तीके नालोंकी गंदगी तथा संक्रमणका भय न रहेगा। यहाँ वे स्वच्छन्दतापूर्वक आ-जा सकेंगी।

गायको स्वच्छता पसंद है। वह स्वयं स्वच्छ रहना चाहती है और स्वच्छ स्थानपर ही बैठना चाहती है। गोशालाको स्वच्छ रखनेसे गोवंश बीमारीसे भी बचा रहता है। अत: गोशालाको स्वच्छ रखना बहुत ही आवश्यक है। गायोंके पानी पीनेके चरई, चारेकी खोर तथा आवास सभी स्वच्छ रहने चाहिये। गायोंको प्रतिदिन नहलाया जाना चाहिये। इसके लिये फव्वारा-स्नानकी व्यवस्था हो तो सर्वोत्तम है।

गोशालाके पास अपनी कृषि-भूमि होनी चाहिये। जिसमें गोवंशके लिये हरा चारा, भूसा तथा मोटे अनाज उत्पन्न किये जा सकें। एक गायके लिये एक एकड़ भूमि होना आदर्श स्थिति है।

गोशालाके निकट एक चरागाह होना चाहिये, जिसमें गोशालामें रहनेवाला गोवंश चरनेके लिये जा सके। गायको चरना तथा भ्रमण करना बहुत पसंद है। इससे वह स्वस्थ रहती है और उसके दूधकी श्रेष्ठता तथा गुणवत्ता भी बहुत बढ़ जाती है।

गोशालाको आदर्श गोशाला बनानेमें तथा आदर्श गोशालाके रूपमें चलानेके लिये निष्ठावान लोगोंकी प्रबन्ध-समिति होनी चाहिये और ऐसे ही निष्ठावान सेवक भी होने चाहिये, जो नि:स्वार्थ एवं निष्कामभावसे ईश्वरकी प्रसन्नता तथा गोमाताका आशीर्वाद पानेके लिये गोशालाके प्रबन्धमें कार्यरत हों। इससे कम व्यय होनेसे वह गोशाला स्वावलम्बी भी हो जायगी। गोशालामें छायादार वृक्ष होनेसे गायोंको बैठनेके लिये छाया मिल जाती है। यह वृक्ष ऐसे होने चाहिये जिनसे वायुकी भी शुद्धि होती रहे। इस दृष्टिसे नीमका वृक्ष सर्वाधिक उपयोगी है।

गोशालामें गोवंशके पालन एवं रख-रखावकी ही नहीं, बल्कि उसके विकासकी भी समुचित व्यवस्था होनी चाहिये। जो बछिया दूध देनेवाली अच्छी गाय बन सकती है, उसका गर्भाधान उन्हींकी नसलके अच्छे साँड़ोंसे करवाकर, उनको अच्छा पौष्टिक चारा देकर अधिक दूध देनेवाली गाय बनाने, बछड़ोंको अच्छे साँड़ बनाने अथवा अच्छे बैल बनानेका प्रयास लगातार होते रहना चाहिये।

यह एक पुण्यका कार्य है, परोपकारका कार्य है, इससे न केवल लौकिक समृद्धि ही प्राप्त होगी, बल्कि सच्चा सुख-संतोष भी प्राप्त होगा और बुद्धि शुद्ध होकर उनका अध्यात्मपथ भी प्रशस्त हो जायगा।

वर्तमानमें हरे चारोंकी कमी एवं श्रम-अधिनियमसे गोसदनोंको मुक्त करना जरूरी है। पशु-आहार-हेतु प्रयुक्त तिलहनके किस्मोंमें शासनद्वारा अन्य मदोंके अनुरूप सब्सिडी (शासन-अनुदान) देकर गोपालनको सहज बनाया जा सकता है।

आदर्श गोशालाको यथासम्भव पूर्णतया स्वावलम्बी होना चाहिये, उसके आयके स्रोत अपने होने चाहिये, तभी ठीकसे गायोंका पालन-पोषण और व्यवस्था-सम्बन्धी कार्य हो पाता है। यदि वह कुछ बचत कर सके तो जरूरतमन्द गोशालाओंको वितरित कर दें। इसके साथ ही योग्य, कुशल, प्रशिक्षित कामागारोंका होना भी एक अच्छी गोशालाके लिये बहुत आवश्यक है। क्योंकि सब साधन रहनेपर योग्य कामगारोंके अभावमें गोशाला ठीक चल नहीं पाती।

गायसे बढ़कर अन्य कोई भी पशु मनुष्यका मित्र नहीं है और न गाय-ऐसा कोई मधुर स्वभाववाला है। अपने दीप्त, शान्त और ध्यानमग्न नेत्रोंसे संसारको देखनेवाली गायके सौम्य रूपमें सचमुच देवत्व भरा है। उसमें एक महानता और भव्यता है, जो ग्रामदेवताके उपयुक्त है। उसमें शत-प्रतिशत मातृत्व है और उसका मनुष्य-जातिसे यही माताका सबन्ध है।

हमारी आधारशक्ति, प्राणशक्ति और वाक्-शक्ति सब कुछ गौ ही है। इस महिमामयी गौकी सम्पूर्ण विभूतियोंका वर्णन तथा उनका गौरव-गान हम जीवनभर करते रहें तो भी पार नहीं पा सकते।

मूर्खसे लेकर विद्वानतक सम्पूर्ण जगत्के मानव जो कुछ चाहते हैं तथा जिसकी प्राप्तिके लिये जीवनभर अनेक उपायोंका अवलम्बन एवं अथक परिश्रम करते हैं, उसका नाम है पुरुषार्थ। यह पुरुषार्थ चार भागोंमें विभक्त है- धर्म, अर्थ, काम और मोक्ष। विश्वके अखिल जन-समुदायकी समस्त इच्छाएँ इन्हीं चारोंमें केन्द्रीभूत हैं। अपने-अपने अधिकार और योग्यताके अनुसार कोई इनमेंसे एककी, कोई दोकी, कोई तीनकी, कोई चारोंकी और कोई केवल अन्तिम पुरुषार्थकी अभिलाषा रखते हैं। उक्त पुरुषार्थोंमें दो लौकिक हैं और दो पारमार्थिक। अर्थ और काम लौकिक हैं तथा धर्म और मोक्ष पारमार्थिक। जिसने क्रमश: लौकिक और पारलौकिक चारों पुरुषार्थोंको हस्तगत किया है, उसीका जीवन सभी दृष्टियोंसे परिपूर्ण माना गया है। जीवनकी इस परिपूर्णताको प्राप्त करनेके लिये गो-सेवा एक प्रधान साधन है।

बाजारोंमें बिकनेवाली सांसारिक सुख-भोगकी वस्तुएँ ही अर्थसे प्राप्त हो सकती हैं। धन किसीको पुत्र नहीं दे सकता, दैवी प्रकोपसे किसीकी रक्षा नहीं कर सकता। ये सब कामनाएँ धर्मसाध्य हैं। धर्मद्वारा उत्तम प्रारब्धका निर्माण करके अथवा कामनासिद्धिके प्रतिबन्धकोंको हटाकर अभीष्ट कामना प्राप्त की जा सकती है। गोसेवासे अर्थ और धर्म दोनोंकी प्राप्ति होती है, अत: उसके द्वारा दोनों तरहकी कामनाएँ सिद्ध हो सकती हैं।

गौओंकी सब प्रकारसे सेवा और रक्षा करना ही मनुष्यमात्रका परम कर्त्तव्य एवं उत्तम धर्म है।

गोसेवा स्वभावसे ही भगवत्प्रीत्यर्थ कर्म है। गोसेवा करनेवाला निश्चय ही भगवानका सान्निध्य प्राप्त करता है। गोमाता मानव जगतको पुरुषार्थ-चतुष्टयकी प्राप्ति करानेमें सर्वाग्रगण्य है।

भारतमें प्रारम्भसे ही गो-वंशका अत्यधिक समादर होता चला आ रहा है। पुराणोंमें कथा आती है कि समुद्र-मंथनके समय दिव्य कामधेनुका भी प्राकट्य हुआ था। वेदोंमें गायकी अपार महिमा निर्दिष्ट है। वेदोंका मुख्य उद्देश्य यज्ञ-कार्यका निर्वाह है, जिसके आधारपर सारा विश्व आधृत है एवं आप्यायित होता रहता है। इन यज्ञोंके प्राय: समस्त उपकरण गोमातासे ही प्राप्त होते हैं। अग्निप्रज्वलनमें गायोंके उपलका प्रयोग उत्कृष्ट माना गया है। पुन: पुरोडाश-निर्माण, हविष् द्रव्यकी कल्पना आदिमें आमीक्षा, घृत और इनके अभावमें गो-दुग्ध भी पर्याप्त माना गया है। यजमान यज्ञ-दीक्षाके समय पञ्चगव्यका प्राशन करता है। गव्य शब्द गायसे उत्पन्न द्रव्योंका ही निर्देशक है। पञ्चगव्य-प्राशनसे पूर्वक समस्त पाप जो अस्थि, मज्जातकमें प्रविष्ट होते हैं तत्काल नष्ट हो जाते हैं और वह समस्त पुण्य कर्मोंका अधिकारी हो जाता है। ऋषि-महर्षियोंकी दृष्टिमें गाय सात्त्विकता, पवित्रता, मंगलमयता, शक्ति और सुख-समृद्धिकी प्रतिनिधि मानी जाती है। यात्राके समय तथा प्रात:काल सर्वप्रथम उसका दर्शन अभ्युदयका सूचक माना जाता था। वेदों तथा पुराणोंमें यहाँतक उल्लेख है कि गायके शरीरमें समस्त देवता तथा तीर्थ भी

अधिष्ठित होते हैं और उसके रोम-रोममें तैंतीस करोड़ देवताओंका वास रहता है।

गायके शरीरको पवित्रताकी सीमा माना गया है। यहाँतक कि गो-शरीरका निकृष्ट द्रव्य मलतक भी महान् पवित्र और लक्ष्मीकी निवास-भूमि और उसका सम्बर्द्धन माना जाता है। उसके द्वारा उपलिप्त होनेपर समस्त कर्मकाण्ड, यज्ञ-याग-पूजा आदिकी भूमि सर्वथा निर्दोष, शुद्ध, पवित्र, कल्याण और सिद्धिप्रदायिनी बन जाती है। इस बातका कल्पग्रन्थोंके प्रारम्भमें तर्क एवं युक्तिपूर्वक उल्लेख किया गया है। इसी प्रकार गोमूत्र भी गंगाके तुल्य पवित्र माना जाता है। आयुर्वेद आदिमें इसका अन्य कई अनेक विशिष्ट ओषधियोंके रूपमें उपयोग निर्दिष्ट हुआ है।

देवतागण यज्ञमें हविर्भूत अन्नोंमें जौ, तण्डुल, तिल आदि उन्हीं द्रव्योंको विशेष आदर एवं उत्सुकतासे ग्रहण करते हैं जो गायोंके खाद तथा बैलोंके द्वारा फालकृष्ट हल आदिसे संचालित बीज वपन-क्रियासे उत्पन्न हुए हों। ध्यान देनेपर समस्त सनातन वैदिक क्रियाएँ एवं दैनिक व्यवहार देवता, मन्त्र और गोजातिद्वारा उत्पन्न द्रव्योंतकमें ही सीमित एवं पर्यवसित दीखते हैं।

इस तरह स्पष्ट दीखता है कि गव्य पदार्थों-दूध, दही, घृत आदिके बिना यज्ञोंका निष्पादन सम्भव नहीं और यज्ञ एवं गोद्रव्यके बिना संसारका संचालन और पालन-पोषण तथा लोकयात्रा क्षणभर भी सम्भव नहीं। वेद-पुराणोंमें गो-वंशकी समृद्धिके लिये अत्यधिक ध्यान दिया गया है। कई पुराणोंमें यह स्पष्टरूपसे कहा गया है कि सृष्टिका आधार और सम्पूर्ण लोकयात्राको धारण करनेवाली प्रथम वस्तु गाय ही है। जहाँ पृथ्वी एवं लोकको धारण करनेवाले ब्राह्मण, वेदादि धर्मशास्त्र, पतिव्रता स्त्रियाँ, सदाचारी, निर्लोभी तथा दानशील संत-महात्मा, महापुरुषों- इन सात प्रकारके प्राणियोंका उल्लेख है वहाँ महत्त्वकी दृष्टिसे गायें ही सर्वप्रथम परिगणित हैं।

गौओंके दर्शन, पूजा, नमस्कार, परिक्रमा, गौर-कण्डूति तथा गो-ग्रास देने, जल पिलाने आदि परिचर्याओंके द्वारा मनुष्यको दुर्लभ सिद्धियाँ प्राप्त होती हैं। इसके उदाहरणमें भगवान श्रीकृष्ण, पाँचों पाण्डव, राजेन्द्र दिलीप ओर उनके कुलमें उत्पन्न प्राय: सभी रघुवंशी राजाओं एवं महर्षि वसिष्ठादिको गो-सेवासे प्राप्त सिद्धियाँ इतिहासमें अत्यन्त प्रसिद्ध हैं। गो-सेवासे सर्वथा दुर्लभ सिद्धियाँ एवं मन:कामनाएँ भी शीघ्र सिद्ध हो जाती हैं, क्योंकि उसके शरीरमें सभी देवता, ऋषि, मुनि तथा गंगादि तीर्थोंका अधिष्ठान रहता है। भगवान् विष्णु भी गो-सेवासे सर्वाधिक प्रसन्न होते हैं और गो-सेवीको अनायास गो-लोककी प्राप्ति हो जाती है। अत: सभी ऋषि, महर्षि धर्मोंमें गो-सेवाको ही सर्वप्रथम और सर्वोत्कृष्ट धर्म मानते थे। ऋषियोंके शिष्य एवं उनके परिवार भी सर्वोत्कृष्ट गो-सेवाके लिये लालायित रहते थे। अत: उनके नामसे विभिन्न गोत्रोंका प्रचलन हुआ जो सभी वर्णोंमें गोभक्तिका प्रमाणरूपमें आज भभी विद्यमान हैं। गोत्र शब्दका अर्थ ही अपने गुरुके गुरुओंको सभी प्रकारके दु:ख-क्लेशसे त्राण, रक्षा और श्रद्धापूर्वक परिचर्याका परिचायक है। सारांश यह है कि सारा भारतवर्ष ही आमूलचूड़ गोभक्त और गो-सेवाव्रती था और सम्पूर्ण देश भी निर्विवादरूपसे सुख-शान्ति, ज्ञान-विज्ञान, सौहार्दभाव तथा धन-धान्य एवं हिरण्यरत्नोंसे परिपूर्ण था और यहाँतक कि इसी गो-सेवाके बलपुर वह जगद्गुरुक पदपर भी दीर्घकालतक समासीन रहा।

विश्वके प्राचीनतम साहित्य वैदिक संहिताओं तथा अन्य ब्राह्मण-आरण्यक, उपनिषद् आदि समस्त वैदिक वाङ्मय भी अधिकांश भागोंमें गो-महिमा, गो-रक्षाके एवं गो-पालनके विविध साधनोंका उल्लेख है और उनमें अनेक प्रकारकी कल्याणमयी गौओंका भी परिचय प्राप्त होता है। वेदोंके उपबृंहणभूत इतिहास-पुराणों तथा धर्मशास्त्रोंमें भी गो-माहात्म्यपर अपार सामग्री प्राप्त होती है। इन सबोंमें गो-सेवाके द्वारा सर्वोपरि श्रेय प्राप्त होने तथा इसी प्रकार गायको पीड़ा पहुँचानेमें महान् पातक तथा उसके फलस्वरूप क्लेश-प्राप्तिकी बात कही गयी है।

जिसके पाठसे गृह, जनपद, राष्ट्र आदिमें गोवंशकी अभिवृद्धि होती है और मनुओंके क्लेश अनायास दूर हो जाते हैं। इस विद्याको अनेक औपनिषद तथा पौराणिक विद्याओंसे अधिक महत्त्व कहा गया है। गायोंके अत्यधिक वृद्धिके मूल कारण होनेसे इसे गोमती-विद्या कहा गया है और गरुओंकी वृद्धि होनेपर दधि, दुग्ध, घृत आदि शुद्ध बहुमूल्य द्रव्योंकी अभिवृद्धि होनेके कारण प्रकारकी सुख-शान्ति रहती है। इससे देवता और समस्त विश्वके प्राणी परितृप्त हो जाते हैं। इसके पाठ करनेवालोंको लौकिक समृद्धियाँ और दिव्य ज्ञानकी प्राप्ति तो होती ही है साथ ही परलोक सर्वोत्तम भगवद्धाम गोलोककी प्राप्ति अनायास हो जाती है।

वे सभी प्रकारके परम कल्याण अर्थात् धर्म, अर्थ, काम एवं मोक्षकी भी सम्पादिका हैं। गायें समस्त उत्कृष्ट अन्नोंके उत्पादनकी मूलभूता शक्ति हैं और वे ही सभी देवताओंके भक्ष्यभूत हविष्यान्न और पुरोडाशआदिकी भी सर्वोत्कृष्ट मूल-उत्पादिका शक्ति हैं। ये सभी प्राणियोंको दर्शन-स्पर्शादिके द्वारा सर्वथा शुद्ध, निर्मल एवं निष्पाप कर देती हैं। वे दुग्ध, दधि तथा घृत आदि अमृतमय पदार्थोंका क्षरण करती हैं तथा उनके वत्सादि समर्थ वृषभ बनकर सभी प्रकारके भारी बोझा ढोने और अन्न आदि-उत्पादनका भार वहन करनेमें समर्थ होते हैं। साथ ही वेदमन्त्रोंसे पवित्रीकृत हविष्योंके द्वारा स्वर्गमें स्थित देवताओंतकको ये ही परितृप्त करती हैं। ऋषि-मुनियोंके यहाँ भी यज्ञों एवं पवित्र अग्निहोत्रादि कार्योंमें हवनीय द्रव्योंके लिये गौओंके ही घृत, दुग्ध आदि द्रव्योंका प्रयोग होता रहा है (अत: वे गायोंका विशेष श्रद्धाभक्तिसे पालन करते रहे हैं)। जहाँ कोई भी शरणदाता नहीं मिलता है वहाँ विश्वके समस्त प्राणियोंके लिये गायें ही सर्वोत्तम शरण-प्रदात्री बन जाती हैं। पवित्र वस्तुओंमें गायें ही सर्वाधिक पवित्र हैं तथा सभी प्रकारके समस्त मङ्गलजात पदार्थोंकी कारणभूता हैं। गायें स्वर्ग प्राप्त करनेकी प्रत्यक्ष मार्गभूता सोपान हैं और वे निश्चित रूपसे तथा सदासे ही समस्त धनसमृद्धिकी मूलभूत सनातन कारण रही हैं। लक्ष्मीको अपने शरीरमें स्थान देनेवाली गौओंको नमस्कार। सुरभीके कुलमें उत्पन्न शुद्ध, सरल एवं सुगन्धियुक्त गौओंको नमस्कार। ब्रह्मपुत्री गौओंको नमस्कार। अन्तर्बाह्यसे सर्वथा पवित्र एवं सुदूरतक समस्त वातावरणको शुद्ध एवं पवित्र करनेवाली गौओंको बार-बार नमस्कार। वास्तवमें गौएँ और ब्राह्मण दोनों एक कुलके ही प्राणी हैं, दोनोंमें विशुद्ध सत्त्व विद्यमान रहता है। ब्राह्मणोंमें वेदमन्त्रोंकी स्थिति है तो गौओंमें यज्ञके साधनभूत हविष्यकी इन दोनोंके द्वारा ही यज्ञ सम्पन्न होकर विष्णु आदि देवताओंसे लेकर समस्त चराचर प्राणियोंका आप्यायन होता है। यह सारा विश्व शुद्ध सत्त्वसे परिपूर्ण देवता, ब्राह्मण, गाय, साधु-सन्त-महात्मा तथा पतिव्रता सती साध्वी सदाचारिणी नारियोंके पुण्योंके आधारपर ही टिका हुआ है। ये ही धार्मिक प्राणी सम्पूर्ण विश्वको सदा धारण करते हैं। अत: ये सदा पूजनीय एवं वन्दनीय हैं। जिस जलराशिमें प्यासी गायें जल पीकर अपनी तृष्णा शान्त करती हैं और जहाँ-जहाँ जिस मार्गसे वे जलराशिको लाँघती हुई नदी आदिको पार करती हैं वहाँ-वहाँ गंगा, यमुना, सिन्धु, सरस्वती आदि नदियों या तीर्थ निश्चित रूपसे विद्यमान रहते हैं। गौ-रूपी तीर्थमें गंगा आदि सभी नदियाँ तथा तीर्थ निवास करते हैं और गौओंके रज:कणमें सभी प्रकारकी निरन्तर वृद्धि होनेवाली धर्म-राशि एवं पुष्टिका निवास रहता है। गायोंके गोबरमें साक्षात् भगवती लक्ष्मी निरन्तर निवास करती हैं और इन्हें प्रणाम करनेमें चतुष्पाद धर्म सम्पन्न हो जाता है। अत: बुद्धिमान् एवं कल्याणकामी पुरुषको गायोंको निरन्तर प्रणाम करना चाहिये।

मतलब यह कि गायोंके लिये गोचर-भूमि छोड़ना महान पुण्य और गोचर-भूमिको नष्ट करना महापाप है। भारतवर्ष में आज गोचर-भूमिकी बड़ी कमी है। अत: सबको चेष्टा करके प्रचुर गोचर-भूमि छोड़नी और छुड़वानी चाहिये।

नारी विज्ञान

*** स्त्रियों के आंसु पुरुषों की क्रोधाग्नि भडकाने में तेल का काम देते है।**

*** किस अंदाज से तुम औरत को छल लेते हो? देवियां कहकर दासियों में बदल लेते हो।**

स्त्री तो एक मूर्तिमान बलिदान है। वह जब सच्ची भावनासे किसी भी काम का बीड़ा उठाती है तो वह पहाड़ों को भी हिला देती है। औरत भी उसी को प्यार करती है जो शूरवीर हो, दिलावर हो, निडर हो। कामिनी के शब्द जितनी आसानी से दीन और ईमान को गारत कर सकते है उतनी ही आसानी से उनका उद्धार भी कर सकते है।

आज २१ वीं सदी की नारी इन सभी तथाकथित मानसिकताओं के बंधनों को तोड़ पुरुषों के साथ कदम से कदम मिला रही है। प्रबंधन के क्षेत्र में, इंजीनियरिंग के क्षेत्र में, डॉक्टरी के क्षेत्र में, राजनीति के क्षेत्र में यही नहीं अंतरिक्ष और माउंटएवरेस्ट पर भी महिला अपनी उपस्थिति दर्ज करा चुकी है। जहां पहले पुरुषों का वर्चस्व होता था। कुछ वर्षों में नारी एक महाशक्ति बनकर उभरी है। साथ ही यह भी सच है कि अभी भी ऐसी महिलाओं की संख्या कम नहीं है जो पिछड़ी हुई है। उन्हें अपने हक व अधिकारों का ज्ञान नहीं है, देश में लड़की होने पर उसे आज भी तिरस्कार की नजरों से देखा जाता है, उसे बोझा समझा जाता है। पंजाब, हिमाचल प्रदेश, गुजरात, हरियाणा में कराए गए सर्वे में प्रति हजार पुरुषों पर ८०० से भी कम महिलाएं हैं।

एक सर्वे में यह भी ज्ञात हुआ है कि भारत में महिलाएं प्रतिदिन ७.३० घंटे काम करती हैं, जबकि पुरुष ६.३० घंटे लेकिन इनके अधिकतर काम घर में ही होते हैं इसलिए इन्हें तवज्जों नहीं दी जाती है। यह देश की विडंबना ही है कि जहां दुर्गा, काली, लक्ष्मी को पूजा जाता है वहीं उनका निरादर भी किया जाता है। भारत की ५० करोड़ जनसंख्या महिला है। ऐसे में उन्हें उपेक्षित करना देश की प्रगति में रुकावट पैदा करना है।

स्वयं महिला में जब तक अन्याय का प्रतिकार करने का जजबा पैदा नहीं होगा, उसे कोई नहीं बचा सकता। क्योंकि अच्छे-अच्छे लिखे और ज्ञान की बातें करनेवाले पुरुष पग-पग अपनी पत्नियों और घर की अन्य महिला सदस्यों को नीचा दिखाने के लिए तैयार बैठे रहते हैं। स्वयं का संरक्षण करने का दम केवल शिक्षा से आता है, इसलिए यदि महिलाओं को घरेलू हिंसा से बचना है तो विवाह पूर्व माता-पिता उनकी शिक्षा पर पर्याप्त ध्यान दें। पुरुष कभी स्त्री को समान अधिकार नहीं देगा। वह तो स्वयं स्त्री को ही छीनकर लेना पड़ेगा।

भगवान ने मानव को अपने जैसा बनाया था, परंतु समय के साथ धीरे-धीरे विधाता की यह सर्वोच्च कृति भी अपनी दिव्यता से नीचे गिर गई। उसकी आत्मा में काम-क्रोध की मिलावट हो गई। पुरुष ने शारीरिक बल के कारण प्रथम दर्जे का प्राणी होने का अहंकार पाल लिया और नारी को अपने से कमतर बनाए रखने के लिए उस पर अत्याचार करने लगा।

हमारे शास्त्रों में हमारी भाषा में, हमारी संस्कृति में इसकी अभिव्यक्ति किस तरह हुई है। नारी को भोग्या कहा गया है। वह पुरुष की दासी है। वह पांवों की जूती है। नारी की अक्ल उसके बाएं पांव की एड़ी में होती है। नारी के लिए उसका पति ही परमेश्वर होता है।

यदि गुरु आहार, व्यवहार, विचार और आचार की दृष्टि से भ्रष्ट हो, तो भी उससे सीखना चाहिए। लेकिन नारी को ऐसी छूट नहीं दी, उसे मारपीट कर भी सदा वश में ही रखना चाहिए। ढोल, गंवार, शुद्र, पशु, नारी, ये सब ताड़न के अधिकारी। नारी नर्क का द्वार होती है।

ऐसी बातें घृणित समाज ने ये बातें सिखाई हैं, उनमें तथाकथित साधु, संत, धर्माचार्य और सामाजिक मूल्यों के ठेकेदार

लोग शामिल रहे हैं। ऐसी बातों के प्रचार से पुरुषों को स्त्रियों का दमन करने का नैतिक आधार मिलता रहा है। लेकिन समय-समय पर कुछ समाज सुधारकों ने नारी की पीड़ा को समझने की भी कोशिश की। उन्होंने उसको सबल बनाने के पक्ष में आवाज उठाई। नर-नारी के रिश्ते को पवित्र बनाने के लिए जागृति लाना चाहिए। नारी और नर दोनों एक-दूसरे के सहयोगी हों और दोनों दिव्य मर्यादा का पालन करें। उनमें अगाध आत्मिक प्रेम हो, पर सम्मान का भाव भी हो। वह आसुरी वृत्तियों का आश्रय न बने, शोषण का माध्यम न बने। वे गृहस्थी की गाड़ी के दो समान पहिए बनें।

स्त्रियों की स्थिति मजबूत बनाने के लिए प्रजापिता ब्रह्मकुमारी ईश्वरीय विश्वविद्यालय की स्थापना की। इस संगठन ने नारी को कामिनी के बजाय कल्याणी और अबला के बजाय शक्तिरूपा बनाने के लिए ७५ वर्षों से कड़ी चुनौतियों का सामना किया है। इसके संस्थापक ने नारी स्वर्ग का द्वार है और वंदे मातरम् का नारा उस समय लगाया जब किसी कोने में, कोई इस बारे में आवाज उठाने की भी हिम्मत नहीं करता था। मनुष्य नीरस प्राणी नहीं, सरस है। उस सरसता को स्त्री बढ़ाती है। किन्तु सरसता धर्म विरुद्ध न हो। नारी के बिना नर अधूरा है। उसका कोई महत्व नहीं, उसकी कोई सत्ता नहीं, उसका चिरस्थायी अस्तित्व नहीं, उसकी मर्यादा नहीं, परम्परा नहीं।

हम ऐसे देश की बात कर रहे हैं जहां देश का प्रथम नागरिक होने का सम्मान महिला को मिला हुआ है बावजूद इसके अब तक महिलाओं को ३३ प्रतिशत आरक्षण भी ढंग से नहीं मिल पाया है। ऐसा नहीं कि भारतीय समाज में गहरी पैठ जमा चुकीं ऐसी ही कई कुरीतियों के लिए केवल पुरुषों को ही जिम्मेदार ठहराया जाए बल्कि इसके बड़े पैमाने में महिलाएं स्वयं भी जिम्मेदार हैं।

एक जमाना था जब नर-नारी एक गाड़ी के दो पहिए हुआ करते थे। तब नारी घर की जिम्मेदारियां निभाते हुए बच्चों को संस्कारित करती थी। संयुक्त परिवारों में बच्चों का बचपन, दादी-नानी, मौसी-बुआ के सान्निध्य में बीतता था। जमाना बदला और ब्रिटिश काल से मुक्ति के लिए नारी आंदोलन में कूद पड़ीं। राजा राममोहन राय ने नारियों व नरों को समानता का अधिकार दिए जाने की बात कह कर एक नई बहस को जन्म दिया। शायद ये वही पहल थी जहां से नारियों को शिक्षा का अधिकार मिला। बापू व नेहरू के नेतृत्व में महिलाएं स्वतंत्रता आंदोलन की भागीदार बनीं जिसका परिणाम देश की प्रथम प्रधानमंत्री इंदिरा गांधी स्वरूप मिला। आज स्थिति यह है कि आज समाज का ऐसा ही कोई कार्य जिसे नारियों ने अपने स्पर्श से कुंदन न बनाया हो। देश की प्रथम महिला प्रतिभा पाटील, संप्रग अध्यक्ष सोनिया गांधी, विपक्ष की नेता सुषमा स्वराज, सर्वोच्च न्यायायल की न्यायाधीश ज्ञानसुधा मिश्र, राज्यों की वर्तमान व पूर्व मुख्यमंत्री क्रमश: शीला दीक्षित, मायावती, वसुंधरा राजे, स्वर साम्राज्ञीद्वय लता मंगेशकर, आशा भोसले, भारतीय मूल की एस्ट्रोनॉट कल्पना चावला, सुनीता विलियम, सीईओ इंदिरा नूई, चंदा कोचर जैसे ऐसे कई नाम हैं जिन्होंने न सिर्फ घर-परिवार की जिम्मेदारी बखूबी निभाई बल्कि अपने-अपने क्षेत्र में देश के नाम को एक अलग पहचान दी। हाल ही में जारी किए गए आंकड़ों से स्पष्ट है कि पुरुषों की तुलना में महिलाएं कहीं ज्यादा शिक्षित, समझदार व कर्त्तव्यनिष्ठ हैं। यह भारतीय समाज का एक पहलू है।

दूसरा पहलू यह भी है कि यहां आज भी बच्चियों, युवतियों व महिलाओं को केवल और केवल उपभोग की वस्तु समझा जा रहा है। अगर हम लिंगानुपात की बात करें तो किसी जमाने में नर-नारियों की संख्या लगभग समान थी किंतु आज यही अनुपात घट कर प्रति १००० नर के पीछे केवल ८७३ ही नारियां रह गई हैं। इतने पढ़े-लिखे समाज में आज भी दहेज रूपी दानव मुंह बाये खड़ा है। शिक्षा के दरबार हों या धार्मिक स्थल, सरेराह हो या चार दीवारी नारियों की अस्मत और जान कहीं भी सुरक्षित नहीं है।

HHH(५६४)HHH

नारी कहीं भी सुरक्षित नहीं है और पुरुष प्रधान समाज का अस्तित्व दिन दोगुनी-रात चौगुनी तरक्की कर रहा है। २ जी स्पैक्ट्रम मामले के बाद सुर्खियों में आई नीरा राडिया हो या फिर मुंबई में विश्वकप में भारत की जीत के बाद न्यूड हा जाने की घोषणा कर सुर्खियों में आई पूनम पांडेय, ऐसी ही कई महिलाओं की इस तरह की घटिया मानसिकता ने पुरुषों को गलत करने के लिए उकसाया। अगर पुरुषों के मुकाबले महिलाओं की संख्या कम हुई है तो भी इसके लिए महिलाएं ही जिम्मेदार हैं क्योंकि वे खुद ही अपने गर्भ में पल रहे अंश की दुश्मन बन जाती हैं। कुछ कर गुजरने, पुरुषों के मुकाबले कुछ अलग करने, स्वयं का अस्तित्व बनाने की चाह में आज की पढ़ी-लिखी नारियां ऐसी बेतहाशा भागी जा रही हैं कि उन्हें परिवार की ओर ध्यान देने की फुर्सत भी नहीं है। ऐसा नहीं कि ये महिलाओं के विकास को नकारात्मक दृष्टि से देखने का प्रयास है बल्कि ये तो आज और उस जमाने की तुलना है जिसमें इतनी भयंकर दरार आ चुकी है जिसे पाटना मुश्किल बनता जाएगा। अभी भी कुछ नहीं बिगड़ा है महिलाओं को अपना ही अस्तित्व बचाने के लिए एक बार फिर वही भूमिका निभानी चाहिए जैसा कि मां दुर्गा-चंडी, महारानी लक्ष्मी बाई, सावित्री बाई फुले, मदर टेरेसा जैसी शक्तियों ने निभाई हैं। शायद तब ही यह स्पष्ट हो पाएगा कि तेजी से बदलते युग में नारियों का उत्थान हो रहा है या फिर पतन।

स्त्रियाँ सौन्दर्य को देखकर पिघल जाती हैं। कुछ पतिपरायण आदर्श सतियों को छोड़कर स्त्री मात्र सुंदर सुवेष पुरुष को देखकर अपने आपको खो बैठती हैं, फिर चाहे वह सुन्दर पुरुष कोई भी क्यों न हो। विधाता ने स्त्रियों में पुरुषों के सौन्दर्य के प्रति, पुरुषों में स्त्रियों के सौन्दर्य के प्रति आकृष्ट होने का दोष अथवा गुण स्वाभाविक भर दिया है, उसे कोई मिटा नहीं सकता अन्यथा नहीं कर सकता इससे बचना नर का काम नहीं है।

जब स्त्री आपे से बाहर हो जाती है, तो न कहने योग्य बातों को भी कह डालती है। स्त्री अपने मनोगत भावों को क्रोध में छिपा नहीं सकती। क्रोधित स्त्री के सामने से हट जाना चहिये। उसे उत्तर न देना चाहिये और उसकी बुरी बातों का बुरा भी न मानना चाहिये। स्त्रियों का हृदय ऐसा ही होता है। प्रेम में पग-पग पर अनिष्ट की शमा दिखाई देने लगती है।

कैसा भी क्रुद्ध पुरुष क्यों न हो। अत्यन्त सुन्दरी स्त्री को विनय और नम्रता के साथ सम्मुख देखकर उसका क्रोध कपूर के समान उड़ जाता है।

भरण-पोषण करने से पति को भर्ता कहा गया है। जिसके भर्ता का देहान्त हो जाय, उस नारी के दु:ख के विषय में जो भी कुछ कहा जाय वही थोड़ा है। पति ही स्त्रियों का सर्वस्व है। विधवा स्त्री उसी प्रकार शोभा नहीं पाती जैसे बिना जल की नदी। पतिव्रता पत्नी के करुणाक्रन्दन में करुणा की ऐसी धार बहती है कि उसमें आस-पास के सभी आर्द्र हो जाते हैं। सती चाहे तो अपनी दृष्टि से तीनों लोकों को भस्म कर सकती है।

कहा जाता है कि महिलाओं के पेट में कोई बात पचती नहीं। महिलाओं को यह बात बुरी भले ही लगे लेकिन देखने में आता है कि काफी हद तक यह बात सही है। अधिकतर महिलाएं किसी भी बात को अपने पेट में पचा नहीं पाती हैं और उन्हें दूसरों को बढ़ा-चढ़ाकर बताने पर ही उन्हें शांति मिलती है। कई बार देखने में यह भी आता है कि कुछ महिलाएं अपना भेद भी पचा नहीं पातीं और उसे भी किसी न किसी को बता ही बैठती हैं जो कि आगे चलकर उनके लिए सिरदर्द साबित होता है।

उत्तेजना और आग्रह की भावना से प्रेरित होकर लोग किसी गोपनीय बात को दूसरों से कह देते हैं और उत्तेजना से उत्पन्न मजे को लोगों में बांटते हैं। एक भेद या सीक्रेट वह बात होती है जिसका बात शुरू करनेवाले के अलावा और किसी को नहीं पता होता। जिसने भी अपना कोई भेद बताया है वह अपने ऊपर भरोसा करके बताया होता है।

आदमी की मुसीबत और उसके गमों को कम करने के लिये ही खुदा ने औरत को बनाया है। इसलिये औरत की इज्जत

करने में ही आदमी की भलाई है।

स्त्रियों के लिये चरित्र-सम्बन्धी दोष अत्यन्त ही लज्जाजनक और असह्य है। पति से परित्यक्ता नारी का क्या महत्व है। नारी की शोभा पति से ही है।

मधुर रस में आलम्बन स्त्री ही है। रस का आस्वादन वैसे तो परस्पर में होता है, किन्तु स्त्री-हृदय अत्यधिक सरस होता है। स्त्री, स्त्री से उतनी लज्जा भी नहीं करती। अनुराग की मात्रा तो स्त्रियों में पुरुषों की अपेक्षा अत्यधिक होती ही है, किन्तु साथ ही उनमें लज्जा का भी प्राबल्य होता है। लज्जा के कारण वे सहसा अपने मनोगत भावों को वाणी द्वारा स्पष्ट प्रकट कर नहीं सकतीं। केवल हाव-भाव और चेष्टा द्वारा ही उसे अव्यक्त रीति से व्यक्त करती हैं। पुरुष निर्लज्ज होता है। स्त्रियों की अपेक्षा उसमें लज्जा कम होती है, इसलिये वाणीद्वारा प्रथम वही प्रस्ताव करता है। कामिनियों को वही पुरुष श्रेष्ठ, अत्यन्त प्रिय होता है, जो गुणग्राही हो, रति-प्रिय हो और सरस हृदयवाला हो।

इस संसार में एक मात्र स्त्री ही तो सभी सुखों की खान है। कोई वस्तु शब्द से सुख देती है, कोई रूप से, कोई रस के द्वारा, कोई गन्ध के द्वारा और कोई स्पर्श के द्वारा। स्त्री में तो शब्द, रूप, रस, गन्ध और स्पर्श- ये पाँचों सुख हैं। स्त्री ही जगत् की जननी है। स्त्री के बिना आकर्षण नहीं, कार्य में प्रवृत्ति नहीं। नीरस जीवन में सरलता का पुट लगानेवाली नारी ही तो है?

स्त्री के कई रूप होते हैं- पुत्री, भगिनी, धर्मपत्नी, माता, अनन्या और कामिनी। जैसे एक ही रस पात्र-भेद से पृथक्-पृथक् गुण देनेवाला हो जाता है, वैसे ही एक स्त्री सम्बन्ध-भेद से भिन्न-भिन्न रूपोंवाली बन जाती है पुत्री वात्सल्य की मूर्ति है, भगिनी दया की मूर्ति है, धर्म-पत्नी प्रेम की मूर्ति है, माता क्षमा की मूर्ति है, अनन्या उपासना की मूर्ति है और कामिनी साक्षात् दोषों की मूर्ति है। स्त्री का पुत्री और भगिनी रूप लाल्य है, उसका लालन पालन करना चाहिये। वह भोली बालिका सभी के चित्त को चुराती है, मन्द-मन्द मुस्कराकर जीवन में वात्सल्य उदय करती है। उसके लिये संसार में सभी पिता और भाई हैं। जब वह धर्मपत्नी बन जाती है, तब संसार में उसके लिये एक ही पुरुष रह जाता है। शेष या तो रहते नहीं, यदि रहते भी हैं तो पिता भाई, पुत्र, आदि के रूप में ही रहते हैं। वह सबकी श्रद्धाभाजन बनती है। वह सती के रूप में संसार को धारण करती है। वही जब माता बन जाती है, तब सबको अपनी सन्तान समझती है, उसकी संज्ञा जाया हो जाती है, पति ही उसके उदर में प्रवेश करके पुत्र रूप से पुन: प्रकट होता है। वह जगजननी के रूप से संसार में प्रकट होती है। सभी उसकी वन्दना करते हैं। वह माता-रूप में सबके प्रति वात्सल्य प्रकट करती है। वह निन्दनीय नहीं, वन्दनीय है। इन रूपों के अतिरिक्त नारी का एक अनन्यारूप भी है। पति जीवित हो या मर गया हो, विवाह हुआ हो या न हुआ हो, वह निरन्तर भगवत् चिन्तन में ही अपना समय बिताती है। सती के लिये तो पति ही परमेश्वर है, किन्तु अनन्या के लिये माता, पिता, भाई पति ये- संसारी सम्बन्ध हैं, इनसे वह घृणा नहीं करती, इनके प्रति भी उसका आदर है। किन्तु वह सामान्य आदर है। अनन्य अनुरक्ति तो उसकी अच्युत-पाद-पद्मों में है। उन्हीं को वह अपना पति, सर्वस्व, समझती है।

इन सबसे पृथक् स्त्री का एक कामिनी रूप है, काम-तृप्ति ही जिसका लक्ष्य है। वह कामिनी या स्वैरिणी कहलाती है। उसका एक पति नहीं होता। जिनसे उसकी काम-तृप्ति होती है, उन्हीं को वह प्यार करने लगती है, उन्हीं से अपना सम्बन्ध स्थापित करती है। कामिनियाँ चाहे घर में रहें या हाट में बैठे, उनमें एक पण्य स्त्री होती है, एक कामिनी। दोनों ही स्वैरिणी हैं। वैश्या चाहे इस लोक की हो, या स्वर्ग की- दोनों ही समान हैं। दोनों के ही हृदय छुरे के समान होते हैं। ऐसी व्यभिचारिणी स्त्रियाँ किसी से शुद्ध प्रेम नहीं कर सकतीं। उनका प्रेम तो स्वार्थजन्य होता है। जब तक जिससे स्वार्थ सधता है, तब तक वे उसके प्रति प्रेम प्रदर्शित करती रहती हैं। जहाँ स्वार्थ में आघात हुआ, ये चण्डी बन जाती हैं, सब कुछ करने

को उतारू हो जाती हैं। ऐसी स्वैरिणी स्त्रियाँ बड़ी निर्दयी होती हैं। ये अपने विरुद्ध आचरण को सहन नहीं कर सकतीं। अपने काम-भोग में इन्हें जहाँ व्याघात दिखायी दिया, वहाँ ये राक्षसी रूप धारण कर लेती हैं। ये तनिक से स्वार्थ के लिये बड़े-बड़े साहस का काम कर बैठती हैं।

ये पहिले तो विश्वास उत्पन्न कर लेती हैं, फिर स्वार्थ के वशीभूत होकर तनिक-सी बात पर विश्वासघात कर डालती हैं। ये भाई, पिता, प्रेमी सभी को विष दे सकती हैं, काम के पीछे पुत्र की हत्या कर सकती हैं। गर्भ के बालक को गिरा सकती हैं, भ्रूण हत्या जैसे पाप को हँसते-हँसते कर सकती हैं।

जार के कहने से वे पति तक को मार डालती है। पति का शव पड़ा है और वे जार के साथ हँस रही हैं, खेल रही हैं, क्रीड़ा कर रही हैं। सगे-भाई की छाती पर चढ़कर उसे मार सकती हैं। ये कुलटा कामिनियाँ सर्वथा सौहार्द्र-शून्य होती हैं। भोले-भाले कामी पुरुष चक्कर मे फँस जाते हैं, इन्हें अपनी प्रेयसी मानने लगते हैं, इन पर विश्वास करते हैं। अन्त में ये उनके साथ छल करती है। जैसे गो को कितनी घास में छोड़ दो, वह एक स्थान पर न चुगेंगी, नई-नई घास की इच्छा करेगी। ऐसे ही ये स्वेच्छाचारिणी-व्यभिचारिणी कामिनियाँ नित्य नये पति की इच्छा करती हैं। जिसे भी देखकर इनका चित्त चंचल हो जाता है, उसे तुरन्त फँसाने का जाल रचती हैं। पिछले प्रेमी को उसी प्रकार फेंक देती हैं, जैसे दूध से मक्खी को फेंक देते हैं।

जहाँ ये मनमानी करने लगीं, जहाँ ये स्वच्छन्द गामिनी हुईं, तहाँ इनमें विवेक नहीं रहता। मन में जो आता जाता है उसे ही अनेकों उपायों से कर लेती हैं। देखने में बड़ी भोली-भाली सरला दिखाई देती हैं। भीतर चाहें कितना भी रागद्वेष भरा हो। हृदय में चाहें पैनी छुरी कतरनी चल रही हो, किन्तु ऊपर से काली-काली घुँघराली लटों से आवृत शरदकालीन कमल कुसुम के सदृश अपने मनोहर मुख को मन्द-मन्द मुस्कान से सदा प्रफुल्लित बनाये रखेंगी। बाणी ऐसी बोलेंगी मानों अमृत रस में पगे हुए ही बोल हों। इन्हें जिससे अपनी अभिलाषा पूर्ण करानी होगी, उसके इतने अनुकूल बन जायँगी कि प्राणों से अधिक प्रियतमा दिखाई देंगी। किन्तु ऐसी स्वार्थ में तत्परा, कुलटा स्त्रियों का कोई भी अपना सगा नहीं। कोई भी सम्बन्धी नहीं। कोई भी प्रिय नहीं, कोई भी बन्धु बान्धव नहीं। ये अपने स्वार्थ के लिये पति, पुत्र, पिता, भाई तथा चाहें जिस सम्बन्धी की हत्या करा सकती हैं। सती तो पति की होती हैं किन्तु कामिनी किसी की भी नहीं होती।

समाज की सबसे अमूल्य सम्पत्ति स्त्रियाँ ही हैं। जिस समाज की स्त्रियाँ व्यभिचारिणी हो जाती हैं, वह पतित हो जाता है। स्त्रियों के दुष्टा हो जाने से सृष्टि में वर्णसंकरता-छा जाती है। वर्णसंकर प्राय: नास्तिक ही होते हैं। शुद्ध रज वीर्य में ही आस्तिक भाव टिक सकते हैं। व्यभिचार ही उच्छृंखलता की ओर ले जाता है। जिस जीन में उच्छृंखलता है, उसमें सत्य टिक नहीं सकता। स्त्री हृदय संकोची, स्निग्ध और सरस होता है। वह सौन्दर्य रूपी उष्णता को पाकर अति शीघ्र पिघल जाता है।

हर नारी चाहती है उसका पति सदय, सुहृद, सुबुद्ध, सुप्रिय तथा सभी सद्गुणों से युक्त हो, उसका यौवन स्थिर हो, परम पराक्रमी, महान तेजस्वी, विपुल ऐश्वर्य-सम्पन्न, प्रिय दर्शन, कामदेव के समान सुन्दर, कुलीन, रति-प्रिय और धर्माचरण करनेवाला हो। सुन्दरी स्त्रियाँ तो किसी स्त्री के सौन्दर्य की प्रशंसा करतीं ही नहीं। जो अभिमानी ईर्ष्यालु स्त्रियाँ होती हैं, वे अपने सम्मुख किसी को सुन्दरी समझतीं ही नहीं। सदा दूसरों के दोष ही देखती रहती हैं।

स्त्रियाँ जितनी ही कोमलाङ्गी होती हैं, कुपित होने पर वे उतनी ही कठोर हो जाती हैं। अपने स्वभाव में स्थित रहने पर ये जितनी ही दयामयी, ममतामयी और प्रेममयी होती हैं, यदि ये प्रतिकूल स्वभाववाली बन जायँ तो उतनी ही निर्दयी, क्रूर स्वभाववाली और वज्रहृदया हो जाती हैं। स्त्रियों में प्राय: अस्थिरता और चञ्चलता पुरुषों की अपेक्षा अधिक होती है। शील संकोच और सदाचार में स्थित रहनेवाली स्त्री ही नारी है, इन्हें जो परित्याग कर देती हैं, वे रणचण्डी बन जाती हैं।

स्त्रियों का भूषण लज्जा ही है। स्त्रियों को लज्जा सिखानी नहीं पड़ती, उनमें स्वाभाविक लज्जा होती है। स्त्री की अपेक्षा पुरुष निर्लज्ज होता है, किन्तु सती साध्वी पतिव्रता लज्जावती ललना को देखकर वह भी स्वाभाविक लज्जित हो जाता है। उसकी ओर आँख उठाकर देखने का साहस प्राय: उसे नहीं होता है। स्त्री प्राय: दूसरी स्त्रियों से उतनी लज्जा नहीं करती जितनी कि परपुरुष से। अपना पति तो अपनी आत्मा ही है, अपना अंग ही है। अपने अंगों से कौन लज्जा करता है। फिर भी हृदय एक होने पर आँखों में लाज तो रह ही नहीं जाती है।

स्त्री सर्वाङ्ग पवित्र है। ये निर्दोष हैं। इनका दर्शन मङ्गल देनेवाला हैं, इसीलिये ये मङ्गलमुखी कहलाती है। स्त्री रत्न दुष्कुलादपि स्त्री रत्न यदि दुष्कुल में उत्पन्न हो तो उसे भी ग्रहण कर लेना चाहिये। आज की नारी में नेतृत्व की क्षमता है वह दबंग होती है, साथ-साथ भावुक भी।

उन आत्मबल से भरी स्त्रियों के लिए जो सचमुच गजब की हैं। इक्कीसवीं सदी की स्त्रियों ने स्वयं की शक्ति को पहचान लिया है। उसने काफी हद तक अपने अधिकारों के लिए लड़ना सीख लिया है। आज स्त्रियों ने यह सिद्ध कर लिया है कि नारी-नारी की दुश्मन नहीं है सहयोगी है। स्त्री जाति सशक्त है और अपनी शक्ति की वह अभिव्यक्ति करती है।

स्त्री भ्रूण हत्या के घिनौने किस्से लाख सुनने को मिले, समाज में बेटियों के जन्म पर गौरवान्वित होतीं, प्रसन्न होतीं माँएं भी देखने को मिलती हैं। कई परिवार अपने आसपास मिल जाएंगे जिनकी इकलौती बेटियाँ हैं या दो बेटियाँ हैं। वे मां-बाप की लाड़ली है और मां-बाप की सम्भाल भी करती है।

आज की नारी की सफलता इसी से स्वयंसिद्ध है कि वह सही अर्थों में सखी-सहधर्मिणी बन चुकी है। वह पति की हर परेशानी बाँटने में सक्षम है। वह केवल पत्नी बन उसके द्वारा प्रदत्त सुख-सुविधाओं का लाभ नहीं उठाती बल्कि हर सुख-सुविधा जुटाने में बराबर की जिम्मेदारी लेती है, संघर्ष करती है। स्त्री शक्ति का एहसास इस बात से भी होती है कि दो या तीन दशक पुरानी युवतियों की तुलना में आज की अधिक युवतियाँ अन्याय का विरोध करती हैं। विरोध करने पर हो सकने वाले नुकसान या परिणामों से भी वे भयभीत नहीं होती। बेटियों को कानून ने तो संपत्ति में अधिकार दे ही दिया है, पर पिता भी अपनी बेटियों को संपत्ति में अधिकार सस्नेह देने लगे हैं। समझदार भाई भी इसे सहर्ष स्वीकारते है। आत्मविश्वास के साथ ही युवतियों ने अपनी सही बात सही तरीके से कहना सीख लिया है। घर के संरक्षित कवच से बाहर आ संघर्ष करते-करते उन्होंने अभिव्यक्ति की स्वतंत्रता स्वयं हासिल कर ली। आज लगभग हर सुसंस्कृत व सुशिक्षित परिवार में बेटियों को भी ऊँची से ऊँची शिक्षा ऋण लेकर भी दिलवाई जा रही है। तथाकथित रूढ़िवादी परिवारों में भी बेटियों की शादी से पूर्व उन्हें शिक्षित करने, आत्मनिर्भर बनाने की मानसिकता विकसित हुई है। पुरानी परंपराएँ तोड़ लोग बेटी के घर जाकर रहते हैं वे उसके द्वारा दिए गए उपहार बड़े प्रेम व गर्व से स्वीकार करते हैं। ऐसे परिवार भी दिखाई देते हैं जिन्होंने बेटियाँ गोद ली हैं व बड़े लाड़-प्यार से इसका पालन-पोषण कर रहे हैं।

स्त्रियों में शास्त्रकारों ने तीन प्रधान गुण बताये हैं। वे गुण और किसी में भी नहीं हो सकते। प्रथम सद्गुण तो इनमें यह है कि ये पुत्ररत्नों को प्रसव करती हैं। जितने अवतार, महात्मा अथवा महापुरुष के हुए हैं, उनको इन्होंने ही जना है। दूसरा गुण इनमें यह है कि ये पति के लिये अपना नाम, कुल, गोत्र तथा शरीर सब कुछ निछावर कर देती हैं। यही कि जीवित पति के मन में अपना मन मिलाकर उसकी सहगामिनी बनी रहें, अपितु मरने पर हँसते-हँसते उसकी चिता पर चढ़कर जल जाती हैं और परलोक में पुन: अपने प्राणनाथ से मिल जाती हैं। इतना बड़ा त्याग संसार में और कोई कर नहीं सकता। तीसरा गुण इनमें सर्वश्रेष्ठ यह है कि ये मंगलमयी हैं। घर में रहकर नित्य कोई-न-कोई मंगलकृत्य करती ही रहती हैं, व्रत

उपवास, उत्सव, गीत, वाद्य, नृत्य यह इनका स्वभाव है। सच पूछा जाय तो उत्सवों की शोभा तो स्त्रियों से ही है। स्त्रियाँ जिसके भी यहाँ जायँगी जाते ही काम में जुट जायँगी। समारोह को सफल बनाने में ये सतत प्रयत्न करेंगी। घर में जितने विवाह पर्व तथा अन्य उत्सव होते हैं, उनमें पुरुष तो सामग्री जुटा देते हैं, करती धरती तो घर की स्त्रियाँ ही हैं। स्त्रियों का हृदय सरस और संगीतमय कलापूर्ण होता है। ललित कलाओं में इनकी स्वाभाविकी प्रवृत्ति होती है। जिस उत्सव में स्त्रियों का सहयोग समारोह न हो वह अधूरा है, नीरस, शुष्क, और केवल चहल-पहल मात्र है। उत्सव स्त्रियों से चौगुना शोभायुक्त बन जाता है।

प्रार्थना करती हुई, दु:खिनी कामपीड़िता नारी को जो निराश लौटाता है, उसे गोवध के सदृश पाप लगता है।

एक अनुमान है कि अब तक, दुनियाभर में दस करोड़ कन्याओं को गर्भ में ही मार दिया गया है या तो पैदा होते ही उनका गला घोंट दिया गया। यह भ्रूण हत्या भारत के साथ चीन, कोरिया, उज्बेकिस्तान, आर्मिनिया और सिंगापुर में भी होती है। यही कारण है कि ऐसे युवाओं की संख्या बढ़ रही है, जिनको विवाह के लिए स्त्री नहीं मिलती। कन्या भ्रूण हत्या या कन्या हत्या की समस्या गरीब घरों में नहीं माना जाता है। जितने ज्यादा बच्चे होंगे, उतनी ही ज्यादा कमाई करनेवाले हाथ होंगे। देखा गया है कि मामूली पैसेवाले घरों से यह बीमारी शुरू होती है और फिर अमीर घरों तक जाती है। अमीरों को पैसे की कम, बच्चों को पालने में होनेवाली कठिनाइयों की चिंता ज्यादा होती हैं। एक अध्ययन यह भी कहता है कि जब बहुत सारे युवक कुंवारे रह जायेंगे, तो अगली पीढ़ी की आबादी में दस से बीस करोड़ की कमी होगी। दूसरे शब्दों में कहें, तो अगले ५०-६० वर्षों में दुनिया की आबादी बढ़ने के बजाय घटने लगेगी। यूरोप और कुछ अमेरिकी देशों में जनसंख्या वृद्धि-दर बिना कन्या भ्रूण हत्या के ही शून्य है। कुछ देशों में तो यह दर शून्य से नीचे है। हमारे देश में ही उत्तर प्रदेश के कुछ जिलों एवं हरियाणा के कुरूक्षेत्र में पुरुषों की तुलना में औरतों का लिंग अनुपात काफी कम है। यहां की स्थिति इतनी भयावह है कि यदि इसी गति से इंसान को जन्म देनेवाली औरत को मार डाला जाता रहा, तो इस क्षेत्र में एक दिन पुरुषों का अस्तित्व ही संकट में पड़ जायेगा। बिन औरत के ये धरती कैसी लगेगी।

नारियों के मन की मिट्टी इतनी कच्ची होती है कि वहाँ कोई बात जड़ ही नहीं जमा पाती अर्थात कुछ नहीं पचता उनके पेट में। राजनीति और कूटनीति का यह तकादा रहा है कि भेद की बातें नारियों के कान तक नहीं पहुंचे। नारी शक्ति है, प्रेरणा है, वह नवनीत की तरह कोमल, आवश्यकता पड़ने पर वह शिलाखण्डकी तरह कठोर और अभेद्य भी हो सकती है।

हमारे देश का अतीत बहुत ही समृद्ध और गौरवशाली रहा है। विद्योत्तमा, गार्गी, मैत्रेयी, सुनयना आदि विदुषी नारियों ने हमारे देश का गौरव बढ़ाया है। कौशल्यानंदन, यशोदानंदन, देवकीनंदन, सौमित्र, कौन्तेय नाम के पुत्रों से मां की महिमा ही गौरवान्वित होती थी। मध्यकाल से ही हमारे देश पर बहुत आक्रमण हुए। विभिन्न संप्रदायवादियों की राजसत्ता कायम हुई। मुगलों के आगमन के बाद असुरक्षा के भय से नारी वर्ग घर में ही बंद होकर रह गया। पर्दा प्रथा, बाल विवाह, दहेज जैसी अनेक कुप्रथाओं का जन्म हुआ, पर समाज में हमारी परंपराएं बरकरार रहीं। स्त्री पुरुषों और उनके संबंधों की परिभाषाएं नहीं बदली। विवाह संस्कार सुदृढ़ रहा, परिवार की एकता नहीं खंडित हुई। व्यक्ति अपने लिए नहीं, पूरे परिवार के लिए जीता रहा। वैश्वीकरण के इस युग में समाज की सोच और व्यवहार में आए परिवर्तन ने परिवार की चूल ही हिला कर रख दी है। पहले संयुक्त परिवारों का विघटन हुआ और अब एकल परिवार का विघटन हुआ और अब एकल परिवार भी टूटते हुए नजर आ रहे हैं। समाज में तलाकशुदा स्त्री, पुरुषों की वृद्धि, जीवन से अकेले लड़ते-लड़ते थकते जाने का अंजाम, तलाकशुदा दंपति के बच्चों की त्रासदी परस्पर विश्वास की कमी के ही दुष्परिणाम हैं। वस्तुत: नारी सशक्तीकरण के सारे उपक्रम भी नारियों को जीवन का सुख नहीं दिला पा रहे। अधिकारोन्मुख बनाने के क्रम ने उन्हें कर्त्तव्यच्युत बना

दिया है। आज क्या स्त्री क्या पुरुष केवल अपने लिए जी रहे हैं। दूसरों के लिए जीने का धर्म, जो हमारी भारतीय संस्कृति का मूल धर्म था, हमने भुला दिया, फिर उन्हें जीने का आनंद कैसे मिले, वे सशक्त हों तो कैसे?

हम अपनी महिलाओं को सही सम्मान दे पाए, उन्हें बोझ-दबाव, तनाव से कुछ मुक्त करा पाएं, तो यकीन मानिए आपका परमात्मा खुश हो जाएगा। आपकी पूजा हो जाएगी, आप धार्मिक हो जाएंगे।

स्त्री के लिए आर्थिक स्वावलंबन सबसे जरूरी है। इसके लिए उन्हें बचपन से ही शक्तिशाली करने की जरूरत है। अच्छी शिक्षा और अच्छे भवितव्य के दम पर वे अपने हक के लिए लड़ सकती हैं। गलत बातों को सह जाने के बजाय उसके खिलाफ आंदोलन कर सकती हैं। विचारों में क्रांति स्वावलंबन से ही आएगी।

नारी हर स्थिति में भारी हैं और पुरुष सदा ही उसका आभारी रहा है। महिलाओं में बहुत-सी खूबियां हैं लेकिन एक कमी भी है। महिलाओं की एक आदत है लड़ना और लड़ने में हार जाए तो फिर रोना। रोते-रोते थक जाए तो फिर सोना। नारी इसलिए महान् है कि वह पुरुष को प्रेरणा देती है। वेदों में उसे पुरुष के समकक्ष रखा है। वह ज्ञानवान है, अरुंधति, मैत्रेयी, सुलभा है। ऋषियों को भी ज्ञान देती थी। लेकिन जब से लौकिक भेदभाव पनपा है तब से स्त्री का दर्जा नीचे गिर गया है। आज वह सिर्फ उपभोग की वस्तु बन गई है।

शहरी महिलाओं का बड़ा तबका अब गर्व और आत्मविश्वास के साथ कदम दर कदम आगे बढ़ रहा हैं। लेकिन अब उनके सामने काम की संस्कृति अर्थात कार्यव्यवस्था की चुनौतियां हैं क्योंकि कार्य संस्कृति लिंग समानता का मापदंड है। वह यह नहीं देखता कि कार्य करनेवाला पुरुष है या स्त्री। वह बस काम देखता है उसके लिए परिणाम और उत्पन्न प्रवृत्ति महत्वपूर्ण है।

नारीवाद पर खूब चर्चाएं होने लगी है। नारी उत्थान पर संगोष्ठियां हो रही हैं, नारी जीवन को कुरेदने की कोशिशें हो रही हैं। प्रकृति ने नारी को पुरुष के लिए बनाया है। उन्हें एक दूसरे के विरोधी के रूप में पेश करना गलत है। यही सही है कि आज का समाज पुरुषवादी है, पुरुष प्रभुत्व का है। महिलायें धीरे-धीरे बराबरी की तरफ बढ़ रही हैं।

भारत में अधिकांश घरों में स्त्री की बराबरी की भूमिका है और परंपरागत रूप से रही है। यह कोई १६वीं १७वीं १८वीं शताब्दी की उपज नहीं है पुरुष दासता के अंतर्गत भी नारी अपनी स्वाधीनता की लड़ाई भी लड़ती है और कुछ स्वाधीनताएं परंपरागत रूप से भोगती रही है।

किसी भी जाति, वर्ग, धर्म तथा लिंग को एक दूसरे के खिलाफ खड़ा करना या खड़ा करके देखना २१वीं शताब्दी में बिलकुल अनुपयुक्त है। समानताएं नहीं हैं, यह सही है। गरीब और अमीर में भी असमानताएं हैं, जातियों के बीच भी असमानताएं हैं, धर्मों में भी तथा धर्मों के बीच भी असमानताएं हैं, इससे इंकार नहीं किया जा सकता लेकिन मानव समाज को तो मानव समानता का आदर्श अपनाते हुए उधर ही बढ़ना है और यही तर्क की कसौटी होनी चाहिए, पुरुष प्रभुत्व के विरुद्ध नारी की लड़ाई में भी।

इतिहास का अवलोकन यह बताता है कि नारी प्रारंभ के वर्षों के बाद तेजी से दासी बनती गई। स्त्री का कोई धर्म नहीं होता और वह उसी की होती है, जिसके कब्जे में होती है। स्त्रियों की खरीद-फरोख्त, पुरुषों के हरम, पुरुष द्वारा बहु विवाह इतिहास की वास्तविकताएं हैं।

नारी को इतिहास में ज्यादातर दासी की तरह चिन्हित किया गया है और वह अनेक सन्दर्भों में दासी ही रही है। नारी मुक्ति आंदोलन आज भी अधिकांशत पुरुष प्रेरित है और पुरुषों की मानसिकता में आये परिवर्तन का प्रतीक भी है। भारत

में एक पुरुष एक महिला के विवाह बंधन की परम्परा पश्चिमी विचारधारा से आयी है। पश्चिमी नारी अनेक मामलों में भारतीय नारी से अधिक स्वतंत्र है परन्तु परिवार में नारी का जो प्रभुत्व भारत में है, पश्चिम में नहीं है।

भारतीय परंपरा सही मायने में एशियाई परंपरा भी है, इसलिये जब एशियाई महिलायें राजनीति में उभरती हैं तो उनके प्रभुत्व को अनेक एशियाई देशों के पुरुष स्वत: स्वीकार कर लेते हैं। वंशवाद भी इसमें सहायक होता है महिलाओं के हाथ में राजनैतिक नेतृत्व एशिया में पहले आया और स्वाभाविक रूप से आया। श्रीलंका की भंडारनायके, भारत की इन्दिरा गांधी, पाकिस्तान की बेनजीर भुट्टो और म्यांमार की आंग सी यह तथ्य स्पष्ट करते हैं। भारत में सोनिया गांधी, जयललिता, मायावती, ममता बनर्जी जैसी महिलायें अपने-अपने राजनैतिक दलों का नेतृत्व कर रही हैं। नारीवादी नारे थोथे और अप्रासंगिक लगते हैं जब नारियों में भी सबसे कुचली महिलाओं की तरफ नारीवादी ध्यान नहीं देते।

विश्वभर में औरतों का सबसे पुराना धंधा है वेश्यावृत्ति। वेश्यायें औरत की दुर्गति की पहचान व प्रमाण हैं। नारीवादी आंदोलन उनके लिए क्या कर रहा है, वह सोचनीय बात है। वेश्या के बाद क्रम में आते है उपपत्नियाँ। ये कई नामों से पुकारी जाती हैं पड़दायत, रखैल आदि। इनका जीवन भी कितना कष्टमय होता है, इस बारे में नारीवाद आंदोलन कोई नारा भी नहीं देता।

आजकल बिना विवाह किये साथ रहने की प्रवृत्ति लोकप्रिय होती जा रही है। ऐसे अधिकांश मामलों में नारी असहाय हो जाती है। उसे कोई अधिकार नहीं होता। उसका भरपूर देह शोषण होता है और उसे छोड़कर पुरुष साथी कभी भी दूसरा ठिकाना ढूंढ लेता है। दफ्तरों में काम करनेवाली बहुत सी युवतियां पुरुष अधिकारियों के झांसे में आ जाती हैं। महिलावादी आंदोलन इनकी भावनाओं, इच्छाओं, अपेक्षाओं की तरफ देखते भी नहीं है, उनकी विपदाओं को दूर करने की कोशिश भी नहीं करते। ऐसा कर वे पैसा, यौन, सत्ता, बाहुबल के स्त्रियों पर आधिपत्य को स्वीकार करते हैं। संयुक्त राष्ट्र संघ भी इस मसले को गंभीर तरीके से नहीं निपटा पा रहा है। विश्व की महिलाओं की समस्याएं बहुत हैं, उन पर अत्याचार अनेक प्रकार के हैं किन्तु उनके लिए लड़नेवाले बहुत कम हैं। भारत में नारियों के उत्थान के लिए अनेक कानून बनाये गये हैं। घरों में होनेवाले अत्याचारों को रोकने के लिए बनाया गया कानून तो अभी पूरा अमल में भी नहीं आया है। दहेज के कानून का दुरूपयोग तो आज आम हो गया। पैसा वसूल करने के लिए ससुराल वालों पर, पति पर झूठे मुकदमे किये जाते हैं। अनेक न्यायिक अधिकारी दबी जुबान से इस स्थिति का जिक्र करते हैं। पीहर और ससुरालवाले मिलकर पैसों के लिए विवाहित महिला को तीसरे व्यक्ति या परिवार को बेच देते हैं। संभ्रांत, उच्च जाति के परिवारों में इसका प्रचलन ज्यादा हो रहा है। नारीवादी आंदोलन दिशाहीन है। कई बार तो यह लगता है कि न तो उन्हें समस्याओं का सही आकलन करना आता है, न कोई शोध करना, न उनकी संवेदनाएं गहरी हैं और इसलिये यह आंदोलन भटकाव की स्थिति में हैं।

नारी अग्निके समीप अपने पतिकी सहधर्मिणी बनती है। जिसके स्वभाव, बातचीत और आचरण उत्तम हों, जिसको देखनेसे भी पतिको सुख मिलता हो, जो अपने पतिके सिवा दूसरे किसी पुरुषमें मन नहीं लगाती और स्वामीके समक्ष सदा प्रसन्नमुख बनी रहती है, वह स्त्री धर्माचरण करनेवाली मानी गयी है। जो साध्वी स्त्री अपने स्वामीको सदा देवतुल्य समझती है, वही धर्मपरायण और वही धर्मके फलकी भागिनी होती है। जो पतिकी देवताके समान सेवा-शुश्रूषा और परिचर्या करती, पतिके सिवा और किसीसे हार्दिक प्रेम नहीं करती, कभी रंज नहीं होती तथा उत्तम व्रतका पालन करती है, पुत्रके मुखकी भाँति स्वामीके मुखकी ओर सदा निहारती रहती है और नियमित आहारका सेवन करती है, वह साध्वी स्त्री धर्मचारिणी है। पति और पत्नीको एक साथ रहकर धर्मका आचरण करना चाहिये। इस मङ्गलमय दाम्पत्यधर्मको सुनकर जो स्त्री धर्म-परायण हो जाती है, वह पतिके समान व्रतका पालन करनेवाली (पतिव्रता) है। साध्वी स्त्री सदा अपने पतिको

देवता के समान देखती है। पति और पत्नीका यह सहधर्म (साथ-साथ रहकर धर्माचरण करना) रूप धर्म परम मंगलमय है। जो अपने हृदयके अनुरागके कारण स्वामीके अधीन रहती है, अपने चित्तको प्रसन्न रखती है, उत्तम व्रतका पालन करती है और देखनेमें सुखदायक-सुन्दर वेष धारण किये रहती है, जिसका चित्त अपने पतिके सिवा और किसीका चिन्तन नहीं करता, वह प्रसन्नवदन रहनेवाली स्त्री धर्मचारिणी मानी गयी है। जो स्वामीके कठोर वचन कहने या क्रूरदृष्टिसे देखनेपर भी प्रसन्नतासे मुसकराती रहती है, वही स्त्री पतिव्रता है। पतिके सिवा दूसरे किसी पुरुषकी और देखना तो दूर रहा, जो पुरुषके समान नाम धारण करनेवाले चन्द्रमा, सूर्य और किसी वृक्षकी ओर भी दृष्टि नहीं डालती, वही पतिव्रत-धर्मका पालन करनेवाली है। जो नारी अपने दरिद्र, रोगी, दीन अथवा रास्तेकी थकावटसे खिन्न हुए पतिकी पुत्रके समान सेवा करती है, उसीको धर्मका पूरा-पूरा फल मिलता है। जो स्त्री अपने हृदयको शुद्ध रखती, गृहकार्य करनेमें कुशल होती, पतिसे प्रेम करती और पतिको ही अपने प्राण समझती है, वही धर्मका फल पानेकी अधिकारिणी होती है। जो प्रसन्नचित्तसे पतिकी सेवा-शुश्रूषामें लगी रहती है, पतिके ऊपर पूर्ण विश्वास रखती है और उसके साथ विनययुक्त बर्ताव करती है, वह नारी-धर्मका फल पाती है। जिसके हृदयमें पतिके लिये जैसी चाह होती है, वैसी काम, भोग, ऐश्वर्य और सुखके लिये नहीं होती, जो प्रतिदिन प्रात:काल उठनेमें रुचि रखती, गृहके काम-काजमें योग देती और घरको झाड़-बुहारकर उसे गायके गोबरसे लीप-पोतकर स्वच्छ बनाये रखती है, जो पतिके साथ रहकर नित्य अग्निहोत्र करती, देवताओंको पुष्प और बलि अर्पण करती तथा देवता, अतिथि और सांस-ससुर आदि पोष्य-वर्गका भोजन देकर न्याय और विधिके अनुसार शेष अन्नका स्वयं भोजन करती है तथा घरके लोगोंको हृष्ट-पुष्ट एवं संतुष्ट रखती है, वही नारी-धर्मका पालन करनेवाली है। जो उत्तम गुणोंसे युक्त होकर सदा सास-ससुरके चरणोंकी सेवामें संलग्न रहती और माता-पिताके प्रति भक्ति रखती है, वह स्त्री तपस्विनी मानी गयी है। जो ब्राह्मणों, दुर्बलों, अनाथों, दीनों, अंधों और कंगालोंको अन्न देकर उनका पालन-पोषण करती है, उसे पतिव्रत-धर्मका फल प्राप्त होता है। जो प्रतिदिन उत्तम व्रतका पालन करती, पतिमें ही मन लगाती और निरन्तर पतिके हित-साधनमें लगी रहती है, उसे पतिव्रता समझना चाहिये। जो नारी पतिव्रत-धर्मका पालन करती हुई स्वामीकी सेवामें तत्पर रहती है, उसका यह कार्य महान् पुण्य, बड़ी भारी तपस्या और अक्षय स्वर्गका साधन है। पति ही स्त्रियोंका देवता, पति ही उनका बन्धु-बान्धव और पति ही उनकी गति है। नारीके लिये पतिके समान न दूसरा कोई सहारा है, न दूसरा कोई देवता। एक ओर पतिकी प्रसन्नता और दूसरी ओर स्वर्ग; ये दोनों नारीकी दृष्टिमें समान हो सकते हैं या नहीं, इसमें संदेह है। पति दरिद्र हो जाय, किसी रोगसे घिर जाय, आपत्तिमें फँस जाय, शत्रुओंके बीचमें पड़ जाय अथवा ब्राह्मणके शापसे कष्ट पा रहा हो और उस अवस्थामें वह न करने योग्य कार्य, अधर्म अथवा प्राण त्याग देनेकी भी आज्ञा दे तो उसे आपत्तिकालका धर्म समझकर नि:शंक भावसे तुरंत पूरा करना चाहिये।

वय प्राप्त करते ही बेटियों के लिए पिता व्यर्थ और प्रियतम सर्वस्व हो उठता है।

एक किशोर को प्रेरित करने के लिए, उसकी धमनियों के रक्त में ज्वार जगाने के लिए, भविष्य की महत्त्वाकांक्षाओं-आकांक्षाओं, प्रसिद्धि और प्रशस्ति की प्राप्ति की सान्त्वनाओं और सुअवसरों से अधिक उपयोगी थी एक समर्पिता और साध्वी किशोरी ही जिसकी अपरिमित बुद्धिमत्ता और त्याग-भावनाओं की प्रबलता ठण्डे रक्त को भी तप्त कर मानव-तन से असाध्य को भी साध्य करा सकती है।

आज जरूरत इस बात की है कि नारी तुम केवल नारी हो इन शब्दों की गूंज हर महिला के अंतर्मन को छुए। वह न तो स्वयं को पुरुष साबित करने का प्रयास करे, न ही स्वयं को हीन समझे। अपनी सूझबूझ के साथ अपने कदमों का

मूल्यांकन करना पड़े तो स्वयं पर सात्विक गर्व की अनुभूति कर सके। आज की नारी यह अच्छी तरह जानती है कि वह न तो देह है, न देहातीत है। वह देवी तो है लेकिन दासी नहीं है, पुरुष के साथ कंधे से कंधा मिलाकर चलने में ही वह अपना गौरव मानती है। समाज की रूढ़ियों के खिलाफ वह निरंतर लड़ाई लड़ रही है ताकि नारी का एक सशक्त रूप सामने आ सके। नारी को आगे बढ़ना है, पर जरूरी है कि सृजन की राह में संस्कारों का दीया लेकर वह आगे आए। अपनी क्षमताओं को भी बढ़ाये पर वास्तव में नारी सशक्तीकरण तभी होगा जब हमारे देश में विचार परिपक्व होंगे, आचार में संस्कारों की दीप्ति होगी, हाथों में सृजन की करामात और पांवों में स्वाभिमान होगा।

समाज स्त्री को सम्मान का दर्जा क्यों नहीं देता? क्यों नित नए सवाल स्त्री के सामने खड़े कर दिए जाते है। हर कदम पर उसे एक नई कसौटी का सामना करना पड़ता है। जब भी वह अपने हक के लिए बोलना चाहती है, कभी डरा कर तो कभी भावात्मक गलत तरीकों से कर उसे चुप करा दिया जाता है। आखिर कब तक वह घुटती रहेगी। कितने अहसास अपने अंदर समेटे वह कभी मां की, कभी पत्नी की, कभी बहन, बेटी के सारे फर्ज निभाती है। वह कब मुक्त होगी उस कैद से जहां कि उसे सांसे भी दूसरों की इजाजत से लेनी पड़ती है। कभी-कभी तो वह ऐसे रिश्ते की डोर मानती है जो उसके लिए नहीं है। वह उनके लिए सारे कर्त्तव्य निभाती है। बदले में उसे अपमान, बेइज्जती न जाने क्या-क्या सहना पड़ता है। जब उसके साथ जुर्म होता है वह उसके खिलाफ आवाज तक नहीं उठा सकती। उसकी आवाद दबा दी जाती है। क्या अपने हक के लिए बोलना भी गुनाह है?

स्त्रियों के हृदय में कामाग्नि प्रज्ज्वलित हो जाय तो उसे पुरुष ही शान्त करने में समर्थ है। परपुरुष से प्रीति करना पाप है। जार पति को सेवन करने वाली को न इस लोक में शान्ति होती है न परलोक में। इस लोक में उसे अपयश मिलता है, परलोक में नरक की यातनाएं भोगनी पड़ती है। यह अत्यन्त ही तुच्छ, नीच, निन्दनीय, भयदायक और कष्टकारक कर्म है। स्त्री ही स्त्री की वेदना का अनुभव कर सकती है। पुरुष तो स्वार्थी होता है, वह प्रेम भी करता है तो स्वार्थ से। फिर वह ऐसी कठोर बातें कह देता है कि कोमलांगी अबलायें उसे सहन करने में समर्थ नहीं होतीं, फिर भी सहनी ही पड़ती हैं।

स्त्री जाति का जीवन विवशता से भरा हुआ है। उसमें पग-पग पर विवशता का अनुभव करना पड़ता है। पुरुष के लिये स्त्री कितना भी त्याग करे, किन्तु पुरुष निष्ठुर ही बना रहता है। फिर भी यह प्रेम-बन्धन इतना सुदृढ़ है कि स्त्री प्रियतम को छोड़कर मन से भी किसी की कल्पना नहीं कर सकती। पुरुष की कठोरता उसे और भी अधिक उसकी ओर आकर्षित करती है। स्त्री के लिये संसार में पति से प्यारा कोई नहीं। सत् स्त्रियों को जितना प्रिय सत्पति होता है, उतना वे प्यारा संसार में किसी को नहीं समझती।

दया तो स्त्रियों के ही हृदय में होती है। दूसरे के दुख को देखकर इनका हृदय द्रवीभूत होता है। परोपकार के लिये सर्वस्व को उत्सर्ग करने का पाठ तो नारी जाति ने ही सीखा है। स्त्री जाति में चाहे जितने सद्गुण हों, किन्तु इनमें यह सौतियाडाह का बड़ा भारी दुर्गुण है। इनकी सदा यही इच्छा बनी रहती है, मेरा प्रियतम किसी अन्य से प्रेम की दो मीठी बात भी न करे।

नारी जाति पुरुष का रुख देखती है तो द्रवित हो जाती है। जब उसके मन में भी वैसे भाव आते हैं, तभी उसका कामिनी नाम सार्थक हो जाता है। उस अवस्था में वह जो चाहे कर सकती है। अर्थ-अनर्थ सब कुछ हो जाती है। मनुष्य को वश में करके वह सब कुछ करा लेती हैं। जो काम किसी भी उपाय से न हो, वह कामिनी के द्वारा कराया जा सकता है। स्त्री का नाम अबला क्यों हैं? अब कहते हैं अनङ्ग को। अर्थात् अनङ्ग का ही बल है जिसमें उसे अबला कहते हैं। अनङ्ग का बल संसार में सबसे बड़ा बल है। इसीलिये नारी जाति को सबसे आकर्षक और सबसे बलवती बताया जाता है। पुरुषों की

अपेक्षा स्त्रियों में परचर्चा की प्रवृत्ति अधिक होती है। स्त्रियों को एक अपच का रोग होता है उन्हे यदि पानी भी पिलाओ तो नहीं पचता। इसी प्रकार स्त्रियों के पेट में बात पचती नहीं।

नारी प्रकृति की बेटी है। उस पर क्रोध न करो। उसका हृदय कोमल होता है, उस पर विश्वास करो।

नारी हृदय में अनुराग तो पुरुष की अपेक्षा अत्यधिक होता है, किन्तु साथ ही उसमें लज्जा की मात्रा भी अधिक होती है। पुरुष निर्लज्ज होता है। चाहे प्राणी सर्वज्ञ हो जाय, सब कुछ जान जाय, किन्तु स्वैरिणी कामनियों के मनोगत भावों को कोई जान नहीं सकता। ये पुरातन पति का परित्याग करके पुन: नूतन पति से प्रेम करने लगती है। इनका न कोई प्रिय है न अप्रिय। स्त्रियाँ तो सदा से ही साधु पुरुषों की दया पात्र मानी गयी हैं। सज्जन पुरुष स्त्रियों का कभी अपमान नहीं करते। उनके भारी-से-भारी अपराध को भी क्षमा कर देते हैं। जब स्त्री जान जाती है कि यह आदमी हमारे वशमें हो गया तब वह उसको खूब नचाती है।

ये दो प्रतीक हैं- राम और सीता। लेकिन ये प्रतीक बड़े गहन हैं। क्योंकि अगर सिर्फ राम ही उतरे तो व्यक्ति अधूरा होगा। आधा होगा। तो उसमें पुरुष की शक्ति तो आ जाएगी, लेकिन पुरुष की शक्ति अधूरी होने पर विध्वंसक है। उसमें स्त्री की महिमा न उतरेगी और स्त्री का सौम्य रूप न उतरेगा। राम अकेले बिलकुल अधूरे हैं। राम की मूर्ति को अकेली खड़े करके देखना, बहुत अधूरे लगेंगे। राम को सीता के साथ खड़े करके देखना, तभी वे पूरे लगेंगे।

क्योंकि स्त्रैण शक्ति एक दूसरा आयाम है शक्ति का, जो संतुलन देता है। पुरुष की शक्ति अकेली होगी तो हिटलर पैदा होगा, जिससे विध्वंस होगा। क्योंकि उसे संतुलित करने के लिए विपरीत शक्ति मौजूद नहीं है। सीता मौजूद नहीं है। स्त्री सृजनात्मक शक्ति है। वह मां है, वह जन्मदात्री है। वह जीवन के मूल स्रोत ते जुड़ी है और सौम्य है। उसकी शक्ति करुणा है। उसकी शक्ति ममता है। उसकी शक्ति सूरज जैसी नहीं है। उसकी शक्ति चांद जैसी है, शीतल है। शक्ति है, फिर भी शीतल है और जहां सूरज और चांद दोनों मिल जाते हैं, जहां प्रगाढ़ता और सौम्यता दोनों मिलते हैं, जहां प्रचंडता और विनम्रता दोनों मिल जाते हैं, वहां राम और सीता हैं।

यह हिंदू-विचार की गहन खोज है और बहुतों की समझ में नहीं आयी है। ईसाई, मुसलमान, जैन, बौद्ध सभी इस हिंदूविचार की गहनता को समझने में असमर्थ रहे हैं। स्वस्थ नारी ही स्वस्थ परिवार की बुनियाद रखती है। स्त्रियों की नर्ममिजाजी सिर्फ घर में हो, बाहर नहीं।

आज के नारी सशक्तीकरण के युग में नारी आर्थिक रूप से भले ही स्वतंत्र हो पर पुरुष की दृष्टि में वह अभी पूरी तरह स्वतंत्र नहीं है। पुरुष सत्तात्मक समाज में कहीं उसे डायन करार कर पत्थर फेंक कर मार दिया जाता है, कहीं सरे बाजार नग्न घुमाया जाता है, कहीं देह व्यापार के लिए बाध्य किया जाता है और कहीं वह अबला बलात्कार की शिकार होती है। आपस का द्वेष मिटाने के लिए, बहशीपन का शिकार पुरुष नारी को अपना लक्ष्य बनाता है। पुरुष का तो कुछ नहीं बिगड़ता नारी को पतिता करार दिया जाता है। अपने शरीर की शुचिता को खोई हुई नारी आजीवन ग्लानि बोध, अपराध बोध में जीती रहती है। इन सब स्थितियों में नारी किस मानसिक यंत्रणा के दौर से गुजरती है उसके मन में क्या क्या अन्तर्द्वन्द्व मचा रहता है इसे जानने का प्रयास न आज का समाज (पुरुष वर्ग) करता है और न ही अन्य किसी युग में किया गया चाहे वह रामायण काल हो या महाभारत काल। सच में ही यदि नारियों की दशा को सुधारना है तो केवल आरक्षण न करके नारी शिक्षा का प्रचार किया जाए, उन्हें सक्षम और सशक्त बनाया जाए। अपने निर्णय लेने का अधिकार स्वतंत्र दिया जाए।

नफरतों की नहीं कोई बयार है नारी, मां की ममता है, बहन का प्यार है नारी।
ये नये रिश्ते को बखूबी निभा लेती, आन पे बन जाये तो तलवार उठाती है नारी।।

गीता सन्देश

उठो- समस्त दुर्बलताओं को त्याग कर कर्त्तव्य करने के लिए सिद्ध हो जाओ।

सावधान रहो- अपने मन को संतुलित तथा बुद्धि को स्थिर रखो।

ध्यान रखो- कर्त्तव्य पालन करना ही प्रथम धर्म है। किसी भी स्थिति में कर्त्तव्य का त्याग न करो।

सजग रहो- कर्त्तव्य करने में सावधानता और परिणामत: जो हो जाय उसमें प्रसन्नता आपका स्वभाव बन जाय।

विश्वास रखो- सज्जनों की रक्षा तथा दुष्टों का निग्रह भगवान अवश्य करके रहेंगे।

याद रखो- मन से सदाचारी बनने का प्रयास ही साधना है, साधुता का बाह्य आडंबर दांभिकता है।

अभ्यास करो- छोटे छोटे नियम तथा व्रतों का प्रामाणिकता से पालन करते-करते आप महान् बन सकते हैं।

पता है? आपका उद्धार आपके द्वारा ही हो सकता है। आप ही अपने सर्वश्रेष्ठ मित्र हैं, तथा असंयमी होने पर शत्रु के समान स्वयं के विनाशकर्ता हो सकते हैं।

स्मरण रहे- मानसिक संतुलन को ही योग कहते हैं और सामाजिक संतुलन को धर्म।

स्वयं को पहचानो- आप नश्वर शरीर नहीं, अमर आत्मतत्त्व हैं।

प्रसन्न रहो- सुख और दु:ख आते-जाते ही रहते हैं। उनसे अतीत साक्षी रहकर देखना सीखो।

डरो मत- किसी भी अवस्था में धीरज न त्यागते हुए तेजस्वी धर्मवीर बने रहो।

प्रयास करो- भगवान की भक्ति में सकामता न रहे। निष्काम भक्त को भगवान सब कुछ तो क्या, स्वयं को भी प्रदान कर देते हैं।

प्रेम करो- प्राणिमात्र में परमात्मा का दर्शन करते हुए सभी के प्रति अपना प्रेमपूर्ण और सेवामय व्यवहार हो।

शरणागति- यही सबसे महान् तत्त्व है। सर्वदा भगवान की संपूर्ण शरणागति का भाव बना रहे, यही इह-परलोक में सर्वोत्तम लाभ है।

गीता पढ़ो- औरों को पढ़ाओ। जीवन में लाने का प्रयास करो। भगवान के सर्वाधिक प्रिय होने का यही सर्वोत्तम उपाय है।

** जिनके हिस्से में कल नहीं होता, उनकी मुट्ठी में पल नहीं होते,*
मौत, जीवन, मिलन हो या बिछुड़न, सभी समस्याओं के हल नहीं होते।
** धर्मवाद और जातिवाद संस्कार गिराया मानव का, भाई भाई का लहू पी रहा, कर्म कर रहा है दानव का।*
** मौत से भी नहीं मिटते है जिन्दगी के निशां, हर कहानी छोड़ जाती है अपने निशां।*
चारों ओर बिखरी पडी है नेमते ही नेमते, हर जर्रे जर्रे में उसकी मेहरबानी के निशां।।
** डूबती कश्तियों का किनारा बने। बेसहारों का, हम भी कोई सहारा बनें।।*
यूं तो आए हैं यहाँ सभी मरने के वास्ते, पर मौत तो उसी की हीहै जिसका जमाना करे अफसोस।।
** स्वाधीनता का पक्ष ईश्वर का पक्ष है।*
** प्रेम से शासन करना मानवता है, अन्याय से शासन करना बर्बरता है।*
** अचल निष्ठा ही महान कार्यों की जननी है।*

गीता समीक्षा

गीता, गंगा और गौमाता को सदियों से हमारे महान राष्ट्र की पहचान माना गया है। गीता और रामायण जैसे अनुपम ग्रंथ भारत की अस्मिता से जुड़े हैं। हेनरी डेविड थोरो तथा राल्फ वाल्डो इमर्सन जैसे विदेशी विचारकों ने गीता के चिंतन को अत्यंत विषद, व्यापक एवं उच्च कोटि का बताया था। गीता संकीर्णता नहीं, अपितु मानव मन को उदारता सिखाती है। तुच्छ स्वार्थों से ऊपर उठकर असीम बनने की प्रेरणा देती है। उसका जितना अवगाहन किया जाए, मस्तिष्क के आयाम उतने ही विस्तृत होते हैं। इन्हीं सांस्कृतिक प्रतीकों ने राष्ट्र को एकसूत्र में बांध रखा है।

स्वामी विवेकानंद ने अपने प्रभावशाली वत्कृत्व और असीम ज्ञान की बदौलत अमेरिकावासियों की भारत के वेद, उपनिषद, गीता, रामायण जैसे ग्रंथों के प्रति उत्सुकता जगाई। पश्चिम ने पूर्व के ज्ञान का लोहा माना। मैक्समूलर, बर्ट्रेंड रसेल और डा. राधाकृष्णन ने भी भारत की सांस्कृतिक, दार्शनिक विचारधारा से पश्चिमी देशों को परिचित कराया। गीता में कट्टरता का कोई स्थान नहीं है। वह अत्यंत उदात्त, वैश्विक चिंतन प्रस्तुत करती है जो हर काल में संदर्भ युक्त है। महात्मा गांधी ने कर्म की प्रेरणा देनेवाली गीता को सर्वोच्च वरीयता दी। गीता का चिंतन अत्यंत वैज्ञानिक, तर्कपूर्ण और सर्वकालिक है।

कृष्ण ने अर्जुन को हताशा त्यागकर जीवन संघर्ष करने की प्रेरणा दी। यह बात जीवन के रणक्षेत्र में चुनौतियों से घिरे हर व्यक्ति पर लागू होती है। कृष्ण ने अर्जुन का संशय, मोह और विषाद दूर कर कर्म की ओर प्रवृत्त होने को प्रेरित किया। कर्म की प्रेरणा देनेवाला गीता से उत्तम ग्रंथ हो ही नहीं सकता। उन्होंने अर्जुन को ज्ञान, भक्ति और कर्मयोग के विकल्प भी दिए लेकिन कर्मठ व्यक्ति के लिए कर्मयोग की श्रेष्ठता समझाई।

यहाँ पर अर्जुन का संकेत भगवद्गीता के उपदेश की ओर है, जिसे भगवान् ने कुरुक्षेत्र के युद्धस्थल पर दिया था। भगवान् के द्वारा दिये गये भगवद्गीता के उपदेश न केवल अर्जुन के लाभ के लिए थे, अपितु समस्त देशों तथा काल के लिए हैं। भगवान द्वारा कही गयी भगवद्गीता समस्त वैदिक वाङ्मय का सार है। जिन लोगों के पास उपनिषद, पुराण तथा वेदान्त-सूत्र सरीखे विशाल वैदिक ग्रंथों को पढ़ने के लिए समय नहीं है, उनके लिए भगवान् ने यह ग्रंथ सुन्दर ढंग से प्रस्तुत किया है। यह ग्रंथ महान् पौराणिक महाकाव्य महाभारत के अन्तर्गत है, जिसे कम बुद्धिमान श्रेणी के लोगों के लिए, यथा स्त्रियों, श्रमिकों तथा उच्चवर्गीय वैश्यों के लिए तैयार किया गया था। अर्जुन के मन में, कुरुक्षेत्र के युद्ध-स्थल में, जो समस्या उठी थी, वह भगवद्गीता की शिक्षाओं से हल हो गई थी। अब, जबकि भगवान् लोगों की दृष्टि से ओझल हो चुके थे और अर्जुन अपने पराक्रम तथा प्राधान्य को खोने जा रहा था तो उसने पुन: भगवद्गीता की महान् शिक्षाओं का स्मरण करना चाहा, क्योंकि वह लोगों को शिक्षा देना चाह रहा था कि न केवल समस्त प्रकार के मानसिक क्लेशों में सान्त्वना दिलाने के लिए, अपितु संकट उपस्थित होने पर बड़ी-बड़ी कठिनाइयों से निकलने के लिए भगवद्गीता की शरण ली जा सकती है।

कृपामय भगवान् अपने पीछे भगवद्गीता की महान् शिक्षाएँ इसीलिए छोड़ते गये जिससे कोई भगवान् के अलक्ष्य होने पर भी उनकी शिक्षाओं को ग्रहण कर सके। भौतिक इन्द्रियों से परमेश्वर का कोई अनुमान नहीं लगा सकता, लेकिन भगवान् अपनी अचिन्त्य शक्ति से पदार्थ के माध्यम से बद्धजीवों की इन्द्रियों द्वारा अनुभूति किये जाने के लिए अवतार ले सकते हैं, क्योंकि पदार्थ भी भगवान् की प्रकट शक्ति का दूसरा रूप है। इस तरह भगवद्गीता या भगवान् की कोई प्रामाणिक शास्त्रीय शब्द-अभिव्यक्ति तथा साक्षात् भगवान में कोई अन्तर नहीं होता। कोई भी भगवद्गीता से वही लाभ उठा सकता है जो अर्जुन ने भगवान् की उपस्थिति में उठाया था।

वह श्रद्धालु मनुष्य जो भव-बन्धन से मुक्त होने का इच्छुक रहता है, भगवद्गीता से बहुत आसानी से लाभ उठा सकता है। इसी दृष्टि से भगावन् ने अर्जुन को उपदेश दिया मानो उसे उसकी आवश्यकता थी। भगवद्गीता में पाँच महत्वपूर्ण ज्ञान की बातें खोज निकाली गई हैं जिनका सम्बन्ध १) परमेश्वर २) जीव ३) प्रकृति ४) देश और काल तथा ५) कर्म-विधान से है। इनमें से परमेश्वर तथा जीव गुणात्मक रूप से एक हैं। दोनों का अन्तर पूर्ण तथा उसके अंश के अन्तर-जैसा है। प्रकृति जड़ पदार्थ है जिसमें तीन विभिन्न गुणों की अन्त:क्रिया होती रहती है और शाश्वत समय तथा असीम अवकाश (देश) प्रकृति के जगत के परे माने जाते हैं। जीव के कार्यकलाप विभिन्न प्रकार की मनोवृत्तियाँ हैं जो जीव को प्रकृति के भीतर तथा बाहर बाँध सकती हैं या मुक्त कर सकती हैं। इन सभी विषयों की संक्षिप्त व्याख्या भगवद्गीता में हुई है और इसके आगे भी प्रबुद्ध करने के लिए श्रीमद्भागवत में उनका विस्तार किया गया है। पाँच विषयों में परमेश्वर, जीव, प्रकृति तथा देश-काल शाश्वत हैं, लेकिन इनमें से जीव, प्रकृति तथा काल परमेश्वर के नियन्त्रण में रहते हैं, जो स्वयं परम तथा किसी अन्य नियन्त्रण से पूरी तरह स्वतन्त्र होते हैं। परमेश्वर परम नियन्ता है। जीव की भौतिक गतिविधि अनादि है, लेकिन इसे आध्यात्मिक गुण में स्थानान्तरित करके ठीक किया जा सकता है। इस तरह यह भौतिक गुणात्मक प्रतिक्रियाओं में नहीं रह जाती। भगवान् तथा जीव दोनों प्रबुद्ध हैं और उनकी पहचान जीवित शक्ति के रूप में होती है; लेकिन प्रकृति की अवस्था, जिसे महत्तत्त्व कहते हैं, उसके अन्तर्गत जीव अपनी झूठी पहचान करता है कि वह भगवान् से भिन्न है। वैदिक वाङ्मय की पूरी योजना ऐसी भ्रान्त धारणा का उच्छेद करने के निमित्त है और इस तरह जीव को भौतिक पहचान के भ्रम (मोह) से मुक्त करती है। जब यह भ्रम (मोह) ज्ञान तथा वैराग्य से समूल नष्ट हो जाता है तो जीव कर्त्ता तथा भोक्ता दोनों का उत्तरदायित्व सँभालता है। भगवान् में भोग की भावना वास्तविक है, लेकिन जीव में ऐसी भावना मात्र मनचाही इच्छा है। भावना का यह अन्तर ही दो स्वरूपों का-भगवान् तथा जीव का अन्तर है। अन्यथा भगवान् और जीव में कोई अन्तर नहीं होता। अत: जीव एक साथ एक तथा भिन्न होता है। भगवद्गीता का सारा उपदेश एकमात्र इसी सिद्धान्त पर आधारित है।

भगवद्गीता में भगवान, तथा जीव दोनों को सनातन कहा गया है और भगवान् का धाम भी, जो भौतिक आकाश से बहुत दूर है, सनातन बताया गया है। जीव को भगवान् के सनातन जगत में रहने के लिए आमन्त्रित किया जाता है और वह विधि जिससे जीव भगवान् के धाम पहुंच सकता है और जहाँ आत्मा की मुक्त क्रियाशीलता प्रकट होती है, सनातन धर्म कहलाती है, किन्तु भौतिक पहचान की भ्रान्त धारणा से मुक्त हुए बिना, कोई भगवद्-धाम नहीं पहुँच सकता। भगवद्गीता हमें सिद्धि की इस अवस्था को प्राप्त करने को इंगित करती है। भौतिक पहचान की भ्रान्त धारणा से मुक्त होने की विधि विभिन्न अवस्थाओं में सकाम कर्म, ज्ञान तथा भक्ति से लेकर दिव्य अनुभूति तक कहलाती है। ऐसी दिव्य अनुभूति तभी सम्भव है जब उपर्युक्त सारी बातें भगवान् के साथ जोड़ दी जाये। वेदों द्वारा निर्दिष्ट मनुष्यों के कर्त्तव्य धीरे-धीरे बद्धजीव के पापी मन को शुद्ध करके, उसे ज्ञान की अवस्था तक ले जाते हैं। ज्ञान प्राप्त करने की शुद्ध अवस्था भगवद्भक्ति का आधार बनती है। जब तक मनुष्य जीवन की समस्याओं का हल ढूंढता रहता है तब तक उसकी जानकारी ज्ञान या शुद्ध ज्ञान कहलाती है, किन्तु जीवन के वास्तविक हल की अनुभूति होने पर, मनुष्य भगवद्भक्ति को प्राप्त करता है। भगवद्गीता का शुभारम्भ जीवन की समस्याओं से होता है जिसमें पदार्थ के तत्वों को आत्मा से विभेदित किया गया है और हर तर्क से यह सिद्ध किया गया है कि आत्मा सभी परिस्थितियों में अविनाशी है और पदार्थ का बाह्य आवरण, मन तथा शरीर परिवर्तित होकर कष्टमय संसार में फिर से आते हैं। अतएव भगवद्गीता विभिन्न प्रकार के कष्टों को समाप्त करने के लिए है और

अर्जुन ने इस महान् ज्ञान की शरण ली जो उन्हें कुरुक्षेत्र के युद्ध में प्रदान किया जा चुका था।

गीता हमारे धर्मग्रन्थों में एक अत्यन्त तेजस्वी और निर्मल हीरा है। किसी भी जाति को उन्नति के शिखर पर चढ़ाने के लिये गीता का उपदेश अद्वितीय है। गीता वह तैलजन्य दीपक है जो अनन्तकाल तक हमारे ज्ञान मन्दिर में प्रकाश करता रहेगा। गीता विश्व धर्म की एक पुस्तक है जो हमारे लिये सदा गुरु रुप है, माता पिता रूप है।

गीता विवेक रूपी वृक्षों का एक अपूर्व बगीचा है। यह सब सुखों की नींव है। सिद्धान्त रत्नों का भंडार है। नव रस रूपी अमृत से भरा हुआ समुद्र है। खुला हुआ परमधाम है और सब विद्याओं की मूलभूमि है।

शब्द के लिहाज से गीता का अर्थ उस रचना से है, जिसे गाया गया हो। वास्तव में गीता एक ऐसा दैविक संगीत है, जिसे भगवान श्री कृष्णने स्वयं गाया है। यह विचारणीय है कि जिस शब्द रचना को बाँसुरी वादक कृष्ण स्वयं गा रहे हों, उसका स्वर और संगीत कितना प्रभावशाली होगा।

गीता सुगीता कर्तव्या किमन्यै: शास्त्र विस्तरै। या स्वयं पद्मनाभस्य मुख-पद्माद्विनि: सृता।

पद्मनाभ भगवान की नाभि से जहाँ साक्षात् वेदमूर्ति ब्रह्मा आविर्भूत हुए, उनके पाद-पदम् से कर्मकलुष धोने वाली गंगा उपजी, वहीं उनके मुख पद्म से गीता का प्रादुर्भाव गीता की सर्वोपरि स्थिति का द्योतक है। गीता के महात्म्य में इसलिए कहा गया है कि संपूर्ण ज्ञान की भंडार गायें हैं, गोपाल नंदन कृष्ण उनका दोहन करने वाले ग्वाल-बाल हैं और अर्जुन एक गो-वत्स हैं जो इस अमृत रस के स्राव का निमित्त बनता है। निश्चित ही इस परम विशिष्ट गोरस का पान करने वाले व्यक्ति धन्य हैं।

सर्वोपनिषदो गावो दोग्ध: गोपालनन्दन:। पार्थो वत्स: सुधीर्भोक्ता दुग्धं गीतामृतं महत्।

स्वामी प्रभवानन्द और क्रस्टोफर इशाखुड की भगवत् गीता नामक पुस्तक की भूमिका में आल्डस हक्सले ने कहा है-

गीता शाश्वत दर्शन की एक अत्यंत सुस्पष्ट और सबसे विस्तृत समीक्षा है। संभवत: भगवत् गीता शाश्वत् दर्शन के अध्यात्म ज्ञान की सबसे पहली व्यवस्थित कृति है। भगवान श्रीकृष्ण मानवीय विकास की संपूर्णता हैं। वे शांति के समय बाँसुरी बजाते हैं, नाचते हैं और सभी अवस्था के लोगों को समाकृष्ट करते हैं और युद्ध के समय अत्यंत व्यावहारिक विचारक की भूमिका में एक सैनिक के अंतर्द्वंद्व को भी मिटाते हैं। यह कहा गया है कि महाभारत का युद्ध पाँच हजार वर्ष पूर्व लड़ा गया था, किंतु व्यावहारिक दृष्टि से इसका संदर्भ इस सनातन ज्ञान के प्रस्तुतीकरण की उपयुक्त भूमिका का कार्य करता है। महाभारत के युद्ध में धनुर्धारी अर्जुन और उनके सारथी कृष्ण के बीच में जो सम्वाद हुआ, गीता उसका संकलन है। कृष्ण को अर्जुन ने अपना सारथी बनाना तब भी स्वीकार किया था, जबकि कृष्ण ने इस युद्ध में स्वयं शस्त्र न उठाने का प्रण किया था।

युगपुरुष, युगदृष्टा, अधर्म का विध्वंस कर धर्म की स्थापना हेतु अवतरित श्रीकृष्ण महाराज जो कि पाण्डवोंके पक्षधर और अर्जुन के रथ के सारथी थे, अर्जुन के किंकर्त्तव्यविमूढ़ होने पर स्वयं श्रीकृष्ण ज्ञान-कर्म-भक्ति के बारे में जो कुछ कहे वह उनकी वाणी के संकलन का रूपक है गीता। यूं तो आदेश व उपदेश में ज्यादा अंतर नहीं है, सिर्फ यह है कि आदेश का अनुपालन करना होता है और उपदेश का अनुपालन मनमर्जी है। चूंकि हम लोगों ने गीता को उपदेश के रूप में स्वीकार किया है इसलिए गीता के ज्ञानामृत का पान नहीं कर पाये, बल्कि पढ़ने-सुनने तक ही सीमित रह गए। कर्म करने में ही तेरा अधिकार है, कर्म फल में कभी नहीं। इसलिए निरंतर आसक्ति रहित होकर सदा कर्त्तव्य कर्म को भलिभांति करता रह। स्वार्थ को त्यागकर तथा परमेश्वर को ही परम आश्रय और परम गति समझकर निष्काम प्रेमभाव से मन, वाणी और शरीर से समर्पित हो जाओ। कर्म में अहं भाव न लाओ। जिन तत्व जिज्ञासुओं ने इस बात का गहराई से पालन किया उन्हें कर्म योग भलिभांति समझ में

आया। गीता कोई ऐसे-वैसे पंडित-शास्त्री या विद्वान द्वारा नहीं कही गई है बल्कि भगवान श्रीकृष्ण के मुखारविंद से निकली हुई अमृतवाणी है जो युगों-युगों तक लोगों का मार्गदर्शन करती रहेगी। सर्वव्यापी सच्चिदानंदघन परमात्मा में एकीभाव से स्थित रहने का नाम ज्ञानयोग है। परमात्मा का तत्व स्वरूप ज्ञान के समान पवित्र करनेवाला नि:संदेह कुछ भी नहीं है और श्रद्धावान मनुष्य ही ज्ञान को प्राप्त करता है। इसलिए तद्विद्धि प्रणिपातेन परिप्रश्नेन... ज्ञानिनस्तत्त्वदर्शिन...

उस ज्ञान को तू तत्वदर्शी ज्ञानियों के पास जाकर समझो तब उस तत्वज्ञान का उपदेश भलिभांति समझ सकते हो। आगे श्रीकृष्ण कह रहे हैं- मैं जप-तप, यज्ञ-हवन, पूजा-पाठ व तीर्थों में नहीं मिलूंगा, बल्कि अनन्य भक्ति से, सबकी आत्मा में विराजित हूं और हृदय मंदिर में मेरा दर्शन करो। अहमात्मा गुडाकेश... यह कैसी विडंबना है कि एक ओर श्रीकृष्ण को अपार श्रद्धा भक्ति से पूजा जाता है और दूसरी उन्हीं के आदेश की अवहेलना। आज कितने भक्त हैं, जो अपनी आत्मा में ईश्वर का दर्शन करते हैं? नगण्य, शायद एक-दो प्रतिशत। सभी वही पूजा-पाठ, तीर्थाटन वगैरह करने में मशगूल हैं जिसे भक्ति के नाम पर अपने आपको धोखा देना है और श्रीकृष्ण के आदेश की अवहेलनाकर रहे हैं। चूंकि अर्जुन ने श्रीकृष्ण के आदेश का अक्षरश: पालन किया तभी उसका मोहभंग होता है और आगे भी आज्ञा-पालन की बात कही क्या हमें भी अर्जुन बनकर और श्रीकृष्ण जैसा मार्गदर्शक ढूंढ कर ज्ञान को प्राप्त करना चाहिए या नहीं? वरना जीवन तो क्षणभंगुर है और पलक झपकते ही नष्ट हो जाएगा। आवश्यकता है तो गीता में वर्णित तत्वज्ञान को प्राप्त करने की जो कि अनुभवगम्य है। जिस दिन हम गीता को आदेश के रूप में स्वीकार करेंगे और खोज करेंगे ज्ञानी तत्वदर्शी महापुरुष की तथा तत्वज्ञान प्राप्त करके यह जीवन सफल करेंगे उस दिन सचमुच में हमारे सौभाग्य के सारे दरवाजे मानो खुल गए। गीता एक कालजयी ग्रंथ है, क्योंकि यह किसी संप्रदाय विशेष के लिए नहीं है, बल्कि संपूर्ण मानव जाति के लिए एक मार्गदर्शक ग्रंथ का रूपक है। गीता के ज्ञानामृत को जिसने भी पान किया उसका हृदय गद्‌गद् हुआ और जिसने सिर्फ पढ़ा-सुना उसके जीवन में कोई बदलाव नहीं होता। हम किताबें होते हुए भी पाठशाला जाते हैं विद्या-अध्ययन के लिए, इसी प्रकार गीता के इस आदेश का पालन भी करना चाहिए कि तत्वज्ञानी की शरण में जाकर ज्ञान प्राप्त करें। यही ज्ञान जीवन के भवसागर को पार करने के लिए नौका है।

मैं कौन हूँ? मैं यहाँ किसलिए आया हूँ? मेरा कर्त्तव्य क्या है? मेरे जीवन का उद्देश्य क्या है? यहाँ से कहाँ जाना है? संसार क्या है? इससे परे क्या है? इत्यादि बातों को जानना और समझना जीवन-दर्शन कहलाता है। गीता इन सभी गूढ़ तथा अनसुलझे सवालों का व्यावहारिक तथा उपयोगी ढंग से समाधान देती है। जीवन की सबसे बड़ी सच्चाई व उद्देश्य है- अपने को देखना, जानना, व्यवस्थित करना, समझना और जीवन को उद्देश्यपूर्ण ढंग से जीना। गीता कहती है- पृथ्वी पर नाना प्रकार की भोग-योनियों का जाल फैला हुआ है। उनमें मानव-जन्म सर्वोत्तम है। यह अवसर अनेक जन्म के पुण्यों के पश्चात् सौभाग्य से मिलता है। इस अमूल्य जीवन को समझो और इसकी कीमत करो। इसको सुख-शान्ति और ज्ञानपूर्वक जीते हुए पूर्ण आयु को प्राप्त करो।

गीता आस्तिक और धार्मिक जीवन बनाकर जीने की सलाह देती है। मनुष्य का सबसे बड़ा बल, बन्धु और सहारा परमेश्वर है। प्रभु के बिना जीवन अनाथ, अधूरा व नीरस रहता है। उसे सदा साथ रखो और साथ मानो। तभी जीवन सही रहेगा और चलेगा।

भगवान श्रीकृष्ण अर्जुन को ज्ञान तथा विचारों से जागृत करते हैं। वे कहते हैं- ज्ञानी बनो। ज्ञानपूर्वक आचरण से मनुष्य सत्य-धर्म, न्याय और कर्त्तव्यपथ पर बना रहता है।

मन बुद्धि की पकड़ में आता है। इसलिए गीता बुद्धि को सदा जागृत, शुद्ध, पवित्र एवं श्रेष्ठ बनाये रखने की शिक्षा देती है। अविवेक तथा अज्ञान से बुद्धि भ्रष्ट होकर पतित हो जाती है। अज्ञान से काम, क्रोध, ईर्ष्या, द्वेष, अहंकार, स्वार्थ आदि मानसिक शत्रु बलवान बने रहते हैं। इन्हीं से अशान्ति, चिन्ता, दु:ख, तनाव, उलझनें आदि उत्पन्न होती हैं। गीता इन मानसिक रोगों को जड़ से पकड़ती और इनका सही इलाज बताती है। इनसे छूटने तथा बचने का एक उपाय है- समझदार व ज्ञानी बनकर जीवन तथा जगत् को मर्यादित, व्यवस्थित, सन्तुलित और व्यावहारिक बनाकर जीना। जीवन को उलझाओ नहीं, सुलझाकर सरल-सीधे और सादगीपूर्ण ढंग से जियो। जीवन को बनावट, दिखावट व सजावट से बचाओ। इनसे अशान्ति बढ़ती है। जागृत ज्ञान, विचार एवं विवेक से अनेक रोगों, चिन्ताओं, समस्याओं, उलझनों, विवादों आदि से बचा जा सकता है। अज्ञानी मनुष्य इन्हीं बातों में फँसा रहता है। यदि हम सच्चाई से ज्ञानपूर्वक सोचें तो यह सच निकलेगा कि बहुत सारी उलझनें, चिन्ता, परेशानी, दु:ख, रोग आदि हमने स्वयं उत्पन्न किए हुए हैं। गीता कहती है- ये अन्दर के रोग हैं और अन्दर के ज्ञान से ही दूर होंगे। इसलिए अन्दर से जागो। हमेशा ज्ञान, विचार, विवेक, वैराग्य आदि अन्दर से ही उत्पन्न होते हैं। गीता का जीवन-दर्शन कहता है- मनुष्य को सब काम करते-कराते हुए अपने स्वास्थ्य, परिवार, प्रभु-स्मरण व उसके धन्यवाद के लिए जरूर समय निकालना चाहिए। जिस इन्सान को इनके लिए समय नहीं मिलता है, उससे बढ़कर दुर्भाग्यशाली और कोई नहीं होगा। कथा, प्रवचन, सत्संग, प्रभु-भक्ति, साधना, स्वाध्याय आदि में रुचि, प्रवृत्ति तथा भावना को बढ़ाना चाहिए। ये आत्मोन्नति के साधन हैं। ज्यों-ज्यों उम्र बढ़ती जाए, त्यों त्यों मनुष्य को शान्ति, सन्तोष, प्रसन्नता एवं प्रभु की ओर बढ़ते जाना चाहिए। मन की शान्ति व सन्तुलन को किसी भी कीमत पर नहीं गँवाना चाहिए। यदि हम सच्चे अर्थ में मानव-जीवन को सफल व सार्थक बनाना चाहते हैं, तो संसार में रहते हुए देखे, सुने, भोगे हुए विषयों एवं पदार्थों को छोड़ते जाना चाहिए। मरने के बाद तो सभी को इन्हें मजबूरी में छोड़ना पड़ता है। गीता के बताए मार्ग पर चलें, तभी जीवन दु:खों, कष्टों, उलझनों, विवादों, चिन्ता, अशान्ति आदि से छूट सकता है। यही सुखी एवं शान्त रहने की जीवन-दृष्टि है।

मन के रोगों का इलाज बाहर की दुनिया के पास नहीं है। दैनिक घरेलू व व्यावहारिक जीवन में जागरूकता से ज्ञानी मनुष्य व्यर्थ की बातों और चीजों की उलझनों एवं चिन्ताओं से बचा रहता है। गीता जीवन और जगत् के प्रति दृष्टिकोण बदलने की सोच देती है। सोच-समझ एवं विचारों के बदलने से ही जीवन शान्त, सार्थक तथा उद्देश्यपूर्ण रहता है। गीता हमारी बेहोशी को हटाकर होश में जीने की राह दिखाती है। तत्त्वज्ञान से देखें तो पता चलेगा हमारे जीवन में कितना अहंकार, भ्रान्ति अज्ञान, व्यर्थ की बातों, चीजों, इच्छाओं, वासनाओं आदि का कूड़ा-करकट अन्दर भरा हुआ है। अज्ञानता में कीड़े-मकोड़ों की तरह विषय-भोगों में फँसे हुए हम लोग जिन्दगी काट, ढो और गुजार रहे हैं परन्तु जीवन को उद्देश्यपूर्ण ढंग से जी नहीं पा रहे हैं। गीता आँखें खोलकर संसार में जीने, रहने, खाने-पीने, भोग-संग्रह आदि की सलाह देती है। धन मत कमाओ- गीता यह नहीं कहती है। गीता कहती है- धर्मपूर्वक ईमानदारी व परिश्रम से धन कमाओ। अनुचित साधनों से धन-संग्रह मत करो। धन के पीछे शरीर, परिवार, सम्बन्ध और सुख-शान्ति भंग मत होने दो। आवश्यकता से अधिक धन कई बार कष्टदायक बन जाता है। सम्पत्ति के साथ विपत्ति भी आती है। सम्पत्ति के साथ सन्मति को भी बढ़ाओ।

गीता का सन्देश है- चिंतन के द्वारा उलझनों व विवादों का समाधान निकल आता है। गीता के चिन्तन ने ही अर्जुन को सँभाला था। संसार को भोगो, मगर उसमें फँसो नहीं। जियो और दूसरों को जीने में सहयोगी बनो। गीता की महत्त्वपूर्ण विशेषता यह है कि वह हमें वर्तमान में रहना और जीना सिखाती है। जो भी जीवन-जगत् के हालात, समस्याएँ, उलझनें, चिन्तन, दु:ख

आदि हैं, उनसे भागना नहीं, उनका हिम्मत और ज्ञान-विचारपूर्वक, सामना करना ही जीवन को विजयी बनाने का साधन है। स्वधर्म एवं स्वकर्म को धैर्य व निष्ठा से निर्वाह करते चलो। जीवन ऐसा बनाओ कि मरकर भी जीवित रहो।

सन्तुलित, संयमित व मर्यादित जीवन जीने के लिए धर्म, अर्थ, काम और मोक्ष की व्यवस्था का गीता समर्थन करती है। इनके सन्तुलन व पूर्णता से इहलोक और परलोक दोनों ही ठीक चलते एवं सँभले रहते हैं। गीता स्वस्थ व शान्त जीवन का आधार प्रत्येक क्षेत्र में सन्तुलन मानती है। धर्मपूर्वक आचरण करते हुए, धर्मानुसार धन का उपार्जन करना, नियम-संयमपूर्वक सांसरिक इच्छाओं व कामनाओं की पूर्ति करते हुए प्रभु सान्निध्य और मोक्ष को प्राप्त करना जीवन का उद्देश्य है। धर्म, अर्थ, काम और मोक्ष के समन्वय में ही जीवन की पूर्णता है। आज चारों का सन्तुलन बिगड़ रहा है। आज धर्म व मोक्ष के विषय में सोच-विचार एवं चिन्तन गायब हो रहा है। सर्वत्र धन व काम की भागदौड़ बढ़ रही है। इन्हीं दोनों के कारण पाप, अधर्म, अपराध, भ्रष्टाचार, बेईमानी, हिंसा, अनर्थ आदि बढ़ रहे हैं। धन का अभाव और प्रभाव दोनों ही कष्टदायक हो रहे हैं। गीता कहती है- जब तक धन, काम (इच्छाओं और वासनाओं) पर नैतिकता, धार्मिकता, अध्यात्म, ज्ञान, विवेक, वैराग्य आदि का अंकुश व पहरा नहीं होगा, तब तक ये तबाही मचाते रहेंगे। भोग और संग्रह का संतुलन ही इनका इलाज है।

काम वासना से बढ़कर व्याधि नहीं, क्रोध जैसी अग्नि नहीं, लोभ जैसा जाल नहीं, अज्ञान से बढ़कर अंधकार नहीं, तृष्णा से बढ़कर दरिद्रता नहीं, सन्तोष से बढ़कर सुख नहीं, विद्या से बढ़कर धन नहीं, मोह से बढ़कर बन्धन नहीं और ईश्वर से बढ़कर कोई साथी नहीं है। भौतिक उन्नति, सुख-भोग, साधन, सुविधाएँ आदि के साथ-साथ नैतिक, वैचारिक, मानसिक तथा आत्मिक उन्नति भी जरूरी है। बिना आन्तरिक विकास व परिवर्तन के बाहर की प्रगति व रोशनी जीवन को पशुवत् खाओ, पियो और सो जाओ तक सीमित कर रही है। आत्मिक विकास से ही जीवन सुखी, शान्त व संतुलित रह सकता है। गीता संसार की वैज्ञानिक उन्नति के साथ-साथ आध्यात्मिक उन्नति के समन्वय का सन्देश देती है। आन्तरिक उन्नति से ही विश्व शांति, विश्वबन्धुत्व और विश्वमानवता की सोच-विचार व समझ आयेगी। गीता युद्ध-भूमि से विश्वशान्ति का सन्देश देती है। पुरातनता और नवीनता का सन्तुलन गीता के उपदेश व चिन्तन की विश्वव्यापी विशेषता है।

गीता-ज्ञान महाभारत के समय जितना उपयोगी, व्यावहारिक तथा महत्त्वपूर्ण था, आज उससे ज्यादा उस के जीवन-दर्शन की दुनिया को जरूरत है- केवल समय, लोग, स्थान आदि ही बदले हैं। मगर संसार की सोच-विचार, स्वार्थ, अहंकार, पदलिप्सा, अकेले भोगने की प्रवृत्ति, मोह-माया, परस्पर-वैमनस्य, धन व काम का बोलबाला, ईर्ष्या-द्वेष आदि पहले से ज्यादा बढ़ रहे हैं। जीवन, परिवार, समाज एवं राष्ट्र छूट एवं बिखर रहे हैं। गीता आज के इन्सान, परिवार, समाज और विश्वमानव को स्वधर्म एवं स्वकर्म बता रही है। गीता का जीवन-दर्शन बारूद के ढेर पर खड़े, दु:ख, रोग, अभाव, अशान्ति, हिंसा आदि से घिरे, भूले-भटके मानव-समाज को प्रकाश-स्तम्भ की तरह रोशनी दे रहा है। इसलिए गीता-ज्ञान पहले से ज्यादा उपयोगी, व्यावहारिक तथा प्रासंगिक है।

गीता का महत्त्वपूर्ण जीवन सन्देश है- कर्मशील बनो। अपने कर्मों को सुधारो। कर्मों से ही हम सुख, दु:ख, स्वर्ग और नरक बना रहे हैं। कर्मों के फल से हम निकृष्ट योनियों में दु:ख और कष्ट भोगते हैं। श्रेष्ठ तथा भलाई के कर्मों को ही पूजा बना लो। यही सच्ची भक्ति है। मनुष्य कर्मों से ही अमरता पाता है। सुखी, शान्त, प्रसन्न एवं नीरोगी जीवन के लिए अधिक ताम-झाम और सुख-साधनों की ज्यादा जरूरत नहीं है। सोच-समझकर कर्म करनेवाले इन्सान को बाद में दु:खी एवं पछताना नहीं पड़ता है। जो अज्ञानी बिना विचारे काम करते हैं, वे सदा दु:खी व परेशान रहते हैं। संसार में सुख-दु:ख,

परिवर्तन, उतार-चढ़ाव आदि आते ही रहेंगे। समझदारी इसी में है कि धैर्यपूर्वक विपरीत हालात में भी जीवन जी लिया जाए। जागृत ज्ञान-विवेक, मानसिक सन्तुलन और विचार-शक्ति को मजबूत बनाए रखते हैं।

गीता ज्ञान, कर्म और भक्तियोग का शिक्षाप्रद प्रेरक एवं उपयोगी सन्देश देती है। ज्ञानपूर्वक श्रेष्ठकर्म करते हुए भक्ति को अपनाओ। ज्ञान, कर्म और भक्ति तीनों का आपस में गहरा सम्बन्ध है। तीनों एक दूसरे के बिना अधूरे हैं। कुछ लोग ज्ञानवान बन जाते हैं, किन्तु कर्म व भक्ति में अधूरे रह जाते हैं। कई अज्ञानतापूर्ण कर्मों में दिन-रात लगे रहते हैं। उन्हें मालूम ही नहीं कि कौन से कर्म ठीक हैं और कौन से गलत हैं। कुछ लोग ज्ञान व कर्म में बहुत आगे निकल जाते हैं, किन्तु प्रभु-भक्ति में शून्य रह जाते हैं। कुछ लोग दुनियादारी में चतुर, समझदार एवं सफल होते हैं, किन्तु उनका जीवन आध्यात्मिक दृष्टि से सूना और सूखा रह जाता है। ऐसे लोगों में भक्ति के प्रति कोई रुचि व लगन नहीं बन पाती।

गीता कहती है- ज्ञानपूर्वक श्रेष्ठ कर्म करते हुए भक्ति फलवती व जीवनदायिनी बनती है। तीनों को मिलाकर चलो। इन तीनों से ही जीवन पूर्ण व सफल कहलायेगा। गीता सोच देती है- अध्यात्म जीवन की खोज मनुष्य को व्यावहारिक तथा दैनिक जीवन के क्रियाकलापों में करनी चाहिए। इसीसे परमात्मा प्रसन्न होते हैं।

स्वकर्मणा तमभ्यर्च्य सिद्धिं विन्दति मानव:।

सर्वत्र व्याप्त प्रभु की अपने कर्मों से पूजा करो। पवित्र कर्म ही पूजा है। साधन और साधना दोनों को साथ लेकर चलो। ज्ञानपूर्वक कर्म करते हुए, प्रभु का स्मरण करते रहो, पापों से बचो और अपने जीवन को सँभाले रहो।

इसी जन्म में कर्मों के द्वारा अगले जन्म की तैयारी करनी है। कर्म ही जीव के साथ जायेंगे। यदि यह जन्म सँभल गया, तो अगला जन्म भी श्रेष्ठ-योनि को प्राप्त करेगा। वर्तमान से ही भविष्य बनता है। दु:ख है कि हम गीता को रखते, पढ़ते, सुनते, चर्चा करते और पुस्तक के रूप में उसका खूब सम्मान करते हैं, मगर गीता के उपदेश व चिन्तन को न पड़ते और न आचरण में लाते हैं। इसी कारण जीवन सँभल, सुधर एवं ऊपर नहीं उठ पा रहे हैं।

गीता में जीवनोपयोगी महत्त्वपूर्ण विषयों का कहीं सूत्र रूप में, तो कहीं विस्तार से चिन्तन है। गीता सार्वभौम ग्रन्थ है। इसमें प्राणिमात्र के उत्थान, कल्याण, सुधार तथा सन्मार्ग का सन्देश है। सत्य, धर्म, न्याय तथा कर्त्तव्य की रक्षा के लिए भगवान श्रीकृष्ण ने अर्जुन को युद्ध के लिए तैयार किया और कहा-**तस्मात् उत्तिष्ठ कौन्तेय युद्धाय कृतनिश्चय:**

जीवन संग्राम है। इससे भागना नहीं है, इसमें जागकर अपने कर्त्तव्य-कर्मों को करते हुए जीवन में विजयी बनना है। जीवन के दाँव को हारना नहीं, समझदारी व ज्ञानपूर्वक जीतना है। भगवान श्रीकृष्ण ने गीता-ज्ञान के माध्यम से जीवन व जगत् को अमृत दिया है। गीता वर्तमान जीवन और संसार के अनेक ज्वलन्त प्रश्नों, उलझनों, विवादों तथा मानसिक रोगों आदि का व्यावहारिक समाधान एवं सन्मार्ग बताती है। गीता-ज्ञान ने लोगों के सोचने, समझने और जीवन के ढंग को बदल दिया है। वह हमें स्वधर्म, स्वकर्म और कर्त्तव्य में लगे रहने की शिक्षा देती है। गीता में कायरता को वीरता में बदलने का उपदेश है। व्यावहारिक दुनिया में कैसे जिया जाए, यही गीता हमें सिखाती है। गीता-ज्ञान प्रत्येक दृष्टि से प्रेरक, उपयोगी, जीवन को बदलने वाला, व्यावहारिक और महत्त्वपूर्ण है।

विश्व के इतिहास में गीता का उपदेश एक अद्भुत और अनूठी घटना है। गीता का ज्ञान युद्धस्थल पर अशान्त, तनाव और संघर्षमय परिस्थितियों में प्रकट हुआ था। गीता-ज्ञान विश्व को भगवान श्रीकृष्ण की अद्वितीय तथा अमूल्य देन है। इस योगदान ने उन्हें पूज्य और विश्ववंद्य बना दिया है। गीता जैसा उच्च, शान्तिदायक, व्यावहारिक तथा जीवनोपयोगी

ज्ञान संसार में अन्यत्र कहीं नहीं मिलता है। इसमें संपूर्ण भारतीय चिन्तन-दर्शन, धर्म, अर्थ, काम, मोक्ष, जीवन-मृत्यु, आत्मा-परमात्मा आदि का गहन चिन्तन है। गागर में सागर भरना कहावत गीता-ज्ञान पर पूरी खरी उतरती है। जीवन को सफल एवं विजयी बनाने के लिए गीता सीधा-सरल, व्यावहारिक तथा प्रेरक चिन्तन देती है।

गीता संपूर्ण जीवन की व्याख्या है। गीता हमें कठिन से कठिन परिस्थिति में निरन्तर संघर्षशील रहने और आगे बढ़ने की प्रेरणा व शिक्षा देती है। गीता हमें वर्तमान में रहना और जीना सिखाती है। गीता की दृष्टि से जीवन का उद्देश स्वकर्म और स्वधर्म को आस्था व निष्ठा से निर्वाह करते हुए चलना है। गीता द्वारा दर्शित जीवन जीने से ही जीवन में पूर्णता, ईश्वर प्राप्ति एवं मुक्ति प्राप्त हो सकेगी। भारत और विश्व समुदाय में गीता सर्वमान्य और सर्वपूज्य ग्रन्थ है, इसी कारण इस ग्रन्थ का सबसे अधिक आकर्षण व सम्मान है। सार्वजनिक प्रार्थना सभाओं, श्रद्धांजलि सभाओं, न्यायालयों आदि में इसी को सर्वमान्य समझा जाता है। गीता भारतीय जीवन-दर्शन का प्रतिनिधित्व करती है। गीता राष्ट्रीय ग्रन्थ है।

गीता तत्वज्ञान का ग्रन्थ है। गीता में जीवन जगत् की भौतिक, मानसिक, आध्यात्मिक, समस्याओं, उलझनों और गूढ़ प्रश्नों का सुन्दर-सरल, व्यावहारिक एवं मनोवैज्ञानिक समाधान किया गया है। प्रश्नोत्तर शैली में रहस्यपूर्ण गंभीर बातों को सरल शब्दों में समझा देना गीता की महत्वपूर्ण व अद्भुत विशेषता है। गीता संसार में रहने, जीने, छोड़ने और मरने की कला सिखाती है। जीवन को निरोगी, सुखपूर्वक और सम्मानपूर्वक सुन्दर ढंग से जीओ। श्रेष्ठ, पवित्र तथा सुन्दर जीवन जीने के लिए अच्छे विचारों की ज्यादा जरूरत हैं, भौतिक सामान की जरूरत कम है। मन और विचारों को ऊंचा उठाओ। वासना को उपासना में और चिन्ता को चिन्तन में बदलो। जीवन कुरुक्षेत्र है। इसमें निरन्तर समस्याएं, उलझनें, चिन्ताएं आदि बनी रहती हैं। कभी निराश, हताश और उदास मत होओ। धर्म-कर्त्तव्य एवं सत्पथ पर निरन्तर आगे बढ़ते चलो। भगवान श्रीकृष्ण का संपूर्ण जीवन संघर्ष, कठिनाइयों, मुसीबतों और विपरीत परिस्थितियों में निकला। वे कभी निराश-हताश, उदास और घबराये नहीं। उन्होंने धैर्य, हिम्मत व आशा को कभी छोड़ा नहीं और सदा मुस्कराते रहे। गीता भी हमें ऐसे ही जीना सीखाती हैं। कैसी भी कठिनाई, परेशानी, दु:ख एवं कष्ट आ जाएं, धैर्य मत छोड़ो और घबराओ नहीं। समय व हालात बदलते देर नहीं लगती है। रात के बाद सुबह भी होगी। दु:ख के बाद सुख भी आयेगा। गीता का यह जीवन-संदेश संजीवनी शक्ति है।

गीता जन्म-मरण से निर्भय होने का ज्ञान व उपदेश देती है। मरने पर लोग गीता पढ़ते और सुनते हैं। सच तो यह है कि जीवित रहते हुए गीता पढ़ने-सुनने और सुन्दर जीने का ग्रन्थ है। जिसने जीवित रहते हुए गीता पढ़ी, सुनी व गाई नहीं, उसके लिए मरने के बाद गीता-पाठ से कोई लाभ न होगा। गीता तो जीवन का मधुर संगीत है, जिसका आनन्द तो जीवित व्यक्ति ही ले सकता है। श्मशान में जाते हुए लोग राम नाम सत्य है बोलते जाते हैं। यदि जीवित रहते हुए यह समझ में आ जाए कि प्रभु का नाम ही सत्य एवं सार है, यही अन्त तक साथ देगा। बाकी सब यही छूट जाएगा, तो ऐसी भावदशा में दुनिया छोड़ते हुए मृत्यु का दु:ख एवं भय न होगा। जीवित रहते हुए स्वर्गीय बनो। शरीर जीवन, घर, समाज तथा संसार को स्वर्ग बनाकर भोगो। मरने के बाद स्वर्गीय क्यों बनते हो? स्वर्ग-नरक तो इसी धरती पर हैं। गीता व्यावहारिक सुखी एवं शान्त जीवन जीने की कला सिखाती है।

दुनिया में सबसे बड़ा भय, दु:ख तथा चिन्ता मृत्यु की मानी गई है। गीता पढ़ने से प्रभु-सत्ता, आत्मा की अमरता, पुनर्जन्म में विश्वास और मृत्यु से निर्भयता की शिक्षा मिलती है। गीता शरीर की नश्वरता एवं आत्मा की अमरता का सन्देश देकर मनुष्य को संभालती व सान्त्वना देती है। जीवन अनन्त है, मृत्यु तो जीवन का पड़ाव है। गीता अशान्त व

दु:खी मनको शान्ति, धैर्य और सहारा देती है।

गीता मानसिक रोगों की रामबाण दवाई है। काम-क्रोध, लोभ, मोह, ईष्या-द्वेष, अशान्ति, असन्तोष, चिन्ता-तनाव, आदि मन की बीमारियां हैं। इन रोगों से आज का संसार भयंकर रूप से पीड़ित हो रहा है। सभी किसी न किसी रोग की चपेट में है। इन मानसिक रोगों का कहीं बाहर के जगत में इलाज नहीं है। गीता इन रोगों की सही जांच-पड़ताल करती है और अचूक इलाज बताती है। अर्जुन मानसिक रोग से पीड़ित हुए तो गीता के इलाज से उन्हें नया जीवन मिला। यही गीता का जादू और चमत्कार है। इसीलिए गीता जन-जन की प्यारी है।

गीता क्रान्तिकारी ग्रन्थ है और भारत की पहचान तथा आकर्षण है। इसमें किसी प्रकार का भेद-भाव, ऊंच-नीच, संप्रदाय आदि की चर्चा नहीं है, यह तो मानव मात्र के कल्याण, उत्थान, विश्वशान्ति एवं विश्व मानवता का ग्रन्थ है। यह ऐसा महान ग्रन्थ है, जिस पर अनेक टीकाएं, भाष्य तथा अनेक भाषाओं में इसका अनुवाद हुआ है। सभी धर्मग्रन्थों में गीता की लोकप्रियता सबसे अधिक है। गीता को जीवन-मृत्यु, कथा, प्रवचन, पूजा-पाठ, स्वाध्याय-सत्संग, प्रार्थना आदि के अवसरों पर पढ़ते-सुनते हैं। न्यायालय-कचहरी में भी गीता पर हाथ रखकर शपथ दिलाई जाती है। यह भावना तथा विश्वास है कि यह सत्य, न्याय, धर्म, कर्त्तव्य और जीवन का ग्रन्थ है।

गीता का ज्ञान अथाह है। अनेक ज्ञानी, सन्तों, विद्वानों, सन्यासियों, महापुरुषों आदि ने गीता पर तत्त्वपूर्ण चिन्तन-मनन किया है। गीता वह गहरा समुद्र है जिसने इसमें गोता लगाया, उसने ही अपने तरह का अमूल्य ज्ञान रत्न पाया। गीता पर न जाने कितना लिखा, पढ़ा, सुना तथा बोला गया फिर भी यह ग्रन्थ अपने में बहुत कुछ छिपाये हुए है। जो गीता पर विचार-चिन्तन , उपदेश ज्ञान-व्याख्या आदि प्राप्त है, वह सभी स्मरणीय एवं महत्वपूर्ण है। मैं गीता का ज्ञानी, मर्मज्ञ और विद्वान नहीं वरन् गीता का प्रेमी व जिज्ञासु विद्यार्थी हूं। जो पढ़ा, सुना, समझा, अनुभव किया तथा महापुरुषों से प्राप्त हुआ, उसे सरल शब्दों में लिखने की प्रयास है, जिससे जन-सामान्य को गीता-ज्ञान से कुछ सन्देश, ज्ञान, विचार, दृष्टि, चिन्तन व प्रेरणा मिल सके। कई बार कोई एक विचार, ज्ञान, उपदेश तथा शब्द जीवन को बदल देता हैं। ज्ञान अनन्त होता है, उसकी कोई सीमा नहीं है। पूर्ण ज्ञानी तो केवल परमात्मा ही है। मेरी भावना और उद्देश्य यही रहा है कि गीता-ज्ञान से लोगों का जीवन संभले, सुधरे और ऊँचा उठे। सबका जीवन नीरोगी, सुखी, शान्त और आस्तिक बने। हम अपने धर्म और कर्म को पहिचानें।

गीता मनुष्य को मृत्यु से निश्चिन्त एवं मृत्यु के बन्धन से छूटने का उपाय बताती है। गीता को पढ़ने, सुनने तथा समझने के बाद इन्सान मृत्यु से भयभीत, चिन्तित और परेशान नहीं होता है। मृत्यु को सहज परिवर्तन तथा स्वाभाविक व प्राकृतिक नियम मानकर आत्मज्ञानी व्यक्ति मृत्यु को सहज स्वीकार कर शान्ति से शरीर छोड़ देता है। वह शरीर को छोड़ते हुए रोता-पीटता एवं पछताता नहीं है। वह प्रभु का स्मरण और धन्यवाद करता हुआ जीवन-यात्रा पूर्ण करता है। यही गीता का मृत्यु से अमृतत्व की ओर ले चलनेवाला सारपूर्ण उपदेश और सन्देश है।

भगवान् स्वयं प्रेमस्वरूप हैं। वे प्रेमद्वारा ही हृदयमें प्रकट होते हैं। उनके चरित्र प्रेमरूप हैं। उनकी वाणी प्रेममयी है। उनका प्रेममय हृदय ही गीताके रूपमें प्रकट हुआ है, अत: गीता उनके प्रेमका सच्चा गीत है।

गीतामें भगवत्प्रेमके अन्तर्गत शिष्टाचार तथा सदाचारका भी चित्रण दिखायी देता है; क्योंकि भक्तके जीवनमें पवित्र आचरणकी विशेष महत्ता होती है। भगवान्का भजन करनेके कारण भक्तके मन, बुद्धि आदि सब दिव्य बन जाते हैं। अर्जुनके चरित्रमें शिष्टाचार तथा सदाचारके गुण दर्शाकर सभी भक्तोंको उनका अनुसरण करनेकी शिक्षा दी गयी है।

गीतामें ज्ञानयुक्त भगवत्प्रेमका वर्णन है। ज्ञानी भक्त सतत ईश्वरका स्मरण करता है। वह ईश्वरसे कभी पृथक् नहीं होता है। वास्तवमें स्वरूपत: हम न ईश्वरसे पृथक् हो सकते हैं और न ईश्वर हमसे पृथक् हो सकता है।

ईश्वर-तत्त्वका ज्ञान नहीं होनेके कारण ही जीव ईश्वरको भूल जाता है। इसीलिये भगवान्ने अर्जुनके माध्यमसे मानवमात्रको प्रेमपूर्वक सदैव भगवत्स्मरण करते रहनेका संदेश दिया है।

जो ज्ञानपूर्वक निरन्तर ईश्वरका स्मरण करनेका अभ्यास करता है, वह निश्चय ही उसे प्राप्त कर लेता है।

भगवन्नामकी साधनाद्वारा जीवनमें अवश्य ही सद्विचार आते हैं। सद्विचारद्वारा सदाचारका निर्माण होता है, जिसे चरित्र-निर्माण कहते हैं। वर्तमान समयमें समाजकी दशा देखते हुए कहना पड़ता है कि भगवद्भक्तिके अभावमें मानवताके स्थानपर दिनानुदिन दानवता बढ़ती जा रही है। गीता आदर्श सदाचारी, चरित्रवान् तथा भगवत्प्रेमी बननेका सन्देश देती है; क्योंकि ऐसे ही श्रेष्ठजन अनुकरणके आदर्श बनते हैं।

गीता का उपदेश यही है कि अन्याय के विरुद्ध शस्त्र उठाने का आह्वान है। अन्याय से लड़ते हुए विजयी बनो और धरती का ऐश्वर्य भोगो। यदि रणभूमि में मृत्यु को प्राप्त हो जाए तो स्वर्ग की प्राप्ति होगी। सुदर्शन चक्र ही उनका प्रत्यक्ष-अप्रत्यक्ष रूप है जो अन्याय के विरुद्ध घूमते रहता है। जिस किसीने भी भगवान कृष्ण के विराट स्वरूप का दर्शन किया उसे अपने प्रभु का ज्ञान हुआ। भगवान के स्वरूप को मानने वालों में कृष्ण तत्व व्यापक है। पुराणों से लेकर मध्यकालीन कवियों का मुख्य विषय कृष्ण ही रहा। उनके केवल हिंदू भक्ति ही नहीं हुए, मुसलमानों में भी इनकी आस्था रहीं जैसे कवि रसखान। मीरा एक राजघराने की पुत्री होकर भी कृष्ण भक्ति में इतनी रंग गई कि अपना सब-कुछ निछावर कर देती है। सूरदास नेत्रहीन होने पर भी कृष्ण चरित्र के रस को बरसाते हैं। कृष्ण के जीवन में वह सब कुछ है जो उनको ईश्वर परमात्मा या अलौकिक पुरुष बनाने के लिए पर्याप्त हैं पर उन्होंने उन सभी कर्त्तव्यों का निर्वाह किया जो मनुष्य के लिए आवश्यक है। महाभारत के युद्ध में गीता का जो उपदेश दिया केवल युद्ध करने के लिए नहीं, अपितु कर्म, उपासना एवं ज्ञान प्राप्ति के साधन का उपदेश हैं। आज वह धरोहर हमारे पास ही है जो राष्ट्रीय ग्रन्थ हैं ऐसा चरित्र जिसे गीता कहते हैं। ऐसा अद्भुत चरित्र किसी युग में देखने में नहीं आता। कृष्ण के रहस्य को जानने में भारत ही नहीं पश्चिम भी रुचि रखता है।

पार्थसारथी ने परिमाण में पवित्र व्यक्तियों के सहयोग से एक साथ मानव समाज की उन्नति के लिए अनायास भाव से कार्य किया। भक्त और भगवान एकत्व में विलीन हो जाए यही पथ अग्रसर किया। पूरे ज्ञान में दार्शनिक तत्व ही है। उन्होंने बता दिया जीवन में सच्चा व्यक्ति वही है जो पीछे हटना नहीं जानता। जरासंध के बार-बार आक्रमण करने पर उसके हाथ से मथुरा को बचाने के लिए स्वयं द्वारिका चले गये जो कि मरुभूमि को पार करनी पड़ती है। जरासंध के समान एक समाज विरोधी तत्व को काबू करने के लिए नये पथ की उद्भावना की। इसे कृष्ण ने व्यावहारिक और व्यक्तिगत जीवन में दिखा दिया कि किसप्रकार एक अच्छा आदमी बना जा सकता है, किस प्रकार पापशक्ति, समाज विरोधी शक्ति के विरुद्ध लड़ा जा सकता है, किस प्रकार उचित पथ के कार्य करने चाहिए।

** मान-सम्मान तभी तक है जब किसी के सामने मदद के लिये हाथ न फैलाया जाये।*

** दुनिया में खाई में धकेलनेवालें अनेकों है मगर उसमें से निकालनेवाले लोग गिने चुने ही है।*

** परिवर्तन के साथ समझौता करके चलनेवाला मनुष्य सदा सुखी रहता है।*

** दु:ख एक शिक्षा है और सुख एक परीक्षा है।*

महाभारत समीक्षा

महाभारत ग्रंथ के बारे में अनेक भ्रांतियां, अंध:विश्वास फैले हुए हैं। जनसाधारण ऐसे ज्ञानपूर्ण ग्रंथ को रखने और पढ़ने में भी हिचकिचाहट करते है। महाभारत के जैसा ग्रन्थ जो घर-परिवार में रहना सिखाता है और वैमनस्यता, कटुता जिन पारिवारिक सदस्यों में किन्ही कारणों से होती है उसका सही और सच्चा दिग्दर्शन कराता है और यह प्रथा और समस्या आनेवाले हर युग में होगी। होनेवाली समस्याओं का समाधान भी किया है। यह एक शिक्षापूर्ण और ज्ञान का ग्रंथ है। जो हर गृहस्थी को अपने घर में रखना चाहिये और अपना ज्ञान बढ़ाना चाहिये। इससे घर-परिवार की हर समस्या को सुलझाया जा सकता है। एक प्रसंग में द्रौपदी ने कृष्णपत्नी सत्यभामा को एक पतिव्रता सती नारी के गुणों की व्याख्या की जिसका उदाहरण प्रस्तुत किया जाता है।

वनमें भगवान् श्रीकृष्ण पाण्डवोंसे मिलने सत्यभामाजीके साथ आये थे। एकान्तमें सत्यभामाने कृष्णासे पूछा- बहिन। तुम्हारे पति लोकपालोंके समान शूर हैं। तुम ऐसा क्या व्यवहार करती हो कि वे तुमपर कभी रुष्ट नहीं होते ? वे तुमसे सदा प्रसन्न ही रहते हैं। वे सदा तुम्हारे वशमें क्यों रहते हैं ? मुझे भी तुम कोई ऐसा व्रत, तप, तीर्थ, मन्त्र, औषधि, विद्या, जप, हवन या उपचार बताओ जिससे श्यामसुन्दर सदा मेरे वशमें रहें।

द्रौपदीने कुछ स्नेह-रोषपूर्वक कहा- सत्ये। तुम तो मुझसे दुराचारिणी स्त्रियोंकी बात पूछ रही हो। मैं ऐसी स्त्रियोंकी बात क्या जानूँ ? मुझपर ऐसी शंका करना तुम्हारे लिये उचित नहीं। जब पति जान लेता है कि पत्नी उसे वशमें करनेके लिये मन्त्र-तन्त्र कर रही है तो वह उससे डरकर दूर रहने लगता है। इस प्रकार चित्तमें उद्वेग होता है और तब शान्ति कैसे रह सकती है। तन्त्र-मन्त्रादिसे कभी पति वशमें नहीं किया जा सकता। इससे तो अनर्थ ही होते हैं। धूर्त्त लोग स्त्रियोंद्वारा पतिको ऐसी वस्तुएँ दिला देते हैं, जिससे भयंकर रोग हो जाते हैं। पतिके शत्रु इसी बहाने विष दिला देते हैं। ऐसी स्त्रियाँ मूर्खतावश पतिको जलोदर, कुष्ठ, अकालवार्धक्य, नपुंसकता, उन्माद या वधिरता-जैसे रोगोंका रोगी बना देती हैं। पापियोंकी बातें माननेवाली पापी नारियाँ इस प्रकार पतिको अनेक कष्ट देती हैं। साध्वी स्त्रीको भूलकर भी ऐसा प्रयत्न नहीं करना चाहिये।

द्रौपदीने इसके पश्चात् अपनी चर्या बतायी- मैं अहंकार और क्रोध छोड़कर पाण्डवों तथा उनकी दूसरी स्त्रियोंकी सावधानीसे सेवा करती हूँ। कभी ईर्ष्या नहीं करती। केवल सेवाके लिये मनको वशमें करके पतियोंके अनुकूल रहती हूँ। न तो अभिमान करती हूँ और न कभी कटु भाषण। असभ्यतासे खड़ी नहीं होती, बुरे स्थानपर बैठती नहीं, बुरी बातोंपर दृष्टि नहीं देती और पतियोंका दोष न देखकर उनके संकेतोंके अनुसार व्यवहार करती हूँ। कितना भी सुन्दर पुरुष हो, मेरा मन पतियोंके अतिरिक्त उधर नहीं जाता। पतियोंके स्नान-भोजन किये बिना मैं स्नान या भोजन नहीं करती। उनके बैठ जानेपर ही बैठती हूँ और उनके घरमें आनेपर उठकर आदरपूर्वक उनको आसन तथा जल देती हूँ। घरके बर्तनोंको स्वच्छ रखती हूँ, सावधानीसे रसोई बनाती हूँ, समयपर भोजन कराती हूँ। घरको स्वच्छ रखती हूँ तथा गुप्तरूपसे अन्नका संचय रखती हूँ। कभी किसीका तिरस्कार नहीं करती, दुष्टा स्त्रियोंके पासतक नहीं जाती। द्वारपर बार-बार नहीं खड़ी होती, कूड़ा फेंकनेके स्थानपर अधिक नहीं ठहरती। पतिसे पृथक् रहना मुझे रहना पसंद नहीं। पतियोंके घरसे कार्यवश बाहर जानेपर पुष्प, चन्दनका उपयोग छोड़कर व्रत करती हूँ। मेरे पति जिन वस्तुओंको खाते, पीते या सेवन नहीं करते, उनसे दूर रहती हूँ। शास्त्रविहित स्त्रियोंके सब व्रत करती हूँ। अपनेको सदा वस्त्रालमारसे सजाये रहती हूँ।

द्रौपदीने और भी बताया- मेरी पूज्या सासने जो भी कौटुम्बिक धर्म बताये हैं, सबका पालन करती हूँ। भिक्षा देना, अतिथि-सत्कार, श्राद्ध तथा त्यौहारोंपर पक्वान्न बनाना, माननीयोंका सत्कार आदि सब धर्म सावधानीसे पालन करती हूँ। पतियोंसे अच्छा भोजन, अच्छे वस्त्र मैं कभी ग्रहण नहीं करती। उनसे ऊँचे आसनपर नहीं बैठती। सासजीसे विवाद नहीं करती। सदा अपनी वीरमाता सासकी भोजन-वस्त्रसे सेवा करती हूँ। उनकी कभी वस्त्र, भूषण या जलमें उपेक्षा नहीं करती। सबसे पीछे सोती हूँ, सबसे पहले शय्या छोड़ देती हूँ। धर्मराजके भवनमें प्रतिदिन आठ सहस्र ब्राह्मण स्वर्णपात्रमें भोजन करते थे। महाराज अट्ठासी सहस्र स्नातकोंका भरण-पोषण करते थे। दस सहस्र दासियाँ उनके थीं। मुझे सबके नाम, रूप, भोजन-वस्त्रका पता रहता था। मैं दासियोंके सम्बन्धमें पता रखती थी कि किसने क्या काम कर लिया है और क्या नहीं। महाराजके पास एक लक्ष घोड़े और इतने ही हाथी थे। उनका भी मैं ही प्रबन्ध करती थी। उनकी गणना करती, आवश्यकताएँ सुनती और अन्त:पुरके ग्वालों, गड़रियों तथा सेवकोंकी देख-भाल करती।

महारानी द्रौपदीके कार्य यहीं नहीं समाप्त हो जाते, वे और बताती हैं- महाराजके आय, व्यय और बचतका मैं हिसाब रखती थी। मेरे पति कुटुम्बका सारा भार छोड़कर पूजा-पाठ या आगतोंका सत्कार करते थे। पूरे परिवारकी देख-भाल मैं ही करती थी। वरुणके समान महाराजके अटूट खजानेका पता भी मुझे ही रहता था। भूख-प्यास सहकर रात-दिन एक करके मैं सदा पाण्डवोंके हितमें लगी रहती थी। मुझे तो पतियोंको वशमें करनेका यही उपाय ज्ञात है।

महारानी कृष्णा सचमुच गृहस्वामिनी थीं। सत्यभामाने उनसे क्षमा माँगी। विदा होते समय पाञ्चालीने उन्हें पतिको वशमें करनेका निर्दोष मार्ग बतलाते हुए कहा- तुम सहृदता, प्रेम, परिचर्या, कार्यकुशलता तथा विविध प्रकारके पुष्पचन्दनादिसे श्रीकृष्णकी सेवा करो। वही काम करो, जिससे वे समझें कि तुम एकमात्र उन्हींको प्रिय मानती हो। उनके आनेकी आहट पातेही आँगनमें खड़ी होकर स्वागतको उद्यत रहो। आते ही आसन और पैर धोनेको जल दो। वे दासीको कोई आज्ञा दें तो वह काम स्वयं कर डालो। तुमसे यदि कोई गुप्त रखने-योग्य बात पतिदेव कहें तो उसे किसीसे मत कहो। पतिके मित्रों तथा हितैषियोंको भोजनादिसे संतुष्ट करो तथा पतिके शत्रु, द्वेषी, तटस्थ लोगोंसे दूर रहो। सपत्नियोंके पुत्रोंके साथ भी एकान्तमें मत बैठो। कुलीन, दोषरहित सती स्त्रियोंका ही साथ करो। क्रूर, झगड़ालू, पेटू, चोर, दुष्टा तथा चञ्चल स्वभावकी स्त्रियोंसे दूर रहो। इस प्रकार सब प्रकार पतिकी सेवा करनेसे तुम्हारे यश और सौभाग्यकी वृद्धि होगी तथा अन्तमें स्वर्ग प्राप्त होगा। तुम्हारे विरोधी शमित हो जायँगे।

महाभारत के युद्ध में दसवें दिन भीष्म पिता बाण शय्यापर थे महाभारत युद्ध के पश्चात युधिष्ठिर मन से बहुत उद्विग्न थे। कृष्ण उनका शोक-संताप मिटाने के लिये पांडवों और द्रौपदी के साथ युद्धस्थल पर महाराज युधिष्ठिर को उपदेश दिलाने भीष्म पितामह के पास ले गये। भीष्म पितामह ने कहा- हे कृष्ण, आपके रहते हुए मैं युधिष्ठिर को क्या उपदेश करूँगा। उस समय कृष्ण भीष्म पितामह से बोले- हे पितामह, आप ज्येष्ठ है, श्रेष्ठ है, कुरुकुलों में वृद्ध है। आप ही अपने अनुभवों का उपदेश देने योग्य है जिससे महाराज युधिष्ठिर के हृदय का संताप मिटें। मैं उम्र में युधिष्ठिर से छोटा हूँ, मेरे दिये गये उपदेश युधिष्ठिर को प्रभावित नहीं कर सकेंगे। इसीलिये आपके अनुभवों का उपदेश आपसे करवा रहा हूँ। भीष्म पितामह ने कृष्ण की आज्ञा स्वीकार की और गृहस्थ सम्बन्धी, राजनीति सम्बन्धी सभी प्रकार के उपदेश महाराज युधिष्ठिर को दिया जो महाभारत काव्य के शांतिपर्व में दिये गये है। ज्ञान के बारे में भीष्म पितामह ने युधिष्ठिर को बताया कि जहां कहीं भी अन्याय होता हुआ देख रहे हो उसका प्रतिकार करना चाहिये। यदि प्रतिकार करने की सामर्थ्य नहीं है तो वहां से अपने को

उपराम, हट जाना चाहिये। यह सुनकर द्रौपदी व्यंगात्मक हँसी में हंस दी। भीष्म पिता ने द्रौपदी से पूछा- हे द्रौपदी, तुम्हारी यह हँसी कुलवधूओं के जैसी नहीं है। तुम्हारे हँसने का क्या कारण है? द्रौपदी ने उत्तर दिया- नहीं पितामह, मुझे तो ऐसे ही हँसी आ गयी। भीष्म बोले- यह नहीं हो सकता तुम्हारी हँसी के पीछे जरूर कोई न कोई बात है। द्रौपदी बोली- पितामह, आपको याद होगा भरी राजसभा में दु:शासन मेरा चीरहरण कर रहा था उस समय आप भी, तात विदुर और ताऊश्री धृतराष्ट्र तथा अन्य ज्येष्ठ पितृगण, गुरु द्रोणाचार्य इत्यादि वहां उपस्थित थे। जब यह अत्याचार और अन्याय हो रहा था पर आप सभी वृद्धजन, बुद्धजन, ज्ञानी मौन थे और यह सब देख रहे थे पर किसीने कुछ रोकने का या दुर्योधन, दु:शासन को डाँटने का प्रयत्न भी नहीं किया। मौन रहना इसका अर्थ किसी भी कार्य का अनुमोदन करना है चाहे वह उचित हो या अनुचित। बस इतनी सी बात सोचकर मुझे हँसी आ गयी क्योंकि उस दिन की बात और आपका आज का उपदेश कथन बिल्कुल विपरीत है। अर्थात् आपकी कथनी और करणी में अन्तर है। पितामह को अपनी भूल का पश्चात्ताप हुआ और बोले- पुत्री, उस दिन मैं मजबूर था मैंने पापी दुर्योधन का दूषित अन्न खाया था। उसीके प्रभाव से मेरी बुद्धि विकृत हो गयी और उनके अहसानों से मैं विरोध नहीं कर सका। पर अब मेरे शरीर में दूषित रक्त निकल गया है और मैं अत्यन्त न्यायोचित उपदेश कर रहा हूँ। मेरी बेबसी में की हुई भूलों के लिये मैं तुमसे क्षमाप्रार्थी हूँ।

इस प्रसंग को सुनकर यह लगता है कि महाभारत में कितनी न्याय, उचित-अनुचित की व्याख्या की गयी है। हर व्यक्ति के लिये जीवन में होनेवाली सभी प्रकारकी समस्याओं के उदाहरण लिये जा सकते है। महाभारत में जीवन जीने का एक सही मार्गदर्शन किया है।

** भूत का शोक और भविष्य का भय नहीं करता वही वर्तमान का आनन्द ले सकता है। भूत की याद न कर, भविष्य की फर्याद न कर और वर्तमान बर्बाद न कर।*

** जहाँ आदर और विश्वास मिले वहीं श्रद्धा उत्पन्न होती है।*

** केवल धर्म को छोड़कर घर, परिजन, राज्य, सम्पदा, जीवन और प्रवर लक्ष्मी ये सब अस्थिर हैं।*

** अनुभव की पाठशाला में जो पाठ सीखे जाते हैं वे कहीं और नहीं मिलते।*

** धूर्तता तो निर्बलों का हथियार है। बलवान कभी नीच नहीं होता।*

** क्षणभर भी बिना काम के रहना ईश्वर के घर चोरी है।*

** अपने विचारों को बदलो, दुनिया यो ही अपने आप बदल जायेगी। हालात से समझौता मत करो बल्कि उठकर पुरुषार्थ करो।*

** प्रवाह ही प्रगति व सुख का सूत्र है।*

** जब तक मनुष्य प्रयास करता है उसके लिये कुछ भी असम्भव नहीं है। मानव का मानव होना ही उसकी जीत है, दानव होना हार है।*

** सकारात्मक विचार और उचित अपेक्षायें ही सही लक्ष्य को पा सकती है।*

** इन्तजार करनेवालों को उतना ही मिलता है जितना प्रयत्न करनेवालों से छूट जाता है।*

** हर व्यक्ति यदि सन्तुलित तरीके से आचरण करे तो समाज में सुख शान्ति बनी रहेगी।*

** दूसरों पर हंसना आसान है पर दूसरों के लिये रोना बहुत कठिन है।*

** परिस्थिति नहीं दृष्टि और सोच महत्वपूर्ण होती है।*

ईश्वर के चमत्कार

* ईश्वर ने दूसरे जानवरों के मुकाबले में हाथी को बड़ा डीलडौल शरीर और असीम शक्ति दी है। उसके पैर किसी मजबूत इमारत के चार खम्भों की तरह दिखते हैं। कान बड़े पंखों की तरह है। आंख आम जानवरों से भी छोटी होती है। पर सबसे ज्यादा अनोखी उसकी सूंड है जिसकी सहायता से वह पहाड़ों में, जंगलों में जहांपर मशीनें और क्रेन नहीं जा सकती, वहां उसकी शारीरिक ताकत और उसके सूंड की मदद से बड़े-बड़े पेड़ों को जड़ से उखाड़ देता है। ईश्वर ने मनुष्य की जरूरतें पूरी करने के लिए प्रकृति में कैसे कैसे जानवर पैदा किये है।

* ईश्वर सबकी जरूरत पूरी करता है। हर व्यक्ति को रोजी-रोटी पहुँचाता है जिसकी वो कल्पना भी नहीं कर सकता। जो व्यक्ति पूरी तरह दुनिया की तरफ झुक जाता है ईश्वर उसे दुनिया के हवाले कर देता है।

* ईश्वर ने सूरज को बनाया है जो आग का गोला है जो पूरी दुनिया को रोशनी देता है। सूरज एक सैकण्ड में जितनी गर्मी पृथ्वीपर फेंकता है वो लाखों एटम्बॉम्ब जमीन पर गिराये जाने के बराबर है। आदमी का बनाया हुआ एटम्बाँम्ब कई शहरों को तबाह कर सकता है अगर सूरज पूरी अपनी गर्मी के साथ जमीन पर उतर आये तो सारी दुनिया को जलाकर खाक कर देगा पर ईश्वर अपनी कुदरत से पृथ्वीपर उतनी ही सूरज की रोशनी और गर्मी जमींपर भेजता है जितने की जरूरत है।

* ईश्वर ने लोगों के स्वास्थ्य के लिए दूध का इंतजाम किया है। उसके लिए गाय, भैंस, ऊँट, बकरी जैसे जानवर पैदा किए। ये जानवर अपने बच्चों को भी दूध पिलाते हैं और इन्सानों के लिए पौष्टिक अन्न की भी कमी पूरी करते है। ये सभी जानवर एक ही तरह की घास खाते हैं, मगर उनके गोबर तथा खून के बीच से साफ सुंथरा, पौष्टिकता से भरपूर शुद्ध दूध निकलता है। इन्सान को देखना, सुनना, सोचना और महसूस करना, ये सब ईश्वर की दी हुई बेशकीमती नेमतें हैं।

* ईश्वर की संपूर्ण प्रकृति पर विजय है। जो कुछ हो रहा है, नियमित हो रहा है। मनुष्य के संयम, नियम में कहीं न कहीं त्रुटि हो सकती है पर परमात्मा की प्रकृति संचालन पर कभी त्रुटि नहीं हो सकती। जैसे मनुष्य को सुबह पाँच बजे उठना है तो हो सकता है कि उसको उठने में थोड़ी देरी हो जाये पर सूर्यनारायण को जब उदय होना है तो अपने नियमित समय पर ही उदय होंगे उसमें एक सेकंड की भी देरी नहीं।

* न जाने कौन घुमा रहा है यह चक्र? कितनी भारी है यह पृथ्वी, लेकिन गुरुत्वाकर्षण में ही घूम रही है। कौन इस धरती को कह रहा है कि तेरा अन्त सूर्य से इतना किलोमीटर होना चाहिए। यह धरती सूर्य नारायण के नजदीक करीब एक फीट गयी, तो हम लोग गर्मी से मर जायेंगे। इतनी गर्मी, असह्य गर्मी हो जाएगी और एक फीट यदि बाहर आ गई तो ठंड से मर जायंगे। कौन कह रहा है इसको और फिर भी ये मूर्ख लोग पूछते हैं कि भगवान है कहां। यह हवा कौन चला रहा है, सूर्य नारायण को प्रकाश कौन दे रहा है, आकाश में बादल आते हैं तो वर्षा आती है, यह बादल कौन लाता है? मूर्ख लोग कहते हैं कि सब अकस्मात हो गया। मनुष्य कर सकता है क्या अकस्मात? ताकत नहीं कि अकस्मात करे।

* ईश्वर वही चीज करता है, जो मनुष्य कर सकता है और अकर्तुम यानी जो मनुष्य नहीं कर सकता वह भी प्रभु करता है। मनुष्य सोच भी नहीं सकता वह प्रभु करते हैं और इनमें समर्थ है प्रभु-रूपेण शक्ति फिर भी लोग पूछते हैं कि है?

* एक तो असत्य का नाश हो जाएगा। झूठ-असत्य केवल मनुष्य योनि ही होता है। कुत्ता झूठ नहीं बोलता, गधा बेईमानी नहीं करता। इस धरती पर से मनुष्य जाति को हटा दो, तो इस धरती पर कोई पाप नहीं रहेगा। पाप केवल मनुष्य करता है, क्योंकि उनको खबर है पता है, जानता है कि यह पाप है फिर भी करता है।

* यह मनुष्य बिगड़ा हुआ है । बाकी तो वही गंगा, वही जमना, वही हिमालय, वही सूर्य नारायण, वही नक्षत्र, वही धरती। सदियां बीत गयीं, युग बीत गये, वैसा ही सबका स्वरूप है। यह मनुष्य बदल गया है। हम अपने आपको सुधार लें, तो जगत सुधरा हुआ ही है।

* आकाशमें जो सूर्य, चंद्रमा, तारागण तथा अन्यान्य ग्रहादि हैं, वो कैसे स्थित है? आपसमें लड़ते क्यों नहीं? टकराते क्यों नहीं? सृष्टिमें जब कोई संकट आता है तब पुष्टि देकर अनुग्रह प्रदान करके इसको कौन बढ़ाता है? जीवोंकी कर्मवासनाएँ कैसे भिन्न-भिन्न होती है और उनमें परिवर्तन कैसे होता है? कालक्रमसे सृष्टि कैसे चलती है?

* अपने आप कोई चीज नहीं बनती, प्रकृति तो स्वयं जड़ है। जब तक उसमें चैतन्य का समावेश नहीं होगा तब तक अपने आप कोई वस्तु कैसे बन सकती है। इसके लिये कुछ निमित्त चाहिये, उपादान चाहिये और इन सबके उपादान ईश्वर ही है। वे स्वयं ही निमित्त बनाकर जिससे जो चाहें कार्य करा सकते हैं। जिन्हें भगवान की अपरिमेय शक्ति पर विश्वास नहीं ये इतने नदी, नद, सागर, पर्वत आदि बने हैं, फिर किसके द्वारा बने है।

* ईश्वर ने दुनिया में समुंदर, झील, बरसात के ओले और झरनों का पानी पैदा किया। लेकिन झरनों का पानी पैदा करके अपनी कुदरत का बड़ा सबूत दिया है। यह पानी प्यास भी बुझाता है और बीमारियां भी दूर करता है। जिस आदमी को सेहत व तंदुरुस्ती हासिल हो और अपने घरवालों से उसका दिल संतुष्ट हो और एक दिन का खाना उसके पास हो, तो समझो कि दुनिया की तमाम वरदान उसको मिली हैं।

* ईश्वर तेज हवाओं के जरिये बिखरे हुए बादलों को आसमान में जमा करके एक दूसरे से मिला देता। फिर उन बादलों को बर्फ के पहाडों की शक्ल देता है। फिर इन पानी से भरे हुए भारी बादलों को आसमान में रोके रखना, कभी उनको ओलों की शक्ल में गिराकर जमीन पर तबाही मचा देना और कभी पानी की शक्ल में बरसाकर पेड़-पौधों को उगाना खुदा का करिश्मा ही है। इस दुनिया में जो भी तुम्हारे पास है वो एक दिन खत्म हो जायेगा और ईश्वर के पास जो है वो हमेशा बाकी रहेगा।

* ईश्वर बादलों के जरिए इतनी ऊंचाई से पानी बरसाते हैं, वह अगर अपनी रफ्तार से जमीन पर गिरे तो जमीन में बड़े-बड़े गड्ढे हो जाते। तमाम प्राणी, पेड़-पौधे, खेती-बाड़ी सब तबाह हो जाते। लेकिन ईश्वर ने अपनी कुदरत से इतनी रुकावटें खड़ी कर दी हैं कि तेज बारिश उनसे गुजरकर जब जमीन पर आती है तो बहुत धीमी हो जाती है। जिससे दुनिया की तमाम चीजें तबाह होने से बच जाती हें।

* ईश्वर ने हमारे ऊपर मजबूत आसमान बनाया, रोशनी के लिए उसमें चांद, सूरज और सितारे बनाये हैं और उसी में बिना सहारे के उनको जमीन पर गिरने से रोक रखा है। जबकि इन्सान किसी हल्की चीज को भी बिना सहारे खड़ा नहीं कर सकता। मगर ईश्वर ने हजारों, लाखों साल से आसमान को बिना किसी खम्भे का सहारा दिये उठाये रखा है।

* अनार के फल पर गौर से देखें ईश्वर ने कितनी खूबी से हर दाने को हर खाने में अनार का दाना रखा है। फिर उनकी सुरक्षा के लिये हर दाने के बीज में पतले-पतले पड़दे भी लगा रखे हैं। यह दाने आपस में एक दूसरे से जुड़े भी होते हैं कभी खराब भी नहीं होते है। यह उस अनार के दाने की भूमिती और समानता।

* ईश्वर ने दुनिया के तीन हिस्सों में समुंदर बनाया है, जिसमें बहुत से प्राणी रहते हैं। कुछ समुंदर इतने ज्यादा गहरे हैं कि शास्त्र की तरक्की के बावजूद आजतक उसकी गहराई का किसी को पता नहीं चल सका।

* मनुष्य के शरीर में ईश्वर ने दो छोटी-छोटी खूबसूरत आंखें बनाई हैं, जिनमें दुनिया को देखने की जबर्दस्त क्षमता है। बड़ी से बड़ी ताकतें मिलकर भी एक आंख नहीं बना सकती।

✻ कितना बड़ा आश्चर्य है कि हम एक सुई आसमान में टांग नहीं सकते। अगर उसे ऊपर की तरह उछाल दिया जाये तो वह नीचे आकर गिर जायेगी पर अरबों टन पानी हवा में, वायु मण्डल में, आकाश में स्थित रहता है और वर्षा के रूप में बरसता है। यह है ईश्वर का आश्चर्य।ईश्वर बादलों के जरिये इतनी ऊंचाई से बारिश बरसाता है कि अगर वह अपनी रफ्तार से जमीन पर गिरती तो तमाम इन्सान, जानवर, पेड़-पौधे, खेती-बाड़ी सब तबाह हो जाते। लेकिन ईश्वर ने बारिश की ऐसी रफ्तार रखी है जो जमीन तक आते-आते धीमी हो जाती है। जिससे दुनिया की सभी चीजें तबाह होने से बच जाती है। बेशक, यह ईश्वर का या कुदरत का ही करिश्मा है जो बारिश को इतने अच्छे अंदाज में बरसाती है।

✻ ईश्वर ने दूसरे जानवरों के मुकाबले में हाथी को बड़ा डीलडौल शरीर और जबर्दस्त ताकत दी है। उसके पैर किसी मजबूत इमारत के चार खम्भों की तरह मजबूत दिखते हैं। कान बड़े पंखे की तरह लगते हैं। आंखें आम जानवरों से भी छोटी होती हैं। सबसे ज्यादा अनोखी उसकी सूंड है, जिसकी मदद से वह पहाड़ों में, जंगलों में जहां मशीनें और क्रेन नहीं जा सकतीं, वहां उसकी शारीरिक ताकत और उसके सूंड की मदद से बड़े-बड़े पेड़ों को उखाड़ा जाता है। मनुष्य की जरूरतें पूरी करने के लिए ईश्वर ने अपनी कुदरत से कैसे-कैसे जानवर पैदा किये हैं।

✻ ईश्वर ने हजारों किस्म के पेड़ पैदा किए। जिस पर बेशुमार पत्ते होते हैं। उनके बहुत सारे फायदे हैं। ये पत्ते हमें ऑक्सीजन देते हैं और जहरीली गैस अपने अंदर सोख लेते हैं। अगर ईश्वर ने इन पत्तों में यह गुण पैदा नहीं किया होता, तो वातावरण में जहरीली गैस फैल जाती, जिससे इन्सानों को बहुत सारी बीमारियां हो जातीं। पेड़-पौधे पैदा करके ईश्वर ने हम मनुष्यों पर बड़ी दया की है।

✻ ईश्वर ने एक खास किस्म की तितली पैदा की है, उसके अंडों से रेशम के कीड़े निकलते हैं। ये पेड़ के हरेभरे पत्ते खाते रहते हैं और उनके मुंह से रेशम का बारिक और कीमती तार निकलता रहता है, जिसे वे अपने बदन पर लपेटते रहते हैं। उसके तार को गरम पानी में डालते हैं, उसके रेशों से धागा तैयार करके रेशम के कपड़े तैयार किये जाते हैं।

✻ ईश्वर ने इन्सान को दुनिया में स्वर्ग का मजा चखाने के लिये मोर नाम का खूबसूरत परिंदा पैदा किया है। इसकी दुम के परों को ईश्वर ने बहुत ही खूबसूरत बनाया है। मोर अपनी दुम को फैलाता है, तो धूप में वो बहुत ही खूबसूरत नजर आता है। उस वक्त ऐसा लगता है कि उसकी दुम पर सैंकडो नीलम के फूल खिले हैं।

✻ ईश्वर ने इन्सानी जिंदगी का दारोमदार जिन चीजों पर रखा है उनमें से एक खून है। अगर शरीर में खून की कमी हो जाए या खून बनना बंद हो जाये तो मनुष्य का जिंदा रहना मुश्किल हो जायेगा। खून के अंदर एक तरह की हरारत या गर्मी होती है, जिससे वह पूरे शरीर में दौड़ता है और हमारी जिंदगी भी चलती रहती है। यकीनन यह ईश्वर की बनाई हुई एक व्यवस्था है।

✻ ईश्वर ने इन्सान को दिमाग जैसी महान वरदान दी है, उसमें सोचने समझने और बहुत सी बातों को याद रखने की क्षमता रखी है, जिसकी वजह से इस छोटे से दिमाग में दीन और दुनिया से संबंधित अनगिनत बातें सुरक्षित रहती हैं। अगर ईश्वर को दिमाग के अंदर ये बातें सुरक्षित रखने की कुवत न देता तो? इन्सान को कितनी परेशानी होती।

✻ ईश्वर ने दुनिया में अलग अलग किस्म के जानवर पैदा किये हैं, उन्हीं में से एक उड़नेवाला जानवर चमगादड़ है। उसे दिन में नहीं रात में दिखता है। ईश्वर ने उसमें एक खासियत रखी है कि उसकी मादा अंडे देने की बजाय जानवरों की तरह बच्चे पैदा करती है और अपने बच्चों को दूध पिलाती है। हैरत की बात ये है कि वो अपने बच्चों को मुंह में लेकर उड़ती रहती है और उड़ते समय भी बच्चों को दूध पिलाती रहती है। ये ईश्वर का करिश्मा ही मानना चाहिये।

✻ ईश्वर ने तमाम मनुष्य और प्राणियों के जिस्म में अलग-अलग जोड़ बनाए हैं। इन्सान के जिस्म में बहुत से जोड़ हैं,

जिनकी वजह से चलने फिरने, उठने-बैठने में सहूलियत होती है। अगर ये जोड़ न होते तो हमें चलने-फिरने में बड़ी परेशानी होती। जब कभी इन्सान के शरीर की कोई हड्डी टूट जाती है, तो उसको तकलीफ के साथ-साथ इस नेमत (वरदान) की कद्र मालूम पड़ती है। यह सब ईश्वर की कुदरत है।

* पानी ईश्वर की बड़ी नेमत है, जिसके बगैर कोई प्राणी जिंदा नहीं रह सकता, पेड़-पौधे भी जिंदा नहीं रह सकते। ईश्वर ने झील, दरिया, नदी, समुद्र के जरिए पानी पैदा किया है। जिससे मनुष्य की जिंदगी खुशहाल रह सके। इस बड़ी नेमत को ईश्वर ने धरती के सारे प्राणियों के लिए मुफ्त किया है। जब से दुनिया बनी है तब से यह पानी कायम है। इसके खजाने में आज तक कोई कमी नहीं आई। ईश्वर ने इन्सान के लिए पानी का जो इंतजाम किया है इसमें से एक शक्ल कुएं की भी है। बहुत पुराने जमाने से पानी कुएं से हासिल किया जाता है। कुएं में ईश्वर ये इंतजाम करता है कि गर्मी के दिनों में ठंडा पानी निकलता है और सर्दी में गर्म पानी निकलता है। ये ईश्वर का ही करिश्मा है।

* ईश्वर ने हमारे फायदे के लिए बेशुमार नेमतें पैदा की हैं। उनमें से एक गन्ना भी हैं, जो देखने में बांस जैसा है, मगर उसमें बहुत रस होता है। जिससे शक्कर तैयार की जाती है। कई तरह की मिठाइयां और हलवे भी बनाए जाते हैं। ईश्वर ने गन्ने के रस में कुछ बीमारियां खत्म करने के गुण भी दिये हैं। डॉक्टर मरीजों को गन्ने का रस पीने की सलाह देते हैं जैसे पीलिया रोग आदि।

* ईश्वर ने बेशुमार नेमतें दी हैं, उन्हीं में से एक बड़ी नेमत नींद भी है। जब आदमी सो जाता है, तो उसका अहसास खत्म हो जाता है, आदमी अपने आसपास का वातावरण और अपने जिस्म से भी बेखबर हो जाता है। मौत की तरह नींद देकर फिर से जीती जागती जिंदगी कौन देता है? बेशक, यह ईश्वर का ही करिश्मा है।

* ईश्वर ने जमीन में हीरे-मोती, सोना-चांदी, लोहा-पीतल और न जाने कितने किस्म की धातुओं को पैदा किया है। जिनके इस्तेमाल से इन्सान हजारों किस्म की चीजें तैयार कर लेता है। ईश्वर ने हमारे फायदे के लिए जमीन में कैसी-कैसी कीमती धातुओं को पैदा किया है।

* ईश्वर का दिया हुआ बाल अनमोल उपहार है। ईश्वर ने इन्सान के सिर पर रेशम की तरह चमकदार और खूबसूरत बाल उगाए हैं, जो सर्दी, गर्मी और दूसरी तकलीफों से हमारे सिर की सुरक्षा करते हैं। बाल चेहरे की खूबसूरती को भी बढ़ाते हैं। ईश्वर ने हमारे शरीर की कई जगहों पर बाल उगाए हैं। अगर ये बाल होठों पर भी उग आते तो कितनी परेशानी होती। जरूरत के मुताबिक ही इन्सान के जिस्म पर बाल उगाना, यह ईश्वर का अनोखा करिश्मा ही है।

* ईश्वर की दी हुई अक्ल बहुत बड़ा एहसान है। बच्चा जब पैदा होता है, उसमें किसी भी चीज को समझने की कोई क्षमता नहीं होती। उसके सामने आग और पानी, सांप और रस्सी सब बराबर होते हैं। उसे न तो अपना सिर ढँकने का होश रहता है और न ही सर्दी-गर्मी से बचने की बुद्धि रहती है। लेकिन ईश्वर इसी कमजोर तथा नादान बच्चे को धीरे-धीरे बढ़ाता है और उसे बुद्धि और होश देता है। यहाँ तक कि वो हर चीज को समझने लगता है। धीरे-धीरे वो अच्छाई-बुराई को भी समझने लगता है।

* ईश्वर ने दुनिया में इतने जानवर पैदा किये, तकरीबन ये सब मनुष्यों के फायदे के लिये ही हैं, कोई सवारी के काम आता है तो कोई बोझ ढोने के काम आता है। किसी का मांस खाते हैं तो किसी का दूध पीते हैं और तो और दूध से मलाई-मक्खन और घी निकालते हैं। तरह-तरह की मिठाइयां बनाते हैं, इसी तरह किसी के ऊन से कंबल-कालीन और चमड़े से मोजे-जूते वगैरा चीजें भी बनाई जाती हैं। यह सब इन्सान के फायदे के लिए ही है।

संत तुकाराम- संत रैदास

संत तुकाराम- महाराष्ट्रमें भगवद्भक्तिकी पताका अखण्ड एवं अविरतरूपसे फहराने-हेतु मराठी भाषाके आदिकवि परम भगवद्भक्त संत ज्ञानेश्वर महाराजने वारकरी-सम्प्रदायकी स्थापना कर भगवद्भक्ति-मन्दिरकी नींव डाली। उस भक्तिमन्दिरका कलश आज भी सर्वत्र प्रकाश-पुंजके रूपमें पूजनीय है। वह कलश ये संतशिरोमणि महान् विठ्ठल भक्त संत तुकाराम हैं।

संत तुकारामने अपनी अमृत-तुल्य वाणीसे अभङ्गोंके माध्यमसे नाम-संकीर्तनकी जो महिमा गायी- प्रतिपादित की, वह अपने-आपमें अद्वितीय है। **वेदांचा तो अर्थ आम्हांसी च ठावा** ऐसा निरहंकारवृत्तिसे कहनेवाले संत तुकारामने नाम-संकीर्तनको एक सरल एवं सहजसाध्य साधन प्रतिपादित किया है।

भगवानका नाम लेना (संकीर्तन करना) अत्यन्त सरल साधन है। संकीर्तनसे केवल इसी जन्मके नहीं, अपितु जन्म-जन्मान्तरोंके पाप जलकर राख हो जाते हैं। नाम-संकीर्तनके लिये जंगलोंमें भटकनेकी आवश्यकता नहीं होती। घरमें ही एक स्थानपर बैठकर एकचित्तसे तन्मय होकर **राम-कृष्ण-हरि-विठ्ठल-केशव** इस मन्त्रका अखण्ड जप करो। भगवान अपने-आप आपके घर बड़े आनन्दसे आयेंगे। संत तुकाराम अपने आराध्य देवता विठ्ठलकी शपथ लेकर प्रतिज्ञापूर्वक कहते हैं- नाम-संकीर्तनके सिवाय अन्य कोई सरल साधन नहीं है। जो सदा-सर्वदा भगवन्नामस्मरण करता है, वही समझदार है, बुद्धिमान है।

भगवानका कीर्तन इतना अच्छा है कि स्वयंका शरीर हरिरूप बन जाता है। नाम-भक्ति संत तुकाराम को अत्यन्त प्रिय थी। वे जानते थे कि नामसंकीर्तनरूपी पंछीका मधुर कूजन प्रारम्भ होते ही दसों दिशाएँ नाद-मुग्ध हो जाती हैं। नाम-संकीर्तनकी महिमा अनादि-सिद्ध है।

समुद्रवलयामित पृथ्वीका दान करनेकी अपेक्षा भगवन्नामसंकीर्तन करना अधिक श्रेष्ठ है। शास्त्र-वेदपठन प्रयाग-काशी आदि तीर्थ तथा देश-भ्रमण ये सारे साधन नाम-संकीर्तनकी तुलना नहीं कर सकते।

संत केवल ईश्वर-भक्त ही नहीं, अपितु द्रष्टा भी होते हैं। बहुजन-समाजके उद्धारकी उन्हें चिन्ता लगी रहती है। संत तुकारामने तत्कालीन बहुजन-समाजकी अवस्था देखी तो उनका अन्त:करण द्रवित हो उठा।

भवसागरमें डूबती हुई सर्वसाधारण जनताको बचानेका इस कलियुगमें एकमात्र सरल एवं सहजसाध्य साधन है- नाम-संकीर्तनका प्रचार और प्रसार। नामस्मरणके लिये धन-दौलतकी आवश्यकता नहीं होती। नाम-संकीर्तन करनेवालेका जीवन व्यर्थ गया, ऐसा कभी न सुना न देखा।

इसके विपरीत अत्यन्त कठिन परिश्रमोंसे कमाया हुआ धन मानवके साथ नहीं जाता। धनसे मोक्ष प्राप्त नहीं होता और न ईश्वर प्राप्ति ही। इस स्थितिसे उबरनेके लिये अमृतमय विठ्ठलका नाम तथा प्रभु श्रीरामका स्मरण करनेका सरल उपाय प्रतिपादित किया।

संत तुकारमाने हिंदी भाषामें भी कुछ पदों, अभंगों और दोहोंकी रचना की है। अपनी वाणीसे संत तुकारामने नामका महत्त्व बताया है।

संकीर्तनकी महिमा अगाध है। थके-मांदे-भटके हुए पथिकोंके लिये हरिकथा एवं संकीर्तन विश्रान्तिकी छाया है। ईश्वर, भक्त और नाम इनका त्रिवेणी संगम हरिसंकीर्तनमें होनेके कारण साधकको अन्य साधनोंकी अपेक्षा यह साधन अधिक उपकारी होता है। संकीर्तनके सुखका वर्णन करने में ब्रह्माजी भी असमर्थ हैं, ऐसा तुकारामका कहना है।

भगवत्-कीर्तन जैसा पुण्य नहीं, नारायण नामका उच्चारण करते ही क्षणभरमें सारे दोष भस्म हो जाते हैं। भक्ति-भावसे कीर्तन करनेवाला स्वयं तो भवसागर तर ही जाता है, साथ-साथ संकीर्तन-श्रवण करनेवाले भी भवसिंधु पार कर लेते हैं और सर्वशक्तिमान परमपिता परमेश्वर श्रीनारायणकी प्राप्ति हो जाती है, इसमें कोई संदेह नहीं- ऐसा तुकाराम कहते हैं।

आज भारतवर्षकी विषम परिस्थिति तथा विश्वके अशान्त वातावरणमें सम्पूर्ण मानवजातिके लिये कल्याण का सर्वोत्तम, सर्वसुलभ और सरल साधन श्रीभगवन्नाम संकीर्तन ही है।

संत रैदास- संत रैदास जातिके चर्मकार थे। संकीर्तन-सर्वस्व रैदास संत कबीरके सम-सामयिक थे और उनसे इनका कई बार साक्षात्कार भी हुआ था। इनका जन्म काशीमें ही हुआ था और वहीं इन्होंने जीवन व्यतीत किया। ये पूरे भारतमें घूमते रहते थे और राजस्थानकी प्रसिद्ध संकीर्तनप्राणा भक्तिमती मीराबाई इन्हींकी शिष्या थीं। ये बचपनसे ही साधुसेवी तथा नि:स्पृह थे। इनका विवाह बाल्यकालमें ही हो गया था। इनके पिताका नाम रघु था। पर पिता-पुत्रमें पटती नहीं थी। रैदास एक झोपड़ी बनाकर पत्नीके साथ अलग रहने लगे थे। जूते बनाकर जीवन-निर्वाह, साधु-सेवा तथा नाम-रटन करना- यह उनका जीवनक्रम था। वे जूते टाँकते जाते और सदा भजन-कीर्तन करते रहते।

कहा जाता है कि इनकी गरीबी दूर करनेके लिये स्वयं भगवान साधुरूपमें आये और हठपूर्वक इन्हें पारस पत्थर देने लगे तथा एक लोहेके औजारको सोना बनाकर दिखाया भी। साधुका हठ देखकर रैदासजीने पारसको छप्परमें रख देनेको कह दिया। तेरह महीने बाद साधु लौटे तो उन्हें पारस वहीं छप्परमें मिला, जहाँ उसे वे रख गये थे। पर रैदासजीने पारसका स्पर्शतक नहीं किया था।

इनकी प्रसिद्धिसे प्रभावित होकर मीराबाईकी भावज चित्तौड़की रानीने इन्हें अपना गुरु बनाया था। रैदासजीने एक सौ बीस वर्षकी आयु प्राप्त की थी। वे भजन-संकीर्तन करते हुए ही भगवद्धाम पधारे। इन्होंने अपनी वाणीमें भगवान्‌के नामकी महिमा तथा अपना दैन्य प्रमुख रूपसे गाया है। वे कीर्तन-भजनमें अहंकारको भारी बाधा मानते थे।

उनकी दृष्टिमें संकीर्तन बिना सभी साधन नि:सार है। नामकीर्तन-संस्मरण-भजन ही संसारमें सार है। ये भगवत्संकीर्तनको ही भगवानकी सम्पूर्ण उपासना मानते हैं।

** मानवता की सेवा ही आध्यात्मिक जीवन की पहली सीढ़ी है।*

** अन्धकार में धैर्य रखनेवाले ही प्रकाश देख पाते हैं।*

** अधर्म से पराजित किये जानेवाला व्यक्ति कभी भी उस पराजय से दु:खी नहीं होता।*

** आदमी पैसे पर इल्जाम लगा देता है और मिले मौका तो ईश्वर को भी दगा देता है।*

** हमें किसी की जरूरत नहीं है, ऐसा कहना अहंभाव है। जो संसार में है, उसे सारे संसार से काम पड़ता है।*

** सुबह हो जाने के डर से आँख न खोलनेवाला उल्लू होता है।*

** खीर खाकर प्रसव करने से संतान का जीवन मधुर नहीं हो जाता। उसके लिए माँ को शहद बनकर जीना होता है।*

** बड़ों की आड़ लेनेवाला बौना बनकर रह जाता है।*

** जिन्दगी की दावत में शरीक होने के लिए जो शख्स आता है, उसे मौत का प्याला पीना ही पड़ता है। क्या भरोसा है जिन्दगानी का, आदमी बुलबुला है पानी का।।*

संत नामदेव

एक छ: सात वर्षका बालक भोजनकी थाली लिये हुए मन्दिरमें प्रवेश करता है और भोजनकी थाली विठ्ठल (कृष्ण) भगवान्‌के सामने रखकर उन्हें प्रणाम करता है। फिर हाथ जोड़कर वह भगवान्‌से प्रार्थना करता है- भगवन्, भोजन कीजिये। परंतु न तो उत्तर मिलता है, न भगवान भोजन ही करते हैं। कुछ देर बाद बालक फिर कहता है- प्रभो, भोजन करें, क्या आप मुझसे रूठे हैं; आज मेरी माँने मुझे भोजन देकर भेजा है। मेरे पिताजी दूसरे गाँव गये हैं, इसलिये वे नहीं आ सकते। मेरे पिताजीद्वारा दिये जानेपर तो आप प्रतिदिन भोजन करते हैं। किंतु मेरेद्वारा अर्पित किये जानेपर क्यों नहीं कर रहे हैं? मैं बालक हूँ इसलिये।

कुछ देर बाद बालक करूणाभरे शब्दोंमें फिर प्रार्थना करने लगता है- भगवन्। भोजन करें, यदि आप भोजन नहीं करेंगे तो मेरी माँ मुझे मारेगी और लोग मेरी निन्दा करेंगे। यदि आप भोजन नहीं करेंगे तो मैं यही दीवालसे सिर फोड़कर प्राण दे दूँगा। फिर भगवानने भोजन नहीं किया, तब बालक दीवालसे सिर फोड़ने लगता है। तभी स्वर गूँज उठता है। भक्त, तुम यह क्या कर रहे हो? बालक मुड़कर देखता है तो मन्दिरमें चारों ओर प्रकाश फैला हुआ है और भगवान भोजन करने जा रहे हैं। भगवान्‌को देखकर बालक बहुत प्रसन्न हो जाता है। ये बालक और कोई नहीं नामदेव ही थे।

महाराष्ट्र-राज्यके सोलापुर जिलेके अन्तर्गत पंढरपुर में श्रीदामसेठके घर भक्तराज श्रीनामदेवजीने शक-संवत् १९९२, कार्तिक शुक्ला ११ रविवार, प्रात:काल सूर्योदयके समय, २६ अक्टूबर १२७० ईस्वीको माता गोणाबाईकी कोखसे जन्म लिया। संत शिरोमणि श्रीनामदेवजी महाराज उच्चकोटिके संत कवि थे। वे सच्चे कर्मयोगीके रूपमें संसारमें रहकर भी कमल-दल-पुष्पकी तरह संसार-सागरसे अलिप्त थे। उन्हें अपने जीवनमें न किसीसे राग था और न किसीसे द्वेष। अपनी वाणी एवं लेखनीके द्वारा जनता-जनार्दनको जिस अमृत-ज्ञानका उपदेश उन संत-शिरोमणिने दिया, वह अन्यत्र दुर्लभ है। अपने जीवनके द्वारा उन्होंने सम्यक् दर्शनका नैसर्गिक उदाहरण प्रस्तुत किया है। वे सच्चे संत थे। करनी और कथनीका अन्तर उन्होंने अपने आचरणमें प्रविष्ट नहीं होने दिया।

प्रभुके नूपुरोंकी रुन-झुनमें अपने हृदयकी गति मिलाकर, प्रभुके वंशीनादमें अपना प्राण डालकर, प्रभुके पीताम्बर अपनेको न्योछावरकर, प्रभुकी मन्द मुस्कानमें अपना सब कुछ अर्पणकर इस भारतवर्षके कल्याण-हेतु अहर्निश भगवन्नाम-संकीर्तन करते हुए संत नामदेव पृथ्वीपर घूमा करते थे।

सृष्टिके प्रत्येक पदार्थमें केवल विठोबाके ही दर्शन उन्हें होते थे। घरके एक कोनेमें आग लगी तो आप दूसरी ओरका सामान अग्निमें फेंकते हुए बोले, प्रभो। इधर कृपा क्यों नहीं करते? अन्तत: उन्हीं भक्तप्राणधनको उनकी कुटिया छानी पड़ी।

एक बार संत नामदेव, ज्ञानेश्वर, निवृत्तिनाथ, सोपानदेव, बहन मुक्ताबाई, चोखामेला, साँवता माली, गोरा कुम्हार, नरहरि सुनार आदि संत तीर्थयात्रा करते हुए महाशिवरात्रिके पर्वपर मराठवाड़ामें औढ़ा नागनाथ नामक शिव-मन्दिरपर पहुँचे। प्रात:काल संतमण्डली स्नान आदिसे निवृत्त होकर मन्दिरमें गयी। नामदेवजीका कीर्तन प्रारम्भ हुआ। ब्राह्मणोंने नामदेवजीको अलग जाकर कीर्तन करनेको कहा। वे मन्दिरके पीछे चले गये, पर प्रभु द्रवित हो गये। नामदेवजीके उस कीर्तनमें स्वयं पंढरीनाथ उपस्थित हुए। मन्दिरमें पंडे-पुजारी नागनाथकी मूर्तिका अभिषेक कर रहे थे, मुखसे स्तोत्र-पाठ भी चल रहा था। भगवान्‌ने उसी क्षण पंडोंकी ओर पीठ और नामदेवजीकी ओर मुख कर लिया।

पण्डित-पुजारी आश्चर्यचकित देखते रहे गये कि यह क्या हो गया। वे नामदेवजीकी भक्तिका प्रताप जान गये तथा

उनके चरणोंमें गिरकर उन्होंने क्षमायाचना की। भगवान् नागनाथके मन्दिरका मुँह पश्चिमकी ओर होनेका कारण यही घटना बतायी जाती है। नामदेवजीकी ख्याति समस्त भारतमें दिनोंदिन बढ़ने लगी। उस समय मुहम्मद तुगलक दिल्लीका बादशाह था। उन्होंने नामदेवजीको मुसलमान बनाना चाहा। एक दिन नामदेवजीको अपने दरबारमें बुलवाया। उन्होंने इनसे एक मृत गायको दिखाते हुए उसे जीवित करनेके लिये कहा; साथ ही यह भी कहा कि ऐसा न करनेपर गर्दन काट दी जायगी। नामदेवजी बार-बार यही कहते रहे कि मुझमें कोई शक्ति नहीं। जो प्रभुको स्वीकार होता है, वही होता है। इस उत्तरसे बादशाह क्रोधसे तमतमा उठा और आदेश दिया कि इसे मतवाले हाथीके नीचे कुचलवा डालो। हाथी उनपर वार करता, परंतु भगवान विठ्ठलकी कृपासे वे बच जाते। अब नामदेवजीके एक हाथमें वीणा थी, दूसरेमें करताल तथा पैरोंमें बेड़ियाँ। नामदेवजी प्रेममग्न हो हरिनाम संकीर्तन करने लगे। नामदेवजी पुकारने लगे- हे प्रभो, शीघ्र आओ, गायको जीवन देकर धर्मकी रक्षा करो। नामदेवकी आँखोंसे अविरल अश्रुधारा बह रही थी। नामदेव बार-बार यही कहते रहे कि मुझमें कोई शक्ति नहीं, जो प्रभु करता है वही होता है। इस घटनाके समय माता गोणाबाई भी वहींवर थी। अपने पुत्रकी ऐसी दशा उनसे देखी नहीं गयी और बोली- हे नामदेव, तू विठ्ठलका नाम छोड़कर अल्लाहका नाम ले। नामदेव बोले- ऐसा उपदेश करनेवाली तू मेरी माता नहीं, मैं तेरा पुत्र नहीं। निश्चित समय बीतनेसे पूर्व भक्तवत्सल आनन्दकन्द भगवान विठ्ठल अपने वैकुण्ठसे गरुड़पर चढ़कर वहाँ आये और उन्होंने मृत गायको जीवित कर दिया। बछड़ा गायका दूध पीने लगा। गाय नामदेवको चाटने लगी। वात्सल्यमूर्ति भगवान विठ्ठलका मधुर एवं सुरीला बोल सुनायी दिया। नामदेव, तुम धन्य हो, धर्म और प्यारी गायकी रक्षा-हेतु अपने प्राणोंको न्योछावर करनेवाले धन्य हो। फिर भगवान अन्तर्धान हो गये। बादशाह शर्मसे पानी-पानी हो गया। बादशाह नामदेवजीके आगे झुक गया और उनका आदर-सम्मान करने लगा।

सुलतानु पूछै सुन बे नामा। देखउ राम तुम्हारे कामा। नामा सुलताने बाँधिला। देखउ तेरा हरि वीठुला रहल।।
बिसमिल गऊ दहु जीवाह। ना तरु गरदनि मारउ ठाइ। बादिसाह ऐसी किउ होइ। बिसमिलि कीआ न जीवे कोह।।
मेरा कीया कछू न होइ। करि है रामु होइ है सोई।।

संत नामदेवजी ने गायोंकी बहुत सेवा की। स्वयं उनके घरपर गाय थी। जिसका दूध वे प्रभुको पिलाकर धन्य होते थे। एक बार जब गाय ब्यायी तो उसका दूध स्वयं नामदेवने भगवान विठ्ठलको पिलाया। नामदेवजीको भगवानकी प्राप्ति के लिये मनमें व्याकुलता तीव्रता एवं आतुरता थी। नामदेवका कहना है कि हरिनामके विषयमें मेरी तालाबेली (व्याकुलता) उसी प्रकार है जिस प्रकार गायका बछड़ा गायसे बिछुड़कर व्याकुल होता है, जिस प्रकार मछलीको पानीसे बाहर निकालनेपर व्याकुलता होती है और पानीके बिना वह अपने प्राण भी त्याग देती है। संत नामदेवजी महाराजने विठ्ठलकी भक्तिके साथ ही गोसेवा करनेका महत्त्वपूर्ण संदेश लोगोंमें वितरित किया। उनके त्याग, वैराग्यमय, भक्तिमय जीवन-पथमें गौका विशिष्ट स्थान था। यहाँतक कि उन्होंने गोमाताकी रक्षाके लिये अपनी कुर्बानीकी प्रतिज्ञा की। गोसेवक नामदेवजी धन्य है, उनका गोप्रेम स्तुत्य हैं वन्द्य है।

नामदेवजीने नवधा भक्तिके अन्तर्गत संकीर्तनस्वरूप भक्तियोगरूप शस्त्रद्वारा इस भवसागरके बन्धनस्वरूप आशापाशको काट डाला। वे पैरोंमें घुँघरू, हाथोंमें करताल एवं वीणा लेकर प्रभु-संकीर्तनमें मस्त होकर कभी पागलोंकी तरह घूमा करते तो कभी ईश्वरीय तत्त्वसे जनताको अवगत कराते थे। वे जानते थे कि कलियुगमें प्रभुको प्राप्त करनेका एकमात्र साधन नाम-संकीर्तन ही है। इस पावन यज्ञमें सबका समान अधिकार है। नामदेवजीका मन भगवान्‌के चरण-कमलोंमें, वचन उनके गुणगानमें, हाथ मन्दिर आदिका मार्जन करनेमें, कर्ण उनके सत्कथा-श्रवणमें, नेत्र उनके मूर्ति-दर्शनमें, अंग भक्तोंके शरीरका स्पर्श करनेमें, घ्राण (नासिका) उनके चरणसरोजकी सुगन्ध लेनेमें, जिह्वा उनके प्रसादके रस लेनेमें,

चरण उनके तीर्थोंकी यात्रामें, मस्तक उनके चरणोंमें प्रणाम करनेमें और सारी कामनाएँ उनके दासत्वमें समर्पित थीं।

संत श्री ज्ञानेश्वरजीसे तीर्थयात्राके बीच श्रीनामदेवजीने कहा। मुझे तो विठोबाकी कृपाका ही आश्रय है। मुझे तो नाम-संकीर्तन ही प्रिय लगता है।

एक दिन संत ज्ञानेश्वरजीने कहा- भजन किस प्रकार करना चाहिये? मन और बुद्धिको सात्त्विक कैसे बनाया जा सकता है? श्रवणादि साधनोंका मर्म क्या है? इन प्रश्नोंको सुनते ही विनय और शीलकी मूर्ति नामदेवजीने गद्‌गद् होकर ज्ञानेश्वरजीके चरण पकड़ लिये और कहा कि मुझे तो केवल विठ्ठलका ही भरोसा है। मुझमें न ज्ञान है, न मैं बहुश्रुत हूँ, इसीलिये तो भगवान्‌ने मुझे आपके हाथ सौंप दिया है। आपका पूछना तो ऐसा है, जैसा कल्पवृक्षका किसी दीन भिखारीसे याचना करना। मुझे तो ऐसा प्रतीत होता है कि आप विनोदसे ऐसा प्रश्न पूछकर मेरा सुख बढ़ाना चाहते हैं। इसपर ज्ञानेश्वरजीने कहा- मैं तुम्हारे ही मुखारविन्दसे अनुभूत साधन सुनना चाहता हूँ। तुम तो भगावन्‌के प्रेम-भंडारी हो। मुझे अपने अनुभवकी बातें अवश्य बताओं। ज्ञानेश्वरजीकी आज्ञा पाकर नामदेवजी कहने लगे-

मैं क्या कहूँ मुझे तो भगवान विठ्ठलका नाम-संकीर्तन ही प्रिय है। इसके सामने दूसरे साधन व्यर्थ और कष्टप्रद ही प्रतीत होते हैं। यही सच्चा भजन है। गुण-दोषोंको न देखकर सभीके साथ सच्ची नम्रताका व्यवहार करना ही वन्दन है। इससे अन्त:करण सदा प्रसन्न रहता है और सात्त्विकता प्राप्त होती है। सर्वभावसे एकमात्र विठ्ठलका ही ध्यान, सब भूतोंमें उन्हींके स्वरूपका अवलोकन, रज और तमसे रहित होकर सबसे आसक्ति हटाकर केवल प्रेमसुधाका पान करना ही भक्ति है। नामदेवकी दिव्य वाणीको सुनकर ज्ञानेश्वरजी बहुत ही प्रसन्न हुए।

नामदेवको ईश्वर-संकीर्तनके बिना एक क्षण भी चैन नहीं पड़ता था। नामदेवमें भगवानके प्रति विश्वास, निष्ठा और प्रेमकी पराकाष्ठा थी।

इस संसारमें जीवन-नैया पार करते समय आनेवाले तूफ़ानोंके विषयमें नामदेव कहते हैं कि भगवान विठ्ठलकी लीला अपार है। वह समुद्रकी तरह भव्य है। उस विधाताकी गतिको न तो किसीने जाना है और न कोई जान ही सकता है। संसारमें केवल एक ही वस्तु ऐसी है, जो कभी नष्ट नहीं हो सकती। ऐसी ग्रहण करनेयोग्य वह वस्तु है- विठ्ठलका नाम।

ईश्वर-नामकी महिमा इतनी बड़ी एवं इतनी श्रेष्ठ है कि उसके सामने संसारकी प्रत्येक नाशवान वस्तु तुच्छ है। नामस्मरणसे भ्रमका नाश होता है। नाम-संकीर्तन ही सर्वोत्तम धर्म है। नामदेवजी कहते हैं-

हरि हरि करत मिटे सभि भरमा। हरिके नाम ले उत्तम धरमा।

इस उद्धार-भावनाको लेकर नामदेवजी केवल नाम-संकीर्तन कर लिया करते थे। उनको आध्यात्मिक स्थितिका पूर्ण ज्ञान था। वे साकार-निराकार दोनों स्वरूपोंसे परिचित थे और यही भावना रखते थे कि ईश्वरका भजन, सारे विश्वका भ्रमण, सारी आयुका श्रवण, भाषण, सहवास, शिक्षण, अध्ययन, मनन, निदिध्यासन, कृति, निरीक्षण, सत्संग, सद्‌गुरु-सेवन और अनुभव आदि सारा कार्य करनेका एकमात्र उच्च लक्ष्य परब्रह्म प्रभुकी निष्काम भावसे सेवा करना है। जो शील, सदाचार, मानव-कर्त्तव्य, आनन्द, सुख, मोक्ष, योगादिका तथा आत्मिक, कौटुम्बिक, सामाजिक, राष्ट्रीय, जागतिक उन्नति एवं समाज-सुधार आदि सब कार्योंका मूल कारण है।

एक बार एक कुत्ता रोटी लेकर भागा तो आप घीकी कटोरी लिये उसके पीछे चिल्लाते हुए दौड़े, प्रभो। रोटी रूखी है। उसमें घृत लगा लेने दीजिये।

अपने आराध्यको इस रीतिसे सर्वत्र देखना, उनके नाम-कीर्तनके बिना क्षणभर भी चैनसे न रह पाना विश्वास, निष्ठा और

प्रेमकी पराकाष्ठा है और इसके सजीव प्रमाण श्रीनामदेवजी हैं।

श्रीनामदेवजी यहाँतक कहते हैं कि जो नारायणका भजन नहीं करते, मैं उनको देखना भी नहीं चाहता-

जे न भजति नारायणा। तिनका मैं न करौं दरसणा।।

आप संसारकी कठिनाइयों और जीवनकी निस्सारतापर प्रकाश डालते हुए कहते हैं कि भगवान्‌की लीला अगाध समुद्र है, उसकी गति कोई नहीं देख सकता। ग्रहणके योग्य तो प्रभुका नाम है।

तत्त गहनको नाम है, भजि लीजै सोई। लीला सिंध अगाध है, गति लखै न कोई।।

सोनेके पर्वत, हाथी और घोड़ेका दान तथा करोड़ों गायोंका दान नामके समान नहीं। ऐसा नाम अपनी जीभपर रखो, जिससे जरा और मृत्यु पुन: न हो। अत: एकाग्रचित्त होकर नामसंकीर्तन करना चाहिये; क्योंकि इस भवसागर-रूपी संसारको पार करनेके लिये नाम ही जहाज है।

कंचन मेरु-सुमेरु, हय-गज दीजै दाना। कोटि गऊ जो दान दे, नहिं नाम समाना।।

अस मन लाव नाम रसना। तेरो बहुरि न होइ जरा-मरना।।

एकै मन एकै दसा एकै व्रत धरिये। नामदेव नाम जहाज है, भवसागर तरिये।।

कहत नामदेव साँची मान। निरभै होइ भजिलै भगवान।।

श्रीभगवानके नामके ये अनन्य प्रेमी महात्मा नाम-जप करनेवाले पुरुषोंके दर्शनसे अपनेको कृतार्थ अनुभव करते थे, उनके लिये अपना प्राण उनके सम्मुख रख देनेमें भी इन्हें हिचक नहीं थी। वे स्वयं कह भी देते हैं।

कहत नामदेव बलि-बलि जैहौं, हरि भजि और न लेखो।

संवत् १४०७ वि. में ८० वर्षकी आयुमें आपने परमधामकी यात्रा की। महाराष्ट्रमें वारकरी पंथके संस्थापक एक प्रकारसे आप ही हैं।

संतशिरोमणि श्रीनामदेवजी महाराजने लोगोंका कल्याण और भगवान्‌की सेवा करते हुए जीवनके अस्सी वर्ष व्यतीत किये। उन्हें अपनी भौतिक देहके पर्यवसानका पूर्वाभास प्राप्त हो चुका था। उनका निश्चय था कि यह शरीर श्रीपंढ़रीनाथके पावन चरणोंमें ही विसर्जित होना चाहिये। चन्द्रभागा नदीके तटपर बने भगवान विठ्ठलके मन्दिरकी पौड़ीपर संत नामदेवजी पिता दामसेठ, माता गोणाबाई, पत्नी रानाबाई, नारायण, गोविंद, विठ्ठल, महादेव- ये चार पुत्र, गोंडाबाई, येसाबाई, साखराबाई ये तीन पुत्रवधुएँ, बहिन आऊबाई तथा दासी जनाबाई इन सबके साथ आषाढ़ बदी त्रयोदशी शनिवार, शकसंवत १२७२ तदनुसार ३ जुलाई १३५० ई.को समाधिमें बैठ गये। पुत्र नारायणजीकी पत्नी लाड़ाबाई उस समय प्रसवके लिये मायके गयी हुई थी, जिससे वह समाधिमें नहीं बैठ सकी थी। उसके पुत्रसे नामदेवजीका वंश अबतक चल रहा है।

संत नामदेवजी इस संसार में होकर भी अमूर्तरूपसे हमारे मध्य वर्तमान हैं। उनका दिव्य संदेश हमें आज भी पग-पग पर मार्ग-दर्शकका काम कर रहा है, प्रेरणा दे रहा है। महात्मा गाँधीजीकी आश्रम-भजनावलीमें नामदेवजीके अभङ्गोंका समावेश है तथा उन्हें बड़े प्रेम और उत्साहसे गाया जाता है।

** समझदार वह है जो समझदार बनता नहीं। जो समझदार बनता है, वह समझदार होता नहीं।*

** तुमने इतने मुखोटे बदले हैं कि असली चेहरा ही खो गया। कृत्रिमता स्वयं को खा जाती है। आज का मानव कृत्रिम जीवन जी रहा है।*

संत कबीर

कबीरको मध्यकालीन कवियोंने एक महान् भक्त और संत माना है। तेरहवीं-चौदहवीं सदीमें उनका जीवन-काल बनारस (काशी) में बीता। वे जुलाहा-परिवारमें उत्पन्न हुए, जुलाहेका परिश्रमी सरल जीवन उन्होंने जीया। उन्होंने अपनेमें ऐसे व्यक्तित्वका निर्माण किया जो एक महान् संत, पूर्ण सद्गुरु, सरल हृदय और भक्त होनेके साथ-साथ स्पष्टवादी, निर्भीक तथा अपने आदर्शोंके प्रति हर प्रकारकी आलोचना तथा यातना सहनेको तैयार रहा। उनके रचे भक्ति-पद, नीतिके दोहे, सूक्तियाँ एवं उलटबाँसियाँ बहुत प्रसिद्ध हैं।

संत कबीर दास हिंदी साहित्य के आदिकाल के इकलौते ऐसे कवि हैं, जो आजीवन समाज और लोगों के बीच व्याप्त आडंबरों पर कुठाराघात करते रहे। वह कर्म प्रधान समाज के पैरोकार थे और इसकी झलक उनकी रचनाओं में साफ झलकती है। मौजूदा समय के कवि-साहित्यकार भी इससे पूरा इत्तेफाक रखते हैं। कवि प्रेम जनमेजय ने बातचीत में कहा कि कबीर दास आस्था के विरोधी नहीं थे, लेकिन वह निराकार ईश्वर को स्वीकार करते थे। वह धर्म और परंपराओं के नाम पर किये जानेवाले आडंबरों से सहमत नहीं थे।

कबीर के जन्म को लेकर किसी स्पष्ट तिथि का पता नहीं, लेकिन माना जाता है कि उनका जन्म १५ जून, १४४० को वाराणसी में हुआ। नीरू और नीमा नामक मुस्लिम दंपति ने उन्हें पाया था और उन्हें कबीर नाम दिया। शुरुआत में कबीर ने बुनकरी के पारिवारिक पेशे में मन लगाया, लेकिन बाद में उनका ध्यान साधुवाद की ओर बढ़ता चला गया वाराणसी के संत रमानंद के शिष्य बनने के बाद वह बतौर संत स्थापित हुए। उनकी धार्मिक मान्यता को लेकर लंबे समय तक मतभेद बना रहा। कुछ लोग उन्हें जन्म से हिंदू करार देते हैं तो कइयों का मानना है कि साधुवाद की ओर उनका रुझान संत रमानंद से मिलने के बाद हुआ। माना जाता है कि कबीर ने १५१८ में नश्वर शरीर छोड़ दिया। कबीर ने मुसलमान और हिंदू दोनों समुदाय के बीच आडंबरों पर कटाक्ष किया। उन्होंने हमेशा निराकार ईश्वर की उपासना की पैरवी की। इसी संदर्भ में उनका एक दोहा काफी प्रचलित है-

पाहन पूजे हरि मिले तो मैं पूजे पहार। वा ते तो चाकी भली पीस खाय संसार।।

आदिकाल के निर्गुण शाखा के इस प्रतिनिधि कवि ने गुरु को ईश्वर से भी ऊंचा बताया। उन्होंने एक दोहे के माध्यम से इसका बखान किया।

गुरु गोविंद दोउ खड़े, काके लागूं पांय। बलिहारी गुरु आपने गोविंद दियो बताय।।

कबीरदास भारत के भक्ति काव्य परंपरा के महानतम कवियों में से एक थे। भारत में धर्म, भाषा या संस्कृति किसी की भी चर्चा बिना कबीर की चर्चा के अधूरी ही रहेगी। कबीरपंथी, एक धार्मिक समुदाय जो कबीर के सिद्धांतों और शिक्षाओं को अपने जीवन शैली का आधार मानते हैं।

कबीरदास मस्तमौला संत थे। रामानंद के शिष्य कबीर ने धर्म, समाज, अध्यात्म, वैराग्य और साहित्य की बनी-बनाई परंपराओं को छोड़कर एक अलग ही जीवन दर्शन का निर्माण किया। तभी तो वे कहते हैं, मैंने पंडित और मुल्ला दोनों को छोड़ दिया है। किसी भी मजहब या संप्रदाय के बंधन से मुक्त हूं, इसलिए कोई सैद्धांतिक द्वंद्व मेरे मार्ग में नहीं है। अपना अलग मार्ग गढ़नेवाले संत कबीर ने समाज को एक नई दिशा दी। उन्होंने अंधविश्वासी और रूढ़िवादी समाज का कड़ा विरोध किया। उनके दोहों में धर्म, भक्ति और समाज सुधार की बातें मिलती हैं। उनका जीवन दर्शन बहुत महान था। वैसे भी अरबी भाषा में कबीर का अर्थ महान ही होता है।

कबीर संत कवि और समाज सुधारक थे। कबीरदास भारत के भक्ति काव्य परंपरा के महानतम कवियों में से एक थे।

भारत में धर्म, भाषा या संस्कृति किसी की भी चर्चा बिना कबीर की चर्चा के अधूरी ही रहेगी। कबीरपंथी, एक धार्मिक समुदाय जो कबीर के सिद्धांतों और शिक्षाओं को अपने जीवन शैली का आधार मानते हैं। काशी के इस अक्खड़, निडर एवं संत कवि का जन्म लहरतारा के पास सन् १३९८ में ज्येष्ठ पूर्णिमा को हुआ। जुलाहा परिवार में पालन-पोषण हुआ, संत रामानंद के शिष्य बने और अलख जगाने लगे। कबीर सधुक्कड़ी भाषा में किसी भी संप्रदाय और रूढ़ियों की परवाह किए बिना खरी बात कहते थे। हिंदू-मुसलमान सभी समाज में व्याप्त रूढ़िवाद तथा कट्टरपंथ का खुलकर विरोध किया। कबीर की वाणी उनके मुखर उपदेश उनकी साखी, रमैनी, बीजक, बावन-अक्षरी, उलटबांसी में देखे जा सकते हैं। काशी में प्रचलित मान्यता है कि जो यहां मरता है, उसे मोक्ष प्राप्त होता है। रूढ़ि के विरोधी कबीर को यह कैसे मान्य होता? काशी छोड़ मगहर चले गये और सन् १५१८ के आस पास वहीं देह त्याग किया।

सकल जनम शिवपुरी गंवाया। मरती बार मगहर उठि आया।।

कबीर सीधे-सहज ढंग से सामाजिक विसंगतियों, अंतर्विरोधों पर चोट करते हैं। नकार की यह चीख एक नए समाज के निर्माण की ललक लिए हुए थी। ऊंच-नीच, जात-पात, संप्रदाय जैसे खांचों में बंटे समाज की बाह्य और आंतरिक असंगति उनकी चीख को तीव्र कर देती है, जहां वे तमाम मानवीय संबंधों को नकारते नहीं, बल्कि यह उनके विक्षुब्ध मन का उद्वेलन था, जो मनुष्य को मनुष्य के रूप में प्रतिष्ठा दिलवाने का संकल्प लिए हुए था। इस प्रकार कबीर का समाज दर्शन और जीवन-दर्शन परस्पर अंतर्संबद्ध है। दोनों के केंद्र में मनुष्य जीवन है, जहां मनुष्यता और कबीर दोनों एक-दूसरे के पर्याय बन गए। ब्रह्म भी कबीर के यहां आध्यात्मिक चेतना मात्र का प्रतीक न बनकर सामाजिक जीवन-दर्शन बन जाता है। उन्होंने कर्मकांड प्रधान धर्म की अपेक्षा सर्वव्यापक चैतन्य स्वरूप ब्रह्म की उपासना पर बल दिया, जो प्रत्येक प्राणी के भीतर मौजूद है।

इस आधार पर वे सब प्राणियों को एक मानकर समत्ववादी दृष्टि के हिमायती बन जाते हैं, जो मानव-मात्र से प्रेम करना सिखाता है। विशिष्ट वर्ग द्वारा अपनाई गई भाषा, ज्ञान, अनुभव और उपलब्धि सामान्य जन को पंगु बना रही थी, उनको लगता था मुक्ति के द्वार भी उनके लिए बंद हैं और दूसरी ओर मंदिर-मस्जिद में पाखंडी पंडित और मुल्ला जनसाधारण को अपने कर्मकांडी विधानों से बरगलाकर उल्लू सीधा करने में लगे हुए थे। उनका कबीर जी ने डटकर विरोध किया, जनता में आत्मबल और आत्मविश्वास पैदा किया। अकर्मण्य साधना के स्थान पर कर्म करते हुए साधना मार्ग पर चलने की सलाह दी। इनके दोहों में स्पष्टत: आती है।

माला फेरत जुग गया, फिरा न मन का फेर। कर का मनका डार दे, मन का मनका फेर।।

पोथी पढ़ पढ़ जग मुआ, पंडित भया न कोये। ढाई आखर प्रेम का, पढ़े सो पंडित होये।।

कबीर ने साधु और साधना की बहुत बढ़ाई की है। उन्होंने तो यहां तक कहा है कि मित्रता करने से साधना में बाधा पड़ती है। साधना या तो अकेले में हो सकती है या फिर साधु समाज के बीच बैठकर।

कबीर खड़ा बाजार में, मांगे सबकी खैर। न काहू से दोस्ती, न काहू से बैर।।

साधुओं के सत्संग को उन्होंने भगवान राम का दास बनने से भी ऊंचा दर्जा दिया है। कबीर के जीवन दर्शन की हर बात सटीक है। वर्तमान समाज की बात करें, तो कबीर के दोहों में कही गई बातें एकदम योग्य हैं। कबीर ने अपने जीवन दर्शन में सिर्फ सत्संग को ही नहीं, बल्कि धर्म, अध्यात्म और प्रेम को प्राथमिकता दी है। जहां उन्होंने राम का गुणगान किया है, वहीं वे गुरु को भगवान से सर्वोपरि मानते हैं। कबीर ने धन-दौलत, राज-पाट, धर्म में फैले पाखंड का कड़ा विरोध भी किया और अपने दोहों के माध्यम से कटाक्ष भी किया। उन्होंने दुश्मन के साथ भी अच्छा व्यवहार करने की सलाह दी है।

कबीर दूसरों में बुराई नहीं देखते, बल्कि खुद में ही कमी तलाश करते हैं।

बुरा जो देखने मैं चला, बुरा न मिलिया कोय। जो मन देखा आपना, मुझसे बुरा न कोय।।

कबीर जिस तरह संसार में आए, उसी तरह एक मिसाल बनकर चले गए। वे अपने बारे में लिखते हैं-

कबीरा जब हम पैदा हुए, जग हंसे हम रोए। ऐसी करनी कर चलो, हम हंसे जग रोए।।

कवि धनंजय सिंह कहते हैं कि कबीर ने गुरु को सर्वश्रेष्ठ माना। उन्होंने सतगुरु की कल्पना की थी। वह ऐसे गुरु की बात कर रहे थे, जिसमें कोई दोष न हो। कबीर के काव्य में आध्यात्म और यथार्थ दोनों की झलक मिलती है। कवि जनमेजय का कहना है कि कबीर के काव्य की यही सबसे बड़ी विशेषता है। वह आध्यात्म के साथ ही यथार्थ को बयां करते हैं। उनका काव्य आज के समय में भी प्रासंगिक है।

भगवत्प्रेमी संत कबीरदास उस निर्गुण ब्रह्मके उपासक थे, जिसका साक्षात्कार ज्ञान-सूर्यसे प्रकाशित अन्तर्हृदयमें ही सम्भव है। परमात्माका प्रत्यक्षीकरण तो मिथ्यातत्वसे सर्वथा मुक्त निराडम्बर आत्मामें ही सुलभ हो सकता है। जो साधक भगवान्‌को सीमामें बाँध देता है, ईश्वरका सत्स्वरूप उसकी अनुभूतिसे परे हो जाता है। संत कबीरदासने सभी प्रकारकी सीमाओंसे परे होकर ब्रह्मको अपनी अन्तरात्मामें अनुभव किया था।

कबीरकी वाणीमें भी ज्ञानकी स्थिति भक्तिसे भिन्न नहीं है, इसीलिये उनका विश्वास था कि केवल जप-तप-योग एवं वेद-पुराण-स्मृति आदि साधनोंद्वारा भगवत्प्रेमकी प्राप्ति असम्भव है। भक्तिवादी कबीर अपने मनको सम्बोधित करके कहते हैं कि योगकी युक्ति और गुरुके शब्दके साथ हरिभक्ति भी आवश्यक है। इसके बिना ही तो मनको सांसारिक दु:खाग्निमें जलना पड़ता है।

प्रेम भक्तिका मूल भाव है। कबीरके ज्ञान और योग दोनों ही ईश्वरीय प्रेमके परिपोषक हैं। कबीर हरि-रस-पानकर सदा मदमस्त रहते हैं। यहाँतक कि उन्हें अपने शरीरकी भी सुध-बुध नहीं रहती। इसलिये कि जो मदमस्त अव्यक्तमें लीन हो जाता है, वह कालजयी हो जाता है तथा वह जीवन्मुक्त और विषयातीत हो जाता है। इस प्रेमरसको पीनेके आकाङ्क्षी तो सभी रहते हैं, पर सबके लिये यह सुलभ नहीं होता; क्योंकि इस प्रेमरसका विक्रेता कलाल मूल्यके रूपमें सिर माँगता है। जिसमें ऐसे महान् उत्सर्गकी सामर्थ्य होती है, वही इसका अधिकारी होता है।

कबीरने लौकिक दाम्पत्य प्रेमके माध्यमसे अलौकिक भगवत्प्रेमकी मार्मिक अभिव्यञ्जना की है। विवेकके जागरित होनेपर आत्मारूपी विरहिणीको परमात्माके प्रति जब प्रगाढ़ तथा अनन्य सम्बन्धकी अनुभूति हो आती है, तब वह भगवत्प्रेमकी प्राप्तिके लिये शेष जीवन उसी तरह रोती रहती है, जिस तरह क्रौञ्च पक्षी अपनी संगिनीसे बिछुड़कर रोता है।

कबीर अपनी आत्माको प्रेयसी मानते हैं और परमात्माको प्रियतम। आत्माका परमात्मासे प्रेम ही भगवत्प्रेम है।

कबीरके भगवत्प्रेममें उन सभी प्रेममार्गियोंकी भावनाओंका समावेश है, जो प्रेमको ईश्वर-प्राप्तिका एकमात्र साधन मानते हैं।

कबीरके मतानुसार भगवत्प्रेमके लिये महान् त्याग अपेक्षित है। सती और शूर इस त्यागपूर्ण प्रेमके आदर्श हैं, जिन्हें बराबर प्राणोंकी बाजी लगाकर आगे बढ़ना पड़ता है। जिस व्यक्तिको भगवत्प्रेमकी उपलब्धि हो जाती है, उसकी समस्त सांसारिक आकांक्षाएँ मिट जाती हैं, वह निरिच्छ और अचाह हो जाता है। उसपर काम-क्रोधका कोई प्रभाव नहीं पड़ता। उसे तृष्णा कभी नहीं जलाती। भगवत्प्रेमी कभी असत्य नहीं बोलता। वह समदर्शी होता है एवं द्वैधभावसे सर्वथा मुक्त रहता है। कबीरकी दृष्टिमें बिना भगवद्भक्तिके भवसागरसे सुखपूर्वक पार उतरना सम्भव नहीं है।

भगवत्प्रेमी कबीर परम वैष्णव थे। कबीर सारी चिन्ता छोड़कर केवल हरिनाम की चिन्ता करते हैं। परब्रह्म रामके प्रति उनका हृदय पूर्ण निवेदित है। कबीरकी प्रेममूला भक्ति मूलत: जनता-जनार्दनकी भक्तिमें समाहित है और उनका भगवत्प्रेम विश्वमानव-प्रेमका ही प्रतिरूप है।

** सुखिया सब संसार है खावे और सोवे, दुखिया दास कबीर है जागे और रोवे।*

संत पुण्डलिक

दक्षिण भारतमें लोहदण्ड नामक नगरमें जानुदेव नामका एक शिवपूजक विद्वान ब्राह्मण रहता था। वह सदाचारसम्पन्न तथा शील एवं विनयसे युक्त था। उसकी पत्नी भी धार्मिक और सात्त्विक गुणोंसे युक्त थी। उसके पुण्डलिक नामक एक पुत्र हुआ। उपनयनके बाद पिताने पुण्डलिकके विद्याध्ययनकी समुचित व्यवस्था कर दी, किंतु उसका मन विद्याग्रहणमें नहीं लग रहा था।

पिताने सोचा कि हो सकता है विवाहके बाद यह सुधर जाय। अत: उसने पुण्डलिकका विवाह कर दिया। पर विवाहके बाद तो उसकी प्रवृत्तिमें इतना बदलाव हुआ कि वह पत्नीको ही सर्वस्व समझने लगा और माता-पिताका अनादर करने लगा। उसकी पत्नी भी पतिकी आज्ञाके अनुसार व्यवहार करने लगी।

माता-पिता वृद्ध हो चुके थे, उस समय उन्हें पुत्र और पुत्रवधूके सेवा-सहयोगकी नितान्त आवश्यकता थी, पर ऐसा न हो सका। अत: माता-पिता दु:खी रहते थे। ऐसे ही कुछ समय व्यतीत हुआ।

एक दिन कुछ यात्री काशी जा रहे थे। वे लोहदण्ड नगरमें आये। तीर्थयात्रियोंमें युवा पुरुष, स्त्रियाँ, वृद्ध आदि सभी समाविष्ट थे। पुण्डलिकके माता-पिताने भी पुण्डलिक से कहा कि वह भी उन्हें इनके साथ काशी-यात्रा करा दे तो उनका जीवन कृतकृत्य हो जायगा। पुण्डलिक स्वयं पत्नीके साथ काशी-यात्रा करनेकी सोच ही रहा था। अत: उसने माता-पिताको भी यात्राकी अनुमति दे दी।

यात्रियोंका समूह काशी-यात्राका मार्ग तय करने लगा। पुण्डलिक भी अपनी पत्नी तथा माता-पिताके साथ उनके साथ हो गया। वृद्ध होनेके कारण पुण्डलिकके माता-पिताको चलनेमें कठिनाई हो रही थी और वे दिंडीर वनतक ही साथ आ सके। उसके बाद पुण्डलिकने उनको छोड़कर पत्नीके साथ आगेकी यात्रा आरम्भ की।

यात्रियोंके साथ चलनेमें जब पत्नीको भी कठिनाई होने लगी, तब पुण्डलिकने मोहवश उसे कन्धेपर बिठा लिया और सबके साथ चलने लगा, किंतु असावधानीसे उसका रास्ता बदल गया और वह काशीके दक्षिण भागमें स्थित कुक्कुट द्विजके आश्रममें आ गया। आश्रमका वातावरण सुरम्य था। बगीचे फूलोंसे भरे हुए थे। निर्मल निर्झर बह रहे थे। वृक्षोंपर कोयलें कूक रही थीं। मयूर नाच रहे थे। यह सब देखकर स्वर्गिक सुखका आभास हो रहा था। आश्रमकी शान्ति और पवित्रता वहाँके दिव्यत्वका साक्ष्य दे रही थी। थक जानेके कारण पुण्डलिककी पत्नी सो गयी; किंतु पुण्डलिकको नींद नहीं आ रही थी। अचानक उसने देखा कि आश्रममें कुछ कृष्णवर्णा स्त्रियाँ प्रविष्ट होकर सब प्रकारके कार्य करने लगीं। कुछ स्त्रियाँ सम्मार्जनकार्यमें लगीं, कुछ कपड़े धोनेमें और कोई पात्र साफ करने लगीं। इस प्रकार जब आश्रमका सारा कार्य पूर्ण हो गया तो उन सभी कृष्णवर्णवाली स्त्रियोंका रंग बदल गया और वे श्वेतवर्णवाली हो गयीं। जब वे स्त्रियाँ आश्रमको वन्दन करके जाने लगीं तब पुण्डलिकने उन्हें प्रणाम किया और उनसे पूछा- आपलोग कौन हैं तथा आपमें यह अन्तर किस प्रकारकी साधनासे हुआ है? उन देवियोंने बताया कि हम भारतकी पवित्र गंगा, सिन्धु, सरस्वती और यमुना आदि नदियाँ हैं। तुम्हारे-जैसे स्त्रीलम्पट, विषयी तथा पापी लोगोंको हमारे ही जलमें स्नान करनेसे पवित्रता प्राप्त होती है, किंतु हम यहाँ पुण्यवान् कुक्कुट द्विजके आश्रममें सेवा करके अपने-आपको धन्य समझती हैं; क्योंकि ये द्विज अपने माता-पिताकी सेवाके कारण महान् हो गये हैं। यह उनकी मातृ-पितृभक्तिका ही प्रभाव है। ऐसा कहकर वे देवियाँ अदृश्य हो गयीं।

इस घटनाका पुण्डलिकके मनपर बहुत गहरा प्रभाव पड़ा और उसके अन्त:करणमें मातृ-पितृप्रेम जाग्रत् हो गया। उसके

नेत्र सजल हो उठे और कण्ठ रोमाञ्चसे रूँध गया। वह ग्लानिसे भर गया और अपने माता-पिताको खोजने निकला। महाराष्ट्र में दिंडीर वनमें भीमा नदीके तटपर उसे उनके दर्शन हुए और उन्हें देखते ही वह उनके चरणोंमें गिर पड़ा तथा क्षमा-याचना करने लगा- मैं अपराधी हूँ, शिव-पार्वतीके समान पूज्य माता-पिताको छोड़कर पत्नीके साथ काशी-यात्राको निकला, यह मेरा अपराध है, आप दोनों मुझे क्षमा करें, क्षमा करें। माता-पिताने पुण्डलिकके सिरपर हाथ रखा, उसका आलिङ्गीन किया और उसके सब अपराधोंको क्षमा कर दिया।

अब पुण्डलिक वहीं रहकर अपने माता-पिताकी सेवामें रत हो गया। वर्षोंतक उसने उनकी अखण्डित सेवा की। उसके लिये अब माता-पिता ही भगवत्स्वरूप हो गये थे।

उसकी मातृ-पितृ-भक्ति देखकर एक दिन स्वयं भगवान् विष्णु वैकुण्ठ छोड़कर पुण्डलिकके घर आये और उन्होंने देखा कि उनका प्रिय भक्त माता-पिताकी अत्यन्त प्रेमपूर्वक सेवा कर रहा है और वे सो रहे हैं। शफ, चक्र, गदा, पद्म और पीताम्बरधारी भगवान् प्रकट होकर भक्त पुण्डलिकसे कहने लगे- वत्स। मैं तुम्हारी भक्तिसे संतुष्ट हूँ। बताओ, तुम्हारी इच्छा क्या है? पुण्डलिकने कहा- भगवन्, मेरे माता-पिता सो रहे हैं, उनकी निद्रा पूरी होनेतक आप यहाँ खड़े हो जाइये। ऐसा कहकर उसने उनकी ओर खड़े होनेके लिये घरकी एक ईंट सरका दी और स्वयं माता-पिताकी सेवामें लग गया। आजतक भगवान् वहीं ईंटपर खड़े होकर अपने भक्तका सेवा-कार्य देखने लगे; क्योंकि उनको भक्तके साथ ही रहना पसंद है-

नाहं वसामि वैकुण्ठे योगिनां हृदये न च। मद्भक्ता यत्र गायन्ति तत्र तिष्ठामि नारद॥

पुण्डलिक जानता था कि साध्य प्राप्त होनेपर भी साधन छोड़ना उचित नहीं है और इसी कारण वह माता-पिताकी सेवा पूर्ण हो जानेके बाद ही भगवान्‌की ओर उन्मुख हुआ। अभीतक पुण्डलिककी सेवाके कारण ही प्रेममय भगवान ईंटपर खड़े हैं और पुण्डलिकका नाम भी भगवत्प्रेमके कारण ही भगवान्‌के साथ जुड़ गया है।

अपने माता-पिताको ही भगवद्रूप समझकर उनकी प्रेमपूर्वक सेवा करनेके कारण परब्रह्म परमात्माको भक्तके सामने प्रकट होना पड़ा और उसकी आज्ञाका पालन करना पड़ा। भगवान ईंटपर खड़े होकर आनेवाले भक्तोंपर कृपा करनेके लिये आज भी उद्यत हैं। यह प्रेमका प्रभाव तथा भगवान्‌की अपार करुणा और कृपाका प्रभाव है। इसीको भगवत्प्रेम कहते हैं।

** जिसकी रक्षा तुम्हें करनी पड़े वह तुम्हारा रक्षक नहीं हो सकता।*

** धन स्वयं एक बड़ा खतरा है, वह भला तुम्हें खतरों से कैसे बचायेगा?*

** कोई हेय नहीं है। उजालों का जन्म अन्धेरे की कोख से ही हुआ है। हर काली रात के बाद उजाला आता है- यह ध्रुव सत्य है।*

** संशयात्मा के लिये अपनी परछाई ही भूत बन जाती है। शंकित आदमी हर समय तनाव ग्रस्त रहता है। बहम की कोई दवा नहीं।*

** दीप से दीप जलाना सृजन है। फूँक से दीप बुझाना है- संहार।*

** दुनियां इक तमाशा है, लोग तमाशबीन हैं। तुम जैसा तमाशा दिखलाओगे, देख लेंगे। लेकिन तमाशे की कीमत केवल तालियाँ हैं।*

** कागज की नाव लेकर आग की दरिया में उतारना बुद्धिमानी नहीं है।*

** जिसे नंगापन में रास आ गया, उसे कपड़े दिखाकर नहीं ठगा जा सकता।*

अष्टावक्रा मुनि

ब्रह्माजी के पुत्र प्रचेता थे। उन प्रचेता के एक पुत्र तो बाल्मीकजी थे और दूसरे असित थे। महामुनि असित ने ब्रह्मचर्य व्रत समाप्त करके विवाह किया और अपनी पत्नी के सहित पुत्र की कामना से देवताओं का सहस्त्रों वर्षों तक घोर तप किया, किन्तु उनके कोई पुत्र नहीं हुआ। तब तो उन्हें जीवन भार-सा प्रतीत होने लगा और वे प्राणों को छोड़ने तक के लिये उद्यत हो गये। उसी समय उन्हें अशरीरी दिव्य आकाशवाणी सुनायी दी- हे तपोधन, तुम शरीर क्यों छोड़ते हो? शमरजी के समीप जाओ, तुम शमरजी से मन्त्रग्रहण करके उसे सिद्ध करो। उस मन्त्र की अधिष्ठातृ देवी का जप करने से तुम्हें तत्काल साक्षात्कार होगा। उससे तुम पुत्र का वर माँग लेना।

आकाशवाणी की बात सुनकर महामुनि असित शमरजी के समीप गये और उनसे मन्त्र दीक्षा लेकर जप करने लगे। उसके जप के प्रभाव से कुछ ही दिनों में उनके कंदर्प के समान शिवजी के अंश से देवल नामक पुत्र उत्पन्न हुआ। ऐसे सुन्दर पुत्र को पाकर मुनि दम्पत्ति के हर्ष का ठिकाना नहीं रहा। कालान्तर में देवल सभी शास्त्रों के ज्ञाता हुए और उन्होंने सुयज्ञ नामक राजा की रत्नमालावती पुत्री के साथ विवाह किया।

राजपुत्री रत्नमालावती अत्यन्त ही सुन्दरी थी, वह परमसाध्वी पतिपरायणा तथा पति को प्राणों से भी अधिक माननेवाली थी। महामुनि देवल उसके साथ सहस्त्रों वर्षों तक संसारी सुखों का उपभोग करते रहे। अन्त में उन्हें संसार से वैराग हुआ। अब उन्हें संसारी सुख विष के सदृश प्रतीत होने लगे। अब वे संसारी भोगों से उदासीन हो गये। किन्तु वे अपने भावों को अपनी पत्नी के सम्मुख प्रकट नहीं करते थे। उनके व्यवहार से राजकुमारी समझ गयी कि मुनि का चित्त मेरी ओर से उदासीन हो गया है। वे मुझे छोड़कर कहीं जाना चाहते हैं, इसलिये वह कभी उन्हें कहीं अकेले नहीं जाने देती। छाया के समान उनके सदा साथ ही बनी रहती। मुनि का चित्त अब एकान्त में तप करने को उत्सुक हो रहा था।

एक दिन मुनि रात्रि में सो रहे थे। समीप ही शंकित चित्त से उनकी धर्मपत्नी भी सो रही थी। यद्यपि राजपुत्री सदा सावधान रहती, किन्तु उस दिन विधि का ऐसा विधान हुआ, कि उसे निद्रा आ गयी। मुनि ने इसे ही उत्तम अवसर समझा। वे शनैः शनैः शैया से उठे और रात्रि में ही घोर वन में चले गये। कुछ देर के पश्चात् मुनि पत्नी की आँखें खुलीं। अपने प्राणनाथ को समीप न पाकर वह उच्चस्वर से रुदन करने लगी। उसके पुत्रों ने परिवार वालों ने उसे बहुत समझाया, किन्तु प्यारे का वियोग सहना साधारण बात नहीं है। विरहाग्नि के कारण वह तप्त बालू में पड़े बीज की भाँति जलने और उछलने लगी। अन्त में वह पति वियोग को सहने में समर्थ न हो सकी, उसने इस नश्वर शरीर को त्याग दिया। उसके पुत्रों ने उसके और्ध्वदैहिक संस्कार किये।

इधर महामुनि देवल बदरीवन के समीप गन्धमादन पर्वत की एक गिरि गुहा में बैठकर घोर तप करने लगे। मुनि एक तो वैसे ही कामदेव के सदृश सुन्दर थे, फिर तप के प्रभाव से उनका सौन्दर्य और भी निखर गया था। तप तेज से उनका मुखचन्द्र दम-दम दमक रहा था। उसी समय स्वर्ग की सर्व श्रेष्ठ अप्सरा रम्भा वहाँ होकर निकली। उन तेज पुञ्ज अत्यन्त सुन्दर मुनि को देखकर उसका चित्त चंचल हो उठा।

कामनियों का चित्त सुन्दर पुरुष को एकान्त में देखकर चंचल हो जाता है, फिर वे अपने मन को रोकने में सर्वथा असमर्थ हो जाती हैं। उस एकान्त शान्त निर्जन वन में कन्दर्प के सदृश रूप लावण्ययुक्त मुनि को देखकर रम्भा अपने आपे में न रह सकी। वह सोलह श्रृङ्गार करके वस्त्राभूषणों से सुसज्जित होकर काम सम्बन्धी अनेक संकेतों को प्रकट करती हुई मुनि के समीप उपस्थित हुई। उसी समय मुनि का ध्यान भंग हुआ।

रम्भा बोली - मुनिवर, भगवान ने तुम्हें इतना अनुपम रूप दिया है, तुम्हारे अङ्ग इतने सुन्दर और सुकोमल हैं, उस पर

आप इतना कठोर तप कर रहे हैं, यह आपको शोभा नहीं देता। तुम व्यर्थ शरीर को क्यों सुखा रहे हो?

मुनि ने कहा- शोभने। हम मुनियों का तप ही धन है। ब्राह्मण का शरीर क्षुद्र कामवासना के लिये नहीं होता। वह इस लोक में घोर तप करके कष्ट सहता है, परलोक में अनन्त सुख को प्राप्त करता है।

रम्भा बोली - मुनिवर। परलोक किसने देखा है। गोद के को छोड़कर पेट के की आशा करना मूर्खता है। समुपस्थित प्रत्यक्ष सुख को छोड़कर काल्पनिक सुख की आशा से शरीर सुखाना मूर्खता है। हे तपोधन, पृथ्वी पर राजे-महाराजे बड़े-बड़े यज्ञ अनुष्ठान इसीलिये करते हैं, कि स्वर्ग में हमें अप्सरायें प्राप्त हों। मैं स्वर्ग की सर्वश्रेष्ठ अप्सरा हूँ, बड़े-बड़े तपस्वी-तेजस्वी यहाँ तक कि देवेन्द्र भी मेरे कृपा कटाक्ष के लिये तरसते हैं। ऐसे में मैं स्वयं तुमसे प्रणय की भिक्षा माँग रही हूँ, मैं तुम्हारी तपस्या की मूर्तिमती सिद्धि हूँ। आप मुझे स्वीकार करें।

मुनि ने कहा- भामिनि। तुम कैसी बातें कर रही हो। मैं समस्त विषयों को छोड़कर एकान्त में यहाँ तप करने आया हूँ तपस्या में स्त्री का सङ्ग सबसे बड़ा विघ्न है। अत: देवि, तुम मेरे ऊपर कृपा करो। मुझे तप करने दो। तुम अपने रास्ते जाओ।

रम्भा व्यङ्ग के स्वर में बोली- तुम बड़े रूखे हो? अरे, पुरुष होकर तुम ऐसी नीरस बातें कर रहे हो। मैं तुम्हारे कारण पीड़ित हूँ, दुखी हूँ, दुखियों पर दया करना परमधर्म है। जो काम पीड़ित नारी का तिरस्कार करता है, उसे बड़ा पाप लगता है।

तुम तो मुनि हो । ब्रह्माजी ने काम पीड़िता मोहिनी का तिरस्कार किया था, इसीलिये संसार में उनकी कहीं पूजा नहीं होती। एक ओर तो लाखों वर्ष तप करना और एक ओर दुखियों के दुख को दूर करना इसमें दुखियों के दु:ख को दूर करनेवाले धर्म से तपस्या का पुण्य अत्यन्त तुच्छ है। अत: मेरे ऊपर कृपा करो।

मुनि ने कहा- सुन्दरि, तुम ये सब संसारी लोगों की बातें कह रही हो। गृहस्थी को कामार्ता स्वपत्नी का परित्याग पाप बताया है। पर स्त्री तो सदा ही वर्जनीय है। रम्भा बोली - ब्रह्मन, मैं पर स्त्री तो नहीं हूँ। मेरा कोई एक पति नहीं। हम स्वर्ग ललनाओं का तो यह धर्म है, सदाचार है। जो हमें रतिसुख प्रदान करे वही हमारा पति है। स्वर्ग में कितने पुण्यात्मा राजा आते हैं वे पुण्यों से हमें प्राप्त करते हैं। पुण्य क्षीण होने पर उनका पतन होता है, फिर हम दूसरे पुण्यात्माओं को भजती हैं।

मुनि गम्भीर होकर बोले - शोभने। तुम्हारा कथन सत्य है। तुम किसी एक की पत्नी नहीं फिर भी मुनियों के लिये तो स्त्रीमात्र का परिग्रह निषेध है। मोहिनी के शाप से ब्रह्माजी जगत् में अपूज्य हो गये होंगे, इसे मैं मानता हूँ, किन्तु वे भी तो स्त्री वाले ही हैं। मैंने तो स्त्री बच्चों को त्याग दिया है। मैं तो त्यागी हूँ। तुम्हें काम पीड़ा दे रहा है, तो तुम किसी अन्य सुन्दर पुरुष को भजो तुम्हें चाहनेवाले तो संसार में बहुत है। बड़े-बड़े लोग तुम्हें प्राप्त करने को जप, तप, यज्ञ, अनुष्ठान आदि साधन करते हैं। तुम उन्हीं के पास जाओ। मैं अपनी पतिव्रता स्त्री का परित्याग करके यहाँ घोर वन में-पर्वत की कन्दरा में-आकर बैठा हूँ, तुम मुझसे ऐसा अनुचित प्रस्ताव क्यों करती हो?

रम्भा ने अधीरता के स्वर में कहा- ब्रह्मन्, इतना रूखापन अच्छा नहीं। तपस्या करके तुम्हें जितना पुण्य होगा उससे लाख गुना इस अबला के ऊपर कृपा करने से होगा। लोग मुझे पाने को कितना जप, तप करते हैं, फिर भी वे मुझे देख भी नहीं पाते। वही मैं आपसे प्रार्थना कर रही हूँ आप मेरा तिरस्कार कर रहे हैं। मुझे ठुकरा रहे हैं। रहा अन्य पुरुषों को भजने की बात। सो, मुनिवर, जिसका मन जिसमें फँस जाता है, वह बूढ़ा हो, लँगड़ा हो, लूला हो, कुरूप हो, काला हो उसे वही अच्छा लगता है। आप चाहें बूढ़े हों मैं तो तुम्हें चाहती हूँ। मुनि ने गम्भीर होकर कहा- देवि, तुम मुझसे अधिक आग्रह न करो, तुम मेरी धर्म की माता हो मैं तुम्हारी ओर आँख उठाकर भी न देखूँगा। मैं क्रोध भी न करूँगा। अब तुमसे बात भी न करूँगा। तुम्हारी जहाँ इच्छा हो वहाँ चली जाओ। यहाँ बैठना चाहो यही बैठो। मैं तो अपने ध्यान में लगता हूँ।

माता शब्द सुनकर रम्भा के ओठ फरकने लगे। हाय, ये तपस्वी कैसे रूखे स्वभाव के होते हैं। इनका हृदय वज्र का बना रहता

है, जो इतनी अनुनय विनय से भी नहीं पिघलता। कितनी आशा लेकर मैं इस रूपवान् तपस्वी के पास आई थी। यह हृदय हीन मुझे माता कहता है। उसने क्रोध में भरकर कहा- तपस्वी। अब ऐसा शब्द फिर कभी भूल से भी मुख से मत निकालना। काम सन्तप्ता कामिनी से माता कहना उसे यह सबसे बड़ी गाली है। अब के फिर तुमने ऐसा शब्द मुख से निकाला तो मैं तुम्हें दारुण शाप दे दूँगी। अब तुम्हारे सामने दो ही बातें हैं या तो तुम मुझे स्वीकार करो या मेरे दारुण शाप को।

यह सुनकर भी मुनि को क्रोध नहीं आया उनके मन में इतनी सुन्दरी स्वर्गीय रमणी के इतने प्रणय तथा विनय भरे वचनों से काम की गन्ध भी नहीं आयी। वे गम्भीर होकर बोले- देखो, मैं तुम्हें एक बार माता कह चुका हूँ, तुम मुझसे बार-बार ऐसी बात मत कहो। मैं ऐसी बात फिर सुनने को उद्यत नहीं।

क्रोध में भरकर काम व्यथा से सन्तप्त होकर बार-बार अँगड़ाई लेती हुई, सम्पूर्ण शरीर को कँपाती हुई वह अप्सरा अत्यन्त मर्मस्पर्शी वाणी में दुखित होकर बोली- मुनिवर। कामाग्नि की ज्वाला से मेरे प्राण जल रहे हैं, मन जल रहा है, आत्मा सन्तप्त हो रही है, चित्त क्षुभित हो रहा है, यदि तुम मेरे ऊपर प्रणय-अमृत छिड़क दो, तो मैं जीवित हो जाऊँगी। यदि तुम हठ करोगे, तो मैं अपने दु:खित अन्त:करण से तुम्हें घोर शाप दूँगी। अत्यन्त दु:खी अन्त:करण से नेत्रों में अश्रु भरकर जो दुखिया किसी को शाप देता है, उसे कमलयोनि ब्रह्माजी भी अन्यथा नहीं कर सकते। ब्रह्मन्, अब भी सोच लो, या तो मुझे प्रेमपूर्वक अपनाओ या शाप ग्रहण करने को उद्यत हो जाओ।

मुनि ने शान्त भाव से कहा- हे सुरसुन्दरी, मैंने जो बात एक बार कह दी है, उससे मैं डिग नहीं सकता। मैं कभी तुम्हारा काम भाव से स्पर्श न करूँगा। तुम चाहे रहो या जाओ। मैं अब तुमसे कुछ भी नही कहूँगा।

यह कहकर मुनि ने आचमन किया और वे मौन हो गये। नेत्र बन्द करके वे भगवान का ध्यान करने लगे।

रम्भा को अत्यन्त ही मानसिक पीड़ा हुआ। काम की पूर्ति न होने से उसकी नस-नस में क्रोध व्याप्त हो गया। क्रोध से उसकी बुद्धि भ्रष्ट हो गयी। वह मुनि को शाप देती हुई बोली- हे बज्र हृदय के तपस्वी, तुम बड़े क्रूर हो, कुटिल हो, टेढ़े हो। तुमने अपने रूप यौवन और तप के अभिमान में भरकर मेरा तिरस्कार किया है। अत: तुम्हारा रूप और यौवन नष्ट हो जायेगा। तुम कौआ के समान, अञ्जन पर्वत के समान, कोयला के समान कृष्ण वर्ण के विरूप बन जाओगे। आठ स्थान से तुम टेढ़े हो जाओगे। तुम्हारा तप नष्ट हो जायगा। ऐसा शाप देकर रम्भा अपने इच्छित लोक को चली गयी।

स्वर्ग की सर्वश्रेष्ठ सुन्दरी का शाप अन्यथा तो हो नहीं सकता। मुनि का शरीर काला हो गया वे आठ स्थान से टेढ़े हो गये। उनका तप नष्ट हो गया। बहुत प्रयत्न करने पर भी भगवान उनके ध्यान में नहीं आते।

अपने तप, तेज, रूप, यौवन तथा साधनों को नष्ट हुआ देखकर मुनि को बड़ा दु:ख हुआ। उन्हें आठ स्थान से टेढ़े होने का तथा कुरुप होने का उतना दु:ख नहीं था, जितना ध्यान में भगवान के न आने का था। जिस जीवन में भगवान का ध्यान न हो वह जीवन व्यर्थ है। उससे तो मरना ही अच्छा। यही सब सोच कर मुनि ने सूखी-सूखी लकड़ियों को इकट्ठा किया, उनकी चिता बनायी और उसमें अग्नि देकर ज्यों ही कूदने को उद्यत हुए त्यों ही कृष्ण प्रकट हुए और कृष्ण ने वर दिया- हे मुनि, जो काम पर विजय प्राप्त कर लेते हैं, वे कृष्ण आत्मा ही हो जाते हैं। उन्हें कृष्ण गो-लोक की प्राप्ति होती है। उनकी ज्योति कृष्ण के साथ तदाकार हो जाती है। तुम शोक मोह को छोड़ दो, अभी कुछ दिन और तप करो। अन्त में तुम्हें कृष्ण गो-लोक की प्राप्ति होगी। इस प्रकार कृष्ण के वरदान देने पर मुनि ने प्राण त्याग करने का विचार छोड़ दिया। वे गन्धमादन पर्वत को छोड़कर मलयाचल पर आकर घोर तप करने लगे। बिना कुछ खाये पिये साठ हजार वर्षों तक तप करते रहे। उन्होंने अन्न जल सब छोड़ दिया था। इससे इनका अन्त:करण जल कर भस्म हो गया था। ये कृष्ण के परम भक्त थे, ये काम के वश में नहीं हुए थे। इसलिये इन्हें गो-लोक की प्राप्ति हुई।

भजन

राधे तेरे चरणों की यदि धूल जो मिल जाये।
श्याम तेरे चरणों की यदि धूल जो मिल जाये।।
सच कहता हूँ तेरी रहमत दिन रात बरसती है।
एक बूँद जो मिल जाये दिल की कली खिल जाये।। राधे...
ये मन बड़ा चंचल है कैसे तेरा भजन करूँ।
जितना इसे समझाऊँ उतना ही मचल जाये।। राधे...
नजरों से गिराना ना चाहे कितनी सजा देना।
नजरों से जो गिर जायें मुश्किल ही सम्हल जाये।। राधे...
राधे इस जीवन की बस एक तमन्ना है।
तुम सामने हो मेरे मेरा दम ही निकल जाये।। राधे...

*****

कैसे आऊं रे सांवरिया तेरी हरनगरी।
तेरी नगर में यमुना बहत है पाँव धरूँ बहिजाऊँ सगरी।
तेरी नगर मतें दान लगत है करत रहें झगरा झगरी।।
तेरी नगरी में फाग मचत है रोकन गुजरियन की डगरी।
भरभर कर पिचकारी मारत भीजत लहँगा औ चुनरी।।
तेरी नगरी में बसुरी बजत है भूलि जात सुधि बुधि सगरी।
चन्द्रसखी भजु बालकृष्ण छवि लूटलेत माखन गगरी।।

*****

आसरा इस जहाँ का मिले न मिले, मुझको तेरा सहारा सदा चाहिए।
चाँद तारे फलक पर दिखें न दिखें, मुझको तेरा नजारा सदा चाहिए।।
यहाँ खुशियां है कम और ज्यादा है गम, जहाँ देखो वहीं है भरम ही भरम।।
मेरी महफिल मे शम्मा जले ना जले, मेरे दिल में तेरा उजाला सदा चाहिए।।
कभी बैराग है कभी अनुराग है, जहाँ बदले है माली वही बाग है।।
मेरी चाहत की दुनिया बसे ना बसे, मेरे दिल में बसेरा तेरा चाहिए।।
मेरी धीमी है चाल और पथ है विशाल, हर कदम पर मुसीबत है अब तो सम्हाल।।
पैरे मेरे थके है चले न चले, मेरे दिल में इशारा तेरा चाहिए।।

दूर नगरी बड़ी दूर नगरी, कइसे आऊं रे कन्हाई तेरी गोकुल नगरी।
एक मथुरा उत गोकुल नगरी, बीच बहे यमुना गहरी।
पांव धरूं पायल मोरी भीगे, पार करूं बह जाऊं सगरी।
रात को आऊं डर मोहे लागे, दिन में आऊं तो देखे सारी नगरी।
सखि संग आऊँ कान्हा शर्म मोहे लागे, अकेली आऊँ ता भूल जाऊं डगरी।
धीरे धीरे चलु कन्हा कमर मोरी लचके, झटपट चलुँ तो छलकाये गगरी।
बाई मीरा प्रभु गिरिधर नागर, तुम्हरे दरश बिना हो गई बावरी।

*****

तुलसीदास कह गये सभी से ऐसा कलियुग आयेगा। पण्डितजन तो दुखी रहेंगे मूरख मौज उड़ायेगा।।
अभिमानी आडम्बर संत यहाँ कहलायेगा। डींग मारने वाला भाई यहाँ पण्डित कहलायेगा।
सच्चे सब दुश्मन होंगे, झूठा मौज उड़ायेगा।।१।।
वेद ज्ञान के बने विरोधी वर्ण धर्म उठ जायेगा। दीन दुखी जनता को राजा नोच नोच कर खायेगा।
रक्षक ही जब भक्षक होंगे किसको कौन बचायेगा।।२।।
धन को हरनेवाला भाई बुद्धिमान कहलायेगा। उल्टी सीधी बात करे जो वक्ता वही कहलायेगा।
स्वार्थ में ही जियेगा मानव स्वार्थ में मर जायेगा।।३।।
जटा जूट रखने वाला तपसी यहाँ कहलायेगा। भक्ष्य अभक्ष्य को जो नहीं जाने वो जन पूजा जायेगा।
तुलसी दल को छोड़ के मानव मदिरा पान करायेगा।।४।।
पहन जनेऊ गले में हरिजन गीता ज्ञान सुनायेगा। बेटा बाप का दुश्मन होगा नारी के गुण गायेगा।
वीर सभी तो मौन रहेंगे हिजड़ा राज चलायेगा।।५।।
गैर पुरुष का रूप सदा ही नारी के मन भायेगा। विधवाओं का रूप खिलेगा विदुषी मुख मुरझायेगा।
चाल चलन और मर्यादा का नाश यहाँ हो जायेगा।।६।।
कलियुग में सब गुरुजनों का चेला मान घटायेगा। बात-बात में होगी हत्या भाई को भाई खायेगा।
पूजा होगी दुष्टजनों की धर्म कर्म उठ जायेगा।।७।।
काल पड़ेगा समय-समय पर मानव कष्ट उठायेगा। घास की रोटी तक धरणी पर भूखा मानव खायेगा।
अपने कर्मों का फल सज्जनों इसी जन्म में पायेगा।।८।।
माया के बन्धन में मानव भजन नहीं कर पायेगा। चोरी-जारी लम्पट में मन, मूरख सदा लगायेगा।
झूठ बोलकर जो खुश करता वह गुणवान कहायेगा।।९।।
हरि नाम सब बुरे कर्म से हमको सदा बचाऐगा। भव सागर से तरने का बस एक मार्ग रह जायेगा।
अल्प काम में अल्प भजन से मानव मुक्ति पायेगा।।१०।।
भक्त दयालु सब लोगों पर रंग जमाना लायेगा। त्यागी योगीं कोई बिरला ही कलियुग में बच पायेगा।
होगा फिर अवतार धरा पर कलि अवतार कहायेगा।।११।।
तुलसीदास कह गये सभी से ऐसा कलियुग आयेगा। हँस चुगागा दाना दुनका कौवा मोती खायेगा।।